श्रद्धांजलि-अंक

अंक १] [जनवरी १९५१

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मंडल - प्रकाशन

श्रद्धांजलि अंक

वार्षिक मूल्य ४)]

जीवन - साहित्य

[एक प्रति का ।।)

लेख-सूची

जन्म : ३१ अक्तू० १८७५] कर्मयोगी सरदार [देहांत : १५ दिस० १९५०

जन्म : १५ अग० १८७२] योगिराज श्री अरविन्द [देहांत : ५ दिस० १९५०

जन्म : २४ नव० १८६९] दीनबन्धु ठक्करबापा [देहांत : १९ जन० १९५१

पाठकों से निवेदन

प्रिय बंधु,

सप्रेम वंदे। पिछले अंक में अपनी सूचना के अनुसार हम लोग जनवरी-अंक को 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक के रूप में ही प्रकाशित करना चाहते थे, लेकिन इधर तीन महापुरुषों का निधन हो जाने के कारण हमें यह अंक श्रद्धांजलि के रूप में निकालने के दु:खद कर्तव्य का पालन करना पड़ा है। योगिराज अरविन्द, सरदार वल्लभभाई पटेल और दीनबंधु ठक्करबापा तीनों की ही अपने अपने क्षेत्र में हमारे देश के लिए महत्वपूर्ण देन रही है। 'जीवन-साहित्य'-परिवार की ओर से हम तीनों दिवंगत आत्माओं को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक अब मार्च में प्रकाशित होगा। उसके लिए हमें बहुत सुन्दर और उपयोगी सामग्री प्राप्त हो रही है। केन्द्रीय सरकार के गृह-मंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, डा० कुलरंजन मुखर्जी, डा० सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग, डा० कृष्ण वर्मा, प्रो० रामचरण महेन्द्र, डा० के लक्ष्मण शर्मा, डा० जटाशंकर नंदी, डा० भागवत, डा० राजू आदि-आदि अनेक ख्यातिप्राप्त विद्वानों एवं सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों की रचनाएं प्राप्त होगई हैं। बहुतों ने लिखा है कि भेज रहे हैं। इनके अतिरिक्त महात्मा गांधी, लुई कूने, एडोल्फ जुस्ट आदि की रचनाएं भी इस अंक में रहेंगी। निस्सदेह विशेषांक अपने ढंग की एक ही चीज होगी। पाठकों को उसके लिए एक महीना अधिक प्रतीक्षा करनी होगी, इसका हमें खेद है।

जिन पुराने ग्राहकों का नये साल के लिए चंदा प्राप्त होगया है या जो इस महीने से नये ग्राहक बने हैं, उनकी सेवा में हमने अपने निश्चय के अनुसार 'गांधी डायरी' भेंट-स्वरूप भेजना आरंभ कर दिया है। जिन बंधुओं ने अभी तक चंदा न भेजा हो वे ४) तत्काल भेज देने की कृपा करें, जिससे एक अमूल्य उपहार से वे वंचित न रहें। 'डायरी' की सुन्दरता और उपयोगिता के विषय में कुछ कहना हमारे लिए आवश्यक नहीं है। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इस उपहार को आप हमेशा अपने पास सहेज कर रखेंगे। डायरी जानबूझकर कुछ कम डाक-टिकट लगाकर भेजी जा रही है, जिससे सुरक्षित पहुँच जाय। बैरंग पहुँचे तो छुड़ा लेने की कृपा करें। जो लोग जुलाई से ग्राहक हैं, वे अगले वर्ष का चन्दा अभी भेज कर गांधी-डायरी का उपहार प्राप्त कर सकते हैं।

जिन बंधुओं का चंदा हमें प्राप्त नहीं हुआ है, उनकी सेवामें 'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। अच्छा यह होगा कि रुपये मनीआर्डर से भेज दिये जायं।

कृपाकांक्षी

यशपाल जैन

सम्पादक

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश की ग्राम पचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

वर्ष १२ | जनवरी १९५१ | अंक १

अहिंसक नवरचना का मासिक

सरदार पटेल

महात्मा गांधी

जिस सरदार के सेनापतित्व में आपने इस प्रतिज्ञा का सुन्दर पालन किया उसीके सेनापतित्व में आप यह भी करें। ऐसा स्वार्थ-त्यागी सरदार आपको और नही मिलेगा। यह मेरे सगे भाई क समान है। फिर भी इतना प्रमाण पत्र उन्हें दते हुए मुझे जरा भी सकोच नहीं होता।

×

वल्लभभाई जैसे नाम के पटेल है, वैसे ही उनकी साख भी है। बारडोली की विजय प्राप्त कर उन्होंने अपनी साख को कायम रक्खा। (विजयी बारडोली, पृष्ठ ४२६)

×

सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ रहना मेरे लिए एक बडे सौभाग्य की बात थी। मै उनकी बेमिसाल बहादुरी से भली भाति परिचित था। लेकिन पिछले १६ महीने में उनके साथ रहने का जैसा सौभाग्य मिला वैसा पहले कभी नही मिला। अपने जिस प्रम की उन्होंने मुझ पर वर्षा की, उससे मुझे अपनी स्नेहमयी मा का स्मरण हो आया। मै इस बात को कदापि नही जानता था कि उनमें मा के जैसे गुण है। बारडोली और खेडा के किसानो के लिए उनकी जितनी सावधानता और उत्कण्ठा रही, उस मे कभी नही भूल सकता। ('सरदार पटेल' से)

×

सरदार सीधी बात बोलने वाले है। वे बोलते है तो कडवी लगती है। वह सरदार की जीभ में है। मैने उनसे कहा कि आपकी जीभ से कोई बात निकली कि काटा होगई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है, दिल वैसा नही है। उसका मै गवाह हू। (१३ जनवरी १९४८)

अंतिम श्रद्धाञ्जलि

"सरदार पटेल की पार्थिव देह चली गई है; किन्तु उन्होंने देश की जो सेवाएं की हैं, उनके रूप में वे सदैव अमर रहेंगे।" —(राष्ट्रपति) राजेन्द्रप्रसाद

"हम सब तथा सारा देश जानता है कि यह एक बड़ी कथा है। इतिहास उसे अपने अगणित पृष्ठों पर अंकित करेगा और उन्हें नवभारत के निर्माता और संगठन-कर्ता के नाम से पुकारेगा।" —जवाहरलाल नेहरू

"असली वल्लभभाइ आज हमसे बिछुड़ गये हैं।... परन्तु वह महान स्फूर्ति, साहस और आत्मशक्ति के अवतार थे। हम यह न सोचें कि वे नहीं रहे। हमारे परिचित वल्लभभाई के चले जाने पर भी सच्चे वल्लभभाई सदा जीवित रहेंगे।" —च० राजगोपालाचार्य

"सरदार पटेल की मृत्यु का समाचार सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ और गहरा धक्का लगा। कुछ वर्ष पूर्व जब मैं केबीनट मिशन के साथ भारत गया था तो मैं उनके दृढ़ चरित्र, ईमानदारी तथा देशभक्ति से बड़ा प्रभावित हुआ था।" —(लार्ड) पेथिक लारेंस

"गुजरात का सिंह और भारत का सरदार अब नहीं रहा।...वे महात्माजी के दाहिने हाथ थे।" —अनन्तशयनम आयंगर

"एक शानदार जिन्दगी की दास्तान खत्म हो गई। जिस दुनिया में हम चलते-फिरते हैं, उसमें वह दास्तान खत्म हो गई है, मगर दिमागों और दिलों की दुनिया में वह दास्तान हमेशा ज़िन्दा रहेगी और याद की जायगी।" —(मौलाना) अबुलकलाम आज़ाद

"एक सच्चा क्षत्री हमारे बीच से उठ गया। भारत का एक ऐसा सेनानी, जो अपने इरादे, साहस और संगठन-क्षमता के लिये प्रसिद्ध था, हमारे बीच नहीं रहा।" —रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

"वे एक महान संगठनकर्ता तथा कभी न झुकने वाले योद्धा थे।"...मेरे लिये यह एक राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत हानि भी है।" —(आचार्य) कृपलानी

"वे पुरुषों में सिंह थे। वे वज्र के समान कठोर, साथ ही फूल के समान कोमल थे।" —एन० वी० गाडगिल

"मैं तो विविध विचारों के व्यक्तियों को आकर्षित करने तथा प्यार की रेशम-डोरियों से उन्हें बांध रखने के मानवीय गुणों के कारण उनकी सराहना करूंगा।" —श्रीप्रकाश

"मैंने उन्हें परीक्षा के अन्धकारमय तथा विजय के आशामय अवसरों पर देखा है। वे न अन्धकार में विचलित हुए और न आशा उनका गांभीर्य नष्ट करने में सफल हुई।" —आसफ़अली

"सरदार पटेल की मृत्यु एक राष्ट्रीय विपत्ति है।" —माधव श्रीहरि अणे

"वे नवभारत के निर्माताओं में से एक थे। उनकी मृत्यु से भारत का एक पुत्र खो गया।" —लियाकतअली खां

सरदार की खरी बातें

"हम ऐसा स्वराज्य चाहते हैं, जिसमें सैकडो आदमी सूखी रोटी के अभाव में मरते न हो, जिसमें पसीना बहा कर पैदा किया हुआ अनाज किसानो के बच्चो के मुह में से छीनकर विदेश न भेज दिया जाता हो; जिसमें लोगो को कपडे के लिए पराये देश पर आधार न रखना पडता हो, जिसमें जनता की इज्जत की रक्षा या उसका लूटना विदेशियों की मर्जी पर न हो, जिसमें स्वराज्य की धारासभा का अध्यक्ष विदेशी 'विग' या चोगा न पहनता हो, और जिसमें स्वदेशी (गाधी) टोपी पहनने पर नौकरी छूटने का डर न हो। स्वराज्य में स्वदेशी कपडा पहनना ही जनता का स्वाभाविक धर्म माना जायगा। हमारे स्वराज्य में थोडे-से विदेशियों की सुविधा के लिए विदेशी भाषा में राजकाज नही होगा। हमारे विचार और शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नही होगी। हमारे विद्यालयों के आचार्य विदेशी नही होंगे। राज्य का कामकाज जमीन और आसमान के बीच पृथ्वीतल से सात हजार फुट ऊंचे से नहीं होगा। स्वराज्य में ऐसी हालत नही होगी कि महान देशभक्तो की स्वतन्त्रता तो भले ही खतरे में हो, परन्तु शराबियो की आजादी की रक्षा करने के लिए खास चिन्ता रखी जाय। हमारे स्वराज्य में यह नही होगा कि घर में पैदा होने वाली महुए जैसे खाने के काम आने वाली चीज पर नियत्रण रखा जाय और सरकार उस महुए की शराब बनाकर उसका व्यापार करती हो। इतना ही नहीं; बल्कि लाखो रुपये की व्हिस्की की शराब विदेश से आजादी के साथ नहीं आ सकेगी। स्वराज्य में देश की रक्षा के लिए इतना फौजी खर्च नहीं होगा कि देश का दिवाला निकालने की नौबत आये। स्वराज्य में हमारी फौज भाडे की टट्टू नही होगी। उसका उपयोग हमें गुलाम बनाने और दूसरी जातियो की स्वतन्त्रता नष्ट करने में नहीं होगा। बडे अफसरों और छोटे नौकरो के वेतन में आकाश पाताल का अन्तर नही होगा। इसाफ अत्यन्त महगा और लगभग असभव-सा नही होगा। और इन सबसे विशेष बात तो यह होगी कि जब हमारा स्वराज्य होगा तब हम अपने देश में और विदेशों में भी जहां-तहा दुतकारे नहीं जायेंगे।" (१-६-१९२१)

... .

"जिस दिन सरकारी दफ्तर में किसान इज्जत और आबरू वाला माना जायगा, उसी दिन उसकी तकदीर पलटेगी। आज तो सरकार जगल में घूमने-वाले पागल हाथी की तरह मदोन्मत्त हो गई है, जो अपनी चपेट में आने वाले हर किसी को कुचल डालता है। पागल हाथी मद में यह मानता है कि जब मैंने शेर-चीता को मारा है तो मेरे सामने मच्छर की क्या गिनती? मैं मच्छर को समझाता हू कि इस हाथी को जितना चाहो घूमने दे और बाद में मौका देखकर उसके कान में घुस जा! इतनी शक्ति वाला हाथी भी कान में घुस जाने पर तडप-तडपकर सूड पछाडकर जमीन पर लोटने लगता है। मच्छर क्षुद्र है, इसलिए उसे हाथी से डरना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। मिट्टी के बडे घडे से असख्य ठीकरिया बनती हैं, फिर भी उनमें से एक ही ठीकरी मिट्टी के सारे घडे को फोडने के लिए काफी होती है। घडे से ठीकरी किसलिए डरे? वह घडे को अपने जैसी ठीकरिया बना सकती है। फूटने का डर किसी का रखना चाहिए तो उस घडे का! ठीकरियो को क्या डर हो सकता है?

"इस धरती पर अगर किसी को सीना तानकर चलने का अधिकार है तो वह धरती से धनधान्य पैदा करनेवाले किसान को ही है।

"किसान डर कर दुःख उठाये और जालिम की लातें खाये, इसमें मुझे शर्म आती है। और मैं सोचता हू कि किसानो को गरीब और कमजोर न रहने देकर सीधे खडे करू और ऊचा सिर करके चलने वाले बना दू। इतना करके मरूगा तो अपना जीवन सफल मानूगा।" (सन् '२८ के भाषणा से)

... ...

"मौत तो एक ही बार आती है, कई मर्तबा नहीं और वह करोड़पति या गरीब किसीको भी नहीं छोड़ती। तो फिर उसका क्या डर? हम मौत का डर छोड़कर निर्भय बन जायं।" (२९-६-१९३०)

... ...

"सरकार हमारे सिर तोड़ेगी, मगर याद रखिए कि वह हमारा दिल नहीं तोड़ सकती। गोलियों से हमारे दिल छलनी हो जायेंगे, मगर ऐसी कोई गोली नहीं बनी जो आत्मा को छेद सके।" (सन् ३० के सत्याग्रह में)

... ...

"हमारी इस लड़ाई में कभी हार नहीं हुई है। हम न कभी हारे और न हारेंगे; क्योंकि हमारी लड़ाई की बुनियाद सत्य पर है। हम अपने देश की आजादी चाहते हैं। अगर हम इंग्लैंड पर राज्य करने की या और किसी प्रदेश की मांग करते तो दूसरी बात थी। हम तो अपना ही हक मांग रहे हैं।

"हमारा युद्ध अलग है। अहिंसा उसकी बुनियाद है। आजकल विज्ञान का विकास हो गया है। उसके अणु-बम की संहार-शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई है कि उससे दस लाख आदमी थोड़ी-सी देर में खत्म हो जाते हैं। संहार-शक्ति के कारण जीते हुए देश भी आज घबराहट में पड़ गये हैं।" (२४-९-१९४५)

... ...

"हमारे देश की प्राचीन परम्पराओं का हमें जो उत्तराधिकार मिला है, वह हमारे लिए गर्व की चीज है। यह तो एक संयोग की बात है कि कुछ लोग रियासतों में रहते हैं और कुछ लोग ब्रिटिश भारत में। हमारे देश की उच्च परम्पराओं और संस्कृति के हम सब बराबरी के हिस्सेदार हैं। हम सबके हित-संबंध अलग-अलग नहीं हैं। इतना ही नहीं, हम सब एक ही खून और एक ही भावना के बंधन में बंधे हुए हैं। कोई हमें अलग-अलग टुकड़ों में बांट नहीं सकता। कोई हमारे बीच ऐसी रुकावटें पैदा नहीं कर सकता, जिन्हें दूर न किया जा सके। इसलिए मैं कहता हूं कि हम एक-दूसरे से अलग हो जायं, इस ढंग से संधियां करने के बजाय एक सभा में मित्रों की तरह बैठकर अपना विधान तैयार करें, इसमें हमारी शोभा है। मैं अपने मित्र राजाओं और उनकी प्रजाओं को निमन्त्रण देता हूं कि मैत्री और सहयोग की भावना से विधान-सभा में आइए। हम मिल-जुलकर सबके कल्याण के लिए मातृभूमि के चरणों में बैठकर वफादारी के साथ अपना विधान तैयार करने की कोशिश करें।" (५-७-१९४७)

... ...

"राजा महाराजाओं से मैं कहता हूं कि वक्त आने पर आपको प्रजा के कहे अनुसार करना है। जिन राजाओं के साथ प्रजा नहीं होगी, वे अपने आप खत्म हो जायेंगे। मैं उनसे कहता हूं कि १५ तारीख तक जो भारतीय संघ में आगया वह आ गया, बाद में दूसरी तरह हिसाब होगा। आज जो शर्तें मिलती हैं वे फिर नहीं मिलेंगी। इसलिए राज्य सम्हालना हो तो अन्दर आ जाइए। आज की दुनिया में अकेला रहना मुश्किल है। जब तेज आंधी आती है तब अकेला पेड़ गिर जाता है। मगर जो दूसरे पेड़ों के समूह में होता है, वह बच जाता है। आप भी, रामचन्द्रजी और अशोक-जैसों के वंशज हैं। परन्तु आजकल आप अंग्रेज अधिकारियों के छोटे-छोटे चपरासियों को भी सलाम करते हैं। आपको अभी तक विश्वास नहीं होता कि १५ अगस्त को अंग्रेज चले जायेंगे। परन्तु जब वे जायेंगे और आपको स्वतन्त्रता की हवा लगेगी, तब आपके हृदय खुलेंगे।" (११-८-१९४७)

... ...

"अब कांग्रेस का काम पूरा होता है। हमारा जीवन-कार्य पूरा होता है। जब लोकमान्य का देहान्त हुआ तब चौपाटी के मैदान में हमने प्रतिज्ञा की थी कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उसके बाद लाहौर-कांग्रेस में रावी के किनारे कांग्रेस के इस झंडे के नीचे आजादी के लिए प्राण देने की प्रतिज्ञा की और निश्चय किया कि हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सब एक होकर रहेंगे। वह निश्चय हम पूरी तरह नहीं निभा सके, इसलिए आज जितना आनन्द होना चाहिए उतना नहीं हो रहा है। मगर इतना समझ लेना चाहिए कि अब विदेशी हमारे बीच में किसी तरह की फूट नहीं डाल सकेंगे। यह बहुत बड़ी बात है।" (११-८-१९४७)

"हमारे कंधे दुर्बल हैं और बोझ बड़ा वजनी है। अगर दूसरे लोग उस भार को हमसे ले सकें तो हमें बड़ी खुशी होगी; किन्तु उन्हें पहले यह प्रमाणित करना होगा कि वह उस भार को उठा सकते हैं। अगर वे यह सोचते हों कि अन्य किन्हीं उपायों से वे उस भार को हमसे ले लेंगे तो वे गलती पर हैं। उन्हें उत्तरदायी होना पड़ेगा।" (४ जनवरी १९५०)

... ...

"मैं तो इतना ही कहूंगा कि आप लोग अपने आदमियों को समझाइये कि उनकी सरकार तो सिर्फ इतना चाहती है कि वे निहायत ईमानदारी और खूबी के साथ अपना कर्तव्य पालन करें। यह ध्रुव सत्य है कि अपने कर्तव्य का पालन करने में जो आनन्द आता है वह उसका सच्चा पुरस्कार है। सरकार और जनता की वास्तविक सेवा कभी बेकार नहीं जाती।... सरकार के मंत्रियों तथा छोटे-से छोटे कर्मचारी तक को यह समझ लेना चाहिए कि कोई भी प्रजातन्त्री सरकार पुलिस-राज के आधार पर अपना राज नहीं चला सकती। वह तो जनसाधारण की इच्छा और सहयोग से ही शासन कर सकती है। (१३-१-१९५०)

"सरकार तो चलनी ही है। अगर आप उससे असन्तुष्ट हैं तो उसे चुनाव द्वारा या क्रान्ति द्वारा बदल सकते हैं। किन्तु पुलिस पर हमले या बम-शान्ति की निशानी नहीं। यह सब तो पागलों का सिद्धान्त और काम है।...मैं आपको चेतावनी देता हूं कि अगर ये कारवाइयां बन्द न हुईं तो आज आपको जो नागरिक आजादी है, वह भी गायब हो जायगी।"

(१६ जनवरी १९५०)

... ...

'क्षणिक क्रोध और भावुकता में कुछ कर गुजरना बहुत आसान है, मगर बढ़ाये हुए कदम को वापस लेना और एक बार की हुई क्षति को दुरुस्त करना बहुत मुश्किल होता है।.. हर कीमत पर हमें शान्ति और संयम कायम रखना है।" (१० फरवरी १९५०)

... ...

"जब जब भारत स्वतन्त्र रहा, उसकी स्वतन्त्रता को खतरा सबसे ज्यादा दोस्तों से हुआ है और दुश्मनों से कम। इसलिए आप लोगों को बहुत सावधानी से काम करने की आवश्यकता है।" (अन्तिम सन्देश)

भारत का सरदार

हरिभाऊ उपाध्याय

सरदार पटेल का ख्याल आते ही १९१८ से लेकर अबतक का भारत का सारा राष्ट्रीय इतिहास एक चित्रपट की तरह सामने आ जाता है। खेड़ा जिले के एक किसान का बेटा, अहमदाबाद का एक होनहार, चतुर, मनचला बैरिस्टर, फिर गांधी की आंधी में आनेवाला असहयोगी वीर सिपाही और अंत में बारडोली का ही नहीं, सारे भारत का सरदार, निपुण राजनीतिज्ञ, दृढ़ रक्षक, सबको संभाल कर ले चलनेवाला बुजुर्ग—यह संक्षेप में हमारे सरदारश्री का उत्तरोत्तर उन्नत व भव्य जीवन है। कम-से-कम बोलकर, कम से कम दौड़-धूप कर के एक जगह बैठे हुए, टेलिफोन से या मामूली संदेशों और आदेशों से सारे भारत के कांग्रेस-संगठन की व शासन की बागडोर थामने वाले, अनेक राजा-महाराजाओं को जादू की तरह एक झण्डे के नीचे लाने वाले सरदार को भारत कई पीढ़ियों तक याद रक्खेगा। उनका यह गुण यह शक्ति भारत के होनहार बच्चों को सदियों तक स्फूर्ति देती रहेगी। बापू के चले जाने के बाद सरदार ही ऐसी शक्ति थे, जिनके 'हाँ' कहने से लोगों के दिल फूल उठते थे और 'ना' कहने से कमर बैठ जाती थी—बल्कि सरदार के 'ना' से तो दिल कांप उठता था; जिसे उन्होंने पराया मान लिया बस वह अपनी खैर नहीं समझता था। सरदार के इस भीषण रूप से सब डरते थे, परन्तु जो उनकी गोद में चला गया उसे पिता ही नहीं, माता का स्नेह-वात्सल्य उनसे मिलता था। वे मुख्यतः व्यावहारिक नेता थे। आज की समस्या को हल करने में लाजवाब थे।

कल के पीछे परेशान होनेवाले आदर्शवादी नहीं थे। आदर्श को वे देखते या समझते नहीं थे, सो वात नहीं; परन्तु वे मानते थे कि मुख्य वात यह है कि हम आज क्या करें और जो कुछ करना है, वह कैसे करें? आज का काम यदि कर न पाये और कल की चिन्ता में ही डूबे रहे तो कल कभी आने वाला ही नहीं है, ऐसी उनकी मान्यता थी। वे कठोर शासक और दृढ़ अनुशासक थे। राजनीति के खिलाड़ी थे, उसके दांव-पेंच में उन्हें पछाड़ना आसान नहीं था। फिर भी वे गांधीजी के आदर्शों को सही मानते थे। अपनी शक्तिभर उनका पालन भी करते थे। जितना मानते थे उतना पालते भी थे। गांधीजी के आदर्शों से बढ़कर उनकी श्रद्धा गांधीजी की सचाई, दृढ़ता, बहादुरी, निर्भयता पर अधिक थी। इधर उनकी ऐसी धारणा हो गई थी कि आजादी मिली तो गांधीजी के नेतृत्व में, किन्तु देशका शासन उनके सिद्धान्त से नहीं चल सकता। देश उनकी उच्च नीति पर चलने लायक नहीं हुआ। किन्तु उनका यह विश्वास अवश्य था कि अन्त में संसार को आना पड़ेगा गांधीजी के वताये रास्ते पर ही। यही कारण है जो गांधीमार्गी सरदार से अपने को दूर अनुभव करने लगे थे। लेकिन सरदार जिस वात को ठीक मान लेते थे उस पर दृढ़ता से चलने में किसी से डरते या दवते नहीं थे। न ऐसे वाद-विवादों में ही पड़ते थे, अपना काम करते चले जाते थे। इससे कई लोग उनपर विगड़ते और झल्लाते थे।

सरदार जैसे कार्य-कुशल थे वैसे ही ईंट का जवाव पत्थर से देने में भी नहीं चूकते थे। इसमें न वे जिन्ना से चूकते थे, न चर्चिल से, न स्टैलिन का लिहाज रखते थे। उनपर जादू यदि किसी का चला तो गांधीजी का। गांधीजी को वे वसभर 'ना' नहीं कहते थे। वरसों तक वे गांधीजी के 'डिट्टो' समझे जाते रहे; किन्तु 'ना' कहने पर गांधीजी भी चुप साध लेते थे। ऐसा दुर्दमनीय व्यक्तित्व उनका था। यद्यपि उनका स्वभाव एकतंत्री पद्धति के अधिक अनुकूल था फिर भी जनतंत्र के सांचे में अपने को ढालने का वे भरसक प्रयत्न करते थे। जिसने उन्हें अपना विरोधी या शत्रु माना वह पछताता रहा है और जो उनके मित्र तथा सहयोगी-मंडल में आगया वह सदैव भाग्यवान रहा है।

संयमी ऐसे कि युवावस्था में ही विधुर हो जाने के वाद दूसरा विवाह नहीं किया, जवकि उनकी विरादरी में उसकी पूरी-पूरी छूट थी, और उज्ज्वलता के साथ अपने विधुरपन को निवाहा भी। वाप-दादों की जो कुछ जमीन-जायदाद थी वह सव भाइयों को देदी, अपने लिए उनके पास तनभर कपड़े के सिवा कुछ नहीं था। कांग्रेस के कार्यकर्त्ता रहने की अवस्था में जो वेशभूषा थी वही भारत का उपप्रधान मंत्री होने की अवस्था में भी रही—खादी अपनी लड़की मणिवहन के कते सूत की, चिट्ठी-पत्री हाथ के कागज पर।

वे ऐन मौके पर हमको छोड़ गये। आगामी चुनाव सिर पर हैं। कांग्रेस उनके पीछे निःशंक थी। अव सव एक-दूसरे का मुंह देख रहे हैं। हमारी जिम्मेदारी स्पष्ट है। कांग्रेसियों ने यदि अपने-अपने अन्तःकरण साफ कर लिये, अपनी क्षुद्रताएं छोड़ दीं, पिछले कटु अनुभवों को भूलने और नया इतिहास लिखने की क्षमता पैदा कर ली, तो सरदारश्री के अवसान से हमने काफी शिक्षा लेली, ऐसा कहा जायगा। उस स्थिति में सरदारश्री की आत्मा को भी ऐसा लगेगा कि उसने उनके शरीर को छोड़कर अच्छा ही किया, नहीं तो वह हमें 'कपूत' की श्रेणी में गिने विना नहीं रहेगी। वापू की आत्मा तो हमें क्षमा भी कर देगी; क्योंकि वे राष्ट्र-पिता थे; परन्तु सरदार की आत्मा हमें दण्ड दिये विना नहीं रहेगी, क्योंकि वे शासक व कैप्टन थे।

"सरदार की कठोर और गम्भीर आकृति उस लोहे की तश्तरी की तरह है, जिसमें देशभक्ति, ईमानदारी, मृदुता और आकर्षण-शक्ति के कीमती रत्न छिपे हुए हैं।"

—सरोजिनी नायडू

विनोदी सरदार

श्री विष्णु प्रभाकर

सरदार वल्लभभाई पटेल का जो रूप संसार के सामने रहा है वह वैसे चाहे कितना ही गौरवशाली रहा हो, परन्तु वह उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को व्यक्त नहीं करता। निस्सन्देह वे महान् योद्धा, विलक्षण व्यवस्थापक और सफल शासक थे, परन्तु साथ ही वे बड़े विनोदी थे, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। साधारणतया लोग इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। अभी उस दिन एक बन्धु सरदार का रोचक परिहास बता रहे थे। किसी गम्भीर राजनैतिक चर्चा के दौरान में मौलाना आजाद ने कहा—'हां ! यह हल तो तसल्लीबक्स है।"

इस पर सरदार बोले—"अबतक मौलाबक्स, अल्लाबक्स और खुदाबक्स का नाम तो सुना था। यह चौथा तसल्लीबक्स कहां से आ गया ?"

गांधीजी का विनोद तो लोक प्रसिद्ध है, परन्तु सरदार की हासवृत्ति जनता के सामने नहीं आई। यहां तक कि होली के अवसर पर भंग की तरंग में जब उपाधियाँ बांटी जाती थीं तब भी उनके भाग्य में 'हैवी टैंक' जैसी भारी उपाधियां ही होती थीं। वैसे भी प्रायः उनका हास्य टैंक से कम भारी नहीं होता था। राजनीतिक दांव पेंचों ने उनकी परिहास-भावना को तीखे व्यंग, एक विषैले चातुर्य (Wit) में परिवर्तित कर दिया था। इसी कारण जनता उन्हें कटु व्यंगकार तो मानती थी, परन्तु विनोदप्रिय भी हैं, यह नहीं जानती थी। उसके लिए यह बात कि सरदार बालक की तरह हंस सकते थे, आश्चर्यजनक थी। सत्य यह है कि शरारत से परिहास करने में वे उतने ही कुशल थे जितने विरोधी को विषैले चातुर्य से पराजित करने में। इसके अतिरिक्त उनके व्यंग में, चाहे वह कितना ही कटु क्यों न हो, एक दुर्बल मनुष्य की दुर्भावना, जिसे उपहास-वृत्ति कहा जा सकता है, नहीं थी। सरदार दूसरा पर हंस सकते थे तो अपने को भी हंसी का पात्र बना सकते थे। उनकी हास्य प्रवृत्ति बहुत कुछ स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान थी। उनमें मुक्तहास भी था और कटुव्यंग भी, पर सम्वेग का अभाव उनमें कभी नहीं पाया गया। सम्वेग के अभाव में विनोद को श्मशान की हंसी कहा जा सकता है।

सरदार को जिस प्रकार विद्रोह विरासत में मिला था उसी प्रकार विनोद-वृत्ति भी उनकी पैत्रिक सम्पत्ति थी। सभापति पटेल के मजाक काफी लोकप्रिय हैं। सरदार जब स्कूल में पढ़ते थे तब उनके अध्यापक ने एक बार उन्हें बिना किसी अपराध के पाडे लिखने की सजा दी। वल्लभभाई ने सुन तो लिया, पर वे ऐसा दण्ड कहां माननेवाले थे ? अगले दिन स्कूल आने पर अध्यापक ने पूछा—"पाडे लाये ?"

वल्लभभाई ने जवाब दिया—"जी, लाया तो था; पर वे पाठशाला के द्वार पर रस्सी तुड़ाकर भाग गए।"

इस चुटीले परिहास से निस्सन्देह अध्यापक तिलमिला उठे होंगे। गुजराती में पाडे पहाड़े को भी कहते हैं और भैंस के बच्चे को भी।

एक बार कुछ व्यक्ति गांधीजी से मिलने आए। मार्ग में सरदार मिल गये। पूछा—"कहां जा रहे हो ?"

उन्होंने जवाब दिया—"गांधीजी से मिलने।"

सरदार—"क्यों ?"

वे—"ब्रह्मचर्य पर कुछ बातें करनी है।"

सरदार—"अरे ब्रह्मचर्य पर गांधी से क्या बातें करोगे। उसके चार बेटे हैं। सब विवाहित हैं। खुद उसकी पत्नी जिन्दा है। वह ब्रह्मचर्य को क्या जाने ! ब्रह्मचर्य की बात मुझसे करो। मेरे केवल दो बच्चे हैं। बहुत पहले मेरी पत्नी मर गई थी, तब से मैंने दूसरी शादी नहीं की। ब्रह्मचारी मैं हूं।"

शरारत पूर्ण विनोद का सबसे रोचक उदाहरण बापू की लंगोटीवाला है। घटना इस प्रकार बताई जाती है। सत्याग्रह-सप्ताह शुरू होने वाला था। इसलिए पिंजाई भी शुरू करनी थी। महादेवभाई ने बापू से पूछा—"पींजन की तांत कैसी है ? आपसे कितनी बार टूटी है ?"

बापू ने उत्तर दिया, 'जतन करना आता हो तो

कुछ भी न टूटे। शंकरलाल ने मेरे पास से ली कि टूटी। काका ने मुझसे ली कि टूटी; लेकिन मेरी तो कई दिन चलती रहती है। यह तो जतन का काम है। देखो तो यह लंगोटी पहनता हूं। उसे संभाल-संभाल कर पहना करता हूं। और किसी के पास होती तो कभी की फट जाती।"

वल्लभभाई सुन रहे थे। उसी क्षण बोल उठे—"यह तो ऐसे लगता है कि जैसे पहनते ही न हो, और खूंटी पर सम्हालकर रख छोड़ी हो।"

बारडोली सत्याग्रह के अवसर पर सरकार ने मनुष्यों को ही बन्दी नहीं बनाया था, भैंसों को भी जेलखाने भेजा था। वहां अन्धकार में रहते-रहते काली भैंसें कुछ-कुछ सफेद हो गईं। उन्हें देखकर सरदार ने कहा—"यह तो मड़ामड़ी बन गई है।" अर्थात् अंग्रेजों की जेल में रहते-रहते ये काली भैंसें भी मडाम (अंग्रेजी में 'नारी' को कहते हैं) जैसी बन गई हैं।" इस परिहास में अट्टहास के साथ एक गहरी शरारत भी है; पर निर्दोष शरारत। ऐसी निर्दोष जैसी इस बात में—

बापू सोडे का प्रयोग बहुत करते थे। खाने की प्रत्येक वस्तु में उसे डालते थे। इसलिए जब कभी कोई अड़चन आ उपस्थित होती और सरदार की सलाह ली जाती तो वे सरल भाव से कह देते थे, "सोड़ा डालो न।"

बापू सुबह-शाम नीबू पीते थे। नीबू गरमी में महंगे हो जाते हैं। इसलिए बापू ने सरदार से कहा कि नीबू के स्थान पर इमली का प्रयोग किया जाय। जेल में उसके झाड़ भी बहुत हैं।

बापू की बात सुनकर सरदार हंस पड़े। बोले—"इमली के पानी से हड्डियां गल जाती हैं, बादी हो जाती है। गांधीजी ने कहा—"और जमनालालजी पीते हैं सो!"

वल्लभभाई बोले—"जमनालालजी की हड्डियों तक पहुंचने का इमली के लिए रास्ता ही नहीं है।"

कभी-कभी सरदार का तर्क-पूर्ण उत्तर उनकी प्रत्युत्पन्नमति का बड़ा मधुर परिचय देता था। किसी आलोचना में 'गांधी की रचनात्मक गफलतें' ये शब्द आए। महादेवभाई ने बापू से पूछा—"रचनात्मक गफलतें कैसी होती होंगी?" सरदार सुन रहे थे। एकदम बोले—"आज तुम्हारी दाल जल गई थी—ऐसी।" बापू खिलखिला पड़े।

निरुत्तर कर देने वाले, सचोट पर सारगर्भित व्यंग से पूर्ण, उनके हास-परिहास का विशेष परिचय महादेवभाई की उन डायरियों से मिल सकता है, जो उन्होंने यरवडा कारावास के दिनों में रखी थीं। गांधीजी से लोग विचित्र-विचित्र प्रश्न पूछा करते थे। उन दिनों सरदार भी बापू के मंत्री पद पर पहुंच गए थे। पत्र पढ़-पढ़ कर उन्हें सुनाया करते थे। एक भाई ने पूछा था—"हम तीन मन की देह लेकर धरती पर चलते हैं और बहुत-सी चींटियां कुचली जाती हैं। यह हिंसा कैसे रुक सकती है?" सरदार ने तुरन्त कहा—"इसे लिख दीजिए कि पैर सिर पर रख कर चले।"

किसी के पत्र में देखा कि स्त्री कुरूप है, इसलिए पसन्द नहीं, तो तुरन्त बापू से कहने लगे—"लिखिए न कि आंखें फोड़ कर उसके साथ रहे, फिर कुछ कुरूप नहीं दिखेगा।" एक आदमी ने अपने को फिर दुबारा शादी करने का आग्रह करने वाले की यह दलील दी थी कि 'उसने मुझ पर उपकार किया है और उसे तीन लड़कियों की शादी करना है। जाति में वरों की कमी है, इसलिए मुझसे आग्रह करता है।' वल्लभभाई बोले—"तब तीनों ही लड़कियों से ब्याह करले तो क्या बुरा है?"

एक आलोचक भाई ने बापू को खुली चिट्ठी लिखी। उसके अन्त में लिखा—"आपके जमाने में जीने का दुर्भाग्य प्राप्त करनेवाला।" बापू कहने लगे—"कहो इसे क्या जवाब दिया जाय?"

वल्लभभाई बोले—"कहिए कि जहर खाले।"

बापू—"नहीं, ऐसा नहीं। यह क्यों न कहें कि मुझे जहर दे दो?"

वल्लभभाई—"मगर इससे उसके दिन कहां पलटेंगे? आपको जहर दे दें तो आप गए और उसे फांसी की सजा मिले तो उसे भी आना पड़ेगा, तब फिर आपके ही साथ जन्म लेने का भाग्य में बदा रहेगा। इससे तो यही अच्छा कि वह खुद जहर खाले।"

बच्चों की जैसी शरारत से पूर्ण हंसी और विरोधी को कुचल देने वाला व्यंग, दोनों के वे एक

'दयामय, मंगल-मंदिर खोलो....'

श्री वियोगीहरि

शरीर छोड़ने से दस-बारह दिन पहले शाम को रोग-शैया पर लेटे-लेटे सरदारश्री अपनेआप धीरे-धीरे गुनगुना रहे थे—

'दयामय, मंगल-मंदिर खोलो...'

डाक्टर नाथाभाई पटेल ने मज़ाक के सुर में कहा—

"ऐसा आसान नहीं मंदिर का खुलना। एक नहीं, दो-दो ताले दरवाजे पर लगे हुए हैं!"

"अरे, दो तो क्या, दस ताले भी टूट जायेंगे और मन्दिर का द्वार खुल जायेगा।" सरदारश्री ने हंसते हुए डाक्टर की बात को उसी वक्त काट दिया और वैसे ही फिर भजन की उसी कड़ी को गुनगुनाने लगे—

'दयामय, मंगल-मंदिर खोलो...'

दयामय प्रभु के मंगल-मंदिर में प्रवेश पाने के लिए वे कितने ही दिनों से आतुर थे। असल में तो, बापू के सिधार जाने के बाद सरदार के जीवन में वैसा रस नहीं रह गया था।

ऐसे ही, एक दिन और उन्होंने हँसते हुए कहा था, "स्टेशनों पर कई मुसाफिर एक-दो आने टिकटबाबू को दे देते हैं तो टिकट उन्हें बिना तकलीफ के तुरन्त मिल जाता है। इसी तरह, मालूम होता है, वहाँ भी लाँच लेकर टिकट देते हैं। देखते-देखते मेरे कितने ही साथी टिकट कटा-कटाकर चले गये, पर मैं तो लाँच देनेवाला नहीं।"

इसी तरह सरदार, बीमारी के दिनों में भी, हंसते-हंसाते रहते थे; पर, यहां रोग-जर्जरित देह में बंधे रहना उन्हें इधर अच्छा नहीं लगता था।

सरदार बड़े-बड़े मोर्चों पर लड़े और उन्होंने बड़े-ही-बड़े काम किये। मन चाहता था—पर शरीर काम नहीं दे रहा था—कि उनके हाथ से देश का और भी कुछ भला हो। उनके मानस-चित्रपट पर भारत के अलावा चीन, तिब्बत और नेपाल की तस्वीरें घूमती रहती थीं। पर जो-जो करना चाहते थे, कर नहीं पाते थे और जो नहीं चाहते थे ऐसी कितनी ही बातें हो जाया करती थीं। बेबस थे। बिना कुछ भला काम किए कल नहीं पड़ता था। इसलिए लाचारी का जीना अच्छा नहीं लगता था। फिर भी कई महीनों से, कई दिनों से, जिद्दी रोग के साथ वीरता-पूर्वक लड़ते आ रहे थे।

पेट में असह्य पीड़ा होती थी, फिर भी कभी बेचैनी नहीं दिखाई। कभी कुछ कहा तो इतना ही कि पेट पर जैसे करौत चल रहा है, पर उफ़ तक नहीं करते थे। मौत भी बेचारी चकराती रही होगी कि इस अजीब से शिकार को किस तरह झपट कर पकड़ूं!

उस दिन भी वह बहादुर सरदार शिकारी मृत्यु की छाया तले कई घंटे बड़े शांतभाव से सोता रहा। अंत में धक्का देता हुआ वह मंगल-मंदिर के अंदर घुस ही गया। दयामय का द्वार खुल गया था।

सरदार वल्लभभाई को किसी ने 'लौह पुरुष' कहा और किसी ने भारत का 'बिस्मार्क'। उपमा देने या तुलना करने में एक प्रकार का रस आता है, फिर वह उपमा या तुलना ठीक-ठीक बैठती भी हो या नहीं। प्रशंसक और निन्दक दोनों ही अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप उपयुक्त-अनुपयुक्त शब्दों का मुक्त प्रयोग करते हैं। सरदार को भी क्या-क्या नहीं कहा गया। पर उन्होंने तो स्तुति और निन्दा दोनों की सदा उपेक्षा ही की।

असल में तो वे एक धर्मात्मा पुरुष थे। बहुत ऊहा-पोह में न पड़कर जिसे वे धर्म-विहित कार्य समझते उस पर दृढ़ रहना उनके साधु जीवन का मूलमंत्र था। बुद्धि निश्चयात्मक थी, इसलिए किसी भी निर्णय पर पहुंचने में देर नहीं लगती थी। मित्रता की तो अंततक निबाही। जो संकल्प बांधा उसे पूरा किया। अपनी बात पर से कभी हटे नहीं। दुनिया की आलोचना की परवा नहीं की।

हृदय कोमल और फूल-सा विकसित। इतनी बड़ी सत्ता पर आरूढ़, पर उसके प्रति मोह नहीं। पैसे को भी सदा तुच्छ ही समझा।

ऐसे थे वे सरदार—याने, धर्मात्मा पुरुष। प्रभु के मंगल-मंदिर का द्वार तो ऐसे भक्त पुरुष के लिए शान्ति-पूर्वक खुलना ही चाहिए था, और दयामय पिता ने उसे अपनी गोद में उठा लिया।

योगिराज को श्रद्धांजलि

"पुरातन काल के ऋषियों के समान निर्भीक विचार के श्रीअरविन्द कर्मठ पुरुष भी थे। उन्होंने शास्त्रों के अध्ययन को अपनी अविरत साधना की कसौटी पर चढ़ाया। भारत उनकी स्मृति को सचित रखेगा और उन्हें अपने ऋषि-मुनियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करके उनकी पूजा करेगा।"

—(राष्ट्रपति) राजेन्द्रप्रसाद

"वे एक महान व्यक्ति ही नहीं थे, बल्कि एक संस्था बन गये थे। पुरानी पीढ़ियों के लोग उनको भारतीय स्वतन्त्रता की एक जलती हुई मशाल के रूप में याद करते हैं। वे हमारी पीढ़ी के श्रेष्ठतम विचारकों में थे और उनके वियोग से हम सदैव दुखी रहेंगे।"

—जवाहरलाल नेहरू

"उनकी मृत्यु से भारत का एक वीर विशिष्ट पुत्र खोगया है, आध्यात्मिक जगत से एक विख्यात सिद्ध उठ गया है।"

—वल्लभभाई पटेल

"श्री अरविन्द की मृत्यु से भारत ने आज अपना एक प्रमुख नागरिक, महान पथ-प्रदर्शक और एक महानतम व्यक्ति खो दिया।'

—कैलाशनाथ काटजू

"वह वर्तमान युग के महानतम बुद्धिवादी थे और जीवन के लिए एक बहुत बड़ी शक्ति। राजनीति और दर्शन की उन्होंने जो सेवा की उसे भारत कभी नहीं भूलेगा। दर्शन और धर्म के क्षेत्र में उन्होंने जो अमूल्य कार्य किया, उसके लिए संसार उनका सदा ऋणी रहेगा।"—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

"श्री अरविन्द भारत में राजनैतिक जागरण के अगुवाओं में से थे।...जिन सन्तों और ऋषियों को समय-समय पर जन्म देने का सौभाग्य भारत को प्राप्त है, उनमें से एक संत उठ गया। उनका दिव्य जीवन दुनियाभर में मनुष्यों के विचारों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।"

—रविशंकर शुक्ल

'दुनिया का एक महानतम व्यक्ति उठ गया।..जबतक इस संसार का अस्तित्व है, धार्मिक पथ-प्रदर्शक के रूप में उनकी कृतियां अमर रहेंगी।"

—वी॰ वी॰ गिरि

"···श्री अरविन्द ने राजनैतिक स्वाधीनता को एक नई दिशा प्रदान की और जब भारत की स्वाधीनता की आशा एकमात्र धुंधली-सी ज्योति थी, तभी उन्होंने देश के लिए अपना सबकुछ त्याग दिया था।...इतनी महान् आत्मा के एकाएक निधन से कुछ खोया-खोया-सा महसूस होता है।'

—कन्हैयालाल मा॰ मुंशी

"...श्री अरविन्द ही प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने भारत का भविष्य देख लिया था और उसकी स्वाधीनता के लिए अपने ढंग से काम किया।"

—विधानचन्द्र राय

"...श्री अरविन्द की मृत्यु से मुझे अपार शोक हुआ है। दुनिया इस संकट के समय उनसे आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की आशा कर रही थी।'

—हेंरी केल्लर

अरविन्द-वाणी

योग

मानसिक प्रकृति और मानसिक विचार सांत की चेतना पर आधारित है, अति मानसिक प्रकृति अपने मूल स्वभाव से ही अनन्त की चेतना एवं शक्ति है। अति मानसिक प्रकृति प्रत्येक वस्तु को एकत्व के आधार से देखती है और सभी चीजों पर, बड़ी-से-बड़ी अनेकता और विषमता पर भी, जो चीजें मन के लिए घोर-से-घोर विरोध रूप हैं उनपर भी, उस एकत्व के प्रकाश से विचार करती है। इसका संकल्प, इसका विचार-भाव, समवेदन, एकत्व के उपादान से निर्मित है। इसके कर्म उस आधार पर प्रकृत होते हैं। इसके विपरीत मानसिक प्रकृति नानात्व या भेद को मूल मान कर चलती और उसीसे विचार-अवलोकन, संकल्प-अनुभव तथा समवेदन करती है और उसका एकता-संबंधी ज्ञान केवल परिकल्पित एवं कृत्रिम है। जब वह एकत्व अनुभव करती है तब भी उसे सीमा तथा भेद के आधार पर स्थिति हो कर एकत्व के भाव से कर्म करना होता है। परन्तु अति मानसिक दिव्य जीवन मूलगत, स्वतः स्फूर्ति एवं स्वभाव-सिद्ध एकता का जीवन है।

इस योग का अर्थ केवल ईश्वर की प्राप्ति नहीं, बल्कि वह आभ्यन्तर और बाह्य जीवन का परिपूर्ण उत्सर्ग और आमूल परिवर्तन है, जिससे उसमें भगवच्चेतन्य व्यक्त हो और वह स्वयं भगवत्कर्म का एक अंग हो।

लक्ष्य

जब हम 'जानने' से पार हो चुकेंगे तब हमें यथार्थ ज्ञान होगा। तर्क सहायक था और तर्क ही बाधक है।

जब हम संकल्प करने से पार हो चुकेंगे तब हमें शक्ति प्राप्त होगी। प्रयत्न सहायक था और प्रयत्न ही बाधक है।

जब हम सुखोपभोग करने से पार हो चुकेंगे तब हमें आनंद प्राप्त होगा। इच्छा सहायक थी और इच्छा ही बाधक है।

जब हम व्यक्ति-भाव से पार हो चुकेंगे तब हम वास्तविक 'पुरुष' होंगे। अहम्भाव सहायक था और अहम्भाव ही बाधक है।

जब हम मनुष्य-पने से पार हो चुकेंगे तब हम वास्तविक 'मनुष्य' बनेंगे। पशुभाव सहायक था और पशुभाव ही बाधक है।

तर्कणा को व्यवस्थित अन्तःस्फुरणा में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में प्रकाश हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

प्रयत्न को आत्म-शक्ति के एकरस और महान् प्रवाह में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में चेतन शक्ति हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

भोग को एक रस और निर्विषय हर्षातिरेक में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में आनन्द हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

विभक्त व्यक्ति को विश्व व्यक्ति में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में दिव्य हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

पशु को गोपाल में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में 'कृष्ण' हो जाओ यह तुम्हारा लक्ष्य है।

मनुष्य अर्थात् पुरुष

परमेश्वर प्रकृति की ओर झुकना नहीं छोड़ सकता है और नाही मनुष्य ईश्वरत्व के प्रति अभीप्सा करने से रुक सकता है। यह तो सान्त और अनन्त का नित्य सम्बन्ध है। जब वे एक-दूसरे से विमुख होते हुए प्रतीत होते हैं तो यह उनका और भी प्रगाढ़ मेल से मिलने के लिए पीछे हटना होता है।...

परमेश्वर और प्रकृति एक बालक और बालिका के समान हैं जो कि एक दूसरे के साथ खेलते हैं और प्रेम करते हैं। दृष्टिगोचर हो जाने पर वे एक-दूसरे से छिपते और भागते हैं ताकि उनको फिर खोजा जाय, पीछा किया और पकड़ा जाय।

मनुष्य वह परमेश्वर है जिसने अपने आपको प्रकृति-शक्ति से छिपाया हुआ है ताकि वह उस शक्ति को संघर्ष द्वारा, आग्रह से, जबरदस्ती से और आश्चर्यमय

उपलब्धि के रूप में पा सके, परमेश्वर वह विश्वव्यापी और विश्व से ऊंचा उठा हुआ परात्पर मनुष्य है, जिसने अपने आपको मानवीय रूप में विद्यमान अपने ही *व्यक्तित्व से छिपाया हुआ है।*

पशु मनुष्य है जो कि बालोंवाली खाल के वेष में है और चार टांगों पर खड़ा होता है। कृमि मनुष्य है जो अपनी मनुष्यता के विकास की ओर मुड़ता-तुड़ता रेंग रहा है। यहां तक कि जड़ प्रकृति के अविकसित रूप भी अपने गठन-रहित शरीर में मनुष्य ही हैं। सभी वस्तुएं मनुष्य हैं, पुरुष हैं।

क्योंकि, मनुष्य से हम क्या अभिप्राय लेते हैं? एक अज और अविनाशी आत्मा जो अपने ही तत्वों से बने हुए मन और शरीर में वास कर रहा है।

अन्त

मनुष्य और परमेश्वर के मिलने का मतलब सदा यही हो सकता है कि ईश्वरीय दिव्यता का मनुष्यता के अन्दर संचार व प्रवेश हो जाय तथा मनुष्य ईश्वरीय दिव्यता के अन्दर अपने आप का पूरी तरह निमज्जन कर दे।

किन्तु यह आत्म-निमज्जन आत्म विनाश के रूप का नहीं है। इस सब खोज और आवेश, दुःख और उल्लास का परिणाम उच्छेद नहीं है। यदि यही इसका अन्त होना होता तो यह खेल कभी प्रारम्भ ही न हुआ होता।

…और इस सारी बात का अन्त क्या है? मानो मधु मक्खी अपना और अपने सब बिन्दुओं का इकट्ठा स्वाद ले सके और इसकी सब बूंदें एक दूसरे का स्वाद ले सकें तथा इसकी प्रत्येक बूंद अपने आपके तौर पर सम्पूर्ण मधु-छत्ते का स्वाद ले सके, ऐसे ही परमेश्वर और मानवीय आत्मा और इस विश्व का अन्त होगा।

प्रेम आदि स्वर है, आनन्द संगीत है, शक्ति आधार है, ज्ञान गायक है, वह अनन्त सर्वात्मा उसका रचयिता और श्रोता है। अभी हम केवल प्रारम्भिक बेसुरे स्वरों को जानते हैं जो उतने ही भयंकर हैं, जितनी कि उसकी समरसता महान् होगी। लेकिन हम एक दिन अवश्य ही दिव्य स्वच्छन्दमय आनन्दों के समूह-संगीत तक पहुंच जायगे।

बन्धन

स्वतन्त्रता सत्ता का नियम है, सत्ता के समग्र एकता के स्वरूप में और यह प्रकृति की गुप्त स्वामिनी है। अधीनता, उस सत्ता में विद्यमान प्रेम का नियम है जो *सत्ता की अनेकता में स्थित अपनी अन्य* आत्माओं के खेल में सेवा करने के लिए अपने आपको स्वेच्छया अर्पित कर देती है।

जब स्वतन्त्रता बन्धनों में काम करती है और *अधीनता प्रेम का नहीं, किन्तु शक्ति का नियम बन* जाती है तब यह होता है कि वस्तुओं का सत्य स्वभाव विकृत और विरूप हो जाता है और जीवन के साथ आत्मा के व्यवहारों में अनृत का आधिपत्य *हो जाता है।*

स्वतन्त्रता सीमा-बन्धन-रहित एकता द्वारा आती है, क्योंकि यही हमारा वास्तविक स्वरूप है। इस एकता के तत्व को हम अपने अन्दर प्राप्त कर सकते *हैं तथा इसकी लीला को भी अन्य सबके साथ एकत्व* स्थापित करके अनुभव कर सकते हैं। यह द्विविध अनुभूति प्राप्त करना ही प्रकृति में आत्मा का समग्र प्रयोजन है।

धर्म

संसार तीन प्रकार की शक्तियों से परिचित है। स्थूल, भौतिक, शक्ति प्रबल परिणामों को पैदा करती है। नैतिक और बौद्धिक शक्ति का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है और अपने फलों की दृष्टि से यह बहुत ही समृद्ध है, परन्तु आध्यात्मिक शक्ति महान बीजों का बोना है।

यदि इस त्रिविध परिवर्तन का पदार्थ पूर्ण अनुकूलता में एकीकरण हो सके तो कार्य बिल्कुल निर्दोष रूप में होने लगे। लेकिन मानव-जाति के मन और शरीर आते हुए आध्यात्मिकता के प्रबल प्रवाह को अपने में पूरी तरह धारण नहीं कर सके। उसमें बहुत कुछ बिखर जाता है और शेष का बहुत-सा भाग दूषित हो जाता है। मानव आदर्श नष्ट बीजों को बोकर एक फीका-सा फल निकालने के लिये

भी हमारे क्षेत्र की बहुत-सी बौद्धिक और शारीरिक जुताई की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक धर्म ने मानवजाति को सहायता पहुंचायी है। पैगनिज्म ने मनुष्य के अन्दर सौन्दर्य के प्रकाश को विकसित किया है, उसके जीवन की विशालता और उच्चता को बढ़ाया है और बहुमुखी पूर्णता के उसके उद्देश्य को उन्नत किया है। ईसाइयत ने उसे दिव्य प्रेम और दयालुता व सहृदयता का कुछ दर्शन कराया है। बौद्ध धर्म ने उसे अधिक ज्ञानी, अधिक विनीत और अधिक पवित्र होने का एक उत्कृष्ट मार्ग दिखाया है। यहूदी धर्म और इस्लाम ने इसे धार्मिक भाव से क्रिया में सच्चे होना और ईश्वर के प्रति उत्कट भक्ति वाला होना सिखाया है। हिन्दू धर्म ने उसके आगे बड़ी-से-बड़ी और गहरी आध्यात्मिक संभावनाओं को खोल दिया है। एक बड़ा काम सिद्ध हो जायगा, जब ये सब ईश्वर-दर्शन परस्पर आलिंगन कर लेंगे और अपने आपको एक दूसरे के प्रतिरूप बना लेंगे। पर बौद्धिक सिद्धान्तवादिता अहंकार मार्ग में बाधक है।

सभी धर्मों ने बहुत-सी आत्माओं को बचाया है, पर समग्र मनुष्यजाति को आध्यात्ममय बनाने में अभी तक कोई समर्थ नहीं हो सका है। इसके लिए तो किसी सम्प्रदाय या मत की आवश्यकता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक दिशा में आत्म-विकास प्राप्त करने को एक स्थिर, सतत और सर्वांगणीय प्रयत्न की अपेक्षा है।

आज हमें संसार में जो परिवर्तन दिखायी देते हैं वे अपने आदर्श और उद्देश्य में बौद्धिक, नैतिक और भौतिक हैं। आध्यात्मिक क्रान्ति अपने अवसर की प्रतीक्षा में है और इस बीच में वह केवल कहीं-कहीं अपनी लहरों को उछालती है। जबतक यह नहीं आ जाती, दूसरी क्रान्तियों का मतलब समझ में नहीं आ सकता और तबतक वर्तमान की घटनाओं की सब व्याख्याएं और मनुष्य की भविष्य सम्बन्धी सब कल्पनाएं व्यर्थ हैं; क्योंकि यह उस आध्यात्मिक क्रान्ति का स्वरूप, शक्ति और परिणाम ही है जो हमारी मानवजाति के अग्रिम चक्र को निश्चित करेंगे।

सूर्यास्त !

हरिभाऊ उपाध्याय

श्री अरविन्द इतनी जल्दी देह छोड़ देंगे, इसकी स्वप्न में भी किसीने कल्पना न की होगी। एक ही दिन पहले तो देह की अमरता के विषय में हम अरविन्द-आश्रम के कुछ साधक भाइयों से बातचीत कर रहे थे। श्री अरविन्द ने अपने यौगिक या आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर शरीर के जड़ अणुओं को भी चेतनायुक्त, चेतनामय करने की संभावना बताई है। यह कितनी ही अद्भुत क्यों न हो, समझ में आने जैसी बात है— इसकी हम लोग चर्चा कर रहे थे। श्री अरविन्द ने जो सिद्धि प्राप्त की है, उसकी पहुंच अभी यहांतक नहीं हुई है, शायद वह इस दिशा में प्रयत्नशील हैं— यह बात भी चली थी। मन और प्राण में तो वह अति-मानस को अवतरित कर पाये हैं, जिसके बल पर वह मनुष्यजाति का रूपान्तर करने का मार्ग पा गये हैं; किन्तु शरीर की जड़ इंद्रियों में उनका प्रवेश नहीं कर पाये हैं। कुछ लोगों को यह आशा भी थी कि श्री अरविन्द इसी शरीर में उसे सिद्ध कर सकेंगे; किन्तु परमात्मा की लीला विचित्र है। दूसरे ही दिन सुबह हमें यह स्तम्भित कर देनेवाला संकेत मिला कि जाओ, श्री अरविन्द के अन्तिम दर्शन कर लो। मैं समझा, आज शायद किसी कारण से श्री अरविन्द ने पांचवीं बार दर्शन देना पसन्द किया हो। (सिद्धि प्राप्त होने के बाद वे वर्ष में कुल चार बार ही साधकों और भक्तों को दर्शन दिया करते थे।) रास्ते में उनके कुछ शिष्य मिले, जिनके चेहरों पर सदैव की भांति मुस्कराहट व शांति छाई हुई थी। किन्तु जब उनके दर्शन की अभिलाषा

और उत्सुकता से उनके कमरे के द्वार तक पहुंचा तो एक लंबी चौकी पर उनके भव्य शरीर को चित लेटा हुआ, उनकी दिव्य गौर मुखाकृति को परम शांतिमय, उनकी आंखों को मुंदा हुआ—मानो गहरी नींद ले रहे हों—देखा और साथ ही शरीर में निश्चलता देखी तो मैं सन्न रह गया। एक बिजली के झटके की तरह दिमाग में अन्तिम दर्शन का अर्थ सटक गया। ईश्वर! यह क्या देख रहा हूं—इतना सोचने का भी सामर्थ्य मन-बुद्धि में न रह गया।

एक यन्त्र की तरह उनको अन्तिम प्रणाम करके कमरे के बाहर निकला तो कुछ क्षण बाद ऐसा मालूम हुआ मानों कोई सपना देख रहे हैं। श्री अमभाई पुराणी के कमरे में गया तो वह कुछ मित्रों के साथ इस तरह बातें कर रहे थे, मानो कुछ हुआ ही न हो! मुझसे बहुत हंसकर बातें कीं। यह श्री अरविन्द के खास साधकों में हैं। उन्होंने कहा, श्री अरविन्द का शरीर छूट गया। उनका रहा काम दूसरे शरीरों से होगा। जीवात्मा परमात्मा से दूर होगया है। इस फासले को मिटाने के लिए जीवात्मा विरोधी शक्तियों से संघर्ष कर रहा है। श्री अरविन्द ने बहुत हद तक इसमें सिद्धि प्राप्त की थी—आगे की मंजिल में उनका शरीर नहीं टिक सका, वह चला गया। इसमें क्या बात है? इस आशय के कुछ वाक्य उन्होंने मुझसे कहे।

इस अकल्पित आकस्मिक वज्रपात पर आश्रम के साधक भाई-बहनों ने जो अद्भुत शांति, धैर्य, अविचलता दिखाई वह श्री अरविन्द की शिक्षा तथा साधना के सर्वथा योग्य थी। श्री माताजी का संदेश आया कि सबको भोजन कर लेना चाहिए, किसीको भूखा न रहना चाहिए। गोलकुंडा-अतिथि-गृह की व्यवस्थापिका बहन ने कहा कि सब काम रोज की भांति चलेगा, सो भी सदा की भांति मंद स्मित के साथ। इसका हमारे हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। दूसरी साधिका बहन ने बहुत आग्रह किया कि आप लोग कुछ खा लें। खाने पर से चाय रोटी देने लगीं। उन्होंने एक साधारण घटना की तरह इसे लेकर हमसे बातचीत की। इधर दर्शनार्थी एक-एक करके उनके कमरे में आते थे, उधर साधकगण बड़े उत्साह से उनका समाधि स्थान तैयार करने में लग रहे थे। पत्थरों की खटखट या रुनझुन की आवाज के अलावा उन सैकड़ों साधकों और साधिकाओं में से किसी का एक शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। इतनी अखण्ड-शांति ऐसे समय में दुर्लभ होती है। कुछ पहले कमरों पर्दे-

जीवन-झांकी

श्री अरविन्द का जन्म १५ अगस्त १८७२ को कलकत्ते में हुआ था। उनकी शिक्षा केम्ब्रिज में हुई। भारत लौटने पर वह बड़ौदा कालेज में वाइस प्रिंसीपल नियुक्त होगये। अपने विद्यार्थी-जीवन में भी वह बड़े प्रतिभाशाली थे। अध्यापन-कार्य करते थे, पर उनका हृदय किसी दूसरी चीज़ की खोज में था। वह राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेने लगे और कुछ ही दिनों में प्रथम श्रेणी के नेता माने जाने लगे। उन्हीं दिनों उन्होंने 'वन्देमातरम्' का प्रकाशन आरम्भ किया। उनकी वाणी तथा लेखनी में बड़ा ओज था। सरकार ने उनपर मुकदमा चलाया। मई १९०८ से अप्रैल १९०९ तक अलीपुर जेल में रहे। यह समय उनके लिए अध्यात्म-ज्ञान में शिक्षा-दीक्षा का रहा। कहते हैं कि वहीं उन्हें ईश्वर के दर्शन हुए।

सन् १९१० में श्री अरविन्द पांडीचेरी में आये और तबसे निरंतर योग-साधना में संलग्न रहे। १९१४ में श्री माताजी पांडीचेरी में आईं। तबसे वहीं हैं और आश्रम की व्यवस्था करती हैं।

सन् १९१४ में श्री अरविन्द ने 'आर्य' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया।

२४ नवम्बर, १९२६ को उन्हें योग में सिद्धि प्राप्त हुई। योग तथा मानव-जीवन की अन्य समस्याओं पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'लाइफ डिवाइन' ('दिव्य जीवन') तथा 'एसेज़ आन गीता' ('गीता पर निबंध') बहुत प्रसिद्ध हैं।

५ दिसम्बर १९५० को रात्रि के डेढ़ बजे देहान्त।

कहीं कोने में चुपचाप आंसू वहा रही थीं या सिसक रही थीं। यह सारी व्यवस्था आन्तरिक यौगिक अनुशासन और आध्यात्मिक वल तथा विकास की ही निर्देशक थी। सारे जगत का शिक्षित समाज जहां इस महान घटना से थर्रा उठा होगा वहां आश्रमवासियों की यह कर्त्तव्य-परायणता या समर्पणभाव अपनी एक अलग ही शान रखता है।

श्री अरविन्द का जीवन एक विकट और महान् साधना का जीवन रहा है। १९०५ ६ के राष्ट्रीय जीवन के मंथन में से एक राष्ट्रीय नेता की जगह आज वह एक महान् आध्यात्मिक सिद्ध के रूप में जगत् को मिले। ऐसे तेजस्वी, प्रभावशाली, क्रियाशील व्यक्ति का लगातार ४० साल तक तमाम जागतिक प्रवृत्तियों से अपने को सर्वथा अलग रखकर, वार-वार के जोरदार आवाहनों के प्रभावों को दूर रखकर, एक स्थान में वल्कि एक मकान में अपने को बन्द कर रखना मामूली साधना नहीं है। फिर वह निष्क्रिय जीवन में विश्वास नहीं रखते थे। अकर्म में कर्म को देखने वाले सिद्ध थे। गांधीजी जागतिक तूफानों में खेलनेवाले आत्मस्थ पुरुष थे तो श्री अरविन्द समस्त जागतिक प्रभावों से अलिप्त रहकर आन्तरिक तूफानों पर विजय प्राप्त करनेवाले सिद्ध पुरुष थे। उच्च और दिव्य जीवन के लिए, जगत में दिव्य जीवन के अवतरण के लिए वह प्रारंभ से ही कृतनिश्चय मालूम होते थे। कवि, विद्वान, विचारक, लेखक, दार्शनिक, साधक, सिद्ध, वह क्या-क्या नहीं थे? भारत की तथा संसार की प्रधान एवं महान् घटनाओं और प्रश्नों के प्रति सजग रहते थे और उनके कई साधकों के मत में संसार की विकट समस्याओं को अपने अध्यात्म-वल से प्रभावित करने में, घटनाओं का रुख मोड़ देने में समर्थ और सफल हुए थे। उन्होंने जो ठाना वह अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया। उन्हें यह विश्वास होगया था कि मानवजीवन का स्तर ऊंचा उठाने के लिए जिस शक्ति या सिद्धि की जरूरत है वह उन्हें प्राप्त होगई है। उसके वल पर अपने इसी सिद्धिदिवस पर वड़े आत्म-विश्वास के साथ उन्होंने संदेश दिया है। अतिमानस एक सत्य है और उसका आगमन स्वभावसिद्ध वस्तु की तरह अपरिहार्य है।

आज भारतवर्ष अपने, कम-से-कम आज तो, अन्तिम महापुरुष को खो वैठा है। आध्यात्मिक जगत का सूर्य अस्ताचल को चला गया। वापू गये—गुरुदेव पहले ही चल वसे थे—रमण महर्षि गये, सारे आध्यात्मिक जगत की आंखें श्री अरविन्द की ओर देखने लगी थीं। वह भी चले गये! इसमें ईश्वर का क्या संकेत है, क्या संदेश है? मेरे साथ भाई वोरकर, (महाराष्ट्र के उच्च कोटि के कवि तथा गोआ के स्वतंत्रतासंग्राम के एक निष्ठावान नेता) सारी दक्षिण यात्रा में रहे। दोनों इस नतीजे पर पहुंचे कि अवतक जगत महापुरुषों के वल-भरोसे चला। अब भगवान की यह इच्छा मालूम होती है कि वह अपने पांवों के वल चले। महापुरुषों ने जो आदर्श सामने रख दिया, अपने जीवन व मरण से जो मार्ग खोल दिया, उससे लाभ उठाकर चलता चला जाय। वोरकरजी ने कवि की भाषा में कहा—ये महापुरुष समुद्र की ऊंची उठी हुई लहर की तरह ऊपर उठकर हमको आगे वढ़ा गये, अब नीचे विखरकर अपनी शक्ति, स्फूर्ति, जीवन, जनता को देकर उसमें लीन हो गये। उनकी दिव्यता से जनता का धरातल और मानव-जाति का स्तर ऊंचा उठेगा। वैसे भारतवर्ष में एक के वाद एक महापुरुष आये हैं। उनका तांता टूटा नहीं है। एक अपना काम कर जाता है और दूसरा उसके आगे की मंजिल के लिए आजाता है। भगवान के इस अनु-ग्रह से हम निराश क्यों हों?

वापू के जाने के वाद मेरे मन में यह प्रश्न कई वार उठा है कि वापू तथा अरविन्द के संदेश में क्या सचमुच कोई भेद है? हर वार मुझे यह उत्तर मिला कि मूलतः दोनों का संदेश एक ही है, भगवान की उपलब्धि। वापू ने अपने सामने तो यही लक्ष्य सदैव जीता-जागता रक्खा; पर जनता के लिए उसकी ओर संकेतमात्र कर दिया करते थे, जव कि श्री अरविन्द ने जितने जोर से उसे अपने लिए पकड़ा उतने ही वल के साथ उसे संसार के सामने भी रक्खा। दोनों के स्वभाव, संस्कार के अनुसार इस एक ही परम सन्देश ने उनके जीवन तथा उपदेश में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण किया। यही स्वाभा-विक भी था। उस भिन्नता में से उनमें समाविष्ट एकता को देखने की प्रवृत्ति हमारी होनी चाहिए। मुझे तो यह

स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि गुरुदेव का भी सन्देश कोई अलग नहीं था। बल्कि सारे महापुरुषों का संदेश मूल रूप में एक ही जाता है—यह भी दर्शन मुझे हो रहा है। उनकी योजनाओं और कार्यक्रमों की विविधता या भिन्नताओं की आन्तरिक एकता पर बल देकर हमें सारे मानव-समाज में एकसूत्रता लानी चाहिए।

अब क्या करें?—यह प्रश्न उठता ही है। इसका उत्तर भी निश्चित ही है। अधिक निष्ठा और बल के साथ साथियों कदमों से निश्चित गन्तव्य की ओर बिना रुके चलते चलें। एक नहीं अनेक गुरुदेव, गांधी और अरविन्द के देह पड़ते चले जायं, उनसे विचलित न होते हुए आगे बढ़ते चले जायं। अपना तथा मानव जाति का कल्याण, मंगल, विकास, मोक्ष, पूर्णता सब इसीसे सिद्ध होगा। यदि हमने अपने किसी भी गुरु, नेता, पथदर्शक का सन्देश जरा भी ग्रहण किया है तो उसका वरदहस्त उसी तरह हमारे मस्तक पर रखा हुआ हमको मिलेगा, जिस तरह कि जीवित अवस्था में हम देखते थे, सो भी अधिक प्रभाव के साथ।

जिसने मानवजाति को दिव्य बनाने का, वर्तमान निम्न स्तर से उद्धार करके उच्च स्तर पर लाने का बीड़ा उठाया, जिसने निरन्तर चालीस वर्ष की एकान्त साधना के द्वारा उसीके लिए काम किया, उसकी आत्मा की शान्ति या सद्गति के लिए प्रार्थना करनेवाले हम कौन? और जिन साधकों की अपूर्व शान्ति का हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया, उन्हें सान्त्वना देने का भी हमें क्या अधिकार है? जबतक माताजी का देह है तबतक अरविन्द आश्रम के साधक तो उनकी गोद में निश्चिन्त हैं, और माताजी पर तो सारे आश्रम का बोझ छोड़कर स्वयं श्री अरविन्द निश्चिन्त थे तो अब हम भी माताजी के बारे में विचार करनेवाले कौन? हमें तो महाभारत का एक श्लोक संकट के समय में सर्वदा बल देता रहता है, वही इस समय याद आरहा है:

सुखं वा यदि वा दुःखं
प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
प्राप्तमप्राप्तमुपासीत
हृदयेनापराजितः॥

इन तमाम विभूतियों में से भगवान का एक ही रूप हमें दिखे, उसीके लिए हमारा जीवन, हमारा मरण, सब कुछ है। इनकी तमाम प्रवृत्तियों और कृतियों से हमें एक ही सन्देश मिले—'अरुण 'मैं-मेरा' नाथ! जो साथ मेरे।"

श्री अरविन्द का महाप्रयाण

डा० इन्द्रसेन

साधक के लिए गुरुदेव उसके सर्वस्व होते हैं, भगवान् के साक्षात् प्रतिनिधि तथा स्थानापन्न होते हैं। उन्हींकी शिक्षा-दीक्षा और सहायता द्वारा वे वह अपने बन्धनों से मुक्त होता है तथा आत्म-लाभ करता है। उनसे वह ऐसा प्रेम अनुभव करता है जो वह संसार भर में किसी अन्य से नहीं करता। स्वभावतः साधक के लिए सशरीरावस्था में गुरु का विछोह दुस्सह हो जायगा।

श्रीअरविन्द के शरीर छोड़ देने का प्रथम समाचार साधकवर्ग तथा सामान्य जनता के लिए समान रूप में भारी धक्का था। यह बात किसी की कल्पना में भी न थी। मानो इसे सुनकर भ्रम या विस्मय ही नहीं हुआ। जबतक भावों का क्षोभ जरा शांत नहीं हो गया तबतक वे इसे तथ्य रूप में स्वीकार करने में भी समर्थ नहीं हो पाये। जब लाचार होकर तथ्य मानना पड़ा तब हृदय और बुद्धि व्यग्रतापूर्वक पूछने लगे कि आखिर यह हुआ क्यों और कैसे?

जनता ने सामान्य रूप में देश और जाति के एक महान् नेता तथा ऋषि और योगी के देहावसान पर दुःख अनुभव किया तथा उनके जीवन व कार्य का स्मरण करके अपना और देश का गौरव माना। प्रत्यक्ष ही श्रीअरविन्द की, देन अत्यन्त महान् है। उनका जीवन संसार के इतिहास में महान् आदर्श, सेवा, त्याग, तपस्या, विद्वत्ता तथा आध्यात्मिक सिद्धि और

प्रभाव के कारण विशेष उच्च स्थान रखता है। उनके ग्रंथ भी सामान्य बौद्धिक रचना नहीं हैं। वे सब आध्यात्मिक अनुभव की उपज हैं और उन्होंने अपूर्व रूप में भारतीय संस्कृति को हमारे लिए पुनरुज्जीवित कर दिया है। आज के समय में उनके व्यक्तित्व तथा ग्रंथों से देश और संसार में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा प्रसारित हुई है वह भारत तथा संसार के लिए विशेष महत्व की वस्तु है। जनता ने श्री अरविन्द के इस सब विस्तृत कार्य तथा प्रभाव का चिन्तन कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और दिवंगत आत्मा के लिए मंगलकामना की है।

परन्तु साधकवर्ग तथा वे जो श्री अरविन्द के विशेष आध्यात्मिक ध्येय तथा कार्य से परिचित हैं श्री अरविन्द के देहावसान में एक विकट समस्या अनुभव करते हैं। वे महसूस करते हैं कि श्री अरविन्द अपनी मुक्ति-मात्र के लिए साधना नहीं कर रहे थे। अपने साधकों की मुक्ति भी उनका लक्ष्य नहीं था। उन्होंने तो स्पष्ट रूप में अनुभव किया था कि मन से उच्चतर एक अतिमानस 'तत्त्व है जो पृथ्वी स्तर पर अनिवार्य रूप में प्रकट होना है। वे बतलाते हैं कि जड़, प्राण और मन के विकास-क्रम की स्वाभाविक परिपूर्त्ति अतिमानस में होगी। मन अत्यन्त अपूर्ण वस्तु है। यह मानव की सामान्य चेतना का अन्तिम रूप नहीं हो सकता। पशु की चेतना से वर्तमान मानव-चेतना विशालतर है; परन्तु यह भी वस्तुओं के बाह्य रूपों को ही ग्रहण करने में समर्थ होती है। सत्य को साक्षात् रूप में अनुभव करनेवाली पूर्णतर चेतना मानव का स्वाभाविक ध्येय और लक्ष्य है और यह पृथ्वी स्तर पर मानव-चेतना में एक दिन चरितार्थ होनी चाहिए। श्री अरविन्द यह भी बतलाते थे कि यह चेतना योग की प्रगाढ़ एकाग्रता द्वारा शीघ्रतर भी सिद्ध की जा सकती है। यही वास्तव में उनका ध्येय था। इस ध्येय को वे अपने जीवन-काल में ही पूर्ण करने की आशा रखते थे। इस संबंध में उन्होंने दो-एक अपने पत्रों में काफी स्पष्ट रूप में कहा है कि यह कार्य अभी पूरा होना है।

इस प्रकार के कुछेक प्रकरणों के आधार पर श्री अरविन्द के आध्यात्मिक अनुयायियों ने यह आशा बना ली थी कि जबतक उनका काम पूरा नहीं होता तबतक श्री अरविन्द निश्चित रूप से उनके बीच उपस्थित रहेंगे। इसके अतिरिक्त अतिमानस की शक्ति से वैसे भी व्यक्ति को 'यथाइच्छा जीवन-काल' प्राप्त हो जाता है। अतः इन अनुयायियों ने श्री अरविन्द के देहावसान पर विशेष धक्का अनुभव किया। वे गम्भीर रूप में सोचने लगे कि यह क्यों हुआ और कैसे हुआ?

श्री अरविन्द ने अतिमानस, इसके अवतरण तथा अवतरण के मार्ग की कठिनाइयों तथा विघ्न-बाधाओं की निष्पक्षभाव में वैज्ञानिक शैली से व्याख्या की है। अतिमानस की सत्ता तथा इसके अवतरण की अवश्यम्भाविता के बारे में उन्होंने पूर्ण निश्चय से लिखा है। परन्तु अवतरण के लिए कभी तारीख नहीं बांधी थी; क्योंकि उसके लिए अनेक अवस्थाओं की अनुकूलता चाहिए।

अतिमानस के संबंध में वे कहते हैं, "मैं इसे (अतिमानस को) ऊपर से अपनी चेतना पर प्रकाशित होते लगातार अनुभव करता हूं और मैं यही यत्न कर रहा हूं कि उपयुक्त अवस्थाएं पैदा की जायं जिससे पूर्ण व्यक्तित्व को अपनी स्वाभाविक शक्ति के प्रभाव में ले लें।"[1] यही उनका परम करणीय कर्म बन गया था। अतिमानस को मानव के मन, प्राण और शरीर में अवतरित करना, इस अवतरण द्वारा उन्हें रूपांतरित करना ही उनके आध्यात्मिक कार्य का लक्ष्य था। आरोहण द्वारा भगवान् तथा आत्मा की प्राप्ति खूब ऊंचे आध्यात्मिक लक्ष्य हैं, परन्तु उनका कहना था कि इससे मानव को अपने संपूर्ण जीवन में भगवान् का स्पर्श प्राप्त नहीं होता। जबतक व्यक्तित्व के सभी अंगों का दिव्यीकरण न किया जाय, निम्न प्रकृति उच्च प्रकृति में परिवर्तित न हो जाय, तबतक मानव का भगवान् के साथ पूर्ण मिलन, जैसा समाधि तथा चिन्तन में वैसा ही कर्म तथा व्यवहार में सिद्ध नहीं होता। यह सिद्धि तभी हो सकती है जबकि अतिमानस तत्व की शक्ति को हम अपने शरीर के भौतिक तत्व तक में उतार लायं और फिर उसीसे अपने विचार-

---

[1] लैटर्स आव श्री अरविन्द, २, पृष्ठ ७३,

विचार में तथा क्रिया-किया में अनुप्राणित हो।

इस अवतरण की प्रक्रिया के बारे में श्री अरविन्द ने खूब विस्तार से लिखा है। एक जगह वे बतलाते हैं, "यह अवतरण अपने आपमें कुछ उच्छृंखल तथा मोजजे की चीज नहीं। यह एक गतिशील, कुछेक वर्षों में सीमित, विकास प्रक्रिया है जो वर्तमान प्रकृति को अपने प्रकाश में ग्रहण करके इसके निम्न स्तरों में अपने सत्य को उंडेल देती है। यह कार्य सारे जगत् पर एकदम नहीं किया जा सकता, बल्कि अन्य ऐसे क्रमों की तरह यह पहले कुछ चुने हुए आधारों में करना होता है और फिर उसे विस्तृत किया जाना है। हमें (श्री अरविन्द और माताजी) पहले यह अपने ऊपर करना है और फिर पार्थिवचेतना के प्रतिनिधि रूप उन साधकों पर जो हमारे पास एकत्र हैं।" (वही, पृष्ठ ८२)

श्री अरविन्द इस कार्य की कठिनाइयों तथा अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं को बार-बार जतला देते रहे हैं। शरीर के भौतिक भाग में प्रकाश पहुंचाना वे हमेशा विशेष कठिन बतलाते थे। एक जगह उन्होंने कहा है, "अचेतन में प्रकाश पहुंचाना महा कठिन काम है।" परन्तु यह काम किये बिना प्रकृति का रूपांतर सम्भव नहीं। वास्तव में मन और प्राण के क्षेत्र पार होकर उनकी साधना वर्षों से जड़ भौतिक स्तर से संघर्ष ले रही थी। यह एक अत्यन्त मार्मिक स्थिति थी और इसे अधिकृत करने में ही श्री अरविन्द ने अपने जीवन की बलि दी है।

श्री अरविन्द के जीवन की मार्मिक गति उनका आध्यात्मिक अथवा गुह्यवाद था। वे घटनाओं के *धोखे में नहीं आते थे। वे जानते थे कि जगत् की* सब घटनाओं के कारण सूक्ष्म चेतन जगत की गतिविधि-प्रगतियां होती हैं। वे फिर सीधे उन्हीं पर क्रिया किया करते थे। अपने जीवन-काल में उनका प्रधान कार्य, विशेषकर जबसे उन्होंने अपना आध्यात्मिक कार्य शुरू किया, ऐसा गुप्त और गुह्य ही रहा है। वास्तव में जैसे उनका जीवन का मर्म गुप्त और गुह्य था वैसे ही उनके महाप्रयाण का मर्म भी गुप्त और गुह्य है। बीमारी तो स्वयं गुह्य आध्यात्मिक संघर्ष का एक परिणाम है, वह उनके महाप्रयाण का कारण नहीं।

उनका महाप्रयाण अवश्य ही अचेतन में अतिमानसिक प्रकाश के अवतरण-सम्बन्धी एक अनिवार्य घटना थी, वह मानव-रूपान्तर के महान् आदर्श के लिए बलि थी तथा अतिमानस के दिव्य तत्व के लिए बलिदान था। इसके अतिरिक्त उनके प्रयाण का दूसरा अर्थ हो नहीं सकता। उनका सारा जीवन ही गम्भीर आध्यात्मिक यज्ञ तथा आत्म-निवेदन था, महाप्रयाण का महाकर्म केवल परम आत्म निवेदन ही हो सकता है।

परन्तु क्या इस आत्म-निवेदन से अतिमानस के अवतरण का कार्य रुक जायगा या धीमा पड़ जायगा? यदि मृत्यु सामान्यतया भी जीवन का अन्त नहीं होती, बल्कि नये और अधिक विकसित जीवन का साधन होती है तो श्री अरविन्द जैसे आत्मवेत्ता के लिए तो यह किसी तरह भी बाधा या रुकावट नहीं बन सकती, बल्कि शरीर पर अतिमानस के एक प्रयोग से जो अनुभव प्राप्त हुआ वह भावी कार्य के लिए जरूर ही सहायक होगा, और क्या पता कि वह अनुभव भावी कार्य के लिए शायद अनिवार्य हो गया था।

यह हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यदि श्री अरविन्द अब भी वही अरविन्द हैं जो वे जीवन-भर रहे हैं और यह आत्मा के अमरत्व से होना अनिवार्य है तो वे अपने ध्येय की चरितार्थता के लिए अब भी जरूर यत्नशील हैं, और उनके यत्न के लिए उपयुक्त क्षेत्र भी उनका अपना आश्रम ही हो सकता है, जहां उन्होंने इतने लम्बे अर्से तक आधारों पर परिश्रम किया है। ऐसा होना इस कारण और भी जरूरी है, क्योंकि श्री माताजी, जिन्होंने जीवन-भर उनके साथ उसी ध्येय के लिए काम किया है उसका अब भी पथ-प्रदर्शन कर रही हैं तथा श्री अरविन्द के अतिरिक्त वे दूसरा आधार हैं, जिसमें अतिमानस का अवतरण प्रथम रूप में संभव माना गया था। अवश्य ही श्री अरविन्द आत्मरूप में अपने आश्रम में अब भी विराजमान हैं।

अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उनके साथ सजग आंतरिक संबंध जोड़ें, उनसे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करें और उस पथ-प्रदर्शन का दृढ़ता और सच्चाई के साथ अनुसरण करें, जबतक वह महान् दिव्य तत्व, वह अतिमानस, मानव-चेतना में प्रतिष्ठित न हो जाए।

ठक्करबापा को श्रद्धांजलि

"ठक्करबापा असाधारण कार्यकर्ता हैं। वे निरहंकारी और नम्र हैं। वे प्रशंसा के भूखे नहीं हैं। उनका काम ही उनका एकमात्र सन्तोष और मनोरंजन है। बुढ़ापे के कारण उनके उत्साह और जोश में कोई कमी नहीं आई है। वे खुद ही एक संस्था हैं। वे अपने जीवन के मिशन में जो शक्ति लगाते हैं उसे देख कर उनके आस-पास के नौजवान भी शरमा जाते हैं।"

—मो. क. गांधी

"ठक्करबापा के निधन से भारत ने अपना एक और अनुरक्त सपूत और सेवक खो दिया, जिसकी स्थानपूर्ति संभव नहीं। उन्होंने गरीबों की सेवा के लिए, चाहे वे मजदूरों में हों, चाहे हरिजनों या आदिमजातियों में, अपना जीवन अर्पित कर दिया था। अतः भारत के दरिद्रनारायण ने उनके देहावसान से अपना सच्चा बापा खो दिया।...अपने पीछे वह एक अनुकरणीय और स्पृहणीय आदर्श छोड़ गये हैं।"

—राजेन्द्रप्रसाद

"ठक्करबापा के लिए, जात-पांत और प्रान्त-प्रान्त का कोई भेद नहीं था। सारे हिन्दुस्तान में जहां कहीं दुःख हुआ, जहां कहीं आफत आई, वहीं वे पहुंच गये। इसलिए उनका जीवन हिन्दुस्तान के नौजवानों के लिए एक नमूना है।

"...ठक्कर बापा जबसे काम में पड़े, न कभी आराम किया और न चैन लिया।

"ठक्करबापा के जीवन का मिशन अस्पृश्यों और दलितों की सेवा करना रहा है।...'स्व' से अधिक उन्होंने हमेशा सेवा को महत्व दिया है।

"उन्हें अपनी पीढ़ी का महापुरुष मानने में हमें सदा गौरव का अनुभव होगा और अगली पीढ़ी उनके उदाहरण से सदैव प्रेरणा और मार्ग-दर्शन प्राप्त करेगी।"

—वल्लभभाई पटेल

"भारत की दलित जातियों में नवजीवन के ठक्करबापा एक प्रमुख निर्माता थे। उन जैसे संत का मुकाबला कर सके, ऐसा आज कोई भी तो नहीं बचा है।"

—च. राजगोपालाचार्य

"ठक्करबापा के देहावसान से मानवता का एक मूक निसस्वार्थ सेवक, हरिजनों का मुखिया और आदिवासियों का रक्षक चला गया।"

—जगजीवन राम

"पूज्य ठक्करबापा के देहावसान से गोखले और गांधी की शृंखला की एक और बल्कि अंतिम कड़ी टूट गई।"

—वियोगीहरि

"वे स्वयं प्रकाशमान् हैं और उन्होंने अनेकों को सेवा और त्याग का प्रकाश दिखाया है।"

—महादेवभाई

ठक्करबापा की जीवन-झांकी

२९ नवम्बर सन् १८६९ को भावनगर के एक लोहाणा परिवार में जन्म, १८८६ में मैट्रिक पास किया। १८८७ में पूना-इंजीनियरिंग कालेज में भरती, १८९० में एल० सी० आई० परीक्षा में उत्तीर्ण। १८९१ से ९९ तक जी० आई० पी० रेलवे (काठियावाड़), वढ़वान और पोरबंदर में नौकरी। १८९९ से १९०२ तक पूर्वी अफ्रीका, में युगाण्डा रेलवे में और १९०४-५ सांगली राज्य में इंजीनियर के रूप में कार्य। १९०५ में बम्बई म्युनिसपैलिटी के रोड इंजीनियर नियुक्त हुए। १९०६ में पत्नी का देहान्त, १९०८ में दूसरा विवाह। १९०९ से १९१३ तक विभिन्न समाज-सेवी संस्थाओं के संचालकों से संपर्क और दीन-दलितों की सेवा की प्रेरणा। १९१० में दूसरी पत्नी का भी देहान्त। १९१३ में पिताजी का स्वर्गवास। १९१४ में सर्वेन्ट्स ऑव इंडिया सोसायटी के आजीवन सदस्य बने।

१९१४ से अन्त समय तक दीन-दलितों की अनथक सेवा।

१९ जनवरी १९५१ की रात को ८–२० पर देहान्त।

दीनबन्धु ठक्करबापा

यशपाल जैन

पूज्यश्री ठक्करबापा का स्वास्थ्य वैसे इधर काफी दिनों से अच्छा नहीं था, फिर भी आशा नहीं थी कि उन जैसा प्राणवान व्यक्ति अनायास उठ जायगा। कई बार हृदय का दौरा हुआ, आंखों की ज्योति मंद होगई, लेकिन कर्मयोगी बापा ने हार नहीं मानी और मौत को चुनौती देते हुए जीवन के अन्तिम क्षण तक सेवा के कार्य में जुटे रहे। अभी दो ही दिन पूर्व ही मालूम हुआ था कि बापा के पैरों पर सूजन आ गई है, जो शुभ चिन्ह नहीं था, पर चिट्ठी आदि लिखाने का कार्य पूर्ववत् तत्परता से कर रहे हैं तो मेरा हृदय गद्गद् हो गया। निश्चय ही ऐसे कर्मठ व्यक्ति को अपनी गोद में लेते हुए मृत्यु भी लजा गई होगी।

बापा का जीवन अखण्ड तपस्या का जीवन रहा था। शुरू के कुछ वर्षों में हम उन्हें इंजीनियर के रूप में भारत में और पूर्वी अफ्रीका में काम करते हुए पाते हैं। वह मानो बाद के जीवन की तैयारी थी। इंजीनियर का काम बिगड़े को बनाना और नये का निर्माण करना होता है। बापा ने लगभग ४० वर्ष तक निःस्वार्थ भाव से यही काम किया और बहुत अच्छी तरह से। हमारे राष्ट्रीय जीवन के कोढ़ को दूर करके उसे नया जीवन प्रदान करने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। देह नहीं चल रही है, आंखें काम नहीं दे रही हैं, पर बापा को विश्राम कहां! साधारणतया ८२ वर्ष की आयु में लोग कर्म-क्षेत्र से अवकाश ग्रहण लेते हैं; लेकिन बापा के लिए उनका काम ही विश्राम था।

बापा ने देश की मुख्य बुराई को देखा और उसे दूर करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। ऊंचा को तो सभी उठाते हैं, लेकिन जो गिरे को सहारा देकर मजबूती से और प्रामाणिकतापूर्वक उठाता है वह महान् पुरुष और यश का भागी होता है। भारत के हरिजनों, आदिवासियों एवं अन्य तथाकथित दलित वर्गों के लिए मानों बापा भगवान् के भेजे देवदूत थे। उन्होंने दलितों को गिरी अवस्था से उठाया, उन्हें छाती से लगाया, उनमें प्राण फूंके और अपने पैरों चलने के लिए खड़ा कर दिया।

बियासी वर्ष की आयु पाना आज के जमाने में बड़ा कठिन काम है। उससे भी कठिन काम है उस उम्र तक काम करने की क्षमता बनाये रखना। यह महान् साधक के लिए ही संभव है। बापा ने अपना जीवन प्रभु के काम के लिए अर्पित कर दिया था। इसीसे प्रभु ने अन्तिम क्षण तक इस सेवाव्रती को कार्यक्षम बनाये रखा।

जहां से भी सेवा की पुकार आई, ठक्करबापा वहीं पहुंचे। बापू ने एक बार उन्हें लिखा था कि जब काम होता है, तुम 'पवन-वेग' से दौड़कर आते हो। ऐसी थी बापा की कर्मठता और सेवा के लिए लगन।

सचमुच हमारा बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारे मार्ग-दर्शक बुजुर्ग एक-एक करके हमसे बिछुड़ते जा रहे हैं। शायद यह देखने के लिए कि हम उन्हें अपना कहने के कितने अधिकारी हैं और उनकी सेवाओं से हमने क्या सीखा है, कितना अपने को तैयार किया है। बापा को अपना कहने के अधिकारी हम तभी होंगे जब हम उनके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए कृतसंकल्प होकर उसमें जुट जायंगे। ठक्करबापा का काम नींव का काम था, जिसकी मजबूती के बिना कोई भी इमारत अधिक दिन टिक नहीं सकती। सच्चे इंजीनियर और दूरदर्शी बापा इस बात को अच्छी तरह से जानते थे। इसीलिए उन्होंने चालीस वर्ष तक भारत की नींव को पक्का करने का प्रयत्न किया।

बापा के निधन से आज हरिजनों, आदिवासियों आदि का मसीहा चला गया। भारत का शायद ही कोई कोना बचा होगा, जहां बापा ने अपने इन बन्धुओं को सहारा न दिया हो। अपने ऐसे 'बापा' को खोकर आज वे अनाथ महसूस करें तो स्वाभाविक ही है। बापा का नश्वर शरीर चला गया, लेकिन उनकी सेवाएं भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेंगी।

"बापा की सेवा ने हिन्दोस्तान को बचाया है।" —मो. क. गांधी

हिन्दी साहित्य सम्मेलन कोटा-अधिवेशन

विशेष प्रतिनिधि

गत दिसम्बर में २६ से २९ ता० तक कोटा में एक मेला हुआ। वह मेला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक उत्सव के रूप में हुआ था। ४० वर्षों से वह भारत के किसी-न-किसी कोने में प्रतिवर्ष होता है। उसका महत्व है। सम्मेलन एक शक्तिशाली संस्था के रूप में देश के सामने रहा है। वह देश की भाषा का प्रहरी बन कर आया। भाषा के रूप में वह देश की वाणी बना। उसे देश के अनेक महाप्राण महात्माओं, महापुरुषों, विद्वानों, साधकों और कर्मयोगियों का सहयोग मिला। बावजूद अनेक असंगतियों के उसे सफलता भी मिली—वह सफलता जिस पर कोई भी संस्था गर्व कर सकती है। यद्यपि उसने साहित्य का कोई विशेष हित-साधन नहीं किया, पर यह मानना पड़ेगा कि उसने साहित्य के शरीर अर्थात् भाषा की रक्षा करने का अनथक प्रयत्न किया। उसके कर्णधारों में जहां सरस्वती के मूक साधक थे वहां देश की नैया के खिवैया भी थे। उन सबके नाम विश्व-विश्रुत हैं। उनका तप फला-फूला, राष्ट्र को राष्ट्रवाणी मिली। अपने इतिहास में सम्भवतः पहली बार समूचे भारत को, राजनीति के क्षेत्र में ही सही, एक भाषा-भाषी होने का गौरव मिला। आनेवाले युग के इतिहासकार इस गौरव को अभूतपूर्व कहेंगे, उन्हें कहना पड़ेगा।

जिस सम्मेलन को इतनी सफलता मिली उसकी शक्ति की थाह कौन ले सकता है? कोटा-सम्मेलन में बहुत से लोग उसी शक्ति के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने पहुंचे थे। पर उनके अचरज का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि सम्मेलन की शक्ति आक्रोश और घृणा की शक्ति है। आक्रोश और घृणा कायर के अस्त्र होते हैं। सम्मेलन अबतक विद्रोह में से शक्ति पाता रहा था, पर विद्रोह का कारण जैसे ही समाप्त हुआ वैसे ही उसकी शक्ति भी खोखली हो गई। रचनात्मक कार्य के लिए जिस शक्ति और साधना की पूंजी की आवश्यकता होती है वह उसे नहीं मिली, मिल भी नहीं सकती थी। उसके लिए नए प्रकार के साधकों की आवश्यकता होती है। वे साधक उसके प्रांगण से दूर हैं और जो इनेगिने उसके पास थे भी उन्हें हमने इस बार वहां बहुत ही उदासीन और चिन्तित पाया। वे जैसे वहां थे ही नहीं, जैसे हाजिरी देने को गए और लौट आए। सचमुच इस अधिवेशन में उनके दिल को ठेस लगी होगी। प्रत्येक समझदार व्यक्ति के हृदय को ठेस लगनी चाहिए।

हमें सम्मेलन की आन्तरिक राजनीति से यहां कोई सम्बन्ध नहीं है।। हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे, पर जिस रीति से इस अधिवेशन में कार्य-संचालन हुआ वह सरस्वती के वरद पुत्रों को लजाने वाली तो थी ही, राजनीति के खिलाड़ियों के लिए भी शोभनीय नहीं थी। जहां तक स्वागत-समिति का सम्बन्ध है वहां तक सब ठीक ही था। त्रुटियां थीं और कहां नहीं होतीं; पर जिस रीति से, जिस स्नेहमयी सद्भावना से उन लोगों ने कार्य किया उससे सम्मेलन के कर्णधार बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनके नाम गिनाना मात्र शिष्टाचार की बात है; पर उनके नेता श्री वृद्धसिंह बापना ने जिस स्नेह और सौहार्द का परिचय दिया वह बहुतों को बहुत दिनों तक याद रहेगा। कुछ लोग ऐसे मेलों में पुरानी मित्रता दृढ़ करने तथा नई मित्रता स्थापित करने जाया करते हैं। उनकी दृष्टि से भी यह अधिवेशन बुरा नहीं था। स्थानीय साहित्यिकों का एक दल वहां निरन्तर उपस्थित रहता था। उनमें सर्वश्री रामचरण महेन्द्र, राजेन्द्र सक्सेना, जगदीश 'पलायनवादी' आदि कुछ भाई अब नाम स्थानीय ही नहीं रहे हैं। आगत महानुभावों में सर्वश्री रामवृक्ष बेनीपुरी, आरसीप्रसाद सिंह, महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह, वियोगीहरि, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रभाकर माचवे, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, चन्द्रबली पाण्डे, बेढब बनारसी, विष्णु प्रभाकर, डा० सुधीन्द्र, कुमारी कंचनलता सब्बरवाल, राधादेवी गोयनका, गोपालप्रसाद व्यास, प्रो० अयोध्याप्रसाद, रामनाथ सुमन, प्रभुदयाल मित्तल आदि का एक स्थान पर इकट्ठा होना किसी भी

अधिवेशन की महत्ता का प्रमाण हो सकता है। कुछ नाम स्मृति से उतर गए हैं पर एक नाम है, जिसको इस सूची में जानबूझ कर नहीं दिया गया है। वैसे तो नेताओं में भी वहां अनेक व्यक्ति थे। कांग्रेस के प्रधान टंडनजी, केन्द्रीय सरकार के राज्य-मंत्री दिवाकरजी, राजस्थान के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री हीरालाल शास्त्री, कोटा-नरेश, समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायण, सेठ गोविन्ददास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, पर जिस नाम की हम चर्चा कर रहे हैं वह है इस अधिवेशन के सभापति श्री जयचन्द्र विद्यालंकार का। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार हैं। जबतक हम उनसे नहीं मिले थे, केवल उनकी पुस्तकों द्वारा उनसे परिचय प्राप्त किया था, तबतक हमारे मन में उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी; पर प्रथम बार उनसे मिलने पर वह श्रद्धा डिगी और इन ४-५ दिनों में तो हमें ऐसा लगा जैसे हमारे सामने भारत का एक मनस्वी इतिहासकार नहीं है, बल्कि क्रोध और आक्रोश की साकार प्रतिमा उपस्थित है। उनके भाषण में, सार्वजनिक अथवा गोष्ठी, भवन की वार्ता में कहीं भी वे अपने आक्रोश के प्रवाह को नहीं रोक सके।

यह एक दुःखान्त घटना थी। हमारे व्यक्तिगत विचारों का कोई मूल्य नहीं है, पर चूंकि जो स्मरण रहे वही संस्मरण हैं, इसलिए हम अपने मनोभावों को व्यक्त करने पर विवश हैं। उनके सिद्धान्तों को लेकर हम विवाद नहीं करेंगे। उन्होंने सरकार पर जो आक्षेप किए उनके विषय में भी कुछ नहीं कहना है। सरकार गलती करती है तो उसकी आलोचना होनी ही चाहिए। गांधीजी अब नहीं हैं, पर इसका आशय यह नहीं है कि अब उनसे मतभेद नहीं हो सकता। जनतन्त्र के युग में मतभेद को प्रकट करना जन्मजात अधिकार है, पर दुःख यही है जिस भाषा में और जिस रीति से यह सब हुआ वह किसी भी उत्तरदायित्व को अनुभव करने वाले व्यक्ति या संस्था के लिए किसी भी तरह माननीय नहीं है। गांधीजी तो अब आकाशस्थ हैं, सरकार सत्तारूढ़ है; पर जिन भूतपूर्व सभापति से उन्होंने सम्मेलन का भार सम्भाला, उन्हीं के साथ अध्यक्षजी जिस प्रकार पेश आए, उससे प्रायः सभी व्यक्तियों को दुःख हुआ। परीक्षाबोर्ड को लेकर सबसे अधिक विवादास्पद हुआ। हैदराबाद-अधिवेशन में कार्य-समर्पण के बाद सम्मेलन ने परीक्षाबोर्ड का निर्माण किया था। कहते हैं, इसके निर्माण में किन्हीं लोगों का स्वार्थ था। इसकी सत्यता या असत्यता को प्रमाणित करने के लिए हमारे पास न तो साधन है और न स्थान; पर हम इतना अवश्य जानते हैं कि बोर्ड के पदाधिकारियों में सर्वश्री टंडनजी, श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा चन्द्रबली पांडे आदि महानुभाव थे। कहते हैं, बोर्ड ने अपना काम बड़ी तत्परता और निष्ठा से किया उसके कार्य संचालन में गल्तियां भी हुईं, पर ९-१० माह के अन्तराल में परीक्षा-बोर्ड जैसी संस्था के कार्य पर राय नहीं बनाई जा सकती, पर हैदराबाद का पराजित दल तो बोर्ड को भंग करने पर तुला हुआ था। उसके अभियोगों में एक प्रमुख अभियोग यह था कि बोर्ड के सदस्य अपनी लिखी या प्रकाशित पुस्तकें परीक्षाओं में लगवा रहे हैं। इस दल की ओर से भी सम्मेलन के कई अधिकारियों पर यही अभियोग लगाया गया था। यह बड़ी मजेदार पर लज्जाजनक स्थिति थी। हमें इससे कोई सम्बन्ध नहीं है; पर पत्रकारों की गैलरी में सभापति के ठीक सामने बैठकर जब हमने उन्हें कार्य-संचालन करते देखा तो हम चकित रह गए। सभापति एक पक्ष के लोगों को बोलने का ठीक समय नहीं देते थे, पर दूसरे पक्ष वालों से समय पूछना देखना भूल जाते थे। यहीं तक नहीं, उन्हें नये-नये प्वाइंट बताते थे। यह उनका नग्न पक्षपात था। एक उदाहरण दूं। सदा विजित पक्ष का साथ देने वाले कुशल वक्ता प० मौलिचन्द्र शर्मा बोल रहे थे। तीन मिनट का समय था। पूरा हो जाने पर किसी व्यक्ति ने सभापति का ध्यान आकर्षित किया, पर सभापतिजी ने उस व्यक्ति को उपेक्षा से झिड़क दिया और शर्माजी को बोलने का पूरा-पूरा समय दिया। जब शर्माजी बैठ गए तब किसी तरह मुस्कराकर उन्होंने कहा कि शर्माजी इतने सुन्दर ढंग से बोल रहे थे कि मैं घड़ी देखना ही भूल गया। ऐसे एक से अधिक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने अन्तिम भाषण में १॥ घंटे से अधिक तक सरकार को कोसते रहे, पर विरोधी दल के नेता

तथा अपने पूर्व सभापति श्री चन्द्रवली पाण्डे को कुछ मिनट नहीं दे सके। उनके इस रुख को देख कर विरोधी दल 'वाक आउट' कर गया और तब जो वे चाहते थे वह *सर्वसम्मति से पास हो गया। बोर्ड को* तोड़नेवाले दल ने किस प्रकार मत संग्रह किया, इसके बारे में अनेक कथाएं सुनने को मिलीं। वे लोग कुछ मित्रों को वरवस उनकी फीस व मार्ग-व्यय अपने पास से देकर ले गए। स्वयं एक प्रतिष्ठित साहित्यिक ने यह बात हमें बताई थी। यह भी सुनने में आया कि एक सज्जन को विरोधी दल ने झूठा तार देकर घर लौटने को बाध्य किया। ऐसे ही अनेक अनुचित कार्य वहां देखने और सुनने में आए। इस स्थिति से व्यथित होकर अहिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने जिस करुण भाषा में अपना विरोध प्रकट किया और कहा कि "आप तो लड़ते हैं; पर हानि हमारी होती है, राष्ट्र-भारती के पुजारी हम क्या करें।"—वह प्रत्येक समझदार व्यक्ति को रुला देने वाली थी। तब ऐसा लगता था कि वे लोग सम्मेलन की मृत्यु पर फातिहा पढ़ रहे हैं। *सचमुच वह सम्मेलन का अंत्येष्ठि-संस्कार था।*

स्वयं बोर्ड भंग करने के पक्षपातियों ने सभापति के उपेक्षा तथा पक्षपात-पूर्ण व्यवहार को अनुचित कहा है। उनके एक मित्र ने, जो स्वयं प्रसिद्ध लेखक और सम्मेलन के एक कर्णधार हैं, उनके आक्रोश और क्रोध से दुखी होकर हमसे कहा—भला सम्मेलन के मंच से इन बातों के कहने का क्या लाभ ? हमारे एक पत्रकार मित्र ने, जो वैसे एक प्रसिद्ध लेखक हैं, सारी स्थिति को समझकर एक बड़ा सारगर्भित वाक्य कहा था—"इस आदमी (श्री जयचन्द्र विद्यालंकार) ने पच्चीस वर्ष की कमाई तीन दिन में खो दी।" इस एक वाक्य में कोटा-अधिवेशन की कहानी आ जाती है। एक बन्धु कहते सुने गए कि उनको सभापति बनाना सफल हुआ और कम-से-कम निर्वाचन में प्रमुख योग देने वाली पार्टी के लिए तो जयचन्द्र नहीं बने, इतनी नैतिकता का परिचय उन्होंने अवश्य दिया। इन शब्दों का अर्थ सभी समझ सकते हैं।

परिषदों की कहानी में कोई विशेषता नहीं है। वह एक तमाशा है, जो प्रतिवर्ष होता है। दो घंटे का समय, कुछ सम्बन्धित व्यक्तियों की उपस्थिति, स्वागत मंत्री तथा सभापति का छपा हुआ भाषण, एक-दो वक्ताओं का लेख पढ़ने या भाषण देने का प्रयत्न, कभी-कभी संघर्ष फिर धन्यवाद और उसके पश्चात् समाप्ति। विज्ञान और दर्शन परिषद् में तो लोगों ने आने का भी कष्ट नहीं किया था। दर्शन परिषद् सम्मेलन के समाप्त हो जाने पर अगले दिन हुई थी। हां, शेष तीन परिषदों में कुछ जान दिखाई दी। राष्ट्रभाषा परिषद् के सभापति भारत सरकार के राज्यमंत्री श्री दिवाकर थे। इस कारण उपस्थिति संतोषजनक थी। उनका भाषण व्यवहार-कुशलता का प्रमाण था। जो लिखा था उससे बाहर भी वे बोले और सुन्दर बोले। तथ्य की बातें कहीं; लेकिन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। हां, स्वागतमंत्री का भाषण भी प्यारा और सुन्दर था। साहित्य-परिषद् के सभापति श्री वेढवजी ने दो नई विचार धाराओं को समझने का और सन्तुलन रखने का प्रयत्न किया। ध्यान उनका भारतीय आदर्शवाद की ओर था। सब मिलाकर *उनका प्रभाव संतोषप्रद था। समाज-शास्त्र परिषद्* के सभापति श्री जयप्रकाशनारायण थे। उन्हें अगर परिषदों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता तो वे कभी भी इस पद को स्वीकार न करते। उनका भाषण भी लिखित था, पर वे बोले मौखिक ही और सुन्दर बोले। यद्यपि वे अब थक गए हैं तो भी उनकी बात जनता ने शांति से सुनी। उन्होंने समाजशास्त्र को समझाने और उस पर साहित्य निर्माण करने के लिए कुछ ठोस सुझाव रखे। स्वागतमंत्री का भाषण लम्बा और विद्वत्ता-पूर्ण था। मौलिचन्द्रजी तो कहीं भी और किसी भी विषय पर बोल सकते हैं। वे तीनों परिषदों में बोले।

कोटा में पत्रकार सम्मेलन भी हुआ, परन्तु पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के न आ सकने के कारण वह बिना दूल्हे की बारात जैसा रह गया। एक दिन रात को सम्मेलन के बाद १२-१ बजे तक कुछ पत्रकारों ने उस रस्म को पूरा किया। पत्रकारों में दिल्ली के सर्वश्री मुकुटबिहारी वर्मा, रामगोपाल विद्यालंकार, कृष्णचंद्र विद्यालंकार, माधवजी, अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, शम्भूनाथ तिवारी, गोपालप्रसाद व्यास, कानपुर के श्री

जयदेव गुप्त और त्रिवेदीजी, मेरठ के श्री विश्वम्भरसहाय प्रेमी, श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट तथा अन्य अनेक बन्धु थे। सबने अ. भा. हिन्दी पत्रकार सम्मेलन को पुनर्जीवित करने का निर्णय किया और उसके लिए एक समिति बना दी।

स्वागत समिति की ओर से आगत अभ्यागतों के मनोरञ्जन के लिए लोक गीत, कवि सम्मेलन तथा 'कामायनी' के छाया अभिनय का प्रबन्ध था। कवि-सम्मेलन तो केवल स्थानीय होकर रह गया था। लोक-गीत प्रदर्शन, जिसमें हाड़ौती रामायण के कुछ दृश्य दिखाये गये थे, सुन्दर थे। 'कामायनी' का छाया अभिनय एक सफल और सुन्दर प्रयास था। एक चित्रप्रदर्शनी भी हुई थी। इसके संयोजक महोदय ने बड़े प्रयत्न से नये और पुराने कलाकारों के चित्र वहाँ जुटाये थे। शांति निकेतन के आचार्य, राजस्थान के प्रसिद्ध और उगते हुए कलाविद, दिल्ली के मंजे हुए चित्रकार सभी को वहाँ देखा जा सकता था।

राजस्थान सरकार की ओर से प्रकाशन विभाग के श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट ने जिस स्नेह और सौजन्य से पत्रकारों का चम्बल बांध पर बनाए जानेवाले विद्युत उत्पादन बांधों का दिखाया वह एक तरह से सम्मेलन की चहल-पहल से उत्पन्न वेदना को दूर करने वाला था। वह विशेष बड़ा मधुर और प्रिय था। राजस्थान के सौन्दर्य, उसकी कला, वास्तु के प्रकार, पुरातत्व के अनेक भग्नावशेष मन्दिरों और भवनों को देखकर सारी पीड़ा हर्षोन्माद में परिवर्तित हो गई। ये बांध जिस दिन पूर्ण होंगे उस दिन ७०००० किलोवाट बिजली के प्रकाश से राजस्थान का सौन्दर्य जगमग कर उठेगा। सिंचाई के बांध से ३,००,००० एकड़ भूमि में सिंचाई का अनुमान है। ये सभी योजनाएं अभी प्रारम्भिक रूप में हैं, पर कुछ भी हो कोटा-अधिवेशन भूल जाएगा और शायद वहाँ की कटुता भी दूर हो जाए, पर वहाँ की प्रकृति और वहाँ की स्वागत समिति के सत्कार, सौहार्द और स्नेह को हम कभी नहीं भूलेंगे। केवल उन्हीं क्षणों में, जब हम उनके सम्पर्क में रहे हम कुछ भी न पा सके थे। बल्कि उतनी ही देर के लिए हम इस अधिवेशन को वास्तविक अर्थों में मेला कह सकते हैं। सच है उन क्षणों में हमने उतना कुछ पाया जितना हम श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के सभापतित्व में होने वाले अनेकों सम्मेलनों में नहीं पा सकेंगे।

और अन्त में हम उन अनेक बन्धु-बान्धवों को कैसे भूलें, जिन्होंने अपनी रसिकता, विनोद प्रियता और जिन्दादिली से उस नीरस भी सम्मेलन को मधुर मिलन में परिवर्तित कर दिया था। यद्यपि कुछ छिछोरे साहित्यिकों ने वहाँ भी असंयम का प्रदर्शन किया, परन्तु स्वागत समिति के प्रधान श्री बृजसिंह यादव की आत्मीयता, राजस्थान सरकार के प्रकाशन अधिकारी श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट के सौजन्य, बिहार के प्रसिद्ध लेखक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के निर्मल अट्टहास, श्री प्रभाकर माचवे तथा श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की गरिमा एवं मुनिजनोचित सन्मति को हम अपने स्मृति-पट से कभी नहीं मिटा सकेंगे। कुछ नाम और हैं, पर वे इतने अपने हैं कि उनकी स्मृति हम अपने तक ही रखना चाहेंगे, और यदि एक बार फिर सभापतियों का नाम लेकर कोई भी हमें उस कटुता का स्मरण करने की आज्ञा नहीं देगा, तो भी हम अन्त में दो शब्द कहना चाहेंगे— वे नहीं; पर उनकी विद्वत्ता और साधना हमें प्रिय है। उन्हीं को हम स्मृति में संजोना चाहते हैं। हमें आशा है वे हमें निराश नहीं करेंगे।

☆

[इस वर्ष ३० जनवरी, १९५१ को स्वामी विवेकानन्द की वर्ष-गांठ है।]

"समस्त संसार को प्रकाश की आवश्यकता है। यह प्रकाश केवल भारत में प्राप्त है। लेकिन यह प्रकाश जादू-टोने, छू-मन्तर अथवा ज्योतिषादि में नहीं है; बल्कि वास्तविक धर्म की जो आत्मा है— उसकी महानताओं की, सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य की, शिक्षाओं में है। इसलिए प्रभु ने मानव-जाति को तमाम उलटफेर के बावजूद आज तक सुरक्षित रखा है। आज वह समय आ गया है। —विवेकानन्द

['जीवन-साहित्य' में समीक्षा के लिए हमारे पास स्वेच्छा-पूर्वक बहुत सी पुस्तकें भेजी जाती हैं। उनमें से चुनी हुई पुस्तकों पर हम स्वतंत्र रूप से अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। जो पुस्तकें छूट जाती हैं, उनके विषय में हमारी लाचारी मानी जानी चाहिए। इस समय हमारे पास निम्न-लिखित पुस्तकें आई हुई हैं। इनमें से कुछ पर हम आगामी अंकों में विस्तार से चर्चा करेंगे। --सम्पादक]

१. दार्शनिक विचार–ले० राजा बलदेवप्रसाद विरला डी० लिट०–प्रका०–विरला संस्कृत कालेज, लालघाट बनारस।

२. आत्म-चिन्तन—ले० मार्कस आॅरेलियस–अनु० चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य–प्रकाशक–हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, मूल्य १), कपड़े की जिल्द २)

३. इंसपेक्टरसाहब—ले० गोपाल–अ० भूपनारायण दीक्षित–प्रकाशक, शर्मन पेपर मार्ट, इटावा मूल्य १।)।

४. स्मृति कण—ले० श्री सीताराम सेक्सरिया, प्रका० आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, मूल्य १॥)

५. संघर्ष और समर्पण (उपन्यास)–ले० सन्हैयालाल ओझा एम० ए०, प्रकाशक राजहंस प्रकाशन दिल्ली, मूल्य ५॥।)

६. पशु और मानव (उपन्यास)—ले० आल्डस हक्सले, अनु० रणजीत प्रिन्टर्स एन्ड पब्लिशर्स, चांदनी चौक दिल्ली, मूल्य ३॥)।

७. पुखराज (कहानी संग्रह)—ले० हरिश्चन्द्र कौला प्रका०, विद्या मन्दिर लि०, नई दिल्ली, मूल्य ३।)।

८. न्याय (कहानी संग्रह)—ले० दीपसिंह बड़गूजर 'दीपक', प्रकाशक, अजमेर कोआपरेटिव प्रिन्टर्स एन्ड पब्लिशर्स लिमिटेड, अजमेर। मूल्य १।)

९. वैदिक साहित्य—ले० पं० रामगोविन्द, त्रिपाठी–प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य ४)

१०. मिलन यामिनी (कविता)—ले० श्री बच्चन प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य ४)।

११. बन्धनों की रक्षा (लघु कथा)–ले० आनन्दमोहन अवस्थी, प्रका०–लोक चेतना प्रकाशक, जबलपुर, मू. १)

१२. गांधीजी के जीवन प्रसंग–सं० चन्द्रशंकर शुक्ल प्रका० वोरा एन्ड कम्पनी पब्लिशर्स लि० बम्बई मूल्य ६)

१३. ज्ञान चौसर—प्रकाशक कला निकेतन, चावड़ी बाजार, दिल्ली मूल्य ॥।)

१४. वैज्ञानिक पाक-प्रणाली—प्रकाशक–ग्रामद्योग कार्यालय, मुजफ्फरपुर। मूल्य ।)

१५. नियोजित अर्थ-व्यवस्था का गांधीमार्ग—लेखक जे. सी. कुमारप्पा–प्र. उपरोक्त मूल्य ।=)

१६. हिन्दू समाज की बुनियादी कमजोरी—ले० रमाचरण–प्रका० उपरोक्त, मूल्य १)।

१७. डाक्टर वर्मा के शिवाजी—ले० श्री भुवनारायण सिंह, प्र० सत्यप्रकाशन, नौबस्ता, आगरा।

१८. Writers in Free India—दी पी. ई. एन. आल इंडिया सेंटर, बम्बई ६, मूल्य ६)

१९. केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—नेमिचंद जैन ज्योतिषाचार्य, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ काशी। मूल्य ४)

२०. गांधी-गीता—प्र० राजहंस प्रका. दिल्ली मू. २)

२१. हर्षचरित (पूर्वार्द्ध) प्रकाशक–संस्कृत भवन कठौतिया, पो. काझा (पूर्णिया) २॥)

२२. लघुसिद्धांत कौमुदी (पूर्वार्द्ध) हि. व्याख्या लेखक व प्रका. भीमसेनशास्त्री प्रभाकर, गांधीनगर, दिल्ली ४॥)

२३. पालि पाठमाला–ले० भिक्षुधर्मरक्षित प्रका० महाबोधि सभा, सारनाथ मू० १)

क्या व कैसे ?

सच्ची श्रद्धांजलि

बापू के जाने के बाद सरदार पटेल तथा श्री नेहरू ने मिलकर भारत की बागडोर सम्भाल रखी थी, दृढ़ता और प्रतिष्ठा के साथ। अब सरदारश्री चले गये और अकेले नेहरूजी पर सारा बोझ आ गया। यद्यपि राजाजी जैसे कुशल तथा तपे हुए बुद्धिशाली अनुभवी व्यक्ति सहारा देने के लिए मिल गये हैं, फिर भी सरदारश्री का जाना हम सब भारतीयों के लिए, खासकर कांग्रेसियों के लिए, महान आत्म-निरीक्षण का अवसर देता है। मुझे हमारे कांग्रेसपति राजर्षि टण्डनजी का यह ऐलान बहुत भाया कि सरदारश्री के पाक्षिक श्राद्ध के अवसर पर हम सब आत्म निरीक्षण करें। अकेले नेहरूजी या राजाजी या और किसी पर जिम्मेदारी छोड़कर हम निश्चिन्त नहीं रह सकते। यह जिम्मेदारी से छूट भागना है। आजादी मिलने का नतीजा तो यह होना चाहिए था कि प्रत्येक भारतवासी हर्ष व उल्लास से फूल उठता और हमारे राष्ट्र-नेता हजारों वर्ष की आयु भोगते। इसके विपरीत हमने देखा कि आजादी मिलने के बाद से ही बापू भगवान से प्रार्थना करने लगे थे कि मुझे संसार से उठा ले और सरदारश्री भी इधर-उधर कहने लगे थे कि मुझे तो बापू के साथ ही जाना था, मगर रह गया। अब जीने में कोई लुत्फ नहीं। आदि-आदि। इसका क्या कारण है? कभी हमने इस पर कुछ सोचा है? मेरा हृदय तो इसका एक ही उत्तर देता है कि हम अपने महान् नेताओं के योग्य नहीं साबित हुए। अपनी गलतियों को, कमियों को, कमजोरियों को न देखकर हमने सदैव अपने बड़ों को, नेताओं को, कोसा है, सच्चे दिल से उनका साथ नहीं दिया है, उनके हाथ मजबूत नहीं किये हैं। हमारे सार्वजनिक जीवन में यह बीमारी ही घुस गई है और बढ़ पकड़ती जा रही है कि अपनी बुराई देखना नहीं और दूसरों के गले पड़ जाना; अपनी कमियों और खराबियों की जिम्मेदारी दूसरों पर थोप देना। बुराई किसमें नहीं है और गलती किससे नहीं होती? गलती बताना और सुधरवाना एक बात है, उसका बढ़ाना लेकर दूसरे को टांग पकड़के घसीटना गिराना, बदनाम करना दूसरी बात है। यदि हमें अपना राष्ट्र सचमुच बनाना है तो अपनी गलतियों का पहले देखने की और दूसरे की त्रुटियों को अपने जीवन के प्रकाश में देखने की प्रवृत्ति हमें बढ़ानी होगी, नहीं तो हम कोरे निन्दक और विनाशक प्रवृत्तियों के व्यक्ति बनकर रह जायगे। कोई विधायक रचनात्मक या सृजनात्मक काम न कर पायेंगे। अब हमारे देश के सामने मुख्यतः सृजनात्मक और रचनात्मक काम ही बाकी रहा है।

कांग्रेस के अन्दर भी छोटे-छोटे गुट बन गये हैं और बनते जा रहे हैं। अधिकांश तो यह आगामी चुनावों में आना या अपने साथियों का स्थान सुरक्षित रखने—अपनी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं की सिद्धि की दृष्टि और भावना से बने हैं और जबतक इन भावनाओं की सिद्धि के लिए हम साधन शुद्धि पर जोर न देंगे, ये अनर्थ का ही कारण बनते रहेंगे। अव्वल तो कांग्रेस जैसी एक पार्टी या संगठन में, जो एक आदर्श और नीति को लेकर बनी है, व्यक्तियों के आधार पर गुट बन्दी एक रोग का ही लक्षण है, फिर भी यह काबू में रखा जा सकता है, यदि हम व्यक्तिगत, सस्थागत या समाजगत मतभेदों और झगड़ों को सीधे, सरल व शान्त तरीकों से सुलझाने और मिटाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हों। खींचतान, छल-प्रपंच, छूट-झूठ, दबाव धमकाव और अन्त में गुण्डागर्दी करके काम बनाने या निकलवाने की जो प्रवृत्ति और तरह बढ़ रही है, उसे हम समय पर नियन्त्रित न कर सके तो हमें अपनी शक्ति का ह्रास ही ह्रास होता दिखाई पड़ेगा। बहुत बहुत अवलोकन, निरीक्षण, चिन्तन, मनन और उद्योग के बाद मेरी यह निश्चय राय हुई है कि कांग्रेस के कर्णधारों का प्रथम प्रयत्न यह होना

चाहिए कि कहीं भी अशुद्ध साधनों को प्रोत्साहन न मिले और जो लोग शुद्ध साधनों के हामी हैं उनके हाथ हर तरह मजबूत किये जांय।

आजादी मिलने के बाद से सरदारश्री का मुख्य प्रयत्न देश को संगठित करने, एक सूत्र में पिरो देने का रहा था। इस प्रयत्न में उन्हें बहुतांश में सफलता भी मिली, लेकिन पूर्णतया नहीं। उसे पूरा करने का दायित्व अब हम सब पर आगया है। इस दिशा में हम ईमानदारी के साथ कदम उठावेंगे, मजबूती से चलेंगे, तभी सरदारश्री की आत्मा को शांति मिलेगी और वही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हटूंडी, ५. १. '५१

श्री अरविन्द की देन

श्रीअरविन्द के प्रति मेरा आकर्षण अपने विद्यार्थी जीवन से ही रहा है। १९०५-६ में लाल-बाल-पाल यह त्रिमूर्ति भारत की राष्ट्रीय देवता जैसी थी, जिसके प्रभाव से शायद ही कोई युवक उन दिनों बचता था। फिर भी श्री अरविन्द उन्हीं दिनों एक स्वतन्त्र नक्षत्र की तरह अपनी विशेषता से चमकते थे। इनकी भूमिका कोरी राजनैतिक या राष्ट्रीय नहीं, उससे गहरी आध्यात्मिक थी, यह उन दिनों भी प्रकट होता था। केवल राजनैतिक अधिकार—स्वतन्त्रता—पा लेने से मनुष्य-जाति का उद्धार नहीं हो सकता, यह वे मानने लगे थ। राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए भी भौतिक शक्ति को वे अपूर्ण मानने लगे थे और दिव्य या आध्यात्मिक बल पाने के लिए छटपटा रहे थे। उन दिनों जीवन के कई विषयों पर जो मूलगामी विचार उन्होंने प्रकट किये थे उन्हीके आधार पर उनका आगे का जीवन बना है, उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई है। जेल में उन्हें कुछ ऐसे यौगिक या आध्यात्मिक अनुभव हुए—आसपास के तथा सामनेवालों लोगों में उन्हें श्रीकृष्ण (ईश्वर) के दर्शन होने लगे, जिससे उन्हें कहीं एकान्त में जाकर एकाग्र साधना करने की प्रेरणा हुई और वे पांडिचेरी चले गये। लगभग २० वर्ष की एकान्त साधना के बाद उन्होंने २४ नव० १९२६ को घोषित किया कि वे अपनी साधना में सफल हो गये हैं और अब उन्हें मनुष्य-जाति या मानव को ऊपर उठाने का काम शुरू करना है। उसके बाद से पांडिचेरी में श्री अरविन्द आश्रम का संगठन होने लगा। उन्होंने तत्कालीन साधकों से यह भी कहा कि अब आगे का काम में एकान्तवास द्वारा ही करूंगा, प्रत्यक्ष कार्य श्रीमाताजी के द्वारा सम्पन्न होगा। माताजी एक फ्रेंच महिला हैं जो उन्हींकी तरह दिव्य जीवन की साधना में उनकी सहयोगिनी रहीं और सिद्धि में भी उनकी समकक्ष मानी जाती हैं। श्रीअरविन्द के शरीर-पात के बाद तो अब वही उस आश्रम की अधिष्ठात्री और साधकों का अवलम्बन हैं।

श्री अरविन्द की विद्वत्ता, प्रतिभा, राष्ट्रभक्ति, साधना सब एक-से-एक बढ़कर थी; किन्तु सबसे अधिक प्रभाव मेरे मन पर उनकी दृढ़निष्ठा और एकाग्र साधना का है। जीवन और संसार के तमाम व्यामोहों, आग्रहों, खिचावों और बलों के प्रभाव से अपने को दूर रखकर एक मकान, बल्कि एक कमरे में बरसों अपने को रोके रखना इस बीसवीं सदी में मामूली बात नहीं है। फिर उनकी साधना या योग निष्कर्मता की शिक्षा नहीं देता। उनका जोर इस बात पर है कि जीवन को ईश्वर-समर्पित करके कर्म करो। अपने को ईश्वर के प्रति उत्तरोत्तर खोलते जाओ और तुम ईश्वरी जीवन को प्राप्त करते जाओगे। ईश्वरी जीवन प्राप्त करने के दो मार्ग हैं: एक, व्यक्ति नीचे से ऊपर उठकर ईश्वर की कक्षा में पहुंचे। दूसरे, ऊपर से ईश्वर की शक्ति, कृपा अनुग्रह या चेतना व्यक्ति पर बरसे। पहली क्रिया का नाम उन्होंने आरोहण व दूसरी का अवरोहण किया है। प्राचीन भारतीय आचार्यों की भाषा में कहें तो पहली क्रिया को वेदान्ती साधना, दूसरी को तान्त्रिक साधना कह सकते हैं। किन्तु श्री अरविन्द ने अपनी साधना और सिद्धि के लिए नये स्वतन्त्र शब्द तथा नाम निर्माण किये हैं। अपनी साधना को उन्होंने 'पूर्ण योग' नाम दिया है और उसकी प्रक्रिया के उपक्रम में उन्हें 'अति-मानस' नामक एक तत्त्व उपलब्ध हुआ है। उनका कहना है कि इस समय जगत् में मानव के अन्दर हम जड़, प्राण, मन तीन तत्त्वों का आविर्भाव देखते हैं। जड़ से शरीर का ढांचा बना है, प्राण से शरीर में चलन-वलन होता है और मन से प्राण तथा शरीर के अनेक व्यापार संचालित होते हैं। किन्तु इन तीनों तत्वों के आधार

स्वाधीनता-दिवस

२६ जनवरी को हम लोग प्रतिवर्ष स्वाधीनता-दिवस मनाते हैं। यह क्रम लगभग बीस वर्ष से चला आता है, जबकि हमारे स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में प्रथम बार, रावी के तट पर, शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा ली गई थी कि हमलोग भारत को आजाद करके ही मानेंगे। वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। विदेशी सत्ता यहां से हट गई और हमारे शासन की बागडोर हमारे हाथ में आ गई। इसी शुभ तिथि को आज से एक वर्ष पूर्व भारत को 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणतंत्र राज्य' घोषित किया गया था। निस्सन्देह यह दिन हम सब के लिए एक महान राष्ट्रीय पर्व है। लेकिन खुशी मनाने और गौरव अनुभव करने के साथ-साथ यह दिन हमें हमारे कर्तव्य का भी बोध कराता है। भारत विदेशी सत्ता के बंधन से मुक्त हुआ अवश्य; लेकिन सच्ची आजादी अभी हमसे कोसों दूर है। आज देश में कैसी विषम परिस्थिति का हम लोगों को सामना करना पड़ रहा है, कैसी-कैसी कठिनाइयों में होकर गुजरना पड़ रहा है, उस सबकी याद करके दिल दहल उठता है। अन्न-संकट हमारे सिर पर खड़ा है, हजारों लोग खानाबदोशों का-सा जीवन बिता रहे हैं, काश्मीर का मामला अभी तक लटका हुआ है, ये तथा और बहुत से ऐसे मसले हैं जिन्होंने हमारी आजादी का मजा किरकिरा कर दिया है। जबतक देश का एक भी आदमी भूखा-नंगा या बिना घर के रहता है तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि हमें वास्तविक अर्थ में आजादी मिल गई है। २६ जनवरी जहां गुलामी के अध्याय की समाप्ति की सूचक है वहां वह देश के नवनिर्माण के कर्त्तव्य की बोधक भी है। गुलामी के दुष्परिणाम हम देख चुके हैं और अब हमारा हित इसीमें है कि हम अपने प्रयत्न से देश को इतना सशक्त और संगठित बना दें कि कोई भी उसकी जड़ को न हिला सके। यदि ऐसा न हुआ तो हमारी कमजोरियां हमें खा जायंगी। इस कटु सत्य को वैसे तो हम हमेशा ही याद रक्खें, लेकिन २६ जनवरी को आजादी के उल्लासयुक्त स्मरण के साथ तो अवश्य ही।

नई दिल्ली, १०-१-५०

तीस जनवरी !

३० जनवरी भारत के ही नहीं, सारे संसार के इतिहास में एक चिरस्मरणीय तिथि बन गई है। इसी विधिनिर्मित तिथि को, आज से तीन वर्ष पूर्व, विश्व की महानतम विभूति का हमसे विछोह हुआ था—उस विभूति का, जिसके विषय में आइंसटीन ने लिखा था कि आगे आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से विश्वास करेंगी कि इस धरती पर कभी हाड़-मांस का ऐसा पुतला चला था। समूची मानवता की सेवा के लिए इस महापुरुष ने अपनी जीवन-साधना का क्षण-क्षण व्यतीत किया और अवसर आने पर इसी महान उद्देश्य के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध की सभी प्रवृत्तियां इस युग-पुरुष के प्रभाव से व्याप्त रही हैं और एक समय हमने वह देखा है जब इस विश्ववंद्य पुरुष के कण्ठ से स्वर निकलते ही करोड़ों के स्वर उसमें मिल गये थे, जिधर उसके पग उठे थे, उधर ही अगणित लोग चल पड़े थे।

जिस बेमिसाल तरीके पर गांधीजी ने भारत को आजादी दिलवाई, उसके लिए देश के कोटि-कोटि जन उन्हें याद रक्खेंगे; लेकिन समूची मानवता को उन्होंने जीवन की जो नई दिशा सुझाई, उसके लिए सारी दुनिया उन्हें चिरकाल तक याद करेगी।

आज हममें से अधिकांश गांधीजी के बताये मार्ग से विचलित हो गये हैं। हमारा मुंह दूसरी ओर हो गया है। स्पष्टतः इसका कारण यह है कि गांधीजी ने जो रास्ता बताया था वह कठोर साधना का रास्ता था, और कठोर साधना का जीवन बहुत दूर तक विरले ही चला पाते हैं। मानव कमजोरियों का पुंज है और सहज ही प्रलोभनों के चक्कर में आ जाता है। यही वजह है कि गांधीजी के आंख ओझल होते ही लोग अपनी निष्ठा और साधना पर दृढ़ नहीं रह सके।

३० जनवरी को हम बापू और उनकी दीर्घकालीन सेवाओं को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। लेकिन हमारा यह कार्य बहुत कुछ एक रूढ़ि का रूप धारण करता जा रहा है। बापू का सच्चा स्मरण, सच्ची श्रद्धांजलि उनका नाम लेना नहीं, उनका काम करना है। स्वतन्त्र भारत में 'रामराज्य' स्थापित करने

की बापू ने कल्पना की थी। इसी कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए वे १२५ वर्ष जीवित रहना चाहते थे। लेकिन भगवान को यह मंजूर न था। बापू तो अपना काम कर गए—अपना काम ही नहीं, साधारण व्यक्ति जितना कर सकता है उससे सौगुना अधिक लेकिन फिर भी उनका 'रामराज्य' का स्वप्न पूरा होना है। उसे पूरा करना, न करना हम लोगों पर निर्भर है। आज हमारे चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दिखाई देता है, परन्तु हिम्मत हारने या निराश होने से काम नहीं चलेगा। ३० जनवरी को हम आत्म-निरीक्षण का दिन मानें। अपनी कमजोरियों को देखें और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। अपनी निष्ठा को मजबूत रख कर हम समष्टि के हित में अपना हित मानकर चलें तो अंधकार के दूर होते देर न लगेगी। आज की परिस्थिति में यह सब गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ने के समान कठिन जरूर लगता है, पर स्मरण रहे कि बिना उसके कल्याण भी नहीं है।

३० जनवरी को 'सर्वोदय दिवस' कहा गया है, जो ठीक ही है। गांधीजी के लिए सबका उदय अभीष्ट था, और सच्ची आजादी का मतलब भी यही होना चाहिए। जबतक गरीब-अमीर, शासक-शासित, शोषक-शोषित, और ऊंच-नीच आदि का भेद-भाव रहेगा तबतक 'रामराज्य' की कल्पना साकार रूप धारण नहीं कर सकेगी और बापू की आत्मा व्यथित रहेगी।

नई दिल्ली, ११-१-५१ —य०

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन किधर ?

सदा की भांति इस बार भी सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ और समाप्त हो गया। कोई विशेष योजना उसने देश के सामने नहीं रखी। हिन्दी के राष्ट्र-भाषा बन जाने के बाद देश उससे मार्ग-प्रदर्शन की आशा कर रहा था। इसके विपरीत उसे मिला आक्रोश और क्षोभ। सम्मेलन सरकार को सजग रखे, यह बात तो समझ में आती है, पर वह स्वयं दलबन्दी या फिर निष्क्रियता का शिकार बना रहे, यह नितान्त अनुचित है। अभी समय है कि सम्मेलन के कर्णधार युग की स्थिति और उसकी मांग को समझें और भाषा की प्रगति तथा साहित्य-निर्माण की ओर ठोस कदम उठावें। अच्छे कामों के लिए कभी देर नहीं होती। जो कुछ कोटा-अधिवेशन में हुआ वह सम्मेलन की साख रखने वाला नहीं है। उससे विरोधियों को बल मिलेगा।

सबसे पहिला काम जो सम्मेलन के सामने है वह है कोष-निर्माण का। सरकार का मुंह देखे बिना यह विद्वानों को लेकर पारिभाषिक शब्दों की ओर ध्यान दे तो यह एक ठोस सेवा होगी। इस कार्य के लिए उसे कामों का उचित बटवारा कर लेना चाहिए। जिस परीक्षा बोर्ड को लेकर सम्मेलन में दलबन्दी की दूषित वायु बह रही है, उसका अलग रहना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रकार साहित्य निर्माण का काम एक दूसरे विभाग को सौंपा जा सकता है। तीसरा विभाग साहित्यिकों के हितों की देखभाल कर सकता है। सम्मेलन नाम के अनुरूप अबतक साहित्य का कोई हित साधन नहीं कर सका है। वह मानते हैं कि अब तक वह राष्ट्र-भाषा की समस्या सुलझाने में लगा हुआ था, पर आज तो वह समस्या प्राय: सुलझ चुकी है। इसलिए अब सम्मेलन को साहित्य और साहित्यकारों की ओर ध्यान देना चाहिए।

ये विभाग सम्मेलन के ही अंग हों, पर होंगे अर्द्ध-स्वतंत्र, जैसे भारतीय संघ में राज्य हैं। यह कोई विस्तृत रूपरेखा नहीं है, मात्र दिशा सुझाने की बात है। कहना इतना ही है कि सम्मेलन को अब गम्भीरता से अपने नये दायित्व को समझना चाहिए। गालियां देने से किसी की शक्ति नहीं, हीनता ही प्रकट होती है।

नई दिल्ली, ११-१-५१, —वि० प्र०

ठक्करबापा भी गये !

कल रात (१९ जन) को ८-२० पर ठक्करबापा का देहान्त हो गया। बापा वैसे कुछ दिनों से बीमार थे, फिर भी किसी को भी कल्पना न थी कि वह अकस्मात् इतनी जल्दी चले जायेंगे। ठक्करबापा का समूचा जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। जिसे हमारे देश में दीन और दलित कहकर अवज्ञा की दृष्टि से देखा जाता था, बापा ने उन्हीं की सेवा का बीड़ा उठाया और जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्हीं के लिए कार्य करते रहे। जहां से भी सेवा की पुकार आई, बापा वहां मौजूद। उनकी मृत्यु से भारत का एक महान सेवक उठ गया। दीनबंधु बापा को हमारी श्रद्धांजलि। —य०

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

Regd. No. E. P. 479

वर्ष १० अंक १]

श्रद्धांजलि-अंक

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

श्रद्धांजलि अंक

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन-साहित्य** [एक प्रति का ।।)

लेख-सूची

पाठकों से निवेदन

प्रिय बंधु,

सप्रेम वंदे। पिछले अंक में अपनी सूचना के अनुसार हम लोग जनवरी-अंक को 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक के रूप में ही प्रकाशित करना चाहते थे, लेकिन इधर तीन महापुरुषों का निधन हो जाने के कारण हमें यह अंक श्रद्धांजलि के रूप में निकालने के दुःखद कर्तव्य का पालन करना पड़ा है। योगिराज अरविन्द, सरदार वल्लभभाई पटेल और दीनबंधु एण्ड्रयूज़ तीनों की ही अपने-अपने क्षेत्र में हमारे देश के लिए महत्वपूर्ण देन रही है। 'जीवन-साहित्य'-परिवार की ओर से हम तीनों दिवंगत आत्माओं को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक अब मार्च में प्रकाशित होगा। उसके लिए हमें बहुत सुन्दर और उपयोगी सामग्री प्राप्त हो रही है। केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, डा० कुलरंजन मुकर्जी, डा० सुरेन्द्रप्रसाद रंग, डा० कृष्ण वर्मा, प्रो० रामचरण महेन्द्र, डा० के लक्ष्मण शर्मा, डा० जटाशंकर नंदा, डा० माथुर, डा० राजू आदि-आदि अनेक ख्यातिप्राप्त विद्वानों एवं सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों की रचनाएं प्राप्त होगई हैं। बहुतों ने लिखा है कि भेज रहे हैं। इनके अतिरिक्त महात्मा गांधी, लुई कूने, एडोल्फ जुस्ट आदि की रचनाएं भी इस अंक में रहेंगी। निस्संदेह विशेषांक अपने ढंग की एक ही चीज होगी। पाठकों को उसके लिए एक महीना अधिक प्रतीक्षा करनी होगी, इसका हमें खेद है।

जिन पुराने ग्राहकों का नये साल के लिए चंदा प्राप्त होगया है या जो इस महीने से नये ग्राहक बने हैं, उनकी सेवा में हमने अपने निश्चय के अनुसार 'गांधी-डायरी' भेंट-स्वरूप भेजना आरम्भ कर दिया है। जिन बंधुओं ने अभी तक चंदा न भेजा हो वे (४) तत्काल भेज देने की कृपा करें, जिससे इस अमूल्य उपहार से वे वंचित न रहें। 'डायरी' की सुन्दरता और उपयोगिता के विषय में कुछ कहना हमारे लिए आवश्यक नहीं है। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इस उपहार को आप हमेशा अपने पास सहेज कर रखेंगे। डायरी जानबूझकर कुछ कम डाक टिकट लगाकर भेजी जा रही है, जिससे सुरक्षित पहुंच जाय। अतः पहुंचे तो छुड़ा लेने की कृपा करें। जो लोग जुलाई से ग्राहक हैं, वे आगे वर्ष का चन्दा अभी भेज कर गांधी डायरी का उपहार प्राप्त कर सकते हैं।

जिन बंधुओं का चंदा हमें प्राप्त नहीं हुआ है, उनकी सेवामें 'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। कृपया, यह छुड़ा लें, [illegible]।

कृपाकांक्षी

यशपाल जैन

सम्पादक

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश की ग्राम पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

वर्ष १२ : : जनवरी १९५१ अंक १

अहिंसक नवरचना का मासिक

सरदार पटेल

महात्मा गांधी

जिस सरदार के सेनापतित्व में आपने इस प्रतिज्ञा का सुन्दर पालन किया उसीके सेनापतित्व में आप यह भी करें। ऐसा स्वार्थ-त्यागी सरदार आपको और नहीं मिलेगा। वह मेरे सगे भाई के समान हैं। फिर भी इतना प्रमाण-पत्र उन्हें देते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं होता।

×

वल्लभभाई जैसे नाम के पटेल हैं, वैसे ही उनकी साख भी है। बारडोली की विजय प्राप्त कर उन्होंने अपनी साख को कायम रखा। (विजयी बारडोली, पृष्ठ ४२६)

×

सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ रहना मेरे लिए एक बड़े सौभाग्य की बात थी। मैं उनकी बेमिसाल बहादुरी से भली भांति परिचित था। लेकिन पिछले १६ महीने में उनके साथ रहने का जैसा सौभाग्य मिला वैसा पहले कभी नहीं मिला। अपने जिस प्रेम की उन्होंने मुझ पर वर्षा की, उससे मुझे अपनी स्नेहमयी मां का स्मरण हो आया। मैं इस बात को कदापि नहीं जानता था कि उनमें मां के जैसे गुण हैं। बारडोली और खेड़ा के किसानों के लिए उनकी जितनी सावधानता और उत्कण्ठा रही, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। ('सरदार पटेल' से)

×

सरदार सीधी बात बोलने वाले हैं। वे बोलते हैं तो कड़वी लगती है। वह सरदार की जीभ में है। मैंने उनसे कहा कि आपकी जीभ से कोई बात निकली कि कांटा होगई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है, दिल वैसा नहीं है। उसका मैं गवाह हूं। (१३ जनवरी १९४८)

अंतिम श्रद्धाञ्जलि

"सरदार पटेल की पार्थिव देह चली गई है; किन्तु उन्होंने देश की जो सेवाएं की हैं, उनके रूप में वे सदैव अमर रहेंगे।" —(राष्ट्रपति) राजेन्द्रप्रसाद

"हम सब तथा सारा देश जानता है कि यह एक बड़ी कथा है। इतिहास उसे अपने अगणित पृष्ठों पर अंकित करेगा और उन्हें नवभारत के निर्माता और संगठन-कर्ता के नाम से पुकारेगा।" —जवाहरलाल नेहरू

"असली वल्लभभाइ आज हमसे विछुड़ गये हैं।... परन्तु वह महान स्फूर्ति, साहस और आत्मशक्ति के अवतार थे। हम यह न सोचें कि वे नहीं रहे। हमारे परिचित वल्लभभाई के चले जाने पर भी सच्चे वल्लभभाई सदा जीवित रहेंगे।" —च० राजगोपालाचार्य

"सरदार पटेल की मृत्यु का समाचार सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ और गहरा धक्का लगा। कुछ वर्ष पूर्व जब मैं केबीनट मिशन के साथ भारत गया था तो मैं उनके दृढ़ चरित्र, ईमानदारी तथा देशभक्ति से बड़ा प्रभावित हुआ था।" —(लार्ड) पेथिक लारेंस

"गुजरात का सिंह और भारत का सरदार अब नहीं रहा।...वे महात्माजी के दाहिने हाथ थे।" —अनन्तशयनम आयंगर

"एक शानदार जिन्दगी की दास्तान खत्म हो गई। जिस दुनिया में हम चलते-फिरते हैं, उसमें वह दास्तान खत्म हो गई है, मगर दिमागों और दिलों की दुनिया में वह दास्तान हमेशा जिन्दा रहेगी और याद की जायगी।" —(मौलाना) अबुलकलाम आज़ाद

"एक सच्चा क्षत्री हमारे बीच से उठ गया। भारत का एक ऐसा सेनानी, जो अपने इरादे, साहस और संगठन-क्षमता के लिये प्रसिद्ध था, हमारे बीच नहीं रहा।" —रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

"वे एक महान संगठनकर्ता तथा कभी न झुकने वाले योद्धा थे।"...मेरे लिये यह एक राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत हानि भी है।" —(आचार्य) कृपलानी

"वे पुरुषों में सिंह थे। वे वज्र के समान कठोर, साथ ही फूल के समान कोमल थे।" —एन० वी० गाडगिल

"मैं तो विविध विचारों के व्यक्तियों को आकर्षित करने तथा प्यार की रेशम-डोरियों से उन्हें बांध रखने के मानवीय गुणों के कारण उनकी सराहना करूंगा।" —श्रीप्रकाश

"मैंने उन्हें परीक्षा के अन्धकारमय तथा विजय के आशामय अवसरों पर देखा है। वे न अन्धकार में विचलित हुए और न आशा उनका गांभीर्य नष्ट करने में सफल हुई।" —आसफ़अली

"सरदार पटेल की मृत्यु एक राष्ट्रीय विपत्ति है।" —माधव श्रीहरि अणे

"वे नवभारत के निर्माताओं में से एक थे। उनकी मृत्यु से भारत का एक पुत्र खो गया।" —लियाकतअली खां

सरदार की खरी बातें

"हम ऐसा स्वराज्य चाहते हैं, जिसमें सैकड़ों आदमी भूखों रोटी के अभाव में मरते न हों; जिसमें पसीना बहा कर पैदा किया हुआ अनाज किसानों के बच्चों के मुंह में से छीनकर विदेश न भेज दिया जाता हो; जिसमें लोगों को कपड़े के लिए पराये देश पर आधार न रखना पड़ता हो; जिसमें जनता की इज्जत की रक्षा या उसका लुटना विदेशियों की मर्जी पर न हो; जिसमें स्वराज्य की धारासभा का अध्यक्ष विदेशी 'विग' या चोगा न पहनता हो, और जिसमें स्वदेशी (गांधी) टोपी पहनने पर नौकरी छूटने का डर न हो। स्वराज्य में स्वदेशी कपड़ा पहनना ही जनता का स्वाभाविक धर्म माना जायगा। हमारे स्वराज्य में थोड़े-से विदेशियों की सुविधा के लिए विदेशी भाषा में राजकाज नहीं होगा। हमारे विचार और शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नहीं होगी। हमारे विद्यालयों के आचार्य विदेशी नहीं होंगे। राज्य का कामकाज जमीन और आसमान के बीच पृथ्वीतल से सात हजार फुट ऊंचे से नहीं होगा। स्वराज्य में ऐसी हालत नहीं होगी कि महान देशभक्तों की स्वतन्त्रता तो भले ही खतरे में हो, परन्तु शराबियों की आजादी की रक्षा करने के लिए खास फिक्र रखी जाय। हमारे स्वराज्य में यह नहीं होगा कि घर में पैदा होने वाली महुए जैसे खाने के काम आने वाली चीज पर नियंत्रण रखा जाय और सरकार उस महुए की शराब बनाकर उसका व्यापार करती हो। इतना ही नहीं; बल्कि लोगों पीने की व्हिस्की की शराब विदेश से आजादी के साथ नहीं आ सकेगी। स्वराज्य में देश की रक्षा के लिए इतना फौजी खर्च नहीं होगा कि देश को सिर्फ खाकर दिवाला निकालने की नौबत आये। स्वराज्य में हमारी फौज भाड़े की टट्टू नहीं होगी। उसका उपयोग हमें गुलाम बनाने और दूसरी जातियों की स्वतन्त्रता नष्ट करने में नहीं होगा। बड़े अफसरों और छोटे नौकरों के वेतन में आसमान पाताल का अन्तर नहीं होगा। इसके अलावा महसूल और लगान असह्य-सा नहीं होगा। और इन सबसे विशेष बात तो यह होगी कि जब हमारा स्वराज्य होगा तब हम अपने देश में और विदेशों में भी जहां-तहां दुतकारे नहीं जायेंगे।" (१-६-१९२१)

... .

"जिस दिन सरकारी दफ्तर में किसान इज्जत और आबरू वाला माना जायगा, उसी दिन उसकी तकदीर पलटेगी। आज तो सरकार जंगल में घूमने-वाले पागल हाथी की तरह मदान्ध हो गई है, जो अपनी चपेट में आने वाले हर किसी को कुचल डालता है। पागल हाथी मद में यह मानता है कि जब मैंने शेर-चीतों को मारा है तो मेरे सामने मच्छर की क्या गिनती? मैं मच्छर को समझाता हूं कि इस हाथी को जितना चाहो घूमने दे और बाद में मौका देखकर उसके कान में घुस जा! इतनी शक्ति वाला हाथी भी कान में घुस जाने पर तड़प-तड़पकर सूंड पछाड़कर जमीन पर लोटने लगता है। मच्छर क्षुद्र है, इसलिए उसे हाथी से डरना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। मिट्टी के बड़े घड़े से असंख्य ठीकरियां बनती हैं, फिर भी उनमें से एक ही ठीकरी मिट्टी के सारे घड़े को फोड़ने के लिए काफी होती है। घड़े से ठीकरी किसलिए डरे? वह घड़े को अपने जैसी ठीकरियां बना सकती है। फूटने का डर किसी को रखना चाहिए तो उस घड़े को! ठीकरियों को क्या डर हो सकता है?

"इस धरती पर अगर किसी को सीना तानकर चलने का अधिकार है तो वह धरती से धनधान्य पैदा करनेवाले किसान को ही है।

"किसान डर कर दुःख उठायें और जालिम की लातें खायें, इससे मुझे शर्म आती है। और मैं सोचता हूं कि किसानों को गरीब और कमजोर न रहने देकर सीधे खड़े करूं और ऊंचा सिर करके चलने वाले बना दूं। इतना करके मरूंगा तो अपना जीवन सफल मानूंगा।" (सन् '२८ के भाषणों से)

... ...

"मौत तो एक ही बार आती है, कई मर्तबा नहीं और वह करोड़पति या गरीब किसीको भी नहीं छोड़ती। तो फिर उसका क्या डर? हम मौत का डर छोड़कर निर्भय बन जायं।" (२९-६-१९३०)

... ...

"सरकार हमारे सिर तोड़ेगी, मगर याद रखिए कि वह हमारा दिल नहीं तोड़ सकती। गोलियों से हमारे दिल छलनी हो जायेंगे, मगर ऐसी कोई गोली नही बनी जो आत्मा को छेद सके।" (सन् ३० के सत्याग्रह मे)

... ...

"हमारी इस लड़ाई में कभी हार नहीं हुई है। हम न कभी हारे और न हारेंगे; क्योंकि हमारी लड़ाई की बुनियाद सत्य पर है। हम अपने देश की आजादी चाहते हैं। अगर हम इंग्लैंड पर राज्य करने की या और किसी प्रदेश की मांग करते तो दूसरी बात थी। हम तो अपना ही हक मांग रहे हैं।

"हमारा युद्ध अलग है। अहिंसा उसकी बुनियाद है। आजकल विज्ञान का विकास हो गया है। उसके अणु-बम की संहार-शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई है कि उससे दस लाख आदमी थोड़ी-सी देर में खत्म हो जाते हैं। संहार-शक्ति के कारण जीते हुए देश भी आज घबराहट में पड़ गये हैं।" (२४-९-१९४५)

... ...

"हमारे देश की प्राचीन परम्पराओं का हमें जो उत्तराधिकार मिला है, वह हमारे लिए गर्व की चीज है। यह तो एक संयोग की बात है कि कुछ लोग रियासतों में रहते है और कुछ लोग ब्रिटिश भारत में। हमारे देश की उच्च परम्पराओं और संस्कृति के हम सब बराबरी के हिस्सेदार हैं। हम सबके हित-संबंध अलग-अलग नहीं हैं। इतना ही नहीं, हम सब एक ही खून और एक ही भावना के बंधन में बंधे हुए है। कोई हमें अलग-अलग टुकड़ों मे बांट नहीं सकता। कोई हमारे बीच ऐसी रुकावटें पैदा नहीं कर सकता, जिन्हें दूर न किया जा सके। इसलिए मैं कहता हूं कि हम एक-दूसरे से अलग हो जायं, इस ढंग से संधियां करने के बजाय एक सभा में मित्रों की तरह बैठकर अपना विधान तैयार करें, इसमें हमारी शोभा है। मैं अपने मित्र राजाओं और उनकी प्रजाओं को निमन्त्रण देता हूं कि मैत्री और सहयोग की भावना से विधान-सभा में आइए। हम मिल-जुलकर सबके कल्याण के लिए मातृभूमि के चरणों में बैठकर वफादारी के साथ अपना विधान तैयार करने की कोशिश करें।"

(५-७-१९४७)

... ...

"राजा महाराजाओं से मैं कहता हूं कि वक्त आने पर आपको प्रजा के कहे अनुसार करना है। जिन राजाओं के साथ प्रजा नहीं होगी, वे अपने आप खत्म हो जायेंगे। मैं उनसे कहता हूं कि १५ तारीख तक जो भारतीय संघ में आगया वह आ गया, बाद में दूसरी तरह हिसाब होगा। आज जो शर्तें मिलती हैं वे फिर नहीं मिलेंगी। इसलिए राज्य सम्हालना हो तो अन्दर आ जाइए। आज की दुनिया में अकेला रहना मुश्किल है। जब तेज आंधी आती है तब अकेला पेड़ गिर जाता है। मगर जो दूसरे पेड़ों के समूह में होता है, वह बच जाता है। आप भी, रामचन्द्रजी और अशोक-जैसों के वंशज हैं। परन्तु आजकल आप अंग्रेज अधिकारियों के छोटे-छोटे चपरासियों को भी सलाम करते हैं। आपको अभी तक विश्वास नहीं होता कि १५ अगस्त को अंग्रेज चले जायेंगे। परन्तु जब वे जायेंगे और आपको स्वतन्त्रता की हवा लगेगी, तब आपके हृदय खुलेंगे।" (११-८-१९४७)

... ...

"अब कांग्रेस का काम पूरा होता है। हमारा जीवन-कार्य पूरा होता है। जब लोकमान्य का देहान्त हुआ तब चौपाटी के मैदान में हमने प्रतिज्ञा की थी कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उसके बाद लाहौर-कांग्रेस में रावी के किनारे कांग्रेस के इस झंडे के नीचे आजादी के लिए प्राण देने की प्रतिज्ञा की और निश्चय किया कि हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सब एक होकर रहेंगे। वह निश्चय हम पूरी तरह नहीं निभा सके, इसलिए आज जितना आनन्द होना चाहिए उतना नहीं हो रहा है। मगर इतना समझ लेना चाहिए कि अब विदेशी हमारे बीच में किसी तरह की फूट नहीं डाल सकेंगे। यह बहुत बड़ी बात है।" (११-८-१९४७)

कल के पीछे परेशान होनेवाले आदर्शवादी नहीं थे। आदर्श को वे देखते या समझते नहीं थे, सो बात नहीं; परन्तु वे मानते थे कि मुख्य बात यह है कि हम आज क्या करें और जो कुछ करना है, वह कैसे करें? आज का काम यदि कर न पाये और कल की चिन्ता में ही डूबे रहे तो कल कभी आने वाला ही नहीं है, ऐसी उनकी मान्यता थी। वे कठोर शासक और दृढ़ अनुशासक थे। राजनीति के खिलाड़ी थे, उसके दांव-पेंच में उन्हें पछाड़ना आसान नहीं था। फिर भी वे गांधीजी के आदर्शों को सही मानते थे। अपनी शक्तिभर उनका पालन भी करते थे। जितना मानते थे उतना पालते भी थे। गांधीजी के आदर्शों से बढ़कर उनकी श्रद्धा गांधीजी की सचाई, दृढ़ता, बहादुरी, निर्भयता पर अधिक थी। इधर उनकी ऐसी धारणा हो गई थी कि आजादी मिली तो गांधीजी के नेतृत्व में, किन्तु देशका शासन उनके सिद्धान्त से नहीं चल सकता। देश उनकी उच्च नीति पर चलने लायक नहीं हुआ। किन्तु उनका यह विश्वास अवश्य था कि अन्त में संसार को आना पड़ेगा गांधीजी के बताये रास्ते पर ही। यही कारण है जो गांधीमार्गी सरदार से अपने को दूर अनुभव करने लगे थे। लेकिन सरदार जिस बात को ठीक मान लेते थे उस पर दृढ़ता से चलने में किसी से डरते या दबते नहीं थे। न ऐसे वाद-विवादों में ही पड़ते थे, अपना काम करते चले जाते थे। इससे कई लोग उनपर बिगड़ते और झल्लाते थे।

सरदार जैसे कार्य-कुशल थे वैसे ही ईंट का जवाब पत्थर से देने में भी नहीं चूकते थे। इसमें न वे जिन्ना से चूकते थे, न चर्चिल से, न स्टैलिन का लिहाज रखते थे। उनपर जादू यदि किसी का चला तो गांधीजी का। गांधीजी को वे बसभर 'ना' नहीं कहते थे। बरसों तक वे गांधीजी के 'टिट्टो' समझे जाते रहे; किन्तु 'ना' कहने पर गांधीजी भी चुप साध लेते थे। ऐसा दुर्दमनीय व्यक्तित्व उनका था। यद्यपि उनका स्वभाव एकतंत्री पद्धति के अधिक अनुकूल था फिर भी जनतंत्र के सांचे में अपने को ढालने का वे भरसक प्रयत्न करते थे। जिसने उन्हें अपना विरोधी या शत्रु माना वह पछताता रहा है और जो उनके मित्र तथा सहयोगी-मंडल में आगया वह सदैव भाग्यवान रहा है।

संयमी ऐसे कि युवावस्था में ही विधुर हो जाने के बाद दूसरा विवाह नहीं किया, जबकि उनकी बिरादरी में उसकी पूरी-पूरी छूट थी, और उज्ज्वलता के साथ अपने विधुरपन को निबाहा भी। बाप-दादों की जो कुछ जमीन-जायदाद थी वह सब भाइयों को देदी, अपने लिए उनके पास तनभर कपड़े के सिवा कुछ नहीं था। कांग्रेस के कार्यकर्त्ता रहने की अवस्था में जो वेशभूषा थी वही भारत का उपप्रधान मंत्री होने की अवस्था में भी रही—खादी अपनी लड़की मणिबहन के कते सूत की, चिट्ठी-पत्री हाथ के कागज पर।

वे ऐन मौके पर हमको छोड़ गये। आगामी चुनाव सिर पर हैं। कांग्रेस उनके पीछे निःशंक थी। अब सब एक-दूसरे का मुंह देख रहे हैं। हमारी जिम्मेदारी स्पष्ट है। कांग्रेसियों ने यदि अपने-अपने अन्तःकरण साफ कर लिये, अपनी क्षुद्रताएं छोड़ दीं, पिछले कटु अनुभवों को भूलने और नया इतिहास लिखने की क्षमता पैदा कर ली, तो सरदारश्री के अवसान से हमने काफी शिक्षा लेली, ऐसा कहा जायगा। उस स्थिति में सरदारश्री की आत्मा को भी ऐसा लगेगा कि उसने उनके शरीर को छोड़कर अच्छा ही किया, नहीं तो वह हमें 'कपूत' की श्रेणी में गिने बिना नहीं रहेगी। बापू की आत्मा तो हमें क्षमा भी कर देगी; क्योंकि वे राष्ट्र-पिता थे; परन्तु सरदार की आत्मा हमें दण्ड दिये बिना नहीं रहेगी, क्योंकि वे शासक व कैप्टन थे।

"सरदार की कठोर और गम्भीर आकृति उस लोहे की तश्तरी की तरह है, जिसमें देशभक्ति, ईमानदारी, मृदुता और आकर्षण-शक्ति के कीमती रत्न छिपे हुए हैं।"

—सरोजिनी नायडू

विनोदी सरदार

श्री विष्णु प्रभाकर

सरदार वल्लभभाई पटेल का जो रूप संसार के सामने रहा है वह भले चाहे कितना ही गौरवशाली रहा हो; परन्तु वह उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को व्यक्त नहीं करता। निस्सन्देह वे महान् योद्धा, विलक्षण व्यवस्थापक और सफल शासक थे, परन्तु साथ ही वे बड़े विनोदी थे, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। साधारणतया लोग इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। अभी उस दिन एक बन्धु सरदार का रोचक परिहास बता रहे थे। किसी गम्भीर राजनैतिक चर्चा के दौरान में मौलाना आजाद ने कहा—'हां! यह हल तो तसल्लीबख्श है।"

इस पर सरदार बोले—"अबतक मौलाबख्श, अल्लाबख्श और खुदाबख्श का नाम तो सुना था। यह चौथा तसल्लीबख्श कहां से आ गया ?"

गांधीजी का विनोद तो लोक प्रसिद्ध है; परन्तु सरदार की हास्यवृत्ति जनता के सामने नहीं आई। यहां तक कि होली के अवसर पर भंग की तरंग में जब उपाधियां बांटी जाती थीं तब भी उनके भाग्य में 'हैवी टैंक' जैसी भारी उपाधियां ही होती थीं। वैसे भी प्रायः उनका हास्य टैंक से कम भारी नहीं होता था। राजनीतिक दांव पेचों ने उनकी परिहास-भावना को तीखे व्यंग, एवं विषैले चातुर्य (Wit) में परिवर्तित कर दिया था। इसी कारण जनता उन्हें कटु व्यंगकार तो मानती थी, परन्तु विनोदप्रिय भी हैं, यह नहीं जानती थी। उसके लिए यह बात कि सरदार बालक की तरह हंस सकते थे, आश्चर्यजनक थी। सच यह है कि शरारत से परिहास करने में वे उतने ही कुशल थे जितने विरोधी को विषैले चातुर्य से पराजित करने में। इसके अतिरिक्त उनके व्यंग में, चाहे वह कितना ही कटु क्यों न हो, एक दुर्बल मनुष्य की दुर्भावना, जिसे [illegible]-वृत्ति कहा जा सकता है, नहीं थी। सरदार दूसरों पर हंस सकते थे तो अपने को भी हंसी का पात्र बना सकते थे। उनकी हास्य प्रवृत्ति बहुत कुछ स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान थी। उसमें मृदुहास भी था और कूटव्यंग भी, पर सम्वेग का प्रभाव उनमें कभी नहीं पाया गया। सम्वेग के अभाव में विनोद को श्मशान की हंसी कहा जा सकता है।

सरदार को जिस प्रकार विद्रोह विरासत में मिला था उसी प्रकार विनोद-वृत्ति भी उनकी पैतृक सम्पत्ति थी। सभापति पटेल के मजाक काफी लोकप्रिय हैं। सरदार जब स्कूल में पढ़ते थे तब उनके अध्यापक ने एक बार उन्हें बिना किसी अपराध के पाड़े लिखने की सजा दी। वल्लभभाई ने सुन भी लिया; पर वे ऐसा दण्ड कहां माननेवाले थे? अगले दिन स्कूल आने पर अध्यापक ने पूछा—'पाड़े लाये ?"

वल्लभभाई ने जवाब दिया—"जी, लाया तो था; पर वे पाठशाला के द्वार पर रस्सी तुड़ाकर भाग गए।"

इस चुटीले परिहास से निस्सन्देह अध्यापक तिलमिला उठे होंगे। गुजराती में पाड़े पहाड़े को भी कहते हैं और भैंस के बच्चे को भी।

एक बार कुछ व्यक्ति गांधीजी से मिलने आए। मार्ग में सरदार मिल गये। पूछा—"कहां जा रहे हो ?"

उन्होंने जवाब दिया—"गांधीजी से मिलने।"

सरदार—"क्यों ?"

वे—"ब्रह्मचर्य पर कुछ बातें करनी है।"

सरदार—"अरे ब्रह्मचर्य पर गांधी से क्या बातें करोगे। उनके चार बेटे हैं। सब विवाहित हैं। खुद उनकी पत्नी जिन्दा है। वह ब्रह्मचर्य को क्या जाने! ब्रह्मचर्य की बात मुझसे करो। मेरे केवल दो बच्चे हैं। बहुत पहले मेरी पत्नी मर गई थी, तब से मैंने दूसरी शादी नहीं की। ब्रह्मचारी मैं हूं।"

शरारत पूर्ण विनोद का सबसे रोचक उदाहरण बापू की [illegible] है। घटना इस प्रकार बताई जाती है। सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू होने वाला था। इसलिए विदाई भी शुरू करनी थी। महादेवभाई ने बापू से पूछा—"[illegible] है? आपने कितनी बार टूटी है ?"

बापू ने उत्तर दिया, 'भजन करना आता हो तो

कुछ भी न टूटे। शंकरलाल ने मेरे पास से ली कि टूटी। काका ने मुझसे ली कि टूटी; लेकिन मेरी तो कई दिन चलती रहती है। यह तो जतन का काम है। देखो तो यह लंगोटी पहनता हूं। उसे संभाल-संभाल कर पहना करता हूं। और किसी के पास होती तो कभी की फट जाती।"

वल्लभभाई सुन रहे थे। उसी क्षण बोल उठे—"यह तो ऐसे लगता है कि जैसे पहनते ही न हो, और खूंटी पर सम्हालकर रख छोड़ी हो।"

बारडोली सत्याग्रह के अवसर पर सरकार ने मनुष्यों को ही बन्दी नहीं बनाया था, भैंसों को भी जेलखाने भेजा था। वहां अन्धकार में रहते-रहते काली भैंसें कुछ-कुछ सफेद हो गईं। उन्हें देखकर सरदार ने कहा—"यह तो मड़ामड़ी बन गई है।" अर्थात् अंग्रेजों की जेल में रहते-रहते ये काली भैंसें भी मडाम (अंग्रेजी में 'नारी' को कहते हैं) जैसी बन गई हैं।" उस परिहास में अट्टहास के साथ एक गहरी शरारत भी है; पर निर्दोष शरारत। ऐसी निर्दोष जैसी इस बात में—

बापू सोडे का प्रयोग बहुत करते थे। खाने की प्रत्येक वस्तु में उसे डालते थे। इसलिए जब कभी कोई अड़चन आ उपस्थित होती और सरदार की सलाह ली जाती तो वे सरल भाव से कह देते थे, "सोड़ा डालो न।"

बापू सुबह-शाम नीबू पीते थे। नीबू गरमी में महंगे हो जाते हैं। इसलिए बापू ने सरदार से कहा कि नीबू के स्थान पर इमली का प्रयोग किया जाय। जेल में उसके झाड़ भी बहुत हैं।

बापू की बात सुनकर सरदार हंस पड़े। बोले—"इमली के पानी से हड्डियां गल जाती हैं, बादी हो जाती है। गांधीजी ने कहा—"और जमनालालजी पीते हैं सो!"

वल्लभभाई बोले—"जमनालालजी की हड्डियों तक पहुंचने का इमली के लिए रास्ता ही नहीं है।"

कभी-कभी सरदार का तर्क-पूर्ण उत्तर उनकी प्रत्युत्पन्नमति का बड़ा मधुर परिचय देता था। किसी आलोचना में 'गांधी की रचनात्मक गफलतें' ये शब्द आए। महादेवभाई ने बापू से पूछा—"रचनात्मक गफलतें कैसी होती होंगी?" सरदार सुन रहे थे। एकदम बोले—"आज तुम्हारी दाल जल गई थी—ऐसी।" बापू खिलखिला पड़े।

निरुत्तर कर देने वाले, सचोट पर सारगर्भित व्यंग से पूर्ण, उनके हास-परिहास का विशेष परिचय महादेवभाई की उन डायरियों में मिल सकता है, जो उन्होंने यरवदा कारावास के दिनों में रखी थीं। गांधीजी से लोग विचित्र-विचित्र प्रश्न पूछा करते थे। उन दिनों सरदार भी बापू के मंत्री पद पर पहुंच गए थे। पत्र पढ़-पढ़ कर उन्हें सुनाया करते थे। एक भाई ने पूछा था—"हम तीन मन की देह लेकर धरती पर चलते हैं और बहुत-सी चीटियां कुचली जाती हैं। यह हिंसा कैसे रुक सकती है?" सरदार ने तुरन्त कहा—"इसे लिख दीजिए कि पैर सिर पर रख कर चले।"

किसी के पत्र में देखा कि स्त्री कुरूप है, इसलिए पसन्द नहीं, तो तुरन्त बापू से कहने लगे—"लिखिए न कि आंखें फोड़ कर उसके साथ रहे, फिर कुछ कुरूप नहीं दिखेगा।" एक आदमी ने अपने को फिर दुबारा शादी करने का आग्रह करने वाले की यह दलील दी थी कि 'उसने मुझ पर उपकार किया है और उसे तीन लड़कियों की शादी करना है। जाति में वरों की कमी है, इसलिए मुझसे आग्रह करता है।' वल्लभभाई बोले—"तब तीनों ही लड़कियों से ब्याह करले तो क्या बुरा है?"

एक आलोचक भाई ने बापू को खुली चिट्ठी लिखी। उसके अन्त में लिखा—"आपके जमाने में जीने का दुर्भाग्य प्राप्त करनेवाला।" बापू कहने लगे—"कहो इसे क्या जवाब दिया जाय?"

वल्लभभाई बोले—"कहिए कि जहर खाले।"

बापू—"नहीं, ऐसा नहीं। यह क्यों न कहें कि मुझे जहर दे दो?"

वल्लभभाई—"मगर इससे उसके दिन कहां पलटेंगे? आपको जहर दे दें तो आप गए और उसे फांसी की सजा मिले तो उसे भी जाना पड़ेगा, तब फिर आपके ही साथ जन्म लेने का भाग्य में बदा रहेगा। इससे तो यही अच्छा कि वह खुद जहर खाले।"

बच्चों की जैसी शरारत से पूर्ण हंसी और विरोधी को कुचल देने वाला व्यंग, दोनों के वे एक

समान स्वामी थे और इसीके साथ वे अपने को भी हँसी का पात्र बनाना जानते थे। जिसी के अन्तर की निर्मलता की झाँकी ऐसे ही अवसरों पर मिलती है। यरवदा जेल में बापू के साथ रहते हुए सरदार ने संस्कृत का अभ्यास शुरू किया था। फिर तो वे बात-बात में संस्कृत का प्रयोग करने लगे। भोले बालक की भांति पूछते—"महादेव, यह विभक्ति क्या होती है? और नृपः कह सकते हैं तो राजः क्यों नहीं और विद्वान्ः क्यों नहीं? वासांसि क्यों इस्तेमाल किया, वस्त्राणि क्यों नहीं?" कभी नए शब्द सीखते और उनका प्रयोग करते। कट्टर टोरियों को 'आततायी' कहते। "यह तुम्हें शोभा नहीं देता" इसके लिए कहते—"इदं न शोभनम् अस्ति।" 'थैंक्स' के लिए 'कृतार्थोऽस्मि' कहते, जो कुछ याद कर लेते उसका प्रयोग करने को आतुर रहते। एक दिन किसी बात पर बापू से विवाद करते-करते बोले—अच्छा तो लिखिये। आप तो 'मम मति भिन्नं कहेत' कहते हैं ना। फिर एक दिन पूछने लगे—अनेन-अनेन के माने क्या होते हैं?

सरदार की जीवन-झांकी

३१ अक्तूबर १८७५ गुजरात प्रांत के अंतर्गत खेड़ा जिले के करमसद नामक ग्राम में जन्म। बचपन नडियाद में, शिक्षण पेटलाद, बड़ौदा और नडियाद में। मैट्रिक के बाद डिस्ट्रिक्ट प्लीडर होकर १९०० से गोधरा में वकालत। १९१० तक बोरसद और आनंद आदि स्थानों में वकालत अच्छी चमकी। इसी बीच गणा नामक ग्राम में झवेरबा के साथ विवाह। १९०५ में प्रथम पुत्र डाह्याभाई पटेल, अनंतर पुत्री मणिबहन का जन्म। १९०८ में पत्नी की मृत्यु। १९१० में बैरिस्टरी के लिए इंग्लैंड गये। प्रथम श्रेणी में बैरिस्टरी पास की। १९१४ में अहमदाबाद में वकालत शुरू की। १९१५ में अहमदाबाद म्यूनिसिपैल्टी के सदस्य, १९१६ में गांधीजी के सम्पर्क में आये। १९१७ में खेड़ा सत्याग्रह में भाग। १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष। १९२२ में बोरसद तथा १९२३ में नागपुर झण्डा सत्याग्रह का नेतृत्व। १९२४ से २८ तक अहमदाबाद म्यूनिसिपैल्टी के अध्यक्ष, १९२७ में गुजरात जल-प्रलय के समय सेवा-कार्य, १९२८में बारडोली सत्याग्रह के 'सरदार'। १९३० में गांधीजी की डांडी-यात्रा से पहले रास नामक ग्राम में गिरफ्तारी। १९३१ में कराची-कांग्रेस के अध्यक्ष। १९३२-३४ जेल में, १९३५ में कांग्रेस पार्लामेंटरी बोर्ड के अध्यक्ष। १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह में पुनः गिरफ्तारी, १९४१ में बीमारी के कारण जेल से रिहाई, १९४२ को ८ अगस्त को फिर पकड़े गये। १९४५ में छूटे। १९४६ में अन्तरिम सरकार बनने पर गृह एवं राज्य-मंत्री, १९४७ में भारत सरकार के उप-प्रधान मंत्री, गृह-सचिव और राज्यमंत्री। दो वर्ष के अन्दर देशी राज्यों को विलीन कर अखण्ड भारत का निर्माण। १५ दिसम्बर १९५० को सवेरे ९-३७ पर अवसान।

इस प्रकार शुद्ध-अशुद्ध प्रयोगों द्वारा अपना संस्कृत-ज्ञान प्रकट करने और बापू तथा महादेवभाई को हँसाते हँसाते पेट में बल डालने में सरदार कभी नहीं थकते थे। उनका हास्य सदा जीवन-प्रदायिनी विनोद से लबालब भरा रहता था वहीं आवश्यकता पड़ने पर वह विरोधी को कुचल देने वाला विष-भरा बाण भी बन जाता था।

यरवदा जेल में एक दिन वहाँ के डाक्टर ने सिगारियों की चर्चा चलने पर कहा—'लार्ड रीडिंग का अन्दाज है कि हम १६ लाख रुपये रोज इन सिगारियों पर खर्च करते हैं—यानी दान में देते हैं। क्या इसका दूसरा उपयोग नहीं हो सकता?"

वल्लभभाई—"हाँ, पर इससे भी ज्यादा तो बन्दूकों पर खर्च करते हैं।"

डाक्टर कहने लगे—'मैं समझा नहीं।"

वल्लभभाई बोले—'क्या कहा? अजी, वे सिपाही से इनसे तक डाकू ही जाते हैं न! वे क्या लुटेरों से अच्छे कहे जायेंगे?"

'दयामय, मंगल-मंदिर खोलो....'

श्री वियोगीहरि

शरीर छोड़ने से दस-बारह दिन पहले शाम को रोग-शैया पर लेटे-लेटे सरदारश्री अपनेआप धीरे-धीरे गुनगुना रहे थे—

'दयामय, मंगल-मंदिर खोलो...'

डाक्टर नाथाभाई पटेल ने मजाक के सुर में कहा—

"ऐसा आसान नहीं मंदिर का खुलना। एक नहीं, दो-दो ताले दरवाजे पर लगे हुए हैं!"

"अरे, दो तो क्या, दस ताले भी टूट जायेंगे और मन्दिर का द्वार खुल जायेगा।" सरदारश्री ने हंसते हुए डाक्टर की बात को उसी वक्त काट दिया और वैसे ही फिर भजन की उसी कड़ी को गुनगुनाने लगे—

'दयामय, मंगल-मंदिर खोलो...'

दयामय प्रभु के मंगल-मंदिर में प्रवेश पाने के लिए वे कितने ही दिनों से आतुर थे। असल में तो, बापू के सिधार जाने के बाद सरदार के जीवन में वैसा रस नहीं रह गया था।

ऐसे ही, एक दिन और उन्होंने हँसते हुए कहा था, "स्टेशनों पर कई मुसाफिर एक-दो आने टिकटबाबू को दे देते हैं तो टिकट उन्हें बिना तकलीफ के तुरन्त मिल जाता है। इसी तरह, मालूम होता है, वहाँ भी लाँच लेकर टिकट देते हैं। देखते-देखते मेरे कितने ही साथी टिकट कटा-कटाकर चले गये, पर मैं तो लाँच देनेवाला नहीं।"

इसी तरह सरदार, बीमारी के दिनों में भी, हंसते-हंसाते रहते थे; पर, यहां रोग-जर्जरित देह में बंधे रहना उन्हें इधर अच्छा नहीं लगता था।

सरदार बड़े-बड़े मोर्चों पर लड़े और उन्होंने बड़े-ही-बड़े काम किये। मन चाहता था—पर शरीर काम नहीं दे रहा था—कि उनके हाथ से देश का और भी कुछ भला हो। उनके मानस-चित्रपट पर भारत के अलावा चीन, तिब्बत और नेपाल की तस्वीरें घूमती रहती थीं। पर जो-जो करना चाहते थे, कर नहीं पाते थे और जो नहीं चाहते थे ऐसी कितनी ही बातें हो जाया करती थीं। बेबस थे। बिना कुछ भला काम किए कल नहीं पड़ता था। इसलिए लाचारी का जीना अच्छा नहीं लगता था। फिर भी कई महीनों से, कई दिनों से, जिद्दी रोग के साथ वीरता-पूर्वक लड़ते आ रहे थे।

पेट में असह्य पीड़ा होती थी, फिर भी कभी बेचैनी नहीं दिखाई। कभी कुछ कहा तो इतना ही कि पेट पर जैसे करौत चल रहा है, पर उफ़ तक नहीं करते थे। मौत भी बेचारी चकराती रही होगी कि इस अजीब से शिकार को किस तरह झपट कर पकड़ूं!

उस दिन भी वह बहादुर सरदार शिकारी मृत्यु की छाया तले कई घंटे बड़े शांतभाव से सोता रहा। अंत में धक्का देता हुआ वह मंगल-मंदिर के अंदर घुस ही गया। दयामय का द्वार खुल गया था।

सरदार वल्लभभाई को किसी ने 'लौह पुरुष' कहा और किसी ने भारत का 'विस्मार्क'। उपमा देने या तुलना करने में एक प्रकार का रस आता है, फिर वह उपमा या तुलना ठीक-ठीक बैठती भी हो या नहीं। प्रशंसक और निन्दक दोनों ही अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप उपयुक्त-अनुपयुक्त शब्दों का मुक्त प्रयोग करते हैं। सरदार को भी क्या-क्या नहीं कहा गया। पर उन्होंने तो स्तुति और निन्दा दोनों की सदा उपेक्षा ही की।

असल में तो वे एक धर्मात्मा पुरुष थे। बहुत ऊहा-पोह में न पड़कर जिसे वे धर्म-विहित कार्य समझते उस पर दृढ़ रहना उनके साधु जीवन का मूलमंत्र था। बुद्धि निश्चयात्मक थी, इसलिए किसी भी निर्णय पर पहुंचने में देर नहीं लगती थी। मित्रता की तो अंततक निबाही। जो संकल्प बांधा उसे पूरा किया। अपनी बात पर से कभी हटे नहीं। दुनिया की आलोचना की परवा नहीं की।

हृदय कोमल और फूल-सा विकसित। इतनी बड़ी सत्ता पर आरूढ़, पर उसके प्रति मोह नहीं। पैसे को भी सदा तुच्छ ही समझा।

ऐसे थे वे सरदार—याने, धर्मात्मा पुरुष। प्रभु के मंगल-मंदिर का द्वार तो ऐसे भक्त पुरुष के लिए शान्ति-पूर्वक खुलना ही चाहिए था, और दयामय पिता ने उसे अपनी गोद में उठा लिया।

योगिराज को श्रद्धांजलि

"पुरातन काल के ऋषियों के समान निर्भीक विचार के श्रीअरविन्द कर्मठ पुरुष भी थे। उन्होंने शास्त्रों के अध्ययन को अपनी अविरत साधना की कसौटी पर चढ़ाया। भारत उनकी स्मृति को संचित रखेगा और उन्हें अपने ऋषि मुनियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करके उनकी पूजा करेगा।"

—(राष्ट्रपति) राजेन्द्रप्रसाद

"वे एक महान व्यक्ति ही नहीं थे, बल्कि एक संस्था बन गये थे। पुरानी पीढ़ियों के लोग उनको भारतीय स्वतन्त्रता की एक जलती हुई मशाल के रूप में याद करते हैं। वे हमारी पीढ़ी के श्रेष्ठतम विचारकों में थे और उनके वियोग से हम सदैव दुखी रहेंगे।'

—जवाहरलाल नेहरू

"उनकी मृत्यु से भारत का एक वीर विशिष्ट पुत्र खोगया है, आध्यात्मिक जगत से एक विख्यात सिद्ध उठ गया है।

—वल्लभभाई पटेल

"श्री अरविन्द की मृत्यु से भारत ने आज अपना एक प्रमुख नागरिक, महान पथ-प्रदर्शक और एक महानतम व्यक्ति खो दिया।

—कैलाशनाथ काटजू

"वह वर्तमान युग के महानतम बुद्धिवादी थे और जीवन के लिए एक बहुत बड़ी शक्ति। राजनीति और दर्शन की उन्होंने जो सेवा की उसे भारत कभी नहीं भूलेगा। दर्शन और धर्म के क्षेत्र में उन्होंने जो अमूल्य कार्य किया, उसके लिए संसार उनका सदा ऋणी रहेगा।'—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

"श्री अरविन्द भारत में राजनैतिक जागरण के अगुवाओं में से थे।. जिन सन्तों और ऋषियों को समय-समय पर जन्म देने का सौभाग्य भारत को प्राप्त है, उनमें से एक सन्त उठ गया। उनका दिव्य जीवन दुनियाभर में मनुष्यों के विचारों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।"

—रविशंकर शुक्ल

"दुनिया का एक महानतम व्यक्ति उठ गया। जबतक इस संसार का अस्तित्व है, धार्मिक पथ-प्रदर्शक के रूप में उनकी कृतियाँ अमर रहेंगी।"

—वी० वी० गिरि

"·श्री अरविन्द ने राजनैतिक स्वाधीनता को एक नई दिशा प्रदान की और जब भारत की स्वाधीनता की आशा एकमात्र धुंधली-सी ज्योति थी, तभी उन्होंने देश के लिए अपना सबकुछ त्याग दिया था।. इतनी महान् आत्मा के एकाएक निधन से कुछ खोया-खोया-सा महसूस होता है।'

—कन्हैयालाल मा० मुन्शी

"...श्री अरविन्द ही प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने भारत का भविष्य देख लिया था और उसकी स्वाधीनता के लिए अपने ढंग से काम किया।'

—विधानचन्द्र राय

"..श्री अरविन्द की मृत्यु से मुझे अपार शोक हुआ है। दुनिया इस संकट के समय उनसे आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की आशा कर रही थी।'

- हंसा मेहता

अरविन्द-वाणी

योग

मानसिक प्रकृति और मानसिक विचार सांत की चेतना पर आधारित है, अति मानसिक प्रकृति अपने मूल स्वभाव से ही अनन्त की चेतना एवं शक्ति है। अति मानसिक प्रकृति प्रत्येक वस्तु को एकत्व के आधार से देखती है और सभी चीजों पर, बड़ी-से-बड़ी अनेकता और विषमता पर भी, जो चीजें मन के लिए घोर-से-घोर विरोध रूप हैं उनपर भी, उस एकत्व के प्रकाश से विचार करती है। इसका संकल्प, इसका विचार-भाव, समवेदन, एकत्व के उपादान से निर्मित है। इसके कर्म उस आधार पर प्रकृत होते हैं। इसके विपरीत मानसिक प्रकृति नानात्व या भेद को मूल मान कर चलती और उसीसे विचार-अवलोकन, संकल्प-अनुभव तथा समवेदन करती है और उसका एकता-संबंधी ज्ञान केवल परिकल्पित एवं कृत्रिम है। जब वह एकत्व अनुभव करती है तब भी उसे सीमा तथा भेद के आधार पर स्थिति हो कर एकत्व के भाव से कर्म करना होता है। परन्तु अति मानसिक दिव्य जीवन मूलगत, स्वतः स्फूर्ति एवं स्वभाव-सिद्ध एकता का जीवन है।

इस योग का अर्थ केवल ईश्वर की प्राप्ति नहीं, बल्कि वह आभ्यन्तर और बाह्य जीवन का परिपूर्ण उत्सर्ग और आमूल परिवर्तन है, जिससे उसमें भगवच्चेतन्य व्यक्त हो और वह स्वयं भगवत्कर्म का एक अंग हो।

लक्ष्य

जब हम 'जानने' से पार हो चुकेंगे तब हमें यथार्थ ज्ञान होगा। तर्क सहायक था और तर्क ही बाधक है।

जब हम संकल्प करने से पार हो चुकेंगे तब हमें शक्ति प्राप्त होगी। प्रयत्न सहायक था और प्रयत्न ही बाधक है।

जब हम सुखोपभोग करने से पार हो चुकेंगे तब हमें आनंद प्राप्त होगा। इच्छा सहायक थी और इच्छा ही बाधक है।

जब हम व्यक्ति-भाव से पार हो चुकेंगे तब हम वास्तविक 'पुरुष' होंगे। अहम्भाव सहायक था और अहम्भाव ही बाधक है।

जब हम मनुष्य-पने से पार हो चुकेंगे तब हम वास्तविक 'मनुष्य' बनेंगे। पशुभाव सहायक था और पशुभाव ही बाधक है।

तर्कणा को व्यवस्थित अन्तःस्फुरणा में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में प्रकाश हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

प्रयत्न को आत्म-शक्ति के एकरस और महान् प्रवाह में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में चेतन शक्ति हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

भोग को एक रस और निर्विषय हर्षातिरेक में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में आनन्द हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

विभक्त व्यक्ति को विश्व व्यक्ति में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में दिव्य हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

पशु को गोपाल में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में 'कृष्ण' हो जाओ यह तुम्हारा लक्ष्य है।

मनुष्य अर्थात् पुरुष

परमेश्वर प्रकृति की ओर झुकना नहीं छोड़ सकता है और नाही मनुष्य ईश्वरत्व के प्रति अभीप्सा करने से रुक सकता है। यह तो सान्त और अनन्त का नित्य सम्बन्ध है। जब वे एक-दूसरे से विमुख होते हुए प्रतीत होते हैं तो यह उनका और भी प्रगाढ़ मेल से मिलने के लिए पीछे हटना होता है।...

परमेश्वर और प्रकृति एक बालक और बालिका के समान हैं जो कि एक दूसरे के साथ खेलते हैं और प्रेम करते हैं। दृष्टिगोचर हो जाने पर वे एक-दूसरे से छिपते और भागते हैं ताकि उनको फिर खोजा जाय, पीछा किया और पकड़ा जाय।

मनुष्य वह परमेश्वर है जिसने अपने आपको प्रकृति-शक्ति से छिपाया हुआ है ताकि वह उस शक्ति को संघर्ष द्वारा, आग्रह से, जबर्दस्ती से और आश्चर्यमय

उपलब्धि के रूप में पा सकें, परमेश्वर वह विश्वव्यापी और विश्व से ऊपर उठा हुआ परात्पर मनुष्य है, जिसने अपने आपको मानवीय रूप में विद्यमान अपने ही व्यक्तित्व से छिपाया हुआ है।

पशु मनुष्य है जो कि बालोंवाली खाल के भेष में है और चार टांगों पर खड़ा होता है। कृमि मनुष्य है जो अपनी मनुष्यता के विकास की ओर मुड़ता-तुड़ता रेंग रहा है। यहां तक कि जड़ प्रकृति के अविकसित रूप भी अपने गठन-रहित शरीर में मनुष्य ही हैं। सभी वस्तुएं मनुष्य हैं, पुरुष हैं।

क्योंकि; मनुष्य से हम क्या अभिप्राय लेते हैं? एक अज और अविनाशी आत्मा जो अपने ही तत्वों से बने हुए मन और शरीर में वास कर रहा है।

अन्त

मनुष्य और परमेश्वर के मिलने का मतलब सदा यही हो सकता है कि ईश्वरीय दिव्यता का मनुष्यता के अन्दर संचार व प्रवेश हो जाय तथा मनुष्य ईश्वरीय दिव्यता के अन्दर अपने आप का पूरी तरह निमज्जन कर दे।

किन्तु यह आत्म-निमज्जन आत्म विनाश के रूप का नहीं है। इस सब खोज और आवेश, दुख और उल्लास का परिणाम उच्छेद नहीं है। यदि यही इसका अन्त होना होता तो यह खेल कभी प्रारम्भ ही न हुआ होता।

...और इस सारी बात का अन्त क्या है? मानों मधु अपने आपका और अपने सब बिन्दुओं का इकट्ठा स्वाद ले सके और इसकी सब बूंदें एक दूसरे का स्वाद ले सकें तथा इसकी प्रत्येक बूंद अपने आपके तौर पर सम्पूर्ण मधु-छत्ते का स्वाद ले सके, ऐसे ही परमेश्वर और मानवीय आत्मा और इस विश्व का अन्त होगा।

प्रेम आदि स्वर है, आनन्द संगीत है, शक्ति आलाप है, ज्ञान गायक है, यह अनन्त सर्वात्मा उसका रचयिता और श्रोता है। अभी हम केवल प्रारम्भिक बेसुरे स्वरों को जानते हैं जो उतने ही मधुर हैं, जितनी कि उसकी समस्वरता महान् होगी। लेकिन हम एक दिन अवश्य ही दिव्य कल्पनामय आनन्दों के समूह-संगीत तक पहुंच जायेंगे।

बन्धन

स्वतन्त्रता सत्ता का नियम है, सत्ता के समग्र एकता के स्वरूप में और यह प्रकृति की गुप्त स्वामिनी है। अधीनता, उस सत्ता में विद्यमान प्रेम का नियम है जो सत्ता की अनेकता में स्थित अपनी अन्य आत्माओं के खेल में सेवा करने के लिए अपने आपको स्वेच्छया अर्पित कर देती है।

जब स्वतन्त्रता बन्धनों में काम करती है और अधीनता प्रेम का नहीं, किन्तु शक्ति का नियम बन जाती है तब यह होता है कि वस्तुओं का सत्य स्वभाव विकृत और विरूप हो जाता है और जीवों के साथ आत्मा के व्यवहारों में अनृत का आधिपत्य हो जाता है।

स्वतन्त्रता सीमा-बन्धन-रहित एकता द्वारा आती है, क्योंकि यही हमारा वास्तविक स्वरूप है। इस एकता के सत्य को हम अपने अन्दर प्राप्त कर सकते हैं तथा इसकी लीला को भी अन्य सबके साथ एकत्व स्थापित करके अनुभव कर सकते हैं। यह द्विविध अनुभूति प्राप्त करना ही प्रकृति में आत्मा का समग्र प्रयोजन है।

धर्म

समाज तीन प्रकार की शक्तियों से परिचित है। स्थूल, भौतिक, शक्ति प्रत्यक्ष परिणामों को पैदा करती है। नैतिक और बौद्धिक शक्ति का क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक है और अपने पक्षों की दृष्टि से यह बहुत ही समृद्ध है, *परन्तु आध्यात्मिक शक्ति महान् बीजों का बोना है।*

यदि इस त्रिविध परिवर्तन का व्यापार पूर्ण अनुरूपता में एकीकरण हो सके तो कार्य बिल्कुल निर्दोष रूप में होने लगे। लेकिन मानव-जाति के मन और शरीर अभी हुए आध्यात्मिकता के प्रबल प्रवाह को अपने में पूरी तरह धारण नहीं कर सकते। उसमें बहुत कुछ बिखर जाता है और शेष का बहुत-सा भाग दूषित हो जाता है। महान् आध्यात्मिक बीजों को बोकर एक छोटा-सा फल दिखाने के लिये

भी हमारे क्षेत्र की बहुत-सी बौद्धिक और शारीरिक जुताई की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक धर्म ने मानवजाति को सहायता पहुंचायी है। पैगनिज्म ने मनुष्य के अन्दर सौन्दर्य के प्रकाश को विकसित किया है, उसके जीवन की विशालता और उच्चता को बढ़ाया है और बहुमुखी पूर्णता के उसके उद्देश्य को उन्नत किया है। ईसाइयत ने उसे दिव्य प्रेम और दयालुता व सहृदयता का कुछ दर्शन कराया है। बौद्ध धर्म ने उसे अधिक ज्ञानी, अधिक विनीत और अधिक पवित्र होने का एक उत्कृष्ट मार्ग दिखाया है। यहूदी धर्म और इस्लाम ने इसे धार्मिक भाव से क्रिया में सच्चे होना और ईश्वर के प्रति उत्कट भक्ति वाला होना सिखाया है। हिन्दू धर्म ने उसके आगे बड़ी-से-बड़ी और गहरी आध्यात्मिक संभावनाओं को खोल दिया है। एक बड़ा काम सिद्ध हो जायगा, जब ये सब ईश्वर-दर्शन परस्पर आलिंगन कर लेंगे और अपने आपको एक दूसरे के प्रतिरूप बना लेंगे। पर बौद्धिक सिद्धान्तवादिता अहंकार मार्ग में बाधक है।

सभी धर्मों ने बहुत-सी आत्माओं को बचाया है, पर समग्र मनुष्यजाति को आध्यात्ममय बनाने में अभी तक कोई समर्थ नहीं हो सका है। इसके लिए तो किसी सम्प्रदाय या मत की आवश्यकता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक दिशा में आत्म-विकास प्राप्त करने को एक स्थिर, सतत और सर्वांगणीय प्रयत्न की अपेक्षा है।

आज हमें संसार में जो परिवर्तन दिखायी देते हैं वे अपने आदर्श और उद्देश्य में बौद्धिक, नैतिक और भौतिक हैं। आध्यात्मिक क्रान्ति अपने अवसर की प्रतीक्षा में है और इस बीच में वह केवल कहीं-कहीं अपनी लहरों को उछालती है। जबतक यह नहीं आ जाती, दूसरी क्रान्तियों का मतलब समझ में नहीं आ सकता और तबतक वर्तमान की घटनाओं की सब व्याख्याएं और मनुष्य की भविष्य सम्बन्धी सब कल्पनाएं व्यर्थ हैं; क्योंकि यह उस आध्यात्मिक क्रान्ति का स्वरूप, शक्ति और परिणाम ही है जो हमारी मानवजाति के अग्रिम चक्र को निश्चित करेंगे।

सूर्यास्त !

हरिभाऊ उपाध्याय

श्री अरविन्द इतनी जल्दी देह छोड़ देंगे, इसकी स्वप्न में भी किसीने कल्पना न की होगी। एक ही दिन पहले तो देह की अमरता के विषय में हम अरविन्द-आश्रम के कुछ साधक भाइयों से बातचीत कर रहे थे। श्री अरविन्द ने अपने यौगिक या आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर शरीर के जड़ अणुओं को भी चेतनायुक्त, चेतनामय करने की संभावना बताई है। यह कितनी ही अद्भुत क्यों न हो, समझ में आने जैसी बात है—इसकी हम लोग चर्चा कर रहे थे। श्री अरविन्द ने जो सिद्धि प्राप्त की है, उसकी पहुंच अभी यहांतक नहीं हुई है, शायद वह इस दिशा में प्रयत्नशील हैं—यह बात भी चली थी। मन और प्राण में तो वह अति-मानस को अवतरित कर पाये हैं, जिसके बल पर वह मनुष्यजाति का रूपान्तर करने का मार्ग पा गये हैं; किन्तु शरीर की जड़ इंद्रियों में उनका प्रवेश नहीं कर पाये हैं। कुछ लोगों को यह आशा भी थी कि श्री अरविन्द इसी शरीर में उसे सिद्ध कर सकेंगे; किन्तु परमात्मा की लीला विचित्र है। दूसरे ही दिन सुबह हमें यह स्तम्भित कर देनेवाला संकेत मिला कि आओ, श्री अरविन्द के अन्तिम दर्शन कर लो। मैं समझा, आज शायद किसी कारण से श्री अरविन्द ने पांचवी बार दर्शन देना पसन्द किया हो। (सिद्धि प्राप्त होने के बाद वे वर्ष में कुल चार बार ही साधकों और भक्तों को दर्शन दिया करते थे।) रास्ते में उनके कुछ शिष्य मिले, जिनके चेहरों पर सदैव की भांति मुस्कराहट व शांति छाई हुई थी। किन्तु जब उनके दर्शन की अभिलाषा

और उत्सुकता से उनके कमरे के द्वार तक पहुंचा तो एक लंबी चौकी पर उनके मृत शरीर को चित लेटा हुआ, *उनकी दिव्य और सुनाकृति को परम शान्तिमय,* उनकी आंखों को मुंदा हुआ—मानो गहरी नींद ले रहे हो—देखा और साथ ही शरीर में निश्चलता देखी तो मैं सन्न रह गया। एक बिजली के झटके की तरह दिमाग में अन्तिम दर्शन का अर्थ सटक गया। ईश्वर! यह क्या देख रहा हूं—इतना सोचने का भी सामर्थ्य मन-बुद्धि में न रह गया।

एक यन्त्र की तरह उनको अन्तिम प्रणाम करके कमरे के बाहर निकला तो कुछ क्षण बाद ऐसा मालूम हुआ मानों कोई सपना देख रहे हैं। श्री अम्बालाल पुराणी के कमरे में गया तो वह कुछ मित्रों के साथ इस तरह बातें कर रहे थे, मानो कुछ हुआ ही न हो। मुझसे बहुत हलकर बातें कीं। यह श्री अरविन्द के साथ साधकों में हैं। उन्होंने कहा, श्री अरविन्द का शरीर छूट गया। उनका रहा काम दूसरे शरीरों से होगा। जीवात्मा परमात्मा से दूर हो गया है। इस फासले को मिटाने के लिए जीवात्मा विरोधी तत्त्वों से संघर्ष कर रहा है। *श्री अरविन्द ने बहुत हद तक इसमें* सिद्धि प्राप्त की थी—आगे की मंजिल में उनका शरीर नहीं टिक सका, वह चला गया। इसमें क्या बात है? इस आशय के कुछ वाक्य उन्होंने मुझसे कहे।

इस अत्यन्त शोकपूर्ण अवसर पर आश्रम के साधक भाई-बहनों ने जो अद्भुत शांति, धैर्य, अविचलता दिखाई वह श्री अरविन्द की शिक्षा तथा साधना के सर्वथा योग्य थी। श्री माताजी का आदेश आया कि सबको भोजन कर लेना चाहिए, किसीको भूखा न रहना चाहिए। गोल्कुंडा—अतिथि-गृह की व्यवस्थापिका बहन ने कहा कि सब काम रोज की भांति चलेगा, सो भी सदा की भांति मुस्कान के साथ। इसका हमारे हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। दूसरी साधिका बहन ने बहुत आग्रह किया कि आप लोग कुछ खा लें। खाने पर से चाय रोटी देने लगीं। उन्होंने एक साधारण घटना की तरह इसे लेकर हमारा ढाढ़स बंधाया। इधर दर्शनार्थी एक एक करके उनके कमरे में जाते थे, उधर साधक और [illegible] से उनका समाधि स्थान तैयार करने में लग रहे थे। *[illegible] आश्रम के* [illegible] उन [illegible] साधकों और दर्शकों में से किसी *का एक आंसू नहीं दिखाई पड़ता था। [illegible]* ऐसे समय में दुर्लभ होती है। कुछ बहनें अवश्य कहीं-

---

जीवन-झांकी

श्री अरविन्द का जन्म १५ अगस्त १८७२ को कलकत्ते में हुआ था। उनकी शिक्षा केम्ब्रिज में हुई। भारत लौटने पर वह बड़ौदा कालेज में वाइस प्रिंसिपल नियुक्त होगये। अपने विद्यार्थी-जीवन में भी वह बड़े प्रतिभाशाली थे। अध्यापन-कार्य करते थे, पर उनका हृदय किसी दूसरी चीज की खोज में था। वह राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेने लगे और कुछ ही दिनों में प्रथम श्रेणी के नेता माने जाने लगे। उन्हीं दिनों उन्होंने 'वन्देमातरम्' का प्रकाशन आरम्भ किया। उनकी वाणी तथा लेखनी में बड़ा ओज था। सरकार ने उनपर मुकदमा चलाया। मई १९०८ से अप्रैल १९०९ तक अलीपुर जेल में रहे। यह समय उनके लिए अध्यात्म-*ज्ञान में शिक्षा-दीक्षा का रहा। कहते हैं कि यहीं उन्हें* ईश्वर के दर्शन हुए।

सन् १९१० में श्री अरविन्द पांडीचेरी में आये और तबसे निरंतर योग-साधना में संलग्न रहे। १९१४ में श्री माताजी पांडीचेरी में आईं। तबसे वहीं हैं और आश्रम की व्यवस्था करती हैं।

सन् १९१४ में श्री अरविन्द ने 'आर्य' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया।

२४ नवम्बर, १९२६ को उन्हें योग में सिद्धि प्राप्त हुई। योग तथा मानव-जीवन की अन्य समस्याओं पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'लाइफ डिवाइन' ('दिव्य जीवन') तथा 'एसेज आन गीता' ('गीता पर निबंध') बहुत प्रसिद्ध हैं।

५ दिसम्बर १९५० को रात्रि के डेढ़ बजे देहान्त।

कहीं कोने में चुपचाप आंसू बहा रही थीं या सिसक रही थीं। यह सारी व्यवस्था आन्तरिक यौगिक अनुशासन और आध्यात्मिक बल तथा विकास की ही निर्देशक थी। सारे जगत का शिक्षित समाज जहां इस महान घटना से थर्रा उठा होगा वहां आश्रमवासियों की यह कर्त्तव्य-परायणता या समर्पणभाव अपनी एक अलग ही शान रखता है।

श्री अरविन्द का जीवन एक विकट और महान् साधना का जीवन रहा है। १९०५ ६ के राष्ट्रीय जीवन के मंथन में से एक राष्ट्रीय नेता की जगह आज वह एक महान् आध्यात्मिक सिद्ध के रूप में जगत् को मिले। ऐसे तेजस्वी, प्रभावशाली, क्रियाशील व्यक्ति का लगातार ४० साल तक तमाम जागतिक प्रवृत्तियों से अपने को सर्वथा अलग रखकर, बार-बार के जोरदार आवाहनों के प्रभावों को दूर रखकर, एक स्थान में बल्कि एक मकान में अपने को बन्द कर रखना मामूली साधना नहीं है। फिर वह निष्क्रिय जीवन में विश्वास नहीं रखते थे। अकर्म में कर्म को देखने वाले सिद्ध थे। गांधीजी जागतिक तूफानों में खेलनेवाले आत्मस्थ पुरुष थे तो श्री अरविन्द समस्त जागतिक प्रभावों से अलिप्त रहकर आन्तरिक तूफानों पर विजय प्राप्त करनेवाले सिद्ध पुरुष थे। उच्च और दिव्य जीवन के लिए, जगत में दिव्य जीवन के अवतरण के लिए वह प्रारंभ से ही कृतनिश्चय मालूम होते थे। कवि, विद्वान, विचारक, लेखक, दार्शनिक, साधक, सिद्ध, वह क्या-क्या नहीं थे? भारत की तथा संसार की प्रधान एवं महान् घटनाओं और प्रश्नों के प्रति सजग रहते थे और उनके कई साधकों के मत में संसार की विकट समस्याओं को अपने अध्यात्म-बल से प्रभावित करने में, घटनाओं का रुख मोड़ देने में समर्थ और सफल हुए थे। उन्होंने जो ठाना वह अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया। उन्हें यह विश्वास होगया था कि मानवजीवन का स्तर ऊंचा उठाने के लिए जिस शक्ति या सिद्धि की जरूरत है वह उन्हें प्राप्त होगई है। उसके बल पर अपने इसी सिद्धिदिवस पर बड़े आत्म-विश्वास के साथ उन्होंने संदेश दिया है। अतिमानस एक सत्य है और उसका आगमन स्वभावसिद्ध वस्तु की तरह अपरिहार्य है।

आज भारतवर्ष अपने, कम-से-कम आज तो, अन्तिम महापुरुष को खो बैठा है। आध्यात्मिक जगत का सूर्य अस्ताचल को चला गया। बापू गये—गुरुदेव पहले ही चल बसे थे—रमण महर्षि गये, सारे आध्यात्मिक जगत की आंखें श्री अरविन्द की ओर देखने लगी थीं। वह भी चले गये! इसमें ईश्वर का क्या संकेत है, क्या संदेश है? मेरे साथ भाई बोरकर, (महाराष्ट्र के उच्च कोटि के कवि तथा गोआ के स्वतंत्रतासंग्राम के एक निष्ठावान नेता) सारी दक्षिण यात्रा में रहे। दोनों इस नतीजे पर पहुंचे कि अबतक जगत महापुरुषों के बल-भरोसे चला। अब भगवान की यह इच्छा मालूम होती है कि वह अपने पांवों के बल चले। महापुरुषों ने जो आदर्श सामने रख दिया, अपने जीवन व मरण से जो मार्ग खोल दिया, उससे लाभ उठाकर चलता चला जाय। बोरकरजी ने कवि की भाषा में कहा—ये महापुरुष समुद्र की ऊंची उठी हुई लहर की तरह ऊपर उठकर हमको आगे बढ़ा गये, अब नीचे बिखरकर अपनी शक्ति, स्फूर्ति, जीवन, जनता को देकर उसमें लीन हो गये। उनकी दिव्यता से जनता का धरातल और मानव-जाति का स्तर ऊंचा उठेगा। वैसे भारतवर्ष में एक के बाद एक महापुरुष आये हैं। उनका तांता टूटा नहीं है। एक अपना काम कर जाता है और दूसरा उसके आगे की मंजिल के लिए आजाता है। भगवान के इस अनुग्रह से हम निराश क्यों हों?

बापू के जाने के बाद मेरे मन में यह प्रश्न कई बार उठा है कि बापू तथा अरविन्द के संदेश में क्या सचमुच कोई भेद है? हर बार मुझे यह उत्तर मिला कि मूलतः दोनों का संदेश एक ही है, भगवान की उपलब्धि। बापू ने अपने सामने तो यही लक्ष्य सदैव जीता-जागता रखा; पर जनता के लिए उसकी ओर संकेतमात्र कर दिया करते थे, जब कि श्री अरविन्द ने जितने जोर से उसे अपने लिए पकड़ा उतने ही बल के साथ उसे संसार के सामने भी रक्खा। दोनों के स्वभाव, संस्कार के अनुसार इस एक ही परम सन्देश ने उनके जीवन तथा उपदेश में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण किया। यही स्वाभाविक भी था। उस भिन्नता में से उसमें समाविष्ट एकता को देखने की प्रवृत्ति हमारी होनी चाहिए। मुझे तो यह

स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि गुरुदेव का भी सन्देश कोई अलग नहीं था। बल्कि सारे महापुरुषों का संदेश मूल रूप में एक हो जाता है—यह भी दर्शन मुझ हो रहा है। उनकी योजनाओं और कार्यक्रमों की विविधता या भिन्नताओं की आन्तरिक एकता पर बल देकर हमें सारे मानव-समाज में एकसूत्रता लानी चाहिए।

अब क्या करें ?—यह प्रश्न उठता ही है। इसका उत्तर भी निश्चित ही है। अधिक निष्ठा और बल के साथ सधित कदमों से निश्चित गन्तव्य की ओर बिना रुके चलते चलें। एक नहीं अनेक गुरुदेव, गांधी और अरविन्द के देह पड़ते चले जाय, उनसे विचलित न होते हुए आगे बढ़ते चले जाय। अपना तथा मानव जाति का कल्याण, मंगल, विकास, मोक्ष, पूर्णता सब इसीसे सिद्ध होगा। यदि हमने अपने किसी भी गुरु, नेता, पथदर्शक का सन्देश जरा भी ग्रहण किया है तो उनका वरदहस्त उसी तरह हमारे मस्तक पर रखा हुआ हमको मिलेगा, जिस तरह कि जीवित अवस्था में हम देखते थे, सो भी अधिक प्रभाव के साथ।

जिसने मानवजाति को दिव्य बनाने का, वर्तमान निम्न स्तर से उद्धार करके उच्च स्तर पर लाने का बेड़ा उठाया, जिसने निरन्तर चालीस वर्ष की एकान्त साधना के द्वारा उसीके लिए काम किया, उसकी आत्मा की शान्ति या सद्गति के लिए प्रार्थना करनेवाले हम कौन ? और जिन साधकों की अपूर्व शान्ति का हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया, उन्हें सान्त्वना देने का भी हमें क्या अधिकार है ? जबतक माताजी का देह है तबतक अरविन्द आश्रम के साधक तो उनकी गोद में निश्चिन्त है, और माताजी पर तो सारे आश्रम का बोझ छोड़कर स्वयं श्री अरविन्द निश्चिन्त थे तो अब हम भी माताजी के बारे में विचार करनेवाले कौन ? हमें तो महाभारत का एक श्लोक संकट के समय में सदैव बल देता रहता है, वही इस समय याद आरहा है :

> सुखं वा यदि वा दुःखं
> प्रियं वा यदि वाऽप्रियम् ।
> प्राप्तमप्राप्तमुपासीत
> हृदयेनापराजितः ॥

इन तमाम विभूतियों में से भगवान का एक ही रूप हमें दिखे, उसीके लिए हमारा जीवन, हमारा मरण, सब कुछ है। इनकी तमाम प्रवृत्तियों और कृतियों से हमें एक ही सन्देश मिले—"अरपन 'मैं-मेरा' नाथ ! जो साथ मेरे।"

श्री अरविन्द का महाप्रयाण

डा० इन्द्रसेन

साधक के लिए गुरुदेव उसके सर्वस्व होते हैं, भगवान् के साक्षात् प्रतिनिधि तथा स्थानापन्न होते हैं। उन्हींकी शिक्षा-दीक्षा और सहायता-कृपा से वह अपने बन्धनों से मुक्त होता है तथा आत्म-लाभ करता है। उनसे वह ऐसा प्रेम अनुभव करता है जो वह संसार भर में किसी अन्य से नहीं करता। स्वभावतः साधक के लिए साधकावस्था में गुरु का विछोह दूभर हो जायगा।

श्रीअरविन्द के शरीर छोड़ देने का प्रथम समाचार साधकों तथा साधारण जनता के लिए समान रूप में भारी धक्का था। यह बात किसी की कल्पना में भी न थी। अतः इसे सुनकर प्रथम तो विश्वास ही नहीं हुआ। जबतक भावों का क्षोभ जरा शान्त नहीं हो गया तबतक वे इसे स्पष्ट रूप में स्वीकार करने में भी समर्थ नहीं हो पाये। जब लाचार होकर सत्य मानना पड़ा तब हृदय और बुद्धि प्रश्नपूर्वक पूछने लगे कि आखिर यह हुआ क्यों और कैसे ?

जनता ने सामान्य रूप में देश और धर्म के एक महान् नेता तथा ऋषि और योगी के देहावसान पर दुःख अनुभव किया तथा उनके जीवन व कार्य का स्मरण करके अपना और देश का गौरव माना। वास्तव ही श्रीअरविन्द की देन अत्यन्त महान् है। उनका भारत संसार के इतिहास में महान् आदर्श, नेता, दर्शन, तपस्या, शिक्षा तथा आदर्श एक सिद्ध और

प्रभाव के कारण विशेष उच्च स्थान रखता है। उनके ग्रंथ भी सामान्य बौद्धिक रचना नहीं हैं। वे सब आध्यात्मिक अनुभव की उपज हैं और उन्होंने अपूर्व रूप में भारतीय संस्कृति को हमारे लिए पुनरुज्जीवित कर दिया है। आज के समय में उनके व्यक्तित्व तथा ग्रंथों से देश और संसार में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा प्रसारित हुई है वह भारत तथा संसार के लिए विशेष महत्व की वस्तु है। जनता ने श्री अरविन्द के इस सब विस्तृत कार्य तथा प्रभाव का चिन्तन कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और दिवंगत आत्मा के लिए मंगलकामना की है।

परन्तु साधकवर्ग तथा वे जो श्री अरविन्द के विशेष आध्यात्मिक ध्येय तथा कार्य से परिचित हैं श्री अरविन्द के देहावसान में एक विकट समस्या अनुभव करते हैं। वे महसूस करते हैं कि श्री अरविन्द अपनी मुक्ति-मात्र के लिए साधना नहीं कर रहे थे। अपने साधकों की मुक्ति भी उनका लक्ष्य नहीं था। उन्होंने तो स्पष्ट रूप में अनुभव किया था कि मन से उच्चतर एक अतिमानस तत्व है जो पृथ्वी स्तर पर अनिवार्य रूप में प्रकट होना है। वे बतलाते हैं कि जड़, प्राण और मन के विकास-क्रम की स्वाभाविक परिपूर्ति अतिमानस में होगी। मन अत्यन्त अपूर्ण वस्तु है। यह मानव की सामान्य चेतना का अन्तिम रूप नहीं हो सकता। पशु की चेतना से वर्तमान मानव-चेतना विशालतर है; परन्तु यह भी वस्तुओं के बाह्य रूपों को ही ग्रहण करने में समर्थ होती है। सत्य को साक्षात् रूप में अनुभव करनेवाली पूर्णतर चेतना मानव का स्वाभाविक ध्येय और लक्ष्य है और यह पृथ्वी स्तर पर मानव-चेतना में एक दिन चरितार्थ होनी चाहिए। श्री अरविन्द यह भी बतलाते थे कि यह चेतना योग की प्रगाढ़ एकाग्रता द्वारा शीघ्रतर भी सिद्ध की जा सकती है। यही वास्तव में उनका ध्येय था। इस ध्येय को वे अपने जीवन-काल में ही पूर्ण करने की आशा रखते थे। इस संबंध में उन्होंने दो-एक अपने पत्रों में काफी स्पष्ट रूप में कहा है कि यह कार्य अभी पूरा होना है।

इस प्रकार के कुछेक प्रकरणों के आधार पर श्री अरविन्द के आध्यात्मिक अनुयायियों ने यह आशा बना ली थी कि जबतक उनका काम पूरा नहीं होता तबतक श्री अरविन्द निश्चित रूप से उनके बीच उपस्थित रहेंगे। इसके अतिरिक्त अतिमानस की शक्ति से वैसे भी व्यक्ति को 'यथाइच्छा जीवन-काल' प्राप्त हो जाता है। अतः इन अनुयायियों ने श्री अरविन्द के देहावसान पर विशेष धक्का अनुभव किया। वे गम्भीर रूप में सोचने लगे कि यह क्यों हुआ, और कैसे हुआ?

श्री अरविन्द ने अतिमानस, इसके अवतरण तथा अवतरण के मार्ग की कठिनाइयों तथा विघ्न-बाधाओं की निष्पक्षभाव में वैज्ञानिक शैली से व्याख्या की है। अतिमानस की सत्ता तथा इसके अवतरण की अवश्यम्भाविता के बारे में उन्होंने पूर्ण निश्चय से लिखा है। परन्तु अवतरण के लिए कभी तारीख नहीं बांधी थी; क्योंकि उसके लिए अनेक अवस्थाओं की अनुकूलता चाहिए।

अतिमानस के संबंध में वे कहते हैं, "मैं इसे (अतिमानस को) ऊपर से अपनी चेतना पर प्रकाशित होते लगातार अनुभव करता हूं और मैं यही यत्न कर रहा हूं कि उपयुक्त अवस्थाएं पैदा की जायं जिससे पूर्ण व्यक्तित्व को अपनी स्वाभाविक शक्ति के प्रभाव में ले लें।"[1] यही उनका परम करणीय कर्म बन गया था। अतिमानस को मानव के मन, प्राण और शरीर में अवतरित करना, इस अवतरण द्वारा उन्हें रूपांतरित करना ही उनके आध्यात्मिक कार्य का लक्ष्य था। आरोहण द्वारा भगवान् तथा आत्मा की प्राप्ति खूब ऊंचे आध्यात्मिक लक्ष्य हैं, परन्तु उनका कहना था कि इससे मानव को अपने संपूर्ण जीवन में भगवान् का स्पर्श प्राप्त नहीं होता। जबतक व्यक्तित्व के सभी अंगों का दिव्यीकरण न किया जाय, निम्न प्रकृति उच्च प्रकृति में परिवर्तित न हो जाय, तबतक मानव का भगवान् के साथ पूर्ण मिलन, जैसा समाधि तथा चिन्तन में वैसा ही कर्म तथा व्यवहार में सिद्ध नहीं होता। यह सिद्धि तभी हो सकती है जबकि अतिमानस तत्व की शक्ति को हम अपने शरीर के भौतिक तत्व तक में उतार लायं और फिर उसीसे अपने विचार-

---

[1] लैटर्स आव श्री अरविन्द, २, पृष्ठ ७३,

विचार में तथा क्रिया-कलाप में अनुप्राणित हों।

इस अवतरण की प्रक्रिया के बारे में श्री अरविन्द ने खूब विस्तार से लिखा है। एक जगह वे बतलाते हैं, "यह अवतरण अपने आपमें कुछ उच्छृंखल तथा मोजज़े की चीज़ नहीं। यह एक गतिशील, कुछेक वर्षों में सीमित, विकास प्रक्रिया है जो वर्तमान प्रकृति को अपने प्रकाश में ग्रहण करके इसके निम्न स्तरों में अपने सत्य को उड़ेल देती है। यह कार्य सारे जगत् पर एकदम नहीं किया जा सकता, बल्कि अन्य ऐसे क्रमों की तरह यह पहले कुछ चुने हुए आधारों में करना होता है और फिर उसे विस्तृत किया जाता है। हमें (श्री अरविन्द और माताजी) पहले यह कार्य अपने ऊपर करना है और फिर पार्थिवचेतना के प्रतिनिधि रूप उन साधकों पर जो हमारे पास एकत्र हैं।' (वही, पृष्ठ ८३)

श्री अरविन्द इस कार्य की कठिनाइयों तथा अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं का बार-बार उल्लेख देते रहे हैं। शरीर के भौतिक भाग में प्रकाश पहुंचाना वे हमेशा विशेष कठिन बतलाते थे। एक जगह उन्होंने कहा है, "अचेतन में प्रकाश पहुंचाना महा कठिन काम है।" परन्तु यह काम किये बिना प्रकृति का रूपान्तर संभव नहीं। वास्तव में मन और प्राण के क्षेत्र पार होकर उनकी साधना अर्से से जड़ भौतिक तत्त्व से संघर्ष ले रही थी। यह एक अत्यन्त मार्मिक स्थिति थी और इसे *अधिकृत* करने में ही श्री अरविन्द ने अपने जीवन की बलि दी है।

श्री अरविन्द के जीवन की मार्मिक गति उनका आध्यात्मिक अथवा गुह्यवाद था। वे घटनाओं के धोखे में नहीं आते थे। वे जानते थे कि जगत् की सब घटनाओं के कारण सूक्ष्म चेतन जगत् की गतिविधि-प्रगतियां होती हैं। वे फिर सीधे उन्हीं पर क्रिया किया करते थे। अपने जीवन-काल में उनका प्रधान कार्य, विशेषकर जबसे उन्होंने अपना आध्यात्मिक कार्य शुरू किया, ऐसा गुप्त और गुह्य ही रहा है। वास्तव में जैसे उनका जीवन का मर्म गुप्त और गूढ़ था वैसे ही उनके महाप्रयाण का मर्म भी गुप्त और गुह्य है। बीमारी तो स्वयं गुह्य आध्यात्मिक संघर्ष का एक परिणाम है, वह उनके महाप्रयाण का कारण नहीं।

उनका महाप्रयाण अवश्य ही अचेतन में अतिमानसिक प्रकाश के अवतरण-संबंधी एक अनिवार्य घटना थी, यह मानव-रूपान्तर के महान् आदर्श के लिए बलि थी तथा अतिमानस के दिव्य लक्ष्य के लिए बलिदान था। इसके अतिरिक्त उनके प्रयाण का दूसरा अर्थ *हो नहीं सकता*। उनका सारा जीवन ही गम्भीर आध्यात्मिक यज्ञ तथा आत्म-निवेदन था, महाप्रयाण का महाकर्म केवल परम आत्म निवेदन ही हो सकता है।

परन्तु क्या इस आत्म-निवेदन से अतिमानस के अवतरण का कार्य रुक जायगा या धीमा पड़ जायगा? यदि मृत्यु सामान्यतया भी जीवन का अन्त नहीं होती, बल्कि नये और अधिक विकसित जीवन का साधन होती है तो श्री अरविन्द जैसे आत्मवेत्ता के लिए तो यह किसी तरह भी बाधा या रुकावट नहीं बन सकती, *बल्कि शरीर पर अतिमानस के एक प्रयोग से जो अनु*भव प्राप्त हुआ वह भावी कार्य के लिए ज़रूर ही सहायक होगा, और क्या पता कि यह अनुभव भावी कार्य के लिए शायद अनिवार्य हो गया था।

यह हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यदि श्री अरविन्द अब भी वही अरविन्द हैं जो वे जीवन-भर रहे हैं और यह आत्मा के अमरत्व से होना अनिवार्य है तो वे अपने ध्येय की परिसमाप्ति के लिए अब भी ज़रूर यत्नशील हैं, और उनके यत्न के लिए उपयुक्त क्षेत्र भी उनका अपना आश्रम ही हो सकता है, जहां उन्होंने इतने लम्बे अर्से तक आधारों पर परिश्रम किया है। ऐसा होना इस कारण और भी ज़रूरी है, क्योंकि श्री माताजी, जिन्होंने जीवन-भर उनके साथ उसी ध्येय के लिए काम किया है उसका अब भी पथ-प्रदर्शन कर रही हैं तथा श्री अरविन्द के अतिरिक्त वे दूसरा आधार हैं, जिसमें अतिमानस का अवतरण प्रथम रूप में संभव माना गया था। अवश्य ही श्री अरविन्द आत्मा-रूप में अपने आश्रम में अब भी विराजमान हैं।

अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उनके साथ सजग आन्तरिक संबंध जोड़ें, उनसे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करें और उस पथ प्रदर्शन का दृढ़ता और तत्परता के साथ अनुसरण करें, जबतक वह महान् दिव्य लक्ष्य, वह अतिमानस, मानव-चेतना में प्रतिष्ठित न हो जाय।

ठक्करबापा को श्रद्धांजलि

"ठक्करबापा असाधारण कार्यकर्ता हैं। वे निरहंकारी और नम्र हैं। वे प्रशंसा के भूखे नहीं हैं। उनका काम ही उनका एकमात्र सन्तोष और मनोरंजन है। बुढ़ापे के कारण उनके उत्साह और जोश में कोई कमी नहीं आई है। वे खुद ही एक संस्था हैं। वे अपने जीवन के मिशन में जो शक्ति लगाते हैं उसे देख कर उनके आस-पास के नौजवान भी शरमा जाते हैं।"

—मो. क. गांधी

"ठक्करबापा के निधन से भारत ने अपना एक और अनुरक्त सपूत और सेवक खो दिया, जिसकी स्थान-पूर्ति संभव नहीं। उन्होंने गरीबों की सेवा के लिए, चाहे वे मजदूरों में हों, चाहे हरिजनों या आदिमजातियों में, अपना जीवन अर्पित कर दिया था। अतः भारत के दरिद्रनारायण ने उनके देहावसान से अपना सच्चा बापा खो दिया।...अपने पीछे वह एक अनुकरणीय और स्पृहणीय आदर्श छोड़ गये हैं।"

—राजेन्द्रप्रसाद

"ठक्करबापा के लिए, जात-पांत और प्रान्त-प्रान्त का कोई भेद नहीं था। सारे हिन्दुस्तान में जहां कहीं दुःख हुआ, जहां कहीं आफत आई, वहीं वे पहुंच गये। इसलिए उनका जीवन हिन्दुस्तान के नौजवानों के लिए एक नमूना है।

"...ठक्कर बापा जबसे काम में पड़े, न कभी आराम किया और न चैन लिया।

"ठक्करबापा के जीवन का मिशन अस्पृश्यों और दलितों की सेवा करना रहा है।...'स्व' से अधिक उन्होंने हमेशा सेवा को महत्व दिया है।

"उन्हें अपनी पीढ़ी का महापुरुष मानने में हमें सदा गौरव का अनुभव होगा और अगली पीढ़ी उनके उदाहरण से सदैव प्रेरणा और मार्ग-दर्शन प्राप्त करेगी।"

—वल्लभभाई पटेल

"भारत की दलित जातियों में नवजीवन के ठक्करबापा एक प्रमुख निर्माता थे। उन जैसे संत का मुकाबला कर सके, ऐसा आज कोई भी तो नहीं बचा है।"

—च. राजगोपालाचार्य

"ठक्करबापा के देहावसान से मानवता का एक मूक निस्स्वार्थ सेवक, हरिजनों का मुखिया और आदिवासियों का रक्षक चला गया।"

—जगजीवन राम

"पूज्य ठक्करबापा के देहावसान से गोखले और गांधी की श्रृंखला की एक और बल्कि अंतिम कड़ी टूट गई।"

—वियोगीहरि

"वे स्वयं प्रकाशमान् हैं और उन्होंने अनेकों को सेवा और त्याग का प्रकाश दिखाया है।" —महादेवभाई

ठक्करबापा की जीवन-झांकी

२९ नवम्बर सन् १८६९ को भावनगर के एक लोहाणा परिवार में जन्म, १८८६ में मैट्रिक पास किया। १८८७ में पूना-इंजीनियरिंग कालेज में भरती, १८९० में एल० सी० आई० परीक्षा में उत्तीर्ण। १८९१ से ९९ तक जी० आई० पी० रेलवे (काठियावाड़), वढ़वान और पोरबंदर में नौकरी। १८९९ से १९०२ तक पूर्वी अफ्रीका, में युगाण्डा रेलवे में और १९०४-५ सांगली राज्य में इंजीनियर के रूप में कार्य। १९०५ में बम्बई म्युनिसपैलिटी के रोड इंजीनियर नियुक्त हुए। १९०६ में पत्नी का देहान्त, १९०८ में दूसरा विवाह। १९०९ से १९१३ तक विभिन्न समाज-सेवी संस्थाओं के संचालकों से संपर्क और दीन-दलितों की सेवा की प्रेरणा। १९१० में दूसरी पत्नी का भी देहान्त। १९१३ में पिताजी का स्वर्गवास। १९१४ में सर्वेन्ट्स ऑव इंडिया सोसायटी के आजीवन सदस्य बने।

१९१४ से अन्त समय तक दीन-दलितों की अनथक सेवा।

१९ जनवरी १९५१ की रात को ८–२० पर देहान्त।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन कोटा-अधिवेशन

विशेष प्रतिनिधि

गत दिसम्बर में २६ से २९ ता० तक कोटा में एक मेला हुआ। वह मेला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक उत्सव के रूप में हुआ था। ४० वर्षों से वह भारत के किसी-न-किसी कोने में प्रतिवर्ष होता है। उसका महत्व है। सम्मेलन एक शक्तिशाली संस्था के रूप में देश के सामने रहा है। वह देश की भाषा का प्रहरी बन कर आया। भाषा के रूप में वह देश की वाणी बना। उसे देश के अनेक महाप्राण महात्माओं, महापुरुषों, विद्वानों, साधकों और कर्मयोगियों का सहयोग मिला। बावजूद अनेक असंगतियों के उसे सफलता भी मिली—वह सफलता जिस पर कोई भी संस्था गर्व कर सकती है। यद्यपि उसने साहित्य का कोई विशेष हित-साधन नहीं किया, पर यह मानना पड़ेगा कि उसने साहित्य के शरीर अर्थात् भाषा की रक्षा करने का अनथक प्रयत्न किया। उसके कर्णधारों में जहां सरस्वती के मूक साधक थे वहां देश की नैया के खिवैया भी थे। उन सबके नाम विश्व-विश्रुत हैं। उनका तप फला-फूला, राष्ट्र को राष्ट्रवाणी मिली। अपने इतिहास में सम्भवतः पहली बार समूचे भारत को, राजनीति के क्षेत्र में ही सही, एक भाषा-भाषी होने का गौरव मिला। आनेवाले युग के इतिहासकार इस गौरव को अभूतपूर्व कहेंगे, उन्हें कहना पड़ेगा।

जिस सम्मेलन को इतनी सफलता मिली उसकी शक्ति की थाह कौन ले सकता है? कोटा-सम्मेलन में बहुत से लोग उसी शक्ति के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने पहुंचे थे। पर उनके अचरज का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि सम्मेलन की शक्ति आक्रोश और घृणा की शक्ति है। आक्रोश और घृणा कायर के अस्त्र होते हैं। सम्मेलन अबतक विद्रोह में से शक्ति पाता रहा था, पर विद्रोह का कारण जैसे ही समाप्त हुआ वैसे ही उसकी शक्ति भी खोखली हो गई। रचनात्मक कार्य के लिए जिस शक्ति और साधना की पूंजी की आवश्यकता होती है वह उसे नहीं मिली, मिल भी नहीं सकती थी। उसके लिए नए प्रकार के साधकों की आवश्यकता होती है। वे साधक उसके प्रांगण से दूर हैं और जो इनेगिने उसके पास थे भी उन्हें हमने इस बार वहां बहुत ही उदासीन और चिन्तित पाया। वे जैसे वहां थे ही नहीं, जैसे हाजिरी देने को गए और लौट आए। सचमुच इस अधिवेशन में उनके दिल को ठेस लगी होगी। प्रत्येक समझदार व्यक्ति के हृदय को ठेस लगनी चाहिए।

हमें सम्मेलन की आन्तरिक राजनीति से यहां कोई सम्बन्ध नहीं है।। हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे, पर जिस रीति से इस अधिवेशन में कार्य-संचालन हुआ वह सरस्वती के वरद पुत्रों को लजाने वाली तो थी ही, राजनीति के खिलाड़ियों के लिए भी शोभनीय नहीं थी। जहां तक स्वागत-समिति का सम्बन्ध है वहां तक सब ठीक ही था। त्रुटियां थीं और कहां नहीं होतीं; पर जिस रीति से, जिस स्नेहमयी सद्भावना से उन लोगों ने कार्य किया उससे सम्मेलन के कर्णधार बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनके नाम गिनाना मात्र शिष्टाचार की बात है; पर उनके नेता श्री बुद्धसिंह बापना ने जिस स्नेह और सौहार्द का परिचय दिया वह बहुतों को बहुत दिनों तक याद रहेगा। कुछ लोग ऐसे मेलों में पुरानी मित्रता दृढ़ करने तथा नई मित्रता स्थापित करने जाया करते हैं। उनकी दृष्टि से भी यह अधिवेशन बुरा नहीं था। स्थानीय साहित्यिकों का एक दल वहां निरन्तर उपस्थित रहता था। उनमें सर्वश्री रामचरण महेन्द्र, राजेन्द्र सक्सेना, जगदीश 'पलायनवादी' आदि कुछ भाई अब मात्र स्थानीय ही नहीं रहे हैं। आगत महानुभावों में सर्वश्री रामवृक्ष बेनीपुरी, आरसीप्रसाद सिंह, महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह, वियोगीहरि, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रभाकर माचवे, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, चन्द्रबली पाण्डे, बेढब बनारसी, विष्णु प्रभाकर, डा० सुधीन्द्र, कुमारी कंचनलता सब्बरवाल, राधादेवी गोयनका, गोपालप्रसाद व्यास, प्रो० अयोध्याप्रसाद, रामनाथ सुमन, प्रभुदयाल मित्तल आदि का एक स्थान पर इकट्ठा होना किसी भी

अधिवेशन की सफलता का प्रमाण हो सकता है। कुछ नाम स्मृति से उतर गए हैं पर एक नाम है, जिसको इस सूची में जानबूझ कर नहीं दिया गया है। वैसे तो नेताओं में भी वहां अनेक व्यक्ति थे। कांग्रेस के प्रधान टंडनजी, केन्द्रीय सरकार के राज्य-मंत्री दिवाकरजी, राजस्थान के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री हीरालाल शास्त्री, कोटा-नरेश, समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायण, सेठ गोविन्ददास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं; पर जिस नाम की हम चर्चा कर रहे हैं वह है इस अधिवेशन के सभापति श्री जयचन्द्र विद्यालंकार का। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार हैं। जबतक हम उनसे नहीं मिले थे, केवल उनकी पुस्तकों द्वारा उनसे परिचय प्राप्त किया था, तबतक हमारे मन में उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी; पर प्रथम बार उनसे मिलने पर वह श्रद्धा हिली और इन ४-५ दिनों में तो हमें ऐसा लगा जैसे हमारे सामने भारत का एक मनस्वी इतिहासकार नहीं है, बल्कि क्रोध और आक्रोश की साकार प्रतिमा उपस्थित है। अपने भाषण में, सार्वजनिक अथवा गोष्ठी सभा की वार्ता में कहीं भी वे अपने आक्रोश के प्रवाह को नहीं रोक सके।

यह एक दुःखान्त घटना थी। हमारे व्यक्तिगत विचारों का कोई मूल्य नहीं है, पर चूंकि जो स्मरण रहे वही संस्मरण हैं, इसलिए हम अपने मनोभावों को व्यक्त करने पर विवश हैं। उनके सिद्धान्तों को लेकर हम विवाद नहीं करेंगे। उन्होंने सरकार पर जो आक्षेप किए उनके विषय में भी कुछ नहीं कहना है। सरकार गलती करती है तो उसकी आलोचना होनी ही चाहिए। गांधीजी अब नहीं हैं, पर इसका आशय यह नहीं है कि अब उनसे मतभेद नहीं हो सकता। जनतंत्र के युग में मतभेद को प्रकट करना जन्मजात अधिकार है, पर दुःख यही है जिस मात्रा में और जिस रीति से यह सब हुआ वह किसी भी उत्तरदायित्व को अनुभव करने वाले व्यक्ति या संस्था के लिए किसी भी तरह शोभनीय नहीं है। गांधीजी तो अब आराम में हैं, सरदार सत्तारूढ़ हैं; पर जिस भरपूर समारोह से उन्होंने सम्मेलन का भार सम्भाला, उन्हीं के साथ जयचन्द्रजी जिस प्रकार पेश आए, उससे प्रायः सभी व्यक्तियों को दुःख हुआ। परीक्षाबोर्ड को लेकर सबसे अधिक विवाद हुआ। हैदराबाद-अधिवेशन में काफी संघर्ष के बाद सम्मेलन ने परीक्षाबोर्ड का निर्माण किया था। कहते हैं, इसके निर्माण में किन्हीं लोगों का स्वार्थ था। इसकी सत्यता या असत्यता को प्रमाणित करने के लिए हमारे पास न तो साधन हैं और न स्थान; पर हम इतना जरूर जानते हैं कि बोर्ड के पदाधिकारियों में सर्वश्री टंडनजी, श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा चन्द्रबली पांडे आदि महानुभाव थे। कहते हैं, बोर्ड ने अपना काम बड़ी तत्परता और निष्ठा से किया उसमें कार्य संचालन में गलतियां भी हुईं, पर ९-१० मास के अल्पकाल में परीक्षा-बोर्ड जैसी संस्था के कार्य पर राय नहीं बनाई जा सकती, पर हैदराबाद का पराजित दल तो बोर्ड को भंग करने पर तुला हुआ था। उसके अभियोगों में एक प्रमुख अभियोग यह था कि बोर्ड के सदस्य अपनी लिखी या प्रकाशित पुस्तकें परीक्षाओं में लगवा रहे हैं। इस दल की ओर से भी सम्मेलन के कई अधिकारियों पर यही अभियोग लगाया गया था। यह बड़ी मजेदार पर लज्जाजनक स्थिति थी। हमें इससे कोई सम्बन्ध नहीं है; पर पत्रकारों की गैलरी में सभापति के ठीक सामने बैठकर जब हमने उन्हें कार्य-संचालन करते देखा तो हम चकित रह गए। सभापति एक पक्ष के लोगों को बोलने का ठीक समय नहीं देते थे, पर दूसरे पक्ष के लोगों के समय घड़ी देखना भूल जाते थे। यहीं तक नहीं, उन्हें नये-नये प्वाइन्ट बताते थे। यह उनका नग्न पक्षपात था। एक उदाहरण दूं। इस विजित पक्ष का साथ देने वाले कुशल वक्ता पं० मौलिचन्द्र शर्मा बोल रहे थे। तीन मिनट का समय था। पूरा हो जाने पर किसी व्यक्ति ने सभापति का ध्यान आकर्षित किया, पर सभापतिजी ने उस व्यक्ति को उपेक्षा से तिरस्कृत किया और शर्माजी को बोलने का पूरा-पूरा समय दिया। जब शर्माजी बैठ गए, तब किसी तरह मुस्कराकर उन्होंने कहा कि शर्माजी इतने सुन्दर ढंग से बोल रहे थे कि मैं घड़ी देखना ही भूल गया। ऐसे एक से अधिक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने अन्तिम भाषण में १॥ घंटे से अधिक तक सरकार को कोसते रहे, पर विरोधी दल के नेता

तथा अपने पूर्व सभापति श्री चन्द्रवली पाण्डे को कुछ मिनट नहीं दे सके। उनके इस रुख को देख कर विरोधी दल 'वाक आउट' कर गया और तब जो वे चाहते थे वह सर्वसम्मति से पास हो गया। बोर्ड को तोड़नेवाले दल ने किस प्रकार मत संग्रह किया, इसके बारे में अनेक कथाएं सुनने को मिलीं। वे लोग कुछ मित्रों को बरबस उनकी फीस व मार्ग-व्यय अपने पास से देकर ले गए। स्वयं एक प्रतिष्ठित साहित्यिक ने यह बात हमें बताई थी। यह भी सुनने में आया कि एक सज्जन को विरोधी दल ने झूठा तार देकर घर लौटने को बाध्य किया। ऐसे ही अनेक अनुचित कार्य वहां देखने और सुनने में आए। इस स्थिति से व्यथित होकर अहिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने जिस करुण भाषा में अपना विरोध प्रकट किया और कहा कि "आप तो लड़ते हैं; पर हानि हमारी होती है, राष्ट्र-भारती के पुजारी हम क्या करें।"—वह प्रत्येक समझदार व्यक्ति को रुला देने वाली थी। तब ऐसा लगता था कि वे लोग सम्मेलन की मृत्यु पर फातिहा पढ़ रहे हैं। सचमुच वह सम्मेलन का अंत्येष्ठि-संस्कार था।

स्वयं बोर्ड भंग करने के पक्षपातियों ने सभापति के उपेक्षा तथा पक्षपात-पूर्ण व्यवहार को अनुचित कहा है। उनके एक मित्र ने, जो स्वयं प्रसिद्ध लेखक और सम्मेलन के एक कर्णधार हैं, उनके आक्रोश और क्रोध से दुखी होकर हमसे कहा—भला सम्मेलन के मंच से इन बातों के कहने का क्या लाभ ? हमारे एक पत्रकार मित्र ने, जो वैसे एक प्रसिद्ध लेखक हैं, सारी स्थिति को समझकर एक बड़ा सारगर्भित वाक्य कहा था—"इस आदमी (श्री जयचन्द्र विद्यालंकार) ने पच्चीस वर्ष की कमाई तीन दिन में खो दी।" इस एक वाक्य में कोटा-अधिवेशन की कहानी आ जाती है। एक बन्धु कहते सुने गए कि उनको सभापति बनाना सफल हुआ और कम-से-कम निर्वाचन में प्रमुख योग देने वाली पार्टी के लिए तो जयचन्द्र नहीं बने, इतनी नैतिकता का परिचय उन्होंने अवश्य दिया। इन शब्दों का अर्थ सभी समझ सकते हैं।

परिषदों की कहानी में कोई विशेषता नहीं है। वह एक तमाशा है, जो प्रतिवर्ष होता है। दो घंटे का समय, कुछ सम्बन्धित व्यक्तियों की उपस्थिति, स्वागत मंत्री तथा सभापति का छपा हुआ भाषण, एक-दो वक्ताओं का लेख पढ़ने या भाषण देने का प्रयत्न, कभी-कभी संघर्ष फिर धन्यवाद और उसके पश्चात् समाप्ति। विज्ञान और दर्शन परिषद् में तो लोगों ने आने का भी कष्ट नहीं किया था। दर्शन परिषद् सम्मेलन के समाप्त हो जाने पर अगले दिन हुई थी। हां, शेष तीन परिषदों में कुछ जान दिखाई दी। राष्ट्रभाषा परिषद् के सभापति भारत सरकार के राज्यमंत्री श्री दिवाकर थे। इस कारण उपस्थिति संतोषजनक थी। उनका भाषण व्यवहार-कुशलता का प्रमाण था। जो लिखा था उससे बाहर भी वे बोले और सुन्दर बोले। तथ्य की बातें कहीं; लेकिन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। हां, स्वागतमंत्री का भाषण भी प्यारा और सुन्दर था। साहित्य-परिषद् के सभापति श्री वेढवजी ने दो नई विचार धाराओं को समझने का और सन्तुलन रखने का प्रयत्न किया। स्थान उनका भारतीय आदर्शवाद की ओर था। सब मिलाकर उनका प्रभाव संतोषप्रद था। समाज-शास्त्र परिषद् के सभापति श्री जयप्रकाशनारायण थे। उन्हें अगर परिषदों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता तो वे कभी भी इस पद को स्वीकार न करते। उनका भाषण भी लिखित था, पर वे बोले मौखिक ही और सुन्दर बोले। यद्यपि वे अब थक गए हैं तो भी उनकी बात जनता ने शांति से सुनी। उन्होंने समाजशास्त्र को समझाने और उस पर साहित्य निर्माण करने के लिए कुछ ठोस सुझाव रखे। स्वागतमंत्री का भाषण लम्बा और विद्वत्ता-पूर्ण था। मौलिचन्द्रजी तो कहीं भी और किसी भी विषय पर बोल सकते हैं। वे तीनों परिषदों में बोले।

कोटा में पत्रकार सम्मेलन भी हुआ, परन्तु पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के न आ सकने के कारण वह बिना दूल्हे की बारात जैसा रह गया। एक दिन रात को सम्मेलन के बाद १२-१ बजे तक कुछ पत्रकारों ने उस रस्म को पूरा किया। पत्रकारों में दिल्ली के सर्वश्री मुकुटबिहारी वर्मा, रामगोपाल विद्यालंकार, कृष्णचंद्र विद्यालंकार, माधवजी, अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, शम्भूनाथ तिवारी, गोपालप्रसाद व्यास, कानपुर के श्री

जयदेव गुप्त और त्रिवेदीजी, मेरठ के श्री विश्वम्भरसहाय प्रेमी, श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट तथा अन्य अनेक बन्धु थे। सबने अ. भा. हिन्दी पत्रकार सम्मेलन को पुनर्जीवित करने का निर्णय किया और उसके लिए एक समिति बना दी।

स्वागत समिति की ओर से आगत अभ्यागतों के मनोरंजन के लिए लोक गीतों, कवि सम्मेलन तथा 'कामायनी' के छाया अभिनय का प्रबन्ध था। कवि-सम्मेलन तो केवल स्थानीय होकर रह गया था। लोक-गीत प्रदर्शन, जिसमें हाड़ौती रामायण के कुछ दृश्य दिखाये गये थे, सुन्दर थे। 'कामायनी' का छाया अभिनय एक सफल और सुन्दर प्रयत्न था। एक चित्रप्रदर्शनी भी हुई थी। उसके संयोजक महोदय ने बड़े प्रयत्न से नये और पुराने कलाकारों के चित्र वहां जुटाये थे। शांति निकेतन के आचार्य, राजस्थान के प्रसिद्ध और उगते हुए कलाविद, दिल्ली के मजे हुए चित्रकार सभी को वहां देखा जा सकता था।

राजस्थान सरकार की ओर से प्रकाशन विभाग के श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट ने जिस स्नेह और सौजन्य से पत्रकारों को चम्बल पर बनाए जानेवाले विद्युत उत्पादन बांधों को दिखाया वह एक तरह से सम्मेलन की कटुता से उत्पन्न वेदना को दूर करने वाला था। वह विशेष बड़ा मधुर और प्रिय था। राजस्थान के सौन्दर्य, उसकी कला, चम्बल के प्रवाह, पुरातत्त्व के अनेक भग्नावशेष मन्दिरों और मकानों को देखकर सारी पीड़ा हर्षोन्माद में परिवर्तित हो गई। ये बांध जिस दिन पूर्ण होंगे उस दिन ७०००० किलोवाट बिजली के प्रकाश से राजस्थान का सौन्दर्य जग-मग कर उठेगा। सिंचाई के बांध से ३,००,००० एकड़ भूमि में सिंचाई का अनुमान है। ये सभी योजनाएं अभी प्रारम्भिक रूप में हैं, पर कुछ भी हो कोटा-अधिवेशन भूल जाएगा और शायद वहां की कटुता भी दूर हो जाए, पर वहां की प्रकृति और वहां की स्वागत समिति के सत्कार, सौहार्द और स्नेह को हम कभी नहीं भूलेंगे। केवल उन्हीं क्षणों में, जब हम उनके सम्पर्क में रहे, हम छुट्टी की भावना को पा सके थे। केवल उतनी ही देर के लिए हम इस अधिवेशन को वास्तविक अर्थों में मेला कह सकते हैं। मेले के उन क्षणों में हमने उतना कुछ पाया जितना हम श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के सभापतित्व में होने वाले अनेक सम्मेलनों में नहीं पा सकेंगे।

और अन्त में हम उन अनेक बन्धु-बान्धवों को कैसे भूलें, जिन्होंने अपनी रसिकता, विनोद-प्रियता और जिन्दादिली से उस साहित्यिक सम्मेलन को मधुर मिलन में परिवर्तित कर दिया था। यद्यपि कुछ छिछोरे साहित्यिकों ने वहां भी अशिष्टता का प्रदर्शन किया, परन्तु स्वागत समिति के प्रधान श्री वृद्धिसिंह बापना की आत्मीयता, राजस्थान सरकार के प्रकाशन अधिकारी श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट के सौजन्य, बिहार के प्रसिद्ध लेखक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के निर्मल अट्टहास, श्री प्रभाकर माचवे तथा श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की होठों पर मुस्कुराती स्मृति को हम अपने हृदयपट से कभी नहीं मिटा सकेंगे। कुछ नाम और हैं, पर वे इतने चाहते हैं कि उनकी स्मृति हम अपने तक ही रखना चाहेंगे, और यद्यपि एक बार फिर सभापतियों का नाम लेकर कोई भी हमें उस कटुता को हरा करने की आज्ञा नहीं देगा, तो भी हम अन्त में दो शब्द कहना चाहेंगे— वे नहीं; पर उनकी विद्वत्ता और साधना हमें प्रिय है। उसी को हम स्मृति में संजोना चाहते हैं। हमें आशा है, वे हमें निराश नहीं करेंगे।

★

[इस वर्ष ३० जनवरी, १९५१ को स्वामी विवेकानन्द की वर्ष-गांठ है।]

"समस्त संसार को प्रकाश की आवश्यकता है। वह प्रकाश केवल भारत के पास है। लेकिन यह प्रकाश जादू-टोने, छल-कपट अथवा स्वांगादि में नहीं है; बल्कि वास्तविक धर्म की जो आत्मा है— उसकी महानताओं की, सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य की, शिक्षाओं में है। इसलिए प्रभु ने मानव-जाति को तमाम उलटफेर के बावजूद आज तक सुरक्षित रखा है। आज वह समय आ गया है।" —विवेकानन्द

कसौटी पर

['जीवन-साहित्य' में समीक्षा के लिए हमारे पास स्वेच्छा-पूर्वक बहुत सी पुस्तकें भेजी जाती हैं। उनमें से चुनी हुई पुस्तकों पर हम स्वतंत्र रूप से अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। जो पुस्तकें छूट जाती हैं, उनके विषय में हमारी लाचारी मानी जानी चाहिए। इस समय हमारे पास निम्न-लिखित पुस्तकें आई हुई हैं। इनमें से कुछ पर हम आगामी अंकों में विस्तार से चर्चा करेंगे। --सम्पादक]

१. दार्शनिक विचार—ले० राजा बलदेवप्रसाद विरला डी० लिट०—प्रका०—विरला संस्कृत कालेज, लालघाट बनारस।

२. आत्म-चिन्तन—ले० मार्कस ऑरेलियस—अनु० चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य—प्रकाशक—हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, मूल्य १), कपड़े की जिल्द २)

३. इंसपेक्टरसाहब—ले० गोपाल—अ० भूपनारायण दीक्षित—प्रकाशक, शर्मन पेपर मार्ट, इटावा मूल्य १।)।

४. स्मृति कण—ले० श्री सीताराम सेक्सरिया, प्रका० आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, मूल्य १॥)

५. संघर्ष और समर्पण (उपन्यास)—ले० कन्हैयालाल ओझा एम० ए०, प्रकाशक राजहंस प्रकाशन दिल्ली, मूल्य ५॥)

६. पशु और मानव (उपन्यास)—ले० आलडस हक्सले, अनु० रणजीत प्रिन्टर्स एन्ड पब्लिशर्स, चांदनी चौक दिल्ली, मूल्य ३॥)।

७. पुखराज (कहानी संग्रह)—ले० हरिश्चन्द्र कौला प्रका०, विद्या मन्दिर लि०, नई दिल्ली, मूल्य ३।)।

८. न्याय (कहानी संग्रह)—ले० दीपसिंह बड़गूजर 'दीपक', प्रकाशक, अजमेर कोआपरेटिव प्रिन्टर्स एन्ड पब्लिशर्स लिमिटेड, अजमेर। मूल्य १।)

९. वैदिक साहित्य—ले० पं० रामगोविन्द, त्रिपाठी—प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य ४)

१०. मिलन यामिनी (कविता)—ले० श्री बच्चन प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य ४)।

११. बन्धनों की रक्षा (लघु कथा)—ले० आनन्दमोहन अवस्थी, प्रका०—लोक चेतना प्रकाशक, जबलपुर, मू. १)

१२. गांधीजी के जीवन प्रसंग—सं० चन्द्रशंकर शुक्ल प्रका० वोरा एन्ड कम्पनी पब्लिशर्स लि० बम्बई मूल्य ६)

१३. ज्ञान चौसर—प्रकाशक कला निकेतन, चावड़ी बाजार, दिल्ली मूल्य ॥।)

१४. वैज्ञानिक पाक-प्रणाली—प्रकाशक—ग्रामद्योग कार्यालय, मुजफ्फरपुर। मूल्य ।)

१५. नियोजित अर्थ-व्यवस्था का गांधीमार्ग—लेखक जे. सी. कुमारप्पा—प्र. उपरोक्त मूल्य ।=)

१६. हिन्दू समाज की बुनियादी कमजोरी—ले० रमाचरण—प्रका० उपरोक्त, मूल्य १)।

१७. डाक्टर वर्मा के शिवाजी—ले० श्री भुवनारायण सिंह, प्र० सत्यप्रकाशन, नौवस्ता, आगरा।

१८. Writers in Free India—दी पी. ई. एन. आल इंडिया सेंटर, बम्बई ६, मूल्य ६)

१९. केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—नेमिचंद जैन ज्योतिषाचार्य, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ काशी। मूल्य ४)

२०. गांधी-गीता—प्र० राजहंस प्रका. दिल्ली मू. २)

२१. हर्षचरित (पूर्वार्द्ध) प्रकाशक—संस्कृत भवन कठोतिया, पो. काझा (पूर्णिया) २॥)

२२. लघुसिद्धांत कौमुदी (पूर्वार्द्ध) हि. व्याख्या लेखक व प्रका. भीमसेनशास्त्री प्रभाकर, गांधीनगर, दिल्ली ४॥)

२३. पालि पाठमाला—ले० भिक्षुधर्मरक्षित प्रका० महाबोधि सभा, सारनाथ मू० १)

परखो व कहो ?

सच्ची श्रद्धांजलि

बापू के जाने के बाद सरदार पटेल तथा श्री नेहरू ने मिलकर भारत की बागडोर संभाल रखी थी, दृढ़ता और प्रतिष्ठा के साथ। अब सरदारश्री चले गये और अकेले नेहरूजी पर सारा भार आ गया। यद्यपि राजाजी जैसे कुशल तथा मंजे हुए बुद्धिशाली अनुभवी व्यक्ति सहारा देने के लिए मिल गये हैं, फिर भी सरदारश्री का जाना हम सब भारतीयों के लिए, खासकर कांग्रेसियों के लिए, महान आत्म-निरीक्षण का अवसर देता है। मुझे हमारे कांग्रेसपति राजर्षि टण्डनजी का यह ऐलान बहुत भाया कि सरदारश्री के पार्थिव श्राद्ध के अवसर पर हम सब आत्म-निरीक्षण करें। अकेले नेहरूजी या राजाजी या और किसी पर जिम्मेदारी छोड़कर हम निश्चिन्त नहीं रह सकते। यह जिम्मेदारी से छूट भागना है। आजादी मिलने का नतीजा तो यह होना चाहिए था कि प्रत्येक भारतवासी हर्ष व उल्लास से फूल उठता और हमारे राष्ट्र-नेता हजारों वर्ष की आयु मांगते। उलटे आखीर हमने देखा कि आजादी मिलने के बाद से ही बापू भगवान से प्रार्थना करने लगे थे कि मुझे संसार से उठा ले और सरदारश्री भी इधर-उधर कहने लगे थे कि मुझे तो बापू के साथ ही जाना था, मगर रह गया। अब जीने में कोई लुत्फ नहीं। आदि-आदि। इसका क्या कारण है? कभी हमने इस पर कुछ सोचा है? मेरा हृदय तो इसका एक ही उत्तर देता है कि हम अपने महान् नेताओं के योग्य नहीं साबित हुए। अपनी गलतियों को, कमियों को, कमजोरियों को न देखकर हमने सदैव अपने बड़ों को, नेताओं को, कोसा है, सच्चे दिल से उनका साथ नहीं दिया है, उनके हाथ मजबूत नहीं किये हैं। हमारे सार्वजनिक जीवन में यह बीमारी ही घुस गई है और जड़ पकड़ती जा रही है कि अपनी बुराई देखना नहीं और दूसरों के मत्थे मढ़ जाना; अपनी कमियों और खराबियों की जिम्मेदारी दूसरों पर डाल देना। बुराई किसमें नहीं है और गलती किससे नहीं होती? गलती बताना और सुधरवाना एक बात है, उसका बहाना लेकर दूसरे की टांग पकड़के घसीटना, गिराना, बदनाम करना दूसरी बात है। यदि हमें अपना राष्ट्र सचमुच बनाना है तो अपनी गलतियों को पहले देखने की और दूसरे की त्रुटियों को अपने जीवन के प्रकाश में देखने की प्रवृत्ति हमें बढ़ानी होगी, नहीं तो हम कोरे निन्दक और विनाशक प्रवृत्तियों के व्यक्ति बनकर रह जायेंगे। कोई विधायक रचनात्मक या सृजनात्मक काम न कर पायेंगे। अब हमारे देश के सामने मुख्यतः सृजनात्मक और रचनात्मक काम ही बाकी रहा है।

कांग्रेस के अन्दर भी छोटे-छोटे ग्रुप बन गये हैं और बनते जा रहे हैं। अधिकांश तो यह, आगामी चुनावों में अपना या अपने साथियों का स्थान सुरक्षित रखने—अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की सिद्धि की दृष्टि और भावना से बने हैं और जबतक इन भावनाओं की सिद्धि के लिए हम साधन-शुद्धि पर जोर न देंगे, ये अनर्थ का ही कारण बने रहेंगे। अव्वल तो कांग्रेस जैसी एक पार्टी या संगठन में, जो एक आदर्श और नीति को लेकर बनी है, व्यक्तियों के आधार पर ग्रुप बन्दी एक रोग का ही लक्षण है, फिर भी यह काबू में रखा जा सकता है, यदि हम व्यक्तिगत, गुटगत या समाजगत मतभेदों और झगड़ों को सीधे, सरल व साफ तरीकों से सुलझाने और मिटाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हों। जोड़-तोड़, छल-छद्म, लूट-पाट, डराव धमकाव और अन्त में गुण्डागर्दी करके काम बनाने या निकालने की जो प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है, उसे हम समय पर नियन्त्रित न कर सके तो हमें अपनी शक्ति का ह्रास ही-ह्रास होता दिखाई देगा। अब तक [illegible], विन्ध्य[illegible], बिहार, बंगाल और उड़ीसा के बाद मेरी यह निश्चित राय हुई है कि कांग्रेस के कर्णधारों का [illegible] यह होगा

चाहिए कि कहीं भी अशुद्ध साधनों को प्रोत्साहन न मिले और जो लोग शुद्ध साधनों के हामी हैं उनके हाथ हर तरह मजबूत किये जांय।

आजादी मिलने के बाद से सरदारश्री का मुख्य प्रयत्न देश को संगठित करने, एक सूत्र में पिरो देने का रहा था। इस प्रयत्न में उन्हें बहुतांश में सफलता भी मिली, लेकिन पूर्णतया नहीं। उसे पूरा करने का दायित्व अब हम सब पर आगया है। इस दिशा में हम ईमानदारी के साथ कदम उठावेंगे, मजबूती से चलेंगे, तभी सरदारश्री की आत्मा को शांति मिलेगी और वही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हटूंडी, ५. १. '५१

श्री अरविन्द की देन

श्रीअरविन्द के प्रति मेरा आकर्षण अपने विद्यार्थी जीवन से ही रहा है। १९०५-६ में लाल-बाल-पाल यह त्रिमूर्ति भारत की राष्ट्रीय देवता जैसी थी, जिसके प्रभाव से शायद ही कोई युवक उन दिनों बचता था। फिर भी श्री अरविन्द उन्हीं दिनों एक स्वतन्त्र नक्षत्र की तरह अपनी विशेषता से चमकते थे। इनकी भूमिका कोरी राजनैतिक या राष्ट्रीय नहीं, उससे गहरी आध्यात्मिक थी, यह उन दिनों भी प्रकट होता था। केवल राजनैतिक अधिकार—स्वतन्त्रता—पा लेने से मनुष्य-जाति का उद्धार नहीं हो सकता, यह वे मानने लगे थ। राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए भी भौतिक शक्ति को वे अपूर्ण मानने लगे थे और दिव्य या आध्यात्मिक बल पाने के लिए छटपटा रहे थे। उन दिनों जीवन के कई विषयों पर जो मूलगामी विचार उन्होंने प्रकट किये थे उन्हींके आधार पर उनका आगे का जीवन बना है, उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई है। जेल में उन्हें कुछ ऐसे यौगिक या आध्यात्मिक अनुभव हुए—आसपास के तथा सामनेवालों लोगों में उन्हें श्रीकृष्ण (ईश्वर) के दर्शन होने लगे, जिससे उन्हें कहीं एकान्त में जाकर एकाग्र साधना करने की प्रेरणा हुई और वे पांडिचेरी चले गये। लगभग २० वर्ष की एकान्त साधना के बाद उन्होंने २४ नव० १९२६ को घोषित किया कि वे अपनी साधना में सफल हो गये हैं और अब उन्हें मनुष्य-जाति या मानव को ऊपर उठाने का काम शुरू करना है। उसके बाद से पांडिचेरी में श्री अरविन्द आश्रम का संगठन होने लगा। उन्होंने तत्कालीन साधकों से यह भी कहा कि अब आगे का काम में एकान्तवास द्वारा ही करूंगा, प्रत्यक्ष कार्य श्रीमाताजी के द्वारा सम्पन्न होगा। माताजी एक फ्रेंच महिला हैं जो उन्हींकी तरह दिव्य जीवन की साधना में उनकी सहयोगिनी रहीं और सिद्धि में भी उनकी समकक्ष मानी जाती हैं। श्रीअरविन्द के शरीर-पात के बाद तो अब वही उस आश्रम की अधिष्ठात्री और साधकों का अवलम्बन हैं।

श्री अरविन्द की विद्वत्ता, प्रतिभा, राष्ट्रभक्ति, साधना सब एक-से-एक बढ़कर थी; किन्तु सबसे अधिक प्रभाव मेरे मन पर उनकी दृढ़निष्ठा और एकाग्र साधना का है। जीवन और संसार के तमाम व्यामोहों, आग्रहों, खिचावों और बलों के प्रभाव से अपने को दूर रखकर एक मकान, बल्कि एक कमरे में बरसों अपने को रोके रखना इस बीसवीं सदी में मामूली बात नहीं है। फिर उनकी साधना या योग निष्कर्मता की शिक्षा नहीं देता। उनका जोर इस बात पर है कि जीवन को ईश्वर-समर्पित करके कर्म करो। अपने को ईश्वर के प्रति उत्तरोत्तर खोलते जाओ और तुम ईश्वरी जीवन को प्राप्त करते जाओगे। ईश्वरी जीवन प्राप्त करने के दो मार्ग हैं: एक, व्यक्ति नीचे से ऊपर उठकर ईश्वर की कक्षा में पहुंचे। दूसरे, ऊपर से ईश्वर की शक्ति, कृपा अनुग्रह या चेतना व्यक्ति पर बरसे। पहली क्रिया का नाम उन्होंने आरोहण व दूसरी का अवरोहण किया है। प्राचीन भारतीय आचार्यों की भाषा में कहें तो पहली क्रिया को वेदान्ती साधना, दूसरी को तान्त्रिक साधना कह सकते हैं। किन्तु श्री अरविन्द ने अपनी साधना और सिद्धि के लिए नये स्वतन्त्र शब्द तथा नाम निर्माण किये हैं। अपनी साधना को उन्होंने 'पूर्ण योग' नाम दिया है और उसकी प्रक्रिया के उपक्रम में उन्हें 'अतिमानस' नामक एक तत्व उपलब्ध हुआ है। उनका कहना है कि इस समय जगत् में मानव के अन्दर हम जड़, प्राण, मन तीन तत्वों का आविर्भाव देखते हैं। जड़ से शरीर का ढांचा बना है, प्राण से शरीर में चलन-वलन होता है और मन से प्राण तथा शरीर के अनेक व्यापार संचालित होते हैं। किन्तु इन तीनों तत्वों के आधार

या सहयोग से मनुष्य-जाति का जो विकास अबतक हुआ है वह काफी नहीं है। इससे मानव अधूरा, क्षुद्र, अल्प, रह गया है। उसका विकास अभी होना है, तभी वह आज के राग-द्वेष, विकार, कलह-युक्त जीवन से ऊंच स्तर पर उठ सकेगा। उसके बिना मानव-जीवन सुखी सन्तुष्ट, प्रसन्न, नहीं हो सकता। विकास के इस आगे के क्रम का या तत्व का नाम उन्होंने 'अतिमानस' दिया है। मानव को इस अतिमानस स्तर पर पहुंचना है, आज की तरह कोरे मन के स्तर पर नहीं रहना है। अर्थात् मन की जगह अतिमन से उसे जीवन के तमाम व्यापार सञ्चालित करना है। यह अतिमानस ईश्वरी या चेतन तत्व के निकट का है या उसकी कोटि का है। यह ईश्वर की दिव्यता या चेतन-सत्ता को स्पर्श करता है। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सदा ईश्वराभिमुख होकर रहेगा। ब्राह्मी स्थिति से इसकी तुलना की जा सकती है। इस स्थिति में रहते हुए मनुष्य जो काम करेगा वह निश्चय ही आज के राग द्वेष युक्त मनुष्य की अपेक्षा अधिक शुद्ध, निर्विकार, निर्द्वन्द्व, तेजोमय होगा। मानव को ऐसे ऊँचे स्तर पर पहुँचाना ही श्री अरविन्द अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे। लेकिन जबतक उन्होंने स्वतः अतिमानस तत्व को प्राप्त नहीं कर लिया तबतक इस कार्य को शुरू नहीं किया था। २४ नवबर को उनका सिद्धिदिवस इसीकी उपलब्धि के उपलक्ष्य में मनाया जाता है।

श्री अरविन्द की सिद्धि की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती। वे यह भी प्रयत्न कर रहे थे कि शरीर के जड़ अणु चेतनमय हो जायें। सारा शरीर चेतनमय होसके, दूसरे शब्दों में शरीर अजरामर होजाय। कहते हैं, यह शक्ति उतर कर उसमें आरही थी कि शरीर उसके वेग या बल को सम्भाल न सका और उसका पात होगया, या श्री अरविन्द ने इस शरीर का उसके योग्य न मानकर उसे छोड़ दिया और शायद दूसरे किसी शरीर में प्रवेश कर लिया। जो हो।

श्री अरविन्द के जीवन और मरण दोनों का सन्देश हमारे लिए विचारणीय और पठनीय है। मनुष्य-जाति को ऊंचे स्तर पर ले जाने का प्रयत्न करना निश्चय ही एक ऊंचे दर्जे का लक्ष्य है और जो लोग समाज की नव-रचना में दिलचस्पी लेते हैं उनकी समझ में आने जैसा है। खासकर वे लोग तो उसे बहुत जल्दी समझ लेंगे, जो अहिंसक समाज की रचना करना चाहते हैं; क्योंकि ऐसी रचना तभी हो सकती है जब मनुष्य-जाति का स्तर ऊंचा हो। श्री अरविन्द के लक्ष्य या सिद्धि को 'गूढ़', 'यौगिक', 'आध्यात्मिक', कह कर नित्य जीवन से उसे दूर समझना और इन नामों से डर जाना किसी प्रकार उचित नहीं है। मनुष्य-जीवन नित्य विकासशील है। इतिहास इसका साक्षी है। भौतिक क्षेत्र में हमने बहुत काम किया है और विकासकी दिशा में आगे बढ़े हैं। तमाम भौतिक शक्तियों के मूल में जो अनन्त चेतन शक्ति भरी हुई है उसका आविष्कार करना, उसे प्राप्त करना, उससे काम लेना, मानव-जीवन को उससे लाभ पहुँचाना—यह सब क्यों किसी की समझ में न आना चाहिए? भौतिक शक्तियों के लिए न जाने क्या-क्या व्ययसाध्य उपकरण, यन्त्र आदि चाहिए जबकि आत्मिक या चेतन शक्ति प्राप्त करने के लिए केवल एकाग्र साधना।

गांधीजी जिसे सत्य या ईश्वर कहा करते थे और जिसकी प्राप्ति के लिए अहर्निश छटपटाते थे, वही या उससे मिलती-जुलती चीज है श्री अरविन्द का अतिमानस तत्व। दोनों का मूल है विश्व में छिपा या व्याप्त चैतन्य। दोनों उसीके उपासक थे। इस तरह देखें तो दोनों का सन्देश एक-दूसरे से भिन्न नहीं था। अभिव्यक्तियां अलग-अलग थीं; बल्कि मुझे तो ऐसा लगता है कि महापुरुषों के सन्देश मूलतः भिन्न नहीं होते। परिस्थिति के अनुसार उनकी अभिव्यक्ति कुछ अलग तरह से हो जाती है। हम भिन्नता पर जोर देकर हम एक-दूसरे से लड़ पड़ते हैं और समाज के नाश तथा नाश का कारण बनते हैं, जबकि मूलगत एकता पर जोर देने से हम समाज में सामञ्जस्य, मेल, एकता पैदा करते हैं, जो कि संसार का मङ्गल रूप है। आइए, श्री अरविन्द के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आज हम इस सत्य को समझने व ग्रहण करने का प्रयत्न करें। ऐसा करके ही हम उस महापुरुष की महान् देन के सच्चे अधिकारी बनने का दावा कर सकते हैं। तभी हम भगवान् की कृपा पाकर के अधिकारी हो सकते हैं।

नई दिल्ली, ९. १. '५१ —ह. उ

स्वाधीनता-दिवस

२६ जनवरी को हम लोग प्रतिवर्ष स्वाधीनता-दिवस मनाते हैं। यह क्रम लगभग बीस वर्ष से चला आता है, जबकि हमारे स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में प्रथम बार, रावी के तट पर, शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा ली गई थी कि हमलोग भारत को आजाद करके ही मानेंगे। वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। विदेशी सत्ता यहां से हट गई और हमारे शासन की बागडोर हमारे हाथ में आ गई। इसी शुभ तिथि को आज से एक वर्ष पूर्व भारत को 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणतंत्र राज्य' घोषित किया गया था। निस्सन्देह यह दिन हम सब के लिए एक महान राष्ट्रीय पर्व है। लेकिन खुशी मनाने और गौरव अनुभव करने के साथ-साथ यह दिन हमें हमारे कर्तव्य का भी बोध कराता है। भारत विदेशी सत्ता के बंधन से मुक्त हुआ अवश्य; लेकिन सच्ची आजादी अभी हमसे कोसों दूर है। आज देश में कैसी विषम परिस्थिति का हम लोगों को सामना करना पड़ रहा है, कैसी-कैसी कठिनाइयों में होकर गुजरना पड़ रहा है, उस सबकी याद करके दिल दहल उठता है। अन्न-संकट हमारे सिर पर खड़ा है, हजारों लोग खानाबदोशों का-सा जीवन बिता रहे हैं, काश्मीर का मामला अभी तक लटका हुआ है, ये तथा और बहुत से ऐसे मसले हैं जिन्होंने हमारी आजादी का मजा किरकिरा कर दिया है। जबतक देश का एक भी आदमी भूखा-नंगा या बिना घर के रहता है तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि हमें वास्तविक अर्थ में आजादी मिल गई है। २६ जनवरी जहां गुलामी के अध्याय की समाप्ति की सूचक है वहां वह देश के नवनिर्माण के कर्त्तव्य की बोधक भी है। गुलामी के दुष्परिणाम हम देख चुके हैं और अब हमारा हित इसीमें है कि हम अपने प्रयत्न से देश को इतना सशक्त और संगठित बना दें कि कोई भी उसकी जड़ को न हिला सके। यदि ऐसा न हुआ तो हमारी कमजोरियां हमें खा जायंगी। इस कटु सत्य को वैसे तो हम हमेशा ही याद रक्खें, लेकिन २६ जनवरी को आजादी के उल्लासयुक्त स्मरण के साथ तो अवश्य ही।

नई दिल्ली, १०-१-५०

तीस जनवरी !

३० जनवरी भारत के ही नहीं, सारे संसार के इतिहास में एक चिरस्मरणीय तिथि बन गई है। इसी विधिनिर्मित तिथि को, आज से तीन वर्ष पूर्व, विश्व की महानतम विभूति का हमसे विछोह हुआ था—उस विभूति का, जिसके विषय में आइंसटीन ने लिखा था कि आगे आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से विश्वास करेंगी कि इस धरती पर कभी हाड़-मांस का ऐसा पुतला चला था। समूची मानवता की सेवा के लिए इस महापुरुष ने अपनी जीवन-साधना का क्षण-क्षण व्यतीत किया और अवसर आने पर इसी महान उद्देश्य के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध की सभी प्रवृत्तियां इस युग-पुरुष के प्रभाव से व्याप्त रही हैं और एक समय हमने वह देखा है जब इस विश्ववंद्य पुरुष के कण्ठ से स्वर निकलते ही करोड़ों के स्वर उसमें मिल गये थे, जिधर उसके पग उठे थे, उधर ही अगणित लोग चल पड़े थे।

जिस बेमिसाल तरीके पर गांधीजी ने भारत को आजादी दिलवाई, उसके लिए देश के कोटि-कोटि जन उन्हें याद रक्खेंगे; लेकिन समूची मानवता को उन्होंने जीवन की जो नई दिशा सुझाई, उसके लिए सारी दुनिया उन्हें चिरकाल तक याद करेगी।

आज हममें से अधिकांश गांधीजी के बताये मार्ग से विचलित हो गये हैं। हमारा मुंह दूसरी ओर हो गया है। स्पष्टत: इसका कारण यह है कि गांधीजी ने जो रास्ता बताया था वह कठोर साधना का रास्ता था, और कठोर साधना का जीवन बहुत दूर तक विरले ही चला पाते हैं। मानव कमजोरियों का पुंज है और सहज ही प्रलोभनों के चक्कर में आ जाता है। यही वजह है कि गांधीजी के आंख ओझल होते ही लोग अपनी निष्ठा और साधना पर दृढ़ नहीं रह सके।

३० जनवरी को हम बापू और उनकी दीर्घकालीन सेवाओं को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। लेकिन हमारा यह कार्य बहुत कुछ एक रूढ़ि का रूप धारण करता जा रहा है। बापू का सच्चा स्मरण, सच्ची श्रद्धांजलि उनका नाम लेना नहीं, उनका काम करना है। स्वतन्त्र भारत में 'रामराज्य' स्थापित करने

की बापू ने कल्पना की थी। इसी कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए वे १२५ वर्ष जीवित रहना चाहते थे। लेकिन भगवान को वह मंजूर न था। बापू तो अपना काम कर गए—अपना काम ही नहीं, साधारण व्यक्ति जितना कर सकता है उससे सौगुना अधिक, लेकिन फिर भी उनका 'रामराज्य' का स्वप्न पूरा होना है। उसे पूरा करना, न करना हम लोगों पर निर्भर है। आज हमारे चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दिखाई देता है; परन्तु हिम्मत हारने या निराश होने से काम नहीं चलेगा। ३० जनवरी को हम आत्म निरीक्षण का दिन मानें। अपनी कमजोरियों को देखें और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। अपनी निष्ठा को मजबूत रख कर हम समष्टि के हित में अपना हित मानकर चलें तो अंधकार के दूर होते देर न लगेगी। आज की परिस्थिति में यह सब गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ने के समान कठिन अवश्य लगता है; पर स्मरण रहे कि बिना उसके कल्याण भी नहीं है।

३० जनवरी को 'सर्वोदय दिवस' कहा गया है, जो ठीक ही है। *गांधीजी के लिए सबका उदय अभीष्ट था,* और सच्ची आजादी का मतलब भी यही होना चाहिए। जबतक गरीब-अमीर, शासक-शासित, शोषक-शोषित, और ऊंच-नीच आदि का भेद भाव रहेगा तबतक 'रामराज्य' की कल्पना साकार रूप धारण नहीं कर सकेगी और बापू की आत्मा व्यथित रहेगी।

नई दिल्ली, ११-१-५१ —द०

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन किधर ?

सदा की भांति इस बार भी सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ और समाप्त होगया। कोई विशेष योजना उसने देश के सामने नहीं रखी। *हिन्दी के राष्ट्र-*भाषा बन जाने के बाद देश उससे मार्ग प्रदर्शन की आशा कर रहा था। इसके विपरीत उसे मिला आक्रोश और क्षोभ। सम्मेलन सरकार को सजग रखे, यह बात तो समझ में आती है, पर वह स्वयं दलबंदी या फिर निष्क्रियता का शिकार बना रहे, यह नितान्त अनुचित है। अभी समय है कि सम्मेलन के कर्णधार युग की स्थिति और उसकी मांग को समझें और भाषा की प्रगति तथा साहित्य-निर्माण की ओर ठोस कदम उठावें। अच्छे कामों के लिए कभी देर नहीं होती। जो कुछ कोटा-अधिवेशन में हुआ वह सम्मेलन की नाक रखने वाला नहीं है। उससे विरोधियों को बल मिलेगा।

सबसे पहिला काम जो सम्मेलन के सामने है वह है कोष निर्माण का। सरकार का मुंह देखे बिना वह विद्वानों को लेकर पारिभाषिक शब्दों की ओर ध्यान दे तो यह एक ठोस सेवा होगी। इस कार्य के लिए उसे कामों का उचित बटवारा कर लेना चाहिए। जिस परीक्षा बोर्ड को लेकर सम्मेलन में दलबंदी की दूषित वायु दम घोट रही है, उसका अलग रहना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रकार साहित्य निर्माण का काम एक दूसरे *विभाग को सौंपा जा सकता है। तीसरा विभाग* साहित्यिकों के हितों की देखभाल कर सकता है। सम्मेलन नाम के अनुरूप अबतक साहित्य का कोई हित-साधन नहीं कर सका है। वह कहते हैं कि कल तक वह राष्ट्र-भाषा की समस्या सुलझाने में लगा हुआ था, पर आज तो यह समस्या प्रायः सुलझ चुकी है। इसलिए अब सम्मेलन को साहित्य और साहित्यकारों की ओर ध्यान देना चाहिए।

*ये विभाग सम्मेलन के ही अंग होंगे, पर होंगे स्वतं-*त्र, जैसे भारतीय संघ में राज्य हैं। यह कोई विस्तृत रूपरेखा नहीं है, मात्र दिशा सुझाने की बात है। कहना इतना ही है कि सम्मेलन को अब गम्भीरता से अपने नये दायित्व को समझना चाहिए। गालियां देने से किसी को शक्ति नहीं, हीनता ही प्रकट होती है।

नई दिल्ली, ११-१-५१, —वि० प्र०

ठक्करबापा भी गये !

कल रात (१९ जन) को ८-२० पर ठक्करबापा का देहान्त हो गया। यद्यपि पिछले कुछ दिनों से बीमार थे, फिर *भी किसी को भी कल्पना न थी कि वह अकस्मात् इतनी* जल्दी चले जायेंगे। ठक्करबापा का सम्पूर्ण जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। जिन्हें हमारे देश में दीन और दलित कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था, बापा ने उन्हींकी सेवा का बीड़ा उठाया और जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्हींके लिए काम करते रहे। जहां से भी सेवा की पुकार आई, बापा वहां मौजूद। उनकी मृत्यु से भारत का एक महान सेवक उठ गया। दीनबन्धु बापा को स्मृति में हमारी श्रद्धांजलि। —द०

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

Regd. No. E. P. 479

वार्षिक मूल्य ४)] जीवन - साहित्य [इस अंक का १।।)

'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक

लेख-सूची

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार राज्य की सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

जून-जुलाई, १९७१] [वर्ष १२, अंक ६-७

प्राकृतिक उपचार

महात्मा गांधी

प्राकृतिक उपचार का अर्थ है ऐसे उपचार, जो मनुष्य के लिए योग्य हो। मनुष्य यानी मनुष्य-मात्र। मनुष्य में मनुष्य का शरीर तो है ही, लेकिन उसमें मन और आत्मा भी है। इसलिए सच्चा कुदरती इलाज तो रामनाम ही है। मनुष्य के लिए प्रकृति ने इसी को योग्य माना है। कोई भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदय से रामनाम ले तो उसकी व्याधि नष्ट होनी चाहिए।

जिस चीज का मनुष्य पुतला बना है, उसीसे इलाज ढूंढे। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश तेज और वायु का बना है। इन पांच तत्त्वों से जो मिल सके सो ले। उसके साथ राम-नाम तो अनिवार्य रूप से चलता ही रहे।

'हरिजन सेवक', ३-३-४६]

• • •

ईश्वर की स्तुति और सदाचार का प्रचार हर तरह की बीमारी को रोकने का अच्छे-से-अच्छा और सस्ते-से-सस्ता इलाज है, मुझे इसमें जरा भी शक नहीं। अफसोस इस बात का है कि वैद्य, हकीम और डाक्टर इस सस्ते इलाज का उपयोग ही नहीं करते, बल्कि हुआ यह है कि उनकी किताबों में इस इलाज की कोई जगह ही नहीं रही और कहीं है तो उसने जन्तर-मन्तर की शक्ल अख्तियार करके लोगों को वहम के कुएं में ढकेला है। ईश्वर की स्तुति या रामनाम का वहम से कोई संबंध नहीं। यह तो कुदरत का सुनहला कानून है। जो इसका अमल करता है, वह बीमारी से बचा रहता है।

• • •

डाक्टर दोस्तों का यह दावा है कि वे पूरी तरह कुदरती इलाज करने वाले हैं, क्योंकि दवाएं जितनी भी हैं, सब कुदरत ने ही बनाई हैं। डाक्टर तो उनकी मिलावटें भर करते हैं। इसमें क्या बुराई है ? इस तरह हर चीज पेश की जा सकती है। मैं तो कहूँगा कि रामनाम के सिवा जो कुछ भी किया जाता है, वह कुदरत के खिलाफ है। इस मध्यबिन्दु से जितने दूर हटते हैं, उतने ही हम असल से दूर जा पड़ते हैं। इस तरह सोचते हुए मैं यह कहूंगा कि पांच महाभूतों का असल उपयोग कुदरती इलाज की सीमा है। इससे आगे बढ़ने वाला वैद्य अपने इर्दगिर्द जो दवाएं उगती हों, या उगाई जा सकें उनका प्रयोग केवल भले के लिये करे, पैसे कमाने के लिये नहीं तो वह भी अपने को कुदरती इलाज करने वाला कह सकता है। ऐसे वैद्य आज कहां हैं ?

'हरिजन सेवक', १६-५-४६]

* * *

मेरा कुदरती इलाज तो सिर्फ गांववालों और गाँवों के लिए ही है। इसलिए उसमें खुर्दबीन, ऐक्सरे वगैरह की कोई जगह नहीं। और न ही कुदरती इलाज में कुनैन,एमिटिन, पेनिसिलीन, जैसी दवाओं की गुंजाइश है। उसमें अपनी सफाई, घर की सफाई, गांव की सफाई और तन्दुरुस्ती की हिफाजत का पहला स्थान है और पूरा-पूरा है। इसकी तह में खयाल यह है कि अगर इतना किया जा सके, हो सके, तो कोई बीमारी ही न हो।

'हरिजन सेवक', १८-८-४६]

* * *

चालीस वर्ष से भी पहले जब मैंने कूने की 'न्यू साइंस आफ़ हीलिंग' और जुस्ट की 'रिटर्न टु नेचर' नाम की किताबें पढ़ीं तभी से मैं कुदरती इलाज का पक्का हिमायती होगया था।...अब मैं कुदरती इलाज का ऐसा तरीका खोजने की कोशिश कर रहा हूं, जो हिन्दुस्तान के करोड़ों गरीबों को फायदा पहुंचा सके। मैं सिर्फ ऐसे इलाज के प्रचार की कोशिश कर रहा हूं, जो मिट्टी, पानी, धूप,हवा और आकाश के इस्तेमाल से किया जा सके।...दिल से भगवान् का नाम लेनेवाले मनुष्य का यह फर्ज हो जाता है कि वह कुदरत के उन नियमों को समझे और उनका पालन करे, जो उसने मनुष्य के लिये बना दिये हैं। यह दलील हमें इस नतीजे पर पहुंचाती है कि बीमारी का इलाज करने से उसे रोकना बेहतर है। इसलिए मैं अनिवार्यतः लोगों को सफाई के नियम समझाता हूं,यानी उन्हें मन,शरीर और उनके आसपास के वातावरण की सफाई का उपदेश करता हूं।

'हरिजन सेवक', १५-६-४७]

* * *

हमें अपना यह वहम दूर करना होगा कि जो कुछ करना है, उसके लिये पश्चिम की तरफ नजर दौड़ाने पर ही आगे बढ़ा जा सकता है। अगर कुदरती इलाज सीखने के लिए पश्चिम जाना पड़े तो मैं नहीं मानता कि वह इलाज हिन्दुस्तान के काम का होगा। यह इलाज तो सबके घर में मौजूद है। हमेशा कुदरती इलाज की जरूरत भी न रहनी चाहिए। यह इतनी आसान चीज है कि हर आदमी को उसे सीख लेना चाहिए।...यह सहज ही समझ मे आने लायक है कि पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु के लिये समुन्दर पार जाने की जरूरत हो ही नहीं सकती। दूसरा जो कुछ सीखने को है, वह यहीं है—गाँव में मौजूद है। देहाती दवाएं, जड़ी-बूटियां, दूसरे देशों में नहीं मिलेंगी।...कूने, जुस्ट, फादर क्नाइप वगैरह ने जो लिखा है, सो सबके लिए है और सब जगहों के लिए है। वह सीधा है। उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जानने वालों के पास उसकी थोड़ी-बहुत जानकारी होनी है और होनी चाहिए।

'हरिजन सेवक', २-६-४६]

* * *

कुदरती उपचार के गर्भ में यह बात रही है कि उसमें कम-से-कम खर्च और कम-से-कम व्यवसाय होना चाहिए। कुदरती उपचार का आदर्श ही यह है कि जहां तक सम्भव हो, उसके साधन ऐसे होने चाहिए कि उपचार देहात में ही हो सके। जो साधन नहीं हैं, वे पैदा किये जाने चाहिए। कुदरती उपचार में जीवन-परिवर्तन की बात आती है। यह कोई वैद्य की दी हुई पुड़िया लेने की बात नहीं है और न अस्पताल जाकर मुफ्त दवा लेने या उसमें रहने की बात है। जो मुफ्त दवा लेता है, वह भिक्षुक बनता है। जो कुदरती उपचार करता है, वह कभी भी भिक्षुक नहीं बनता। वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाता है और अच्छा बनने का उपाय खुद ही कर लेता है। वह अपने शरीर में से जहर निकाल कर ऐसी कोशिश करता है कि जिससे दुबारा बीमार न पड़ सके।... मौसम्मी आदि कीमती फल खाना उपचार का अनिवार्य अंग नहीं है। पथ्य खाना—युक्ताहार—अवश्य अनिवार्य अंग है। हमारे देहात हमारी तरह ही कंगाल हैं। देहात में साग-सब्जी, फल, दूध आदि पैदा करना कुदरती इलाज का खास अंग है। इसमें जो समय खर्च होता है, वह व्यर्थ तो है ही नहीं, बल्कि उससे सभी देहातियों को और आखिर सारे हिन्दुस्तान को लाभ होता है।

'हरिजन सेवक', २-६-४६]

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

डॉ० के० लक्ष्मण शर्मा

आधुनिक सभ्यता ने हमें अनेक तरह की सुविधाएं प्रदान की हैं। पहले ये सुविधाएं केवल आनंद के लिये थीं; पर धीरे-धीरे इनके बिना हमारा काम चलना कठिन हो गया। इस प्रकार हम कमजोर होते गये और हमारी स्वतंत्रता छिन गई। खोजा जाय तो इस सभ्यता द्वारा प्रदान की हुई शायद ही कोई ऐसी चीज़ हमें मिले जिसे अच्छी कह सकें।

सभ्यता के इन्हीं उपहारों में औषधोपचार भी है। यह एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जिसे अर्जन करनेवाले डाक्टर एवं वैद्य कहलाते हैं। इस ज्ञान का उपयोग ये लोग अधिकतर धन कमाने में करते हैं। जनता का स्वास्थ्य सुधारने की ओर इनकी विशेष रुचि नहीं होती। इनका संबंध केवल लोगों के रोगों से होता है। कई ईमानदार डाक्टर तो खुले शब्दों में यह स्वीकार भी करते कि हैं उनके शिक्षाकाल में उन्हें स्वास्थ्य-रक्षा के नियम बिलकुल ही नहीं सिखाए गए।

तंदुरुस्त रहने के लिए क्या खाना चाहिए इस विषय का तो ज्ञान डाक्टर-वैद्यों को प्राय: नहीं ही होता। कितने ही साधारण आदमी इस विषय को उनसे अधिक जानते हैं। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि डाक्टर-वैद्य जनता के अथवा किसी व्यक्ति-विशेष के स्वास्थ्य की रक्षा का भार ग्रहण करने के लिए अक्सर अयोग्य पाये जाते हैं। पर प्राय: सभी को डाक्टर-वैद्यों की दवा पर निर्भर रहना पड़ता है। जो दवा लेते घबराते हैं उन्हें भी बीमार पड़ने पर अपने को डाक्टर-वैद्यों के हाथ में सौंपने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं रहता। हमें मालूम ही नहीं कि हम अपनी चिकित्सा कैसे करें ? और यह तो हम बिलकुल ही नहीं जानते कि हम अपना जीवन-क्रम किस प्रकार निर्धारित करें कि हम बीमार ही न पड़ें।

दूसरी बात यह है कि दवाएं रोग को अच्छा भी तो नहीं करतीं। वे रोग को अच्छा करने का भुलावा-मात्र देती हैं। रोग से मुक्त होने का अर्थ है रोग से पूर्व जो स्वास्थ्य था वह प्राप्त करना। पर यहां तो डाक्टर —खास तौर से बड़े-बड़े डाक्टर—ही यह स्वीकार करते हैं कि दवाएं सच्चा स्वास्थ्य प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

इसका प्रत्यक्ष प्रभाव मनुष्य-जाति पर यह पड़ा है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह कमजोर एवं जीवन धारण करने के एकदम अयोग्य होती जा रही है। प्रत्येक वर्ष डाक्टर, वैद्य, दवा की दूकानों एवं अस्पतालों की संख्या बढ़ रही है और उनसे भी तेजी से रोगों एवं रोगियों की संख्या बढ़ रही है। इससे यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि यदि यही दशा बनी रही तो रोगों और रोगियों की संख्या में वृद्धि ही होती जायगी। जो इस भयावह भविष्य से बचना चाहते हैं उन्हें औषधोपचार की विनाशक राह छोड़कर कोई दूसरी राह खोजनी पड़ेगी। यह दूसरी राह रोग-निवारण एवं स्वास्थ्य-रक्षा का वह विज्ञान है जिसे प्राकृतिक चिकित्सा कहते हैं। यह चिकित्सा बहुत ही सरल एवं युक्तियुक्त है। इसके सहारे कोई भी, डाक्टर-वैद्यों से मुक्ति पाकर, अपना चिकित्सक स्वयं बन सकता है।

यदि हम प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास पर गौर करें तो हमें ज्ञात होगा कि स्वास्थ्य-रक्षा एवं रोगों के निवारण की इस नैसर्गिक प्रणाली का आविष्कार ईश्वर के इशारे पर चलने वाले कुछ ऐसे आत्मबली व्यक्तियों ने किया था जो रोगों को अच्छा करने के ठेकेदारों की गुलामी से निकल भागना चाहते थे। इन प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों के साहसपूर्ण उद्योगों का ही यह फल था कि स्वास्थ्य-रक्षा एवं रोग-निवारण के सुनिश्चित नियमों —उपवास, जीवनशक्ति, ब्रह्मचर्य, क्षारमय भोजन, जल, वायु एवं प्रकाश के उपयोग—का पता लग सका। इनमें से अधिक चिंतनशील व्यक्तियों ने चिकित्सा के उन मूल तथ्यों की विवेचना की जिनसे प्राकृतिक चिकित्सा को जीवन एवं शक्ति मिली तथा प्रकृति की रोग-निवारक शक्तियों का ठीक उपयोग कर सकना

सफल हो गया। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति की रोग-निवारक शक्ति का ज्ञान अपने स्वास्थ्य-सुधार का हल खोजते समय हुआ था, जो इनके चिकित्सकों के सुलझाए किसी प्रकार सुलझना तो दूर रहा, उलझता ही गया। प्रत्येक ने अपने स्वास्थ्य-सुधार के पथ को प्रकाशित करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और उन्हें जो प्रकाश मिला उससे मार्ग-दर्शन लेकर अपने को रोग-मुक्त करने में वे पूर्णतया सफल हुए और फिर रोगों की इस नई चिकित्सा का उपदेश दे जनता की भलाई के लिए करने लगे।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में पहली बात हम यह जानते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा उस जीवन-प्रणाली का दूसरा नाम है जो हमें डाक्टर-वैद्यों की गुलामी से सदा के लिए मुक्त कर देती है। जो लोग यह समझते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा कुछ ऐसी चीज है जिसे कराने के लिए किसी नये किस्म के डाक्टर के यहां जाना होता है अथवा किसी अस्पताल में जाकर भरती होना पड़ता है, वे गलती पर हैं। प्राकृतिक चिकित्सा केवल उन बहादुरों के लिए है जो अपने स्वास्थ्य, शक्ति एवं जीने की प्रधान जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेना चाहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में अंधविश्वासी की तरह बिना समझे-बूझे अपने को किसी के हवाले नहीं करना होता। इसमें तो स्वयं सब कुछ सीखना-समझना पड़ता है और सीखे हुए नियमों को जीवन का विशेष अंग बना कर उन पर उत्साहपूर्वक जीवन-भर चलना होता है।

अब जब हमने यह देख लिया कि दूसरों पर निर्भर रहकर हम स्वस्थ नहीं रह सकते तब कम-से-कम अब तो हमें अपने स्वस्थ रहने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी ही चाहिए। रोग हमें केवल इसलिए होते हैं कि हमने स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन किया है। ऊपर हम बता आये हैं कि इन नियमों का ज्ञान डाक्टर-वैद्यों को बिल्कुल नहीं है। हम कष्ट केवल इसलिए पाते हैं क्योंकि हमने गलतियां की हैं। गलतियां करना बंद कर एवं फिर ठीक तरह रहने लगकर ही हम कष्टों से बच सकते हैं। यह ठीक तरह रहना क्या है, यह केवल प्राकृतिक चिकित्सा सिखाती है। यह इस सबंध में भी अन्य चिकित्सा-प्रणालियों से भिन्न है। यह बताती है कि रोग स्वास्थ्य-संबंधी नियमों के उल्लंघन का (गलती का) फल है। उसके इस सिद्धान्त के कारण यह हमारे धर्म का अंग है, व्यापार अथवा माल बेचने की चीज नहीं है।

यहां यह बता देना उचित होगा कि प्राकृतिक चिकित्सा में धर्म, नैतिकता एवं स्वास्थ्य-विद्या को आपस में संबंधित माना जाता है और इस प्रकार का संबंध हमारी सभ्यता, उस सभ्यता को मान्य है, जिसे हमारे धर्माचार्य पवित्र विचारक ऋषियों ने स्थापित किया था।

अगर हम प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा के रूप में बांधें तो कहेंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा उस धर्म प्रणाली का नाम है जिस पर चलने से सच्चे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है एवं यह स्थायी होता है। इसका आचरण ही रोगों से बचने और अगर रोग हो जाय तो उससे स्वयं मुक्त होने का प्रमाण है।

प्राकृतिक चिकित्सा हमें ऐसे विषयों का ज्ञान कराती है जो कोई अन्य चिकित्सा-प्रणाली नहीं करा पाती। हमें कब खाना चाहिए? क्या खाना चाहिए? कितना खाना चाहिए?—यह हमें विधिवत् बताती है, जिससे हम विषयों के अनुचित भोग से बच सकते हैं। विवाहितों के लिए यह ब्रह्मचर्य के उन नियमों का निर्देश करती है जिनका जानना उनके लिए आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सा हमें बताती है कि हमें कैसी वायु में सांस लेना चाहिए और सांस कैसे लेना चाहिए? यह सूर्य के प्रकाश एवं वायु के उपयोग सिखाती है। यह भी बताती है कि कैसे और कितनी कसरत करनी चाहिए कि हमारा शरीर हमारे प्रत्येक कार्य के उपयुक्त रहे। यह हमें यह भी बताती है कि हमें निराशा एवं आशा के क्षणों में अपने मन को किस प्रकार स्थिर रखना चाहिए कि हम ईश्वर की कृपा के पूर्णतया भागी बन सकें, जो जीवन को सुखमय बनाने का एकमात्र उपाय है।

मैं यहां यह भी बता देना चाहता हूं कि प्राकृतिक चिकित्सा किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं है, यह सारे

परिवार की चीज़ है। इसके उपयोग से बच्चे तक रोग क्या, प्रत्येक प्रकार के भय से मुक्त रहेंगे, क्योंकि निर्भयता ईश्वर में विश्वास से उत्पन्न होती है जो सदाचरण का फल है। रोग-मुक्ति तो बहुत साधारण चीज़ है, इसकी विधि पशु तक जानते हैं और उनके पास पुस्तकें एवं उसके शिक्षक न रहने पर भी वे उसके ज्ञान का ठीक एवं सफलतापूर्वक उपयोग करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में हमें सीधे ईश्वर एवं उसकी कृपा पर भरोसा करना होता है, इसके लिए हमें डाक्टर, वैद्य या किसी अन्य पंडे-पुजारी की ज़रूरत नहीं होती। प्राकृतिक चिकित्सा का विशेषज्ञ हमें प्राकृतिक चिकित्सा के विज्ञान एवं उसके उपयोग की विधि सिखा सकता है, पर उसे हमें डाक्टर-वैद्यों की तरह अपना गुलाम नहीं बनाने देना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के सारे उपदेशों का थोड़े में यह संदेश यह है कि स्वस्थ रहने एवं रोगों से मुक्त रहने के लिए प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है, पर उस प्रयत्न का फल देना ईश्वर के हाथ में है। इसी आशयको व्यक्त करते हुए भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है:

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदा च न।'

अर्थात्—"हमें फल की कामना न करते हुए केवल कर्म करना चाहिए। फल ईश्वर के हाथ है। वह जो दे वह प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।"

मिट्टी

ख़लील जिब्रान

वड़ी शान-शौकत और वैभव के साथ मिट्टी मिट्टी में से जन्म लेती है।

फिर यह मिट्टी बड़े गर्व और अभिमान से मिट्टी के ऊपर चलती-फिरती है।

मिट्टी मिट्टी से राजाओं के लिए राजभवन और लोगों के लिये ऊंची-ऊंची मीनार और सुन्दर-सुन्दर भवन निर्माण करती है। वह अद्भुत पुराण-कथाओं के ताने-वाने वुनती है, कठोर नियम और कानून वनाती है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सिद्धांतों और दर्शनों की रचना करती है।

जव यह सव कुछ हो चुकता है तो मिट्टी मिट्टी के जंजालों से उकता कर अपने प्रकाश और अंधेरे में से काली-काली भयानक छायाओं, कोमल-कोमल सूक्ष्म कल्पनाओं और मनमोहक मधुर-मधुर स्वप्नों की रचना करती है।

इस श्रम और काम से थक कर जव मिट्टी की पलकें वोझल हो जाती हैं तो फिर मिट्टी की नींद हारी-थकी मिट्टी को फुसलाती है। तव गहरी और शांत निद्रा में संसार की सव वस्तुओं को मिट्टी अपनी पलकों में वन्द कर लेती है।

फिर मिट्टी मिट्टी को सम्वोधन करके कहती है, "देख, मैं ही तेरा आदि हूं और मैं ही तेरा अन्त। तेरा आदि और अन्त सदा मैं ही रहूंगी, जवतक कि तारों का अन्त न होगा और चांद-सूरज जल-वुझकर राख का ढेर न हो जायंगे।"

हम स्वस्थ कैसे रहें

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

['जीवन-साहित्य' के पाठक समवतः जानते होंगे कि कांग्रेस के अध्यक्ष राजर्षि टंडनजी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रबल समर्थक हैं। अपने स्वयं के जीवन में उन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं। यहां हम उनके उस भाषण का सार दे रहे हैं, जो उन्होंने कुछ समय पूर्व नई दिल्ली में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमियों के समक्ष दिया था। उनके कुछ अनुभव भले ही हमारी कमजोरियों के कारण सर्वग्राह्य न हो सकें, लेकिन जीवन-शोधन के लिए निस्सन्देह उनमें पर्याप्त विचार-सामग्री मिलती है। इस भाषण का स्वयं टंडनजी देख गये हैं और अनेक स्थानों पर अपने हाथ से संशोधन करके इसकी उपयोगिता कई गुनी बढ़ा दी है।
—सम्पादक]

प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक जीवन का अंग है और प्रचलित प्रणालियों से कहीं अधिक अच्छी है। यह गांधीजी के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शन होगा यदि 'गांधी-स्मारक-निधि' की समग्र धन-राशि प्राकृतिक जीवन तथा प्राकृतिक चिकित्सा के गुणों के प्रचार-कार्य में खर्च की जाय।

जब कभी हम बीमार पड़ जायं तो हमें अपनी चिकित्सा प्रकृति पर छोड़ देनी चाहिए। यदि हम ठीक ढंग से रहते रहें तो हमें कोई बीमारी साधारणतः हो नहीं सकती। हमारी तीन-चौथाई बीमारियां ठीक तरह रहने से दूर हो सकती हैं।

लगभग १०० वर्ष से दवाइयों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है, जिसका भयंकर परिणाम हुआ है। जो व्यक्ति जीवन के प्रारम्भिक काल से ही दवाइयों के आदी हो जाते हैं वे कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकते। मैंने अपने शरीर पर परीक्षण किये हैं। अपने पुत्रों तथा मित्रों पर भी मैंने परीक्षण करके देखा है और अन्त में मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि बीमारियों का सबसे बढ़िया इलाज प्रकृति की शरण लेना है।

प्राकृतिक जीवन के साथ प्राकृतिक भोजन का विशद घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। बातों में बच्चे अन्न पर रहा हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि आग द्वारा पकाया हुआ अन्न मनुष्य-मात्र के लिए कैसे आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सकों का कर्त्तव्य है कि वे आग से पके अन्न के चलन को घटावें। उन्हें चाहिए कि प्रकृति को अनुभव मानें, बुद्धि का उपयोग कर और ठीक-ठीक निर्णय करें; क्योंकि भविष्य उनका है। मैं इस बात का सदैव विरोधी रहा हूं कि जैसा किताबों में लिखा है वैसा ही मान लिया जाय। मेरी राय में बुद्धि का ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय और जो बात बुद्धि-संगत लगे वही मानी जाय। इन्द्रियों से प्रबल मन होता है और मन से भी प्रबल बुद्धि होती है। मैं चिकित्सकों से निवेदन करता हूं कि वे पुरानी पद्धति पर आंख मूंद कर न चलें। अपनी बुद्धि से काम लें और देखें कि उनके प्रयोगों का शरीर पर क्या असर पड़ता है। उन्हें रूढ़िवादी नहीं होना चाहिए।

इंग्लैंड के बादशाह के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने, जिन्होंने जीवन का बड़ा अंश अर्वाचीन दवाइयों की पद्धति के अनुसरण में बिताया था, अपने अन्त समय के लगभग यह सम्मति दी थी कि यदि समस्त दवाइयां समुद्र में फेंक दी जावें तो मनुष्य-जाति के लिए यह लाभकर होगा। किन्तु समुद्र में रहने वाली मछलियों के लिए अहितकारक अवश्य होगा।

प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए यह उचित है कि वे धन कमाने की इच्छा के वशीभूत न हो जावें। कुछ लोग जो प्राकृतिक चिकित्सा करते हैं रोगियों को खींचने के लिए बिजली की मशीनों तथा अन्य आडम्बरों से अपनी दुकानें सजाने लगे हैं।

१९३० में जेल के भीतर और बाहर रहते हुए मैंने जो कुछ देखा है तथा अपने जीवन में मैंने जो प्रयोग किये हैं उनके आधार पर मैं कह सकता हूं कि हम बिना

आग द्वारा पकी वस्तुओं से निर्वाह कर सकते हैं। प्रकृति ने मनुष्य-मात्र के लिए कुछ अन्न पैदा किये हैं। इन्सान को छोड़ कर और कोई प्राणी आग द्वारा अपना भोजन नहीं पकाता। हाथी, शेर, बैल आदि भारी-भारी जन्तु प्राकृतिक भोजन करते हैं। मैं पूछना चाहता हूं कि फिर मनुष्य के लिए ही कृत्रिम रूप से पका हुआ अन्न क्यों आवश्यक है? यदि हम अपनी पूरी आयु तक जीना चाहते हैं तो प्रकृति के अनुसार ही चलें और स्वाभाविक अन्न, फल आदि का सेवन करें।

हमें नमक और चीनी के उपयोग से भी बचना चाहिए। नमक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। उससे प्यास बहुत लगती है। सन २०-२१ में मैंने लगभग छः मास के लिए नमक छोड़ दिया था और उस बीच भोजन के जल से अलग जल भी नहीं पिया। बाद में एक मित्र के कहने पर नमक से पका भोजन खा लिया। तब बड़ी प्यास लगी। इस तरह जब-कभी मैं नमक खाता हूं, बड़ी प्यास लगती है।

पानी भी अधिक नहीं पीना चाहिए। उसका प्रभाव दिल पर पड़ता है। दिल को व्यर्थ ही ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। यदि किसी को रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) की बीमारी हो तो नमक छोड़ देने से वह बहुत-कुछ ठीक हो सकती है। जेल में मेरे एक मित्र को ब्लडप्रेशर था। मैंने उनसे नमक और दाल छुड़वा दी। तीन दिन में ३० अंश ब्लडप्रेशर कम हो गया।

इसी प्रकार चीनी भी हानिकारक है। मैंने सन २०-२१ में ही चीनी का प्रयोग करना छोड़ दिया था। उस समय तो इसलिए छोड़ी थी कि विलायती चीनी आती थी, लेकिन बाद में इसलिए छोड़ी कि वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। श्वेत चीनी में कारबोहाइड्रेट तो रहता है; किन्तु साथ के अन्य स्वाभाविक पदार्थ निकाल दिये जाते हैं। लाल शक्कर में तो स्वाभाविक लवण होते हैं; लेकिन सफेद करने से वे निकल जाते हैं, जिससे चीनी तंदुरुस्ती के लिए हानिकर सिद्ध होती है। यदि तन्दुरुस्ती रखना चाहते हो तो गुड़ या लाल शक्कर खाओ या गन्ने का रस इस्तेमाल करो। गन्ने का रस सबसे अच्छा है। गांधीजी ने तो चीनी को सफेद जहर (White Poison) बताया है।

मैं केन्द्रीयभूत भोजन (Concentrated Food) से भी घबराता हूं। घी नहीं खाता। सूखी रोटी या कच्चे फल आदि का सेवन करता हूं। तिल मुझे बहुत पसन्द हैं। कुछ लोग कहते हैं कि घी खाने से ताकत आती है। यह तो एक भ्रांत धारणा है।

मैं दूध भी नहीं पीता। वह तो बच्चे के लिए होता है। तीन-चार वर्ष की आयु तक माता पालन-पोषण के लिए शिशु को दूध पिलाती है। जो बड़े-बूढ़े दूध पीते हैं वे अस्वाभाविक भोजन करते हैं। आपने देखा होगा कि यूनानी हकीम प्रायः दूध बहुत से रोगों में बन्द कर देते हैं। किसी भी दशा में दूध मनुष्य को अधिक नहीं पीना चाहिए।

शहद का प्रयोग भी मुझे अच्छा नहीं मालूम होता। वह तो मक्खियों का भोजन है।

किसी रोग को रोकने के लिए टीके लगाना अप्राकृतिक और हानिप्रद है। छूत के किसी रोग के कीटाणुओं के नाश करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि मनुष्य के अन्दर के रोग का सामना करने की शक्ति पैदा की जाय। दवाइयां कीटाणुओं का नाश नहीं करतीं। देखा जाय तो कीटाणु चारों ओर हैं, अन्दर और बाहर भी। तब हम किस प्रकार उनके प्रहार को रोक सकते हैं? टीके से कीटाणु एक बार मर जायेंगे; लेकिन फिर प्रवेश कर सकते हैं। टीके के प्रश्न पर वैज्ञानिकों को निष्पक्ष भाव से विचार करना चाहिए। मेरा मानना है कि टीके हानिप्रद हैं। टीके या तो अज्ञान के फल हैं, या लालच के। वैज्ञानिकों को स्वार्थलोलुप व्यक्तियों के चक्कर में न आकर स्वतंत्र रूप से सोचना चाहिए। अंध-विश्वासों से किसी बीमारी का इलाज नहीं हो सकता।

हमें शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए प्रातःकाल धूप का सेवन करना चाहिए। मैं सब कपड़े उतारकर प्रातः धूप का सेवन करता हूं। बहुत दिन हुए जब मैं बीमार पड़ गया था तब पुरी गया था। वहां पर समुद्र के किनारे मैं प्रातः धूप में बैठता था और समुद्र के जल से स्नान करता था। दवाइयों से तो मैं घबराता रहा हूं। एक बार मैं बहुत बीमार पड़ गया। डाक्टरों ने मुझ पर बोलने के विषय में पाबन्दी लगाई। वह ठीक थी। उससे

मुझे लाभ हुआ। मुझसे लखनऊ में सिविल सर्जन ने कहा था कि मैं भाषण देना बन्द कर दूं तो पांच साल और जी सकूंगा। यह सन् ३१ की बात है। इन वर्षों में बोलने का काम तो मुझे बहुत पड़ा; लेकिन मैं अभी तक जीवित हूं।

सन् '२५ में मैं लाहौर गया था। उस समय मैं एक लड़के को भी साथ ले गया था। उसको जूड़ी आ गई तो मैं उसे गीले वस्त्र में लपेट देता था। इससे उसका ज्वर कई दिन में बहुत हल्का हो गया। किन्तु जब लाला लाजपतरायजी आये उन्होंने आग्रह की कि कुनैन दो। चूंकि मेरे मुंह से 'हां' निकल गया, अतः कुनैन का इस्तेमाल करना ही पड़ा। मैंने उसे लगभग दो-दो ग्रेन कुनैन लगातार दो या तीन दिन खिला दी। ज्वर तो समाप्ति के समीप ही था, उसकी अवधि भी पूरी थी। वह समाप्त हो गया। मैंने देखा है कि एक-एक बीमार को डाक्टर लोग १०-२० ग्रेन कुनैन प्रतिदिन कई दिनों तक देते हैं, उससे बीमारी थोड़ी देर के लिए दब जाती है, लेकिन फिर समय पाकर उभर आती है। दवाइयों को शरीर में भरने से कोई लाभ नहीं, उल्टे शरीर का नाश ही होता है। मेरा सुझाव है कि लोग विष भरी दवाइयों का सेवन न करें। प्रकृति के बताये मार्ग पर चलें, प्राकृतिक शुद्ध जीवन व्यतीत करें। इसी में सबका कल्याण है।

प्राकृतिक चिकित्सक कैसा हो?

श्री धीरूभाई दीक्षित

प्राकृतिक चिकित्सा की सफलता का मुख्य आधार चिकित्सक के आचरण पर अवलम्बित है। जितना चिकित्सक शुद्ध, संयमय जीवन जीनेवाला, आत्म-दर्शन की भूख और प्यास निरन्तर अनुभव करनेवाला होगा उतना ही उसका प्रभाव रोग और रोगी पर पड़ेगा। एक बार उरलीकांचन में एक ऐसा मरीज आया जो टाइफाइड से डबल निमोनिया में प्रवेश कर चुका था और जिसे तीन डाक्टरों ने देखकर आशा का परित्याग किया था कि वह अधिक-से-अधिक छत्तीस घंटे जियेगा, लेकिन इन डाक्टरों की रिपोर्ट सुनकर पूना से पूज्य बापूजी (गांधीजी) अपनी मोटर से ठीक १२ बजे दोपहर को उरलीकांचन आ पहुंचे और मरीज को देखकर एक उंगली हिलाते हुए बोले, "यह नहीं जाता है।" उन्होंने छाती पर लगे एण्टीफ्लोजिस्टीन के लेप को फौरन निकाल देने की आज्ञा दी और उसकी जगह गरम मिट्टी की पट्टी लगाने को कहा। अनन्तर इलाज का सारा तरीका समझाते हुए कहने लगे, "मरीज को सुबह-शाम एक-एक एनिमा, स्पंजिंग और लगातार हर पन्द्रह मिनट जलपान और पेडू पर गरम-ठंडे पानी की पट्टी बदलते रहना। तीन-तीन घंटे से चार-चार औंस मोसम्बी का रस। इस क्रम में अगर आलस्य या लापरवाही रहेगी तभी मरीज मर सकता है।" आज्ञा के अनुसार चिकित्सा की गई और मरीज पन्द्रह दिन में बिल्कुल अच्छा हो गया। आज भी वह तन्दुरुस्त है। मतलब यह कि चिकित्सक (बापू) जितना पवित्र और निर्मल था, उतना ही वह रोगी पर अचूक असर डाल सका।

●

'रहिमन' भेषज के किये, काल जीत जो जात।
बड़े-बड़े समरथ भये, तौ न कोऊ मरि जात॥

····

'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥

चिकित्साओं का मूलाधार एक

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

निसर्गोपचारक जिसे अपनी ही प्रणाली मानते हैं, वह वस्तुतः उन्हीं की प्रणाली नहीं है। दूसरे उपचारक भी उसी प्रणाली का अनुसरण करते हैं। प्रकृति ही सदा रोग दूर करती है, इस बात में औषधोपचार की सभी विचार-धाराएं एकमत हैं। शरीर की जीवनी शक्ति ही बीमारियों को दूर करती है। वर्तमान औषध-विज्ञान के सभी डाक्टर इस सत्य को भली प्रकार जानते हैं कि जीवधारी शरीर अपनी जीवनी-शक्ति के द्वारा ही नीरोग होता है, दवा-दारू से नहीं।

चिकित्सा-विज्ञान प्रकृति को सहायता देनेवाले विभिन्न तरीकों को सिखाता है। वह बताता है कि देह को रोग-मुक्त करने की प्रक्रिया में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर करने तथा शरीर के पुनर्गठन के समय उठ खड़े होनेवाले खतरों के विरुद्ध शरीर की किस प्रकार सहायता की जा सकती है। शल्य (Surgical) चिकित्सा भी इसका अपवाद नहीं है। वह भी प्रकृति को सहायता देने की इस योजना का ही अनुसरण करती है। सर्वोत्तम चिकित्सकों का तो नियम ही होता है कि कम-से-कम औषधियों का प्रयोग करें और शरीर के रग-रेशों की प्राकृतिक प्रवृत्ति को गतिशील बनाने के लिए जो कुछ आवश्यक है उसपर ध्यान केन्द्रित करें। इस दृष्टि से सभी पद्धतियां वस्तुतः प्राकृतिक चिकित्सा हैं।

प्रकृति रोगों को दूर करती है, अन्य किसी चीज से रोग दूर नहीं होते। इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ जैसा है, उसे वैसे ही छोड़ दिया जाय। स्मरण रखना चाहिए कि शरीर में कुछ खराबी होती है तभी रोग पैदा होता है। उस अवस्था में शरीर से उस खराबी को दूर करने के लिए थोड़ी-बहुत सहायता की आवश्यकता होती है। तनिक-सी मदद से बड़ा अन्तर पड़ जाता है और उस मदद का त्याग नहीं किया जा सकता। जब अवस्था कुछ सुधर जाती है, शरीर की प्राकृतिक शक्ति अपना जोर लगाने लगती है तब शोधन-कार्य की गति बढ़ जाती है।

निसर्गोपचारकों तथा डाक्टरों व दूसरों की चिकित्सा में केवल कुछ अंशों का ही अंतर है। सिद्धान्त अथवा समस्या को सुलझाने के ढंग में कोई अन्तर नहीं है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, आजकल के सर्वोत्तम डाक्टर तो प्रकृति के मार्ग में कम-से-कम बाधा उपस्थित करते हैं और शरीर की शक्तियों को मदद देने पर ध्यान देते हैं। वे डाक्टर तो निकम्मे होते हैं, जो अत्यधिक औषधियों का प्रयोग कराते हैं। वास्तव में अच्छे डाक्टर तो प्रकृति के कार्य को आरम्भ कराने तथा उसे अच्छी तरह आगे बढ़ाने के लिए जो आवश्यक होता है, बस वही करते हैं।

एक बात और याद रखनी चाहिए। विकास-प्रक्रिया में प्रकृति का कुछ ऐसा स्वभाव बन गया है कि जितना करना चाहिए उससे वह कुछ अधिक कर जाती है। जब शरीर में कहीं घाव हो जाता है या अन्य कुछ गड़बड़ हो जाती है अथवा कोई छूत लग जाती है, तो रक्त में तेजी आ जाती है या सूजन हो जाती है। इससे प्रकृति की चिन्ता बहुत अधिक बढ़ जाती है। तब आवश्यक हो जाता है कि उसकी प्रवृत्ति को थोड़ा दबाकर रखा जाय, जिससे वह अपनी उचित सीमा का उल्लंघन न करने पावे। बहुत-सी वस्तुएं, जिन्हें डाक्टरी इलाज कहा जाता है, प्रायः वे उपचार होते हैं, जो प्रकृति की उन शोधन-शक्तियों के जोर को कम करने के लिए किये जाते हैं, जिनसे कष्टदायी लक्षण पैदा हो जाते हैं और खतरनाक तक सिद्ध होते हैं; प्रकृति को प्रायः अपने विरुद्ध संरक्षण की आवश्यकता होती है। अच्छे उपचार का अर्थ है प्रकृति को हर तरह की सहायता देना, कभी-कभी प्रकृति के विरुद्ध भी।

सभी इलाज प्राकृतिक उपचार हैं। प्रश्न है कि वह उपचार विवेकपूर्ण तथा सुचारु है अथवा कि प्रकृति के मार्ग में अनावश्यक हस्तक्षेप है। यदि अनावश्यक हस्तक्षेप है तो वह मिथ्या उपचार है।

केन्द्रित करने से मिट्टी की पट्टी, वाष्पस्नान और मालिश द्वारा कारगर इलाज के लिए मार्ग तैयार होता है।"

स्वयं गांधीजी में भौतिक वस्तुओं पर विजय पाने की विलक्षण मानसिक शक्ति थी।

अपने वयस्क जीवन में गांधीजी निरन्तर स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्य में लगे रहे और युवावस्था में भी, जबकि उन्होंने मृत्यु-शैया पर पड़े अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा स्वयं की। जहां तक उनकी पहुंच हो सकती थी, उन्होंने स्वयं प्रत्येक व्यक्ति की टहल और चिकित्सा की। दूसरों की पीड़ा उन्हें पीड़ित करती थी। दया उनमें अपार थी।

['दि लाइफ़ ग्राव महात्मा गांधी' से]

प्राकृतिक चिकित्सा

श्री घनश्यामदास बिड़ला

प्राकृतिक चिकित्सा का शब्दार्थ क्या है, यह विवाद अप्रस्तुत है। असल में तो जो माने इसके जगत् में माने जाते हैं वही हमें स्वीकृत होना चाहिए और वह यह है कि जो चिकित्सा व्याधि का मुकाबिला दवा से न करके, पानी, भाप, मिट्टी, सूर्य-किरण इत्यादि और खान-पान से करती है वही प्राकृतिक चिकित्सा है। पर मेरा अपना मत है कि यह अर्थ संकीर्ण है और इस अर्थ को व्यापक करने से ही इस प्रणाली की हम सेवा कर सकेंगे। असल में तो जो उपचार रोगों से लड़ने के लिए प्रकृति को पुष्टि दें, वे सभी उपचार प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से पुकारे जाने चाहिए।

बात यह है कि शरीर के भीतर एक उपचारक है जिससे हमारी जान-पहचान कम है और वह यद्यपि डाक्टरों और वैद्यों से कहीं अधिक प्रभावशाली और स्वयं-सिद्ध ज्ञानी है; पर चूंकि हम उसे कम जानते हैं, हम उसके पास न जाकर अक्सर वैद्य-हकीमों के दरवाजे खटखटाना ज्यादा पसन्द करते हैं। यह उपचारक विषजन्य चीजों को शरीर में प्रवेश करने से रोकता रहता है, उनसे लड़कर उन्हें भस्मीभूत कर देता है, या उन्हें निकाल बाहर फेंकता है। हैज़ा, टाइफायड, क्षय के अनगिनत कीटाणु वातावरण में फैले रहते हैं; पर वे हरेक को अपना शिकार नहीं बना सकते; क्योंकि इन कीटाणुओं को भी क्षेत्र चाहिए और क्षेत्र का द्वार उन्हें खुला मिलना चाहिए। यदि क्षेत्र का स्वामी सजग है तो वह विजातीय कीटाणुओं के लिए क्षेत्र का दरवाज़ा बन्द रखता है। इसलिए क्षेत्र के इसी स्वामी अर्थात् प्रकृति को किसी भी तरह से सहायता देना, उसे बलिष्ट बनाना, इसीका नाम प्राकृतिक चिकित्सा होना चाहिए। यह सहायता चाहे हम भाप से दें, या औषधि से।

पर कभी-कभी हमारी नादानी-भरी छेड़-छाड़ से प्रकृति को सहायता देने के बदले हम उसके लिए परेशानी पैदा कर बैठते हैं। इसलिए कौन-सी चिकित्सा प्रकृति को सहायता देती है और कौन-सी उसके लिए परेशानी पैदा करती है, यह जानना चाहिए। पर यह मामला सहज नहीं। यह तो ज्ञान का विषय है, जो अन्वेषण से और अनुभव से ही आता है। इसलिए 'तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'—नम्रता-पूर्वक दिमाग के दरवाजे को खुला रखकर और ज्ञानियों के पास जाकर हमें उस ज्ञान को ढूंढ़ना चाहिए। किसी भी चिकित्सा की महज़ इसलिए कि वह मिट्टी और पानी के दायरे के बाहर है या कि कुनैन और पेनिसिलिन के सामने गंवारू है अवहेलना करना मनुष्य-जाति के प्रति अन्याय है।

ज्यों-ज्यों संसार की प्रगति होगी, ज्ञान बढ़ेगा और नये-नये आविष्कार होंगे, पुराने निर्णय हमें बदलने पड़ेंगे। पर जितना आविष्कार हो चुका है उसमें से कुछ को हमने वेदांत-ज्ञान का अन्त मान कर ग्रहण कर लिया है। इसमें कुछ मजबूरी भी है, क्योंकि जबतक यह साबित न हो कि दूसरी कोई अच्छी प्रक्रिया ईजाद

हो चुकी है तबतक उस अनुभूत चीज़ की अवहेलना न हो, और अवहेलना करना हठधर्मी भी होगी।

हैजा या चेचक का टीका लगाना या न लगाना इस पर कुछ लोगों में मतभेद है। पर यदि प्रकृति का टीका सहायता देता हो तो टीका लगाना यह विवाद के पात्र में डालना रोगी के लिए खतरनाक है। पर यह निश्चित करना भी विज्ञान-वेत्ताओं की जिम्मेदारी है और विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि टीका लगाना ही कर्तव्य है। यह भी सही है कि विज्ञानवेत्ता भी अभी अध्ययनभूमि की राह में चक्कर काट रहे हैं। मुमकिन है कि आगे जाकर कई बातें बदल जायं, कुछ विचार भी बदल जायं। पर जबतक टीका लगाना अच्छा माना जाता है तबतक 'महाजनो येन गतः सः पंथा' ही मान्य होना चाहिए।

मुझे याद है कि आश्रम में एक पागल सियार ने कई आदमियों को काट लिया था। गांधीजी ने आग्रह के साथ उन लोगों को इन्जेक्शन लेने के लिए कसौली भेजा। मुझे भी गांधीजी ने एक बार लिखा था कि उपवास और भोजन-चिकित्सा की एक मर्यादा है। इसलिए मुझे आपरेशन करा लेना चाहिए। गांधीजी सेवाग्राम में एक हस्पताल भी चलाते थे और प्राकृतिक चिकित्सा भी देते थे और इधर स्वयं भी ऑपरेशन के लिए डाक्टर की छुरी के शिकार बने। साधारणतया दवाओं के अति आग्रह से हमें उतनी ही नफरत होनी चाहिए जितनी कि जल-चिकित्सा की अत्यधिक हिमायत से। किसीको जल-चिकित्सा मुफीद हो सकती है तो किसी समय औषधि की भी आवश्यकता हो सकती है। गांवचाली कहता है: "केने बैंगन वायला केने बैंगन पथ्य।" यह गांव-गुजरी गुर्की बात है। किसी का वही अमृत है तो किसी को जहर।

मेरा खयाल है कि जीवन में मध्यम मार्ग श्रेय है। अति से बचना अच्छा है, क्योंकि मध्यम मार्ग सचाई से दूर नहीं भटक सकता। जो चीजें अभी अनिश्चित हैं, उनके लिए मध्यम मार्ग इसलिए श्रेय है कि सत्य का हम बायें और दाहिने दोनों ओर से पकड़ सकते हैं। यदि हम रास्ते के बाम या दक्षिण छोर को ही ज़िद के साथ पकड़ कर बैठ जायं तो फिर सत्य को पकड़ने में हमें कठिनाई पड़ेगी।

इस सारी बहस का मतलब इतना ही है कि प्रकृति को शरीर तन्दुरुस्त रखने के लिए जिस मात्रा, क्रिया या औषधि की आवश्यकता है उसका उपयोग करना, यही धर्म है और यही प्राकृतिक चिकित्सा है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का जन्म और विकास

स्वामी कृष्णानन्द

[प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली यद्यपि है तो पुरानी, तथापि इसका आधुनिक विकास पिछले सौ वर्षों के अंदर ही हुआ है। इसीलिए यह प्रणाली प्राचीन होते हुए भी नवीन है। प्रस्तुत लेख में इसके आजतक के विकास-क्रम का सिंहावलोकन तो किया ही गया है, इसके उन्नायकों के जीवन पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है, जिससे लेख उपादेय होने के साथ-साथ रोचक भी हो गया है। —सम्पा०]

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली कोई नई प्रणाली नहीं है। इसका जन्म महात्मा हिपोक्रेटिज के (४६० से ३७७ वर्ष ईसा के जन्म के पूर्व) समय में हुआ था। अलबत्ता लोग हिपोक्रेटिज़ को औषधि-चिकित्सा प्रणाली का जन्मदाता मानते हैं, लेकिन सच पूछिये तो सत्य में उन्होंने जीवन-पर्यन्त प्राकृतिक नियमों के अनुसार रोगोपचार का प्रचार करते रहने के ही कारण प्रसिद्धि पाई थी। उन्होंने 'बुखार को दिया' के सिद्धान्त

का अनुसंधान किया, जो प्राकृतिक चिकित्सा के दर्शन की रीढ़ है और जिसे औपचारिक रोग की खतरनाक अवस्था कहते हैं।

लेकिन फिर भी यह कहा जा सकता है कि आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का आंदोलन आज से प्रायः सौ वर्ष पूर्व विंसेंज़ प्रिस्निज़ (Vincenz Priesnitz) के समय से हुआ। प्रिस्निज़ एक साधारण बुद्धिवाला अशिक्षित किसान था। उसने सन् १८२९ में ग्रेफेनबर्ग में एक चिकित्सा-गृह की स्थापना की। वह एक बड़ा सूक्ष्मदर्शी और अंतर्दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति था। वह पहले स्वयं अस्वस्थ रहा करता था और अपने को पुनः स्वस्थ बनाने के लिए प्रयत्नशील हो रहा था। इसी सिलसिले में उसने ठंडे जल में रोगों के दूर करने की अद्भुत शक्ति का अनुसंधान किया। इसका उसने अपने स्वास्थ्य-गृह के रोगियों पर खुलकर प्रयोग किया।

हालांकि प्रिस्निज़ पूरी तौर से जल-चिकित्सा पर ही विश्वास करता था, लेकिन उसने कई तरह के रोगों के दूर करने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। उसका स्वास्थ्य-गृह रोगियों और पीड़ितों के लिए तीर्थ-स्थान बन गया। उपचार के लिए सारे संसार के लोग झुंड-के-झुंड वहां पहुंचने लगे।

अन्य कई उन्नायकों की भांति प्रिस्निज़ को भी काफी विरोध का सामना करना पड़ा। उसकी सफलता को देखकर तत्कालीन पुरातन-पंथी चिकित्सक उसके विरुद्ध हो गये। झूठी निन्दा, अपयश, उपहास, गालियां, यहां तक कि अदालत में कानूनी कारवाई, इन सबका बारी-बारी से उसे सामना करना पड़ा। लेकिन अंतमें इस महान् प्राकृतिक चिकित्सक को अपने विरोधियों पर विजय मिली। इस उत्पीड़न से प्रिस्निज़ की कीर्ति एवं प्रतिष्ठा और बढ़ गई। इन विरोधी प्रदर्शनों ने उसके लिए एक प्रकार के विज्ञापन का ही कार्य किया।

उसने अपनी संस्था के समीप के रास्ते के एक पत्थर के खम्भे पर यह अंकित कर दिया था—"तुम्हें धीरज रखना होगा।" इससे यह जाना जा सकता है कि इस साधारण व्यक्ति की कैसी प्रतिभा थी और अपने कार्य में सफलीभूत होने का उसका कितना दृढ़ विश्वास था। इस वाक्य के द्वारा उसने अपने विरोधियों को शिष्ट शब्दों में चेतावनी दी थी। उसने यह अनुभव किया कि पुरानी बीमारियों को दूर करने का एकमात्र साधन यह है कि शरीर के भीतर की रोग-निवारक शक्ति को तीव्र बनाया जाय, जिससे वह गलत भोजन और रहन-सहन के कारण शरीर में एकत्र हुए विष को बाहर निकाल दे। लेकिन यह प्रायः एक ऐसा कार्य है जिसमें अधिक समय लगता है तथा इसके लिए बड़े धैर्य की आवश्यकता होती है।

जे. स्क्रॉथ

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के दूसरे उन्नायक जोहन स्क्रॉथ (Johannes Schroth) का भी जन्म प्रिस्निज़ के जन्म-स्थान से कुछ ही मील की दूरी पर हुआ था। वह एक आस्ट्रियन था। उसने मुख्यतः व्यक्तिगत अनुभव के ही द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया। आरंभ में वह केवल घायल कुत्तों तथा घोड़ों का ही उपचार करने का प्रयत्न करता था, लेकिन शीघ्र ही उसने मनुष्यों का भी उसी प्रणाली से इलाज करना शुरु किया। उसकी स्थानीय कीर्ति तेजी के साथ दूर तक फैल गई। चेकोस्लोवाकिया के लिण्डेवीज नामक स्थान पर, जहां उसने एक स्वास्थ्य-गृह खोला था, सारे संसार के रोगी पहुंचने लगे।

प्रिस्निज़ के संबंध में जो बातें घटित हुई थीं उनका सामना स्क्राथ को भी करना पड़ा। उसके समकालीन डाक्टरों तथा चिकित्सकों ने उसका भी विरोध किया। लगभग २० वर्ष तक उसे घृणित और अनुचित गालियां सहनी पड़ीं, यहां तक कि उस कार्य के लिए जेल भी जाना पड़ा। आगे चलकर सन् १८४९ में विन्टमबर्ग के ड्यूक ने हस्तक्षेप किया। ड्यूक के पैर में बुरी तरह से जख्म हो गया था और उनकी हालत नाजुक हो गई थी। उस समयके पुरातन-पंथी डाक्टर-वैद्य उसे अच्छा न कर सके। आखिर डाक्टरों ने सलाह दी कि अब उसके अच्छा होने का केवल यही एक उपाय रह गया है कि उसका पैर काट दिया जाय। इसके सिवाय बचने की और कोई आशा नहीं। इसपर ड्यूक ने स्क्रॉथ की संस्था में पहुंचाये जाने

के लिये जोर दिया। वहाँ पहुँचने के कुछ ही महीने बाद वे पूरी तौर से चंगे और स्वस्थ होकर लौटे।

इसके बाद उन्होंने अपना रोग दूर होने का पूरा-पूरा विवरण प्रकाशित करके समस्त आस्ट्रिया भर में वितरित करवाया। श्रॉथ के उत्पीड़कों को यह अनुभव हो गया कि उनके लिए श्रॉथ का और अधिक विरोध करना बेकार है। कुछ नये ख्याल के तथा प्रगतिशील चिकित्सकों ने भी श्रॉथ की चिकित्सा प्रणाली का मनन किया और उसकी नकल भी करने लगे।

इधर प्रिस्निज नहाने और झरनों के शीतल जल के प्रयोग पर निर्भर करता था, उधर श्रॉथ ने पट्टी के रूप में नम-गर्मी के रोग-निवारक प्रभाव का महत्व दिया। उसने अपनी प्रणाली में सम्बन्धित एक आहारशास्त्र बनाया। उसकी सारी चिकित्सा 'श्रॉथ-चिकित्सा' कहलाई।

क्नाइप

श्रॉथ का समकालीन प्राकृतिक चिकित्सक एक बवेरियन था, जिसका नाम था सेबेस्टियन क्नाइप। वह न केवल एक महान् चिकित्सक ही था, बल्कि एक शिक्षक तथा लोकसेवी भी था। ४५ साल से अधिक समय तक एक स्वास्थ्य-गृह चलाता रहा, जिसमें उसने बहुत अधिक सफलता के साथ रोगियों की चिकित्सा की। उसने प्रायः हर तरह के रोगों को दूर करने में सफलता पाई।

क्नाइप जल-चिकित्सा का बहुत बड़ा समर्थक तथा उसे प्रयोग में लानेवाला व्यक्ति था। 'जल-चिकित्सा' नामक उसकी पुस्तक आज भी व्यापक रूप से पढ़ी जाती है। वह रोगी की बीमारी तथा शारीरिक प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार के तापमान के जल का प्रयोग करता था। ७६ साल की अवस्था में सन् १८९७ में उसकी मृत्यु हुई।

आर्नॉल्ड रिक्ली

किरण स्नानों की एक नव चिकित्सा-प्रणाली का आधार आर्नोल्ड रिक्ली (Arnold Rickli) था। उसने आस्ट्रिया में क्रेन प्रान्त के वेल्डस नामक स्थान पर वायु और धूप की चिकित्सा का सेनेटोरियम स्थापित किया। यह संस्था संसार में अपने ढंग की एक थी। यहाँ पर चिकित्सा की जो पद्धति निकाली गई उसकी नकल संसार के अन्य सभी चिकित्सकों ने की। यह वायु-चिकित्सा (Atmospheric Cure) के नाम से प्रचलित है। इसका प्रयोग वे मुख्यतः वक्ष व शिरा के इलाज के लिए करते हैं। रिक्ली न केवल समूचे शरीर पर वायु, प्रकाश और धूप के आरोग्यकारी प्रभाव का समर्थक तथा उपयोग-कर्ता था बल्कि वह कट्टर निरामिष भोजी भी था।

प्राकृतिक चिकित्सा के नियम, जिनका वह प्रचार करता था, कितने ठोस हैं इसका वह स्वयं एक आश्चर्यजनक उदाहरण था। उसने ९७ साल की लम्बी आयु पाई थी और मरने के समय तक वह स्वस्थ और स्फूर्तिवान बना रहा।

हेनरिच लेमेन

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली डा० हेनरिच लेमेन (Heinrich Lamann) की बहुत अधिक ऋणी है। डा० हेनरिच जर्मन थे। उन्होंने ड्रेसडेन (Dresden) में एक स्वास्थ्य-गृह स्थापित किया था। मनुष्य जो भोजन करता है उसमें स्वास्थ्य के लिए आवश्यक कौन-कौन से गुण होने चाहिए? इसके लिए कुछ का मापदण्ड स्थापित करने वाले डा० लेमेन ही थे। आहार विज्ञान को उन्होंने जो सबसे बड़ी सहायता पहुँचाई वह उनका स्वास्थ्य के लिए आवश्यक लवणों से सम्पन्न प्राकृतिक खाद्यों के महत्व का अनुसन्धान था। लेकिन उन्होंने जो यह प्रमाणित किया कि साधारण तौर से काम में लाये जानेवाले नमक के अत्यधिक प्रयोग से बड़ी हानि पहुँच सकती है तथा दमा आदि पीड़ा जिनकी सूजन की वजह है, उसके लिए प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली सदैव उनकी चिरऋणी रहेगी।

लुई कूने

सम्भवतः प्राकृतिक चिकित्सा के सबसे बड़े आचार्य

लुई कूने थे। उनका भी जन्म जर्मनी में हुआ था। अभी वह केवल २० साल की अवस्था के ही हो पाये थे कि उनका स्वास्थ्य बिल्कुल नष्ट हो गया। डाक्टरी चिकित्सा कराकर उनके माता-पिता मर चके थे। पुरातन-पंथी डाक्टरों के इलाज से जब वह ऊब गये तो उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली जिसके बाद शीघ्र ही उनके स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। इसका उन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे अब इसके भक्त बन गए। उन्होंने कई साल तक प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का अध्ययन किया। अनन्तर सन् १८८३ में उन्होंने लिपज़िग (Leipzig) में एक स्वास्थ्य-गृह खोला।

वह जिन तरीकों से रोगियों का उपचार करते थे, उनमें धूप-स्नान, वाष्प-स्नान, कटि-स्नान और मेहन-स्नान थे। उनका मुख्य कथन था—"केवल सफाई ही रोग को दूर कर सकती है।" वह रोगी को निरामिष आहार अर्थात् सब्जी और रोटी खाने को बताते। रोगी की परीक्षा के लिये वह मुख्यतः रोगी के चेहरे और उसकी गर्दन का निरीक्षण करते। 'नवीन चिकित्सा विज्ञान' (The New Science of Healing) और आकृति-निदान (The Science of Facial Expression)—ये दो उनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। इनमें से पहली पुस्तक का संसार की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। लूई कूने का यह सिद्धान्त कि सभी रोगों की जड़ एक ही है अथवा मूल रूप में सभी तरह के रोग समान हैं—आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा की एक आधार-शिला है।

एडोल्फ जुस्ट

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के एक अन्य आचार्य एडोल्फ जुस्ट (Adolf Just) थे, जिन्होंने जर्मनी में हार्ज पर्वत (Harz Mountains) पर 'जंगबार्न' नामक सेनेटोरियम स्थापित किया था। वे मिट्टी के प्रयोग के जन्मदाता हैं। वे नंगे पैर चलने-फिरने पर भी जोर देते थे ताकि पृथ्वी की प्राणदायक शक्तियों से शरीर का सम्पर्क कायम हो सके। उन्होंने 'प्राकृतिक जीवन की ओर' (Return to Nature) नामक पुस्तक में यह दिखाया है कि प्राकृतिक रहन-सहन के द्वारा मनुष्य किस प्रकार अपना 'कायाकल्प' कर सकता है। उनका कहना है कि अनुचित रहन-सहन तथा प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने के ही कारण मनुष्य को रोग होते हैं। एडोल्फ जुस्ट टीका लगवाने के विरोधी थे।

जेम्स सी० जैक्सन

प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का निर्माण यूरोप में ही नहीं हुआ है। इसे आधुनिक रूप देने में अमरीका का भी हाथ रहा है। प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के प्रथम अमरीकन उन्नायक जेम्स सी० जैक्सन (James C. Jackson) थे। उनका जन्म सन् १८११ में हुआ था। पैंतीस साल की अवस्था में वे बीमार पड़े। अमरीका के डाक्टरों ने रोग को असाध्य बताकर जवाब दे दिया। चारों तरफ से निराश होकर वह साइलस ओ० ग्लीसन (Silas O. Gleason) की, जो प्रिस्निज़ के शिष्य थे और जिन्होंने अमरीका में जल-चिकित्सा-गृह खोला था, शरण में आये। वहां पर एक साल के भीतर ही उनकी हालत काफी सुधर गई। उसके बाद वे ग्लीसन के साझीदार बन गये। इसके साथ ही उन्होंने एक मेडिकल कालेज में अध्ययन करना भी आरम्भ किया। वहां से उन्हें डाक्टरी करने का लाइसेंस मिला। बाद में उन्होंने डैन्सविली (Dans-villi) न्यूयार्क में 'जैक्सन सेनेटोरियम' की स्थापना की। आगे चलकर उसकी गणना अमरीका की सर्व-प्रसिद्ध स्वास्थ्य-संस्थाओं में की जाने लगी। जैक्सन ने दवाइयों का बहिष्कार करके जल, विश्राम, वैज्ञानिक व्यायाम, आहार, मानसोपचार तथा अन्य प्राकृतिक उपचारों का सहारा लिया। उनका आदर्श वाक्य था: "उचित रहन-सहन के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करो।" उनकी मृत्यु ८५ वर्ष की अवस्था में हुई। उनके मरने के बाद उनके पुत्र डा० जेम्स एच० जैक्सन उस सेनेटोरियम को चलाते रहे। अब हाल ही में वह संस्था अमरीका के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक बरनर मैकफेडेन की संरक्षकता में आ गई है।

रसेल टी० ट्राल

अमेरिका के दूसरे प्राकृतिक चिकित्सा के उन्नायक डा० रसेल टी० ट्राल (Dr. Russel T. Trall) थे, जिन्होंने पहले-पहल, न्यूयार्क, में हाइजिनिक थेराप्यूटिक कालेज की स्थापना की। वह प्राकृतिक जीवन और रोगोपचार के सम्बन्ध में विश्व-विख्यात पुस्तक लेखक थे। यद्यपि उन्हें पुरातनपंथी मेडिकल स्कूल में शिक्षा दी गई थी, तथापि वे आगे चलकर प्राकृतिक चिकित्सक बन गये।

जे० एच० केलॉग

अमेरिका के एक दूसरे महान् वयोवृद्ध प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्य डा० जे० एच० केलाग (Dr. J. H. Kellong) थे जो मिचीगन (Michigan) के संसार-प्रसिद्ध बैटिल क्रीक सेनेटोरियम के डाइरेक्टर थे। जल चिकित्सा, मालिश-क्रिया, धूप-चिकित्सा आदि अनेक विषयों की पुस्तकें लिखनेवाले आप दूसरे विश्व-विख्यात अमेरिकन लेखक हैं।

हेनरी लिण्डल्हार

डा० हेनरी लिण्डल्हार (Dr. Henry Lindlahr) एक दूसरे अमेरिकन आचार्य हैं, जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली की विचारधारा और उसके कार्यों पर निर्णयात्मक प्रभाव डाला है। उन्होंने एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसका अनुसरण आजकल के सभी प्राकृतिक चिकित्सक करते हैं। आप का कहना था, 'प्रत्येक तीव्र रोग प्रकृति की रोग-निवारण शक्ति का परिचायक है।' आपका विश्वास है कि मनुष्य को अपने जीवन में आये दिन जो तरह-तरह की भयानक बीमारियों का सामना करना पड़ता है उसका मुख्य कारण यही है कि वह आरम्भ के रोगों को औषधियों और सुइयों के द्वारा दबाने का प्रयत्न करता है। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के सभी विविध पहलुओं में सहकारिता स्थापित करके उसे एक पूर्ण विज्ञान का रूप देने में असाधारण कार्य किया। चक्षु-विज्ञान (Iridiagnosis) के वे जोरदार समर्थक थे। उन्होंने अपने नाम से शिकागो और एलमहर्स्ट में दो सेनेटोरियम खोले। 'Iridiagnosis' और 'The Philosophy and Practice of Nature Therapentic'—ये उनकी दो प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। डा० लिण्डल्हार पहले प्राचीनपंथी डाक्टरी चिकित्सा-प्रणाली के अनुसार रोगियों की चिकित्सा करते थे। एकाएक वह स्वयं बीमार पड़ गये। बीमारी की हालत में उन्हें जो कटु अनुभव हुए उनसे वे यह समझ गये कि औषध विज्ञान और शस्त्र-शास्त्र उनकी सहायता पहुँचाने में कितने असमर्थ हैं। अनन्तर उन्हें चिकित्सा का एक नया मार्ग—एक नया सिद्धान्त—मिला और वह था प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त।

टिलडेन

अमेरिका के प्रायः सभी प्राकृतिक चिकित्सकों में डा० जे. एच. टिल्डेन (Dr. J. H. Tilden) का स्थान सबसे ऊँचा है। उनका कहना है कि उपचार की ठीक विधि यह है कि उन आदतों को रोक दिया जाय जो स्वस्थ रहने के लिये विघातक हैं और सीखा जाय कि किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। डा० टिल्डेन बड़े लेखक और विचारक हैं। उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'बिगड़ा स्वास्थ्य' (Impaired Health) है।

बेनेडिक्ट लस्ट

अगर यहाँ पर डा० बेनिडिक्ट लस्ट (Dr. Benedict Lust) के नाम का उल्लेख न किया जाय तो प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास अधूरा रह जायगा। डा० लस्ट आचार्य क्नाइप के शिष्य थे और अमेरिका के एक अग्रगण्य प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी कालेज के प्रधान थे।

अन्य आचार्य

इसी प्रकार डा० डिवी (Dewey) और एल्फ्रेड डब्लू० मेकॉन, अमेरिका के सुप्रसिद्ध आहार-शास्त्री, डा० एण्ड्रू टी स्टिल, आस्टियोपैथी के जन्म-दाता और काइरोप्रैक्टिक के संस्थापक डा० डेनियल डी० पामर (Daniel Palmer) के नाम भुलाये नहीं जा सकते।

आरोग्य की कुञ्जी

महात्मा गांधी

शरीर और तन्दुरुस्ती

शरीर की जानकारी के पहले हमें आरोग्य का अर्थ जान लेना चाहिए। आरोग्य का मतलब है तंदुरुस्ती। जिसका शरीर व्याधिरहित है, साधारण काम करने योग्य है, अर्थात् जो बिना थके रोज दस-बारह मील चल सकता है, मामूली मेहनत के काम बिना थकान के कर सकता है, साधारण खूराक पचा सकता है, जिसकी इंद्रियां और मन सजीव है, वह तंदुरुस्त कहा जायगा।

शरीर पांच महाभूतों से बना है। कवि ने कहा है :

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह प्राणि-सरीरा॥

शरीर का व्यवहार दस इंद्रियों और मन द्वारा चलता है। दस इंद्रियों में पांच कर्मेन्द्रियां है और पांच ज्ञानेंद्रियां। हाथ, पांव, मुंह, जननेंद्रिय और गुदा—पांच कर्मेन्द्रियां हैं। स्पर्श करनेवाली त्वचा, देखनेवाली आंख, सुननेवाले कान, गंध जाननेवाली नाक और स्वाद या रस को पहचाननेवाली जीभ—ये पांच ज्ञानेंद्रियां है। मनके द्वारा हम विचार करते हैं। कोई-कोई मन को ग्यारहवी इंद्रिय कहते हैं। इन इंद्रियों के व्यवहार पूरी तरह चलते रहने पर ही मनुष्य तंदुरुस्त कहा जा सकता है। ऐसी तंदुरुस्ती विरले की ही पाई जाती है।

शरीर के अंदर चलनेवाली अद्‌भुत क्रियाओं पर ही इंद्रियों का सुख आधारित है। शरीर के सभी अंगों की नियमबद्धता पर शरीर का सही संचालन निर्भर है, किसी भी खास अंग का काम रुका कि गाड़ी अटकी। इनमें भी मेदा, अपना काम ठीक न करे तो समूचा शरीर मांदा हो जाता है। अतः हम कह सकते है कि अपच या कब्ज की ओर से लापरवाह रहनेवाले शरीर-धर्म को नही जानते। अनेक रोग इसीमें से पैदा होते है।

जगत् में मनुष्य उसका ऋण चुकाने यानी उसकी सेवा करने को जन्म लेता है। इस दृष्टि से तो मनुष्य अपने शरीर का संरक्षक (ट्रस्टी) सिद्ध होता है। उसे शरीर का ऐसा जतन करना चाहिए कि वह सेवा-धर्म के पालन मे पूरा काम दे सके।

शरीर के लिए आवश्यक वस्तुएँ

१. हवा

शरीर के लिए सबसे जरूरी चीज हवा है। इसीसे कुदरत ने हवा को व्यापक बनाया है। इसे हम बिना प्रयत्न के पा जाते है।

हम नथुनों द्वारा हवा फेफड़ों में भरते है। फेफड़े धौंकनी का काम करते है। वे हवा को लेते और निकालते है। बाहर की हवा में प्राणवायु होती है। उसके बिना आदमी जिंदा नही रह सकता। सांस से बाहर निकाली जानेवाली हवा जहरीली होती है। यदि वह तुरंत आस-पास फैल न जाय तो हम मर जायं। इसीलिए घर ऐसे होने चाहिए कि उनमें बिना किसी रुकावट के हवा आ-जा सके।

किंतु हवा को फेफड़ों में भरने और निकालने की उचित विधि लोग नही जानते। इस कारण जैसी चाहिए वैसी रक्तशुद्धि नही होती। हवा का काम रक्तशुद्धि है। कितने ही लोग मुंह से सांस लेते है। यह बुरी आदत है। नाक मे कुदरत ने एक जाली-सी बनाई है, जिसकी वजह से हवा में मिली हुई निकम्मी चीजें अंदर नही जा पातीं। उसके कारण हवा गर्म भी हो जाती है। मुंह से सांस लेने पर हवा अंदर साफ होकर नही जाती और न गर्म होती है। ठीक हवा लेने के लिए प्रत्येक मनुष्य को प्राणायाम सीख लेना चाहिए। यह क्रिया जितनी सरल है उतनी ही जरूरी है। नियमित जीवन बितानेवाले मनुष्य की सब क्रियाएं स्वाभाविक होनी है और उसमे

होनेवाला फायदा अनेक प्रकार की बनाई जानेवाली क्रियाओं में नहीं मिलता।

चलते-फिरते और सोते समय मनुष्य मुंह बंद रखे तो नाक स्वभावतः अपना काम करेगी ही। सुबह मुंह साफ करने के साथ-साथ नाक भी साफ करनी चाहिए। नाक की गंदगी को निकाल देना चाहिए। उसका सबसे अच्छा साधन साफ पानी है। जिससे ठंडा पानी न सहा जाय उसे नाक से गुनगुना पानी सोखना चाहिए। चुल्लू या कटोरी में पानी लेकर नाक से खींच सकते हैं। एक नथुने से खींचकर दूसरे से निकाल सकते हैं। नाक से पानी पी भी सकते हैं।

हवा शुद्ध ही लेनी आवश्यक है, इसलिए रात को आकाश के नीचे या बरामदे में सोने की आदत डालनी चाहिए। हवा से ठंड लगने का भय न रखें। ज्यादा ठंडी हवा हो तो खूब ओढ़ें। ओढ़ना गले के ऊपर नहीं जाना चाहिए। नाक के मार्फत बाहर की ताजी हवा रात को भी मिलनी चाहिए। मुंह ढकने से मनुष्य का दम घुट जाता है। सिर पर ठंड लगे और बदन के बाहर हो, तो अंगोछे से सिर ढक ले।

साधारणतः हमें घर ऐसी जगह ढूंढना चाहिए जहां अधिक भीड़ न हो, आसपास गंदगी न हो और जहां हमें हवा और प्रकाश काफी मिल सके।

२. पानी

आदमी को तन्दुरुस्ती बनाए रखने के लिए नित्य इतने तरल पदार्थ का उपयोग करना चाहिए कि जिससे ढाई सेर पानी पेट में पहुंच जाय। पानी साफ होना चाहिए। पानी की शुद्धता में शंका होने पर उसे उबाल कर पीना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि आदमी को अपने पीने का पानी साथ लेकर चलना चाहिए। अनगिनत आदमी धर्म के नाम पर सफर में पानी नहीं पीते। जो चीज अज्ञानी मनुष्य धर्म के नाम पर करते हैं, वह तन्दुरुस्ती के नियम जाननेवाले को आरोग्य की खातिर करनी चाहिए।

पानी को छानने की प्रथा प्रशंसनीय है। इससे भी उसमें का कूड़ा निकल जाता है। पानी में के सूक्ष्म जंतु तो नहीं निकलते। उनके नाश के लिए तो पानी को उबालना ही अनिवार्य है। छनना हमेशा साफ होना चाहिए, मैला नहीं।

३. खुराक

खुराक तीन तरह की कही जाती है : मांसाहार, शाकाहार और मिश्राहार।

डाक्टरों का मत आमतौर से मिश्राहार के पक्ष में है। यद्यपि पश्चिम में डाक्टरों का एक ऐसा बड़ा समुदाय पैदा हो गया है, जिसका दृढ़ मत है कि मनुष्य के शरीर की रचना पर विचार करने से वह शाकाहारी ही लगता है। उसके दांत, मेदा वगैरह उसे शाकाहारी सिद्ध करते हैं। शाक में फल शामिल हैं। फलों में सूखे और ताजे दोनों फल आ जाते हैं। सूखे फलों में बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा इत्यादि शामिल हैं। शाकाहार का पक्षपाती होते हुए भी अनुभव से मुझे मानना पड़ा है कि दूध और दूध से बने पदार्थ मक्खन, दही आदि के बिना मनुष्य-शरीर का निर्वाह पूरी तौर से नहीं हो सकता।

मनुष्य-शरीर को स्नायु बनानेवाले, गरमी देने-वाले, चरबी बढ़ानेवाले, क्षार देनेवाले और मलों को निकालनेवाले पदार्थों की जरूरत होती है। स्नायु गढ़नेवाले तत्त्व दूध, मांस, दाल तथा सूखे मेवों में पाए जाते हैं। दूध मांस-द्रव्यों तथा दाल आदि की अपेक्षा आसानी से हजम होता है और सब तरह से अधिक लाभदायक है। दूध और मांस की तुलना में दूध बढ़ जाता है। डाक्टर मानते हैं कि मांस हजम न होने की हालत में भी दूध हजम हो सकता है। जो मांसाहारी नहीं है उन्हें तो दूध से बड़ा सहारा मिलता है।

दूध के विषय में एक बहुत आवश्यक बात कहनी है कि मक्खन निकाला हुआ दूध बेकार नहीं होता। वह बहुत कीमती चीज है। कई हालतों में तो वह मक्खनवाले दूध से अधिक गुणकारी होता है। दूध का मुख्य गुण शरीर को स्नायु-देनेवाला [illegible] देता है। मक्खन निकल जाने पर उस दूध में कोई कमी नहीं आती। मक्खन प्रकार

निकाल ले सकनेवाली कोई मशीन अभी तक नहीं बनी है। बनने की संभावना भी कम ही है।

पूर्ण दूध या अपूर्ण दूध के अलावा मनुष्य को जिन दूसरे पदार्थों की आवश्यकता रहती है उनमें दूसरा दर्जा गेहूं, बाजरा, ज्वार, चावल वगैरह अन्नों को दिया जा सकता है।

सभी अन्नों को अच्छी तरह साफ करके. घर की चक्की में पीस कर, बिना छाने काम में लाना चाहिए। उनके छिलके में सत्त्व है और क्षार है। ये दोनों बहुत ही उपयोगी पदार्थ हैं। इसके सिवा, इसमें ऐसी चीज होती है जो बिना पचे निकल जाती है। अपने साथ वह मल को भी निकालती है। चावल का दाना नाजुक होने की वजह से कुदरत ने उसके ऊपर आवरण रखा है, जो खाने लायक नहीं होता। इसलिए धान कूटा जाता है। उसे उसी हद तक कूटना चाहिए कि सिर्फ ऊपरी छिलका निकल जाय। मशीन की कुटाई में तो उसका कन भी निकल जाता है। इसका कारण यह है कि यदि मशीनवाले कन रखें तो चावलों में तुरन्त लटें (कीड़े) पड़ जाती है। कारण, चावल के कन में बड़ा मिठास रहता है। गेहूं का चोकर या चावल का कन निकाल देने पर सिर्फ स्टार्च रह जाता है। चोकर और कनों के चले जाने पर अन्न का बहुत कीमती हिस्सा निकल जाता है। गेहूं का चोकर और चावल का कन यों पकाकर भी खाया जा सकता है। उसकी रोटी भी बन सकती है। कोंकण में तो गरीब लोग चावलों का आटा पीस कर उसकी रोटी ही खाते हैं। चावल के आटे की रोटी, भात से शायद ज्यादा पाचक हो और कम खाकर यथष्ट तृप्ति दे सके।

अपने यहां रोटी को दाल या शाक में डुबोकर खाने का रिवाज है। इससे रोटी ठीक चबाई नहीं जाती। स्टार्चवाली चीजें जितनी चबाई जायं और मुंह की लार के साथ जितनी मिलें उतना ही लाभ है। यह लार स्टार्च पचाने में मदद करती है। बिना चबाई खूराक में वह मदद नहीं मिल सकती। अतः खूराक को ऐसी शकल में लेना लाभदायक है कि उसे चबाना पड़े।

स्टार्च-प्रधान अन्न के बाद मांसपेशी गठन करने वाली दाल को दूसरा दर्जा दिया जाता है। बिना दाल की खूराक को सब अधूरी मानते हैं। मांसाहारी भी दाल खाता है। यह तो समझ में आता है कि जिन्हें मजदूरी करनी पड़ती है और जिन्हें जरूरत-भर को या बिल्कुल दूध नहीं मिलता, उनका काम दाल के बिना नहीं चल सकता। लेकिन यह कहने में मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होगी कि जिन्हें शारीरिक काम कम करना पड़ता है, जैसे कि मुंशी, व्यापारी, वकील, डाक्टर या शिक्षक, और जिन्हें दूध मिल जाता है, उन्हें दाल की जरूरत नहीं है। आम तौर से भी, लोग दाल को भारी खूराक मानते हैं और स्टार्च-प्रधान अन्न की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में लेते हैं। दालों में उर्द, बाकला (लोबिया) बहुत भारी गिनी जाती हैं, मूग और मसूर हल्की। यह साफ है कि मांसाहारी को दाल की बिल्कुल जरूरत नहीं है। वह तो सिर्फ स्वाद के लिए दाल खाता है। द्विदल अन्नों को बिना दले, रात भर भिगोकर अंखुआ निकलने पर चबाकर खाया जाय तो पचने में अपेक्षाकृत आसानी होगी।

खूराक में तीसरा दर्जा शाक और फल को देना चाहिए। शाक और दूध हिन्दुस्तान में सस्ते होने चाहिए। पर ऐसा है नहीं। वह सिर्फ शहरवालों की खूराक समझी जाती है। देहात में सब्जी दैवयोग से ही मिलती है और बहुत जगह तो फल भी नहीं मिलते। खूराक का यह अभाव हिन्दुस्तान की सभ्यता पर एक बहुत बड़ा धब्बा है। देहाती चाहें तो सब्जी खूब पैदा कर सकते हैं। फलों के पेड़ों के लिए तो कठिनाई अवश्य है, क्योंकि काश्तकारी के कानून सख्त हैं और गरीबों को कुचलनेवाले हैं। लेकिन यह विषय से बाहर की बात है।

सब्जी में पत्तीदार साग, जो मिल सके, वह अच्छी मात्रा में नित्य काम में लाना चाहिए। यहां जिस शाक की चर्चा है उसमें स्टार्च-प्रधान शाक नहीं आते। स्टार्च-प्रधान शाकों में आलू, गंजी (शकरकंद), सूरन (ओल), अरवी गिने गए हैं। इन्हें अन्न में गिनना चाहिए। दूसरी सब्जियां अच्छी मात्रा में लेनी चाहिए।

ककड़ी, लौना (अमलोनी), सरसों, सोआ, टमाटर आदि पकाने की कोई जरूरत नहीं है। उन्हें साफ करके अच्छी तरह धोकर थोड़ी मात्रा में कच्चा खाना चाहिए।

फलों में, जो ऋतुफल मिल सकें खाने चाहिए। मौसम में आम, जामुन, अमरूद, पपीता, अंगूर, खट्टे-मीठे नीबू, संतरे, मोसंबी आदि फलों का उचित उपयोग होना चाहिए। फल सुबह खाना अच्छा है। दूध और फल सुबह खाने से पूरी तृप्ति हो जाती है। जिनको खाने का वक्त जल्दी का है उनको सवेरे सिर्फ फल खाना अच्छा है।

केला अच्छा फल है। लेकिन वह स्टार्चमय होने की वजह से रोटी की जगह है। केला और दूध तथा सब्जी पूरी खुराक है।

आदमी की खुराक में थोड़े बहुत अंश में चिकनाई की जरूरत है। वह घी-तेल से पूरी होती है। घी मिल जाय तो तेल की कोई जरूरत नहीं। तेल पचने में भारी होता है। वह शुद्ध घी के समान गुणकारी नहीं है। मामूली आदमी को तीन तोला घी मिल जाय तो काफी समझना चाहिए। दूध में घी रहता ही है। जिसे घी महंगा पड़ता हो वह उतना तेल ले ले तो चिकनाई मिल जाती है।

खुराक में जैसे चिकनाई की जरूरत है वैसे ही गुड़-शक्कर की है। यद्यपि मीठे फलों से बहुत मिठास मिल जाता है, फिर भी दो-तीन तोला गुड़ या शक्कर लेने में हानि नहीं है। मीठे फल न मिलें तो गुड़-शक्कर की जरूरत रहती है। लेकिन आजकल मिठाई पर जो जोर दिया जाता है वह उचित नहीं है। शहर के लोग बहुत ज्यादा मिठाई खाते हैं। खीर, रबड़ी, श्रीखंड, पेड़े, बरफी, जलेबी वगैरह मिठाइयां खाई जाती हैं। ये सब अनावश्यक हैं। अधिक मात्रा में खाने से हानि करती हैं। यह कहने में मुझे बिल्कुल अतिशयोक्ति नहीं मालूम होती कि जिस देश में करोड़ों मनुष्यों को पूरा अन्न भी नहीं मिलता, वहां जो पकवान खाते हैं वे चोरी का खाते हैं।

जो बात मिठाई की है वही घी-तेल की है। घी-तेल में तली हुई वस्तुएं खाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

कब कितना और कितनी बार खाना, इस पर भी विचार करना चाहिए। हम जो भी खावें उसे औषधि रूप समझकर खावें, स्वाद के लिए तो कभी नहीं। सब स्वाद रस में है और रस भूख में है।

ऊपर बताए हिसाब से बुद्धिजीवी मनुष्य की रोज की उचित खुराक यह हो सकती है:

१. एक सेर गाय का दूध

२. तीन छटांक अन्न—चावल, गेहूं, बाजरा आदि

३. सब्जी डेढ़ छटांक पत्तीदार और ढाई छटांक दूसरी सब्जी

४. आधी छटांक कच्चा साग

५. तीन तोले घी या चार तोला मक्खन

६. तीन तोला गुड़ या शक्कर

७. जो ताजा फल मिले रुचि और शक्ति के अनुसार। रोज दो खट्टे नीबू हों तो अच्छा है।

ये सभी वजन कच्चे अर्थात बिना पकाई हुई चीजों के हैं। नमक का परिमाण नहीं दिया है। रुचि के अनुसार ऊपर से लेना चाहिए। खट्टे नीबू का रस सब्जी में निचोड़ सकते हैं, पानी के साथ भी ले सकते हैं।

हमें दिन में कितनी बार खाना चाहिए? अधिक लोग तो सिर्फ दो ही बार खाते हैं। साधारणतः तीन बार खाया जाता है: सुबह काम पर जाने से पहले, दोपहर को और शाम को या रात में। इससे ज्यादा बार खाने की कोई जरूरत नहीं होती। शहरों में कितने ही लोग बार-बार खाते रहते हैं। यह हानिकारक है। पेट को आराम की जरूरत होती है।

अनावश्यक वस्तुएं

१ मसाले

खुराक के प्रसंग में मैंने मसालों के बारे में कुछ नहीं कहा है। नमक भी मसालों का बादशाह माना जा सकता है, क्योंकि नमक के बिना साधारण आदमी कुछ खा ही नहीं सकता। इसलिए उसे 'लवण' भी

कहा गया है। शरीर को कुछ क्षारों की ज़रूरत है, नमक की गिनती भी उन क्षारों में है। ये क्षार खाद्य पदार्थों में तो होते ही हैं। लेकिन खूराक अशास्त्रीय रीति से पकाई जाने की वजह से कुछ का परिमाण कम हो जाने पर अलग से भी लेने पड़ते हैं। ऐसा एक अत्यन्त आवश्यक क्षार नमक है। किन्तु जिनकी आम तौर से ज़रूरत नहीं है ऐसे कई मसाले स्वाद और पाचनशक्ति बढ़ाने के खयाल से इस्तेमाल किए जाते हैं। जैसे मिर्च (हरी या सूखी), काली मिर्च, हल्दी, धनिया, जीरा, राई, मेथी, हींग इत्यादि। इनके बारे में मेरी राय पचास वर्ष के अपने अनुभव से बनी है कि शरीर को पूर्णरूप से नीरोग रखने के लिए इनमें से एक की भी ज़रूरत नहीं है। जिनकी पाचनशक्ति बिल्कुल कमजोर हो गई है, उन्हें दवा की भांति एक खास वक्त तक विशेष मात्रा में लेने पड़ें तो भले ही लें। लेकिन स्वाद के लिए तो उनका आग्रहपूर्वक निषेध मानना चाहिए। सभी मसाले, नमक भी, अन्न और तरकारी के स्वाभाविक रस को बर्बाद करते हैं।

२. चाय, काफी, कोको

शरीर को इन तीनों में से एक की भी जरूरत नहीं है। जो चाय आम तौर से पीई जाती है उसमें कोई गुण तो मालूम नहीं हुआ, बल्कि उसमें एक बड़ी बुराई होती है, उसमें टेनिन होता है। टेनिन वह चीज़ है जो चमड़े को कड़ा करने के लिए इस्तेमाल की जाती है। यही काम टेनिनवाली चाय मेदे के लिए करती है। मेदे पर टेनिन का असर होने से उसकी खूराक पचाने की ताकत घट जाती है। इससे अपच (मंदाग्नि) होती है। अगर अच्छे दूध में साफ पानी मिला कर उसे गर्म कर लिया जाय तो यह काम अच्छी तरह सध सकता है। उबलते पानी में एक चम्मच शहद और आधा चम्मच नीबू का रस डालने पर बढ़िया शरबत बन जाता है।

चाय के बारे में जो कहा है वही कमबेश कॉफी के लिए कहा जा सकता है। उसके लिए तो कहावत है:

कफ काटन, वायु हरण, धातुक्षीण, बलहीन
लोहू का पानी करे, दो गुण अवगुण तीन।"

जो राय चाय, काफी के बारे में दी गई है वही कोको के बारे में समझनी चाहिए। जिसका मेदा ठीक काम करता है उसे चाय, काफी, कोको की मदद की जरूरत नहीं रहती। साधारण खूराक में से तन्दुरुस्त मनुष्य पूरा संतोष पा सकता है, यह मैं अपने लंबे अरसे के अनुभव से कह सकता हूं।

३. नशीली चीजें

नशीली चीजों में, हिंदुस्तान में शराब, गांजा, भांग, तंबाकू और अफीम गिनी जा सकती है। इस देश में पैदा होनेवाले नशों में ताड़ी भी एक है और विदेश से आनेवाले शराबों का तो कोई ठिकाना ही नहीं है। ये सब सर्वथा त्याज्य है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ है ऐसी चर्या जिससे ब्रह्म मिले। संयम के बिना ब्रह्म नहीं मिलता। संयम में सबसे बड़ी बात इंद्रियनिग्रह है। आमतौर से ब्रह्मचर्य से, स्त्री-संग न करना और वीर्य-संग्रह साधना, यह मतलब लिया जाता है। सब इंद्रियों का संयम करने वाले के लिए वीर्य-संग्रह सहज और स्वाभाविक हो जाता है। स्वाभाविक रीति से जो वीर्य-संग्रह होता है वही इच्छित फल देता है। ऐसा ब्रह्मचारी क्रोध आदि से मुक्त होता है। यह भी देखा जाता है कि ब्रह्मचर्य पालन के सामान्य नियमों की अवहेलना करके वे केवल वीर्य-संग्रह करने की आशा रखते हैं। ऐसों को निराशा हुई है और कितने ही तो पागलों में गिनने लायक हो गए। कुछ दूसरे निस्तेज—कांतिहीन मिलते हैं, जो वीर्य-संग्रह नहीं कर सकते और केवल स्त्रीसंग से बच पाने की सफलता पर अपने को कृतार्थ मानते हैं। स्त्री-संग न करना ही ब्रह्मचर्य की प्राप्ति नहीं कही जा सकती। जबतक स्त्री-संग में रस मौजूद है तबतक ब्रह्मचर्य की प्राप्ति हुई नहीं कह सकते। जो इस रस को जला सकता है उस पुरुष या स्त्री को अपनी जननेंद्रियों को

जीतनेवाला मान गया है। उसकी वीर्य रक्षा ब्रह्मचर्य का सीधा फल है, पर वही सर्वस्व नहीं। वास्तविक ब्रह्मचारी की वाणी में, विचार में और आचार में एक प्रकार का प्रभाव प्रत्यक्ष झलकता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य स्त्रियों के साथ के संबंध से या उनके स्पर्श से भ्रष्ट नहीं होता। ऐसे ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-पुरुष का भेद मिट-सा जाता है।

वीर्य-संग्रह के बिना पूर्ण आरोग्य बनाए रखना असंभव समझना चाहिए। जिस वीर्य में दूसरे मनुष्य को पैदा करने की शक्ति है, उस वीर्य को व्यर्थ स्खलन होने देना यह भयंकर अज्ञान की निशानी है। वीर्य का उपयोग भोग के लिए नहीं, बल्कि केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए है। इस तत्त्व को भलीभांति समझ लेने पर विषयासक्ति की गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

वीर्य-संग्रह के आगे जाते हुए कुछ मोटे नियम बता देता हूं :

१—समस्त विकारों की जड़ विचार में रहती है, इसलिए विचारों पर अंकुश रखना चाहिए। इसका उपाय यह है कि मन को खाली न रहने देकर अच्छे और उपयोगी विचारों से भरे रखना चाहिए। अर्थात् हम जिस कार्य में लगे हुए हैं उसके बारे में चिन्तन करें। लेकिन उसमें किस तरह निपुणता प्राप्त हो, यह सोचें और उस पर अमल करें। विचार और उसका अमल विकारों को रोकेगा। पर कोशिश करते काम नहीं होता, मनुष्य थक जाता है, शरीर आराम चाहता है। रात को नींद न आने पर विचारों का हमला होना संभव है। ऐसे मौके पर सबसे ऊंचा साधन जप है। भगवान् का जिस रूप में अनुभव किया हो, अथवा अनुभव करने की धारणा रखी हो, उस रूप का हृदय में स्मरण कर नाम का जप करना। जप करते हुए दूसरा कोई विचार मन में न होना चाहिए। यह आदर्श स्थिति है। उसे न पहुंचा जाय और अनेक किस्म के खराब विचार चढ़ाई करते हों तो उनसे हार न मान कर दृढ़तापूर्वक जप किये जाएं। अन्त में विजय होगी ही, यह निश्चय रखें तो विजय जरूर मिलेगी।

२—विचार, वाणी और अध्ययन, विकारों को शान्त करनेवाले होने चाहिए। इसलिए जो कुछ बोलें, तोल कर बोलें। जिसे बीभत्स विचार नहीं आते उसके मुंह से बीभत्स वाणी निकलती ही नहीं। विषय को उकसानेवाला जो साहित्य पड़ा है, उसकी ओर मन को जाने न दें। सद्ग्रंथ अथवा अपने काम से संबंध रखनेवाले ग्रंथों का अध्ययन और मनन करें। गीता आदि की यहां बड़ी गुंजाइश है। स्पष्ट है कि जो विकारों का सेवन नहीं चाहता वह विकार को बढ़ानेवाले पत्रों का त्याग करेगा।

३—परिश्रम की भांति शरीर भी काम में लगा रहना चाहिए ऐसा कि आदमी को रात पड़ने पर मजेदार थकावट आ जाय और खाट में पड़ते ही फौरन नींद आ जाय। ऐसे स्त्री-पुरुषों की नींद शांत और निःस्वप्न होती है। जितनी खुले में मेहनत करनी पड़े उतना ज्यादा अच्छा। फिर ऐसी मेहनत का अवसर न मिले उन्हें बिना चूके कसरत करनी चाहिए। उसमें उत्तम कसरत, खुली हवा में तेजी से घूमना है। घूमते समय मुंह बंद होना चाहिए। चलते-फिरते शरीर सीधा ही रखना चाहिए। टेढ़े-मेढ़े बैठना या चलना यह आलस्य की निशानी है। आलस्य मात्र विकार का पोषक है। इसमें आसनों का उपयोग है। जिनके हाथ, पैर, कान, नाक, आंख और जीभ इत्यादि अपने योग्य काम उचित तरह से करते हैं उनकी कर्मेन्द्रिय कभी उपद्रव नहीं करती।

४—कहावत है—"जैसा आहार वैसा डकार।" जो मनुष्य अल्पाहारी नहीं है, जिसे खाने में कोई नियम नहीं है वह अपने विकारों का गुलाम है। स्वाद को न जीतनेवाला कभी इन्द्रियजित् नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह युक्ताहारी और अल्पाहारी बने। शरीर आहार के लिए नहीं, बल्कि आहार शरीर के लिए है। शरीर अपने आत्मा पहचानने के लिए मिला है—आत्मा को पहचानना यानी ईश्वर को पहचानना—इस पहचान को जिसने अपना

परम विषय बनाया है, वह विकारों के वश नहीं होता। प्रत्येक स्त्री को माता, बहन या लड़की की तरह देखना चाहिए। कोई भी पुरुष अपनी मां, बहन या लड़की पर विकारी दृष्टि नहीं डालता। स्त्री को प्रत्येक पुरुष को पिता, भाई या लड़के की तरह देखना चाहिए।

५—अपने दूसरे लेखों में मैंने अधिक नियम दिए हैं। उन सबका समावेश इन पांचों में होता जाता है। उनका पालन करनेवाले के लिए महान् विकार का जीतना बहुत आसान हो जाना चाहिए। जिसे ब्रह्मचर्य पालन की तीव्र इच्छा है उसे इस पालन को असंभव मान कर अथवा यह मान कर कि करोड़ों में कोई ही इसका पालन कर सकता है, अपने प्रयत्न को छोड़ नहीं देना चाहिए। जो रस इन नियमों के पालन में है वह किसी दूसरी चीज़ में नहीं है। मैं दूसरी तरह से कहूं तो यों कहना होगा कि जो आनंद सही तरह से निरोगी शरीर भोगता है वह आनंद दूसरी किसी चीज़ में नहीं है। कोई विकारों का गुलाम शरीर निरोगिता नहीं प्राप्त कर सकता।

अब कृत्रिम उपायों के बारे में कुछ लिखना चाहता हूं। भोग भोगते हुए भी कृत्रिम उपायों से संतानोत्पत्ति रोकने की प्रथा पुरानी है। पर पहले वह गुप्त रीति से चलती थी। इस सभ्य युग में इसे ऊंचा स्थान दे दिया गया है! और उपाय भी बाकायदा गढ़े गये हैं। इस प्रथा को परमार्थ की चादर उढ़ा दी गई है। इसके हिमायती कहते हैं कि भोगेच्छा एक कुदरती चीज़ है, शायद उसे एक देन के नाम से पुकारा जाता है। उसे दूर करना कठिन और उसपर संयम का अंकुश रखना मुश्किल बतलाया जाता है और कहा जाता है कि यदि संयम के सिवा दूसरा उपाय काम में न लाया जाय तो असंख्य स्त्रियों पर संतानोत्पत्ति का बोझ बढ़ेगा और भोग से उत्पन्न होनेवाली संतान इस हद तक बढ़ जायगी कि मनुष्य-जाति के लिए इतनी खुराक न मिल सकेगी। इन दो आपत्तियों को रोकने के लिए कृत्रिम उपायों की योजना करना मनुष्य का धर्म हो जाता है। मुझे इन दलीलों में तथ्य नहीं लगा; क्योंकि इन उपायों की बदौलत आदमी दूसरी उपाधियां खरीद लेता है। सबसे बड़ा नुकसान तो यह है कि संयम-धर्म के लोप होने का खतरा पैदा हो जायगा। इस रत्न को बेच कर चाहे जैसा तात्कालिक लाभ होता हो उससे बचना चाहिए। पर यहां मैं दलील में नहीं उतरना चाहता। जिज्ञासुओं से मेरी सिफारिश है कि वे मेरी 'अनीति की राह पर'[1] पुस्तक मंगाकर उसका मनन करें। फिर उनका हृदय और बुद्धि जो कहे उसके अनुसार चलें। जिन्हें इस पुस्तक के पढ़ने की इच्छा या फुर्सत न हो वे भूले-चूके भी कृत्रिम उपायों के फेर में न पड़ें। भोग के त्याग का ज़बरदस्त प्रयत्न करें और निर्दोष आनंद के जो क्षेत्र हैं उनमें से कुछ चुन लें। सच्चा दम्पती-प्रेम शुद्ध मार्ग से जाना चाहिए, दोनों को ऊंचे चढ़ना चाहिए और ऐसे कार्य खोजने चाहिए कि जिनमें विषय-वासना के सेवन का अवकाश ही न रह जाय। शुद्ध त्याग के थोड़े अभ्यास के उपरांत उसमें प्राप्त होनेवाला रस उन्हें विषय की ओर जाने ही न देगा। कठिनाई आत्मवंचना से पैदा होती है। जिस त्याग की बुनियाद विचार-शुद्धि पर नहीं; बल्कि केवल बाहरी इंद्रियों को रोकने के व्यर्थ प्रयत्न पर रखी गई है, वह टिकाऊ नहीं होता। विचार की दृढ़ता के साथ आचार का संयम आरंभ हो तो सफलता मिले बिना न रहेगी। स्त्री-पुरुष की जोड़ी विषय-सेवन के लिए कदापि नहीं बनी है।

नैसर्गिक उपचार के साधन

१. पृथ्वी अर्थात् मिट्टी

जिन तत्त्वों से यह मनुष्य रूपी पुतला बना है वही नैसर्गिक उपचार के साधन हैं। पृथ्वी (मिट्टी) पानी, आकाश (अवकाश), तेज (सूर्य) और वायु से यह शरीर बना है। उन साधनों का क्रम से उपयोग दिखाने की यहां कोशिश की गई है।

[1] सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित

सन् १९०१ तक मुझे कुछ रोग होता तो मैं डाक्टरों के पास तो नहीं दौड़ता था; लेकिन उनकी दवाओं का थोड़ा उपयोग करता था। स्वर्गीय डाक्टर प्राणजीवन मेहता ने एक-दो चीजें बताई थीं। कुछ अनुभव मैंने एक छोटे अस्पताल में काम करके प्राप्त किया था और कुछ पढ़ कर। मुझे सख्त शिकायत कब्ज की थी। उसके लिए अक्सर 'फ्रूटसाल्ट' लेता था इससे कुछ आराम मिलता था, पर कमजोरी आती थी, सिर दुखता था तथा और भी छोटी-छोटी व्याधियां पैदा हो जाती थीं। इसके लिए डाक्टर प्राणजीवन मेहता की बताई दवा 'लोह' (डायलाइज्ड आयरन) और नक्स-वामिका लिया करता। दवाओं पर विश्वास बहुत ही कम था, इसलिए लाचार हो जानेपर ही लेता था। लेना अच्छा नहीं लगता था।

इस बीच मेरे खुराक के प्रयोग तो जारी ही थे। नैसर्गिक उपचारों में मेरा काफी विश्वास था, लेकिन किसी का सहारा नहीं था। इधर-उधर से कुछ पढ़ा था, उसके आधार पर खास तौर से खुराक के फेरफार से काम चलाता था। खूब घूमता था। इसलिए किसी दिन खाट नहीं पकड़नी पड़ी। यों मेरी गाड़ी रगड़ती हुई चलती रही। इसी बीच भाई पोलक ने जुस्ट की 'रिटर्न टू नेचर' नाम की पुस्तक मुझे दी। वह खुद तो ये उपचार नहीं करते थे। खुराक में कुछ जुस्ट के अनुसार चलते थे, पर मेरे स्वभाव से वह परिचित थे। इसलिए उन्होंने वह पुस्तक मुझे दी थी। उसमें खास तौर से मिट्टी पर जोर दिया गया है। मैंने इसका उपयोग करना तय किया। कब्ज में साफ मिट्टी को ठंडे पानी में गूंधकर पेडू पर रखने को कहा गया है। जुस्ट की सलाह बीच में कपड़ा दिए बिना पेडू पर मिट्टी रखने की है, लेकिन मैंने तो महीन कपड़े में जैसे पुल्टिस रखी जाती है, वैसे पुल्टिस बनाकर सारी रात पेडू पर रखी। सवेरे उठा तो हलका मालूम हुआ और जाते ही पुराना बंधा हुआ मलोत्सर्जन साफ हुआ। मैं कह सकता हूं कि उस दिन से आजतक मैंने 'फ्रूटसाल्ट' तो शायद ही छुआ हो। हां, आवश्यकता जान पड़ने पर कभी-कभी अरंडी का तेल तीन छोटी चम्मच के करीब सवेरे के वक्त लेता था। मिट्टी की पट्टी तीन इंच चौड़ी और छः इंच लम्बी होती है और मोटाई में बाजरे की रोटी से दूनी या आध इंच मोटी समझ लीजिए। जुस्ट का दावा है कि जहरीले सांप के काटे हुए को भी, यदि मिट्टी का गड्ढा खोद कर उसमें सुलाया जाय तो जहर उतर जाता है। उसका यह दावा साबित हो या न हो, लेकिन स्वयं मैंने जो प्रयोग किये हैं उन्हें मैं कह देना चाहता हूं। सिरदर्द में मिट्टी की पुल्टिस बांधने से अधिकांश में मैंने फायदा होते देखा है। सैंकड़ों पर मैंने यह प्रयोग किया है। मुझे मालूम है कि सिरदर्द के अनेक कारण होते हैं। साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि सिरदर्द चाहे जिस कारण से हो, मिट्टी की पुल्टिस तात्कालिक फायदा तो पहुंचाती ही है। साधारण फोड़े को मिट्टी मिटाती है। बहनेवाले फोड़े पर रखने के लिए साफ कपड़ा ले कर उसमें परमैंगनेट के गुलाबी पानी में भिगोता हूं और फोड़े को साफ करके उसपर मिट्टी की पुल्टिस रखता हूं। अधिकांश में इससे फोड़े अच्छे हो ही जाते हैं। जहां-जहां मैंने इसकी आजमाइश की, मुझे सफलता मिली है। असफलता याद नहीं आती। ततैये या बर्र के डंक मारने पर मिट्टी तुरन्त फायदा पहुंचाती है। बिच्छू के डंक में भी मैंने मिट्टी का खूब प्रयोग किया है। सेवाग्राम में बिच्छू का उपद्रव रोज की चीज बन गई है। बिच्छू काटे के जितने इलाज हो सकते हैं सबकी आजमाइश की है। किसीके बारे में यह नहीं कह सकता हूं कि उससे तो अचूक फायदा होता ही है। इतना कह सकता हूं कि किसी इलाज से मिट्टी कमतर नहीं है।

तेज बुखार में मिट्टी का उपयोग पेडू और सिर पर, सिर दुखने की हालत में मैंने किया है। इससे हमेशा बुखार उतर गया है यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन बीमार को उससे आराम तो मिलता ही है। टाइफाइड में मैंने मिट्टी का बहुत उपयोग किया है। यह बुखार तो अपनी अवधि लेकर ही जाता है, लेकिन मिट्टी ने हमेशा बीमार को आराम दिया है और इन बीमारों ने मिट्टी की मांग की है। सेवाग्राम में टाइफाइड के करीब दस केस हो गए हैं। उनमें एक भी केस बिगड़ा नहीं। सेवाग्राम में टाइफाइड का डर नहीं रह गया।

यह कह सकता हूं कि एक भी बीमार के लिए दवा का उपयोग नहीं किया गया। मिट्टी के सिवा दूसरे नैसर्गिक उपचार भी साथ किये गए।

मिट्टी का उपयोग स्वतंत्रता से 'एंटी फ्लोजस्टीन' के बदले सेवाग्राम में हुआ है। उसम थोड़ा सरसों का तेल और नमक मिलाया जाता है। इस मिट्टी को अच्छी तरह गरम करना पड़ता है, इससे वह बिल्कुल निर्दोष हो जाती है।

अब यह बतलाना है कि मिट्टी कैसी होनी चाहिए। मुझे पहले-पहल तो अच्छी लाल मिट्टी मिली थी। पानी मिलाने से उसमें से सुगंध निकलती थी। ऐसी मिट्टी आसानी से नहीं मिलती। बंबई जैसे शहर में तो मुझे किसी भी तरह की मिट्टी पाने में कठिनाई हुई है। मिट्टी चिकनी या बिल्कुल रेतीली भी नहीं चाहिए, खादवाली भी नहीं। मुलायम रेशम जैसी होनी चाहिए। उसमें कंकड़ नहीं होने चाहिए। उसे खूब महीन चलनी में छानना चाहिए। बिल्कुल साफ न हो तो उसे गर्म कर लें। मिट्टी बिल्कुल सूखी होनी चाहिए। गीली हो तो उसे धूप में या आग पर सुखा लेना चाहिए। साफ हिस्से पर काम में लाई हुई मिट्टी कुछ सुखाने के बाद अनेक बार काम में लाई जा सकती है। इस प्रकार काम में लाने से मिट्टी का कोई गुण कम हो जाता हो तो मैं नही जानता। मैंने इस प्रकार उपयोग किया है और यह नहीं पाया कि उसका कोई गुण कम हो गया। मिट्टी का उपयोग करनेवालों से मैंने सुना है कि जमुना-किनारे मिलनेवाली पीली मिट्टी बहुत गुणकारी है।

समुद्र की साफ महीन बालू कब्ज़ दूर करने के लिए खाने की बात कूने ने लिखी है। बालू पचती नहीं है, उसे तो खुज्झे की तरह बाहर निकलना ही पड़ता है और वह जब निकलती है तो मल को भी बाहर लाती है। मैंने इस चीज़ का अनुभव नहीं किया। इसलिए जो प्रयोग करना चाहें उन्हें विचारपूर्वक करना चाहिए। एक-दो बार आज़मा देखने में कोई हानि होने की संभावना नहीं है।

२. पानी

पानी का उपचार परिचित और पुरानी चीज़ है। कूने ने इसका उत्तम उपयोग ढूंढ़ा है।

कूने के उपचारों में मध्यबिन्दु कटि-स्नान और घर्षण या मेहन-स्नान हैं। उनके लिए उसने खास तौर का टब भी बनाया है। इसकी विशेष आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के आकार के अनुसार तीस से छत्तीस इंच का टब ठीक काम देता है। अनुभव से, अगर बड़े की ज़रूरत मालूम हो तो बड़ा लेना चाहिए। उसमें ठंडा पानी भरें। गर्मियों में विशेष ठंडा रखने की आवश्यकता है। तुरंत ठंडा करना हो और न मिले तो थोड़ी बर्फ डाल लें। समय हो तो मिट्टी के घड़े में ठंडा किया हुआ पानी ठीक काम देता है। टब में पानी पर कपड़ा ढांप कर तेजी से पंखा झला जाय तो पानी को तुरंत ठंडा किया जा सकता है।

टब को दीवार से सटाकर रखें और उसमें पीठ को सहारा मिलने लायक लंबा पटरा रखें, जिससे उसका सहारा लेकर बीमार आराम से बैठ सके। रोगी को इस पानी में पैर बाहर रखकर बैठना चाहिए। पानी से बाहर शरीर का जो भाग हो वह ढका रहना चाहिए, जिससे ठंड न लगे। जिस कोठरी में टब रखा जाय उसमें हवा का आवागमन और प्रकाश ज़रूर होना चाहिए। बीमार के आराम से बैठ जाने पर पेड़ू को एक मुलायम तौलिए से रगड़ना चाहिए। पांच मिनट मे तीस मिनट तक बैठा जा सकता है। स्नान के बाद गीले हिस्से को सुखाकर बीमार को सुला देना चाहिए। यह स्नान तेज़ बुखार को भी उतार देता है। इस प्रकार स्नान लेने में नुकसान नहीं, लाभ तो प्रत्यक्ष मिलता है। स्नान भूखे पेट ही लिया जाता है। कब्ज़ में भी यह स्नान फ़ायदा करता है। अजीर्ण को दूर करता है। स्नान लेनेवाले के शरीर में स्फूर्ति आती है। कब्ज़ के लिए कटिस्नान के बाद आधा घंटा टहलना उचित है। इस स्नान का मैंने खूब उपयोग किया है। यह तो नहीं कह सकता कि सब समय सफलता मिली है, लेकिन १०० म ७५ प्रतिशत सफलता मिली, यह कह सकता हूं।

पसीना नहीं आता, लेकिन बीमार सो जाता है। सो जाने पर रोगी को जगाना नहीं चाहिए। ऊंघ इस बात की सूचक है कि उसे चादर-स्नान आराम देता है। चादर में रखने के बाद रोगी का ज्वर एक-दो डिग्री ज़रूर उतर जाता है। सन्निपात में पड़े हुए, डबल न्यूमोनिया से पीड़ित अपने लड़के को मैंने चादर-स्नान दिया है। दिन में तीन बार देने के बाद ज्वर उतर गया और पसीने से सराबोर हो गया। उसके ज्वर ने अंत में टाइफाइड का रूप ले लिया और फिर अठारहवें दिन साफ़ उतर गया। चादर-स्नान तो बुखार जब १०६ डिग्री तक जाता रहा तबतक दिया। सात दिन बाद इतना तेज़ ज्वर जाता रहा, न्यूमोनिया चला गया और फिर टाइफाइड के रूप में १०३ डिग्री तक पहुंचता। डिग्री के संबंध में, संभव है, मुझे स्मरणशक्ति धोखा देती हो। यह उपचार मैंने डाक्टर मित्रों के विरोध करते हुए भी किया था। दवा कुछ नहीं दी थी। आज यह लड़का मेरे चार लड़कों में सबसे अधिक तंदुरुस्त है और सबसे अधिक श्रम करने योग्य है।

यह चादर-स्नान शरीर में अलाई, पित्ती, खसरा, चेचक, खुजली, जो भी हो, सबमें काम देता है। मैंने इन बीमारियों में चादर-स्नान का खूब उपयोग किया है। शीतला या बोदरी में, पानी में गुलाब रंग लाने भर को परमेंगनेट डालता था। चादर का उपयोग होने के बाद उसे उबलते पानी में डुबोकर पानी गुनगुना रह जाने पर चादर को अच्छी तरह धोकर सुखा देना चाहिए।

रक्त की गति क्षीण हो जाने और पांवों में बहुत फूटन होने पर बरफ घिसने से मैंने बहुत फायदा होते देखा है। बरफ के उपचार अक्सर गर्मी में बहुत अच्छे लगते हैं। जाड़ों में कमजोर आदमी पर बरफ का प्रयोग करने से जोखिम हो सकती है।

अब गरम पानी के बारे में विचार करेंगे। गरम पानी का समझदारी से उपयोग करने से बहुत से रोगों की शांति हो जाती है। प्रसिद्ध दवा आयोडीन जो काम करती है वही काम बहुत कुछ गरम पानी करता है। जहां सूजन होती है वहां आयोडीन लगाई जाती है। उस जगह गरम पानी का तौलिया रखा जाय तो आराम मिल सकता है। कान में दर्द होने पर आयोडीन की बूंदें डाली जाती हैं, उसकी जगह पर गरम पानी की पिचकारी देने से शांति होने की सम्भावना है। आयोडीन के उपयोग में कुछ जोखिम रहती है, पर गरम पानी के उपचार में वह नहीं है। आयोडीन जंतुनाशक (डिसइन्फेक्टेंट) है, वैसे ही गरम अर्थात् उबलता पानी जंतुनाशक है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आयोडीन विशेष उपयोगी वस्तु नहीं है। इसकी उपयोगिता के विषय में मुझे ज़रा भी शंका नहीं है। पर गरीब आदमी के घर आयोडीन नहीं होती। वह महंगी चीज़ है और उसे चाहे जिस आदमी के हाथ में, उपयोग के लिए दिया भी नहीं जा सकता। पर पानी तो सभी के यहां होता है।

बिच्छू के डंक मारने पर जब दूसरी किसी चीज़ से फायदा नहीं पहुंचता तब डंकवाले भाग को गरम पानी में डुबोकर उसमें रखे रहने से कुछ आराम अवश्य मिलता है।

यकायक जाड़ा लगने पर भाप देने, बीमार के इधर-उधर गरम पानी की थैलियां रखने और ठीक उढ़ा देने से जाड़ा हटाया जा सकता है। सबके यहां रबड़ की थैलियां नहीं होतीं। शीशे की मजबूत बोतलें, जिन पर मज़बूत काग लगे हों, गरम बोतल का काम देती हैं। किसी भी धातु की ठीक काग लगी हुई बोतल अच्छा काम दे सकती है। धातु की या दूसरी बोतल ज्यादा गरम जान पड़े तो उसे मोटे कपड़े में लपेटना चाहिए।

भाप की शकल में पानी बहुत काम देता है। पसीना न आने पर वह भाप से लाया जा सकता है। गठिया से पीड़ित, अथवा बहुत वजनवाले के लिए, भाप बहुत उपयोगी वस्तु है।

भाप लेने की पुरानी और सरल-से-सरल रीति: मूंज या सुतली की खाट लेना अच्छा है, लेकिन निवार की खाट भी चल सकती है। खेस या कम्बल बिछा

कर बीमार को उघाड़ सुला दें। खाट के नीचे उबलते पानी की पतीलियां या डोलियां रखें। बीमार को इस तरह ढांक दें कि जिस से कम्बल चारों ओर जमीन पर छू जाय और बाहर की हवा खाट के नीचे न जा सके। इस तरह ढांक देने के बाद पतीली या हांडी पर का ढकना उठा लें। इससे बीमार को भाप लगने लगेगी। पूरी भाप न मिलने पर पानी बदलने की जरूरत पड़ेगी। दूसरी हांडी में जो पानी उबलने को रखा गया हो उसे चारपाई के नीचे रख दें। साधारण रूप से अपने यहां यह रिवाज है कि चारपाई के नीचे अंगारे रखते हैं और उन पर *उबलते पानी का बरतन। इस रीति से पानी की* गरमी कुछ ज्यादा मिलने की गुंजायश रहती है, लेकिन उसमें दुर्घटना होने का डर रहता है। एक चिनगारी भी उड़े और कम्बल या किसी चीज को पकड़ ले तो बीमार की जान जोखिम में पड़ सकती है। इसलिए गरमी फौरन मिलने का लालच छोड़कर मेरी बताई तरकीब को काम में लाना चाहिए।

कुछ लोग ऐसे पानी में पत्तियां डालते हैं, जैसे नीम की पत्तियां। मैंने इसके उपयोग का अनुभव नहीं किया है। प्रत्यक्ष उपयोग तो भाप का है।

जिसके पैर ठंडे हो गए हों, पैरों में फूटन हो, उसे घुटने तक गहरे बरतन में, सहन करने लायक गरम पानी में थोड़ी राई डालकर पैरों को कुछ मिनटों तक डुबोकर रखना चाहिए। इससे पैर गरम हो जाते हैं, फूटन मिट जाती है, रक्त नीचे खिंच आता है और बीमार को आराम मिलता है।

जुकाम हुआ हो या गला पक गया हो तो पतीली में उबलता पानी रखकर गले में या नाक में भाप ली जा सकती है। पतीली में एक अलग टोंटी लगा देने से उस टोंटी के द्वारा भाप आराम से ली जा सकती है। यह टोंटी लकड़ी की रखनी चाहिए। रबड़ की नली लगाकर उसे टोंटी में रखने से ज्यादा आसानी होती है।

३. आकाश

हम ज्ञानपूर्वक आकाश का उपयोग कम-से-कम करते हैं, उसका हमें कम-से-कम ज्ञान है। आकाश का अर्थ अवकाश कर सकते हैं। दिन में जब बादल न हों, ऊपर की ओर देखने पर हम अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर आसमानी रंग का गुंबज दिखाई देता है। हम उसे आकाश कहते हैं। उसीका दूसरा नाम आसमान है। इस गुंबज का ओर-छोर ही नहीं है। यह जितना दूर है उतना ही हमारे नजदीक है। हमारे चारों ओर आकाश न हो तो हम घुटकर मर जायं। जहां कुछ नहीं है वहां आकाश है। यह बात नहीं है कि दूर-दूर जो आसमानी रंग हम देखते हैं वही आकाश है। आकाश तो हमारे पास से ही शुरू होता है। इतना ही नहीं, वह हमारे अन्दर भी है। जितना पोला है सब आकाश है, यह हम कह सकते हैं।

अपने जीवन में आकाश के साथ मेल साधने के लिए मैंने अनेकानेक उपाधियां घटाई हैं। घर की सादगी, वस्त्र की सादगी, रहन-सहन की सादगी को एक हद में, और अपने ऊपर लागू होने वाली भाषा में कहूं तो—उत्तरोत्तर शून्यता को बढ़ाकर मैंने आकाश के साथ सीधा सम्बन्ध बढ़ाया है और यह भी कह सकते हैं कि ज्यों-ज्यों यह सम्बन्ध बढ़ता गया त्यों-त्यों मेरा आरोग्य बढ़ता गया। मेरी शांति बढ़ी। सन्तोष बढ़ा और धन की इच्छा बिल्कुल ढीली पड़ गई। जिसने आकाश के साथ सम्बन्ध जोड़ा है उसके पास कुछ नहीं है और सब कुछ है। अंत में मनुष्य उतने का ही मालिक बनता है जितने का वह रोज उपयोग कर सकता है और उसे पचा सकता है। इसलिए उसके उपयोग में वह आगे बढ़ता है। सब लोग ऐसा करें तो इस आकाशवाली जगत में सबके लिए स्थान है और किसीको भी तंगी अनुभव नहीं होगी।

इसलिए मनुष्य का सोने का स्थान आकाश के नीचे होना चाहिए। ओस, सर्दी से बचने भर को ओढ़ना पास ही रखें। बरसात में एक छप्पर जैसा

छाया भले ही हो, बाकी हर समय अगणित तारों से जड़ा हुआ आकाश ही उसकी छतरी होनी चाहिए। आंख खुलते ही प्रतिक्षण वह नया दृश्य देखेगा। उसे देखते-देखते ऊबेगा नहीं, उसकी आंखें चौंधियाएंगी नहीं, बल्कि शीतलता प्राप्त करेंगी। तारों का भव्य मंडल घूमता हुआ ही दिखाई देगा। जो व्यक्ति अपने हृदय को साक्षी करके इनके साथ मैत्री जोड़कर सोयेगा वह कभी अपवित्र विचार को स्थान नहीं देगा और शांत निद्रा लेगा।

पर जैसे हमारे आस-पास आकाश है वसे ही हमारे अन्दर भी है। चमड़ी के एक-एक छिद्र में तथा दो छिद्रों के बीच में, जहां जगह है वहां आकाश है। इस आकाश को––खाली जगह को––भरने की भी हमें कोशिश नहीं करनी चाहिए। इससे, यदि हम अपना आहार, जितना चाहिए उतना ही लें तो शरीर में मुक्तता रहेगी।

हमें हमेशा पता नहीं चलता कि कब अधिक अथवा गलत भोजन किया है, इसलिए हफ्ते में या पखवारे में, या जैसी सुविधा हो, उपवास कर लें तो सब घट-बढ़ संभल सकती है। पूरा उपवास न कर सकें तो एक या अधिक समय का खाना छोड़ देने पर भी फायदा होगा।

४. तेज

जैसे आकाश आदि तत्वों के बिना, वैसे ही तेज यानी प्रकाश के बिना भी मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता। जितना भी प्रकाश है सूर्य के पास से आता है। सूर्य न हो तो न गरमी हो और न प्रकाश हो। हम इस प्रकाश का पूरा उपयोग नहीं करते, इसीसे पूर्ण आरोग्य नहीं भोगते। जैसे हम पानी में नहाकर साफ होते हैं वैसे ही हम सूर्यस्नान भी कर सकते हैं। निर्बल आदमी जिसका खून कम हो गया है, वह नंगा होकर सवेरे की धूप ले तो उसके शरीर का फीकापन और निर्बलता चली जायगी और जठराग्नि मंद हो तो वह भी जाग्रत हो जायगी। यह स्नान सवेरे धूप तेज़ होने से पहले लेना चाहिए। जिसे खुले शरीर सोने या बैठने से सर्दी लगे वह आवश्यकतानुसार कपड़ा ओढ़कर सोये, बैठे, और जैसे-जैसे शरीर सहन करता जाय, कपड़ा हटाता जाय। नंगे होकर घूम भी सकते हैं। ऐसी जगह पर कि जहां किसी की नज़र न पड़े, यह क्रिया हो सकती है। ऐसी सुविधा के लिए दूर जाना पड़े और उतना समय न हो, तो ऐसी पतली लंगोटी बांधकर कि जिससे गुप्त स्थान ढक जाय, सूर्य-स्नान लिया जा सकता है। इस प्रकार सूर्य-स्नान से बहुत आदमियों को फायदा हुआ है। क्षय की बीमारी में इसका बहुत उपयोग होता है। सूर्य-स्नान केवल नैसर्गिक उपचारकों का ही विषय नहीं रह गया है। डाक्टरों की देख-रेख में ऐसे मकान बनाए गए हैं कि ठंडी हवा में भी कांच के रक्षण में किरणें मिल सकती हैं।

कितनी ही बार ऐसे घाव हो जाते हैं जो भरते ही नहीं, पर उन्हें धूप देने से वे भर गए हैं।

पसीना लाने के लिए मैंने बीमारों को ग्यारह बजे की जलती हुई धूप में सुलाया है और वे पसीने से नहा उठे हैं। ऐसी धूप में सुलाने के लिए रोगी के सिर पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। उसके ऊपर केले के या दूसरे बड़े पत्ते रखें कि जिससे सिर ठंडा और सुरक्षित रहे। सिर पर तेज़ धूप नहीं लेनी चाहिए।

५. वायु––हवा

पहले चार तत्वों की भांति ही यह पांचवां तत्त्व भी अत्यन्त उपयोगी है। जिन पांच तत्वों का यह शरीर बना है, उनके बिना मनुष्य टिक ही नहीं सकता। इसलिए वायु से किसीको डरना नहीं चाहिए। हम जहां जाते हैं, वहां घर में वायु और प्रकाश को बन्द करके आरोग्य को जोखिम में डालते हैं। सच तो यह है कि यदि हम बचपन से ही हवा से निर्भय रहना सीखे हों तो शरीर को हवा सहने की आदत हो जाती है और ज़ुकाम, बलगम इत्यादि से हम बच जाते हैं।

मेरे अनुभव

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

प्राकृतिक चिकित्सा का नाम मैंने आज से ४६ वर्ष पहले अपने पूज्य चचाजी के मुंह से सुना, जबकि मेरी उम्र लगभग बारह-चौदह वर्ष की थी। उन्होंने लुई कूने की जल-चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ी थी और वे उसकी तथा उनकी चिकित्सा-पद्धति की अक्सर प्रशंसा किया करते थे। उसके आधार पर वे हम बच्चों को तीन बातें सिखाया करते थे

१—रोटी मोटे आटे की खूब (बत्तीस बार) चबाकर खानी चाहिए। २—खाते-खाते डकार आ जावे तो खाना बन्द कर देना चाहिए; क्योंकि डकार आना पेट भर जाने की निशानी है। ३—वह कहते थे कि दस्त इतना बंधा हुआ होना चाहिए कि आबदस्त लेने की जरूरत न पड़े। तन्दुरुस्त मनुष्य के दस्त का यह लक्षण वह बताते थे।

आखिर में वे बीमार हो गये। उन्हें तपेदिक हो गया और जल-चिकित्सा करते हुए ही उन्होंने देह छोड़ा। रोगी होने की अवस्था में उन्होंने एलोपैथी, आयुर्वेदिक, यूनानी आदि सभी इलाज करवाये। अन्त को प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली, हालांकि उनको उसमें सफलता नहीं मिली; क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सकों का दावा हर रोगी को अच्छा करने का नहीं, हर रोग को अच्छा करने का है।

उसके बाद मैं जबकि (१९२१) में पूज्य बापू के पास साबरमती पहुंचा, मैं लगभग प्रायः सुख अवस्था में रहे। हां, चबाकर खाने की आदत अलबत्ता पड़ गई। दस्त और डकार की तरफ भी ध्यान रहता था; पर साबरमती में। अधिकतर काम में खूब ही लगे रहने की कुछ ऐसी धुन बचपन से ही रही है कि उसमें प्राकृतिक जीवन तो दूर, साधारण स्वस्थ जीवन भी न मिल सका। बापू के पास जाने से इस धुन में कुछ तेजी ही आई। प्राकृतिक चिकित्सा की तरफ कुछ ध्यान तो गया; परन्तु बापू जैसी निष्ठा, स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधरने में पड़ जाने पर भी, अभी तक नहीं आई। बापू की नकल कई लोगों ने की, परन्तु उनका संयम और खास करके स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी सावधानी और जागरूकता बहुत कम लोगों ने की होगी। मैंने तो नहीं ही की।

बापू के पास रहने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी उनके कई प्रयोगों में हिस्सा लिया। कच्चा अनाज, कच्चे साग, नीम के पत्तों की चटनी, तेल, आदि प्रयोगों में शामिल हुआ। मगर वे सब छूटते गये। बाद में १९३२, ३७ और ४२ में तीन बार स्वास्थ्य-सुधार के लिये प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग मेरे ऊपर विधिवत् हुए। पहला बम्बई में श्री गौरीशंकर भाई दवे की देखरेख में। दूसरा वर्धा में स्वयं बापूजी की देखभाल में और तीसरा अजमेर जेल में स्वयं मेरी सम्भाल में। तीनों प्रयोगों में मुझे लाभ हुआ, परन्तु वह बहुत-कुछ छिन भी गया; क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा वास्तव में कोई चिकित्सा नहीं है। वह एक जीवन-पद्धति है, जिसमें सारा जीवन ही बदल देना पड़ता है। रोग को निर्मूल करने के लिए जो खान-पान, रहन-सहन बदलनी पड़ती है वह केवल चिकित्साकाल भर के लिए नहीं, सारे जीवन के लिए बदलनी पड़ती है। वह मुझसे अक्सर सदा के लिए नहीं बदली गई। इसलिए उस लाभ से वंचित रहना पड़ा। बीच-बीच में अस्थायी व आंशिक प्रयोग करता रहता हूं और उससे तात्कालिक लाभ भी होता है। धीरे-धीरे निष्ठा भी बढ़ती जाती है, यहां तक कि लगभग साठ वर्ष की अवस्था में भी फिर-फिर कर स्वस्थ होने की आशा बनी रहती है। हालांकि मृत्यु का भय मन में बिल्कुल नहीं है और किसी भी समय वह आ जावे तो शान्ति के साथ उसका स्वागत करने की मन की तैयारी है, फिर भी वह आवाहन ऐसी इच्छा नहीं है। मेरा ख्याल है कि मनुष्य जितने अधिक दिन जीता है, उतना ही उसका अनुभव विस्तृत, ज्ञान परिपक्व और बुद्धि परिष्कृत होती जाती

है और वह स्वयं उसके तथा समाज के लिए अमूल्य सम्पत्ति बनता जाता है। इसलिए वह जितने अधिक दिन सुरक्षित रहे, उतना ही सबका कल्याण है।

पहला प्रयोग बम्बई में हुआ था। नमक सत्याग्रह के सिलसिले में जब मैं दुबारा जेल गया तो मुझे जुकाम की काफी तकलीफ थी। जेल में वह बहुत बढ़ गई और नाक में हरा-पीला मवाद आने लगा। मुंह का जायका मारा गया और नाक में कुछ बदबू-सी भी आने लगी। जेल से छूटते ही मैं सीधा बम्बई गया। स्वामी कुवलयानंद के आश्रम में, मरीन लाइन पर, पहुंचा। वहां के चिकित्सक ने देखते ही कुछ चिन्ता के स्वर में कहा कि आपका तो सरजिकल केस है, हमारे बूते का नहीं है। आप जल्द ही किसी अच्छे सर्जन को दिखाइए। मैने डा० टी० ओ० शाह को दिखाया। उन्होंने फौरन अस्पताल में भरती होकर आपरेशन कराने की सलाह दी। रोग इस हद तक बढ़ चुका था कि मवाद का असर दिमाग की सीमा तक जा पहुंचा था। सवा घंटे तक आपरेशन की क्रिया चलती रही और अन्त में सर्जन ने कहा कि ७५% तुम्हारी बीमारी हमने ठीक कर दी है ऐसा समझो। २५% जिन्दगी भर बनी रहेगी, क्योंकि मवाद का असर दिमाग तक जा पहुंचा है और दिमाग को छूना खतरनाक है। इसलिए रोग का कुछ अंश छोड़ देना पड़ा है। साधारण स्वास्थ्य तुम्हारा जितना अच्छा रहेगा, शरीर में जितना बल संचय कर सकोगे और जीवनी-शक्ति बढ़ा सकोगे उतना ही यह रोग दबता रहेगा। अब शक्ति-संग्रह की फिक्र पड़ी। फिर प्राकृतिक उपाय की ओर ध्यान गया। स्व० श्रद्धेय जमनालालजी की प्रेरणा से, जो दुखियों के प्रसिद्ध त्राता थे और मेरे तो बुजुर्ग जैसे थे, उन्हीं के शांताक्रूज वाले बंगले में श्री गौरीशंकर भाई की योजना में दूधकल्प किया गया, जिसमें कुल मिलाकर तीन महीने लगे। बिना किसी औषधि के मैं दिनभर में लगभग चार सेर दूध भैंस का पी जाया करता था और मेरा वज़न लगभग ११२ पौंड हो गया, जो ९९ या १०० पौंड रहा करता था। जिन्दगी में पहली बार मेरा इतना वज़न बढ़ा। उन्होंने सात दिन बिल्कुल उपवास करवाया। केवल जल पर रक्खा। सात दिन केवल संतरे का रस दिया फिर वर्धमान क्रम से सिर्फ दूध दिया। उसके बाद उन्होंने भोजन का एक क्रम बना दिया था और बताया था कि वज़न १०५ से नीचे गिरने लगे तो सावधान हो जाना चाहिए। प्रतिवर्ष एक महीने तक यह दूध-कल्प कर लिया करें, जिसमें तीन दिन केवल जल पर, तीन दिन संतरे के रस पर और शेष दिन वर्धमान क्रम से दूध पर रहा जाय। मेरे अव्यवस्थित जीवन-क्रम में यह नहीं निभ सका; लेकिन इसका महत्व मेरे हृदय पर अंकित हो गया है।

दूसरा प्रयोग फैज़पुर कांग्रेस के बाद हुआ। उस समय मेरे सारे बदन में खुजली और फोड़ हो गये थे। बैठा भी मुश्किल से जाता था। हलका-हलका बुखार भी रहता था। उसी दशा में पहले से वचनबद्ध होने के कारण भाई खोड़े साहब के साथ मोटर में सारे निमाड़ की यात्रा की। प्रायः एक करवट लेटे-लेटे १०-१२ दिन की पूरी यात्रा समाप्त की। वहां से सीधा वर्धा पहुंचा तो डॉक्टरों ने कलोसल मेंगनीज के इंजेक्शन दिये और कहा कि तुम्हारे सारे सिस्टम में मवाद हो गया है। फिर एक मलहम तीन दिन तक सारे शरीर में लगाता रहा। उससे फोड़े और खुजली तो ठीक होगई मगर बापू ने राय दी की अब प्राकृतिक चिकित्सा से शरीर को और ठीक करलो। यह क्रिया कूने और जुस्ट की सम्मिलित प्रणाली के अनुसार की गई थी। इससे मेरे शरीर में स्फूर्ति रहने लगी और वह अच्छी तरह काम करने लग गया। इसी दौरान में मुझे फिर ज्वर आगया था। बापू की सलाह के अनुसार केवल मेंथी के पत्ते और टमाटर के सम्मिलित उबाले हुए रस पर सात दिन रहने से वह ज्वर चला गया।

१९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय जेल में एक ओर से दस्त, दूसरी ओर से जुकाम, तीसरी ओर

से मंद ज्वर का एक साथ दौरा हुआ। दवाओं से मैं तंग आगया। वे मुझ पर इतनी हावी हो गई थीं कि मुझे यह डर लगा रहता था कि दवा छोड़ी नहीं और मैं खतम हुआ नहीं। एक रोज मेरे मन ने निश्चय कर लिया कि भले ही मर जाऊं; किन्तु दवा की गुलामी एक क्षण भी मंजूर नहीं करूंगा। भूख बिल्कुल नहीं लगती थी। अतः मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि जबतक भूख नहीं लगेगी तबतक खाना नहीं खाऊंगा। सिर्फ पाव भर दूध, थोड़ी-सी कच्ची सब्जी, कच्चे टमाटर और थोड़ा गुड़ लेने लगा था। थोड़ा प्राणायाम और सुबह-शाम घूमने का सिल-सिला भी बनाया। पेडू पर गर्म और ठंडे पानी की धारा भी अदल-बदल कर छोड़ने लगा। आठ दिन में मुझे भूख लगने लगी। फिर मैंने कटि-स्नान सवेरे एक दफा और रात को पेडू पर मिट्टी की पट्टी बांधना शुरू करके व्यायाम भी बढ़ा दिया। इसके कुछ दिन बाद पसीना आने तक धूप में बैठकर तुरन्त ठंडे पानी से स्नान करना शुरू किया। यह प्रयोग नवम्बर में शुरू करके दिसम्बर के अन्त तक चालू रखा। उस साल जाड़ा भी बड़े कड़ाके का पड़ा। नित्य ठंडे पानी से स्नान करने वाले भी गर्म पानी से नहाने लग गये। लेकिन मैं बराबर ठंडे पानी से स्नान करता और नंगे पैर घूमता रहा। साथ ही एक घड़ा ठंडा पानी धार बांधकर सिर पर डाल लेता था। ताहम जुकाम होना तो दूर, छींक तक नहीं आती थी। इन्हीं दिनों ज्ञानेश्वरी के छठे अध्याय को देखकर ध्यान भी शुरू किया था। सुबह कुछ भूने चने, बादाम, मूंगफली के कच्चे दाने चबाने तथा थोड़ा दूध लेने का भी प्रयोग किया। कच्ची सब्जी और दूध काफी मात्रा में लिया करता था। फिर थोड़ी मोटे आटे की रोटी भी लेने लगा। कुल मिलाके इसका नतीजा यह हुआ कि मेरे साथी कहने लगे कि इतनी अच्छी तन्दुरुस्ती हमने पहले कभी आपकी नहीं देखी। और मज़ा यह कि मेरे सफेद बाल भी काले होने लग गये। इसके बाद ही अंगूठे के निशान न देने के अपराध में जेल की तीन महीने की तनहाई कोठरी की सजा मिली, जिसमें ऊपर के वर्ग की खाने-पीने की सुविधायें बंद हो गईं। खाली दाल-रोटी से काम पड़ा। चिकित्सा के लिए केवल टब, व्यायाम और ध्यान की क्रिया के सिवाय और कोई अवलम्बन नहीं रहा। इससे मन तो जहां-का-तहां रहा, किन्तु शरीर फिर कमजोर होगया और दस्त की शिकायत भी शुरू हो गई। अतः फिर डॉक्टरों और दवाओं के चक्कर में पड़ जाना पड़ा। जेल के डॉ॰ सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा—आपके स्वास्थ्य की हम पर जिम्मेदारी है। इसलिए स्वतन्त्र चिकित्सा न करके हमारी ही दी हुई दवाएं लेनी चाहिएं। इस मुद्दे पर उनसे लड़ने जैसी निष्ठा नहीं थी।

इसके बाद भी समय-समय पर छोटे-बड़े प्रयोग किये हैं। अब भी दवाओं से आस्था तो घटती जाती है। कभी श्रद्धेय किशोरलाल भाई और डा॰ राजेन्द्रप्रसाद की ओर देखकर दवा लेते रहने का मन होता है। कभी पू॰ विनोबा-जैसों को देखकर शुद्ध आचार-विचार, ठीक खान-पान और राम-नाम के भरोसे रहने की उमंग उठती है। इस द्वंद्व से कब छुटकारा होगा, नहीं कहा जा सकता। परन्तु कुल मिला कर मेरी श्रद्धा और प्रवृत्ति विनोबा की ओर है, ऐसा मुझे भासित होता रहता है। उनके जैसी निष्ठा जिस दिन भगवान् देगा, उस दिन मुझे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सच्चा आनन्द होगा।

बीमारी में लंघन

पं॰ जवाहरलाल नेहरू

ह्यूएनसांग की किताब में एक बड़ी मजेदार बात है जो शायद दिलचस्प मालूम हो। वह लिखता है कि भारत में जब कोई बीमार पड़ता था तो वह तुरत सात दिन का लंघन कर डालता था। बहुत लोग तो लंघन के दौरान में ही अच्छे हो जाते थे। लेकिन अगर बीमारी फिर भी कायम रहती तो दवा लेते थे। उस जमाने में बीमार पड़ना अच्छी बात नहीं समझी जाती रही होगी और न डाक्टर लोगों को ही ज्यादा काम रहा होगा।

—[पिता-पुत्री के पत्र' से]

प्राकृतिक चिकित्सा का मर्म

डा० कृष्ण वर्मा

प्रकृति स्वयं चिकित्सक है—विश्व, दृश्य जगत, मनुष्य आदि महान् प्रकृति के अंग हैं, जैसे समुद्र और उसके जल की एक बूंद, वास्तव में दोनों एक ही हैं। जबतक ये दोनों सम-मिश्रित रूप में रहते हैं तबतक विकृति नहीं होती। मनुष्य-शरीर जहांतक महान् प्रकृति के नियमानुसार रहता है, उसमें किसी प्रकार की भी बीमारी नहीं होती, अलग होने पर बीमारी का होना स्वाभाविक ही है। मनुष्य-शरीर पंच-तत्त्वों के नियमानुसार प्रकृति से मिला रहेगा तो निर्मल और निरोगी रहेगा और अलग होने से जल-बिन्दु के समान विकृत रूप धारण करेगा अर्थात् मलीन, रोगी रहेगा और नष्ट हो जायगा। इसलिए हमारा प्रधान कर्त्तव्य है कि हम शरीर को सदैव प्रकृति के नियमानुसार रखें, जिससे विकृति से हमेशा बचे रहें।

बुद्धि-भेद से यदि कुछ गलती हो जाय और शरीर-रचना में परमाणुओं से अविच्छिन्न पदार्थ प्रवेश कर जायं, अर्थात् शरीर को जिसकी आवश्यकता नहीं है, वह किसी भी मार्ग, जैसे नाक, मुंह, त्वचा इत्यादि मार्गों से प्रवेश कर जाय तो स्वयं चिकित्सक-प्रकृति उसे निकाल देती है। यदि मुख-मार्ग द्वारा अयोग्य अथवा अप्रमाण मात्रा में कोई खाने-पीने की वस्तु आमाशय में आ जाये तो प्रकृति उसे निकालने के लिए समस्त वस्तु मुंह की राह निकाल देती है और अगर कहीं आंतों तक पहुंच जाय तो दस्त लगने शुरू हो जाते हैं, यदि आंखों में कुछ पदार्थ गिर जाय तो अश्रु आना शुरू हो जाता है। नाक में जाने से छींक आना शुरू होती है, कंठ में जाने से खांसी आने लगती है, इसी प्रकार की बेकार चीजों को प्रकृति स्वयं अलग कर देती है। यही प्राकृतिक चिकित्सा का सत्य स्वरूप है।

प्राकृतिक चिकित्सा के कर्म—हम ऊपर लिख आये हैं कि प्रकृति किस तरह स्वयं चिकित्सक है। उसको दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं। यदि चिकित्सक कुछ करना चाहें तो वे यही करें कि प्रकृति के कार्य में कुछ रुकावट न डालें और न रोगी को डालने दें। यदि कुछ करना चाहें तो प्रकृति का सेवक होकर उसके कार्य में मदद करें। जैसे कि प्रकृति विजातीय पदार्थ (Foreign Matter) को मुंह से निकालने के लिए उलटी करवाती है तो उसकी सहायता के लिए थोड़ा कुनकुना पानी पिलाने से विजातीय पदार्थ को बाहर निकालने में सहायक हुआ जा सकता है। अगर दस्त लगते हों तो एनिमा देकर आंतें साफ की जा सकती हैं। इसी तरह आंख, नाक, कान, त्वचा इत्यादि जहां से भी विजातीय पदार्थ बाहर निकालने की क्रिया होती हो उनको सहायता ही देनी चाहिए। लेकिन उसके खिलाफ क्रिया करना अनुचित है। बेहतर है कि कुछ करें ही नहीं।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सक को चाहिए कि खुद प्रकृति के नियमों के खिलाफ कोई कार्य न करे और न करने की इजाजत दे। जो ऐसा करता है वही सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक है। डा० जे. टी. केण्ट (Kent) अपनी 'न्यू रेमेडीज़' नाम की किताब में लिखते हैं कि जो डाक्टर प्रकृति के नियमों को ठीक तरह नहीं समझते अथवा पालन नहीं करते, अपने रोगियों को समझाते नहीं और उन नियमों का पालन भी नहीं करवाते, उन पर कोई भरोसा नहीं करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा क्यों?—प्राकृतिक चिकित्सा एक अमूल्य चिकित्सा-पद्धति है, क्योंकि यह हमारे धन, धर्म और प्राणों की रक्षा करती है, स्वतन्त्र और पवित्र बनाती है। इन सबसे और ज्यादा मूल्यवान पदार्थ कौन-सा है? प्रकृति की यह एक अमोल देन भी है; क्योंकि इसमें किसी प्रकार के खर्च की आवश्यकता नहीं पड़ती, यह सृष्टि के अनुसार है, सत्य है, सरल है, सर्व-स्थान में, सर्व-काल में सब प्रकार से साध्य है। यह तो हम ऊपर ही लिख चुके हैं कि यह प्रकृति के

अप्राकृतिक जीवन, दवा और डाक्टरों के धोखे से २१ वर्ष में ही अनेक रोगों का शिकार होते हुए क्षय के चक्कर में आ गया, असंख्य धन और जीवन की बरबादी होते-होते यमपुरी के दरवाजे पर पहुंच चुका था। कदम-कदम के लिए दूसरों के सहारे की जरूरत पड़ती थी। तीन वर्ष में दवा-दारू से जो ऐलोपैथ कुछ न कर सके वह नाममात्र के एक ऐलोपैथ, पर वास्तव में नेचरोपैथ, ने तीन सप्ताह में प्राकृतिक नियमों का पालन करवा कर कर दिखाया। उससे सब कष्ट दूर हो गये। मेरे दिल में जीवन-आशा की किरण जगमगा उठी। प्रकृति की कृपा से ५१ वर्ष की आयु और बढ़ी। अब मैं ७१ वर्ष में नीरोग भ्रमण कर रहा हूं। १९१२ में मेरी पत्नी को टाईफाइड हो गया था। यद्यपि मैं प्रकृति के नियमानुसार नीरोग हुआ था फिर भी दवा और डाक्टरों के चक्कर से जो विचार दूषित हुए थे उससे मैं प्रकृति का अर्ध-विश्वासी था। तीन ऐलोपैथिक डाक्टरों से चिकित्सा कराई। ज्वर १०२ से १०४ तक बना रहता था। खून के दस्त लगते थे, कुछ दिनों के बाद एक तेज़ दवा पोर्ट-वाइन (शराब) के साथ मिलाकर दे दी गई। पोर्ट-वाइन से उसे नफरत थी। इसीसे दवा और शराब दोनों उल्टी के साथ निकल आये। डाक्टर ने वही दुबारा २ औंस शराब में दी। तीन उल्टियां हुईं। उसमें दवा शराब और साथ में अन्दर का तमाम गन्दा पदार्थ उल्टी द्वारा बाहर निकल आया। ४ घंटे तक शरीर निर्जीव की भांति पड़ा रहा। कुछ देर बाद जिन्दगी के चिन्ह नज़र आये। दवा और डाक्टरों का पास फटकना बन्द कर दिया। परमात्मा के भरोसे प्राकृतिक इलाज करने से २७ वर्ष तक फिर नया जीवन बिताया। यदि डाक्टर की इच्छानुसार शराब में दी हुई दवा हजम हो जाती और उल्टी होकर खराब विकार न निकल जाता तो मरीज अवश्य मर जाता। गन्दगी निकल जाने से देह की शुद्धि हो गई। उसीसे मरीज़ की जान बची। यही प्राकृतिक चिकित्सा का मर्म है। प्राकृतिक चिकित्सा अर्थात् तन-मन की शुद्धि करना।

चिकित्सक बापू

श्री काका कालेलकर

जब १९३० में बापू के साथ यरवदा जेल में था तब की बात है। उनकी रसोई बनाने के लिए सुपरिण्टेन्डेण्ट मेजर मार्टिन ने दत्तोबा नामक एक महाराष्ट्री कैदी को नियुक्त किया था। दत्तोबा को काम तो बहुत नहीं था। बापू के कपड़े धोता था, बकरी का दूध गर्म करके रखता था और ऐसे ही छोटे-मोटे काम कर देता था। बेचारे के पांव में कुछ दर्द था। लंगड़ाता-लंगड़ाता सब काम करता था।

एक दिन बापू ने मेजर मार्टिन से बात की। उसने कुछ दवा दी, लेकिन पांव का दर्द नहीं गया। इस तरह करीब एक महीना बीत गया तब बापू ने मेजर मार्टिन से कहा, "अगर इस आदमी की चिकित्सा मैं करूं तो आपको कोई एतराज़ है?" मेजर ने कहा—"बिल्कुल नहीं।" बापू ने कहा—"मेरी चिकित्सा में आहार ही मुख्य चीज़ है। अपनी ओर से मैं खास आहार दूंगा।" इसपर भी मार्टिन ने कहा कि ठीक है।

बापू की चिकित्सा शुरू हुई। पहले तो उन्होंने उसको कुछ दिन के लिए उपवास करने को कहा, एनिमा वगैरा से उसका पेट साफ करवाया और फिर उसे कुछ दिन केवल शाक पर रखा। बाद में आहार में समय-समय पर परिवर्तन करते गए। लंगड़े को अच्छा फायदा हुआ। उसने मुझसे कहा—"वर्षों से इस दर्द से परेशान हूं। अब तो मेरा पैर ठीक हो गया। चलने में ज़रा भी तकलीफ नहीं होती। मुझे खुद को आश्चर्य होता है कि अब मैं सबकी तरह कैसे चल सकता हूं।"

●

धरती-माता का जादू-भरा सम्पर्क

श्री एडोल्फ जुस्ट

[प्राकृतिक चिकित्सा के उन्नायकों में श्री एडोल्फ जुस्ट का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी 'रिटर्न टू नेचर' ('प्राकृतिक जीवन की ओर') नामक पुस्तक की, जिसका एक अध्याय हम यहां दे रहे हैं, गांधीजी ने बड़ी प्रशंसा की थी। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने धरती-माता के सम्पर्क की जो उपयोगिता बताई है, वह निर्विवाद है। उनके इस कथन से कौन सहमत न होगा—"मनुष्य जब नंगे पाँव चलना शुरू करता है, धरती को अपना बेटा वापस मिल जाता है।" पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे जुस्ट महोदय की पूरी पुस्तक पढ़ने की कृपा करें। —सम्पादक]

मछली जल का जीव है, वह जल में ही रह और जी सकती है। पक्षी का निदिष्ट स्थान वायु है। वह आकाश का राजा है। जब वह आराम करता है तब वह पेड़ पर बैठता है, इसके लिए जमीन पर तो शायद ही कभी उतरता है, लेकिन आदमी धरती पर चलता है। जबतक आदमी ने जूते-कपड़े नहीं पहने थे तबतक वह बैठा होता था या चलता, दोनों ही हालतों में पृथ्वी के सीधे सम्पर्क में रहता था। पृथ्वी और मनुष्य के सम्बन्ध में उस वक्त किसी प्रकार की अड़चन नहीं पड़ती थी। प्रकृति यह चाहती है कि उसका और मनुष्य का यह निकट सम्बन्ध अब भी बना रहे। प्रकृति की इस इच्छा को एक पवित्र एवं अलंघ्य नियम की तरह समझना चाहिए, जिसे तोड़ने पर हमेशा दंड मिलता है।

यह जानकारी मुझे अधिक-से-अधिक प्रकृति की ओर लौटने तथा अपने और अपने साथियों के लाभ के लिए उसके नियमों को गहराई से समझने की अटूट एवं अथक कोशिश के सिलसिले में हासिल हुई। मुझे आशा है कि लोगों के लिए यह जानकारी काम की होगी। मुझे इसका स्पष्ट अनुभव हुआ है कि कमरे अथवा तख्तों पर नंगे पैर टहलना उतना प्रभावकारी तथा शक्ति एवं उत्साहवर्द्धक नहीं है जितना सूखी धरती पर टहलना, चाहे उसपर की धूल और घास बिल्कुल सूखी ही क्यों न हो। वनवासियों एवं वन में काम करनेवाले मजदूरों से बात होने पर उन्होंने मुझसे विश्वास के साथ कहा है कि बेंच अथवा और किसी चीज पर सोने की अपेक्षा पृथ्वी पर सोना अधिक अनुकूल पड़ता है एवं इससे उन्हें अधिक शक्ति भी मिलती है।

पशु और मनुष्य दोनों ही पौधों की तरह पृथ्वी के प्राणी हैं। उनके विकास में उनका पृथ्वी से सम्बन्ध छूट गया; पर पौधों की तरह पशुओं और मनुष्य पर प्रकृति के नियम समान रूप से लागू हैं। उन्हें शारीरिक शक्ति एवं मानसिक बल भी पृथ्वी से ही मिलती है।

इस जानकारी के बाद मैंने नंगे पांव पृथ्वी पर चलने को अधिक महत्त्व दिया और मुझे नंगे पांव चलने का लाभकारी गुण ज्यादा-से-ज्यादा समझ में आने लगा। फिर मैं यह सोचने लगा कि मनुष्य धरती से और अधिक लाभ किस प्रकार से उठा सकता है। मैंने पहला काम यह किया कि रात्रि का चारपाई पर सोना बंद कर दिया और खुले आसमान के नीचे अथवा वायु एवं प्रकाशपूर्ण कोठरी में जमीन पर पुआल या गद्दा बिछा कर सुलाने लगा। इस प्रकार के सोने के समय मैं धरती के कुछ अधिक नजदीक आए। इससे अच्छा लाभ हुआ—नींद ज्यादा गाढ़ी और आनंद देने वाली आई।

फिर कुछ रोगी बिल्कुल नंगे ही मुलायम घास पर पुआल डालकर सोने लगे। इन रोगियों ने सोने में पृथ्वी से मिले लाभ का वर्णन उत्साहपूर्ण शब्दों में किया। उनके कहने से पता हुआ कि यदि नंगी पृथ्वी पर सोना शुरू करें तो उन्हें गहरी नींद आती और मैं आज के प्रचलित कई स्नायु-संबंधी रोगों में से किसी का कोई डर न रहे। रात को नींद

में मनुष्य पर जो पृथ्वी की शक्तियों का प्रभाव पड़ता है वह निस्संदेह आश्चर्यकारी होता है। जिसने इसका कभी अनुभव नहीं किया है उसकी समझ में यह बात आनी कठिन है कि मनुष्य-शरीर पर इसका सोते में कितना तरोताजा करने वाला और शक्ति एवं जीवनदायक असर होता है।

रोगी की पाचन-क्रिया को सुधारना एवं उसे शक्तिशाली बनाना प्रत्येक चिकित्सा-पद्धति का पहला काम है। प्राकृतिक नहान एवं वायु और प्रकाश-स्नान से शौच समय पर और साफ होने लगता है, पर पाचन-क्रिया को ठीक करने के लिए ज़मीन पर सोने जैसा दूसरा उपाय नहीं है। धरती पर सोने से शरीर की सुस्ती चली जाती है, चेतना जागती है और आंतें सड़ांध एवं पुराने कड़े मल को अच्छी तरह निकाल पाती हैं। फलतः शरीर नवजीवन और नई शक्ति का अनुभव करता है।

प्रायः सभी पशु, विशेषतया खरहे और हिरन, जब अपने लिए सोने का स्थान बनाते हैं तब पत्ती एवं लकड़ी के टुकड़े वगैरह ज़मीन पर से हटा देते हैं। वे ऐसा निश्चय ही इसलिए करते हैं कि वे पृथ्वी के सीधे संपर्क में रह सकें और पृथ्वी की शक्ति उन पर प्रभाव डाल सके।

एक बार मुझे एक बीमार पालतू बाज़ की गति-विधि का अध्ययन करने का मौका मिला था। उसे उसके गंदे पिंजड़े के बाहर निकाल दिया था और मेरे कहने पर लोगों ने उसे बिल्कुल अकेला छोड़ दिया था कि वह जहां चाहे जा सके। वह तरकारी के खेत में गया और करमकल्ले की क्यारी में जहां जमीन मुलायम थी कुछ ज़मीन खुरची और अपने को उसमें थोड़ा धंसाकर चुपचाप लेटा रहा। कुछ दिनों बाद वह बाग से लौट आया और हम लोगों ने देखा कि वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। जबतक वह बीमार रहा उसने कुछ भी नहीं खाया। इस प्रकार पशु अपने साधारण जीवन में चलते-दौड़ते वक्त पृथ्वी के संपर्क में रहने पर भी आराम करते वक्त और बीमारी में पृथ्वी के अधिक नजदीक और सीधे संपर्क में आने की कोशिश करता है। प्रकृति ने अपने बिछौने में वह जादू-भरी शक्ति भर दी है कि उसके संपर्क में आने पर मनुष्य को अपने जीवन में अधिकाधिक आनंद अनुभव होता है।

पहले मनुष्य प्रकृति के नेतृत्व में, पापरहित, पवित्रतम एवं आनंद से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। वह अबाध रूप से उस स्वर्गीय सुख का उपभोग करता रहता था जिसकी कल्पना प्रत्येक सुसभ्य जाति की स्वर्गसंबंधी कल्पना के अंतर्गत की गई है। पर स्वर्ग के सर्प की तरह तर्क ने पृथ्वी पर हमला किया और लोगों को बहकाया कि वे प्रभु के आदेशों की—प्रकृति के नियमों की—जिनकी अनुभूति हमें ज्ञानेंद्रियों-स्पर्शेंद्रियों आदि नैसर्गिक वृत्ति एवं विवेक द्वारा होती है, अवहेलना कर अपनी इच्छानुसार मौज और खुशी में संलग्न रहेंगे तभी उनके शरीर, मन और आत्मा, तीनों को पूर्ण आनंद मिलेगा।

तर्क के दुरुपयोग एवं अपमान के फलस्वरूप सर्प के बच्चे विज्ञान का जन्म हुआ। उसने औषध-विज्ञान को ही नहीं, अध्यापन-विद्या, धर्म-शास्त्र, दर्शन एवं न्याय-शास्त्र को भी पैदा किया। मनुष्य को सुखी एवं समृद्ध बनानेवाले प्रकृति के नियमों के पालन की राय विज्ञान कभी नहीं देता। औषध-विज्ञान तो यह घोषणा करता है कि यदि मनुष्य प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करेगा तो उसका अहित हुए बिना न रहेगा। वह कहता है कि प्राकृतिक भोजन, फल आदि से मनुष्य को पूरी शक्ति तो मिलती ही नहीं, उसका स्वास्थ्य नष्ट होता है और मनुष्य का प्रकाश और वायु के संपर्क में अपने को लाना खतरे से खाली नहीं है। उसकी यह भी मान्यता है कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से जिंदगी के मजे कम हो जायंगे। इसके बाद विज्ञान, शरीर-विज्ञान एवं प्रयोगशाला में किए गये अनेक प्रकार के अन्वेषणों के आधार पर अप्राकृतिक भोजन का एक नुस्खा तैयार करता है, जिसके लिए वह कहता है कि इसे खाते ही शक्ति मिलती है और वह स्वादिष्ट लगता है। इस प्रकार विज्ञान नैसर्गिक वृत्ति का कोई खयाल न करनेवाले स्वास्थ्य-नियमों का

निर्माण करता है। विज्ञान की दूसरी शाखाएं अर्थशास्त्र, धर्म, दर्शन, न्यायशास्त्र भी ऐसे नियमों का निर्माण करेंगे, जिनसे मनुष्य को प्रकृति के मार्ग में आने से बचाया जायगा और कहा जायगा कि उन नियमों पर चल कर ही मनुष्य अच्छा और भला बनेगा तथा उसे सुख और संतोष प्राप्त होगा।

इस प्रकार विज्ञान के फेर में पड़कर मनुष्य ने जूते पहने और पृथ्वी की सुखद शय्या को छोड़ कर पलंग पर लेटा। उसने कल्पना की कि इनके द्वारा उसे वह सुरक्षा, विश्राम और आनन्द मिल रहा है, जो प्रकृति उसे नहीं देती थी। पर तर्क के इस झूठे, लुभावने और विज्ञान की चमकीली दिखावट के फेर में पड़कर मनुष्य को न आराम मिला, न आनंद, न स्वास्थ्य, न खुशी, न साधुता, न सौजन्य। आशा के विपरीत मिले रोग और पीड़ा, ऊब और घबराहट, पाप और अपराध, दुःख और निराशा। प्रकृति के विरुद्ध चलनेवाले से प्रकृति इसी तरह का बदला लेती है। कविवर गेटे ने ठीक ही कहा है

"इस प्रकार के जीवन में मनुष्य को शायद कुछ अधिक संतोष मिल जाय, पर जब उसने स्वर्गीय प्रकाश से पथ-प्रदर्शन लेना छोड़ कर तर्क का पल्ला पकड़ा तो उसने अपने को अधिक शक्तिशाली अनुभव किया—पशु से भी अधिक शक्तिशाली और फिर उसमें पशु जितना भी विवेक नहीं रहा।"

तर्क एक उच्च प्रतिभा है और मनुष्य के लिए ईश्वर की विशेष देन है, पर मनुष्य इसका सदुपयोग नहीं कर सका और यह शक्ति उसके लिए आसुरी बनी और दुःखों का कारण बन गई।

आत्मा और शरीर का सच्चा और पूर्ण स्वास्थ्य जिसमें शारीरिक शक्ति, मानसिक स्वच्छता, आध्यात्मिक सम्मिलित है बिना एक बार फिर अपने को पृथ्वी के नीचे सरकने में लगाए मनुष्य को और किसी तरह मिलने का नहीं।

यह उम्मीद तो नहीं की जा सकती कि मनुष्य एकदम कपड़ा पहनना ही छोड़ देगा और दिन भर नंगा घूमेगा। अभी इस रास्ते की अनेक कठिनाइयां को उसे सुलझाना है। न यही उम्मीद की जा सकती है कि वह एकाएक पूर्ण रूप से प्राकृतिक भोजन को अपना लेगा और केवल फल-मेवे का ही आहार ग्रहण करेगा। पर इतना तो वह कर ही सकता है कि हरदम नंगे पांव रहे। इस चलन से जाड़े में भी कोई तकलीफ नहीं होगी, उल्टे लोग खुशी और आनंद का अनुभव करेंगे। नंगे पांव चलना तपस्या नहीं है। इससे जीवन का आनंद घटता नहीं, बढ़ता है। मनुष्य जब नंगे पांव चलना शुरू करता है, धरती का अपना बेटा बालक मिल जाता है। मनुष्य पर नूतन स्वास्थ्य और सच्ची खुशी की वर्षा होने लगती है। आज के रोगी, दुःखी, पापी, अन्यायी मनुष्य का पुनर्निर्माण तभी होगा, जब वह नंगे पांव चलना, हर रोज कुछ मिनट या घंटों के लिए ही नहीं, बल्कि हमेशा के लिए सीख लेगा। वृक्ष में जो काम जड़ें करती हैं हमारे शरीर में वही काम कुछ अंशों में पैर करते हैं। उनके द्वारा पृथ्वी हममें शक्ति और प्राणों का संचार करती है।

ईसा नंगे पांव चलने को बहुत महत्व देते थे। वे स्वयं नंगे पांव चलते थे और उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी थी, "तू जूतों का बोझ मत घसीट!"

वे भिक्षु, जो नंगे पांव चला करते थे, ठीक ही समझते थे कि ईसा का प्रतिपादित आनंद और मुक्ति तबतक मनुष्य को नहीं मिलेगी जबतक वह जीवन में उस प्राकृतिक पद्धति को नहीं अपनाएगा जिसे ईश्वर ने अपने भक्तों के जीवन द्वारा सारे संसार के सामने उपस्थित किया है और जिसकी आज सर्वथा अवहेलना की जाती है। प्रत्येक आरोग्य मंदिर का यह पहला नियम होना चाहिए कि उसके अधिवासी हमेशा नंगे पैर रहें, जूते-चप्पल कुछ भी न पहनें।

यदि धरती पर सोने का महत्व एक बार पूरी तरह समझ लिया जाय और इसका चलन चला दिया जाय तो मनुष्य-जाति सारी शरीर और दिमाग के भयंकर-रोग से मुक्त हो जाय। इस स्थिति से मुक्ति दिलाने में प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश-स्नान, प्राकृतिक भोजन आदि भी बड़े सहायक होंगे। सर्वेक्षणों सभी प्रकार के रोगों में धरती पर सोने का चमत्कारिक

गुण शीघ्र देखने को मिलता है।

प्रभु ईसा गंदी हवा, विलास, कापुरुषता और नैतिक पतन के गढ़—शहरों से हमेशा दूर रहते थे। वे अधिकतर रेगिस्तान में या पहाड़ों पर रहते थे और अपने उपदेश अधिकतर इन्हीं स्थानों के वासियों को दिया करते थे। यदि किसी दिन वे येरूसलम के मंदिर में उपदेश करते थे तो अपनी रात आलिवस पहाड़ पर ही बिताते थे, जहां वे खुली धरती पर सोते थे। प्रकृति की गोद में विश्राम करते वक्त उनके शरीर पर ओढ़ने के नाम पर केवल एक ढीला-ढाला लबादा ही रहता था।

धरती पर सोना प्रारंभ करनेवालों को दूब से ढकी बढ़िया जगह चुननी चाहिए, यदि ऐसी जगह न मिले तो जमीन पर चटाई बिछा कर सोना चाहिए। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि चटाई पृथ्वी की शक्ति को बहुत-कुछ रोक लेगी। पुवाल, ऊन या रुई के गद्दे अथवा कंबल-दरी पर सोने की तो बात ही नहीं सोचनी चाहिए। इनका उपयोग पृथ्वी से संबंध होने में बहुत बाधा पहुंचाता है। तकिये की भी जरूरत नहीं है। ठंडी ताजगी प्रदान करने वाली धरती पर सिर रख कर सोना विशेष लाभदायक है। यदि धरती पर सोने में पहली रात कुछ तकलीफ मालूम हो तो निराश होने की जरूरत नहीं है।

मैंने बराबर देखा है कि दो-चार दिन के बाद ही रोगी को उसकी धरती की शय्या अति सुखद प्रतीत होने लगती है। तब वह पृथ्वी पर कोई चीज भी बिछा कर सोना कभी स्वीकार नहीं करता। बरसात की रात में ओढ़ने की चीजों को भीगने से बचाने के लिए मैं चाहता था कि रोगी अपनी झोपड़ियों में सोवें, पर वे अपनी पृथ्वी-शय्या छोड़ने के लिए बड़ी कठिनाई से तैयार होते थे। कुछ ही दिन धरती पर सो लेने के बाद उसकी कठोरता का भी अनुभव नहीं होता। इससे भी डरने की जरूरत नहीं है कि जाड़े की रातों में जब ओढ़कर धरती पर नंगे बदन सोवेंगे तो धरती बड़ी ठंडी लगेगी। बहुत से लोगों को बिछावन में सोने की अपेक्षा जमीन पर सोने से पसीना जल्द आता है। पर धरती पर सोना आरंभ करने वालों को, और ऐसे लोगों को भी जिन्होंने प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर अपने शरीर की गर्मी को नहीं बढ़ा लिया है, ग्रीष्म एवं वसंत की सी ही ऋतुओं में खुली धरती पर खुले बदन और जरूरत हो तो कुछ ओढ़ कर सोना चाहिए।

प्राकृतिक भोजन ग्रहण करने वाले और प्राकृतिक स्नान करने वाले को बहुत कम नींद की जरूरत होती है। जिस प्रकार खुली धरती के बजाय कंबल पर सोकर भी धूप-नहान लेने वाले को नींद नहीं आती उसी प्रकार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वाला यदि नंगा होकर अधिक गर्मी के दिनों में भी धरती के बजाय बिछौने पर सोवे तो भी निद्रा उस पर अधिकार नहीं कर पाती। जितना ही अधिक हम अपने को धरती पर सोकर एवं अन्य प्राकृतिक नियमों द्वारा प्रकृति के सम्पर्क में लावेंगे उतनी ही कम हमें नींद की जरूरत रहेगी और बल तथा ताजगी के लिए नींद की अपेक्षा।

सुलाने के लिए प्रायः ब्रोमाइड, मार्फिया, अणु के विषों द्वारा नींद की व्यवस्था की जाती है और इतने जोर के झटके से एवं इतनी गहराई से कि बाद में स्वास्थ्य पर उसका बुरा असर स्पष्ट प्रकट होता है। शराब पीने से, अप्राकृतिक भोजन करने से, गरम कमरे में या गरम कपड़े ओढ़कर अथवा मोटे गद्देदार बिछौने में सोने से भी नींद आती है और इस नींद को लोग शक्तिदायक और लाभदायक समझते हैं। पर यह नींद भी इन बाहरी उपकरणों द्वारा शरीर में ढीलापन उत्पन्न हो जाने के कारण ही आती है और निश्चय ही शरीर को नुकसान पहुंचाती है। बेशक वह हानि इतनी नहीं होती कि उसके लक्षण साफ-साफ दिखाई दे सकें। फिर भी लोग सोकर उठने पर एक प्रकार की घबराहट और भय का अनुभव करते ही हैं। लेकिन जब लोग धरती पर सोने लगते हैं तब उन्हें नींद थोड़ी ही क्यों न आए, सोकर उठने पर उन्हें कोई अप्रिय एवं कष्टकर अनुभव नहीं होता।

आज के कृत्रिम जीवन, स्नायुविक उत्तेजना एवं गरम बिछौने के कारण जो लोग स्नायुविक दौर्बल्य के *अनेक रोगियों की तरह अपने शरीर को ढीला नहीं* कर पाते एवं जिन्हें अच्छी तरह देर तक नींद नहीं आती उनकी दशा चिन्तनीय समझी जानी चाहिए।

ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उससे मेरी इच्छा केवल इतना ही बताने की है कि यदि कोई सज्जन खुली धरती पर नंगे सोने का प्रयोग—सम्भवतः गर्मी की किसी सुन्दर रात्रि में करें और उन्हें नींद कम आवे तो वे पस्त हिम्मत न हों और इस सर्वथा प्राकृतिक रीति का अनुसरण करने से उनके स्वास्थ्य और शरीर को जो अपूर्व लाभ मिलनेवाला है उससे वंचित न रहें। यदि प्रयोगकर्ता बीच में ही अपना प्रयोग छोड़ बैठें तो वे जान लें कि किसी शराब की भट्ठी में घुमाई औषधि या किसी मरीज-दिमाग में पैदा हुए रसायन से वे महरूम न रह जावेंगे, वरन् एक ऐसी प्राकृतिक महौषधि के अपने को अनधिकारी ठहरावेंगे, जिसे प्रकृति स्वयं अपने हाथों प्रदान करती है और जिसकी अनुभूति स्वास्थ्य की सच्ची निर्णायिनी एवं पथप्रदर्शिका नैसर्गिक वृत्ति द्वारा होती है।

जिन लोगों ने नंगे पैर टहलने का इरादा पक्के तौर से कर लिया है वे इसकी चिन्ता न करें कि वे कहां टहलें। लॉन और खलिहान, जंगल और वन कहीं लम्बी दूरी में फैले हुए हैं, जहां कोई भी टहल सकता है।

सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वालों का मजाक उड़ाने और उनकी राह में रोड़े डालने की लोगों की इच्छा होती है, उसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें अपने अस्वाभाविक जीवन का एवं उससे आने वाली विपत्तियों का नैसर्गिक रूप से ज्ञान रहता है और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वालों को हुए लाभ को देखकर उन्हें ईर्ष्या होती है। दूसरे, अप्राकृतिक भोजन एवं जीवन की अस्वाभाविक रीति ने, जिसका मनुष्य कायर इच्छाओं एवं आदतों की तरह गुलाम बना रहता है, मुक्ति पा लेने के लिए न उसमें काफी मानसिक बल होता है, न इसके लिए उसे प्रोत्साहन अथवा मौका ही मिलता है और सबसे *बड़ी बात यह कि उसे इस सही रास्ते का समुचित* ज्ञान भी नहीं होता जो वह इसका अनुसरण कर सके।

पर जब लोग इस सत्य को अधिकाधिक साफ तौर से पहचानने लगेंगे और शान्ति एवं बुद्धिमत्तापूर्वक उसे इस तरह अपनाएंगे कि लोग उनसे कम-से-कम चिढ़ें या भड़कें, तो इसकी जड़ गहरी जमती जायगी और इसके मार्ग में कांटे बिछानेवालों की संख्या भी कम होती जायगी। तब पृथ्वी के आनन्द और आराम का दरवाजा जिस प्रकार आज मेंढक और चूहे, खरहे और गिलहरी, हिरन और बारहसिंघे, लोमड़ी और गिद्ध आदि सभी जीवों के लिए खुला है उसी प्रकार ईश्वर के प्रियतम मनुष्य को भी धरतीमाता के जादू भरे स्पर्श में रहकर आराम करने की सुविधा मिल जायगी, जिससे उसे पृथ्वी का सच्चा आनन्द मिलेगा एवं उसके स्वास्थ्य को अपरिमेय लाभ प्राप्त होगा।

कुछ ही दिन हुए जब कुछ स्थानों में स्वास्थ्योन्नति एवं रोग-निवारण के लिए कुछ लोगों का बर्फ पर *भी नंगे पैर टहलना आरम्भ करने का समाचार सुना* गया था। साधारणतः सुननेवालों ने तब इसका मजाक ही उड़ाया था। लोग तो पहले पांवों को, जिनका हमेशा से खास ख्याल रखा एवं जिन्हें हर समय गरम रखने का खास इन्तजाम किया जाता रहा है, ठंडी हवा, खुरदरी जमीन एवं [illegible] हो तो बरफ के सम्पर्क में लाने के ख्यालमात्र से सिहरते थे। क्यों न सिहरते? सदा से जो दादी कहती आई हैं, "बेटा, पांवों को हमेशा गरम रखो।" और डाक्टर साहब पांवों को ठंडे पानी से बचाने की सीख जो देते आए हैं। इस समाचार के बाद कुछ लोगों ने नंगे पांव टहलने की आजमाइश की। उन्हें अनुभव हुआ कि नंगे पांव टहलना स्वास्थ्य के लिए तो सब तरह से उपयोगी है ही, बढ़िया कसरत भी है और तबसे इस सर्वथा प्राकृतिक उपचार के सम्बन्ध में लोगों के विचारों में बड़ा परिवर्तन

हुआ है ।

इसी तरह धरती पर सोने का भी चलन चलेगा। कुछ दिन तक यह चलन नंगे पांव चलने से बहुत अधिक कठोर एवं अमानुषीय समझा जायगा। पर जब लोग इसका प्रयोग कर देखेंगे तब इसके रोग-निवारण के विशेष गुण से परिचित हो जायेंगे और यह भी जान जायेंगे कि यह चाल नंगे पांव चलने की तरह ही निरापद है ।

सूर्य-किरणें रोग-निवारण में बड़ी लाभकर सिद्ध हुई हैं। यदि रोगी धूप में टहलने के बजाय लेटकर धूप ले तो लाभ बहुत अधिक होता है। इसी तरह धरती पर लेटने पर धरती का असर भी टहलते समय से ज्यादा सीधा पड़ता है। धूप की तरह धरती भी शरीर में रोग-निवारण की क्रिया प्रारम्भ कर देती है, पर यदि टहलने में या और किसी कार्य में शक्ति का व्यय हो रहा हो तो धूप और धरती से शक्ति मिलती रहने पर भी शरीर अपने शोधन का कार्य पूरी तेजी से नहीं कर पाता ।

जो हो, प्रचलित विचारों का खयाल करके प्रत्येक रोगी को और खास-तौर से चिकित्सालय के निवासियों को खुली धरती पर आराम करना या सोने की राय देते वक्त बहुत सोच-समझ से काम लेना चाहिए। शुरू में एक रात जमीन पर और दूसरी रात बिछौने में सोना काफी होगा।

जब मैंने अपने चिकित्सालयों में धरती पर सोने का चलन चलाया तो मुझे भी अनेक वहमों का सामना करना पड़ा। किसी को जमीन पर सोने का प्रयोग करने की इच्छा ही नहीं होती थी। तब कई लोगों ने एक साथ बड़े उत्साह से धरती पर सोना आरम्भ किया और इससे प्राप्त लाभों से बड़े प्रसन्न हुए। फिर तो उन्होंने प्रायः सभी को खुली धरती पर सोने के लिए राजी कर लिया। इससे प्रत्येक को जो लाभ हुआ उसे देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता था।

नंगे रहने का प्रचार पहले-पहल रिक्ली ने किया था। वह वायु और प्रकाश संबंधी प्राकृतिक नियमों को पूरी तरह नहीं समझता था और इनकी जानकारी के बगैर भी वह कुछ लोगों को नंगे रहने की राय दे देता था, पर इससे साधारण जनता में इसका चलन नहीं हो सका।

धरती की शक्ति और उसके प्रयोग पर किसी का जरा भी ध्यान नहीं गया था। जब मैंने पहले-पहल इसकी चर्चा की तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, पर शीघ्र ही धरती की शक्ति लोगों के लिए कुतूहल का विषय बन गई और हर जगह इसकी बात बड़े ध्यान से सुनी जाने लगी।

सचमुच धरती के रोग-निवारक गुण और इससे मिलने वाले अनेक प्रकार के लाभों से बढ़कर दूसरा दिलचस्प और आवश्यक विषय है भी नहीं। पृथ्वी में इसके आदि से ही एक शक्तिशाली प्राण का प्रवाह हो रहा है जिस पर मनुष्य के बनाव-बिगाड़ का कोई असर नहीं पड़ सका है। यदि मनुष्य पृथ्वी के सीधे संपर्क में आ जाये तो पृथ्वी मनुष्य को भी अपनी इस सजीव शक्ति से प्रवाहित करने को तैयार रहती है।

हम पृथ्वी से इच्छित शक्ति प्राप्त कर सकते हैं और जो जितना ही अधिक प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता है, पृथ्वी से उतनी ही अधिक शक्ति प्राप्त करता है। जब कभी मौका मिले, आदमी को कपड़े पहनकर ही सही, धरती पर बैठ जाना चाहिए। टहलते वक्त या लंबी यात्राओं में खुली धरती पर बैठकर या लेटकर आराम करना चाहिए। पृथ्वी की शक्ति मनुष्य पर उसके कपड़ों के द्वारा भी असर करती है। आप थोड़ी देर के लिए आराम से खुली धरती पर सो जाइए, आप मेरे कथन की सत्यता का अनुभव स्वयं कर लेंगे।

उत्तेजित मनोदशा, निरुत्साह और शोक के क्षणों में, हिस्टीरिया का दौरा एवं शरीर में ऐंठन होने आदि की दशाओं अथवा अनेक प्रकार की रोगावस्थाओं में मैंने धरती पर बैठने या लेटने से लोगों को अक्सर शीघ्रता से शांत होते, उनका कष्ट कटते और उन्हें रोग-मुक्त होते देखा है ।

पृथ्वी यदि गीली हो तो हमें इसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है। गीली मिट्टी की रोगनिवारक शक्ति अधिक सतेज होती है, जिसकी पुष्टि इस बात से होती है कि कई लोगों को इससे सर्दी-जुकाम हो जाता है। यह शरीर की शुद्धि प्रारम्भ होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह किसी तरह भी डर की चीज नहीं है।

सारी प्रकृति में ही रात के वक्त एक निराली शक्ति प्रवाहित होती रहती है। यदि आप रात्रि के समय जंगल में जायं तो प्रतीत होता है कि वहां संसार के मुक्त प्राण पर्यटन कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि दूर्वा दिन में नहीं, रात्रि को ही बढ़ती है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि धरती की शक्ति रात को खास तौर से अधिक होती है।

मैंने अपने चिकित्सालय में बराबर ऐसी कोशिश की है जिससे लोगों को धरती पर सोना अधिकाधिक सुखद प्रतीत हो। अन्त में मेरे मन में बालू के गद्दे बनवा देने का विचार उत्पन्न हुआ। साधारण धरती पर सोने के बजाय इन पर सोना ज्यादा आरामदेह होता है। ये धरती से मुलायम होते हैं।

चार से आठ इंच मोटी बालू की तह सोने के लिए काफी होती है। इस पर कोई भी पतला टाट या कपड़ा बिछाया जा सकता है। इससे पृथ्वी की शक्ति प्राप्त करने में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती और ओढ़ना भी साफ रहता है। इससे और भी कई लाभ हो सकते हैं। सिरहाने की ओर बालू की ऊंची पटिया-सी बनाकर तकिये का काम लिया जा सकता है।

यदि बालू का यह बिछौना खुली जगह में लगाया जाय तो लाभ और विशेष हो, क्योंकि मनुष्य के रोग-निवारण में आकाश का भी स्थायी प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव रात्रि को अधिक शक्तिपूर्ण रहता है। तारोंभरी रात में आकाश के महान् गुम्बज के नीचे जब मनुष्य सोता रहता है, यह शक्ति उसके शरीर में जीवन और बल भरती रहती है। आकाश और धरती की शक्ति मिलकर एक महान् पोषक शक्ति बन जाती है।

प्राकृतिक इलाज

महात्मा भगवानदीन

यह सारी दुनिया और सारा पसारा पुरुष और प्रकृति का समूहा है। पुरुष और प्रकृति जो दिन से मिले उस दिन से यह पता नहीं कि कब प्रकृति पुरुष पर सवार हुई और कब पुरुष प्रकृति पर सवार हुआ। हमारा अनुमान यह है कि पुरुष और प्रकृति के मिलने के पहले क्षण ही प्रकृति पुरुष पर सवार हो बैठी और फिर सारे पसारे में प्रकृति-प्रकृति ही रह गई। इसी प्रकृति को माया भी कहते हैं। पुरुष का दूसरा नाम ब्रह्म है।

प्रकृति पूरे तौर से जब पुरुष को अपने काबू में रखती है तब भी वह स्वस्थ रहती है। जब पुरुष पूरी तरह से प्रकृति को अपने काबू में रखता है तब भी प्रकृति स्वस्थ रहती है। अस्वस्थ तो वह तभी रहती है जब वह न ब्रह्म को काबू में कर पाती है और न ब्रह्म उसे। यह माया, और ब्रह्म और प्रकृति और पुरुष का ढोंग यहां हम क्यों ले बैठ गये ? सिर्फ इस गरज से कि आगे जो हम प्राकृतिक इलाज पर बात करना चाहते हैं उसके समझने में आसानी हो।

आदमी जब जन्म लेता है तो अगर उसके मां और बाप किसी खास बीमारी को लिए हुए नहीं हैं तो वह पूरा स्वस्थ पैदा होता है। मानो उस वक्त ब्रह्म या पुरुष, माया या प्रकृति के पूरे काबू में होता है। पर पुरुष के प्रकृति के बन्धन में पड़ने के दिन से ही पुरुष हमेशा यह कोशिश करता रहा है कि वह प्रकृति पर पूरा काबू पा ले। ठीक इसी तरह से

बच्चा आदमी के अन्दर बैठा हुआ पुरुष प्रकृति पर काबू पाने के लिए कोशिश करता है और इस तरह से स्वास्थ्य की तराजू का समतोल बिगड़ जाता है और अस्वस्थता आकर जगह ले लेती है। इसे बोल-चाल में यों समझिए कि बालक मां-बाप की सोह-बत में पड़कर अपनी पूरी स्वस्थ इन्द्रियों को कुछ ही दिनों में ऐसा कर लेता है कि वह उसे धोखा देने लगती हैं और फिर उसे धोखा खाने में आनन्द आने लगता है। यह सब होता है पुरुष की मेहनत का फल। बालक के ब्रह्म को अगर मां-बाप के धोखों ने जगाया न होता और बालक को बालक पर ही छोड़ दिया गया होता तो वह बिल्कुल स्वस्थ रहता और इतना स्वस्थ रहता कि प्रकृति डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों को जन्म देने की बात ही न सोचती। पशु-पक्षियों में इसी वास्ते तो प्रकृति ने किसी ऐसे इन्तज़ाम की बात नहीं सोची। हां, वहां यह बात ज़रूर है कि प्रकृति पुरुष को पूरी तरह से काबू में रखती है। किस जानवर को क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए यह आता है, हम इस बात पर विश्वास नहीं करते। हां, उसे यह ज़रूर आता है कि किन हालतों में किस जगह क्या खाकर रहकर कैसे स्वस्थ रहा जा सकता है। स्वास्थ्य का सम्बन्ध इस बात से नहीं है कि आदमी की प्राकृतिक खुराक क्या है। उसका सम्बन्ध तो सिर्फ इस बात से है कि आदमी पैदायश से यह जानता था कि कब, किस जगह उसको क्या, कैसे खाना चाहिए। प्रकृति की खुराक भी प्रकृति है। पर किस हालत में किस वक्त, किस जगह, क्या किस तरह खाना चाहिए, यही है प्राकृतिक इलाज।

दूसरी तरह के इलाज के हमारे तमाम तरीकों ने आज तक सिवाय इसके क्या किया है कि हमारे सिर के बाल उड़ा दिए हैं, आंखों पर चश्मा लगवा दिया है। गन्दे सड़े मकानों में रहकर नाक खुशबू-बदबू में तमीज़ नहीं कर पाती। दांत निकलने के दिनों में दांत उखड़ने लगते हैं। पहले से उम्र तो बेहद घट ही गई है। पहले जैसे ताकतवर आदमी कहीं देखने को नहीं मिलते। मिजाज बेठिकाने हो गया है। चिड़चिड़ापन बढ़ता जाता है। बर्दाश्त नाम को नहीं रह गई है। यानी इलाज के तरीकों से न हमारा तन स्वस्थ रहा है न मन और अगर हम यह भी कह दें कि न मस्तक तो भी बेजा न होगा। मस्तक के लिहाज़ से हम बड़े बुद्धिमान तो हो गये हैं और ऐसी-ऐसी चीजें सोच निकाली हैं जिससे कोई देखे तो यह कह दे कि अब आदमी ईश्वर के कामों से टक्कर ले लेगा, पर मन स्वस्थ न होने से वह मस्तक ईश्वर से टक्कर लेने के बजाय पड़ोसी के मस्तक से टकरा जाता है और दोनों मस्तक फूट कर प्रकृति के पैरों में जा पड़ते हैं। फिर भी इस इलाज के इतने गीत गाये जाते हैं कि जो इस इलाज के खिलाफ हैं उनकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती जितनी आवाज़ भी नहीं रह जाती। हम इन तरह-तरह के इलाजों से अस्वस्थ बने, अस्वस्थ हैं और अस्वस्थ होते जा रहे हैं, पर मान यह रहे हैं कि हम स्वस्थ हैं। इसका क्या इलाज ? इसके जवाब में ही हम अपनी जिन्दगी की कुछ घटनाएं देना चाहते हैं :

हमारी उम्र दस वर्ष की रही होगी। हमको चौथैया बुखार आने लगा। हमें उबले हुए सिंघाड़े बड़े अच्छे लगते थे और हम यह नहीं चाहते थे कि अपने बुखार की बात कहकर हम सिंघाड़े खाने से रोक दिये जायं। इसलिए आम तौर से हम यह किया करते थे कि जब दो बजे के करीब हमको सर्दी लगती थी तो हम स्कूल से छुट्टी लेकर घर आ जाते थे और लिहाफ ओढ़कर पड़ जाते थे। पिताजी कहीं दूर बाहर थे। माताजी आंगन में धूप में बैठी अपने काम में लगी रहती थीं, इसलिए वह यह नहीं जान पाती थीं कि हम बुखार में लेट रहे हैं और हम किसी को बताते थे ही नहीं। यह सिल-सिला एक-दो दिन नहीं, कई महीने चला। हां, जब गर्मियां आ गईं तो अपने लेटने के नाटक में हमें कुछ तब्दीली करनी पड़ी और वह तब्दीली हमने

अपने तजरबे में चल रहा था। मानी यह कि मलेरिया का जाड़ा लिहाफ से कुछ जाता तो है नहीं, फिर एक मामूली चादर से ही काम क्यों न चलाया जाय। ऐसा ही हमने किया और हम सफल भी हो गये और खाट की पकड़ में न आ गये। हाँ, इतना जरूर हुआ कि लिहाफ मिलना बन्द हो चुका था। अब रसभरिया पर नम्बर आया। ये भी हम बड़ी अच्छी लगती थीं। रसभरिया का प्रयोग चल ही रहा था कि हमारे पिताजी बाहर से आ गये और हम पकड़े गये। पर वह हमारे ज्वर की आखिरी बारी थी, पर थी तो। बुखार था। यह दूसरी बात है कि वह कम था। फौरन ही हम अलीगढ़ ले जाये गये और एक डाक्टर को दिखलाये गये। जिस वक्त डाक्टर ने देखा, हमें बुखार न था। उसने दवा देने से इनकार कर दिया और कहा कि बुखार देखकर दवा दूंगा। हमारे पिताजी ठहर गये। मगर न हमें बुखार आया और न डाक्टर को दवा देने का मौका मिला। अब या तो डाक्टर के डर से हमारा बुखार भाग गया। अगर यह बात सच है तो मानसिक इलाज भी प्राकृतिक इलाज में शामिल है। या फिर हमारी इस भावना से कि दवा नहीं खाना चाहिए, बुखार भाग गया। अगर यह बात सच है तो आत्म-सुझाव (Auto Suggestion) भी तो एक प्राकृतिक इलाज है। या फिर रसभरिया से बुखार भाग गया। अगर यह बात सच है तो खाने-पीने की तब्दीली भी प्राकृतिक इलाज है। या फिर वक्त ने खुद खराबियां दूर कर दीं और प्रकृति ने अपने आपको अच्छा कर लिया। अगर यह बात सच है तो अपने आपको प्रकृति पर छोड़ देना ही प्राकृतिक इलाज है। हम उन दिनों दस बरस के थे। यह सब बातें उन दिनों हमें नहीं सूझीं। हम तो एक ही बात जानते हैं कि हम दवाई से भागते थे और डाक्टरों से बुरी तरह से भागते थे जैसे चूहा बिल्ली से।

२१ वर्ष की उमर में एक डाक्टर ने बहुत खुशामद-दरामद से कुनैन खिला दी। उन दिनों कुनैन हमारी रग की आदत बनती थी और गोलियों न रहकर मैदा जैसी बारीक पिसी हुई होती थी। बुखार तो हमारा तीन पुड़ियों में ही चला गया, पर उसके दो-तीन दिन के बाद हमें स्वप्नदोष हुआ और फिर तो उसका सिलसिला ही चल पड़ा। उसको दूर करने की खातिर हमारे पड़ोसी दोस्त ने किसी वैद्य को बुलाकर एक पाक तैयार कराया, जिसमें रांगे का कुश्ता भी शामिल था, जिसको बंग भस्म भी कहकर भी बोलते हैं। उस पाक के पहले लड्डू ने ही जादू का असर दिखाया, पर छः महीने के बाद गला घटकना और एक तरह की बेचैनी और आठ महीने के बाद स्वप्नदोष का सिलसिला फिर शुरू हो गया। किसीसे सलाह लिये बिना हमने सब्जी खाना शुरू किया और सब्जी भी इतनी कि एक दिन हमारी बहन को यह पूछना ही पड़ा कि इतनी कम रोटी और सब्जी से तुम्हारा काम किस तरह चलेगा? हमने उसको जवाब तो ठीक-ठीक नहीं दिया, पर अपनी बात पर डटे रहे और आठ-नौ महीने के बाद जब हम हर तरह स्वस्थ हो गये तब हमने अपना खाना भेद अपनी बहन पर खोल दिया। अब अगर सब्जी ज्यादा खाना प्राकृतिक इलाज है तो आप ऐसा मान लें और अगर सब्जी खाना हमारे मन की दृढ़ता की सिर्फ टेक है और मन की दृढ़ता प्राकृतिक इलाज है तो आप ऐसा मान लें और अगर सब्जी खाना हमारी उस घृणा की मदद है जो हम अपने मन में दवाओं के खिलाफ रखते हैं और अगर दवाइयों के खिलाफ मन की घृणा प्राकृतिक इलाज है तो आप ऐसा मान लें। हमने अपनी २१ वर्ष की उस उम्र में भी प्राकृतिक इलाज के डाक्टर या जानकार की हैसियत से कुछ भी नहीं किया था।

अब हम तीस बरस के हुए। एक गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता थे। गुरुकुल में एक डाक्टर भी रहते और एक वैद्य भी। प्राकृतिक इलाज का कोई चर्चा हमारे गुरुकुल में नहीं था। हम यह भी नहीं कह सकते कि हम प्राकृतिक इलाज से उन दिनों दिलचस्पी रखते थे। हाँ, यह जरूर कह

सकते हैं कि हमें गुरुकुल में भी एक बार बुखार आया; पर दवा न डाक्टर से ली, न वैद्य से। बुखार आने पर खाना तो हमने अपने आप छोड़ दिया; पर पानी हमें यों छोड़ना पड़ा कि हमारे गुरुकुल के डाक्टर ने हमसे कहा कि बुखार में पानी नहीं पीना चाहिए और अगर जरूरत हो ही तो एक वक्त में छटांक भर से ज्यादा नहीं और वह भी चाय के चम्मच से। यह थोड़े और चाय के चम्मच से पीने की बात हमें जंची नहीं। हमने डाक्टर से साफ कह दिया कि हमारे लिए यह आसान है कि हम पानी बिल्कुल न पियें और हम करेंगे भी यही। बस पानी तो हम जभी पियेंगे जब तुम हमें उतना पानी पीने की इजाज़त दोगे जितना हम पीना चाहें। बारह घण्टे हमने पानी नहीं पिया। डाक्टर साहब फिर आये। उन्होंने पानी के बारे में अपनी फिर वही बात दुहराई और हमने भी फिर अपनी पुरानी बात दुहराई। आखिर डाक्टर ने यह कहा कि आप नीबू जितने चाहें खा सकते हैं। हमने यह मान लिया। डाक्टर साहब चले गये और फिर हम पूरे एक दर्जन नीबू बीज निकाल कर छिलके और जीरे समेत खा गये। रात को जब डाक्टर साहब आये तो उन्होंने हमसे पूछा। हमने कहा—"सिवाय नीबू के हमने कुछ नहीं लिया।"

लेकिन जब डाक्टर साहब को छिलके समेत हमारे एक दर्जन नीबू खाने की बात मालूम हुई तो वे मुस्कराये और बोले—"मैंने इनको पहचान लिया और समझ लिया। मैं अब इनका इलाज कभी नहीं करूंगा।" अब अगर बारह नीबू या जीभर नीबू खा लेना बुखार का प्राकृतिक इलाज है तो वैसा मान लीजिए। या मन की हठ या मन की पक्काहट अगर प्राकृतिक इलाज है तो वैसा मान लीजिए। या अगर दवा खाने से नफरत और उससे बचने की कोशिश प्राकृतिक इलाज है तो वैसा मान लीजिए। हां, इतनी बात जरूर थी अब हम तीस बरस के थे। प्राकृतिक चिकित्सा, मनोविज्ञान, आत्मसुधार पर कई किताबें पढ़ चुके थे और हमारे इस नीबू खाने के काम में इन किताबों की मदद भी शामिल थी।

इस घटना के दो बरस बाद हमें संग्रहणी हो गई। जिस वक्त संग्रहणी हुई थी उस वक्त हमसे कोई पूछता कि क्या बीमारी है तो हम कभी यह न बता सकते कि संग्रहणी है। संग्रहणी क्या होती है यह हम जानते ही नहीं थे। हमको संग्रहणी है यह बात तो हमने जब जानी जब हकीम अजमल खां साहब ने हमारी नब्ज देखकर हमें संग्रहणी बताई। उस वक्त तो हम इतना ही समझते थे कि टट्टी जाने के बाद हम एकदम बेदम से हो जाते थे और कभी-कभी गश खाकर गिर पड़ते थे। इस बीमारी को लेकर हम मेरठ पहुंचे। वहां हमें एक हकीम साहब को दिखाया गया। हमने उनका इलाज करने से इस वजह से इन्कार कर दिया कि वह नब्ज़ देखकर हमारी बीमारी नहीं बता सके। हां, उनका यह कहना जरूर था कि सात दिन उनकी दवा खाने से और उसका असर बताने से वह हमारी बीमारी बता सकते हैं। पर हम इस पर भी राजी न हुए। फिर हम दिल्ली पहुंचे। वहां हमारे मित्र जौहरी जगन्नाथजी हमको हकीम अजमल खां साहब के यहां ले गये। उन्होंने हमारी नब्ज देखी और अपने नायब हकीम की तरफ़ मुंह करके फारसी अक्षर 'फे' बोला और दूसरे आदमी की नब्ज़ देखने लगे। इससे ज्यादा वक्त वे शायद ही किसी मरीज़ को देते थे। इस पर हमारे मित्र जौहरी जगन्नाथजी, जो हकीम साहब के भी मित्र होते थे, उनसे बोले कि यह अपना मर्ज जाने बगैर आपकी दवा इस्तेमाल नहीं करेंगे। इसके जवाब में हकीम साहब ने न कोई टेढ़ामेढ़ा संस्कृत का शब्द बोला और न फारसी अरबी का और न किसी बीमारी का नाम कहा। बल्कि वह सब बता दिया जो हमें था। वह साफ बोले कि इन्हें पाखाना होने के बाद गशी आ जाती है और बेहद कमजोरी हो जाती है। तब मैंने पूछा, "यह क्या बीमारी है?" उन्होंने कहा—"इसे संग्रहणी कहते हैं।" इसी सिलसिले में मैं पूछ बैठा कि आप मुझे क्या दवा दे रहे हैं? वह बोले, "फौलाद।" मैंने पूछा—

"फौलाद किस फल में ज्यादा होता है?" वह बोले "अनार में।" बस वह और मरीज़ को देखने लगे और मैं अपने मित्र के साथ दवा लेकर चला आया, पर मुझे को दवाओं से कोई लाभ न मिला। मैं वहां से अपने वैद्य मित्र के पास इटावा पहुंचा। उन्हीं का मेहमान हुआ। दो दिन के बाद मेरी बहन भी मेरी सेवा के लिए मेरे पास पहुंच गई। वैद्यजी अपने मित्र तो थे ही, वह न माने और उन्होंने मिसरी में फौलाद मिलाकर एक पुड़िया मुझे दे ही तो दी। मैंने ले ली और इस तरह से सुबह शाम वह दो पुड़िया चालीस दिन तक मुझे देते रहे। चालीस दिन में मैं बिल्कुल अच्छा हो गया। खाने के लिहाज से इन चालीसों दिन मैंने सिवाय अनार के कोई दूसरी चीज नहीं खाई, यहां तक कि पानी और नमक भी नहीं। बरसात के दिन थे। इटावे में उन दिनों अनार बेहद सस्ता था। चालीस-पचास अनार खा जाता था और एक रुपए से ज्यादा खर्च नहीं होता था। जब मैं बिल्कुल स्वस्थ हो गया तो याद नहीं कि किस सिलसिले में एक दिन अपने वैद्य मित्र के साथ इस बात पर बहस छिड़ गई कि वैद्यक अच्छी या प्राकृतिक चिकित्सा। बहुत देर बहस के बाद मेरे वैद्य मित्र ने अपना आखिरी तीर छोड़ा और कह यह कि देखिए, मैंने आपको अपनी पुड़ियाओं से कितना जल्द अच्छा कर दिया। मैंने जवाब में कहा, "वह आपकी पुड़िया नहीं है जिन्होंने अच्छा किया; बल्कि यह मेरा परहेज़ है, जिसने मुझे अच्छा किया।" वह बोले, "अच्छे तो आप पुड़ियाओं से ही हुए हैं। हां, आपके परहेज़ ने मेरी पुड़ियों की मदद की और नब्बे दिन की जगह आप चालीस दिन में ही अच्छे हो गये।" मैं बोला, "अगर मैं यह कहूं कि आपकी पुड़ियों ने मेरी रत्ती भर मदद नहीं की तो क्या आप मेरी बात मानने से इन्कार कर देंगे?" थोड़ी बहस के बाद मैं वहां से उठकर चल दिया और सारी पुड़ियां उनके सामने लाकर रख दीं और बाकी-की-बाकी पूरी गिना दीं।

अब अगर शास्त्रिय बनाए हकीमों का प्राकृतिक इलाज है तो आप वैसा मान लें। या अगर यह सिर्फ मेरे मन की दृढ़ता है तो वैसा मान लें। यदि मन की दृढ़ता प्राकृतिक इलाज है तो वैसा मान लें।

सन् १९२६ में मुझे दमा हो गया। दो बरस न दमे ने ज्यादा ज़ोर किया, न मैंने उसे कुछ दबाने की बात सोची। सन् '२९ में जब उसने ज़ोर पकड़ा और जब उसे दबाने की ज़रूरत पड़ी तो मैं अपने मित्र पं० सुन्दरलालजी के पास इलाहाबाद था। वह मेरी तकलीफ़ न देख सके और किसी वैद्य के द्वारा मेरे लिए संखिया भस्म की नौ पुड़ियां ले आये और मुझे उनके खाने पर राज़ी कर लिया। पहली पुड़िया ही ने जादू का असर किया। हां, इतना ज़रूर हुआ कि जब मैं दूसरे दिन गंगाजी नहा कर लौट रहा था तो रास्ते में कय होने लगी और वह रुक कर ही न दे। पास ही पंडित सुन्दरलाल-जी के मित्र जगन्नाथजी वैद्य रहते थे। वे मुझे वहां ले गये। वह अचानक कय की कोई वजह न जान पाये। बहुत पूछताछ के बाद उनको पता लगा कि मैंने कल संखिया की पुड़िया ली थी। यह सुनते ही वह अन्दर दौड़े गये और आपजाब पी ले आये और मुझे पिला दिया। कय बन्द हो गई। मैं घर आ गया। फिर पुड़िया चलने लगी। खूब पौष्टिक खाना खाने लगा। तन्दुरुस्त भी हो गया। पन्द्रह रोज़ के बाद नागपुर चला गया। दवा खाने के साल भर बाद दमे ने फिर ज़ोर पकड़ा और अबकी बार का दौरा पहली बार के दौरे से दस-बीस गुना नहीं, सौ गुना ज़ोर का था। बेहद तकलीफ़ थी। अन्दर से ऐसा जी होता था कि कोई ज़हर दे दे या गोली से मार दे, और उस वक्त दवा से इतनी ज़्यादा नफ़रत हो चुकी थी कि नागपुर के मशहूर डाक्टर मेरे पास दवा की बोतल लिये बैठे थे और मैंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। जब वह बहुत ज़ोर देने लगे तो मैंने पूछा कि आपकी दवा मेरी इस तकलीफ़ को कितनी देर में दूर कर देगी? वह बोले, "चार घंटे में।" मैंने जवाब में कहा, "चार घंटे में तो कुदरत भी इस तकलीफ़ को अपने-आप मुझसे

अलहदा कर देगी, अगर मैं उसका किसी भी तरह मुकाबला न करूं—यानी न खाना खाऊं, न पानी पिऊं, न दवा लूं।" डाक्टर साहब बोले, "यह भी ठीक है।" और फिर यही हुआ। मैंने दवा नहीं ली। शाम तक अच्छा हो गया, पर उसके बाद पूरे तीन बरस सिवाय सब्जी और फल के कुछ नहीं लिया। सब्जी उबली हुई भी ले लेता था, भाप की पकी हुई और कभी कच्ची भी। फलों के लिए तो पकाने का सवाल ही पैदा नहीं होता तीन बरस तक दमे का दौरा नहीं हुआ, इससे हिम्मत बढ़ गई और फिर रोटी-दाल शुरू करदी।

दो बरस बाद दमे का दौरा फिर शुरू हुआ। इसबार लुई कूने के पानी के इलाज से फ़ायदा उठाया और तीन-चार बरस फिर दमे का दौरा नहीं हुआ। उसके बाद फिर दौरा हुआ। इस बार आसनों से काम लिया और इससे भी खूब सफलता मिली। कुछ दिनों के बाद फिर दाल-रोटी शुरू कर दी।

सन् '४७ की जनवरी में दमे ने फिर जोर से आ दबाया। उस वक्त किसी ने सूंघने की एक पेटेन्ट दवा ला दी। उससे यह नफ़ा हुआ कि जब भी उसे सूंघा जाय, कफ़ निकल जाता था, आराम पड़ जाता था। बस इस आराम देने ने एक आसानी पैदा करदी और मैं उस आसानी का गुलाम बन बैठा। कई महीने इस आसानी में गुज़र गये। न दमा अच्छा हुआ, न तकलीफ़ ज्यादा हुई।

होते-होते प्राकृतिक इलाज के अच्छे जानकार रामनारायणजी दुबे मुझे एटा ले गये और वहां उन्होंने मुझे खूब गर्म पानी में उबाल-उबाल कर केले के थंभे का रस देकर और बकरी के दूध की खीर खिला कर दो-तीन महीने में अच्छा ही नहीं कर दिया, पहलवान भी बना दिया। मगर यह पहलवानी भी दो-तीन महीने से ज्यादा न टिकी।

पहलवानी के बाद जो दौरा हुआ वह भी ऐसी जगह हुआ जहां दोस्तों ने फिर एक मामूली दवा के लिये मजबूर किया। उससे भी चमत्कारी लाभ हुआ। पर वह भी तीन महीने से ज्यादा न टिका। इस दवा के बाद जो दौरा हुआ वह ऐसी जगह, जहां कोई मुझे दवा के लिए मजबूर करने वाला न था। इसलिए मैंने फिर अपनी फल-तरकारी खाने की राह पकड़ी और जल्दी ही फायदा होने लगा। इतने में आमों की ऋतु आ गई और आम और दूध ने तो वह फायदा किया कि जो अब-तक किसी ने न किया था। अब मैं पहली अप्रेल सन् '५० से आज (२५ अप्रेल सन् '५१) तक बिल्कुल ठीक हूं। दमे की कोई तकलीफ नहीं। चलने-फिरने, दौड़ने-भागने या किसी तरह के काम करने में कोई दिक्कत नहीं। आम तौर से मैं साग-तरकारी और फल खाता हूं, कभी रोटी मिल जाय तो वह भी ले लेता हूं; पर वह मेरे लिए जरूरी नहीं। दूध बहुत कम पीता हूं, घी से परहेज़ नहीं।

पढ़नेवालों के लिए मैं एक बात और लिखे देता हूं और वह यह कि तेज़ दवाओं के खाने के बाद जो दौरे हुये वह बेहद जोर के थे। मामूली दवाओं के खाने के बाद जो दौरे हुए वह मामूली जोर के थे। खाने-पीने की गलतियों से जो दौरे हुए वह शुरू में एक-दो रोज थोड़ी तकलीफ देते थे; पर बाद में तकलीफ देना बिल्कुल छोड़ देते थे। हां, कमजोरी पैदा करते थे और काम में अड़चन डालते थे।

इस संक्षिप्त लेख में पढ़नेवालों की बहुत-सी शंकाओं का जवाब शायद न मिले; पर पढ़ने वालों के लिए शंकाओं का जवाब इतना जरूरी नहीं है जितना प्राकृतिक चिकित्सा पर श्रद्धा। और श्रद्धा एक ऐसी ताकत है जो ज्ञान को ठीक राह पर लगा देती है। और ठीक राह पर आया हुआ ज्ञान आदमी के रहन-सहन में ऐसी तब्दीली कर देता है जो प्रकृति के उतनी ही अनुकूल होती है जितनी पुरुष के और यह प्रकृति पुरुष का समतोल ही स्वास्थ्य है।

"यदि हर प्रकार की दवाएं समुद्र में फेंक दी जायं तो मनुष्य-जाति का भारी उपकार हो; किन्तु मछलियों का तो मरण ही हो जाय।" —(डा०) ओलीवर होम्स

समस्त रोगों की मूलभूत एकता

श्री जटाशंकर नन्दी

औषधोपचारकों ने शारीरिक अस्वस्थता के भिन्न-भिन्न चिह्नों से भ्रम में पड़कर रोगों के भिन्न-भिन्न अगणित नामकरण किये हैं, किन्तु वास्तव में प्रत्येक रोग का मूल कारण शरीर में रोगोत्पादक मल का संचय ही है, जो कुदरती कानूनों का भंग करने और स्वास्थ्यनाशक रहन-सहन से पैदा होता है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह मूल-भूत सिद्धान्त दीर्घकालीन अनुभव से सत्य साबित हो चुका है। रोग को चाहे जो नाम दिया गया हो, वह निम्न-लिखित मुख्य कारणों से उत्पन्न हुआ होगा .

(१) ऐसा आहार जो मनुष्य की प्रकृति के अनुकूल न हो, जो आसानी से हजम हो जाय उससे अधिक मात्रा में खाया जाय, जिसमें खाद्य पदार्थों का अयोग्य मिश्रण हुआ हो, अथवा जिसके पोषक तत्व अग्नि द्वारा नष्ट हो गये हों।

(२) अप्राकृतिक जीवन और स्वास्थ्यनाशक रहन-सहन; तम्बाकू, अफीम, चाय, काफी आदि मादक पदार्थों का व्यसन।

(३) ब्रह्मचर्य का भंग—जीवन-तत्त्व वीर्य का दुरुपयोग।

(४) चिन्ता, भय, क्रोध, शक्ति से अधिक शारीरिक अथवा मानसिक श्रम, विषयेन्द्रियों का दुरुपयोग अथवा अति श्रमन करनेवाली और शरीर को जकड़ तथा ज्ञान तन्तुओं को क्षीण करने वाली जीवन-चर्या।

(५) वंश-परम्परा से प्राप्त शारीरिक न्यूनता अथवा विकृति और प्रथम औषधोपचार या शस्त्र-क्रिया से शरीर की जीवन-शक्ति को होनेवाली हानि।

इस प्रकार की वस्तु-स्थिति पर बुखार, दमा, क्षय, सन्निपात, मधु-प्रमेह अथवा अन्य प्रकार के रोगों का आधार रहता है; किन्तु इस सम्बन्ध में विशेषज्ञ के ध्यान रखने की बात यह है कि चाहे भी औषधोपचारकों ने रोग का चाहे जो नाम दिया हो और रोगियों को दर्द के चाहे जितने भिन्न-भिन्न चिह्न प्रतीत होते हों, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, समस्त रोगों का एक ही सामान्य कारण होता है।

समस्त रोगों की मूलभूत एकता प्रमाणित करने के लिए ही प्राकृतिक चिकित्सक असाध्य रोगियों को आश्चर्यजनक रीति से स्वस्थ कर सकते हैं। रोगी मनुष्य का शरीर नाना प्रकार की खराबियों के बाह्य चिह्न प्रकट करता है। रोग के असली रूप का ज्ञान न होने के कारण आधुनिक निदान-शास्त्र इन चिह्नों को भिन्न-भिन्न रोग मानकर अगणित नाम देता है। इसके विपरीत, प्राकृतिक चिकित्सक औषधोपचारकों की भांति उलझन में नहीं पड़ता। वह अपने समय का व्यर्थ व्यय न करते हुए और रोगी के स्वस्थ होने में विघ्न न डालते हुए सीधा व्याधि के मूल को पकड़ता है। वह रोग का वास्तविक रहस्य समझ कर व्याधि के कारणों को दूर करता है और रोगी को स्थायी रूप से स्वस्थ करता है। जो पद्धति रोगी को इस प्रकार स्वस्थ करती है, उसी स्वास्थ्य-प्रद पद्धति का अनुसरण करके यदि रोगी भविष्य में अपना जीवन व्यतीत करे, तो वह न केवल सदा स्वस्थ रहेगा, बल्कि दीर्घायु भोगेगा।

विख्यात औषधोपचारक रोग के बाह्य, उग्र और भयजनक चिह्नों से उद्वेग में पड़ जाता है और उन चिह्नों को दबा देने का प्रयत्न करता है। वह रोग के उत्पादक कारण के विषय में अन्धकार में ही रहता है। प्राकृतिक चिकित्सक रोग के मूलभूत कारण पर ध्यान देता है और बाह्य चिह्नों को थोड़ा भी महत्त्व नहीं देता। औषधोपचारक बाह्य चिह्नों पर अपना सारा ध्यान केंद्रित कर देता है। वह रोगोत्पादक कारणों को शरीर के भीतर नहीं, बल्कि बाहर ढूंढता है और इस कारण रोग के वास्तविक कारण का कभी पता नहीं चलता। इसका स्वाभाविक परिणाम यह

होता है कि रोगोत्पादक कारण ज्ञात न होने से औषधोपचारक रोग की स्थायी निवृत्ति नहीं कर सकता। उल्टे रोग के चिन्ह दबा देने के गलत प्रयत्न में वह जिन विषैले पदार्थों का उपयोग करता है, उनके हानिकर प्रभाव से रोग गहरा हो जाता है और विशेष दुःखदायी स्वरूप धारण कर लेता है तथा कई बार रोगी को अकाल यम का द्वार देखना पड़ता है। इसका कारण यह है कि औषधोपचारक शास्त्र बाह्य चिन्हों को ही रोग मान बैठता है। उसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सक बाह्य चिन्हों और उनके भिन्न-भिन्न रूपों को केवल व्याधि स्थान निदर्शक मानता है। वह इसे प्रकृति का स्वाभाविक रोगनिवारक प्रयत्न मानकर निर्दोष समझता है। उसे औषधोपचारक दवाओं और अनावश्यक शस्त्र-क्रिया से दबा देते हैं और शरीर को रोगमुक्त करने की प्रकृति की हितकारी स्वाभाविक क्रिया में विघ्न डालकर ऐसी स्थायी और भारी हानि कर डालते हैं जिसे कभी नहीं सुधारा जा सकता।

सौभाग्यवश अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष डाक्टरी धंधे में व्यतीत करने और जन-समाज में हजारों रोगियों की सफल देख-भाल कर अपने अनुभव से अनेक प्रतिष्ठा प्राप्त डाक्टरों ने जन-कल्याण के उद्देश्य से अपना प्रभावशाली और स्पष्ट अभिप्राय प्रदान किया है। उन्होंने उपरोक्त सत्य को स्वीकार करके जन-समाज की आंखें खोलने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार जन-सेवा के महान् उद्देश्य से विश्ववंद्य उपचारकों ने औषधोपचार का कड़ा तिरस्कार किया है।

रोग शरीर का शत्रु नहीं, जिसका मुकाबला करने की आवश्यकता हो। वह तो शरीर को स्वस्थ स्थिति में लाने के मार्ग में विघ्न रूप में रोगोत्पादक भीतरी मल-संचय को मिटाने का तीव्र प्रयत्न करनेवाला परम हितैषी मित्र है। यद्यपि भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न-भिन्न शरीर-व्याधि-दर्शक चिन्ह होते हैं, फिर भी इन भिन्न-भिन्न चिन्हों में सामान्य रूप से शरीर को स्वस्थ बनाने की प्राकृतिक क्रियायें ही होती रहती हैं। इस रोग-विनाशक क्रिया के मार्ग में रुकावट डालकर रोग के चिन्हों को दबा देना रोगी को बीमार रखने का मूर्खतापूर्ण प्रयत्न है।

जिस स्थिति को औषधोपचारक रोग-निवृत्ति कहते हैं, वह तो केवल व्याधि के बाहरी चिन्हों को दबा देने और बाद में और भी भयंकर रोग उत्पन्न करनेवाला कार्य है।

औषधोपचारक इस बात में गर्व अनुभव करते हैं कि लोग उन्हें 'रोगों से लड़ने वाले योद्धा' समझते हैं; किन्तु गर्व की इस भावना के कारण ही वे रोग का सत्य स्वरूप नहीं समझ पाते। प्रत्येक उपचारक को रोग का सत्य स्वरूप समझना चाहिए और प्रकृति की रोगमुक्त करने की क्रिया के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सहयोग देकर उसकी सहायता करनी चाहिए।

संक्षेप में, रोग मनुष्य के आरोग्यनाशक रहन-सहन का ही स्वाभाविक परिणाम है। रोग प्रकृति का हितकारी प्रयत्न है। मनुष्य के अज्ञान, विषय-वासना, अतृप्ति और जीवन-घातक दुष्कृत्यों के स्वाभाविक परिणामस्वरूप शरीर में होनेवाली विक्रिया को दूर करने का प्रकृति का परोपकारी प्रयत्न ही रोग है। मनुष्य जब इस सत्य को समझ लेगा तो वह रोग के सर्वव्यापी भय से मुक्त हो जायगा।

[अनु०—शोभालाल गुप्त

"मुझे अपने दीर्घकालीन अनुभव, अवलोकन और चिन्तन के फलस्वरूप अन्तःकरण-पूर्वक यह विश्वास हो गया है और उसे प्रकट करते हुए मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता कि यदि दुनिया में एक भी डाक्टर और वैद्य, औषधि-विक्रेता, रसायन-शास्त्री और औषधि-निर्माता न हो तो इस समय की अपेक्षा मौत कहीं कम हो।" —(डा०) जान्सन

मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार?

श्री लुई कूने

[आज मनुष्यों के स्वास्थ्य की जैसी दशा है उसमें हर आदमी का 'मैं तंदुरस्त हूं या बीमार?' यह जानना फर्ज हो गया है। रोज-रोज लोगों की तंदुरस्ती, ताकत और सहनशक्ति घटती जा रही है, यह कम चिन्ता की बात नहीं है। सरकार जनता के आरोग्य-संबंधी कुछ विषयों पर ध्यान दे सकती है, लेकिन अपने स्वास्थ्य पर हर आदमी को खुद ध्यान देना चाहिए। किसी और के भरोसे स्वास्थ्य-प्राप्ति की आशा करना भारी भूल है। मेरा यह छोटी किताब* लिखने का मतलब यह है कि लोग बिना किसी शक-शुबह के अपने स्वास्थ्य की जांच कर सकें। इसमें संक्षेप में बिगड़ी तंदुरस्ती को सुधारने के उपाय भी बता दिये गए हैं। यह किताब पहले-पहल १८८५ में निकली थी, तब से इसकी कई आवृत्तियां हो चुकी हैं। इससे पता चलता है कि लोग अपनी तंदुरस्ती के बारे में जानना चाहते हैं।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह किताब हर पाठक का ध्यान अपने तथा अपने कुटुम्ब के स्वास्थ्य की ओर आकर्षित करे और सबको सशक्त तथा सतेज होने में सहायक हो। —लेखक]

बीमारी का कारण

मनुष्य नीरोग उस समय समझा जाना चाहिए, जब शरीर में किसी तरह की तकलीफ या बेचैनी के बिना उसकी इंद्रियां अपने कर्तव्य पूरे कर रही हों।

काम करने पर थकान आना स्वाभाविक है, लेकिन कोई कष्ट नहीं होता, केवल विश्राम और निद्रा की स्वाभाविक इच्छा होती है। नीरोग मनुष्य को श्रम और विश्राम दोनों एक समान प्रिय होते हैं। सारी भीतरी इंद्रियों के कार्य प्रायः इस तरह होते रहते हैं कि हमें भान तक नहीं होता। इंद्रियों में किसी प्रकार की अस्वस्थता उत्पन्न होने पर या कोई बाहरी चोट-चपेट लगने पर ही पता चलता है। जैसे, खाने के बाद तत्काल मनुष्य यदि तृप्ति के अतिरिक्त किसी प्रकार की अरुचि अनुभव करता है तो उसके मेदे में कोई खराबी होनी चाहिए, अथवा उसने गलत खुराक खाई है।

शरीर के सब अंगों का एक-दूसरे के साथ ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि किसी एक अंग के अपना काम ठीक-ठीक न करने से सारे शरीर पर उसका बुरा असर पड़ता है। कारण, ज्ञान-तंतुओं द्वारा हमारे शरीर के सब अंग परस्पर जुड़े हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक विकार का असर पूरे शरीर पर पड़ता है। शरीर का कोई अंग अपना काम सुचारु रूप से नहीं कर पाता।

अधिक दिनों से टिके हुए विकार तो इसी अवस्था में मनुष्य के समूचे शरीर में प्रत्यक्ष परिवर्तन कर देते हैं। आदमी के चेहरे पर ये परिवर्तन भली-भांति झलकते हैं। कारण, चेहरे पर विशेष रूप से ज्ञानतंतुओं का एक समूह है। मुख पर, जोड़ों या भीतरी रोगों द्वारा पड़े हुए प्रभाव को साधारण मनुष्य भी भांप सकता है। पर रोग की बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में, विशेषकर भीतरी रोगों में, चेहरे से रोग का पता लगाना असंभव न होते हुए भी बहुत कठिन है। चेहरे के लक्षणों से रोग का पता लगाने की कला बहुत मुश्किल से सिखाई जा सकती है। इसका वास्तविक ज्ञान तो निरन्तर अभ्यास से ही हो सकता है। पर इस

* 'मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार?' नामक पुस्तक, जिसका सारांश इस लेख में दिया गया है।

हम रोग-निदान की इसकी अपेक्षा एक सरल विधि पाठकों को बतलायेंगे।

शरीर की वृद्धि और पोषण करनेवाली इंद्रियां अर्थात् फेफड़ा और मेदा हमारे शरीर में सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं। साथ ही, ये दोनों, रोगी भी शीघ्र होते हैं। जांच के परिणामस्वरूप यह सिद्ध हो गया है कि सारे भीतरी विकारों की जड़ यह मेदा ही है। पाचन बिगड़ते ही अन्य रोगों का आक्रमण अनिवार्य हो जाता है। कम-से-कम भोजन का रस ठीक न बनने का असर तो होता ही है। रुधिर का अच्छा-बुरा होना पाचन-क्रिया पर निर्भर है, और शरीर के उचित पोषण के लिए रुधिर का शुद्ध होना आवश्यक है।

उचित पाचन

बहुत कम आदमी ही यह दावा कर सकते हैं कि उनकी पाचन-शक्ति बिल्कुल ठीक है। इनकी संख्या उतनी होगी जितनी नीरोग रहकर बुढ़ापे तक जीनेवालों की। यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि लोग मेदे पर जितना जुल्म करते हैं उतना अन्य किसी अंग पर नहीं करते।

मेदे में कोई खराबी होने पर हमें तुरन्त उस पर ध्यान देना चाहिए। उसकी पहचान बहुत ही आसान है। डकार, कै (उल्टी), गले में जलन या मेदे में किसी तरह का भारीपन विकार के निश्चित चिन्ह हैं। पर ये लक्षण जबतक बढ़कर तकलीफ नहीं देने लगते तबतक प्रायः इनकी परवा नहीं की जाती।

हम यहां एक ऐसी पहचान बताना चाहते हैं कि जिससे मेदे का छोटे-से-छोटा विकार भी सहज में जान लिया जा सकता है। मेदे में कोई खराबी न रहने पर सारी पाचनेंद्रियां अपनी-अपनी जगह अपना काम भली-भांति करती रहती हैं। मल का निकास भी उचित रूप में होता है। आंत का द्वार—मल का निकासद्वार—ऐसी खूबी से बना हुआ है कि शौच के बाद वहां जरा भी मल लगा न रहना चाहिए। यदि कभी वहां मल लगा रह जाय तो समझना चाहिए कि बड़ी आंत में मल पहुंचाने के पूर्व काम करनेवाली इन्द्रियों ने अपना काम भली प्रकार नहीं किया है और पाचनेन्द्रियों में कुछ दोष अवश्य हुआ है। जंगली जानवरों का मल और उसके निकास-स्थान को देखकर निश्चित रूप से उनके स्वास्थ्य का पता लगाया जा सकता है। यही पहचान मनुष्य के लिए भी है। बिल्कुल नीरोग मनुष्य को शौच के लिए जल की कोई जरूरत नहीं होती। मलद्वार पर मल जरा भी नहीं लगता। जहां मल इस सूरत में आता है वहां यह सवाल ही फजूल है कि मल कितना और कै बार आता है। नीरोग शरीर आवश्यकतानुसार इसका प्रबन्ध खुद कर लेता है। बच्चों पर, जवानों पर तथा सब तरह के लोगों पर बहुत बार आज़माइश करने के बाद में इस निश्चय पर पहुंचा हूं। कभी यह पहचान गलत नहीं निकली। ऐसी सम्पूर्ण शुद्ध पाचन-शक्ति वाला मनुष्य निस्संदेह दावे से कह सकता है कि मैं नीरोग हूं। उसका समस्त शरीर निर्दोष माना जायगा।

अपच के कारण और परिणाम

इसमें सन्देह नहीं कि अपच अस्वाभाविक रहन-सहन का नतीजा है। लोगों में ज्यों-ज्यों चटोरपन—तेज़ मसाले, झोलदार, चरपरी चीजें तथा मांस-मदिरा की लत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों पाचन-शक्ति भी बिगड़ती जाती है। आज हमें अपने पूर्वजों का सीधा-सादा, सात्त्विक आहार पसंद नहीं आता। जबतक थाली में कई चटपटी चीजें, भांति-भांति के खूब खट्टे-मीठे पदार्थ न हों तबतक हमारी रसना तृप्त नहीं होती। पाचनेन्द्रियां पर एक ओर तो इस तरह बोझ डाला जाता है दूसरी ओर चीजों के सत निकाल-निकालकर और उन्हें अनेक ऐसे रूपों में बदलकर पेट में पहुंचाया जाता है कि उसे पचाने में मेदे को अधिक मेहनत न पड़े।

जैसे शरीर के अन्य अंगों से शक्ति से बाहर अथवा कम काम लेने से वे कमजोर हो जाते हैं, वही हालत मेदे की भी होती है। मेदे की निर्बलता और विकार इतने धीरे-धीरे बढ़ते हैं कि ये उन आदमियों की आदत में दाखिल हो जाते हैं। उन्हें

ऊपर से जरा भी नहीं असरते; पर इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। अगर मेदे पर किये गए अत्याचारों का असर धीरे-धीरे न होकर शराब के नशे की तरह तत्काल होता तो मनुष्य शीघ्रता से उसे दूर करने का उपाय भी करता। बेचारे मेदे पर बचपन से ही अत्याचार होने शुरू हो जाते हैं। जिन्हें बचपन में माता का दूध न मिलकर कृत्रिम मिलावटी आहार मिलता है उनके मेदे की दुर्दशा उसी समय से आरम्भ हो जाती है। स्त्री का अपने बच्चे को दूध न पिला सकना, कम दुर्भाग्य की बात नहीं है। इससे स्त्री का रोगी होना साफ साबित होता है। पर कृत्रिम आहार से मेदे का बिगड़ना तो बाद की बात है, अधिकतर बच्चे तो पेट से ही बीमार पैदा होते हैं। रोगी माता-पिता की सन्तान नीरोग कहां से होगी ? बुरे बीज से अच्छे फल कैसे होंगे ?

हमें पहले इस विषय पर जरा विचार करना चाहिए और तब शरीर से विकारों को दूर करने के उपाय पर।

शरीर अप्राकृतिक भोजन को शत्रु के समान समझता है और जल्दी-से-जल्दी उसे बाहर निकालने की कोशिश करता है। यह प्रयत्न कभी कै, कभी दस्त और कभी अन्य रूपों में प्रकट होता है। यदि शरीर इसे तत्काल इस तरह न निकाल सका तो कम-से-कम वह भोजन बिना पचे ही बाहर निकल जाता है और अपने साथ हितकर भोजन के अंश को भी अधपकी हालत में निकाल लाता है। गलत और हितकर, दोनों तरह की खुराक के अंश एक साथ बड़ी आंत में पहुंचते हैं। इससे मनुष्य को उस हितकर भोजन के अंश का कुछ लाभ नहीं मिलता। ऐसा अंश पेट से प्रायः प्राकृतिक रीति से निकल जाता है। पर न निकलने की हालत में रक्त में मिलकर शरीर में जमा होता है। एकाध बार तो मनुष्य इन बुरे परिणामों के भोगने से बच भी जाता है। पर मनुष्य स्वाभाविक नियमों को बार-बार भंग करने लगता है।

विजातीय द्रव्य

शरीर में बहुत दिनों तक अप्राकृतिक भोजन तथा अपच भोजन के निकालते रहने की ताकत नहीं रह जाती। तब शरीर में विजातीय द्रव्य जमा होने लगता है। आरम्भ में विजातीय द्रव्य पेडू के पास, मल-मूत्र-त्याग के स्थानों के निकट इकट्ठा होता है। फिर उसमें नित्य नया विजातीय द्रव्य मिलकर उसकी मात्रा बढ़ती रहती है और शीघ्र ही अन्दर-ही-अन्दर उसमें एक परिवर्तन होने लगता है। उसके रेशे बिखरने लगते हैं और उनमें खमीर, या कहिए सड़न, पैदा हो जाती है। विजातीय द्रव्य फैलकर शरीर में ऊपर तथा नीचे के हिस्सों में फैलता है और धीरे-धीरे शरीर के भिन्न भिन्न हिस्सों में जमा हो जाता है। यह द्रव्य पेडू से ऊपर सिर तक और दूसरी ओर हाथ और पांव की सीमा तक पहुंचे बिना नहीं रहता। उस समय शरीर इसे हर कोशिश से बाहर निकालना चाहता है, पर अधिक काल तक वह इस क्रिया में समर्थ नहीं होता। इस कोशिश में शरीर पर बहुत ज्यादा पसीना आता है, फोड़े फुन्सियां आदि अन्य विकार होते हैं। शुरू में यह सदा हाथ-पैरों में होती हैं। पांव का पसीजना—जिसके सम्बन्ध में इतना अधिक मतभेद है—दरअसल शरीर की सफाई के लिए ही होता है। वास्तव में यह रोग का लक्षण है। लेकिन इसे कृत्रिम उपायों से रोकने का फल केवल यह होगा कि शरीर में अस्वस्थता बढ़ेगी। शरीर को उत्तेजित करने वाली घटनाएं, जैसे आकस्मिक ठंड, बाहरी चोट, प्रबल मनोविकार इत्यादि का नतीजा प्रायः यह होता है कि शरीर, अंगों के सिरों पर जमा हुए विजातीय द्रव्य को उसके उत्पत्ति स्थान की ओर वापस भेजने लगता है। उस समय यह द्रव्य प्रायः जोड़ों के पास आकर रुक जाता है। यह सूजन का कारण होता है, जो उपर्युक्त कारणों से सदा जोड़ों से बीच की ओर ही प्रकट होती है। हम गठिया के किसी भी रोगी में यह दशा देख सकते हैं।

जिन अंगों में विजातीय द्रव्य जमा रहता है वे

अपना स्वाभाविक कार्य उचित रूप से पूरा नहीं कर सकते। वहां रक्त-प्रवाह में रुकावट होने लगती है और इससे शरीर का पूरा पोषण नहीं हो पाता। जहां विजातीय द्रव्य बहुत ज्यादा जमा हो जाता है वह अंग छूने पर ठण्डे जान पड़ते हैं। उनमें गर्मी लाना बहुत मुश्किल हो जाता है। पहले-पहल शरीर के अग्रभाग—हाथ-पैर ठंडे होते हैं, पर जल्दी ही दूसरे अंगों के हिस्सों में भी इसका असर होने लगता है।

आकृति-परिवर्तन

साथ ही, विजातीय द्रव्य के कारण शरीर की आकृति में एक अस्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। पर यह प्रायः हर आदमी में होने की वजह से अधिकांश मनुष्यों को इसमें कोई आश्चर्य नहीं होता। इन परिवर्तनों से ही मनुष्य मालूम कर सकता है कि उसके शरीर में विजातीय द्रव्य कितना अधिक जमा हुआ है। गर्दन और चेहरा ही ऐसे अंग हैं जिनमें जरा भी परिवर्तन होने पर ताड़ना संभव है। यहां हम शरीर के बिल्कुल नीरोग होने के चिन्ह की बात पर पाठकों का ध्यान फिर आकर्षित करते हैं। जब इस चिन्ह से यह जान लिया गया कि शरीर नीरोग है तब पाचनेंद्रियों में सड़े हुए पदार्थ की उपस्थिति की शंका ही नहीं की जा सकती। और उनमें नहीं तो फिर शरीर में नहीं है; क्योंकि उन विकृतियों का प्रारम्भ तो वहीं से होता है। लेकिन उस चिन्ह से यदि यह शरीर नीरोग न जान पड़े तो हमें सबसे पहले शरीर की आकृति के परिवर्तन से पता लगाना चाहिए कि शरीर में विजातीय द्रव्य की मात्रा कितनी है। कभी-कभी तो विजातीय द्रव्य इस रूप में होता है कि हर कोई उसे देख सकता है, जैसे गांठों, गिल्टियों इत्यादि के रूप में। ये गांठें आदि शरीर की आकृति के अन्य परिवर्तन की भांति ही शरीर को भीतर से बिल्कुल साफ कर देने के बाद अपने आप लुप्त हो जाती हैं। पर उन्हें कृत्रिम उपायों से दूर करने की चेष्टा करने पर शरीर को हानि पहुंचती है। कारण, उस दशा में वहां का विजातीय द्रव्य शरीर के दूसरे भाग में चला जाता है।

जीर्ण तथा तीव्र रोग

जिस मनुष्य के शरीर में विजातीय द्रव्य भरा है उसे जीर्ण रोगों के चंगुल में फंसा ही मानना चाहिए। जिसमें जितना अधिक विजातीय द्रव्य है वह उतना ही अधिक रोगग्रस्त है। विजातीय द्रव्य के संग्रह के, एक के बाद एक होनेवाले परिणाम से, रोगी को अपने शरीर की स्थिति का वास्तविक ज्ञान होने लगता है।

विजातीय द्रव्य प्रकुपित होने वाली वस्तु है, पर इस प्रकोप का शीघ्र अथवा देर से आरंभ होना बाहरी दशाओं पर निर्भर है। ऋतु-परिवर्तन, प्रकुपित होने की शक्ति रखने वाला भोजन, अथवा अन्य कारणों से प्रकोप का आरंभ हो सकता है। शरीर में विजातीय द्रव्य की अधिकता होने पर यह प्रकोप सारे शरीर में या शरीर के अधिकतर हिस्से में फैल जा सकता है। प्रकोप से गर्मी उत्पन्न होती है। प्रकोप की क्रिया चारों ओर होने पर सारे शरीर को इस गर्मी का अनुभव होता है। इसीको लोग बुखार की गर्मी कहते हैं। प्रकुपित होने पर जब विजातीय द्रव्य तेजी से फैलता है तो शरीर यथाशक्य उसे बाहर निकालने में पूरी कोशिश करता है। विजातीय द्रव्य निकालने के इस शारीरिक प्रयत्न का नाम ही बुखार है। इसलिए शरीर में प्रकोप-क्रिया के कारण होनेवाला प्रत्येक तीव्र ज्वर शरीर की पुनः स्वास्थ्य-प्राप्ति की चेष्टा है। ऐसे ही ज्वर-संबंधी विकार तीव्र रोग कहलाते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि शरीर के अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त करते ही ज्वर अपने आप दूर हो जायगा। ज्वर के दूर करने का यही एकमात्र प्राकृतिक उपाय है। यदि ज्वर को कृत्रिम रीति से दबा दिया जाय तो प्रकुपित होने वाला पदार्थ शरीर के भीतर ही रह जाता है और शरीर में जीर्ण रोगों की जड़ अधिक दृढ़ हो जाती है।

क्या आपने कभी इस ओर ध्यान दिया है कि आपका एक दोस्त तो ज्वर के बाद अपने को अधिक तंदुरुस्त बतलाता है और दूसरा ज्वर से कमजोरी की शिकायत करता है? यह क्या? इसलिए कि पहले उदाहरण में तो ज्वर को शरीर के भीतर जमा हुआ कूड़ा निकालने में सफलता मिली और दूसरे में नहीं।

ज्वर और उसके रूप

ज्वर के भिन्न-भिन्न बाहरी रूपों के आधार पर उसके अनेक नाम पड़ गये हैं। इसी तरह बच्चों पर आक्रमण करनेवाले रोगों के भी अनेक नाम रखे गये हैं। बच्चों के शरीर में सफाई का काम करने की शक्ति अधिक रहती है इसलिए खसरा, लालज्वर, चेचक (शीतला) इत्यादि जैसे रोगों से उनके शरीर की सफाई हुआ करती है। हैजा, टाइफाइड और पेचिश भी ऐसे ही रोगों में से हैं। जैसा पहले कह आये हैं, इन सबकी उत्पत्ति का कारण एक ही है। पर इनका भिन्न-भिन्न रूप कई बातों पर निर्भर है, विशेषकर इस बात पर कि शरीर में सफाई के स्वाभाविक मार्गों के निकट विजातीय द्रव्य कितना कम या ज्यादा इकट्ठा हुआ है।

प्रायः मोटे आदमियों को तीव्र ज्वर न होने का क्या कारण है? यही कि उनका शरीर विजातीय द्रव्य को जमा करता रहता है। पसीने तथा दूसरे मार्गों से थोड़ा ही हिस्सा निकल पाता है। ऐसे लोग प्रायः अपने अच्छे स्वास्थ्य पर अभिमान करते हैं, क्योंकि धीरे धीरे इकट्ठे होनेवाले पदार्थ से उन्हें तकलीफ नहीं होती। लेकिन आगे चलकर दवा द्वारा दबाये हुए ज्वरवाले मनुष्यों के समान ही इनकी भी स्थिति होती है। यह हालत जल्दी फूट निकलनेवाली बीमारियों की अपेक्षा अधिक भयंकर होती है।

अन्य विकार

इस विजातीय द्रव्य के कारण से प्रथम कष्टकर विकार उत्पन्न होते हैं—सिरदर्द, जुकाम, खांसी, दंतविकार तथा अनेक मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग आरम्भ होते हैं। जीवन भार सा जाता है। धीरे धीरे स्नायु-सम्बन्धी विकार बढ़कर सताने लगते हैं। शरीर का कोई-कोई हिस्सा या बिल्कुल नष्ट हो जाता है। दांत खराब, बाल सफेद या सिर में गंज हो जाती है। आंखों और कानों में अपना काम अच्छी तरह करने की शक्ति नहीं रह जाती, अंधे और बहरेपन तक की नौबत आ जाती है। हाथ-पैर, जिनमें विजातीय द्रव्य अधिकतर जमा होता है, ठंडे रहने लगते हैं। इसके बाद प्रायः गठिया का नंबर आता है। पाचन शक्ति दिन दिन क्षीण होती जाती है। कभी कब्ज और कभी पतले दस्त आने लगते हैं। ये दोनों भीतरी गर्मी के चिह्न हैं। प्रकृति की सारी क्रियाओं से आंतों में गर्मी बढ़ जाती है और मल बाहर निकालने में सहायक आंतों में रहनेवाला चिकना पदार्थ सूख जाता है और इसी से कब्ज हो जाता है। जब कभी शरीर-शुद्धि की क्रिया का जोर होता है तो बिना पचे पदार्थ शरीर से पतले दस्तों के रूप में बाहर निकलते हैं। इसीको अतिसार कहते हैं।

फेफड़ों के रोग

दूसरी इन्द्रियों की भांति फेफड़ों में रोग का प्रारम्भ प्रकुपित होनेवाले पदार्थ जमा हो जाने पर ही होता है। इन पदार्थों के निकास में रुकावट पैदा होने पर फेफड़ों का नाश होने लगता है। पेडू की ओर से आनेवाला प्रकुपित हुआ पदार्थ पहले फेफड़ों से होकर ऊपर की ओर जाता है और गले के नीचे फेफड़ों के ऊपरी सिरे में जमा होता है। इसके आगे सिर या हाथ की ओर जाने में असमर्थ होने के कारण फेफड़ों के सिरों में रगड़ और गर्मी पैदा करता है। परिणामस्वरूप विकृत पदार्थ का यह प्रकोप बहुत तेज हो जाने पर फेफड़ों का नाश आरंभ कर देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि रोग सदा फेफड़ों के अग्रभाग में आरम्भ होता है।

हर आदमी अपने फेफड़ों की ठीक दशा का अंदाज कर सकता है। जब फेफड़े नीरोग रहते हैं तब हम मुंह बन्द रखकर नाक से सांस लेते हैं। जब कभी हम मुंह से सांस लेने को विवश होते हैं तो समझना चाहिए कि इसका कारण नाक या फेफड़ों की कोई खराबी है। नाक के रोगों में, विशेषकर बहुत मात्रा

होने के कारण हम सांस लेने की रीति का निरीक्षण करके फेफड़ों की दशा का निभ्रांत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सांस के साधारण रूप में चलने की दशा में केवल इतना ही ध्यान देने की जरूरत है कि हम अपना मुंह बन्द रख सकते हैं या नहीं और इससे भी अच्छी परीक्षा यह होगी कि हमारी नींद की दशा में दूसरा आदमी देखे कि हमारा मुंह खुला रहता है या बन्द। इसके सिवा मुंह के कम या ज्यादा खुले रहने पर भी बीमारी की कमी या अधिकता का निःसंशय ज्ञान हो सकता है। दीर्घजीवी मनुष्य प्रायः चलते समय अपना मुंह बन्द रखते हैं। उनके बड़ी उम्र पाने का कारण यही है कि उनके फेफड़े नीरोग होते हैं और उनका साधारण स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जब उन्हें सांस लेने में कठिनाई होने लगे तो समझ लीजिए कि अब उनके दिन पूरे हो चले।

क्षण भर के लिए भी यह मत मानिए कि मुंह का खुला रहना सिर्फ एक आदत है। यह दशा सदा किसी-न-किसी रोग की सूचक होती है और बिना इस रोग के दूर हुए, कोशिश के बिना मुंह बन्द नहीं रखा जा सकता।

यदि हम लड़कियों पर इस बात की परीक्षा करें तो हम प्रत्येक लड़की के संबंध में यह जान सकते हैं कि वह पवित्र मातृ-कर्तव्य, अर्थात् स्तनों से बच्चों को दूध पिलाने योग्य है या उसके योग्य होने के लिए उसे पूर्ण चिकित्सा की आवश्यकता है। रोगी फेफड़े वाली स्त्रियां बहुत कम अपने बच्चों को दूध पिलाने योग्य होती हैं। दूध पिलाने की अयोग्यता का, लोग चाहे जो कारण समझते रहें, लेकिन मुख्य कारण यही है।

रोगों की एक जड़ है

उपर्युक्त बातों के आवश्यक परिणाम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और रोगियों की चिकित्सा इन्हीं पर निर्भर है। समग्र भीतरी रोगों का (सिवा बाहरी चोटों के) केवल एक ही कारण है और सच पूछा जाय तो रोग भी एक ही है, जो तरह-तरह के रूपों में प्रकट होता है।

रोग दूर कैसे हो सकते हैं ?

वास्तव में तो शरीर अपनी चिकित्सा आप करता है, हमारा काम तो सिर्फ इतना ही होना चाहिए कि हम सब बातों का ऐसा सिलसिला बिठा दें कि उसे आरोग्य-प्राप्ति में सफलता मिले। इस दृष्टि से हमारा काम सिर्फ इतना ही रह जाता है—

(१) शरीर में प्रकुपित होनेवाले नवीन पदार्थ न जाने देना। (२) ऐसे पुराने पदार्थ को बाहर निकालना। इसके लिए हमें करना यह चाहिए :

(१) अपना जीवन प्राकृतिक नियमों के अनुसार बिताना। (२) इस ओर ध्यान रखना कि शरीर की गंदगी निकालने वाली इंद्रियां अपना काम मजे में कर सकें।

प्राकृतिक आहार क्या है ?

सब प्रकार के रोगियों के लिए किसी एक ही तरह का भोजन नहीं बतलाया जा सकता। प्राकृतिक भोजनों में से रोगी की दशा के अनुसार कोई भोजन चुन लेना चाहिए। किसी खाद्य या पेय पदार्थ से डकार आने पर समझना चाहिए कि मेदा उसे स्वीकार नहीं करता। जबतक शरीर स्वीकार न करने लगे उस वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिए। स्वास्थ्य चाहनेवालों को अपना एक मूल सिद्धांत बना लेना चाहिए कि मेदे पर कभी ज्यादा बोझ न डालें—ठूंसकर न खायें। इस से पूरा पाचन नहीं हो पाता और अधूरा पचा हुआ आहार शरीर के लिए सिर्फ कूड़ा है। पुराने रोगी का पेट प्रायः निकल आता है, इसका कारण पेय पदार्थ का अधिक प्रयोग है अथवा पेट में विजातीय द्रव्य का प्रकोप। ऐसे मनुष्यों को अपने भोजन का अन्दाज नहीं रहता। उन्हें चाहिए कि कभी उचित परिमाण से अधिक भोजन न करने का पूरा खयाल रखें या दूसरा कोई उनपर निगाह रखनेवाला होना चाहिए।

भोजन के ठोस होने पर सबसे ज्यादा खयाल रखना चाहिए। जो चीजें निगलने के पहले खूब चबानी पड़ती हैं वे तरल या मुलायम भोजन की अपेक्षा हमेशा जल्दी और आसानी से पचने वाली

होती है। खूब चबाने से ही भोजन में मुंह की लार उचित परिमाण में मिलती है और वही भोजन को पचाने योग्य बनाती है। इसी कारण वे सब आहार जिन्हें हम उनकी असली—बिना बदली अवस्था में खा सकते हैं, बहुत जल्द पचते हैं और हमारे शरीर के लिए बहुत हितकर होते हैं। सारे पकाये हुए भोजन पचने में भारी होते हैं। पर भोजन कोई भी हो उसे खूब चबाना बहुत जरूरी है।

शरीर के कूड़े की सफाई

अब हम शरीर में जमा हुए कूड़े को निकालने तथा बिल्कुल सफाई होने तक इस क्रिया को जारी रखने के संबंध में बतलाना चाहते हैं।

शरीर में मल निकालने वाली चार मुख्य इंद्रियां हैं—फेफड़े, त्वचा (चमड़ा), गुदा (पाखाने का स्थान) और मूत्रेंद्रिय।

शरीर की गंदगी निकालने के लिए इन सबसे पूरा काम कराना चाहिए।

फेफड़े—यह अपना काम शरीर में अच्छी हरकत होने पर ही कर सकते हैं। पूर्ण नीरोगता के लिए, खुली हवा में पूरा व्यायाम करना आवश्यक है। विजातीय द्रव्य खत्म होने लगने पर रोगी आसानी से अपने आप गहरी सांस लेने लगता है।

त्वचा—चमड़े की तह के पास जमा हुई गंदगी निकालना ही त्वचा का मुख्य काम है।

अगर यह काम नियमित रूप से होता रहता है तो तब किसी प्रकार बीमारी की आशंका नहीं की जा सकती। लेकिन विजातीय द्रव्य के कारण रक्त-संचालन में बाधा पड़ने से त्वचा के कार्य में शिथिलता आ जाती है। हमें इस प्रकार शिथिल हुई त्वचा में गर्मी पहुंचा कर उसमें फिर से काम करने की ताकत पैदा करनी चाहिए। रोमों के खुलने के लिए गर्मी और ठंडक देना आवश्यक है। त्वचा पर भी इन दोनों का बड़ा अच्छा असर पड़ता है। इससे उसके छिद्र खुल जाते हैं और वह काम करने लगती है। भाप में ये दोनों गुण हैं। हमारी तात्पर्य-सिद्धि के लिए वाष्पस्नान से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। ठीक तौर से लेने पर वाष्प-स्नान से त्वचा में काम करने की ताकत आ जाती है।

छोटे बच्चों के लिए एक इससे भी अधिक स्वाभाविक उपाय है। आपने देखा होगा कि ठंड लगने पर बच्चे मां से लिपटना चाहते हैं। बच्चों में माता के शरीर की गर्मी से अपना बदन गरम करने की बड़ी इच्छा रहती है। उन्हें ऐसा करना भी चाहिए। जिस माता के हृदय में पवित्र और स्वाभाविक मातृ-प्रेम का निवास है, वह अपने बच्चे को साथ सुलाने और अपने शरीर की गरमी पहुंचाने का कार्य बड़ी प्रसन्नता से करेगी लेकिन हां, इस काम के लिए स्वयं माता में यथेष्ट गर्मी होनी चाहिए। यदि उसीके शरीर में गर्मी लाने के लिए बाहरी उपाय की आवश्यकता हो तब तो वह अपने बच्चे का पालन क्या करेगी? बच्चे को असली लाभ तो मातृस्नेह से ही मिल सकता है, पर जिन बेचारों को यह नसीब न हो उन्हें [illegible] भाप-स्नान देना चाहिए।

आंत, गुर्दा—मलमूत्र के इन दोनों भीतरी स्थानों पर वाष्प-स्नान का असर पड़ता है। पर इसके सिवा उन्हें विशेष प्रभावशाली प्रयोग की आवश्यकता होती है। भीतर प्रस्तुत होनेवाले द्रव्य अधिकतर उन्हीं मार्गों से निकलते हैं। दूसरे अंगों की अपेक्षा बहुत ज्यादा वहीं जमा रहते हैं। इसलिए बढ़ी हुई गर्मी से इन दोनों में ठंडक पहुंचाने की जरूरत है। इसका सबसे सहज और उत्तम उपाय उदरस्नान या कटिस्नान है। विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने के लिए उदरस्नान के समय उस द्रव्य के यथासंभव निकट स्थान को कपड़े से रगड़ना पड़ता है। पर, क्रिया पानी के भीतर ही करना चाहिए। इससे प्रायः फुंसियां हो जाती हैं, जिन के द्वारा विजातीय द्रव्य साधारण रूप की अपेक्षा अधिकता से बाहर निकलता है। जब तक उदरस्थ स्थानों में गर्मी मालूम हो ऐसे स्नान लेने चाहिए। संभव है, कभी-कभी एक दिन में तीन-चार बार स्नान लेने पड़ें और किसी किसी दशा में एक-एक घंटा

तक लेने पड़ें। इसके लिए नदी का जल सर्वोत्तम होता है क्योंकि यह जमे हुए मल को जल्दी से ढीला कर देता है। अगर भारी जल मिले तो व्यवहार करने के पूर्व उसे कुछ देर पड़ा रहने देना चाहिए।

इन स्नानों के शुरू करते ही अद्भुत फल होता है। दस्त ठीक आने लगता है। कभी-कभी तो ऊपर वर्णन किये अनुसार बंधा हुआ, गुदा में बिल्कुल लगा न रहने वाला मल निकलता है। कारण, इन स्नानों से आंतों का संचित प्रकुपित होने वाला पदार्थ बाहर निकल जाता है। लेकिन शरीर की पूरी सफाई न हो लेने तक नया विकारी द्रव्य जमता जाता है। इसीलिए पूर्ण नीरोग होने तक इस चिकित्सा को जारी रखना चाहिए। चिकित्सा कितने दिन करनी चाहिए यह शरीर में जमे हुए विकारी द्रव्य की मात्रा तथा स्नानों के प्रभाव पर निर्भर है। हफ्तों तक और कभी-कभी महीनों या वर्षों तक करनी पड़ती है। जो मनुष्य जन्म के साथ ही रोग लाते हैं उनकी चिकित्सा में सबसे अधिक समय लगता है। पर उन नवयुवकों पर, जो थोड़े ही दिनों से रोग के पंजे में फंसे हैं, इसका असर बहुत ही जल्द होता है। चिकित्सा आरंभ करने पर प्रायः उपर्युक्त ज्वरों में से कोई एक फूट निकलता है। इससे सफाई का काम बड़ी तेजी से होता है। इसका इलाज भी ठीक उसी ढंग से करना चाहिए। उस समय, विशेषकर त्वचा को शीघ्र काम में लगाने की चेष्टा करनी चाहिए। पसीना निकलते ही ज्वर तत्काल लोप होने लगता है। हम कह आये हैं कि ज्वर पुनः स्वास्थ्यलाभ की चेष्टा है। विकारी द्रव्यों का बाहर निकालना इसका उद्देश्य है। विकारी द्रव्य बाहर निकलने पर भीतरी प्रकोप और साथ ही गर्मी भी दूर हो जाती है। लेकिन इस बात पर फिर ध्यान दिलाने की आवश्यकता जान पड़ती है कि छोटे बच्चों की दशा में तो पसीना लाने के लिए माता की गर्मी ही सर्वोत्तम उपाय है। इसलिए माता को अपने शरीर की गर्मी पहुंचा कर बच्चे की जीवनरक्षा करनी चाहिए। प्रत्येक तीव्र रोग में रोगी को काफी पसीना लाना ही हमारी पहली चेष्टा होनी चाहिए। इस बात पर भी समान रूप से ध्यान देना चाहिए कि अन्य विकारी द्रव्य निकालनेवाली इंद्रियां भी अपना कार्य उचित रूप से करती रहें। इसीलिए ज्वर में उदरस्नान और मेहनस्नान बारंबार देने की आवश्यकता पड़ती है।

ज्वरों में डिप्थीरिया शायद सबसे भयंकर गिना जाता है। बच्चों के लिए तो यह कालरूप ही समझा जाता है। शरीर में विजातीय द्रव्य के अधिक मात्रा में एकत्र हो जाने पर और सिर में रुकावट पाकर लौटते समय सांस की नली तथा फेफड़ों में विशेष रूप से जमा हो जाने के कारण, बच्चों पर डिप्थीरिया का आक्रमण होता है। त्वचा के अपना काम प्रायः बंद कर जाने पर ही विजातीय द्रव्य का इतना जमाव होना संभव है। इस लक्षण से, सावधान माता-पिता पहले से ही बच्चे पर होनेवाले ज्वर के आक्रमण को जान लेंगे। डिप्थीरिया-रोगी के शरीर की उपमा एक ऐसी बोतल से दी जा सकती है जिसमें प्रकुपित होनेवाला—खमीर उठनेवाला तरल पदार्थ भरा हो। उसमें उफान शुरू होने से विकारी द्रव्य बोतल के सिरे की ओर जाना चाहता है, क्योंकि बोतल की चहारदीवारी उसे बाहर नहीं जाने देती। यही हालत डिप्थीरिया रोगी की भी होती है। डिप्थीरिया के साथ ही प्रायः लालज्वर भी हो सकता है, क्योंकि प्रकोप सारे शरीर में फैल जाता है। ऐसा होना लाभदायक है। इससे कूड़ा बाहर निकलने में त्वचा से भी सहायता मिलती है। ऊपर लिखे अनुसार पसीना लाने का उपाय जरूर करना चाहिए। संभव है, बच्चे को पसीना लाने के लिए माता को घंटों उसके साथ बिस्तर में लेटने की जरूरत पड़े। यह संभव न हो तो वाष्पस्नान देना चाहिए। उदरस्नान या मेहनस्नान भी बारी-बारी से नीरोग न होने तक देना चाहिए। डिप्थीरिया में प्रायः रोगी का दम घुट जाता है। हमें इसे रोकने की चेष्टा करनी चाहिए। इस भय का कारण जीभ पर जमी हुई सफेदी है। पर गले की जलन को बंद कर सकने से रोगी जरूर बच

जायगा । जीभ पर जमी हुई गंदगी दूर करने के लिए रोगी को मुंह में ठंडा पानी भर रखना चाहिए । मुंह में उस पानी के गर्म हो जाने पर फिर ठंडा पानी भर लेना चाहिए । यहां तक कि गंदगी बिल्कुल दूर होने तक यह उपाय जारी रखना चाहिए । इससे रोगी को अच्छा लाभ मालूम होगा । रोगी को इस तरह लेटना चाहिए कि पानी मुंह के भीतर तक पहुंच सके और गंदगी अच्छी तरह घुलती रहे।

यह चिकित्सा बहुत छोटे बच्चों को नहीं दी जा सकती । उनके लिए मेहनस्नान काफी होगा । उसका ऐसा अच्छा असर होता है कि एक ही स्नान के बाद सारी गंदगी प्रायः दूर हो जाती है । वर्षा का जल व्यवहार करने से तो शीघ्र फल प्राप्त करने में बहुत ही कम संदेह रहता है । इसलिए ऐसा जल प्राप्त करने में कोई उपाय उठा न रखना चाहिए । उसके अभाव में नदी का जल लेना चाहिए । कुएं या नल के जल को व्यवहार करने से पूर्व खुली वायु और संभव हो तो धूप में, कई घंटे पड़ा रहने देना चाहिए ।

आकृति विज्ञान

वर्तमान प्रचलित चिकित्सा-विधियां रोग के प्रत्यक्ष प्रकट हो जाने तक कोई उपाय नहीं कर सकतीं, क्योंकि जबतक रोगी को स्वयं उसका ज्ञान न हो जाय तबतक वह उसे देख कर जान ही नहीं सकते ! आकृति-विज्ञान की बदौलत आज हम ऐसी अच्छी स्थिति में हैं कि एक निश्चित रूप से बीमारी की वृद्धि, उसकी दबी हुई दशा तथा उसकी आरंभिक अवस्था को भलीभांति जान सकते हैं । हमें रोग के पूर्ण रूप से बढ़ जाने अथवा सब लोगों की नजरों में आ जाने तक ठहरना नहीं पड़ता । रोग के प्रगट हो जाने तक हमें बाट नहीं देखनी पड़ती । अब हमारी ऐसी स्थिति है कि हम जब चाहें निश्चित रूप से रोग की दशा का ज्ञान सकते हैं, अतएव रोगी के स्वयं अनुभव करने के बहुत पहले ही यह काम हो सकता है । इसलिए हम इच्छा करते ही रोग को दूर करने के लिए चिकित्सा आरंभ कर सकते हैं ।

इस प्रणाली में बात साबित करने की जरूरत नहीं होती है ।

इसके सिवा हमें रोगी को यह पूछने की आवश्यकता नहीं रही कि रोग कहां है, रोग के लक्षण क्या हैं ? बल्कि स्वयं ही स्पष्ट निश्चित चिह्नों से हम उन्हें पहचान सकते हैं । अपने काम के लिए हमें वर्तमान प्रचलित चिकित्साओं की भांति बहुमूल्य यन्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती । परीक्षा के लिए हमारी आंखें ही काफी हैं । परीक्षा के ये यन्त्र सदा हमारे साथ रहते हैं और यह कहना कोई गर्व की बात न होगी कि यदि मनुष्य इस नवीन विद्या का काफी अभ्यास कर ले तो उसकी आंखें उसे कभी संदेह या धोखे में न पड़ने देंगी । इस प्रकार सरल हो जाने से परीक्षा-विधि में बड़ी महत्वपूर्ण उन्नति हुई है । स्त्रियों के गुप्त रोगों की परीक्षा के लिए तो यह बहुत ही अमूल्य उपाय है । अब इन रोगों के लिए स्थानीय परीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं रही । अब हम पूर्णतया निश्चित रूप से पेट की भीतरी दशा का, स्थानीय परीक्षा-विधि से जितना संभव है उस से कहीं अधिक अच्छी तरह से जान सकते हैं । कहना नहीं होगा कि स्त्रियों तथा इन रोगों वाली लड़कियों को परीक्षा-विधि में किस प्रकार लज्जा का सामना करना पड़ता था । अब उन्हें उससे छुटकारा मिल गया है ।

यहां संदेह किया जा सकता है कि जब हम एक ही रोग और उसकी एक ही चिकित्सा मानते हैं तो परीक्षा करना तो व्यर्थ है । ठीक है, हमारे पास किसी ऐसे रोगी को, जो अपने रोग का ज्ञान रखता है, आने पर उसे हमारी परीक्षा-विधि सिर्फ रोग का स्थान बतला देती है । आकृति-विज्ञान का अधिक महत्व इस बात में है कि हम इसकी सहायता से निश्चित रूप से शरीर का रोग और उसका झुकाव जान सकते हैं । इसलिए प्रत्येक मनुष्य जान सकता है कि उसके शरीर में रोग का आरंभ हुआ है या नहीं । केवल एक इसी बात से यह संभव है कि हम निश्चय रूप से रोगों के आक्रमण से बच सकें

हैं और मेरी चिकित्सा-विधि इस विद्या की कुंजी है ।

आकृति-विज्ञान की सहायता से हम अस्वस्थ शरीर की आकृति के छोटे-से-छोटे परिवर्तन को भी तत्काल जान सकते हैं और इस तरह सारे शरीर अथवा उसके किसी अंग की दशा का निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; क्योंकि इन सारे परिवर्तनों की उत्पत्ति शरीर के एक ही भाग में अर्थात् मेदे से होती है ।

कोई तीव्र रोग प्रकट होने के पहले कुछ समय तक शरीर में दवा हुआ रहता है। इसलिए यह बात ध्यान में भी नहीं आ सकती कि पूर्ण स्वस्थ मनुष्य पर एकाएक चेचक, हैजा, पेचिश इत्यादि रोगों का आक्रमण हो सकता है। रोग तभी संभव है जब पहले से शरीर में विजातीय द्रव्य भरा हो ।

सर्वांगीण चिकित्सा-शास्त्र

(एक नए दृष्टिकोण की रूप-रेखा)

डा० इन्द्रसेन

चिकित्सा-शास्त्र अनेक हैं, उनके आधार और सिद्धान्त भी अनेक हैं और सभी का छोटा-बड़ा इतिहास है, लौकिक-अलौकिक सफलताओं का विवरण है, सभी की कुछ-न-कुछ कठिनाइयां और कमजोरियां भी हैं। यदि इन अनेक शैलियों में अभी तक उचित समन्वय नहीं हो पाया और मानव के स्वास्थ्य-वर्द्धन तथा रोग-निवारण के लिए एक संगठित चिकित्सा-शास्त्र नहीं बन पाया है तो क्या इसका यह अर्थ नहीं कि हम अभी तक इस शास्त्र के उस वास्तविक आधार को उपलब्ध नहीं कर पाये हैं जो कि इन सब शैलियों को उचित रूप में समन्वित कर सके ?

मानव का बहिर्मुखी तथा द्वन्द्वात्मक मन सहज ही किसी आंशिक सत्य पर इतना मुग्ध हो जाता है कि वह उसे पूर्ण सत्य मान लेता है और अपने सत्यान्वेषण का पूरा आधार बना लेता है। या फिर ऐसी मुग्धता में तथा ऐसे आधार में ऐसा असंतोष अनुभव करता है कि प्रतिक्रिया में किसी विपरीत विचार को वह पूर्ण सत्य मानकर चल पड़ता है। दोनों अन्वेषणों में वह सफलता बहुत-कुछ प्राप्त कर लेता है। प्रत्यक्ष ही दोनों दृष्टिकोणों में सत्यांश होते हैं।

पश्चिमी-विज्ञान तथा शेष ज्ञान और इनका गत ४०० साल का विकास व इनकी अनेक गति-विधियां मन के एकांगी तथा क्रिया-प्रतिक्रियात्मक स्वभाव को खूब प्रदर्शित करती हैं और यदि आधुनिक पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान को हम यथार्थ रूप में आंकना चाहते हैं और उससे यथार्थ लाभ उठाना चाहते हैं तो हमें आधुनिक यूरोप की मानसिक-बौद्धिक प्रवृत्ति को भली प्रकार समझ-बूझ लेना होगा।

प्राकृतिक चिकित्सा अत्यन्त सुन्दर और हित-वर्द्धक विज्ञान है, परन्तु यह भी मन-बुद्धि के क्रिया-प्रतिक्रिया के खेल में से ही उपजा है और इसके स्वभाव में एलोपैथिक चिकित्सा-शैली के प्रति प्रत्यक्ष विरोध और प्रतिक्रिया है। प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी यह तथ्य हमें इसकी यथार्थ धारणा बनाने में अत्यन्त सहायक हो सकता है, वास्तव में यह इसके लिए अनिवार्य है।

एलोपैथिक चिकित्सा-शैली निश्चिय ही औषधियों के आविष्कार और उनके चमत्कारी प्रभाव के मोह में पड़ गई थी और चिकित्सा-विज्ञान के मौलिक लक्ष्य को भूल गई थी । स्वास्थ्य-वृद्धि और स्वास्थ्य-लाभ की अपेक्षा औषध-चमत्कार उसे मानों अधिक प्रिय हो गया था और यह वृत्ति इस पराकाष्ठा तक जा पहुंची थी कि रोग-निवारण केवल लक्षण-परिवर्तन का रूप बन गया था। इसके साथ-साथ अन्यथा सांस्कृतिक रूप में भी यूरोप में कला-कौशल, ऐश्वर्य और भोग के कारण

जीवन में कृत्रिमता बहुत आ गई थी और जीवन की स्वाभाविक शक्तियों में कई प्रकार का ह्रास दिखाई देने लगा था। वेश-भूषा के कारण पावों के रोगों का विशेष रूप में बढ़ जाना और उसके आकार और रूप में विकृति आना तथा स्त्रियों में सन्तान के लिए दूध न उतरना आदि अनेक इसी प्रकार के दोष थे। एलोपैथी जीवन की बढ़ती कृत्रिमता की सहायक बनी, उसके परिणामों को दूर करने का यत्न करती रही, नई-नई दवाइयों का आविष्कार करने अथवा उन्हें नई-नई शैलियों से शरीर में पहुंचाने के आविष्कार में अपनी सारी शक्ति लगाती रही। जहां पहले दवाई अधिक मात्रा में मुंह से दी जाती थी अब थोड़ी मात्रा में सुई द्वारा सीधी शरीर में पहुंचाई जाने लगी। यही इसके विकास, विस्तार और प्रभाव का रूप रहा।

ऐसी परिस्थिति में आश्चर्य नहीं, जो कुछ लोगों ने यह अनुभव किया कि आखिर इन बढ़ते रोगों और जीवन की स्वाभाविक शक्तियों के ह्रास का मूल कारण क्या है? उन्होंने यह भी अनुभव किया कि चिकित्सा केवल रोग के लक्षणों को ही दूर करने की चिन्ता कर रही है, वह मूल कारण को तो खोजती ही नहीं। यह विचारधारा गत शताब्दी में प्रकट हुई और जर्मनी के प्रीसनिट्ज इसके प्रवर्तक थे। वे अत्यन्त मौलिक भावनावाले व्यक्ति थे और उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा को जन्म दिया तथा इसे समृद्ध विज्ञान की अवस्था तक पहुंचा दिया। प्रो० स्टोनेक्वर जो कि १९२० में बर्लिन विश्वविद्यालय में प्राकृतिक चिकित्सा के अध्यक्ष नियुक्त हुए और जो अपने समय में जर्मनी में प्राकृतिक चिकित्सा की परम्परा के प्रमुख नेता थे, अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ (Der Natur Arzt, प्राकृतिक चिकित्सक) में प्रीसनिट्ज के सम्बन्ध में लिखते हैं—"प्रीसनिट्ज ने प्राकृतिक चिकित्सा का आविष्कार नहीं किया था। उन्होंने तो इसकी आत्मा को अनुभव किया और प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार-उपायों को इस प्रतिभा से विकसित किया कि उनके अनुयायियों को इस विषय में कम ही कुछ करने को बाकी रहा।" (Der Natur Arzt, दूसरी जिल्द पृ० १४०)।

प्रीसनिट्ज किसान थे और यह कितना सुन्दर तथ्य है कि प्राकृतिक चिकित्सा के आधुनिक प्रवर्तक वे थे। वास्तव में वे चिकित्सक से अधिक स्वस्थ जीवन के कलाकार थे और लोगों को वे स्वस्थ जीवन की कला सिखाया करते थे। उन्होंने वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा की आत्मा को, जो कि पुरातन सत्य है, अनुभव किया। उन्होंने अनुभव किया कि प्रकृति स्वयं ही शरीर की विघ्न-बाधाओं को दूर करने का यत्न करती है, दवाइयां उसका उपाय नहीं। शरीर की रोगों को दूर करने की स्वाभाविक शक्ति को प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्यों ने खूब ही अनुभव किया और यही अनुभूति उनकी प्रधान प्रेरणा बनी। इसी पर उनका सारा शास्त्र स्थित है। मानव का शरीर कैसा अपूर्व सङ्गठन है, इसमें अंग-अंग का कैसा सहयोग है, इसकी असंख्य क्रियाएं कैसे मिलकर काम करती हैं! यदि यह स्वास्थ्य की दशा में प्राकृतिक बुद्धि और कार्य-कुशलता का ऐसा आश्चर्यजनक नमूना है तो क्या रोग में यह इससे सर्वथा भिन्न हो जायगा? वास्तव में नहीं। रोग स्वयं सामूह प्राकृतिक प्रयोग है शरीर में उपस्थित विघ्नों को दूर करने का। यह, वास्तव में, अद्भुत दृष्टि थी और इसे प्राकृतिक चिकित्सा ने सिद्ध करके दिखा दिया। दृष्टान्त के तौर पर सूजन को लीजिए। चोट लगने अथवा जख्म हो जाने से सूजन हो जाया करती है। इसका अर्थ क्या है? शरीर की प्रकृति वहां अधिक रक्त भेज रही है जिससे वहां का क्षतिग्रस्त शरीर-तन्त्र पुनः सुसंगठित हो जाय। यह कितना सुन्दर उपाय हो रहा है! क्या आप अपने उपाय द्वारा इस प्राकृतिक उपाय की सहायता करना चाहेंगे अथवा इसे रोकना चाहेंगे? स्पष्ट ही इसकी सहायता करना हमारा लक्ष्य हो सकता है, न कि इसे दबाना या रोकना। जिस कारण से यह सूजन पैदा हुआ है वह दूर हो जाने से यह स्वतः दूर हो जायगा। ज्वर भी इसी प्रकार का प्राकृतिक प्रयोग है। यह भी शोधन-क्रिया है। इसे दबाने की कोशिश करना व्यर्थ है। और यह भी इस बात का सूचक है कि शरीर के सर्वांगीण भाग में कुछ दोष, कुछ विकार है। चिकित्सक का लक्ष्य उस दोष को दूर करना होना चाहिए

न कि दर्द को। अगर दर्द को दूर कर दिया और दोष बना रहा तो वह जरूर किसी और रूप में प्रकट होगा।

प्राकृतिक चिकित्सा की मौलिक अनुभूति, कि प्रकृति में शरीर को स्वस्थ रखने की स्वाभाविक प्रवृति है, खूब सत्य है। रोग विशेष प्राकृतिक प्रयोग हैं, शरीर में उपस्थित विघ्नों को, चाहे वे कीटाणुओं से हो अथवा अन्य कारणों से, दूर करने के, यह भी सुन्दर तथ्य है। हमारे चिकित्सोपचार प्राकृतिक शक्ति को सहायता करने तथा उसे पुनः जाग्रत करने के लिए होने चाहिए, यह भी अत्यन्त सरल और बुद्धिगम्य विचार है। रोग होते क्यों है, इसका समाधान भी स्पष्ट है। अप्राकृतिक जीवन से, कृत्रिम जीवन से, गलत आहार-विहार से। रोगोपचार में भी प्राकृतिक चिकित्सा का लक्ष्य जीवन को पुनः प्राकृतिक शैली में लाने का होता है। इसलिए आहार-विहार को ठीक किया जाता है तथा प्राकृतिक शक्ति को पुनः जाग्रत और बढ़ाने के लिए जो साधन काम में लाये जाते हैं वे भी भोजन के बाद जल, वाष्प, वायु, सूर्य, व्यायाम, मालिश, बिजली, मानसिक प्रेरणा आदि हैं। जड़ी-बूटी भी काम में लाई जा सकती है, परंतु रसायनिक दवाइयां बिल्कुल नहीं। विशेष अवस्था में चीरा-फाड़ी का भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा की मौलिक मान्यताएं, प्रत्यक्ष ही, खूब सुन्दर हैं और कृत्रिम जीवन के दोषों को इसने अच्छी तरह दरशा दिया है; परन्तु इसके आधार को जबतक हम गंभीर दार्शनिक रूप में न जांच लें तबतक हम इसकी यथार्थ सत्यता को तथा इसके वास्तविक बल को नहीं जान सकते। इसका अंतिम विचार है 'प्रकृति' और हम यहां पूछना चाहते हैं कि इसकी 'प्रकृति' की भावना क्या है? इसने यह शब्द पश्चिमी विज्ञान से लिया है और विशेषकर १९वीं सदी के प्रकृतिवाद से। १६वीं सदी से ही यूरोप अधिकाधिक इस विचारधारा में दृढ़ होता गया है। सारा संसार अणुओं-परमाणुओं के संगठन से बना है, जिसमें एक समय प्राण विकसित हुआ फिर मन। जड़ अणुओं-परमाणुओं तथा प्राण और मन का जगत् प्रकृति है। परंतु इसका मूल उपादान कारण जड़ तत्त्व है, जो गति द्वारा विभिन्न रूपों में परिवर्तित हो जाता है। मानव-शरीर भी उसी प्रकृति की उपज है और उसीकी शक्ति से प्रचालित होता है। परंतु प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्य जब प्रकृति का वर्णन करते हैं तो इसे वे आदर्शरूप बतलाते हैं। परंतु वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति एक विकसनशील तथ्य है और मानव विकसनशील प्राणी। आज न प्रकृति के ही कर्म पूर्ण हैं, न मानव-शरीर की चेष्टा और व्यवहार ही पूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त वर्तमान प्रकृति में भी जो मन और चेतना का प्रभुत्वपूर्ण स्थान है उसके लिए भी उनमें भावना नहीं। उनका आधार अधिकांश में जड़ और प्राणिक प्रकृति है। आज पश्चिमी विज्ञान १९वीं सदी के जड़वाद को छोड़ चुका है। जड़ परमाणुओं की जगह वह बिजली के कणों को अंतिम तथ्य मानता है और कुछ वैज्ञानिक तो बिजली की शक्ति के आधार में चित्त-शक्ति को मूलाधार मानने के लिए बाधित अनुभव कर रहे हैं। प्राकृतिक चिकित्सा ने अपने प्रकृति के विचार को तदनुरूप परिवर्तित नहीं किया है। मनोविज्ञान ने जो मानसिक शक्ति का शरीर के स्वास्थ्य पर प्रभाव दिखलाया है वह वास्तव में एक बृहत्तर प्राकृतिक शक्ति का रूप है। फिर यदि हम संपूर्ण मानव व्यक्तित्व को लें तो हमें उसकी आत्मा और आत्मशक्ति का स्वास्थ्यादि पर प्रभाव भी देखना होगा। और यदि आत्मा मानव-व्यक्तित्व का सर्वोपरि तथा अधिकतम शक्तिशाली तत्त्व है तब तो प्राकृतिक चिकित्सा के लिए इसकी देन विशेष महत्वपूर्ण होगी। प्रत्यक्ष ही, प्राकृतिक चिकित्सा, जो व्यक्ति की निजी आंतरिक शक्ति प्रचालित करना चाहती है और उस शक्ति द्वारा उनके जीवन-विकारों को दूर करना चाहती है, भला सबसे बड़ी आंतरिक शक्ति की उपेक्षा कैसे कर सकती है? विशेषकर भारत की प्राकृतिक चिकित्साशैली तो बिल्कुल ही नहीं कर सकती।

श्री अरविन्द के ग्रन्थों को पढ़ते हुए तथा विशेष रूप में, उनके मानव-विकास, अतिमानसिक अवतरण, रोग-

श्री अरविंद और माताजी के अपने शब्दों में हम यहां देते हैं :

"रोग इस बात का चिन्ह है कि शरीर में कहीं कुछ अपूर्णता या त्रुटि है अथवा भौतिक प्रकृति विरोधी शक्तियों के स्पर्श के प्रति कहीं से खुली हुई हैं, अथवा जैसे कि अधिकतर होता है कि निम्न प्राण या भौतिक मन अथवा किसी प्रकार अन्य स्थान में किसी प्रकार का अंधकार या असामंजस्य है।

"यदि कोई श्रद्धा और योग-शक्ति से या भागवत शक्ति को अन्दर में उतार लाकर रोग से पूरी तरह छुटकारा पा सके तो यह तो बहुत ही अच्छी बात है। परन्तु एकबारगी ऐसा करना बहुधा संभव नहीं होता, कारण समग्र प्रकृति शक्ति के प्रति उद्‌घाटित नहीं होती अथवा उसका साथ देने में असमर्थ होती है। हो सकता है कि मन श्रद्धालु हो और शक्ति का साथ दे, किन्तु निम्नप्राण और शरीर उसका अनुगमन न कर सकें। या, यदि मन और प्राण तैयार हों तो यह संभव है कि शरीर साथ न दे और यदि साथ दे भी तो केवल आंशिक रूप से। कारण, उसकी यह आदत है कि यह उन शक्तियों की जो एक विशिष्ट रोग को पैदा करती हैं, पुकार का उत्तर देता है और प्रकृति के जड़ भाग में जो आदत पड़ जाती है वह एक महा हठीली शक्ति है। ऐसी अवस्थाओं में भौतिक साधनों का आश्रय लिया जा सकता है—प्रधान साधन के तौर पर नहीं, बल्कि एक सहायता के तौर पर अथवा यह समझकर कि शक्ति की क्रिया के लिए यह एक तरह का स्थूल सहारा होगा। परन्तु तीव्र और उग्र औषधियां नहीं, बल्कि ऐसी औषधियों का जो शरीर में हलचल मचाये बिना लाभ पहुंचाएं।"

(योग के आधार, १९३९, पृ० २५९-२६०)

* * *

"रोग पर अंदर से क्रिया की जा सकती और उसे ठीक किया जा सकता है। परन्तु बात यह है कि यह कार्य सदा सहज नहीं होता। कारण, भौतिक प्रकृति बहुत अधिक प्रतिरोध किया करती है, जो कि जड़त्व का प्रतिरोध होता है। अतः अनथक अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। आरंभ में यह प्रयास सर्वथा असफल भी हो सकता है तथा रोग के लक्षण बढ़ जा सकते हैं, परन्तु क्रमशः शरीर पर तथा रोग-विशेष पर अधिकार दृढ़तर हो जाता है। इसके अतिरिक्त, किसी रोग के आकस्मिक आक्रमण को आंतरिक साधनों से रोक डालना अपेक्षाकृत सहज है, परन्तु शरीर को ऐसा बना डालना कि भविष्य में वह रोग इसमें हो ही न सके, अधिक कठिन है। किसी जीर्ण रोग का अंतःक्रिया द्वारा उपचार करना और भी अधिक कठिन होता है, वह पूर्ण रूप से हटने के लिए तैयार ही नहीं होता। इसकी अपेक्षा शरीर के कभी-कभार के विकार आसान होते हैं। जबतक शरीर पर अधिकार अपूर्ण है तबतक आंतरिक शक्ति तो व्यवहार में इस तरह की तथा अन्य अपूर्णताएं और कठिनाइयां बनी ही रहेंगी।"

(योग के आधार, १९३९, पृ० २६३—२६४)

* * *

"औषध तो लाचारी का उपाय है, जिनका उपयोग उस समय करना पड़ता है जब कि चेतना कोई भाग शक्ति को ग्रहण ही नहीं करता या अत्यंत क्षणिक रूप ग्रहण करता है।"

(योग के आधार, १९३९, पृ० २६५)

* * *

"पूर्ण रोगमुक्तता तो अतिमानसिक रूपान्तर से ही उपलब्ध होगी। कारण, अतिमानसिक स्तर के नीचे की रोगमुक्तता तो अनेक शक्तियों पर एक शक्ति-विशेष की क्रिया का परिणाम होती है और यह संतुलन बिगड़ जाने से वह खंडित हो सकती है। अतिमानसिक स्थिति में वह प्रकृति का धर्म बन जाती है। अतिमानसीकृत शरीर की नई प्रकृति में रोग-मुक्तता स्वाभाविक तथा अन्तर्निहित होगी।"

माताजी के अनुसार भी रोग मन-प्राण-शरीर में किसी असंतुलन, किसी रोक, अन्धकार या दिव्य चेतना के प्रति उन्मुक्तता के अभाव का द्योतक है। ऐसी आन्तरिक स्थिति बाह्य विरोधी शक्तियों को भी

निमन्त्रित कर लेती है जो रोग पैदा कर देती है। श्री माताजी कहती हैं

"तुम्हारी आंतरिक अवस्था रोग का कारण तब बनती है जब वहां पर कोई प्रतिरोध या विद्रोह होता है अथवा जब कि तुम्हारे अन्दर कोई ऐसा भाग होता है जो भागवत संरक्षण का प्रत्युत्तर नहीं देता अथवा वहां कुछ ऐसा तत्त्व भी हो सकता है जो इच्छापूर्वक और जान-बूझ कर विरोधी शक्तियों को अन्दर बुलाता हो।'

(मातृवाणी, १९४३, पृ० ११२-११३)

* * *

"तुम्हारे शरीर में और उसके आस-पास रोग की संभावनाएं सदा बनी रहती हैं, तुम्हारे अन्दर या तुम्हारे चारों ओर सब प्रकार की बीमारियों के कीटाणु या रोग-जीवाणु विद्यमान होते हैं अथवा ये तुम्हारे चारों ओर मंडराते रहते हैं। जो रोग तुमको वर्षों से नहीं हुआ उसके तुम एकाएक शिकार क्यों हो जाते हो? तुम कहोगे कि इसका कारण 'प्राणशक्ति का सुस्त पड़ जाना है,' है; परन्तु यह प्राणों की सुस्ती कहां से आती है? यह सत्ता में किसी प्रकार का असामंजस्य होने से, भागवत शक्तियों के प्रति ग्रहणशीलता का अभाव होने से आती है। जब तुम उस शक्ति और ज्योति से, जो तुम्हारा पालन-पोषण करती है, अपने आपको जुदा कर लेते हो तब यह सुस्ती आती है, तब जिसको डॉक्टर लोग रोग के लिए अनुकूल क्षेत्र कहता है वह तैयार हो जाता है और उस समय कोई-सा रोग ही उसका फायदा उठा लेता है। संदेह, निरुत्साह, विश्वास का अभाव, निजी स्वार्थ के लिए भगवान से मुंह फेर कर अपनी ओर फिर जाना—ये हैं जो ज्योति और दिव्य शक्ति से तुम्हें अलग कर देते हैं और रोग के आक्रमण को स्थान पहुंचाते हैं। यही है तुम्हारे बीमार पड़ने का कारण, न कि रोग के कीटाणु।"

(मातृवाणी, १९४३, पृ० १११)

* * *

"शांति और स्थिरता रोगों को दूर करने के लिए महान् औषध हैं। जब हम अपने शरीर के अणुओं में शांति ले आ सकेंगे, तभी हम रोगमुक्त हो जायेंगे।" (मातृवाणी, १९४३, पृ० १८-१९)

* * *

भगवान् के प्रति उन्मुक्त होना और सदा अधिकाधिक उन्मुक्त होते जाना, अपने अन्दर शांति और अचंचलता रखना और अपने रोम-रोम में सुख और शांति का अनुभव करना आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ जीवन की प्रधान शर्तें हैं और मैं समझता हूं, भारतीय सांस्कृतिक जीवन इन गुणों पर बहुत बल देता रहा है और ये गुण किसी हद तक यहां जनता को प्राप्त भी थे।

ऊपर के श्री अरविन्द और माताजी के वचन विषय की बहुत विस्तारपूर्वक व्याख्या नहीं करते, फिर भी उनमें एक दृष्टिकोण काफी स्पष्ट आ गया है और लेखक के विचार में यह एक नये चिकित्सा-शास्त्र की, एक समन्वयपूर्ण, सर्वांगीण चिकित्सा-शास्त्र की रूप-रेखा इंगित करता है। इस दृष्टिकोण की अपूर्व अनुभूति अतिमानस चेतना की है, उस चेतना-स्तर की जिसकी उपलब्धि पर पूर्णतया स्वस्थ शरीर प्राप्त हो सकता है। श्री अरविंद इसके लिए सामान्य मानव साधना के रूप में यत्नशील थे और जिस हद तक उन्हें इस दिशा में सफलता प्राप्त हुई थी उसके बल पर वे निश्चयात्मक भाव में कहते थे कि अतिमानस ध्रुव सत्य है और यह मानव को प्राप्त होगा और उसकी प्राप्ति के अनेक फल होंगे और उनमें से एक होगा रोगमुक्त शरीर। रोगमुक्त शरीर की निश्चित भावना और इसकी प्राप्ति का आध्यात्मिक साधन चिकित्सा शास्त्र, दिशा और धारा स्थिर कर देता है। बाहरी प्रयोग, चाहे वे दवाइयां हों या स्नान, व्यक्ति की किसी अवस्था की आंतरिक चेतन-शक्ति के अनिवार्य पूरक और सहायक के रूप में ही काम में लाये जा सकते हैं। यदि ऐसे प्रयोगों से व्यक्ति की चेतन-शक्ति निर्बल होती है, उसका आत्म विश्वास कम होता है, उसके अन्दर विवशता और पराधीनता बढ़ती है,

तो वे प्रयोग उस समय उस व्यक्ति के लिए अनुचित कहे जायंगे।

इस दृष्टिकोण में समन्वित होने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा को सब शैलियों से कम परिवर्तित होने की जरूरत होगी। यह पहले ही व्यक्ति की प्राकृतिक शक्ति पर भरोसा करती है और उसे सबल बनाकर शरीर के विघ्नों को दूर करना चाहती है। परन्तु इसकी प्राकृतिक शक्ति की भावना, वास्तव में प्राणिक है। यह इसे आत्मिक बनानी होगी। वह शक्ति अपने आप में एक चेतन शक्ति है। दूसरे इसे यह भी स्वीकार करना होगा कि जब दवाई मन-प्राण की अपनी शक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए बरती जाय, रोग के लक्षण को दबाने या दूर करने के लिये नहीं—और दवाइयों के इस प्रकार के गुण होते हैं और वे इस प्रकार बरती जा सकती है—तो निश्चय ही उन्हें बरतने में दोष नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा के अपने साधन भी आज बहुत विस्तृत हो गये है। भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में अधिकांश में हम लूई कूने (Louis Kuhne) या एडोल्फ जुस्ट (Adolf Just) की ही चर्चा करते है, विशेषकर पहले नाम की ही। परन्तु जर्मनी की प्राकृतिक चिकित्सा की परम्परा के प्रसिद्ध नाम वास्तव में है प्रीसनिट्ज़, रौसे, (Rausse), शिंडलर (Schindler), हान (Hahn), बाल्टजर (Baltzer), रिकली (Rikli), कनाईप (Kneipp) और लाहमान (Lahmann) और इन सबमें एक समन्वयपूर्ण भावना दिखाई देती है। प्राकृतिक चिकित्सा का वर्त्तमान रूप अत्यन्त समृद्ध है और वह विविध प्रकार के प्राकृतिक साधनों को काम में लाती है। इन व्यक्तियों के अतिरिक्त भी वहां अनेक ओजस्वी चिकित्सक हुए है जिन्होंने जल, उपवास, मिट्टी आदि को एकांगी रूप में लेकर एक पूरी चिकित्सा-शैली को विकसित करने का यत्न किया है और इन सबकी अपनी-अपनी देने है जो समन्वित प्राकृतिक चिकित्सा में आ गई हैं।

प्रत्यक्ष ही भारत प्राकृतिक चिकित्सा को अधिक विस्तृत बना सकता है। उसके आधार को अधिक सुदृढ़ रूप दे सकता है, उसे भौतिक से आध्यात्मिक बना सकता है। वास्तव में उसमें तथा दवाई प्रधान शैलियों में भी समन्वय सिद्ध कर सकता है। उपर्युक्त सर्वांगीण चिकित्सा-शास्त्र की इंगित रूप-रेखा शायद यह कार्य कर सकती है। परन्तु यहां इसे एक संभावना मात्र ही दिखाया गया है, शोध की एक दिशा ही प्रस्तुत की गई है। इसका फलीभूत होना तो चिरकालीन शोध-कार्य पर निर्भर करेगा।

वन-भ्रमण

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

कीनिया (पूर्व अफ्रीका) की राजधानी नैरोबी में स्थानीय आर्य समाज के प्रधान लाला लाहोरीराम के यहां ठहरा हुआ था। नैरोबी समुद्र की सतह से पांच हजार फुट की ऊंचाई पर बसी हुई है और इस कारण वहां काफी सर्दी रहती है। एक दिन एक सज्जन ने आकर कहा, "श्रीमती सरोजिनी नायडू ने यह तय किया है कि नैरोबी से युगाण्डा तक की यात्रा रेल के बजाय मोटर में की जाय! आप भी तैयार हो जाइये!"

मैंने पूछा, "कितने मील की यात्रा है?"

उन्होंने उत्तर दिया, "कोई हजार मील तो होगी। वनों में चक्कर काटते हुए मोटर जायेगी। तीन मोटरों का प्रबन्ध भी हो गया है।"

मैंने पूछा, "जब रेल मौजूद है तो ये चक्कर क्यों?"

उक्त महानुभाव हंसने लगे और बोले, "आप इस बात को क्यों भूल जाते है कि श्रीमती सरोजिनीदेवी कवियित्री है और वनों से उन्हें प्रेम है, वन-भ्रमण का उन्हें शौक है। मार्ग में बड़े सुन्दर प्राकृतिक स्थल दीख पड़ेंगे। शायद सिंहों के भी दर्शन हो जायं।"

शहर में न तो वनों के महत्त्व को समझता था और न वन-भ्रमण के आनन्द की कल्पना ही कर सकता था। मैंने समझा यह भी रईसों के मनमौजीपन का एक लक्षण है, बड़प्पन का एक चोंचला है कि रेल के मौजूद होते हुए भी मोटर से यात्रा की जाय! मजबूरन मुझे भी यह वन-यात्रा करनी पड़ी। यह घटना सन् १९२५ की है और तब यहाँ का नागरिक बनने में मेरे लिए तेरह वर्ष और बाकी थे। वन-भ्रमण का वास्तविक आनन्द मुझे फरवरी सन् १९३८ में मिला।

यह बात नहीं कि पूर्व अफ्रीका के वनों ने मुझे प्रभावित न किया हो। वृक्षों की घनी छाया के नीचे से गुजरती हुई हमारी मोटरें जब वनप्रदेश में स्थित किसी ग्राम में रात के समय पहुँचतीं और वहाँ के थोड़े से भारतीय स्त्री-पुरुष और बच्चे पूर्व अफ्रीका की कांग्रेस की प्रेसीडेंट श्रीमती सरोजिनीदेवी के स्वागत के लिये घंटों से प्रतीक्षा करते हुए दीख पड़ते तो एक अद्भुत आनन्दमय वातावरण उत्पन्न हो जाता। मातृभूमि की वन्दना के बाद स्वागत होता और फिर श्रीमती सरोजिनीदेवी का धाराप्रवाह भाषण। ऐसा प्रतीत होता कि हम अपनी मातृभूमि में ही विद्यमान हैं—यद्यपि थे वहाँ से हजारों मील दूर! मार्ग में सिंह के दर्शन तो न हुए। हाँ, एक बार बहुत दूर से उस की दहाड़ हमारे अफ्रिकन मोटर ड्राइवर को अवश्य सुनाई पड़ी थी और उसने कहा था, 'सिम्बा, सिम्बा!' स्वाहिली भाषा में (जिसे अफ्रिकन लोग बोलते हैं) सिंह का नाम है। हाँ, जेबरा बहुत से दीख पड़े थे! एक बार तो श्रीमती सरोजिनी देवी ने जिद से इरादा कर रात को मोटर से इसीलिए यात्रा की थी कि मार्ग में यदि सिंह मिल जाय तो उसका शिकार किया जाय! मोटरों में ड्राइवरों के आस-पास बन्दूक लिये हुए शिकारी बैठा दिये गए थे। अजीब भय और कौतूहल की भावना हमारे हृदय में थी! मन में सोचते थे, 'कहीं आ न जाय! और कहीं हमारा ही शिकार न कर डाले!" वन्य पशुओं से भरे हुए जंगल में निर्द्वन्द्व एकाकी भ्रमण करने का अवसर कभी नहीं मिला है उस विकट परिस्थिति की कल्पना सभी कर सकेंगे, यद्यपि हमारे लिए बहुत ही कम खतरा था! मोटरों की रोशनी और आवाज से जंगली जानवर स्वयं चौंकते हैं और वस्तुतः मनुष्य ही सबसे अधिक भयंकर प्राणी है! बन्दूक की गहरी चोट का मुकाबला भला कौन पशु कर सकता है!

वनों का हमारा वह प्रथम परिचय था और जैसा कि हम लिख चुके हैं अभी हमारे वन-प्रेमी बनने में एक युग और शेष था।

पिछले तेरह वर्षों में हमने पचासों बार वन-भ्रमण का आनन्द उठाया है। कई बार शिकारियों के साथ हम हौदे में भी बैठे हैं और भयभीत वन्य पशुओं को अपनी ओर आते हुए और मृत्यु का ग्रास बनते हुए भी देखा है! पर वन-भ्रमण के इस निर्दय ढंग से हम कभी के ऊब चुके हैं और सर्वथा निरस्त्र होकर वनों में घूमने का महत्त्व हमें ज्ञात हो गया है।

एक बार हम बलिया के श्री कुन्दीर नारायणसिंह जी को साथ लेकर अपने निकटस्थ मधुवन (सेंगई) की सैर को निकले थे कि लौटते समय तेरह-चौदह जंगली सूअर दीख पड़े! हमसे उनका फासला बीस-पच्चीस गज से अधिक का न होगा। वाराह भगवान सकुटुम्ब इतनी बड़ी संख्या में दीख पड़ेंगे, यह कल्पना हमने नहीं की थी, वैसे इक्के-दुक्के सूअर हमें पहले भी मिल चुके थे। श्री कुन्दीरजी कवि भी हैं, पर यह दृश्य उनके लिए भी कल्पनातीत था। हम दोनों स्तब्ध खड़े रह गये। सूअरों ने भी समझ लिया कि हम लोग निरपराध जीव हैं और उनमें से जो दो-तीन बड़े-बड़े थे वे कुछ देर खड़े-खड़े हमारी ओर देखते रहे। इस बीच उनके बाल-बच्चे सुरक्षित स्थान पर आगे बढ़ चुके थे और तत्पश्चात् वे भी बढ़ गये।

किसी जंगल में सजीव तेंदुआ या शेर हमने आज तक नहीं देखा और इसकी लालसा अब भी बनी हुई है। हाँ, हरिन-मृग, सांभर तथा नील गाय के झुण्ड कई बार देखे होंगे। जंगली पशुओं के चित्र लेने की भी कोशिश हमने की, पर उसमें हम सर्वथा असफल ही रहे। पशुओं को गोली का शिकार बनाना अपेक्षाकृत बहुत आसान है पर कैमरा-द्वारा उनका शिकार कठिन!

वन भ्रमण का वास्तविक आनन्द उठाने के कई वर्ष पूर्व हम कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन

निबन्ध 'तपोवन' का अनुवाद बन्धुवर धन्यकुमार जैन द्वारा करा चुके थे। उन दिनों धन्यकुमारजी कुछ अस्वस्थ-से थे। कोई खास बीमारी नहीं थी, चित्त उद्विग्न रहा करता था। अकस्मात् एक दिन हमने उनसे कहा, "अगर आपका मन लग सके तो गुरुदेव के एक लेख का अनुवाद हमारे लिए कर दीजिये। वह बंगला में है।" पहले तो धन्यकुमारजी को कुछ चिन्ता हुई, क्योंकि 'विशाल भारत' का प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्य पहले से ही उनके पास बहुत ज्यादा था फिर भी उन्होंने अनुवाद की हामी भर ली। जब 'तपोवन' उन्हें दिया गया तो वे कुछ चौंके। वह तो एक पुस्तिका थी। संकोचवश अस्वीकृति न दे सके; पर उस अनुवाद का उनके मस्तिष्क पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। वह तो मानों उनकी मानसिक बीमारी का एक इलाज ही हो गया। धन्यकुमारजी उस आश्चर्यजनक घटना को अभी तक नहीं भूले और मैं तो भला भूल ही कैसे सकता था। तब से न जाने कितनी बार गुरुदेव के 'तपोवन' को हमने पढ़ा है। 'विध्यवाणी' के 'मधुवनांक' में हमने उसे उद्धृत भी किया और फिर पुस्तिका के रूप में छपवा भी लिया है। किसी भी वन-प्रेमी के लिए यह पुस्तिका वेद, कुरान या बाइबिल की तरह पवित्र ग्रन्थ का काम दे सकती है।

दुःखों के विनाशक वन

चित्रकूट पर्वत के मनोहर दृश्यों को देखकर भगवान रामचन्द्र ने सीताजी से कहा था—"इस रमणीय पर्वत को देखकर मुझे राज्य का छूटना भी दुःख नहीं देता और सुहृदों से दूर रहना भी मेरे लिए पीड़ा का कारण नहीं होता।"

'न राज्यं भ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयऽमिमं गिरिम्।'

आदिकवि वाल्मीकि ने भगवान् के लिये 'गिरिवन-प्रियः' (पहाड़ों तथा वनों के प्रेमी) शब्द का प्रयोग किया है और यह बतलाया है कि माल्यवती नदी, मृग-पक्षियों से सेवित वनभूमि और सुन्दर चित्रकूट के सम्पर्क से भगवान को अयोध्या के वियोग का दुःख भूल गया। निस्सन्देह चित्त को निश्चिन्त करने के लिए वन-भ्रमण एक प्रकार की औषधि है। जगन्माता सीताजी को भी उससे अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ था।

"जिन तरु गुल्म अथवा पुष्पशालिनी लताओं को सीता ने पहले कभी नहीं देखा था, उनके बारे में वे राम से पूछने लगीं। उनके अनुरोध से लक्ष्मण उन्हें पुष्प-मंजरी से भरे हुए अनेक प्रकार के पौधे और लतायें ला-ला कर देने लगे। वहां विचित्र बालुका जलयुक्त और हंस-सारसों से मुखरित नदी देख कर जानकीजी मन-ही-मन आनन्द का अनुभव करने लगी।"

इस अवसर पर हमें अमरीकन ऋषि एमर्सन की एक कविता का अंश याद आ रहा है, जिसका आशय यह है कि उपवनों में शारीरिक श्रम करने से उनकी चोट आराम हो जाती है तथा वन में भ्रमण करते हुए उनके घाव पुर जाते हैं।

"All my hurts my garden spade can heal.
A woodland walk, a quest of river-grapes, a mocking thrush, a wild-rose or rock-loving columbine, salve my worst wounds."

हम स्वयं अपने अनुभव से कह सकते हैं कि वन की स्वच्छ वायु में एक प्रकार का मादक प्रभाव होता है, जिससे क्षत-विक्षत आत्मा को एक प्रकार की मरहम-सी लगती है। वन वस्तुतः शक्ति के केन्द्र हैं। दिमाग को तरोताजा बनाने के लिए और नवीन विचारों के प्रादुर्भाव के लिए किसी वन में पांच-सात मील टहल लेना पर्याप्त है! यह अनुभूत प्रयोग है—नुसखा आजमूदा है। वन के साथ तो रोग की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

पर 'स्वास्थ्य के लिए वन-भ्रमण' इस विचार में ही हमें व्यापारिकता की दुर्गन्ध आती है। बीमार पड़ने पर ही कोई व्यक्ति अपनी पूज्य माता के निकट जावे, यह विचार कुछ बहुत अच्छा तो नहीं है। सौभाग्य से यह धारणा हमारे वन-भ्रमण के मूल में कभी नहीं रही।

पिछले तेरह-चौदह वर्षों में हमारे जीवन के सर्वोत्तम क्षण वन-भ्रमण में ही बीते हैं। एक बार बेतवा के उद्गम की तलाश में हमें भोपाल के एक ऐसे वन में से गुजरना पड़ा, जिसमें शेर तथा रीछ पाये जाते हैं और जब खड़-खड़ की आवाज़ दूर से सुनाई दी तो हमारे साथी वनरक्षे

झील में है, देखें और कभी अमरीका के यलो स्टोन पार्क में भी भ्रमण करें ।

सुना है कि शीघ्र ही भारत भूमि में चुनावों का तूफान आनेवाला है और उन अनर्गल प्रलापों, धुआंधार स्पीचों तथा फालतू मीटिंगों की कल्पना करके ही हम कांप जाते हैं । कौन उन भलेमानसों को बतलावे कि किसी प्रातःकाल का वन-भ्रमण पार्लमेंट की मेम्बरी से कहीं अधिक गौरवप्रद है और अर्जुन वृक्ष की छाया में विश्राम एम० एल० ए० बनने से अधिक आनन्ददायक है । नदियों के कलकल निनाद पर सैकड़ों व्याख्यान निछावर किये जा सकते हैं । पदलोलुप अथवा प्रभुता के लिए पागल अहम्मन्य नेता नामधारी जन्तु इस तथ्य को भला क्या समझ सकेगा !

वन-भ्रमण एक कला है और उसकी उपासना करनी होती है ।

भारतीय सभ्यता के मूल स्रोत वन में ही रहे हैं और अपनी प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए हमें तपोवनों का निर्माण करना होगा ।

प्राकृतिक जीवन और चिकित्सा

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह

शरीर हमारे लिए एक साधन के समान है । कोई उसे धर्म का साधन समझता है और कोई सुख का । कालिदास ने उसे धर्म का साधन बतलाया—"शरीर-माद्यं खलु धर्म-साधनं ।" और तुलसीदास ने उसे मोक्ष का साधन माना है—"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।" पश्चिम में शरीर मुख्यतः सुख का साधन माना गया है और वैज्ञानिक उपायों से दुःख कम करने और अधिक-से-अधिक सुख बढ़ाने के साधन जुटाये गये हैं । हमारे देश में भी एक समय भोगवाद की प्रधानता थी । उसी समय काम-सूत्र आदि ग्रंथों की रचना हुई थी जिनमें शारीरिक सुख को अधिक-से-अधिक बढ़ाने के उपाय सुझाये गये थे । इस सबके द्वारा वासनाओं को उत्तेजित करके फिर उनकी तृप्ति के विविध साधन जुटाये गये हैं ।

किंतु इन सब सुखों की उपलब्धि और भोगों का उपभोग करने के लिए स्वास्थ्य सबसे पहले आवश्यक है । उसी प्रकार धर्म और मोक्ष साधन के लिए भी बलवान और स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है । उद्देश्य चाहे कोई भी हो, किंतु सबका उद्देश्य शरीर को स्वस्थ और बलवान् रखने का है । अब प्रश्न केवल यह रहा कि उसकी प्राप्ति किस प्रकार हो ? इसी विषय में मतभेद उपस्थित होता है । कुछ लोग प्राकृतिक उपायों से स्वास्थ्य को स्थिर रखना चाहते हैं और कुछ कृत्रिम या बाह्य उपायों से । कृत्रिम उपायों से काम लेने वाले लोग भी प्राकृतिक उपायों की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि वही सबका मूल है । मूल आधार को छोड़कर केवल कृत्रिम उपायों से इमारत नहीं खड़ी हो सकती और यदि खड़ी भी हो जाये तो स्थिर नहीं रह सकती ।

प्राकृतिक उपायों में विश्वास करनेवालों में भी दो मत देखने में आते हैं । कुछ लोगों का विश्वास है कि जीवन-यापन के लिए तो अवश्य ही प्राकृतिक उपायों से काम लेना चाहिए, किंतु किसी कारणवश यदि स्वास्थ्य बिगड़ जावे तो फिर उसे सुधारने के लिए कृत्रिम उपायों से भी काम लेना अनुचित नहीं है । वे कृत्रिम उपायों को आपद्धर्म ही के रूप में मानते हैं । इस प्रकार प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक चिकित्सा में दो स्पष्ट भेद हो जाते हैं । यथार्थ बात तो यह कि प्राकृतिक जीवन बिताने वाले के लिए प्राकृतिक या कृत्रिम किसी भी प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए । प्राकृतिक जीवन प्राकृतिक चिकित्सा का स्थान ले सकता है । किंतु प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक जीवन का स्थान नहीं ले सकती ।

इसलिए प्राकृतिक जीवन ही पर हमें विशेष ध्यान देना है । यदि किसी कारण से उसमें अव्यवस्था उपस्थित हो जावे तो वह प्राकृतिक चिकित्सा से सुव्यवस्थित की जा सकती है । सिद्धांत यह है कि जिन नियमों के अनि-

यमन से स्वास्थ्य बिगड़ता है उन्हीं के सुधारने से स्वास्थ्य सुधर भी सकता है। अब हमें विचार करना है कि वे नियम कौन से हैं? प्राकृतिक जीवन का अर्थ तो यह है कि हम प्रकृति प्रदत्त पदार्थों और तत्वों का ही अधिक से-अधिक उपयोग करें और उन्हींसे सहायता लें। प्राकृतिक वस्तुओं में सबसे प्रधान है पंचतत्व—पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश। यदि हम इनके सान्निध्य में *अपना जीवन व्यतीत करें तो कोई कारण नहीं कि हमारा* स्वास्थ्य अच्छा न रहे। हमारा शरीर भी तो आखिर पंचतत्वों से ही बना हुआ है। तब फिर उनकी सहायता से वह स्वस्थ क्यों नहीं रह सकता?

इनमें पहला तत्व है पृथ्वी। हमारे शरीर में सबसे अधिक भाग इसीका है। इसके जितने अधिक सम्पर्क में हम रहेंगे उतनी ही अधिक शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। हमारा सभ्य कहलाने वाला जीवन इसके संसर्ग से दूर होता चला जा रहा है। पृथ्वी से सम्पर्क में अधिकतर हमारे हाथ-पैर ही आते हैं; किन्तु हम इनको जूतों और मोजों से इस प्रकार ढंके रखते हैं कि पृथ्वी के सुखद स्पर्श से अधिकतर वंचित ही रहते हैं। हमें यह प्रयत्न करना चाहिए कि हम अपने शरीर को वस्त्रों से इतना अधिक आच्छादित न कर रखें कि वह प्राकृतिक तत्वों के स्पर्श से वंचित रह जाये। शीत-उष्ण का उचित बचाव करते हुए भी हम अपने शरीर को अधिक-से-अधिक खुला रख सकते हैं। हमारे उष्ण देश में अधिकांश समय वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं। झूठी लज्जा की भावना ने हमें कपड़ों का गुलाम बना दिया है। उससे हमें मुक्त होना है।

हमारे बच्चे अधिक-से-अधिक प्राकृतिक जीवन बिताना चाहते हैं, वे धरती पर लोटने, पानी में तैरने, खुली हवा में घूमने, धूप में खेलने और उन्मुक्त आकाश के नीचे विचरण करना चाहते हैं। किन्तु हम उन्हें इन वस्तुओं से विलग रखना चाहते हैं, मानों वे उनके शत्रु हों और इसका फल हमें बीमारियों के रूप में भोगना पड़ता है। हमें चाहिए कि हम अपने खुले शरीर को अधिक-से-अधिक पृथ्वीमाता के स्पर्श, जल के शीतल स्पर्श, वायु के आनन्ददायक स्पर्श, सूर्य की कोमल *किरणों तथा उन्मुक्त आकाश के सम्पर्क में लाते रहें।* इन तत्वों का स्पर्श ही हमारे शरीर का पोषण और संवर्धन करता है। खाद्य पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक पोषण हमें इनसे मिलता है।

हमारे शरीर के पोषण के लिये पौष्टिक और हल्का भोजन तथा उसे पचाने के लिये व्यायाम की भी आवश्यकता है। यह व्यायाम भी सूर्य-प्रकाश, स्वच्छन्द वायु और उन्मुक्त आकाश के नीचे होना आवश्यक है। जल में किये गए व्यायाम और भी अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं। भोजन के विषय में इतना ही ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि उसके लिए भी पाँचों तत्वों का सम्पर्क लाभदायक है। अग्नि की अपेक्षा सूर्य-प्रकाश में पके हुए पदार्थ अधिक लाभदायक होते हैं।

व्यक्तिगत अनुभव से मैंने दो वक्त के हल्के भोजन, प्रातःकाल खुली हवा में व्यायाम तथा सूर्य किरण धारण, सन्ध्या को खुली हवा में घूमना तथा आकाश के नीचे सोना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक पाया है। इसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में कटि-स्नान, सूर्य किरण, मिट्टी की पट्टी आदि उपायों को अनेक रोगों के लिए लाभदायक पाया है। सभी लोग अपनी प्रकृति और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन कर इनसे लाभ उठा सकते हैं।

"यह नहीं समझ बैठना चाहिए कि उपवास ही शरीर का स्वास्थ्य और बल स्थायी रूप से ठीक कर देगा। यह तो तभी हो सकता है, जब युक्त आहार, व्यायाम, स्नान-प्रस्नान तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्य नियमों का समुचित रूप से पालन हो। उपवास तो केवल विकारक पदार्थों को निकाल कर और रुग्णावस्था को दूर कर स्वास्थ्य के लिए मार्ग प्रशस्त कर देता है।"

—बर्नर मैकफेडन

प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त

डा० सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के स्थान पर प्राकृतिक जीवन-प्रणाली का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त है। इस प्रणाली का इतिहास काफी पुराना है। यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि जीव-जन्तुओं के जन्म के साथ-साथ इसका भी अभ्युदय हुआ। हां, इतना अवश्य है कि वेदों में इस प्रकार के जीवन द्वारा हमारे पूर्वजों के स्वास्थ्य-सुख आदि का उपयोग करते हुए सकड़ों वर्षों तक जीने का वर्णन मिलता है। वस्तुतः आयुर्वेद का शुद्ध रूप भी प्राकृतिक चिकित्सा ही है। पर तथाकथित सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ यह उत्तम प्रणाली प्रायः भुला दी गई। फलतः औषधि-प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। चिकित्सा एक व्यवसाय बन गया। उपार्जन-बुद्धि ने चिकित्सा-क्षेत्र में अनेक दोष उत्पन्न कर दिये। चिकित्सक जनता को कृत्रिम स्वास्थ्य प्रदान करने लगे और उन्हें स्वास्थ्य के वास्तविक सिद्धांतों के प्रचार की चिन्ता न रही। चिकित्सा अत्यन्त व्ययसाध्य बन गई। औषधोपचार अमीरों का व्यसन बन गया। जनता चिकित्सकों के भरोसे अपनी इन्द्रियों को बेलगाम छोड़ने लगी। अन्त में स्वास्थ्य की दशा दीन-हीन हो गई। स्वास्थ्य के इस संकट-काल में उत्तम विचारकों ने अपनी बुद्धि द्वारा रोगों के कारणों का सही पता लगाया और हानि-रहित औषधि-प्रणाली का आविष्कार किया। इन्हीं विचारकों में ईसा से ३०० वर्ष पूर्व हेनामेन हुआ था और उसने "समः समं शामयति विषस्य विषमौषधम्' सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

पर खेद है कि हेनामेन की प्रणाली भी नितान्त दोष-रहित नहीं थी। उसमें भी बहुत-सी न्यूनताएं थीं। अतएव रोगियों ने दोनों प्रणालियों से ऊबकर अपने मस्तिष्क को स्वास्थ्य प्राप्ति के अधिक उत्तम उपायों को ढूंढने में लगाया। उन्होंने जीव-जन्तुओं के रहन-सहन का अध्ययन एवं निरीक्षण किया और प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली की पुनर्प्राप्ति की। ये रोगी (महापुरुष) शास्त्रों से अनभिज्ञ थे। लक्षणों और औषधियों की क्रियाओं के चक्कर में न पड़ कर उन्होंने स्वास्थ्य, रोग, निदान और उपचार के प्रश्नों को साधारण सहज-बुद्धि से हल किया। स्वास्थ्य के लिए गन्दी गलियों की खाक छान कर तपोवनों का आश्रय लिया। उन्होंने पाश्चात्य देशों को संदेश दिया कि यदि सभ्यता के नवीन रोगों से रक्षा चाहते हो तो प्रकृति माता की गोद में जाओ और वहीं स्वच्छन्द क्रीड़ा करो। वस्तुतः इन लोगों ने भारत के प्राचीन संस्कारों की सुन्दर प्रथा को शास्त्र के रूप में फैलाया। इन्हीं लोगों में जर्मनी के श्री प्रिस्निज सर्वप्रथम हुए। उनके पीछे उनके सात शिष्य हुए। इस प्रकार इस विद्या का प्रचार होने लगा और धीरे-धीरे इसने वैज्ञानिक रूप धारण किया। भारतवर्ष में गांधीजी जैसे महापुरुषों ने इसे अंगीकार किया और जन-समुदाय के लाभ एवं कल्याण की वस्तु मानकर इसका प्रचार किया।

प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख सिद्धांत यह है कि प्रकृति स्वयं चिकित्सक है और प्रत्येक तीव्र रोग जैसे ज्वर, निमोनिया, चेचक, विसूचिका आदि के रूप में वह शरीर की सफाई करती है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि ये तीव्र रोग हमारे शत्रु नहीं, मित्र होते हैं। इनके होने में ही हमारी भलाई है। बात यह है कि आहार-विहारके दोषों से शरीर में दूषित द्रव्य इकट्ठे हो जाते हैं, जिन्हें विजातीय द्रव्य कहते हैं। प्रकृति इस विष को शरीर से बाहर निकालने के लिए ही तीव्र रोग उत्पन्न करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों का कारण एक ही माना जाता है और विभिन्न लक्षणों की अलग-अलग प्रकार से चिकित्सा न की जाकर तमाम शरीर को स्वस्थ बना कर एकसाथ सब रोग ठीक किये जाते हैं। मान लीजिये, किसी व्यक्ति को ज्वर के साथ खांसी और जुकाम भी है। चिकित्सक खांसी, जुकाम तथा ज्वर के लक्षणों को दूर करने के लिए एक-से साधन काम में लाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा लक्षणों पर विशेष ध्यान न देकर उनके कारण को दूर करती है जिससे वे रोग पुनः नहीं होते, जबतक कि उन बुरी आदतों को फिर से न अपनाया जाय जिनके कारण कि वे लक्षण उत्पन्न हुए थे।

प्राकृतिक चिकित्सक जीवाणुवाद में विश्वास नहीं रखता, अर्थात् जीवाणुओं को रोग का कारण नहीं मानता। वह इस बात को भली भांति समझता है कि कोई भी रोग स्पर्शजन्य नहीं है और न जीवाणुओं से उत्पन्न होता है। जिस प्रकार जंगल में पड़े हुए मृतक शरीर को खा-पीकर साफ कर डालने के लिए अनेक पशु-पक्षी स्वतः आते हैं और साफ करके चले जाते हैं, उसी प्रकार शरीर में एकत्र द्रव्य को खा-पीकर साफ कर डालने के लिये प्रकृति द्रव्य के प्रकार (Kind) के अनुसार जीवाणुओं को उत्पन्न करती है। अतएव ये जीवाणु रोग का कारण नहीं, अपितु परिणाम होते हैं। उन्हें विषैली औषधियों द्वारा मारने से विष की वृद्धि होती है, कमी नहीं। अलबत्ता रोग का रूप बदल सकता है, पर लाभ कुछ नहीं होता। इन जीवाणुओं से मुक्त होने का सरल उपाय संचित दूषित द्रव्य को हटाना है।

आहार-विहार के दोषों से उत्पन्न पूर्वोक्त दूषित द्रव्य से शरीर को मुक्त करके स्वस्थ बनाने के लिए सदा दिनचर्या, ऋतुचर्या, पथ्यपालन एवं संयमनियम की आवश्यकता है। संयमनियम का मुख्य अंग उपवास है। वस्तुतः 'लंघन परमौषधम्' सनातन सत्य है। पथ्य भी सात्त्विक साधन है। स्नान, मर्दन, मिट्टी का लेप, शौचाचार, वायु-सेवन, प्राणायाम, आसन, विभिन्न प्रकार से जल का प्रयोग, सूर्य-रश्मियों का लाभ आदि-आदि द्वारा भी शरीर को स्वस्थ बनाया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का अनुयायी दूसरी चिकित्सा-प्रणालियों को एकदम ठुकरा देता है। वह जानता है कि एकसाथ दो विरोधी दिशाओं में नहीं दौड़ा जा सकता। अन्य चिकित्सा-पद्धतियां दवाओं द्वारा रोग को दबाती तथा बाह्य लक्षणों को शान्त कर देती हैं, जबकि निसर्गोपचार रोग की जड़ को दूर करके उसे सदा के लिए भगा देता है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा का अन्य प्रणालियों के साथ मेल नहीं बैठता। प्राकृतिक साधनों के साथ-साथ इंजेक्शन, इत्यादि नहीं दिये जाने चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसा विज्ञान है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को सीख कर चिकित्सक की सहायता के बिना, काम में लाना चाहिए। स्वास्थ्य के लिए दूसरों का मुंह ताकना अथवा यह समझना कि स्वास्थ्य को बाजार की वस्तु के समान खरीदा जा सकता है, बड़ी भूल है। कोई भी डाक्टर या वैद्य पुड़ियों में बांधकर अथवा बोतल में भरकर स्वास्थ्य प्रदान नहीं कर सकता। स्वास्थ्य की प्राप्ति स्वयं के संयत जीवन से ही होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्य : गांधीजी

श्री रामनारायण उपाध्याय

गांधीजी महान् क्रांतिकारी थे। उन्होंने अपने जीवन-भर समाज में अनेक आमूल परिवर्तन किये। जिस तरह हिंसा की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए 'अणुबम' के युग में उन्होंने हमें सत्याग्रह और अहिंसा का दिव्य अस्त्र दिया, 'विज्ञान और मशीन' के युग में चरखे और अनेक छोटे-मोटे ग्राम-उद्योगों को प्रतिष्ठा दिलाई, उसी तरह शरीर-चिकित्सा के 'डाक्टरी' युग में उन्होंने हमें कृत्रिम साधनों की अपेक्षा प्रकृति के सहयोग से, 'मन और शरीर' से, पूर्ण स्वस्थ रहने का 'प्राकृतिक चिकित्सा' का अपूर्व तरीका सिखाया। उन्होंने न सिर्फ प्राकृतिक चिकित्सा की बात ही की, अपितु स्वयं अपने तथा अपने परिवार-जनों व मित्रों के ऊपर जीवन भर उसके प्रयोग किये और कई बार तो खतरे में भी पड़े थे। प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में अपने अनुभव, सिद्धान्त, नियम और प्रयोगों पर उन्होंने बहुत लिखा है। उनकी 'आरोग्य की कुंजी' को तो यदि 'आरोग्य-शास्त्र की कुंजी' कहें तो भी अत्युक्ति न होगी।

पाठकों से हम आग्रह करेंगे कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। आगे आने वाली पीढ़ियां सहसा विश्वास नहीं कर सकेंगी कि भारत को आजादी दिलानेवाले इस क्रांतिकारी महापुरुष ने एक साथ इतनी विविध प्रवृत्तियों में समन्वय कैसे स्थापित किया।

एक शब्द में गांधीजी को भारतीय राष्ट्र का 'चिकित्सक' कहा जा सकता है। उन्होंने हमें 'सत्याग्रह' के ज़रिये राजनैतिक मुक्ति, 'चरखे' के ज़रिये 'आर्थिक समानता' 'अस्पृश्यता निवारण' के ज़रिये 'सामाजिक शुद्धि', 'प्रार्थना' के ज़रिये 'आध्यात्मिक उत्कर्ष' और 'प्राकृतिक चिकित्सा' के ज़रिये शरीर और मन से पूर्ण स्वस्थ होने के उपाय बताये हैं।

गांधीजी के जीवन की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपना प्रत्येक विचार सरल-से-सरल ढंग से अकाट्य युक्ति के साथ उपस्थित किया है। प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में भी उनके विचार बड़े ही सरल और युक्तिसंगत हैं। इन चंद वाक्यों में मानों उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा का मूलमन्त्र दे दिया है:

"मिट्टी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन्हीं पांच तत्वों से संसार बना हुआ है। इन्हीं पांच तत्वों को लेकर हमारे शरीर की भी रचना हुई है। इसका यह अर्थ है कि शरीर को स्वस्थ और आरोग्य रखने के लिए इन पांच तत्वों की आवश्यकता है। स्वच्छ मिट्टी, स्वच्छ जल, स्वच्छ धूप, स्वच्छ वायु और स्वच्छ आकाश (खुला स्थान) का मिलना हमारे शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन तत्वों में से एक तत्व भी न मिलना हमारे अस्वस्थ होने का कारण होता है। जिस तत्व की जिस परिमाण में आवश्यकता है उस तत्व का उस परिमाण में मिलना ही हमारे शरीर का स्वास्थ्य है।"

आगे चल कर स्वास्थ्य लाभ के लिए प्राकृतिक चिकित्सा में अपना विश्वास ज़ाहिर करते हुए वे लिखते हैं—"मेरी यह दृढ़ धारणा है कि मनुष्य को दवा लेने की शायद ही आवश्यकता होती है। पथ्य और पानी और मिट्टी के घरेलू उपचारों से ही हजार में से नौ सौ निन्यानवे बीमारियां अच्छी हो सकती हैं।"

मनुष्य के अस्वस्थ होने के कारणों का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है—"हमारा रहन-सहन किसान के रहन-सहन से, जितना ही अधिक भिन्न होगा, हम उतने ही अधिक रोगी होंगे। मनुष्य को आठ घंटे शरीर-श्रम करना चाहिए और वह ऐसा कि जिसमें मानसिक शक्तियों को भी साफ करने का अवसर मिल सके।"

शरीर और मन का एक-दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध रहा है। इसलिए गांधीजी का यह निश्चित मत था—"स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। निर्विकारी को रोग तो हो ही नहीं सकता।" अतः मानसिक स्वस्थता के लिए उन्होंने 'रामनाम' पर जोर दिया था।

गांधीजी के विचारों का सूक्ष्म विवेचन करते हुए विनोबाजी ने उन्हें सूत्र-रूप से यों रखा है—

(अ) हमेशा शुद्ध, स्वच्छ, युक्त और मित आहार और विशेष प्रसंगों में अल्पाहार और निराहार।

(आ) देह, वाणी, मन की शुद्धि और आसपास के सब वातावरण की स्वच्छता।

(इ) कुदरत पर प्यार और उसका उन्मुक्त सेवन।

(ई) योग्य परिश्रम और विश्रांति की व्यवस्था।

(उ) अपने को देह से भिन्न जानना, प्राणिमात्र की सेवा में लग जाना और विशुद्ध चित्त से परमेश्वर का निरन्तर स्मरण।

नीचे लिखे सूत्र में विनोबाजी ने मानों गांधीजी की ही बात कही है—

"जहां परमेश्वर का नाम, वहां निर्विकारिता, जहां निर्विकारिता वहां पूर्ण आरोग्य।"

"राम की मदद लेकर हमें विकारों के रावण का वध करना है और वह संभवनीय है। जो राम पर भरोसा रख सको तो तुम श्रद्धा रखकर निश्चिंतता के साथ रहना। सब से बड़ी बात यह है कि आत्म-विश्वास कभी मत खोना। खाने का माप रखना। ज्यादा और ज्यादा तरह का भोजन न करना।"

हिंदी नवजीवन, २०. १२.'२८

—मो० क० गांधी

शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार

मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक चीजों में भोजन एक प्रधान भाग रखता है। बिना खाये आदमी बहुत दिनों तक जी नहीं सकता। मनुष्य ही नहीं, संसार का प्रत्येक प्राणी कुदरती तौर से भोजन की आवश्यकता का अनुभव करता है। कुदरत ने प्राणी को भूख देकर बता दिया कि भोजन उसके लिए जरूरी है। यदि भूख न होती तो शायद मनुष्य खाने में उसी तरह आलस्य करता जैसे शरीर की दूसरी जरूरियात के लिए करता है। पता नहीं कि तब वह वक्त पर खाता या न खाता। भूख शब्द ही मांग का बोधक बन गया है, जैसे कहा जाता है—"इन्हें रुपये-पैसे की ज्यादा भूख नहीं है।" भोजन की आवश्यकता दरसानेवाली एक कहावत है

"भूखे भजन न होय गोपाला,
यह लो कंठी यह लो माला।"

शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है। यह जानने के साथ-साथ थोड़े में हमें यह भी जान लेना चाहिए कि यह आवश्यकता पैदा क्यों होती है? शरीर को कुछ लोगों ने इंजन की उपमा दी है, जो शरीर-सम्बन्धी सब बातों से मेल न खाते हुए भी शरीर के काम को समझने के लिए किसी हद तक ठीक कही जा सकती है। दोनों में बड़ा फर्क यह है कि वह जड़ है, यह चेतन है। इंजन को जैसे कोयले-पानी की जरूरत होती है, वैसे ही हमारे शरीर के लिए भी, अन्न-पानी की जरूरत है। अन्न शब्द में खाई जा सकने वाली सब चीजें आ जाती हैं। प्राणी के शरीर में और इंजन में एक फर्क और है, इंजन में कोयला-पानी न डाला जाय तो वह चलेगा नहीं। एक जगह चुपचाप खड़ा रहेगा। इससे उसका कोई नुकसान नहीं होगा, पर चैतन्य शरीर की यह बात नहीं है। वह खड़ा रहे या पड़ा रहे, उसे अन्न-पानी चाहिए और चाहिए इसलिए कि उसे भूख लगती है। इंजन को जैसे ज्यादा दूर ले जाने का ज्यादा कोयला-पानी चाहिए, वैसे ही हमारे शरीर से ज्यादा काम लेना हो तो उसे ज्यादा अन्न-पानी देना पड़ता है। काम के सिवा अन्न-पानी की, काम के लिए ही नहीं, या यह कहें कि तात्कालिक काम के लिए ही नहीं, काम के लायक बने रहने और टिके रहने के लिए भी जरूरत होती है। बच्चे के माता के गर्भ में आते ही उसे भोजन की आवश्यकता पैदा हो जाती है। पहले वह अपना भोजन माता के रक्त से पाता है। माता के रक्त से भोजन पाकर ही, उसके शरीर के कोश यानी सेल्स बनते हैं। फिर बाहर आ जाने पर भी वह माता के स्तनों से दूध द्वारा ही बढ़ता है। एक तरह से मां अपने जीने के लिए और अपने बच्चे को जिलाने या बढ़ाने के लिए भोजन करती है। इसलिए कुछ लोगों ने यह कहा है कि गर्भवती मां को अथवा दूध पिलाने वाली मां को दूना भोजन करना चाहिए। इस मत में कितना अंश सही है, इस बहस में हम नहीं पड़ेंगे। यह एक अलग लेख का विषय हो सकता है।

बच्चा मां का दूध पिये या गाय का दूध पिये अथवा उसे और खुराक दी जाय, लेकिन हम देखते हैं कि उसे बढ़ने के लिए भोजन चाहिए। बच्चा कुछ कहता नहीं जान पड़ता है, लेकिन तब भी उसे खुराक चाहिए और खुराक न दीजिये तो वह रोने लगता है, यद्यपि वह यह नहीं समझता कि उसके शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है। पर भोजन न मिलने पर वह रोने लगता है, जिससे समझा जाता है कि बच्चा भूखा है, यानी उसको खाने की जरूरत है। बच्चे का रोना भूख का लक्षण माना गया है और किसी हद तक यह सही है। जबतक बच्चे में बोलने की शक्ति नहीं आ जाती तबतक के लिए कुदरत ने उसको भोजन की पूर्ति के लिए रोकर अपनी भावना प्रकट करने की युक्ति दी है।

कोई यह न समझे कि बच्चा भूख के सिवा और कारण से रोता ही नहीं। उसके रोने के और भी कई कारण होते हैं। पर अक्सर पूर्ण मानते भूख को रोने का

एकमात्र कारण मानकर बच्चे के रोने लगते ही दूध पिलाने को ले बैठती है। अगर वह दिन में बीस बार रोये तो वह उसे बीस बार स्तनों से लगाती है। इससे बच्चे की आदत बिगड़ती है, उसे नुकसान होता है और मां को भी नुकसान होता है; लेकिन यहां इस विषय पर विशेष नहीं कह सकते। यहां तो हम इतना ही बतलाना चाहते हैं कि कोई काम न करते हुए भी बच्चे के शरीर की बाढ़ के लिए भोजन की जरूरत होती है। यों तो बच्चा कुछ-न-कुछ काम, चाहे वह उपजाऊ न हो, करता ही रहता है, हाथ-पैर पीटता रहता है, बदन को हिलाता-डुलाता रहता है, कुछ बड़ा हो जाने पर दौड़ता-भागता भी है। ज्यों-ज्यों वह अधिक काम में लगता है, त्यों-त्यों उसे अधिक भोजन की जरूरत होती है। एक तो भोजन की आवश्यकता शरीर के बढ़ने के लिए है। जैसे अगर हमें दीवार बड़ी करनी हो तो हमें उसी मिकदार में ईंट-चूने की जरूरत होती है। लेकिन दीवार पूरी हो जाने पर दीवार बनाने के लिए जो ईंट-चूना लगना था, उसकी जरूरत खत्म हो गई। हमारा शरीर बीस साल की उम्र तक बढ़ता है, पर अन्य प्राणियों में उस अवस्था में बहुत विभिन्नता है। तो क्या शरीर पूरा बढ़ जाने पर भोजन बन्द कर दिया जा सकता है? नहीं, हमारे शरीर में जो कोषा बने हैं, उनमें से एक बड़ी तादाद में क्षीण होते रहते हैं। यदि हम भोजन न करें तो कुछ दिनों में हमारे शरीर के सब कोषा खत्म हो जायेंगे, यानी हम मर जायेंगे। कोषा बिना कुछ काम किये भी छीजते रहते हैं। यद्यपि काम बाहर दिखाई नहीं देता है, लेकिन शरीर के भीतर काम तो चलता ही रहता है। हम सांस लेते हैं, यही शरीर का एक बड़ा काम है। उसके द्वारा शरीर की काफी छीजन होती है। उस सारी छीजन की पूर्ति के लिए भोजन चाहिए और शरीर में जो कोषाएं हैं, वे सब जीवित रहें, इसके लिए भी। कहा जाता है कि एक पूरे मनुष्य के शरीर में पच्चीस अरब कोषायें हैं। वे सब अपने आपमें स्वतन्त्र हैं और जीवित हैं, यानी सप्राण हैं और उनका कुछ-न-कुछ काम होता रहता है। चाहे हम उसे बाहर अनुभव करें या न करें। इन कोषाओं को जीवित रहने के लिए भोजन चाहिए। शरीर के भोजन के लिए तीन कारण बने (१) बच्चे से बड़े होने तक के लिए, नया कोषा बनने को। (२) जो कोषा बन गये हैं उनको जिंदा रखने को और (३) काम में जो कोषा खत्म हो गये हैं, उनकी जगह नये कोषा पैदा करने को।

जो प्राणी जितना अधिक काम करता है उसके उतने अधिक कोषा नष्ट होते हैं और उसे उस हिसाब से अधिक भोजन की आवश्यकता है। अब इससे हमारी समझ में यह बात आ जाती है कि मनुष्य को भोजन की आवश्यकता क्यों है? उसे भूख क्यों लगती है? और उसे कितना खाना चाहिए? यह भी एक हद तक समझ में आ जाता है। जैसे एक कहावत है: "चारू सो भारू"* पर मनुष्य की शारीरिक शक्ति में फर्क होते हुए भी शक्ति की एक सीमा है कि न वह उससे ज्यादा काम कर सकता है, न उस हद से ज्यादा खा ही सकता है। हम एक इंजन को या मोटर को तेल डाल कर लाखों मील चला सकते हैं, यद्यपि उसकी भी एक हद है, पर शरीर को जड़ मोटर की भांति अधिक खुराक देकर बहुत दिनों तक चौबीसों घंटे काम में नहीं लगाए रह सकते। वह बहुत दिनों तक काम देगा, लेकिन अपनी सीमा में। जो लोग अनाड़ीपने से इस शरीर का उपयोग करते हैं, वे इसे खराब कर लेते हैं, या जल्द खो बैठते हैं। जैसे इंजन और मोटरों के नियम हैं कि कितना कोयला या तेल डालने पर मोटर कितने मील चलेगी या कितना काम करेगी और वह कोयला और तेल किस किस्म का होगा जो कम या ज्यादा काम देगा, वही चीज इस शरीर के साथ भी है कि किस भोजन से हमारे शरीर को कितनी शक्ति मिल सकती है।

साधारण मनुष्य इस गहराई में नहीं उतरता कि वह कितना खाय, क्या खाय और कैसे खाय? जैसे वह दूसरों को देखकर बोलना या चलना सीख लेता है वैसे ही खाना भी सीख लेता है। जो वह अपने आसपास लोगों को खाते देखता है वही वह भी खाता है। इसलिए देखा जाता है कि एक घर में, एक जाति में, एक प्रांत में, एक मुल्क में

---

* ज्यादा चारा खानेवाला ज्यादा भार उठायेगा।

खास-खास तरह का भोजन चलता है। इनमें किसी ने किसी सिद्धांत के अनुसार किसी भोजन का चुनाव किया हो, ऐसा नहीं प्रतीत होता। परम्परा से करते आये हैं और करते आ रहे हैं। देखा जाता है कि पंजाबी बंगाल में जाकर आटा और दूध-दही की लस्सी की तलाश करता है और बंगाली पंजाब जाकर भी मछली और भात खोजता है। एक तरह से हमें लोगों में पड़ी हुई आदतों को बदलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, यदि उनसे कोई खास नुकसान न होता हो तो। भगवान् ने शायद यह ख्याल रखकर गीता में कहा है :

"न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानाम् कर्मसंगिनाम्।" यानी जो जिसमें लगे हैं, लगे रहने दो। उन्हें भड़काओ मत। अपना आचरण ठीक रखो। यही बताने के लिए दूसरा चरण है : "जोषयेत् सर्व कर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।" यहां समाचरन् का अर्थ "कांटे-तौल" है। जब यह देख पड़े कि कहीं व्यवस्था बहुत बिगड़ गई है तब विद्वान् के बोलने-बतलाने की गुंजायश हो जाती है। उस समय "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" जो ठीक चल रहा था, उसका भटक जाना। आज भोजन के मामले में लोग कुछ भटके हुए मालूम पड़ते हैं। इसलिए कुछ कहने की जरूरत पड़ गई है। यों तो भोजन-शास्त्र विचार के लिए बहुत बड़ा विषय है, लेकिन आज हम उसमें से एक लेना चाहते हैं कि मनुष्यों को कितना खाना चाहिए।

मालूम होता है कि भोजन के सम्बन्ध में लोग बहुत प्राचीन समय से गलतियां करते चले आये हैं और इसीलिए प्रायः सभी भाषाओं में भोजन से होने वाली हानियों के सम्बन्ध में कहावतें पाई जाती हैं।

क्या शहरी क्या देहाती, सभी के मन में यह संस्कार जमा हुआ है कि जितना ज्यादा खाया जाय उतना ही ज्यादा फायदा है। बीमार पड़ने पर ही लोग यह परवाह करते हैं कि ज्यादा खाना हानिकर है और बहुत से तो तब भी नहीं करते; क्योंकि आज के डाक्टर, वैद्य बीमारी का सम्बन्ध खाने से प्रायः नहीं जोड़ते और वे खुद भी खाने के दलदल में फंसे होते हैं। खाने के सम्बन्ध में कहीं से लोगों को मार्ग-दर्शन नहीं मिलता। पेट में न समाए यह दूसरी बात है, लेकिन अगर समा सके तो लोग आज जितना खाते हैं, उससे दूना भी खाने लगेंगे। लोगों को यह मालूम नहीं है। यदि यह किसी से दरियाफ्त किया जाय, या खाने के बारे में किसी से सवालात पूछे जायं कि कितना खाना चाहिए, तो वह कहेगा—पेटभर अथवा जितनी भूख हो। यों साधारण दृष्टि से देखा जाय तो यह बात ठीक भी है। हम क्यों तराजू-बाट बांधे फिरें और तौलकर खाने की झंझट में पड़ें, जबकि कुदरत ने हमको एक पैमाना हमारे शरीर के अन्दर पेट की शक्ल में दे रखा है और दूसरा मापदंड भूख के रूप में। ये दोनों चीजें हम कितना खाना खायें यह बतला सकती हैं और करोड़ों को बतलाती भी हैं। मां के स्तनों में दूध मौजूद रहता है फिर भी बच्चा दूध पीना छोड़ देता है। लेकिन इस वक्त लोगों का यह पैमाना कुछ बिगड़ा जान पड़ता है और शहरवालों का तथा शिक्षित कहलाने वालों का और अधिक बिगड़ा मालूम होता है। यहां तो लोगों को यह मालूम नहीं है कि पेट लोहे की चादर से नहीं बना है, वह एक झिल्ली से बना है जो रबड़ की थैली की तरह फैलती भी है। जैसे सेरभर पानी भरनेवाली थैली में दबाकर भरने से दो सेर भी भरा जा सकता है, वैसे ही हमारे पेट की थैली में भी साधारण भोजन की अपेक्षा दूना मजे से भरा जा सकता है। कभी-कभी कई लोगों को साधारण मनुष्य की अपेक्षा अठगुनी-दसगुनी खुराक खाते देखा-सुना गया है और वह अन्य आदमियों से कोई लम्बे-चौड़े भी नहीं होते कि उनका पेट बड़ा हो। बस वह धीरे-धीरे ज्यादा खाते रहने की आदत डाल लेते हैं और अपना पेट बढ़ाते रहते हैं। जब उनके पेट की थैली फैल जाती है तो उसमें ज्यादा सामान भरे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता और प्रायः आदमियों के पेट की थैली का यही हिसाब है। इसलिए उतनी ही लम्बाई-चौड़ाई और काम के होते हुए भी कुछ लोग छः छटांक अनाज से काम चला लेते हैं और कुछ लोग बारह छटांक लेते हैं। अतः पेट भरे उतना खाना वाली बात में गलती होने की काफी गुंजाइश रहती है। यही भूख वाली बात उसमें भी गलती की बड़ी सम्भावना रहती है। थोड़ा-थोड़ा करके भूख को बढ़ाना-घटाना भी

जा सकता है। देखा भी जाता है कि सब परिस्थितियां और दशाएं समान होते हुए भी एक आदमी कम खाता है, दूसरा ज्यादा । भूख के बारे में एक कहावत है, **"जितना खाय उतनी भूख, जितना सोए उतनी नींद।"** इस पर किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए। सब अंशों में तो नहीं, लेकिन अनेक अंशों में यह कहावत ठीक है।

भोजन के सम्बन्ध में विस्तृत विचार करने का एक कारण और भी है। शारीरिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध तो भोजन से है ही। आज एक बड़ी समस्या भोजन की कमी की है। कहा जा रहा है कि जितना भोजन हमारे लिए जरूरी है उतना मुल्क में पैदा नहीं होता। ऐसी दशा में भोजन के सम्बन्ध में कुछ विस्तृत विचार करना अनावश्यक नहीं समझा जायगा। भोजन हमको स्वास्थ्य रखने के लिए है। यदि उसी भोजन के कारण हम बीमार पड़ जाते हों तो हमारे लिए यह सोचना जरूरी हो जाता है कि हम कहां गलती कर रहे हैं? भोजन विशेषज्ञों का कहना है कि दुनिया के आज के रोगों में भोजन की गलती मुख्य कारण है। अतः यदि स्वास्थ्य की दृष्टि से देखा जाय तो यह जानना और बारीकी से जानना जरूरी हो जाता है कि हम कितना खायें।

हमें भोजन के सम्बन्ध में यह जानना भी जरूरी है कि भोजन हमारे शरीर में काम कैसे आता है। विषय बड़ा है लेकिन में संक्षेप में बताने की कोशिश करूंगा। जो कुछ अन्न-पानी हम पेट में डालते हैं उसमें से शरीर अपनी आवश्यकतानुसार ले लेता है और बाकी बचे हुए को पाखाने-पेशाब की शक्ल में निकाल बाहर करता है। यदि हम शरीर की आवश्यकता से अधिक भोजन पेट में डाल लेते हैं तो वह उसमें से अपनी जरूरत से ज्यादा नहीं ले सकता। न हम पेट में ज्यादा डालकर उसकी जरूरत बढ़ा ही सकते हैं। पेट में ज्यादा भोजन डालने से उसकी जरूरत बढ़ नहीं, बल्कि कम हो जाती है। अगर शरीर में ज्यादा भोजन की आवश्यकता पैदा करनी हो तो उससे ज्यादा काम कराना होगा। इंजन में ज्यादा कोयला जलाना हो तो उसे ज्यादा चलाने की जरूरत है। यही बात शरीर के लिए भी लागू होती है। पर इंजन में तो आप उसे खड़ा रखकर भी चाहे जितना कोयला फूंक डाल सकते हैं। शरीर में यह बात संभव नहीं है। उसे आप बैठकर ज्यादा खिलायेंगे, यानी पेट में ज्यादा भरेंगे तो उसके सब कल-पुर्जे ढीले पड़ जायंगे। इसलिए पैसावालों को मंदाग्नि की अथवा तरह-तरह की शिकायतें बनी रहती हैं; क्योंकि वे शरीर से मेहनत तो करते नहीं और पेट में डालते ज्यादा हैं। ज्यादा के माने सिर्फ तौल में ही ज्यादा नहीं समझना चाहिए। प्रायः तो कुदरत यह करती है कि जरूरत भर का लेकर बाकी को समय पर बाहर फेंक देती है लेकिन बहुत दिनों तक वह यह काम नहीं कर पाती। जैसे किसी घोड़े पर बराबर आवश्यकता से अधिक बोझ लादा जाय तो कुछ समय के बाद उसकी कमर टूट जाती है, वैसे ही मनुष्य का शरीर भी अधिक खूराक का जुल्म अधिक दिनों नहीं सह सकता। यदि पेट को जरूरत से कम दिया जाय तो भी उसे हानि होगी। इसलिए उचित यही है कि न ज्यादा दिया जाय, न कम। कुछ लोगों ने भोजन के सम्बन्ध में एक कहावत कही है, **"पेट भरैके तीनै कोन"** जिसका मतलब है कि जितनी भूख है उससे आधा तो अन्न खाओ, एक हिस्सा पानी से भरो और एक हिस्सा खाली रक्खो, हवा के आने-जाने के लिए यानी भूख से कम खाओ।

मनुष्य के मन में यह बड़ा वहम है कि ताकत सिर्फ भोजन से मिलती है। भोजन से ताकत पाने का सम्बन्ध तो है, लेकिन सिर्फ भोजन से ही नहीं। आप किसी मनुष्य को कई दिन खूराक न दें तो उसकी ताकत इतनी न टूटेगी जितनी कि न सोने से टूट जायगी। ताकत आराम से भी मिलती है। सोने से शरीर को पूरा आराम मिलता है। हमें इस रहस्य को जानना चाहिए। जो लोग इन रहस्यों को जानते हैं वे कम खाकर भी जिन्दगी आराम से गुजारते हैं। न जानने वाले ज्यादा खाते हुए भी दुःख भोगते रहते हैं। जिन्हें ज्यादा खाने का शौक ही हो उन्हें चाहिए कि वे शरीर से ज्यादा काम करायें। याद रहे कि मैं शरीर से कह रहा हूं, दिमाग से नहीं!

पढ़े-लिखे लोगों का खयाल है कि दिमाग से काम करनेवालों को कुछ अच्छा खाना मिलना चाहिए। वे कहते हैं कि दिमागवालों को बढ़िया खूराक जैसे घी, दूध, मक्खन, मलाई, बादाम वगैरह मिलने चाहिए। पर

ये बातें उन्हीं दिमाग से काम लेनेवालों की एक दिमागी उपज हैं। कोई भोजन ऐसा नहीं जो सीधे दिमाग बनाता हो। यह तो दिमागवालों ने अपने लिए उम्दा खाने का एक रास्ता निकाला है। अच्छा और कुछ अधिक भोजन तो उसीको मिलना चाहिए जो शरीर से अधिक श्रम करता हो। यह देखा जाता है कि जो लोग बैठे-बैठे बढ़िया खाने खाते हैं, वे अधिकतर रोगी ही बने रहते हैं। शरीर भी उनका बेडौल बन जाता है। आरामतलब तो बीमार पड़ता है और मेहनती का शरीर टूटता जाता है। अगर सरकार को भोजन के किसी क्षेत्र में बीच में पड़ने की जरूरत हो तो यही है। उसे चाहिए कि ऐसी व्यवस्था करने की कोशिश करे कि यह स्थिति उलट जाय। इससे आरामतलब और मेहनती दोनों को लाभ होगा।

भोजन के सम्बन्ध में जब आप यह पूछते हैं कि कितना खाना चाहिए तो मुझे आप से यह पूछने की जरूरत होगी कि आप कौन-सी वस्तु खाना चाहते हैं? "एक चीज तोल में पाव भर भी खाकर उतना ही काम करेगी जितना कि दूसरी चीज सेर भर खाकर"—इसे आप इंजन के उदाहरण से समझें। इंजन में लकड़ी भी जलाई जा सकती है और कोयला भी। लकड़ी चार मन जले, कोयला एक मन। काम बराबर होगा। अगर लकड़ी हल्की हुई तो चार के बजाय पांच मन में भी उतना ही काम होगा। इस दृष्टि से आपको देखना होगा कि आप क्या और कितना खाते हैं। बहुत लोग या कहा जाय कि अधिकांश लोग इस भेद को नहीं जानते और खाने की गलत मिकदार के कारण बीमार पड़ जाते हैं। कुछ लोगों के मन में कुछ चीजों के बारे में संस्कार जमे हुए हैं कि भोजन की ये सबसे बढ़िया चीजें हैं और इन्हें खूब खाना, खिलाना चाहिए, जितनी मिल सकें उतनी। और इसी सिद्धांत के अनुसार हमारे भारत के प्रधान मंत्री की मां स्वर्गीय स्वरूपरानीजी श्री जवाहरलालजी को कमरा बन्द करके लड्डू खिलाती थीं! बहुत-सी माताएं इस तरह की गलतियां करती रहती हैं। यह खयाल कि आटे, चीनी, घी में शरीर के लिए पूरा पोषण मौजूद है, गलत है।

कितना खाना चाहिए, यह सही-सही बतलाने के लिए क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, यह विषय आपके सामने आता है। पर एक बार हम उसको छोड़ेंगे। भोजन पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करनेवालों ने मोटे तौर पर एक तरीका निकाला है जिसे वे कैलोरी के नाम से पुकारते हैं। हिन्दीवालों ने उसका तर्जुमा 'उष्मांक' किया है। उसे आप स्थूल रूप में यों समझें। जैसे एक गाय को कितना चारा-दाना देना चाहिए, यह हम इस बात से अन्दाज करते हैं कि वह कितनी बड़ी है और कितना दूध देती है। अगर दूध ज्यादा देनेवाली है तो उसे उष्मांक अधिक चाहिए। इसी तरह बढ़नेवाले बच्चों को उनकी उमर के हिसाब से उष्मांक चाहिए। काम करनेवाले मजदूरों को उनकी मेहनत के हिसाब से उष्मांक चाहिए। टेबुल या गद्दी पर बैठ कर काम करने वाले बाबू या सेठ को उसके हल्के काम के अनुसार कम उष्मांक चाहिए। नीचे हम यह बता रहे हैं कि किस तरह के परिश्रम करने वालों को कितने उष्मांक चाहिए। आप मौसम के हिसाब से भी उष्मांक में कुछ कम-बेशी कर सकते हैं। जैसे गरमी में पांच सेर पानी को उबाला जाय तो वह एक सेर लकड़ी में होगा तो जाड़े में सवा सेर लकड़ी लगेगी, इसी तरह ठंडी आबहवा में कुछ अधिक उष्मांक लग सकते हैं। गर्भवती और दूध पिलाने वाली मां को भी कुछ अधिक उष्मांक लग सकते हैं। अब यहां सवाल यह पैदा होगा कि हम कैसे जानें कि किस वस्तु में कितने उष्मांक हैं। यह भी कुछ गहन विषय है। सिर्फ किसी नाम विशेष से पुकारे जाने वाली चीज में एकसे उष्मांक नहीं मिलेंगे। वह चीज कैसी धरती में, कैसी खाद देकर और कैसे बीज से पैदा की गई है इत्यादि बातों पर निर्भर होगा। पर यह बताना और जानना आसान नहीं है। आरोग्य-मंदिर में 'आदर्श-आहार' नाम की एक पुस्तक छपी है और केन्द्रीय सरकार की ओर से एक अंग्रेजी बुलेटिन छपा है, जिसे बुलेटिन नं० २३ कहते हैं। उसमें खाने वाली अनेक वस्तुओं के ढाई तोले वजन के उष्मांक दिए हैं। ये दोनों पुस्तकें अपनी मेहनत के हिसाब से खाने लिए उष्मांक निर्णय करने में सहायक हो सकती हैं। उष्मांक के बारे में एक बात और बता दूं कि उष्मांक काम के हिसाब से तो है ही, उमर, लंबाई और स्त्री-पुरुष भेद के हिसाब से भी

है। लेकिन यहां हम फिर क्या खाना चाहिए पर आ जाते हैं। मान लीजिए कि आपके काम, ढांचे उम्र आदि के हिसाब से अठारह सौ उष्णांकों की जरूरत है तो यह आपको चौबीस तोला बादाम की गिरी में अथवा आध सेर गेहूं में मिल जायगा अथवा ढाई सेर दूधमें। लेकिन क्या केवल ये चीजें खाकर काम चल सकता है? उष्णांक के साथ भोजन के अन्य तत्वों का विचार करना भी आवश्यक है। वह इस दृष्टि से कि हमारा यह शरीर जिन तत्वों से निर्मित हुआ है वे सब हमको उस खूराक से मिलने चाहिए। जैसे एक इमारत में ईंट, चूना, गारा, सीमेंट, लोहा, लकड़ी ये सब चीजें मिलाकर हजार मन लगी हैं। कोई कहे कि सिर्फ हजार मन लोहा लेकर इमारत खड़ी की जा सकती है, तो वह गलत होगा, वैसे ही केवल एक चीज से पूरे उष्णांक प्राप्त करना गलत होगा।

हमारे शरीर में कौन तत्व कितने-कितने हैं और किस खूराक में उनकी मात्रा कितनी है इसके लिए एक अलग लेख चाहिए।

प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा के डा० केलाग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'न्यू डाइ-टैटिक्स' में सात तरह के पेशवरोंके लिए, जिनका वजन पौने दो मन के लगभग है, केलरियों का नीचे लिखा हिसाब बताया है: दफ्तरी २४८०, मोची २५१०, ठठेरा २९००, रंगसाज २९५०, बढ़ई ३१०० गिट्टी तोड़ने वाला ४२००, आराकश (लकड़ी चीरने वाला) ४८००।

साथ के खाके में ऊंचाई और वजन के हिसाब से मनुष्य के शरीर की उस दशा के लिए केलोरियां बतलाई गई है, जबकि वह बिलकुल आराम कर रहा हो—

ऊंचाई इंच	तौल पौंडों में																
	५५	६६	७७	८८	९९	११०	१२१	१३२	१४३	१५४	१६५	१७६	१८७	१९८	२०९	२२०	२३१
८०	—	—	—	—	—	—	१७३५	१८०१	१८५८	१९१४	१९७१	२०२७	२०८४	२१३१	२१७८	२२२५	२२७३
७८	—	—	—	—	—	१६३१	१६९७	१७६३	१८२०	१८७७	१९३३	१९९०	२०४६	२०९३	२१४१	२१८८	२२३५
७६	—	—	—	१४७१	१५३७	१६०३	१६६९	१७३५	१७९२	१८४८	१९०५	१९६१	२००९	२०५६	२१०३	२१५०	२१९७
७४	—	—	—	१४४३	१५०९	१५७५	१६४१	१६९७	१७५४	१८११	१८६७	१९२४	१९७१	२०१८	२०६५	२११२	२१५९
७२	—	—	—	१४०५	१४८१	१५४७	१६१३	१६६९	१७२६	१७८२	१८३९	१८८६	१९३३	१९८०	२०२७	२०७५	२१२२
७०	११२२	१२०७	१२८२	१३७७	१४४३	१५०९	१५७५	१६३१	१६८८	१७४५	१८०१	१८४८	१८९५	१९४३	१९९०	२०३७	२०८४
६८	११०३	११८८	१२६३	१३४८	१४१४	१४८०	१५३७	१५९४	१६५०	१७०७	१७५४	१८०१	१८४८	१८९५	१९४३	१९९०	—
६६	१०७५	११६०	१२३५	१३२०	१३८६	१४५२	१५०९	१५६५	१६२२	१६७९	१७२६	१७७३	१८२०	१८६७	१९१४	१९५२	—
६४	१०५६	११४१	१२१६	१२९२	१३५८	१४१४	१४७१	१५२८	१५८४	१६३१	१६७९	१७२६	१७७३	१८२०	१८६७	—	—
६२	१०२८	१११३	११८८	१२५४	१३२०	१३७७	१४३३	१४९०	१५४७	१५९४	१६४१	१६८८	१७३५	१७८२	—	—	—
६०	१०००	१०८४	११६०	१२२६	१२८२	१३३९	१३९६	१४५२	१५०९	१५५६	१६०३	१६५०	१६९७	—	—	—	—
५८	९७१	१०५६	११३१	११९८	१२५४	१३११	१३६७	१४२४	१४७२	१५१८	१५६५	१६१३	—	—	—	—	—
५६	९४३	१०२८	११०३	११६९	१२२६	१२८२	१३३९	१३८६	१४३३	१४८१	—	—	—	—	—	—	—
५४	९१५	१०००	१०७५	११३२	११८८	१२४५	१३०१	१३४८	१३९५	—	—	—	—	—	—	—	—
५२	८९६	९८१	१०४७	११०३	११६०	१२१६	१२७३	१३२०	—	—	—	—	—	—	—	—	—
५०	८७७	९५२	१०१८	१०७५	११३२	११८८	१२३५	१२८२	—	—	—	—	—	—	—	—	—
४८	८५८	९२४	९८१	१०३७	१०९४	११५०	११९७	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—

डाक्टरों का जमघट

डाक्टर ने आकर मरीज की परीक्षा की। परन्तु मर्ज समझ में न आया। तब एक और डाक्टर बुलाया गया।

इस प्रकार एक से हुए दो डाक्टर।

दोनों डाक्टरों में हुआ मतभेद। तब उन्होंने परामर्श के लिए एक और डाक्टर बुलाया।

यों हुए दो से तीन।

तीनों डाक्टरों ने रोगी को जांचा और तय किया एक और विशेषज्ञ आना चाहिए।

तीन से हुए चार।

चारों डाक्टरों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि रोगी अब भी जिन्दा है और तब पांचवां डाक्टर आया, नली के जरिये मरीज को भोजन देने के लिए।

चार से हुए पांच।

पांचों डाक्टरों ने अपना करतब दिखाया और फिर एक आदमी और बुलाया एक्सरे द्वारा मरीज की परीक्षा करने के लिए।

यों पांच से हुए छ।

छहों डाक्टरों ने मरीज का स्वांपात भेजने की तैयारी की और एक और डाक्टर बुलाया इसलिए कि अब क्या किया जाय।

छ से हुए सात।

सातों ने मिलकर निश्चय किया कि आपरेशन की जरूरत है और तब एक सर्जन बुलवाया गया।

सात से हुए आठ।

आठों डाक्टरों ने देखा कि गड़बड़ी अगर कुछ है तो मरीज की रीढ़ में ही है। इसलिए एक स्नायु विशेषज्ञ की सहायता चाही।

आठ से हुए नौ।

मगर वे नौ-के-नौ डाक्टर थे पुरुष। इसलिए उन्होंने बुलवाई एक डाक्टरनी।

नौ से हुए दस।

और तब दसों डाक्टर मरीज की चारपाई को घेरकर खड़े हो गये और इस परिणाम पर पहुंचे कि रोगी का तो दम ही निकल चुका है।

('माडर्न टाइम्स' से)

कुदरती इलाज

आचार्य विनोबा

बाहर से मनुष्य के शरीर को वैद्य तबतक ही मदद दे सकता है जबतक शरीर में ताकत बची हुई होती है। अगर शरीर की ताकत खतम हो जाती है तो वैद्य कुछ नहीं कर सकता। इसलिए हमारा काम यह है कि शरीर का आरोग्य हम अच्छा रखें। उसके लिए हमें गांधीजी ने बताया है कि कुदरती इलाज पर आधार रखो। सूर्य-प्रकाश, पानी, मिट्टी आदि से रोग अच्छे करना सीख लेना चाहिए। आजकल तो लोग कहते हैं कि हर गांव में एक दवाखाना हो। अभी तक वैसा नहीं हुआ है, यह परमेश्वर की कृपा है। अगर ये लोग ही गांव में दवाखाना खोल सकें तो गांव का पैसा दवाखाने के निमित्त से बाहर जायगा और रोग दस गुना बढ़ेंगे। जरा कहीं कुछ हुआ कि हम दवाखाने में दौड़ेंगे, और यह समझ लो कि एक दफा वैद्य अगर घर में आ जाता है तो फिर वह घर नहीं छोड़ता। कुछ लोग कहते हैं कि फलाना डाक्टर हमारा फैमिली-डाक्टर है। याने घर में जैसे माता-पिता होते हैं वैसे वह डाक्टर भी घर का ही एक हिस्सा बन गया है। इस तरह हर बात में अगर हम गुलाम बनने जायंगे तो फिर स्वराज्य काहे का?

अमृतान्न और पूर्णान्न

डा० आत्माराम कृष्ण भागवत

सारे संसार का हरएक व्यक्ति चाहे वह धनी हो या निर्धन, जवान हो या बूढ़ा, मर्द हो या औरत, कम-से-कम श्रम में अधिक-से-अधिक सुख और आराम के लिए पैसा कमाने की कोशिश करता है। लेकिन किसी के घर में पूरे तौर से मानसिक शान्ति, शारीरिक आरोग्य और साम्पत्तिक दृष्टि से तृप्ति हुई हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। समय-समय पर कौटुम्बिक व्यक्तियों में किसी-न-किसी विषय पर वैषम्य पैदा होकर गृह-कलह का रूप सामने आ जाता है। हरएक घर के बच्चों में, जवानों में या बुड्ढों में, किसी-न-किसी समय पर कुछ-न-कुछ रोग होता ही है। कितनी ही सम्पत्ति या पैसा अथवा सामाजिक या राजकीय ऊंचा दर्जा प्राप्त होने पर भी अशांति बनी रहती है। सच यह है कि हम लोग जीने की कला नहीं जानते और अनेक रोगों को स्वयं ही आमन्त्रित करते हैं।

राजकीय, सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्र में पाश्चात्य राष्ट्रों में जो कुछ उन्नति दिखाई देती है और जिसका अन्धानुकरण भारतवासी विशेषकर सुशिक्षित लोग कर रहे हैं, उसका नतीजा भविष्य में क्या होने वाला है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। पाश्चात्य जीवन का यह नारा आज तेजी से बुलन्द होता जा रहा है—"कम-से-कम श्रम में ज्यादा-से-ज्यादा पैसा कमाना और पैसे के द्वारा भोग-विलास की पराकाष्ठा।" उच्च-से-उच्च दर्जे का जीवन और कम-से-कम श्रम इस नारे पर जब राष्ट्र में अमल करने की बात आवेगी तो उस पर उत्साहपूर्वक अमल करने के लिए कितने लोग तैयार होंगे? सच यह है कि जितना अधिक मिलता है उससे भी अधिक पाने की इच्छा होती है। फिर यह अभिलाषा किन साधनों से पूरी हो, यही समस्या आज सभी राष्ट्रों के सामने उपस्थित है। लेकिन उनको अबतक कोई रास्ता नहीं मिल सका। उनकी दृष्टि भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं। इन सब समस्याओं का हल सूत्ररूप में हमें गीता में दिखाई देता है। स्वास्थ्य के हर पहलू पर विचार करते हुए गीता के सत्रहवें अध्याय में कहा गया है—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

भावार्थ यह है कि जो मानव जीवन-रस-युक्त अमृत की तरह कंद-मूल-फल, साग-सब्जी और तेल-युक्त तिलहन या मूंगफली, नारियल, तिल, आदि और अंकुर-युक्त धान, दाल आदि पौष्टिक चीजें भोजन में इस्तेमाल करता है, उसकी निश्चित रूप से उम्र बढ़ती है, सात्त्विक वृत्ति बढ़ती है, शारीरिक बल बढ़ता है, आरोग्य बढ़ता है, सब तरह का सुख बढ़ता है और जिस-जिस व्यक्ति के सम्पर्क में वह आता है उस पर उसका प्रेम भी बढ़ता है। ऐसे व्यक्ति के पास कलह, रोग और दारिद्र्य कैसे फटक सकते हैं?

इस लेख में हम केवल इस बात पर विचार करेंगे कि वर्तमान परिस्थिति में देहाती या शहरी लोगों को जीवन-प्रदायक आहार कैसे मिल सकता है?

रसदार चीजों में सब किस्म की साग-भाजी सब तरह के खट्टे-मीठे ताजे पके फल, गन्ना आदि चीजें आती हैं। स्निग्ध अर्थात् चिकनाई वाली चीजों में सब प्रकार के तिल, मूंगफली, नारियल, बादाम, पिस्ते, काजू आदि आते हैं। स्थिर अन्न में अंकुरित किये हुए सब तरह के बिना पालिश किये चावल, गेहूं, ज्वार, बाजरा, मकई आदि अनाज; चना, मूंग आदि द्विदल; दल, आलू, कचालू, कंद, शकरकंद आदि कंद आते हैं, लेकिन ये सब चीजें खाने में स्वादिष्ट, तृप्ति देनेवाली और मौसम के अनुकूल इस्तेमाल करनी चाहिए।

वैसे साधारणतया यही सब चीजें हरएक कुटुम्ब में इस्तेमाल की जाती हैं। लेकिन जिस रूप में उनका

उपयोग किया जाता है, उससे बजाय लाभ के हानि ही होती है।

इन प्राकृतिक चीजों का प्रयोग करते समय उनमें मिर्च, खटाई, नमक आदि मसाले व गुड़-शक्कर डालकर बिगड़े रूप में इस्तेमाल करते हैं। फलतः उनसे तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं।

मेरे विचार से दो प्रकार के भोजन से मनुष्य स्वस्थ और दीर्घ-जीवी हो सकता है (१) अमृतान्न, जिसके लिए अग्नि की जरूरत नहीं होती, (२) पूर्णान्न, जो अमृतान्न को सिर्फ भाप पर या मंदी आग पर पकाकर बनाया जाता है।

अमृतान्न और उसके प्रकार

अमृतान्न में साग-सब्जी, जिसमें हरी पत्तीवाली सब्जी, मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर आदि सभी प्रकार के पत्तीवाले साग शामिल होते हैं, काम में लाई जाती हैं। आलू, शकरकन्द, जमीकन्द, अरवी, कचालू, सिंघाड़ा आदि चीजें उबालने से ही खाने योग्य होती हैं। अंकुरित अनाज, छिलके दाल, तिलहन आदि चीजें इकट्ठी मिला देने से एक पंचामृत रूपी पौष्टिक आहार बन जाता है। खट्टे या मीठे रस और गूदेदार फल और मेवे में इस्तेमाल के लिए अमृत रूप में शक्कर सुरक्षित होती है। ये चीजें आसानी से पैदा की जा सकती हैं और मौसम के अनुसार उनको इस्तेमाल करके उनसे लाभ उठाया जा सकता है।

पूर्णान्न तैयार करने का तरीका

पूर्णान्न खिचड़ी—एक बर्तन में नीचे अंकुरित अनाज तीन भाग, अंकुरित दाल एक भाग, अंकुरित मूंगफली, या तिल या नारियल मिलाकर या एक ही चीज एक भाग डालकर उसमें उतना ही पानी डालना और ऊपर कन्द जात की अलग-अलग सब्जी काटकर मिलाकर खिचड़ी में ही डालकर भाप पर एक से डेढ़ घंटे तक उबालना। बर्तन नीचे उतार कर प्रथम सब्जी ऊपर से अलग निकाल कर पहले नीचे की खिचड़ी खाना, पीछे सब्जी। शुरू शुरू में थोड़ा नमक, धनिया, हल्दी या जीरा आदि कच्चा मसाला प्रयोग कर सकते हैं। आदत पड़ जाने पर मसाले छोड़े जा सकते हैं।

पूर्णान्न रोटी—जिस प्रदेश में रोटी के लिए जो आटा मिलता हो, मोटा पीसकर और मौसम के अनुसार मिलने वाली साग पत्ती को बारीक कतर कर आटे में गूंध सकते हैं। उसमें अंकुरित दाल, तिलहन, नारियल आदि इमामदस्ते या सिल पर बारीक करके मिलावें। आरम्भ में थोड़ा कच्चा मसाला और नमक-मिर्च भी डाल सकते हैं। आटा गूंधकर एक थाली में थोड़ा घी या तेल लगाकर उस पर आधा इंच से एक इंच तक मुटाई में फैलाकर और फिर दूसरी थाली उसी आकार की लेकर उसमें बाहर से तेल या घी लगाकर पहली थाली पर दबाना जिससे दोनों थाली अच्छी तरह से आटे से मिल जाय और बीच की हवा बाहर निकल जाय। इस तरह जितनी रोटी चाहिए उतनी थालियां तैयार करके एक बड़े बर्तन में २ इंच तक पानी डालकर उसमें उतनी ऊंची एक टिन पर थालियां रख देना। हर थाली की कोर में आधा इंच अन्तर रहे। फिर कोई भी ढक्कन को टिन रखकर बड़े बर्तन पर ढक्कन इस प्रकार रख देना कि अन्दर हवा न जा सके। एक घंटे तक उसे उबालना। तैयार होने पर छुरी से काट कर ठंडी होने पर भोजन में परोसना और खूब चबा-चबा कर खाना। उसके साथ किसी भी साग की आवश्यकता नहीं रहती। उसी आटे में नमक, मसाले की जगह गुड़ डालने से मीठा पूर्णान्न बन जाता है।

प्रकृति की शरण में जाने के बाद से जब कभी मैंने अपने स्वास्थ्य और उसकी खुशहालता के लिए सच्चा उपाय जानने की कोशिश की है तब हर बार मैंने देखा है कि वे उपाय सर्वथा प्राकृतिक होते हैं अर्थात् जो कुछ जब कभी मैंने प्रकृति से जाना है उसकी परीक्षा करने पर यह पूर्णतया सत्य साबित हुआ है। जब प्रकृति के नियमानुकूल सभी कार्य किये जाते हैं तब उन कार्यों की सफलता की जाँच स्वयं है। —एडोल्फ जुस्ट

डाक्टरों की दुनिया

श्री त्रिस्ताँ वेर्नार

एक दिन मेरे एक पुराने दोस्त मुझसे मिलने आए। उनके शरीर में जो क्रान्ति हो गई थी अुसके कारण में उन्हें सहसा पहचान भी न सका। उनका वह मोटा-ताजा, वादी से फूला हुआ जिस्म देखकर मैंने कहा, "दोस्त, पतला होने की कोशिश तुम क्यों नहीं करते?"

"बहुत कोशिश की भैया! खाना-पीना कम करके देखा, काफी वर्जिश मेहनत कर देखी, फिर भी कोई फायदा नहीं हुआ। अब तुम ही कोई इलाज बताओ।" उदास स्वर में मेरे दोस्त बोले।

"अच्छी बात है"—कहकर मैंने उन्हें डाक्टर सेन का पता बताया। डाक्टर सेन मुटापा दूर करने में निष्णात थे। उन्होंने मेरे दोस्त को सुबह-शाम टहलना बताया और कुछ कड़वी-मीठी दवाएं भी दीं।

लगभग एक महीने के बाद मेरे दोस्त मेरे पास आए। उन्हें देखकर मैं बोला, "मित्र, तुम्हारा वात-रोग तो बिल्कुल चला गया मालूम होता है।"

"हां भैया, लेकिन तुम्हारे जीने की सीढ़ियां मैं बड़ी मुश्किल से चढ़ सका। बहुत ज्यादा चलने से मेरे टखनों में बेहद दर्द हो रहा है।"

"ऐसी बात है? तो फिर तुम डाक्टर खन्ना के पास जाओ। वे बहुत जल्द तुम्हारे टखनों का दर्द दूर कर देंगे।" मैंने उन्हें डाक्टर खन्ना का पता बता दिया। डाक्टर खन्ना ने उन्हें हर रोज चार घंटे तक पांवों पर कीचड़ लगाकर बैठने को कहा। मेरे दोस्त ने दिल लगाकर यह कार्यक्रम दो महीने तक चलाया और आश्चर्य की बात कि उनके टखने बिल्कुल ठीक हो गये और मेरे दोस्त ने बड़ी खुशी से मुझे वह खबर दी। लेकिन उनकी बैठी हुई आवाज़ सुन कर मैंने पूछा "दोस्त, यह तुम्हारी आवाज़ कैसे बैठ गई?"

"वही तो तुम्हें बताने आया हूं, भैया। लगातार दो महीनों तक गीला कीचड़ पैरों पर रखने से मेरा गला बिल्कुल बैठ गया है।"

मैंने उन्हें तुरन्त डाक्टर सिंह के पास भेज दिया। प्रोफेसर होने की वजह से दोस्त को गले के साथ हर वक्त काम पड़ता था।

डाक्टर सिंह बड़े तजुरबेकार थे। उन्होंने यह देख लिया था कि गले में रक्त का प्रवाह ठीक ढंग से न होने के कारण गला खराब हो जाता है। इसलिए वे बीमारों को बिजली के झटके दिया करते थे। चार महीने तक मेरे दोस्त ने डाक्टर सिंह से इलाज करवाया।

उसके बाद वह चिल्लाते हुए मेरे पास आए। उसके गले में कोई खामी अब नहीं रही थी; लेकिन साथ ही उनके शरीर की ताक़त भी निकल गई थी। बिजली के झटकों से उनकी नसों पर बहुत बुरा असर पड़ा था। वह हालत देखकर मैं उन्हें तुरन्त डाक्टर खरे के पास ले गया। उन्होंने दोस्त को देख-भाल कर दवा दी। उस दवा से मेरे दोस्त की नसें चार महीने में ठीक हो गईं; लेकिन दवा से उसकी पाचनशक्ति पर बुरा असर पड़ा और उनका पेट खराब हो गया। तब मैं उन्हें डाक्टर गुप्ता के पास ले गया। डाक्टर गुप्ता ने उन्हें दूध और फल खानेको कहा और कुछ दवाएं भी दीं।

पंद्रह रोज़ बाद दोस्त मुझे धन्यवाद देने के लिए आए तो उनका मोटा-ताजा और वादी से फूला हुआ जिस्म देखकर मैं उन्हें पहचान भी न सका। मुझे उनपर रहम आया और मैं बोला, "तुम्हारी बात इसी तरह बढ़ती गई तो तुम्हारे दिल पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। इसलिए तुम्हें इसका इलाज करना ही होगा।"

"नहीं भैया, अब मुझे माफ करो। जो कुछ है सो ठीक ही है। वरना फिर से मेरे टखने दर्द करने लगेंगे, फिर गला खराब होगा, फिर नसें कमजोर होंगी और वह चक्कर चलता ही रहेगा।"

"अच्छा, इस बार हम डाक्टर सेन के पास न जाकर डाक्टर बोस के पास चलें।" मैंने कहा और अपने दोस्त को लेकर डाक्टर बोस के पास चला गया। डाक्टर बोस ने उन्हें घुड़सवारी करने की सलाह दी और कौनसे समय किस रफ्तार से घोड़ा दौड़ाना चाहिए, कितनी देर तक घुड़सवारी करनी चाहिए आदि सारी बातें तफसील के साथ समझाईं।

आठ ही दिनमें बीमार का वज़न घट गया; क्योंकि दूसरे ही रोज़ वह घोड़े पर से गिर गया और उसकी एक टांग कुचल गई, जिसे काट टालना पड़ा।

बेचारा दोस्त!

अनु०—श्रीपाद जोशी

वायु और आरोग्य

डा० कुलरंजन मुखर्जी

: १ :

वायु को हमारे शास्त्रों में 'प्राण' संज्ञा दी गई है। फलतः जब हमारे शरीर में वायु की क्रिया बन्द हो जाती है तब हमारी मृत्यु हो जाती है। वायु में से हम जो ओषजन् ग्रहण करते हैं वही हमारे शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न करता है। यह ताप न रहे तो हम बच नहीं सकते। जब आदमी मर जाता है तब उसके शरीर में यह ताप नहीं रहता। चूल्हा जलाने के लिये जिस तरह क्षण-क्षण ओषजन् का प्रयोजन है, हमारे शरीर को भी उसी तरह ओषजन् की आहुति की आवश्यकता है। ओषजन् के बिना बत्ती या चूल्हा जल नहीं सकता। वायु के बिना भी हम उसी तरह दो एक मिनट से अधिक नहीं रह सकते। इसी कारण वायु को 'प्राण' कहते हैं।

हम लोग वायु ग्रहण करते हैं अथवा सांस लेते हैं प्रधानतः ओषजन् संचित करने के लिए ही। देह के भीतर गये हुए खाद्य के साथ मिल कर ओषजन् उसे दग्ध करता है। खाद्य ओषजन् की अग्नि द्वारा दग्ध न होने पर शरीर के लिए ग्रहण करने योग्य नहीं होता। इसीलिए विटामिन आदि की तरह ही वायु भी एक प्रधान खाद्य है।

वायु का यह उपकार हम उसे सांस के साथ लेकर पाते हैं। देह में वायु के स्पर्श से भी यथेष्ट लाभ होता है। नग्न चर्म पर वायु का स्पर्श वायु-स्नान (Air-bath) कहलाता है। वायु-स्नान का पहला और प्रधान लाभ यही होता है कि यह भूख बढ़ाता है। जब हम मुक्त वायु का त्याग कर बन्द कमरे में रहने लगते हैं तब हमारी भूख कम हो जाती है। फिर जब हम गांवों में जाकर वहां की मुक्त वायु में घूम-फिर कर आते हैं तब हमारी जठराग्नि तेज हो जाती है। जंगल में भूख बढ़ाने का एक प्रधान उपाय खुली हवा में टहलना है।

ठंडी हवा के स्पर्श से देह के स्नायु जैसे स्वस्थ, सबल और उद्दीप्त हो उठते हैं वैसे और किसी उपाय से नहीं हो सकते। स्नायुसमूह ही हमारे शरीर का राजा है। स्नायु के द्वारा ही हमारे शरीर के सभी यंत्र परिचालित होते हैं। जिस समय ठंडी हवा के स्पर्श से स्नायु-समूह उद्दीप्त लाभ करता है उस समय समस्त शरीर का काम अच्छी तरह से चलने लगता है।

वायु-स्नान करने के फलस्वरूप स्नायु-समूह के शान्त हो जाने से मस्तिष्क-शक्ति को भी लाभ पहुंचता है। अनेक आदमी अपनी जटिल समस्याओं के समाधान के लिए निर्जन स्थान में भ्रमण करते हैं। इससे अपने आप ही मन में उस समस्या का हल जग उठता है। अमेरिका में एक साहित्यिक हुआ है। उसने बहुत-सी किताबें लिखी हैं। वह जंगल में घूमते-घूमते ही अपनी कहानियों की सूक्ष्मतम ग्रन्थियों का सुलझाव सोच लेता था। उसके बाद अपने पाठागार में लौटकर आश्चर्यमय शीघ्रता से वह अपनी कहानियों को पूरी कर डालता था।

देखा गया है कि वायु-स्नान ग्रहण करने से थाइरोइड (Thyroid) और एड्रिनल (Adrenal) ग्रंथियों का स्राव बढ़ जाता है। उसके फलस्वरूप देह के विभिन्न यंत्र उद्दीप्त लाभ करते हैं। इससे बुढ़ापा दूर होती है और देह की रोग प्रतिरोध-क्षमता बढ़ती है।

मुक्त वायु ग्रहण करने के फलस्वरूप देह में जो ओषजन् प्रविष्ट होता है, वह देह के विष को दग्ध कर डालता है। हम लोगों को कोई भी रोग क्यों न हो, देह में संचित विषाक्त और दूषित पदार्थ ही उसके मूल कारण हैं। देह में दूषित संचित पदार्थ जब दग्ध हो जाते हैं तब सभी रोग अच्छे हो जाते हैं। इसी कारण स्वास्थ्य रक्षा और रोग को दूर करने के काम में वायु एक अनमोल पदार्थ है।

: २ :

आजकल यूरोप के विभिन्न स्थानों में क्षयरोग की बीमारी से ग्रसित रोगियों को खुली हवा में रखा जाता

गर्मी के दिनों में रोगी को जितना अच्छा लगे केवल उतना ही कपड़ा उसके शरीर पर रखना उचित है, किंतु मेघाच्छन्न दिनों में अथवा तेज हवा चलती हो तब, रोगी को घर के भीतर इस तरह से रखना चाहिए कि उसके कमरे में यथेष्ट हवा का प्रवेश होता रहे, परन्तु रोगी के शरीर में उसका झोंका न लगने पाये। यदि तेज हवा न हो तो वर्षा के दिनों में भी रोग गले तक कपड़ा लपेट कर रोगी को कुछ देर के लिए बाहर रखा जा सकता है।

पुराने रोग में धीरे-धीरे वायु-स्नान का अभ्यस्त होना आवश्यक है। पहले-पहल थोड़ी देर तक खुली हवा में रह कर क्रमशः समय और वायु-स्नान की तीव्रता की वृद्धि करना चाहिए। अन्त में स्नान ग्रहण करते-करते चर्म का स्वास्थ्य इस तरह से उन्नत हो जाता है कि सर्दी लगने से किसी तरह का अनिष्ट नहीं होने पाता।

शुरू-शुरू में अथवा ठंडक के दिनों में वायु-स्नान करने के समय देह को सर्वदा तप्त एवं देह के भीतर खून को सचालित अवस्था में रखना आवश्यक है। ऐसे समय यदि जाड़ा लगे अथवा शरीर ठंडा हो जाय तो अविलम्ब जल्दी-जल्दी देह को हाथों से मलना चाहिए। इसे सूखा घर्षण (Dry Friction) कहते हैं। इस तरह घर्षण करने से खूब ठंडी हवा में भी ठंड नहीं लगती अथवा उस ठंडी वायु से भी शरीर को नुकसान नहीं पहुँचता। धूप में टहल कर, दौड़-धूप कर भी वायु-स्नान किया जा सकता है। वायु जितनी ठंडी हो उतनी ही दौड़-धूप करना आवश्यक है। लड़के जिस समय बाहर जाकर फुटबाल आदि खेलते हैं उस समय भी कपड़े उतार कर खुले शरीर खेल-कूद से बहुत लाभ होता है। किंतु वायु-स्नान से तभी लाभ होता है जबकि बाहर की हवा सूखी, शीतल तथा निर्मल हो। यदि वायु दूषित हो तो फुसफुस के भीतर ओक्सिजन ग्रहण नहीं करते। जिस मार्ग से रक्त ओक्सिजन ग्रहण करता है, वायु दूषित रहने से उसी मार्ग से दूषित वायु भी रक्त के भीतर प्रविष्ट हो जाती है। यदि वायु दूषित हुई तो उसके ग्रहण से रक्त भी दूषित हो जाता है। कुछ दिनों तक दूषित वायु के इस्तेमाल से पाडु रोग, क्लान्ति, अग्निमांद्य एवं अन्य प्रकार का फुसफुस-रोग हो सकता है। इसलिए धूलि, धुआं और बदबू से हमेशा बचना उचित है।

साधारणतः प्रतिदिन आधे घंटे के लिए वायु-स्नान करने से ही काफी लाभ होता है, किंतु असल में इसके लिए कोई समय निर्दिष्ट नहीं है। जितनी भी देर तक खुली हवा में रहा जाय उतना ही अच्छा है। शीत छोड़ कर अन्य ऋतुओं में घर के भीतर रह कर लिखने-पढ़ने अथवा अन्य कोई काम करने के समय भी इसे ग्रहण कर सकते हैं। ग्रीष्म-प्रधान देशों में दिनरात सभी समय खाली बदन रह कर वायु-स्नान किया जा सकता है। पुराने रोगियों को दिनमें कम-से-कम तीन बार आधे-आधे घंटे के लिए वायु-स्नान करना चाहिए।

वायु-स्नान के साथ-साथ यदि श्वास-प्रश्वास का व्यायाम भी किया जाय तो उसकी उपयोगिता अधिक बढ़ जाती है। मुक्त हवा में कुछ दिनों तक श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने से समस्त शरीर लाभान्वित होता है एवं देह की रोग-प्रतिरोध क्षमता यथेष्ट रूप से बढ़ जाती है। वायु-स्नान के समय ऊँचे स्वर से गाना गाया जाय तो उससे भी लाभ होता है।

वायु-स्नान का अधिक लाभ तब मिल सकता है जब बीच-बीच में वायु-परिवर्तन कर लिया जाय। अनेक समय केवल वायु-परिवर्तन से ही देह के भीतर टूट-फूट दुरुस्त होने की क्रिया तेज होती है और बहुत-से रोग अच्छे हो जाते हैं।

इन सभी कारणों से हिंदी में यह कहावत है "सौ दवा न, एक हवा।" अर्थात् सौ औषधियों से जो लाभ नहीं होता वह एक-मात्र हवा से हो जाता है।

●

"गहरी नींद सर्वोत्तम विश्राम है। सोते समय खिड़कियां खुली और ओढ़ने का कपड़ा हल्के-से-हल्का होना चाहिए। भारी कपड़े पहन कर सोना ठीक नहीं। बिल्कुल ही न पहनें तो और भी अच्छा। नियमित समय पर सोना और उठना शरीर के लिए बहुत लाभदायक है।"—फ्लोरेंस मेटन

प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार

यशपाल जैन

सन् ४० की बात है। मामाजी (हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारजी) को बंबई हिन्दी विद्यापीठ में दीक्षांत-भाषण देने के लिये बम्बई जाना था। हम लोग सूचना दे चुके थे कि अमुक तारीख को अमुक गाड़ी से पहुंच रहे हैं और वहां सब तैयारियां हो चुकी थीं। जाने के दो दिन पहले अकस्मात् मामाजी की आंखें दुखने आ गईं और ऐसे जोर से कि हम लोगों को लगा, जाना नहीं हो सकेगा। बड़ी परेशानी हुई, विशेषकर यह सोचकर कि समारोह के विशेष अतिथि के न पहुंचने से संयोजकों तथा विद्यापीठ के विद्यार्थियों और अध्यापकों को कितनी निराशा होगी। दिन भर आंखों को आराम दिया; लेकिन रात होते-होते लालामी और दर्द घटने के बजाय और बढ़ गया। उस समय दवा भी कहां से आती? मामाजी ने कहा—"एक काम करो। घर में पीली मिट्टी है। उसकी पट्टी बनाकर मेरी आंखों पर बांध दो।" मैं मिट्टी लाया, पानी में सानी और बाजरे की रोटी के बराबर मोटी पट्टी बनाकर दोनों आंखों पर बांध दी। रात भर बंधी रही। सबेरे उठे तो यह देखकर हम लोगों के आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा कि आंखों को रुपये में बारह आने फायदा था। अगले दिन फिर मिट्टी की पट्टी रक्खी और तीसरे दिन जब चले तब तकलीफ मुश्किल से पैसे भर रह गई थी। बहुत से लोगों की आंखें आते देखी हैं; लेकिन दो दिन में यों अप्रत्याशित रूप से ठीक होते देखने का यह पहला ही अवसर था।

लगभग तीन वर्ष पूर्व की एक दूसरी घटना है। मुझे पीलिया हो गया। एक दिन पहले काम पर गया था। वहीं आफिस में तबीयत बिगड़ी। घर लौटा। अगले दिन आंखें पीली हो गई और पेशाब हल्दी-जैसा आने लगा। धीरे-धीरे पीलाई सारे शरीर पर फैल गई। शहरों में डाक्टरी चक्कर से सौभाग्यशाली ही बच पाते हैं। मुझे भी देखने के लिए एक के बाद एक, अनेक डाक्टर आये। पेट दवाओं का गोदाम बना और मजे की बात यह कि बीमारी को कोई लाभ नहीं। जितने डाक्टर आये, सबकी रायें अलग-अलग थी और जब रायें अलग थीं तो दवाइयां भी अलग होनी ही थीं। मेरी पत्नी की छोटी बहन, जो डाक्टर हैं, देखने आई और उन्होंने पैन्सिलिन और विटामिन बी काम्प्लेक्स के इंजैक्शनों का कोर्स दिया। यह सब हो रहा था; लेकिन मुझे साफ दीखता था कि रोग को कोई फायदा नहीं है। पीलाई ज्यों-की-त्यों। भूख रत्तीभर नहीं। जो खाता, निकल जाता। जिगर काम ही नहीं कर रहा था। डाक्टरी दवाइयां खाते-खाते जब तंग आ गया तो मैंने विद्रोह कर दिया। दवाइयां तेज होती थीं और तबीयत को बिगाड़ती थीं। एक दिन किसी ने बताया कि इस रोग में मूली और पपीता बहुत फायदेमंद होते हैं। उन दिनों मूलियां खूब आ रही थीं। कच्ची खाना तो जरा मुश्किल था। पत्तों का रस निकलवाकर थोड़ा-थोड़ा करके पीना शुरू किया। दो-एक दिन में ही मालूम हुआ कि वह तो बड़े लाभ की चीज है। धीरे-धीरे रुचि बढ़ी और मैं मूली और पपीता काफी मात्रा में लेने लगा। इस बीच मेरा छोटा भाई एक आदमी को लाया, जिसने कपड़े की पोटली में बंधी एक जड़ी को पानी में रगड़कर वह पानी हथेली पर रखकर नाक द्वारा सूंतने को कहा। मैंने सूंता। परिणाम यह हुआ कि बाईस घण्टे तक मेरी नाक से पानी की बूंदें टपकती रहीं, हल्दी-जैसी पीली। तीसरे-चौथे दिन फिर उसने वही जड़ी सुंघाई और सात घण्टे तक फिर पानी टपका। पपीते और मूली का प्रयोग चल ही रहा था। आगे चलकर तो वह प्रयोग इतना

था कि मैं दिनभर में कच्ची, उबालकर और रस निकाल कर करीब ढाई सेर मूली खा जाता। सवेरे थोड़ी देर खुली हवा में टहलना और पेट के जरा भारी होते ही एनिमा ले लेना। नतीजा यह हुआ कि कुछ ही दिनों में पीलाई जाती रही और जिगर भी धीरे-धीरे काम करने लगा। डाक्टरी चक्कर चला होता तो भगवान् जाने कितना धन स्वाहा होता, तेज़ दवाइयों से बेचैनी रहती पड़ती और फिर कौन कह सकता है कि आराम हो ही जाता।

तीसरी घटना गत वर्ष की है। हिन्दी के सजीव और प्रखर साहित्यकार श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की सुपुत्री बहन देवकी का विवाह था। फीरोजाबाद पहुंचा तो देखता क्या हूं कि दादाजी (चतुर्वेदीजी) चारपाई पर पड़े हैं। मालूम हुआ कि बवासीर के मारे हैरान हैं। ढेर-का-ढेर खून जा रहा था। थोड़ा ज्वर भी था। कुछ देर बाद सिविल सर्जन उन्हें देखने आये। बोले—पांच मिनट में ठीक किये देता हूं। उन्होंने मस्से अन्दर कर दिए और चले गये। दस मिनट बाद ही मस्से फिर बाहर निकल आये और तकलीफ जैसी-की-तैसी। मैंने कहा—"दादाजी, सिविल सर्जन का इलाज तो आपने कर लिया। आप कहें तो एक इलाज मैं भी कर लूं।" उन्होंने अनुमति दे दी। पीली मिट्टी वहां काफी मिल जाती है। उसमें से थोड़ी-सी लेकर मैंने पानी में सानी और पट्टी बनाकर रोग-ग्रस्त स्थान पर बांध दी। ऊपर से ऊनी मफलर लपेट दिया। मिट्टी का लगाना था कि ज़रा-सी देर में उन्हें चैन पड़ गया। जलन जाती रही। आधा-आधा घंटे बाद दो-तीन पट्टियां बदलीं कि मस्सों का तनाव भी दूर हो गया। रात को पट्टी बांधी तो उन्हें ऐसी गहरी नींद आई कि खोलने की सुधि ही न रही। कहां चारपाई से उठा नहीं जाता था और कहां अगले ही दिन घूमने-फिरने लगे! उन्होंने फिर डाक्टर को बुलाने का नाम ही नहीं लिया और तीन दिन तक मिट्टी के प्रयोग से ऐसा फायदा हुआ कि कहते रहे—यह तो चमत्कार हुआ है।

नगर के कृत्रिम जीवन में आज डाक्टर और डाक्टरी इलाज पर लोगों का इतना गहरा विश्वास हो गया है कि अपने घरेलू, सस्ते और देसिया इलाज की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। डाक्टरों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, साथ ही रोग और रोगियों की। बहुत से लोगों की आमदनी का अधिकांश भाग डाक्टरों की जेबों में चला जाता है। ज़रा-सा जुकाम हुआ कि डाक्टर के पास भागे गये, पेट में ज़रा दर्द हुआ कि दवा आई। ऐसा प्रतीत होता है, मानो डाक्टर शहरी जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। लोगों से कभी चर्चा होती है तो मज़ाक उड़ाते हुए कहते हैं—"अजी, कहीं मिट्टी-पानी वगैरह से रोग दूर होते हैं?" वर्षों के अप्राकृतिक रहन-सहन में मिट्टी, पानी आदि के महत्व को भूल जाना स्वाभाविक ही है; लेकिन लोगों को इतना स्मरण रखना चाहिए कि जबतक वे प्रकृति को अपना चिकित्सक नहीं बनायेंगे और उसके आदेश पर नहीं चलेंगे तबतक उन्हें सच्चा स्वास्थ्य और सार्थक जीवन मिल नहीं सकता।

हमारे जैसे निर्धन देश में आरोग्य-साधन के लिए प्राकृतिक चिकित्सा ही सर्वोत्तम चिकित्सा-प्रणाली है। प्राकृतिक चिकित्सा यानी प्राकृतिक रहन-सहन और रोग होने पर प्रकृति की सहायता से ही रोग का निवारण। प्राकृतिक रहन-सहन के लिए संयम की आवश्यकता होती है और रोग निवारण के लिए मिट्टी-पानी आदि के उपचार के साथ-साथ आत्म-विश्वास और ईश्वर पर निष्ठा की। ऐसा जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति स्वस्थ रहकर अपना भला तो करता ही है, आज की भारग्रस्त दुनिया का भी बोझ हल्का करता है।

मिट्टी, पानी आदि के उपचार हमारी पहुंच के बाहर नहीं हैं; कारण कि हमारे दैनिक जीवन में उनसे निकट का संबंध रहता है। यह निश्चय ही बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि हम उनके गुणों को भूल गये हैं और उनसे हमारा नाता टूट गया है। यदि वह नाता पुनः जुड़ जाय तो न केवल हमारा खोया स्वास्थ्य ही मिलेगा, अपितु हमारी वर्तमान उलझनें भी बहुत-कुछ अंश में दूर हो जायेंगी। पुराने अथवा जटिल रोगों में अनुभवी चिकित्सकों की देख-रेख में चिकित्सा की जा सकती है; लेकिन साधारण रोगों में तो किसी के भी मार्ग-दर्शन की आवश्यकता नहीं है।

'क्या व कैसे ?'

'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक

इस अंक में हमने प्रयास किया है कि प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान और प्रयोग-सामग्री इसमें हो जाय। आप देखेंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में भिन्न-भिन्न लोगों ने अपने-अपने अलग-अलग मत प्रकट किये हैं। हमारी राय यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा का प्रारंभ इस आधुनिक युग में जिस व्यक्ति ने किया है, उसकी व्याख्या को प्रधानता देनी चाहिए। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरों को नवीन या विशेष अर्थ करने का अधिकार नहीं या नवीन प्रयोगों या अनुभवों के प्रकाश में पुरानी व्याख्याएं न बदली जायं। प्राकृतिक चिकित्सा का सीधा अर्थ है प्रकृति का अनुकरण और प्राकृतिक वस्तुओं का उनके शुद्ध रूप में प्रयोग। प्रकृति से ऊपर और प्रकृति में ओतप्रोत जो चेतन तत्व है और 'प्राकृतिक' शब्द से जिसका सहसा बोध नहीं होता, वह इस चिकित्सा में सबसे प्रधान है, ऐसा हमें लगता है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, वायु, मिट्टी, वनस्पति आदि के द्वारा हमें जो कुछ जीवन या पोषक सामग्री मिलती है, वह सब इस चेतन तत्व की ही अभिव्यक्तियां हैं—नामरूप हैं। हरी साग-भाजी में जो 'सी' विटामिन माना जाता है या सूर्य की किरणों में जो 'डी' विटामिन माना जाता है, यह सब सूर्य की और पेड़-पौधों की उस चेतन शक्ति से ही प्राप्त होता है। इसी चेतन शक्ति के प्रभाव को गांधीजी और विनोबा 'रामनाम' कहते हैं। उस पर निष्ठा रखकर यदि प्राकृतिक चिकित्सा का अवलम्बन किया जाय तो हमारा भी यह दृढ़ विश्वास है कि उसे सहसा वैद्य-डाक्टरों के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी। यदि यह अंक इस दिशा में कुछ अंश तक भी पाठकों को ले जा सका तो हम अपने परिश्रम को सफल समझ लेंगे।

हटूंडी, १२. ६. '५१. —ह० उ०

पाठकों से निवेदन

चिर प्रतीक्षा के बाद 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। इस असाधारण विलम्ब के लिए हम अपने कृपालु पाठकों से क्षमा चाहते हैं। विशेषांक कैसा निकला है, इसका निर्णय तो स्वयं पाठक ही करेंगे; लेकिन इतना निवेदन हम कर देना चाहते हैं कि इसमें हमने अधिक-से-अधिक उपयोगी सामग्री देने का प्रयत्न किया है। 'प्राकृतिक चिकित्सा' शब्द कुछ भ्रामक है। इससे केवल रोग और उसके दूर करने के लिए एक विशेष ढंग की चिकित्सा का बोध होता है। वस्तुतः प्रकृति के अनुसार इस ढंग से रहना कि रोग हो ही नहीं और यदि हो जाय तो मिट्टी, जल, वायु, तेज और आकाश, इन पांच महाभूतों की सहायता से दूर कर देना, इस सबके लिए कोई उपयुक्त शब्द हिन्दी में प्रचलित नहीं है। अतः हमें सामान्य रूप से चलन में आने वाले शब्द 'प्राकृतिक चिकित्सा' को ही प्रयुक्त करना पड़ा। पाठक उसे व्यापक अर्थ में समझने की कृपा करें।

कहा जाता है कि रोग के इलाज की अपेक्षा ऐसा उपाय करना अधिक श्रेयस्कर है कि रोग हो ही नहीं। हमारा भी यही मानना है और इस बात पर इस अंक में विशेष रूप से जोर दिया गया है। इसके अधिकांश लेखों में बताया गया है कि हमारे दीर्घजीवी होने के लिए आधारभूत सिद्धांत क्या हैं, प्राकृतिक रहन-सहन से क्या तात्पर्य है और रोग हमारे शरीर में क्यों होते हैं? यदि हम लोग ये बातें अच्छी तरह से जान लें तो अनेक रोगों से सहज ही में बच सकते हैं। कुछ लेखों में इस लोकमान्य धारणा को गलत ठहराया गया है कि रोग

हमारे शत्रु हैं। सच यह है कि वे हमारे मित्र हैं। कारण कि वे हमारे शरीर में संचित विकारक पदार्थों एवं विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालते हैं। अतः रोगों से डरना नहीं चाहिए, न उन्हें दबाना चाहिए, बल्कि दूषित पदार्थों को निकालने में प्रकृति की सहायता करनी चाहिए।

सामग्री बढ़ जाने के कारण उसे दो भागों में बांट दिया है। इस विशेषांक में मुख्यतः प्राकृतिक चिकित्सा के सैद्धान्तिक पहलू को लिया गया है। व्यावहारिक पहलूवाले लेख अगले अंक में दिये जा रहे हैं। एक प्रकार से वह अंक इसका पूरक होगा और शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुंचेगा।

जिन विद्वान लेखकों तथा हितैच्छु मित्रों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं एवं सम्मतियों द्वारा इस अंक को उपयोगी बनाने में योग दिया है, उनके हम हृदय से आभारी हैं। अंक में यदि कुछ अच्छा है तो उसका श्रेय उन्हींको है। केवल त्रुटियों के लिये जिम्मेदारी हमारी है। स्थानाभाव के कारण जिन बंधुओं की सुन्दर रचनाएं इस अंक में नहीं आ सकी उनसे हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस तथा आगामी अंक को मिला कर पढ़ने की कृपा करें, तभी उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा का पूर्ण चित्र मिलेगा। यदि अंक उन्हें पसंद आवे तो हम अपेक्षा करेंगे कि वे इसके प्रचार और प्रसार में मदद देने की कृपा करें।

नई दिल्ली, २९-६-'५१ —म०

दादीजी—तपस्या की मूर्ति

जबतक दादीजी बैठी रहीं तबतक मुझे न जाने क्यों ऐसा लगता रहा कि जमनालालजी गये नहीं हैं। जिस दिन भाई रामकृष्णजी का दादीजी के अवसान का तार मिला, उस दिन पढ़ते ही सहसा मेरे मुंह से निकल पड़ा, "वास्तव में आज जमनालालजी संसार से गये।" जिस पुत्र ने जमनालालजी को एक महान् पुरुष बनाया उसकी साक्षात् मूर्ति ही नहीं, उनको जन्म देनेवाली माता जबतक मौजूद हैं तबतक जमनालालजी मौजूद ही थे और उनके दर्शन करके, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके जमनालालजी से मिलने का-सा सुख अनुभव होता था। मेरे कुटुम्बियों पर तो उनका विशेष स्नेह और वात्सल्य रहा। इसलिए ऐसा ही अनुभव हो रहा है कि अपने घर की बुढ़ापी ही चली गई। कई बार उनकी स्नेह और दुलार-भरी मूर्ति आंखों के सामने आई। जमनालालजी तो प्रायः जवानी में ही चले गये, परन्तु उनकी बूढ़ी माता अपने तमाम पुत्रों, अपने पोते, एवं दामाद की मृत्यु के दुःख को सहन करती हुई मानों प्रत्यक्ष तपस्या ही ९० साल की उम्र तक बैठ रही हों। वे धन्य हैं, जिन्हें इस वृद्धा माता की सेवा-परिचर्या करने का सौभाग्य मिलता रहा और जिनके कंधे पर चढ़ कर उनका शव श्मशान तक पहुंचा! पिछले दिसम्बर में मैं वर्धा में था तब भी मैं उन्हें बराबर चर्खा कातना देखता था और अपने काते सूत की न जाने कितनी साड़ियां उन्होंने अपने कुटुम्बियों और प्रियजनों को भेंट की हैं। जानकी मैयाजी तो जब कभी मिलती हैं, जमनालालजी की कोई-न-कोई बात छेड़े बिना नहीं रहतीं। वे उनका जिक्र या गुण-गान करके अपने शोक-भार को कम कर लिया करती हैं, परन्तु दादीजी तो यह कला भी नहीं जानती थीं और उन्होंने जीवन का सारा कष्ट और शोक चुपचाप सहन किया। उनकी आत्मा को हमारा प्रणाम! उनका वात्सल्य अब भी सब पर बरसता रहे!

हटूंडी, १७-६-'५१. —ह० उ०

अहिंसा का चमत्कार

जो लोग विनोबाजी को कोरा आदर्शवादी या आध्यात्मवादी मानकर उनकी प्रतिभा से चाहे चमत्कृत होते हों, परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में उनसे आकर्षित न होते थे, वे उनकी तेलंगाना-यात्रा और उसके फल से काफी प्रभावित हुए दीखते हैं। कांग्रेस और साम्यवाद दोनों से दूर हमारे एक आर्य समाजी मित्र ने अपने बड़े भाई, जो हिन्दू महासभा के एक नेता हैं, कहा कि सच्ची सेवा वह है जो तेलंगाना में विनोबा ने की है। और तो ठीक, सरदेसाईजी के भी कट्टर

नहीं था। यह तो गांधीजी की ही याद दिलाता है, और उन्हें बताया कि सेवा ही करनी है तो विनोबा का अनुकरण करो। खुद पंडित जवाहरलालजी ने उनके काम को सराहा और कहा कि जो काम फौज और पुलिस न कर सकी, वह काम विनोबाजी ने कर दिखाया। यह अहिंसा की शक्ति है। विनोबा जिस आध्यात्मिक भित्ति पर खड़े हुए हैं, उससे ऐसे और भी चमत्कार असंभव नहीं है। अहिंसा या आध्यात्मिकता सिवा इसके और कुछ नहीं है कि मनुष्य-मात्र या जीव-मात्र या भूत-मात्र के जीवन में अपना जीवन मिला दिया जाय। गांधीजी की सबसे बड़ी साधना यही थी। विनोबा की प्रकृति उनसे भिन्न है, परन्तु साधना उनसे किसी कदर कम नहीं है; बल्कि इसमें वे उनके योग्य यानी अहिंसा की महत्ता को अधिक चमकानेवाले वारिस सिद्ध हों तो आश्चर्य नहीं।

हटूंडी, १२. ६. '५१ —ह० उ०

राजनैतिक क्षितिज में

आचार्य कृपलानीजी, डा. घोष आदि कांग्रेस के गांधीवादी नेताओं के कांग्रेस से हट जाने और एक नया दल निर्माण करने की घटना ने सारे देश में एक हलचल खड़ी कर दी है और लोगों के दिमागों में तरह-तरह की समस्याएं खड़ी हो गई है। जो गांधीजी के अनुयायी है, सर्वोदय की दृष्टि और विचार-धारा जिन्हें प्रिय है और जो यह मानते है कि पंडित नेहरूजी के नेतृत्व में बनी सरकार गांधीजी के उद्देश्य और कार्यक्रम की पूर्ति भली भांति नही कर रही है, उन्हें यह कार्यवाही पसन्द आई है और इस आशा से कि नया दल गांधीजी के काम को आगे बढ़ायेगा, वे उसका समर्थन करते हैं। कांग्रेस में भी दूसरे ऐसे लोग है, जो भिन्न-भिन्न कारणों से कांग्रेस के वर्तमान नेतृत्व से असन्तुष्ट है, वे भी इस विच्छेद के समर्थक हैं। ऐसे विचार के लोग भी देश में है, जो आज राजनीति में जवाहरलालजी को सबसे बड़ा नेता मानते है और समझते है कि जबतक वे कांग्रेस में है और कांग्रेस से निराश नहीं हो जाते तबतक कांग्रेस से हटना उनको कमजोर बनाना है। साथ ही, कई लोग यह भी कहते हैं कि कांग्रेस भी तो पूरा-पूरा जवाहरलालजी का साथ कहां दे रही है। इधर रचनात्मक काम में श्रद्धा रखने वाले लोगों की यह धारणा बनती रही है कि वे व्यापक अर्थ में राजनीति में यानी देश के सुशासन में जरूर दिलचस्पी रखें और सहयोग दें; परन्तु उस शासन-यंत्र को चलाने के लिए जो दलबन्दी और गुटबन्दियां हो रही हैं, उनसे वे अलग रहें। इन तमाम प्रश्नों और तर्कों ने कांग्रेसी क्षेत्र में मानसिक उथल-पुथल छेड़ रखी है।

इन सब समस्याओं पर विचार करके हम इस निर्णय पर पहुंचे है कि इस समय देश में दो नेता सर्वमान्य हैं। राजनैतिक क्षेत्र में जवाहरलालजी और रचनात्मक क्षेत्र में विनोबाजी। बापू दोनों के नेता थे। उनके ये दो हाथ, अब दो विभिन्न विभागों में अपने-अपने ढंग से अनोखा नेतृत्व कर रहे है। गांधीवाद या गांधी-कार्यक्रम की दृष्टि से हम भी जवाहरलालजी से निराश-जैसे है; परन्तु हमने पहले ही उनसे ऐसी आशा नहीं रखी थी, बावजूद इसके उनसे बढ़कर यहां की राजनीति में प्रभावशाली व्यक्तित्व दूसरे किसी का दिखाई नही देता। हमें यह देखकर भी बहुत खुशी होती है कि विनोबाजी और जवाहरलालजी एक-दूसरे की बहुत कद्र करते है और हम यह आशा लगाये हुए है कि जैसे कुछ समय पहले तक भारत की राजनीति नेहरू-सरदार के संयुक्त नेतृत्व में चलती थी, उसी तरह विनोबा-नेहरू के सम्मिलित नेतृत्व से देश का भाग्य चमक उठेगा और गांधीजी की आशाएं ये दोनों मिलकर अवश्य पूर्ण करेंगे। अतः हमारी यह विनम्र सम्मति है कि रचनात्मक कार्य करनेवाले विनोबा की सम्मति को सर्वप्रधान मानें और राजनीति में काम करनेवाले जवाहरलालजी की।

आचार्य कृपलानी और डा० घोष की सच्चाई, व्याकुलता, लगन, योग्यता पर हमारा बहुत विश्वास है और यदि यह विच्छेद निरासक्त भाव से हुआ है तो हम इसे एक शुभ शकुन मान सकते है; परन्तु दलबन्दी का हमें ऐसा कटु अनुभव है कि जबतक हम नये दल का संचालन कुछ समय तक शुद्धतापूर्वक, संतोषजनक

और सावधानीपूर्वक देख न लें तबतक हमारा मन इस बात के लिए शंकित ही रहता दीखता है कि दलबन्दी की क्षुद्रताओं से और व्यामोहों से यह कहां तक ऊपर उठा रह सकेगा। कांग्रेस की स्वराज्यदल और असहयोगी दल की खींचातानी से तंग आकर गांधीजी-जैसे हिमालय सदृश उच्च, स्थिर और प्रबल नेता को भी अपने को कांग्रेस से अलग करने पर मजबूर होना पड़ा था तो फिर दूसरों के लिए ऐसे समय में जबकि गांधीजी भी नहीं हैं, यह विच्छेद हमारे हृदय में आशंकाएं उत्पन्न किये बिना नहीं रहता। हम हृदय से चाहते हैं कि हमारी ये आशंकाएं निर्मूल सिद्ध हों।

हटूडी, १२.६.'५१ —ह० उ०

मंडल की ओर से

यह विशेषांक

'सर्वोदय' और 'विश्वशांति' विशेषांक के बाद हम जीवन-साहित्य का 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि कई कारणों से जिनपर हमारा कोई वश नहीं था, इसके निकलने में देर हो गई है तो भी हमें सन्तोष है कि हमने इस देरी का लाभ उठाकर अधिक-से-अधिक सुन्दर और प्रामाणिक सामग्री पाठकों को देने का सफल प्रयत्न किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह विशेषांक पिछले विशेषांकों की परम्परा और प्रतिष्ठा को चार चांद लगाने वाला होगा।

आज के भौतिक युग में प्राकृतिक चिकित्सा की बात बहुतों को विचित्र बात लग सकती है परन्तु इसके साथ ही यह बात भी कम विचित्र नहीं है कि आज के ही बड़े-बड़े डाक्टर यह स्वीकार करते हैं कि दवाएं सच्चा स्वास्थ्य प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ हैं। ऐसी अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सा का वैज्ञानिक अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। यही अध्ययन इस अंक में प्रस्तुत किया गया है। इसके लेखक अपने विषय के अधिकारी विद्वान हैं जिन्होंने जीवन की पाठशाला में अध्ययन करके अपने विचारों को लिपिबद्ध किया है।

सामग्री बढ़ जाने के कारण इस अंक में 'प्राकृतिक चिकित्सा' के केवल सैद्धान्तिक पहलू को लिया है। अगले अंक में जो शीघ्र ही परिशिष्टांक के रूप में पाठकों को मिलेगा, व्यावहारिक पक्ष वाले लेख दिये गये हैं। आशा है पाठक इन अंकों को पसन्द करेंगे।

नवीन प्रकाशन

निम्नलिखित पुस्तकें छः महीनों (जनवरी से जून) में निकली हैं

१. सर्वोदय तत्त्व-दर्शन—डा० गोपीनाथ धावन लिखित अहिंसक विचारधारा की अपूर्व मीमांसा। मूल्य ७ रुपया

२. भागवत धर्म—श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध की सुबोध-सरल और भावपूर्ण व्याख्या। मूल्य ५॥), सजिल्द ६॥)

३. श्रेयार्थी जमनालालजी—(हरिभाऊ उपाध्याय) भूमिका डा० राजेन्द्रप्रसाद। पुस्तक में जमनालालजी के त्याग और सेवामयी जीवन का सर्वांग चित्रण है। ४८८ पृष्ठ, सजिल्द मूल्य ६॥)

४. आज का विचार—गांधीजी के उसी दिन के लिखे या बोले हुए ३६५ मूल्यवान वचनों का संग्रह। मूल्य ६ आना

५. बापू के आश्रम में—(हरिभाऊ उपाध्याय), बापू के आश्रम और संसर्ग के मधुर, रोचक और शिक्षाप्रद संस्मरण, मूल्य १)

६. समदर्शी—(कहानी संग्रह) हिन्दी के विभिन्न लेखकों की उच्चकोटि की कहानियां, मूल्य २)

७. बापू की सीख—(बालोपयोगी लेखों का संग्रह), मूल्य ॥)

८. गांधी-शिक्षा—तीन भाग, मूल्य ।), ।–), ।=)

पुनर्मुद्रण

इस वर्ष निम्नलिखित पुस्तकों के पुनर्मुद्रण हुए हैं :

१. कुब्जा सुन्दरी (कहानी संग्रह) च० राजगोपालाचार्य, २)

२. लड़खड़ाती दुनिया (राजनैतिक लेख) पं० जवाहरलाल नेहरू, २)

३. गांधी विचार दोहन (लेख) श्री किशोरलाल मशरूवाला, १।।)

४. डायरी के पन्ने (डायरी) श्री घनश्यामदास बिड़ला, १)

५. जीवन-साधना--(निबन्ध) टाल्स्टाय, १।)

६. तामिल वेद--(सदुपदेश) ऋषि तिरूवल्लुवर, १।।)

७. दिव्यजीवन (सदुपदेश) स्वेटमार्डेन १।।)

८. अहिंसा की शक्ति--रिचर्ड बी० ग्रेग, १।।)

निम्नलिखित पुस्तकें प्रेस में हैं :—

१. विश्व इतिहास की झलक

२. गीता-प्रवचन

३. अनीति की राह पर

गांधी-साहित्य की आगामी पुस्तकें

गांधी-साहित्य में छः पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। दो पुस्तकें प्रेस में हैं जो शीघ्र प्रकाशित होंगी :

१. मेरे समकालीन

२. आत्म-कथा

एक नवीन योजना

इसके अतिरिक्त मंडल ने इस वर्ष पुस्तकालयों के लिये पंचवर्षीय योजना बनाई है। इसका नाम 'पुस्तकालय स्थायी सदस्यता' योजना है। इसका उद्देश्य पुस्तकालयों की सहायता से सत्साहित्य का प्रचार व प्रसार करना है। यह योजना चालू हो चुकी है। इसका पूरा विवरण मंडल से प्राप्त हो सकता है। --मंत्री

आगामी अंक में पढ़िये

१. स्त्री-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा .. .. डा० कुलरंजन मुकर्जी
२. मिट्टी से रोग-निवारण — श्री भूपतराय मो० दवे
३. एनीमा का उपयोग और लाभ .. — श्री आनन्दवर्द्धन
४. प्राकृतिक चिकित्सा और वैज्ञानिक मालिश .. श्री जनार्दनप्रसाद
५. उपवास क्यों और कैसे .. ..
६. विभिन्न रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा — श्री विट्ठलदास मोदी.
७. प्राकृतिक चिकित्सा-विधि . .. श्री पद्मावती शुक्ल
८. मिट्टी का रोग-नाशक प्रभाव और विधि . श्री युगलकिशोर चौधरी
९. स्वास्थ्य के लिये कसरतें .. . .. श्री रुद्रदत्त त्रिपाठी

Reg. No. E. P. 479

[illegible] मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

अहिंसक नवरचना का मासिक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

इस अंक में पढ़िये

बारह आना

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

वार्षिक मूल्य ४)] जीवन-साहित्य [इस अङ्क का मूल्य ।।।)

लेख-सूची

पाठकों से

'जीवन-साहित्य' से आप भलीभांति परिचित हैं । प्रत्येक अंक में जन-साधारण को स्वस्थ, सात्विक एवं सुपाच्य सामग्री देकर जो कुछ यत्किंचित सेवा उसके द्वारा हो रही है, आपसे छिपी नहीं है । उसके विशेषांकों की उपादेयता भी आपको विदित है और यह भी आप जानते हैं कि यह उन इनेगिने पत्रों में से है, जो विज्ञापन नहीं छापते ।

यदि आप चाहते हैं कि 'जीवन-साहित्य' इसी प्रकार दृढ़तापूर्वक सेवा-पथ पर चलता रहे और उसका सेवा-क्षेत्र व्यापक हो तो उसके ग्राहक बनाने में योग दीजिये । हम आशा करते हैं कि प्रत्येक पाठक कम-से-कम पांच ग्राहक अवश्य बना देने की कृपा करेंगे ।

चार रुपये में पांच सौ पृष्ठ की उपादेय सामग्री मिलती है, साथ ही मंडल की पुस्तकों पर तीन आना कमीशन ।

व्यवस्थापक

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ।

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

अगस्त १९५१ | वर्ष १२, अंक ८

प्राकृतिक उपचार-पद्धति

श्री महेन्द्र गुप्त

रुग्ण होने पर सब लोग चारों ओर से तरह-तरह के अप्राकृतिक उपाय और दवायें बतलाने लगते हैं, पर ये सभी निरर्थक ही नहीं होते, अपने साथ कुछ बुराई भी लाते हैं। इसलिए चाहे जैसी भी स्थिति हो, केवल प्राकृतिक उपचार का सहारा लीजिए।

अगर संयोगवश आशा के अनुरूप बहुत जल्द सुधार न देख पड़े तो शांति और धैर्य बनाये रख, घबड़ाकर अप्राकृतिक उपचारों का प्रयोग न करने लगें। अप्राकृतिक उपचारों से सच्ची सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती। न जानने के कारण हम इनसे अपना बहुत बड़ा नुकसान कर लेते हैं।

औषधि-विज्ञान संक्रामक रोग का हौआ है और उसने सर्वत्र इसका आतंक फैला रखा है, पर जब हम इन भयंकर रोगों से भी छुटकारा पा जाते हैं तो इनसे डरने का कोई कारण नहीं रह जाता। जो हमारी प्राकृतिक उपचार-पद्धति का अनुयायी है उसके दिमाग से तो सारे साध्य और संक्रामक रोगों का भय दूर हो ही जाना चाहिए। इस भय से बहुत बड़ा नुकसान हुआ करता है।

इसी तरह, एकरूप प्राकृतिक विधि से लोग अपने स्वास्थ्य की चिंता और औषधोपचारक वर्ग से मुक्ति लाभ कर सकते हैं। इस प्रकार लोगों को अपने स्वास्थ्य पर, जो सर्वाधिक मूल्यवान् भौतिक सम्पत्ति है, पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है और अपार, डाक्टर औषधोपचारकों की दासता से मुक्ति मिल सकती है।

मानव-जाति स्वतन्त्रतारूपी बहुमूल्य वरदान के लिए बराबर संघर्ष और युद्ध करती रही है। क्या वह अपने शरीर-स्वास्थ्य के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयत्न नहीं करेगी?

●

स्त्री-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

डा० कुलरंजन मुखर्जी

भगवान् ने नारी देह को संतान धारण करने के लिए विशेष तथा उपयोगी बना कर उसकी सृष्टि की है। उससे मां के पेट में जन्म लेना और फिर जीवित रहना हम लोगों के लिए सम्भव है। नारी देह में जिन अंगों की मौजूदगी की वजह से यह सम्भव है उन्हीं अंगों के रोगों का नाम है स्त्रीरोग।

जिस्म की और बीमारियां जिस तरह पैदा होती हैं, स्त्री-रोग भी ठीक उसी तरह पैदा होते हैं। जिस्म की जो दूषित अवस्था और-और बीमारियों के लिए जिम्मेदार है, स्त्री-रोगों का कारण भी वही है।

पहले शरीर में कुछ दूषित और ज़हरीली चीजें इकट्ठी होती हैं, उनके बाद शरीर में तरह-तरह की बीमारियां पैदा होती हैं। यही ज़हर देह के विभिन्न यन्त्रों पर हमला करके विभिन्न अंगों में अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। जब इस ज़हर के द्वारा जननेन्द्रिय पर हमला होता है तभी उसको स्त्री-रोग कहा जाता है। लिहाज़ा यह सिर्फ स्थानीय रोग नहीं है। यह सारे जिस्म की बीमारी है। केवल इसका प्रकाश जननेन्द्रिय में होता है।

स्त्री-रोग में तरह-तरह की दवाइयां इस्तेमाल की जाती हैं। उन दवाओं के द्वारा दर्द कम करने की कोशिश की जाती है या कोई दूसरा तीव्र (Acute) स्त्री-रोग दबा दिया जाता है। कभी-कभी एक रोगग्रस्त अंग को काट कर अलग कर दिया जाता है। किन्तु रोग को दबा देना रोग की चिकित्सा नहीं है। कोई भी बीमारी क्यों न हो, शरीर में इकट्ठी दूषित और ज़हरीली चीजें ही उसका मूल कारण है। जब उन्हें शरीर से बाहर कर दिया जाता है, बीमारी स्थायी रूप से अच्छी हो जाती है।

प्रकृति पैखाना, पेशाब, पसीना और सांस के साथ हमेशा शारीरिक विष बाहर करती रहती है। जब इनके निकलने के रास्ते साफ रहते हैं तब साधारणतः कोई भी रोग नहीं होता है। बीमार होने पर प्रकृति के इन रास्तों के ज़रिये रोग-विष बाहर करके, सब रोग अच्छे किये जा सकते हैं।

* * *

सभी रोगों में पेट साफ़ करना रोग का मूल इलाज है; क्योंकि साधारणतः पेट से ही अधिकांश रोग होते हैं। स्त्री-रोगों में पेट को साफ़ करने के साथ-ही-साथ सभी जनन-यन्त्रों को स्वस्थ करने के लिए प्राकृतिकचिकित्सा में कटि-स्नान (Hip-bath) से बढ़कर दूसरी चीज़ नहीं है। एक विख्यात डाक्टर ने कहा है, "स्त्रीरोगों में कटि-स्नान ने बहुत-सी स्त्रियों को डाक्टर के नश्तर से बचाया है।" पानी से भरे एक टब के भीतर पैरों को बाहर करके बैठकर लगातार पेडू को रगड़ना यही कटि-स्नान करना कहाता है। यह स्नान लेने के पहले धूप-स्नान या व्यायाम करके शरीर को गर्म कर लेना चाहिए और स्नान करने के बाद फिर सूखे तौलिये से रगड़-रगड़ कर गर्म कर लेना ज़रूरी है।

नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना भी लाभदायक होता है। इससे पेट का बहुत-सा ज़हर पेशाब के साथ बाहर हो जाता है। जल पीने का सबसे अच्छा समय है, सोकर उठने के बाद या खाना खाने के एक घंटा पहले तथा जब पेट खाली रहे। प्रतिदिन दो-तीन सेर पानी पीना चाहिए।

स्त्री-रोग में पसीना निकालने के लिए उष्णपाद-स्नान (Hot foot-bath) भी बहुत लाभदायक है। दोनों पैरों को गर्म जल में डुबा कर गले तक सारे शरीर को गरम कम्बल से लपेट देने को उष्णपाद-स्नान

खराब होता है, ऋतु के समय की स्वास्थ्य-विधि की अवहेलना से। इसलिए इस समय विशेष होशियारी से रहना चाहिए। उन दिनों खास तौर से ध्यान रखना चाहिए कि किसी तरह ठंडक न लग जाय। एकाएक ठंडक लगने से ऋतुस्राव बन्द हो सकता है। इससे तलपेट में अत्यन्त पीड़ा होती है और अनेक बार जरायु आदि यन्त्रों में सूजन के कारण ज्वर हो जाता है। और बाधक सूल, जरायु और श्वेतप्रदर आदि रोग हो जाते हैं। अतः ऋतु के समय डुबकी लगाकर नहाना, ठंडे फर्श या ठंडे पत्थर पर देर तक बैठना, शरीर की ठंडी अवस्था में ठंडा पानी पीना, देर तक हवा के झोंके लेना, ठंडे पानी से देर तक कपड़े साफ करना या दूसरे तरीके से गीला कपड़ा पहनकर रहना आदि बन्द कर देना चाहिए।

लेकिन ऋतु के समय सिर धोना और भीगे तौलिये से शरीर पोंछना बन्द नहीं करना चाहिए। दिन में एक बार ऐसा करने से शरीर स्निग्ध रहता है और स्राव जैसे अच्छी तरह साफ होता है, शरीर भी वैसे ही स्वस्थ रहता है।

ऋतु के समय अधिक मेहनत का काम, जिससे थकावट आ जाय, नहीं करना चाहिए। मामूली परिश्रम से तलपेट का रक्ताधिक कुछ अंश तक कम हो जाता है, इसलिए ऐसे समय घर के हलके काम करते रहना चाहिए।

इस अवस्था में स्त्री को स्वामी की शैया पर नहीं जाना चाहिए। जबतक स्राव पूर्ण रूप से बन्द न हो जाय तबतक हमेशा अलग बिस्तर पर सोना चाहिए। यह नियम हमारे देश में प्राचीन काल से चला आ रहा है। आधुनिक लड़के-लड़कियां इसे कुसंस्कार कह कर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं; किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि इसके साथ सारे जीवन के स्वास्थ्य का गम्भीर सम्बन्ध है।

भोजन पर भी ध्यान देना जरूरी है। रोगिणी का प्रधान पथ्य होना चाहिए : फल-फूलों का रस, कच्चा साग (Salad), उबाला हुआ साग, उबाले हुए साग का पानी (Vegetable Soup), धारोष्ण दूध, मठा, बारह घण्टा भीगी हुई किशमिश का पानी और पानी-युक्त शहद। भात, रोटी कम करके इन सब खाद्यों पर जितना अधिक रहा जाय, उतना ही अच्छा है। रोगिणी को चाय, काफी, गर्म मसाला, अधिक मसाला, मिठाई, सब प्रकार का दुष्पाच्य भोजन, सड़े हुए खाद्य का भोजन, अनियमित आहार और अत्यधिक आहार हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। स्त्री-रोगों में उपवास बहुत फायदा पहुंचाता है। इसलिए नींबू के रस के साथ पानी पीकर समय-समय उपवास रखने से काफी लाभ होता है।

यथासम्भव रोगिणी को खुली जगह में और सदा प्रसन्न रहना चाहिए; क्योंकि आनन्द के साथ रहना ही प्रकृति की सबसे बड़ी औषधि है।

गर्भवती स्त्रियों के लिए हिदायतें

श्री भिक्षु

माता-पिता के, विशेषकर माता के, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर बच्चों की तन्दुरुस्ती और गुण निर्भर करता है। बाल-विवाह तथा कम आयु में गर्भाधान होने के कारण ही अस्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं। जबतक स्त्री-पुरुष पूर्ण स्वस्थ न हों, उन्हें शादी नहीं करनी चाहिए।

गर्भवती स्त्रियों को मानसिक शांति रहनी चाहिए। घर का मामूली काम-काज वे करती रहें, लेकिन थका देनेवाले भारी काम उन्हें नहीं करने चाहिए। ऐसी स्त्रियों के लिए संभोग तो एकदम वर्जित होना चाहिए।

गर्भवती स्त्रियों का भोजन पौष्टिक तथा सुपाच्य हो। कब्ज़ उन्हें नहीं होना चाहिए और मिर्च-मसाले एवं पेट में हवा पैदा करनेवाले पदार्थों के इस्तेमाल से बचना चाहिए।

गर्भवती स्त्री को कोई दवा नहीं लेनी चाहिए। यदि बच्चा पैदा होने में कोई कठिनाई हो तो उतावली से काम न लेकर धैर्यपूर्वक प्रकृति को कार्य करने का अवसर देना चाहिए। बच्चा जनने के बाद भी कोई दवा देना हानिकारक है। पूर्ण विश्राम तथा हल्की खुराक ही पर्याप्त है। यदि प्रसूति के बाद सफाई ठीक से न हो अथवा दर्द हो तो पेड़ू पर सेक कर देना चाहिए।

देखा गया है कि उपवास में पहले दिन भोजन का लालच सताता है और दूसरे और तीसरे दिन कमजोरी मालूम होती है, लेकिन अगर एनीमा लिया जाय तो चौथे दिन से ताकत और फुर्ती मालूम होती है। मैं जानता हूं कि लम्बे उपवास में भी बहुत आदमी अपना मामूली काम-काज और मामूली कसरत करते जाते हैं। ऐसा ही करना भी चाहिए। अपनी ताकत भर काम जरूर करना चाहिए।

क्या उपवास सभी कर सकते हैं ?

तीव्र (Acute) बीमारी में उपवास करना लाजमी है। *तीव्र बीमारी में शरीर विकारों को दूर* करने में जोरों से लगा रहता है। ऐसी हालत में कुछ भी भोजन देकर पचाने की क्रिया को जारी कर सफाई की क्रिया में बाधा डालना पाप और जुर्म दोनों हैं। लेकिन हमारे डाक्टर भाई इन दिनों ऐसा ही करते हैं। वे कहते हैं कि रोगी को ताकत बनाये रखना चाहिए। इसीसे इन डाक्टरों की देखरेख और इलाज के होते हुए मामूली बुखार टाइफाइड और निमोनिया के रूप में बिगड़ जाता है। मामूली बीमारियों में बहुत से बखेड़े हो जाते हैं और इतनी पेचीदगियां हो जाती हैं कि डाक्टर के होश ठिकाने नहीं रहते। अगर नई बीमारियों में उपवास कराया जाय और साथ ही एनीमा से पेट साफ रखा जाय तो कोई गड़बड़ी न पैदा हो और बीमारी भी जल्दी ही दूर हो जाय।

जीर्ण (Chronic) बीमारियों में भी उपवास जरूरी होता है। उसमें तो लम्बे उपवास की जरूरत होती है। इन उपवासों में भी आदमी को अपना मामूली काम-काज करते रहना चाहिए। नई बीमारी में जैसे कि बुखार में, उपवास और पूरा-पूरा आराम दोनों जरूरी होते हैं।

कुछ लोगों के लिए पूरा उपवास अच्छा नहीं होता। दुबले, कमजोर, बहुत दिन के रोग से दुबले और कमजोर बने मरीज, गर्भवती औरत और बच्चों से पूरा उपवास नहीं कराना चाहिए। उन्हें हर तीन या चार घंटे पर फलों के पतले रस या तरकारियों के रस (सूप) पर रखना चाहिए। क्षयी रोग में तो दूध और कभी-कभी रोटी भी देना चाहिए। जो मोटा है या दुबला होते हुए भी मामूली तौर पर मजबूत है, वह पूरा उपवास जरूर कर सकता है।

कितने दिन उपवास किया जाय ?

तीन दिन का उपवास सभी कर सकते हैं। इसमें कोई भी खतरा नहीं। कई बीमारियों में तो जबतक रोग दूर न हो जाय या उसकी ताकत न घट जाय तबतक उपवास करना चाहिए। पुरानी बीमारीवाले भी लम्बा उपवास करके अपनी बीमारी दूर कर देते हैं, लेकिन पुरानी बीमारी में लम्बा उपवास *किसी अनुभवी चिकित्सक की ही निगरानी में करना* चाहिए। जिन्हें कोई ऐसा चिकित्सक न मिले वे पहले तीन दिन का उपवास, फिर ७ से १० दिन तक उचित भोजन। फलाहार अच्छा होगा। फिर पांच दिन का उपवास, फिर १०-१५ दिन उचित भोजन और फिर एक हफ्ते का उपवास करके और इसी तरह भोजन और उपवास का क्रम जारी रखकर अपने आपको भला-चंगा कर सकते हैं।

हफ्ते में एक दिन का उपवास सभी को करना चाहिए। हमारे यहां एकादशी या और दूसरे-दूसरे मौकों के व्रत इसीलिए हैं कि शरीर को आराम मिले और उसके विकार दूर हों, लेकिन व्रत के बाद पूरी, हलवा, मिठाई, रबड़ी जैसी चीजें खाना बुरा है। उसके बाद तो फलाहार या अनाज और सब्जी का सादा भोजन ही ठीक है। मुसलमानों का रोजा बड़े काम का है, अगर वे रात में अण्ट-शण्ट चीजें पेट भरकर और बहुत बार न खायें तो। मैं अपनी इस ७३ साल की उम्र में हर हफ्ते सोमवार-के-सोमवार पूरा उपवास करता हूं।

लम्बे उपवास का तोड़ना

खतरा उपवास में नहीं, उपवास तोड़ने में है। लम्बे उपवास के तोड़ने में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए। मान लीजिए कि आपने लम्बा नहीं तो सिर्फ सात दिन का ही उपवास किया। इसे जब आप तोड़ने लगें तो पहले दिन सिर्फ दो बार फल या पतला रस, वह भी एक बार आध पाव से ज्यादा नहीं लीजिए। दूसरे दिन तीन बार रस ही पीजिये। तीसरे दिन आध-

भी पक्की हो कि आप स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। कसरतों के साथ-ही-साथ बदन को रगड़ना भी चाहिए। ऊपरी खाल को रगड़ने से खून का बहाव तेज़ होगा और बदन में चिकनाहट और सुन्दरता आ जायगी।

यदि इन कसरतों में से हरेक एक या दो बार भी हर रोज़ कर ली जायं तो मनुष्य अच्छी तरह स्वस्थ रह सकता है।

नं० १

सीधे स्वाभाविक हालत में खड़े हो, पैरों को फैलाओ ताकि दोनों पैरों के बीच में १२ इंच का फासला हो, अपनी बांहों को सामने की तरफ से सिर के ऊपर ले जाकर ऊपर तान दो। इसके साथ ही श्वास को अन्दर लो, अब कमर से मुड़ते हुए ऊपर के धड़ को आगे की ओर झुकाओ ताकि हाथ की अंगुलियां ज़मीन को छूने लग जायं मगर घुटने न मुड़ें। सब सांस बाहर निकाल दो, फिर हाथों को सिर पर पहली हालत में ले जाओ और इसी तरह व्यायाम को २ से ८ बार तक करो। इससे रीढ़ और पेट को बहुत लाभ पहुंचेगा।

नं० २

जमीन पर सीधे चित लेट जाओ। एक-एक करके पैरों को ऊपर उठाओ। घुटने मुड़ने न पावें और पैर शरीर से ९० डिग्री का कोण बनावें। कुछ दिन बाद दोनों को इसी तरह एक साथ धीरे-धीरे उठाओ। यह व्यायाम पेट की मांस-पेशियों को मजबूत बनाता है।

नं० ३

खड़े होकर दोनों हाथों को घुटनों के पीछे ले जाकर पंजाकशी कर लो और इसी हालत में अपने बदन को ऊपर उठाने की कोशिश करो। फिर बदन को ढीला कर दो और फिर उसे इसी प्रकार ऊपर को उठाओ। इस व्यायाम को ५ से १५ बार तक करो। इससे पीठ का निचला भाग मज़बूत होता है।

नं० ४

सिर के ऊपर बांहों को फैलाते हुए चित लेट जाओ। धीरे-धीरे एक पैर को घुटने से मोड़ कर उठाओ और हाथों को आगे लाकर उसे गुफिया लो ताकि पेट पर दबाव पड़े। हाथों को ढीला कर दो और पैर को फैला लो।

फिर दूसरे पैर से इसी प्रकार पेट पर दबाव डालो। पहले एक-एक पैर से पांच बार व्यायाम कर, फिर उतनी ही बार दोनों पैरों से एक साथ। यह व्यायाम पाचन यन्त्रों के लिए लाभकारी है।

नं० ५

दोनों हाथों को कन्धे के बराबर फैलाकर खड़े हो, फिर दोनों पैरों को भी फैला लो। अब कमर से मुड़कर बदन को आगे झुकाओ और बदन घुमाकर एक हाथ से जमीन को छुओ, दूसरा हाथ उसी की सीध में ऊपर की ओर रहे। फिर आगे को झुके हुए ही बदन घुमाकर दूसरे हाथ से जमीन को छुओ। इसी प्रकार चार बार से शुरू कर दस-पन्द्रह बार इस व्यायाम को दुहराओ। इससे हाजमा बढ़ता है, निचली आंतों में हरकत पैदा होती है और जिगर और मसाने पुष्ट होते हैं।

नं० ६

इस तरह खड़े हो जैसे दौड़ रहे हो। एक पैर ऊपर उठाओ तो दूसरा हाथ, और इसी प्रकार दूसरा पैर और उसके दूसरी ओर वाला हाथ। इस व्यायाम को साठ-सत्तर बार तक दुहरा सकते हो। यह तमाम बदन के लिए लाभकारी है।

नं० ७

हाथों को सिर के ऊपर फैलाये हुए चित लेट जाओ। पैरों को धीरे-धीरे उठाओ और सिर के ऊपर से पीछे ले जाकर जमीन पर रख दो। इसी बीच में हाथों को बगल में लाकर सीधे-सीधे डाल दो। फिर धीरे-धीरे पैरों को वापस पहली दशा में ले जाओ और हाथों को पीछे की तरफ। इस व्यायाम को एक से आठ बार तक दुहराओ। इससे आंतों में हरकत होती है। कब्ज की शिकायतवालों के लिए विशेष लाभकारी है। इस व्यायाम के सीखने में जरा देर लग सकती है।

प्राकृतिक चिकित्सा और वैज्ञानिक मालिश

श्री जनार्दनप्रसाद

जिस तरह उपवास, जल-चिकित्सा, मिट्टी-चिकित्सा, आन्तरिक स्नान (एनिमा), सूर्यकिरण-चिकित्सा आदि प्राकृतिक चिकित्सा के प्रधान अंग हैं, उसी प्रकार मालिश भी एक प्रधान अंग है, क्योंकि यह भी दवा-रहित चिकित्सा (Drugless Healing) की ही एक पद्धति है। प्रचलित यूरोपीय चिकित्सा-पद्धति के प्रवर्तक हिपोक्रेटीस ने भी इसकी व्यवस्था दी है हालांकि ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि ईसा के कई सौ वर्ष पूर्व भी ग्रीस, रूस और मिस्र आदि देशों में स्वास्थ्य-लाभ के लिए इसका प्रयोग किया जाता था।

मालिश को वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति न मान कर भी लोग आदिकाल से इसकी उपयोगिता देखते आये हैं और आज भी किसी-न-किसी प्रकार इसे अपनाते हैं। इसकी उपयोगिता आप एक साधारण-सी बात से समझ सकते हैं। छोटे-बड़े सभी घरों में नवशिशु के जन्म-दिवस से लेकर काफी बड़े होने तक प्रतिदिन उसकी तेल की मालिश होती है, जिससे रक्त-संचार के ओपजन की प्राप्ति विशेष रूप से होती रहे। स्त्रियों के उदर-सम्बन्धी रोगों में मालिश का विशेष रूप से प्रयोग होता है। सिर-दर्द इत्यादि में आम तौर से मालिश का ही सहारा लिया जाता है। शैशवावस्था में बच्चे अक्सर चारपाई या पालने से गिर जाते हैं। कोमल शरीर होने के कारण जब चोट ज्यादा लगती है तो हम किसी डाक्टर की तलाश नहीं करते, बल्कि नैसर्गिक बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर हम शीघ्र ही बच्चे को गोद में लेकर चोट खाये हुए स्थान को थपथपा कर सहलाने लगते हैं। अत्यन्त शारीरिक परिश्रम के फलस्वरूप जब हम थकान अनुभव करते हैं तो कोई दवा या लोशन नहीं लगाते, मालिश द्वारा ही आराम पाते हैं।

लोगों को मालिश का वैज्ञानिक मूल्य लगभग सोलहवीं शताब्दी के अन्त में मालूम हुआ जब शरीर-विज्ञान के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ। चूंकि रक्तसंचरण से इसका विशेष सम्बन्ध है, इसलिए सत्रहवीं सदी में जबकि रक्तसंचरण सम्बन्धी विशेष खोज हुई तो इसे अधिक आदर मिला। पर उन्नीसवीं सदी में पीटर लींग नामक स्वेडन-निवासी द्वारा इसे पूर्ण वैज्ञानिक रूप मिला, जिसके फलस्वरूप आज के चिकित्सा-जगत् में यह स्वेडिश मालिश (Swedish Massage) के नाम से विख्यात है।

वर्तमान काल में एलोपैथिक डाक्टरों और सर्जनों ने भी इसे लाभदायक समझ कर अपनाया है; पर आंशिक रूप में। कारण, ये दवा का सहारा अधिक लेते हैं। पर दवा-रहित चिकित्सा होने और मूल सिद्धान्तों की समानता के कारण प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसे विशेष रूप से अपनाया है। मालिश और विद्युत्-चिकित्सा द्वारा चिकित्सा करनेवाले चिकित्सकों का एक अलग दल ही है, जिन्हें फिजियोथेरापिस्ट (Physiotherapist) कहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसार रोग विनाशात्मक नहीं, बल्कि एक निर्माणात्मक प्रक्रिया है। सच तो यह है कि रोग एक मित्र के समान है जो हमारे शरीर की सफाई करता है। गलत आहार-विहार के फलस्वरूप शरीर में विजातीय द्रव्य जब इतना अधिक इकट्ठा हो जाता है कि शरीर के अंगों को अपना काम सुचारु रूप से करने में बाधा होती है और रक्त के उचित प्रवाह में कठिनाई उपस्थित होती है तो रोग की आवश्यकता होती है। विजातीय द्रव्य के इस संचय से विशेष स्नायुओं पर दबाव पड़ता है और फलस्वरूप दर्द और बीमारी पैदा होती है। चाहे रोगों के लक्षण कितने भी भिन्न और पेचीदे क्यों न हों, उनका कारण सदैव एक ही होता है—आन्तरिक अस्वच्छता, अवरोध। बीस शताब्दियों से अधिक से रोगों के उपचार के लिए औषधि-विज्ञान को ही एकमात्र सहारा माना जाता रहा है; पर

अब शरीरविज्ञान और रोग-सम्बन्धी यन्त्रों की विद्या में आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शरीर के अनुपयुक्त संचालन के लिए अवरोध ही उत्तरदायी है।

रोगों का वास्तविक चिकित्सक हमारे अन्दर ही विद्यमान है, बाहर नहीं। वह हमारी जीवनीशक्ति है। उसे हम आभ्यंतर चिकित्सक कह सकते हैं। रोगों को दूर वही करता है, लेकिन रोग निवारण की प्रगति उस समय प्राप्य रोगी के जीवनबल (Vitality) पर निर्भर है। यह जीवनबल भिन्न भिन्न व्यक्तियों के शरीर में भिन्न भिन्न होता है। जीवनबल का यह वैयक्तिक अन्तर मानव शरीर में विजातीय द्रव्य के अवरोध की मात्रा पर निर्भर है। हम कह सकते हैं जीवनबल जीवनीशक्ति—विजातीय द्रव्य की रुकावट।

जब स्वयं जीवनीशक्ति रोगनामक प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा इस रुकावट को दूर करने की कोशिश करती है तो बहुत-सा जीवनबल काम आता है। तीव्र रोग स्वयं उपचार है। *लेकिन जीर्ण और कान्स्टीट्यूशनल* (Constitutional) रोगों जैसे कोष्ठबद्धता, दमा, हृद्रोग, मधुमेह, गठिया, मूत्ररोग, पक्षाघात, रुमेटिज्म तथा आर्थराईटीस आदि में जिनमें रुकावट बहुत अधिक हुआ करती है, बाहरी मदद की आवश्यकता होती ही है क्योंकि ऐसे रोग के रोगियों में जीवनबल स्वभावतः कम होता है। यह तभी संभव है जबकि रोग-ग्रस्त अंगों को पर्याप्त आराम दिया जाय और साथही उन्हें सशक्त भी बनाया जाय। हम उन्हें रोगमुक्त तभी कर सकते हैं जबकि हम इन रुकावटों का उत्तम संचरण द्वारा शुद्ध रक्त पहुंचा कर दूर कर दें। यह कार्य सक्रिय व्यायाम से भी बहुत कुछ हो सकता है, पर वे स्वयं ही थकान पैदा करनेवाले और जीवनबल का ह्रास करनेवाले हैं। अतः रोगावस्था में लाभदायक नहीं। इस और सहायता अहिंसक प्रणाली से ही दी जानी चाहिए और वैज्ञानिक मालिश इसके *लिए बहुत ही उपयुक्त है।* कारण, यह भी एक निष्क्रिय व्यायाम (Passive Exercise) के सिवा और कुछ नहीं। यह एक यांत्रिक विज्ञान है और प्रधानतया रक्तसंचारण उत्तम कर देता है। *मालिश का विशेष सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप* में मांसपेशियां, प्रधान अंगों जैसे—हृदय, मेदा, छोटी तथा बड़ी आंतें, फेफड़े, यकृत तथा गुर्दे आदि, रक्तसंचरण संस्थान और साधारणतया उन तंतुओं से है, जिन्हें कोमल तंतु कहा जाता है।

यदि आप सिर्फ अपने हाथ के किसी शिरा के रक्त को दबा कर ऊपर की ओर भेजें तो आपको ज्ञात *होगा कि कुछ समय के लिए उस शिरा को आप खाली कर* देते हैं। पर शीघ्र ही आप यह भी देखेंगे कि उसमें फिर रक्त लौट आया। यह वही रक्त नहीं होता। जिस रक्त को आपने आगे बढ़ा दिया वह फिर उस रिक्त शिरा में लौट नहीं आता। यह नया रक्त धमनी से आता है। यह साधारण-सी बात मालिश का वैज्ञानिक रीति से समझने के लिए बड़े काम की है। इससे हमें पता चलता है कि इस प्रकार रक्त को ऊपर अर्थात् हृदय की ओर *भेजा जा सकता है।*

सिवा मालिश के किसी भी दवा से हम शिरा में *रक्त को इस तरह दौड़ा कर रक्तसंचरण उत्तम नहीं बना* सकते। शरीर में किसी स्थान पर यदि अवरोध है तो हम मालिश द्वारा उसे दूर कर सकते हैं। यही एकमात्र ऐसी क्रिया है, जिसके द्वारा हम शरीर में रक्तसंचार कर हृदय को आराम दे सकते हैं। इतनी-सी बात तो साधारण मालूम पड़ती है, पर इस की उपयोगिता और इसका महत्व आप तब समझ सकेंगे जब आप यह जान पाएंगे कि लगभग ८० फीसदी रोगों का कारण किसी-न किसी दर्जे तक मलावरोध या शोथ ही होता है। लगभग सभी प्रकार के रक्तसंचरण, श्वास और पाचन-सम्बन्धी रोगों के होने में पार्थिव अवरोध की ही प्रधानता रहती है और इसको दूर करने के लिए मालिश के उपयोग का महत्वपूर्ण स्थान है।

मालिश कराने से छोटी तथा बड़ी आंतें, जिगर, गुर्दे, फेफड़े तथा हृदय आदि अंगों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वे अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगते हैं जिससे मलनिष्कासन भली प्रकार होता है। न तो आंतों में पड़ा-पड़ा मल सड़ता है, जिससे अन्तर्विष की उत्तेजना (Auto-intoxication) हो और न यूरिक एसिड

आदि विष ही शरीर में रह पाते हैं। श्वास-प्रश्वास की क्रिया गहरी हो जाती है जिससे फेफड़ों को काफी मात्रा में ऑक्सिजन मिलता है। दिल और फेफड़े मजबूत होते हैं और शरीर में शुद्ध रक्त का संचार होने लगता है। हृदय और नाड़ियां सबल हो जाती हैं। शरीर का स्वस्थ दशा में रहना बहुत-कुछ त्वचा की दशा पर निर्भर है। इसके लिए आवश्यक है कि उसकी नमी बनी रहे और वे अपना कार्य सुचारु रूप से करें। मालिश से खून का दौरान त्वचा की ऊपरी सतह तक आ जाता है। हाथों की रगड़ से त्वचा को गर्मी भी मिलती है जिससे त्वचा स्वस्थ रहती है।

ऐसा पाया जाता है कि कोमल तंतुओं के विशिष्ट संचालन द्वारा जीर्ण और कान्स्टीट्यूशनल (Constitutional) रोगों का उपचार तो किया ही जा सकता है, हड्डियों के निर्माण-कार्य को भी सतेज और उत्तम किया गया है। हड्डी टूटने या अन्य हड्डी-संबन्धी विकारों में अब यह सामान्य उपचार के समान प्रयुक्त होने लगा है। यह उन रोगों में तो लाभदायक है ही जिनमें आमतौर पर दवा का प्रयोग होता है, साथ ही ऐसे रोगों में भी लाभदायक है, जिनमें शल्य क्रिया की अपेक्षा रहती है। औपचारिक व्यायाम (Remedial Exercise) और विद्युत्-चिकित्सा में तो इसका प्रयोग दिनोंदिन तीव्र गति से बढ़ रहा है। मालिश में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यों ही साधारण रीति से रगड़ नहीं दिया जाय; बल्कि सावधानी के साथ रोग-ग्रस्त अंगों की विशेष अवस्थाओं को देखते हुए मालिश की जाय। शरीर के कोमल तंतुओं के विशेष संचालन द्वारा मालिश के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(१) रक्त और लसिका (Lymph) की गति को उत्तेजित कर शरीर की ऊपरी सतह तक उसे ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा में पहुंचाना।

(२) स्नायु के छोरों (Nerve Endings) को उत्तेजित करना।

(३) स्नायुओं को आराम पहुंचाना।

(४) त्वचा की क्रिया को सतेज किया जाना, जिससे वह रोमकूपों द्वारा गन्दगी बाहर कर सके।

(५) शरीर के आन्तरिक अंगों में चिपके हुए विकारों को छुड़ाकर श्वासादि द्वारा उन्हें बाहर निकालना।

(६) तंतुओं के सूजन और अप्राकृतिक वृद्धि को दूर करना।

(७) रक्तसंचार की गति तीव्र करके शरीरांगों को अधिक मात्रा में पोषण देना।

मालिश की इस प्रक्रिया में निम्नलिखित छः प्रकार की गतियों अथवा संचालनों का उपयोग होता है :

(१) थपथपाना (Stroking)
(२) गूंधना (Kneading)
(३) घर्षण (Friction)
(४) प्रतिघात (Percussion)
(५) स्फुरण (Vibration)
(६) सक्रिय और निष्क्रिय संचालन (Active and Passive Movements)

मालिश करने के लिए किसी हथियार या औजार की आवश्यकता नहीं। आराम से लेटने लायक एक मेज, थोड़ा अनुत्तेजक तेल और विषय के विशेष ज्ञान के साथ इस काम में सिद्धहस्त व्यक्ति।

चूंकि रोमछिद्रों की क्रिया मालिश का एक आवश्यक अंग है इसके लिए गर्म और हवादार कमरा ही उपयुक्त है। तेल की भांति स्निग्ध पदार्थों की आवश्यकता होती है; पर यह भी आवश्यक है कि वे दवामिश्रित न हों। त्वचा की ऊपरी सतह पर दवा मालिश कर शरीर में प्रविष्ट कराने को Inunction कहते हैं जो एक अलग चिकित्सा-प्रणाली है। जैतून या तिल के तेल के समान ही कोई अनुत्तेजक सात्विक पदार्थ मालिश के लिए उपयोगी है। सरसों का तेल जैसा थोड़ा उत्तेजक कफ प्रकृति वाले व्यक्तियों या सर्दी तथा शोथरोग से पीड़ित रोगियों के लिए लाभदायक है। जिन्हें पसीना शीघ्र या अधिक मात्रा में आता है उन्हें भीगे तौलिये से शरीर को अच्छी तरह रगड़ना लाभदायक है। इस प्रकार के तेज घर्षण से शरीर खूब गर्म हो जाता है अतएव मालिश के बाद ठंडे जल का स्नान बहुत लाभदायक है। पर शरीर की गर्मी को बनाये रखने के लिए यह भी

आवश्यक है कि स्नान के बाद शरीर को रगडकर धूप मे बैठकर फिर स गर्म कर लिया जाय। इस स्नान के बाद जो गर्मी लाने के लिए शरीर का रगडने की जरूरत होती है उसके लिए किसी मालिश करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता नही। सिर्फ अपनी हथेलिया मे ही रगड लेना लाभदायक होगा। पर साधारणतया मालिश का उपयुक्त समय स्नान के बाद ही होता है, क्योकि स्वास्थ्यार्थी का शरीर ठडा होने के कारण मालिश करने *वाले के शरीर से विशेष गर्मी प्राप्त करता है।*

मालिश करने के स्थान और विधिया से मालिश करने वाले का स्थान कम महत्व का नही है। सभी तरह के व्यक्ति मालिश करने के लायक नही होते। जिनके हाथ-पैर ठड रहते हैं या पसीजते हों *या जिनमें स्वार्थ या कुत्सित विचार* हों वे चिकित्सक के लिए उपयुक्त नही। रोगी व्यक्ति स मालिश कराने से लाभ के बदले हानि ही होती है। बहुत से रोगो के *लक्षण स्वास्थ्यार्थी म धीरे-धीरे प्रकट होने लगते* हैं। मालिश करने वाले में तीन विशेष, गुणो का होना अति आवश्यक है। उन्हे स्वस्थ, उदार और सच्चरित्र होना चाहिए। उनका जीवनबल भरपूर हो, हथेलिया *कोमल, सूखी और साधारण गर्मी लिये हो। एक* सबसे प्रधान गुण जो चाहिए वह यह है कि उनके हृदय में *रोगियो की सेवा-भावना हो।*

मालिश करते समय शरीर को बिल्कुल ढीला छोड देना चाहिए। इससे मालिश करनेवाले का विशेष सुविधा और मालिश करानेवाले को आराम और लाभ होता है। किसी भी विशेष अग के मालिश म दस-पन्द्रह मिनट *से ज्यादा समय की आवश्यकता नही होती।* बच्चा के लिए तो इससे भी थोडा समय पर्याप्त है, क्योकि उनके शरीर शीघ्र ही गर्म हो जाते हैं। हा, पूरे शरीर की मालिश म आधा घटा या कुछ अधिक समय लग जाता है।

हिन्दू सस्कृति के स्वास्थ्य-नियमो म तेल-मालिश और स्नान को नित्यकर्म का एक प्रधान अग माना गया है। इसे किसी रोग-विशेष की चिकित्सा समझ कर नही, बल्कि स्वास्थ्य कायम रखने के लिए किया जाता है। पर साधारण सूखे और तेल-मालिश म *बहुत अन्तर है।* तेल मालिश करने से *तेल का कुछ अश रोमकूपो द्वारा* शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। शारीरिक शक्ति का जहा तक प्रश्न है वहा तेल, घी स ज्यादा शरीर को बलिष्ट करता है। तेल स्नान से उतना लाभ नही होता जितना मालिश करके तेल को रोमकूपो द्वारा शरीर म प्रविष्ट कराने से, *यहा तक कि मदाग्नि के रोग भी जिनके लिए* घी-तेल बहुत ही हानिप्रद है, तेल मालिश कर इसका लाभ उठा सकते है। उदाहरणार्थ, मालिश की एक प्रक्रिया है जो तीन प्रकार से कार्यान्वित की जा सकती है

(१) सूखे हाथो स साधारण मालिश।

(२) किसी कमरे के अन्दर तेल मालिश।

(३) धूप म लेट कर तेल मालिश।

साधारणतया धूप म तेल मालिश इन तीना विधिया मे लाभदायक है। यहा सिर्फ विटामिन 'डी' के सम्बन्ध में पाठको का ध्यान आकृष्ट कर देना मै आवश्यक समझता हू चूकि इसका सूर्य-किरणो से घनिष्ट *सम्बन्ध है।* विटामिन 'डी' की कमी बालक और युवा में दो भिन्न भिन्न लक्षण प्रकट करती है। बच्चो म इसकी कमी से हड्डी की विकृति, रक्तहीनता और सूखा *रोग प्रकट होते है। युवा में अन्तर्विष की उत्तेजना से* मधुमेह, रुमेटिज्म, निउराईटीस और ब्राइट्स रोग प्रकट होते है। तेल की मालिश के साथ धूप सेवन करने से विटामिन 'डी' रक्त द्वारा शोधित किया जाता है। लगभग २० मिनट मे इसकी न्यूनतम दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार इन रोगो की सख्या बहुत ही कम कर दी जा सकती है। *यह प्रयोग बच्चो के सूखारोग के लिए तो* अद्वितीय है। हर साल लाखो बच्चे जो इस रोग से अकाल ही काल के गाल में चले जाते है, उनम अधिकाश युक्त आहार के सेवन के साथ इसका प्रयोग कर बचाये जा *सकते है। इससे बढकर विटामिन 'डी' की प्राप्ति का कोई* दूसरा साधन और इस रोग की दूसरी चिकित्सा-विधि का आविष्कार नही हुआ है।

रोगो से निवृत्ति या बचाव के लिए आन्तरिक स्वच्छता *का विशेष आवश्यकता है। मालिश स मल निष्कासक* अगो को बल मिलता है और वे शरीर की गदगी भरी

प्रकार दूर कर देते हैं। मालिश से जिस प्रकार रोग दूर कर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है उसी प्रकार रोग के प्रतिरोध की क्षमता भी बढ़ती है। नस-नाड़ियां स्वच्छ दशा में रहती हैं। अवयव कोमल रहते हैं और रक्त में लालकणों की संख्या अधिक होती है जो उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है। ऐसी दशा में मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक रहता है स्वस्थ मन में ही सात्विक विचारों का समावेश होता है, भावनाओं की ताज़गी होती है। उसे निर्भयता और साहस प्राप्त होता है और मनुष्य हर समय आशावान रहता है।

मिट्टी से रोग-निवारण

श्री भूपतराय मो० दवे

हमारे आरोग्य-धाम (प्राकृतिक चिकित्सा गृह) में विविध प्रकार के रोगी चिकित्सा के लिए आते हैं। उनपर मिट्टी का प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया गया है कि मिट्टी से रोग दूर होते हैं।

मिट्टी का मूल्य आंका नहीं जा सकता। मिट्टी अनेक प्रकार से मनुष्य के लिए उपयोगी है। मिट्टी से अनाज पकता है। मिट्टी से अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थ पैदा होते हैं। मिट्टी से बहुमूल्य धातुएं, पेट्रोल, घासलेट और अन्य प्रकार के तेल निकलते हैं। इसके अलावा हमारे शरीर के रोगों को दूर करने के लिए मिट्टी अनेक प्रकार से उपयोगी होती है। कारण, हमारा शरीर पांच तत्वों से बना हुआ है और उनमें मिट्टी भी एक तत्त्व है। अत: हमें मिट्टी-रूपी औषधि की कीमत आंकना सीखना चाहिए।

मिट्टी और कमजोर अंतड़ियां

एक सत्य कथा सुनिये। एक रोगी का रोग किसी भी तरह दूर नहीं होता था। मां-बाप उसे जल-वायु बदलने के लिए आबू ले गये, किन्तु वहां भी उसे आराम नहीं हुआ। अन्त में निराश होकर बम्बई आये। सब प्रकार की चिकित्साओं से थक कर दवा लेना बन्द कर दिया। एक स्नेही मित्र की सलाह से प्राकृतिक चिकित्सा करवाने के लिए उसने 'आरोग्य-धाम' में रहने का निश्चय किया।

मैंने रोगी की शारीरिक परीक्षा करके उसका उपचार प्रारम्भ किया। उसको गत पांच वर्षों से भूख नहीं लगती थी। जो भी भोजन वह करता, उसे खट्टी डकारें आतीं। पेट भारी लगता। सारे दिन बेचैनी रहती और शरीर में एक प्रकार की दुर्बलता अनुभव होती। हाथ-पांवों में दर्द रहता। किसी भी किस्म की खुराक में उसे स्वाद नहीं आता था। पेशाब पीला और दुर्गन्धयुक्त। इन सब कारणों से उसे बार-बार दस्त लगते। दिन में छः-सात मर्तबा दस्त आते, फिर भी दस्त पतले और दुर्गन्धपूर्ण होते। दस्त आने के बाद पेट में दर्द होता। घड़ी भर चारपाई पर आराम से पड़ा रहना पड़ता। पेट पर गरम पानी की थैली से सेक करने से राहत मिलती। किन्तु यह स्थिति लम्बे समय से चली आने के कारण रोगी इस रोग से बहुत परेशान हो गया था। उसका जीवित रहने का धैर्य खत्म हो गया। जीवन में किसी प्रकार का रस नहीं रहा। ऐसी स्थिति में जीवन कहां तक टिक सकता है?

सच बात तो यह कि उसकी अंतड़ियां बहुत कमजोर पड़ गई थीं। जठर की अग्नि मंद हो गई थी। जो भी खाया जाता, वह पचता नहीं था। इस स्थितिमें बार-बार दस्त लगना स्वाभाविक ही था।

रोगी की चिकित्सा

चिकित्सा शुरू की। सवेरे ताजी छाछ का एक प्याला वह पीता। दो घंटे बाद सन्तरों का रस। दोपहर को पेट पर गीली मिट्टी का लेप। शुरू में दस मिनट, फिर जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे प्रतिदिन पांच मिनिट का समय बढ़ाया गया और अन्त में एक घन्टे तक रखा जाने लगा। समय गुज़रने के साथ लेप सूखता जाता और मिट्टी बिल्कुल सूख जाती। पेट पर से मिट्टी का लेप हटा देने के आध घन्टे बाद ताजी छाछ का एक प्याला दिया जाता। शाम को चार बजे एक

प्याला सन्तरे का रस। छाछ और रस को खूब घूम-घूम कर और आराम से पीने का अभ्यास कराया गया। पेट पर मिट्टी का लेप करने की क्रिया प्रति तीन घंटे बाद होती। मिट्टी के इस प्रयोग से रोगी की अंतड़ियों को ठण्डक और आराम पहुंचता। उन्हें नया रक्त मिलता। फलस्वरूप दस्तों की संख्या घटने लगी।

एकाध महीने तक उपरोक्त प्रकार का तरल पदार्थ सेवन करने और मिट्टी का लेप करने से रोगी की शारीरिक स्थिति में ठीक-ठीक सुधार हुआ। उसने उपरोक्त प्रकार का कार्यक्रम दो महीने और जारी रखा। अब उसकी तबीयत बिल्कुल अच्छी है। जैसे जैसे अंतड़िया में चेतना आती गई, वैसे वैसे छाछ और सन्तरे के रस की मात्रा बढ़ती गई और सवेरे तथा सायंकाल थोड़ा घूमने का व्यायाम भी शुरू किया गया, आज रोगी का स्वास्थ्य उसके मित्रा और कुटुम्बियों के लिए स्फूर्तिदायक बन गया। प्राकृतिक चिकित्सा के जरिये उसने अंतड़ियों के रोग को दूर कर के स्वस्थ शरीर, स्फूर्ति और उत्साह तथा उल्लास प्राप्त कर लिया है।

अब वह रोटी, शाक-भाजी, दही, छाछ, चावल, दाल, मोसम्बी, नीबू आदि खुराक में ले सकता है। सब चीजों को भली प्रकार पचा सकता है। फलस्वरूप उसे एक-दो दस्त बंधे हुए नियमित होते हैं। मिट्टी के उपचार से उसकी अंतड़िया और जठर आदि सशक्त, स्वस्थ और चेतन बन गये हैं।

अनेक रोगों में रामबाण

नाक में से नकसीर गिरती हो, मुंह में छाले हो जाते हों, बार-बार कब्ज हो जाता हो, रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेशर) हो, बुखार आता हो शरीर के किसी भाग पर सूजन हो, दस्त लगते हों अथवा संग्रहणी का रोग हो, आंखें जलती हों अथवा सिर गरम रहता हो, इस प्रकार के अनेक रोगों में गीली मिट्टी का पेट पर लेप करने से खूब आराम मिलता है। कितनी ही बार रोग जड़-मूल से नष्ट हो जाता है। मेरा यह वर्षों का अनुभव है।

स्त्रियों के रोग

आजकल स्त्रियों को मासिक धर्म (ऋतु स्राव) संबंधी अनेक शिकायतें रहने लगी हैं, विशेषकर थोड़े समय में मासिक धर्म (ऋतुस्राव) होना, अतिरिक्त रजोदर्शन, अत्यधिक रजोदर्शन, लोहिया (प्रतिदिन रक्तस्राव होना), गर्भाशय में सूजन, प्रदर आदि इस प्रकार की शिकायतों में पेट पर गीली मिट्टी का लेप करने से शर्तिया लाभ होता है।

मिट्टी के प्रयोग से पूरा फायदा उठाने के लिए आहार-विहार में भी हेर-फेर करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो मिट्टी के प्रयोग से पूरा लाभ नहीं मिलेगा।

स्त्रियों को मासिक रजोदर्शन होना स्वाभाविक है, किन्तु कितनी ही स्त्रियों को यह रजोदर्शन दस-बारह दिन तक होता रहता है। इससे शरीर में फीकापन और निर्बलता आ जाती है। पेट पर गीली मिट्टी का लेप दस से बीस मिनिट तक रखने से रजोदर्शन थोड़े दिनों में बन्द हो जायगा। खुराक में गरम पदार्थ जैसे बैंगन, अचार, मिठाई, खट्टे पदार्थ आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।

लेप बनाने की रीति

मिट्टी को साफ करलो, कचरा-कंकर निकाल डालो। उसके बाद एक मिट्टी अथवा पीतल के बर्तन में उसे डालो। फिर स्वच्छ पानी। मिट्टी अच्छी तरह भीग जाय तबतक पानी डालते रहना चाहिए। एक-दो घण्टे मिट्टी को भीगने दो। उसके बाद उसका उपयोग करो। रोटी के लिए गोंधकर जैसे आटा तैयार करते हैं, वैसे ही गीली मिट्टी का पिण्ड बनाना चाहिए। फिर पतले कपड़े के टुकड़े पर गीली मिट्टी को फैला दिया जाय और कपड़ा दुहरा करके पेड़ू अथवा पेट पर अथवा जहां आवश्यक हो, वहां रख दिया जाए। लेप करने के बाद ठण्डी हवा न लगने देने के लिए गरम कपड़े में ढक देना चाहिए।

मिट्टी कैसी होनी चाहिए

लाल, पीली, काली, सफेद अथवा जिस प्रकार की

भी मिट्टी सुलभ हो, उसका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु सबसे अच्छी काली मिट्टी होती है। खेत की काली स्वच्छ मिट्टी अनेक रोगों में लाभदायक होती है। ऐसी काली मिट्टी न मिल सके तो और किसी प्रकार की मिट्टी काम में ली जा सकती है।

याद रखिये

मिट्टी का लेप शुरू में पांच से दस मिनट तक रखा जा सकता है। अनुकूल प्रतीत हो तो थोड़ा-थोड़ा समय बढ़ाया जाय। एक से दो घन्टे तक मिट्टी का लेप रखा जा सकता है। यदि रोगी को अनुकूल पड़े तो चार से छः घन्टे तक रखा जा सकता है। जिसकी शारीरिक स्थिति बहुत कमजोर हो, उसे थोड़े समय तक ही रखना चाहिए। भोजन करने के बाद एक घन्टे पीछे मिट्टी का लेप किया जाय।

मिट्टी का लेप सवेरे, दोपहर, सायंकाल और रात्रि को भी किया जा सकता है। रोगियों को अपनी अनुकूलता और प्रकृति को समझकर करना चाहिए। ठण्ड लगे, कंपकपी हो तो नहीं करना चाहिए या गरम चादर ओढ़कर करना चाहिए। उससे ठण्डी हवा असर नहीं करेगी। मिट्टी का लेप करने के बाद पेट में दर्द हो तो गरम पानी की थैली से सेंक करो।

पुराना कब्ज़ रहता हो तो पहले पेट पर दस मिनट गरम पानी की थैली से सेंक करो और उसके बाद लेप।

मिट्टी के विषय में इतना जान लेने के बाद हम समझ-बूझ कर मिट्टी का प्रयोग करें और रोगमुक्त बनें। मिट्टी में अनेक गुण हैं। उसकी सहायता से शरीर में से ज़हर चूस लिया जाता है। शरीर में से विषैले तत्वों को बाहर निकालने के लिए मिट्टी का यथासंभव उपयोग करके हमको रोगमुक्त होना चाहिए और अन्य लोगों का सहायक बनकर उन्हें रोग से बचाना चाहिए।

मिट्टी मर्त्यलोक की परमौषधि है।

मिट्टी किन-किन रोगों में लाभदायक है?

श्री युगलकिशोर चौधरी

आज संसार में लाखों तरह की प्रकृति-विरुद्ध औषधियां प्रचलित हैं, जो भिन्न-भिन्न रोगों की चिकित्सा में काम आ रही हैं। लोग बड़े चाव से उनका उपयोग करते हैं, परन्तु खेद है कि उन प्रकृति-विरुद्ध औषधियों से जनसाधारण को लाभ नहीं होता, उलटा बड़ा ही नुकसान हो रहा है। हम लोग ईश्वर और प्रकृति से अधिक बुद्धिमान बनने की चेष्टा कर रहे हैं। जिस प्रकार अपनी नाभि में बहुमूल्य सुगंधित कस्तूरी रखते हुए भी पथ-भ्रष्ट होकर मृग इधर-उधर भटकता है और परिणाम में दुःख भोगता है उसी तरह आज भूले हुए मानव-समाज को दुःख हो रहा है। मिट्टी जैसी सुलभ, सस्ती, अचूक दवा पास होते हुए भी हम लोग दुर्लभ, महंगी और हानिकर औषधियों के पीछे दौड़ते हैं और परिणाम में अनेक कष्ट भोगते हैं। इस लेख में संक्षेप में मिट्टी के अद्भुत रोगनाशक प्रभाव और विधि का वर्णन किया जायगा जिसे पढ़कर सर्वसाधारण लाभ उठा सकते हैं।

शिर पीड़ा

सभी प्रकार के सिरदर्द के लिए गीली चिकनी मिट्टी का लेप करना चाहिए। सुबह-शाम दो बार लगाते रहिये। शिरदर्द अवश्य ठीक हो जायगा। कठिन और दीर्घ शिर पीड़ा में उपवास, भोजन सुधार, पेट की सफाई इत्यादि अन्य प्राकृतिक उपचार भी करना आवश्यक हैं। आधाशीशी में भी मिट्टी का लेप होने से दूषित पदार्थ निकल कर आराम होता है।

नेत्र पीड़ा

सभी प्रकार की आंख के रोगों में गीली चिकनी मिट्टी की पट्टी आंखों पर बांधिये। मिट्टी आंख में न जावे। इससे नेत्रों को बड़ा आराम मिलेगा। फूली, जाला आदि भी दूर होंगे, ज्योति बढ़ेगी।

कर्ण रोग

कर्ण रोगो में भी गीली चिकनी मिट्टी को कान की जड मे और ऊपर से भर देना चाहिए । अन्दर की पीडायें फुन्सी आदि और कान के जख्म आदि सभी मे मिट्टी अत्यन्त गुणकारी सिद्ध होगी । कठिन मामलों मे आहार भी स्वाभाविक होना जरूरी है ।

मसूडे फूलना, जवडे का दर्द

मसूडे फूलना और जवडे के दर्द मे मिट्टी अन्य रोगों की तरह अद्भुत लाभ पहुचाती है । मिट्टी से तुरन्त दर्द बन्द होगा, सूजन उतरेगी और आश्चर्यजनक लाभ होगा । जो पीडायें किसी भी उपाय से ठीक नही होती वे मिट्टी से सरलता से अच्छी हो जाती हैं। दात के रोगों में गीली मिट्टी बाहर गाल पर पीडा के स्थान के ठीक ऊपर लगाई जावे ।

गले और कंठ की सूजन, पीडा

गले और कठ की सूजन, पीडा आदि में गीली मिट्टी की पट्टी गले के चारा तरफ बाधनी चाहिए । दिन मे कई बार उसे बदलना चाहिए । शीघ्र आराम होगा, लेकिन आहार केवल दूध का होना चाहिए, अन्यथा स्थायी लाभ न होगा ।

फेफडे के रोग और दमा आदि

फेफडे के रोग दमा आदि मे अन्य स्वाभाविक उपचारो के साथ-साथ विधिपूर्वक बरावर सीने पर मिट्टी की पट्टी वाधी जावे । इससे पीडायें दूर हो कर और कफ ढीला होकर बाहर गिरेगा और रोगी दुःख नही पावेंगे ।

स्त्रियों की स्तन-पीडायें

प्रकृति-विरुद्ध आहार और बच्चा के स्तन काटने आदि कारणा मे स्त्रियों के स्तन पक जाते है, फुसिया हो जाती है, फिर उनमे घाव होकर मवाद आने लगता है। वेचारी भोली स्त्रिया अनेक प्रकार की पीडायें भोगती हैं । प्रकृति विरुद्ध लेप, मरहम, आपरेशन से सिवाय धन खर्च के कोई सच्चा लाभ नहीं होता। गीली चिकनी मिट्टी विधिपूर्वक लगानी चाहिए । दिन में दो बार पट्टी बदलिये, घाव को ठडे पानी मे धाइये । मिट्टी से पीडा दूर होगी, घाव भर जावेगा और शीघ्र सव प्रकार की स्तन-पीडायें दूर होगी । स्वाभाविक आहार आवश्यक है ।

मलमूत्र वन्द होना, कब्ज आदि

कब्ज के रोग को पूरे पेडू पर रोजाना गीली चिकनी मिट्टी (पीली या काली या भूरी जैसी मिले) बाधनी चाहिए । पाचनशक्ति बढेगी और खुलकर साफ दस्त होगा, टट्टी-पेशाव बन्द होने पर भी गीली मिट्टी पेडू पर बाधी जावे । अक्सर रोगी मरते-मरते बच गये हैं ।

पेट का फोडा, जलोदर

पेट का फोडा (Cancer of the Stomach) जैसे भयकर रोगो में भी मिट्टी ने आश्चर्यजनक प्रभाव दिखाया है । हाल ही में एक पेट के फोडेवाला रोगी मिट्टी के प्रयोगो और स्वाभाविक आहार द्वारा मरने मे बचा है । विधिपूर्वक मिट्टी के प्रयोगो से अनेक उदररोग पेट के फोडे, जलोदर आदि भी अवश्य आराम हो जाते हैं ।

प्रसव-पीडा, बच्चे का बाहर न आना

यदि बालक होते समय गर्भवती दुःख पावे और बच्चा बाहर न आवे तो विधिपूर्वक गीली मिट्टी पेट पर बाधी जावे । यदि बच्चा अन्दर मर भी गया हो तो भी मिट्टी की पट्टी से फौरन गोले की तरह बाहर आ जावेगा । स्त्री की जान बच जायगी । जीवित बच्चा तो मिट्टी की पट्टी से जल्दी बाहर आ जावेगा । क्या वैद्य, हकीम, डाक्टर इस सीधी स्वाभाविक चिकित्सा को पसन्द करेंगे ?

कोप-वृद्धि

स्वभाव-विरुद्ध जीवन से कब्ज आदि होने पर विजातीय द्रव्य के फोता मे आने से वे पानी मे भर जाते है, रोगी कष्ट पाता है, आपरेशन रूपी भयकर उपाय काम मे लाना पडता है । विधिपूर्वक मिट्टी की पट्टी पेट पर और काप पर रोजाना लगाने से शीघ्र यह रोग अच्छा हो जायगा। इसमे भी स्वाभाविक आहार आदि अन्य उपचार अत्यन्त आवश्यक है ।

एक्जिमा आदि

व्यौची और दाद कैसे दुखदायी रोग हैं। अक्सर रोगी उम्र भर दुख पाते हैं। अनेक लेप मरहम आदि व्यर्थ हो जाते हैं। वे ही व्यौची, दाद आदि अन्य स्वाभाविक उपचार, रोशनी और हवा का स्नान, स्वाभाविक आहार, प्राकृतिक स्नान आदि के साथ बराबर मिट्टी की पट्टी बांधने से ठीक हो जाते हैं। लेखक ने हाल ही में ३० साल के कठिन एक्जिमा की सफलतापूर्वक चिकित्सा की है, जिसे लोगों ने बड़े आश्चर्य की दृष्टि से देखा है।

नासूर, रसोली

नासूर, रसोली आदि बड़े दुसाध्य रोग हैं। वैद्य-हकीमों के पास तो शायद इसकी कोई चिकित्सा ही नहीं है। डाक्टर लोग बार-बार आपरेशन करते हैं; पर बहुधा बेकार। रोगी भयंकर कष्ट उठाते हैं। अन्य स्वाभाविक उपचारों के साथ-साथ अथवा केवल मिट्टी की पट्टी से ही कठिन-से-कठिन नासूर, रसोली अच्छे हो जाते हैं। क्या ही अच्छा हो कि भारत में इस दैवी चिकित्सा से लोग लाभ उठाने लगें!

फोड़े-फुन्सी, घाव आदि

कठिन से कठिन फोड़े-फुंसी आदि अच्छा करने में तो मिट्टी सचमुच बड़ी ही प्रभावपूर्ण दवा है। बिना पीड़ा, बिना खर्च, बिना खतरे के बड़े-बड़े घाव और फोड़े-फुंसी आदि शीघ्र अच्छे हो जायेंगे।

बिच्छू, ततैया आदि के काटने में

सभी प्रकार के डंक में मिट्टी का लेप तुरन्त दर्द बन्द कर देगा और मिट्टी शीघ्र ज़हर चूस लेगी। रोता हुआ प्राणी हंसने लगेगा।

इसके सिवा सभी रोगों में मिट्टी आश्चर्यजनक प्रभाव दिखायेगी। जिस प्रदेश में जैसी मिट्टी मिले वैसी लगाई जावे, लेकिन उसे साफ होना चाहिए। मिट्टी में मिलाने के लिये पानी को गरम नहीं करना चाहिए। मिट्टी से कभी कोई हानि न होगी। सर्दी से डरने की जरूरत नहीं। मिट्टी को अच्छी तरह गाढ़ा सानकर उसकी आध इंच से एक इंच मोटी पट्टी लगानी चाहिए। ऊपर से गर्म कपड़ा रखकर उसको हल्का बांध देना चाहिए। पट्टी तकलीफ के सारे स्थान को ढक लेवे। एक घंटे के अन्दर या जैसे ही पट्टी गर्म हो जावे तो उसे अलगकर उस स्थान को भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिए। अगर पट्टी १०,१५ मिनट में गर्म हो गई हो तो तुरन्त दूसरी पट्टी देनी चाहिए, नहीं तो जरूरत पड़ने पर दो ढाई घंटे के बाद। साधारण हालतों में सुबह-शाम पट्टी देना काफी होगा। बहुत गर्मी के दिनों में ऊपर से गर्म कपड़ा देने की जरूरत नहीं है। खाने के भरसक दो घंटे बाद पेडू पर मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए।

मिट्टी बढ़िया साबुन भी है। सौन्दर्य प्राप्ति के लिये धूप में बैठकर सारे शरीर में मिट्टी लगाना चाहिए। फिर ठंडे पानी से स्नान कर लेना चाहिए। चमड़ा नरम और सुन्दर बन जावेगा।

जुकाम दूर करने के लिए आवश्यक बातें

डा० रैस्मस अल्सेकर

१. पेट को सदा साफ़ रखिये।
२. कसरत करके रक्त का संचरन ठीक रखिये और मांस-पेशियों को सशक्त बनाइए।
३. रातदिन, हर वक्त शुद्ध वायु में रहिए।
४. रोज़ सारे शरीर की त्वचा को एक बार सूखे मोटे कपड़े से रगड़िये, जिससे वह स्वस्थ रहे और स्नान तथा वस्ति के द्वारा उसे स्वच्छ रखिये।
५. प्यास को बुझाने के लिए केवल पानी ही पीजिये। चाय, कहवे आदि से दूर रहिये।

एनिमा का उपयोग और लाभ

श्री आनन्दवर्द्धन

साधारण कब्ज को दूर करने का बहुत सुगम उपाय एनिमा है। उपवास और एनिमा के संयोग से घोर कब्ज दूर किया जा सकता है। बहुत से लोग कब्ज को लाइलाज मर्ज कहते हैं, पर यह गलत खयाल है। इसे बहुत आसानी से दूर किया जा सकता है।

एनिमा वस्ति का दूसरा रूप है

यूरोप में एनिमा की ईजाद का यश कुछ प्रकृति के निरीक्षकों ने इस प्रकार लिया है कि एक लम्बी चोंच वाले पक्षी का उन्होंने एक जगह जल के पास चोंच से जल ले-लेकर गुदा में डालते देखा। इससे उन्हें बड़ी आंत में पानी पहुंचाना आवश्यक जान पड़ा और उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए एनिमा का आविष्कार हुआ।

पर अपने यहां इस कथा का आश्रय लेने की जरूरत नहीं है। वैद्यक में पंच-कर्म—स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन और वस्ति—में इसका उल्लेख है।

हठयोग में वस्ति

हठयोग के षट्कर्मों में भी वस्ति एक प्रधान कर्म है। नाभि-पर्यंत पानी में खड़े होकर या बैठकर नौली-क्रिया से गुदा द्वारा जल को बड़ी आंतों में खींचा जाता है और फिर थोड़ी देर नौली-क्रिया करके उस मल मिश्रित जल को बाहर छोड़ देते हैं और जब देख लेते हैं कि आंत बिल्कुल साफ हो गई है, अर्थात् निकलनेवाले जल का रंग ज्यों-का-त्यों है तब क्रिया छोड़ देते हैं। इस प्रकार ढाई-तीन सेर तक जल प्रति बार खींचा जा सकता है। इस क्रिया से जितनी सफाई होती है उतनी एनिमा से नहीं हो पाती। एनिमा के जरिए हफ्तों में होनेवाला काम इससे एक दिन में हो सकता है, पर इस क्रिया को जानना सबके लिए सम्भव नहीं है। इसके सीखने के लिए कई मास का समय और लगन चाहिए। साथ ही शरीर में कुछ ओज और बल भी। कमजोर, दुबले, बड़े पेटवाले आदमियों के लिए इसका सीखना कठिन है।

एनिमा क्या है ?

एनिमा डिब्बे के शक्ल का एक लम्बा बर्तन होता है, जिसके साथ चार-पांच फुट लम्बी रबर की एक नली होती है। डिब्बे के अन्तिम हिस्से में बाहर की ओर एक सूराखदार सिरा निकला हुआ होता है। उसी पर वह रबर की नली लगादी जाती है। रबर की नली के अन्तिम सिरे पर लगाने के लिए दो सींग की छोटी-छोटी नलियां मिलती हैं, एक बटनदार, दूसरी सीधी-सादी। बटनदार को रबर की नली के अंतिम हिस्से में लगा देते हैं और दूसरी सादी नली को बटनदार के ऊपरी भाग में। इस पतली नली के साथ एक फुहारेदार नली और मिलती है। वैसे काम दोनों से निकाला जाता है, लेकिन फुहारेवाली ज्यादा लाभकर साबित हुई है।

एनिमा लेने की विधि

एनिमा के बर्तन को धरती से तीन-चार फुट की ऊंचाई पर टांग कर नली को किसी साफ तेल से चुपड़ कर पाखाने के मुकाम में दो अंगुल अन्दर डालना चाहिए।

नली को गुदा में डालने के पहले एक बार बाहर ही बटन खोलकर एक-दो तोला पानी गिराकर देख लेना चाहिए कि पानी चलता है न। कभी-कभी बटन पूरा, या ढंग से न घुमाने से पानी का बहाव ठीक नहीं रहता। यह बाहर पानी की धार देख लेने से मालूम हो जायगा और एक बार खोल लेने से हवा भी निकल जायगी।

एक दूसरे यंत्र से भी एनिमा का काम लिया जा सकता है। यह टांगने की चीज नहीं है। इसके बीच का भाग एक गेंद की तरह उठा हुआ होता है। इधर-उधर नली। एक तरफ की नली पानी के बर्तन में रहती है, दूसरी ओर की गुदा में। गेंद को दबाने-छोड़ने से बर्तन का पानी गुदा में जायगा।

डिब्बेवाला एनिमा कई नाप और कई तरह का

होता है। एनामेल का, कांच का, रबर का। अढ़ाई सेर पानी का अर्थात् चार पिंट का एनिमा खरीदना चाहिए।

एनिमा का जल

एनिमा ठंडे पानी का लिया जा सकता है और गरम का भी। शुरू में लेनेवालों को गरम पानी का लेना चाहिए। अंगुली सहता गरम पानी होना चाहिए। गरम पानी से सफाई अच्छी और शीघ्र होती है। पर बराबर गरम पानी का लेने से आंतों के कमजोर होने का डर रहता है। इसलिए गरम पानी का लेनेवालों को भी चाहिए कि गरम पानी निकल जाने के बाद फिर दुबारा पाव भर ठंडा पानी ले लें और उसे रहने दें। वह कोई नुकसान नहीं करेगा। आंतों को बल देगा और थोड़ी देर में पेशाब के रास्ते निकल जायगा।

जिन्हें कुछ दिन लगातार एनिमा लेना हो उन्हें कुंए या कल के ताजे पानी का लेना चाहिए। जब गर्मी अधिक हो तो ठंडे का ही लेना ठीक है।

पानी कितना लेना चाहिए ?

शुरू-शुरू में लेनेवाले एक-दो सेर पानी ले सकते हैं। अभ्यास हो जाने पर पांच सेर तक पानी लिया जा सकता है और अच्छी सफाई के लिए कुछ दिनों तक पांच सेर लेना भी उचित है; पर जबर्दस्ती नहीं, क्रम-क्रम से बढ़ाना चाहिए। सम्भव है, सब इतना न ले सकें। एक एनिमा खाली होने के बाद उसे दुबारा भर लेना चाहिए। बराबर लेनेवालों को ढाई सेर से अधिक नहीं लेना चाहिए, बल्कि सवा सेर ही।

कितनी ऊंचाई पर रक्खें ?

एनिमा को तीन फुट से ज्यादा ऊंचाई पर रखना ठीक नहीं। अधिक ऊंचाई से गिरने से पानी की तेजी बढ़ जाती है और हाजत जल्दी हो जाती है। आराम से पानी अन्दर जाना चाहिए। अगर पानी जाते समय कुछ अखरता मालूम हो तो चुटकी से रबरवाली नली को दबाकर ज़रा देर के लिए पानी रोक देना चाहिए।

कितनी देर रुकें ?

एनिमा लेने के बाद दस-पन्द्रह मिनट तक रुकना चाहिए और लेटकर करवटें बदलना चाहिए। अपने हाथ से पेट को कुछ मलना भी चाहिए। इससे आंत का मैला घुलने में मदद मिलती है। परन्तु पाखाने में चले जाने से कभी-कभी सिर्फ पानी ही निकलता है, इधर-उधर का चिपटा मल नहीं निकलता।

अगर यह मालूम हो कि एक बार में पूरा मल साफ नहीं हुआ है तो फिर-फिर करके चार-पांच बार तक ले सकते हैं। अगर रोगी कमजोर हो तो एक ही समय में कई बार नहीं दिलाना चाहिए। उसी दिन दूसरे वक्त या दूसरे दिन दिला सकते हैं। पुराना मल एक ही दिन में नहीं साफ हो पाता, हफ्तों लग जाते हैं और कभी-कभी तो महीनों।

कमजोर रोगी के लिए पानी का बहाव और उसका जोर एनिमा के डिब्बे को ऊंचा-नीचा करके और बटन को कम-ज्यादा घुमाकर अपनी इच्छानुसार किया जा सकता है। पानी से पेट भरा जान पड़े तब भी नली को चुटकी से दबाकर पानी रोक दें तो पानी कुछ आगे बढ़ जायगा, भारीपन कम हो जायगा और आसानी से और पानी ले सकेंगे।

एनिमा लेने में लेटें कैसे ?

सीधे, पट या करवट से लेट कर कैसे भी ले सकते हैं। जो बहुत कमजोर हैं और जिन्हें आंतों का निचला हिस्सा साफ करना है उन्हें इस ढंग से लेना चाहिए कि शरीर का भार घुटनों और बाजुओं पर रहे, या घुटनों और छाती पर।

कुल पानी न निकालना

कभी-कभी एनिमा का सारा पानी आंत से बाहर नहीं होता, पेट में कुछ गुड़गुड़ाहट भी रह जाती है। इसके लिए कांखने-दबाने की जरूरत नहीं है। पाखाने में दस-बीस मिनट लगाने चाहिए। अगर तब भी कुछ पानी रह ही जाय तो उसमें तनिक भी हर्ज नहीं है।

उम्र के हिसाब से पानी

एनिमा बरस-दो-बरस के बच्चे से लेकर सौ बरस के बूढ़े तक को दिया जा सकता है। यह स्त्री-पुरुष सब के लिए है। छोटे बच्चों को पानी थोड़ा दें। जैसे साल भरके बच्चे को पाव भर, चार बरस के बच्चे को आध सेर, आठ बरस के बच्चे को तीन पाव और और बारह बरस के बच्चे को सेर भर।

एनिमा का मल

एनिमा लेने से मल मिला हुआ पतला दस्त होगा। कभी-कभी बीच में गाठें और गाढा मल भी निकलता है। शुरू में अक्सर पानी ही आता है, फिर मटा पानी और तब मल मिला पानी। लेखक ने अपने इक्कीस दिन के उपवास में एक ही समय में बराबर दो बार एनिमा लिया और कुछ-न-कुछ मल आता रहा है। यही हालत दूसरे दो सप्ताह के उपवास में रही।

एनिमा कब ले ?

एनिमा यो तो खाने के दो घटा बाद और एक घटा पहले जब जरूरत हो ले सकते है। अगर शौच के समय एनिमा लेना चाहे तो उचित यह होगा कि पहले शौच हो आकर तब लें। पर जिन्हें अनेक दिन लेने की जरूरत हो उनके लिए अच्छा है कि रात को सोने के पूर्व ले। एनिमा लेने के पहले आध सेर गरम पानी पी लेना अच्छा रहता है। सोते समय पेट साफ हो जाने से नींद अच्छी आयगी।

एनिमा लेकर नहाने में कोई हर्ज नही है।

एनिमा को एक बार पाखाने जाने की अपेक्षा ज्यादा या कम काम नही मानना चाहिए कि उसके लिए बहुत जाच-पडताल की जरूरत हो। दो चार बार लेने के बाद बुद्धिमान आदमी खुद सब चीजे समझ सकेंगे। लेने के पहले जो शकाए होंगी वे सब लेने के बाद दूर हो जायगी।

एनिमा के बाद कभी-कभी एकाध दिन शौच नही होता या कम होता है। इसमें घबराने की कोई बात नही, शीघ्र ही यह ठीक हो जाता है। लगातार कुछ दिनो एनिमा लेकर छोडने पर प्राय यह बात हो जाती है।

कब्ज की जाँच के लिए एनिमा

बहुत लोग कहते हैं, हमें दस्त दोनो वक्त होता है। पर दोनो वक्त दस्त होना इस बात की निशानी नही है कि उन्हें कब्ज नही है। जब वह समझते है कि अब शौच साफ हो गया है और पेट में मल नही है तब उन्हे एनिमा लेकर जाच कर लेनी चाहिए। जिन्हे कब्ज नही है उन्हे जल्दी कोई रोग होने की सम्भावना नही है।

रोगो मे एनिमा

कब्ज के अलावा बुखार, खासी, दमा, सिरदर्द, पीडा की दशा में भी एनिमा लिया जा सकता है। वास्तव में तो सभी रोगो में बडी आत मल से कुछ-न-कुछ भरी ही रहती है, जिसे साफ करने से जरूर राहत मिलती है। बुखार तो ठडे पानी का एनिमा देने से फौरन घटेगा। एक-दो डिगरी जाना बहुत आसान बात है।

मियादी बुखार या किसी भी तेज बुखार में ज्वर को एक सीमा मे रखने में एनिमा से बहुत सहायता मिलती है। इसके लिए ७०°-८०° डिगरी के (शरीर का ताप देखने वाले थर्मामीटर से) सेर डेढ सेर पानी का एनिमा उपयोगी होगा। पानी को बहुत धीरे-धीरे चढने देना और यथाशक्ति दस-पद्रह मिनट रोकना ही चाहिए। यह पानी निकल जाने पर यदि ज्वर कम न हो जाय तो इतना ही पानी फिर चढाया जा सकता है। पानी को और अधिक देर रोका जा सकता है, पर यदि रोगी को ठडक लगने लग तो या तो पेडू पर गरम पानी की बोतल या थैली रखनी चाहिए या पानी निकाल देना चाहिए। प्राय इसमे बहुत जल्दी ज्वर हट जाता है।

पीलिया या कामरू रोग में—जिसमें सारा बदन पीला पड जाता है—गरम पानी के एनिमा के बाद ठडे पानी का एनिमा लेना बहुत लाभ करता है।

खाज-खुजली के रोगो में एनिमा विशेष उपयोगी है। इसके प्रयोग से त्वचा और गुर्दे क्रियाशील हो जाते है, जिससे विकृत पदार्थों के बाहर होने में मदद मिलती है।

गठिया के रोगी कुछ दिनो लगातार एनिमा लेकर महीनो की चिकित्सा का काम सप्ताहो में निकाल सकते है।

हाथ-पैर ठडे पड जाने पर गरम पानी का एनिमा जादू का-सा असर करता देखा गया है। पतले दस्तो के आरम्भ होने पर या पेट में दर्द शुरू होते ही एक-दो बार एनिमा लेने से जरूर आराम मिल जाता है।

पुराने आंव के रोग में ११०°-११५° गरमी के पानी का एनिमा विशेष लाभदायक होता है। कोलन के बाईं ओर की पीड़ा में यह एनिमा तुरन्त आराम पहुंचाता है।

यदि पीड़ा बड़ी आंत के निचले हिस्से में हो तो ८०°-९०° डिगरी का ठंडा पानी विशेष लाभदायक होता है।

जब किसी कारणवश मुंह से पानी न लिया जा सके तो गुदा द्वारा पानी पहुंचाने के लिए एनिमा बहुत मुफीद उपाय है। जिन दशाओं म पानी देना बहुत जरूरी हो, हर घंटे एनिमा के द्वारा पावभर पानी दिया जा सकता है।

एनिमा पर आपत्ति

एनिमा के प्रयोग पर कुछ लोग यह आपत्ति करते हैं कि इसकी आदत पड़ जाती है। पर इस आपत्ति में कोई सार नहीं है। यह आपत्ति वही लोग करते हैं जिन्हें इसका ज्ञान नहीं है। भोजन-सुधार और कसरत के साथ-साथ एनिमा कब्ज की पुरअसर दवा है। पर कुछ लोग ऐसे जरूर हैं जिन्हें भोजन में फेरफार करने के बजाय रोज एनिमा लेना सुविधाजनक प्रतीत होता है। इसका रोज लेना भी दवा की अपेक्षा तो अच्छा ही है। पर रोज लेना उचित नहीं है, यद्यपि एनिमा के आज के रूप के आविष्कारक डा० हाल ने एक दिन के अन्तर से चालीस वर्ष तक बराबर एनिमा लिया है। वह घोर यक्ष्मा से पीड़ित थे। इसके प्रयोग से उन्होंने अपने को रोग-मुक्त ही नहीं किया, वरन् बढ़िया स्वास्थ्य भी बनाया।

लेखक को खुद को इस संबंध का यथेष्ट ज्ञान है। खुद उसने सैकड़ों बार एनिमा लिया है और सैकड़ों को दिया है। उसे सब तरह के आदमियों से काम पड़ा है, कभी-कभी लेने वालों से और रोज लेने वालों से भी। इससे नुकसान की शिकायत तो कभी किसी ने नहीं की।

जलोपचार

श्री पद्मावती शुक्ल

प्राकृतिक चिकित्सा के मतानुसार मनुष्य का रोगी होना शरीर में विकारों का बढ़ जाना माना गया है। इससे सब रोगों की जड़ एक ही चीज है। अतः इलाज भी करीब-करीब एक ही है और वह है विजातीय द्रव्य को बाहर निकालना। इस चिकित्सा विधि में पानी, मिट्टी और सूर्य की अनुपम शक्ति का व्यवहार होता है और इन्हीं चीजों को हेरफेर कर इस्तेमाल किया जाता है। इनमें सूर्य की शक्ति और गुण तो सभी जानते हैं। मिट्टी और पानी के गुण बहुत कम लोगों को मालूम हैं। अगर पानी और मिट्टी का उचित प्रयोग मालूम हो तो तकलीफ हो ही नहीं और अगर हो तो मिनटों में गायब की जा सकती है। पानी का ज्यादातर व्यवहार तीन तरह से किया जाता है: (१) पट्टियों के रूप में (२) स्नान के रूप में (३) पीने के रूप में। तीसरी आवश्यकता तो बच्चा-बच्चा जानता है। उसके बारे में कुछ कहना अनावश्यक है सिर्फ इतना कहा जा सकता है कि जब प्यास लगे धीरे-धीरे पानी पीना चाहिए। खाने के एक घंटे पहले या बाद पानी पीना उचित है। रोग की हालत में पानी पट्टियों और नहानों के रूप में बहुधा इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए स्नान कितने हैं और कैसे करना चाहिए, यह बतलाना बहुत जरूरी है। पट्टियां कैसे तैयार करनी चाहिए, कब, कहां और कैसे इस्तेमाल करनी चाहिए आदि की जानकारी भी जरूरी है।

स्नान

मुख्य स्नान तीन हैं: कटि-स्नान (Hip bath) मेहन-नहान (Sitz bath) और वाष्प-स्नान (Steam bath)

१. कटि-स्नान

कटि स्नान के लिए एक टब या उसी प्रकार

के गहरे बर्तन की आवश्यकता होती है। टब चाहे धातु का हो या मिट्टी का, इसमें कोई मतलब नहीं। देहातों में जहां टब आसानी से नहीं मिल सकते वहां मिट्टी और पत्थरों की नादों से काम निकल सकता है। पानी जितना ठंडा हो उतना ही अच्छा है। टब में पानी इतना डालना चाहिए कि वह नाभि से जांघ तक हो। पानी को बर्फ से ठंडा नहीं करना चाहिए। गर्मी और बरसात में कुंडी में रखकर ठंडे पानी का इस्तेमाल करना ठीक है। टब में बैठकर आवश्यकतानुसार कपड़ा ओढ़कर नहाना चाहिए। एक तन्दुरुस्त आदमी के लिए कपड़ा ओढ़ना जरूरी है। पैरों में मोजे आवश्यक है। टब से बाहर थोड़ा ऊपर पैर किसी जगह रखा जा सकता है जिससे वह भीग न सके। पानी में एकाग्र बैठने से बड़ा लाभ होता है। जरा सी देर के लिए बदन कांप उठता है और रोये खड़े हो जाते हैं। इससे बड़ा फायदा होता है। पेड़ू स्नान शक्ति के अनुसार दस मिनट से लेकर आधे घंटे तक लिया जा सकता है। इसमें पानी में बैठने के बाद नाभी के नीचे बड़ी आंत के ऊपर एक मोटे तौलिये से बराबर दाहिने से बायें रगड़ना चाहिए। पेट में मिट्टी की पट्टी लेने के बाद यह स्नान लाभ करता है। इस स्नान को बन्द कमरे में जहां थोड़ी-थोड़ी साफ हवा भी आती रह सके लेना चाहिए।

२. मेहन-नहान

पेड़ू स्नान के लिए जो टब काम में लाया जाता है उसी में एक तिपाई रख देना चाहिए। टब में पानी इतना चाहिए कि वह तिपाई से टकराता रहे, पर बैठने की जगह भीगे नहीं। नहानेवाले को टब के बाहर पैर रखकर तिपाई पर बैठना चाहिए और मोटे मुलायम कपड़े से बार-बार पानी में भिगोते हुए जननेन्द्रिय को धोना चाहिए। स्त्री को कपड़े से जितना पानी उठा सके ऊपर से नीचे धोना चाहिए। बहुत जोर से रगड़ना ठीक नहीं। नहाते समय शरीर पर कोई कपड़ा नहीं रखना चाहिए। शरीर का कोई भी भाग भिगोना ठीक नहीं। मासिक धर्म के समय यह स्नान मात्र मन्द होने तक रोक देना चाहिए। इसके बाद फिर से शुरू करना ठीक है। रोगी की उम्र, शक्ति और रोग के मुताबिक यह नहान सात मिनट से आधे घंटे तक लिया जा सकता है। पानी जितना ही ठंडा होगा उतना ही अधिक और जल्दी फायदा होगा। पुरुषों की इन्द्रिय का चमड़ा खोल कर मुलायम कपड़े से ऊपर से नीचे रगड़ना चाहिए। खतना हुये लोगों के सीवन पर ही रगड़ने से फायदा होगा। पेड़ू और मेहन-नहान के बारे में ये बातें ध्यान में रखनी चाहिए - बड़े समय में उनको रोज लेना चाहिए। इनके आधे घंटे पहले या बाद पूरा स्नान करना चाहिए। नहाने के बाद ठंडा पानी न पीना चाहिए। भोजन के कम से-कम तीन घंटे बाद नहाना चाहिए। भोजन सादा और सूक्ष्म करना चाहिए। नहाने के बाद थोड़ी-बहुत कसरत करनी चाहिए।

३ वाष्प स्नान

यह दो तरह से लिया जा सकता है। एक तो सारे शरीर का और दूसरे किसी खास अंग का। पूरे वाष्प स्नान के लिए एक बेंत की बुनी हुई कुर्सी या मूंज की बुनी हुई चारपाई की जरूरत है। उस पर रोगी को सब कपड़े उतार कर बैठा या लिटा देना चाहिए। उसके ऊपर कम्बल से इस तरह ढक देना चाहिए कि थोड़ी-सी भी भाप बाहर न निकले और ठंडी हवा भी न लग सके। यदि कुर्सी हो तो एक बरतन दो अंगीठियों में खौलते हुए पानी को नीचे रखना चाहिए। एक बर्तन कमर से कुछ ऊपर और दूसरा घुटनों के पास रखा जा सकता है। रोगी का चेहरा ढकना नहीं चाहिए। इस स्नान को इतनी देर तक लेना चाहिए जबतक माथे पर पसीना न आ जावे। खूब पसीना आने पर ठंडे पानी में बैठ कर थोड़ी देर पेड़ू नहान और पूरा नहान कर लेना चाहिए। इससे बड़ा आराम होता है और बहुत ही फायदा करता है।

किसी खास अंग को भाप देने के लिए उस अंग को अंगीठी पर रखे हुए बर्तन के पास कर लेते हैं, जिससे उस अंग से खूब पसीना निकलने लगे। इसके बाद उस अंग को ठंडे पानी से धो डालते हैं। पूरी देह का नहान हफ्ते में एक बार ही लेना अच्छा है। इससे जल्दी लेने के लिए किसी विशेषज्ञ की राय लेना जरूरी है। किसी खास अंग के लिए तो हर रोज भी जरूरत के मुताबिक लिया जा सकता है।

पानी की पट्टी

चोट के उन स्थानों में जहां मिट्टी का इस्तेमाल न हो सके पानी की पट्टी लाभ पहुंचाती है। इससे खून बहुत ही जल्दी बन्द हो जाता है और जलन या लपकन तुरन्त शान्त हो जाती है। पट्टी खूब ठंडे पानी की बनानी चाहिए। एक साफ कपड़े के टुकड़े को लेकर पानी में खूब भिगो कर हलका निचोड़ लेना चाहिए। इस पट्टी को लगाना हो उसके चारों तरफ आठ-दस तह करके जहां लपेट लेना ठीक है। पट्टी जब गरम होने लगे तो बदल डालनी चाहिए। चोट को पूरी तौर से ढक लेना मुनासिब है। जाड़ों में पट्टी पर कम्बल का टुकड़ा या फलालैन रख लेना ठीक है।

गीली चादर का बंधन

एक तख्त पर या जमीन पर ही चटाई या कम्बल बिछाइये। उसके ऊपर एक गीली चादर कम्बल के ऊपर बिछा दीजिये और रोगी को सब कपड़े उतार उस पर लिटा दीजिये। भीगी चादर से सारा शरीर लपेट दीजिये। ऐसा हो जाने पर एक कम्बल ओढ़ा दीजिये। शरीर का कोई भी हिस्सा बिना गीली पट्टी के और उसके ऊपर कम्बल रखे बिना न होना चाहिए। मुंह जरूर खुला रहना चाहिए। ऐसी हालत में बीस मिनट तक पड़े रहने देना चाहिए। इससे रोगी को पसीना आ जायेगा जिसे गीले तौलिये से पोंछ कर सूखे तौलिये से सुखा देना चाहिए। एक बार इस्तेमाल में आई हुई चादर बिना खूब अच्छी तरह साफ किए हुए और धूप लगे हुए फिर से प्रयोग में नहीं लानी चाहिए।

रीढ़ की गीली पट्टी

कुछ चादरों को मिला कर पानी में खूब भिगो डालिये और उनकी दो फुट लम्बी और एक इंच चौड़ी पट्टी बनाकर एक कम्बल पर बिछा दीजिये और उसी पर रीढ़ की हड्डी रखते हुए लेट जाइये और कम्बल ओढ़ लीजिये। थोड़ी ठंडक मालूम पड़ेगी और नींद आ जायेगी। आधे घंटे बाद उस पट्टी को हटाकर उस जगह को गीले और सूखे तौलिये से पोंछ डालना चाहिए।

सामान्य रोग और उनकी चिकित्सा

श्री विट्ठलदास मोदी

१. कब्ज

कब्ज हद दर्जे का परेशान करनेवाला रोग है, पर जितना ही यह अधिक परेशान करनेवाला है उतना ही आसान है इसका जाना, बशर्ते कि आप इसे हटाने के लिये कुछ करने को सचमुच तैयार हों।

आप तो अपने मामूली कब्ज से पीड़ित होंगे, पर मुझे तो रोज ही ऐसे आदमी मिलते हैं जो आज भूल गये कि उन्हें कभी अपने आप भी शौच होता था। वे हर दूसरे, तीसरे या चौथे दिन दवा लेकर शौच लाते हैं और जो दो-तीन दिन पर शौच होने से संतुष्ट नहीं हैं वे हर रोज रात को रामनाम लेने की तरह कल कब्ज होने का ध्यान करते हैं और उसे सवेरे हटाने को दवा लेकर सोते हैं। इस तरह रोज कब्ज और रोज दवा की आदत लोगों में कितनी अधिक है इसका अन्दाजा आप इसीसे कर सकते हैं कि संसार में कुल मिला कर जितनी कीमत की दवा और रोगों की बिकती है उससे कई गुना अधिक केवल कब्ज की बिकती है और इसमें हर्र-बहेरा-आंवला, गुलकंद, मुनक्का और उन सिगरेट

बीड़ी, काफी, चाय की कीमत नहीं जोड़ी गई है जिनका उपयोग भी लोग कब्ज दूर करने को किया करते हैं।

वास्तव में अधिकतर लोग अपने शरीर की कार्य-विधि के बारे में नहीं जानते। कब्ज का कारण नहीं समझते। समझने की कोशिश भी नहीं करते।

इतना ही नहीं कि कब्ज से शरीर में सिर्फ सुस्ती छाई रहती है, पेट भारी रहता है, सिर में दर्द रहता है सुस्ती बनी रहती है नींद ठीक नहीं आती, दिमाग उल्टा रहता है, भूख कम हो कर रह जाती है बल्कि कब्ज शरीर में इन लक्षणों को उत्पन्न करने के साथ साथ अन्य अनेक रोग पैदा करता है। अनेक क्या जितने भी रोग हैं प्रायः उन सबकी जड़ में यही रहता है। तभी तो इसे 'सब रोगों की नानी' कहते हैं। रोग तो एक विकृति है। कोई भी रोग क्या न हो यह शरीर की विकृति का लक्षणमात्र है और कब्ज विकृति पैदा करने में सर्व समर्थ है। कैसे, सो सुनिये। आप जो खाते हैं उसके पाचन एवं परिपाक के बाद जो कूड़ा-कचरा-मैल बाकी बचता है उसके शरीर से समय पर खारिज न होने को ही तो कब्ज कहते हैं। यह मल जब समय से नहीं निकलता तो अन्दर पड़ा-पड़ा सड़ने के सिवा और क्या कर सकता है? वहां सड़ने से बदबू पैदा होती है, मल अधिक विकार-मय बनता है। उससे गैस निकलती है जो जहर का असर रखती है और गैस का स्वभाव है ऊपर उठना, फैलना। वह सारे शरीर में पहुंचने की कोशिश करती है और शरीर के अंग-अंग में पहुंच कर उनके स्वाभाविक कार्यों में बाधक होती है। जब यह भयंकर बाधा उनमें लग गई तो शरीर अपना स्वाभाविक कार्य कैसे कर सकता है?

यही नहीं, मल का स्थान जो आतें हैं उनमें चूसने की विचित्र शक्ति है। पाचन के बाद जो बचा हुआ सामान इन आतों में आता है वह तरल रूप में रहता है यानी उसमें पानी होता है। आतों का काम इस पानी को जज्ब करना एवं बचे भाग को ऐसा ढीला रहने देना है कि उस पर मलधारक (याने आत का वह भाग जहां मल जाकर इकट्ठा होता है) की मांसपेशियां ठीक काम कर सकें और उसे बाहर निकाल सकें। पर जबतक मल इन आतों में पड़ा रहता है वे इसकी नमी चूसती ही रहती हैं और मल जब सड़ जाता है तो अपने स्वभावा-नुसार उसका जहर भी वे चूसने को मजबूर होती हैं और चूस कर खून में मिलाती रहती हैं। इस दूसरी विधि से भी शरीर में जो विष आता है वह रक्त को विकृत करता है और रक्त-सम्बन्धी अनेक रोगों को जन्म देने के साथ-साथ शरीर के सभी अंगों के कार्यों को शिथिल करता एवं उन्हें रोगी बनाता है?

और जब यह चक्र, दिन, महीना ही नहीं, बल्कि वर्षों चलता रहता है तो फिर शरीर और उसमें रहने-वाले दिमाग के निकम्मे होने में क्या संदेह है।

कब्ज रहना बिल्कुल अस्वाभाविक है। कुदरत ने आतों में वह बल दिया है कि वे मल को आसानी से दूर करती रहें। वे यह काम तभी स्वाभाविक रूप में कर सकती हैं जब हम खाद्यों को उनके स्वाभाविक रूप में ग्रहण करें। खाद्यों में फल तरकारियां, अन्न और दूध ही तो आते हैं। पर हम इनमें से कितनों को अपने स्वाभाविक रूप में लेते हैं? हम फल और ऐसी तरकारियों का, जिन्हें स्वाभाविक रूप में बहुत सरलता से खाया जा सकता है, बहुत कम उपयोग करते हैं या बिल्कुल नहीं करते। अन्नों की भूसी यानी आटे का चोकर, चावल का कन हम दूर कर देते हैं। दूध का पानी हम जला कर या बिल्कुल निकाल कर खोये या छेने के रूप में इस्तेमाल करते हैं या रसगुल्ला और संदेश बना कर खाते हैं। गन्ने के रस की हम चीनी बनाते हैं मिर्च-मसालों को जिनकी शरीर को बिल्कुल आवश्यकता नहीं है विकृत स्वाद के वशीभूत होकर खाते हैं। अतः यदि आप चाहते हैं कि कब्ज न रहे तो इसका विचार शौचालय में नहीं, भोजना-लय में कीजिए। भोजन पर, वह स्वादिष्ट होने के अलावा कब्जकारक है या कब्जनिवारक, इस दृष्टि से भी सोचिए।

तब आप मैदा, महीन आटे की जगह चोकर समेत मोटा आटा खाएंगे, चावल कन समेत ही लेंगे, आपके भोजन में फल-तरकारियों की मात्रा अन्न से दूने वजन की होगी, दूध कच्चा या एक उफान का लेंगे। लीजिए कब्ज की दवा होगई। यदि आपने यह गुर पकड़ लिया तो आपने कब्ज की जड़ में कुठाराघात शुरू कर दिया।

यदि आपको कब्ज बहुत अधिक और पुराना है तो खीरा, ककड़ी, गाजर, टमाटर, पालक या पातगोभी को कच्चा ही इस्तेमाल कीजिए। डरिए नहीं, मैं आपको इन्हें सेर-दो सेर खाने को नहीं कह रहा हूं। चौबीस घंटे में केवल एक पाव लें और सो भी केवल एक नहीं, कइयों को मिला कर लें। किन्हीं दो-तीन को छोटा-छोटा काट कर एवं मिला कर ऊपर से नीबू—नमक डाल कर और उन्हें खाकर देखें। इनके विशिष्ट स्वाद की कल्पना आप इनका उपयोग किए बगैर नहीं कर सकते। केवल एक बार इनका उपयोग करने के बाद ही इनका तिरस्कार करने की सोचें।

केवल तीन बार खाएं। यदि आप दिन भर में केवल दो बार भोजन करते हैं तो और भी अच्छा है और यदि आपकी उम्र चालीस वर्ष से ऊपर है तो मेरी सलाह है कि आप जरूर दो बार ही खाएं। जब मैं दो या तीन बार खाने को कहता हूं तो उसका अर्थ आप शब्दशः लगाएं। अर्थात् दो या तीन बार के अलावा मुंह में पानी के सिवा कुछ भी न डालें। तब फल कब खायें? ठीक ही है, लोग तो फलों को चलुवा-चाना समझकर भोजन के घंटे आध घंटे बाद खाते हैं और इन्हें बिना भूख के खाने से जब नुकसान होता है तब दोष अपनी अक्ल को नहीं, गरीब फलों को दिया जाता है और ऐसे अकलमन्दों द्वारा ही अमरूद से जुकाम, खीरे—ककड़ी से जूड़ी-ताप, आम से फोड़े-फुंसी और खरबूजे से हैजा होने की बात कही और चलाई जाती है। फलों को भोजन का अंग बनावें, सवेरे का नाश्ता केवल फलों का हो, जी चाहे तो साथ में थोड़ा दूध भी हो सकता है। दोपहर और शाम को भोजन के साथ भी कुछ फल रखें और उन्हें भोजन का अंग समझ कर खाएं, दूसरे खाद्यों को उनकी जगह कम करें। एक बात फलों के बारे में आपको और बता देनी है वह यह कि मौसमी फल—आपके घर के दस-पांच कोस की दूरी में पैदा होनेवाले फल—आपको जो फायदा पहुंचाएंगे वह लाभ देने की क्षमता, दूर से आए, कई दिनों पहले तोड़े, बासे फलों में नहीं है।

बहुत से लोगों को कब्ज केवल इसलिए होता है कि वे पानी बहुत कम पीते हैं। जब ये लोग पानी पीने की आदत डाल लेते हैं तो उनका कब्ज फौरन चला जाता है। आप भी जाड़े के दिनों में दो-ढाई सेर और गर्मी के दिनों में ढाई-तीन सेर पानी जरूर पीएं। सवेरे उठते ही, रात को सोते समय, भोजन के एक घंटे पहले और दो घंटे बाद पानी पीना एक बढ़िया आदत है।

उन आंतों का स्थान जिनमें मल रहता है एवं जिनके अपना कार्य ठीक तरह न कर सकने के कारण कब्ज होता है, नाभि के तीन ओर है। वह नाभि के दाहिनी ओर नीचे से ऊपर की ओर आती है और वहां से बाएं तरफ बाईं कोख तक पहुंचती है, फिर नीचे की ओर उतरती है। वहां उसका अन्तिम छोर है, जहां मल इकट्ठा होता रहता है, उस छोर को मलधारक कहते हैं। यहां मल धीरे-धीरे इकट्ठा होकर समय-समय पर खारिज होता रहता है। इस आंत को सशक्त बनावें। आंत मांसपेशियों की बनी है और आप जानते हैं कि कसरत प्रत्येक मांसपेशी को सशक्त बनाती है। अतः कुछ ऐसी कसरतें करें जिनका प्रभाव आंतों पर पड़े। टहलने की कसरत इस कार्य के लिए यथेष्ट प्रभावशाली है। सवेरे-शाम दो-दो या तीन-तीन मील निश्चित रूप से टहलकर आप आंतों को वह शक्ति देंगे कि वह अपना काम बड़ी सुगमता से करने लगेगी। इसके साथ ही आंतों को मजबूत बनाने की एक दूसरी तरकीब भी है। वह है उन्हें ठंडक पहुंचाना। एक मोटा-सा तौलिया चौपर्त कर छः इंच चौड़ा और एक फुट लम्बा बना लें और ठंडे पानी में भिगोकर और हल्का-सा निचोड़ कर पेडू पर अर्थात् नाभि के नीचे पन्द्रह-बीस मिनट रखें। इसके बजाय सेर भर मिट्टी ठंडे पानी से लपसी-सी सान कर तौलिए जितनी ही लम्बी-चौड़ी बनाकर ठंडे तौलिए की जगह इस्तेमाल की जा सकती है। कुछ लोगों को इस मिट्टी की पट्टी से अधिक लाभ होता है। ठंडक का इनमें से कोई भी एक प्रयोग टहलने जाने के पूर्व करें। पहले ठंडक फिर टहल कर गरमी लाने का यह प्रयोग आंतों को शीघ्र सजग करके उन्हें अपने कार्य में तेजी से प्रवृत्त करता है।

शौच की हाजत की राह न देखें। हाजत तो उन्हें होती है जो हाजत की सुनते हैं। दिनों तक उसको न

सुनने से वह मद या लुप्त हो जाती है। अत कोई भी समय निश्चित करके दो बार शौच अवश्य जाय। शौच का जो समय निश्चित करें उसका पालन जरूर करें। शौच न हो तो भी शौचालय मे दस मिनट जरूर बैठें। धीरे-धीरे दोनो वक्त शौच अवश्य होने लगगा। आरम्भ में किसी एक वक्त न हो तो घबराये नही। बिगडी आदत धीरे-धीरे ही बनती है।

स्वप्नदोष, अग्निमदता, रक्ताभाव, बवासीर, स्मरण शक्ति का ह्रास, श्वेत प्रदर, मासिक की अनियमितता, सिरदर्द, कमरदर्द, दुर्बलता के अनेक रोगियो ने इस विधि को अपनाया है और कब्ज दूर होने के साथ-साथ उन्हे उपर्युक्त रोगो से भी मुक्ति मिली है।

२. बवासीर

जिन रोगो के नाम पर आज बडी-से-बडी ठगाई चलती है उनमें बवासीर अग्रणी है।

बवासीर रोग नही, रोग का लक्षण है। किसी वृक्ष को नष्ट करने के लिए उसे जड से न उखाडकर अगर उसके पत्तो को काटते रहा जाय या केवल उन्हे नष्ट करने की कोशिश की जाय तो क्या कभी वह पेड खतम हो सकता है? यही हाल बवासीर म आपरेशन अथवा दवा की शरण में जाने से होता है। बवासीर के मस्से या खून आना कोई रोग नही है। रोग तो है वह कारण जिसकी वजह से मस्से पैदा होने है अथवा खून आता है।

आतें जब साफ नही होती, जब बराबर कब्ज बना रहता है तब आतो में उसकी सडन के कारण गरमी बढती है। फलस्वरूप या तो आतो की झिल्ली कमजोर हो जाती है जिस पर जरा भी खराश लगते ही खून आने लगता है या वहा खून इकट्ठा होकर धीरे-धीरे बदगोश्त पैदा हो जाता है। पहली दशा को खूनी बवासीर और दूसरी को बादी बवासीर कहते है।

जब आप सोचिए कि आतो में गन्दगी रहने देकर बवासीर से कभी छुट्टी पाई जा सकती है? जबतक कि आते बिल्कुल साफ न रहने लगे, बवासीर जा सकता है?

तो बवासीर का पहला इलाज—याने बवासीर को जड से दूर करने की तरफ पहला कदम उठाना है—कब्ज न रहने देना।

पर बवासीर जिसके हो उसके कब्ज का इलाज साधारण कब्ज के रोगी से थोडा भिन्न होता है। कब्ज के रोगी का चोकर समेत आटे की रोटी दीजिए, फल-तरकारिया थोडी अधिक खाने को दीजिए, उसका कब्ज चला जायगा, पर कई बार बवासीर के रोगी की तकलीफ इन्ही खाद्यो के प्रयोग से बढ जाती है। कई रोगी तो कई खाद्यो के प्रति विशेष सवेदनशील हो जाते है। किसी का बवासीर भिन्डी से बढता है तो किसी का आलू से तो किसी का करेले से। अमरूद से तो प्राय सारे बवासीर के रोगी दूर भागते है। जहा इस प्रकार की शिकायत म थोडा सत्य है वहा अधिकतर भ्राति होती है। यह सही है कि खूनी बवासीर के रोगी की आतें बहुत कोमल हो जाती है और उन पर जरा भी खराश लगने से खून जाने लगता है। अत आरम्भ में रोगी को भोजन के चुनाव में बहुत सजग रहना चाहिए और हमेशा ऐसा भोजन चुनना चाहिए जिसका मल मुलायम बने और जो कब्जकारक न हो। ऐसे खाद्यो में गेहू का दलिया, चोकर समेत आटे की रोटी, सभी हरी भाजिया—विशेषकर पालक और बथुआ, तरोई, परवल, पातगोभी, मूली, पपीता, पका केला, खरबूजा, सेव, नाशपाती, दूध श्रेष्ठ है। सभी दालें तो आतो की गरमी को बढाने और वायुकारक होने के कारण कब्ज करती है। सूखे मेवो में किशमिश, मुनक्का, अजीर, नारियल अच्छे है। इनमे से रोगी को अपना भोजन चुनना चाहिए। उसका भोजन इस प्रकार हो सकता है :

सवेरे—पपीता या खरबूजा या नाशपाती और दूध।

दोपहर—दलिया और कोई पत्तीदार भाजी।

शाम—(१) कोई तरकारी और किशमिश या

(२) रोटी तरकारी और थोड़ा मुनक्का या अंजीर या (३) कोई फल या नारियल या (४) तरकारी और नारियल। (अंजीर, किशमिश, मुनक्का एक बार में एक से दो छटांक तक खाये जा सकते हैं। इन्हें उपयोग में लाने के पहले अच्छी तरह धोकर इनके वजन के दूने पानी में बारह घंटे पहले भिगोना चाहिए और पानी समेत इनका इस्तेमाल करना चाहिए)। नारियल की गिरी हरी हो तो आधा पाव तक और सूखी हो तो एक बार में एक छटांक तक ली जा सकती है।

भोजन के इस परिवर्तन से ही कितने ही बवासीर के रोगियों का कब्ज जा सकता है और उन्हें अपने रोग में बहुत राहत मिल सकती है। पर जिनका रोग पुराना हो गया है अथवा जिनको आंतों की गरमी के कारण मल सूख जाया करता है उन्हें आंतों की मदद के लिए कुछ दिनों तक ईसबगोल का प्रयोग करना पड़ सकता है। इसके लिये या तो प्रत्येक भोजन के साथ ईसबगोल की भूसी चार आने भर की मात्रा से उपयोग करना चाहिए या इतना ही ईसबगोल। (यदि ईसबगोल का इस्तेमाल करना हो तो ईसबगोल को बीस गुने वजन के पानी में बारह से चौबीस घंटे पहले भिगो देना चाहिए।) जब ठीक पेट साफ होने लगे, ईसबगोल की मात्रा कम करते हुए इसका उपयोग बन्द कर देना चाहिए।

बवासीर के रोगी पानी भी कम पीते हैं। उन्हें दिन भर में दो-तीन सेर पानी जरूर पीना चाहिए।

आंतों में बल लाने, मस्सों को सुखाने तथा खून को बन्द करने के लिये मिट्टी का प्रयोग बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इसके लिये सेर-डेढ़ सेर मिट्टी ठंडे पानी में लस्सी-सी सानकर नाभि के नीचे मूत्रेंद्रिय तक एक कोख से दूसरे कोख तक फैला लेनी चाहिए और आध सेर मिट्टी गेंद-सी बनाकर लंगोट के सहारे गुदाद्वार पर बांध लेनी चाहिए, मिट्टी अपने स्थान पर आध घंटे तक लगी रहे। यह प्रयोग दिन में दो बार किया जा सकता है। इसके लिये उपयुक्त समय सवेरे नाश्ते के डेढ़ घंटे पहले और शाम को भोजन के दो घंटे पहले हैं। मिट्टी के हटाने के बाद यदि शक्ति हो तो दो-तीन मील टहलना लाभकर है।

बवासीर के अधिकांश रोगियों का रोग केवल भोजन सुधार, जल का यथोचित प्रयोग, मिट्टी के उपचार एवं टहलने से जा सकता है, पर कुछ का रोग इतना बिगड़ा होता है कि उन्हें विशेष उपचार की जरूरत हो सकती है। वह उपचार है आंतों को कुछ दिनों तक बिल्कुल साफ रखना। इसके लिए रोगी को तीन दिन से सात दिन का उपवास करना पड़ सकता है। तीन दिन का उपवास तो कोई भी कर सकता है, पर एक सप्ताह का उपवास दो-तीन दिन के उपवास के अनुभव के बाद ही करना चाहिए। एक बार तीन दिन का उपवास कर लेने के बाद दूसरा उपवास महीने भर बाद करना उचित होगा। उपवास में सवेरे-शाम सेर डेढ़ सेर गुनगुने पानी का एनिमा जरूर लेना चाहिए। उपवास में रोज दो-तीन सेर पानी पीते रहें। आराम करें। उपवास तोड़ने के लिए पहले दिन किसी तरकारी का या फल का रस दिन में तीन बार पाव-पाव भर की मात्रा में लें, दूसरे दिन इसके बदले तीन बार कोई रसीला फल या तरकारी लें। तीसरे दिन दो बार फल और तीसरी बार थोड़ा दलिया और तरकारी लें। फिर धीरे-धीरे साधारण भोजन पर आ जायं।

बवासीर से मुक्ति पाने का मतलब है, कब्ज हटाना, शरीर को सशक्त बनाना।

३. रक्तचाप

रक्तचाप की अधिकता के उपचार में प्राकृतिक पद्धति को आश्चर्यजनक रूप में सफलता मिलती है और यह सफलता चाप-मापक यंत्र के द्वारा स्पष्ट रूप से देखी भी जा सकती है; क्योंकि इसके साथ पक्षपात का कोई प्रश्न नहीं है। इस यन्त्र का प्रयोग करने पर प्रगति का ठीक-ठीक मान स्पष्ट होता रहता है। इसलिए उपचार से जो लाभ होता है उसे कोई अस्वीकार भी नहीं कर सकता।

इस रोग की व्यापकता दिनोदिन बढती जा रही है। इसका मुख्य कारण है आधुनिक युग का व्यस्त और सघर्षपूर्ण जीवन जिसमें लोग शरीर की क्रियाओ का सचालन करनेवाले नियमो के पालन पर समुचित ध्यान नही दे पाते। अगर इस रोग के उपचार पर उचित ध्यान न दिया जाय तो हालत और खराब होकर मृगी तक हो जाती है, सिरदर्द, सिर का भारी होना, सिर का चक्कर, चिडचिडापन, शिथिलता, नीद की कमी, कभी-कभी नाक से खून गिरना, सीने में दर्द होना, *थोडी-अधिक मेहनत करने पर हाफने लगना* आदि तो साधारणत: हो ही जाते हैं।

साधारणत दो प्रकार की अवस्थाए इस रोग की उत्पत्ति का कारण हुआ करती हैं। एक तो वृक्का का रोग है जो वृक्को से विष को बाहर निकालने के लिये शरीर को आवश्यकतानुसार रक्तचाप बढाने को बाध्य करता है। स्वस्थ अवस्था में ये अग शरीर की क्रियाओ से उत्पन्न होनेवाले विष को रक्तप्रवाह से छनकर निकल जाने में सहायता प्रदान करते हैं। दूसरी अवस्था में धमनियो का पर्दा कड़ा पड जाना है जिससे उनकी फैलने की शक्ति कम पड जाती है और इसके परिणाम स्वरूप उनकी धारणशक्ति कम हो जाती है। रक्त की मात्रा वही रहते हुए स्थान का सकोच होने पर रक्तचाप का बढ जाना बिल्कुल स्वाभाविक और ऐसी बात है जो सरलता से समझ में आ जाती है। धमनियो का जितना सकोच होगा रक्तचाप की वृद्धि ठीक उसी अनुपात में होगी। लगातार अधिक कार्य करने या परेशानियो के कारण भी धमनियो में अधिक तनाव आ जाता है जो रक्तचाप की वृद्धि का कारण होता है।

प्राकृतिक चिकित्सापद्धति की दृष्टि में रक्तचाप की वृद्धि का आधारभूत कारण बिलकुल स्पष्ट है। यह *निश्चित है कि जिस अवस्था पर हम लोग विचार कर* रहे हैं वह अयुक्त और अतिभोजन एव पाचन तथा कोषाणुओ के क्षय से उत्पन्न होनेवाले विष का निष्कासन न होने के कारण रक्त के विषाक्त हो जाने का परिणाम है। बहुत दिनो तक शरीर की आवश्यकता *से अधिक और असतुलित आहार ग्रहण करते रहने और* आता, मूत्राशय फेफडा तथा त्वचा से मल का पूर्णरूप से निकास न होने पर मल और विष के शरीर में रुक जाने से विकार का बढना निश्चित है।

जिन बुराइयो को दूर करना आवश्यक होता है वे प्राय निम्नलिखित होती हैं—

१—श्वेतसार (मैदा आदि) से बनी हुई चीजे, चीनी और प्रोटीन (मछली, मास, अडा, रबडी, मलाई आदि) अधिक मात्रा में खाना,

२—बार-बार खाते रहना;

३—*मादक द्रव्यो का अधिक सेवन,*

४—अपर्याप्त व्यायाम, और,

५—चिंता और परेशानियो आदि को अकारण बनाये रखना।

अगर हो सके तो कुछ दिनो तक उपवास चलाया जाय क्योकि उपवास शरीर की अवस्था को साधारण बनाने में बहुत सहायक होता है, पर अगर यह सभव न हो तो पाच से दस दिना तक केवल हरी तरकारिया और मूल—मूली, गाजर, शलजम आदि—खाकर रहा जाय। इसस आगे का उपचारक्रम चलाने के लिये *आधार बन जायगा। जलपान म गाजर, खीरे या* और किसी तरकारी का रस लिया जाय और दोपहर *का भोजन केवल सलाद का हो,* शाम को सिर्फ उबली हुई तरकारिया खाई जाय। मात्रा ठीक उतनी ही रहे जिससे क्षुधा मिट जाय। किसी भी हालत में और कोई चीज न खाई जाय और पानी के अलावा और कुछ न पिया जाय।

बहुत से लोगो को यह आहार-क्रम चलाना शुरू करने पर दो भोजन-कालो के बीच ऐसा मालूम होगा जैसे शरीर में कुछ है ही नही, वह बिल्कुल नि:शक्त है, पर दो-तीन दिना में ही यह बात जाती रहेगी। इसे चलाते समय किसी भी परिस्थिति में इसमें ढीलापन *नही लाना चाहिए और दृढ सकल्प के साथ चलाते जाना चाहिए।* यह आहार-क्रम कितने दिनो तक चले यह व्यक्तिविशेष की अवस्था पर निर्भर है। अगर पूरे

दस दिनों तक चलाया जा सके तो हर तरह से अच्छा होगा। इसका परिणाम देख लेने पर अधिकांश रोगी स्वयं इसकी उपकारिता स्वीकार करेंगे।

मनुष्य जो कुछ करता है उसमें मन का बहुत कुछ हाथ होता है, इसलिए किसी भी व्यक्ति को मन म यह विचार नहीं आने देना चाहिए कि पोषण न मिलने के कारण वह समुचित रूप से काम करने के योग्य नहीं है। इस तरह का विचार बिल्कुल गलत भी है; क्योंकि शारीरिक शक्ति में किसी तरह की कमी न होते हुए भी इस मनोभाव के प्रभाव से सचमुच कार्यक्षमता में कमी आ जायगी। इस धारणा के साथ ही अन्य बातों में भी धैर्य और शांति से काम लेना चाहिए।

तरकारी का क्रम पूरा हो जाने पर दो सप्ताह संतुलित आहार चलाइए। अगर इतने से पर्याप्त लाभ हुआ न दीख पड़े तो फिर पांच दिन केवल तरकारी खाकर रहें और उसके बाद संतुलित आहार चलायें। जिनका रोग काफी बढ़ गया है उन्हें पांच-पांच दिन तरकारी और पंद्रह-पंद्रह दिन संतुलित आहार का क्रम कई बार चलाना पड़ सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं होती और लाभ के सिवा किसी तरह की क्षति होने की तो संभावना ही नहीं है। अगर किसी प्रकार का संदेह हो तो किसी प्राकृतिक चिकित्सक से मिलकर उनका निवारण कर लेना चानिए।

रक्तचाप की वृद्धि का मुख्य कारण आंतों, वृक्कों, फेफड़ों आदि से मल का ठीक तरह से न निकल सकना ही हुआ करता है। इसलिए अगर इस विकार से पूर्णरूप से छुटकारा पाना अभिप्रेत है तो मल निकालनेवाले अंगों को अपना कार्य उचित रूप से करने की स्थिति में लाना आवश्यक है। बहुत से लोगों में तो तरकारी के आहार से ही आंतें अपना कार्य नियमित रूप से करने लगेंगी, पर इस बात का इतमीनान करने के लिये कि आंतें बिल्कुल साफ हो गई हैं, तरकारी का क्रम चलाते समय रोज शाम को एनिमा ले लिया जाय तो बहुत लाभ होगा। इस रोग की सभी अवस्थाओं में आंतों की क्रिया को साधारण रूप में लाना बहुत आवश्यक होता है।

तरकारी का क्रम चलाने से वृक्कों का कार्य भी बहुत कुछ सुधर जायगा, पर उन्हें तथा बस्ति भाग को शक्ति प्रदान करने के लिये तरकारी का प्रथम क्रम चलाकर एक मास तक मेहन-स्नान चलाना चाहिए। रक्त के ओषजनीकरण के लिये मेहन-स्नान के साथ ही श्वास-सम्बन्धी व्यायाम भी नियमित रूप से चलाते रहना चाहिए।

त्वचा की क्रिया ठीक करने के लिये शुष्क घर्षण-स्नान और गीले कपड़े से बदन रगड़ने का क्रम भी चलाया जाय। शरीर का विष बहुत कुछ त्वचा से ही निकलता है। इसलिए उसका उचित रूप से कार्य करने योग्य होना बहुत आवश्यक है।

शारीरिक व्यायाम का क्रम चलाने के सम्बन्ध में कुछ लोगों का यह ख्याल हो सकता है कि इसमें अधिक समय लगा करेगा, पर यह सही नहीं है। सारा कार्य-क्रम बीस से तीस मिनट तक में पूरा हो जायगा। स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से आधे घण्टे का समय लगना उसका सर्वोत्तम उपयोग माना जाना चाहिए, विशेषकर उस हालत में जबकि स्वास्थ्यलाभ का और कोई उपाय नहीं है।

सुविधानुसार रोज अधिक-से-अधिक टहलने का भी क्रम चलाना चाहिए, पर इसका आरम्भ तरकारी का क्रम पूरा हो जाने पर ही होना चाहिए।

४. प्रदर

जिस प्रकार शारीरिक श्रम द्वारा भोजन पैदा करने-वालों को जुकाम कम-से-कम होता है उसी प्रकार भोजन के लिए शारीरक श्रम पर निर्भर रहनेवाली स्त्रियों को प्रदर कम-से-कम होता है। इसलिए यदि यह कहा जाय कि प्रदर मेहनत से बचने का परिणाम है तो अत्युक्ति नहीं होगी और आज शहर में रहनेवाली प्रत्येक पर्दानशीन स्त्री और ऐसी स्त्री जिसे बिना मेहनत किये ही भोजन मिल जाता है, इस रोग से घिरी मिलती है।

अत इस रोग से बचने और इसे दूर भगाने का पहला उपाय है श्रम करना। यह श्रम चक्की-चूल्हे मे हो या टेनिस-बैडमिंटन खेलकर या नित्य दूर नदी नहाने जाकर या टहलकर। सबका लाभ एक हो है।

साधारणत मादा पशु को यह रोग नही होता, पर उसे जब घास कम और अन्न बहुत अधिक खाने को दिया जाता है तब उसे भी यह रोग आ घेरता है; पर जब उसके चारे में से दाना निकालकर उसे केवल घास दिया जाता है तब वह अनायास इस रोग से मुक्त हो जाती है। यह रहस्यमय नही है। अन्न से ही श्लेष्मा बनता है और हरी घास इसे दूर करती है। ठीक यही परिणाम मनुष्य के भोजन में परिवर्तन करके भी प्राप्त किया जा सकता है। भोजन में अन्न, घी, दूध की मात्रा कम करके और हरी तरकारिया और मौसम के ताजे फलो की मात्रा बढाकर इस रोग के जाने मे सहायक हुआ जा सकता है। मसाले भी ठीक नही है, वे झिल्ली में जलन पैदा करते हैं और रोग टिकने में सहायक होते हैं।

प्रदर से मुक्ति पाने का स्वाभाविक उपाय स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के एक कार्यक्रम को अपनाना है।

स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए पहली आवश्यकता श्रम करने की है। यह श्रम आप अपनी सुविधा के अनुसार उपजाऊ या अनुपजाऊ किसी भी रूप में कर सकती है। मैं उपजाऊ श्रम में चक्की चलाना और अनपजाऊ श्रम में तेजी से टहलना श्रेष्ठ समझता हू। कुछ भी किया जाय, पर श्रम इतना अवश्य किया जाय कि उसकी ठीक आदत बढने पर पसीना आ जाय, कम से-कम शरीर में गर्मी आ जाय। आरभ में और जाडे के दिनो में यह कठिन होगा, पर अभ्यास होने पर सरल हो जायगा।

श्रम के बाद तुरत ही स्नान करना चाहिए और स्नान के बाद शरीर को तौलिये से न पोछकर हाथ से रगड-रगड कर ही सुखा लेना चाहिए। इस विधि से स्नान का लाभ बढता है और त्वचा पर ताजगी आ जाती है, उसमें सुर्खी और सुदरता, जिसे लावण्य भी कहते है, आ जाती है।

स्वास्थ्य उन्नत बनाने अथवा प्रदर से मुक्ति पाने का दूसरी सीढ़ी है भोजन में सुधार। सफेद चावल, दाल, मास, मछली ये सभी श्लेष्माकारक हैं। अत प्रदर को बढ़ाते और टिकाते है। आरभ में और सदा के लिए भी इनसे मुक्ति पा ली जा सके तो अच्छा है। प्रदर की रोगिणी के भोजन में चोकर समेत आटे की रोटी, हरी तरकारिया और ताजे फल होने चाहिए। खीरा, ककडी, गाजर, टमाटर, प्याज, मूली, करमकल्ला, पालक आदि कच्ची खाई जा सकने लायक तरकारियो को कच्चे ही खाना चाहिए। दूध, दही भी उपयोगी है, पर इनका उपयोग आरभ में नही, भोजन सुधार के हफ्ते दो हफ्ते बाद से शुरू करना चाहिए।

धूप प्रदर से मुक्ति दिलाने में बहुत सहायक होती है। इसका सेवन नित्य करना चाहिए। किसी एकात स्थान में निर्वस्त्र होकर तथा सिर पर गीला तौलिया रखकर गर्मी के दिनो में सवेरे सात-आठ बजे और जाड के दिनो में आठ-नौ बजे पद्रह बीस मिनट रहना चाहिए। सप्ताह में एक बार यह धूप-स्नान तेज धूप में अर्थात् दिन के ग्यारह बजे से तीन बजे के अदर आध घटे अथवा इतनी देर के लिए लेना चाहिए कि पसीना आ जाय। धूप स्नान लेते समय गरम पानी पीते रहकर पसीना आने में सहायक हुआ जा सकता है। यदि पसीना अच्छी तरह आ जाय तो धूप स्नान के बाद ठडे पानी से अच्छी तरह मल-मल कर नहाना चाहिए। यह सभव न हो तो सिर को ठडे पानी से धो लेना चाहिए और सारे शरीर को गीले कपडे से पोछ डालना चाहिए। धूप का यह विशेष स्नान भोजन के पहले अथवा भोजन कर लिया हो तो उसके दो-तीन घटे बाद करना चाहिए।

स्थानीय चिकित्सा के लिए पानी की गद्दी विशेष लाभदायक होती है। किसी साफ सफेद कपडे को चार-छ तह करके दो ढाई इच चौडी और चार-पाच इच लबी गद्दी बनाना चाहिए और इसे ठडे पानी से भिगोकर और हल्का निचोडकर लगोट के सहारे स्थान पर बाध लेनी चाहिए। यह गद्दी घटेभर लगी रहे, पर

सोते समय लगाई जाय तो नींद खुलने तक गद्दी लगी रह सकती है।

यह है वह सीधी और सरल रीति जिसपर चलकर प्रदर नया हो या पुराना उससे आसानी से मुक्ति पाई जा सकती है। साथ-ही-साथ आपको वह स्वास्थ्य मिलेगा और जीवन में वह खुशी पैदा होगी जिसकी कीमत आप उन्हें प्राप्त करने बाद ही लगा सकेंगी।

५. स्वप्नदोष

स्वप्नदोष के रोगी समझते हैं कि उनका वीर्य नाश हो रहा है। अतः वे रबड़ी-मलाई, हलवा-पूरी खाकर ही इस कमी को पूरा कर सकते हैं। यह भारी भ्रम है। चिंता और घबराहट के कारण उन्होंने अपना पाचन बिगाड़ लिया है और पाचन न भी बिगाड़ा हो, तो ये गरिष्ठ चीजें किसी का भी पाचन बिगाड़ने में समर्थ हैं। उनके लिए होना चाहिए अनुत्तेजक, हलका, सुपाच्य और कब्ज़निवारक भोजन। यह भोजन भी बार-बार नहीं लेना चाहिए। सवेरे फल-दूध, दोपहर और शाम को चोकर समेत आटे की रोटी और यथेष्ट मात्रा में हरी तरकारियां, जिनमें मसाले के नाम पर नमक, धनिया, हल्दी, जीरे का प्रयोग किया जाए। भोजन सोने से तीन घंटे पहले ही समाप्त कर लेना चाहिए और जल भी यथेष्ठ पीना चाहिए। जल पीने का बढ़िया वक्त है सवेरे उठते ही, सोते समय और भोजन के एक घंटा पहले और दो घंटे बाद।

स्वप्नदोष से पीड़ित रोगी एकांत-सेवी हो जाता है। वह लोगों से मिलना-जुलना कम पसन्द करता है। उसे यह आदत छोड़नी चाहिए। लोगों से मिलना चाहिए, पर बातों का विषय सिनेमा, सेक्स नहीं; राजनीति, दर्शन और साहित्य होना चाहिए। यदि इसकी सुविधा न हो तो रोज़ एक-दो घंटे *रामचरितमानस* (रामायण) सरीखे मन को ऊंचा उठानेवाले ग्रंथ का पाठ करना चाहिए।

ऐसे युवक के लिए सवेरे-शाम टहलना भी ज़रूरी है। टहलने में आदमी अपने को अन्दर से बाहर कर पाता है। चिन्ता-चिता की आग से निकल कर प्रकृति के साथ मिल सकता है। इसके लिए टहलने के नित्य नये रास्ते पकड़ने चाहिए और अपनी बात छोड़ कर दिखाई देनेवाली प्रकृति एवं दूसरे विषयों पर विचार करना चाहिए।

चिन्ता करते-करते इस रोग के कई रोगियों के स्नायु दुर्बल हो जाते हैं। उन्हें घबराहट, चिन्ता, अपौरुष, अकर्मण्यता घेर लेती है। इनसे मुक्ति दिलाने के लिए सूर्य-स्नान और ठंडे जल का स्नान बहुत काम करता है। सवेरे टहलकर आकर दस-पन्द्रह मिनट नंगे बदन धूप में रहें और फिर तुरन्त ठंडे पानी से मल-मल कर नहाएं। सवेरे टहलने जाने के पहले दस-पन्द्रह मिनट का मेहन-स्नान भी लिया जा सके तो ठीक रहे। स्नायविक दुर्बलता दूर करने के लिए जल-चिकित्सा के स्नानों में यह बेजोड़ है।

कब्ज़ हो तो पेडू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए सेर-डेढ़ सेर साफ मिट्टी ठंडे पानी से आटे की तरह गूंध कर पेडू पर—नाभि से लेकर मूत्रेन्द्रिय तक और दाईं कोख से बाईं कोख तक के स्थान पर—रखनी चाहिए। सोते समय ऐसा करना बहुत अच्छा है। यदि जागते रहें तो मिट्टी की पट्टी आध घंटे बाद हटा दें। नींद आ जाय तो जब नींद खुले तब हटाएं।

स्वप्नदोष से मुक्ति पाने का कार्यक्रम :

सवेरे पांच बजे उठने पर शौच आदि से निवृत्त हो कर दुबले हों तो दस मिनट का, दोहरा बदन हो तो पन्द्रह मिनट का मेहन-स्नान, फिर उसके बाद घंटे दो घंटे तेजी से बीच-बीच में गहरे सांस लेते हुए टहलना।

सात बजे—दस मिनट तक धूप में रह कर स्नान।

साढ़े सात बजे—नाश्ता कोई मौसमी फल और साथ में पाव डेढ़ पाव गाय का कच्चा या एक उफान तक का गरम किया हुआ दूध।

साढ़े बारह बजे—चोकर समेत आटे की रोटी और पाव डेढ़ पाव हरी तरकारी, जिसके बनाने में उसे केवल उबल जाने दिया जाए और मसाले मे नमक धनिए, हल्दी, जीरे के सिवा किसी अन्य मसाले का उपयोग न किया जाए।

पाच बजे शाम—टहलना ।

छ बजे शाम—स्नान के बाद दोपहरवाला भोजन।

नौ बजे रात—पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखकर सोना।

आशान्वित रहें, मन का सुमस्कार करते रह, स्वप्नदोष से शीघ्र मुक्ति पाएग।

यह कार्यक्रम केवल स्वप्नदोष से मुक्ति दिलाने म ही समर्थ नही है, इस पर चल कर कोई भी हस्तमैथुन तद्जन्य कमजोरिया खराबियो शीघ्रपतन से भी छुट कारा पा सकता है।

स्त्रियो के श्वेतप्रदर और मासिक की अनियमितता के लिए भी यह कार्यक्रम समान रूप से उपयोगी है।

६. रक्ताभाव

रक्ताभाव जहा सौंदर्य का नाशक है वहा स्वास्थ्य-विनाशक भी और तमाशा यह है कि जब जवानी की अवस्था मे मनुष्य को स्वास्थ्य और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति होना चाहिए उसी समय यह रोग अधिकतर होता है। देर तक जागना, बिना समझबूझे जो सामने आया, जहा आया खाना, श्रम से किनाराकशी, शराब, चाय सिगरेट के सहारे आनद की वृद्धि की कोशिश, यह कर लू, वह कर लू की हविस से विनाडित एव उत्तेजित मनादिशा के परिणामस्वरूप यह रोग होना है। इसके साथ-साथ आते है मदाग्नि, कब्ज, स्नायु-दौर्बल्य। हृदय की धडकन भी इनकी कभी-कभी बढ जाती है, उर्ध्व वायु से ये पीडित रहते है खाने के बाद इनका गला जलने लगता है । इस रोग में जहा पुरुषो को स्वप्नदोष होने लगता है वहा स्त्रियो का मासिक रुक जाता है अथवा स्राव बहुत न्यून एव विवर्ण होने लगता है।

क्या आप अपने शरीर के रक्त के बारे में जानना चाहते है? सुनिए। रक्त देखने को तरल है, पर इसम ठोस पदार्थ भी होते है जिनम शर्करा, वसा, प्रोटीन एव प्राकृतिक लवण शामिल है। हमोग्लोबिन रक्त का विशेष अग है, इसीपर रक्त की लाली निर्भर रहती है । वह भोजन द्वारा रक्त में आए लौह की सहायता से अपना कार्य सपादन करता है। लौह कलोरोफिल (हरीतिमा) का साथी है और हरी पत्तिया लौह की प्रधान निवासस्थान है।

रक्त के इस गठन से आप इतना तो समझ ही गये होगे कि रक्त की लाली बढाने के लिए भोजन म लौह की विशेष आवश्यकता है और इसकी प्रधान खान है हरे शाक और हरी तरकारिया । इनके अलावा लोहा चोकर, किशमिश, गाजर, मुनक्का, नारगी, खजूर में भी यथेष्ट मात्रा म मिलता है।

तो आप भोजन में चोकर समेत आटे की रोटी रख कुछ हरे शाक, तरकारिया, दूध और कुछ फल हो। बस इतने से आप शरीर में लौह पहुचाने के कार्य-क्रम पर लग जाते है ।

पर शरीर में गया हुआ भोजन पचे इसके लिए कुछ हलकी कसरतें भी करनी चाहिए। कुछ न हो तो टहल ही । कोई भी श्रम कर, पर करें जरूर। इतना नही कि आप जोर से थक जाय । श्रम एव अपनी शक्ति पर हमेशा नजर रखें । शक्ति बढने पर ही श्रम बढावें ।

कुछ देर धूप मे भी रहना चाहिए । प्रातःकालीन धूप में जब वह प्राप्य हो, दस-पद्रह मिनट खुले बदन रहना काफी होगा।

मालिश ऐसे रोगी के लिए विशेष लाभकर होती है । जाडा हो या गरमी, ठडे पानी का एक घडा सिर पर डलवाए और बदन पोछ कर मालिश लेना आरभ कर दें। ठडक से रक्त के लाल कणो में वृद्धि होगी और मालिश रक्त में स्थायी तौर पर उनके बढते रहने मे सहायक होगी। यदि मालिश की सुविधा प्राप्त न हो तो नहाने के बाद स्वय अपने शरीर को हाथ मे पाच-सात मिनट रगडना चाहिए।

खूब सोइये, जितनी नीद आवे उतना जरूर सोइये। मन को निश्चित रखिए। बस इतना-सा कार्यक्रम है जिस पर चलकर कोई भी अपने शरीर में नूतन रक्त का निर्माण कर सकता है, त्वचा का पीलापन खो सकता है तथा काति, ओज एव स्फूर्ति का धनी बन सकता है।

जीर्ण मलेरिया, खूनी बवासीर, क्षय, उपदंश, रक्त-नलिकाओं के फटने, घाव से बहुत-सा खून बह जाने से भी रक्ताभाव की दशा उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार पैदा हुआ रक्ताभाव इनसे संबंधित रोगों के दूर होने पर ही जाता है।

७. मोटापा

मोटापे का कारण है आलस्यमय जीवन और परिश्रमवाले कार्यों का न करना। यह रोग पहाड़ पर रहनेवालों में नहीं मिलता और मैदान में भी जिन्हें अपनी रोटी के लिए शारीरिक श्रम पर रहना पड़ता है उनमें यह रोग नहीं पाया जाता। इस रोग की जड़ है काहिली, निकम्मापन।

मोटापे को हम सारे शरीर का कब्ज कह सकते हैं। साधारण कब्ज में जिस प्रकार आंतों में मल इकट्ठा हो जाता है उसी प्रकार सारे शरीर के कब्ज में रग-रग, नस-नस में मल इकट्ठा हो जाता है। इसका असर शरीर की बाहरी सतह पर अधिक दिखाई देता है, क्योंकि त्वचा लचीली होती है। इसलिए आसानी से बढ़ जाती है और मल को—विजातीय द्रव्य को—स्थान दे देती है।

इसमें तो सन्देह ही नहीं कि मोटा न होना मोटे से दुबला होने से आसान है। यदि मनुष्य अपने भोजन और कसरत की ओर थोड़ा भी ध्यान देता रहे तो मोटा होने की नौबत ही न आए। पर जो मोटे हो गये हैं उन्हें तो इस रोग से जमकर लोहा लेना होगा। इस युद्ध में धीरता, चतुरता एवं दृढ़ता की जरूरत होती है। किसी को भी उपवास कराकर बहुत थोड़े समय में दुबला किया जा सकता है, पर वह बुद्धिमानी का काम नहीं है। उसके अनेक खतरे हैं। एकाएक उपवास कराने से शरीर में इकट्ठा जहर रक्त में प्रवेश कर जाता है जिससे रोगी का सर चकराने लगता है, कै होने लगती है और कभी-कभी ज्वर चढ़ आता है और भी अनेक कष्ट आ घेरते हैं। अतः ऐसे रोगी को उपवास शुरू में तो बहुत ही कम कराना चाहिए, यदि उपवास कराने की जरूरत दिखाई ही दे तो भी ऐसे रोगी को फलों एवं तरकारियों के रस पर रखना अधिक लाभकर होता है; क्योंकि मोटे मनुष्य का शरीर सब वस्तुओं के लिए उपवास कर सकता है; पर विटामिन और प्राकृतिक लवणों का उपवास नहीं कर सकता और फल—तरकारियों के रस इन चीजों से भरे रहते हैं।

शुरू में ही यह बता देना ठीक होगा कि मोटापा भगाने के दो ही प्रभावशाली अस्त्र हैं। पहला भोजन पर संयम और दूसरा उचित कसरत। मोटापा एक रोग है और प्रत्येक रोग का कारण होता है खून में खटाई का बढ़ जाना एवं क्षार की कमी। अतः रोगमुक्त होने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसे भोजन, जो खून में खटाई पैदा करते हैं उन्हें छोड़ दिया जाय। गोश्त, मछली, अंडे, मैदा, दाल, घी, छंटे चावल आदि खाद्य खून में खटाई पैदा करते हैं, शरीर को रोगी बनाते हैं। इनका इस्तेमाल तो स्वस्थ रहने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को भी न करना चाहिए। मिर्च-मसाले भी अच्छी चीज नहीं हैं। इनके सहारे लोग भूख से अधिक भोजन कर जाते हैं।

खून से खटाई को दूर कर खून को शुद्ध बनानेवाले एवं रोगमुक्त करनेवाले खाद्य हैं सब तरह की हरी तरकारियां, पत्तीदार भाजियां, सब तरह के फल। इसलिए मोटापे के रोगी को फल और तरकारियों को ही अपना मुख्य भोजन बनाना चाहिए। इनमें भी प्रत्येक के गुण-दोष को जान लेना जरूरी है। मोटापे का मुख्य कारण भोजन है। अतः उनके लिए भोजन के हर पहलू को समझ लेना आवश्यक है। खून साफ करने के लिए फलों में सभी रसदार फल, संतरा, अनन्नास, रसभरी, टमाटर आदि सर्वश्रेष्ठ हैं और उनसे घटकर हैं सेब, नासपाती, पपीता, खरबूजा, तरबूज-सरीखे ठोस फल। इसके बाद ही और फलों को स्थान मिलना चाहिए। तरकारियों में सभी पत्तीदार हरी भाजियां परम उत्तम हैं। खीरा, ककड़ी, लौकी, परवल, तरोई आदि उनसे कुछ ही कम हैं। रोग के दिनों में सभी कंद-मूल त्याज्य हैं, केवल गाजर का उपयोग किया जा सकता है।

इन खाद्य वस्तुओं के अलावा चिकित्सा शुरू करने के एक दो सप्ताह बाद थोडी चोकर समेत आटे की रोटी और थोडा मक्खन निकाला हुआ दूध या मठा भी लिया जा सकता है। यहा यह दुहराना गलत न होगा कि मोटापा दूर करने के लिए भूखे रहने की जरूरत नही है। बताई गई खाद्य वस्तुओ को भर-पेट खाइए। सोच कर इनके आधार पर अनेक आकर्षक भोजन बनाए जा सकते है। सवेरे उठते ही एक नीबू का रस पानी में निचोड कर पीजिए। इससे आप में स्फूर्ति और ताजगी आएगी। सवेरे के नाश्ते में कोई रसदार फल लीजिए। दोपहर का कच्ची तरकारियों का सलाद इच्छानुसार खाइए और एक या दो हल्की चपातिया भी लीजिए। शाम का दो तरह की पकी तरकारियो और पाव भर मठे का भोजन। तरकारियो के बजाय कोई फल भी लिया जा सकता है। इसके अलावा दिनमें इच्छा हो तो एक-दो बार फल एव तरकारियो का रस भी पिया जा सकता है। दुबला होने के लिए टमाटर, लौकी और खीरे, ककडी का रस बहुत फायदे मद साबित हुआ है। लौकी और खीरे-ककडी के रस में नीबू का रस और एक आध तोला शहद मिला देने से बहुत बढ़िया शर्बत बनता है। यदि अधिक भूख लगे तो खीरा-ककडी, टमाटर आदि को यो भी खाया जा सकता है।

ऊपर बताए गये भोजन-क्रम से वजन काफी घटेगा और शरीर निर्मल होगा। घटने के लिए कभी उतावला न होना चाहिए। समझ-बूझ कर एक क्रम को आरभ कर दीजिए और निश्चिन्त हो जाइए। पहले वजन ज्यादा घटता है, पर पीछे कम। इसी समय कसरत शुरू कीजिए। वजन जब घटता है तब त्वचा ढीली पडने लगती है। कसरत से उसमें तनाव उत्पन्न होगा, वह सिकुडेगी और शरीर में सुघरता आयेगी। पर कसरत अधिक करने की जरूरत नही है, टहलने के साथ-साथ कोई भी हल्की कसरत की जा सकती है। रस्सी के खेल में एक ही जगह पर दौडना दुबलाने के लिये अच्छी कसरत है, वैसे सभी कसरते, जिनमें मासपेशियों पर तनाव पडता है, काम की है।

दुबलाने के लिए भोजन पर नियत्रण एव कसरत काफी है, पर यदि लूई कूनेका बताया हुआ कटि-स्नान भी सुबह-शाम दस-पन्द्रह मिनट के लिए लिया जा सके तो काम जल्दी बनेगा। मोटापा तो दूर होगा ही और भी जितने रोग शरीर में होगे निकल जायगे। कभी-कभी सारे शरीर पर भाप भी ली जा सकती है। इसके अभाव में और गर्मी के दिनो में, धूप-स्नान भी उतना ही लाभकर होता है। शरीर को केवल भाप लेकर एक-दो पौंड लोग तुरन्त कम कर देते है और भोजन आदि के बिना हेर-फेर के इसी के बल पर दुबला करने का वादा करते है, पर इसमे स्थायी लाभ नही होता। रोज भाप लेने से नाडी-मडल पर झटका लगता है और भाप लेने के बाद ही जो प्यास लगती है उसे मिटाने के लिए पानी पीते ही वजन ज्यो-का-त्यो हो जाता है।

किसी मौसम मे भी दुबलाने का क्रम आरम्भ किया जा सकता है, पर गर्मी में दुबलाते समय बडा आराम मिलता है।

दुनिया के अनेक महापुरुष और प्रतिभाशाली व्यक्ति क्षय के शिकार रहे है। देखने में आया है कि क्षय रोगी बहुत स्फूर्तिशील और बुद्धिशाली होते है। क्षयरोग जिसे राजरोग भी कहते है, के चगुल मे फसनेवाले कुछ महान व्यक्तियो की सूची यहा दी जाती है मिल्टन, शेली, कीट्स, फासिस थोम्पसन, गेटे, शिलर, काण्ट, डी क्वीसी, स्काट, जॉन आस्टिन, स्टीवन्सन, लॉक, डस्कार्टिस, वाल्टेयर, रूसो, रस्किन, गिब्सन, डेविड थ्रे, यूजिन-ओनील, मोलियर, थोरा, जेन वास्टेन, बाल्जक, एमर्सन, सिसरो, डेमोस्थिनीज, मार्क्स, आरलियस, एडगर एलन पो, चेखव, गेस्टोवस्की, गोर्की—ये महापुरुष क्षयरोगी थे। फिर भी उन्होने अपूर्व साहित्य का सृजन किया है। स्टीवन्सन यदि क्षयरोगी न होता तो ग्रथो की रचना नही कर पाता। जिन विषयो से क्षय का जन्म होता है, उन्ही से मानसिक उत्तेजन मिलता है और मस्तिष्क का उत्तम रीति से विकास होता है। नोबल पुरस्कार-विजेता यूजिन ओनील का भविष्य उसी समय निर्मित हुआ था, जब वह क्षय की चिकित्सा करवा रहे थ।

मधुमेह दूर करने के उपाय

स्वामी शिवानंद

मधुमेह को अंग्रेजी में डायबिटीज़ (Diabeties) कहते हैं। शरीर में पोषक तत्वों की कमी होने के कारण तथा पाचक रस के निर्बल होने से, जब शर्करा तत्व का प्राचुर्य हो जाता है तभी इसके परिणामों का पता चल पाता है। मधुमेहाक्रान्त मनुष्य को थकावट का अनुभव तो होता ही है, साथ-ही-साथ उसकी क्षुधा में अतिलोलुपता आ जाती है, जिसका परिणाम यह होता है उसका शरीर पाचक तत्व की कमी होने से उस भोजन को विषतुल्य बना देता है। मनुष्य का रक्त शर्करातत्व से ओतप्रोत हो जाता है, जो सदा और सर्वदा वहां उसी माध्यम को लिए रहता है। वैसे तो हम लोगों के मूत्र तथा रक्त का भी परीक्षण करने से कभी-कभी शर्करातत्व प्रतीत होगा, परन्तु इतना निश्चय रूप से जानना चाहिए कि जबतक रक्त में शकर अथवा मधुतत्व का निरन्तर संयोग न हो तबतक वह मधुमेह नहीं।

अधिक चिन्ता, मानसिक दुःख, अधिक मीठा लेना, पाचन-प्रणाली का निर्बल हो जाना, अधिक परिश्रम तथा अतिसंगम को मधुमेह का मुख्य कारण कहा गया है। मानसिक परिश्रम करनेवाले बहुत शीघ्र इसके शिकार हो जाते हैं। जो लोग व्यायाम नहीं करते तथा सदा एक ही जगह बैठे रहते हैं, उनमें यह रोग ज्यादा पाया जाता है। साधारणतया यह रोग ४० से ६० साल के बीच आक्रमण करता है।

इसका आगमन सहसा ही होता है। जब रोगी जानता है कि वह दुर्बलता का अनुभव कर रहा है, तभी उसे ज्ञात होता है कि उसे मधुमेह है। रोगी के मूत्रत्याग की मात्रा अधिक हो जाती है और वह कई बार मूत्रत्याग करता है। रात को भी उसे मूत्र-त्याग करने के लिये कई बार जागना पड़ता है। अतः उस में निर्बलता की प्रतीति अनिवार्य है। रोगी के मूत्र का परीक्षण करने से मालूम होता है कि किसी-किसी के मूत्र का रंग हल्का पीला होता है और सेब के समान उसमें गन्ध होती है। इस रोग में शरीर की त्वचा ढीली और शुष्क-सी हो जाती है। मलरोध का असर रहता है। रोगी को अधिक प्यास का अनुभव होता है। अधिक जल पीने से उसके शरीर के वीर्य का द्रवीकरण होता है, जिसके कारण व्यक्ति कमजोरी और थकावट का अनुभव करता है। इन्द्रिय स्थान में अधिक खुजलाहट होती है, जिसकी प्रतिक्रिया स्वभावतः रोगी के आन्तरिक निर्माण पर पड़ती है। रक्त में मधुतत्व की प्रचुरता के कारण शरीर में सनसनाहट होती रहती है। इस प्रकार मधुमेह के लक्षण संक्षेप में ये हैं: क्रमानुगत कमजोरी व थकावट का अनुभव, शक्तिपतन, अधिक मूत्र-त्याग तथा भोजन में अतिलोलुपता। मधुमेह के रोगी के किसी भी जगह यदि कोई घाव हो जाता है तो उसका भरना प्रायः असम्भव ही होता है। मधुमेह से सभी श्रेणियों के लोग आक्रांत होते हैं।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कोई भी रोग बिना किसी असाधारण शारीरिक अथवा आध्यात्मिक दोष के नहीं होता। जिस समय मनुष्य प्रकृति के नियमों का पालन करना छोड़ देता है, उसी समय उसकी मानसिक और शारीरिक अवस्था में असमतोल—विषमता आजाती है। मधुमेह कोई असाध्य रोग नहीं है। जिन व्यक्तियों की मानसिक क्रियात्मकता तथा शारीरिक प्रगति उचित अनुपात से होती है, जो नित्यप्रति आसन-प्राणायाम और शारीरिक व्यायाम का अभ्यास करते रहते हैं, जो भोजन विषयक प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं और किसी भी अवस्था में विषमता लानेवाले पदार्थों का उपयोग नहीं करते और जो देह तथा देहान्तर्गत अन्यान्य अंगानुगत समता को स्थायी रूपसे प्रचलित होने में बाधा नहीं

पहुचाते, वे पहले तो इस रोग से आक्रान्त होते ही नही। यदि होते भी है तो शीघ्र स्वस्थ भी हो जाते है ।

इस रोग के रोगी को पचतत्वान्तर्गत कार्बोहायड्रेट् पदार्थतत्व का सर्वथा त्याग करना चाहिए और चावल तथा मीठी चीजो का स्पर्श भी नही करना चाहिए।

घी, मक्खन, हरी तरकारी जैसे परवल, लौकी, खीरा, केले क। फूल, तुरई, करेला का उपयोग फायदेमद होता है। गेहू लाभदायक नही होता अत चने और गेहू का आटा बराबर अनुपात में लेकर रोटी बनानी चाहिए। मधुमेह के रोगी के लिये यही भोजन उपयुक्त भोजन है। रोगी को दूध पीने के लिये चीनी का उपयोग नही करना चाहिए और न सतरा, केला सदृश फलो को ही लेना ठीक होगा।

इस प्रकार रोग के तीन विभाग किये जा सकते है। प्रथम, जबकि रोग का प्रारम्भ हो। दूसरे जब कि रोगी की अवस्था रोगाक्रान्त हो गई हो और तीसरी जबकि रोगी का समस्त शरीर गलित हो गया हो और उसमें शक्ति का पूर्णतया ह्रास हो गया हो। तीसरी अवस्था बडी कष्टकर है। इसम विस्फोटा का अवतरण होने लगता है, जो रोगी को अत्यन्त क्लेशकर होता है। इन्द्रियस्थान के अन्तरग प्रदेश में कभी-कभी हल्का घाव भी हो जाता है, जिसके कारण कभी भी मधुतत्व में विकल्प नही होने पाता। यदि यह घाव किसी प्रकार सुखा दिया जाय तो मधु-अशो म निम्नता आ जाती है। शल्य चिकित्सा से अभी तक यह सम्भव होते देखा गया है, परन्तु उसकी प्रतिक्रिया भी कम भयानक नही होती।

मधुमेह के रोगी को स्त्रीसंग का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो रोग दिन-पर दिन जड पकडता जायगा। उसके समूल विनाश के लिये सभी मार्गों का अवलम्बन करना पडेगा। शारीरिक और मानसिक, दोनो अवस्थाओ में समानता लानी होगी।

रोग की दूसरी अवस्था में रोगी में सहिष्णुता का अश विद्यमान और सबल रहता है। उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने पर भी परिहार के उपायो का प्राकृतिक विधान अनुपालित कर सकती है। अत रोगी को चाहिए कि वह उपवास करना प्रारम्भ करदे। इससे उसके शरीर का विपाश निवृत होता जायगा। परीक्षा करने से देखा गया है कि उपवास के दूसरे दिन मूत्र में शर्करा की मात्रा कम हो जाती है। यदि रोगी दो दिन व्रत करे तो तीसरे दिन मधुतत्व का प्राय लोप हो जायगा। इस प्रकार उपवास करते रहने से और साथ-साथ परिचर्यात्मक विधानो के प्राकृतिक स्वरूप का आश्रय लेने से, रोग को कुछ काल में निर्मूल किया जा सकता है। इस दूसरी अवस्था म भी स्त्री-सग को सर्वथा वर्जित माना गया है। साथ-साथ धम्रपान, चलचित्रो मे जाना, गाना-बजाना सुनना, चाय और काफी और ताडिका पीना इस अवस्था में सर्वथा त्याज्य है। रोगी को हल्के आसन-प्राणायाम का भी अभ्यास करना चाहिए और कुछ देर तक मन की विषमता को शान्त करने के लिये ध्यान और चिंतन भी।

प्रथम अवस्था में रोगी को और भी अधिक सावधान रहना पडता है, क्योकि यदि वह अपनी आदतो को नियन्त्रण में नही रखेगा तो वे काबू से बाहर होती जायगी और फिर वह दूसरी अवस्था मे सुगमता से जा पहुचेगा। अत प्रथम अवस्था तपस्या चाहती है और साधन भी। ज्योही पता चले कि रोग का प्रहार होता जा रहा है त्योही शारीरिक विषमताओ का अनुकूल मार्ग द्वारा दूर करने का उपाय खोजिए। भोजन में सावधानी, आचार-विचार में समता और पवित्रता, साधना में दृढता आने से रोगी शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है।

सक्षेप मे, यह रोग कितना ही असाध्य क्यो न होगया हो, परन्तु नीचे लिखे उपाया से दूर कर सकते है प्रथम—व्यायाम, उपवास, मिताहार, वर्ज्य पदार्थ-त्याग। दूसरा—एकान्त विश्राम, जप, सकल्प सिद्धि, प्रार्थना, शास्त्र मनन, अनुकूल विचार और सद्विचार, सत्यादि नियमो का पालन, ब्रह्मचर्य। तीसरा—आसन, प्राणायाम, यम नियमादि का अनुशीलन और नित्य कर्म की पवित्रता।

उपरोक्त परिचर्या म प्रथम को प्राकृतिक विधान कहा है, दूसरे को आध्यात्मिक विधान और तीसरे को यौगिक विधान।

मलेरिया, हैज़ा, अनिद्रा आदि का इलाज

मलेरिया

१. खाना बन्द कर दीजिये। मान लीजिए कि एक दिन बीच देकर बुखार आता है। ऐसी हालत में आज से परसों तक कुछ न खाइये। किसी भी हालत में तीन-चार दिनों का उपवास फायदेमन्द होगा।

२. हर तीन या चार घंटे पर गर्म पानी में नीबू का रस निचोड़ कर पीजिये। इससे पेशाब ज्यादा होगा, जिसके साथ विकार निकलेगा, पाखाना हो सकता है और खून साफ होगा।

३. सुबह-शाम गुनगुने पानी का एनिमा: पहले सुबह-शाम तीन-चार दिनों तक और फिर सिर्फ एक ही बार और तीन-चार दिनों तक।

४. जब बुखार १०३ डिग्री तक हो जाय और बेचैनी भी ज्यादा हो तो पेड़ू पर गीला तौलिया, ठंडे पानी से निचोड़ कर रखिये। वह गर्म हो जाय तो उसे फिर पानी में निचोड़ लीजिये। बुखार १०२ डिग्री तक आ जाय तो गीला कपड़ा रखना बन्द कर दीजिये।

५. अगर बुखार १०३ डिग्री से ज्यादा हो जाय तो सिर पर भी इकहरी गीली पट्टी रखिये और गर्म होने पर उसे तबतक बदलते जाइये जबतक कि बुखार १०२ डिग्री से कम न हो जाय। अगर १०३ डिग्री के पहले ही सिर में बेचैनी मालूम हो तो गीली पट्टी रखिये।

मलेरिया चार से छ: दिन में शर्तिया जाता रहेगा और फिर नहीं आने का। बुखार छूटने के बाद दो दिन सिर्फ दूध और फल के रस पर और फिर दो-तीन दिनों तक फल और दूध पर रहना चाहिए।

बुखार की हालत में या बीच वाले दिनों में बच्चों या कमजोर रोगियों को सन्तरे, अनार, अनन्नास या अंगूर अथवा तरकारियों का रस तीन-तीन चार-चार घंटे पर दे सकते हैं। —ल० ना० चौधरी

आंखों का दुखना

जब पेट की गर्मी बढ़ जाने से आंखें दुखने लगती हैं तो इलाज पेट का या पेट और आंख दोनों का होना चाहिए, न कि आंखों का। अगर आप कुछ न खायें तो बहुत अच्छा हो और अगर यह न हो सके तो सिर्फ फल लें जैसे संतरे, अनार, अंगूर, गन्ने, टमाटर, पपीता, जामुन, अनन्नास, सेब, नाशपाती, अमरूद और आम। केला, कटहल, लीची नहीं। ये फल खाकर या दूध या मठा पीकर ही रहें। इससे पचाने का काम हल्का पड़ जायगा और शरीर की बची हुई शक्ति पेट की गर्मी को दूर करने में लग जाएगी। इस काम में शरीर की कुछ और भी मदद करनी चाहिए और यह मदद तमाम पेड़ू पर अच्छी (चिकनी, पिंडोल) मिट्टी की एक इंच मोटी गीली पट्टी, जो मिट्टी को पानी के साथ गूंधने से बनती है, रखने से मिल जाती है। इस पट्टी को एक बार लगभग आध घंटे या ४० मिनट के लिए पेड़ू पर रखना चाहिए। यह पट्टी सुबह और शाम या सुबह, दोपहर और शाम को दी जा सकती है। अगर सुबह और शाम को पट्टी के बाद दो दिन एनिमा भी ले लिया जाय तो बहुत जल्द फायदा हो।

आंखों में बहुत तकलीफ हो तो आंखों पर भी आध-आधघंटे के लिए दिन में दो-तीन बार मिट्टी की पट्टी बांधिये। पलकों को बन्दकर ऊपर से इस पट्टी को रखिये।

पेड़ू और आंखों पर की पट्टी के तैयार करने के लिए काफी ठंडा पानी चाहिए। दोनों जगहों की पट्टी पर हल्का गर्म कपड़ा रखना चाहिए।

—जानकीशरण वर्मा

हैज़ा

हैजे में नीचे लिखी बातों पर अमल करने से लाभ होगा :

१. जब रोग हो जाय तो सबसे पहले खाना बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। जबतक रोग शरीर से निकल न जाय तबतक उपवास करना चाहिए।

२. भोजन बन्द कर देने के बाद रोगी को जब-जब और जितना चाहे, पानी में नीबू मिला कर उसे पिलाना चाहिए।

३. पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी आध-आध घंटे के

लिए एक एक या दो दो घंटे के अन्तर पर देना चाहिए।

४ रोगी को एक टब में, जिसमें ठंडा पानी हो बिठा देना चाहिए। पैरों को बाहर निकालकर मामूली गरम पानी से भरे बर्तन में रखना चाहिए। पैर वैसे भी साधारणतया गर्म पानी में रखे जा सकते हैं। यदि इसी समय रोगी को पाखाने जाने की हाजत हो तो उसे तुरन्त टब से निकाल लेना चाहिए। इस तरह हर डेढ़ या दो घंटे के बाद या जब-जब कै या दस्त हो तो उसके बाद मिट्टी की पट्टी और १० मिनट के लिए टब के अन्दर का पेड़ू-नहान अदल-बदल कर या सिर्फ मिट्टी की पट्टी या सिर्फ नहान जारी रखना चाहिए, जबतक कि रोगी को ज्वर न हो जाय। जब ज्वर हो जाय तो रोगी को आराम से लेटाना चाहिए। इससे शरीर के अन्दर की गर्मी निकल जायगी और रोगी को दो या एक दिन में ही स्वास्थ्य लाभ हो जायगा।

—बालेश्वर प्रसाद सिंह

अनिद्रा

नींद को बुलाने के लिए सोने से तीन घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिए। 'भोजनान्ते शतपद गच्छेत्' (भोजन के बाद सौ डग भरना चाहिए) के अनुसार थोड़ी देर तक धीरे-धीरे टहलना चाहिए। अंग्रेजी में भी एक कहावत है कि भोजन के बाद एक मील टहलना चाहिए।

जिन्हें अनिद्रा का रोग एक जीर्ण रोग की तरह हो गया है उन्हें पहले पांच-सात रोज केवल फलाहार करके और एनिमा लेकर अपना पेट साफ करना चाहिए। इससे दिमाग की गर्मी दूर होगी। फिर उचित भोजन आरम्भ करना चाहिए। सारे शरीर को तलहथी से रगड़ना, धीरे-धीरे दूर तक टहलना, मामूली कसरत, योगासन (विशेषकर सर्वांगासन) पेड़ू और मेहन-स्नान इत्यादि से निद्रानाश का रोग निश्चय ही दूर होता है।

यदि यह रोग साधारण कारणों से हुआ हो और पुराना न हो तो नीचे दिए प्रयोगों में से किसी एक से लाभ होना है—

१ सोने के पहले ठंडे पानी से अच्छी तरह नहा लेना, लेकिन भोजन और स्नान में दो-ढाई घंटे का अन्तर जरूर हो। अगर थकावट हो या जाड़ा हो तो गर्म पानी से नहाना चाहिए।

२ पैरों को गर्म पानी में १० से २५ मिनट तक रखना। कमजोर लोगों के लिए यह विशेष लाभदायक है। पैर पानी में रखने के समय सारे शरीर को कपड़े से ढक लेना चाहिए। पानी काफी गर्म हो; पर इतना नहीं कि पैर जल जाय।

३ रीढ़ को गर्म पानी या ठंडे पानी में भिगोये कपड़े से पांच सात बार अच्छी तरह पोंछना।

४ पैर के तलवों में तेल की या यों ही मालिश।

५ लेट जाने पर बदन का धीरे-धीरे दाबा जाना।

—इंदुप्रभा चतुर्वेदी

(पृष्ठ २३६ का शेष)

लिए एक कार्यक्रम बनाना होगा और उस पर अमल करना होगा। कोरी भावना वन्ध्या है। हमारी आत्मा भी तो शरीर के साधन या यन्त्र के द्वारा ही अपने काम बाह्य जगत में कर सकती है। इसी तरह भावना को शरीर में निर्गाडित किये बिना वह कृतकार्य नहीं हो सकती।

इस कार्यक्रम में पहली बात यह होनी चाहिए कि हमारे शरीर की सब क्रियायें उत्पादक हों। केवल आनन्द और मनोरंजन के काम स्वलक्षी होते हैं जबकि 'उत्पादक काम बहुनाम में परलक्षी। उत्पादक कार्य में मनोरंजन भी अपने आप हो ही जाता है।

दूसरी बात यह कि यह काम हम दूसरे की अपेक्षा से न करें। दूसरा क्या करता है, यह अवश्य उपेक्षणीय नहीं है; किन्तु हम क्या करते हैं, यह हमारे लिए सबसे अधिक महत्व की बात है। दोष तुम्हारा है या उनका, ऐसी न्यायाधीश की भाषा बोलने की बजाय दोष मेरा है ऐसी साधक की या सेवक की भाषा बोलनी ज्यादा सही और मौजू होगा। दूसरे क्या कहते और क्या करते हैं इससे हम अधिक परेशान रहते हैं, जबकि हमारी चिंता का विषय, हम क्या कहते क्या करते हैं, होना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि यदि हम उत्पादक काम को महत्व देंगे तो फिर हमें सत्ता-प्राप्ति की राजनीति में दिलचस्पी नहीं हो सकती और उनके लिए दल-बन्दी हमारे ही नजदीक अमगट होकर रहेगी।

उत्पादक कार्य में अन्न और वस्त्र के उत्पादन को रखें। यदि हम ज्यादा नहीं प्रारम्भ में इन दोनों कार्यों में अपनी शक्ति लगा दें तो हम न केवल भारत की तात्कालिक महान् आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे, अपितु आसुरी बलों को पराजित करने में भी हमारा बहुत बड़ा योगदान होगा।

हरू डी, २१७५१ —ह० उ०

यह पूरक अंक

'जीवन-साहित्य' के गतांक में दी गई सूचना के अनुसार प्रस्तुत अंक 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक के पूरक अंक के रूप में पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है। पिछले अंक में प्राकृतिक चिकित्सा के सैद्धान्तिक तथा इस अंक में व्यावहारिक पक्ष की सामग्री दी गई है। उपवास कब, किस प्रकार और कितने दिन का करना चाहिए ; स्नान कितनी तरह के होते हैं और किस अवस्था में कौनसा स्नान लेना चाहिए ; एनीमा से लाभ, उसके लेने की विधि ; मिट्टी की उपयोगिता, विभिन्न रोगों में उसका प्रयोग; वैज्ञानिक मालिश ; सामान्य रोगों का घरेलू इलाज, आदि-आदि बातों की जानकारी इस अंक में कराई गई है। वस्तुतः दोनों अंक एक-दूसरे के पूरक हैं ।

प्राकृतिक चिकित्सा की विधियां वैसे बड़ी ही सरल हैं और घर पर की जा सकती हैं, लेकिन फिर भी पाठकों से हम अनुरोध करेंगे कि जटिल या जीर्ण रोगों में इन उपचारों को वे किसी अनुभवी निसर्गोपचारक से परामर्श करके अथवा उनकी देख-रेख में करें। जल्दी में उल्टे-सीधे, अधूरे प्रयोग करने से विशेष लाभ नहीं होता, हानि की ही संभावना रहती है ।

इस अंक में हम जनसाधारण के लाभ के लिए खास-खास प्राकृतिक चिकित्सालयों तथा प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ प्रामाणिक पुस्तकों की सूची व संक्षिप्त परिचय देना चाहते थे; लेकिन पर्याप्त सामग्री इकट्ठी न होने के कारण उसे अगले अंक में देने का विचार किया है। निसर्गोपचारक बन्धुओं से हमारा अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में आवश्यक सामग्री भेजकर अनुग्रहीत करें ।

इन दो अंकों में देने के बाद भी बहुत-सी सामग्री हमारे पास शेष रह गई है । कई लेख तो ऐसे हैं, जो हमने आग्रह-पूर्वक प्राप्त किये थे। स्थानाभाव की अपनी विवशता के लिए हम क्षमा चाहते हैं। 'जीवन साहित्य' के अगले अंकों में सुविधानुसार उन महत्वपूर्ण रचनाओं का उपयोग करने का प्रयत्न करेंगे । —य०

अनैतिक तत्वों का मुकाबला

इस समय हमारा देश ऐसी विचित्र स्थिति में से गुजर रहा है कि वह नन्दन कानन भी बन सकता है और रौरव नरक भी। आजादी मिलते ही जिस पाशवता का नग्न नृत्य हुआ और अब भी तरह-तरह के नैतिक ह्रास के जो दर्शन हो रहे हैं, उनकी प्रेरक शक्तियां देश को नरक की ओर ले जाना चाहती हैं; लेकिन दूसरी ओर जिन शक्ति और शुद्धि के स्रोतों ने गांधीजी के नेतृत्व में हमें आज़ाद कराया, आजादी के बाद देश में उपस्थित कठिन समस्याओं के अच्छे हल निकाले, बावजूद अशुद्ध शक्तियों के, उनकी आवाज चारों ओर से उठती नज़र आ रही है। यह सब लक्षण पृथ्वी पर स्वर्ग को लाने की ओर संकेत करते हैं। इनके बावजूद एक जबरदस्त श्रद्धा हमारे मन में यह है कि गांधीजी जैसी शुद्धात्मा के तप और बलिदान का नतीजा यह हर्गिज नहीं निकल सकता कि देश में आसुरी शक्तियों की विजय हो। श्री अरविन्द की साधना और सिद्धि के सम्बन्ध में भी हमारा यही विश्वास है। जो आसुरी शक्तियां या असामाजिक या अनैतिक तत्व काम कर रहे हैं उनको परास्त करना ही है; बल्कि हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही है । उनको हम परास्त तभी कर सकते हैं जब हम स्वतः उनके प्रभाव से मुक्त हों और मुक्त रहने का सतत प्रयत्न करते रहें। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा संघर्ष सबसे पहले हमारे अपने अन्दर है । जैसे-जैसे हमारे भीतर संघर्ष कम होता जायगा, हम बाहर के अवांछनीय वर्गों को पराजित करने में सफल हो सकते हैं। लेकिन कोरी ऐसी भावना रखने से यह काम नहीं होने का। उसके

(शेष पृष्ठ २३५ पर)

Reg. No. E. P. 479

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

इस अंक के विशेष लेख

सितम्बर १९५१

आठ आना

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन - साहित्य** [एक प्रति का ।।)

लेख-सूची

पाठकों से निवेदन

"जीवन-साहित्य" का प्रत्येक अंक हमारे कार्यालय से सावधानी के साथ भेजा जाता है, फिर भी बहुत से अंक डाक में इधर-उधर हो जाते है। हमारे पास ऐसी शिकायतों के अनेक पत्र आते हैं। जिन पाठकों को अंक नहीं मिलता, उनका शिकायत करना स्वाभाविक ही है। इस संबंध में दो बातों का विशेष ध्यान रखने का हम ग्राहकों से अनुरोध करेंगे :

१. प्रति महीने के अंत तक यदि उन्हें अंक न मिले तो डाकखाने से मालूम करें। वहां से पता न चले तो हमारे कार्यालय को लिखें। डाकखाने का पत्र साथ में जरूर भेजें।

२. अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

बिना इन दो बातों के तत्काल कार्रवाई करने में हमें कठिनाई होगी।

यदि अंक न मिले तो महीनों प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। महीने के अंत में खोजबीन जरूर कर लें।

चंदा समाप्त होने पर बहुत से ग्राहक जब नये साल के लिए रुपये भेजते है तो किसी दूसरे के नाम से भेज देते है। वह रुपया भेजने वाले के नाम जमा होजाता है और पिछले वर्ष के ग्राहक के नाम वी० पी० चली जाती है। रुपया भेजते समय ग्राहक कूपन पर पिछले वर्ष की ग्राहक-संख्या लिख दें तो उससे कठिनाई हल हो जाती है। यदि पता बदलें तो कूपन में उसकी भी सूचना दे दें। व्यवस्था ग्राहकों के सहयोग से ही सुचारु रूप से चल सकती है।

व्यवस्थापक

जी व न - सा हि त्य

नई दिल्ली

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा विहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पंचायतों के लिए स्वीकृत

सितम्बर १९५१ | वर्ष १२, अंक ९

जय मृत्युञ्जय, जय !

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[रवीन्द्र ठाकुर की 'शिशुतीर्थ' कविता मे, जिसके कुछ अश का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है, जिस महामानव और महान् नेता की कल्पना की गई है, वह गाधीजी को ध्यान में रख कर की गई है। पढकर लगता है, जैसे कवि ने समूचे भूत और भविष्य को अपनी आखो के सामने देख लिया होगा। गाधीजी के महाप्रयाण की घटनाओ को देखते प्रतीत होता है कि कवि की भविष्यवाणी कितनी ठीक थी।—अनु०]

ऊचे गिरि शिखर पर शुभ्र निहार की नीरवता में भक्त बैठा हुआ है। उसकी निद्राविहीन आखें प्रकाश की खोज में आकाश की ओर लगी हुई हैं। जब मेघ घनीभूत हैं और निशाचर पक्षी चीत्कार करते उडते हैं तब वह कहता है, "भाई, भय न करो। मनुष्य को महान् जानो।" (लेकिन) वे (अनुयायी) नही सुनते। वे कहते है—पशु शक्ति ही आद्याशक्ति है और पशुबल ही शाश्वत है। उनके लेखे साधुता आत्म प्रवञ्चना है। लेकिन जब वे आघात पाते है तो क्रन्दन कर उठते है, 'भाई, तुम कहा हो ?" उत्तर में वे सुन पाते है, "मैं तुम्हारे पास ही तो हू।" अन्धकार में वे देख नही पाते। अत तर्क करने लगते है, "यह वाणी, भयार्तों की माया-सृष्टि है और अपने आपको सान्त्वना देने की विडम्बना-मात्र है," फिर कहते है, "हिंसा से कण्टकित अन्तहीन मरुभूमि के बीच मृगतृष्णा के अधिकार को लेकर मनुष्य चिरदिन केवल सग्राम करता जायगा।"

बादल छट गये और पूर्व दिगन्त में शुक्रतारा दीख पडा। पृथ्वी की छाती से आराम का दीर्घश्वास निकला। वन-पथ पल्लव-मर्मर से हिल्लोलित हो उठा। शाखाओ पर पक्षी चहक उठे। भक्त ने कहा, "समय आ गया है।" लोगो ने पूछा, "किसका समय ?" जवाब मिला, 'यात्रा का।" वे बैठकर सोचते रहे। लेकिन उन्होंने अर्थ नही समझा। अपने-अपने मन के अनुसार अर्थ लगा लिया। ऊषा का स्पर्श धरती के अतर तक पहुच

गया। विश्व-सत्ता के प्रत्येक मूल में प्राणों की चंचलता स्पन्दित हो उठी। न जाने कहां से एक अत्यन्त सूक्ष्म स्वर सबके कानों में कह गया, "सार्थकता-तीर्थ पर चलो।" यह वाणी जनता के कंठों में एक महत्त प्रेरणा द्वारा वेगवती हो उठी। पुरुषों ने ऊपर की ओर आंखें उठाईं और स्त्रियों ने हाथ जोड़कर माथा टेक दिया तथा बच्चे ताली बजा कर हंस उठे। प्रभात की प्रथम किरण ने भक्त के ललाट पर सुनहरे रंग का चंदन लगा दिया और सभी बोल उठे, "भाई, हम लोग तुम्हारी वन्दना करते हैं।"

भक्त के पीछे-पीछे उपल-खंड से आकीर्ण निर्मम दुर्गम पथ पर बलिष्ठ और दुर्बल, तरुण और वृद्ध, पृथ्वी पर शासन करनेवाले और आधा पेट खाकर हल चलानेवाले किसान सभी चले। यात्रियों में कोई थका हुआ है, जिसके पैर क्षत-विक्षत हो गये हैं। किसी के मन में क्रोध है और किसी के मन में सन्देह। हर कदम को वे गिनते हैं और पूछते हैं कि अभी कितना रास्ता और बाकी है। उसके उत्तर में भक्त केवल गान गाता है। सुनकर उनकी भृकुटि तन जाती है; किन्तु वे लौट नहीं पाते। चलने वाले जनसमूह का वेग और अव्यक्त आशा उन्हें ठेले हुए लिए जा रही है। उनकी नींद कम होने लगी और उन्होंने विश्राम लेना कम कर दिया। एक दूसरे से आगे निकलने की उनमें होड़-सी लग गई। उन्हें भय हुआ कि विलम्ब करने के कारण वे वंचित न रह जायें। दिन-पर-दिन बीतते गए, दिग्मंडल बदलते रहे। अज्ञात का आमंत्रण अदृश्य संकेत द्वारा इंगित करता रहा। उनके मुख का भाव क्रमशः कठिन होता जा रहा था और उनके कष्ट बढ़ते जा रहे थे।

रात्रि हो गई। यात्रीगण वटवृक्ष के नीचे आसन बिछाकर बैठे। हवा के झोंके से प्रदीप बुझ गया और घोर अन्धकार छा गया, जैसे निद्रा गहरी होकर मूर्छा में परिणत हो गई हो! जनसमूह के बीच से कोई-एक हठात् उठ खड़ा हुआ और अधिनेता की ओर उंगली निर्देश करते हुए बोला, "मिथ्यावादी, (तुमने) हम लोगों को ठगा है।" एक कंठ से दूसरे कंठ में भर्त्सना फैलने लगी। स्त्रियों का विद्वेष तीव्र हो उठा और पुरुषों का गर्जन-तर्जन प्रबल होने लगा। अन्त में एक साहसिक खड़ा हो गया और प्रचण्ड वेग से उसे (अधिनेता को) मारा। अन्धकार में उसका मुख नहीं दीख पड़ा। एक के बाद दूसरा उठा, प्रहार-पर-प्रहार किया और उसका प्राणहीन शरीर मिट्टी पर लोट गया। रात्रि निस्तब्ध थी। बहुत दूर से झरना का मधुर शब्द क्षीण होकर आ रहा था और हवा में यूथिका की मृदु सुगंध फैली हुई थी।

यात्रियों का मन शंका से अभिभूत है। स्त्रियां रो रही हैं। पुरुष चिढ़कर उन्हें डांट रहे हैं, "चुप रहो।" कुत्ते भौंक उठते हैं, चाबुक खाकर उनका भौंकना बन्द हो जाता है। रात्रि समाप्त होना नहीं चाहती है। अपराध का अभियोग लेकर स्त्रियों और पुरुषों में तीव्र तर्क होने लगता है। सभी चीत्कार करते हैं, सभी गर्जन करते हैं और अन्त में छुरी निकलने की नौबत आ जाती है। उसी समय अन्धकार क्षीण हो गया और प्रभात की किरणों ने पहाड़ की चोटियों पर फैल आकाश को आच्छादित कर दिया। हठात् सभी स्तब्ध हो जाते हैं। सूर्य की रश्मियों ने लहूलुहान मृतक के शांत ललाट का स्पर्श किया। स्त्रियां आर्त्त स्वर में क्रन्दन कर उठीं और पुरुषों ने दोनों हाथों से मुख ढक लिया। कोई अज्ञात भाव से भाग जाना चाहता है, (किन्तु) नहीं भाग पाता। अपनी बलि के पास वे अपराध की शृंखला में बंधे हुए हैं। परस्पर एक-दूसरे से पूछते हैं, "हम लोगों को अब कौन रास्ता दिखायेगा?" पूर्व देश का एक वृद्ध बोला, "जिसको हम लोगों ने मार डाला है वही।" सभी निरुत्तर और नतशिर हैं। वृद्ध ने फिर कहा, "सन्देह के कारण हम लोगों ने उसे अस्वीकार किया और क्रोध में आकर उसका वध कर डाला। अब प्रेम के द्वारा हम लोग उसे ग्रहण करेंगे, क्योंकि वह मृत्यु द्वारा हम सभी लोगों में जीवित है, वही महा मृत्युंजय है।" सभी उठ खड़े हुए। एक स्वर से सब ने गान किया—"जय, मृत्युंजय, जय!"

●

क्रान्तिकारी क्रोपाटकिन

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

"जनाब ब्लाडिमिर इलियच (लेनिन), जब आपकी आकाक्षा तो यह है कि हम एक नवीन सत्य के मसीहा बन और नवीन राज्य के सस्थापक, तो फिर आप किस प्रकार ऐसे बीभत्स सरकारी अनाचारो और गैर-मुनासिब गवर्मेंटी तौर-तरीको को अपनी स्वीकृति दे सकते है, जैसे कि किसीके अपराध के लिए उसके नाते रिश्तेदारा को गिरफ्तार कर लेना? इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप जारशाही के विचारो से चिपके हुए है। पर शायद उन निरपराध आदमियो को पकड कर आप अपनी जान की रक्षा करना चाहते हैं। क्या आप इतने अन्धे हो गय है और अपने डिक्टेटरशिप के विचारो के इतने गुलाम बन गये है कि आपको यह बात नही सूझती कि आप-जैसे यूरोपियन साम्यवाद के अग्रणी के लिए यह कार्य (लज्जाजनक तरीको द्वारा निरपराधो की गिरफ्तारी) सर्वथा अनधिकार चेष्टा है? आपका यह काम भयकर रूप से त्रुटिपूर्ण तो है ही, बल्कि उससे यह भी प्रकट होता है कि आप मृत्यु से डरते है, जो सर्वथा तर्कविहीन बात है। उस कम्यूनिज्म के विषय म क्या कहा जाय, जिसका एक महत्वपूर्ण रक्षक इस प्रकार ईमानदारी की प्रत्येक भावना को पैरो-तले कुचलता है?"

यह है उस महत्वपूर्ण पत्रका एक अश, जिसे अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे ('मृत्युसे दो महीने पूर्व') क्रोपाटकिन ने लेनिन को लिखा था। लेनिन उन दिनो विशाल रूसी राज्य के निरकुश शासक थे और क्रोपाटकिन ४१ वर्ष के देश निकाले के बाद चार वर्ष अपनी मातृभूमि के दमघोटू वातावरण में काटकर परलोक-गमन की तैयारी कर रहे थे। इन शब्दो में उन्नीसवी और बीसवी शताब्दि के उस महापुरुष की आत्मा बोल रही है, जिसने कभी अन्याय के साथ समझौता करना मुनासिब न समझा, जिसने साधन और साध्य दोनो की पवित्रता पर समान रूप से जोर दिया और जिसने ईमानदारी तथा अपरिग्रह का वह दृष्टान्त उपस्थित कर दिया, जिसकी मिसाल ससार के राजनीतिक कार्यकर्ताओ के इतिहास में दुर्लभ ही है।

मन्त्रित्व बनाम जूतों पर पालिश

जब कैरेन्स्की ने क्रोपाटकिन से कहा था कि "आप हमारे सरकारी मन्त्रिमडल में जिस किसी पद को चुन लीजिये, वही आपको अर्पित हो जायगा", उस समय क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया था—"मन्त्रित्व के कार्य की अपेक्षा तो मैं जूता पर पालिश करनेवाले चमार का काम अधिक आदरणीय तथा उपयोगी मानता हू।" इसी प्रकार दस हजार रूबल की पेंशन के प्रस्ताव को उन्होने ठुकरा दिया और जार के शीतकालीन महलो के निवास की सर्वथा उपेक्षा की। यह तो हुई लेनिन के पूर्व के शासको के समय की बात, स्वय साम्यवादी सरकार के शिक्षा-मन्त्री लूनाचरस्की ने जब क्रोपाटकिन को लिखा—"आप सरकार से ढाई लाख रूबल लेकर अपनी किताबो के छापने का अधिकार हमें दे दीजिये," तो क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया—"मैंने कभी शासन से पैसा नही लिया और न अब ही सरकारी सहायता ग्रहण कर सकता हू।" यह उन दिनो की बात है, जब क्रोपाटकिन को वृद्धावस्था के अनुरूप पर्याप्त भोजन भी नही मिलता था, जब उनके पास रोशनी की भी कमी थी और कोई सहायक भी नही था।

तो फिर प्रश्न उठता है कि आदर्शवाद को पराकाष्ठा तक पहुचा देनेवाले क्रोपाटकिन अपनी गुजर-बसर कैसे करते थे? देश निकाले के ४१ वर्ष उन्होने अपनी लेखनी के बल-बूते पर ही काट दिये। इसमें भी अराजकवादी लेखो से उन्होने एक पैसा नही कमाया। वे अत्यन्त उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे और वैज्ञानिक लेखा तथा टिप्पणियो से उन्हें कुछ मजदूरी मिल जाती थी। बडी सरलता के

साथ उन्होंने अपने आत्मचरित में लिखा है—"अगर रूस से पर्याप्त समाचार आ जाते अथवा वैज्ञानिक विषयों पर मेरे नोट स्वीकृत हो जाते तो रोटी-चाय के साथ मक्खन भी मिल जाता, नहीं तो रूखी रोटी पर ही गुजर करनी पड़ती।"

अद्भुत आतिथ्य

सुप्रसिद्ध लेखक फ्रैंक हैरिस ने क्रोपाटकिन के विलायत के दिनों के आतिथ्य का एक अच्छा शब्दचित्र खींचा है—"क्रोपाटकिन की धर्मपत्नी सोफी भोजन तैयार कर रही हैं पति के लिए, छोटी-सी पुत्री के लिए और अपने लिए, कि इतने में कोई अतिथि महोदय न जाने कहां से आ टपके! क्रोपाटकिन ने जल्दी ही भीतर जाकर कहा—"सोफी, जरा साग में थोड़ा पानी मिला देना।" थोड़ी देर बाद एक और अतिथि-देव पधारे और क्रोपाटकिन को फिर भीतर आकर कहना पड़ा—"कुछ पानी और।" इस प्रकार की क्रिया कई बार करनी पड़ती और सोफी को ढाई आदमियों के बजाय छःसात आदमियों का भोजन करना पड़ता। मेहमानदारी क्रोपाटकिन के अत्यन्त प्रिय गुणों में से थी और कोई बिल्कुल अजनबी आदमी भी उनके घरपर किसी संकोच का अनुभव न करता था।"

संसार में अनेक राजनीतिक महापुरुष हुए हैं और होंगे, पर मस्तिष्क की विशालता, हृदय की उदारता, चरित्र की स्वच्छता और जीवन की उच्चता के खयाल से क्रोपाटकिन का दृष्टान्त प्रायः अनुपम ही सिद्ध होगा। वैसे प्रारम्भिक तथा यौवन के वर्षों के खयाल से क्रोपाटकिन के जीवन का सर्वोत्तम वृत्तांत तो उनके आत्मचरित 'मेमोयर्स आव ए रिवोल्यूशनिस्ट' से ही मिल सकता है, पर वह ग्रंथ सन् १८९८ तक का ही है और उसके बाद क्रोपाटकिन २३ वर्ष और भी जीवित रहे थे। इस कारण उनके एक विस्तृत जीवन-चरित की आवश्यकता थी और उसकी पूर्ति जार्ज वुडकाक और आइवन अवाकुमोविक नाम के दो ग्रंथकारों ने कर दी। ('प्रिंस पीटर क्रोपाटकिन'—प्रकाशक बोर्डमैन)

क्रोपाटकिन का जन्म सन् १८४२ में हुआ और मृत्यु १९२१ में। उनके जीवन-चरित में तत्कालीन रूस का एक चलता-फिरता चित्र-सा दिखाई देता था। उनका आत्म-चरित इतनी खूबी के साथ लिखा गया है कि वह उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वोत्तम आत्मचरित कहा जाता है। क्रोपाटकिन का जीवन एकांगी न था, वह बहुअंगीन था। क्रांतिकारी अराजकवादी तो वे थे ही, पर साथ-ही-साथ संसार के भूगोलवेत्ताओं में भी वे शिरोमणि थे और समाज-विज्ञान के भी जाने-माने आचार्य। रूस तथा यूरोप के सत्तर वर्ष के इतिहास पर भी उनके जीवन से विशेष प्रकाश पड़ता है।

महात्मा गांधी और प्रिंस क्रोपाटकिन

क्रोपाटकिन के इस जीवन-चरित को पढ़ते हुए हमें उनके और गांधीजी—इन दोनों महापुरुषों के जीवन तथा दृष्टिकोण में अद्भुत साम्य प्रतीत हुआ। साधनों की पवित्रता पर वे उतना ही जोर देते थे, जितना कि महात्मा गांधी। मेरी गोल्डस्मिथ नामक एक यहूदी अराजकवादी ने लिखा है—"जो भी नवयुवक क्रोपाटकिन से मिलने जाता था, उसकी बात वे बड़ी प्रेमपूर्ण मुस्कराहट और सौम्य भावना से सुनते थे। पर एक बात थी कि यद्यपि प्रत्येक ईमानदार तथा उत्साही युवक के प्रति उनका व्यवहार उदारता-पूर्ण रहता था तथापि साधनों के चुनाव के विषय में काफी कठोरता से काम लेते थे। प्रचार के कुछ ढंगों को क्रोपाटकिन असह्य मानते थे। अनुचित साधनों का जिक्र करते हुए उनका स्वर कठोर हो जाता था और उनकी निन्दा बिना किसी लगा-लेस के होती थी। 'चाहे जैसे बुरे-भले साधनों से अपने लक्ष्य की प्राप्ति' इस सिद्धांत से उन्हें घोर घृणा थी और चाहे संगठन का या रुपये एकत्रित करने का या विरोधियों के प्रति व्यवहार का या दूसरी पार्टियों के साथ संबंध स्थापित करने का, अगर कोई साधनों की पवित्रता को नगण्य मानता, तो वे उसे नफरत की निगाह से देखते थे और उसे गर्हणीय मानते थे।" श्री जवाहरलालजी का कथन है कि 'साधनों की पवित्रता' पर जोर देकर महात्माजी ने राजनीति को बड़े ऊंचे धरातल पर ला दिया। संसार की राजनीति को उनका एक खासा दान था और इस विषय में क्रोपाटकिन उनके अग्रणी ही थे।

शिक्षा, कृषि, शारीरिक श्रम का महत्व और विकेन्द्रीकरण के सिद्धातो पर तो दोनों महापुरुषो के विचार बिल्कुल मिलते-जुलते है। सन् १८९६ में जब टाइनसाइड के कुछ कार्यकर्ता एक कृषि-सघ कायम करके खेती करना चाहते थे, क्रोपाटकिन ने उन्हें एक पत्र लिखकर प्रोत्साहित किया था और साथ ही मार्ग की बाधाओ के विषय मे भी आगाह कर दिया था। उन्होने बतलाया था कि छोटे समूह में अक्सर झगडे ही पडते है, शहरी कार्यकर्ताओ के लिए भूमि पर काम करना मुश्किल हो जाता है, पूजी की कमी का खतरा अलग रहता है और सन्यासीपन की भावना गलत रास्तेपर ले जाती है। इसके बाद उन्होने लिखा था—"यदि कृषि का कार्य तुमको आकर्षक लगता है तो उसीको ग्रहण करो। तुम्हे उसमें अपने पहले के आदमियो की अपेक्षा सफलता की आशा अधिक है। कम-से-कम तुम्हे सहानुभूति मिलेगी ही, और मेरी सहानुभूति तो बराबर तुम्हारे साथ रहेगी।" इसके पहले वे एक पत्र में क्रोपाटकिन ने अपने मित्र रोबिन को लिखा था—"बौद्धिक श्रम करते-करते मै तो तग आ चुका हू। अपनी लेखनी के द्वारा जीवित रहना मेरे लिए कठिन हो रहा है। मै उसके बोझ से दबा जा रहा हू। इसके बजाय अगर मै साग-तरकारी पैदा करता अथवा अनाज, तो दूसरो को कुछ सिखा भी सकता था।"

अब क्रोपाटकिन के इस पत्र की तुलना कीजिये महात्माजी के उस पत्रसे, जो उन्होने पडित तोतारामजी सनाढ्य को १९३२ में लिखा था। उस पत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है—"भाई तोतारामजी,···मेरी आकाक्षा यह है कि हम इतने फल और इतनी भाजी पैदा करें, जो हमारे लिए पर्याप्त हो। यदि गो-माता के लिए घास आदि पैदा करें और आश्रम के लिए अनाज, तो खेती के पूर्ण आदर्श को हम पहुचे। लेकिन मैं जानता हू कि यह सब मूर्ख की बकवास है। खेती का काम सबसे कम किया और बातें मैंने इस बारे में सबसे ज्यादा की है। क्या करू, खेती उन्ही चीजो से है, जो करने का खयाल मुझको आधी आयु बीतने पर आया। —बापू।" दोनों पत्रो में कितना अधिक साम्य है! क्रोपाटकिन ने कृषि के विषय में भी अनुसधान किए थे। जब वे फ्रासीसी जेलमें थे तो सरकार ने उन्हे अपने कृषि सम्बन्धी प्रयोगो के लिए एक खेत दे दिया था और ऐसा कहा जाता है कि उन्होने जो प्रयोग वहा किये, उन्होने कृषि-जगत् में एक क्राति ही कर दी! इन्ही प्रयोगो के आधार पर उन्होने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'फील्ड, फैक्टरीज एड वर्कशाप' लिखी। नई तालीम के अनेक मूल सिद्धान्त इस पुस्तक मे है।

क्रोपाटकिन के जीवन-चरित के लेखको ने लिखा है—"क्रोपाटकिन तथा उनके साथियो के बीच में आतकवाद पर बराबर मतभेद रहा।" स्वय क्रोपाटकिन ने भी एक जगह लिखा था—"साधारणत यह कहना ठीक होगा कि आतक की प्रतिष्ठा एक सिद्धात के रूप में कर देना मूर्खतापूर्ण है।" इस सम्बन्ध मे सन् १८९३ की एक महत्वपूर्ण घटना यहा दी जाती है। कोयले की खानो में हडताल हो गयी थी। विलायत के मजदूर-नेता एक होटल में एकत्र हुए थे और उन्होने क्रोपाटकिन को भी निमत्रित किया था। जबतक खान के मजदूरो के कष्टो की चर्चा चलती रही, सभी लोग एक-दूसरे से सहमत रहे, पर ज्योही उपायो का विषय छिडा कि क्रोपाटकिन की 'शान्तिप्रियता' ने मानो मेज पर विस्फोट का काम किया! मजदूर-दल के सभी नेता सरकार के खिलाफ कठोर उपाय काम में लाने के पक्षपाती निकले। इसके विपरीत क्रोपाटकिन का कहना था कि हमें सत्याग्रह, बीच-बचाव तथा प्रचार से काम लेना चाहिए। इस वाद विवाद का नतीजा यह हुआ कि मीटिंग भग हो गई। टामस मैन नामक मजदूर-नेता बार-बार चिल्ला रहे थे—"हमें विध्वस की नीति का आश्रय लेना चाहिए, हमें चीजो को तोड डालना चाहिए, हमें जालिमो को खत्म कर देना चाहिए।" लेकिन ज्योही कुछ शान्ति होती, प्रिंस क्रोपाटकिन अपने वैदेशिक लहजे में बडी विनम्रता से निरतर यही कहते सुनाई देते—"नही, विनाश नही, हमें निर्माण करना चाहिए। हमें मनुष्यो के हृदय का निर्माण करना चाहिए। हमें ईश्वर के राज्य का निर्माण करना चाहिए।" ये शब्द तो बिल्कुल महात्मा गाधी जैसे ही प्रतीत होते है! और उन दिनो—१८९३ में—महात्माजी ने दक्षिण अफ्रीका म वकालत के लिए प्रवेश किया ही था।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्रोपाटकिन के जीवन-चरित के लेखक भी अन्त मे इसी परिणाम पर पहुचे है

कि संसार का कल्याण 'संगठित हिंसा' द्वारा नहीं होगा, वल्कि शांतिपूर्वक एक-दूसरे के प्रश्नों को समझने के द्वारा। शासन अथवा 'राज्य' द्वारा नहीं होगा, वरन् पारस्परिक सहयोग के आधारपर स्थित सहस्रों समितियों द्वारा। केंद्रीयकरण द्वारा नहीं, विकेंद्रीयकरण द्वारा! देश का—देश का ही नहीं, संसार का—यह दुर्भाग्य है कि हमारे यहां तुलनात्मक अध्ययन करके संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विचारकों के विचारों का सारांश निकालनेवाले विद्वान् बहुत कम हैं। क्रोपाटकिन तथा गांधीजी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आकर्षक है और खास तौर से आज तो, जबकि दुनिया चौराहे पर खड़ी हुई है और उसके सामने ठीक मार्ग ग्रहण करने का प्रश्न उपस्थित है, यह विषय और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। एक मार्ग है क्रोपाटकिन तथा गांधीजी का और दूसरा है मार्क्स तथा स्टालिन का।

स्फूर्तिदायक जीवन

महापुरुषों के जीवन-चरितों में अदभुत स्फूर्ति प्रदान करने की सामर्थ्य होती है और इस दृष्टि से क्रोपाटकिन का जीवन-चरित खासा महत्व रखता है। क्या अजीब सिनेमा-जैसा दृश्य वह हमारी आंखों के सामने ला उपस्थित करता है। एक अत्यन्त प्राचीन और उच्च वंश में जन्म, जारशाही के अत्याचारों का घनघोर अंधकार, गुलामी की प्रथा का दौर-दौरा, आठ वर्ष की आयु में जार के पार्षद बालक, बारह वर्ष की अवस्था में फ्रेंच भाषा का अध्ययन और रूसी राजनीतिक साहित्य में रुचि, अपने बड़े भाई एलैक्ज़ेंडर के साथ हार्दिक प्रेम, फौजी स्कूल में शिक्षा, साइबेरिया की यात्रा—गवर्नर-जनरल के ए. डी. सी. बनकर वहां से त्यागपत्र, फिर सेंट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में पांच वर्ष तक गणित तथा भूगोल का अध्ययन, क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होना, यूरोप की यात्रा और वहां अराजकवादी संस्थाओं का संपर्क, रूस लौट कर क्रांतिकारी विचारों का प्रचार इत्यादि। इसके बाद का दृश्य ए. जी. गार्डिनर के रक्षाचित्र में देख लीजिये :

"नाटक का पर्दा बदलता है। जार निकोलस की अंधेरी रात दूर हो गई, लेकिन उसके बाद दासत्व-प्रथा बन्द होने के कारण थोड़ी देर के लिए जो उषाकाल आया था, उसे प्रतिक्रिया के अंधकार ने ढंक लिया और रूस फिर पुलिस के अत्याचारों से कुचला जाने लगा। सैकड़ों निरपराध आदमी फांसी पर लटका दिये गये और हजारों ही जेल में ठेल दिये गये, अथवा साइबेरिया में अपनी कब्र खोदने के लिए निर्वासित कर दिये गये। सारे रूस पर भय और आतंक का साम्राज्य था, लेकिन भीतर-ही-भीतर रूस जाग्रत हो रहा था। रूसी जार एलैक्ज़ेंडर द्वितीय ने अपने शासन का सूत्र पुलिस के दो जालिम अफसरों को—ट्रेपोफ और शुवालोफ को—सौंप दिया था। वे चाहे जिसे फांसी पर लटका देते थे और चाहे जिसे निर्वासित कर देते थे; लेकिन फिर भी वे क्रांतिकारी गुप्त समितियों की कार्रवाइयों को रोकने में सफल नहीं हुए। ये समितियां दनादन स्वाधीनता तथा क्रांति का साहित्य जनसाधारण में बांट रही थीं। इस घोर अशान्तिमय वायुमंडल में भेड़ की खाल ओढ़े एक अद्भुत किसान, अदृश्य भूत की तरह इधर-से-उधर घूम रहा है। उसका नाम बोरोदिन है। पुलिस के अफसर हाथ मल-मलकर कहते है—'बस, अगर हम लोग बोरोदिन को किसी तरह पकड़ पावें तो क्रांति की इस सर्पिणी का मुंह ही कुचल जाय—हां, बोरोडिन को और उसके साथी-संगियों को।' लेकिन बोरोदिन को पकड़ना आसान काम नहीं। जिन जुलाहों और मजदूरों के बीच में वह काम करता है, वे उसके साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं। वे सैकड़ों की संख्या में पकड़े जाते हैं, कुछ को जेल का दंड मिलता है और कुछ को फांसी का, पर बोरोदिन का असली नाम और पता बतलाने के लिये तैयार नही।

"सन् १८७४ की वसन्त ऋतु, संध्या का समय। सेंट पीटर्सबर्ग के सभी वैज्ञानिक और विज्ञान-प्रेमी ज्योग्राफिकल सोसाइटी के भवन में महान् वैज्ञानिक प्रिंस क्रोपाटकिन का व्याख्यान सुनने के लिए एकत्रित हुए हैं। फिनलैंड की यात्रा के परिणामों के विषय में उनका भाषण होता है। रूस के 'डाइल्यूवियल' (जलप्रलय) काल के विषय में वैज्ञानिकों ने जो सिद्धांत अबतक कायम कर रखे थे, वे एकके बाद दूसरे खंडित होते जाते है और अकाट्य तर्क के आधार पर एक नवीन सिद्धांत की स्थापना होती है। सारे वैज्ञानिक जगत् में क्रोपाटकिन की धाक जम जाती है। इस महापुरुष के मस्तिष्क के विस्तार के विषय

में क्या कहा जाय ! उसका शासन भिन्न-भिन्न ज्ञानो तथा विज्ञानो के समूचे साम्राज्य पर है। यह महान् गणितज्ञ है और भूगर्भ-विद्या का विशेषज्ञ। वह कलाकार है और ग्रथकार (बारह वर्ष की आयु में उसने उपन्यास लिखे थे), वह सगीतज्ञ है और दार्शनिक। बीस भाषाओ का वह ज्ञाता है और सात भाषाओ में वह आसानी के साथ बातचीत कर सकता है। तीस वर्ष की आयु में रूस के चोटी के विद्वानों में—उस महान् देश के कीर्ति-स्तम्भो में प्रिंस क्रोपाटकिन की गणना होने लगती है। प्रिंस क्रोपाटकिन को बाल्यावस्था मे फौजी काम सीखना पडा था और पाच वर्ष बाद जब उनके सामने स्थान के चुनाव का सवाल आया, तो उन्होने साइबेरिया को चुना था। वहा सुधार की जो स्कीम उन्होने पेश की और आमूर की यात्रा करके एशिया के भूगोल की भद्दी भूलो का जिस तरह सशोधन किया, उससे उनकी कीर्ति पहले से ही फैल चुकी थी, पर आज तो भौगोलिक जगत् में विजय का सेहरा उन्हीके सिर बाध दिया गया। प्रिंस क्रोपाटकिन ज्योग्राफिकल सोसाइटी के 'फिजीकल ज्योग्राफी' विभाग के सभापति मनोनीत किये गये, भाषण के बाद ज्योही गाडी मे बैठकर वे बाहर निकले और एक दूसरी गाडी उनके पास से गुजरी, एक जुलाहे ने उस गाडी में से उझककर कहा—'मिस्टर बोरोडिन, सलाम।' दोनो गाडिया रोक दी गई। जुलाहे के पीछे से खुफिया पुलिस का एक आदमी उस गाडी में से कूद पडा और बोला—'मिस्टर बोरोडिन उर्फ प्रिंस क्रोपाटकिन, मैं तुम्हे गिरफ्तार करता हू।' उस जासूस के इशारे पर पुलिस के आदमी कूद पडे। उनका विरोध करना व्यर्थ होता, क्रोपाटकिन पकड लिये गये। विश्वासघातक जुलाहा दूसरी गाडी मे उनके पीछे-पीछे चला।"

(इसके बाद वे किस प्रकार किले की जेल में डाल दिये गए, वहा उन्हे क्या-क्या यातनाए सहनी पडी और वहा से वे किस तरह भाग निकले, इसका अत्यन्त मनोरजक वृत्तान्त क्रोपाटकिन के 'मेमोयर्स' में मिलता है।)

४१ वर्ष की साधना

सन् १८७६ से लेकर १९१७ तक (४१ वर्ष) क्रोपाटकिन को स्वदेश से बाहर व्यतीत करने पडे। कठोर-से-कठोर साधना का यह लम्बा युग केवल उनके जीवन का ही नही, ससार के राजनीतिक इतिहास का भी एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। इस बीच में स्विटजरलैंड तथा फ्रास में भी रहे और दो-ढाई वर्ष के लिए उन्हे फ्रासीसी जेल की भी हवा खानी पडी। उनके सभी महत्वपूर्ण ग्रथ इसी युग में लिखे गये। इनमें कई तो ऐसे हैं, जिनका विश्व-व्यापी महत्व है, जैसे 'पारस्परिक सहयोग' और 'रोटी का सवाल'[१] आदि। उनके क्रातिकारी लेखो के भी कई सग्रह भिन्न-भिन्न भाषाओ में छपे थे और 'नवयुवको से दो बातें'[२] तथा अन्य लेख हिंदी में भी छप चुके हैं।

क्रोपाटकिन ने ही लन्दन में सन् १८८६ में 'फ्रीडम' नामक पत्र की स्थापना की, जो अबतक चल रहा है। इसी वर्ष क्रोपाटकिन के जीवन की एक अत्यन्त दुखमय घटना घटी, यानी उनके बडे भाई ने साइबेरिया से लौटते हुए रास्ते में आत्मघात कर लिया। उन्हे भी देश निकाले का दड दिया गया था, जिसके अन्तर्गत बारह वर्ष उन्हे साइबेरिया में बिताने पडे थे। जब उनके छुटकारे के दिन निकट आये तो उन्होने अपने बाल-बच्चो को पहले ही रूस रवाना कर दिया और फिर एक दिन निराशा से अभिभूत होकर अपने-आप को गोली मार ली। वे महान् गणितज्ञ थे—खगोलशास्त्र के अद्भुत ज्ञाता थे और ज्योतिषशास्त्र के बडे-से-बडे विद्वानो ने उनकी कल्पनाशील प्रतिभा की बहुत प्रशसा की थी। महज आशका के आधारभूत उन्हे जारशाही ने देश-निकाले का दड दिया था, जबकि क्रातिकारी दलो से उनका कोई भी सबन्ध न था। यदि उन्हे स्वाधीनतापूर्वक अपने खगोल-सम्बन्धी अनुसधान करने की सुविधा होती तो उस शास्त्र की उन्नति में वे कितने सहायक हुए होते! पर निरकुश शासकों में भला इतनी कल्पना शक्ति कहा? क्रोपाटकिन के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। इन दोनों भाइयो का प्रेमपूर्ण व्यवहार आदर्श था। पर क्रोपाटकिन ने अपनी इस हृदयवेधक दुर्घटना का जिक्र अत्यन्त सयम के साथ केवल एक वाक्य में किया है—"हमारी कुटिया पर कई महीने तक दुख की घटा छायी रही।" प्रेम-कातर क्रोपाटकिन ने अपनी भाभी तथा भतीजे-भतीजियो की यथाशक्ति सेवा की।

१-२ ये दानो पुस्तके सस्ता-साहित्य-मण्डल से निकली है।

क्रोपाटकिन की मनुष्यता

क्रोपाटकिन की समस्त शिक्षाओं का आधार उनकी मनुष्यता थी। वस्तुतः अराजकतावाद इस विषय में मार्क्स-वाद से सर्वथा भिन्न है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं। मार्क्सवादी उसके साथ शतरंज के मुहरे की भांति व्यवहार करते हैं और सिद्धांत-सम्बन्धी मतभेद होने पर उसके शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग कर देने में भी उन्हें संकोच नहीं होता। पर अराजकवादी के लिए मनुष्य वस्तुतः मनुष्य है, जिसके लिए मानों उसका हृदय उमड़ा पड़ता है। साम्यवादी को अपनी 'प्रणाली' की चिन्ता है, जब कि अराजकवादी को 'मनुष्य' की। जब भी कभी अन्याय तथा अत्याचार का प्रश्न आता, क्रोपाटकिन बिना किसी भेदभाव के उसका विरोध करते—चाहे वह अन्याय उनके विरोधी पंथ वाले पर ही क्यों न किया गया हो। उनके शब्द सुन लीजिये—"हम व्यक्ति की पूर्ण स्वाधीनता को मानते हैं। हम उसके लिए जीवन की प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओं का स्वतन्त्र विकास चाहते हैं। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नहीं चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धांत पर पहुंचते हैं, जिस सिद्धांत को फरियर ने धार्मिक नीति-ज्ञान के विरोध में रखते हुए कहा था—'मनुष्य को बिल्कुल स्वतन्त्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योंकि धर्म उसको अपंग—जरूरत से ज्यादा अपंग—बना चुका है।' उसके मनोविचारों से भी मत डरो। स्वतन्त्र समाज में ये खतरनाक नहीं होते।"

प्रिंस क्रोपाटकिन के ग्रंथों को पढ़ जाइए, कहीं भी कोई क्षुद्र भावना उनमें दिखाई न देगी। कम्यूनिस्ट साहित्य के शाब्दिक जंजाल का उनमें नामोनिशान तक नहीं है। कम्यूनिस्ट लोग अर्थ को इतना महत्व देते हैं और नैतिकता को इतना नगण्य मानते हैं कि उनके साहित्य की लू-लपट में किसी भी सहृदय मनुष्य की आत्मा झुलस सकती है। क्रोपाटकिन का साहित्य इसके बिल्कुल विपरीत हैं। उसमें नैतिकता की शीतल-मन्द समीर सदा ही बहती रहती है।

क्रोपाटकिन के ४१ वर्षीय देश-निकाले के कितने ही किस्से उनके जीवन-चरित में तथा उनके विषय में लिखे संस्मरणों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जिनसे उनकी सन्त-प्रकृति पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। एक बार फ्रैंक हैरिस ने उनसे कहा—"आपने देखा, उन अराजकवादियों ने यौवनावस्था में तो खूब काम किया, पर अब वे अर्थलोलुपता के शिकार हो गए हैं!" इस पर क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया—"उन लोगों ने जोशे-जवानी के दिन हमारे अर्पित कर दिए और अपना सर्वोत्तम हमें भेंट कर दिया। अब इससे अधिक की मांग उनसे हम कर ही क्या सकते हैं?" यह उदारता ही क्रोपाटकिन के सम्पूर्ण जीवन की कुंजी थी।

विलायत में रहते हुए क्रोपाटकिन की मैत्री वहां के सर्वश्रेष्ठ विचारकों तथा कार्यकर्ताओं से हो गई थी। उनमें से कितने ही उनके प्रशंसक थे। हिंडमैन, बरनार्ड शा, लैन्सबरी, एडवर्ड कारपेन्टर, नैविनसन और ब्रेन्सफोर्ट प्रभृति से उनके सम्बन्ध बहुत निकट के थे, और जब क्रोपाटकिन ७० वर्ष के हुए तो उनकी संवर्द्धना के लिए आयोजित एक मीटिंग में बरनार्ड शा ने कहा था—"मुझे तो अब ऐसा प्रतीत होता है कि अब इतने वर्ष तक हम लोग गलत रास्ते पर चलते रहे हैं और क्रोपाटकिन का रास्ता ही ठीक था।" तपस्वियों तथा विचारकों की विचारधारा बहुत धीरे-धीरे काम करती है। क्रोपाटकिन ने अपनी वाणी तथा लेखनी द्वारा जो महान कार्य किया, उसने केवल इंगलैंड ही नहीं, फ्रांस, इटली, स्विट्जरलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों के विचारकों को भी प्रभावित किया और जो विचार उन दिनों नवीन प्रतीत होते थे, वे आज सार्वजनिक बन गए हैं।

रूस को वापसी

सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद क्रोपाटकिन ने स्वदेश को लौटना उचित समझा। अब वे ७५ वर्ष के ही हो चुके थे, फिर भी उनके मन में युवकों-जैसा उत्साह था। पेट्रोग्रेड में ६० हजार आदमियों ने उनका स्वागत किया और रूसी सरकार के प्रधान कैरेन्स्की भी उनके स्वागतार्थ उपस्थित थे। चूंकि क्रोपाटकिन का विश्वास किसी भी सरकार

में नहीं था, इसलिए उन्होंने कोई सरकारी पद ग्रहण नही किया। वैसे करेन्सकी के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे थे, पर लेनिन के हाथ में शक्ति पहुचने पर क्रोपाटकिन सर्वथा उपेक्षा के ही पात्र बन गए हैं।

अन्तिम दिन

क्रोपाटकिन के अन्तिम दिनो की एक ऐसी झाकी गोल्डमैन के आत्मचरित 'लिविंग माइ लाइफ' में मिलती है। उन्होने लिखा है—"रूस पहुचने पर मुझे कम्यूनिस्ट लोगो ने बार-बार विश्वास दिलाया था कि क्रोपाटकिन तो बडे आराम की जिन्दगी बसर कर रहे हैं और न उन्हे भोजन-वस्त्र की कमी है और न किसी अन्य वस्तु की। पर जब मैं क्रोपाटकिन के घर पहुची तो मामला इसके विपरीत ही पाया। क्रोपाटकिन, उनकी पत्नी सोफी तथा लडकी एलेक्जेण्ड्रा तीनों एक कमरे में रहते थे और वह कमरा भी काफी गरम नहो था तथा पास के कमरे तो इतने ठडे थे कि उनका तापमान शून्य से भी नीचे था। उन्हें जो भोजन मिलता था, वह बस जीवित रहने-भर के लिए पर्याप्त था। पर जिस सहयोग-समिति से उन्हे राशन मिलता था, वह टूट चुकी थी और उसके मेम्बर जेल भेज दिये गए थे। मैंने सोफी से पूछा—'गुजर-बसर कैसे होती है?' उन्होने उत्तर दिया—'हमारे पास एक गाय है और बगीचे में भी कुछ पैदा हो जाता है। साथी लोग भी बाहर से कुछ भेज देते हैं। अगर पीटर (क्रोपाटकिन) बीमार न होते और उन्हें अधिक पौष्टिक भोजन की जरूरत न होती, तो हम लोगो की गुजर बसर हो जाती।"

जार्ज लैंसबरी इन्ही दिनों रूस गए हुए थे। उन्होने एमा गोल्डमैन से कहा था—"मुझे तो यह बात असम्भव दीखती है कि सोवियत सरकार के उच्च पदाधिकारी क्रोपाटकिन-जैसे महान् वैज्ञानिक को इस प्रकार भूखो मरने देंगे! हम लोग इगलैड में तो इस प्रकार के अनाचार को असह्य समझेंगे।"

क्रोपाटकिन उन दिनो अपनी अन्तिम पुस्तक 'नीतिशास्त्र' लिख रहे थे। किताबो के खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। क्लार्क या टाइपिस्ट रखने की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इसलिए अपने ग्रथ की पाण्डुलिपि उन्हे खुद ही तैयार करनी पडती थी। भोजन भी उन्हे पुष्टिकर नही मिल पाता था, जिससे उनकी कमजोरी बढती जाती थी और एक धुधले दीपक की रोशनी में उन्हे अपने ग्रथ की रचना करनी पडती थी।

जब क्रोपाटकिन मरणासन्न हुए तो अवश्य लेनिन ने मास्को से सर्वश्रेष्ठ डाक्टर और भोजन इत्यादि की सामग्री भेजी थी और यह आदेश भी दिया था कि क्रोपाटकिन के स्वास्थ्य के समाचार उनके पास बराबर भेजे जावें। जीवन के अन्तिम दिनों में जिसे दमघोटू वातावरण में रहने के लिए मजबूर किया गया, उसकी मृत्यु के समय इतनी चिन्ता का अर्थ ही क्या हो सकता था! ८ फरवरी, १९२१ को क्रोपाटकिन का देहान्त हो गया। लेनिन की सरकार ने सरकारी तौर पर उनकी अन्त्येष्टि करने का विचार प्रकट किया, जिसे उनकी पत्नी तथा साथी-सगियो ने तुरन्त ही अस्वीकार कर दिया। अराजकवादियो के मजदूर सघ के भवन से उनके शव का जलूस निकला, जिसमें बीस हजार मजदूर थे। सर्दी इतनी जोरो की थी कि बाजे तक बर्फ के कारण जम गए। लोग काले झडे लिए हुए थे और चिल्ला रहे थे—'क्रोपाटकिन के सगी-साथियों को, अराजकवादी बन्धुओं को जेल से छोडो!'

सोवियट सरकार ने डिमिट्रोव का छोटा-सा घर क्रोपाटकिन की विधवा पत्नी को रहने के लिए और उनका मास्कोवाला मकान क्रोपाटकिन के मित्रो तथा भक्तो को दे दिया, जहा उनके कागज-पत्र, चिट्ठिया तथा अन्य वस्तुए सुरक्षित रहीं। सोफी १९३८ तक जीवित रहीं और क्रोपाटकिन के नाम पर स्थापित म्यूजियम की रक्षा करती रहीं। इसके बाद वह सग्रहालय भी छिन्न-भिन्न हो गया। पर स्वाधीनता का यह अद्वितीय पुजारी युग-युगान्तर तक अमर रहेगा। उसका व्यक्तित्व हिमालय के सदृश महान् और आदर्शवादिता गौरीशकर-शिखर की तरह उच्च है।

स्याम के सांस्कृतिक पृष्ठ

प्रो० रंजन

स्याम का धर्म, कला, साहित्य, सामाजिक व्यवस्था और रहन-सहन पड़ोसी देशों के साथ एकता और संयोग के द्योतक हैं। एकता के इस क्षेत्र में चीन और भारत के साथ कम्बोडिया और वर्मा की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्याम की संस्कृति और उसके आधुनिक इतिहास का जितनी अधिक गहराई से अनुशीलन किया जायगा, उतनी ही अधिक रुचि उस अध्ययन में बढ़ती जायगी। बाहर से बौद्ध धर्मावलम्बी होते हुये भी स्याम के विषय में यह कह देना कि वहां भारतीय संस्कृति की प्रधानता है, बिल्कुल गलत होगा। उपरोक्त सभी देशों की संस्कृतियां स्याम में आकर अपनी विभिन्नताओं को छोड़ कर एक नये रूप में विकसित हुई हैं। अतः स्याम में प्रचलित एक देश के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए दूसरे देशों की तत्रस्थ संस्कृतियों का सम्यक् अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। यह कहना असंभव ह कि स्याम के सामाजिक जीवन में इस सीमा तक चीनी प्रभाव है, इस सीमा तक भारतीय। सभी विदेशी संस्कृतियां स्याम देश में उतरते ही एक नया रूप धारण कर लेती हैं। यही अतीत में हुआ और शायद यही भविष्य में। यह नवीन रूप सबसे भिन्न होते हुए भी सबकी विशेषताओं से मुक्त है। तात्त्विक रूप से स्याम की संस्कृति को एक शब्द में रखा जा सकता है—धर्म। क्योंकि स्यामी कला, साहित्य एवं परंपराएं सभी धर्म को केन्द्र-बिन्दु मानकर ही पल्लवित और विकसित होती रहीं। केवल पिछले कुछ वर्षो से स्याम के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में पश्चिमी प्रभाव के कारण एक अन्तर हुआ है और आज स्याम के अति उन्नत भागों में आर्य-संस्कृति धर्मनिरपेक्ष हो रही है; परन्तु स्याम के सर्वसाधारण लोगों के लिए धर्म और संस्कृति आज भी एक ही हैं।

पूर्वजों की पूजा के साथ-साथ देववाद(Animism) में स्याम का आदिकाल से विश्वास रहा है और इसलिए इस देववाद को थाईधर्म का पहला पृष्ठ माना जा सकता है। बाद में इस देश में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और स्याम ने इसे राष्ट्रीय धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही कम्बोडिया के प्रभाव के कारण आर्य लोगों ने एक अंश तक हिन्दू धर्म के कुछ तत्वों का भी अपने बौद्ध धर्म में समावेश कर लिया है। इसीका प्रभाव है कि स्याम के प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिरों की दीवारों में रामायण और महाभारत सम्बन्धी कथायें लिखित हैं। थाई लोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि जिस धर्म या संस्कृति को उन्होंने अपनाया उसे ज्यों-का-त्यों कभी गृहण नहीं किया। स्थान और वातावरण के अनुकूल उसपर अपना रंग चढ़ाकर उसे बिल्कुल अपने अनुरूप बना लिया। जब बौद्धधर्म को उन्होंने स्वीकार किया तो अपने देववाद (Animism) के बुनियादी विश्वासों में संशोधन कर उसे बौद्ध धर्म में मिल जाने योग्य बना लिया। इसी प्रकार जब वे हिन्दू धर्म के प्रभाव में आये तो उसे उन्होंने बौद्ध धर्म के पूरक के रूप में ही स्वीकार किया। हिन्दू और बौद्ध धर्म दोनों का स्रोत एक ही था। इसलिए उनके एकरूप होने में कोई बाधा नहीं पड़ी। समय के साथ-साथ दोनों ही तदाकार होते गये; परन्तु इस अवस्था में भी प्राचीन देववाद के प्रभाव से यह नवीन धर्म वंचित नहीं रहा। मध्य स्याम के लोगों में जहां हिन्दुओं का आज भी काफी जोर है, एक कहावत है "बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।" उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी भागों में हिन्दू धर्म कमजोर पड़ गया है और उसके स्थान पर प्राचीन 'देववाद' प्रधान हो गया है, विशेषकर ग्रामीण लोगों के रहन-सहन में। परन्तु इस 'देववाद' में बौद्ध धर्म ने काफी संशोधन कर दिया है।

स्याम में स्वीकृत बौद्ध धर्म हीनयान पथ से सबधित है। परन्तु महायान पथ के कुछ तत्व भी इसमें विद्यमान हैं। यह प्रभाव कम्बोडिया और मलाया प्रायद्वीप के श्रीविजय साम्राज्य के कारण पडा है जहा कि बहुत दिनो तक महायान पथ की ही प्रधानता थी। उत्तर स्याम में भी महायान-पथ के कुछ लक्षण स्पष्ट हैं, परन्तु यहा यह प्रभाव अपने पडौसी देश चीन, बर्मा से आया। आज स्याम में अल्पसख्यकों के रूप में कुछ ईसाई भी हैं, लेकिन ईसाई धर्म ने इस देश में कभी जड नही जमा पाई। यहा के ईसाई धर्म ने स्वय एक नवीन रूप धारण कर लिया हैं। स्याम की इस सास्कृतिक एकता की जड इतनी गहरी जमी है कि विदेशी धर्म भी यहा के स्थानीय लक्षणो से तटस्थ न रह सके। यहा के राष्ट्रीय जीवन का मूल-स्रोत बौद्ध धर्म का सशाधित रूप है। सदियो के काल-चक्र में नवीन आवश्यकताओ को सामने रखकर, इसने अपने विश्वासों और परम्पराओ का निर्माण किया हैं। आज प्रश्न यह है कि पश्चिम की इस भौतिकवादी सभ्यता के प्रबल वेग के सामने स्याम के ये प्राचीन विश्वास और परपरा कबतक टिक सकेंगी ?

जैसा कि ऊपर कहा गया हैं—स्याम की सस्कृति धर्म को केन्द्र मानकर ही जीवित रही है और इसीके पोषण के लिए कला एव साहित्य की सृष्टि हुई। 'कला कला के लिए' वाली कहावत में आज तक यहा किसी को विश्वास नही हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर सस्कृति के दो स्थायी चरण कला और साहित्य की कुछ चर्चा आवश्यक हैं। स्यामी कला का प्रधान लक्ष्य हमेशा धार्मिक प्रवृत्तियो को पुष्ट करना रहा हैं। स्याम के मन्दिरो की उठी हुई कोणाकार छतें, और रगीन चमकदार खपरैल स्याम की वास्तुकला की विशेषताए रही हैं। इस वास्तुकला का चीनी गृह निर्माण पद्धति से बहुत सम्बन्ध है। सोने का पत्ता चढाना, सोने के पानी की कारीगरी एव अन्य सजावटी कलाओ में पूर्वी प्रभाव लक्षित होता हैं। मन्दिरो की छतो पर गावदुम, पक्तिबद्ध शिखरें कम्बोडिया के हिन्दू मन्दिरो की शिखरो की नकल पर बनी हैं। इस प्रकार की गावदुम छतें स्याम और बर्मा की अपनी विशेषताए है।

जहा तक मूर्तिकला का सम्बन्ध है, स्याम में इसका जन्म बुद्ध की धातु प्रतिमाए ढालने तक ही सीमित था। बाद में स्याम ने मूर्तिकला में भाव और लक्षण दोना दृष्टियों से काफी कुशलता प्राप्त की। इस कला के कुछ नमूने दूसरे देशो की इसी कला के नमूनो के साथ सफलता पूर्वक रखे जा सकते हैं।

चित्रकला का आविर्भाव स्याम में मूर्ति-कला के रूप म हुआ। मन्दिरो की दीवारो पर चित्र-अकन इस का एक-मात्र उद्देश्य था। इसका ढग, रगो की गहराई और शेडो (Shadow) आदि प्राचीन ही थे। परन्तु प्रदर्शन और सबद्धता ने इसम काफी उन्नति की और बैंकोक-काल की कुछ चित्रकला विशेषकर (Emrald-Buddha Temple) इमराल्ड-बुद्ध मन्दिर में अकित दीवार चित्र तो भाव, रग और प्रदर्शन तीनो दृष्टियो से श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। परन्तु 'अजन्ता' की गुफाओ की चित्रकला से इसकी तुलना नही की जा सकती।

स्यामी सगीत का आरोह-अवरोह चीनी है। स्यामी सगीत में तीव्र और कोमल का अभाव रहता है। सुनने वालो को ऐसा लगता हैं कि एक ही स्वर में आदि से अन्त तक कोई चीज गाई गई हैं। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप में भिक्षुओ के लिए सगीत सदा मना रहा है फिर भी धार्मिक भावो को उत्तेजित करने एवं त्योहार और उत्सव के अवसरो पर इसका उपयोग किया जाता था।

स्यामी रगमच की उन्नति उस सीमा तक नहीं हो पाई है जिस सीमा तक भारत या पश्चिमी देशो की। नाट्य-कला भी अन्य कलाओ के समान बहुत दिनो तक धर्म की सेवा ही करती रही। इसलिए इस देश में स्वतत्र आदर्श नाट्यगृहो का निर्माण नही हो पाया। देहातो में चलती फिरती नाटक-मडलिया घूम घूम कर रामायण या महाभारत से सबधित किसी कथानक को लेकर नाटक करते दिखलाई देंगे। इस नाट्य-कला में भारतीय नाट्य-तत्वो का भी अपरिपक्व अवस्था में समावेश हुआ है। अभिनेता और अभिनेत्रियो के कार्य कलाप और पदगति बडी

धीमी रहती है। एक प्रकार की कोमलता और सुन्दरता इनकी गति-विधि में रहती है। इसलिए भावुक दिमागों के लिए यह अरुचिकर नहीं हो पाते। इस प्रकार के नाटकों को स्याम में 'लाखॉन' (Lakhon) कहते हैं। पहले बौद्ध विहारों के आंगनों में उत्सव के समय पर जनता को यह नाटक देखने को मिलते थे। आज तो पश्चिमी नाट्य-कला का प्रभाव भी स्यामी रंग-मंच पर तेजी के साथ बढ़ रहा है। चीनी प्रभाव के कारण दृश्य बदलने की क्रिया यहां बहुत जल्दी-जल्दी होती है। स्याम के प्राचीन नाटकों का प्रदर्शन तो वहां सरकारी विभाग 'शिल्प-कॉन' द्वारा किया जाता है। वैसे क्लासिक ड्रामा का सब लोगों में कम चलन रह गया है।

इस प्रकार अभी तक जो कुछ लिखा गया है उससे यह स्पष्ट है कि स्याम की संस्कृति एशिया की दो महान् संस्कृतियों के बीच की सृष्टि है। स्याम एक ओर चीन से प्रभावित हुआ है और दूसरी ओर भारत से। हिन्द-चीन के अनाम-प्रान्त से आगे चीनी सभ्यता दूर दक्षिण में न बढ़ सकी और न भारतीय संस्कृति हिन्द-चीन से आगे उत्तर की ओर बढ़ सकी। यहां पर दोनों प्रबल धारायें एक-दूसरे से टकरा कर रुक गई और इस प्रकार उनकी गति अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में ही सीमित रही। अनामी लोग जो कि रक्त के विचार से इन्डोनेशियन हैं, चीन में वियत् कबीले के नाम से पहले चीन में ही बस गये थे। इन लोगों ने चीनी सभ्यता को बहुत-कुछ अपना लिया था। जब ये लोग फिर हिन्दचीन की ओर आये तो वहां इन लोगों का चंपा (Champa) के हिन्दू चाम-लोगों से सामना हुआ। स्याम के पूर्वी ओर एक अति शक्तिशाली हिन्दू राज्य (खमेर) कम्बोडिया में था ही और इस कारण चीनी सभ्यता न तो पूर्वी तट पर चंपा से आगे बढ़ सकी और न हिन्दचीन के पश्चिमी भाग में खमेर-राज्य की सीमाओं में वह प्रवेश कर पाई। इस प्रकार दो शक्तिशाली सभ्यताओं ने संयोग और मेल से एक बिल्कुल नई सभ्यता को जन्म दिया। प्रदेश की भौगोलिक स्थिति भी इस मेल के कार्य में सहायक हुई। जो भी चीनी सभ्यता थाई लोग अपने साथ चीन के दक्षिण प्रान्त से लाये उसका प्रसार भी यहां नये रूप में ही हुआ। अपने जल-वायु एवं वातावरण के अनुरूप बनाकर ही उसे ग्रहण किया गया। उस प्राचीन विरासत को देश-काल के अनुरूप एक नया जामा पहनाया गया, एक नया स्वरूप दिया गया।

यही कारण है कि आज अपने जीवन के तौर-तरीकों में चीनी और स्यामी बहुत कुछ घुल-मिल सकते हैं; परन्तु वही बात भारतीयों के साथ नहीं हो सकती। स्याम की आबादी में चीनियों की बहुत बड़ी संख्या का होना भी उनके एक-दूसरे में मिल जाने का कारण रहा है। फिर भी स्यामी जीवन में बहुत अंश तक भारतीय सभ्यता का प्रवेश हुआ है। स्याम देश की जल-वायु और प्रचुर उत्पादन ने स्यामी लोगों को काफी आलसी बना दिया है। इसीलिए अवकाश-प्राप्त और सुविधाप्राप्त वर्गों में कला के लिए एक विशेष रुचि रही है। खेती और काम से बचे समय का उपयोग या तो घरेलू-धंधों के रूप में या शहरों में इस कला के रूप में हुआ। जिस कला का स्याम में प्रचार हुआ वह स्वभाव से भारतीय होते हुए भी व्यवहार में बिल्कुल स्यामी है। संघर्ष शून्य बौद्ध-धर्म उनके स्वभाव के अधिक अनुकूल है। इसीलिए उसे अपनाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। पहाड़ों और जंगलों की एकान्त गोदी में रहते-रहते उनकी राजनैतिक चेतना प्रायः अपने गावों या उपनगरों तक ही सीमित रही। परन्तु मध्य-स्याम के अधिकार में आने के बाद—जो कि एक लम्बा-चौड़ा मैदान है—वह सीमित राजनैतिक भावना आज राष्ट्रीय रूप की ओर उन्मुख हो रही है।

मध्य-स्याम के लोगों का रंग और शरीर की बनावट उत्तरी स्यामी लोगों से भिन्न है। उत्तरी लोगों का रंग अधिक साफ और कद कुछ अधिक लम्बा होता है। दक्षिण की ओर बढ़ते-बढ़ते लोग अधिक छोटे और गहरे रंग के होते जाते हैं। इसका कारण यह है कि संस्कृति के समान ही शुद्ध थाई लोगों का खमेर और मलाई लोगों के साथ रक्त-मिश्रण हुआ और एक नई जाति अस्तित्व में आई। इससे शरीर-

रचना में तो अन्तर हुआ पर बौद्धिक दृष्टि से यह नवीन जाति काफी आगे रही। इस प्रकार आज का स्याम विश्व की दो महान् सस्कृतियो और जातियो का मिलन-स्थल है। दोनो के मेल और सयोग से जिस नवीन स्वरूप की सृष्टि हुई उसे ही एक शब्द में स्यामी-सस्कृति और स्यामी जाति कह सकते है। आज के स्याम के जीवन के सभी पक्षो में कम या अधिक चीन और भारत विद्यमान है, पर नवीन स्याम का झुकाव बडी तेजी के साथ पश्चिमी सभ्यता की ओर हो रहा है और सभव है कि अगर अमरीका का जो असर बढ़ रहा है वही कायम रहा तो धर्म को छोड कर कम-से-कम शहरो में आपको अमरीका का प्रतिरूप ही दिखाई देगा, पर इस प्रभाव को रोकने वाली एक शक्ति है—'भिक्षुओ का दल'। यह दल दिल और दिमाग से अपनी प्राचीन परपराओ की भी विरासत का रक्षक रहा है और शायद आगे भी रहे।

मोनैको का कैदी

श्री मोपासॉ

आपमें से बहुतो ने सुना होगा कि मोनैको यूरोप में एक छोटा-सा आजाद देश है। कम-से-कम उसकी राजधानी मॉटकार्लो का नाम तो बहुतो को मालूम होगा ही। मॉटेकार्लो दुनिया के मशहूर जुआरो का अड्डा है। हर गली-कूचे में जुआरों के अड्डे, उनके पास ही कहवाखाने और जुआ खेलने में मस्त जुआरे, इनके अलावा वहा और कुछ होता ही नही।

पुराने जमाने की बात है कि एक बार इस शहर में एक खून हो गया। जुआरो का शहर होते हुए भी वहा के रहनेवालो म मारपीट, चोरी या खून कभी नही होता था। इसलिए जब यह हत्या हो गई तो लोगो को बडा धक्का-सा लगा। हत्या का कारण भी कोई बहुत बडा नही था। बात यह थी कि एक आदमी ने गुस्से मे आकर अपनी औरत के कुल्हाडी मार दी जिससे वह तुरन्त मर गई।

जब हाईकोर्ट में यह मुकदमा पेश किया गया तो मुलजिम पर इल्जाम साबित हो गया और अदालत ने उसे फासी की सजा दे दी। रियासत के बादशाह ने भी वह सजा बहाल रखी, लेकिन अब एक दिक्कत पेश आई। मोनैको में इससे पहले कभी खून नही हुआ था, इसलिए वहा फासी देने का कोई इन्तजाम नही था। फिर जल्लाद वहा से आता? चुनाचे मोनैको के बादशाह ने फ्रास की सरकार से फासी देने की चीजें और एक जल्लाद भेजने की प्रार्थना की। थोडे ही दिनो में फ्रासीसी सरकार से यह जवाब आया

"आपकी प्रार्थना को हम स्वीकार करते है और उसके अनुसार फासी देने के औजार और एक जल्लाद भेजने को हम तैयार है, लेकिन उसके खर्च के लिए आप पहले बीस हजार फ्रैंक भेज दे।"

बीस हजार फ्रैंक का नाम सुनते ही मोनैको का बादशाह सिटपिटा गया। एक आदमी का सिर धड से अलग करने के लिए बीस हजार फ्रैंक खर्च करने को वह बिल्कुल तैयार न था। इसलिए इटली की सरकार से वही दरख्वास्त की गई। इटली का बादशाह मोनैको के बादशाह का रिश्तेदार था, इसलिए यह सोचा गया कि वह बहुत ज्यादा पैसा नही मागेगा और सचमुच उसने सिर्फ सोलह हजार फ्रैंक में सारा काम कर देने की तैयारी बताई।

लेकिन एक आदमी के लिए सोलह हजार फ्रैंक भी बहुत ज्यादा समझे गये और यह तै हुआ कि उसकी सजा को घटा दिया जाय। उसके अनुसार फिर से अदालत बैठी और उस आदमी को फासी के बदले आजन्म कारावास की सजा

दी गई, लेकिन अब और एक दिक्कत पेश आई। सारे देश में एक भी कैदखाना नहीं था और उसे बनाने में बहुत-सा वक्त व पैसा बरबाद होनेवाला था। इसलिए राजमहल के पास ही एक जेलर की नियुक्ति की गई। लेकिन एक साल के अन्दर कैदी और जेलर के खर्च का बोझ उठाना मोनैको के खजाने के लिए मुश्किल हो गया। तब जेलर को हटा दिया गया और कैदी को ही खुद अपने पर पहरा देने का काम सौंपा गया। सोचा यह था कि कैदी भाग जायेगा और बगैर दवा के बीमारी मिट जायेगी। लेकिन कैदी ने भाग जाने की बिल्कुल कोशिश नहीं की। उसके दिल में भागने का खयाल भी पैदा न हुआ। वह बड़े मजे में दिन गुजारता था। सवेरे उठकर वह इधर-उधर घूम आता, दोपहर को नहा-धोकर सरकार की तरफ से मिलनेवाला खाना खा लेता, फिर दिन भर जुआरों के अड्डे में जाकर जुआ खेला करता और रात को अपनी कोठरी में आकर सो रहता। एक दिन सरकारी नौकर खाना लाना भूल गया तो कैदी खुद राजमहल में जाकर नौकरों के साथ खाना खा आया। तबसे वह हर रोज महल में ही खाना खाने लगा।

दिन बीतते गये; महीने भी बीत गए। मगर कैदी भाग जाने का नाम तक न लेता था। सरकार चिंतित हो गई। कैदी बिल्कुल जवान था, इसलिए उसके जल्द मर जाने की आशा नहीं थी। अतः फिर अदालत बैठी और कैदी की सज़ा पर पुनर्विचार होकर उसे देशनिकाले की सज़ा देने का फैसला किया गया। जब कैदी को यह फैसला सुनाया गया तो उससे रहा न गया और वह भर्रायी हुई आवाज़ में बोल उठा—"हुजूर, गुस्ताखी माफ हो! लेकिन आप सब लोग बड़े विचित्र प्राणी मालूम होते हैं। आपने पहले मुझे फांसी की सज़ा बख्शी, मगर फांसी पर नहीं चढ़ाया। फिर आजन्म कारावास का दण्ड दिया और मैं बगैर चूंचपड़ किय उसे भुगत रहा था कि इतने में आपने मेरे जेलर को निकाल दिया। मैं आपसे क़सम खाकर कहता हूं कि जेल से भाग जाने का विचार तक मेरे मन में नहीं आया। अबतक जो भी सज़ा आपने मुझे दी मैंने उसे खुशी से क़बूल किया। लेकिन आजका आपका फैसला बिल्कुल बेरहमी से भरा हुआ है। निर्वासित होकर मैं कहां जाऊं? क्या खाऊं? मैं आपका कैदी हूं। अपने देश में आप मेरे साथ जो भी सलूक कीजिये; लेकिन दूसरे देश में आप मुझे मत भेजिये। इतनी ही मेरी आपसे प्रार्थना है।"

कैदी की बात सुन कर न्यायाधीश का भी गला भर आया; लेकिन एक बार फैसला देने के बाद उसे कैसे बदला जा सकता था? आखिर बहुत मग़ज़-पच्ची करने के बाद यह तै पाया कि कैदी को हर माह सौ फ्रैंक का भत्ता देकर देश से निकाल दिया जाय। इस निर्णय के अनुसार थोड़े ही दिनों में कैदी मोनैको की सीमा के पास किसी देहात में जाकर मजेमें रहने लगा।

अनु०—श्रीपाद जोशी

भारत की खाद्य समस्या

श्री रामसिंह रावल

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ अंग्रेजों से हमें जो कुछ मिला है, उन वस्तुओं में खाद्य समस्या एक बड़ी ही जटिल और राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण समस्या है। यह समस्या वास्तव में केवल विभाजन का ही परिणाम नहीं, अपितु महायुद्ध की एक हानिकारक देन है, क्योंकि १९३९ के महायुद्ध से पूर्व यह समस्या थी ही नहीं। भारत इस दिशा में चिर अतीत से सम्पन्न रहा है। खाद्य सम्बन्धी आंकड़ों को देखने से ये बातें ज्ञात होती हैं:

(१) सन् १९३८-३९ में भारत में ४९६ लाख टन अन्न पैदा हुआ। १८ लाख टन चावल बर्मा और स्याम देश से मंगवाये गये, परन्तु ८ लाख टन गेहूं अन्य देशों को भेजा गया।

(२) सन् १९३९-४० में ५३० लाख टन अन्न पैदा हुआ। २७ लाख टन चावल बाहर से मगवाये गये, और ५ लाख टन अनाज अन्य देशो को भेजा गया।

(३) सन् १९४०-४१ में केवल ५०१ टन अन्न पैदा हुआ। १७ लाख टन चावल बाहर से मगवाये गये और ५ लाख टन अन्न बाहर भेजा गया।

(४) सन् १९४१-४२ में ५१८ लाख टन अन्न पैदा हुआ। १२ लाख टन बाहर से मगवाया गया और ८ लाख टन बाहर भजा गया।

(५) १९४२ ४३ में ५३२ लाख टन अन्न पैदा हुआ और ३॥ लाख टन अन्न विदेशो को भेजा गया।

इन आकडो से स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध से पहले अन्न की कमी न थी। जापान के साथ युद्ध छिडने और उसके परिणाम-स्वरूप बर्मा के अग्रेजो के हाथ से निकल जाने पर देश में अन्न का अभाव हो गया। इस पर अग्रेजो ने कट्रोल का रोग लगा दिया। इस समस्या का नग्न ताडव बगाल में सन् १९४३ में देखने को मिला। अन्न की कमी और उस पर कुवितरण ने बगाल के ४५ लाख निर्दोष भारतीयो के प्राण ले लिये। इतनी आहुतिया देने पर भी अधिकारियो ने कुछ नही सीखा। यह कमी कोई प्राकृतिक तो थी नही, मानव की मलिन बुद्धि की उपज थी। तत्कालीन सरकार वास्तव में अनाज को अफ्रीका, यूरोप, मलाया आदि देशो में लडनेवाली सेनाओ के लिये भारत से बाहर लेजा रही थी, परन्तु बताया जा रहा था कि भारत की जन-सख्या के बढ जाने के कारण अन्न की खपत अधिक है।

खाद्य समस्या दिन प्रतिदिन भीषण होती गई। देश का विभाजन होने पर तो यह बहुत ही भयकर हो गई। चावल की उत्पत्ति अधिक करनेवाला प्रान्त--पूर्वी बगाल, गहू आदि अन्न की अधिक उत्पत्ति करनेवाला प्रान्त--पश्चिमी पजाब, पाकिस्तान में चले गये, जिससे भारत की खाद्य समस्या और भी विषम हो गई। आज स्थिति यह है कि हर वर्ष हम १०० से २०० करोड तक रुपया भारत के बाहर भेज रहे है।

प्रश्न यह है कि इस समस्या को हल कैसे किया जाय ? इस समस्या के हल होने पर ही देश की उन्नति हो सकती है। जो देश अपने अन्न की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे देशो पर निर्भर हो, वह न तो अपने पैरो पर खडा हो सकता है और न अपनी जनता के रहन-सहन के ढग को ऊचा कर सकता है।

इस समस्या को हल करने के अनेक ढग हैं, जिनमें मुख्य ये हैं--

१ राशन की समुचित व्यवस्था। आज की कट्रोल-पद्धति के प्रति देशव्यापी असतोष है। अत कट्रोल के दोषो को दूर करने की आवश्यकता है।

२ चोरबाजारी समाप्त होनी चाहिए। देश की आपत्ति से लाभ उठानेवाले अनेक स्वार्थपरायण व्यक्ति अनाज को बटोर रखते हैं और फिर चोरबाजारी करते हैं। ऐसे व्यक्तियो के प्रति सरकार का रुख बहुत कडा होना चाहिए। जो भी अनाज का सग्रह करे, उसे कठोरतम दड मिलना चाहिए।

३ 'अधिक अन्न उपजाओ' योजना से उतना लाभ नही हुआ, जितना कि इस पर खर्च किया जा रहा है। इस योजना के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान व जोर देना जरूरी है।

४ सिचाई के लिए जो योजनाए चल रही हैं, उन्हे जल्दी-से-जल्दी पूरा करना। राष्ट्रीय सरकार ने देश के भिन्न भिन्न भागो मे सिंचाई की दृष्टि से नदियो में बडे-बडे बाध बनाने की योजना चालू कर दी है। बाधो के तैयार होने पर निश्चय ही अधिक अन्न उपजाने में सहायता मिलेगी।

५ सबसे महत्वपूर्ण बात अन्न की सुरक्षा है। जो भी अन्न हमारे पास है, उसमें से एक दाना भी नष्ट होना राष्ट्रीय अपराध माना जाना चाहिए।

६ अन्न के साथ-साथ साग-भाजी तथा अन्य ऐसी ही चीजो को अधिक इस्तेमाल करके प्रत्येक नागरिक इस समस्या के सुलझाने में योग दे सकता है।

इस वर्ष इस समस्या ने कितना भयकर रूप धारण किया, हम सब जानते है। यदि समय रहते सरकार सजग न हो गई होती तो बिहार की वही स्थिति हुई होती जो सन् १९४३ में बगाल की हुई थी। कितने सताप की बात है कि जो देश धन-धान्य की दृष्टि से सम्पन्न था, वह दूसरो

का मुंहदेखा बन गया। दैवी प्रकोपों के लिए तो हमारी लाचारी है, लेकिन जहां तक आदमी के स्वार्थ ने इस समस्या को जटिल और जघन्य बनाया है, तदर्थ हम सबको लज्जित होना चाहिए। आदमी की स्वार्थपरायणता यदि इसी प्रकार बनी रही तो हजार प्रयत्न करने पर भी यह समस्या हल होनेवाली नहीं है।

अब भी समय है कि हम संगठित रूप से कोशिश करके देश को स्वाश्रयी बनावें। दूसरे देशों पर निर्भर रह कर तो हित से अधिक अपना अहित ही करेंगे। देश के नवनिर्माण में अपने पैरों की मजबूती ही काम आवेगी।

ग्रामों में स्वास्थ्य

श्री भगवतनारायण भार्गव

[भारत गांवों में बसता है। अतः जबतक गांवों की उन्नति नहीं होगी तबतक देश की उन्नति असंभव है। प्रस्तुत लेख में उत्तरप्रदेश के पंचायत राज के सुयोग्य एवं अनुभवी संचालक श्री भार्गवजी ने ग्रामों के स्वास्थ्य-सुधार के लिए अनेक महत्वपूर्ण बातें बताई हैं। यदि उनके सुझावों को कार्यान्वित किया जासके तो निश्चय ही हमारे ग्रामों का कायाकल्प हो जाय। हम चाहते हैं कि विभिन्न राज्यों के अधिकारी तथा ग्राम-कार्यकर्ता इस लेख को विशेष रूप से पढ़ें। —सम्पा०]

इसमें सन्देह नहीं कि जनसाधारण की शक्ति और स्वास्थ्य में परिवर्द्धन करना औषधालयों के खोलने की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसी सम्बन्ध में महात्मा गांधी का कथन भी अत्यन्त विचारणीय और व्यवहार में लाने योग्य है। उन्होंने लिखा है :

"मैं चारों ओर यह विचार पाता हूं कि गांवों में अस्पताल होना चाहिए, और नहीं तो कम-से-कम एक डिस्पेंसरी तो होनी ही चाहिए। मैं तो इसकी आवश्यकता बिलकुल नहीं देखता हूं। बहुत से गांवों के निकट ऐसी संस्थाएं हैं तो ठीक है, पर यह चीज़ महत्व देने योग्य नहीं है। जहां अस्पताल होगा वहां रोगी तो टूटेंगे ही। उससे यह अनुमान नहीं निकाला जा सकेगा कि ७ लाख गांवों में ७ लाख अस्पताल हों तो बड़ा उपकार होगा। गांव का दवाखाना गांव की शाला होगी और गांव का पुस्तकालय भी वहीं होगा। रोग हर गांव में होते हैं, वाचनालय हर गांव में होना चाहिए, शाला तो होनी ही चाहिए। इन तीनों के लिए अलग मकानों की बात सोची जाय तो जान पड़ेगा कि सारे गांवों की पूर्ति के लिए करोड़ों रुपये चाहिए और बहुत समय लग जायगा। इसलिए हमें लोक-शिक्षण और ग्राम-सुधार का विचार करते हुए अपने देश की ग़रीबी का ख़याल रखना ही पड़ेगा। इस सम्बन्ध के विचार यदि हमने दूसरे देशों को लूटकर मालदार बनी हुई प्रजा से उधार न लिये होते तो, और हमारे अन्दर सच्ची जागृति पैदा हुई होती तो, गांवों का रूप कब का बदल गया होता।"

महात्मा गांधी सदैव इस बात पर जोर देते रहे कि यदि मनुष्यों के विचार पवित्र हों, उनका जीवन पवित्र हो, उनके रहन-सहन की विधियां स्वच्छ और शुद्ध हों तो रोग फैल ही नहीं सकता है। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे ग्रामीण भाइयों का इस ओर विशेष रूप से नहीं ध्यान गया है और न ध्यान दिलाये जाने के लिये सामूहिक रूप से विशेषता ही दी गई है। इसलिए जहां जाइये, वहीं लोग चाहते हैं कि उनके गांव में एक अस्पताल अथवा औषधालय खोल दिया जाय। जब हम अपने राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देते हैं और दूसरी ओर अपने शासन की आर्थिक स्थिति पर भी दृष्टि डालते हैं तो समस्या कुछ गम्भीर-सी दिखाई देने लगती है। परन्तु मैं तो समझता हूं कि यदि हम लोग स्वास्थ्य-

सम्बन्धी विदेशी प्रणालियो का समावेश अपनी योजनाओ में आवश्यकता से अधिक न करें और जनता के बुद्धि-बल और सघ-शक्ति पर अधिक जोर दें तो समस्या बहुत कुछ अश में और अधिक अल्प काल में सुलझाई जा सकती है। जहातक राज्य की आर्थिक दशा का सम्बन्ध है, हमें एक ही विभाग पर दृष्टि नही रखनी है, अपितु सभी विभागो के सुयोग्य सचालन और सफलता की ओर भी ध्यान रखना है। पचायतो की स्थापना गाव-गाव में हो जाने के कारण हमारे शासन का रूप और रग ही बदल गया है। यदि हम इस ओर गम्भीरतापूर्वक अपना ध्यान दें तो मैं समझता हू कि उन सभी शासकीय विभागो का साहसपूर्वक पुनर्संगठन करना होगा जिनका सम्बध ग्रामीण क्षेत्रो से है, क्योकि जितने भी उन्नति और विकास के कार्य है, चाहे उनका किसी भी विभाग से सम्बन्ध हो, सभी गाव की जनता के द्वारा किये जाने में विशेष और निश्चित सफलता हो सकती है।

ब्रिटिश शासन में हमारे ग्रामो की अत्यधिक उपेक्षा की गई है और ग्रामीणो को पददलित करके दीन और दुखी बनाया गया है। अब यह दशा अधिक दिन टिकने नहीं पाएगी, परन्तु यह सत्य है कि ग्रामो में रोगो की रोकथाम अथवा रोगो की चिकित्सा के लिए पर्याप्त प्रबन्ध नही है। इसलिए सबसे पहले हमें ग्रामो की गन्दगी को दूर करने के लिए उपयुक्त उपायो का अवलम्बन करना पडेगा और विशेष रूप से ग्रामो के स्वास्थ्य वृत की ओर ध्यान देना होगा। ग्रामो में जिन साधनो से वहा की वायु शुद्ध हो, जल शुद्ध हो और शुद्ध तथा पौष्टिक भोजन ग्राम-वासियो को प्राप्त हो, उनके रहने के लिये स्वास्थ्य के उपयुक्त साधनो से पूर्ण मकान हो और उनके विचारो और व्यवहारो में पवित्रता और सत्यता का आविर्भाव हो, हम सबको इस ओर प्रयत्नशील होना चाहिए। गावो में गन्दगी के अनेक कारण है, जैसे (१) मलमूत्र का खुला पडा रहना और सडना, (२) जहा-तहा छोटे-छोटे गड्ढो में पानी भरा रहकर सड़ना, (३) घरो के पास कूडा कचरा का जमा होना, (४) जानवरो का गोबर व पेशाब खुला पडा रहकर या मिट्टी में मिल-मिला कर सडते रहना (५) पानी का ठीक निकास न होने के कारण घरो के आसपास भरे रह कर सडते रहना, (६) घरो में धुए का निकास न होने के कारण धुआ भरा रहना, (७) घरो में धूप न आने-जाने के कारण सील और अधेरा रहना, (८) मरे हुए जानवरो का खुले में पडे रहकर सडना, (९) गदा पानी घरो में, विशेषकर चौक में जहा मवेशी बाधे जाते है, जिनका मूत्र और गोबर उसमें मिल जाता है, भरा रहकर सडना, (१०) अपने घर के बरतनो और कपडो को बहुत गन्दा रखना, और (११) घर के भीतर, जिसका एक ही दरवाजा है, कोई खिडकी रोशनी और हवा के आने जाने के लिये न हो।

उपरोक्त कारणो से अनेक बीमारिया फैलती हैं, विशेषकर मलेरिया ज्वर। कुओ की सफाई की ओर भी ध्यान देना परमावश्यक है, क्योकि उसके जल का प्रयोग खाने पीने में ग्राम-निवासी करते हैं। फिर भी उसकी सफाई साल में एक बार भी नही होती है। किसी-किसी गाव में जानवर इत्यादि कुओ में गिर जाते है और कितने ही दिनो तक निकाले नही जाते। गन्दे कपडों का धोवन, जूठे बरतनो के भाजन का गन्दा पानी स्नान का गन्दा पानी भी कुओं में जाता है। कुओ के चारो ओर गड्ढे हो जाते है और उनमें गन्दा पानी सडा करता है। पेडो और झाडियो की पत्तिया उनमें गिर जाती है। किसी किसी कुए में पक्षी और चमगादड रहने के लिये कोटर बना लेते है और कभी-कभी उनमें गिर कर मर जाते है। इसी प्रकार हमें ग्रामो के तालाबो की ओर भी ध्यान रखना आवश्यक है।

यदि गावो की यह गन्दगी दूर हो जावे और उन लोगो को स्वच्छ जल और स्वच्छ वायु प्राप्त करने के लिए उपाय बतलाये जाय तो मेरी राय में वर्तमान रोगों में से दशाश भी गावों में न रह जायगे और न उनको औषधियो की आवश्यकता होगी। इसके लिए आवश्यक्ता है कि स्वास्थ्य विभाग की ओर से

अच्छा साहित्य सरल भाषा में तैयार किया जावे और उसका वितरण न केवल गांवों में किया जावे, अपितु पंचायतों के मंत्रियों, इंसपेक्टरों और पढ़े-लिखे पंचों के द्वारा, ग्रामीणों के स्वास्थ्य-वर्द्धन के उपाय और लाभ समझने पर, सभाएं करके बतलाया जावे। मेरा तो यह भी विचार है कि यदि प्रत्येक ग्राम-सभा में स्वास्थ्यवर्द्धक समिति सुचारु रूप से काम करने लगे तो भी बहुत सी कठिनाइयां दूर हो सकती हैं। जहां तक मेरी जानकारी है, बहुत सी गांव-सभाओं ने स्वास्थ्य समितियां बना ली हैं।

स्वच्छ और पौष्टिक भोजन के सम्बन्ध में भी ग्रामीणों को जानकारी करने के लिये साहित्य की और ऐसी ही सभाओं की आवश्यकता है। स्त्रियों को और बच्चों को विशेष रूप से बासी भोजन दिया जाता है। स्त्रियों की दशा वास्तव में ग्रामों में बड़ी दयनीय है और बालकों की स्वच्छता और उनके शुद्ध भोजन के लिए कोई ध्यान दिया ही नहीं जाता है। यदि हमें स्वास्थ्य की समस्या को हल करना है तो सफाई, भोजन और मकानों की आवश्यकता की ओर शासन को शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। पंचायतों का अपने राज्य में ऐसा अच्छा साधन उपलब्ध है कि जिसके द्वारा हम सब प्रकार के प्रचार और जानकारी के काम बड़ी सुगमता से करवा सकते हैं, यदि शासन के सभी विभागों के कर्मचारियों का व्यवहार उनके प्रति प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण और सहयोगमय हो जावे, जिसका मैंने व्यक्तिगत रूप से प्रायः अभाव पाया है। किसी ऐसी योजना से विशेष लाभ नहीं हो सकता है जिसमें व्यावहारिकता की कमी हो और खर्च की अधिकता। कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने से ही ग्राम की स्वच्छता और स्वस्थता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं कि किसी शासकीय विभाग में निरीक्षक और पर्यवेक्षकों की अधिक-से-अधिक संख्या उस विभाग के सफलता की सूचक हो सकती है। हमें तो ग्रामवासियों के श्रम और समय का समुचित उपयोग करना है और केवल इसी प्रकार हम ग्रामवासियों का उद्धार कर सकते हैं। ग्रामीण भाइयों को स्वयं अपने कर्त्तव्य स्वास्थ्य और सफाई के सम्बन्ध में समझने चाहिए। मैं इस बात को नहीं मान सकता कि एक निरक्षर ग्रामवासी यह नहीं समझता कि साफ-सुथरा रहने से उसको स्वास्थ्य लाभ होगा। वह समझता अवश्य है, परन्तु वह रूढ़ियों के जाल में और आलस्य के अन्धकार में इतना घिरा और फंसा हुआ है कि उसको यह नहीं सूझता कि किन कामों से उसका लाभ होगा और किन से हानि। हमें तो उसको घोर निद्रा से जगाना है, और ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है कि हम उन लोगों को उनके कर्त्तव्यों के विषय में शिक्षण दें। इस कार्य के लिए अधिक संख्या में कर्मचारियों की आवश्यकता नहीं है। जितना रुपया कर्मचारीवर्ग पर व्यय होता है उससे चौथाई भी यदि स्वयं ग्रामवासियों को प्रत्यक्ष शिक्षण देने पर व्यय किया जावे तो चौगुना काम हो सकता है।

यदि स्वास्थ्यवर्धक उपायों की जानकारी कराने और मलेरिया के रोके जाने के उपायों को बतलाने के अतिरिक्त वैज्ञानिक शिक्षण-प्राप्त कर्मचारियों की आवश्यकता हो तो वह शिक्षण पंचायतों के निरीक्षकों को और फिर उनके द्वारा पंचायतों के मंत्रियों को भी दिया जा सकता है और इसमें न विशेष समय ही लगेगा, न विशेष व्यय ही होगा। यदि हम उस मनोवृत्ति को त्याग कर दें जिसकी निन्दा महात्मा गान्धी के उपरोक्त कथन में है, तो मैं समझता हूं कि ऐसे सरल उपाय अवश्य ही निकाले जा सकते हैं जिनकी जानकारी प्राप्त कर लेने पर ग्रामीण मलेरिया के शिकार से निश्चयपूर्वक बच सकते हैं। हमें मूल तत्वों के ऊपर ध्यान देना चाहिए, न कि उन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए कि जिनका साधन ग्रामीणों को दुस्तर ही नहीं, असम्भव-सा हो जाय। यदि एक मास का शिक्षण समस्त इंसपेक्टरों को एक ही स्थान पर अथवा प्रत्येक कमिश्नरी में दिया जाय और इन इंसपेक्टरों द्वारा मंत्रियों का शिक्षण दूसरे मास में इस सम्बन्ध में करा दिया जाय तो मैं समझता हूं कि आज से तीसरे मास में ही हमारे राज्य के गांव-गांव में मलेरिया तथा अन्य संक्रामक और महामारी रोगों को रोकने के

उपायो का आविर्भाव हो जायगा।

ग्राम-सभाओं ने स्वास्थ्य और सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया है और दे रही है। उनको जिन सुविधाओ और साधनो की आवश्यकता है यदि वे स्वास्थ्य विभाग द्वारा मिलने लगें तो थोडे ही दिनों में हमारे ग्रामो का स्वरूप बदल जायगा। गांवो में कूडे-करकट के ढेर जो पहले दिखाई देते थे उतनी सख्या में और उतने विस्तार में अब नही दिखाई देते। ग्रामो में कुओ की सफाई और मरम्मत भी हो रही है, पशुशालाओ में सुधार हो रहा है और 'अधिक अन्न उपजाओ' योजना के अनुसार पौष्टिक भोजन व तरकारी की उपलब्धि में किसी अश में वृद्धि हो रही है।

मै यह जानता हू कि मच्छरो के कारण अधिकतर मलेरिया ज्वर फैलता है और मच्छर प्राय सडे हुए पानी के गड्ढो में अधिक उत्पन्न होते हैं। यद्यपि उद्योग इस बात का किया जायगा कि ऐसे गड्ढे देहातो में न रहने पायें, परन्तु यदि रहे भी तो उनमें मच्छर मारने के लिए अथवा पशुशालाओ में और घूरो से मच्छरो को दूर करने के लिए यह आवश्यक नही है कि मैकेनिक ही रखे जाय और मूल्यवान् औषधि का ही प्रयोग किया जाय। चूना देहातो में उपलब्ध होना अधिक कठिन काम नहीं है और यदि चूने का प्रयोग ऐसे गड्ढो के लिए अथवा कुओ के लिये किया जाय तो वह भी मेरी सम्मति में उसी प्रकार लाभदायी हो सकता है जैसे कि अग्रेजी औषधिया। इसी प्रकार यदि नीम की पत्तियो और लकडियो और चौर की लकडियो का धुआ निवास-स्थान और पशुशालाओ के निकट किया जाय तो उससे निश्चय ही अधिक सख्या में मच्छर नष्ट हो सकते हैं। ग्रामो के लिए मलेरिया के सम्बन्ध में एक अनुभूत प्रयोग मे बतलाना चाहता हू जो कि प्राय देहातो में ही नही, शहरो में भी सफल हुआ है। यदि उस ऋतु में जब कि मलेरिया अधिक होता है, ग्रामीणों को बतलाया जाय कि यदि वे पाच पत्ते तुलसी के और ११ दाने काली मिर्च मिलाकर नित्य प्रात-साय उपयोग करें तो मलेरिया के कीटाणु नष्ट हो जावेंगे और उनके ऊपर मलेरिया का आक्रमण न हो सकेगा। अब समय बदल गया है। हमें केवल विदेशों के बतलाये हुए साधनो का ही अवलम्बन नही करना है। ग्रामो में अनेक ऐसी पत्तिया और जडी-बूटिया है कि यदि उनका उपयोग विशेषज्ञो द्वारा ग्रामीणो को बतलाया जाये और उसका प्रयोग कराया जाये तो अनेक रोगो की रोकथाम भी हो सकती है और रोगो का नाश भी हो सकता है। महात्मा गाधी प्राकृतिक चिकित्सा की ओर सदा जोर देते रहे। इस सम्बन्ध में उन्होने बहुत कुछ लिखा है। यदि उस साहित्य का भी भली प्रकार प्रचार और प्रसार ग्रामो में हो सके तो बिना खर्च के बहुत लाभ हो सकता है। उनका कहना था कि जिन पाच तत्वो का शरीर बना हुआ है उन्ही पाच तत्वो के उपयुक्त उपयोग से हम सदा स्वस्थ और दीर्घजीवी रह सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा में व्यय भी नाममात्र होता है और अनुपयुक्त औषधियों द्वारा कभी-कभी जो गम्भीर हानि रोगियो को उठानी पडती है, उससे भी निश्चयात्मक बचाव हो सकता है। इस ओर शासन का विशेष ध्यान अभी नही गया है, परन्तु इस प्रणाली के अनुभवो को ध्यान में रखते हुए और गाधीजी के प्रत्यक्ष अनुभवो का सदुपयोग करते हुए यह बात परमोचित है कि प्राकृतिक चिकित्सा ही नही, प्रकृति के अनुकूल आहार-विहार और रहन-सहन की सद्भावनाओ का भी प्रचार होना चाहिए और उनका उपयोग ग्रामीणो के ही नही, अपितु सभी लोगो के व्यावहारिक जीवन में समुचित रूप से किया जाना चाहिए।

सत्य की खोज में

डा० कुलरंजन मुखर्जी

परोपकार

दूसरों की भलाई करना ही अपनी सबसे बड़ी भलाई है। मनुष्य बाहर से जो कुछ पाता है, उसका कुछ भी नहीं रह जाता। भीतर से वह जो कुछ पाता है, केवल वही स्थिर रहता है। वह जो कुछ भी बाहर से देता है, अन्तर में सहस्र गुना होकर वही उसको प्राप्त होता है।

मनुष्य जब दूसरों के लिए त्याग करता है, दूसरे के लिए श्रम करता है, तो वह अपना ही विस्तार करता है, और जो जितना ही अपने स्वयं का विस्तार कर सका, वह उतना ही महान् है।

मानव जब दूसरे के लिए अपने को भुला देता है, उसी क्षण उसके अन्तर का युग-युग से संचित पाप और मल भस्मीभूत हो जाता है।

दूसरे के लिए स्वयं को जितना ही अधिक व्यथा और कष्ट का शिकार बनाया जाता है, अन्तर का उतना ही विकास होता है। पूजा में जितनी ही व्यथा, उतना ही आनन्द।

क्या भगवान् कहीं मेघ-मालाओं के अन्तराल में छिपे बैठे हैं? नहीं, वह तो इसी आत्मा के रूप में उपस्थित हैं। जब अपने स्वयं का विस्तार करके सभी के भीतर अपने को देखा जाय, तभी मानव के विश्वरूप का दर्शन होता है।

धर्म

जिसे धारण कर मनुष्य बचता है, वही धर्म है। इसके भिन्न-भिन्न रूप हैं। धर्म एक नहीं है, जितने मनुष्य हैं उतने ही धर्म भी हैं। लेकिन जिसकी साधना का परम ध्येय ईश्वर है उसीका धर्म सर्वश्रेष्ठ है।

क्रोध

जिस पर क्रोध किया जाता है, उसकी अपेक्षा क्रोध करनेवाले की कम क्षति नहीं होती—शारीरिक, मानसिक, तथा आत्मिक सभी दृष्टियों से।

क्रोध यों प्रकट तो होता है बड़ी तेजी के साथ, पर वह दुर्बलता का ही लक्षण है। अपने मन पर संयम का अभाव ही क्रोध का प्रधान चिन्ह है।

जो संयमी हैं, उन्हें क्रोध नहीं आता।

प्रेम के द्वारा ही मनुष्य के मन पर विजय प्राप्त की जाती है। जहां इस प्रकार मन नहीं जीता जा सके, वहां समझना होगा कि हमारे प्रेम में कमी है, उसमें इतनी शक्ति नहीं है कि विरुद्ध शक्ति पर वह जय प्राप्त कर सके।

आलस

जो बुरा है वह समय पाकर भला बन सकता है, किंतु जड़ में चेतना का संचार होना अत्यन्त कठिन है। आलस धीरे-धीरे जड़ता की तरफ खींचता है।

चुपचाप बैठे रहने की अपेक्षा छोटा-मोटा काम करते रहना अधिक अच्छा है।

ध्यान, चिन्तन बड़ी कल्याणकारी चीजें हैं; पर यदि उनके साथ कोई कार्य न रहे, तो बहुधा अनजाने आलस्य घुस आता है।

उपदेश और अनुष्ठान

जो दूसरों की भलाई करना चाहता है, उसे चाहिए कि पहले अपने को सुधारे। अपने को अच्छा बनाना ही दूसरों को भला बनाने का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

कितने दिनों पहले श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों ने एक ज्योति जलाई, आज भी कोटि-कोटि नर-नारी उसीके प्रकाश से अपना पथ-प्रदर्शन करते हैं।

सदा उपदेश ग्रहण करते रहना चाहिए। मन को हमेशा खुला रहना चाहिए। जो उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते, उनके लिये समझना होगा कि उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया है।

मनुष्य-जीवन की उन्नति उसकी ग्रहण करने की शक्ति पर निर्भर करती है। केवल थोड़े से सदुपदेशों के अनुरूप अपने जीवन को ढालने से मनुष्य बहुत ऊपर उठ जाता है।

अनुष्ठान ही धर्म का प्राण है। सैकड़ों धर्म-ग्रंथों के पढ़ने या दिन-रात धर्म-चर्चा करने से कोई लाभ नहीं

होता यदि उसके साथ-साथ अनुष्ठान न हो। बडे-बडे सिद्धातो का पोषण करने की अपेक्षा, एक छोटे उपदेश के पालन का महत्त्व जीवन में बहुत अधिक है।

सुख और दु ख

इन्द्रियो के साथ प्रिय वस्तुओ के सयोग का नाम सुख और अप्रिय वस्तुओ के साथ इन्द्रियो के योग का नाम दु ख है।

सुख दु ख दोनो मन के दो पहलू हैं। सुख की भावना रहेगी तो दु ख भी रहेगा। सुख-दुख में समदृष्टि रखना ही दु ख पर विजय पाने का प्रधान उपाय है। जब सुख की अनुभूति से मन प्रसन्न नही हो उठता तब दु ख से मन मलिन भी नही होता।

किंतु सुख-दु ख पर विजय पाना बडा ही कठिन कार्य है। सुख-दु ख की अनुभूति मनुष्य में स्वभाव से ही है। जब मन उच्च स्तर पर विकसित होता रहता है, तभी निम्न स्तर के सुख-दुख को पार कर सकता है।

मानव जब सुख-दु ख को पार कर जाता है तभी वह ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी होता है।

पाप—पुण्य

आनन्द की अनुभूति का नाम पुण्य और दुर्बलता भय तथा अशान्ति की अनुभूति का नाम पाप है।

अच्छे कामो में आनन्द होता है, इसीलिए वह पुण्य है और बुरे कामों में भय होता है, अशान्ति मिलती है, दुर्बलता का प्रादुर्भाव होता है, इसी कारण यह पाप है।

पुण्य कार्यों में आनन्द होता है। इसका अर्थ यह है कि इससे आनन्द-स्वरूप भगवान् का हम स्पर्श-लाभ करते है। इस आनन्द को जबर्दस्ती नही लाना होता। यह आनन्द भीतर से प्रवाहित होकर चादनी की तरह चारो तरफ फूट पडता है। जो कार्य आनन्द प्रदान नही करता, परलोक म प्रतिदान-स्वरूप जिसकी फल-प्राप्ति की आशा की जाती है, वह पुण्य नहीं, पुण्यलाभ की छलना मात्र है।

पाप की अनुभूति भी अपेक्षाकृत एक ऊची अवस्था है। वह यही प्रमाणित करती है कि मन अभी भी इतना कठोर नही हुआ है कि पाप की अनुभूति नष्ट हो जाय, लेकिन बुरे काम करते-करते प्राय मन मे इतनी जडता आ जाती है कि उसमें पाप की अनुभूति ही नहीं होती।

अन्याय को जबतक मनुष्य अन्याय समझता है तबतक वह बहुत ही अच्छा है; पर जब वह अन्याय को ही अच्छा प्रमाणित करता है, तब वह बहुत ही हीन अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

किंतु पाप जिस प्रकार वर्जनीय है, पुण्यफल की आशा रख कर कार्य करना भी उसी प्रकार वर्जनीय है। ऐसा पुण्यफल बन्धनकारी होता है। बिना फल की इच्छा रखे हमें अच्छे काम करने की आदत डालनी चाहिए।

तर्क का बोझ

श्री विष्णु प्रभाकर

नंगे पैर, सिर पर बिक्री के सामान का थाल रखे वह रोता हुआ चला आरहा था। उसका रग अपेक्षाकृत काल, था, मुख कुछ सूजा और भद्दा आखे कीच से भरी हुई, आवाज मोटी। उसने कुरता और जाघिया-नुमा निक्कर पहना था। वह बार-बार कुरते की बाह से आसू पोछ लेता था, पर आसू थे कि रुकते ही नहीं थे। और हां, उसके हाथ में एक कमची भी थी जिससे शायद वह थाल की मक्खियां उडाया करता था। पर उस समय तो वह सबकुछ भूल कर जोर-जोर से रो रहा था।

यह एक स्वाभाविक बात थी कि इसके रोने ने लोगों का ध्यान उसकी ओर खीचा। मेरा दिल भीग गया। मैंने आवाज देकर अपने पास बुलाया। वह एक खोमचा लगाने वाला लडका था। उसके थाल में कटे हुये कागजो के अतिरिक्त एक बरतन में कुछ नमकीन सेव, दूसरे में कुछ मीठी पपडी तथा एक ओर शायद गुड में पगे सेव रखे थे। इलायचीदाना भी था। एक कटोरदान में कुछ खुले पैसे और उसीके ऊपर छोटी तराजू रखी थी।

वह पास आया तो मैंने पूछा—"क्यों रोता है रे ?"

उसने सुबकते हुए जवाब दिया, "मेरे पैसे निकाल लिये !"

"किसने ?"

"पता नहीं ।"

"कहां रखे थे ?"

"थाल में ।"

आगे की बातों से पता लगा कि दिनभर घूम-घूम कर उसने लगभग दो रुपये का सामान बेचा था। उसमें से एक रुपया दस आने बांध कर उसने अलग रख लिए थे। उस बंधी हुई पुड़िया को किसी राह चलते ने थाल से उचक लिया था। वह बालक था और कोई भी राहगीर उसके थाल में से कुछ भी उठा सकता था।

यही सारी कथा उसने रोते-रोते कह सुनाई और कह कर वह दुगने वेग से रोने लगा। सुनने के बाद हममें से कुछ लोगों ने कंधे उचकाकर दोनों हाथ हिलाये और चले गए। एक राहगीर ने तीव्रता से नवयुग की नई सभ्यता को कोसना शुरू कर दिया। करुणा के बावजूद मेरे मन मे पहली प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हुई। सोचा यह लड़का धूर्त जान पड़ता है। पैसे कहीं रख आया है और अब झूठमूठ लोगों की करुणा का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। यह हो सकता है इसका पेशा ही यह है। नई दिल्ली में ऐसे कई लड़के घूमा करते हैं। एक लड़का शाम को अखबार बेचा करता है और रोज फटी जेब दिखा कर रोता हुआ कहता है, "मेरी जेब फट गई, पैसे गिर गए, अब मालिक को क्या दूगां ?"

और तब सड़क पर चलने वाले सैकड़ों व्यक्तियों में से कोई-न-कोई ऐसा निकल ही आता है जो उस बालक के करुण विलाप से द्रवित हो उठता है और उसे छः आने पैसे दे देता है।

"तो क्या यह भी उसी बालक जैसा है? क्या यह भी पेशेवर है ?"

लगता तो ऐसा ही है—मैंने अपने आपसे कहा और आगे बढ़ना चाहा; पर तभी मन में तर्क उठा—यह लड़का तो छब्बीस आने उठाये जानेकी बात कहता है और छः आने और छबीस आने में अन्तर है। फिर उसकी जेब फटी नहीं है। किसी ने उसके थाल में से पैसे उठाये हैं। मैंने स्वयं कई लम्बे आदमियों को छोटे व्यक्तियों या बालकों के सिर पर रखे सामान में से चोरी करते देखा है।

मन कुछ ढीला पड़ा और करुणा की पकड़ कुछ गहरी हुई पर तबतक वह बालक दूर जा चुका था। इस बात ने मुझे और भी प्रभावित किया। वह कहानी कह कर रुका नहीं, चला ही गया। वह अवश्य सच्चा था, झूठा होता तो गिड़गिड़ाता; खड़ा रहता।... नहीं-नहीं, वह सच्चा है। किसी दुष्ट ने उस गरीब की कमाई पर डाका डाला है। बेचारा गरीब बालक, शायद उसका बाप मर चुका है! घर पर उसकी मां उत्सुकता से उसकी राह देख रही होगी। डाके की बात सुनकर वह क्या कहेगी? उसका दिल टूट जाएगा। उन्हें शायद फाका भी करना पड़े।...

बस मेरा मन द्रवीभूत हो उठा। मैंने जेब में हाथ डाला, पर तभी मै फिर कांपा—"कहीं वह ठग ही तो नहीं है! पहुंचा हुआ ठग!"

"वह बालक . . !"

"बालक तो बड़ों के कान कतरते है!"

"नहीं-नहीं"— मैंने गरदन को झटका दिया और जेब से एक रुपये का नोट निकाल कर उसके पीछे लपका—"कम-से-कम एक रुपया तो उसे देना ही चाहिए।"

वह तबतक गली से बाहर मुख्य सड़क पर आगया था। कुछ अंधेरे के कारण और कुछ भीड़ होने के कारण मैं उसे ठीक-ठीक देख भी नहीं पा रहा था, केवल उसका रुदन मेरा मार्ग-प्रदर्शन कर रहा था। मैं और तेजी से लपका और कुछ पास आकर चाहा कि पुकारूं कि तभी देखता क्या हूं कि एक राहगीर उसके पास आकर कुछ पूछ रहा है। मानो मुझे लगा हो कि वह व्यक्ति लड़के के रहे-सहे पैसे छीनने आया है! मैं आवेश में आकर चिल्ला उठा —"क्या बात है?"

राहगीर मुड़ा, बोला – "कुछ नहीं, बाबूजी। बेचारे बच्चे के थाल में से किसी कमबख्त ने पैसे उठा लिये है!"

यह सब पलक मारते हो गया और जबतक मै उनके पास पहुंचूं, वह व्यक्ति जिस तेजी से आया था

(शेष पृष्ठ २६७ पर)

कसौटी पर

धर्म और संस्कृति (निबंध-संग्रह): संकलन-कर्त्ता—श्री जमनालाल जैन, साहित्य रत्न, प्रकाशक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा, पृष्ठ १४३, मूल्य १।)

जैसा कि संकलनकर्त्ता का दावा है, प्रस्तुत संग्रह धर्म और संस्कृति पर अनुभवी सन्तों और विद्वानों के चिन्तनपूर्ण विचारों का संकलन है। विचारकों में श्री विनोबा जैसे सन्त, श्री मशरूवाला जैसे चिन्तक, म० भगवानदीन जैसे क्रान्तिकारी विचारक, श्री जैनेन्द्रकुमार तथा भदन्त आनन्द कौसल्यायन जैसे मौलिक और पैनी दृष्टि वाले निबंधकार हैं। इन तथा अन्य लेखकों के विचार करने के अधिकार पर किसी प्रकार की शंका नहीं हो सकती। पुस्तक पढ़ जाने पर तो, जैसा कि संकलन-कर्त्ता ने कहा है, पाठक को चिन्तन करने का अवसर मिलता है और लेखकों के प्रति आस्था दृढ़ होती है।

सभी लेखों का दृष्टिकोण मौलिक, सुलझा हुआ और प्रगतिशील है। पाठक नई दृष्टि पाता है और उसके मस्तिष्क में जो धुंधली रेखाएं हैं वे स्पष्ट होती हैं। श्री मशरूवाला का लेख 'शास्त्र-दृष्टि की मर्यादा' जैसे हमारे लिए एक चेतावनी है—"शास्त्र के निर्माता विद्वान् या सन्त होते हैं। विद्वान् या सन्त का निर्माता शास्त्र नहीं होता।" . मूल आधार पुरुष है, न कि ग्रंथ।' श्री विनोबा ने सेवा के आचार-धर्म पर प्रकाश डाला है। वह निस्सन्देह जन-जन के लिए मननीय और अनुकरणीय है। आनन्दजी ने कितनी सच्ची बात कही—"सभी जगह से ज्ञानार्जन और सभी मनुष्यों के प्रति मैत्री—यही आज के मानव का 'धर्म' है। म० भगवानदीन ठीक ही मानते हैं कि मानव संस्कृति सदा से एक है, आज भी एक है और सदा एक रहेगी और श्री जैनेन्द्रकुमार का यह कहना कि जहां 'मैं' प्रधान हूं और दूसरा मेरे प्रयोजन की अपेक्षा में ही है, वहां का समस्त कर्म संस्कृति-मूलक न होने से व्यर्थ और अनिष्ट कर्म है, एक ऐसा कटुसत्य है जिसकी उपेक्षा घातक होगी।

पुस्तक संग्रहणीय और मननीय है। छपाई-सफाई अच्छी है और मूल्य भी कम है। 'भारत जैन महामण्डल' का यह दावा कि उसका ध्येय सब धर्मों के प्रति समन्वय साधना है, इस पुस्तक से अच्छी तरह प्रकाशित हो जाता है।

मेरे बापू (काव्य): लेखक—श्री 'तन्मय' बुखारिया; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ १२०, सजिल्द मूल्य २।।)।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के नवोदित तरुण कवि श्री हुकमचन्द बुखारिया 'तन्मय' की अधिकतर वे कविताएं संकलित हैं जो उन्होंने महात्मा गान्धी के निधन पर लिखी थीं। गान्धीजी का व्यक्तित्व न जाने कितने कलाकारों, साहित्यिकों और कवियों के लिए प्रेरणा का विषय रहा है। उनका बलिदान तो जैसे कला और कविता दोनों का मूर्तरूप बन गया। कवि कहता है कि बापू के बलिदान के बाद कवि होते हुए भी जीवित रह जाने की जो लज्जा और तज्जन्य रोदन है, वही इस संग्रह की रचनाओं में शब्द-बद्ध है। दावा बड़ा है, पर कविताओं को पढ़ने पर लगता है कि बड़ा होने पर भी दावे में सार है। कवि की श्रद्धाञ्जलि में अनुभूति है, कल्पना है, करुणा है, प्रेरणा है और है भविष्य के प्रति अटूट विश्वास। इन कविताओं को पढ़ कर जहां हृदय करुणा से रो-रो उठता है, मस्तक लज्जा से झुक जाता है, वहां उच्छ्वासों से भरी छाती सहसा उफन कर पुकार उठती है

एक बात है किन्तु कि यद्यपि चक्र आज उलटा घूमा है,
आज मौन मतवाला होकर मूर्त-मुखर पर जा झूमा है;
किन्तु सदा गीता का गायक सह न सकेगा इस अनीति को
आज या कि कल सिद्ध करेगा ही फिर वह जगकी प्रतीति
को किसी रूप में प्रकटित होगा ही कि देर, अंधेर नहीं पर
एक बार धरती गूंजेगी ही फिर उसके अमर श्वास से।

कविताएं सचमुच सुन्दर हैं और हृदय को पकड़ती हैं; परन्तु कवि गोडसे के प्रति जितना निर्मम हो उठा है वह ठीक नहीं है। वह बेचारा कोई एक व्यक्ति थोड़े ही था। वह तो मात्र प्रतीक था। तत्कालीन भारत में बापू के लिए जगह नहीं थी, आज भी नहीं है। जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है कि हम गोडसे वादियों से बदला नहीं लेंगे—"सौभाग्य-तस्करों के प्रति भी प्रतिहिंसा दान नहीं होगा।" वह उचित ही है परन्तु इससे भी बढ़ कर उचित यह है कि हम (कवि सहित) इस बात की खोज करें कि गोडसे जिस विचारधारा का प्रतिनिधि था, क्या कहीं हम भी तो उसीको बल नहीं दे रहे हैं? मुझे लगता है कि हम दे रहे हैं।

विश्व की महान् महिलाएं :

लेखिका—श्रीमती शचीरानी गुर्टू : प्रकाशक—युग-प्रकाशन दिल्ली; पृष्ठ २०२ डिमाई:मूल्य ५), सजिल्द।

श्रीमती शचीरानी गुर्टू इधर जिस द्रुत गति से आगे आई हैं वह साहित्य के लिए शुभ लक्षण है। यद्यपि उनके साहित्य पर शास्त्रीय अध्ययन की गहरी छाप है (और हम चाहेंगे कि उससे भी अधिक हृदय-मन्थन की छाप हो) तो भी उन्होंने उसे नवीन दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया है, जो श्लाघ्य है।

प्रस्तुत संग्रह में २२ नारियों के रेखाचित्र हैं। उनमें ७ भारतीय, ४ अमेरिकन, ३ इंग्लिश, २ चीनी, २ रूसी, तथा एक-एक टर्की, फ्रांस, इण्डोनेशिया, और इटली देश की हैं। यद्यपि उनमें राजनैतिक महिलाएं अधिक हैं तो भी चित्रकार, समाजसेवी, कवयित्री, शिक्षाशास्त्री और वैज्ञानिक महिलाएं भी हैं। हमारा विचार है कि चुनाव और वैज्ञानिक होना था। जैसा कि भारतीय महिलाओं में लेडी वजीरहसन-जैसी कोई मुस्लिम महिला होती, ईरान मिश्र तथा बरमा की कोई नारी होती तो अधिक अच्छा होता। लेकिन ये सब कमियां (हमारी दृष्टि में) पुस्तक के मूल्य को किसी भी तरह कम नहीं करतीं। वह एक स्तुत्य प्रयत्न है और लेखिका ने परिमित पृष्ठों में अधिक-से-अधिक जानकारी देने की चेष्टा की है। नारी आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे है। वह पुरुष से श्रेष्ठता का दावा कर रही है। उस दावे के औचित्य पर यहां विचार नहीं करना है; परन्तु इस संग्रह के चरित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है—"नारी, जिसने सदैव देना-ही-देना सीखा है, रात हो या दिन, अन्धकार हो या प्रकाश, दुर्दिन हो या सुदिन, अपने स्नेहराग से प्राणों की बत्ती जलाए जीवन के कण्टकाकीर्ण-पथ को आलोकित करती रही है।" उसके इस दान में से ही संसार का भविष्य पलता और पुष्ट होता है। इसलिए हमें विश्वास है कि श्रीमती गुर्टू की लेखनी से निकले ये चरित्र हिन्दी के पाठकों को नूतन ज्ञान ही नहीं देंगे, नई दिशा भी देंगे; क्योंकि ज्ञान जितना विस्तृत होता है, हृदय उतना ही उदार होता है और हृदय की उदारता जीवन की शर्त है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान :

लेखक—रघुवीरशरण दिवाकर; प्रकाशक—मानव साहित्य सदन, मुरादाबाद; पृष्ठ ४०, अजिल्द, मूल्य ।।।)।

प्रस्तुत पुस्तिका में लेखक ने साहसपूर्वक उस अन्याय का उद्घाटन किया है जो अपनी संस्कृति की उच्चता का दावा करनेवाले भारतीय आदिकाल से नारी के प्रति करते आ रहे हैं। पुस्तक पर अध्ययन की छाप है और वह चकित कर देनेवाले तथ्यों से, जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता, पूर्ण है। उसे नारी का पुरुष के प्रति अभियोगपत्र कह सकते हैं। हम मानते है कि यह पुस्तक लिखकर लेखक ने समाज की बड़ी सेवा की है और यह आशा करते है कि

इसे पढकर पाठको के हृदय में नई दिशा दिखानेवाला प्रकाश पैदा होगा। लेखक ने सप्रमाण और तर्क-सगत होने की पूरी चेष्टा की है, पर फिर भी हमारा मत है कि यह अध्ययन अधूरा है। मात्र अभियोगो की सूची बना देने से, बेशक वे सप्रमाण हो, काम नही चलता। जिन ग्रथो का उन्होने हवाला दिया है वे कब और किन परिस्थितियो में बने, यह पता लगाना और जिस हिन्दू धर्म की बात लेकर लेखक चला है वह कितना प्राचीन है, इसकी खोज करना आवश्यक है। महाभारत की घटना पुरानी है, परन्तु वह लिखा तो ईसा के बहुत बाद गया है। वेद बहुत पुराने है, परन्तु उनका वर्गीकरण और लेखन महाभारतकाल में, आज से कोई तीन या साढे तीन हजार वर्ष पूर्व हुआ। उपनिषद् आदि तो उसके भी बाद के है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक को काल और कारण का अध्ययन भी प्रस्तुत करना चाहिए था। पुरुष नारी को इतना हेय क्या और कैसे समझने लगा, इसके वैज्ञानिक अध्ययन के बिना अभियोगो का कोई मूल्य नही होता। फिर आर्यो से पूर्व द्राविड और सथाल सस्कृति में नारी का क्या स्थान था? प्रारम्भिक आर्य लोगो में नारी को क्या पद मिला हुआ था? क्या वैदिक और हिन्दू धर्म एक ही है; ये सब चर्चाए इस प्रश्न से सम्बन्ध रखती है और उन पर आवश्यक विचार होना ही चाहिए था।

फिर भी पुस्तक उपयोगी है और बहुतो के लिए मार्ग-प्रदर्शिका है। हा, मूल्य कुछ अधिक है।

सघर्ष और समर्पण : (उपन्यास) लेखक—कन्हैयालाल ओझा 'स्नेह', प्रकाशक—राजहस प्रकाशन दिल्ली; पृष्ठसख्या ६३३, सजिल्द मूल्य साढे पाच रुपया।

ओझाजी नये लेखक है और उन्होने उपन्यास को नई परिभाषा देने की चेष्टा की है। हम मानते है कि लम्बे वाद विवादा और कही-कही उबा देने वाली भाषा के बावजूद उपन्यास सरस, रोचक और अपने को पढ़वा लेने में काफी सफल है। लेखक ने स्वीकार किया है कि वह विशिष्ट धाराओ और उन विशिष्ट व्यक्तियो को लेकर चला है "जो शाश्वत जीवन का प्रबल स्रोत लेकर तो अवतीर्ण होते है; किन्तु जिनके प्रवाह की दिशा स्थिर होती है उस द्वद्व के द्वारा जो शाश्वत जीवन की गति में, समाज में प्रचलित धारणाओ के घात-प्रतिघात से उत्पन्न होता है।"

प्रारम्भ में पढते समय ऐसा लगता है कि उपन्यास एकदम अस्वाभाविक है, परन्तु अन्त में एक बडे रहस्य का उद्घाटन होता है जो अपने आप मे अस्वाभाविक होकर भी उपन्यास की अस्वाभाविकता का समाधान करने की चेष्टा करता है और मानना पडेगा कि वह बहुत कुछ सफल भी होता है। उपन्यास में आतकवादियो की चर्चा है, गुप्त समाओ और षडयन्त्रो का वर्णन है; परन्तु साथ ही उन सबके मानवीय गुण और अवगुणो पर परदा नही डाला गया है। भारत से बाहर जो आन्दोलन चला था उसीके कुछ लोग इधर-उधर छिपे पडे है, कोई मल्लाह है, कोई पोस्टमैन तो कोई गानेवाली। वे सब उच्च आदर्शों की विद्वतापूर्ण भाषा से विद्वता-पूर्ण विवेचना करते है, परन्तु व्यवहार में अधिकतर वे सब स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण का शिकार है और ऐसे कर्म कर बैठते है जो उनके उच्च आदर्शों को कलकित करनेवाले है। लेखक ने अग्रेजो के अत्याचार का वर्णन भी किया है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की व्याख्या भी की है, मथुरा में कृष्ण की उपासिकाओ की झाकी भी दी है, और भी बहुत कुछ किया है; पर वह सब इतना भारी है कि पाठक उसके भार से दबकर रह जाता है। हा, रहस्य और रोमाच से पूर्ण इस उपन्यास में मानव मनोविज्ञान की दृष्टि से कई सफल चरित्र अकित हुए है। वे ही इसकी शक्ति है। यदि वाद विवाद और राजनीति का भूत लेखनी को इतना न जकड लेता तो सम्भव था कि लेखक माया, आरती और नीलम को कुछ अधिक प्राणवान बना पाता। टीकू, अधरलाल और नवनीत उपन्यास-साहित्य के अमर पात्र बन

जाते। लेखक में शक्ति है, सूझ है, कल्पना है; पर वह अभी मोहाविष्ट है। इसीलिए उलझन है। भविष्य में वह विद्वत्ता का मोह छोड़कर मनुष्य की दृष्टि से लिखेगा तो निसन्देह कुछ अमर चित्र दे सकेगा। उससे बहुत आशाएं हैं। —सुशील

कबीर-बीजक : सम्पादक— हंसदास शास्त्री तथा महावीरप्रसाद, प्रकाशक—कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, हरक (बाराबंकी), मूल्य ५॥)

जैसाकि नाम से स्पष्ट है, इस पुस्तक में कबीर साहब का बीजक दिया गया है। कबीर-बीजक का कई स्थानों से प्रकाशन हुआ है; लेकिन उन सबमें पाठ-भेद पाया जाता है। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि कबीर की वाणियां मौखिक होने के कारण उनके शिष्यों ने अपनी भाषा के रूप में उन्हें ढाल दिया है। पाठ-भेद का एक कारण यह भी है कि प्रायः सम्पादकों ने कबीर के शब्दों पर ध्यान न रखकर, अर्थ पर रखा है। प्रस्तुत बीजक का संशोधन लगभग २८ बीजक-प्रतियों के आधार पर किया गया है और सम्पादकों ने अपनी ओर से कोई शब्द नहीं गढ़ा।

संत कबीर की 'वानी' आज भी अपना महत्व रखती है। सरल तथा सीधी-सादी भाषा में उसमें एक ऐसा संदेश है जो प्रत्येक सांसारिक प्राणी के लिए ग्रहण करने योग्य है। हमें हर्ष है कि सम्पादक द्वय ने इतना परिश्रम करके यह बीजक हिन्दीभाषी जनता के लिए सुलभ किया। पुस्तक के १२४ पृष्ठों में बीजक है। बाद के पृष्ठों में ५ परिशिष्टों में क्रमशः बीजक का शब्द-कोष; अंतर्गत कथाएं; संख्या-वाची शब्द, बीजक में आये योग-संबन्धी शब्दों की व्याख्या; रूपक, उलटबांसी तथा प्रतीकात्मक शब्दों के अर्थ दिये गए हैं। कबीर की रचनाओं का अर्थ व उनके संदेश का मर्म समझने के लिए प्रत्येक पाठक को इस पुस्तक का स्वाध्याय करना चाहिए। पुस्तक के सम्पादकों में श्री हंसदास शास्त्री एक कबीर-पंथी मठ के अध्यक्ष तथा श्री महावीरप्रसादजी कबीर-पंथ में दीक्षित हैं। ऐसी दशा में भूमिका-लेखक डा० भागीरथ मिश्र के शब्दों में "भाव और विचार-धारा की दृष्टि से ये वानियां साम्प्रदायिक परम्परा से सम्मत होने के कारण महत्वपूर्ण हैं।" अनेक बीजकों तथा कतिपय कबीर-पंथी स्थानों की हस्तलिखित प्रतियों से शब्दों तथा भाषा के रूप-निर्धारण म सहायता लेकर इस बीजक को प्रमाणिकता प्रदान की गई है।

कबीर की 'साखियां' आज भी घर-घर में सुनी जाती है। अच्छा हो यदि इस पुस्तक का एक सस्ता संस्करण भी निकाला जाय। यों पुस्तक का आकार, छपाई आदि के देखते ५॥) मूल्य अधिक नहीं है; फिर भी सामान्य पाठक की पहुंच से तो बाहर है ही।

घरेलू प्राकृतिक चिकित्सा : धर्मचंद सरावगी, प्रकाशक—मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, कलकत्ता मूल्य एक आना।

इस पुस्तक में दांत का दर्द, आग से जलना, कब्ज, ज्वर, फोड़ा-फुंसी, अतिसार, जुकाम, सिरदर्द, तथा घाव की प्राकृतिक चिकित्सा बताई गई है। यह चिकित्सा इतनी सरल है कि कोई भी घर बैठे कर सकता है। मिट्टी, पानी, एनीमा के साथ-साथ भोजन किस प्रकार का लेना चाहिए, यह भी बताया गया है। पुस्तक किताबी ज्ञान के आधार पर नहीं लिखी गई है; बल्कि लेखक ने अपने तथा अपने परिवार के ऊपर परीक्षण करके लिखी है। पुस्तक उपयोगी है और हम चाहते हैं कि घर-घर उसका प्रचार हो। —य०

हमारे सहयोगी

हिन्दी में ऐसे विचार-प्रधान साप्ताहिकों का बड़ा अभाव है, जो पार्टीबंदी से ऊपर उठकर जनसाधारण को निष्पक्ष होकर सोचने के लिए विचार-सामग्री दे सकें। हरिजन-सेवक, लोक-सेवक इस दिशा में मार्ग-दर्शक पत्र माने जा सकते हैं। इधर १४ जून, १९५१ से सर्वश्री हीरालाल शास्त्री तथा प्रेमनरायण माथुर के सम्पादकत्व में जयपुर से **'जीवन-संदेश'** नामक

साप्ताहिक पत्र निकलने लगा है। राजस्थान में पिछले दिनों काफी राजनैतिक उथल-पुथल रही है और सम्पादकद्वय वहाँ के पिछले मन्त्रिमण्डल में क्रमशः मुख्यमंत्री तथा शिक्षामंत्री के पद पर रह चुके हैं। अतः यह आशंका होना स्वाभाविक ही है कि यह पत्र दलगत राजनीति से ऊपर रह सकेगा; लेकिन हमारे सामने जो अंक हैं, उन्हें देखने से उक्त आशंका बहुत कुछ अंशों में निर्मूल हो जाती है। पत्र का सम्पादन विवेकपूर्वक हो रहा है। सामयिक समस्याओं की चर्चा में कहीं-कहीं कांग्रेस तथा शासन-तंत्र की आलोचना आ गई है, लेकिन वह शायद इसलिए कि कांग्रेस व शासन-तंत्र में अनेक दोष घुस आये हैं जिन्हें दूर किये बिना देश का हित नहीं हो सकता। पत्र का वार्षिक शुल्क ६) और एक अंक का तीन आना है। प्रत्येक अंक के प्रथम पृष्ठ पर राजस्थानी भाषा में श्री हीरालाल शास्त्री की एक भावपूर्ण कविता रहती है। हमें प्रसन्नता होगी यदि यह पत्र आगे भी अपने उद्देश्य के अनुसार दलगत राजनीति से ऊपर रहकर सेवा-पथ पर अग्रसर होता रहे।

इधर रांची से एक मासिक पत्र निकलने लगा है 'ग्राम-निर्माण' जिसके सम्पादक हैं श्रीरामचरित्रसिंह। अपने नाम के अनुरूप उसमें ग्रामोपयोगी सामग्री दी जा रही है। पहले वर्ष का पांचवां और छठा अंक इस समय हमारे सामने हैं। उनमें कई लेख पठनीय हैं और जनसाधारण के बड़े काम के हैं। इस प्रकार के जितने भी पत्र निकलें अभिनंदनीय हैं, कारण कि भारत गांवों में बसता है और बिना गांवों की उन्नति के राष्ट्र की उन्नति सम्भव नहीं है। पत्र के लेखों के चुनाव में थोड़ी कड़ाई और रहे तो पत्र अधिक उपयोगी बन सकता है। छपाई में भी थोड़े सुधार की गुंजाइश है। —य०

प्राप्ति-स्वीकार

['जीवन-साहित्य' में समीक्षा के लिए हमारे पास स्वेच्छा-पूर्वक बहुत सी पुस्तकें भेजी जाती हैं। उनमें से चुनी हुई पुस्तकों पर हम स्वतन्त्र रूप से विचार प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। जो पुस्तकें छूट जाती हैं, उनके विषय में हमारी लाचारी मानी जानी चाहिए। इस समय हमारे पास निम्नलिखित पुस्तकें आई हुई हैं। इनमें से कुछ पर हम आगामी अंक में विस्तार से चर्चा करेंगे। —सम्पादक]

(समालोचना के लिए दो प्रति आना आवश्यक है।)

१ स्त्री-पुरुष मर्यादा—लेखक-किशोरलाल मशरूवाला -प्रका० नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद मू० १॥।)
२ बापू के पत्र मीरा के नाम—अनुवादक-रामनारायण चौधरी, प्रका० उपरोक्त मू० ४)
३ रामकृष्ण उपनिषद्—ले० चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य प्रका०—हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली मू० १॥)
४ पुरुष-स्त्री—लेखक—श्री रघुवीरशरण दिवाकर प्रका० मानव साहित्य सदन, मुरादाबाद मूल्य २॥)
५ भारतीय राष्ट्रीयता किधर?—लेखक-प्रकाशक उपरोक्त मू० १)
६ सर्वोदय के सिद्धांत—प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद मू० ॥।)
७ वर्द्धमान—रचयिता—अनूप शर्मा, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मू० ६)
८ शेर ओ सुखन—ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मू० ८)
९ गहरे पानी पैठ—ले०-प्रका०-उपरोक्त मू० २॥)
१० ज्ञानगंगा—ले० श्री नारायणप्रसाद जैन, प्रकाशक—उपरोक्त मू० ६)
११ पूजन रत्नाकर—फूलचंद शास्त्री प्रकाशक—जैन, सिद्धान्त ग्रन्थमाला दिल्ली, मू० ५)
१२ सुखी भारत—ले० श्री प्रकाशलाल, प्रका०—जीवन मंदिर राजेन्द्रनगर नई दिल्ली, मू० ॥=)

'क्या व कैसे ?'

नेहरूजी और टण्डनजी दोनों रहें

पं. जवाहरलालजी के कांग्रेस-कार्यसमिति से इस्तीफा देने के कारण जो नेहरू-टण्डन विवाद खड़ा हो गया है उससे देश में एक हलचल पैदा हो गई है। इसे दो व्यक्तियों का झगड़ा तो कोई भी समझदार आदमी नहीं कहेगा। दोनों में परस्पर काफी स्नेह और आदर है। दोनों अपने गुणों और सेवाओं के कारण इतने महान भी हैं कि उनके व्यक्तित्व पर हमला करने वाला खुद ही क्षुद्रता को प्राप्त किये विना न रहेगा। कांग्रेस को सुदृढ़ बनाने की दोनों की समान इच्छा होते हुए भी इसमें कुछ सन्देह नहीं कि दोनों के विचारों में कुछ-कुछ अन्तर है और यही असल में इस विवाद का मूल कारण है। यह मतभेद भी सैद्धान्तिक तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी इस तरह का जरूर है कि जिससे दोनों की गाड़ी एक पटरी पर नहीं चल रही और आज देश के सामने यह समस्या खड़ी हो गई है कि वह नेहरूजी के पीछे चले या टण्डनजी के। वास्तव में हमारा प्रकाश-स्तम्भ या ध्रुव-तारा तो हमारा आदर्श, हमारा लक्ष्य और हमारा सिद्धान्त ही हो सकता है और होना भी चाहिए, परन्तु कई बार राष्ट्र के जीवन में ऐसा संकटकाल आ उपस्थित होता है जब हमें आदर्श और सिद्धान्त के मूर्तरूप व्यक्ति का चुनाव करने पर मजबूर होना पड़ता है। इस तरह से यदि आज हमें टण्डनजी और नेहरूजी में चुनाव करना पड़े तो नेहरूजी को चुनना ही सब दृष्टियों से उचित रहेगा। परन्तु जहां यह उचित होगा वहां आज की परिस्थितियों में टण्डनजी को कांग्रेस अध्यक्ष पद से हटने देना भी देश का दुर्देव ही कहा जायगा; क्योंकि संकट के समय में सबको साथ ले चलने की मनोवृत्ति ही हमारी नौका को पार लगा सकती है।

नेहरूजी को यह शिकायत है कि उनको प्रसन्न करने या रखने के लिए प्रस्ताव तो उनकी विचारधारा के पोषक पास कर दिये जाते हैं, परन्तु कांग्रेस-यंत्र के द्वारा उनका पालन नहीं होता। इसलिए वह उस यंत्र में तदनुकूल परिवर्तन कराना चाहते हैं। टंडनजी के लिए उचित है कि वे सिद्ध करें और नेहरूजी को समझा लें कि उनका यह आक्षेप और शिकायत गलत है। यदि सही हो तो या तो स्वयं ही उस यंत्र को उनके अनुकूल बना दें या उनके सुझाव के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दें। उनका यह कहना सही है कि अध्यक्ष को कार्यसमिति बनाने का अधिकार है और उनको अपनी कार्यसमिति से संतोष है। अतः उनको उसमें कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। टंडनजी के आत्म-संतोष की दृष्टि से यह ठीक हो सकता है; परन्तु उन्हें जवाहरलालजी को साथ रखना है, उन्हें संतोष दिलाना है। अतः नेहरूजी के लिए जगह खाली कर देना टंडनजी की महानता का सूचक है; परन्तु समय की मांग इससे भी बड़ी है और वह यह कि टंडनजी जवाहरलालजी को आत्मसात कर लें।

यह न हो सके तो कम-से-कम उन्हें अपने साथ तो रख ही सकें। यह उसी दशा में हो सकता है जब टंडनजी अपने को गांधीजी की स्थिति में अनुभव करें। यदि जवाहरलालजी उनके छोटे भाई के समान हैं तो उनके लिए जवाहरलालजी को इस तरह अपना लेना कठिन न होना चाहिए। "जवाहरलालजी कार्यसमिति से ही तो जाते हैं, कांग्रेस को तो नहीं छोड़ रहे हैं," ऐसी संतोषकी भाषा टंडनजी के आसपास से कहीं भी न निकलनी चाहिए। आज जहां हमें एक-एक तिनके को बटोर कर उसकी मजबूत रस्सी बनाना है वहां यदि नेहरूजी व टंडनजी जैसे शेर और हाथी को छोड़ना गवारा कर लें तो हम मूर्ख ही नहीं, दुर्भागी भी कहे

जाएगे और समाज तथा राष्ट्र के सामने दडनीय ठहरने चाहिए। हमारी राय में तो टडनजी यदि विधि-विधान की या तर्क की बन्दिशो से ऊपर उठकर एक सच्चे नेता की भाति कांग्रेस के इस भीतरी सकट का हल निकालने में उद्यत हो तो उन्हें तुरन्त सफलता मिल जाएगी। काग्रेस के अध्यक्ष की इससे बडी कसौटी पहले कभी नही हुई थी। हम हृदय से चाहते है कि टडनजी इसमें उत्तीर्ण हो।

अनर्थ की रोक

काग्रेस की भीतरी कमियो और कमजोरियो के कारण देश में जो असन्तोष फैला उसके फलस्वरूप आचार्य कृपलानी की प्रजापार्टी का जन्म हुआ, श्री किदवई तक को निराश होकर काग्रेस छोड देनी पडी। बगाल, उत्तरप्रदेश में प्रान्तिक आधार पर नई-नई पार्टिया बन चुकी हैं। अब राजस्थान में भी एक जनता पार्टी बनने का समाचार मिला है। जिस तरह अभी जो काग्रेसके कर्णधार हैं उनकी देश भक्ति और सच्चाई पर शका करना कठिन है, उसी तरह जो अलग होकर नये दल बना रहे है, उनकी ओर भी उगली उठाना आसान नही। फिर भी दो बातें निश्चित हैं। एक यह कि काग्रेस अपनी भीतरी कमिया और कमजोरिया दूर करने में सफल नही हो रही है। दूसरी ओर जो काग्रेस से फूट-कर बाहर निकल रहे है उनके मन में भी केवल काग्रेस के वर्तमान नेतृत्व से असन्तोष ही नही, क्रोध भी मालूम होता है। सिद्धान्त और नीति की अपेक्षा इस मतभेद का स्वरूप व्यक्तिगत अधिक मालूम होता है। यह दिखलाता है कि अभी भारतीय समाज में अहिंसा का या जनतन्त्रीय भावना का इतना विकास नही हो पाया है कि हमारे मतभेद केवल सिद्धान्त और रीति-नीति पर ही आधारित रह सकें। हमें इस ओर दृढता से और तेजी से कदम बढाना है। हम खुद इस विचार से सहमत है कि व्यक्ति से सस्था बडी है और सस्था से आदर्श बडा है। इसलिए आदर्श की रक्षा के लिए जो सस्था का त्याग करते हैं उनके प्रति हमारे मनमें आदर रहता है; परन्तु जिस तरह काग्रेस के वर्तमान पदाधिकारी कमियो और कमजोरियो से भरे हो सकते हैं उसी तरह नये दलो के निर्माता उनसे बरी हैं या रहेंगे इसकी क्या गारटी है? हमें ऐसा लगता है कि अपने को सब तरह से ठीक और दूसरे को निन्दनीय ठहराने की प्रवृत्ति जबतक किसी एक पक्ष में हैं तबतक वे दूसरे को इन कमजोरियो से ऊपर उठाने में कृतकार्य नही हो सकते। जो स्वय पक्षातीत होगा, वही पक्षो को मिटा सकेगा। जो खुद पक्ष या पक्षो में लिप्त है, वह पक्ष या पक्षो को ही बढाता रहे-गा। मन में पक्ष होगा, जबान पर आदर्श होगा तो उससे कोई कहा तक सफलता प्राप्त कर सकता है? अत हमारी राय में तो उचित यह है कि दूसरो की निन्दा और दूसरो पर हमले किये बिना जो कार्यक्रम हमें पसद, है जो व्यक्ति हमें पसद है उनको लेकर हम कार्य करते रहे। हमारे कार्य का हम अवश्य प्रचार करें, मगर दूसरे की बुराई से बाज आवें।

चूकि हम यह विश्वास करते है कि राजनैतिक दलबन्दियो में अपना समय खोना वृथा है और देश में रचनात्मक सर्वोदयी प्रवृत्तियो को बढाने से ही हमारी बहुत-सी विपत्तियो का अन्त होनेवाला है। इसलिए हम काग्रेस की फूट और दलबन्दियो से दुखी होते हुए भी प्रभावित नही होते। ऐसे कार्यकर्ताओ के लिए हम यह ठीक समझते है कि वे काग्रेस के अन्दर की या देश के अन्दर की फूट और दलबन्दी को मिटाने का और देश में राष्ट्रीय वातावरण को बढाने का जितना प्रयास कर सकते है करें। फूट और दलबन्दियो को बढाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर न लें। सब पक्षवालो को हम ऐलानिया कह दें कि फूट और दलबन्दियो में आप हमको न घसी-टिये। एकता बढाने में और दूसरी रचनात्मक सेवा में हमारा जितना उपयोग करना हो, खुशी से कर सकते हैं। ऐसी दृढता ही हमको वर्तमान अनर्थों से रोक सकती है।

योजना आयोग की रिपोर्ट

पचवर्षीय योजना-आयोग हमारे सामने आ चुका है। हमारी कसौटी किसी भी योजना या मनुष्य को कसने की यह है कि वह सर्वोदय के कहातक अनुकूल

है ? इस दृष्टि से योजना-आयोग की रिपोर्ट बहुत असन्तोषजनक है। सर्वोदय की ओर लेजाने में भी वह जल्दी सफल नहीं हो सकती। लेकिन हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि वह वर्तमान राष्ट्रीय सरकार द्वारा नियोजित राष्ट्रीय योजना का आयोग है, न कि सर्वोदय योजना का। इस सीमित क्षेत्र और निश्चित दृष्टि से देखें तो उसके वर्तमान माननीय सदस्य, वर्तमान रिपोर्ट से अच्छी रिपोर्ट नहीं दे सकते थे। जो राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से सन्तोष मान लेते हैं उन्हें उसकी सफलता के लिए सरकार को पूरा सहयोग देना चाहिए। जो सर्वोदयी दृष्टि रखते हैं उन्हें अपनी सर्वोदय योजना को कार्यान्वित करने में अग्रसर होना चाहिए। जब तक सर्वोदयी दृष्टिवाले सदस्यों का बहुमत धारासभा में न हो तबतक उनको भारतीय सरकार से विशेष आशा न रखनी चाहिए। जितनी सहायता और सहयोग मिल सके उतना गनीमत। जो कसर रह जाती है उन्हें वह प्रत्यक्ष जनसेवात्मक प्रवृत्तियों और उससे प्राप्त शक्ति और साधन के द्वारा पूर्ण करने का प्रयत्न करते रहें।

—हृ० उ०

हमारा आशा-दिवस

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के चार वर्ष व्यतीत कर हमने पांचवें वर्ष में प्रवेश किया है। सभ्य कहलाने वाले किसी भी नागरिक के लिए यह एक महान् उत्सव का दिन है। किन्तु कोई भी उल्लास हम आज अपने बीच नहीं देखते। हम सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य के घटक् हैं, यह सोचकर हमें गर्व होता है जरूर; पर हमारी आंखों में वह ज्योति नहीं दिखलाई देती, हमारे दिलों में वह उमंग भी नहीं दिखलाई देती। वास्तव में हमने आजादी का सच्चा स्वाद तो चखा ही नहीं। घोर आर्थिक समस्या की चक्की में पिसती हुई जनता के लिए यह सम्भव भी कब है? इस चक्की से जबतक छुटकारा नहीं मिलता, स्वतंत्रता के उल्लास को हम समझ भी न सकेंगे। आर्थिक दृष्टि से जनता का जीवन-स्तर जैसा पहले था उससे किंचिन्मात्र भी उन्नत नहीं हुआ है, यद्यपि हाल की उन्नति की पंचवर्षीय योजना, कांग्रेस के चुनाव का घोषणा-पत्र उज्ज्वल भविष्य की ओर देखने के लिए प्रेरित करते हैं। पर योजनाओं और घोषणाओं का ठोस लाभ जबतक जनता को नहीं मिलता तबतक उसे सन्तोष नहीं हो सकता।

राष्ट्र के सामने पिछले वर्ष जो समस्यायें थीं, वे अब भी ज्यों-की-त्यों हैं। अन्न की दृष्टि से हम अभी भी आत्मनिर्भर नहीं हुए हैं। वस्त्रोत्पादन की गति में कोई प्रगति नहीं, काश्मीर की समस्या जिच बनकर खड़ी है। व्यापारियों के नाजायज लाभ उठाने की वृति में कोई फर्क नहीं। इस प्रकार की और दूसरी नैतिक समस्यायें भी सामने हैं ही।

पाकिस्तान-हिन्दुस्तान के बीच का सम्बन्ध काश्मीर की समस्या को लेकर बिगड़ता ही जा रहा है। जब राजर्षि टंडनजी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये हमने समझा था कि कांग्रेस की बिगड़ती हुई परिस्थिति में सुधार हो जायगा। वह दलबन्दी और नैतिक बुराइयों से ऊपर उठेगी। वह तो दूर रहा कांग्रेसियों की परस्पर बढ़ती हुई फूट ने आज एक नये दल को जन्म दे डाला है। जिस क्षेत्र में देखिये, आज असत्य, अनीति, दुराचार, अनाचार ने प्रवेश पा लिया है। त्याग, तपस्या का समर्पित जीवन आज भोग और संचय में अपनी सफलता ढूंढ़ने लगा है, सेवा का व्रत सत्ता की चकाचौंध के आगे धूमिल-सा पड़ रहा है।

इस प्रकार हमारे रामराज्य का आदर्श दिन-पर-दिन दूर होता दिखलाई पड़ता है। सर्वोदय की कल्पना अभी प्रत्यक्ष होती नहीं दिखाई देती, पर सर्वोदयवादी निराशावादी नहीं है। उसे सत्य में निष्ठा है, इसलिए उसका विजय में अमिट विश्वास है। अपनी सामर्थ्य से वह इन कठिनाइयोंके बीच भी मार्ग निकाल लेनेकी आशा करता है। इस दृश्यमान निराशा में छिपी आशा की ज्योति उसे उसी तरह स्पष्ट दिखलाई देती है जैसे शरीर के भीतर छिपी आत्मा की ज्योति प्रज्ञावान को दिखलाई देती है। शरीर जीर्ण-शीर्ण हो तो भी आत्मा की ज्योति उससे जीर्ण-शीर्ण नहीं हो सकती। इसी प्रकार बाह्य विकारों से इस समय भारतीय वातावरण जो निराशापूर्ण दिखलाई दे रहा है, वह क्षणिक और ऊपरी

है। भारत की प्रगतिशील नवोन्मेषिनी आत्मा की ऊर्ध्व गति को वह नही रोक सकती। —च०

कांग्रेस का चुनाव-पत्र

अ० भा० कांग्रेस कमेटी की मीटिंग पिछले दिनों बंगलोर में हुई थी। उसमें जो चुनाव घोषणा-पत्र स्वीकृत हुआ, वह पत्रो में प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि कांग्रेस में इस समय कई दल हो गये है तो भी कांग्रेसी घोषणा पत्र ने करीब-करीब सभी कांग्रेसी सदस्यो को थोडा बहुत संतोष दिया है। मोटे तौर पर इसमें आर्थिक प्रगति को प्राथमिकता दी गई है। उसके लिए योजना निर्माण को आवश्यक बताया गया है। वस्तुओ की कमी देखते हुए उन पर नियंत्रण रखना और उनकी कीमत नीचे लाने का निश्चय किया गया है। ग्राम, ग्रामनिवासियो और भूमि-सुधार पर जोर दिया गया है। औद्योगिक क्षेत्र में मिश्रित नीति अपनाने की घोषणा की है। राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप पर जोर दिया है। गृह उद्योग की उन्नति करने की घोषणा की गई है। हालांकि खादी और ग्रामोद्योगो पर जो मौन रक्खा गया है जो खटकने-वाला है। घोषणापत्र में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गांधीजी की शिक्षाओ पर आचरण करने पर विशेष जोर दिया गया है।

इस प्रकार इस घोषणापत्र को देखते हुए मालूम होता है कि पिछले वर्षों में कांग्रेसी सरकार ने इतनी विशाल दृष्टि से काम न किया हो तो भी यह आशा मनमें पैदा होती है कि यदि इस घोषणा पत्र के अनुसार भावी कांग्रेसी सरकार चले तो राष्ट्र और समाज की दृष्टि से बहुत लाभ हो सकता है और खुद कांग्रेस में जो बुराइया पैदा हुई है वे भी दूर हो सकती हैं।

सही दृष्टि से देखें तो आज के प्रजातंत्र-युगमें इस प्रकार के घोषणा-पत्र का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस पर से हरेक राजकीय दल की कार्य दिशा का पता लगता है और जनता के सामने भी वह मार्ग साफ दिखाई देता है जिसको अपनाये। इस घोषणा-पत्र जितना या उससे भी अधिक लुभावना घोषणा-पत्र दूसरे दलो का भी हो सकता है, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि घोषणा-पत्रो के अनुसार आगे जाकर बहुत कम काम होता है। जो घोषणा-पत्र निकाले जाते है, उनमें से अधिकाश का उद्देश्य केवल यही रहता है कि चुनाव म ज्यादा वोट मिलें। यह उद्देश्य पूर्ण हुआ कि फिर वे दिये हुए आश्वासन भूल जाते हैं और जनता को भी काफी निराशा होती है। यह भी होता है कि घोषणा-पत्र के अनुसार स्थापित सरकार काम तो करना चाहती है, लेकिन ऐसी कठिनाइया पैदा हो जाती हैं कि उस प्रकार चलना उसके लिए असम्भव हो जाता है।

इन सब परिस्थितियो को देखते हुए ऐसा लगता है कि मूल में घोषणा-पत्र का उतना महत्व नही है, जितना कि उनके अनुसार काम करने की इच्छा और प्रयत्न का है। विचार और घोषणा से भी ज्यादा आचार का महत्व है। तदनुकूल आचार न हो तो बडे बडे विचार और उनके अनुसार बनाये ऊचे घोषणा-पत्र का विशेष मूल्य नही है। यदि किसी सरकार को कसौटी पर तौलना हो तो यही रास्ता है कि हम देखें कि अपने घोषणा-पत्र के अनुसार चलने की उसकी कितनी इच्छा और कितना प्रयत्न है। —कु० दा०

(पृष्ठ २५८ का शेषांश)

उसी तेजी से भीड में जा मिला। मुडते-मुडते जितना कुछ में उसे देख सका, उससे पता लगा कि वह कोई गरीब मजदूर था, उसके कपडे मैले थे और पैर नगे।

मैं अब उस लडके के बिल्कुल पास आगया था और वह लडका चुपचाप ढेरसारे पैसा को कागज में लपेट रहा था। मैं कांपा। नोट को मुट्ठी में भीच कर कुछ तलखी से पूछा, "क्यो रे, पैसे कहा से आए?"

"वह आदमी दे गया है!"

"सब?"

'उसने एक रुपया दस आने दिये हैं।

यह कह कर वह भी आगे बढ गया पर मेरे पैर तो जैसे मन-मन भर के होगए थे। तर्क का बोझ जैसे मुझे धरती में गाड दे रहा था। हाथ में रुपये का नोट दबाये लज्जित कम्पित देर तक वही खडा रहा।

'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक पर लोकमत

श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला (वर्धा)

"अंक बढ़िया है।"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (नई दिल्ली)

"'जीवन साहित्य' का 'प्राकृतिक चिकित्सा अंक बहुत उपयोगी अनुष्ठान है। गांधीजी के इस पवित्र कार्य को आप आगे बढ़ा रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है। प्राकृतिक चिकित्सा के ज्ञान का प्रचार जनता की भारी सेवा है। इस विधि का देश-व्यापी लाभ मिलना चाहिए।"

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार (गोरखपुर)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक देखा। अच्छा लगा। आप देखेंगे कि आपके और ग्राहक भी इसे पसंद करेंगे।"

श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह (जबलपुर)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक देखकर प्रसन्नता हुई। उपयोगी सामग्री का संग्रह सुचारु रूप से किया गया है।"

डा० गोपीनाथ धावन (लखनऊ)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक 'जीवनसाहित्य' की लोक कल्याण-साधना के उत्कृष्ट प्रमाण के अनुरूप है।"

डा० कुलरंजन मुखर्जी (कलकत्ता)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक में सामग्री का चयन सुंदर हुआ है। अंक पठनीय एवं संग्रहणीय है। हिन्दुस्तान के प्रत्येक घर में इसका स्थान होना चाहिए।"

श्री हरिशंकर शर्मा (आगरा)

"'जीवन साहित्य' के सभी विशेषांक बहुत सुन्दर होते हैं।"

श्री धर्मचन्द सरावगी (कलकत्ता)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक सचमुच बड़ा ही अच्छा अंक है। संग्रहणीय है। इसके द्वारा दुनिया का बहुत कुछ भला हो सकता है।"

श्री उमाशंकर शुक्ल (वर्धा)

"'जीवन-साहित्य' के विशेषांक यथार्थता लिए हुए होते हैं और 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक पिछले सभी विशेषांकों से बाजी मार ले गया है। अंक सुपाठ्य सामग्री से पूर्ण है।"

श्री विट्ठलदास मोदी (गोरखपुर)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक बहुत सुंदर है। आपने तो प्राकृतिक चिकित्सा का एक लघुकोष ही तैयार कर दिया है।"

श्री रामनारायण उपाध्याय (कालमुखी, खण्डवा)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' जैसी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता पर, प्रामाणिक ढंग से, सुन्दर उपयोगी साहित्यिक अंक निकालने के लिए हार्दिक बधाई! अंक बहुत पसंद आया।"

श्री देवपतिसिंह (कुदरा)

"'प्राकृतिक चिकित्सा' अंक बेहद पसंद आया। यह अंक उन सब व्यक्तियों की आंख खोल देगा जो आजकल की अंग्रेजी दवाओं और डाक्टरों के पीछे काफी हैरान होकर तथा रुपया खर्च करने के बाद भी आरोग्य लाभ नहीं कर पाते।"

Reg. No. E. P. 479

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

राष्ट्रपिता

अक्तूबर १९५१

आठ आना

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन - साहित्य** [एक प्रति का ।)

लेख-सूची

'जीवन-साहित्य' के हितैषियों से

'जीवन साहित्य' आपका ही पत्र है। उसका ध्येय आर्थिक लाभ उठाना नहीं, बल्कि उपयोगी एवं सात्विक सामग्री देकर जनसाधारण की सेवा करना है, लोक-रुचि को ऊंचा उठाना है। अपने इस पत्र के प्रति आपका भी दायित्व है, जिसे आप निम्न प्रकार से पूरा कर सकते हैं:

१. यदि आप ग्राहक नहीं हैं तो ४) रु० वार्षिक शुल्क के भेजकर शीघ्रातिशीघ्र ग्राहक बन जायं।

२. अपने मित्रों, सम्बन्धियों तथा परिचितों को ग्राहक बनावें।

३. ऐसे पाठकों के पते भेजें, जो पत्र के ग्राहक बन सकें।

४. पत्र के उद्देश्य के अनुरूप रचनाएं भेजें। कृपया इतना ध्यान रक्खें कि लेख साफ हो। उपयोग न हो सकने की दशा में वापस भेजने के लिए आवश्यक टिकिट अवश्य भेजें।

५. पत्र में जो कमियां दिखाई दें अथवा उसकी सामग्री आदि में आप कोई परिवर्त्तन-परिवर्द्धन चाहते हों तो उसकी सूचना समय-समय पर देते रहें।

व्यवस्थापक

जीवन-साहित्य

नई दिल्ली

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

अक्तूबर १९५१ वर्ष १२. अंक १०

युग-पुरुष

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

प्रथम अहिंसक मानव बन तुम आये हिंस्र धरा पर
मनुज-बुद्धि को मनुज हृदय के स्पर्शो से सस्कृत कर !
निबल प्रेम को भाव-गगन से निर्मम धरती पर धर
जन-जीवन के बाहुपाश मे बाध गये तुम दृढतर !
द्वेष-घृणा के कटु प्रहार सह, करुणा दे प्रेमोत्तर
मनुज-अह के गत विधान को बदल गये हिंसाहर !
घृणा-द्वेष मानव-उर के सस्कार नही है मौलिक,
वे स्थितियो की सीमाएँ है जन होगे भौगोलिक !
आत्मा का सचरण प्रेम होगा जन-मन के अभिमुख,
हृदय-ज्योति से मडित होगा हिंसा-स्पर्धा का मुख !
लोक-अभीप्सा के प्रतीक नव स्वर्ग मर्त्य के परिणय,
अग्रदूत बन भव्य युग-पुरुष के आए तुम निश्चय !
ईश्वर को दे रहा जन्म युग-मानव का सघर्षण,
मनुज-प्रेम के ईश्वर, तुम यह सत्य कर गये घोषण !

साहित्य-स्रष्टा गांधीजी

श्री विष्णु प्रभाकर

श्री डी० एफ० कराका ने अपनी एक पुस्तक के आरम्भ में लिखा है—"गान्धीजी पर कुछ लिखना, कहना तीर्थयात्रा पर जाने के समान है।" इस दृष्टि से उनके लिखे अर्थात् उनके साहित्य की चर्चा करना तीर्थ-यात्रा से भी बढ़ कर होना चाहिए। तब उस पुण्य को कौन छोड़ना चाहेगा ? जैसा कि सब जानते हैं गान्धीजी ने बहुत कुछ लिखा है; परन्तु क्या वे साहित्यकार थे ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

प्रथम दृष्टि में तो ऐसा लगता है कि अपनी महानता के कारण वे साहित्य-स्रष्टा से अधिक साहित्य का विषय थे। सन् १९१९ से लेकर आजतक के समूचे साहित्य पर उनकी छाया पड़ी हुई जान पड़ती है और आनेवाला साहित्य उनके प्रभाव से मुक्त हो सकेगा यह कहना भी प्रायः असम्भव-सा ही लगता है। वस्तुतः वे जीवन के एक विशिष्ट दृष्टिकोण के प्रणेता थे। वह दृष्टिकोण जबतक बना रहेगा तबतक उनका प्रभाव भी साहित्य से दूर नहीं होगा। राजनीति की भाषा में इसी विशिष्ट दृष्टिकोण को गान्धीमार्ग या गान्धीवाद कहा जाता है।

पर इसके बावजूद वे साहित्यकार थे। नेता के रूप में नहीं, लेखनी के धनी के रूप में। वे अधिकतर गुजराती और अंग्रेज़ी में लिखते थे, इसलिए उन्हीं भाषाओं पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। गुजराती के विद्वान् उन्हें एक अनुपम गद्य शैलीकार मानते हैं और जब लन्दन से गोलमेज परिषद् के अवसर पर उन्होंने अमेरिका के लिये सन्देश ब्राडकास्ट किया था तब अमेरिकावाले उनकी सरल, मुहावरेदार पर शक्तिशाली अंग्रेज़ी सुनकर चकित रह गये थे। यद्यपि दूसरी भाषाओं में उन्होंने नहीं के बराबर लिखा है; पर अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें प्रभावित अवश्य किया है। उनकी शैली को अंग्रेजी का 'बिब्लिकल' शब्द ठीक-ठीक व्यक्त करता है। उसकी सरलता, संकेत-प्रियता, संयत विनोदप्रियता, सूत्रता और सहज तार्किक गम्भीरता के कारण ही उसमें अपूर्व शक्ति है। सबसे बढ़कर उनकी आत्मीयता के कारण उसमें जो पारदर्शिता आगई है वह उनकी अपनी चीज़ है।

गान्धीजी साहित्यकार थे; परन्तु अपने बावजूद अर्थात् वे साहित्यकार बनने नहीं चले थे। उनका लक्ष्य कुछ और ही था। फुलॉप मिलर ने कहीं लिखा है—"किसी जमाने में बुद्ध के सम्मुख जिस तरह मानव-प्राणी की वेदना अपना घूंघट खोल कर खड़ी होगई थी उसी तरह अब वह गांधी के सामने खड़ी होगई है। इसलिए वे अपनी भावनाएं और शक्तियां ऐसे किसी उद्योग में खर्च नहीं कर सकते जो भूखों को खिलाने में, नंगों की काया ढांकने में और दुखियों को ढाढस बंधाने में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग न दे।" इसलिए वे कला, काव्य और साहित्य को उपयोगिता की कसौटी पर परखते थे। कवि ठाकुर को एक बार उन्होंने एक पत्र में लिखा था—"अपनी काव्य प्रतिभा के प्रति सच्चा रहकर कवि आगामी कल के लिये जिन्दा रहता है और दूसरों को भी उस कल के लिये जीवित रहने का आदेश देता है। वह हमारे चकित चक्षुओं के सामने उन चिड़ियों के सुन्दर शब्द-चित्र खींचता है जो उषा के आगमन पर महिमा के गीत गाती हुई शून्य में अपने रंगीन पंखों से उड़ान भरती हैं। ये चिड़ियां दिन भर का अपना भोजन प्राप्त करती हैं और रात के आराम के बाद आकाश में उड़ती हैं। उनकी रगों में पिछली रात नए रक्त का संचार हो चुका है, पर मुझे ऐसे पक्षियों को देखने से वेदना भी हुई जो निर्बलता के कारण अपने पंख फड़फड़ाने का साहस भी नहीं कर सकते। भारत के विस्तृत आकाश के नीचे मानव-पक्षी रात को सोने का ढोंग करता है— भूखे पेट उसे बराबर नींद नहीं आती और जब वह सुबह बिस्तर से उठता है तो उसकी शक्ति पिछली रात से कम हो जाती है।

लाखों मानव-पक्षियों को रातभर भूख-प्यास से पीड़ित रहकर जागरण करना पड़ता अथवा जागृत सपनों में उलझे रहना पड़ता है। यह अपने अनुभव की, अपनी समझ की, अपनी आंखों देखी अकथ दुखपूर्ण अवस्था और कहानी है। कबीर के गीतों से इस पीड़ित मानवता को सान्त्वना दे सकना असम्भव है। यह लक्षावधि भूखी मानवता हाथ फैलाकर, जीवन के पंख फड़फड़ाकर, *कराह कर केवल एक कविता मांगती है—पौष्टिक* भोजन।"

सन् १९३५ में गुजराती साहित्य-सम्मेलन के *बारहवें अधिवेशन के सभापति के पद से* स्त्रैण साहित्य की निन्दा करते हुए भी उन्होंने कहा था—"जब मैं सेवाग्राम का और वहां के अस्थिपंजर लोगों का खयाल करता हूं तो मुझे आपका साहित्य *निरर्थक* मालूम होने लगता है।"

मिलर की मान्यता का यह स्पष्ट प्रमाण है, परन्तु जिन शब्दों में और जिस शक्ति के साथ गान्धीजी ने भूखी मानवता के लिये 'पौष्टिक भोजन' की मांग की है कविता या साहित्य क्या कभी उससे ऊंचे स्तर पर उठे हैं? क्या साहित्य का लक्ष्य इसके अतिरिक्त कुछ और होता है? युग-युग से महान् आत्माओं का जो लक्ष्य रहा है वही "मानव" साहित्य का लक्ष्य है। महात्मा गान्धी ने साहित्य से छायावाद के स्वप्निल जगत को बहिष्कृत करके मानव के यथार्थ को उसके स्थान पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने साहित्य की सृष्टि करने का दावा नहीं किया, अपितु साहित्य के तत्कालीन मूल्यांकनों का *विरोध किया, परन्तु जिन शब्दों में उन्होंने अपने* विरोध को व्यक्त किया वे ही स्वयं साहित्य बन गए। यह एक अपूर्व विरोधाभास है। उन्हींके शब्दों में इसका रहस्य इस प्रकार है—'*कला को जीवन से श्रेष्ठ मानने* में तो जीवन का स्रोत ही सूख जाएगा। मेरे लिये तो *सर्वश्रेष्ठ कलाकार* वही है जो सर्वोत्तम जीवन व्यतीत करता है। जीवन व्यतीत करने की कला ही सर्वश्रेष्ठ कला है। मैं कला के प्रति नहीं, कला के थोथे बड़प्पन या अकड़ के प्रति आपत्ति उठाता हूं। दूसरे शब्दों में मैं यूं कहूं कि मेरे विचार में *कला के 'मूल्य' भिन्न हैं।'*

जीवन अर्थात् मनुष्य में उनकी इस अगाध आस्था का प्रमाण उनकी मान्यताओं से भी स्पष्ट हो जाता है। सत्य और अहिंसा से अलग वे कुछ नहीं थे। सत्य उनके लिये देवता की आराधना का प्रतीक था और अहिंसा मनुष्य में उनकी आस्था का। उनके व्यक्तिगत जीवन में जो स्थान सत्य का था वही स्थान अहिंसा का उनके सार्वजनिक जीवन में था। अर्थात् अपने सार्वजनिक *जीवन में उन्होंने एक क्षण के लिए भी मनुष्य में अपनी* आस्था को नहीं डिगने दिया। वे एक आंदोलन के नेता थे और उस आन्दोलन का लक्ष्य था स्वराज्य अर्थात् मानव की स्वतन्त्रता। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असमानता और शोषण का क्षय तथा समानता और समृद्धि का उदय चाहते थे।

जीवन में जो भी सफलता या असफलता उन्हें मिली उसका कारण उनकी अहिंसा अर्थात् मनुष्य में आस्था थी और सत्य तथा अहिंसा की इस सम्यक् साधना के कारण उनके लिये जीवन कोई रहस्य नहीं रह गया था। वे जीवन की कला में पारगत होगये थे और उनकी इस मान्यता के अनुसार 'कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है' वे स्वयं सच्चे कलाकार थे। इसलिए उन्होंने जब कभी और जो कुछ भी लिखा या बोला वही साहित्य बन गया।

पत्रकार के रूप में अथवा स्वतन्त्रता-संग्राम के एक वक्ता के रूप में, पत्र-लेखक के रूप में या भेंट के समय की बातचीत के रूप में, प्रार्थना सभा के भाषणों के रूप में या व्यक्तिगत संस्मरणों के रूप में, आत्मकथा के रूप में या अनेक क्षेत्रों में किये गए प्रयोगों पर लिखे गये लेखों के रूप में उनका जो भी साहित्य उपलब्ध है वह प्रभाव की दृष्टि से तो शक्तिशाली है ही, परिमाण की दृष्टि से भी विपुल है और उनकी यह पूंजी सहज ही उन्हें प्रथम श्रेणी के लेखकों में ला बैठाती है।

निस्सन्देह वे कवि, कलाकार या आलोचक नहीं थे, पर आत्मकथा लेखक के रूप में उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। जिस तटस्थता और स्पष्टता के साथ उन्होंने अपनी जीवनगाथा लिखी है वह और किसी के

लिये सम्भव नहीं है। उसकी शक्ति उनके जीवन की कला में है। इसी कारण उनके दिल में जो कुछ होता था, कह डालते थे छिपाते कुछ नहीं थे। जीवन में यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसा के परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नहीं लिख सकता।

आत्मकथा के अतिरिक्त संस्मरण लिखने में भी वे कुशल थे। 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' आदि इस प्रकार की कई पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं; परन्तु सबसे अधिक सफलता उन्हें अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के संस्मरण लिखने में मिली है। जिस प्रकार उन्होंने अपना विश्लेषण करते समय सत्य को नहीं छोड़ा उसी प्रकार दूसरों के बारे में लिखते समय उन्होंने अहिंसा को अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्य में जहाँ उनकी पारदर्शिनी दृष्टि का चमत्कार है वहां वह मानव के सहज सौन्दर्य-सहानुभूति से भी आप्लावित है। जब कभी उन्होंने किसी के बारे में लिखने के लिये कलम उठाई है, अपनी सरल, सुबोध और सुगठित भाषा में उस वर्ण्य व्यक्ति का मार्मिक चित्र उतार कर रख दिया है। एक तो अपने जीवन के प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टि-कोण (सत्य) के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहार के इतने अधिक व्यक्तियों के सम्पर्क में आने के तथा मानवता (अहिंसा) में अपनी आस्था के कारण उनकी परख बड़ी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वतः ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ में पं० जवाहरलाल नेहरू के लिए उन्होंने जो कुछ लिखा था वह थोड़े से शब्दों में एक अपूर्व चित्र है—"बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेम में उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहां उनमें एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहां एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। वह स्फटिक मणि की भांति पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।"

दक्षिण अफ्रीका के श्री थम्बी नायडू का चित्र देखिए—"उनकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी। नवीन प्रश्नों को वे बड़ी फुर्ती के साथ समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी आश्चर्यजनक थी। भारत कभी नहीं आये थे, पर फिर भी उनका उसपर अगाध प्रेम था। स्वदेशा-भिमान उनकी नस-नस में भरा हुआ था। उनकी दृढ़ता चेहरे पर ही चित्रित थी। उनका शरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था। मेहनत से कभी थकते ही न थे। कुर्सी पर बैठकर नेतापन करना हो, तो उस पद की भी शोभा बढ़ादें, पर साथ ही हरकारे का काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीति से वे कर सकते थे। सिर पर बोझा उठाकर बाजार से निकलने में थम्बी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनत के समय न रात देखते, न दिन। कौम के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने के लिए हर किसी के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे।"

पर इन शब्द-चित्रों से कोई यह न समझले कि गांधीजी विशेषणों का ही प्रयोग करना जानते थे। वैसे वे जब विशेषणों का प्रयोग करते थे तो दिल खोल कर करते थे; परन्तु गुणों के साथ किसी व्यक्ति की दुर्बलता भी उनसे छिपी न रहती थी और अवसर आने पर वे उसी स्पष्टता से उसे भी प्रकट कर देते थे। सत्य का पुजारी व्यक्तित्व का अधूरा चित्रण कर ही नहीं सकता। ऊपर जिन थम्बी नायडू का शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हीं के बारे में उसी चित्र में गांधीजी ने आगे लिखा है—"अगर थम्बी नायडू हद से ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता, तो आज वह वीर पुरुष ट्रांसवाल में काछलिया की अनुपस्थिति में आसानी से कौम का नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रांसवाल के युद्ध के अन्त तक उनके क्रोध का कोई विपरीत परि-णाम नहीं हुआ था, बल्कि तब-तक उनके अमूल्य गुण जवाहिरों के समान चमक रहे थे, पर बाद में मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होंने उनके गुणों को छिपा दिया।"

सरोजिनी नायडू का चित्र उन्होंने एक ही वाक्य में उतार दिया है—"सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती हैं, मगर सच्ची संस्कृति की कीमत देकर।"

वस्तुतः किसी भी व्यक्ति का ठीक-ठीक विश्लेषण करने में उन्हें अद्भुत कुशलता प्राप्त थी। कम-से-कम और नपे-तुले सार्थक शब्दों में वर्ण्य व्यक्ति के अन्दर और बाहर को कागज पर उतार कर रख देते थे—

"सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए लोकमान्य समुद्र की तरह। गोखले गङ्गा की तरह। उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल है, समुद्र में डूबने का भय रहता है पर गङ्गा की गोदी में खेल सकते हैं, उसमें डोंगी पर चढ़कर तैर सकते हैं।"

लोकमान्य तिलक से उनके मतभेद की बात सब जानते हैं। उनके जीवन-काल में और मृत्यु के बाद गांधीजी ने उन मत-भेदों को कभी कम करके बताने या भुलाने की चेष्टा नहीं की, पर इसी कारण वे लोकमान्य का सही मूल्यांकन करने में नहीं झिझके। उनकी मृत्यु पर उन्होंने लिखा—

"लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक अब संसार में नहीं हैं। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे संसार से उठ गए। हम लोगों के समय में ऐसा दूसरा कोई नहीं, जिसका जनता पर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारों देशवासियों की उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरशः सच है कि वे जनता के आराध्य देव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारों आदमियों के लिए नियम और कानून-से थे। पुरुषों में पुरुष-सिंह संसार से उठ गया। केशरी की घोर गर्जना विलीन हो गई।"

अनुभूति की तीव्रता और वास्तविकता का और भी सुन्दर चित्रण उनके संस्मरणों में हुआ है। घटनाओं और वार्तालाप के द्वारा उन्होंने वर्ण्य व्यक्ति की बाहरी और आंतरिक सुन्दरता—कुरूपता की रेखाओं को इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाक के साथ-साथ व्यक्ति का सम्पूर्ण चित्र हृदय पर पत्थर की लीक बन जाता है। कस्तूरबा गांधी, बालासुन्दरम्, देशबन्धुदास, घोषालबाबू तथा बासन्ती देवी आदि के संस्मरण इस दृष्टि से बहुत ही सुन्दर बने हैं।

'मैं घोषाल बाबू के पास गया। उन्होंने मुझे नीचे से ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और बोले—'मेरे पास कारकुन का काम है। करोगे?'

मैंने उत्तर दिया—'जरूर करूंगा। अपने बस-भर सबकुछ करने के लिए मैं आपके पास आया हूं।"

नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसी को कहते हैं।'

'कुछ स्वयंसेवक उनके पास खड़े थे। उनकी ओर मुखातिब होकर कहा—'देखते हो इस नवयुवक ने क्या कहा?"

"फिर मेरी ओर देखकर कहा—'तो लो यह चिट्ठियों का ढेर है। देखते हो न सैकड़ों आदमी मुझसे मिलने आया करते हैं। अब मैं उनसे मिलूं, या जो लोग फालतू चिट्ठियां लिखा करते हैं, उन्हें उत्तर दूं? इनमें बहुतेरी तो फिजूल होंगी, पर तुम सबको पढ़ जाना। जिनकी पहुंच लिखना जरूरी हो उनकी पहुंच लिख देना और जिनको उत्तर के लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।'

"उनके इस विश्वास से मुझे बड़ी खुशी हुई। श्री घोषाल मुझे पहचानते न थे। मेरा इतिहास जानने के बाद तो कारकुन का काम देने में उन्हें जरा शर्म मालूम हुई, पर मैंने उन्हें निश्चिंत कर दिया—'कहां मैं और कहां आप! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अहसान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेस में काम करना है।'

घोषालबाबू बोले—"सच पूछो तो यही 'सच्ची मनोवृत्ति है, परन्तु आजकल के नवयुवक ऐसा नहीं मानते, पर मैं तो कांग्रेस को उसके जन्म से जानता हूं। उसकी स्थापना करने में मि० ह्यूम के साथ मेरा भी हाथ था।'

"हम दोनों में खासा सम्बन्ध हो गया। दोपहर के खाने के समय वह मुझे साथ रखते। घोषालबाबू के बटन भी 'बैरा' लगाता था। यह देखकर 'बैरा' का काम

खुद मैंने लिया। मुझे वह अच्छा लगता। बड़े-बूढ़ों की ओर मेरा बड़ा आदर रहता था। जब वे मेरे मनोभावों से परिचित हो गये तब अपनी निजी सेवा का सारा काम मुझे करने देते थे। बटन लगवाते हुए मुंह पिचकाकर मुझसे कहते—'देखो न, कांग्रेस के सेवक को बटन लगाने तक की फुरसत नहीं मिलती; क्योंकि उस समय भी वे काम में लगे रहते हैं।' इस भोलेपन पर मुझे मन में हंसी तो आई, परन्तु ऐसी सेवा के लिए मन में अरुचि बिल्कुल न हुई।"

वासन्ती देवी का, देशबन्धु की मृत्यु के बाद, जो चित्र गांधीजी ने खींचा है, वह एक साथ मानवीय, करुण और यथार्थ है—

"वैधव्य के बाद पहली मुलाकात उनके दामाद के घर हुई। उनके आसपास बहुतेरी बहनें बैठीं थीं। पूर्वाश्रम में तो जब मैं उनके कमरे में जाता तो खुद वही सामने आतीं और मुझे बुलातीं। वैधव्य में मुझे क्या बुलातीं? पुतली की तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनों में से मुझे उन्हें पहचानना था। एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा। मांग में सिन्दूर, ललाट पर कुंकुम, मुंह में पान, हाथ में चूड़ियाँ और साड़ी पर लैस, हंस-मुख चेहरा—इनमें से एक भी चिन्ह मैं न देखूं, तो वासन्ती देवी को किस तरह पहचानूं? जहां मैंने अनुमान किया था कि वे होंगी वहां जाकर बैठ गया और गौर से मुखमुद्रा देखी। देखना असह्य हो गया। छाती को पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा। उनके मुख पर सदा शोभित हास्य आज कहां था? मैंने उन्हें सान्त्वना देने, रिझाने और बातचीत कराने की अनेक कोशिशें की। बहुत समय के बाद मुझे कुछ सफलता मिली। देवी जरा हंसीं। मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला—'आप रो नहीं सकतीं। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बड़ी लड़की) को बड़ी मुश्किल से चुपकी रक्खा है। बेबी (छोटी लड़की) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्र वधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयास से शान्त हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।'

"वीरांगना ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—'मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।'

"मैं इसका मर्म समझा, मुझे संतोष हुआ। रोने से दुःख का भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहन को तो भार हल्का नहीं करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे? अब मैं कैसे कह सकता हूं—'लो चलो, हम भाई-बहन पेट भर रोलें और दुःख कम कर लें।'

"वासन्ती देवी ने अबतक किसी के देखते आंसू की एक बूंद तक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नहीं रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानों भारी बीमारी से उठी हों। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटर में तो बैठीं; पर बोलने क्यों लगी। मैंने कितनी ही बातें चलाई—वे सुनती रहीं, पर खुद उसमें बरायेनाम शरीक हुई। हवाखोरी की तो, पर पछताई। सारी रात उन्हें नींद न आई। 'जो बात मेरे पति को अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनी ने की। यह क्या शोक है।' ऐसे विचारों में रात बीत गई।

"वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेल के कड़ाह में भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले उसके दुःख की कल्पना करके कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःख को तुम संभाल कर रखना। वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गए हैं और उतरेंगे। वासन्ती देवी की जय हो!"

भावना की अतिरंजना ने इस करुण चित्र को कितना सशक्त बना दिया है; लेकिन जहां उन्होंने अपने युग के महापुरुषों पर लिखा, वहां लुटारु, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियों को भी नहीं छोड़ा है। ये कुछ बानगी के चित्र हैं। ये चित्र किसी उद्घोषित साहित्यिक के द्वारा नहीं लिखे गए, परन्तु एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गए हैं जिसका समस्त जीवन 'जीने की कला' और सत्य के प्रयोग करने में बीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना सीख लिया था और जो सबसे पहले और सबसे पीछे मात्र मनुष्य था। फिर ऐसा मनुष्य ही मनुष्य को नहीं पहचानेगा तो कौन पहचानेगा?

अपरिग्रह : समाज-रचना का एक आधार

हरिभाऊ उपाध्याय

हम सब लोग जानते है कि गांधीजी अपरिग्रह के हामी थे और मानते थे कि अपरिग्रह के आधार पर ही नवीन समाज रचना की जा सकती है। आज की समाज रचना शोषण के आधार पर हुई है, अर्थात् श्रमिका को कम-से-कम पारिश्रमिक देकर अधिक से अधिक मुनाफा करना आज के समाज मे अनुचित और गैर-कानूनी नही समझा जाता। यही शोषण है। इसके विपरीत गाधीजी मानते थे कि श्रमिक को अपने श्रम का पूरा फायदा मिलना चाहिए। उसका फायदा उठानेवाली बीच की कोई एजसी नही रहनी चाहिए। यह सामाजिक न्याय हुआ। इसपर समाज खडा रह सकता है, परन्तु समाज आगे बढ सकता है अपरिग्रह के बल पर। अर्थात मनुष्य अधिक धन या सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकारी हो, न्यायानुकूल उसे अधिक सम्पत्ति प्राप्त हुई हो, तो भी वह खुद अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति का या वस्तुओ का सग्रह अपने लिए न करे। यह त्यागवृत्ति वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति में लाना चाहते थे और इसलिए परिग्रह करने और अपरिग्रह का भग करने वालो को उन्होंने चोर कहा है।

उनकी इस परिभाषा के अनुसार इसमें से बहुत से चोर सिद्ध होगे और जिसके पास अधिक सम्पत्ति होगी या मिल्कियत होगी, वही बडा चोर होगा। फिर भी इन सब चोरो के साथ गाधीजी का व्यवहार स्नेह का, ममता का और सहृदयता का रहता था। आजतक कभी किसी धनी-मानी, राजा-रईस को यह अनुभव नही हुआ कि गाधीजी उनसे घृणा करते है, उनका तिरस्कार करते है, उनका अपमान करना चाहते हैं, लोगो की दृष्टि में उन्हे गिराना चाहते है, बल्कि इसके विपरीत जब कभी इनमें से किसी ने आर्थिक या किसी दूसरी तरह की सहायता दी है गाधीजी ने मुक्तकठ से उसकी सराहना की है, उसकी कदर की है और उनको मन से धन्यवाद दिया है। शोषण की प्रणाली और शोषण-वृत्ति पर तो वे जोर का प्रहार करते थे, परन्तु शोषक के प्रति वे स्वय बहुत सहृदय रहते थे। एक रोज बबई में एक धनी मित्र ने कहा, "हरिभाऊजी, अब हमको गाधीजी की बहुत याद आती है। हम जानते है कि गाधीजी पूजीवाद के घोर शत्रु है, परन्तु हम पूजीवालो को पास बुलाते थे, छाती से लगाते थे, हमारे घरो में ठहरते थे, हमारे दु खो को अनुभव करते थे, हर कठिनाई में हमें रास्ता बताते थे। गाधीजी से मेरा बहुत बरसो तक सम्बन्ध रहा। कई बार मै उनसे मिला। मैंने कभी खादी नही पहनी मगर गाधीजी ने कभी इशारे से भी नही दर्शाया कि मै खादी पहनू। इतने सहनशील थे वे। यही कारण था कि हम भी उनको इतना मानते थे। अब तो हमको न केवल तरह-तरह से नोचा ही जाता है, बल्कि अपमानित भी किया जाता है और कृतज्ञता का तो मानो लोप ही हो गया हो।" एक और मित्र ने एक बार कहा था, "पहले तो दान देनेवालो के प्रति कृतज्ञता दर्शाई जाती थी, लेकिन अब तो ऐसा जमाना आगया है कि दान भी लिया जाता है और ऊपर से मार भी पडती है, गालिया भी दी जाती है।"

आज गांधीजी का जन्म दिन है। हमें इन प्रसगो का स्मरण करके आत्मशोधन करना है। ससार मे धन एक महान् शक्ति है। भगवान् का काम भी लक्ष्मीजी के बिना नही चलता। यह सही है कि लक्ष्मीजी को भगवान् के चरणो में रहना पडता है। इस तरह धन को सेवा और जन-कल्याण के सामने विनीत होकर रहने में ही शोभा और सार्थकता है, परन्तु उसका अपमान और तिरस्कार तो किसी दशा में भी नही हो सकता। विनोबाजी के शब्दों में हम 'कांचन-मोह-मुक्ति' का प्रयोग या साधना अवश्य करें; परन्तु धन का तिरस्कार और धनिको का अपमान कदापि न करें। धन का तिरस्कार अज्ञानता का सूचक है और धनिकों का अपमान असभ्यता का। गाधी-भक्त को दोनो से बचकर अपरिग्रह की साधना करनी चाहिए, अर्थात् अपना जीवन-निर्वाह जहा तक हो सके स्वश्रम से करना चाहिए और उससे अधिक जो कुछ धन-सम्पत्ति हमें मिले, उसका अपने को ट्रस्टी समझकर लोक-सेवा और देश-सेवा में विनियोग करना चाहिए।

गुरुदेव की दृष्टि में महात्मा गान्धी

श्री रामपूजन तिवारी

सन् १९३८ में गांधीजी के सम्बन्ध में गुरुदेव ने एक जगह लिखा था, "एक बार मैं उनके पास ही था जब राजनीति में भाग लेनेवाले एक विशिष्ट व्यक्ति, जिन्हें कांग्रेस पार्टी ने अलग कर दिया था, उनसे मिलने आए। दूसरा कोई कांग्रेस का नेता होता तो उनके प्रति अवज्ञा का भाव दिखलाता; लेकिन गांधीजी तो शालीनता की मूर्ति थे। उन्होंने धैर्यपूर्वक बड़ी सहानुभूति से उनकी बातें सुनीं तथा कतई ऐसा नहीं होने दिया कि वह अपने को हीन समझें। मैंने अपने आप से कहा कि यह व्यक्ति महान् है, क्योंकि यह अपनी पार्टी से, जिसका कि वह सदस्य है, बड़ा है। इतना ही नहीं, बल्कि उस मत से भी बड़ा है जिसका कि वह अनुसरण करता है।"

गुरुदेव और गांधीजी विश्व की इन दो महान् विभूतियों को जन्म देकर भारतवर्ष अपने को धन्य मानता है। दोनों भिन्न रुचि के थे, दोनों के संस्कार अलग-अलग थे; किन्तु दोनों शत-प्रतिशत भारतीय थे। दोनों राष्ट्रवादी थे; लेकिन उनके राष्ट्र की परिधि भू-खंड के एक छोटे-से टुकड़े तक ही सीमित नहीं थी। उनकी राष्ट्रवादिता संकीर्ण नहीं थी। दोनों ऐसे काल में पैदा हुए जब भारतवर्ष में एक नई चेतना का उदय हो रहा था। दोनों ने अपने-अपने ढंग से भारतीय तथा संसार की समस्याओं पर विचार किया और सब समय वह एकमत नहीं रहे। असहयोग-आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साधनों को लेकर दोनों में गहरा मतभेद हो गया था, लेकिन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध कितना मधुर, कितना स्नेहपूर्ण था, इसका अनुमान एक छोटी-सी घटना से लग जाता है। सन् १९३२ की ९ सितम्बर को यरवदा जेल में साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर गान्धीजी आमरण अनशन करनेवाले थे। उस अवसर पर गान्धीजी ने गुरुदेव को एक पत्र लिखा था, "प्रिय गुरुदेव, मंगलवार का प्रातःकाल है। तीन बजे हैं। दोपहर से मेरी अग्नि-परीक्षा शुरू होनेवाली है। अगर आप अपना आशीर्वाद भेज सकें तो मुझे बड़ी खुशी होगी। आप बराबर मेरे सच्चे मित्र रहे हैं; क्योंकि आप स्पष्ट-वक्ता मित्रों में से है और अपने विचारों को खुले तौर पर व्यक्त कर देते है।....अगर आपका हृदय मेरे इस काम को पसन्द करता हो तो मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। इससे मुझे बल मिलेगा। ...स्नेह।" इस पत्र के छोड़ने के पहले ही उन्हें गुरुदेव का तार मिला, "भारत की एकता तथा उसकी सामाजिक अक्षुण्णता को बनाए रखने के लिए एक अमूल्य जीवन का बलिदान श्रेयस्कर है।....हमारे दुःख से भरे हुए हृदय आपके इस महान् प्रायश्चित को श्रद्धा और स्नेह से देखते रहेंगे।" दोनों कितना एक-दूसरे के निकट थे। गुरुदेव अपने को रोक नहीं सके और २४ सितम्बर को गान्धीजी को देखने के लिये पूना पहुंच गए। वे यरवदा जेल में गान्धीजी के पास ही थे जब यह खबर पहुंची कि गान्धीजी की बात मान ली गई है। गुरुदेव के सामने ही गान्धीजी ने अनशन-भंग किया। गुरुदेव ने उस समय की अपनी पूना-यात्रा का वर्णन स्वयं किया है। जेल के भीतर जाने और गान्धीजी से मिलने का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—"बांई ओर सीढ़ी से उठकर, दरवाजा पार कर दीवार से घिरे हुए एक आंगन में मैंने प्रवेश किया। दो कतारों में बने हुए घर दूर तक चले गए हैं। आंगन में एक छोटे आम के पेड़ की घनी छाया में महात्माजी शय्याशायी हैं। दोनों हाथों से महात्माजी ने मुझे अपनी छाती के पास खींच लिया और देर तक वैसे ही रखा। बोले, "कितनी खुशी हुई।"

गुरुदेव ने गांधीजी के सम्बन्ध में जहां कहीं भी

लिखा है, सभी स्थलो पर गाधीजी की उस शक्ति का जिक्र किया है जिसने सारे देश को एक नई प्रेरणा दी। उन्होंने गाधीजी में पूर्ण मानव के दर्शन किए, ऐसे मानव के, जिसे किसी एक विशेष परिधि में नही, बाधा जा सकता। उन्हे केवल राजनैतिक नेता के रूप में देखना उतना ही गलत है जितना कि अन्य क्षेत्रो में सीमित करना। सन् १९३१ ई० में गाधीजी के जन्म दिवस पर शान्तिनिकेतन में आश्रमवासियो के बीच बोलते हुए रवीन्द्रनाथ ने कहा था, मान लें कि हम लोगो की राष्ट्रीय साधना सफल हो चुकी है और बाहर से देखने पर और कुछ करने को बाकी नही रह गया है तथा भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है—तो भी आज के दिन के इतिहास का कौन-सा आत्म-प्रकाश धूलि के आकर्षण से अपने को बचाकर सिर ऊचा उठाये रहेगा, यही विशेष रूप से देखने योग्य है। इस दृष्टि से जब देखने जाता हू तब समझता हू कि आज के उत्सव में जिनको लेकर हम लोग आनन्द मना रहे है उनका स्थान कहा है तथा उनकी विशिष्टता किस जगह है। सिर्फ राजनैतिक प्रयोजनसिद्धि के हिसाब से हम लोग उनका मूल्य नही आकेंगे, किन्तु जिस दृढ शक्ति के बल से उन्होने आज सम्पूर्ण भारतवर्ष को प्रबल रूप से सचेत किया है उसी शक्ति की महिमा की उपलब्धि हम लोग करेंगे।" और गुरुदेव ने उस शक्ति के सम्बन्ध में भी एक दूसरे स्थान पर कहा है, 'वह शक्ति आसुरी शक्ति नही है, दूसरो पर विजय प्राप्त कर, दूसरो को नीचा दिखाकर वह गौरवशालिनी नही होती। युद्ध लिप्सा से परिचालित होनेवाले सेना-नायको की अहम्मन्यता उसमें नहीं है।' गुरुदेव ने उस शक्ति को स्पष्ट करते हुए बतलाया है " महात्माजी यदि वीर पुरुष होते अथवा लडाई करते तो हम लोग आज इस प्रकार से उन्हें स्मरण नहीं करते, क्योकि लडाई करनेवाले तो अनेक वीर पुरुष तथा बडे-बडे सेनापतियों ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है। मनुष्य का युद्ध धर्म युद्ध है, नैतिक युद्ध है। धर्म-युद्ध के भीतर भी निष्ठुरता है, यह हम लोगो ने गीता और महाभारत में पाया है। इसके भीतर बाहुबल का भी स्थान है या नही, इसे लेकर शास्त्रीय तर्क नही उठाऊगा। लेकिन यह अनुशासन कि मर जाऊगा, लेकिन मारूगा नही और यही करके विजयी होऊगा— एक बहुत बडी बात है, एक महान् सदेश है। यह किसी प्रकार की चतुराई अथवा कार्योद्धार के लिए दी हुई दुनियवी सीख नही है। धर्मयुद्ध से बाहर जाकर जीतने के लिये नही है, बल्कि हारकर भी जय करने के लिए है। अधर्म-युद्ध में मरना ही मरना है। धर्मयुद्ध में मरने के बाद भी कुछ बच जाता है। हार को पार कर जीत है और मृत्यु को पार कर अमृत। जिन्होने इस बात की उपलब्धि कर अपने जीवन में इसे उतारा है उनकी बात सुनने के लिये हम लोग बाध्य है।"

'गाधी महाराज' कविता में रवीन्द्रनाथ ने गाधी जी की प्रेरणा से उद्बुद्ध राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया है और गाधीजी के नेतृत्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया है।

गुरुदेव सकीर्ण राष्ट्रीयता के विरोधी थे। अतएव असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में उन्होने गाधी-जी को सचेत करना चाहा था और उनसे मतभेद प्रकट किया था। गान्धीजी की राष्ट्रीयता इस सकीर्णता के दलदल मे कभी नही फसी और उन्होने अपने सामने सम्पूर्ण मानव जाति को रखा। उन्होने तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रखकर राष्ट्रीयता पर जोर दिया और उस आन्दोलन को गुलामी के पाश में बधी हुई मनुष्य-जाति की मुक्ति का एक अश मात्र माना। गुरुदेव ने भी भारतवर्ष की स्वतन्त्रता को इसी दृष्टि से देखा था, लेकिन उन्हें भय था कि हमारे देशवासी गान्धीजी के इस राष्ट्रीय आन्दोलन का सकीर्ण अर्थ न ले लें और अपने को उग्र राष्ट्रीयता के दलदल में न फसा दें। इसके सम्बन्ध में गुरुदेव ने स्वय लिखा है— 'कुछ महीनो के यूरोप-प्रवास के बाद जब मैं यहा लौटा तो मैंने पाया कि सारा देश तत्काल ही स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा से फडक उठा है। गाधीजी ने एक ही वर्ष में स्वतन्त्रता दिलाने का वादा किया था। जिन तरीको से ऐसा वे करना चाहते थे वे

अपने आप में संकीर्ण थे और वे बाह्य उपकरण मात्र थे। इतने बड़े महान् व्यक्ति के आश्वासन ने उन लोगों में भी आशा का संचार कर दिया था जो साधारणतया सांसारिक नफे-नुकसान के मामले में स्थिरचित रहते हैं। वे लोग उत्तेजित होकर मुझसे बहस करते कि विशेष मामले में तर्क का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि आध्यात्मिक शक्ति में अद्‌भुत क्षमता होती है और उससे भविष्य में होनेवाली बात को आश्चर्यजनक ढंग से जाना जा सकता है। इसने मेरे मन में गांधीजी के उस रास्ते को चुनने की बुद्धिमता पर सन्देह पैदा कर दिया—एक महान् उद्देश्य की प्राप्ति का यह रास्ता जो युगों के राजनैतिक जीवन की विफलता के कारण हमारे चरित्र में आई हुई कमजोरी को सन्तुष्ट मात्र करता था। ....अतएव यहांके लोगों के अन्धविश्वास से फायदा उठाने के लिए मैंने गांधीजी को दोषी ठहराया। इससे शीघ्रातिशीघ्र फल की आशा की जा सकती थी, लेकिन इससे तो नींव ही कमजोर हो जाने का भय था और इस प्रकार से देश के कर्णधार के रूप में मैंने गांधीजी को समझना शुरू किया; लेकिन मेरे सौभाग्य से वह यहीं समाप्त नहीं हो गया।" गुरुदेव का यह अध्ययन कहां जाकर पहुंचा वह उन्हीं के शब्दों में उद्धृत किया जाता है—"भारतवर्ष में और वैसे तो सभी देशों में ऐसे देशभक्त हैं जिन्होंने अपने देश के लिये उतना ही बलिदान किया है जितना कि गांधीजी ने और कुछने तो उनसे भी अधिक यातनाएं सहीं। धार्मिक क्षेत्र में हमारे देश में ऐसे साधु हैं जिनके धार्मिक अनुष्ठानों के कष्टों की तुलना में गांधीजी का जीवन आराम का है। लेकिन वे देशभक्त केवल देशभक्त मात्र हैं, उससे अधिक कुछ नहीं और ये साधु केवल आनुष्ठानिक कसरत करने वाले हैं और ये दोनों अपने गुणों में ही सीमित रह गए हैं; लेकिन यह आदमी (गांधीजी) अपने उन सभी बड़े गुणों से भी बड़ा है।"

अपरिग्रहवाद

श्री रघुवीरशरण दिवाकर

अपरिग्रह (अ+परिग्रह) 'अहिंसा' की तरह एक नकारात्मक शब्द है, जिसका अर्थ 'परिग्रह का अनस्तित्व' है और इस अपेक्षा से अपरिग्रह स्वतः व अनिवार्यतः वहां है जहां परिग्रह नहीं है। इस तरह 'अपरिग्रह' का भाव स्वतन्त्र व निरपेक्ष नहीं है, इसको व इसके विविध रूपों को जानने के लिए पहले यह जानना अनिवार्य है कि परिग्रह क्या है? परिग्रह को समझना ही अपरिग्रह को समझना है और यही अपरिग्रहवाद को समझने की कुंजी है।

परिग्रह क्या है?

सूक्ष्म तात्विक दृष्टि से परिग्रह बाह्य जगत् का पदार्थ नहीं, आभ्यंतर जगत् का एक तत्व है। वह एक भाव है; पर शुद्ध नहीं, मलिन भाव है। उसे मन का विकार भी कह सकते हैं। वही मूर्च्छा है, ममत्व है। उसे आत्म-स्थित विवेक पर आच्छादित अन्धकार भी कहा जा सकता है। वही आत्म-तन्द्रा है, आत्म-निद्रा है। परिग्रह की 'मूर्च्छा परिग्रहः' परिभाषा का अर्थ भी यही है। इस तरह भीतरी व्यक्तित्व के या मन-मस्तिष्क के स्वास्थ्य या संतुलन का हनन करनेवाले जितने भी दुर्गुण या विकार-भाव हैं, वे सभी परिग्रह-रूप हैं, मानस-जगत् का सारा मैल परिग्रह है। यों भी कह सकते हैं कि आत्मा की निराकुलता, शान्ति व सुखानुभूति को नष्ट करनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, मोह, अहंकार आदि सभी कषाय, सभी लेश्याएं, सभी असद्-वृत्तियां परिग्रह ही हैं।

पर परिग्रह का यह सूक्ष्म तात्विक विवेचन हिंसा के विवेचन से अभिन्न ही है। संभवतः असत्य का भी ऐसा ही निरूपण किया जा सकता है। आखिर हिंसा किसी की जान लेना या किसी को मारना-पीटना ही नहीं है। हिंसा के अंतर्गत आत्मा का सारा ही मैल या

विकार आजाता है, क्योंकि उससे आत्म हनन होता है, व्यक्तित्व का ह्रास होता है, *न्यूनाधिक मात्रा में* तथा किसी-न किसी रूप में 'पर' का ही नही 'स्व' का भी उत्पीडन होता है। इसी तरह असत्य भी वह सब कुछ है जो आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप के भान या स्वानुभव से विमुख या विचलित करे, और इस अपेक्षा से सभी दुर्विचार व मनोविकार असत्य ही है। ऐसी स्थिति में, परिग्रह को पृथक् रूप में देखने-समझने के लिए और उस अपेक्षा से अपरिग्रह या अपरिग्रहवाद की विशिष्ट मीमांसा करने के लिए यह आवश्यक है कि परिग्रह को, यदि पदार्थ के पीछे परिग्रह का भाव-पक्ष विद्यमान है तो पदार्थ-रूप में ही मान्य किया जाय। पृथक्त्व का यह आशय नही है, न हो ही सकता है, कि परिग्रह के हिंसा रूप को अमान्य ठहराया जाय। प्रत्येक अवस्था में परिग्रह हिंसात्मक है, अथवा जहा परिग्रह है वहा अनिवार्य रूप से हिंसा भी है। यहा तो यही अभिप्रेत है कि तत्व-चिंतन या तात्विक विश्लेषण की दृष्टि से अथवा सामाजिक एव व्यावहारिक दृष्टि *बिन्दु लेकर सुस्पष्ट रूप से विचारणा व गवेषणा कर* सकने की दृष्टि से परिग्रह और हिंसा का घुटाला न हो जाय, दोनों टकरायें नही वरन् अपनी-अपनी जगह रहकर एक-दूसरे *का स्पष्टीकरण व विशदीकरण* करते रहें। नीतिविद् परिग्रह को हिंसा से पृथक एव पाप, हिंसा के ही सदृश एव मूल पाप तथा इसी अपेक्षा से अपरिग्रह को अहिंसा की तरह ही एक अलग मूलव्रत मानता आया है। इसलिए यह पृथक्करण सर्वानुमोदित ही है। अपरिग्रह को मूलव्रत न मान कर अहिंसाव्रत का ही अग या अनुव्रत मान्य किया जाना तब बात दूसरी थी। पर यह पृथक्करण तभी निभ सकता है जब *परिग्रह को भावात्मक ही नही*, पदार्थात्मक भी माना जाय, और इस तरह परिग्रह को इतना व्यापक होने से रोका जाय कि वह स्वय हिंसा या हिंसा का दूसरी सज्ञा ही बनकर न रह जाय। इधर यह *नियन्त्रण न किया जाय तो उधर फिर अपरिग्रह को* अहिंसा बनकर बैठ जाने से कैसे रोका जा सकेगा और तब तो विचार जगत् में, तत्व-चिंतन व आत्म निरीक्षण की दुनिया में अराजकता-सी आ जायगी।

यहा हम इस परिभाषा पर आते हैं कि जो पदार्थ *आत्मा मे मूर्च्छा या ममत्व भाव लाता है, अथवा* जिस पदार्थ के निमित्त से मन, मस्तिष्क या आत्मा में विकार-भाव प्रवेश करते हैं वह परिग्रह है। इस मन्तव्य के अनुसार परिग्रह न बाह्य पदार्थ ही है और न मूर्च्छा ममत्व-भाव ही है, बल्कि वह मूर्च्छा-ममत्व भाव या विकारभाव है जो व्यक्ति बाह्य पदार्थ या पदार्थों के प्रति रखता है। इस तरह इस मन्तव्य के अन्तर्गत 'बाह्य परिग्रह' एव 'अतरग परिग्रह' परिग्रह *के भेद नही हैं, अग या अवयव हैं।*

सामाजिक दृष्टि

पर परिग्रह की यह परिभाषा भी एकागी व अपूर्ण ही है, क्योंकि परिग्रह जिस बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखता है *व्यापक रूप से उसकी अपेक्षा यहा नही है।* दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वैयक्तिक दृष्टि से ही यहा काम लिया गया है, सामाजिक दृष्टि से नही और इसीलिए जो सत्य यहा है, वह अधूरा है।

निःसदेह व्यक्तिवाद एक सत्य है, चिर सत्य है। किसी भी युग में व किसी भी परिस्थिति में उसकी *वास्तविकता को उपेक्षित नही किया जा सकता।* पर समाज भी तो व्यक्ति का ही एक प्रलम्बित रूप है, वह व्यक्ति से पृथक नही है। व्यक्ति समाज का घटक (इकाई) है। वही समाज का जन्मदाता-विधाता है। अनेक व्यक्ति मिलकर अपने अपने व्यक्तित्व का कुछ अश एक जगह सग्रहीत करके ही एक वृहद् समाज-व्यक्ति को जन्म देते हैं। यह एक आदान-प्रदान-मय व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपनी वैयक्तिक स्वतत्रता का कुछ अश समाज के हाथो में सौंपता है और मूल्य-स्वरूप अपनी शेष स्वतन्त्रता में किसी दूसरे की ओर से हस्तक्षेप न होने का आश्वासन व सरक्षण पाता है। वास्तव में इस पारस्परिक पराधीनता का ध्येय वैयक्तिक स्वतत्रता ही है। *समाज निर्माण* में इस सत्य को हम समझें तो समष्टिवादी विचार-धारा का हम व्यष्टि का विरोधी नही, सहायक व

संरक्षक ही पायेंगे और तब हम यह समझ सकेंगे कि अपरिग्रह की वैयक्तिक विचारधारा उनके सामाजिक संस्करण की छत्रछाया में ही सुरक्षित रह सकती है। व्यक्ति में अपरिग्रह की भावना न हो तो समाज में अपरिग्रह की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती; पर समाज की व्यवस्था अपरिग्रहवादी सिद्धांतों पर स्थित न हो तो भी व्यक्ति की अपरिग्रहव्रत की साधना होना सामान्यतः असंभव ही है। समाज की व्यवस्था, राज्य का संचालन, उत्पादन व वितरण के आधारभूत सिद्धांत या नीति-नियम आदि अपरिग्रहात्मक भावना व विचारधारा पर निर्धारित न हों, परिग्रहवाद, पूंजीवाद, संग्रहवाद तथा तज्जन्य अर्थ-वैषम्य का चारों ओर दौर-दौरा हो तथा उसके परिणाम-स्वरूप शोषण व पर-अधिकार-हरण का बाजार गर्म हो, तब हम परिग्रहवाद से बचकर नहीं रह सकते। मोहल्ले या पास-पड़ोस में आग लगी हो तो उस आग को बुझाए बिना अपने घर को भी भस्मसात् होने से कैसे बचा सकते हैं? जिस हवा में सांस लें, वह जहरीली हो तो वहां कैसे जीवित रह सकते हैं? इस तरह स्वयं अपरिग्रही बनने की समस्या में समाज-व्यवस्था को अपरिग्रह के आधार पर स्थित करने की समस्या भी आ जाती है. यह एक वस्तुस्थिति है, और इस अपेक्षा से, व्यक्ति की दृष्टि से ही, नहीं, समष्टि की दृष्टि से भी, लघु व्यक्ति के दृष्टिकोण से ही नहीं, वृहद्-समाज-व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी परिग्रह के प्रश्न पर विचार करना अत्यावश्यक है। जबतक संकीर्ण वृत्त से निकल कर ऐसे व्यापक व विशाल दृष्टि-विस्तार के साथ न देखा जायगा. परिग्रह का वास्तविक स्वरूप सुस्पष्ट न होगा और न अपरिग्रहवाद के विराट् तत्व का साक्षात्कार ही हो सकेगा।

स्पष्टतः जब हम इस अपेक्षा से परिग्रह के प्रश्न पर विचार करेंगे तब जहां तक उसके भावपक्ष का सम्बंध है, हम देखेंगे कि वृहद् समाज-व्यक्ति के सारे मनोविकार परिग्रह ही हैं और इस तरह सामूहिक रूप से समाज—मानव-समाज—के लिए जो भी दुःखदायी विधि-विधान, नियम व कानून है, जो भी मानव-समुदाय के सुख व कल्याण का हनन करनेवाली व्यवस्थाएं व संस्थाएं हैं, जो भी शोषण व अधिकार-अपहरण की प्रवृत्तियां हैं, सभी परिग्रहमूलक हैं।

यहां हम सहज ही इस निष्कर्ष पर आते हैं कि वही पदार्थ परिग्रह नहीं है जो व्यक्ति के मन में विकार-भाव लाये, बल्कि वह पदार्थ भी परिग्रह ही है जिसके ग्रहण या संग्रह से शोषण अथवा दूसरों के न्यायोचित अधिकार का अपहरण हो, समाज में विषमता फैले, एक का अति-लाभ और दूसरे की हानि हो, या समाज में दुःख व अशांति व्याप्त हो। मनोविकार या मूर्च्छाभाव का जहां तक प्रश्न है, वह व्यापक दृष्टि से सामान्यतः यहां है ही। फिर, अहिंसा की ही तरह अपरिग्रह सदाशयता में ही नहीं है सतर्कता व विवेकपूर्ण यत्नाचार में भी है। अतः यदि मन में शोषण की दुर्भावना न भी दीखे, परिग्रह के भाव-पक्ष की अनुभूति का स्पष्ट अभाव अमान्य भी किया जाय, तो भी यत्नाचार के अभाव में परिग्रह है ही। सद्भावना या सदाशयता का बहाना, अथवा संग्रह के बीच जल में कमल की तरह अलिप्त होने या ममत्व-भाव-हीन होने का दावा, परिग्रह का परिग्रहत्व नहीं मिटा सकता, परिग्रह-पाप को अपरिग्रहव्रत में नहीं बदल सकता। प्रमाद, असावधानी, अविवेक, अयत्नाचार, मूढ़ता, ये सब यहां अपराध-मूलक हैं, परिग्रह-पाप-मूलक हैं।

परिग्रह की परिभाषा

अंतर्जगत् व बाह्य-जगत् दोनों की अपेक्षाओं से तथा वैयक्तिक व समाजिक दोनों दृष्टियों से संतुलित व सामूहिक रूप से विचार करने पर अब हम परिग्रह की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—जिस पदार्थ के निमित्त से व्यक्ति में मूर्च्छा-ममत्व-भाव या अन्य विकार-भाव आए, अथवा* उसका उपयोग, भोगोपयोग, ग्रहण या संग्रह सामूहिक दृष्टि से समाज में विषमता-

* यहा यह अभिप्रेत है कि इस परिभाषा में बताई गई दोनों शर्तों में से पदार्थ जो भी कोई एक शर्त पूरी करे या दोनों ही शर्तें पूरी करे हर हालत में वह पदार्थ परिग्रह ही है। —लेखक

पूर्ण व्यवस्था, शोषण पर अधिकार-अपहरण, अशान्ति, दुख, सघर्ष व विनाश की प्रवृत्तियो को जन्म दे अथवा यदि वे विद्यमान हो तो उन्हे अक्षुण्ण बनाए रखे या उन्हे प्रोत्साहित करे, वह पदार्थ परिग्रह है।

हर पदार्थ परिग्रह नही है

उक्त परिभाषा म सहज ही यह सकेत निहित है कि कोई भी पदार्थ प्रत्येक अवस्था या परिस्थिति में, अथवा उसके उपयोग, ग्रहण या सग्रह की हर स्थिति में, परिग्रह हो, *यह आवश्यक नही है।* उदाहरणार्थ जनमार्ग, पर्वत वन, नदी, जलाशय आदि सार्वजनिक स्थान, सहज ही हर किसी के उपयोग में आते है तथा साधारणत इन्हें लेकर मोह-ममत्व की भावना के लिए स्थान नहीं है, साथ ही पथिक या नागरिक के नाते न इनके उचित उपयोग से किसी का अधिकार छिनता है और न समाज में अव्यवस्था या विषमता फैलती है। अत: सामान्यत ये परिग्रह नही है। आकाश, वायु, सूर्य, नक्षत्र ये सभी प्रकृति के वरदान भी ऐसे ही पदार्थ है। सार्वजनिक सस्थाए भी इसी कोटि में आती है। राज्य-द्वारा कर-ग्रहण, जन-हित के कार्यों के लिए जन-सस्थाओ द्वारा अर्थ-सग्रह आदि में परिग्रह-भावना होने से तथा जन-हित का विरोध भी वहा न होने से गृहीत या सगृहीत धन-सपत्ति परिग्रह नही है। इसी तरह सार्वजनिक ट्रस्ट, दुखियो, पीडितो या शरणार्थियो की सहायता के लिए खोले गए कैम्प समाज-सेवियो या शहीदो के स्मारक आदि के लिए सचित निधि, इन्हे परिग्रह नहीं कहा जा सकता। वास्तव में जिस पदार्थ के प्रति विशेषरूप से अपनेपन की भावना व तज्जन्य मोह-ममत्व की अनुभूति न हो, अथवा विशेष रूप से परायेपन, उपेक्षा या विद्वेष की भावना भी न हो, उस पदार्थ को 'परिग्रह' की सज्ञा नही दी जा सकती। इस तरह हर पदार्थ परिग्रह नहीं है और जो पदार्थ परिग्रह नही है उसका उपयोग, ग्रहण या सग्रह परिग्रह-पाप नही है। यही कारण ह कि जिन महात्माओ ने अपरिग्रह पर विशेष रूप से जोर दिया है यहा तक कि उसे मूलव्रत भी माना है, उन्होंने भी पदार्थ-ग्रहण का सर्वथा निषेध नही किया है। उनके अपरिग्रह-व्रत की माग यही है कि व्यक्ति वही या उतना ही पदार्थ ग्रहण करे जिसको लेकर उसका मन मोह-ममत्व, राग-द्वेष, आदि के विकार-भावो से विक्षुब्ध या कलुषित न हो अथवा जो पदार्थ नितान्त 'आवश्यक' हो, और इस दृष्टि से गृहस्थ तो क्या महा-अपरिग्रही साधु या मुनि के पास भी ऐसा पदार्थ रह सकता है।

पर सार्वजनिक स्थान, कोष निधि ट्रस्ट, सस्था, आदि परिग्रहत्व के वृत्त से बाहर ही है, ऐसा नही है। इन्हे लेकर भी मोह-ममत्व की भावना हो सकती है। सकीर्ण राष्ट्रीयता व प्रान्तीयता आदि की भावना-ओ के अतर्गत राष्ट्र या देश तथा प्रान्त आदि परिग्रह ही ह। मदिर मस्जिद गिरजाघर आदि धर्मालय भी परिग्रह है, यदि उनकी आड में कोई स्वार्थ साधन होता है, अथवा यदि मानव-मात्र के लिए उनके द्वार न खोल कर वर्ग विशेष द्वारा अहकार-तुष्टि या अधर्म-भावना का आलम्बन उन्हे बना लिया गया है। इसी तरह ट्रस्ट, फण्ड, निधि, कोष आदि का भी उपयोग विशुद्ध सार्वजनिक दृष्टि से, पात्रता की अपेक्षा मे, पक्षपात, राग-द्वेष व प्रतिस्पर्धा-ईर्ष्या भाव से न किया जाए, उन्हे किसी भी तरह के दुस्वार्थ की पूर्ति का साधन न बनाया जाए, अथवा उनके सग्रह या सचय में अनुचित दबाव जोर-जबरदस्ती आदि की जाय, तो वे भी ऐसा उपयोग या सग्रह करनेवाले के लिए परिग्रह ही है। तात्पर्य यह कि जहा जिस पदार्थ से, चाहे वह पदार्थ सार्वजनिक ही क्यो न हो विशेष आर्थिक या अन्य निजी स्वार्थ सम्बद्ध है अथवा जिसको लेकर मन में विषम भावना है, दुरुपयोग है, अन्याय है, मोह-मूर्च्छा है, समाज का अहित है, वह परिग्रह ही है।

अपरिग्रहवाद का विराट् स्वरूप

'परिग्रह' के इस निरूपण व विश्लेषण से सहज ही अपरिग्रह पर पडा हुआ परदा हट जाता है और अपरिग्रहवाद का एक विराट् स्वरूप समक्ष आकर हमें विमोहित कर देता है और हजार मुखो से बार-बार

हमें यह आदेश देता है कि परिग्रहवादी व्यवस्था का अंत करो, अपरिग्रह के अधार पर व्यष्टि व समष्टि के जीवन को निर्धारित करो, हर तरह परिग्रह को मिटाओ, परिग्रह की दासता से अपने को मुक्त करो। तब हम देखते हैं कि अपरिग्रहवाद जीवन की एक बड़ी-से-बड़ी साधना है और सचमुच एक ऐसा आशीर्वाद है कि यदि वह इस दुःखी व त्रस्त जगत् को मिल जाए तो यहीं स्वर्ग उतर आए। निश्चय ही वह एक सजीव प्रेरणा है, एक महत्तम आदर्श है। एक ओर अखण्ड मानवता यहां स्वयं प्रतिष्ठित है। सदसद्-विवेकमय बन्धुत्व-भाव, सहयोग, समता व स्वपरहित की भावना यहां प्रधान है। अहिंसा यहां ओतप्रोत है।

संस्कार का अर्थ

श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री

संस्कृति और संस्कार दोनों अनन्यार्य शब्द हैं। प्राचीनों ने संस्कृति शब्द का बहुत उपयोग नहीं किया, परन्तु संस्कार शब्द का पुष्कल और एक से अधिक अर्थ में उपयोग करके उसे महा अर्थवाहक बनाया है।

अब हम संस्कार शब्द के दो मुख्य अर्थों का विचार करें। 'योगसूत्र' के व्यासभाष्य में संस्कार शब्द का यह विवरण मिलता है, "वृत्तियां दो प्रकार की हैं, क्लिष्ट और अक्लिष्ट। इन वृत्तियों के कारण अलग-अलग प्रकार के संस्कार पैदा होते हैं और उन संस्कारों से फिर वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। इस तरह वृत्ति और संस्कार का यह चक्र सदा चलता रहता है।" (यो. सू. १-६)

इस वचन से संस्कार शब्द का अर्थ आधुनिक मनोविज्ञान के रुझानों और छापों (Dispositions and Traces) के जैसा निकलता है; क्योंकि 'योगसूत्र' के कर्त्ता ने "प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति" (यो. सू. १-६) नामक पांच वृत्तियां गिनाई हैं और क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट के रूप में इन वृत्तियों की द्विविधता का स्पष्टीकरण करते हुए "अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश" (यो. सू. २-३) नामक पांच क्लेश गिनाये हैं। मनोवैज्ञानिक मीमांसा की गहराई में पैठे बिना उक्त वचनों का मेल साध कर सोचने से परिणाम यह निकलता है कि योग-शास्त्रोक्त संस्कार पिंड में बुद्ध्यात्मक (Cognitive) राग-द्वेष प्रयत्नात्मक (Conative) और सुख-दुःखादि भावात्मक (Affective) तीनों प्रकार के रुझानों (Dispositions) और मन पर पड़ने वाली छापों (Traces, impressions) दोनोंका समावेश होता है। लोगों में भी रुझान और आदत के अर्थ में संस्कार शब्द का उपयोग होता ही है। बौद्ध प्रतीत्यसमुत्पादवाद में संस्कार का उपयोग ऐसे अर्थ में हुआ है।

पर योगभाष्य में संस्कार दो प्रकार के माने गये हैं: (१) वासना-रूप और (२) धर्माधर्म-रूप। संस्कार शब्द का यह वासनासूचक अर्थ भी लोक-व्यवहार में प्रचलित है। साथ ही योगभाष्य में यह भी कहा है कि शुभ अथवा ऊंचे संस्कार ऊपर उठाते हैं और अशुभ अथवा हलके संस्कार नीचे घसीटते हैं। ऊपर संस्कार शब्द का छाप, रुझान और वासना-सूचक जो अर्थ बताया गया है, उससे भिन्न चमक या 'पालिश' सूचक एक दूसरा अर्थ भी संस्कार शब्द का है। धातु के बरतनों को चमकाने की क्रिया को संस्कार कहा जा सकता है। लेकिन अब हम देखें कि शिष्ट व्यवहार क्या है। शंकराचार्य कहते हैं—

संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्यात् दोषापनयनेन वा। (ब्र. सू. शां. भा. १-१-४)

सारांश यह कि संस्कार दो प्रकार के होते हैं: (१) गुणाधान द्वारा और (२) दोषापनयन द्वारा और इस शंकर-वचन पर टीका करते हुए वाचस्पति मिश्र उदाहरण देते हैं कि "बिजोरे के फूल में लाख का रंग सींचने से लाख-जैसे रंग का फल उत्पन्न होता है। यह हुआ गुणाधान द्वारा संस्कार का उदाहरण, और मलिन दर्पण को ईंट आदि के चूर्ण से घिसकर साफ करने पर दर्पण का चमकने लगना दोषापनयन द्वारा संस्कार का उदाहरण है।" मैं नहीं जानता कि बिजोरे के फूल का उदाहरण सच है या नहीं; किंतु संस्कार शब्द का यह

गुणान्तराधान-सूचक अर्थ आयुर्वेद में प्रसिद्ध है।* चरक ने पानी, अग्नि, आदि को गुणान्तराधान का साधन माना है। अग्नि आदि से धातु आदि में गुणान्तराधान की बात आधुनिक विज्ञान को मान्य है ही। सक्षेप में, कहना यही है कि सस्कार करने योग्य जड-पदार्थों को गुणाधान द्वारा और दोष दूर करके, यो दो प्रकार से, सस्कारी बनाया जा सकता है।

सस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये जड वस्तु के सस्कार का उदाहरण दिया है, किंतु हम तो यहा मनुष्य के सस्कार का विचार कर रहे हैं। वैसे, स्नानादि द्वारा शरीर की शुद्धि के लिये शरीर-सस्कार शब्द का प्रयोग होता है, लेकिन यहा तो सस्कार शब्द से हमारा हेतु मनुष्य के मन, बुद्धि, भावना, अहकार आदि को चमकाने, विकसित करने से है।

जन्मना जायते शूद्र सस्कारैर्द्विज उच्यते ।

अर्थात् मनुष्य जन्म से द्विज नही होता, द्विज तो वह सस्कार द्वारा बनता है। इस वचन में स्मृत्युक्त उपनयनादि सस्कार—यानी उनके हेतु से होनेवाले शास्त्रोक्त कर्म ही विवक्षित है। ऐसा न मानकर हम यह मानें कि उपनयन के बाद प्राप्त ब्रह्मचर्य और विद्यार्जन भी विवक्षित है। साराश यह कि मनुष्यादि के एतद्विषयक समग्र निरूपण को विशाल दृष्टि से ध्यान में लेकर सोचा जाय तो ऊपर के वचन का तात्पर्य यह निकलता है कि स्वभावत मनुष्य पशु अथवा पामर है और सस्कार द्वारा वह सच्ची मानवतावाला अर्थात् सस्कारी मनुष्य बनता है। सस्कार शब्द की इतनी चर्चा से यह स्पष्ट हुआ ही होगा कि सस्कार शब्द का जो चमक या 'पालिश' सूचक अर्थ है वह बाहरी सफाई और शुद्धि का नही, बल्कि मानव-हृदय की उस चमक या शोभा का द्योतक है, जिससे मनुष्य की रहन-सहन, भावना, बुद्धि सभी कुछ समाज में दीप्त हो उठें। दूसरे शब्दो में, इसे यो कह सकते है, कि जिस शिक्षा से मनुष्य में समाज-हितलक्षी और आध्यात्मिक गुणो का विकास और वृद्धि होती है, उसी को सस्कार कहते है। जैसा कि शकराचार्य ने कहा है, मात्र दोषापनयन या मात्र गुणाधान से नही, बल्कि सस्कार के लिये दोषापनयन और गुणाधान दोनो की आवश्यकता है।

सस्कार शब्द का यह अर्थ अग्रेजी के 'कल्चर' शब्द के अर्थ से मिलता-जुलता है। लेकिन हम शकर द्वारा किये गए अर्थ को पकड कर ही आगे बढे तो मानवचित्त के सस्कार द्वारा दूर करने योग्य दोषो का अर्थ होगा, मनुष्य-जीवन के मूल से चिपटी हुई पशु-सहज स्वाभाविक वासनाए, जिनमें राग, द्वेष, मोह और भय मुख्य है तथा अनेक पीढियो की अविद्या, भय और राग-द्वेष प्रेरित प्रवृत्तियो के कारण रक्त में भिदी हुई पामर जनो में साधारणत पाई जानेवाली आदतें भी हैं। सरलता के लिये हम मान लें कि इन द्विविध दोषो का अपनयन ही दोषापनयन है और गीता में दैवी सम्पद् के रूप में जिनकी गणना की गयी है उन और उनके सदृश गुणो का चित्त में आधान, गुणाधान है। इस प्रकार के दोषानयन और गुणाधान का नाम ही सस्कार है, आदर्श सस्कार की इस व्याख्या से सतोष मानकर हम आगे बढें।

इस प्रकार के सस्कार शुभ सस्कार है। साधारणत. सस्कार शब्द का प्रयोग शुभ सस्कारो के लिये ही किया जाता है और वही ठीक भी है, क्योकि जिन्हे अशुभ सस्कार या कुसस्कार कहा जा सकता है, उनमे चित्त को चमकाने या उज्ज्वल बनाने की क्षमता ही नही होती। जिसे योगशास्त्र म क्लेश कहा गया है, और अन्य शास्त्रो में जिसे दोष माना गया है, उस अविद्या, भय, राग, द्वेष से उत्पन्न वृत्ति और स्वभाव का ही योगशास्त्रीय नाम अशुभ सस्कार है।

अब मानव चित्त के विकास की भिन्न-भिन्न भूमिका के अनुसार व्यक्ति में शुभाशुभ सस्कारो का मिश्रण और शुभ सस्कारो में भी उच्च-नीच भूमिका का होना स्वाभाविक है। जहा एक समाज में उच्च भूमिका के शुभ सस्कारोवाले कुछ लोग होते है, वहा दूसरे अशुभ सस्कारो से युक्त लोग

*"सस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते। ते गुणास्तो यानि सन्निकर्षशौच मन्थन देश काल वासना भावनादिभि काल प्रकर्ष भाजनादिभिश्चाधीयन्ते। (चरक वि अ०१)

भी उसमें पाये जाते हैं। किंतु किसी भी राष्ट्र के श्रेष्ठ विचारकों और द्रष्टाओं का प्रयत्न सदा यही रहता है, कि उच्चतम संस्कार ही आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हों।

ऊपर संस्कार का जो विचार किया है, उससे व्यक्ति के संस्कारों का ही अर्थ निकलता है। प्राचीनों के गर्भाधानादि संस्कार-विचार में यही अर्थ निहित है और यह तो मानी हुई बात है कि शास्त्रोक्त विधि से नहीं, किंतु संस्कार-युक्त शिक्षा द्वारा किसी भी व्यक्ति के जीवन में तेज और चमक पैदा होती है। लेकिन अधिकतर लोगों के जीवन में यह चमक बाहरी ही रहती है। साथ ही, यह भी पाया गया है कि तीव्र संवेग-युक्त विशिष्ट व्यक्तियों के चित्त के समूचे प्रदेश में यह चमक या तेज गहराई तक उतर जाता है और उनके चित्त की समस्त भूमिकाओं को प्रदीप्त कर देता है। इस तरह ऊपर हमने जो अर्थ किया है, उस अर्थ के अनुरूप शुभ संस्कारवाले श्रेष्ठ मनुष्यों के प्रत्यक्ष सदाचार-युक्त उदाहरण से, उनके द्वारा दी गई शिक्षा-दीक्षा से और क्वचित् किसी उत्तराधिकार के बल से, उनकी संतान में ये संस्कार न्यूनाधिक अंश में प्रकट होते हैं, और चित्त की ऐसी संस्कारशील स्थिति जब किसी समाज में कई-कई पीढ़ियों तक बराबर बनी रहती है और निरन्तर विकसित होती रहती है, तो आगे चलकर वह उस समाज का स्वभाव बन जाती है, और उस दशा में हम उसे उस समाज का संस्कार कहते हैं। इसमें संस्कार शब्द के दोनों अर्थ निहित हैं।

वैसे मनुष्य-जीवन में दो प्रकार से परिवर्तन होते हैं: एक परिस्थिति के दबाव के कारण, और दूसरे, मनुष्यों के अपने पुरुषार्थ के कारण। जीवन को टिकाये रखने के लिये परिस्थिति के अनुरूप पविर्तन प्राणि-मात्र के जीवन में होते रहते हैं। मनुष्य भी एक प्राणी है, अतः उसके जीवन में भी परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तनों का होना स्वाभाविक है। किंतु परिस्थिति के ऐसे दबाव से होनेवाले परिवर्तन संस्कार नहीं कहलाते। जब मनुष्य समझ-सोच कर प्रयत्नपूर्वक अपने मन, बुद्धि आदि का विकास करता है, तो उसका वह विकास ही संस्कार कहा जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति प्रयत्न करे, तो वह अपनी पामरता को टालकर संस्कारिता प्राप्त कर सकता है और इसके विपरीत, प्रमादवश अपने उच्च संस्कारों को छोड़ कर वह पामरता के गर्त में गिर सकता है। महाभारत में यथार्थ ही कहा है—

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि अप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।

अर्थात्—प्रमाद के कारण उत्पन्न पामरता ही मृत्यु है और अप्रमाद से प्राप्त होनेवाली संस्कारिता ही अमरता है। यह कोई नियम नहीं कि ऐसी संस्कारिता व्यक्ति के जीवन तक ही मर्यादित रहे। जब किसी भी राष्ट्र के समर्थ और प्रतिभाशाली द्रष्टा अपनी अपूर्व आर्ष-दृष्टि से मानव-जीवन को उज्ज्वल और उच्चतर बनानेवाले आध्यात्मिक, धार्मिक, शील-विषयक और सौंदर्य-विषयक सत्यों का दर्शन करके संस्कार का एक आदर्श उपस्थित करते है तदनुसार उपदेश, शिक्षा और सदाचार द्वारा एक समाज को पामरता से उबारकर संस्कारी जीवन के मार्ग पर ले जाते हैं, और ऐसे संस्कारी जीवन की नयी दृष्टिरूप फिलासफी से अनुप्राणित कवि, कलाकार, विद्वान्, वैज्ञानिक आदि उस राष्ट्र के श्रेष्ठ मनुष्य अनेकविध विद्याओं और कला-कृतियों का अभूतपूर्व भव्य सृजन करते हैं, तब उस समय सर्जन-समूह को और उसकी अधिष्ठानभूत जीवन-दृष्टि का अनुसरण करनेवाले उस राष्ट्र की जीवन-चर्या को यदि हम संस्कृति* का नाम दें तो मेरे विचार में वह गलत न होगा।

लेकिन यहां एक बात याद रखनी है कि राष्ट्रीय संस्कृति के इस समग्र विकास में प्रमाण-भूत तत्त्व तो व्यक्तिगत संस्कारों का ही है। फिर ऊपर संस्कृति विकास का जो क्रम संक्षेप में सूचित किया है, यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति का विकास सर्वत्र उसी क्रम के अनुसार होता है। किंतु यह सच है कि भारत में यह क्रम स्पष्टरूप से देखा जा सकता है।

* हमारे यहां संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' और 'सिविलिजेशन' दोनों के पर्याय की तरह प्रयुक्त होता है। कुछ लेखक विशेषकर हिंदी के लेखक 'सिविलिजेशन' के लिये अक्सर 'सभ्यता' शब्द का प्रयोग करते हैं।

भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में उनके इतिहास के विभिन्न कालों में जो संस्कृतियां प्रकट हुईं, वे उन-उन राष्ट्रों की भौतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक बलों द्वारा उत्पन्न की गयी स्वभावजन्य विशेषता के परिणाम स्वरूप, अपनी-अपनी खास विशेषताओंवाली रही हों तो वह स्वाभाविक ही है। य सांस्कृतिक विशेषताएं उन-उन राष्ट्रों के व्यावर्तक लक्षणों-जैसी मानी गईं और उन्हें अभिमान की वस्तु समझा गया, किंतु संसार के अलग-अलग देशों और युगों में जो पैगम्बर और सन्त महात्मा हो गये, उन्होंने तो सत्य, अहिंसा, अनासक्ति सहिष्णुता, सब भूतों के प्रति भ्रातृभाव या आत्मभाव, आध्यात्मिकता, अभय, ज्ञान, विज्ञान आदि दैवी सम्पद्-रूप संस्कारों पर ही अधिक जोर दिया है और विभिन्न संस्कृतियों के अन्तस्तल में विद्यमान इन उच्च संस्कारों को ही ग्रहण करके इस युग के महापुरुष भी अखिल मानव-जाति की एक और अभिन्न संस्कृति की रचना के लिये सतत यत्नशील रहे, इसीमें संसार के भावी सुख और शान्ति की आशा निहित है।

अनु०—काशिनाथ त्रिवेदी

बुद्ध-शासन के रत्न : भदंत महावीर

भिक्षु धर्मरक्षित

भारतीय बुद्ध-शासन के दीर्घकालीन इतिहास की अमर कहानियों का न केवल भारत के ही प्रत्युत सारे एशिया महाद्वीप के जीवन, राजनीति, संस्कृति, धर्म, कला, पुरातत्व आदि के साथ एक अमिट और अद्भुत सामंजस्य है। भगवान् बुद्ध पद-चारिका के रूप से यद्यपि पश्चिम में मथुरा और कुरु-राष्ट्र की राजधानी थुल्लकोट्ठित से आगे नहीं बढ़े थे, पूरब में कजंगला निगम के मुखेलुवन और पूर्व-दक्षिण में सलळवती नदी के तीर को पार नहीं कर पाये थे, दक्षिण में सुमुमारगिरि आदि विन्ध्याचल के आसपास वाले निगमों तक ही गए थे तथा उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग निगम और उसीरध्वज पर्वत से ऊपर जाते हुए नहीं दिखाई दिए थे, तथापि उन्हीं के समय में उनके शिष्यों ने सूनापरान्त प्रदेश के अम्बहृष्ट पर्वत पर रहते हुए वाणिज्यग्राम (सम्भवत बम्बई), समुद्रगिरि, मातुलगिरि, मकुलकाराम आदि में बुद्ध शासन का काफी प्रचार किया था। अर्थकथाचार्य का तो यह भी कहना है कि तथागत भी अपने पांच सौ ऋद्धिमान् भिक्षुओं के साथ वहां ऋद्धिबल से गए थे। उन्होंने मार्ग में सत्यबद्ध पर्वतवासी एक परिव्राजक को भिक्षु संघ में दीक्षा भी दी थी, जिसने बाद में उस प्रदेश में बुद्ध शासन का पर्याप्त प्रचार किया था। कहते हैं, भगवान् बुद्ध ने नर्मदा नदी तथा सत्यबद्ध पर्वत की चोटी पर अपने पद चिन्ह भी अंकित कर दिए थे। तक्षशिला का राजा पुक्कुसाति भी तथागत के पास आकर प्रव्रजित हुआ था। ग्वालियर, उज्जैन आदि प्रदेशों में महाकात्यायन ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। स्वयं वे उज्जैन के राजपुरोहित के पुत्र थे। उत्कल (उड़ीसा) प्रदेश भी बुद्ध शासन से अछूता न था। कुक्कुटवती (वर्तमान क्वेटा) के राजा कप्पिन और उसकी स्त्री ने एक सौ बीस योजन चलकर श्रावस्ती में भगवान के दर्शन किए और प्रव्रजित हुए। लंकावासियों का कहना है कि तथागत ऋद्धिबल से तीन बार लंका गए थे। नेपाल का स्वयम्भू पुराण तथागत के वहां पहुंचने के अनेक प्रमाण उपस्थित करता है। बर्मावासियों का कहना है कि तपस्सु और भल्लिक बुद्धगया में सर्वप्रथम तथागत को भोजन कराया था और शिष्यत्व ग्रहण कर प्रसाद रूप में उनके केश मांगकर बर्मा ले गए थे, जो सम्प्रति वहां के प्रसिद्ध चैत्य श्वेदागों पगोडा में सुरक्षित है। यवन-राष्ट्र के बौद्धों का विश्वास था कि वर्तमान् इस्लाम के धार्मिक केंद्र मक्का के काबा

शरीफ का पदचिन्ह तथागत का ही है (यं तस्य योनकपुरे मुनिनो चपादं)। उस समय इस्लाम धर्म का तो जन्म भी नहीं हुआ था। ऐसे ही स्याम देशवासियों का कहना है कि सत्यबद्ध पर्वत उनके यहां है, जहां भगवान् बुद्ध ने जाकर अपने पद-चिन्ह अंकित किये थे। जो कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि बुद्धकाल में बुद्ध-शासन भारत की सीमाओं को लांघ नहीं पाया था। किन्तु अशोक-काल में वह लंका बर्मा, स्याम, कम्बोज (कम्बोडिया), गान्धार, नेपाल के साथ हिमालय प्रदेश के दक्षिणी पांचों राष्ट्र, काश्मीर, सीरिया, मिस्र, मकदूनिया और एपीरस तक पहुंच गया। धीरे-धीरे कालान्तर में बुद्ध-शासन का प्रसाद चीन, तिब्बत, जापान, फारमूसा, बाली, मैक्सिको, कोरिया, जावा, सुमात्रा, मंगोलिया और साइबेरिया के विस्तृत प्रदेशों तक पहुंच गया। काबुल से होता हुआ यह अमर संदेश यारकन्द, बलख, बुखारा, तथा अन्य-समीपवर्ती स्थानों में व्याप्त हो गया; किन्तु परिवर्तनशील संसार के नियमों का व्यतिक्रमण उसके लिए सम्भव न था। समय ने धीरे-धीरे जो उसे एक ओर बढ़ाया तो दूसरी ओर से समेटना आरम्भ किया। एशिया यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका में व्याप्त बुद्ध-शासन ने अपनी जन्म-भूमि भारत से अपना प्रभुत्व हटा लिया। यद्यपि आज विश्व में दो-तिहाई बौद्धों की ही जनसंख्या है तथापि उसकी जन्मभूमि आज उनसे शून्य-सी है। इस समय भारत में जो बौद्ध वास करते हैं, उनकी जनसंख्या ढाई लाख से अधिक नहीं है। इनमें भी बंगाल, आसाम, उत्तर प्रदेश, मद्रास, बम्बई और अण्डमान तथा बीकानेर के प्रदेशों में ही अधिक बौद्ध वास करते हैं। किन्तु यह संख्या बौद्ध गृहस्थों की है। बौद्ध भिक्षु जो बुद्ध-शासन के संरक्षक, नेता एवं प्रचारक होते हैं, उनकी संख्या अत्यन्त अल्प है।

यदि बंगाल-प्रदेशवासी और बर्मी चीनी, सिंहली, तिब्बती, नेपाली अमेरिकी तथा अन्य बाह्य देशवासी भिक्षुओं को छोड़कर गणना की जाय, तो सारे भारत-वर्ष में आठ से अधिक भिक्षु नहीं हैं। किन्तु यह देखने में आरहा है कि दिन-रात बौद्ध गृहस्थों की संख्या बढ़ती जा रही है और भारतीय शिक्षित नवयुवकों में प्रव्रज्या की कामना भी प्रबल होती जा रही है। यह सब उन्हीं दिवंगत भदन्त महावीर की देन है, जिन्होंने कि सन् १८५७ के भारतीय स्वातंत्र्य-युद्ध के वीर सेनानी बाबू कुंवरसिंह के कन्धों-से-कन्धा भिड़ाकर अंग्रेजों के साथ युद्ध किया था। उनसे पूर्व भारत में कोई भी बौद्ध भिक्षु न था और न भारतवासी ही बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए थे। बेचारे बौद्ध गृहस्थ अपने मार्ग-प्रदर्शक भिक्षुओं के अभाव में अपने सारे धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति उदासीन-से हो गए थे।

भदन्त महावीर का जन्म सन् १८३३ में बिहार प्रान्त के भभुआ स्टेशन से तीन मील दूर रुपपुर नामक गांव में हुआ था। उनके बचपन का नाम महावीर सिंह था। शारीरिक शक्ति से भी वे नामानुरूप सम्पन्न थे। एक हट्टे-कट्टे पहलवान और प्रसिद्धि-प्राप्त खिलाड़ी थे। लाठी, गतका, तलवार, भाला-बर्छी आदि चलाने में वे बड़े ही निपुण थे। उनका नाम सुनकर आसपास के चारों ओर के डाकू थर-थर कांपते थे। क्या मजाल कि उनके रहते गांव में डाका पड़ जाय या चोरी हो जाय? उन्होंने कई बार अनेक डाकुओं को छट्टी का दूध याद करा दिया था। कहते हैं, उन्होंने एक बार एक चीते को भी मार गिराया था।

उन्होंने अपनी पच्चीस वर्ष की नव-तरुणाई में ही अंग्रेजों को अपनी वीरता के अद्भुत चमत्कार दिखाए थे। अंग्रेजों के साथ लड़ते हुए बाबू कुंवरसिंह के वीरगति को प्राप्त होने के बाद जब उनके छोटे भाई अमरसिंह कहीं भाग गए, तब महावीरसिंह ने देखा कि अब अकेले काम नहीं चलेगा। वे अपने पहलवान साथियों के साथ दक्षिण की ओर बढ़े और इन्दौर होते हुए मद्रास पहुंचे। मद्रास में पहलवानों का एक दंगल हुआ, जिसमें महावीरसिंह को एक हजार रुपये पारितोषिक में मिले। वे वहां से लंका की ओर बढ़े। वहां पहुंचकर वे अपने एक परिचित भारतीय

व्यापारी के यहा गए, जिसने महावीरसिंह का बडा आदर-सत्कार किया और अपने यहा सदा रहने के लिए प्रार्थना की ।

महावीरसिंह लका में रहते समय प्राय बौद्ध विहारो में जाया करते थे। धीरे-धीरे बौद्ध शिष्टाचार एव धर्म की ओर उनका झुकाव होने लगा। वे भिक्षुओ के निर्मल चरित्र और सेवाभाव के उत्कृष्ट कार्यों से प्रभावित होकर वहा के इन्द्रासभ महास्थविर के पास जाकर प्रव्रजित हो गए। उनकी पूर्व की सारी धारणायें बदल गई। वे अब महावीरसिंह के स्थान पर श्रामणेर महावीर' बन गए। उन्हे अपने जीवन में पर्याप्त सुख और शान्ति की अनुभूति होने लगी । लका का भिक्षु जीवन उन्हें एक अद्भुत एकाग्रता और सयम के साम्राज्य की प्राप्ति जान पडने लगा। उन दिनो उन्हे लका के श्रद्धालु दायकों ने चीवर, पिण्डपात (भोजन), ग्लयानप्रत्यय एव शयनासन के साथ नारियल के बगीचो से भी पूजित तथा सम्मानित किया। वे निस्पृह महात्मा जिन्होने अब रुपया-पैसा भी हाथ से छूना त्याग दिया था, भला ससारिक वस्तुओ से क्योकर लिप्सा रखते ? जो-जो वस्तुए उन्हे दान में प्राप्त होती थी, उन्हे वे भिक्षु-सघ को सौप दिया करते थे।

कुछ दिनो तक वे लका में रहकर अपने गुरु इन्द्रासभ महास्थविर और कोलम्बो के विद्योदय परिवेण के प्रधानाचार्य एव सघनायक ह्विक्कडुवे श्रीसुमगल महास्थविर से परिचयात्मक पत्र लेकर पाण्डेचेरी तथा कलकत्ता होते हुए सन् १८८४ में रगून पहुचे और उसी वर्ष वहा उनकी उपसम्पदा हुई। उन दिनो थीव-नरेश के पकडे जाने के कारण वर्मा में पूर्ण अशान्ति थी, अत भदन्त महावीर को शीघ्र ही भारत लौट आना पडा। जब वे कलकत्ता पहुचे, उन्हे बौद्ध तीर्थ स्थानो के दर्शन की इच्छा हुई। वे बुद्धगया, राजगिरि और नालन्दा के दर्शन करके सारनाथ पहुचे । उन दिनो सारनाथ में न कोई मठ था, न कोई धर्मशाला थी। उन्होने देखा कि सारनाथ के खण्डहरो की ईंटें तक ढोकर बनारस जा रही हैं। इस कार्य ने उनके हृदय में आग लगादी। उन्होने गाडीवानो को बलपूर्वक रोका और एक कदम भी आगे नही बढने दिया। उन्होने अधिकारियो को बतलाया कि सारनाथ का खण्डहर बौद्धो का पवित्र तीर्थस्थान है। यही पर तथागत ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। हम बौद्ध यह नही देख सकते कि हमारे पुण्य-स्थान की ईंटें उजाडी जाय और उसके महत्त्व की ओर ध्यान न देकर उसके प्राक् चिन्हो को मिटा दिया जाय। फलत. सारनाथ के खण्डहर की रखवाली के लिए एक आदमी बैठा दिया गया और सारनाथ की ईंटो की रक्षा होने लगी । तबसे फिर कोई भी व्यक्ति एक ईंट तक उठाने का साहस न कर सका।

भदन्त महावीर सारनाथ से कुशीनगर गए। उस समय कुशीनगर में थोडी बहुत खुदाई हो चुकी थी। परिनिर्वाण मन्दिर की गुप्तकालीन तथागत की विशाल मूर्ति प्राप्त हो चुकी थी। भूमिस्पर्श-मुद्रा में बैठी हुई भगवान् की मूर्ति एक वृक्ष के नीचे पडी थी। ऊचा ध्वसित स्तूप कुशीनगर के अतीत का गौरव बतलाते हुए खडा था। इन सबका दर्शन करके भदन्त महावीर को कुशीनगर में एक भिक्षु विहार के निर्माण की इच्छा हुई। वे मनकी अभिलाषा मन ही में लिए पुन कलकत्ते लौट गए, किन्तु पुनः सन् १८९० मे वे कुशीनगर चले आए और एक पत्तो की झोपडी में रहने लगे। धीरे धीरे आसपास के ग्रामीणो से उनका परिचय होगया। कसया के कुछ वकील-मुख्तार भी उनके सहायक हो गए। उन्ही दिनो कलकत्ते के प्रसिद्ध सेठ श्रीयुत खेजारी ने उनके दायकत्व-भार को ग्रहण कर हरेक प्रकार से सहायता करनी प्रारम्भ कर दी। श्री खेजारी के ही १५,०००) रुपये के दान से कुशीनगर का वर्तमान बौद्ध विहार सन् १९०२ में बनकर तैयार हुआ, जो इस सदी का प्रथम भारतीय बौद्ध विहार है।

भदन्त महावीर के समय में ही प्राय कुशीनगर के खण्डहरों की खुदाई का काम प्रारम्भ हुआ। परिनिर्वाण स्तूप उनके सामने ही खोदा गया और उनके सुझाव

के अनुसार ही पुर्ननिर्माण का विचार हुआ। किन्तु पुरातत्व-विभाग से आज्ञा मिलने में विलम्ब होने के कारण उनके जीवन-काल में वर्तमान् स्तूप का निर्माण न हो पाया। फिर भी इसके शोध एवं निर्माण-कार्य में उनका बहुत बड़ा हाथ था। भूमिस्पर्श-मुद्रावाली भगवान् की मूर्ति की मरम्मत उन्होंने स्वयं अपने रुपयों से कराई।

कुशीनगर के निकटवर्ती ग्रामीण उन्हें 'मोटे बाबा' कहा करते थे, क्योंकि वे शरीर के मोटे और शक्तिमान् थे। जिस बोझ को दस-दस बारह-बारह आदमी मिलकर भी नही उठा सकते थे, उसे वे अकेले और एक ही हाथ से उठा लिया करते थे। कुशीनगर के वर्तमान् विहार के सामने का बड़ा घण्टा जो पांच-छः आदमियों के उठाने पर जमीन भी नही छोड़ता था; उन्होंने अकेले ही उठाकर लटका दिया था। कहते है, पास के एक ब्राह्मण गृहस्थ की भैंस को उसके स्वामी के अतिरिक्त दूसरा कोई पकड़ नही सकता था। ब्राह्मण रात्रि में भैंस को खोल देता था, वह रात भर किसानों के खेत चरकर प्रातः घर लौट आती थी। जो उसे पकड़ने का प्रयत्न करता था, उसे वह सीगों के बल उठाकर पटक देती थी। भदन्त महवीर उक्त भैंस की चर्चा सुन चुके थे। अकस्मात् एक रात वह भैंस खेतों को चरती हुई विहार के पास वाले खेतों में आकर चरने लगी। खेत चरने की आहट पाकर जब वे विहार से बाहर आए तो भैंस देखते ही उनकी ओर दौड़ी; किन्तु उन्होंने सतर्कतापूर्वक उसके सींगों को पकड़कर नीचे की ओर ऐसा दबाया कि वह वहीं हांफती हुई बैठ गई। उन्होंने रस्सी मंगाकर उसे बांधा और प्रातः उसके मालिक को बुलाकर उसके हवाले कर दिया। कहते है, उनके इस काम से वह भैंस इतना डर गई कि फिर रात में उधर आने का नाम भी नही लिया।

वे प्रव्रजित होने के दिन से लेकर जबतक स्वस्थ रहे कभी कोठरी के भीतर नहीं सोये। रात्रि में उनकी चौकी विहार के बरामदे में बिछती थी और दिन में विहार के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे, जहाँ लोग उनके उपदेशों को सुनने के लिए आया करते थे। वे बरगद के नीचे बैठे हुए आगत् श्रोताओं को धर्मोपदेश दिया करते थे।

भदन्त महावीर पापियों का मुह भी नहीं देखना चाहते थे। जिस प्रकार स्वयं निर्मल चरित्र, संयमी तथा तपस्वी थे, वैसे ही लोगों का आदर करना जानते थे। पास के गांव के एक गृहस्थ ने अपनी विवाहिता बहन के आभूषण बेचकर पैसे बना लिए थे। इस बात का उन्हें पता लगा। एक दिन उसी गृहस्थ को खण्डहर में टहलते हुए पाकर उन्होंने उसे बुलाकर कहा, "भाग जाओ, मै तुम्हें इस पवित्र खण्डहर मे नहीं देखना चाहता, वह महापापी है जो अपनी बहन के आभूषणों को बेच देता है।" उस गृहस्थ पर इन बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उनके पैरों को पकड़कर भूमि पर गिर पड़ा और क्षमा मांगी। घर जाकर उसने अपनी बहन के लिए पुनः उन्हीं रुपयों से नये आभूषण बनवा दिये।

भदन्त महावीर ने बुद्ध-शासन के भारत में प्रत्यावर्त्तन के लिए जहां विहार की स्थापना की, वहां भिक्षुओं को बाह्य देशों से बुलाकर, भारत में रहने का भी प्रबन्ध किया। श्री चन्द्रमणि महास्थविर उन्हीं के बुलाए और रखे हुए अराकानी भिक्षु हैं, जिन्होने उनके बाद भारतीय बुद्धशासन के प्रचार में पर्याप्त सहयोग दिया है। भदन्त महावीर ने न केवल कुशीनगर में, अपितु सारनाथ मे भी बुद्ध विहार की स्थापना की। सारनाथ में वर्तमान् बर्मी बौद्ध विहार की प्राचीन इमारत उन्ही की कृति है। बंगाली भिक्षु कृपाशरण महास्थविर आदि को उन्होने प्रेरित करके लखनऊ आदि स्थानों में बौद्ध विहारों के निर्माण का प्रयत्न कराया था। बुद्धगया-मन्दिर के पुनरुद्धार एवं जीर्णोद्धार के लिए भी उन्होंने कम प्रयत्न नही किया था। उनके जीवन का एक-एक दिन महत्वपूर्ण कार्यों एवं घटनाओं की विचित्र शृंखला से आबद्ध है। वे जिस परम उद्देश्य को लेकर प्रव्रजित हुए थे, उसमें उन्हे पर्याप्त सफलता मिली। भारतीय बुद्ध-शासन के

प्रत्यावर्तन निमित्त उन्होंने जो-जो कार्य किए वे सब उन प्रारम्भिक दिनो के लिए, महान् एव कठिन थे।

गत शताब्दी के प्रथम् उत्तर भारतीय भिक्षु भदन्त महावीर ने अपने सारे कर्त्तव्यों का पालन कर, बुद्ध शासन के अपने कार्यों का सम्पादन कर, सन् १९१९ के चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की द्वितीया को परिनिर्वाण-भूमि कुशीनगर में सदा के लिए अपनी आखें मूद ली। उनकी चिता उन्ही के द्वारा परिशोधित भूमि पर बनाई गई और भारत में बुद्ध-शासन के प्रत्यावर्तक उन महान्, अमर एव अमिट बुद्ध पुत्र के सद्गुणो की परिशुद्ध ज्योति अग्नि शिखा के साथ मिलकर और भी चमक उठी तथा उनके भौतिक शरीर को स्पर्श करती वह अग्नि शिखा यह कहती हुई उर्ध्वगामिनी बनी रही—'वे भारतीय बुद्ध-शासन के अमर रत्न थे।'"

ग्राम्य कहानियां और कहावतें

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

हिन्दी राष्ट्र-भाषा स्वीकृत हो चुकी है और समूचे भारतवर्ष की राज-भाषा बनने वाली है। इससे हिन्दी भाषा-भाषियो का कर्तव्य कितने ही अशा में और भी अधिक बढ जाता है। पूर्व इसके कि वह राष्ट्र भाषा बने, हमारी जिम्मेदारी है कि हम सब उसकी हर प्रकार से उसके योग्य बनावें।

जब हम साहित्य और भाषा के क्रमिक विकास का अध्ययन करते हैं तो स्पष्टतया यह पाते हैं कि जनपदीय भाषाओ से ही हमारे साहित्य की अभिवृद्धि हुई है, किन्तु इधर हमारे साहित्य की प्रगति में जनपदीय भाषाओं की उपेक्षा रही। इसी कारण हमारा शब्द-भडार सकीर्ण प्रतीत होता है। जबतक ग्राम-भाषाओं के विशाल शब्द-भडार को प्रकाश में लाकर व्यवहृत न किया जायेगा तबतक हमारी भाषा सजीव न बन सकेगी।

ग्रामीण साहित्य में लोक गीत, कहानिया, कहावतें, दन्त-कथाए आदि भरपूर विद्यमान है। इधर विगत पच्चीस-तीस वर्षों से गुजरात, अवध और बुन्देलखड में उनको एकत्रित करने का कार्य भी चल रहा है, किन्तु जैसी तत्परता से यह कार्य होना चाहिए था नहीं हो सका है। सहयोग और प्रोत्साहन का अभाव ही इसकी असफलता के कारण हो सकते हैं।

विदेशी भाषाओ के साहित्य में लोक-गाथाओ सम्बन्धी कितनी ही पुस्तकें मिलती हैं। बग-भाषा में 'हिन्दुस्तानी उपकथा' और गुजराती में 'सौराष्ट्री रसधारा' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी मे 'कविता-कौमुदी' के पाचवें भाग में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतो की चर्चा करते हुए अवधी गीतो पर प्रकाश डाला है, गोरखपुर के चचरीकजी ने भी 'ग्राम-गीताजलि' में उस ओर के गीतो के रूप में अपनी रचनाए प्रकाशित की हैं। प० शिवसहाय चतुर्वेदी देवरी (सागर) ने बुन्देलखडी ग्राम-कहानिया नियमित रूप से 'मधुकर' में लिखी थी। उनकी कुछ कहानियो का एक सग्रह बम्बई से, दूसरा दिल्ली से प्रकाशित भी हो गया है। श्री कृष्णानन्द गुप्त तथा 'लोकवार्ता परिषद् छतरपुर' भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। इन पक्तियो के लेखक ने भी विगत ३० वर्षों से पत्र-पत्रिकाओ, अभिनन्दन ग्रन्थो, विशेषाको और बुन्देल-वैभव में इसकी चर्चा की है। अब समय आ गया है जब सम्मिलित शक्ति से यह कार्य और भी आगे बढाया जाय।

विश्व-वन्द्य बापू ग्रामो का सुधार करने, ग्राम-साहित्य का उद्धार करने और ग्रामो में बसने का अमर सदेश देते रहे है। उन्होने भली प्रकार अनुभव कर लिया था कि ग्रामो में अब भी भारतीय सस्कृति, गीतो, कहानियो, कहावतो, दन्त-कथाओ, रीति रिवाजो और परिपाटियो के रूप में विद्यमान है। पश्चिमी सभ्यता और बाह्य सम्पर्क से जितना भूभाग अछूता रह गया या जिसपर नई रोशनी नही पडी, वहीं भारतीय सस्कृति को किसी-न-किसी रूप में हम अब भी पा सकते हैं। हमारे ग्राम-गीत तो इसके ज्वलन्त उदाहरण है ही।

नागरिक और ग्रामीण समुदाय के बीच जो खाई

बन गई है, उसको पाटने के लिये साधारण हिन्दी-भाषा-भाषियों और मुख्यतः साहित्यकों को अग्रसर होना चाहिए। अब तो अपनी राष्ट्रीय सरकार से भी इस सम्बन्ध में सहायता प्राप्त की जा सकती है; किन्तु आवश्यकता यह है कि हम स्वयं स्वावलम्बी बनें, अपनी अयोजनाएं अपने आप बनाकर आगे बढ़ावें। जब हम इतना कर लेंगे तो हमको प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों से भी राष्ट्र-भाषा के उत्थान में अवश्य ही पूरी सहायता मिल जायगी, ऐसी आशा है।

ग्राम्य कहानियां केवल ग्रामों में ही कही जाती हों, ऐसी बात नहीं है। उनका सूत्रपात यद्यपि होता ग्रामों ही से है, किन्तु उनका साम्राज्य देश-व्यापी हुआ करता है। उदाहरण के लिये बुन्देलखंड को ही लीजिये। गांव-गांव और घर-घर लड़के-बच्चे संध्या ही से घर की बड़ी-बूढ़ी दादी को घेरते हुए और कहानी कहने के लिये आग्रह करते हुए दिखलाई देते हैं। गांवों में अलाव (जलती हुई आग) क्लब का काम देते हैं, शीतकाल में रात्रि का भोजन करने के पश्चात् और ग्रीष्मकाल में अथाई (बैठने का स्थान) पर ये कहानियां हुआ करती हैं। ग्रामीण समाज में कहानीकार और अल्हैत (आल्हा गानेवाला) श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

बुन्देलखंडी कहानियां रोचक, मार्मिक और इतनी भावपूर्ण होती हैं कि श्रोतागण मंत्र-मुग्ध की भांति उनको सुनते रहते हैं। केवल एक व्यक्ति हुंका (हां, हां) देने के लिए निश्चित कर दिया जाता है। शेष श्रोतागण दत्तचित होकर सुनते हैं। ये कहानियां प्रायः अर्द्ध रात्रि तक चला करती हैं। कभी-कभी कहानीकार उन्हें इतना बढ़ाता जाता है कि तीन-तीन, चार-चार रात्रि में वे समाप्त हो पाती हैं। कुछ-कुछ कहानियां जैसे 'नारंगा सदावृक्ष' 'संत बसन्त' और 'गोपीचन्द भरथरी' ऐसी भी होती हैं जिनमें कहानीकार सस्वर दोहा, चौबोला और कवित्त आदि भी बीच-बीच में गा देते हैं। इससे उनकी रोचकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

ग्राम्य कहावतें खेती-बाड़ी, वर्षा आदि का ज्ञान कराने में ग्रामवासियों को सहायक होती हैं। हमें विश्वास है कि लोक-साहित्य की ओर अधिक ध्यान दिया जायगा और उसकी अमूल्य निधियां, जो गांवों में बिखरी पड़ी हैं, विस्मृति के गर्त्त में विलीन नहीं होने दी जायेंगी।

हरिजनों को वे कभी नहीं भूले

स्व० महादेव देसाई

सरोजिनी देवी गांधीजी के आशीर्वाद के लिए आई हुई हाल ही में विवाहित जोड़ी को लाई थीं। उस लड़की को गांधीजी तिलक स्वराज्य-फण्ड के जमाने से जानते थे। उसने उस समय बहुत-सा रुपया जमा किया था और अपने अधिकतर गहने दे दिये थे।

"तुम्हें वे दिन याद हैं न ? तुम्हारी शादी से मुझे खुशी हुई। पर यहां से तुम्हें मुफ्त आशीर्वाद नहीं मिलेगा। तुम्हें पहले हरिजनों को आशीर्वाद देना होगा।"

वह बोली, "किस तरह दूं ? आपको चाहिए सो मांग लीजिए।"

"पर मैं कैसे मांगूं ? तुम्हें तो अपने पति की आज्ञा लेनी चाहिए। मुझे तुम दोनों के बीच झगड़ा नहीं कराना है।"

"हम दोनों के बीच झगड़े की कोई गुंजाइश ही नहीं।" उसने दृढ़तापूर्वक कहा। सारी मण्डली खिल-खिला कर हंस रही थी और उसने अपनी सोने की चूड़ियां गांधीजी के चरणों में रख दीं।

'महादेवभाई की डायरी'
भाग ३,

कसौटी पर

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी की तीन पुस्तकें

ज्ञान गंगा : सम्पादक—नारायण प्रसाद जैन, पृष्ठ ७५६, सजिल्द, मूल्य ६)

गहरे पानी पैठ ले० अयोध्या प्रसाद गोयलीय पृष्ठ २२४, सजिल्द, मूल्य २॥)

पंच प्रदीप कविता सग्रह, लेखिका—शान्ति एम० ए०, पृष्ठ ९४, सजिल्द, मूल्य २)

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी को प्रकाशन के क्षेत्र में आये अभी बहुत दिन नही हुए हैं, परन्तु इसी बीच में अपनी सुरुचि और सुघडता की छाप उसनें हिन्दी-पाठक के मन पर लगा दी है। साहित्य के लक्ष्य को उसने अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। आज की आलोच्य पुस्तकें हर दृष्टि से पठनीय और मननीय हैं। क्या गेटअप और क्या सामग्री, हर दृष्टि से उनकी उपादेयता स्पष्ट है।

ज्ञान गंगा मोतियो की माला है। भाई नारायण प्रसाद ने संसार के महापुरुषो के ज्ञान, अनुभव और साधना के सार को एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया है। इन सूक्तियो में शाश्वत सत्य ही नहीं है सामयिक जीवन को जीने की प्रेरणा भी है। विचारो की विविधता और समता, अनुभव की व्यापकता और एकरसता, इन सब में सत्य के एक ही मूल रूप के दर्शन होते है और वह है मनुष्य बनने की प्रेरणा। 'ज्ञान गगा' उस प्रेरणा से भरपूर है। इस कोष का हर घर मे रहना उतना ही आवश्यक है जितना अन्न का।

गहरे पानी पैठ उन अमर कथाओं का सग्रह है जिन्हें श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय ने गुरुजनो के चरणो में बैठ कर सुना, ग्रथो में पढा और अपने हिये की आँखो से देखा है। ये कथाए मात्र काल्पनिक नही है, कठोर सत्य है और इस बात का प्रमाण है कि सत्य कल्पना से अद्भुत होता है। ये शब्दचित्र एक साथ मार्मिक, रोचक, उत्प्रेरक और मधुर है। ये मनुष्य की आँखें खोलते ही नही, उन्हें स्नेह और करुणा से आप्लवित भी करते है। इनके पीछे अनुभव की गहराई और हृदय की सरसता है। भाषा टकसाली और शैली सहज है, जटिल नही। इस सग्रह की कुछ कहानिया तो कला की दृष्टि से बडी सुन्दर बन पडी है। उदाहरण के लिए 'बिहारीलाल,' जिसे हम भूलते नही तो वर्षों पहले 'हस' में पढा था, बहुत ही सुन्दर शब्दचित्र है। वह मानव का श्रेष्ठ रूप है। क्या ही अच्छा होता कि लेखक 'हुनर की कमी' ऐसी कुछ कहानियाँ छोड देता।

पुस्तक एक साथ इतिहास, कथासग्रह और ज्ञान का भंडार है। जो पढना जानते है उन सबको इसे पढना चाहिए।

पंच प्रदीप में नवोदित कवियत्री सुश्री शान्ति एम० ए० की कविताए सग्रहीत है। इन कविताओ में भावगम्भीर्य के साथ अभिव्यक्ति की कुशलता स्पष्ट दिखाई देती है। इनमें मानव के सुख-दुख, आशा-निराशा। और कामना-भावना के सुन्दर चित्र है। विचारो की गहनता और सूक्ष्मता के साथ-साथ हृदय को तडपा देनेवाली मार्मिकता से ये ओतप्रोत है। इनमें यद्यपि भावना का अतिरेक दिखाई देता है, परन्तु जीवन के कठोर सत्य से उसने नेत्र नही मूद लिए है। यह लक्षण शुभ है और हमें आशा दिलाता है कि महादेवी और बच्चन की परम्परा शान्ति जी के हाथो मे सुरक्षित ही नही, स्वस्थ भी रहेगी।

भाषा में स्वाभाविकता, शक्ति और माधुर्य है,

इसलिए प्रवाह है। यह जब और मँजेगी तो प्रवाह और गतिमय होगा।

लेखिका कविता को हृदयशुद्धि का साधन मानती है। हमें प्रसन्नता है उनकी रचनाएं इस दावे की पुष्टि करती है। यह कोई कम बात नहीं है। उदाहरण के लिए यह पद देखिये :

यदि प्रणय मुझे देने आया,
अपनेपन के प्रति अहंभाव।
यदि पूर्ण कर रहा वह केवल,
नारी की काया का अभाव।
यदि त्याग, सत्य, जनमन के प्रति,
दे रहा मुझे वह है विरक्ति।
यदि द्वेष, क्रोध की क्रीड़ा की,
दे रहा मुझे वह नई शक्ति।
तब क्यों न विश्व की नारी को हो सके मान्य मेरा निर्णय।
मेरी सीमा है नहीं प्रणय।

विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास : अनुवादक—श्री कृष्णानन्द द्विवेदी, प्रकाशक-युग प्रकाशन, १ फैज बाजार, दिल्ली, पृष्ठ ३०१, मूल्य ६।)

प्रस्तुत पुस्तक सर डैम्पियर की 'ए शार्टर हिस्ट्री आफ् साइन्स' का अनुवाद है। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो चुकी है और यह आवश्यक है कि उसका भंडार हर क्षेत्र में भरा-पूरा हो। विज्ञान पर मौलिक पुस्तक लिखने में तो समय लगेगा। तबतक उत्तम ग्रंथों का अनुवाद करना उचित ही नहीं आवश्यक भी है। यह पुस्तक उसी आवश्यकता की पूर्ति-मात्र है।

लेखक की मान्यताओं और निष्कर्षों से किसी को मतभेद हो सकता है पर उसने सृष्टि के आरम्भ से लेकर विज्ञान की प्रगति पर जो प्रकाश डाला है वह उपादेय है। न केवल विद्यार्थियों के लिए ही वरन साधारण पाठकों के लिये भी यह उपयोगी है। अनुवादक ने अपने दायित्व को समझा है और मूल पुस्तक की आत्मा को सुरक्षित रखने का सफल प्रयत्न किया है।

लेखक विज्ञान की शैतानी शक्ति से अपरिचित नहीं है। युद्ध निवारण का पक्षपाती है। वह मानता है कि यदि मनुष्य युद्ध का निवारण कर सका तो "परमाणु बम भी अन्ततोगत्वा मानवता के लिए अभिशाप नहीं बल्कि वरदान भी सिद्ध होगा।" पर यह 'यदि' कितना बड़ा है। एक गांधी उसे न जीत सका। क्या अनेक गान्धी एक साथ सम्भव है? क्या उनकी शक्ति एक मानव में सम्भव है? नहीं तो विज्ञान मनुष्य का शत्रु ही रहेगा, पर आशा तो बलवती है। किसी भी अवस्था में निराश होना शोभा नहीं देता।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद की दो पुस्तकें

बापू के पत्र मीरा के नाम : पृष्ठ संख्या ८००; सजिल्द मूल्य ४)।

स्त्री पुरुष-मर्यादा : ले० श्री किशोरलाल मशरूवाला, पृष्ठ १८८, मूल्य १॥।)

जैसा कि नाम से प्रकट है प्रथम पुस्तक में महात्मा गांधी ने श्रीमती मीराबेन को जो पत्र लिखे थे वे संग्रहीत हैं। इसमें कुल ३८६ पत्र हैं और वे ३१ दिसम्बर १९२४ से लेकर १९ जनवरी १९४८ तक लिखे गये हैं।

पत्र-साहित्य का किसी देश के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। वे समाज और व्यक्ति की स्थिति को जितना सही चित्रित करते हैं उतना व्यवस्थित रूप से लिखा गया इतिहास कभी नहीं करता। इस दृष्टि से इन पत्रों का मूल्य बहुत अधिक है। वे महात्माजी तथा मीराबेन के २३ वर्ष के अपूर्व सम्बन्ध पर ही प्रकाश नही डालते, न उनमें मात्र एक आध्यात्मिक पिता का अपने ठोकर खाते हुये बच्चे को दिया हुआ अत्यन्त सादा, सीधा और प्रेम-पूर्ण उपदेश है, बल्कि उनमें है उस महत्वपूर्ण युगका पारदर्शी इतिहास, महात्मा के विकसित होते हुए मानवी हृदय का मार्मिक चित्र और उनकी ज्ञान-पिपासा का वह स्रोत जो उनकी आध्यात्मिक खोज का आधार है। उनमें बापू की व्यापक और पैनी दृष्टि सुरक्षित है।

ये पत्र बड़े सरल, सरस और मार्मिक हैं। वे गागर में सागर का सुन्दर उदाहरण है। वे राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है।

स्त्री पुरुष-मर्यादा का विषय भी नाम से स्पष्ट है। उसके लेखक मशरूवालाजी अपने वैज्ञानिक और व्यापक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में उनके स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर लिखे हुए अनेक लेखों का सग्रह है। लेखो पर गहन अधिकार, सतुलित विचारधारा और सात्विक प्रेरणा की छाप है।

यह विषय बहुत कोमल है और उसको समझने और समझाने के लिये अपूर्व सयम की आवश्यकता है। साथ ही उस पर व्यापक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। विद्वान् लेखक ने इन बातो का सफलता-पूर्वक ध्यान रखा है। उन्होने ब्रह्मचर्य, शील, पर्दा, सहशिक्षा, स्पर्श, विवाह का प्रयोजन, लग्नप्रथा, सन्तति नियमन और काम-विकार सभी सम्बन्धित विषयो पर समुचित विस्तार से चर्चा की है और कही भी अनुचित सकीर्णता या आधुनिक उच्छृङ्खलता का समर्थन नही किया है। उन्होने विषय को समझकर मध्यम मार्ग को ग्रहण करने की प्रेरणा की है। वे न सहशिक्षा के विरोधी है, न सन्तति नियमन के। वे उन्हे इस बडे सवाल का कि "स्त्री पुरुष के परिचय स्पर्श और सम्भोग की मर्यादा क्या होनी चाहिए" एक अग मानते है और इस सम्बन्ध में वे परस्त्री या परपुरुष के साथ एकान्तवास न करने के नियम का कठोरता से पालन करने के पक्षपाती है।

उन्होने इस पुस्तक म अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं, अनेक चाबुक लगाये हैं और अनेको भ्रमा का निवारण किया है। सबसे बढकर उन्होने हमें विचार करने के लिये एक नया दृष्टिकोण दिया है।

पुरुष-स्त्री ले० रघुवीरशरण दिवाकर, प्रकाशक—मानव साहित्य सदन, मुरादाबाद। पृष्ठ १७५, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक का विषय भी मशरूवाला की उपरोक्त पुस्तक के समान है और लेखक ने प्राय उन्ही तत्वो पर विचार किया है जो मशरूवालाजी की पुस्तक मे है। दृष्टिकोण में भी विशेष अन्तर नही है। हा, दिवाकरजी ने कही-कही आवेशपूर्ण साहित्यिक शब्दावली और शैलीयुक्त भाषा का प्रयोग किया है जो ऐसे नाजुक विषय के लिये ठीक नही है। वैसे उन्होने मध्यम मार्ग को ही ग्रहण करने की सूचना दी है। उन्होने स्त्री-पुरुष की समानता पर जोर देते हुए उनके सम्बन्ध के वैज्ञानिक अध्ययन का सुझाव दिया है। कामशिक्षा को हव्वा न मानकर उसकी उचित शिक्षा इस प्रश्न का बहुत हद तक हल कर सकती है ऐसी उनकी मान्यता है।

पुस्तक विचारोत्तेजक सामग्री से परिपूर्ण है। उसका प्रभाव और दृष्टिकोण स्वस्थ है।

आत्म चिन्तन ले०—मार्क्स ऑरेलियस अनुवादक—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा श्रीमती लक्ष्मी देवदास गाधी, पृष्ठ सख्या ९२, मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तक सुप्रसिद्ध रोमन तत्वज्ञानी सम्राट् मार्क्स ऑरेलियस की 'चिन्तन' का अनुवाद है। कई वर्ष पूर्व राजाजी ने इसका तमिल में अनुवाद किया था। अब श्रीमती लक्ष्मी देवदास गाधी ने उसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

पुस्तक ज्ञान का भडार है और जीवन की जटिलताओ का सामना करने की शक्ति देती है। यह इस बात का भी प्रमाण प्रस्तुत करती है कि जीवन की मूल समस्याओं का समाधान विश्व के सभी मनीषियों की दृष्टि में प्राय एकसा ही है।

मार्क्स सन् १६१ से १८० तक रोम साम्राज्य का सर्वेसर्वा था। वह उन तत्वज्ञानी सम्राटो में से था जिनकी परम्परा हमारे देश में राजा जनक ने डाली थी। उनकी विचारधारा में भी अद्भुत साम्य है। मार्क्स ने ये विचार किसी के लिये नही लिखे थे, वरन् अपने ही मन में उठने वाले तूफान को शान्त करने के लिये उन्हे खोज निकाला था। इसलिए उनमें गहराई के साथ-साथ अद्भुत सत्य भी है। महानुभूति और शक्ति, विवेक और विज्ञान से ये विचार छलछलाते है।

हमें विश्वास है इनसे अनेक जिज्ञासुओ का समाधान होगा। एक भारतीय के लिये ये विचार नये नहीं है :

१. तुम तो अपनी ही अन्तरात्मा को देखा। उसे पहचानने का प्रयत्न करो।

(शेष पृष्ठ २९९ पर)

ऐसा क्यों ?

गांधी-जयंती

गांधी-जयंती के माने हैं गांधी-विचार की जयंती। गांधीजी के विचारों का आज की भाषा में, एक ही शब्द में, निचोड़ निकालें तो उसके लिए 'सर्वोदय' से अधिक सार्थक शब्द नहीं मिलता। गांधीजी को वैसे 'सत्याग्रह' शब्द बहुत प्रिय रहा है, परन्तु उनके सारे जीवन-आदर्श को सूचित करनेवाला शब्द तो 'सर्वोदय' ही है। सर्वोदय सत्याग्रह की भित्ति पर खड़ा है। सत्याग्रह में सत्य पर जोर अधिक है तो सर्वोदय में अहिंसा पर। सत्याग्रह में व्यक्ति पर अधिक दृष्टि है तो सर्वोदय में समष्टि पर। प्राचीन परिभाषा का अवलम्बन करें तो सत्याग्रह आश्रम-व्यवस्था के समकक्ष हो सकता है और सर्वोदय वर्ण-व्यवस्था के। जो हो, आज भारतवर्ष को, बल्कि सारे संसार को एक नई समाज-व्यवस्था की जरूरत है, जो प्रत्येक व्यक्ति को और घटक को स्वाश्रयी, साथ ही परस्पर-पूरक बनावे। स्वाश्रयी बनेंगे जीवन में श्रम को प्रतिष्ठा देकर और परस्पर-पूरक बनेंगे अहिंसा की वृत्ति को अपना कर। अतः यदि हमें गांधी-जयंती सच्चे हृदय से मनाना है तो हमको श्रम की उपासना करनी चाहिए, केवल चर्खा कात कर नहीं, बल्कि संसार के किसान और मजदूर के जीवन में अपना जीवन मिलाकर, यानी केवल सूत कात और बुन कर नहीं, बल्कि किसान और मजदूर बनकर। किसान और मजदूर बनने के माने यह नहीं हैं कि हम उनकी तरह फूहड़, अपढ़, अनजान बन कर रहें, बल्कि शिक्षित, संस्कारवान, सुसभ्य श्रमिक बनें और जो श्रमिक हैं, उनको संसार के जीवन में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करावें।

हटूंडी, चर्खा द्वादशी, २७-९-५१

'मण्डल' की रजत-जयंती

परम श्रेयार्थी जमनालालजी ने जिस 'सस्ता साहित्य मण्डल' की नींव डाली और श्रद्धेय डा० राजेन्द्रप्रसाद, काका साहब जैसे पुण्यपुरुषों और घनश्यामदासजी जैसे धनी साहित्यरसिक, श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार, देवदासभाई, पारसनाथजी, वियोगी हरिजी, जीतमलजी लूणिया आदि जैसे मंजे हुए अनुभवी कर्मियों ने जिसे अबतक पाला-पोसा वह पौधा अपने जीवन के २५ साल पूरे करके २६वें में जाने की तैयारी कर रहा है। पिछले पच्चीस वर्षों का चित्र जब एक साथ सामने खड़ा होता है और आज जब यह आवाज इधर-उधर से कानों में आती है कि हिन्दी में पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता के रूप में 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया है तो मन को थोड़ा संतोष जरूर मिलता है। इसका मतलब यह नहीं कि 'मण्डल' जो कुछ चाहता है या जो कुछ उसे कर सकना चाहिए था, वह सब उसने कर लिया, मगर इतना मतलब जरूर है कि जो कुछ अबतक हुआ है, वह कार्यकर्त्ताओं को भविष्य के लिए प्रोत्साहन और हिन्दी-भाषी भाई-बहनों से अधिक सहयोग—सक्रिय और सजीव सहयोग—पाने के लिए काफी है। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है, हमारी अविकसित दशा का चिन्ह है कि जो कार्य की जिम्मेदारी ले लेता है, उसे दर-दर सहयोग और सहायता की भीख मांगनी पड़ती है और जिनकी सेवा होती है, वे उस सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्य के प्रति उतने जागरूक नहीं रहते। बात उल्टी होनी चाहिए कि जो सेवा या काम चाहते हैं वे अपने उपयोग के लिए कुछ व्यक्तियों पर उसकी जिम्मेदारी डालें और उन्हें हर तरह का सहयोग और सहायता दे कर उनसे वह काम ले लें। अतः यदि 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने अबतक विविध पुस्तक-प्रकाशन और 'जीवन साहित्य' के द्वारा कुछ उपयोगी सेवा हिन्दी-

ससार को की है तो अब यह होना चाहिए कि इसके विकास के लिए जिस-जिस साधन सामग्री की जरूरत है और जिसकी ओर 'मण्डल' के कर्मचारी समय-समय पर ध्यान दिलाते रहे है, वे उसे खुद आगे आकर प्रस्तुत कर दें। इसके अनुकूल वातावरण हिन्दी-जगत में उत्पन्न हो और उसकी ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो, इसलिए 'मण्डल' ने यह निश्चय किया है कि आगामी मार्च के महीने में मण्डल' की 'रजत जयती' मनाई जाय। उसका कार्य क्रम बनन पर बाद में सूचित किया जायगा। यह जयती इसलिए भी हम मनाना चाहते है कि जिससे हम खुद यह स्पष्टता से देख सकें कि अभी हमें और कितना काम करना बाकी है और अबतक जो कुछ किया है उसमें क्या कसर रही है और अवतक के हमारे सहयोगी लेखको, प्रकाशको, सहायको, प्रोत्साहन-दाताओ को भी यह अवसर मिले कि वे हमारी कमियो की ओर हमारा ध्यान दिला सकें और आगे के लिए हमारी सेवा का पथ विशेष सुगम और सरल कर सकें।

इस अवसर पर हम 'जीवन-साहित्य' का जिसने पिछले बारह वर्षों से लगभग मूक भाव से, बिना तडक-भडक के, हिन्दी के विचार, भावना और कार्य के क्षेत्र में निरतर और अथक सेवा की है, एक विशेषाक निकालना चाहते है, जिसमें 'सस्ता साहित्य मण्डल' की अबतक की सेवाओ और गतिविधियो पर प्रकाश डालने के अलावा हिन्दी-साहित्य और हिन्दी भाषियो और साहित्यिको की वर्तमान ज्वलत समस्याओ पर भी समुचित रूप से प्रकाश डाला जायेगा। उसकी योजना हम बाद में जल्दी ही देने की आशा रखते है। आज तो हम इन दोनो विषयो पर सिर्फ पाठको का ध्यान ही दिला देना चाहते है, जिससे वे इसपर भली भाति विचार कर रखें और जब दोनो योजनाए उनके सामने प्रस्तुत हो तो वे फौरन अपना सहयोग देना प्रारम्भ कर सकें। सोच विचार में उनका अधिक समय न जाय। वह काम वे इसके पहले ही कर रक्खें।

हटूडी, २७ ९ ५१

एक नया अध्याय

जिसको लोगो ने टण्डन-नेहरू विवाद कहा, उसे इन दोनो महान् पुरुषो ने अपनी महानता के अनुकूल ही आपस में निबटा लिया, इससे सारे देश में एक सतोष और उत्साह की लहर फैल गई। खास कर राजर्षि टण्डनजी ने इस सारे प्रकरण में जिस उच्चता और उदात्तता का परिचय दिया है तथा सस्था हित और देश हित के सामने व्यक्तिगत अल्पताओ को प्रभाव नही डालने दिया और अपने सिद्धान्त पर दृढ रहते हुए भी अपने व्यक्ति को पीछे रहने दिया, इससे उनके प्रति प्रत्येक का आदर बढे बिना नही रहा। टण्डनजी ने चाहे काग्रेस का अध्यक्ष-पद खोया हो, परन्तु लोक-हृदय में उनका आसन—जो उनसे मतभेद रखते थे, उनके मन में भी—पहले से ज्यादा ऊचा और मजबूत हो गया। हम सब सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ को उनके इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए। यदि हम लेंगे तो कोई सदेह नही कि इस तरह के हमारे बहुत से विवाद बडी शोभा के साथ समाप्त हो जायगे। खासकर यह बात कि अध्यक्ष-पद से हटने के बाद फौरन ही टण्डनजी का नई कार्य समिति में आना मजूर करना और अपने सहयोग का हाथ बढाये रखना, यह उदाहरण हम सबके सामने सदा के लिए जीता-जागता रहेगा।

लेकिन इससे प० जवाहरलाल की जिम्मेदारी बेहतहा बढ गई है। वे उसको सभालने की योग्यता और क्षमता रखते है, इसमें कोई सदेह नही। परन्तु उन लोगो की भी जिम्मेदारी इसमें कम नही है, जो चाहते थे कि जवाहरलालजी अध्यक्ष पद का भार उठावें। अगर उन्होने अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह से महसूस किया तो नेहरूजी का यह कार्य काल काग्रेस के इतिहास में अवश्य एक नया और सुन्दर अध्याय जोड देगा।

हटूडी, २७ ९ ५१

शुद्धि और आत्म-परीक्षण की आवश्यकता

इधर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग और 'राष्ट्र-भाषा प्रचार-समिति', वर्धा से चौंकाने वाले समाचार

मिले हैं। उनसे ऐसा मालूम होता है कि दोनों दल-बंदी, गुटबंदी और किसी-न-किसी रूप में भीतरी अशुद्धि के शिकार हो रहे हैं। जो सेवा-संस्थाएं हैं, उनमें अधिकार का प्रश्न क्यों खड़ा होना चाहिए, यह आजतक हमारी समझ में नहीं आया। व्यक्ति की अहंता, सीमित दृष्टि और सदाचार के प्रति उपेक्षा, इनमें से कोई एक या अनेक कारण इन झगड़ों के मूल में हो सकते हैं। सही स्थिति क्या है, यह इतनी दूर बैठे हुएं हमारे लिए कहना कठिन है, परन्तु सही मार्ग क्या है, यह हमको स्पष्ट दीख रहा है और यदि सम्मेलन तथा समिति के संचालक और कार्यकर्ता थोड़ा भी प्रयास करें तो उनको भी दीख सकता है। वे परस्पर दोषारोपण और लांछन लगाने की प्रवृत्ति को छोड़ दें या बहुत कम करदें और दोनों जगह जो कुछ खराबी हो रही है, उसकी जिम्मेदारी प्रत्येक व्यक्ति की खुद की कितनी है, यह सोचने लगें तो इसकी कुंजी उनके हाथ आ जायगी। जब कोई काम बिगड़ता है तो जान में हो या अनजान में, किसी एक ही व्यक्ति के दोष से वह नहीं बिगड़ता। लेकिन हम अपने दोष को न ढूंढ कर दूसरे के दोष को देखते हैं और उसी को पकड़े रहते हैं। इससे उसका दोष हम दूर नहीं कर पाते, चाहे उसे हम लोगों की दृष्टि में गिरा भले ही दें, और अपना दोष हम देखना नहीं चाहते, इसलिए वह दूर हो नहीं सकता। दोनों दशाओं में दोनों तरफ़ के दोष या तो प्रबल होते रहते हैं, या छिपे रहते हैं और हम निरंतर बढ़ी हुई उलझन में फंसते हुए चले जाते हैं, जो कि हमको एक अंधेरी खाई में गिरा कर ही छोड़ती है। ऐसी दशा में हमें राजर्षि टण्डनजी की यह सलाह पसंद आई कि सम्मेलन और समिति को दलबंदी का अखाड़ा न बनावें, मगर हम उसमें इतना और जोड़ना चाहते हैं और सो भी कबीर के शब्दों में—

"बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय॥"

हटूंडी, २७. ९. ५१.

चुनाव का बुखार

जब बुखार आता है तो उसका मतलब यह है कि कुदरत भीतर की बुराई को बाहर लाकर कहती है कि इसे निकालकर फेंक दो। अगर उसकी आवाज़ हमने नहीं सुनी तो मौत की तरफ़ इशारा करती है। ऐसा मालूम होता है कि यह चुनाव भी कुदरत की तरफ़ से बुखार-जैसा ही एक वरदान है। यदि हमने कुदरत की चेतावनी और उसका संकेत न समझा तो यह वरदान की जगह अभिशाप सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। चारों तरफ़ से कानों में खबरें आ रही हैं कि जितनी भी बुराइयां हो सकती हैं, चुनाव के सिलसिले में लोग बढ़-चढ़ के कर रहे हैं। यदि यह सही है तो यह हमारे सार्वजनिक ही नहीं, व्यक्तिगत जीवन में घुसी हुई सड़ांद को ज़ाहिर करती है। यदि हम सजग हैं तो सावधान होकर कुशल वैद्य की तरह भीतर के विष को हटाकर अपने शरीर और जीवन को शुद्ध और बलिष्ठ बना लेंगे। यदि हम मूर्ख हैं तो इस बुखार से फिर सन्निपात होगा और सन्निपात से मौत। अच्छी बात तो यह है कि इन चुनावों को हम एक खिलाड़ी की तरह लड़ें। आखिर यह चुनाव इसी बात की तो होड़ है न कि धारा-सभाओं में जाकर कौन व्यक्ति ज्यादा-से-ज्यादा सच्चाई के साथ देश और जनता की सेवा कर सकता है। यदि यही बात है तो होड़ हमारी अच्छाई और योग्यता में लगनी चाहिए, न कि हमारे झूठे या सच्चे दावों में, या येनकेन प्रकारेण प्रतिपक्षी को हराने या गिराने में। आखिर हमारी परीक्षा हमारी सेवा में होने-वाली है, न कि हमारे दावों से। इसलिए चुनाव के सम्बन्ध में दो बातें अवश्य होनी चाहिए। एक तो यह कि हम मतदाताओं से अपनी योग्यता, अपनी ईमान-दारी और सच्चाई की बाबत जो कुछ कहना हो, कहें, न कि प्रतिपक्षी की व्यक्तिगत बुराइयां और दोष सामने लाकर, उभार कर, वायु-मण्डल को गंदा बनावें। दूसरे यह कि गुप्त मतदान (Ballot) की प्रथा उड़ा दी जाय। हमारी राय और अनुभव में असत्य, कायरता और धोखाधड़ी, तीनों को प्रोत्साहन देने वाली यह प्रथा है। मतदाता वायदा कइयों से करता है और आशाओं और इच्छाओं के विपरीत न जाने किसको मत दे आता है। यह क्यों होना चाहिए? हर

मतदाता में यह साहस क्यों न होना चाहिए और हमें क्यों न उत्पन्न करना चाहिए कि मैं फला को मत दूंगा, फला को नहीं ? कोई षड्यन्त्र काम तो है नहीं और षड्यन्त्र भी हो तो भी जहा केवल विचार-दान या मतदान का प्रश्न है, उसमें गुप्तता क्यों ? हम जानते हैं कि जबतक बैलट प्रथा विधिवत् न उठा दी जाय तबतक हमारे सुझाव पर अमल होना कठिन है, परन्तु हरएक मतदाता से हम यह अपील जरूर करना चाहते हैं कि वे जिस किसी को मत दें, खुले आम दें और लिहाज या भय से झूठा वायदा किसी से न करें। यदि वे ऐसा करें तो चुनाव के सिलसिले में जो दूषित गदगियां उम्मीदवार फैलाते हैं या फैला सकते है, उसकी जड बहुत हद तक कट जायगी।

हटूंडी, २७ ९ ५१ —ह० उ०

भूमिदान यज्ञ

सर्वोदय-सम्मेलन के शिवरामपल्ली-अधिवेशन के कुछ पहले से पूज्य विनोबाजी ने जिस महायज्ञ का सूत्रपात किया था, उसका बहुत कुछ प्रत्यक्ष फल इन दिनों हम लोगों के सामने आ चुका है। सैकडों-हजारों एकड भूमि स्वेच्छा से भूपतियो ने उन लोगो के लिए दान दे दी है, जिनके पास जमीन नहीं है। यह निश्चय ही जड का काम है, जो विनोबाजी ने उठाया है। इसका आगे चलकर बहुत व्यापक परिणाम निकलेगा। हमारे देश का रूप ही बदल जायगा। दान का अपने आप में महत्व है, लेकिन भूमिदान की महत्ता, उसकी पवित्रता इसलिए भी अधिक है कि वह साधन-सम्पन्न वर्ग की साधन हीनो के प्रति सद्भावना और त्याग-वृत्ति की द्योतक है। इससे पता चलता है कि लोगो का ध्यान अपने गरीब भाइयों की ओर जा रहा है। स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी विनोबाजी इस यज्ञ के लिए पैदल-यात्रा कर रहे हैं। भगवान् से हमारी प्रार्थना है कि विनोबाजी का यह अनुष्ठान पूर्ण हो। शिवरामपल्ली (हैदराबाद) तक के प्रवास में वह दक्षिण के अनेक स्थानों की पैदल-यात्रा कर चुके हैं और अब उत्तर भारत की यात्रा पर निकले हैं। काम उन्होंने बहुत ही कठिन उठाया है, लेकिन ध्येय की पवित्रता का देखते सन्देह की गुजाइश नहीं रहती कि उसमें सफलता नहीं मिलेगी। दान का हमारे भारतीय जीवन में प्राचीन काल से ही बडा महत्व रहा है। भूमिदान तो बहुत ही उत्कृष्ट माना गया है। हम स्पष्ट देख रहे हैं कि विनोबाजी के इस अनुष्ठान से अहिंसक क्रांति की दिशा में देश के आगे एक नया मार्ग खुलेगा।

—य०

(पृष्ठ २९५ का शेषांश)

२ बुराई का बदला इसी में है कि हम वैसा न करें जैसा कि बुराई करने वाले ने किया।

३ जब चेतना-शक्ति चली जाती है तो दुःख किस बात का ? नये जीवन और नये अनुभव से हानि कैसे हो सकती है ? नवीनता को मृत्यु कैसे कहा जाय।

४ जो दूसरो के प्रति अन्याय करता है वह अपना बुरा ही करता है।

५ अहकार और दम्भ को छोडो। अन्दर तो अहकार हो और बाहर विनय, यह बहुत ही बुरा है।

अनुवाद पुस्तक के अनुरूप सरल और स्पष्ट है। मूल का-सा रस आता है। पुस्तक हर दृष्टि से मनन करने योग्य है।

—'सुशील'

'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक

पर

पत्रों की सम्मति

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का समर्थन और अन्य चिकित्सा-पद्धतियों की तुलना में इसका महत्त्व जानने की पर्याप्त सामग्री 'जीवन साहित्य' के 'प्राकृतिक चिकित्सा' अंकों में संग्रहीत है। कई विशेषज्ञों और अनुभवी लोगों के लेख, विचार आदि एकत्र किए हैं। ऐसा स्थायी साहित्य इन अंकों में आ गया है कि उससे इन अंकों का मूल्य पुस्तकों जैसा हो गया है। ऐसा साहित्य स्वास्थ्य के लिए उपयोगी और लाभदायक है। इसका सर्वसाधारण में खूब प्रचार किया जाना चाहिए।

इंदौर] —लोक-सेवक

इस अंक के कई विशेष लेख पढ़कर यह आस्था अधिक दृढ़ हो जाती है कि अधिकांश व्यक्तियों की सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक प्रकृति ही है क्योंकि मानव शरीर एवं आत्मा की रचना उसी के अनुरूप है। निस्सन्देह प्रकृति-माता दरिद्रनारायण की चिकित्सक है।

बम्बई] —इंडियन पी ई एन

प्रस्तुत अंक में प्राकृतिक चिकित्सा-विषयक लेख हैं। गांधीजी की 'आरोग्य की कुंजी' नामक पुस्तक तथा प्रसिद्ध पाश्चात्य निसर्गोपचारक डा० लूई कुने की पुस्तक 'मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार?' का सारांश भी इसमें दिया गया है। ...अंक पठनीय है। भाषा सरल और सर्वसाधारण के समझने योग्य है।

बम्बई] —साधना (मराठी)

पहले अंक में सिद्धान्त-सम्बन्धी अधिकृत लेखों के अलावा कई सज्जनों के प्राकृत्योपचार-सम्बन्धी अनुभव भी दिये गए हैं, जो जिज्ञासु पाठकों को प्राकृत्योपचार की ओर आकृष्ट करने की दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। दूसरे में उपचार हैं।... दोनों अंक संग्रह-योग्य हैं।

वर्धा] —राष्ट्र-भारती

कतिपय रोगों के प्राकृतिक उपाय इस अंक के लेखों में दिये गए हैं। प्रत्येक लेख अपने में पूर्ण है अर्थात् इन्हें पढ़कर पीड़ित व्यक्ति अपना उपचार स्वयं कर सकता है।....आशा है कि प्रत्येक साक्षर व्यक्ति इस अंक से लाभ उठाएगा। वास्तव में भारत जैसे निर्धन देश के लिए ऐसे उपायों से परिचित होना परमावश्यक है। मानव-कल्याण के हित ऐसे अंक प्रकाशित करने वाले सम्पादकों का कार्य स्तुत्य है।

शिमला] —प्रदीप

प्रस्तुत अंक प्राकृतिक उपचार और महत्ता को समझाने वाले हैं। इसके सभी लेख अनुभवी और महान् व्यक्तियों के लिखे हुए हैं।

कानपुर] —सुमित्रा

'जीवन साहित्य' के प्रस्तुत जून एवं जुलाई के अंक में प्राकृतिक चिकित्सा को लेकर योग्य सम्पादकों ने उस चिकित्सा के विशेषज्ञ, अनुभवी एवं विद्वान् लेखकों के लेखों का अतीव सुन्दर चयन करके प्रशंसनीय कार्य किया है। ..१४० पृष्ठों का यह अंक बहुत उपयोगी एवं घर-घर में रखने योग्य है।

वृन्दावन] —भक्त भारत

Reg. No. E. P. 479

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

राष्ट्रपिता

अक्तूबर १९५१

आठ आना

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन - साहित्य** [एक प्रति का ।।)

लेख-सूची

'जीवन-साहित्य' के हितैषियों से

'जीवन साहित्य' आपका ही पत्र है। उसका ध्येय आर्थिक लाभ उठाना नहीं, बल्कि उपयोगी एवं सात्विक सामग्री देकर जनसाधारण की सेवा करना है, लोक-रुचि को ऊंचा उठाना है। अपने इस पत्र के प्रति आपका भी दायित्व है, जिसे आप निम्न प्रकार से पूरा कर सकते हैं :

१. यदि आप ग्राहक नहीं हैं तो ४) रु० वार्षिक शुल्क के भेजकर शीघ्रातिशीघ्र ग्राहक बन जायं।

२. अपने मित्रों, सम्बन्धियों तथा परिचितों को ग्राहक बनावें।

३. ऐसे पाठकों के पते भेजें, जो पत्र के ग्राहक बन सकें।

४. पत्र के उद्देश्य के अनुरूप रचनाएं भेजें। कृपया इतना ध्यान रक्खें कि लेख साफ हो। उपयोग न हो सकने की दशा में वापस भेजने के लिए आवश्यक टिकिट अवश्य भेजें।

५. पत्र में जो कमियां दिखाई दें अथवा उसकी सामग्री आदि में आप कोई परिवर्तन-परिवर्द्धन चाहते हों तो उसकी सूचना समय-समय पर देते रहें।

व्यवस्थापक

जीवन-साहित्य

नई दिल्ली

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

अक्तूबर १९५१ वर्ष १२, अंक १०

युग-पुरुष

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

प्रथम अहिंसक मानव बन तुम आये हिंस्र धरा पर
मनुज-बुद्धि को मनुज-हृदय के स्पर्शों से संस्कृत कर।
निबल प्रेम को भाव-गगन से निर्मम धरती पर धर
जन-जीवन के बाहुपाश में बांध गये तुम दृढ़तर।
द्वेष-घृणा के कटु प्रहार सह, करुणा दे प्रेमोत्तर
मनुज-अहं के गत विधान को बदल गये हिंसाहर।
घृणा-द्वेष मानव-उर के संस्कार नहीं हैं मौलिक,
वे स्थितियों की सीमाएँ हैं जन होंगे भौगोलिक।
आत्मा का संचरण प्रेम होगा जन-मन के अभिमुख,
हृदय-ज्योति से मंडित होगा हिंसा-स्पर्धा का मुख।
लोक-अभीप्सा के प्रतीक नव स्वर्ग मर्त्य के परिणय,
अग्रदूत बन भव्य युग-पुरुष के आए तुम निश्चय।
ईश्वर को दे रहा जन्म युग-मानव का संघर्षण,
मनुज-प्रेम के ईश्वर, तुम यह सत्य कर गये घोषण।

●

भारतीय संस्कृति की बुनियाद

श्री काका कालेलकर

लोग कहते हैं कि 'अहिंसा' शब्द अभावरूप है, जैसे 'मोक्ष' शब्द भी अभावरूप ही है। मैं मानता हूं कि इन शब्दों का यह दोष नहीं है, किन्तु गुण है। अगर अहिंसा के लिए भावरूप कोई शब्द रचा हो तो वह है प्रेम या मैत्री। 'प्रेम' शब्द का दुरुपयोग हो सकता है। 'मैत्री' शब्द में वह डर नहीं है। असल में अहिंसा, मैत्री और प्रेम या स्नेह में आत्मीयता का भाव आता है। हम अपना भला चाहते हैं, अपने दोषों को छोटा करके देखते हैं, अपनी भूलों के लिए क्षमा करते हैं और सुधर जाने के संकल्प पर तुरन्त विश्वास करते हैं। जहाँ-जहां हमारे मन में आत्मीयता होती है, वहां-वहां हमारी ये सब वृत्तियां स्वभाविकता से प्रकट होती हैं।

अपने-पराये का भेद भूल कर दूसरों का भी भला चाहना, दूसरों के भले के लिए, आराम के लिए स्वयं कष्ट उठाना और दूसरों के दोषों के प्रति क्षमा-वृत्ति रखना, यही है अहिंसा, यही है मैत्री-भावना। जहां मैत्री-भावना है वहां बदला लेने की इच्छा नहीं होती। जब अमृतसर (पंजाब) में जनरल डायर ने हमारे लोगों का कत्ल किया और उनको तरह-तरह से पीड़ित और अपमानित किया तब गांधीजी ने सरकार से न्याय की मांग की; किन्तु साथ ही यह भी कहा कि हम जनरल डायर को सज़ा नहीं कराना चाहते हैं। गांधीजी ने यह जो नया रुख धारण किया, उसमें कोई आश्चर्य नहीं था; किन्तु सारे राष्ट्र ने कुछ सोचने के बाद उनकी इस बदला न लेने की नीति को तुरन्त मान लिया। इसपर से सिद्ध होता है कि हमारे देश की संस्कृति में अहिंसा गहराई तक पहुंची हुई है। गांधीजी-जैसे समर्थ कर्मयोगी ही लोगों के हृदय में सोयी हुई अहिंसा को जागृत कर सकते हैं।

आज का दिन क्षमा करने और क्षमा मांगने का है। जिन महावीरों ने इस व्रत की, इस रिवाज की और ऐसे दिनों* की स्थापना की, उनके हृदय में सच्ची और जीवित अहिंसा थी। वे शान्ति के साथ कार्योत्सर्ग कर सकते थे। हम लोग मुंह से अहिंसा का पुरस्कार भी करते हैं और अन्याय करनेवालों को सज़ा भी दिलाना चाहते हैं। इतना ही नहीं, अपितु कई दफे पाप का बदला घोरतर पाप करके ही लेना चाहते हैं।

सारी दुनिया इस दोष में, इस नशे में फंसी हुई है। हिटलर ने राष्ट्रीय पैमाने पर यहूदियों क ध्वंस किया। स्टालिन ने अपने लोगों को आदेश देकर जर्मनों का ध्वंस सिखाया। उसने अपने लोगों से कहा कि जबतक काफी मात्रा में जर्मनों का ध्वंस न कर सकोगे तबतक तुम्हें विजय मिलने की नहीं है।

आज अमेरिका हमसे नाराज़ है; क्योंकि हम रूस का ध्वंस नहीं कर पाते, उसकी ओर तथा चीन देश की ओर शक की निगाह से नहीं देखते। आज चंद लोग हमपर बहुत नाराज़ हैं; क्योंकि हम पाकिस्तान से प्रचारित ध्वंस-धर्म का बदला ध्वंस-प्रचार से नहीं लेते। हमारे पुण्य-पुरुषों ने हमें सिखाया कि ध्वंस का शमन ध्वंस से नहीं होता। वैर से वैर बढ़ता ही है। वैर का शमन अवैर से ही हो सकता है।

हिन्दू संस्कृति की बुनियाद का वचन है—'न पापे प्रतिपाप: स्यात्।' पापी का बदला लेने के लिए हम स्वयं पापी न बनें। मैत्री की दृष्टि से हम सबकी ओर देखें। सबकी ओर यानी मित्र, उदासीन, तटस्थ, शत्रु, पापी, अनाचारी, दुराचारी, आततायी और दंभी ऐसे सबकी ओर हम मैत्री भाव से ही देखें और चलें।

---

* के उपलक्ष्य में १६ सितम्बर १९५१ को दिल्ली के टाउनहाल में आयोजित सभा में दिया गया भाषण।

भारत सरकार ने पाकिस्तान के प्रति, अमेरिका और इगलैंड के प्रति, जापान और चीन के प्रति यही भाव रखा है। अमेरिका-जैसे अनेक देश इसलिए हम-पर भले ही नराज हो, किन्तु वे समझ गये है कि हमारी यह नीति ही श्रेष्ठ नीति है पाकिस्तान कुछ भी करे, हम उन्हें अन्याय नही करने देंगे, किन्तु साथ-साथ उनके प्रति मैत्री-भाव रखेंगे। बधुभाव को न हम छोडेंगे, न भूलेंगे।

मैंने अबतक अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र की बातें की। हमे *अपने समाज के अन्दर भी यही क्षमावृति और* मैत्री-भावना दृढ करनी चाहिए। हमारे हाथो किसी का अन्याय न हो और किसी का, उसने हमारा अन्याय किया, इसलिए हम ध्वस न करें। अन्याय का प्रतिकार अवश्य करें, किन्तु बदला लेने की बात सोचें तक नही।

लेकिन मेरे मन में शका उठती है कि आज की इस सभा के जैसी सभा में इकट्ठा होने से यह काम हो सकेगा ?

जब कोई नई दवा बताई जाती है तब हम उसे श्रद्धा से ले लेते है। दूसरा चारा ही नही रहता है, किन्तु जब कोई पुरानी दवा हमारे सामने रखी जाती है तब हम पूछते हैं कि क्या ऐसा कोई सबूत है कि इस दवा के सेवन से कोई आदमी रोग-मुक्त हुआ है ?

धर्म के जगद्गुरु पोप हर साल, बडे दिनो में, मैत्री-भावना का उपदेश करते है और शान्ति के लिए *प्रार्थना करते है। उनके उस प्रयास का कही कुछ असर नही दीख पडता है। हमारे जैन-भाई* हर साल सबको क्षमा करते है और सबसे क्षमा की याचना भी करते हैं, लेकिन अन्य समाज की अपेक्षा हमारे *जैन-भाई* अधिक क्षमाशील हैं, ऐसा कोई अनुभव नही है। साधुओं के बीच भी जो ईर्ष्या पाई जाती है, वह *शाब्दिक सकल्पो* से और पवित्र सूत्रो के रटन से दूर नही होती। धर्म का रास्ता कभी सस्ता नही *होता है। आज हम अच्छे विचार व्यक्त करके या सुनकर* सतोष न मानें कि हमने आज कुछ किया। चद *लोग तो ऐसा ही मानते है कि हमने आजतक का पाप* पश्चाताप करके धो डाला। अब नया पाप करने की छुट्टी मिल गई।

ऐसा कहकर भी हम थक गए है कि बोलने के दिन खत्म हो गये है। अब कुछ करना चाहिए। व्रत-त्योहार का दिन आ गया, इस वास्ते कुछ करना चाहिए, कुछ कहना चाहिए। कम-से-कम एक *अच्छा सकल्प* करना चाहिए, ऐसा *सोचकर हम इकट्ठा होते है।* सभा के अन्त में मान लेते है कि हमने कुछ पुण्य कर्म किये सही, किन्तु आजतक ऐसे जितने भी दिन मनाये, उसका नतीजा क्या हुआ, सो भी सोचना चाहिए। अगर हम अतर्मुख हो सकें, निश्चय का बल लगाकर कोई सकल्प कर सकें तो आज का दिन हमने मनाया।

एक बात मैं हमने अवश्य प्रगति की है। वह यह कि हम छोटे-छोटे फिरको से बाहर निकले। अच्छी बात सुनने के लिए, अच्छा कार्य करने के लिए और अगर हो सके तो जीवन में परिवर्तन करने के लिए हम अपने फिरके में बन्धे नही रहते है। कूपमडूक वृत्ति हमने छोड दी हैं। अन्य धर्मी लोगो पर हम विश्वास करने लगे हैं। उनके साथ मेलजोल बढा रहे है, *उनकी बातें सुनने को तैयार हैं। इस तरह हम अपने* व्रत-उत्सव में औरो को बुलाते हैं उसी तरह हमें भी उनके व्रत-उत्सव में शरीक होना चाहिए। सिर्फ मुसलमानो की बात मैं नही कर रहा हू। ईसाई, यहूदी, पारसी आदि सब धर्मों की और सब देश के लोगो के शुभ कार्यों म हमें शरीक होना चाहिए। दिल्ली जैसे राजधानी के शहर में दुनिया के सब देशो के प्रतिनिधि पाये जाते है। यहा हम सबसे मिल सकते हैं, सबके साथ मैत्रीभाव बढा सकते हैं। यह भी कोई छोटी साधना नही है।

साहित्य-स्रष्टा गांधीजी

श्री विष्णु प्रभाकर

श्री डी० एफ० कराका ने अपनी एक पुस्तक के आरम्भ में लिखा है—"गान्धीजी पर कुछ लिखना, कहना तीर्थयात्रा पर जाने के समान है।" इस दृष्टि से उनके लिखे अर्थात् उनके साहित्य की चर्चा करना तीर्थ-यात्रा से भी बढ़ कर होना चाहिए। तब उस पुण्य को कौन छोड़ना चाहेगा? जैसा कि सब जानते हैं गान्धीजी ने बहुत कुछ लिखा है; परन्तु क्या वे साहित्यकार थे? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

प्रथम दृष्टि में तो ऐसा लगता है कि अपनी महानता के कारण वे साहित्य-स्रष्टा से अधिक साहित्य का विषय थे। सन् १९१९ से लेकर आजतक के समूचे साहित्य पर उनकी छाया पड़ी हुई जान पड़ती है और आनेवाला साहित्य उनके प्रभाव से मुक्त हो सकेगा यह कहना भी प्रायः असम्भव-सा ही लगता है। वस्तुतः वे जीवन के एक विशिष्ट दृष्टिकोण के प्रणेता थे। वह दृष्टिकोण जबतक बना रहेगा तबतक उनका प्रभाव भी साहित्य से दूर नहीं होगा। राजनीति की भाषा में इसी विशिष्ट दृष्टिकोण को गान्धीमार्ग या गान्धीवाद कहा जाता है।

पर इसके बावजूद वे साहित्यकार थे। नेता के रूप में नहीं, लेखनी के धनी के रूप में। वे अधिकतर गुजराती और अंग्रेज़ी में लिखते थे, इसलिए उन्हीं भाषाओं पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। गुजराती के विद्वान् उन्हें एक अनुपम गद्य शैलीकार मानते हैं और जब लन्दन से गोलमेज परिषद् के अवसर पर उन्होंने अमेरिका के लिये सन्देश ब्राडकास्ट किया था तब अमेरिकावाले उनकी सरल, मुहावरेदार पर शक्तिशाली अंग्रेजी सुनकर चकित रह गये थे। यद्यपि दूसरी भाषाओं में उन्होंने नहीं के बराबर लिखा है; पर अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें प्रभावित अवश्य किया है। उनकी शैली को अंग्रेजी का 'बिब्लिकल' शब्द ठीक-ठीक व्यक्त करता है। उसकी सरलता, संकेत-प्रियता,, संयत विनोदप्रियता, सूत्रता और सहज तार्किक गम्भीरता के कारण ही उसमें अपूर्व शक्ति है। सबसे बढ़कर उनकी आत्मीयता के कारण उसमें जो पारदर्शिता आगई है वह उनकी अपनी चीज़ है।

गान्धीजी साहित्यकार थे; परन्तु अपने बावजूद अर्थात् वे साहित्यकार बनने नहीं चले थे। उनका लक्ष्य कुछ और ही था। फुलॉप मिलर ने कहीं लिखा है—"किसी ज़माने में बुद्ध के सम्मुख जिस तरह मानव-*प्राणी की वेदना अपना घूंघट खोल कर खड़ी होगई* थी उसी तरह अब वह गांधी के सामने खड़ी होगई है। इसलिए वे अपनी भावनाएं और शक्तियां ऐसे किसी उद्योग में खर्च नहीं कर सकते जो भूखों को खिलाने में, नंगों की काया ढांकने में और दुखियों को ढाढस बंधाने में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग न दे।" इसलिए वे कला, काव्य और साहित्य को उपयोगिता की कसौटी पर परखते थे। कवि ठाकुर को एक बार उन्होंने एक पत्र में लिखा था—"अपनी काव्य प्रतिभा के प्रति सच्चा रहकर कवि आगामी कल के लिये जिन्दा रहता है और दूसरों को भी उस कल के लिये जीवित रहने का आदेश देता है। वह हमारे चकित चक्षुओं के सामने उन चिड़ियों के सुन्दर शब्द-चित्र खींचता है जो उषा के आगमन पर महिमा के गीत गाती हुई शून्य में अपने रंगीन पंखों से उड़ान भरती हैं। ये चिड़ियां दिन भर का अपना भोजन प्राप्त करती हैं और रात के आराम के बाद आकाश में उड़ती हैं। उनकी रगों में पिछली रात नए रक्त का संचार हो चुका है, पर मुझे ऐसे पक्षियों को देखने से वेदना भी हुई जो निर्बलता के कारण अपने पंख फड़फड़ाने का साहस भी नहीं कर सकते। भारत के विस्तृत आकाश के नीचे मानव-पक्षी रात को सोने का ढोंग करता है— भूखे पेट उसे बराबर नींद नहीं आती और जब वह सुबह बिस्तर से उठता है तो उसकी शक्ति पिछली रात से कम हो जाती है।

लाखों मानव-पक्षियों को रातभर भूख-प्यास से पीडित रहकर जागरण करना पडता अथवा जागृत सपनों म उलझे रहना पडता है। यह अपने अनुभव की, अपनी समझ की, अपनी आखों देखी अकथ दुखपूर्ण अवस्था और कहानी है। कबीर के गीतों से इस पीडित मानवता को सान्त्वना दे सकना असम्भव है। यह लक्षावधि भूखी मानवता हाथ फैलाकर, जीवन के पख फडफडा कर, कराह कर केवल एक कविता मागती है—पौष्टिक भोजन।"

सन् १९३५ में गुजराती साहित्य-सम्मेलन के बारहवें अधिवेशन के सभापति के पद से स्त्रैण साहित्य की निन्दा करते हुए भी उन्होने कहा था—"जब मैं सेवाग्राम जा और वहा के अस्थिपजर लोगो का खयाल करता हू तो मुझे आपका साहित्य निरर्थक मालूम होने लगता है।"

मिलर की मान्यता का यह स्पष्ट प्रमाण है परन्तु जिन शब्दो में और जिस ध्वनि के साथ गान्धीजी ने भूखी मानवता के लिये 'पौष्टिक भोजन' की माँग की है *कविता या साहित्य क्या कभी उससे ऊचे* स्तर पर उठे है? क्या साहित्य का लक्ष्य इसके अतिरिक्त कुछ और होता है? युग-युग से महान् आत्माओ का जो लक्ष्य रहा है वही *"मानव" साहित्य का लक्ष्य है।* महात्मा गान्धी ने साहित्य से छायावाद के स्वप्निल जगत को बहिष्कृत करके मानव के यथार्थ को उसके स्थान पर प्रतिष्ठित किया। उन्होने साहित्य की सृष्टि करने का दावा नही किया, अपितु साहित्य के तत्कालीन मूल्यांकनों का विरोध किया, परन्तु जिन शब्दो मे उन्होने अपने विरोध को व्यक्त किया वे ही स्वय साहित्य बन गए। यह एक अपूर्व विरोधाभास है। उन्हींके शब्दो में इसका रहस्य इस प्रकार है—"कला को जीवन से श्रेष्ठ मानने मे तो जीवन का स्रोत ही सूख जाएगा। मेरे लिये तो सर्वश्रेष्ठ कलाकार वही हैं जो सर्वोत्तम जीवन व्यतीत करता है। जीवन व्यतीत करने की कला ही सर्वश्रेष्ठ कला है। मैं कला के प्रति नहीं, कला के थोथे बडप्पन या अकड के प्रति आपत्ति उठाता हू। दूसरे शब्दो म मैं यू कहू कि मेरे विचार म कला के 'मूल्य' भिन्न है।"

जीवन अर्थात् मनुष्य में उनकी इस अगाध आस्था *का प्रमाण उनकी मान्यताओ से भी स्पष्ट हो जाता* है। सत्य और अहिंसा से अलग वे कुछ नही थे। सत्य उनके लिये देवता की आराधना का प्रतीक था और अहिंसा मनुष्य मे उनकी आस्था का। उनके व्यक्तिगत जीवन मे जो स्थान सत्य का था वही स्थान अहिंसा का उनके सार्वजनिक जीवन में था। अर्थात् अपने सार्वजनिक जीवन में *उन्होंने एक क्षण के लिए भी मनुष्य में अपनी आस्था को नहीं डिगने दिया। वे एक आदोलन के नेता* थे और उस आन्दोलन का लक्ष्य था स्वराज्य अर्थात् मानव की स्वतन्त्रता। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म असमानता और शोषण का क्षय तथा समानता और समृद्धि का उदय चाहते थे।

जीवन मे जो भी सफलता या असफलता उन्हे मिली उसका कारण उनकी अहिंसा अर्थात् मनुष्य म आस्था थी और सत्य तथा अहिंसा की इस सम्यक् साधना के कारण उनके लिये जीवन कोई रहस्य नही रह गया था। वे जीवन की कला मे पारगत होगये थे और *उनकी इस मान्यता के अनुसार 'कि जो अच्छी* तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है' वे स्वय सच्चे कलाकार थे। इसलिए उन्होने जब कभी और जो कुछ भी लिखा या बोला वही साहित्य बन गया।

पत्रकार के रूप में अथवा स्वतन्त्रता-सग्राम के एक वक्ता के रूप में, पत्र-लेखक के रूप में या भेंट के समय की बातचीत के रूप में, प्रार्थना सभा के भाषणों के रूप में *या व्यक्तिगत सस्मरणो के रूप म, आत्मकथा के रूप में या* अनेक क्षेत्रो मे किये गए प्रयोगो पर लिखे गये लेखो के रूप में उनका जो भी साहित्य उपलब्ध है वह प्रभाव की दृष्टि से तो शक्तिशाली है ही, परिमाण की दृष्टि से भी विपुल है और उनकी यह पूजी सहज ही उन्हे प्रथम श्रेणी के लेखको में ला बैठाती है।

निस्सन्देह वे कवि, कलाकार या आलोचक नहीं थे, पर आत्मकथा लेखक के रूप में उन्हे कोई पराजित *नही कर सकता। जिस तटस्थता और स्पष्टता के साथ* उन्होने अपनी जीवनगाथा लिखी है वह और किसी के

लिये सम्भव नहीं है। उसकी शक्ति उनके जीवन की कला में है। इसी कारण उनके दिल में जो कुछ होता था, कह डालते थे छिपाते कुछ नहीं थे। जीवन में यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसा के परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नही लिख सकता।

आत्मकथा के अतिरिक्त संस्मरण लिखने मे भी वे कुशल थे। 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' आदि इस प्रकार की कई पुस्तकें उन्होंने लिखी है; परन्तु सबसे अधिक सफलता उन्हें अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के संस्मरण लिखने मे मिली है। जिस प्रकार उन्होंने अपना विश्लेषण करते समय सत्य को नही छोड़ा उसी प्रकार दूसरों के बारे में लिखते समय उन्होंने अहिंसा को अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्य में जहां उनकी पारदर्शिनी दृष्टि का चमत्कार है वहां वह मानव के सहज सौन्दर्य-सहानुभूति से भी आप्लावित है। जब कभी उन्होंने किसी के बारे में लिखने के लिये कलम उठाई है, अपनी सरल, सुबोध और सुगठित भाषा में उस वर्ण्य व्यक्ति का मार्मिक चित्र उतार कर रख दिया है। एक तो अपने जीवन के प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टि-कोण (सत्य) के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहार के इतने अधिक व्यक्तियों के सम्पर्क में आने के तथा मानवता (अहिंसा) में अपनी आस्था के कारण उनकी परख बड़ी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वतः ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ में पं० जवाहरलाल नेहरू के लिए उन्होंने जो कुछ लिखा था वह थोड़े से शब्दों में एक अपूर्व चित्र है—"बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेम में उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहां उनमें एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहां एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। वह स्फटिक मणि की भांति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।"

दक्षिण अफ्रीका के श्री थम्बी नायडू का चित्र देखिए—"उनकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी। नवीन प्रश्नों को वे बड़ी फुर्ती के साथ समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी आश्चर्यजनक थी। भारत कभी नहीं आये थे, पर फिर भी उनका उसपर अगाध प्रेम था। स्वदेशा-भिमान उनकी नस-नस में भरा हुआ था। उनकी दृढ़ता चेहरे पर ही चित्रित थी। उनका शरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था। मेहनत से कभी थकते ही न थे। कुर्सी पर बैठकर नेतापन करना हो, तो उस पद की भी शोभा बढ़ादें, पर साथ ही हरकारे का काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीति से वे कर सकते थे। सिर पर बोझा उठाकर बाजार से निकलने में थम्बी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनत के समय न रात देखते, न दिन। कौम के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने के लिए हर किसी के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे।"

पर इन शब्द-चित्रों से कोई यह न समझले कि गांधीजी विशेषणों का ही प्रयोग करना जानते थे। वैसे वे जब विशेषणों का प्रयोग करते थे तो दिल खोल कर करते थे; परन्तु गुणों के साथ किसी व्यक्ति की दुर्बलता भी उनसे छिपी न रहती थी और अवसर आने पर वे उसी स्पष्टता से उसे भी प्रकट कर देते थे। सत्य का पुजारी व्यक्तित्व का अधूरा चित्रण कर ही नही सकता। ऊपर जिन थम्बी नायडू का शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हीं के बारे में उसी चित्र में गांधीजी ने आगे लिखा है—"अगर थम्बी नायडू हद से ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता, तो आज वह वीर पुरुष ट्रांसवाल में काछलिया की अनुपस्थिति में आसानी से कौम का नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रांसवाल के युद्ध के अन्त तक उनके क्रोध का कोई विपरीत परि-णाम नहीं हुआ था, बल्कि तब-तक उनके अमूल्य गुण जवाहिरों के समान चमक रहे थे, पर बाद में मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होंने उनके गुणों को छिपा दिया।"

सरोजिनी नायडू का चित्र उन्होंने एक ही वाक्य में उतार दिया है—"सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती हैं, मगर सच्ची संस्कृति की कीमत देकर।"

वस्तुत किसी भी व्यक्ति का ठीक-ठीक विश्लेषण करने में उन्हें अद्भुत कुशलता प्राप्त थी। कम-से-कम और नपे-तुले सार्थक शब्दों में वर्ण्य व्यक्ति के अन्दर और बाहर को कागज पर उतार कर रख देते थे—

"सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्र की तरह। गोखले गङ्गा की तरह। उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्र में डूबने का भय रहता है, पर गङ्गा की गोदी में खेल सकते हैं उसमें डोंगी पर चढकर तैर सकते हैं।"

लोकमान्य तिलक से उनके मतभेद की बात सब जानते हैं। उनके जीवन-काल में और मृत्यु के बाद गांधीजी ने उन मत-भेदों को कभी कम करके बताने या भुलाने की चेष्टा नहीं की, पर इसी कारण वे लोकमान्य का सही मूल्यांकन करने में नहीं झिझके। उनकी मृत्यु पर उन्होंने लिखा—

"लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक अब संसार में नहीं है। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे संसार से उठ गए। हम लोगों के समय में ऐसा दूसरा कोई नहीं, जिसका जनता पर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारों देशवासियों की उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरशः सत्य है कि वे जनता के आराध्य देव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारों आदमियों के लिए नियम और कानून-से थे। पुरुषों में पुरुष-सिंह संसार से उठ गया। केसरी की घोर गर्जना विलीन हो गई।"

अनुभूति की तीव्रता और वास्तविकता का और भी सुन्दर चित्रण उनके संस्मरणों में हुआ है। घटनाओं और वार्तालाप के द्वारा उन्होंने वर्ण्य व्यक्ति की बाहरी और आंतरिक सुन्दरता—कुरूपता की रेखाओं को इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाक के साथ-साथ व्यक्ति का सम्पूर्ण चित्र हृदय पर पत्थर की लीक बन जाता है। कस्तूरबा गांधी, बालासुन्दरम्, देशबन्धुदास, घोषालबाबू तथा बासन्ती देवी आदि के संस्मरण इस दृष्टि से बहुत ही सुन्दर बने हैं।

"मैं घोषाल बाबू के पास गया। उन्होंने मुझे नीचे से ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और बोले—'मेरे पास कारकुन का काम है। करोगे?'

मैंने उत्तर दिया—'जरूर करूंगा। अपने बस-भर सबकुछ करने के लिए मैं आपके पास आया हूं।"

'नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसी को कहते हैं।'

"कुछ स्वयंसेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिब होकर कहा—'देखते हो, इस नवयुवक ने क्या कहा?"

"फिर मेरी ओर देखकर कहा—'तो लो यह चिट्ठियों का ढेर है। देखते हो न सैंकडों आदमी मुझसे मिलने आया करते हैं। अब मैं उनसे मिलूं, या जो लोग फालतू चिट्ठियां लिखा करते हैं, उन्हें उत्तर दूं? इनमें बहुतेरी तो फिजूल होंगी, पर तुम सबको पढ जाना। जिनकी पहुंच लिखना जरूरी हो उनकी पहुंच लिख देना और जिनको उत्तर के लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।'

"उनके इस विश्वास से मुझे बडी खुशी हुई। श्री घोषाल मुझे पहचानते न थे। मेरा इतिहास जानने के बाद तो कारकुन का काम देने में उन्हें जरा शर्म मालूम हुई, पर मैंने उन्हें निश्चित कर दिया—'कहां मैं और कहां आप! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अहसान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेस में काम करना है।'

घोषालबाबू बोले—'सच पूछो तो यही 'सच्ची मनोवृत्ति है, परन्तु आजकल के नवयुवक ऐसा नहीं मानते, पर मैं तो कांग्रेस को उसके जन्म से जानता हूं। उसकी स्थापना करने में मि० ह्यूम के साथ मेरा भी हाथ था।'

"हम दोनों में खासा सम्बन्ध हो गया। दोपहर के खाने के समय वह मुझे साथ रखते। घोषालबाबू के बटन भी 'बेरा' लगाता था। यह देखकर 'बेरा' का काम

खुद मैंने लिया। मुझे वह अच्छा लगता। बड़े-बूढ़ों की ओर मेरा बड़ा आदर रहता था। जब वे मेरे मनोभावों से परिचित हो गये तब अपनी निजी सेवा का सारा काम मुझे करने देते थे। बटन लगवाते हुए मुंह पिचकाकर मुझसे कहते—'देखो न, कांग्रेस के सेवक को बटन लगाने तक की फुरसत नहीं मिलती; क्योंकि उस समय भी वे काम में लगे रहते हैं।' इस भोलेपन पर मुझे मन में हंसी तो आई, परन्तु ऐसी सेवा के लिए मन में अरुचि बिल्कुल न हुई।"

वासन्ती देवी का, देशबन्धु की मृत्यु के बाद, जो चित्र गांधीजी ने खींचा है, वह एक साथ मानवीय, करुण और यथार्थ है—

"वैधव्य के बाद पहली मुलाकात उनके दामाद के घर हुई। उनके आसपास बहुतेरी बहनें बैठी थीं। पूर्वाश्रम में तो जब मैं उनके कमरे में जाता तो खुद वही सामने आतीं और मुझे बुलातीं। वैधव्य में मुझे क्या बुलातीं? पुतली की तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनों में से मुझे उन्हें पहचानना था। एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा। मांग में सिन्दूर, ललाट पर कुंकुम, मुंह में पान, हाथ में चूड़ियां और साड़ी पर लैस, हंस-मुख चेहरा—इनमें से एक भी चिन्ह मैं न देखूं, तो वासन्ती देवी को किस तरह पहचानूं? जहां मैंने अनुमान किया था कि वे होंगी वहां जाकर बैठ गया और गौर से मुखमुद्रा देखी। देखना असह्य हो गया। छाती को पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा। उनके मुख पर सदा शोभित हास्य आज कहां था? मैंने उन्हें सान्त्वना देने, रिझाने और बातचीत कराने की अनेक कोशिशें कीं। बहुत समय के बाद मुझे कुछ सफलता मिली। देवी जरा हंसी। मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला—'आप रो नहीं सकतीं। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बड़ी लड़की) को बड़ी मुश्किल से चुपकी रक्खा है। बेबी (छोटी लड़की) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्र वधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयास से शान्त हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।'

"वीरांगना ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—'मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।'

"मैं इसका मर्म समझा, मुझे संतोष हुआ। रोने से दुःख का भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहन को तो भार हल्का नहीं करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे? अब मैं कैसे कह सकता हूं—'लो चलो, हम भाई-बहन पेट भर रोलें और दुःख कम कर लें।'

"वासन्ती देवी ने अबतक किसी के देखते आंसू की एक बूंद तक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नहीं रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानों भारी बीमारी से उठी हों। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटर में तो बैठीं; पर बोलने क्यों लगीं। मैंने कितनी ही बातें चलाईं—वे सुनती रहीं, पर खुद उसमें बरायेनाम शरीक हुईं। हवाखोरी की तो, पर पछताईं। सारी रात उन्हें नींद न आई। 'जो बात मेरे पति को अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनी ने की। यह क्या शोक है।' ऐसे विचारों में रात बीत गई।

"वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेल के कड़ाह में भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले उसके दुःख की कल्पना करके कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःख को तुम संभाल कर रखना। वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गए हैं और उतरेंगे। वासन्ती देवी की जय हो!"

भावना की अतिरंजना ने इस करुण चित्र को कितना सशक्त बना दिया है; लेकिन जहां उन्होंने अपने युग के महापुरुषों पर लिखा, वहां लुटारु, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियों को भी नहीं छोड़ा है। ये कुछ बानगी के चित्र हैं। ये चित्र किसी उद्घोषित साहित्यिक के द्वारा नहीं लिखे गए, परन्तु एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गए हैं जिसका समस्त जीवन 'जीने की कला' और सत्य के प्रयोग करने में बीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना सीख लिया था और जो सबसे पहले और सबसे पीछे मात्र मनुष्य था। फिर ऐसा मनुष्य ही मनुष्य को नहीं पहचानेगा तो कौन पहचानेगा?

अपरिग्रह : समाज-रचना का एक आधार

हरिभाऊ उपाध्याय

हम सब लोग जानते हैं कि गांधीजी अपरिग्रह के हामी थे और मानते थे कि अपरिग्रह के आधार पर ही नवीन समाज-रचना की जा सकती है। आज की समाज-रचना शोषण के आधार पर हुई है, अर्थात् श्रमिकों को कम-से-कम पारिश्रमिक देकर अधिक से अधिक मुनाफा करना आज के समाज में अनुचित और गैर-कानूनी नहीं समझा जाता। यही शोषण है। इसके विपरीत गांधीजी मानते थे कि श्रमिक को अपने श्रम का पूरा फायदा मिलना चाहिए। उसका फायदा उठानेवाली बीच की कोई एजेंसी नहीं रहनी चाहिए। यह सामाजिक न्याय हुआ। इसपर समाज खडा रह सकता है, परन्तु समाज आगे बढ सकता है अपरिग्रह के बल पर। अर्थात् मनुष्य अधिक धन या सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकारी हो, न्यायानुकूल उसे अधिक सम्पत्ति प्राप्त हुई हो, तो भी वह खुद अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति या वस्तुओं का सग्रह अपने लिए न करे। यह त्यागवृत्ति वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति में लाना चाहते थे और इसलिए परिग्रह करने और अपरिग्रह का भग करने वालों को उन्होंने चोर कहा है।

उनकी इस परिभाषा के अनुसार इसमें से बहुत से चोर सिद्ध होंगे और जिसके पास अधिक सम्पत्ति होगी या मिल्कियत होगी, वही बडा चोर होगा। फिर भी इन सब चोरों के साथ गांधीजी का व्यवहार स्नेह का, ममता का और सहृदयता का रहता था। आजतक कभी किसी धनी मानी, राजा-रईस को यह अनुभव नहीं हुआ कि गांधीजी उनसे घृणा करते है, उनका तिरस्कार करते है, उनका अपमान करना चाहते है, लोगों की दृष्टि में उन्हें गिराना चाहते हैं, बल्कि इसके विपरीत जब कभी इनमें से किसी ने आर्थिक या किसी दूसरी तरह की सहायता दी है गांधीजी ने मुक्तकठ से उसकी सराहना की है, उसकी कदर की है और उनको मन से धन्यवाद दिया है। शोषण की प्रणाली और शोषण-वृत्ति पर तो वे जोर का प्रहार करते थे, परन्तु शोषक के प्रति वे स्वय बहुत सहृदय रहते थे। एक रोज बबई में एक धनी मित्र ने कहा, "हरिभाऊजी, अब हमको गांधीजी की बहुत याद आती है। हम जानते हैं कि गांधीजी पूजीवाद के घोर शत्रु हैं, परन्तु हम पूजीवालों को पास बुलाते थे, छाती से लगाते थे, हमारे घरों में ठहरते थे, हमारे दुखों को अनुभव करते थे, हर कठिनाई में हमें रास्ता बताते थे। गांधीजी से मेरा बहुत बरसों तक सम्बन्ध रहा। कई बार मैं उनसे मिला। मैंने कभी खादी नहीं पहनी मगर गांधीजी ने कभी इशारे से भी नहीं दर्शाया कि मैं खादी पहनू। इतने सहनशील थे वे। यही कारण था कि हम भी उनको इतना मानते थे। अब तो हमको न केवल तरह-तरह से नोचा ही जाता है, बल्कि अपमानित भी किया जाता है और कृतज्ञता का तो मानो लोप ही हो गया हो।" एक और मित्र ने एक बार कहा था, "पहले तो दान देनेवालों के प्रति कृतज्ञता दर्शाई जाती थी, लेकिन अब तो ऐसा जमाना आगया है कि दान भी लिया जाता है और ऊपर से मार भी पडती है गालियां भी दी जाती है।"

आज गांधीजी का जन्म दिन है। हमें इन प्रसगों का स्मरण करके आत्मशोधन करना है। ससार में धन एक महान् शक्ति है। भगवान का काम भी लक्ष्मीजी के बिना नहीं चलता। यह सही है कि लक्ष्मीजी को भगवान् के चरणों में रहना पडता है। इस तरह धन को सेवा और जन-कल्याण के सामने विनीत होकर रहने में ही शोभा और सार्थकता है, परन्तु उसका अपमान और तिरस्कार तो किसी दशा में भी नहीं हो सकता। विनोबाजी के शब्दों में हम 'कांचन-मोह-मुक्ति' का प्रयोग या साधना अवश्य करें, परन्तु धन का तिरस्कार और धनिकों का अपमान कदापि न करें। धन का तिरस्कार अज्ञानता का सूचक है और धनिकों का अपमान असभ्यता का। गांधी-भक्त को दोनों से बचकर अपरिग्रह की साधना करनी चाहिए, अर्थात् अपना जीवन-निर्वाह जहा तक हो सके स्वश्रम से करना चाहिए और उससे अधिक जो कुछ धन-सम्पत्ति हमें मिले, उसका अपने को ट्रस्टी समझकर लोक-सेवा और देश-सेवा में विनियोग करना चाहिए।

गुरुदेव की दृष्टि में महात्मा गान्धी

श्री रामपूजन तिवारी

सन् १९३८ में गांधीजी के सम्बन्ध में गुरुदेव ने एक जगह लिखा था, "एक बार मैं उनके पास ही था जब राजनीति में भाग लेनेवाले एक विशिष्ट व्यक्ति, जिन्हें कांग्रेस पार्टी ने अलग कर दिया था, उनसे मिलने आए। दूसरा कोई कांग्रेस का नेता होता तो उनके प्रति अवज्ञा का भाव दिखलाता; लेकिन गांधीजी तो शालीनता की मूर्ति थे। उन्होंने धैर्यपूर्वक बड़ी सहानुभूति से उनकी बातें सुनीं तथा कतई ऐसा नहीं होने दिया कि वह अपने को हीन समझें। मैंने अपने आप से कहा कि यह व्यक्ति महान् है, क्योंकि यह अपनी पार्टी से, जिसका कि वह सदस्य है, बड़ा है। इतना ही नहीं, बल्कि उस मत से भी बड़ा है जिसका कि वह अनुसरण करता है।"

गुरुदेव और गांधीजी विश्व की इन दो महान् विभूतियों को जन्म देकर भारतवर्ष अपने को धन्य मानता है। दोनों भिन्न रुचि के थे, दोनों के संस्कार अलग-अलग थे; किन्तु दोनों शत-प्रतिशत भारतीय थे। दोनों राष्ट्रवादी थे; लेकिन उनके राष्ट्र की परिधि भू-खंड के एक छोटे-से टुकड़े तक ही सीमित नहीं थी। उनकी राष्ट्रवादिता संकीर्ण नहीं थी। दोनों ऐसे काल म पैदा हुए जब भारतवर्ष में एक नई चेतना का उदय हो रहा था। दोनों ने अपने-अपने ढंग से भारतीय तथा संसार की समस्याओं पर विचार किया और सब समय वह एकमत नहीं रहे। असहयोग-आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साधनों को लेकर दोनों में गहरा मतभेद हो गया था, लेकिन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध कितना मधुर, कितना स्नेहपूर्ण था, इसका अनुमान एक छोटी-सी घटना से लग जाता है। सन् १९३२ की ९ सितम्बर को यरवदा जेल में साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर गान्धीजी आमरण अनशन करनेवाले थे। उस अवसर पर गान्धीजी ने गुरुदेव को एक पत्र लिखा था, "प्रिय गुरुदेव, मंगलवार का प्रातःकाल है। तीन बजे हैं। दोपहर से मेरी अग्नि-परीक्षा शुरू होनेवाली है। अगर आप अपना आशीर्वाद भेज सकें तो मुझे बड़ी खुशी होगी। आप बराबर मेरे सच्चे मित्र रहे हैं; क्योंकि आप स्पष्ट-वक्ता मित्रों में से है और अपने विचारों को खुले तौर पर व्यक्त कर देते है। . . . . अगर आपका हृदय मेरे इस काम को पसन्द करता हो तो मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। इससे मुझे बल मिलेगा। ...स्नेह।" इस पत्र के छोड़ने के पहले ही उन्हें गुरुदेव का तार मिला, "भारत की एकता तथा उसकी सामाजिक अक्षुण्णता को बनाए रखने के लिए एक अमूल्य जीवन का बलिदान श्रेयस्कर है। . . . . हमारे दुःख से भरे हुए हृदय आपके इस महान् प्रायश्चित को श्रद्धा और स्नेह से देखते रहेंगे।" दोनों कितना एक-दूसरे के निकट थे। गुरुदेव अपने को रोक नहीं सके और २४ सितम्बर को गान्धीजी को देखने के लिये पूना पहुंच गए। वे यरवदा जेल में गान्धीजी के पास ही थे जब यह खबर पहुंची कि गान्धीजी की बात मान ली गई है। गुरुदेव के सामने ही गान्धीजी ने अनशन-भंग किया। गुरुदेव ने उस समय की अपनी पूना-यात्रा का वर्णन स्वयं किया है। जेल के भीतर जाने और गान्धीजी से मिलने का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—"बांई ओर सीढ़ी से उठकर, दरवाजा पार कर दीवार से घिरे हुए एक आंगन में मैंने प्रवेश किया। दो कतारों में बने हुए घर दूर तक चले गए हैं। आंगन में एक छोटे आम के पेड़ की घनी छाया में महात्माजी शय्याशायी हैं। दोनों हाथों से महात्माजी ने मुझे अपनी छाती के पास खींच लिया और देर तक वैसे ही रखा। बोले, "कितनी खुशी हुई।"

गुरुदेव ने गांधीजी के सम्बन्ध में जहां कहीं भी

लिखा है, सभी स्थलों पर गांधीजी की उस शक्ति का जिक्र किया है जिसने सारे देश को एक नई प्रेरणा दी। उन्होंने गांधीजी में पूर्ण मानव के दर्शन किए, *ऐसे मानव के, जिसे किसी एक विशेष परिधि में* नहीं बांधा जा सकता। उन्हें केवल राजनैतिक नेता के रूप में देखना, उतना ही गलत है जितना कि अन्य क्षेत्रों में सीमित करना। सन् १९३१ ई० में गांधीजी के जन्म दिवस पर शान्तिनिकेतन में आश्रमवासियों के बीच बोलते हुए रवीन्द्रनाथ *ने कहा था 'मान लें कि* हम लोगों की राष्ट्रीय साधना सफल हो चुकी है और बाहर से देखने पर *और कुछ करने को बाकी नहीं* रह गया है तथा भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है—तो भी आज के दिन के इतिहास का कौन-सा आत्म-प्रकाश धूलि के आकर्षण से अपने को बचाकर सिर ऊंचा उठाये रहेगा, यही विशेष रूप से देखने योग्य है। इस दृष्टि से जब देखने जाता हूं तब समझता हूं कि आज के उत्सव में जिनको लेकर हम लोग आनन्द मना रहे हैं *उनका स्थान कहां है तथा उनकी विशिष्टता* किस जगह है। सिर्फ राजनैतिक प्रयोजनसिद्धि के हिसाब से हम लोग उनका मूल्य नहीं आकेंगे, किन्तु जिस दृढ़ शक्ति के बल से उन्होंने आज सम्पूर्ण भारतवर्ष को प्रबल रूप से सचेत किया है उसी शक्ति की महिमा की उपलब्धि हम लोग करेंगे।' और गुरुदेव ने उस शक्ति के सम्बन्ध में भी एक दूसरे स्थान पर कहा है, '*वह शक्ति आसुरी शक्ति नहीं* है, दूसरों पर विजय प्राप्त कर, दूसरा को नीचा दिखाकर वह *गौरवशालिनी नहीं होती। युद्ध-*लिप्सा से परिचालित होनेवाले सेना नायकों की *अहम्मन्यता* उसमें नहीं है।" गुरुदेव ने उस शक्ति को स्पष्ट करते हुए बतलाया है, "महात्माजी यदि वीर पुरुष होते अथवा लड़ाई करते *तो हम लोग आज* इस प्रकार से उन्हें स्मरण नहीं करते, क्योंकि लड़ाई करनेवाले तो अनेक वीर पुरुष तथा बड़े-बड़े सेनापतियों ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है। मनुष्य का युद्ध धर्म-युद्ध है, नैतिक युद्ध है। धर्म-युद्ध के भीतर भी निष्ठुरता है, *यह हम लोगों ने गीता और* महाभारत में पाया है। इसके भीतर बाहुबल का भी स्थान है या नहीं, इसे लेकर शास्त्रीय तर्क नहीं उठाऊंगा। लेकिन यह अनुशासन कि मर जाऊंगा, लेकिन मारूंगा *नहीं और यही करके विजयी होऊंगा*— एक बहुत बड़ी बात है एक महान् संदेश है। यह किसी प्रकार की चतुराई अथवा कार्योद्धार के लिए दी हुई दुनियवी सीख नहीं है। धर्मयुद्ध से बाहर जाकर जीतने के लिये नहीं है बल्कि हारकर भी जय करने के लिए है। *अधर्म-युद्ध में मरना ही मरना है।* धर्मयुद्ध में मरने के बाद भी कुछ बच जाता है। हार को पार कर *जीत है और मृत्यु को पार कर अमृत। जिन्होंने इस* बात की उपलब्धि कर अपने जीवन में इसे उतारा है उनकी बात सुनने के लिये हम लोग बाध्य हैं।"

'गांधी महाराज' कविता में रवीन्द्रनाथ ने गांधी जी की प्रेरणा से उद्बुद्ध राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया है और गांधीजी के नेतृत्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया है।

गुरुदेव संकीर्ण राष्ट्रीयता के विरोधी थे। अतएव असहयोग-आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में उन्होंने गांधी-जी को सचेत करना चाहा था और उनसे मतभेद प्रकट किया था। *गान्धीजी की राष्ट्रीयता इस संकीर्णता के* दलदल में कभी नहीं फंसी और उन्होंने अपने सामने सम्पूर्ण मानव जाति को रखा। उन्होंने तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रखकर राष्ट्रीयता पर जोर दिया और उस आंदोलन को गुलामी के पाश में बंधी हुई मनुष्य-जाति की मुक्ति का एक *अंग मात्र माना। गुरुदेव ने भी भारतवर्ष की स्वतन्त्रता* को इसी दृष्टि से देखा था, लेकिन *उन्हें भय था कि* हमारे देशवासी गान्धीजी के इस राष्ट्रीय आन्दोलन का संकीर्ण अर्थ न ले लें और अपने को उग्र राष्ट्रीयता के दलदल में न फंसा दें। इसके सम्बन्ध में गुरुदेव ने स्वयं लिखा है—'कुछ महीनों के यूरोप-प्रवास के बाद जब मैं यहां लौटा तो मैंने पाया कि सारा देश तत्काल ही स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा से फड़क उठा है। गान्धीजी ने एक ही वर्ष में स्वतन्त्रता दिलाने का वादा *किया था। जिन तरीकों से ऐसा वे करना चाहते थे वे*

अपने आप में संकीर्ण थे और वे वाह्य उपकरण मात्र थे। इतने बड़े महान् व्यक्ति के आश्वासन ने उन लोगों में भी आशा का संचार कर दिया था जो साधारणतया सांसारिक नफे-नुकसान के मामले में स्थिरचित रहते हैं। वे लोग उत्तेजित होकर मुझसे बहस करते कि विशेष मामले में तर्क का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि आध्यात्मिक शक्ति में अद्भुत क्षमता होती है और उससे भविष्य में होनेवाली बात को आश्चर्यजनक ढंग से जाना जा सकता है। इसने मेरे मन में गांधीजी के उस रास्ते को चुनने की बुद्धिमता पर सन्देह पैदा कर दिया—एक महान् उद्देश्य की प्राप्ति का यह रास्ता जो युगों के राजनैतिक जीवन की विफलता के कारण हमारे चरित्र में आई हुई कमजोरी को सन्तुष्ट मात्र करता था। ....अतएव यहांके लोगों के अन्ध-विश्वास से फायदा उठाने के लिए मैंने गांधीजी को दोषी ठहराया। इससे शीघ्रातिशीघ्र फल की आशा की जा सकती थी, लेकिन इससे तो नींव ही कमजोर हो जाने का भय था और इस प्रकार से देश के कर्णधार के रूप में मैंने गांधीजी को समझना शुरू किया; लेकिन मेरे सौभाग्य से वह यहीं समाप्त नहीं हो गया।" गुरुदेव का यह अध्ययन कहां जाकर पहुंचा वह उन्हीं के शब्दों में उद्धृत किया जाता है—"भारतवर्ष में और वैसे तो सभी देशों में ऐसे देशभक्त हैं जिन्होंने अपने देश के लिये उतना ही बलिदान किया है जितना कि गांधीजी ने और कुछने तो उनसे भी अधिक यातनाएं सहीं। धार्मिक क्षेत्र में हमारे देश में ऐसे साधु हैं जिनके धार्मिक अनुष्ठानों के कष्टों की तुलना में गांधीजी का जीवन आराम का है। लेकिन वे देशभक्त केवल देशभक्त मात्र हैं, उससे अधिक कुछ नहीं और ये साधु केवल आनुष्ठानिक कसरत करने वाले हैं और ये दोनों अपने गुणों में ही सीमित रह गए हैं; लेकिन यह आदमी (गांधीजी) अपने उन सभी बड़े गुणों से भी बढ़ा है।"

अपरिग्रहवाद

श्री रघुवीरशरण दिवाकर

अपरिग्रह (अ+परिग्रह) 'अहिंसा' की तरह एक नकारात्मक शब्द है, जिसका अर्थ 'परिग्रह का अनस्तित्व' है और इस अपेक्षा से अपरिग्रह स्वतः व अनिवार्यतः वहां है जहां परिग्रह नहीं है। इस तरह 'अपरिग्रह' का भाव स्वतन्त्र व निरपेक्ष नहीं है, इसको व इसके विविध रूपों को जानने के लिए पहले यह जानना अनिवार्य है कि परिग्रह क्या है? परिग्रह को समझना ही अपरिग्रह को समझना है और यही अपरिग्रहवाद को समझने की कुंजी है।

परिग्रह क्या है?

सूक्ष्म तात्विक दृष्टि से परिग्रह वाह्य जगत् का पदार्थ नहीं, आभ्यंतर जगत् का एक तत्व है। वह एक भाव है; पर शुद्ध नहीं, मलिन भाव है। उसे मन का विकार भी कह सकते हैं। वही मूर्च्छा है, ममत्व है। उसे आत्म-स्थित विवेक पर आच्छादित अन्धकार भी कहा जा सकता है। वही आत्म-तन्द्रा है, आत्म-निद्रा है। परिग्रह की 'मूर्च्छा परिग्रहः' परिभाषा का अर्थ भी यही है। इस तरह भीतरी व्यक्तित्व के या मन-मस्तिष्क के स्वास्थ्य या संतुलन का हनन करनेवाले जितने भी दुर्गुण या विकार-भाव हैं, वे सभी परिग्रह-रूप हैं, मानस-जगत् का सारा मैल परिग्रह है। यों भी कह सकते हैं कि आत्मा की निराकुलता, शान्ति व सुखानुभूति को नष्ट करनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, मोह, अहंकार आदि सभी कषाय, सभी लेश्याएं, सभी असद्-वृत्तियां परिग्रह ही हैं।

पर परिग्रह का यह सूक्ष्म तात्विक विवेचन हिंसा के विवेचन से अभिन्न ही है। संभवतः असत्य का भी ऐसा ही निरूपण किया जा सकता है। आखिर हिंसा किसी की जान लेना या किसी को मारना-पीटना ही नहीं है। हिंसा के अंतर्गत आत्मा का सारा ही मैल या

विकार आजाता है, क्योकि उससे आत्म-हनन होता है, व्यक्तित्व का ह्रास होता है, न्यूनाधिक मात्रा में तथा किसी-न-किसी रूप में 'पर' का ही नही 'स्व' का भी उत्पीडन होता है। इसी तरह असत्य भी वह सब कुछ है जो आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप के भान या स्वानुभव से विमुख या विचलित करे, और इस अपेक्षा से सभी दुर्विचार व मनोविकार असत्य ही है। ऐसी स्थिति मे, परिग्रह को पृथक् रूप में देखने-समझने के लिए और उस अपेक्षा से अपरिग्रह या अपरिग्रहकार की विशिष्ट मीमासा करने के लिए यह आवश्यक है कि परिग्रह को, यदि पदार्थ के पीछे परिग्रह का भाव पक्ष विद्यमान है तो पदार्थ-रूप में ही मान्य किया जाय। पृथक्त्व का यह आशय नही है, न हो ही सकता है, कि परिग्रह के हिंसा-रूप को अमान्य ठहराया जाय। प्रत्येक अवस्था में परिग्रह हिंसात्मक है, अथवा जहा परिग्रह है वहा अनिवार्य रूप से हिंसा भी है। यहा तो यही अभिप्रेत है कि तत्व चिंतन या तात्विक विश्लेषण की दृष्टि से अथवा सामाजिक एव व्यावहारिक दृष्टि बिन्दु लेकर सुस्पष्ट रूप से विचारणा व गवेषणा कर सकने की दृष्टि से परिग्रह और हिंसा का घुटाला न हो जाय, दोनो टकरायें नही वरन् अपनी-अपनी जगह रहकर एक-दूसरे का स्पष्टीकरण व विशदीकरण करते रहे। नीतिविद् परिग्रह को हिंसा से पृथक एक पाप, हिंसा के ही सदृश्य एक मूल पाप तथा इसी अपेक्षा से अपरिग्रह को अहिंसा की तरह ही एक अलग मूलव्रत मानता आया है। इसलिए यह पृथक्करण सर्वानुमोदित ही है। अपरिग्रह को मूलव्रत न मान कर अहिंसाव्रत का ही अग या अनुव्रत मान्य किया जाता तब बात दूसरी थी। पर यह पृथक्करण तभी निभ सकता है जब परिग्रह को भावात्मक ही नही, पदार्थात्मक भी माना जाय, और इस तरह परिग्रह का इतना व्यापक होने से रोका जाय कि वह स्वय हिंसा या हिंसा का दूसरी सज्ञा ही बनकर न रह जाय। इधर यह नियन्त्रण न किया जाय तो उधर फिर अपरिग्रह का अहिंसा बनकर बैठ जाने से कैसे रोका जा सकेगा और तब तो विचार-जगत् में, तत्व-चिंतन व आत्म-निरीक्षण की दुनिया में अराजकता-सी आ जायगी।

यहा हम इस परिभाषा पर आते है कि जो पदार्थ आत्मा में मूर्च्छा या ममत्व-भाव लाता है, अथवा जिस पदार्थ के निमित्त से मन, मस्तिष्क या आत्मा में विकार-भाव प्रवेश करते है वह परिग्रह है। इस मन्तव्य के अनुसार परिग्रह न बाह्य पदार्थ ही है और न मूर्च्छा-ममत्व-भाव ही है, बल्कि वह मूर्च्छा-ममत्व भाव या विकारभाव है जो व्यक्ति बाह्य पदार्थ या पदार्थों के प्रति रखता है। इस तरह इस मन्तव्य के अन्तर्गत 'बाह्य परिग्रह' एव 'अतरग परिग्रह' परिग्रह के भेद नहीं है, अग या अवयव है।

सामाजिक दृष्टि

पर परिग्रह की यह परिभाषा भी एकागी व अपूर्ण ही है, क्योकि परिग्रह जिस बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखता है व्यापक रूप से उसकी अपेक्षा यहा नही है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वैयक्तिक दृष्टि से ही यहा काम लिया गया है, सामाजिक दृष्टि से नही और इसीलिए जो सत्य यहा है, वह अधूरा है।

निसदेह व्यक्तिवाद एक सत्य है, चिर सत्य है। किसी भी युग में व किसी भी परिस्थिति मे उसकी वास्तविकता को उपेक्षित नही किया जा सकता। पर समाज भी तो व्यक्ति का ही एक प्रलम्बित रूप है, वह व्यक्ति से पृथक नही है। व्यक्ति समाज का घटक (इकाई) है। वही समाज का जन्मदाता-विधाता है। अनेक व्यक्ति मिलकर अपने अपने व्यक्तित्व का कुछ अश एक जगह सग्रहीत करते ही एक वृहद् समाज-व्यक्ति को जन्म देते है। यह एक आदान-प्रदान-मय व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का कुछ अश समाज के हाथो में सौंपता है और मूल्य स्वरूप अपनी शेष स्वतन्त्रता में किसी दूसरे की ओर से हस्तक्षेप न होने का आश्वासन व सरक्षण पाता है। वास्तव में इस पारस्परिक पराधीनता का ध्येय वैयक्तिक स्वतन्त्रता ही है। समाज निर्माण के इस सत्य को हम समझें तो समष्टिवादी विचार-धारा को हम व्यष्टि का विरोधी नही, सहायक व

संरक्षक ही पायेंगे और तब हम यह समझ सकेंगे कि अपरिग्रह की वैयक्तिक विचारधारा उसके सामाजिक संस्करण की छत्रछाया में ही सुरक्षित रह सकती है। व्यक्ति में अपरिग्रह की भावना न हो तो समाज में अपरिग्रह की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती; पर समाज की व्यवस्था अपरिग्रहवादी सिद्धांतों पर स्थित न हो तो भी व्यक्ति की अपरिग्रहव्रत की साधना होना सामान्यतः असंभव ही है। समाज की व्यवस्था, राज्य का संचालन, उत्पादन व वितरण के आधारभूत सिद्धांत या नीति-नियम आदि अपरिग्रहात्मक भावना व विचारधारा पर निर्धारित न हों, परिग्रहवाद, पूंजीवाद, संग्रहवाद तथा तज्जन्य अर्थ-वैषम्य का चारों ओर दौर-दौरा हो तथा उसके परिणाम-स्वरूप शोषण व पर-अधिकार-हरण का बाजार गर्म हो, तब हम परिग्रहवाद से बचकर नहीं रह सकते। मोहल्ले या पास-पड़ौस में आग लगी हो तो उस आग को बुझाए बिना अपने घर को भी भस्मसात् होने से कैसे बचा सकते है? जिस हवा में सांस लें, वह जहरीली हो तो वहां कैसे जीवित रह सकते हैं? इस तरह स्वयं अपरिग्रही बनने की समस्या में समाज-व्यवस्था को अपरिग्रह के आधार पर स्थित करने की समस्या भी आ जाती है, यह एक वस्तुस्थिति है, और इस अपेक्षा से, व्यक्ति की दृष्टि से ही, नहीं, समष्टि की दृष्टि से भी, लघु व्यक्ति के दृष्टिकोण से ही नहीं, वृहद्-समाज-व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी परिग्रह के प्रश्न पर विचार करना अत्यावश्यक है। जबतक संकीर्ण वृत्त से निकल कर ऐसे व्यापक व विशाल दृष्टि-विस्तार के साथ न देखा जायगा, परिग्रह का वास्तविक स्वरूप सुस्पष्ट न होगा और न अपरिग्रहवाद के विराट् तत्व का साक्षात्कार ही हो सकेगा।

स्पष्टतः जब हम इस अपेक्षा से परिग्रह के प्रश्न पर विचार करेंगे तब जहां तक उसके भावपक्ष का सम्बन्ध है, हम देखेंगे कि वृहद् समाज-व्यक्ति के सारे मनोविकार परिग्रह ही हैं और इस तरह सामूहिक रूप से समाज—मानव-समाज—के लिए जो भी दुःखदायी विधि-विधान, नियम व कानून हैं, जो भी मानव-समुदाय के सुख व कल्याण का हनन करनेवाली व्यवस्थाएं व संस्थाएं हैं, जो भी शोषण व अधिकार-अपहरण की प्रवृत्तियां हैं, सभी परिग्रहमूलक हैं।

यहां हम सहज ही इस निष्कर्ष पर आते हैं कि वही पदार्थ परिग्रह नहीं है जो व्यक्ति के मन में विकार-भाव लाये, बल्कि वह पदार्थ भी परिग्रह ही है जिसके ग्रहण या संग्रह से शोषण अथवा दूसरों के न्यायोचित अधिकार का अपहरण हो, समाज में विषमता फैले, एक का अति-लाभ और दूसरे की हानि हो, या समाज में दुःख व अशांति व्याप्त हो। मनोविकार या मूर्च्छाभाव का जहां तक प्रश्न है, वह व्यापक दृष्टि से सामान्यतः यहां है ही। फिर, अहिंसा की ही तरह अपरिग्रह सदाशयता में ही नहीं है सतर्कता व विवेकपूर्ण यत्नाचार में भी है। अतः यदि मन में शोषण की दुर्भावना न भी दीखे, परिग्रह के भाव-पक्ष की अनुभूति का स्पष्ट आभास अमान्य भी किया जाय, तो भी यत्नाचार के अभाव में परिग्रह है ही। सद्भावना या सदाशयता का बहाना, अथवा संग्रह के बीच जल में कमल की तरह अलिप्त होने या ममत्व-भाव-हीन होने का दावा, परिग्रह का परिग्रहत्व नहीं मिटा सकता, परिग्रह-पाप को अपरिग्रहव्रत में नहीं बदल सकता। प्रमाद, असावधानी, अविवेक, अयत्नाचार, मूढ़ता, ये सब यहां अपराध-मूलक हैं, परिग्रह-पाप-मूलक हैं।

परिग्रह की परिभाषा

अंतर्जगत् व बाह्य-जगत् दोनों की अपेक्षाओं से तथा वैयक्तिक व समाजिक दोनों दृष्टियों से संतुलित व सामूहिक रूप से विचार करने पर अब हम परिग्रह की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—जिस पदार्थ के निमित्त से व्यक्ति में मूर्च्छा-ममत्व-भाव या अन्य विकार-भाव आए, अथवा* उसका उपयोग, भोगोपयोग, ग्रहण या संग्रह सामूहिक दृष्टि से समाज में विषमता-

* यहां यह अभिप्रेत है कि इस परिभाषा में बताई गई दोनों शर्तों में से पदार्थ जो भी कोई एक शर्त पूरी करे या दोनों ही शर्तें पूरी करे हर हालत में वह पदार्थ परिग्रह ही है। —लेखक

पूर्ण व्यवस्था, शोषण पर अधिकार-अपहरण, अशान्ति दुःख, संघर्ष व विनाश की प्रवृत्तियों को जन्म दे अथवा यदि वे विद्यमान हों तो उन्हें अक्षुण्ण बनाए रखे या उन्हें प्रोत्साहित करे, वह पदार्थ परिग्रह है।

हर पदार्थ परिग्रह नहीं है

उक्त परिभाषा में सहज ही यह संकेत निहित है कि कोई भी पदार्थ प्रत्येक अवस्था या परिस्थिति में, अथवा उसके उपयोग ग्रहण या संग्रह की हर स्थिति में, परिग्रह हो, यह आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ जनमार्ग, पर्वत, वन, नदी, जलाशय आदि सार्वजनिक स्थान, सहज ही हर किसी के उपयोग में आते हैं तथा *साधारणतः इन्हें लेकर मोह-ममत्व की भावना के* लिए स्थान नहीं है, साथ ही पथिक या नागरिक के नाते न इनके उचित उपयोग से किसी का अधिकार छिनता है और न समाज में अव्यवस्था या विषमता फैलती है। अतः सामान्यतः ये परिग्रह नहीं हैं। *आकाश, वायु, सूर्य, नक्षत्र ये सभी प्रकृति के* वरदान भी ऐसे ही पदार्थ हैं। सार्वजनिक संस्थाएं भी इसी कोटि में आती हैं। राज्य द्वारा कर-ग्रहण, जनहित के कार्यों के लिए जन-संस्थाओं द्वारा अर्थ-संग्रह आदि में परिग्रह-भावना होने से तथा जन-हित का विरोध भी वहां न होने से गृहीत या संगृहीत धनसंपत्ति परिग्रह नहीं है। इसी तरह सार्वजनिक ट्रस्ट, दुखियों, पीड़ितों या शरणार्थियों की सहायता के लिए खोले गए कैम्प, समाज-सेवियों या शहीदों के स्मारक आदि के लिए संचित निधि, इन्हें परिग्रह नहीं कहा जा सकता। वास्तव में *जिस पदार्थ के प्रति विशेषरूप से अपनेपन की भावना व तज्जन्य* मोह-ममत्व की अनुभूति न हो, अथवा विशेष रूप से परायेपन, उपेक्षा या विद्वेष की भावना भी न हो, उस पदार्थ को 'परिग्रह' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस तरह हर पदार्थ परिग्रह नहीं है और जो पदार्थ परिग्रह नहीं है उसका उपयोग, ग्रहण या संग्रह परिग्रह-पाप नहीं है। *यही कारण है कि* जिन महात्माओं ने अपरिग्रह पर विशेष रूप से जोर दिया है, यहां तक कि उसे मूलव्रत भी माना है, उन्होंने भी पदार्थ-ग्रहण का सर्वथा निषेध नहीं किया है। उनके अपरिग्रह-व्रत की मांग यही है कि व्यक्ति वही या उतना ही पदार्थ ग्रहण करे जिसको लेकर उसका मन मोह-ममत्व, राग-द्वेष, आदि के विकार-भावों से विक्षुब्ध या कलुषित न हो अथवा जो पदार्थ नितान्त 'आवश्यक' हो, और इस दृष्टि से गृहस्थ तो क्या महा-अपरिग्रही साधु या मुनि के पास भी ऐसा पदार्थ रह सकता है।

पर सार्वजनिक स्थान, कोष, निधि ट्रस्ट, संस्था, आदि परिग्रहत्व के वृत्त से बाहर ही हैं, ऐसा नहीं है। इन्हें लेकर भी मोह-ममत्व की भावना हो सकती है। संकीर्ण राष्ट्रीयता व प्रान्तीयता आदि की भावनाओं के अंतर्गत राष्ट्र या देश तथा प्रान्त आदि परिग्रह ही हैं। मंदिर मस्जिद, गिरजाघर आदि धर्मालय भी परिग्रह हैं, यदि उनकी आड़ में कोई स्वार्थ-साधन *होता है, अथवा यदि मानव-मात्र के लिए उनके द्वार* न खोल कर वर्ग-विशेष द्वारा अहंकार-तुष्टि या अधर्म-भावना का आलम्बन उन्हें बना लिया गया है। इसी तरह ट्रस्ट, फण्ड, निधि, कोष आदि का भी उपयोग विशुद्ध सार्वजनिक दृष्टि से, पात्रता की अपेक्षा से, *पक्षपात, राग-द्वेष व प्रतिस्पर्धा ईर्ष्या भाव से न किया* जाए, उन्हें किसी भी तरह के दुःस्वार्थ की पूर्ति का साधन न बनाया जाए, अथवा उनके संग्रह या संचय में अनुचित दबाव जोर-जबरदस्ती आदि की जाय, तो वे भी ऐसा उपयोग या संग्रह करनेवाले के लिए परिग्रह ही हैं। तात्पर्य यह कि जहां जिस पदार्थ से, चाहे वह पदार्थ सार्वजनिक ही क्यों न हो, विशेष आर्थिक या अन्य निजी स्वार्थ सम्बद्ध है, अथवा जिसको लेकर मन में विषम भावना है, दुरुपयोग है, अन्याय है, मोह-मूर्च्छा है, समाज का अहित है, वह परिग्रह ही है।

अपरिग्रहवाद का विराट् स्वरूप

'परिग्रह' के इस निरूपण व विश्लेषण से सहज ही अपरिग्रह पर पड़ा हुआ परदा हट जाता है और अपरिग्रहवाद का एक विराट् स्वरूप समक्ष आकर हमें विमोहित कर देता है और हजार मुखों से बार-बार

हमें यह आदेश देता है कि परिग्रहवादी व्यवस्था का अंत करो, अपरिग्रह के अधार पर व्यष्टि व समष्टि के जीवन को निर्धारित करो, हर तरह परिग्रह को मिटाओ, परिग्रह की दासता से अपने को मुक्त करो। तब हम देखते हैं कि अपरिग्रहवाद जीवन की एक बड़ी-से-बड़ी साधना है और सचमुच एक ऐसा आशीर्वाद है कि यदि वह इस दुःखी व त्रस्त जगत् को मिल जाए तो यहीं स्वर्ग उतर आए। निश्चय ही वह एक सजीव प्रेरणा है, एक महत्तम आदर्श है। एक और अखण्ड मानवता यहां स्वयं प्रतिष्ठित है। सदसद्-विवेकमय बन्धुत्व-भाव, सहयोग, समता व स्वपरहित की भावना यहां प्रधान है। अहिंसा यहां ओतप्रोत है।

संस्कार का अर्थ

श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री

संस्कृति और संस्कार दोनों अनन्यार्थ शब्द हैं। प्राचीनों ने संस्कृति शब्द का बहुत उपयोग नहीं किया, परन्तु संस्कार शब्द का पुष्कल और एक से अधिक अर्थ में उपयोग करके उसे महा अर्थवाहक बनाया है।

अब हम संस्कार शब्द के दो मुख्य अर्थों का विचार करें। 'योगसूत्र' के व्यासभाष्य में संस्कार शब्द का यह विवरण मिलता है, "वृत्तियां दो प्रकार की हैं, क्लिष्ट और अक्लिष्ट। इन वृत्तियों के कारण अलग-अलग प्रकार के संस्कार पैदा होते हैं और उन संस्कारों से फिर वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। इस तरह वृत्ति और संस्कार का यह चक्र सदा चलता रहता है।" (यो. सू. १-६)

इस वचन से संस्कार शब्द का अर्थ आधुनिक मनोविज्ञान के रुझानों और छापों (Dispositions and Traces) के जैसा निकलता है; क्योंकि 'योगसूत्र' के कर्त्ता ने "प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति" (यो. सू. १-६) नामक पांच वृत्तियां गिनाई हैं और क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट के रूप में इन वृत्तियों की द्विविधता का स्पष्टीकरण करते हुए "अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश" (यो. सू. २-३) नामक पांच क्लेश गिनाये हैं। मनोवैज्ञानिक मीमांसा की गहराई में पैठे बिना उक्त वचनों का मेल साथ कर सोचने से परिणाम यह निकलता है कि योग-शास्त्रोक्त संस्कार पिंड में बुद्ध्यात्मक (Cognitive) राग-द्वेष प्रयत्नात्मक (Conative) और सुख-दुखादि भावात्मक (Affective) तीनों प्रकार के रुझानों (Dispositions) और मन पर पड़ने वाली छापों (Traces, impressions) दोनोंका समावेश होता है। लोगों में भी रुझान और आदत के अर्थ में संस्कार शब्द का उपयोग होना ही है। बौद्ध प्रतीत्यसमुत्पादवाद में संस्कार का उपयोग ऐसे अर्थ में हुआ है।

पर योगभाष्य में संस्कार दो प्रकार के माने गये हैं: (१) वासना-रूप और (२) धर्माधर्म-रूप। संस्कार शब्द का यह वासनासूचक अर्थ भी लोक-व्यवहार में प्रचलित है। साथ ही योगभाष्य में यह भी कहा है कि शुभ अथवा ऊंचे संस्कार ऊपर उठाते हैं और अशुभ अथवा हलके संस्कार नीचे घसीटते हैं। ऊपर संस्कार शब्द का छाप, रुझान और वासना-सूचक जो अर्थ बताया गया है, उससे भिन्न चमक या 'पालिश' सूचक एक दूसरा अर्थ भी संस्कार शब्द का है। धातु के बरतनों को चमकाने की क्रिया को संस्कार कहा जा सकता है। लेकिन अब हम देखें कि शिष्ट व्यवहार क्या है। शंकराचार्य कहते हैं—

संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्यात् दोषापनयनेन वा। (ब्र. सू. शां. भा. १-१-४)

सारांश यह कि संस्कार दो प्रकार के होते हैं: (१) गुणाधान द्वारा और (२) दोषापनयन द्वारा और इस शंकर-वचन पर टीका करते हुए वाचस्पति मिश्र उदाहरण देते हैं कि "बिजोरे के फूल में लाख का रंग सींचने से लाख-जैसे रंग का फल उत्पन्न होता है। यह हुआ गुणाधान द्वारा संस्कार का उदाहरण, और मलिन दर्पण को ईंट आदि के चूर्ण से घिसकर साफ करने पर दर्पण का चमकने लगना दोषापनयन द्वारा संस्कार का उदाहरण है।" मैं नहीं जानता कि बिजोरे के फूल का उदाहरण सच है या नहीं; किंतु संस्कार शब्द का यह

गुणान्तराधान-सूचक अर्थ आयुर्वेद में प्रसिद्ध है।* चरक ने पानी, अग्नि, आदि को गुणान्तराधान का साधन माना है। अग्नि आदि से धातु आदि में गुणान्तराधान की बात आधुनिक विज्ञान को मान्य है ही। संक्षेप में, कहना यही है कि संस्कार करने योग्य जड-पदार्थों को गुणाधान द्वारा और दोष दूर करके, यों दो प्रकार से, संस्कारी बनाया जा सकता है।

संस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये जड वस्तु के संस्कार का उदाहरण दिया है किंतु हम तो यहा मनुष्य के संस्कार का विचार कर रहे हैं। वैसे, स्नानादि द्वारा शरीर की शुद्धि के लिये शरीर-संस्कार शब्द का प्रयोग होता है, लेकिन यहा तो संस्कार शब्द से हमारा हेतु मनुष्य के मन, बुद्धि, भावना अहकार आदि को चमकाने विकसित करने से है।

जन्मना जायते शूद्र संस्कारैर्द्विज उच्यते ।

अर्थात् मनुष्य जन्म से द्विज नही होता द्विज तो वह संस्कार द्वारा बनता है। इस वचन मे स्मृत्युक्त उपनयनादि संस्कार—यानी उनके हेतु स होनेवाले शास्त्रोक्त कर्म ही विवक्षित हैं। ऐसा न मानकर हम यह मानें कि उपनयन के बाद प्राप्त ब्रह्मचर्य और विद्यार्जन भी विवक्षित है। साराश यह कि मनुष्यादि के एतद्विषयक समग्र निरूपण को विशाल दृष्टि से ध्यान में लेकर सोचा जाय तो ऊपर के वचन का तात्पर्य यह निकलता है कि स्वभावत मनुष्य पशु अथवा पामर है और संस्कार द्वारा वह सच्ची मानवतावाला अर्थात् संस्कारी मनुष्य बनता है। संस्कार शब्द की इतनी चर्चा से यह स्पष्ट हुआ ही होगा कि संस्कार शब्द का जो चमक या पालिश सूचक अर्थ है वह बाहरी सफाई और शुद्धि का नहीं, बल्कि मानव-हृदय की उस चमक या शोभा का द्योतक है, जिससे मनुष्य की रहन-सहन, भावना, बुद्धि सभी कुछ समाज में दीप्त हो उठें। दूसरे शब्दों में, इसे यो कह सकते हैं, कि जिस शिक्षा से मनुष्य में समाज-हितलक्षी और आध्यात्मिक गुणो का विकास और वृद्धि होती है, उसी को संस्कार कहते हैं। जैसा कि शकराचार्य ने कहा है, मात्र दोषापनयन या मात्र गुणाधान से नही, बल्कि संस्कार के लिये दोषापनयन और गुणाधान दोनो की आवश्यकता है।

संस्कार शब्द का यह अर्थ अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द के अर्थ से मिलता-जुलता है। लेकिन हम शकर द्वारा किए गए अर्थ को पकड कर ही आगे बढें तो मानवचित्त के संस्कार द्वारा दूर करने योग्य दोषो का अर्थ होगा, मनुष्य-जीवन के मूल से चिपटी हुई पशु-सहज स्वाभाविक वासनाएं, जिनमें राग, द्वेष, मोह और भय मुख्य हैं तथा अनेक पीढियो की अविद्या, भय और राग-द्वेष प्रेरित प्रवृत्तियो के कारण रक्त में भिदी हुई पामर जनो मे साधारणत पाई जानेवाली आदतें भी हैं। सरलता के लिये हम मान लें कि इन द्विविध दोषो का अपनयन ही दोषापनयन है और गीता में दैवी सम्पद् के रूप में जिनकी गणना की गयी है उन और उनके सदृश गुणो का चित्त में आधान, गुणाधान है। इस प्रकार के दोषानयन और गुणाधान का नाम ही संस्कार है, आदर्श संस्कार की इस व्याख्या से सतोष मानकर हम आगे बढें।

इस प्रकार के संस्कार शुभ संस्कार हैं। साधारणत संस्कार शब्द का प्रयोग शुभ संस्कारो के लिये ही किया जाता है और वही ठीक भी है क्योंकि जिन्हे अशुभ संस्कार या कुसंस्कार कहा जा सकता है, उनमे चित्त को चमकाने या उज्ज्वल बनाने की क्षमता ही नही होती। जिसे योगशास्त्र में क्लेश कहा गया है, और अन्य शास्त्रो में जिसे दोष माना गया है, उस अविद्या भय, राग, द्वेष से उत्पन्न वृत्ति और स्वभाव का ही योगशास्त्रीय नाम अशुभ संस्कार है।

अब मानव-चित्त के विकास की भिन्न भिन्न भूमिका के अनुसार व्यक्ति में शुभाशुभ संस्कारो का मिश्रण और शुभ संस्कारों में भी उच्च-नीच भूमिका का होना स्वाभाविक है। जहा एक समाज में उच्च भूमिका के शुभ संस्कारोवाले कुछ लोग होते हैं, वहा दूसरे अशुभ संस्कारो से युक्त लोग

*"संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते। ते गुणास्तोयाग्नि सन्निकर्षशौच मन्थन देश काल वासना भावनादिभि काल प्रकर्ष भाजनादिभिश्चाधीयन्ते।" (चरक वि अ०१)

भी उसमें पाये जाते हैं। किंतु किसी भी राष्ट्र के श्रेष्ठ विचारकों और द्रष्टाओं का प्रयत्न सदा यही रहता है, कि उच्चतम संस्कार ही आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हों।

ऊपर संस्कार का जो विचार किया है, उससे व्यक्ति के संस्कारों का ही अर्थ निकलता है। प्राचीनों के गर्भाधानादि संस्कार-विचार में यही अर्थ निहित है और यह तो मानी हुई बात है कि शास्त्रोक्त विधि से नहीं, किंतु संस्कार-युक्त शिक्षा द्वारा किसी भी व्यक्ति के जीवन में तेज और चमक पैदा होती है। लेकिन अधिकतर लोगों के जीवन में यह चमक बाहरी ही रहती है। साथ ही, यह भी पाया गया है कि तीव्र संवेग-युक्त विशिष्ट व्यक्तियों के चित्त के समूचे प्रदेश में यह चमक या तेज गहराई तक उतर जाता है और उनके चित्त की समस्त भूमिकाओं को प्रदीप्त कर देता है। इस तरह ऊपर हमने जो अर्थ किया है, उस अर्थ के अनुरूप शुभ संस्कारवाले श्रेष्ठ मनुष्यों के प्रत्यक्ष सदाचार-युक्त उदाहरण से, उनके द्वारा दी गई शिक्षा-दीक्षा से और क्वचित् किसी उत्तराधिकार के बल से, उनकी संतान में ये संस्कार न्यूनाधिक अंश में प्रकट होते हैं, और चित्त की ऐसी संस्कारशील स्थिति जब किसी समाज में कई-कई पीढ़ियों तक बराबर बनी रहती है और निरन्तर विकसित होती रहती है, तो आगे चलकर वह उस समाज का स्वभाव बन जाती है, और उस दशा में हम उसे उस समाज का संस्कार कहते हैं। इसमें संस्कार शब्द के दोनों अर्थ निहित हैं।

वैसे मनुष्य-जीवन में दो प्रकार से परिवर्तन होते हैं: एक परिस्थिति के दबाव के कारण, और दूसरे, मनुष्यों के अपने पुरुषार्थ के कारण। जीवन को टिकाये रखने के लिये परिस्थिति के अनुरूप पविर्तन प्राणि-मात्र के जीवन में होते रहते हैं। मनुष्य भी एक प्राणी है, अतः उसके जीवन में भी परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तनों का होना स्वाभाविक है। किंतु परिस्थिति के ऐसे दबाव से होनेवाले परिवर्तन संस्कार नहीं कहलाते। जब मनुष्य समझ-सोच कर प्रयत्नपूर्वक अपने मन, बुद्धि आदि का विकास करता है, तो उसका वह विकास ही संस्कार कहा जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति प्रयत्न करे, तो वह अपनी पामरता को टालकर संस्कारिता प्राप्त कर सकता है और इसके विपरीत, प्रमादवश अपने उच्च संस्कारों को छोड़ कर वह पामरता के गर्त में गिर सकता है। महाभारत में यथार्थ ही कहा है—

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीभि अप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।

अर्थात्—प्रमाद के कारण उत्पन्न पामरता ही मृत्यु है और अप्रमाद से प्राप्त होनेवाली संस्कारिता ही अमरता है। यह कोई नियम नहीं कि ऐसी संस्कारिता व्यक्ति के जीवन तक ही मर्यादित रहे। जब किसी भी राष्ट्र के समर्थ और प्रतिभाशाली द्रष्टा अपनी अपूर्व आर्ष-दृष्टि से मानव-जीवन को उज्ज्वल और उच्चतर बनानेवाले आध्यात्मिक, धार्मिक, शील-विषयक और सौंदर्य-विषयक सत्यों का दर्शन करके संस्कार का एक आदर्श उपस्थित करते हैं तदनुसार उपदेश, शिक्षा और सदाचार द्वारा एक समाज को पामरता से उबारकर संस्कारी जीवन के मार्ग पर ले जाते हैं, और ऐसे संस्कारी जीवन की नयी दृष्टिरूप फिलासफी से अनुप्राणित कवि, कलाकार, विद्वान्, वैज्ञानिक आदि उस राष्ट्र के श्रेष्ठ मनुष्य अनेकविध विद्याओं और कला-कृतियों का अभूतपूर्व भव्य सृजन करते हैं, तब उस समय सर्जन-समूह को और उसकी अधिष्ठानभूत जीवन-दृष्टि का अनुसरण करनेवाले उस राष्ट्र की जीवन-चर्या को यदि हम संस्कृति* का नाम दें तो मेरे विचार में वह गलत न होगा।

लेकिन यहां एक बात याद रखनी है कि राष्ट्रीय संस्कृति के इस समग्र विकास में प्रमाण-भूत तत्त्व तो व्यक्तिगत संस्कारों का ही है। फिर ऊपर संस्कृति विकास का जो क्रम संक्षेप में सूचित किया है, यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति का विकास सर्वत्र उसी क्रम के अनुसार होता है। किंतु यह सच है कि भारत में यह क्रम स्पष्टरूप से देखा जा सकता है।

* हमारे यहां संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' और 'सिविलिजेशन' दोनों के पर्याय की तरह प्रयुक्त होता है। कुछ लेखक विशेषकर हिंदी के लेखक 'सिविलिजेशन' के लिये अक्सर 'सभ्यता' शब्द का प्रयोग करते हैं।

भिन्न भिन्न राष्ट्रों में उनके इतिहास के विभिन्न कालो में जो सस्कृतिया प्रकट हुई, वे उन-उन राष्ट्रो की भौतिक परिस्थितियो और ऐतिहासिक बलो द्वारा उत्पन्न की गयी स्वभावजन्य विशेषता के परिणाम-स्वरूप, अपनी-अपनी खास विशेषताओवाली रही हो, तो वह स्वाभाविक ही है। य सास्कृतिक विशेषताए उन-उन राष्ट्रो के व्यावर्तक लक्षणो-जैसी मानी गई और उन्हे अभिमान की वस्तु समझा गया, किंतु ससार के अलग-अलग देशो और युगो में जो पैगम्बर और सन्त-महात्मा हो गये, उन्होन तो सत्य, अहिसा, अनासक्ति सहिष्णुता, सब भूतो के प्रति भ्रातृभाव या आत्मभाव, आध्यात्मिकता, अभय, ज्ञान, विज्ञान आदि दैवी सम्पद्-रूप सस्कारो पर ही अधिक जोर दिया है और विभिन्न सस्कृतियो के अन्तस्तल में विद्यमान इन उच्च सस्कारो को ही ग्रहण करके इस युग के महापुरुष भी अखिल मानव जाति की एक और अभिन्न सस्कृति की रचना के लिये सतत यत्नशील रहे, इसीमें ससार के भावी सुख और शान्ति की आशा निहित है।

अनु०—काशिनाथ त्रिवेदी

बुद्ध-शासन के रत्न : भदंत महावीर

भिक्षु धर्मरक्षित

भारतीय बुद्ध-शासन के दीर्घकालीन इतिहास की अमर कहानियो का न केवल भारत के ही प्रत्युत सारे एशिया महाद्वीप के जीवन, राजनीति, सस्कृति, धर्म, कला, पुरातत्व आदि के साथ एक अमिट और अद्-भुत सामजस्य है। भगवान् बुद्ध पद चारिका के रूप से यद्यपि पश्चिम में मथुरा और कुरु-राष्ट्र की राजधानी थुल्लकोट्ठित से आगे नही बढे थे, पूरब में कजगला निगम के मुखेलुवन और पूर्व-दक्षिण में सलळवती नदी के तीर को पार नही कर पाये थे, दक्षिण में सुसुमारगिरि आदि विन्ध्याचल के आसपास वाले निगमो तक ही गए थे तथा उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग निगम और उसीरध्वज पर्वत से ऊपर जाते हुए नही दिखाई दिए थे, तथापि उन्ही के समय में उनके शिष्यो ने सूनापरान्त प्रदेश के अम्बहट्ठ पर्वत पर रहते हुए वाणिज्यग्राम (सम्भवत. बम्बई), समुद्रगिरि, मातुलगिरि, मकुलकाराम आदि में बुद्ध-शासन का काफी प्रचार किया था। अर्थकथाचार्य का तो यह भी कहना है कि तथागत भी अपने पाच सौ ऋद्धिमान् भिक्षुओ के साथ वहा ऋद्धिबल से गए थे। उन्होने मार्ग में सत्यबद्ध पर्वतवासी एक परि-व्राजक को भिक्षु-सघ में दीक्षा भी दी थी, जिसने बाद मे उस प्रदेश मे बुद्ध शासन का पर्याप्त प्रचार किया था। कहते है, भगवान् बुद्ध ने नर्मदा नदी तथा सत्यबद्ध पर्वत की चोटी पर अपने पद चिन्ह भी अकित कर दिए थे। तक्षशिला का राजा पुक्कुसाति भी तथागत के पास आकर प्रव्रजित हुआ था। ग्वालियर, उज्जैन आदि प्रदेशो में महाकात्यायन ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। स्वय वे उज्जैन के राजपुरोहित के पुत्र थे। उत्कल (उडीसा) प्रदेश भी बुद्ध शासन से अछूता न था। कुक्कुटवती (वर्तमान क्वेटा) के राजा कप्पिन और उसकी स्त्री ने एक सौ बीस योजन चलकर श्रावस्ती में भगवान् के दर्शन किए और प्रव्रजित हुए। लकावासियो का कहना है कि तथागत ऋद्धिबल से तीन बार लका गए थे। नेपाल का स्वयम्भू पुराण तथागत के वहा पहुचने के अनेक प्रमाण उपस्थित करता है। बर्मावासियो का कहना है कि तपस्सु और ने भल्लिक बुद्धगया में सर्वप्रथम तथागत को भोजन कराया था और शिष्यत्व ग्रहण कर प्रसाद रूप में उनके केश मागकर बर्मा ले गए थे, जो सम्प्रति वहाके प्रसिद्ध चैत्य श्वेलगों पैगोडा में सुरक्षित है। यवन-राष्ट्र के बौद्धो का विश्वास था कि वर्तमान् इस्लाम के धार्मिक केन्द्र मक्का के काबा

शरीफ का पदचिन्ह तथागत का ही है (यं तत्थ योनकपुरे मुनिनो चपादं)। उस समय इस्लाम धर्म का तो जन्म भी नहीं हुआ था। ऐसे ही स्याम देशवासियों का कहना है कि सत्यबद्ध पर्वत उनके यहां है, जहां भगवान् बुद्ध ने जाकर अपने पद-चिन्ह अंकित किये थ। जो कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि बुद्धकाल में बुद्ध-शासन भारत की सीमाओं को लांघ नहीं पाया था। किन्तु अशोक-काल में वह लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोज (कम्बोडिया), गान्धार, नेपाल के साथ हिमालय प्रदेश के दक्षिणी पांचों राष्ट्र, काश्मीर, सीरिया, मिस्र, मकदूनिया और एपीरस तक पहुंच गया। धीरे-धीरे कालान्तर में बुद्ध-शासन का प्रसाद चीन, तिब्बत, जापान, फारमूसा, बाली, मैक्सिको, कोरिया, जावा, सुमात्रा, मंगोलिया और साइबेरिया के विस्तृत प्रदेशों तक पहुंच गया। काबुल से होता हुआ यह अमर संदेश यारकन्द, बलख, बुखारा, तथा अन्य-समीपवर्ती स्थानों में व्याप्त हो गया; किन्तु परिवर्तनशील संसार के नियमों का व्यतिक्रमण उसके लिए सम्भव न था। समय ने धीरे-धीरे जो उसे एक ओर बढ़ाया तो दूसरी ओर से समेटना आरम्भ किया। एशिया, यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका में व्याप्त बुद्ध-शासन ने अपनी जन्म-भूमि भारत से अपना प्रभुत्व हटा लिया। यद्यपि आज विश्व में दो-तिहाई बौद्धों की ही जनसंख्या है तथापि उसकी जन्मभूमि आज उससे शून्य-सी है। इस समय भारत में जो बौद्ध वास करते हैं, उनकी जनसंख्या ढाई लाख से अधिक नहीं है। इनमें भी बंगाल, आसाम, उत्तर प्रदेश, मद्रास, बम्बई और अण्डमान तथा बीकानेर के प्रदेशों में ही अधिक बौद्ध वास करते हैं। किन्तु यह संख्या बौद्ध गृहस्थों की है। बौद्ध भिक्षु जो बुद्ध-शासन के संरक्षक, नेता एवं प्रचारक होते हैं, उनकी संख्या अत्यन्त अल्प है।

यदि बंगाल-प्रदेशवासी और बर्मी चीनी, सिंहली, तिब्बती, नेपाली अमेरिकी तथा अन्य बाह्य देशवासी भिक्षुओं को छोड़कर गणना की जाय, तो सारे भारत-वर्ष में आठ से अधिक भिक्षु नहीं हैं। किन्तु यह देखने में आरहा है कि दिन-रात बौद्ध गृहस्थों की संख्या बढ़ती जा रही है और भारतीय शिक्षित नवयुवकों में प्रव्रज्या की कामना भी प्रबल होती जा रही है। यह सब उन्हीं दिवंगत भदन्त महावीर की देन है, जिन्होंने कि सन् १८५७ के भारतीय स्वातंत्र्य-युद्ध के वीर सेनानी बाबू कुंवरसिंह के कन्धों-से-कन्धा भिड़ाकर अंग्रेजों के साथ युद्ध किया था। उनसे पूर्व भारत में कोई भी बौद्ध भिक्षु न था और न भारतवासी ही बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए थे। बेचारे बौद्ध गृहस्थ अपने मार्ग-प्रदर्शक भिक्षुओं के अभाव में अपने सारे धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति उदासीन-से हो गए थे।

भदन्त महावीर का जन्म सन् १८३३ में बिहार प्रान्त के भभुआ स्टेशन से तीन मील दूर रूपपुर नामक गांव में हुआ था। उनके बचपन का नाम महावीर सिंह था। शारीरिक शक्ति से भी वे नामानुरूप सम्पन्न थे। एक हट्टे-कट्टे पहलवान और प्रसिद्धि-प्राप्त खिलाड़ी थे। लाठी, गतका, तलवार, भाला-बर्छी आदि चलाने में वे बड़े ही निपुण थे। उनका नाम सुनकर आसपास के चारों ओर के डाकू थर-थर कांपते थे। क्या मजाल कि उनके रहते गांव में डाका पड़ जाय या चोरी हो जाय? उन्होंने कई बार अनेक डाकुओं को छट्टी का दूध याद करा दिया था। कहते हैं, उन्होंने एक बार एक चीते को भी मार गिराया था।

उन्होंने अपनी पच्चीस वर्ष की नव-तरुणाई में ही अंग्रेजों को अपनी वीरता के अद्भुत चमत्कार दिखाए थे। अंग्रेजों के साथ लड़ते हुए बाबू कुंवरसिंह के वीरगति को प्राप्त होने के बाद जब उनके छोटे भाई अमरसिंह कहीं भाग गए, तब महावीरसिंह ने देखा कि अब अकेले काम नहीं चलेगा। वे अपने पहलवान साथियों के साथ दक्षिण की ओर बढ़े और इन्दौर होते हुए मद्रास पहुचे। मद्रास में पहलवानों का एक दंगल हुआ जिसमें महावीरसिंह को एक हज़ार रुपये पारितोषिक में मिले। वे वहां से लंका की ओर बढ़े। वहां पहुंचकर वे अपने एक परिचित भारतीय

व्यापारी के यहा गए, जिसने महावीरसिंह का बडा आदर-सत्कार किया और अपने यहा सदा रहने के लिए प्रार्थना की ।

महावीरसिंह लका मे रहते समय प्राय बौद्ध विहारो में जाया करते थे । धीरे-धीरे बौद्ध शिष्टाचार एव धर्म की ओर उनका झुकाव होने लगा। वे भिक्षुओ के निर्मल चरित्र और सेवाभाव के उत्कृष्ट कार्यों स प्रभावित होकर वहा के इन्द्रासभ महास्थविर के पास जाकर प्रव्रजित हो गए। उनकी पूर्व की सारी धारणाय बदल गई। वे अब महावीरसिंह के स्थान पर श्रामणेर महावीर बन गए। उन्ह अपने जीवन में पर्याप्त सुख और शान्ति की अनुभूति होने लगी । लका का भिक्षु जीवन उन्हें एक अद्भुत एकाग्रता और सयम के साम्राज्य की प्राप्ति जान पडने लगा। उन दिनो उन्हे लका के श्रद्धालु दायको ने चीवर, पिण्डपात (भोजन), ग्लानप्रत्यय एव शयनासन के साथ नारियल के बगीचों से भी पूजित तथा सम्मानित किया। वे निस्पृह महात्मा जिन्होने अब रुपया-पैसा भी हाथ से छूना त्याग दिया था, भला सासारिक वस्तुओ से क्योकर लिप्सा रखते ? जो-जो वस्तुए उन्ह दान में प्राप्त होती थी, उन्हे वे भिक्षु-सघ को सौंप दिया करते थे।

कुछ दिनो तक वे लका में रहकर अपने गुरु इन्द्रासभ महास्थविर और कोलम्बो के विद्योदय परिवेण के प्रधानाचार्य एव सघनायक हिक्कडुवे, श्रीसुमगल महास्थविर से परिचयात्मक पत्र लेकर पाण्डेचेरी तथा कलकत्ता होत हुए सन् १८८४ में रगून पहुचे और उसी वर्ष वहा उनकी उपसम्पदा हुई। उन दिनों थीब-नरेश के पकडे जाने के कारण बर्मा में पूर्ण अशान्ति थी, अत भदन्त महावीर को शीघ्र ही भारत लौट आना पडा। जब वे कलकत्ता पहुचे, उन्ह बौद्ध तीर्थ-स्थानो के दर्शन की इच्छा हुई। वे बुद्धगया, राजगिरि और नालन्दा के दर्शन करके सारनाथ पहुचे । उन दिनों सारनाथ में न कोई मठ था, न कोई धर्मशाला थी। उन्होने देखा कि सारनाथ के खण्डहरो की ईंटें तक ढोकर बनारस जा रही है। इस कार्य ने उनके हृदय में आग लगादी। उन्होने गाडीवानो को बलपूर्वक रोका और एक कदम भी आगे नही बढने दिया। उन्होंने अधिकारियो को बतलाया कि सारनाथ का खण्डहर बौद्धो का पवित्र तीर्थस्थान है। यहीं पर तथागत ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। हम बौद्ध यह नहीं देख सकते कि हमारे पुण्य-स्थान की ईंटें उजाडी जाय और उसके महत्व की ओर ध्यान न देकर उसके प्राक्-चिन्हो को मिटा दिया जाय। फलतः सारनाथ के खण्डहर की रखवाली के लिए एक आदमी बैठा दिया गया और सारनाथ की ईंटो की रक्षा होने लगी । तब-से फिर कोई भी व्यक्ति एक ईट तक उठाने का साहस न कर सका।

भदन्त महावीर सारनाथ से कुशीनगर गए। उस समय कुशीनगर में थोडी बहुत खुदाई हो चुकी थी। परिनिर्वाण मन्दिर की गुप्तकालीन तथागत की विशाल मूर्ति प्राप्त हो चुकी थी। भूमिस्पर्श-मुद्रा में बैठी हुई भगवान् की मूर्ति एक वृक्ष के नीचे पडी थी। ऊचा ध्वसित स्तूप कुशीनगर के अतीत का गौरव बतलाते हुए खडा था। इन सबका दर्शन करके भदन्त महावीर को कुशीनगर में एक भिक्षु विहार के निर्माण की इच्छा हुई। वे मनकी अभिलाषा मन ही में लिए पुन कलकत्ते लौट गए, किन्तु पुनः सन् १८९० में वे कुशीनगर चले आए और एक पत्तो की झोपडी में रहने लगे। धीरे-धीरे आसपास के ग्रामीणो से उनका परिचय होगया। कसया के कुछ वकील-मुख्तार भी उनके सहायक हो गए। उन्ही दिनो कलकत्ते के प्रसिद्ध सेठ श्रीयुत खेजारी ने उनके दायकत्व-भार को ग्रहण कर हरेक प्रकार से सहायता करनी प्रारम्भ कर दी। श्री खेजारी के ही (१५,०००) रुपये के दान से कुशीनगर का वर्तमान बौद्ध विहार सन् १९०२ में बनकर तैयार हुआ, जो इस सदी का प्रथम भारतीय बौद्ध विहार है।

भदन्त महावीर के समय में ही प्राय कुशीनगर के खण्डहरोकी खुदाई का काम प्रारम्भ हुआ। परिनिर्वाण स्तूप उनके सामने ही खोदा गया और उनके सुझाव

के अनुसार ही पुनर्निर्माण का विचार हुआ। किन्तु पुरातत्व-विभाग से आज्ञा मिलने में विलम्ब होने के कारण उनके जीवन-काल में वर्तमान् स्तूप का निर्माण न हो पाया। फिर भी इसके शोध एवं निर्माण-कार्य में उनका बहुत बड़ा हाथ था। भूमिस्पर्श-मुद्रावाली भगवान् की मूर्ति की मरम्मत उन्होंने स्वयं अपने रुपयों से कराई।

कुशीनगर के निकटवर्ती ग्रामीण उन्हें 'मोटे बावा' कहा करते थे, क्योंकि वे शरीर के मोटे और शक्तिमान् थे। जिस बोझ को दस-दस बारह-बारह आदमी मिलकर भी नहीं उठा सकते थे, उसे वे अकेले और एक ही हाथ से उठा लिया करते थे। कुशीनगर के वर्तमान् विहार के सामने का बड़ा घण्टा जो पांच-छः आदमियों के उठाने पर ज़मीन भी नहीं छोड़ता था; उन्होंने अकेले ही उठाकर लटका दिया था। कहते हैं, पास के एक ब्राह्मण गृहस्थ की भैंस को उसके स्वामी के अतिरिक्त दूसरा कोई पकड़ नहीं सकता था। ब्राह्मण रात्रि में भैंस को खोल देता था, वह रात भर किसानों के खेत चरकर प्रातः घर लौट आती थी। जो उसे पकड़ने का प्रयत्न करता था, उसे वह सींगों के बल उठाकर पटक देती थी। भदन्त महावीर उक्त भैंस की चर्चा सुन चुके थे। अकस्मात् एक रात वह भैंस खेतों को चरती हुई विहार के पास वाले खेतों में आकर चरने लगी। खेत चरने की आहट पाकर जब वे विहार से बाहर आए तो भैंस देखते ही उनकी ओर दौड़ी; किन्तु उन्होंने सतर्कतापूर्वक उसके सींगों को पकड़कर नीचे की ओर ऐसा दबाया कि वह वहीं हांपती हुई बैठ गई। उन्होंने रस्सी मंगाकर उसे बांधा और प्रातः उसके मालिक को बुलाकर उसके हवाले कर दिया। कहते हैं, उनके इस काम से वह भैंस इतना डर गई कि फिर रात में उधर आने का नाम भी नहीं लिया।

वे प्रव्रजित होने के दिन से लेकर जबतक स्वस्थ रहे कभी कोठरी के भीतर नहीं सोये। रात्रि में उनकी चौकी विहार के बरामदे में बिछती थी और दिन में विहार के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे, जहाँ लोग उनके उपदेशों को सुनने के लिए आया करते थे। वे बरगद के नीचे बैठे हुए आगत् श्रोताओं को धर्मोपदेश दिया करते थे।

भदन्त महावीर पापियों का मुंह भी नहीं देखना चाहते थे। जिस प्रकार स्वयं निर्मल चरित्र, संयमी तथा तपस्वी थे, वैसे ही लोगों का आदर करना जानते थे। पास के गांव के एक गृहस्थ ने अपनी विवाहिता बहन के आभूषण बेचकर पैसे बना लिए थे। इस बात का उन्हें पता लगा। एक दिन उसी गृहस्थ को खण्डहर में टहलते हुए पाकर उन्होंने उसे बुलाकर कहा, "भाग जाओ, मैं तुम्हें इस पवित्र खण्डहर में नहीं देखना चाहता, वह महापापी है जो अपनी बहन के आभूषणों को बेच देता है।" उस गृहस्थ पर इन बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उनके पैरों को पकड़कर भूमि पर गिर पड़ा और क्षमा मांगी। घर जाकर उसने अपनी बहन के लिए पुनः उन्हीं रुपयों से नये आभूषण बनवा दिये।

भदन्त महावीर ने बुद्ध-शासन के भारत में प्रत्यावर्त्तन के लिए जहां विहार की स्थापना की, वहां भिक्षुओं को बाह्य देशों से बुलाकर, भारत में रहने का भी प्रबन्ध किया। श्री चन्द्रमणि महास्थविर उन्हीं के बुलाए और रखे हुए अराकानी भिक्षु हैं, जिन्होंने उनके बाद भारतीय बुद्धशासन के प्रचार में पर्याप्त सहयोग दिया है। भदन्त महावीर ने न केवल कुशीनगर में, अपितु सारनाथ में भी बुद्ध विहार की स्थापना की। सारनाथ में वर्तमान् बर्मी बौद्ध विहार की प्राचीन इमारत उन्हीं की कृति है। बंगाली भिक्षु कृपाशरण महास्थविर आदि को उन्होंने प्रेरित करके लखनऊ आदि स्थानों में बौद्ध विहारों के निर्माण का प्रयत्न कराया था। बुद्धगया-मन्दिर के पुनरुद्धार एवं जीर्णोद्धार के लिए भी उन्होंने कम प्रयत्न नहीं किया था। उनके जीवन का एक-एक दिन महत्वपूर्ण कार्यों एवं घटनाओं की विचित्र श्रृंखला से आबद्ध है। वे जिस परम उद्देश्य को लेकर प्रव्रजित हुए थे, उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। भारतीय बुद्ध-शासन के

प्रत्यावर्तन निमित्त उन्होंने जो-जो कार्य किए वे सब उन प्रारम्भिक दिनों के लिए, महान् एवं कठिन थे।

गत शताब्दी के प्रथम उत्तर भारतीय भिक्षु भदन्त महावीर ने अपने सारे कर्त्तव्यों का पालन कर, बुद्ध शासन के अपने कार्यों का सम्पादन कर, सन् १९१९ के चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की द्वितीया को परिनिर्वाण-भूमि कुशीनगर में सदा के लिए अपनी आखें मूद ली। उनकी चिता उन्हीं के द्वारा परिशोधित भूमि पर बनाई गई और भारत में बुद्ध-शासन के प्रत्यावर्त्तक उन महान्, अमर एवं अमिट बुद्ध पुत्र के सद्गुणों की परिशुद्ध ज्योति अग्नि शिखा के साथ मिलकर और भी चमक उठी तथा उनके भौतिक शरीर को स्पर्श करती वह अग्नि शिखा यह कहती हुई उर्ध्वगामिनी बनी रही—'वे भारतीय बुद्ध-शासन के अमर रत्न थे।"

ग्राम्य कहानियां और कहावतें

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

हिन्दी राष्ट्र भाषा स्वीकृत हो चुकी है और समूचे भारतवर्ष की राज-भाषा बनने वाली है। इससे हिन्दी भाषा-भाषियों का कर्तव्य कितने ही अंशों में और भी अधिक बढ़ जाता है। पूर्व इसके कि वह राष्ट्र भाषा बने, हमारी जिम्मेदारी है कि हम सब उसको हर प्रकार से उसके योग्य बनावें।

जब हम साहित्य और भाषा के क्रमिक विकास का अध्ययन करते हैं तो स्पष्टतया यह पाते हैं कि जनपदीय भाषाओं से ही हमारे साहित्य की अभिवृद्धि हुई है, किन्तु इधर हमारी साहित्य की प्रगति में जनपदीय भाषाओं की उपेक्षा रही। इसी कारण हमारा शब्द भडार संकीर्ण प्रतीत होता है। जबतक ग्राम भाषाओं के विशाल शब्द भडार को प्रकाश में लाकर व्यवहृत न किया जायेगा तबतक हमारी भाषा सजीव न बन सकेगी।

ग्रामीण साहित्य में लोक गीत, कहानियां कहावतें, दन्त-कथाएं आदि भरपूर विद्यमान हैं। इधर विगत पच्चीस-तीस वर्षों से गुजरात, अवध और बुन्देलखंड में उनको एकत्रित करने का कार्य भी चल रहा है, किन्तु जैसी तत्परता से यह कार्य होना चाहिए था नहीं हो सका है। सहयोग और प्रोत्साहन का अभाव ही इसकी असफलता के कारण हो सकते हैं।

विदेशी भाषाओं के साहित्य में लोक-गाथाओं सम्बन्धी कितनी ही पुस्तकें मिलती हैं। बंग-भाषा में 'हिन्दुस्तानी उपकथा' और गुजराती में 'सौराष्ट्री रसधारा' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी में 'कविता-कौमुदी' के पांचवें भाग में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतों की चर्चा करते हुए अवधी गीतों पर प्रकाश डाला है, गोरखपुर के चचरीकजी ने भी 'ग्राम-गीतांजलि' में उस ओर के गीतों के रूप में अपनी रचनाएं प्रकाशित की हैं। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी देवरी (सागर) ने बुन्देलखंडी ग्राम-कहानियां नियमित रूप से 'मधुकर' में लिखी थीं। उनकी कुछ कहानियों का एक संग्रह बम्बई से, दूसरा दिल्ली से प्रकाशित भी हो गया है। श्री कृष्णानन्द गुप्त तथा 'लोकवार्ता परिषद् छत्तरपुर' भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी विगत ३० वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं, अभिनन्दन ग्रन्थों, विशेषांकों और बुन्देल-वैभव में इसकी चर्चा की है। अब समय आ गया है जब सम्मिलित शक्ति से यह कार्य और भी आगे बढ़ाया जाय।

विश्व-वन्द्य बापू ग्रामों का सुधार करने, ग्राम साहित्य का उद्धार करने और ग्रामों में बसने का अमर सदेश देते रहे हैं। उन्होंने भली प्रकार अनुभव कर लिया था कि ग्रामों में अब भी भारतीय संस्कृति, गीतों, कहानियों, कहावतों, दन्त-कथाओं, रीति रिवाजों और परिपाटियों के रूप में विद्यमान है। पश्चिमी सभ्यता और बाह्य सम्पर्क से जितना भूभाग अछूता रह गया या जिसपर नई रोशनी नहीं पड़ी, वहीं भारतीय संस्कृति को किसी-न-किसी रूप में हम अब भी पा सकते हैं। हमारे ग्राम-गीत तो इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ही।

नागरिक और ग्रामीण समुदाय के बीच जो खाई

बन गई है, उसको पाटने के लिये साधारण हिन्दी-भाषा-भाषियों और मुख्यतः साहित्यकों को अग्रसर होना चाहिए। अब तो अपनी राष्ट्रीय सरकार से भी इस सम्बन्ध में सहायता प्राप्त की जा सकती है; किन्तु आवश्यकता यह है कि हम स्वयं स्वावलम्बी बनें, अपनी अयोजनाएं अपने आप बनाकर आगे बढ़ावें। जब हम इतना कर लेंगे तो हमको प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों से भी राष्ट्र-भाषा के उत्थान में अवश्य ही पूरी सहायता मिल जायगी, ऐसी आशा है।

ग्राम्य कहानियां केवल ग्रामों में ही कही जाती हों, ऐसी बात नहीं है। उनका सूत्रपात यद्यपि होता ग्रामों ही से है, किन्तु उनका साम्राज्य देश-व्यापी हुआ करता है। उदाहरण के लिये बुन्देलखंड को ही लीजिये। गांव-गांव और घर-घर लड़के-बच्चे संध्या ही से घर की बड़ी-बूढ़ी दादी को घेरते हुए और कहानी कहने के लिये आग्रह करते हुए दिखलाई देते हैं। गांवों में अलाव (जलती हुई आग) क्लब का काम देते हैं, शीतकाल में रात्रि का भोजन करने के पश्चात् और ग्रीष्मकाल में अथाई (बैठने का स्थान) पर ये कहानियां हुआ करती हैं। ग्रामीण समाज में कहानीकार और अल्हैत (आल्हा गानेवाला) श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

बुन्देलखंडी कहानियां रोचक, मार्मिक और इतनी भावपूर्ण होती हैं कि श्रोतागण मंत्र-मुग्ध की भांति उनको सुनते रहते हैं। केवल एक व्यक्ति हूंका (हां, हां) देने के लिए निश्चित कर दिया जाता है। शेष श्रोतागण दत्तचित होकर सुनते हैं। ये कहानियां प्रायः अर्द्ध रात्रि तक चला करती हैं। कभी-कभी कहानीकार उन्हें इतना बढ़ाता जाता है कि तीन-तीन, चार-चार रात्रि में वे समाप्त हो पाती हैं। कुछ-कुछ कहानियां जैसे 'सारंगा सदावृक्ष' 'संत बसन्त' और 'गोपीचन्द भरथरी' ऐसी भी होती हैं जिनमें कहानीकार सस्वर दोहा, चौबोला और कवित्त आदि भी बीच-बीच में गा देते हैं। इससे उनकी रोचकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

ग्राम्य कहावतें खेती-बाड़ी, वर्षा आदि का ज्ञान कराने में ग्रामवासियों को सहायक होती हैं। हमें विश्वास है कि लोक-साहित्य की ओर अधिक ध्यान दिया जायगा और उसकी अमूल्य निधियां, जो गांवों में बिखरी पड़ी हैं, विस्मृति के गर्त्त में विलीन नहीं होने दी जायेंगी।

हरिजनों को वे कभी नहीं भूले

स्व० महादेव देसाई

सरोजिनी देवी गांधीजी के आशीर्वाद के लिए आई हुई हाल ही में विवाहित जोड़ी को लाई थीं। उस लड़की को गांधीजी तिलक स्वराज्य-फण्ड के जमाने से जानते थे। उसने उस समय बहुत सा रुपया जमा किया था और अपने अधिकतर गहने दे दिये थे।

"तुम्हें वे दिन याद है न ? तुम्हारी शादी से मुझे खुशी हुई। पर यहां से तुम्हे मुफ्त आशीर्वाद नहीं मिलेगा। तुम्हें पहले हरिजनों को आशीर्वाद देना होगा।"

वह बोली, "किस तरह दूं ? आपको चाहिए सो मांग लीजिए।"

"पर मैं कैसे मांगूं ? तुम्हें तो अपने पति की आज्ञा लेनी चाहिए। मुझे तुम दोनों के बीच झगड़ा नहीं कराना है।"

"हम दोनों के बीच झगड़े की कोई गुंजाइश ही नहीं।" उसने दृढ़तापूर्वक कहा। सारी मण्डली खिल-खिला कर हंस रही थी और उसनें अपनी सोने की चूड़ियां गांधीजी के चरणों में रख दीं।

'महादेवभाई की डायरी'
भाग ३,

कसौटी पर

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी की तीन पुस्तकें

ज्ञान गंगा . सम्पादक—नारायण प्रसाद जैन पृष्ठ ७५६, सजिल्द, मूल्य ६)

गहरे पानी पैठ ले० अयोध्या प्रसाद गोयलीय पृष्ठ २२४, सजिल्द, मूल्य २॥)

पंच प्रदीप कविता सग्रह, लेखिका—शान्ति एम० ए०, पृष्ठ ९४, सजिल्द मूल्य २)

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी को प्रकाशन के क्षेत्र मे आये अभी बहुत दिन नही हुए हैं, परन्तु इसी बीच में अपनी सुरुचि और सुघडता की छाप उसने हिन्दी-पाठक के मन पर लगा दी है। साहित्य के लक्ष्य को उसने अपनी दृष्टि से ओझल नही होने दिया है। आज की आलोच्य पुस्तकें हर दृष्टि से पठनीय और मननीय है। क्या गेटअप और क्या सामग्री, हर दृष्टि से उनकी उपादेयता स्पष्ट है।

/ **ज्ञान गंगा** मोतियो की माला है। भाई नारायण प्रसाद ने ससार के महापुरुषो के ज्ञान, अनुभव और साधना के सार को एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया है। इन सूक्तियो में शाश्वत सत्य ही नही है सामयिक जीवन को जीने की प्रेरणा भी है। विचारो की विविधता और समता, अनुभव की व्यापकता और एकरसता, इन सब में सत्य के एक ही मूल रूप के दर्शन होते है और वह है मनुष्य बनने की प्रेरणा। 'ज्ञान गगा' उस प्रेरणा से भरपूर है। इस कोष का हर घर में रहना उतना ही आवश्यक है जितना अन्न का।

गहरे पानी पैठ उन अमर कथाओ का सग्रह है जिन्हें श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय ने गुरुजनो के चरणो में बैठ कर सुना, ग्रथो में पढा और अपने हिये की आँखो से देखा है। ये कथाए मात्र काल्पनिक नही है, कठोर सत्य है और इस बात का प्रमाण है कि सत्य कल्पना से अद्भुत होता है। ये शब्दचित्र एक साथ मार्मिक रोचक, उत्प्रेरक और मधुर है। ये मनुष्य की आँखे खोलते ही नही, उन्हे स्नेह और करुणा से आप्लवित भी करते है। इनके पीछे अनुभव की गहराई और हृदय की सरसता है। भाषा टकसाली और शैली सहज है, जटिल नही। इस सग्रह की कुछ कहानिया तो कला की दृष्टि से बडी सुन्दर बन पडी है। उदाहरण के लिए 'बिहारीलाल,' जिसे हम भूलते नही तो वर्षो पहले 'हस' में पढा था, बहुत ही सुन्दर शब्दचित्र है। वह मानव का श्रेष्ठ रूप है। क्या ही अच्छा होता कि लेखक 'हुनर की कमी' ऐसी कुछ कहानियाँ छोड देता।

पुस्तक एक साथ इतिहास, कथासग्रह और ज्ञान का भडार है। जो पढना जानते है उन सबको इसे पढना चाहिए।

पंच प्रदीप में नवोदित कवयित्री सुश्री शान्ति एम० ए० की कविताए सग्रहीत है। इन कविताओ म भावगाम्भीर्य के साथ अभिव्यक्ति की कुशलता स्पष्ट दिखाई देती है। इनमें मानव के सुख-दुख, आशा-निराशा। और कामना-भावना के सुन्दर चित्र है। विचारो की गहनता और सूक्ष्मता के साथ-साथ हृदय को तडपा देनेवाली मार्मिकता से ये ओतप्रोत है। इनमें यद्यपि भावना का अतिरेक दिखाई देता है, परन्तु जीवन के कठोर सत्य स उसने नेत्र नही मूद लिए है। यह लक्षण शुभ है और हमें आशा दिलाता है कि महादेवी और बच्चन की परम्परा शान्ति जी के हाथो में सुरक्षित ही नही, स्वस्थ भी रहेगी।

भाषा में स्वाभाविकता, शक्ति और माधुर्य है,

इसलिए प्रवाह है। यह जब और मंजेगी तो प्रवाह और गतिमय होगा।

लेखिका कविता को हृदयशुद्धि का साधन मानती है। हमें प्रसन्नता है उनकी रचनाएं इस दावे की पुष्टि करती है। यह कोई कम बात नहीं है। उदाहरण के लिए यह पद देखिये :

यदि प्रणय मुझे देने आया,
अपनेपन के प्रति अहभाव।
यदि पूर्ण कर रहा वह केवल,
नारी की काया का अभाव।
यदि त्याग, सत्य, जनमन के प्रति,
दे रहा मुझे वह है विरक्ति।
यदि द्वेष, क्रोध की क्रीडा की,
दे रहा मुझे वह नई शक्ति।
तब क्यों न विश्व की नारी को हो सके मान्य मेरा निर्णय।
मेरी सीमा है नही प्रणय।

विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास : अनुवादक—श्री कृष्णानन्द द्विवेदी, प्रकाशक-युग प्रकाशन, १ फैज बाजार, दिल्ली, पृष्ठ ३०१, मूल्य ६।)

प्रस्तुत पुस्तक सर डैम्पियर की 'ए शार्टर हिस्ट्री आफ् साइन्स' का अनुवाद है। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो चुकी है और यह आवश्यक है कि उसका भंडार हर क्षेत्र मे भरा-पूरा हो। विज्ञान पर मौलिक पुस्तक लिखने में तो समय लगेगा। तबतक उत्तम ग्रंथों का अनुवाद करना उचित ही नही आवश्यक भी है। यह पुस्तक उसी आवश्यकता की पूर्ति-मात्र है।

लेखक की मान्यताओं और निष्कर्षो मे किसी को मतभेद हो सकता है पर उसने सृष्टि के आरम्भ से लेकर विज्ञान की प्रगति पर जो प्रकाश डाला है वह उपादेय है। न केवल विद्यार्थियों के लिए ही वरन साधारण पाठकों के लिये भी यह उपयोगी है। अनुवादक ने अपने दायित्व को समझा है और मूल पुस्तक की आत्मा को सुरक्षित रखने का सफल प्रयत्न किया है।

लेखक विज्ञान की शैतानी शक्ति से अपरिचित नही है। युद्ध निवारण का पक्षपाती है। वह मानता है कि यदि मनुष्य युद्ध का निवारण कर सका तो "परमाणु बम भी अन्ततोगत्वा मानवता के लिए अभिशाप नहीं बल्कि वरदान भी सिद्ध होगा।" पर यह 'यदि' कितना बड़ा है। एक गांधी उसे न जीत सका। क्या अनेक गान्धी एक साथ सम्भव है ? क्या उनकी शक्ति एक मानव मे सम्भव है ? नही तो विज्ञान मनुष्य का शत्रु ही रहेगा, पर आशा तो बलवती है। किसी भी अवस्था में निराश होना शोभा नही देता।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद की दो पुस्तकें

बापू के पत्र मीरा के नाम : पृष्ठ संख्या ४००, सजिल्द मूल्य ४)।

स्त्री पुरुष-मर्यादा . ले० श्री किशोरलाल मशरूवाला, पृष्ठ १८८, मूल्य १।।।)

जैसा कि नाम से प्रकट है प्रथम पुस्तक में महात्मा गाधी ने श्रीमती मीराबेन को जो पत्र लिखे थे वे संग्रहीत है। इसमे कुल ३८६ पत्र है और वे ३१ दिसम्बर १९२४ से लेकर १९ जनवरी १९४८ तक लिखे गये है।

पत्र-साहित्य का किसी देश के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान होता है। वे समाज और व्यक्ति की स्थिति को जितना सही चित्रित करते है उतना व्यवस्थित रूप से लिखा गया इतिहास कभी नहीं करता। इस दृष्टि से इन पत्रों का मूल्य बहुत अधिक है। वे महात्माजी तथा मीराबेन के २३ वर्ष के अपूर्व सम्बन्ध पर ही प्रकाश नही डालते, न उनमे मात्र एक आध्यात्मिक पिता का अपने ठोकर खाते हुये बच्चे को दिया हुआ अत्यन्त सादा, सीधा और प्रेम-पूर्ण उपदेश है, बल्कि उनमे है उस महत्वपूर्ण युगका पारदर्शी इतिहास, महात्मा के विकसित होते हुए मानवी हृदय का मार्मिक चित्र और उनकी ज्ञान-पिपासा का वह स्रोत जो उनकी आध्यात्मिक खोज का आधार है। उनमे बापू की व्यापक और पैनी दृष्टि सुरक्षित है।

ये पत्र बड़े सरल, सरस और मार्मिक है। वे गागर में सागर का सुन्दर उदाहरण है। वे राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है।

स्त्री पुरुष-मर्यादा *का विषय भी नाम से स्पष्ट है। उसके लेखक मशरूवालाजी अपने वैज्ञानिक* और व्यापक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध है। इस पुस्तक में उनके स्त्री पुरुष के सम्बन्ध पर लिखे हुए अनेक लेखो का सग्रह है। लेखो पर गहन अधिकार, सतुलित विचारधारा और सात्विक प्रेरणा की छाप है।

यह विषय बहुत कोमल है और उसको समझने और समझाने के लिये अपूर्व सयम की आवश्यकता है। साथ ही उस पर व्यापक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। विद्वान् लेखक ने इन बातो का सफलता पूर्वक ध्यान रखा है। उन्होने ब्रह्मचर्य शील पर्दा सहशिक्षा, स्पर्श विवाह का प्रयोजन लग्नप्रथा सन्तति नियमन और काम-विकार सभी सम्बन्धित विषयो पर समुचित विस्तार से चर्चा की है और कही भी अनुचित सकीर्णता या आधुनिक उच्छृङ्खलता का समर्थन नही किया है। उन्होने विषय को समझकर मध्यम मार्ग को ग्रहण करने की प्रेरणा की है। वे न सहशिक्षा के विरोधी हैं, *न सन्तति नियमन के। वे उन्हे इस बडे* सवाल का कि "स्त्री पुरुष के परिचय स्पर्श और सम्भोग की मर्यादा क्या होनी चाहिए' एक अग मानते है और इस सम्बन्ध में वे परस्त्री या परपुरुष के साथ एकान्तवास न करने के नियम का कठोरता से पालन करने के पक्षपाती है।

उन्होने इस पुस्तक म अनक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये है, *अनेक चाबुक लगाये* है और अनेक भ्रमो का निवारण किया है। सबसे बढकर उन्होने हम *विचार करने के लिये एक नया दृष्टिकोण दिया है।*

पुरुष-स्त्री ले० रघुवीरशरण दिवाकर, प्रकाशक—मानव साहित्य सदन, मुरादाबाद। पृष्ठ १७५, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक का विषय श्री मशरूवाला की उपरोक्त पुस्तक के समान है और लेखक ने प्राय उन्ही तत्वो पर विचार किया है जो मशरूवालाजी की पुस्तक म है। दृष्टिकोण में भी विशेष अन्तर नही है। हा, दिवाकरजी ने कही-कही आवश्यक *साहित्यिक शब्दावली और शैलीयुक्त* भाषा का प्रयोग *किया है जो ऐसे नाजुक विषय के लिये ठीक नही है। वैसे उन्होने मध्यम मार्ग को ही ग्रहण करने की सूचना* दी है। उन्होने स्त्री पुरुष की समानता पर जोर देते हुए उनके सम्बन्ध के वैज्ञानिक अध्ययन का सुझाव दिया है। कामशिक्षा को हव्वा न मानकर उसकी उचित शिक्षा इस प्रश्न का बहुत हद तक हल कर सकती है ऐसी उनकी मान्यता है।

पुस्तक विचारोत्तेजक सामग्री से परिपूर्ण है। उसका प्रभाव और दृष्टिकोण स्वस्थ है।

आत्म चिन्तन ले०—मार्क्स ऑरेलियस *अनुवादक—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा श्रीमती* लक्ष्मी देवदास गाधी, पृष्ठ सख्या ९३, मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तक सुप्रसिद्ध रोमन तत्त्वज्ञानी सम्राट् मार्क्स ऑरेलियस की 'चिन्तन' का अनुवाद है। कई वर्ष पूर्व राजाजी ने इसका तमिल में अनुवाद किया था। अब श्रीमती लक्ष्मी देवदास गाधी ने उसका हिन्दी रूपातर प्रस्तुत किया है।

पुस्तक ज्ञान का भडार है और जीवन की जटिलताओ का सामना करने की शक्ति देती है। यह *इस बात का भी प्रमाण प्रस्तुत करती है कि जीवन* की मूल समस्याओ का समाधान विश्व के सभी मनीषियो की दृष्टि म प्राय एकसा ही है।

मार्क्स सन् १६१ से १८० तक रोम साम्राज्य का सर्वेसर्वा था। वह उन तत्त्वज्ञानी सम्राटो में से था जिनकी परम्परा हमारे देश म राजा जनक ने डाली थी। उनकी विचारधारा में भी अद्भुत् साम्य है। मार्क्स ने य विचार किसी के लिये नही लिखे थे, वरन् अपने ही मन में उठने वाले तूफान को शान्त करने के *लिये उन्हे खोज निकाला था।* इसलिए उनमें गहराई के साथ-साथ अद्भुत् सत्य भी है। सहानुभूति और शक्ति, विवेक और विज्ञान से ये विचार छलछलाते है।

हमें विश्वास है इनसे अनेक जिज्ञासुओ का समाधान होगा। एक भारतीय के लिये ये विचार नये नही है

१ तुम तो अपनी ही अन्तरात्मा को देखो। उसे पहचानने का प्रयत्न करो।

(शेष पृष्ठ २९९ पर)

ज्ञान के और ?

गांधी-जयंती

गांधी-जयंती के माने हैं गांधी-विचार की जयंती। गांधीजी के विचारों का आज की भाषा में, एक ही शब्द में, निचोड़ निकालें तो उसके लिए 'सर्वोदय' से अधिक सार्थक शब्द नहीं मिलता। गांधीजी को वैसे 'सत्याग्रह' शब्द बहुत प्रिय रहा है, परन्तु उनके सारे जीवन-आदर्श को सूचित करनेवाला शब्द तो 'सर्वोदय' ही है। सर्वोदय सत्याग्रह की भित्ति पर खड़ा है। सत्याग्रह में सत्य पर जोर अधिक है तो सर्वोदय में अहिंसा पर। सत्याग्रह में व्यक्ति पर अधिक दृष्टि है तो सर्वोदय में समष्टि पर। प्राचीन परिभाषा का अवलम्बन करें तो सत्याग्रह आश्रम-व्यवस्था के समकक्ष हो सकता है और सर्वोदय वर्ण-व्यवस्था के। जो हो, आज भारतवर्ष को, बल्कि सारे संसार को एक नई समाज-व्यवस्था की जरूरत है, जो प्रत्येक व्यक्ति को और घटक को स्वाश्रयी, साथ ही परस्पर-पूरक बनावे। स्वाश्रयी बनेंगे जीवन में श्रम को प्रतिष्ठा देकर और परस्पर-पूरक बनेंगे अहिंसा की वृत्ति को अपना कर। अतः यदि हमें गांधी-जयंती सच्चे हृदय से मनाना है तो हमको श्रम की उपासना करनी चाहिए, केवल चर्खा कात कर नहीं, बल्कि संसार के किसान और मजदूर के जीवन में अपना जीवन मिलाकर, यानी केवल सूत कात और बुन कर नहीं, बल्कि किसान और मजदूर बनकर। किसान और मजदूर बनने के माने यह नहीं हैं कि हम उनकी तरह फूहड़, अपढ़, अनजान बन कर रहें, बल्कि शिक्षित, संस्कारवान, सुसभ्य श्रमिक बनें और जो श्रमिक हैं, उनको संसार के जीवन में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करावें।

हटूंडी, चर्खा द्वादशी, २७-९-५१

'मण्डल' की रजत-जयंती

परम श्रेयार्थी जमनालालजी ने जिस 'सस्ता साहित्य मण्डल' की नींव डाली और श्रद्धेय डा० राजेन्द्रप्रसाद, काका साहब जैसे पुण्यपुरुषों और घनश्यामदासजी जैसे धनी साहित्यरसिक, श्री महावीर-प्रसादजी पोद्दार, देवदासभाई, पारसनाथजी, वियोगी हरिजी, जीतमलजी लूणिया आदि जैसे मंजे हुए अनुभवी कर्मियों ने जिसे अबतक पाला-पोसा वह पौधा अपने जीवन के २५ साल पूरे करके २६वें में जाने की तैयारी कर रहा है। पिछले पच्चीस वर्षों का चित्र जब एक साथ सामने खड़ा होता है और आज जब यह आवाज इधर-उधर से कानों में आती है कि हिन्दी में पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता के रूप में 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया है तो मन को थोड़ा संतोष जरूर मिलता है। इसका मतलब यह नहीं कि 'मण्डल' जो कुछ चाहता है या जो कुछ उसे कर सकना चाहिए था, वह सब उसने कर लिया, मगर इतना मतलब जरूर है कि जो कुछ अबतक हुआ है, वह कार्यकर्त्ताओं को भविष्य के लिए प्रोत्साहन और हिन्दी-भाषी भाई-बहनों से अधिक सहयोग—सक्रिय और सजीव सहयोग—पाने के लिए काफी है। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है, हमारी अविकसित दशा का चिन्ह है कि जो कार्य की जिम्मेदारी ले लेता है, उसे दर-दर सहयोग और सहायता की भीख मांगनी पड़ती है और जिनकी सेवा होती है, वे उस सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्य के प्रति उतने जागरूक नहीं रहते। बात उल्टी होनी चाहिए कि जो सेवा या काम चाहते हैं वे अपने उपयोग के लिए कुछ व्यक्तियों पर उसकी जिम्मेदारी डालें और उन्हें हर तरह का सहयोग और सहायता दे कर उनसे वह काम ले लें। अतः यदि 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने अबतक विविध पुस्तक-प्रकाशन और 'जीवन साहित्य' के द्वारा कुछ उपयोगी सेवा हिन्दी-

संसार की की है तो अब यह होना चाहिए कि इसके विकास के लिए जिस जिस साधन-सामग्री की जरूरत हैं और जिसकी ओर 'मण्डल' के कर्मचारी समय-समय पर ध्यान दिलाते रहे हैं, वे उसे खुद आगे आकर प्रस्तुत कर दें। इसके अनुकूल वातावरण हिन्दी-जगत् में उत्पन्न हो और उसकी ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो, इसलिए 'मण्डल' ने यह निश्चय किया है कि आगामी मार्च के महीने में 'मण्डल' की 'रजत जयन्ती' मनाई जाय। उसका कार्य क्रम बनने पर बाद में सूचित किया जायगा। यह जयन्ती इसलिए भी हम मनाना चाहते हैं कि जिससे हम खुद यह स्पष्टता से देख सकें कि अभी हमें और कितना काम करना बाकी है और अबतक जो कुछ किया है उसमें क्या कसर रही है और अबतक के हमारे सहयोगी लेखकों, प्रकाशकों, सहायकों, प्रोत्साहन-दाताओं को भी यह अवसर मिले कि वे हमारी कमियों की ओर हमारा ध्यान दिला सकें और आगे के लिए हमारी सेवा का पथ विशेष सुगम और सरल कर सकें।

इस अवसर पर हम 'जीवन-साहित्य' का जिसने पिछले बारह वर्षों से लगभग मूक भाव से, बिना तड़क-भड़क के, हिन्दी के विचार, भावना और कार्य के क्षेत्र में निरंतर और अथक सेवा की है, एक विशेषांक निकालना चाहते हैं, जिसमें 'सस्ता साहित्य मण्डल' की अबतक की सेवाओं और गतिविधियों पर प्रकाश डालने के अलावा हिन्दी-साहित्य और हिन्दी भाषियों और साहित्यिकों की वर्तमान ज्वलंत समस्याओं पर भी समुचित रूप से प्रकाश डाला जायेगा। उसकी योजना हम बाद में जल्दी ही देने की आशा रखते हैं। आज तो हम इन दोनों विषयों पर सिर्फ पाठकों का ध्यान ही दिला देना चाहते हैं, जिससे वे इसपर भली भांति विचार कर रखें और जब दोनों योजनाएं उनके सामने प्रस्तुत हों तो वे फौरन अपना सहयोग देना प्रारम्भ कर सकें। सोच विचार में उनका अधिक समय न जाय। यह काम वे इससे पहले ही कर रक्खें।

हटूडी,-२७ ९ ५१

एक नया अध्याय

जिसको लोगों ने टण्डन-नेहरू विवाद कहा, उसे इन दोनों महान् पुरुषों ने अपनी महानता के अनुकूल ही आपस में निबटा लिया, इससे सारे देश में एक संतोष और उत्साह की लहर फैल गई। खास कर राजर्षि टण्डनजी ने इस सारे प्रकरण में जिस उच्चता और उदात्तता का परिचय दिया है तथा सस्था हित और देश-हित के सामने व्यक्तिगत अल्पताओं को प्रभाव नहीं डालने दिया और अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहते हुए भी अपने व्यक्ति को पीछे रहने दिया, इससे उनके प्रति प्रत्येक का आदर बढ़े बिना नहीं रहा। टण्डनजी ने चाहे कांग्रेस का अध्यक्ष-पद खोया हो, परन्तु लोक-हृदय में उनका आसन—जो उनसे मतभेद रखते थे, उनके मन में भी—पहले से ज्यादा ऊंचा और मजबूत हो गया। हम सब सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को उनके इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए। यदि हम लेंगे तो कोई संदेह नहीं कि इस तरह के हमारे बहुत से विवाद बड़ी शोभा के साथ समाप्त हो जायगे। खासकर यह बात कि अध्यक्ष पद से हटने के बाद फौरन ही टण्डनजी का नई कार्य समिति में आना मंजूर करना और अपने सहयोग का हाथ बढाये रखना, यह उदाहरण हम सबके सामने सदा के लिए जीता-जागता रहेगा।

लेकिन इससे पं० जवाहरलाल की जिम्मेदारी बेहद बढ़ गई है। वे उसको सभालने की योग्यता और क्षमता रखते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु उन लोगों की भी जिम्मेदारी इसमें कम नहीं है, जो चाहते थे कि जवाहरलालजी अध्यक्ष-पद का भार उठावें। अगर उन्होंने अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह से महसूस किया तो नेहरूजी का यह कार्य काल कांग्रेस के इतिहास में अवश्य एक नया और सुन्दर अध्याय जोड़ देगा।

हटूडी, २७ ९ ५१

शुद्धि और आत्म-परीक्षण की आवश्यकता

इधर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग और 'राष्ट्र-भाषा प्रचार-समिति', वर्धा से चौंकाने वाले समाचार

मिले हैं। उनसे ऐसा मालूम होता है कि दोनों दल-बंदी, गुटबंदी और किसी-न-किसी रूप में भीतरी अशुद्धि के शिकार हो रहे हैं। जो सेवा-संस्थाएं हैं, उनमें अधिकार का प्रश्न क्यों खड़ा होना चाहिए, यह आजतक हमारी समझ में नहीं आया। व्यक्ति की अहंता, सीमित दृष्टि और सदाचार के प्रति उपेक्षा, इनमें से कोई एक या अनेक कारण इन झगड़ों के मूल में हो सकते हैं। सही स्थिति क्या है, यह इतनी दूर बैठे हुए हमारे लिए कहना कठिन है, परन्तु सही मार्ग क्या है, यह हमको स्पष्ट दीख रहा है और यदि सम्मेलन तथा समिति के संचालक और कार्यकर्ता थोड़ा भी प्रयास करें तो उनको भी दीख सकता है। वे परस्पर दोषारोपण और लांछन लगाने की प्रवृत्ति को छोड़ दें या बहुत कम करदें और दोनों जगह जो कुछ खराबी हो रही है, उसकी जिम्मेदारी प्रत्येक व्यक्ति की खुद की कितनी है, यह सोचने लगें तो इसकी कुंजी उनके हाथ आ जायगी। जब कोई काम बिगड़ता है तो जान में हो या अनजान में, किसी एक ही व्यक्ति के दोष से वह नहीं बिगड़ता। लेकिन हम अपने दोष को न ढूंढ कर दूसरे के दोष को देखते हैं और उसी को पकड़े रहते हैं। इससे उसका दोष हम दूर नहीं कर पाते, चाहे उसे हम लोगों की दृष्टि में गिरा भले ही दें, और अपना दोष हम देखना नहीं चाहते, इसलिए वह दूर हो नहीं सकता। दोनों दशाओं में दोनों तरफ़ के दोष या तो प्रबल होते रहते हैं, या छिपे रहते हैं और हम निरंतर बढ़ी हुई उलझन में फंसते हुए चले जाते हैं, जो कि हमको एक अंधेरी खाई में गिरा कर ही छोड़ती है। ऐसी दशा में हमें राजर्षि टण्डनजी की यह सलाह पसंद आई कि सम्मेलन और समिति को दलबंदी का अखाड़ा न बनावें, मगर हम उसमें इतना और जोड़ना चाहते हैं और सो भी कबीर के शब्दों में—

"बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय॥"

हटूंडी, २७. ९. ५१.

चुनाव का बुखार

जब बुखार आता है तो उसका मतलब यह है कि कुदरत भीतर की बुराई को बाहर लाकर कहती है कि इसे निकालकर फेंक दो। अगर उसकी आवाज़ हमने नहीं सुनी तो मौत की तरफ़ इशारा करती है। ऐसा मालूम होता है कि यह चुनाव भी कुदरत की तरफ़ से बुखार-जैसा ही एक वरदान है। यदि हमने कुदरत की चेतावनी और उसका संकेत न समझा तो यह वरदान की जगह अभिशाप सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। चारों तरफ़ से कानों में खबरें आ रही हैं कि जितनी भी बुराइयां हो सकती हैं, चुनाव के सिलसिले में लोग बढ़-बढ़ के कर रहे हैं। यदि यह सही है तो यह हमारे सार्वजनिक ही नहीं, व्यक्तिगत जीवन में घुसी हुई सड़ांद को ज़ाहिर करती है। यदि हम सजग हैं तो सावधान होकर कुशल वैद्य की तरह भीतर के विष को हटाकर अपने शरीर और जीवन को शुद्ध और बलिष्ठ बना लेंगे। यदि हम मूर्ख हैं तो इस बुखार से फिर सन्निपात होगा और सन्निपात से मौत। अच्छी बात तो यह है कि इन चुनावों को हम एक खिलाड़ी की तरह लड़ें। आखिर यह चुनाव इसी बात की तो होड़ है न कि धारा-सभाओं में जाकर कौन व्यक्ति ज्यादा-से-ज्यादा सच्चाई के साथ देश और जनता की सेवा कर सकता है। यदि यही बात है तो होड़ हमारी अच्छाई और योग्यता में लगनी चाहिए, न कि हमारे झूठे या सच्चे दावों में, या येनकेन प्रकारेण प्रतिपक्षी को हराने या गिराने में। आखिर हमारी परीक्षा हमारी सेवा में होने-वाली है, न कि हमारे दावों से। इसलिए चुनाव के सम्बन्ध में दो बातें अवश्य होनी चाहिए। एक तो यह कि हम मतदाताओं से अपनी योग्यता, अपनी ईमान-दारी और सच्चाई की बाबत जो कुछ कहना हो, कहें, न कि प्रतिपक्षी की व्यक्तिगत बुराइयां और दोष सामने लाकर, उभार कर, वायु-मण्डल को गंदा बनावें। दूसरे यह कि गुप्त मतदान (Ballot) की प्रथा उड़ा दी जाय। हमारी राय और अनुभव में असत्य, कायरता और धोखाधड़ी, तीनों को प्रोत्साहन देने वाली यह प्रथा है। मतदाता वायदा कइयों से करता है और आशाओं और इच्छाओं के विपरीत न जाने किसको मत दे आता है। यह क्यों होना चाहिए? हर

मतदाता में यह साहस क्यों न होना चाहिए और हमें क्यों न उत्पन्न करना चाहिए कि मैं फला को मत दूगा, फला को नहीं ? कोई घरू काम तो है नहीं, और घरू भी हो तो भी जहां केवल विचार-दान या मतदान का प्रश्न है, उसमें गुप्तता क्यों ? हम जानते हैं कि जबतक बैलट-प्रथा विधिवत् न उठा दी जाय तबतक हमारे सुझाव पर अमल होना कठिन है, परन्तु हरएक मतदाता से हम यह अपील जरूर करना चाहते हैं कि वे जिस किसी को मत दें, खुले आम दें और लिहाज या भय से झूठा वायदा किसी से न करें। यदि वे ऐसा करें तो चुनाव के सिलसिले में जो दूपरी गदगिया उम्मीदवार फैलाते हैं या फैला सकते हैं, उसकी जड बहुत हद तक कट जायगी।

हटूडी, २७ ९ ५१ —ह० उ०

भूमिदान यज्ञ

सर्वोदय-सम्मेलन के शिवरामपल्ली-अधिवेशन के कुछ पहले से पूज्य विनोबाजी ने जिस महायज्ञ का सूत्रपात किया था, उसका बहुत कुछ प्रत्यक्ष फल इन दिनो हम लोगो के सामने आ चुका है। सैकडो-हजारो एकड भूमि स्वेच्छा से भूपतियो ने उन लोगो के लिए दान दे दी है, जिनके पास जमीन नहीं है। यह निश्चय ही जड का काम है, जो विनोबाजी ने उठाया है। इसका आगे चलकर बहुत व्यापक परिणाम निकलेगा। हमारे देश का रूप ही बदल जायगा। दान का अपने आप में महत्व है, लेकिन भूमिदान की महत्ता, उसकी पवित्रता इसलिए भी अधिक है कि वह साधन-सम्पन्न वर्ग की साधन हीनो के प्रति सद्भावना और त्याग-वृत्ति की द्योतक है। इससे पता चलता है कि लोगो का ध्यान अपने गरीब भाइयो की ओर जा रहा है। स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी विनोबाजी इस 'यज्ञ' के लिए पैदल-यात्रा कर रहे हैं। भगवान् से हमारी प्रार्थना है कि विनोबा-जी का यह अनुष्ठान पूर्ण हो। शिवरामपल्ली (हैदराबाद) तक के प्रवास में वह दक्षिण के अनेक स्थानो की पैदल-यात्रा कर चुके हैं और अब उत्तर-भारत की यात्रा पर निकले हैं। काम उन्होंने बहुत ही कठिन उठाया है, लेकिन ध्येय की पवित्रता को देखते सन्देह की गुजाइश नहीं रहती कि उसमें सफलता नहीं मिलेगी। दान का हमारे भारतीय जीवन में प्राचीन काल से ही बडा महत्व रहा है। भूमिदान तो बहुत ही उत्कृष्ट माना गया है। हम स्पष्ट देख रहे हैं कि विनोबाजी के इस अनुष्ठान से अहिंसक क्रांति की दिशा में देश के आगे एक नया मार्ग खुलेगा।

—य०

(पृष्ठ २९५ का शेषांश)

२ बुराई का बदला इसी में है कि हम वैसा न करें जैसा कि बुराई करने वाले ने किया।

३ जब चेतना-शक्ति चली जाती है तो दुख किस बात का ? नये जीवन और नये अनुभव से हानि कैसे हो सकती है ? नवीनता को मृत्यु कैसे कहा जाय।

४ जो दूसरो के प्रति अन्याय करता है वह अपना बुरा ही करता है।

५ अहकार और दभ को छोडो। अन्दर तो अहकार हो और बाहर विनय, यह बहुत ही बुरा है।

अनुवाद पुस्तक के अनुरूप सरल और स्पष्ट है। मूल का-सा रस आता है। पुस्तक हर दृष्टि से मनन करने योग्य है।

—'सुशील'

'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक

पर

पत्रों की सम्मति

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति को समझने और अन्य चिकित्सा-पद्धतियों की तुलना में इसका महत्व जानने की पर्याप्त सामग्री 'जीवन साहित्य' के 'प्राकृतिक चिकित्सा' अंकों में संग्रहीत है। कई विशेषज्ञों और अनुभवी लोगों के लेख, विचार आदि एकत्र किए हैं। ऐसा स्थायी साहित्य इन अंकों में आ गया है कि उससे इन अंकों का मूल्य पुस्तकों जैसा हो गया है। ऐसा साहित्य स्वास्थ्य के लिए उपयोगी और लाभदायक है। इसका सर्वसाधारण में खूब प्रचार किया जाना चाहिए।

इंदौर]

—लोक-सेवक

इस अंक के कई विशेष लेख पढ़कर यह आस्था अधिक दृढ़ हो जाती है कि अधिकांश व्यक्तियों की सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक प्रकृति ही है क्योंकि मानव शरीर एवं आत्मा की रचना उसी के अनुरूप है। निस्संदेह प्रकृति-माता दरिद्रनारायण की चिकित्सक है।

बम्बई]

—इंडियन पी ई एन

प्रस्तुत अंक में प्राकृतिक-चिकित्सा-विषयक लेख हैं। गांधीजी की 'आरोग्य की कुंजी' नामक पुस्तक तथा प्रसिद्ध पाश्चात्य निसर्गोपचारक डा० लूई कुने की पुस्तक 'मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार?' का सारांश भी इसमें दिया गया है। अंक पठनीय है। भाषा सरल और सर्वसाधारण के समझने योग्य है।

बम्बई]

—साधना (मराठी)

पहले अंक में सिद्धान्त सम्बन्धी अधिकृत लेखों के अलावा कई सज्जनों के प्रकृत्योपचार-सम्बन्धी अनुभव भी दिये गए हैं, जो जिज्ञासु पाठकों को प्रकृत्योपचार की ओर आकृष्ट करने की दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। दूसरे में उपचार हैं।....दोनों अंक संग्रह योग्य हैं।

वर्धा]

—राष्ट्र-भारती

कतिपय रोगों के प्राकृतिक उपाय इस अंक के लेखों में दिये गए हैं। प्रत्येक लेख अपने में पूर्ण है अर्थात् इन्हें पढ़कर पीड़ित व्यक्ति अपना उपचार स्वयं कर सकता है।....आशा है कि प्रत्येक साक्षर व्यक्ति इस अंक से लाभ उठाएगा। वास्तव में भारत जैसे निर्धन देश के लिए ऐसे उपायों से परिचित होना परमावश्यक है। मानव-कल्याण के हित ऐसे अंक प्रकाशित करने वाले सम्पादकों का कार्य स्तुत्य है।

शिमला]

—प्रदीप

प्रस्तुत अंक प्राकृतिक उपचार और महत्ता को समझाने वाले हैं। इसके सभी लेख अनुभवी और महान् व्यक्तियों के लिखे हुए हैं।

कानपुर]

—सुमित्रा

'जीवन साहित्य' के प्रस्तुत जून एवं जुलाई के अंक में प्राकृतिक चिकित्सा को लेकर योग्य सम्पादकों ने उस चिकित्सा के विशेषज्ञ, अनुभवी एवं विद्वान लेखकों के लेखों का अतीव सुन्दर चयन करके प्रशंसनीय कार्य किया है। ..१६० पृष्ठों का यह अंक बहुत उपयोगी एवं घर घर में रखने योग्य है।

वृन्दावन]

—भक्त भारत

Reg. No. E. P. 479

'मण्डल के नवीन प्रकाशन'

१. **मेरे समकालीन**—राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा लिखे २३६ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महापुरुषों तथा सामान्य लोक-सेवकों के मर्मस्पर्शी संस्मरण, जिनमें गांधीजी की पैनी निगाह के साथ-साथ उनके मधुर मानव रूप की भी झलकी मिलती है। कुछ संस्मरण तो व्यथा से इतने ओतप्रोत हैं कि पढ़कर आंखों में आंसू आजाते हैं। गांधी-साहित्य की यह सातवीं पुस्तक है। ५)

२. **बापू के आश्रम में**—श्री हरिभाऊ उपाध्याय की इस पुस्तक में गांधीजी के सम्पर्क की अनेक घटनाएं संग्रहीत हैं। ये घटनाएं हमें शिक्षाएं देती हैं और सुझाती हैं कि हमारा कर्तव्य क्या है और एक सच्चे नागरिक के नाते राष्ट्र के उत्थान में हमारा क्या योगदान होना चाहिए। १)

३. **सर्वोदय-तत्व-दर्शन**—गत चालीस वर्षों में जिस मार्ग पर चलकर हमारे देश ने विदेशी सत्ता से लोहा लिया, उससे मुक्ति पाई और देश में नई प्रेरणा, नई चेतना फूंकी, उसे राष्ट्र के पुनर्संगठन की इस वेला में अच्छी तरह से देखना और समझना है। इस पुस्तक में डा० गोपीनाथ धावन ने अत्यंत प्रामाणिक और सुन्दर ढंग से उसी मार्ग को दिखानेवाले गांधीजी के लोक-कल्याणकारी सिद्धान्तों की व्याख्या की है। सर्वोदय की दिशा में कार्य करनेवाले लोगों के लिए यह पुस्तक अनिवार्य है। ७)

४. **गांधी-शिक्षा**—(भाग १, २, ३) पुस्तक के तीनों भागों में गांधीजी की रचनाओं में से चुनकर वह सामग्री दी गई है, जो युवकों के चरित्र-निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। पुस्तकें उपयोगी हैं, अच्छी छपी हैं, मूल्य बहुत सस्ता है और उत्तरप्रदेश के समस्त जूनियर हाईस्कूलों की ६, ७, ८ कक्षाओं में सहायक पाठ्य-पुस्तकों के रूप में स्वीकृत होने के कारण हजारों की संख्या में बिक रही है। ।), ।-), ।=)

५. **रामतीर्थ-सन्देश**—(भाग १, २, ३) विद्यार्थियों की दृष्टि से इन पुस्तकों में जीवन को ऊंचा उठानेवाले स्वामी रामतीर्थ के उपदेशों का संकलन किया गया है। ये उपदेश एक साथ स्फूर्तिदायक, रोचक और शिक्षाप्रद हैं। उत्तरप्रदेश के समस्त जूनियर हाईस्कूलों की उक्त कक्षाओं के लिए ये पुस्तकें भी सहायक पाठ्य-पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हैं। ।), ।-), ।=)

६. **सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा**—इस पुस्तक में महात्मा गांधी ने उन अनेक प्रयोगों का वर्णन किया है, जो उन्होंने अपने जीवन-काल में किये थे। गांधीजी सत्य के अनन्य उपासक थे। उस दृष्टि से उनके ये प्रयोग प्रत्येक पाठक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। १४ पाइंट टाइप, बढ़िया छपाई, आकर्षक रूप-रंग, सुन्दर जिल्द। ५)

७. **गांधी डायरी (१९५२)**—गत वर्ष 'मण्डल' ने प्रथम बार इस डायरी का प्रकाशन किया था। सन् १९५२ के लिए उसका नया संस्करण २ अक्तूबर को गांधी-जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित हो गया है। इस बार सौरमास, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि-आदि के साथ-साथ अनेक ज्ञातव्य बातें उसमें और जोड़दी गई हैं। गांधीजी के प्रतिदिन के वचन तथा अन्य सामग्री तो है ही। मजबूत पक्की जिल्द, सुन्दर छपाई। ५० से कम प्रतियां अपने यहां के प्रमुख पुस्तक विक्रेता से लेलें। अधिक के लिए हमें लिखें। छोटी १।), टेबुल २।।)

'मण्डल' से प्राप्य

८. **काश्मीर पर हमला (श्रीमती कृष्णा मेहता)** इस पुस्तक में काश्मीर पर कबाइलियों द्वारा किये गए आक्रमण का रोमांचकारी, मर्मस्पर्शी और प्रामाणिक वर्णन है। लेखिका ने उस पाशविक अत्याचार को अपनी आंखों से देखा है। वर्णन इतना रोचक और हृदयस्पर्शी है कि उपन्यास का-सा रस आता है। २।।)

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिंग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

अहिंसक नवरचना का मासिक

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

इस अंक के विशेष लेख

नवम्बर १९५१

आठ आना

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन-साहित्य** [एक प्रति का ।)

लेख-सूची

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

नवम्बर १९५१ | वर्ष १२, अक ११

कांग्रेस की जिम्मेदारी

महात्मा गाधी

काग्रेस देश की सबसे पुरानी राष्ट्रीय राजनैतिक सस्था है। उसने कई अहिंसक लडाइयो के बाद आजादी हासिल की है। उसे मरने नही दिया जा सकता। उसका खातमा केवल तभी हो सकता है, जब राष्ट्र का खातमा हो। एक जीवित सस्था या तो जीवित प्राणी की भाति लगातार बढती रहती है, या मर जाती है। काग्रेस ने सियासी आजादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी माली आजादी, सामाजिक आजादी और नैतिक आजादी हासिल करनी है। ये आजादियाँ चूकि रचनात्मक है, कम उत्तेजक है और भडकीली नही है, इसलिए उन्हें हासिल करना राजनैतिक आजादी से ज्यादा मुश्किल काम है। जीवन के सारे पहलुओ को अपने में समा लेनेवाला रचनात्मक कार्य करोडो जनता के सारे अगो की शक्ति को जगाता है।

काग्रेस को उसकी आजादी का प्रारभिक और जरूरी हिस्सा मिल गया है, लेकिन उसकी सबसे कठिन मजिल आना अभी बाकी है।···अभी कल तक काग्रेस बेजाने देश की सेविका थी।··· अगर वह सत्ता हडपने के व्यर्थ के झगडो मे पडती है तो एक दिन वह देखेगी कि वह कही नही है। भगवान को धन्यवाद है कि अब वह जन-सेवा के क्षेत्र की एकमात्र स्वामिनी नही रही।

नई दिल्ली, २७ जून १९४८]

●

ज्योति ऐसी बुझी कि अमर हो गई !

श्री विष्णु प्रभाकर

२४७८ वर्ष पूर्व का एक दिवस।

कार्तिक मास की सघनतम अमा भारत के रंगमंच पर प्रवेश कर चुकी थी। किसी अज्ञात की प्रेरणा से आकाश-दीप मुक्त भाव से मुस्कराने लगे थे। आलोक और अन्धकार का वह अपूर्व मिलन था और उस अपूर्व मिलन की वेला में एक दिव्य ज्योति अमृतवर्षा कर रही थी। . . .

धीरे-धीरे अमा का अन्तिम प्रहर आ पहुंचा। उस पुनीत स्वर से एक अनुपमेय माधुर्य, एक अद्भुत गाम्भीर्य झरने लगा, स्तब्ध-शांत जगत ने सुना—

"जैसे पतझड़ में ऋतु की रातों के बीत जाने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर झड़ जाता है वैसे ही यह मनुष्य का जीवन है। न जाने कब झड़ जाय! इसलिए हे गौतम, क्षण भर भी प्रमाद न कर।

"चिरकाल के बाद भी इस मनुष्य का जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि पूर्व कर्मों के विपाक प्रगाढ़ होते हैं। हे गौतम, क्षण भर भी प्रमाद न कर।

"जैसे कमल शरतकाल के निर्मल पानी को भी नहीं छूता, उससे अलिप्त रहता है, उसी तरह तू भी संसार से आसक्ति दूर कर, सब प्रकार के संकुचित मोह-बन्धनों को छेद डाल। गौतम, एक क्षण भी प्रमाद न कर।

"तू महान् संसार-समुद्र को तैर चुका है, अब किनारे आकर (मनुष्य-जन्म पाकर) क्यों अटक रहा है? उस पार जाने की जितनी भी हो सके, शीघ्रता कर। गौतम, क्षण भर भी प्रमाद न कर।"

यहीं आकर सहसा वह स्वर शांत हो गया। विश्व-वीणा के तार जैसे तीव्रता से झंकृत हुए और फिर शनैः-शनैः मौन होने लगे। मौन और वाचा का, तमस और ज्योति का अन्तर मिटने लगा। तभी प्रकृति में एक निःशब्द स्वर गूंज उठा:

"प्रभु मौन हुआ चाहते हैं।"

"कौन प्रभु?"

"श्रमण महाप्रभु निगंठ नायपुत्र वर्धमान महावीर।"

"वर्धमान महावीर!"—दिशाएं प्रतिध्वनित होने लगीं—"वर्धमान महावीर! अज्ञान और अन्धकार पर अहिंसा और अनेकांत की प्रस्थापना करने वाले तीर्थङ्कर!"

अमा ने अवगुण्ठन उठा दिया। निःशब्द प्रकृति वाचाल हो उठी। नीलाम्बर की तारिकाएं लास्य नृत्य में रत हो गईं और तब देखा जगती ने—"उषा नव प्रभात का संदेश लिये उसके आंगन में प्रवेश कर रही है।"

अस्तित्वेर चक्र तले, एक बार बांधा परे
पाव कि निस्तार।
(रवि ठाकुर)

यह उस समय का दृश्य है जब तीस वर्ष तक निरन्तर घूम-घूम कर अपने सिद्धांतों का प्रसार करने के बाद जैन धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर अन्तिम बार पावापुरी में पधारे थे। वहीं पर उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम उपदेश दिये थे। उपदेशों की इस अखण्ड धारा का अन्तिम उपदेश उन्होंने कार्तिक-अमावस्या के अन्तिम प्रहर में दिया और फिर चिर मौन में समा गए।

और उनके मौन होते ही—

"विरोधिता जीवन सुप्रभात में,
जागी विहंगावलि-सी सभी प्रजा।
चतुर्दिशा चारु निनाद यों उठा,
'जिनेन्द्रकी जै,' जै जैन धर्म की।"
(अनूप शर्मा)

कहते हैं, तब काशी और कौशल नरेशों तथा मल्लि और लिच्छवि संघ के शासकों ने उस पुनीत निर्वाण के उपलक्ष में दीपोत्सव किया था। उस उत्सव द्वारा मानों उन्होंने व्यक्त किया—"यद्यपि यथार्थ ज्ञान का प्रकाश अब संसार में नहीं रहा है, तथापि पौद्गलिक (जड़-द्रव्य)

प्रकाश अपना विकास दिखला रहा है। मानो उन्होंने घोषणा की—"भगवान महावीर का ज्ञान सघनतम अमा को पूर्णिमा के प्रकाश में पलट सकता है।

उस दिन वह अमा ऐसी आलोकित हुई कि आज तक होती चली आ रही है। असख्य दीपो का ताज पहने वह प्रतिवर्ष उसी मुहूर्त में, उसी तिथि में, *मानो भगवान महावीर के उसी अन्तिम उपदेश को दोहराती हुई आती है*

समयम् गोयम मा पमायए।

(क्षण मात्र भी प्रमाद न कर)

(२)

और फिर काल-चक्र चलता रहा। युगो ने करवट ली। शताब्दियां बीत गईं।

एक दिन सहसा भारत के आगन में फिर कुछ विशद हलचल मचती दिखाई दी। वही कार्तिक मास! वही सघनतम अमा का दिवस!

अजमेर के एक मकान में एक सन्यासी मृत्यु-शैया पर लेटा है। उसके सारे शरीर पर विष के छाले उभर आये हैं। श्वास तीव्र गति से चल रही है। उसी का कभी-कभी रोक कर वह ध्यान मग्न हो जाता है। नयनो में नीर भरे और हृदय में वेदना समेटे अनेक भक्त इधर-उधर खडे हैं। उन्ही में से एक भक्त आगे बढता है। अवरुद्ध कण्ठ से पूछता है, "आपका चित कैसा है?"

"अच्छा है। आलोक और अधकार का मिलन है।"

"आप कहा हैं?"

"ईश्वरेच्छा में।"

भक्त मौन हो गये। अब सन्यासी ने मृदु स्वर में पूछा—"तुम्हारी क्या अभिलाषा है?"

भक्त ने उत्तर दिया—"*हमारी एकमात्र अभिलाषा यही है कि आप अच्छे हो जाय।*"

सुनकर सन्यासी का कण्ठ करुणा और स्नेह से भर आया। क्षणभर रुककर उन्होंने कहा—"वत्स! इस शरीर का और क्या भला होगा? जो भला है वह चिरकाल भला रहेगा। शरीर का यही धर्म है। इसके लिये शोक मत करो।"

प्राण कहें सुन काया मेरी, तुम हम मिलन न होय।
तुम सम मीत बहुत हम कीना सग न लीना कोय।

यह कह कर सन्यासी ने मानो पिया-मिलन की तैयारी शुरू कर दी।

करले सिंगार सजन अलबेली साजन के घर जाना होगा।
न्हाले, धोले, सीस गुथा ले, फिर न वहा से आना होगा।'

प्रीतम जब सामने हो तो किसी का बीच में खडा होना कैसे सहा जा सकता है। *सन्यासी ने कहा—"सब लोग सामने से हटकर मेरे पीछे खडे हो जाए।"*

भक्त लोग पीछे खडे हो गए।

सन्यासी बोले—"सब द्वार खोल दो। प्रकाश को आने दो।"

प्रीतम से मिलने की कितनी उतावली है! भक्तो ने सब द्वार और रोशनदान खोल दिये। लेकिन प्रिय-मिलन के लिये शुभ महूर्त भी तो देखा जाता है। सन्यासी उस बात को कैसे भूलते? पूछा—

"आज कौन-सा दिन है? कौन-सी तिथि है? कौन-सा पक्ष है?"

भक्त बोले—"*भगवन्, आज कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आरम्भ है। तिथि अमा है। वार मगल है।*"

यह सुनकर सन्यासी का मन खिल उठा। उन्होंने दृष्टि उठा कर दीवारो को देखा, छत को देखा, प्रियतम अभी नही आया था। बडी प्रतीक्षा दिखाता है यह प्रीतम, *सन्यासी मत्रोच्चार द्वारा उसका आवाहन करने लगे।* उसकी उपासना की, मधुर स्वर में गायत्री का पाठ किया—

मरण तु आओ—रे आओ,
तुद्ध मम ताप बुझाओ।

ओ मृत्यु, तुम आओ, शीघ्र आओ और मेरी विरहाग्नि को शात करो—पुकारते-पुकारते सन्यासी समाधिस्थ हो गये। जहा वाचा असफल हो जाती है वहा मौन मुक्तिदाता बनकर आता है। कुछ क्षण बाद सन्यासी ने नेत्र उघाडे। मधुर कण्ठ में कहा—"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है परमात्मदेव! तेरी इच्छा पूर्ण हो। आहा! *तैने अच्छी लीला की!*"

यह कहकर उन्होंने करवट ली, श्वास को कुछ क्षण

रोका और फिर 'ओम्' के उच्चारण के साथ उसे मुक्त कर दिया। ज्योति ज्योति से जा मिली। जीवात्मा प्रियतम से मिलकर पूर्णकाम हो गया।

उस समय संध्या के ६ बज रहे थे सन् । १८८३ के अक्तूबर मास की ३० तारीख थी और वे संन्यासी थे आर्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती। निरन्तर १५ वर्ष तक भारत में फैले अज्ञान और अन्धकार से संघर्ष करने के बाद जब वे राजस्थान की ओर मुड़े तो किसी अज्ञानी ने उन्हें विष दे दिया। मानों उसने कहा--"भारत की आत्मा में जड़ता का जो विष रम रहा है उसे उतारने के लिये तुम्हें यह विष पीना होगा।

नीलकण्ठ के देशवासी ने उस विष को हंसते-हंसते पिया और फिर--

शंकर दिया बुझाय दिवाली को देह का।
कैवल्य के विशाल वदन में मिला गया।

तब मानों उसका वह एक जीवन-दीप लक्ष-लक्ष दीपों में प्रज्वलित हो उठा।

(३)

तेईस वर्ष बाद !

दीवाली--सदा आनेवाली दीवाली--फिर आई। टेहरी राज्य में भिलिंग गंगा के ऊंचे किनारे पर स्थित सिमलमू भवन में एक युवा संन्यासी ठहरा हुआ था। उसके नेत्रों में अपूर्व तेज था। उसके मुख पर एक दिव्य मुस्कान थी। उस दिन वह एक लेख पूरा करने में लगा हुआ था। वह अन्त तक आ पहुंचा था। कुछ पेंसिल, कुछ स्याही से उसने लिखा--

"ओ मौत ! बेशक उड़ा दे इस जिस्म को; मेरे और शरीर ही मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ चांद की किरणें, चांदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूं। पहाड़ी नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूंगा, बहरे-मव्वाज (आनन्द के महासागर) के लिबास में लहराता फिरूंगा। मैं ही बादे खुश आराम (मनोहर वायु) और नसीमे मस्ताना गाम (प्रातःकालीन समीर की मस्ती) हूं। मेरी यह सूरते सेलानी (मनमौजी मूर्ति) हर वक्त रवानी में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पौधों को ताजा किया, गुलों (फूलों) को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाजों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आंसू पोंछा, किसी का घूंघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़। तुझको छेड़, वह गया, वह गया, वह गया। न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।"

यह लेख था या मस्ती का आवेग ? लिखते-लिखते वह स्वयं मस्त हो उठा। चल पड़ा गंगा की ओर। पैर में चोट थी, पर जब मस्ती छा जाए तो दिल की चोट भी भर जाती है। उसने लेख को किनारे पर रखा और कूद पड़ा सुरसरि की धार में। वह अक्सर गाया करता था--

गंगा तुझपर मैं बलिहारी जाऊं,
हाड़-चाम सब तार के फेंकूं, फूल-बताशे लाऊं।
मन तेरे वन्दन को दे दूं, बुद्धी धार बहाऊं।
चित्त तेरी मछली बन जावे, अहम गुहा में दबाऊं।
पाप-पुण्य सारे भुलवा कर तेरी ज्योति जगाऊं।
तुझमें पड़ूं तो तू बन जाऊं, ऐसी डुबकि लगाऊं।
पण्डे जल थल पवन दशोंदिक, अपने रूप बनाऊं।
रमन करूं सतधारा मांहि, तब ही राम कहाऊं।

बस वह रमन करने चल पड़ा। वह वेदान्त का दिलदादा था। उसका नाम था 'रामतीर्थ'--हां, स्वामी रामतीर्थ, जिसने अट्ठाईस वर्ष की अल्पायु में ही संन्यास ले लिया था, जो संसार से 'तू' और 'मैं' का भेद मिटाने के लिये संसार को छोड़ चुका था, जो देश और विदेश हर कहीं 'अहम् ब्रह्मोऽस्मि' की पुकार लगाता फिरता था, वही राम 'मां गंगे' की गोद में जा पहुंचा। छाती भर जल में खड़े होकर डुबकी लगाई और फिर 'तू' और 'मैं' का भेद मिट गया। 'वह गया, वह गया। न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।' वे भंवर में जा पहुंचे। वहीं उनका प्रीतम था। आत्मा उसमें लय हो गई। शरीर कुछ देर बाद ऊपर आया और तेज धारा में बहने लगा।

उस दिन कार्तिक की वही सघनतम अमा थी और उसी दिन क्यों ? उनका जन्म भी तो उसी अमा के दिन हुआ था। उसी अमा के दिन उसने संन्यास लिया था। अद्‌भुत प्रेम था उसे उस अमा से जैसे उस अंधकार में से वह प्रकाश की खोज किया करता था, जैसे उस अन्धकार में ही उसका प्रीतम था। अन्धकार का अन्त ही तो प्रकाश

है। उसकी आयु भी क्या थी ? कुल तैंतीस वर्ष की। पर उसी अल्पकाल में उसने विश्व के प्रत्येक प्राणी को आश्वस्त करते हुये कहा —

शुद्ध बुद्ध तू निर्विकार है,
निष्कलंक तू ओंकार है।

और अमा के असख्य दीप एक बार फिर एक तेजोमय दीप्ति से जगमगा उठे। लहराती हुई दीपशिखाओं ने मानो गाया

जहां में अहले ईमा, सूरते खुरशीद जीते हैं।
इधर डूबे उधर निकले, उधर डूबे इधर निकले।

गांधी : एक पैगम्बर

श्री रघुवीरशरण दिवाकर

जो लोग गांधी को हिन्दू सत के रूप में देखकर सिर नवाते है या भारतीय राष्ट्र का कर्णधार होने के नाते ही उनका लोहा मानते है, वे गांधी के साथ न्याय नही करते है। कल्पना-जन्य जातीयता के छोटे भावों को अथवा कैसी भी सकीर्ण व झूठी मर्यादाओ को लेकर गांधी को मान देना एक विडम्बना है। गांधी उस धरातल पर खड़े है, जहा वही नही, खुली दृष्टि ही पहुच सकती है। हिंदू, मुसलमान और ईसाई की नही, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और इंगलिस्तान की नहीं, बल्कि मानव-मात्र की दृष्टि से, अखिल विश्व की अपेक्षा से ही गांधी का मूल्य आका जा सकता है। गांधी अध्ययन की पृष्ठ-भूमि एक और अखण्ड मानवता न होकर कोई भी समुदाय विशेष होगा तो यथार्थ का साक्षात्कार न हो सकेगा। फिर दृष्टि का सर्वाङ्गीण होना भी आवश्यक है। राजनीति का चश्मा चढाकर गांधी को देखने में कोई सार नहीं है। अर्थनीति के वृत्त में घिरे रहकर भी गांधी का विराट दर्शन कर सकना असम्भव है। गांधी सम्प्रदायगत चहार-दीवारियो से बाहर है। राष्ट्र की सीमाओ से भी परे है। कैसी भी सकीर्णताओ या ओछी मर्यादाओ में हम उन्हे नही बाध सकते। वे मानव है, महामानव है और इसी भव्य रूप में वे परम वन्दनीय हैं।

पैगम्बर गांधी

पर गांधी महामानव ही नही, पैगम्बर भी है। पैगम्बर विरले ही होते है। यह एक बहुत ही ऊची—सबसे ऊची—पदवी है। सम्भवत बहुत से 'गांधी-भक्त' भी उन्हे यह पदवी देने के लिए तैयार नही है। वे उन्हे महात्मा मानते हैं, पैगम्बर नही। पर यहा दृष्टिदोष ही है। पैगम्बर का यथार्थ स्वरूप हम समझ लें और उसे लेकर फैली हुई भ्रान्त धारणाओ को दूर हटा दें तब हम देखेंगे कि गांधी एक पैगम्बर ही नहीं, बल्कि अपने ढग के अकेले और निराले पैगम्बर है।

पैगम्बर कौन ?

कुछ लोगो को यहा तक गुलतफहमी है कि पैगम्बर होने के लिए वे यह जरूरी नही समझते कि व्यक्ति विकास की उच्च श्रेणी पर हो या महात्मा हो। उनकी धारणा है कि पैगम्बरपन एक तरह की पडिताई है, जीवन-शुद्धि से उसका अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। पर सच तो यह है कि पैगम्बर वही है जिसका सारा जीवन ही एक पैगाम हो। पडित और पैगम्बर में बड़ा अन्तर है। पंडित बुद्धि व तर्क का चमत्कार दिखाता है, पैगम्बर उससे भी परे अपनी पैनी दृष्टि डालकर, बुद्धि की ही नही, हृदय की भी आखो से, दूर तक देखकर, मानव-जीवन के अधकारपूर्ण स्थलों को विवेक की प्रकाश-किरण से आलोकित करता है। पैगम्बर मूल प्रणेता है, मूल रचयिता है। पडित सम्पादक है अथवा टीकाकार या समालोचक है। पैगम्बर प्रतिपादन करता है। पंडित विश्लेषण करता है। पडित जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाता है, हवा में उड़ता है, बाल की खाल निकालता है, पर पैगम्बर जमीन पर चलता है, धरती की बात कहता है, सीधी सादी भाषा और सुलझी हुई शैली में जीवन का सुमधुर व कल्याणकारी सन्देश देता है और वाम से काम ज्यादा करता है। इस तरह पैगम्बर पण्डित से बहुत ऊचा है। वह मानवसमाज को एक नई प्रेरणा, एक जगमगाता प्रकाश, एक पैनी दृष्टि और एक मौलिक विचार

देता है। वह एक मनुष्य है, और मनुष्य कोई भी हो, वह भूलों से धारा देनेवाला महामानव है। पैग़म्बर महामानव है और होना भी चाहिए; पर हर महामानव पैग़म्बर हो यह जरूरी नहीं है। सूत्र-रूप में कह सकते हैं कि पैग़म्बर महापंडित—महामानव है।

मानव-समाज की निधि

एक बात और है। पैग़म्बर न किसी देश की बपौती है और न किसी जाति या सम्प्रदाय का ही उसपर एकाधिकार है। वह मानव-समाज की अमूल्य निधि है। वह 'कापी राइट' नहीं है कि कोई दल या संस्था उसे खरीद ले। वह तो सूर्य है, जिससे हर कोई प्रकाश व शक्ति ले सकता है। वह चांद है जो हर किसी को शीतलता प्रदान करता है। वह बहता हुआ झरना है जिसका स्वच्छ जल पीकर कोई भी अपने अन्तर की प्यास बुझा सकता है। वह खुली वायु है, खुला आकाश है। वह अखिल विश्व का है। जो भी उसे अपनाए, वह उसी का है।

महाकाल की सम्पदा

बहुत-से लोगों की यह धारणा है कि प्राचीन काल में ही पैग़म्बर हुए या हो सके थे। पर 'प्राचीन' एक सापेक्ष शब्द है। जिसे वे प्राचीन कहते हैं, अपने समय में वह नवीन था। आज जो नवीन है, भविष्य में वही पुराना बननेवाला है। अतः महावीर और बुद्ध पुराने ही नहीं, नए भी हैं। इसी तरह मार्क्स और गांधी नये ही नहीं हैं, पुराने भी हैं। फिर, नई हो या पुरानी, मिट्टी मिट्टी है, सोना सोना है। काल-भेद को लेकर द्रव्य-भेद करना बेईमानी है। भूतकाल को गौरव के साथ देखने और वर्तमान पर नाक-भौं सिकोड़ने के पीछे सत्य नहीं, प्राचीनता का मोह है। भूत में ऐसी सामग्री अवश्य है जिसपर गर्व किया जा सके; पर वहीं ऐसी सामग्री भी है जिसपर लज्जा भी आनी चाहिए। यही बात वर्तमान को लेकर है। यही भविष्य के सम्बन्ध में समझना चाहिए। अतः भूतकाल अच्छा ही अच्छा था और उसने ही पैग़म्बर पैदा करने का ठेका ले रखा था, इस धारणा की तह में अन्धश्रद्धा है।

दूसरी ओर कुछ लोगों का मत है कि पुराने पैग़म्बर आज बेकार हैं। अब नए पैग़म्बर से ही काम चल सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उनका माना हुआ नया पैग़म्बर कल जब पुराना होजायगा तब वह भी बेकार हो जायगा। पैग़म्बर कोई खिलौना नहीं है कि जब भी जैसी अपनी रुचि या आवश्यकता हो, वैसा गढ़ लिया जाय। पैग़म्बर कभी-कभी ही जन्म लेते हैं। हर किसी युग में उन्हें ढूंढना या नित-नये पैग़म्बर की तलाश करना व्यर्थ है।

सच यह है कि 'पैग़म्बर' को लेकर नए-पुराने का यह विचार-भेद निःसार है। पैग़म्बरपन के मूलभाव या यथार्थ स्वरूप से उसका कोई मेल नहीं है। यह ठीक है कि पैग़म्बर अपने समय की व अपने चारों ओर की परिस्थितियों व समस्याओं को अपेक्षित रखकर ही अपना पैग़ाम देता है और उन सीमाओं में रहकर ही अपने व्यक्तित्व की गरिमा का परिचय दे पाता है; पर यह उसका दोष नहीं, बल्कि मानवीय जीवन की प्रकृत सीमा का ऐसा अनिवार्य बन्धन है जिसमें बंधे बिना कोई भी जीवधारी नहीं रह सकता। मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह इस वस्तुस्थिति को न देखकर पैग़ाम को एक कालविशेष के पिंजरे में बन्द कर देना चाहता है। वास्तव में पैग़म्बर अपने युग का आलम्बन लेकर जो सन्देश देता है, वह उस युग के लिए ही नहीं, अनन्त भविष्य के लिए है, महाकाल के लिए है। जरूरत है पैग़ाम को परिस्थितियों की अपेक्षा से देखने की, पैग़ाम की दिशा समझने की। वृथा सन्तोष व अन्धविश्वास-जन्य जड़ता के साथ पैग़ाम को एक अटल, अबाधित तथा पूर्ण सत्य न माना जाय, उसके बाहरी ढांचे या शरीर-मात्र को ही नहीं, ज्ञान-चक्षुओं से उसके प्राणों पर भी दृष्टि डाली जाय तथा उसे चारों ओर से घिरी हुई व स्थिर जलराशि नहीं, सतत् प्रवाहशील जलधारा समझा जाय तो हम देखेंगे कि पैग़म्बर कालविशेष की नहीं, महाकाल की सम्पत्ति है। वह महाकाल के नभ-मण्डल का एक जाज्वल्यमान मांगलिक नक्षत्र है।

पैगम्बर—एक मनुष्य

पैगम्बर को लेकर प्रायः लोगों की यह धारणा है कि वह एक पूर्णपुरुष ही हो सकता है। उनकी राय में पैग़म्बर भूलों से परे है। मानव जीवन का सम्पूर्ण आदर्श पैगम्बर में होना ही चाहिए ऐसी उन्हें अपेक्षा है। पर यहां मूल में ही भूल है। कोई व्यक्ति हर प्रकार से आदर्श जीवन नहीं बिता सकता है। अधिक से-अधिक उसका जीवन काल्पनिक पूर्ण आदर्श जीवन का एक छोटा-सा अंश ही बन सकता है। मनुष्य का शरीर मनुष्य का मन और मनुष्य का मस्तिष्क ही ऐसा है कि वह पूर्णता नहीं मानी जा सकती। आत्म-शुद्धि की पूर्णता के आदर्श को शिरोधार्य करके भी यह मान्य नहीं किया जा सकता कि मन और मस्तिष्क पर, जो शरीर के ही अंग है, निर्भर रहते हुए कभी ऐसी स्थिति आ सकेगी जब विकास—मन-मस्तिष्क का अनवरत परिमार्जन—रुक जायगा, जीवन का स्पन्दन व सतत परिवर्तन बन्द हो जायगा। ऐसी स्थिति की कल्पना करना जीवन की नहीं जड़ता की कल्पना करना है। जहां जीवन है, वहां विकास है और जहां विकास या पूर्णता की ओर बढ़ने की गति है, वहां अपूर्णता है ही। पर रूढ़ि रूप से पूर्णता मान भी ली जाय तो भी उपयोग की दृष्टि से हरगिज उसे नहीं माना जा सकता। आखिर, उपयोग सामाजिक परिस्थिति व आवश्यकता पर निर्भर है। कोई भी व्यक्ति हर परिस्थिति में तथा प्रत्येक आवश्यकता की अपेक्षा से आचरण कर सके या संदेश दे सके, यह नितान्त असंभव है। सभी पैग़म्बरों ने मानव-समाज के सम्मुख उच्चतम मानवीय आदर्श रखे हैं, पर उनमें ही कितनी विभिन्नताएं हैं ? इसलिए कि सभी ने कल्पना-जात के पूर्ण मानव व्यक्तित्व के अलग-अलग पहलू ही दिखाए हैं और यही वे कर भी सकते थे। वास्तव में हर पैगम्बर अपनी विशेष परिस्थिति में तथा अपना छोटी सी आयु में सत्य की एक झांकी ही दिखा सकता था। सत्य अनन्त है, चिर-शोध्य है। पूर्ण-परिपूर्ण सत्य न कभी किसी के पल्ले पड़ा है, न पड़ेगा। व्यक्ति, चाहे कितना ही महान हो, सत्य की एक झलक भर देख सकता और दुनिया को दिखा सकता है। अतः हर पैग़म्बर से कुछ विशेष प्रेरणाएं ही ले सकते हैं और यही ठीक भी है। ईसा ने बलिदान का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, बुद्ध और महावीर नहीं कर सके, क्योंकि उन्हें अधिक सहिष्णु लोगों में काम करने का अवसर मिला था। जिस तरह बुद्ध और महावीर ने भोग विलास व ऐश्वर्य पर लात मार कर, गृहस्थ्याग कर, यह प्रेरणा दी कि पत्नी तथा परिवार से समाज ऊंचा है, मोह से कर्तव्य बड़ा है। ईसा परिवार विहीन होने के कारण इस तरह की परीक्षा न दे सके। महावीर और बुद्ध से जन-कल्याण के लिए घर-बार छोड़ना सीखा जा सकता है तो मुहम्मद से सपत्नीक रहते हुए सेवा और त्याग का पाठ पढ़ा जा सकता है। पराधीनता की जंजीरों में जकड़े दीन हीन भारत का कर्णधार गांधी जिस विद्रोह व संघर्ष की महान पुण्यमयी शक्ति का विस्फोट कर सका, महावीर और बुद्ध आदि के लिए कैसे संभव था ? राजकीय वैभव के बीच जन्मे और पले राम और कृष्ण जो उदाहरण रख सके गरीब घराने में और जंगली प्रदेश में जन्म लेनेवाले एक गडरिए की संतान—मुहम्मद—वैसा उदाहरण कैसे रख सकती थी ? मतलब यह कि किसी भी व्यक्ति से मानव जीवन के लिए सब तरह की प्रेरणाएं नहीं ली जा सकतीं। जीवन एक बहुत ही उलझी हुई पहेली है। इसके अनेक पहलू हैं। इसे लेकर असंख्य प्रश्न खड़े होते रहते हैं। साथ ही तरह-तरह की परिस्थितियों में यह पहेली नये-नये रूप लेकर सामने आती है। ऐसी हालत में हम एक ही व्यक्ति को समस्त आदर्शों का पुंज मान लें, सारी प्रेरणाओं का स्रोत मान लें, किसी और की तरफ नज़र न डालें तो कैसे काम चल सकता है ? फिर तो जीवन एकांगी बन जायगा, उसमें संतुलन न रहेगा।

इस वस्तु-स्थिति की ओर ध्यान न देने का ही यह परिणाम है कि कुछ लोग पैग़म्बर विशेष के थोड़े-बहुत विचारों की आलोचना करके, उसकी कुछ त्रुटियों या भूलों को प्रकाश में लाकर, कह बैठते हैं कि यह कैसा पैगम्बर है ? पर यह पद्धति सदोष है। पैग़म्बर आखिर

दुनियां से परे नहीं है। पैग़म्बर ने कभी भूल न की हो, कभी ग़लत कदम न उठाया हो, यह ज़रूरी नहीं है। सच यह है कि पैग़म्बर अपनी ग़लतियों के बावजूद पैग़म्बर है। महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि सभी से ग़लतियां हुई थीं; पर फिर भी वे पैग़म्बर थे; क्योंकि अपने जीवन से, अपने सिद्धान्तों से, वे दुनिया को ऐसी देन दे गए जो सदा ही भविष्य को प्रेरित करती रहेगी, अनन्त युग तक मानव का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। ईसा ने सेवामय जीवन बिताते हुए, न्याय का पक्ष लिया, ढोंग और दंभ को नग्न रूप में प्रकट किया, मानव-समाज को नई स्फूर्ति व उमंग दी और परिणाम-स्वरूप जब दुःस्वार्थी व दुष्ट सत्ताधारियों ने उन्हें क्रास पर लटकाया तब भी वे अंतिम क्षण तक अत्याचारियों के प्रति मन में दुर्भावना न लाए, बल्कि ईश्वर से उनके लिए क्षमा-याचना करते-करते गए। कैसी दिव्य-ज्योति यहाँ जल रही है! फिर, उन्होंने भ्रमवश, परिस्थितियों से विवश होकर अथवा अनुभूति की गहनता को लेकर कोई गलत दावा किया हो या कोई ग़लत बात कही हो तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वे पैग़म्बर नहीं थे। इसी तरह मुहम्मद ने, असंख्य देवताओं की पूजा के नाम पर हद दरजे गिरे हुए, बुत-परस्ती में डूबे हुए और बुरी तरह आपस में लड़ते हुए जंगली व खूंखार क़बीलों को भाईचारे का, सहिष्णुता व प्रेम का संदेश दिया, इन्सानियत का पाठ पढ़ाया और इसके लिए उन्होंने यातनाएं सहीं, गालियों व अपमानों के कड़वे घूंट पिए, ईंट-पत्थर की बौछारें झेलीं और अंत में बादशाह बनकर भी फ़कीर का-सा जीवन बिताया। कौन कह सकता है कि इस मानवश्रेष्ठ का जीवन एक जलती हुई मशाल नहीं है? ऐसा नहीं है कि उनसे भूलें नहीं हुईं। यही नहीं, गलत दावे भी उन्होंने किए; पर फिर भी वे पैग़म्बर थे, यह संदेह से परे है। यही बातें महावीर और बुद्ध को लेकर हैं। गांधी भी इसी कोटि में आते हैं। उनसे भूलें हुई हैं, गलतियां हुई हैं। उन्होंने अपनी गलतियों को माना भी है। भूल होने पर उन्होंने प्रायश्चित किया है, उसे सुधारा भी है। पर फिर भी वे पैग़म्बर हैं।

जीवन की गहराई में

हरिभाऊ उपाध्याय

'साधना के पथ पर'[१] में मैंने अपने अहिंसा-संबंधी कुछ अनुभव लिखे हैं। उन्हें पढ़कर कई मित्रों ने आग्रह किया कि अपने और अनुभव भी लिखूं। खास कर मेरे पुराने मित्र पं० सुखलाल जी (प्रसिद्ध जैन विद्वान) ने कहा कि आपके अनुभव व्यावहारिक दृष्टि से बड़े काम के हैं, और भी ऐसे अनुभव लिख डालिए। उनके जैसे साधुमना के सुझाव से मैं इस ओर अधिक प्रवृत्त हो रहा हूं।

'साधना के पंथ पर' १९४५ में प्रकाशित हुई। उसके बाद मेरा जीवन एक खास दिशामें मुड़ा है। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन-संबंधी जेल-जीवन में सन्तों के चरित तथा आध्यात्मिक और दार्शनिक साहित्य अधिक पढ़ा। उससे मन पर समर्थ रामदास की यह उक्ति भलीभांति अंकित होगई—पहिले ते हरिस्मरण, दूसरे ते राजकारण—अर्थात् जीवन में प्रथम स्थान भगवान को और दूसरा राजनीति को मिलना और रहना चाहिए। वैसे राजनैतिक क्षेत्र में रहते हुए भी जीवन में भगवान् का अधिष्ठान तो था ही; परन्तु उसका नंबर दूसरा था। यह मुझे अपनी भूल मालूम हुई। भगवान् के अधिष्ठान के मानी हैं सज्जनता, सचाई का अधिष्ठान। राजनीति के मानी हैं कार्य-सफलता को प्रथम स्थान। जब कार्य-सिद्धि पर दृष्टि रखते हैं तो साधन-शुद्धि को ढीला करने के

१ 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित।

अवसर आ जाते हैं, इस लोभ या मोह को रोकना बडा कठिन हो जाता है। यदि कार्य-सिद्धि का आग्रह छोड देते हैं तो फिर 'अव्यावहारिक' आदर्शवादी' 'हवाई' 'खब्ती' की पंक्ति में बैठाये जाते हैं जो सभ्य भाषा में 'अयोग्य' के पर्यायवाची-जैसे हैं। मुझे अनुभवो ने बताया कि यदि जीवन की भित्ति मजबूत नही है, भूल गहरी नही है तो कोरी व्यावहारिक सफलता का हिसाब हमें दूर तक नहो ले जा सकता। वे सफलताएं जाहिरा तौर पर भले ही 'देश-सेवा' 'समाज हित' में खप जाती हो, हमारी शोहरत भी बढ जाती हो, परन्तु हमारा असली जीवन उससे अछूता रह जाता है। बडे-बड़े काम हाथ से हो जाने पर भी हमारा जीवन ऊचा उठा हुआ नही पाया जाता; बल्कि कई बार तो गिर गया दिखाई देता है। अत यह जरूरी है कि हमारी सफलताओ का मेल हमारी जीवन-शुद्धि या आत्मोन्नति से हो। मुझे अनुभव ने बताया कि यह तभी हो सकता है जब कार्य-सिद्धि का आधार और परिणाम जीवन-शुद्धि हो। शुद्धि से ही सिद्धि सभव है, बल्कि 'शुद्धि' का ही दूसरा नाम 'सिद्धि' समझना चाहिए। स्वतत्र रूप से 'सिद्धि' का विशेष मूल्य नही है। जो भीतर से 'शुद्धि' है, वही बाहर से 'सिद्धि' दीखती है। इस स्थिति को ही मैंने रामदास की पूर्वोक्त उक्ति में प्रतिबिम्बित पाया है।

मेरे इस विश्वास का मतलब यह नही है कि मैं जीवन शुद्धि या भगवान् के अधिष्ठान के निकट पहुच गया हू। इसका इतना ही अर्थ है कि जीवन में इसे प्राथमिकता देने लगा हू। और जबसे यह बुद्धि उदय हुई तबसे मैं अनुभव करता हू कि भगवान् की विशेष कृपा मुझपर हुई है। विद्यार्थी-अवस्था में शायद स्वामी रामतीर्थ के किसी व्याख्यान या लेख में मैंने इस आशय का कुछ पढा था—

(१) जो यह मानते हैं कि 'भगवान् हैं', उनके धार्मिक जीवन की शुरूआत हुई, ऐसा मानना चाहिए।

(२) जो भगवान् को कहते हैं कि 'वह हैं' वे धार्मिक जीवन की दूसरी मंजिल पर हैं।

(३) जो कहते हैं कि 'तू है' वे तीसरी मंजिल पर हैं। और

(४) जो कहते है कि 'मै हू' या 'जो मै हू वही तू है और तू है वही मैं हू' वे आखिरी मंजिल पर है।

तभी से मेरे हृदय में धार्मिक जीवन का महत्व अकित होगया था। बाद में जब गाधीजी ने भगवान् का अर्थ किया 'सत्य' या 'सत्य की व्याख्या की भगवान्' तब एक नया प्रकाश आया मालूम हुआ। संसार में जो कुछ सत्य है वह भगवान् ही है, संसार का जो कुछ सत्य है वह भगवान् है। जिसे हम भगवान्, ईश्वर, ब्रह्म आदि कहते हैं वह आखिर है क्या ? तो बुद्धि यही उत्तर देती है कि जो अन्तिम वास्तविकता है, जो अन्त में सत् है वही भगवान् है। वह सत् एक केन्द्र में भी स्थित है और सारे विश्व में भी व्याप्त है। जीव-रूप से केन्द्र में स्थित है और ब्रह्मरूप से विश्व में व्याप्त है। जबसे यह सत्य समझ में आया तबसे सत्य और ईश्वर में भेद नही दिखाई देने लगा। सत्य की साधना ही ईश्वर की साधना मालूम होने लगी।

मैंने कहा है कि अहिंसा मुझे अपने हृदय का धर्म जैसा मालूम होता है। जैसे बच्चा मां की गोद पाने के लिए सहज भाव से उसकी तरफ झपटता है ऐसा मुझे अहिंसा को देखकर लगता है, परन्तु सत्य अब भी कुछ डरावना लगता है। उसकी प्रखरता मन को झुलसाती हुई लगती है। बुद्धि तो मानती है कि सत्य नग्न है, वही उसकी प्रतिष्ठा, शक्ति, महत्ता और विशेषता है, परन्तु मन के सस्कार उसकी नग्नता में बीभत्सता का, अश्लीलता का अनुभव करते हैं। मेरी बुद्धि यह कहती है कि जो शरीर से, मन से, बुद्धि से नग्न रह सकता है वही सत्य-रूप या ईश्वर रूप है। जबतक मन या बुद्धि यह सावधानी का सकेत करती है कि 'लोग क्या कहेंगे ?', 'लोग बुरा तो नही मानेंगे?' "यद्यपि शुद्ध लोकविरुद्ध न करणीय नाचरणीयम्" तब तक शुद्ध सत्य का पूर्ण प्रभाव हमपर नही है, लोकाचार के विवेक का है। सामाजिक और लौकिक दृष्टि से विवेक का बहुत महत्व है, परन्तु मैं यहां 'सत्य' के

स्वरूप का दर्शन कर रहा हूं, विवेक के स्थान का निर्णय नहीं।

अहिंसा कितनी ही प्रिय हो, जबतक सत्य में उग्रता रहती है तबतक हम सत्य से तो दूर हुई हैं, सच्ची अहिंसा भी हाथ लगी है या नहीं, इसमें सन्देह होने लगता है; क्योंकि जो रमणीयता, सुन्दरता, आकर्षण अहिंसा में लगता है, वही, वल्कि उससे बढ़कर सत्य में, भगवान में लगना चाहिए। घर का बड़ा-बूढ़ा मान्य, आदरणीय, पूज्य होते हुए भी डरावना लगता है; परन्तु अपनी पत्नी प्रायः सदैव मोहक और रमणीय लगती है। सत्य मेरे लिए घरके बुजुर्ग की तरह है और अहिंसा अर्वाङ्गिनी की तरह। सामाजिक विवेक या लोक-मर्यादा और लोक-भावना का आदर करनेवाला सत्य मेरे मन में स्थान पा चुका है, मेरा प्रयत्न भी उसकी रक्षा का रहता है; परन्तु च्युति के प्रसंग भी अभी आते रहते हैं। शुद्ध या नग्न सत्य अभी पहुंच के परे मालूम होता है।

सत्य को समझ लेना उतना कठिन नहीं है, जितना उसको निबाहना, उसका पालन करना। 'दूसरे को नुकसान या दुःख न पहुंचने देना', यह खयाल इसमें सबसे बड़ी रुकावट डालता हुआ मालूम होता है। निजी यद्यपि नहीं तो भी अपने प्रिय कार्य को हानि का डर भी लगता रहता है। दो लड़नेवालों में जब समझौता या मेल कराने का प्रयत्न करते हैं तब सत्य की अक्षरशः रक्षा करना बहुत कठिन लगता है। एक ने जो बात हृदय खोलकर अपने या दूसरे के बारे में कही है, वह ज्यों-की-त्यों दूसरे से कहने में स्पष्टतः विवेकहीनता मालूम होती है और उससे ठीक उसी कार्य की हानि होने की सम्भावना रहती है जिसे हम सिद्ध करना चाहते हैं। कई बार जानते हुए भी 'नहीं जानते,' ऐसा दिखाना पड़ता है। व्यवहार में सत्य-पालन का कोई राजमार्ग नहीं दीख पड़ता और कई बार मौन रहना उचित मालूम होता है। मौन रहना भी सर्वथा सत्यानुकूल ही होगा—ऐसा नहीं कह सकते। जो बात है या हुई है, उसके विपरीत यदि असर सामने वाले पर हुआ तो हमारा वह मौन या भाषण दोनों सत्य के विरोधी हुए। इस तरह बुद्धि से सत्यासत्य का निर्णय और पालन महा कठिन मालूम होता है। सत्य-वृत्ति का विकास करना ही एक-मात्र मार्ग दीखता है। इससे कठिन अवसरों पर मार्ग अपने-आप सूझने लगता है। जितना सत्य का विकास हमारे अन्दर हुआ होगा, उतना ही सत्य-पालन से होने वाली जाहिरा हानि सहने का बल हमें मिलता जायेगा या वह हानि हमें हानि नहीं मालूम होने लगेगी।

'बापू के आश्रम में' संस्मरण-माला पूरी होने पर भाई यशपालजी ने जोर दिया कि 'जीवन साहित्य' में प्रतिमास अपने ऐसे अनुभव लिखता रहूं। पं० सुखलाल-जी आदि मित्रों का सुझाव मेरे सामने था ही। मैंने सोचा 'साधना के पथ पर' का उत्तरार्द्ध ही क्यों न लिख डालूं? इस प्रारंभिक वक्तव्य से उसकी शुरूआत करता हूं। पाठकों को इससे लाभ पहुंचा तो मेरा प्रयत्न सार्थक होगा। (क्रमशः)

जहां सौन्दर्य और श्रम साथ-साथ चलते हैं!

प्रो० रंजन

स्याम पूर्व का एक छोटा-सा देश है। इसकी सब से बड़ी विशेषता यह रही है कि इसने सैकड़ों वर्षों से अपनी आजादी की रक्षा की है। एशिया का यही एक देश है जिसने प्रत्यक्ष रूप से विदेशी प्रभाव को स्वीकार नहीं किया और न उसकी हुकूमत स्वीकार की। इसके सिवाय यहां के इतिहास के प्राचीन पृष्ठों पर भारतीय संस्कृति की सैकड़ों कहानियां अंकित हैं। एक समय भारत की जो कुछ भी विशेषता थी वह यहां पर पल्लवित और पुष्पित हुई। बौद्ध धर्म के रूप में स्याम भारत की इस थाती की आज भी रक्षा कर रहा है। भारत ने उत्थान-पतन के अनेक नाटक देखे। उसका वह गौरवपूर्ण अतीत आज केवल कला की

वस्तु रह गया है, पर इन पूर्व के देशों ने यहा के कितने ही स्वर्ग-पृष्ठों को अपने जीवन का एक अग ही बना लिया है। बौद्ध धर्म आज भी यहा लोक-धर्म के रूप में मान्य है। ऐसे स्याम के विषय में कुछ और अधिक जानने की हमारी उत्सुकता स्वाभाविक ही है। मासिक के पृष्ठ किसी भी देश के सपूर्ण-दर्शन तो नही करा सकते, पर उसकी एक झाकी अवश्य दी जा सकती है।

भारत के कुछ लोग वर्तमान स्याम को प्राचीन भारत की एक अनुकृति-मात्र मानते हैं, इससे अधिक भ्रान्तिपूर्ण बात और कोई नही हो सकती। स्याम ने अपने पडोसी देशो की सस्कृति और सभ्यता के भडार से बहुत कुछ ग्रहण किया है। कम्बोडिया, हिन्देशिया, भारत, चीन एव मलाया के जीवन की अमिट छापो से मिलकर एक ऐसा रसायनिक पदार्थ बन गया है जो मूल से सर्वदा भिन्न है। यह कहना भी भ्रान्तिपूर्ण ही होगा कि इस देश के जीवन में इस अश तक भारत का प्रभाव है, इस अश तक चीन का, या इस अश तक पश्चिम का। समन्वय और गृहण के इस गुण ने स्याम के जीवन में एक मौलिकता उत्पन्न कर दी है और यही कारण है कि सब प्राचीन देशों से कुछ-न-कुछ लेकर भी स्याम उनका नही, अपना बना रहा है। यह विशेषता पहले भी थी और आज भी है।

जहां तक वर्तमान स्याम की सीमाओ का प्रश्न है वे आज स्थिर हैं, पर इतिहास के पिछले पन्ने पलटने से पता चलता है कि इस देश की सीमाएँ, राजवश और राजधानियां बराबर बदलती और मिटती रही हैं। द्वारवती और अजुध्या के राज्य आज अपनी कला और समृद्धि की कहानी मात्र रह गये हैं। उनके खडहरों से स्वर्णिम अतीत बोल रहा है और उस सुनहले सघर्षमय अतीत से छनकर आज जिस स्याम का निर्माण हुआ है, वह प्राचीन, नवीन, पूर्व, पश्चिम का एक विचित्र मिश्रण है। जहा तक धर्म का प्रश्न है, वहा भी स्याम में समन्वय एव व्यापक दृष्टिकोण को कभी छोडा नहीं गया। देश का लोक-धर्म बौद्ध धर्म था और है, पर यहा के लोक-जीवन में रामायण और महाभारत की कथायें गुथी पडी है। राम का चरित्र यहा के लिए जीवन का आदर्श बन गया है। रग-मच, कहानी, नृत्य, नाटक सभी रामायण और महाभारत से ही प्रेरणा लेते हैं। राम और बुद्ध दोनो यहा के लिए आदर्श व्यक्ति है। मन्दिरो में जहा गर्भ-गृहो में बुद्ध की मूर्तियो की प्रतिष्ठा है वही उसी मन्दिर की दीवारो पर सपूर्ण राम-कथा चित्र द्वारा उतार दी गई है। स्याम की चित्रकला की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति रामायण-कथा के द्वारा ही हुई है और बुद्ध के साथ-साथ शिव और ब्रह्मा की या विष्णु की मूर्तियो का मिलना भी असभव नही है। स्याम की राजधानी बैंकाक में ऐसे बहुत-से वाट (मन्दिर) मिलेंगे जहा बुद्ध के साथ-साथ ब्रह्मा, विष्णु भी शोभित है। दुनिया के किसी देश में इतना समन्वयात्मक आचरण देखने को नही मिलता, भक्ति के साथ भोग, पूर्व के साथ पश्चिम गले मिल रहे हैं। भारत ने जिस सिद्धान्त का सिर्फ कागज पर बखान किया है, स्याम ने उसे आचरण में उतारा है। और यही कारण है कि सस्कृतियो का अछूतापन यहा घर नही कर सका। वे एक-दूसरे की पूरक के रूप में यहा विकसित हुई और सपूर्ण से भिन्न अस्तित्व को सपूर्ण में ऐसे मिला दिया कि उनका अपना कुछ रह ही न गया।

स्थिति के अनुकूल बना लेना स्यामियो के जीवन में खूब है। यह इनका एक विशेष गुण है। राजनीति में क्या, धर्म में क्या, व्यवसाय में क्या, सभी स्थलो पर यह बात प्रकट होती है। स्यामी लोग सिद्धान्त, आदर्श, नियम और मान्यताओ में हमेशा लचीले रहे हैं। आवश्यकतानुसार अपने को बदल लेने की इनकी क्षमता अपूर्व है। पिछले महासमर में शासक बदले, दल बदले, पक्ष बदले, पर देश ने अपनी आजादी को नहीं जाने दिया। स्याम की इसी स्थिति से आज बहुत-से देश लाभ उठाना चाहते हैं, पर उसका इतिहास साक्षी है कि ऐसे अवसरों पर स्याम को अपना कर्तव्य का पालन करना आता है।

अभी जैसा कि ऊपर सकेत किया था, स्याम में

भोगवाद और भिक्षुवाद साथ-साथ चलते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। देश का सामान्य नियम है कि प्रत्येक युवक दो वर्ष के लिए अनिवार्य सैनिक शिक्षण में शामिल हो, उसी तरह प्रत्येक बौद्ध युवक को कुछ समय के लिये भिक्षु बनना भी आवश्यक है। यह रस्म किसी समय पूरी हो जानी चाहिए। और फिर आपकी मर्जी पर है कि जब जी चाहे, चीवर को उतार कर अलग रख दें और गृहस्थ बन जायें। यहां पुनः गृहस्थ होना न तो अपमान का कारण बनता है और न पतन का। अधिकांश भिक्षु थोड़े समय तक भिक्षु-धर्म पालन करने के बाद अपने गृहस्थ-धर्म में लौट आते हैं। आजीवन उपासक और भिक्षु बने रहने वाले लोग कम होते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक कर्तव्य हैं—पूरक इसलिए कि गृहस्थ अपने 'भिक्षु' कर्तव्य को भूल नहीं जाता। भिक्षुओं के निर्वाहार्थ कुछ जिम्मेदारी उसकी भी है, यह वह समझता है। ऐसे ही उदार गृहस्थों के दान पर स्याम के सैकड़ों वाट और विहार चलते हैं। स्वयं भिक्षु न सही, पर भिक्षु के प्रति उनकी हमदर्दी कम नहीं होती। समाज थोड़े-बहुत आजीवन भिक्षुओं का भार बड़ी सरलता से निभा लेता है। आप आश्चर्य के साथ पूछ सकते हैं कि इस अर्थ-युग में व्यर्थ ही क्यों थाई-समाज भिक्षुओं का आदर करता है और क्यों उन्हें जीवन के निर्वाह के लिए कठिनाई नहीं होती? इसका उत्तर सहज ही दिया जा सकता है। प्राचीन काल से स्यामी समाज की शिक्षा-दीक्षा, उत्सव-विनोद, दवा-दारू की व्यवस्था ये विहार या वाट ही करते रहे हैं। गांवों में तो इन मन्दिरों का एक सांस्कृतिक महत्व है। यहां त्योहारों के दिन लोग इकट्ठे होकर नाटक और नृत्य करते हैं, उपदेश और धर्म-ग्रंथ सुनते हैं। जो पढ़े नहीं हैं, उन्हें पढ़ाने-लिखाने का दायित्व भी पहले इन्हीं विहारों पर रहता था। भिक्षुओं का जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से कितना ऊंचा है या नीचा, यह प्रश्न गौण है; पर इतनी बात सच है कि यहां के भिक्षु उपयोगिता की दृष्टि से स्यामी समाज के रोम-रोम में गुथे पड़े हैं। शिक्षा-विभाग तो सरकार ने अब खोला है, पर अबतक इस कर्तव्य का पालन कौन करता था?—कौन वह स्थान था जहां सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, रोग-शोक में जाकर स्यामी कुछ राहत पाता था? जीवन के विकास और विनोद की व्यवस्था, रोग की दवा, सभी के लिये भोले स्यामी इन्हीं विहारों में पहुंचते थे और हैं और यहां उन्हें आत्मा, मन और शरीर के लिये पौष्टिक तत्व मिलते थे। तब ऐसी संस्था और उसके साधकों के प्रति गृहस्थों को वैराग्य और उपेक्षा कैसे आ सकती है? ये भारत के संन्यासी या बाबा नहीं हैं जो अपनी मुक्ति की चिन्ता में ही रात-दिन डूबे रहें। ये समाज से दूर नहीं, समाज उनकी साधना और सेवा की प्रयोग-भूमि है। इसीलिए उपयोगिता और शिक्षा की दृष्टि से वे सदा से समाज के अंग रहे हैं और रहेंगे। तभी उनके प्रति समाज की श्रद्धा और आदर कायम है। बैंकाक के बौद्ध विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर निकले हुए भिक्षु उस शिक्षा का फिर गांवों में जाकर प्रचार करते हैं—शिक्षा और धर्म की यह अलख इस प्रकार युग-युग तक जगती रहती है।

थाई-समाज की दूसरी विशेषता है—यहां की महिलाएं। शाब्दिक स्वतन्त्रता और समता तो स्त्रियों को भारत ने भी दी है और समय-समय पर प्रशंसा और स्तुति के नशे से उन्हें कम मद-होश भी नहीं किया गया है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' के वाक्य हमारे आचरण के नहीं, आडम्बर के सूचक हैं। परन्तु स्याम में जो कुछ देखा वह पच्छिम से भी भिन्न था, श्रेष्ठ था। यहां की नारी सच्चे अर्थ में पुरुष की साथिन है। उसे आर्थिक और सामाजिक आजादी प्राप्त है और राजनैतिक आजादी की उसे चिंता नहीं। उसके विषय में वह सोचना भी नहीं चाहती। वह समझती है कि राजनीति निष्ठुर पुरुष के ही उपयुक्त है। इस आर्थिक स्वतंत्रता को सामाजिक दृष्टि से भी बहुत अहमियत दी जाती है। अपने देश में जिस तरह पुरुष का कमाना आवश्यक है उसी प्रकार स्याम में कोई नारी बेकार नहीं बैठती—कुमारी, विवाहिता, वृद्धा, सभी जीवन के संघर्ष में भाग लेती हैं। फिर ऐसा भी नहीं कि दफ्तर उनके गृह-जीवन

के कर्त्तव्य में कुछ कमी करदे । निठल्ले बैठकर गप-शप करना उसे नही भाता। ऐसी महिलाओ को इस देश की तरह विशेष सम्मान भी नही मिलता । कुछ राजवश की महिलाओ को छोडकर, जो बहुत कम है, शेष सभी महिलाए अपनी स्थिति, शिक्षा और योग्यता के अनुसार कुछ-न-कुछ काम करती है। खेतो में हल के पीछे धान बिखेरना, स्टेशनो पर फल, माँस और पानी बेचना, होटलो में सर्विस करना और दफ्तर में फाइलें सम्भालना और स्कूलो में पढाना—ये सब महिलाओ के ही काम हैं। कपडे की बडी-बडी दुकानो पर इन्ह मैंने कपडे बेचते देखा। सरकारी विभागो की कुर्सियो पर अधिकाश स्याम के सदा मुस्कराते चेहरे ही नजर आयेंगे—शायद इसीलिए यहा के दफ्तरो में पुरुष की गैरहाजिरी कम होती है। फुर्तीले हाथ—बेशिकन चेहरे, खिलती अदायें साथ काम करने वाले पुरुषवर्ग को भी चेतना और उत्साह देती रहती है। श्रम यहाँ शौक है, बेगार नही। आफिस के नीरस, शुष्क कमरे इस उल्लास और हँसी-खुशी के वातावरण में अनुप्राणित हो उठते है। बस में सफर करते समय आपको सकोच करने की जरूरत नही। दो महिलाओ के बीच यदि स्थान रिक्त है तो आप आराम से बैठ सकते है और आप के बीच में यदि एक महिला के बैठने भर की जगह भी खाली है तो बिना आप को इधर-उधर खिसकाये देविया बैठ जायेंगी। कोई बात करना हो तो तकल्लुफ दिखाने की जरूरत नही। आप जो पूछेंगे उसका बडी नम्रता से उत्तर मिलेगा। स्याम की नारिया अपने को छुई-मुई नही समझती, जो पुरुषो की छाया या बात से अपवित्र या दूषित हो जायगी। एक-दूसरे से बात करना मर्यादा-उल्लघन की सीमा में नही आता। सेक्स-कम्प्लेक्स (Sex Complex) इनके दिमाग में है ही नहीं। दोनो को दोनों की इज्जत का ख्याल रहता है, पर वह इतनी नाजुक नही है कि-पर पुरुष से बात करते ही चली जाय। इस देश में कोई स्त्री अपने को दासी नही मानती और न पुरुष देवता। समाज में आर्थिक या जाति के आधार पर कोई भेद नही होता। जाति और वश की मिथ्या भावना के लिए यहा कोई स्थान नही। विवाह यहा आम तौर पर प्रेम-विवाह ही होते हैं, जिसे स्यामी स्वयवर का एक रूप मानते हैं।

पर स्याम के जीवन का एक और चित्र है, जो सफेद नही है। समाज में कई क्षेत्रो में सयम का अभाव भी है। कुछ बुराइया भी स्यामियो में गहरी जड जमाये हैं। इनसे समाज को बडी हानि पहुची है। फिजूलखर्ची, आडम्बर और दिखावा ने इनकी बडी हानि की है। इसीलिए बडे-से-बडे स्यामी को आप कर्ज से मुक्त नही पायगे। दोना मिलकर कमाते हैं, फिर भी खर्च पूरा नही पडता। पीने-पिलाने का शौक बहुत आम है। महिलाए भी इस बात में पीछे नही है। मितव्ययता महिलाओ में भी नही है। भौतिक दृष्टिकोण इतना हावी हो गया है कि ये लोग खाने-पहनने से आगे कुछ सोचना ही नही चाहते। उमरखैयाम पैदा तो ईरान में हुआ, लेकिन उसका असर स्याम में पडा। आध्यात्मिक पक्ष मृतप्राय हो गया है। पुरुषो में एक प्रकार की अजीब लापरवाही के दर्शन होंगे। बस में बैठकर इसका अन्दाज आप लगा सकते है। दाया-बाया, धीमे, तेज—सडक के कोई नियम इन्हे मान्य नही। बैठे-बैठे ऐसा लगता है कि बस अब टकराई, अब टकराई! ट्रेफिक के नियम जैसे वहा कोई मानता ही नही। आएदिन दुर्घटनाए होती है। मोड-भाड वाली सडको पर मैंने ड्राइवरो को ४०-५०-६० की रफतार से बसें दौडाते देखा है। यह लापरवाही जिन्दगी की दौड में भी मिलेगी। पुरुष में वह स्फूर्ति नही है जो महिलाओ में है। कुछ अहदीपन-सा है। पुरुष विनोदी विलासी दोनो है और इसीलिए साधारण नागरिक राजनैतिक हलचलो में विशेष रुचि नही रखता।

●

"इस दुनिया में मनुष्य ज्यादा है या कम है, इसका पृथ्वी कोई भार महसूस नही करती, लेकिन मनुष्य सज्जन हैं या दुर्जन हैं, इसका भार अवश्य महसूस करती है। पृथ्वी को मनुष्य की सख्या का नहीं, दुर्गुणो का भार है।"

—विनोबा

आचार्य जे. सी. कुमारप्पा

डा० ओमप्रकाश गुप्ता

कुमारप्पाजी का सच्चा दर्शन मगनवाड़ी में होता है। उन्होंने ही इसे जन्म दिया है और १७ वर्ष से वे यहां हैं। मगनवाड़ी 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ' का केन्द्र है। बड़ा सुन्दर और रमणीक स्थान है। छोटे-बड़े बहुत से उद्योग-भवन, प्रयोगशालाएँ और कार्यकर्ता-निवास हैं; किन्तु कुमारप्पाजी का अपना घर उन सबसे छोटा है। २० फुट लम्बा और १५ फुट चौड़ा एक कमरे का यह मकान है। वर्षा ऋतु में सोने के लिए एक बरामदा है। मकान के चारों तरफ लकड़ी का एक बाड़ा है और बाड़े के बाहर खाई का एक पाखाना है। उसी एक कमरे में उनका स्नानघर है। मुलाकात-घर और भोजन-घर भी उसी में हैं। फर्निचर के नाम पर एक लकड़ी की खाट, एक छोटी-सी मेज और स्टूल को छोड़कर कुछ नहीं है। यही कुमारप्पाजी की प्रसिद्ध झोंपड़ी है। इस झोंपड़ी के अन्दर किसी का आना उन्हें अच्छा नहीं लगता। यदि कोई आदमी उनसे कुछ बात करने के लिए अन्दर आ भी जाता है तो वे चुपचाप उठकर बातें करते-करते उसे बाहर ले आते हैं। किसी को पता भी नहीं चलता।

धोती-जामा और कुर्ता पहने हुए इस झोंपड़े में यद्यपि कुमारप्पाजी बिल्कुल एक हिन्दुस्तानी लगते हैं; किन्तु वह एक ऐसे हिन्दुस्तानी हैं, जिनपर पाश्चात्य देशों की बहुत-सी अच्छी चीजों का खूब प्रभाव पड़ा है। उनके झोंपड़े में हरेक चीज बिल्कुल व्यवस्थित और सुन्दर ढंग से रखी हुई मिलेगी। मिट्टी की साफ-सुथरी दीवार पर तीन-चार शीशे में मंढ़ी हुई तसवीरें, पीतल की शमादानी, जिसमें घानी का तेल जलता है, कमरे की शोभा को और भी बढ़ा देती हैं। कुमारप्पाजी अपने नित्यप्रति के जीवन में बहुत ही व्यवस्थित हैं।

कुमारप्पाजी समय के बहुत पाबन्द हैं। एक घड़ी सदैव उनकी सहगामिनी रहती है। एक-एक मिनट का हिसाब उसी के आधार पर होता है। मगनवाड़ी के अपने १७ वर्षों में शायद ही कभी उन्होंने समय के पालन में चूक की हो। चाहे क्लास में जाना हो या किसी सभा-समारोह या उत्सव में, अथवा मुलाकात करनी हो, वे कभी एक मिनट की भी देर नहीं करते।

मुलाकात के लिए पहले से ही समय नियत किए बिना वे किसी से भी नहीं मिलते। कई बार ऐसा हुआ है कि कुछ प्रमुख व्यक्ति आए; किन्तु मुलाकात का समय पहले से निश्चित न होने के कारण उन्हें निराश लौटना पड़ा। एक बार एक सज्जन से मुलाकात के लिए ९ बजे का समय निश्चित हुआ था। ९ बजकर १० मिनट तक कुमारप्पाजी ने राह देखी। उसके बाद जब वे मेहमान आए तो उनसे कहलवा दिया कि मैं अब दूसरे काम में लग गया हूँ। उनके भाई-बहनों तक को उनकी इस आदत के अनुसार बरतना पड़ता है। कभी-कभी उनकी इस आदत से लोग चिढ़ जाते हैं; किन्तु वे परवाह नहीं करते। एक बार तो जब वे बिहार रिलीफ का काम कर रहे थे, गांधीजी बनारस से पटना उनसे मिलने आए; किन्तु कुमारप्पाजी पूर्व-नियोजित एक-दूसरे काम में लगे हुए थे। अतः गांधीजी को बिना मिले ही वापस जाना पड़ा। कुमारप्पाजी कभी बिना पूर्वसूचना के किसी का समय नहीं लेते और समय नियत करने पर कड़ाई से उसका पालन करते हैं। यदि किसी कारण उन्हें देर हो जाती है और मुलाकात नहीं होती है तो वे उसका बुरा नहीं मानते।

कुमारप्पाजी एकाउन्टेन्सी या बहीखाते के विशेषज्ञ हैं। इस कारण उन्हें नपे-तुले शब्दों और संक्षेप में लिखने की आदत पड़ गई है। वे अनगिनत पत्र लिखते हैं, किन्तु अधिकांश कार्ड ही होते हैं। उनके लम्बे-से-लम्बे पत्र भी मुश्किल से एक पृष्ठ के होते हैं।

लम्बे-लम्बे पत्रों का भी वे एक-दो चुभने वाले वाक्य लिखकर उत्तर दे देते है। उनके कथन या लिखने में भावुकता अथवा अतिशयोक्ति को बहुत ही कम स्थान रहता है। आवेश में आकर भी वे कुछ कहते या लिखते है तो भी वह नपा-तुला और सक्षिप्त ही होता है।

कुमारप्पाजी स्वभाव से ही कुछ उग्र है। वर्षों से रक्तचाप रहने के कारण उनकी यह उग्रता और भी बढ़ गई है। किसी से जरा सी गलती हो जाए या गलत बात मुह से निकल जाए, तो कुमारप्पाजी का पारा चढ जाता है और तेज बातें उनके मुह से निकल जाती है। उनकी इस आदत ने अपने मित्रो और सहकारियो में उन्हे कुछ अप्रिय भी बना दिया है, किन्तु उनके सब मित्र जानते हैं कि उनके हृदय में किसी प्रकार का कपट नही है। जहा उनका गुस्सा ठण्डा हुआ कि वे फिर वैसे ही हसमुख बन जाते हैं। यदि लोग उनसे घबराएँ नही और उसी स्तर पर बातचीत करें तो मालूम होगा कि वे कितने अच्छे साथी और सहयोगी है। कुमारप्पाजी किसी भी चर्चा या बहस में हमेशा समझाने और समझने के लिए तैयार रहते है। यही कारण है कि जो लोग उन्हे अच्छी तरह से जानते है, वे उनकी बडी इज्जत करते हैं।

उनकी बहन बताती है कि बचपन से ही वे किसी पर अन्याय और अत्याचार होते नहीं देख सकते। जब कभी ऐसी स्थिति आई है, उन्होंने डटकर मुकाबला किया है। उनका पहला और अंतिम गुण यह है कि वे एक लडाका है, किन्तु वे सदा अच्छी चीजो के लिए और अहिंसक ढग से लडते है।

कुमारप्पाजी एक हिंदुस्तानी ईसाई घराने में पैदा हुए और वही इनका लालन पालन हुआ। शाकाहारिता उस घर में सर्वप्रिय नही हो सकती थी, किन्तु कुमारप्पाजी ने वर्षों पहले मासाहार छोड दिया। यूरोप और अमरीका के दौरो में भी वे बराबर शाकाहार करते रहे। हाल ही में जब वे चीन जा रहे थे तो कलकत्ते में चीनी दूतावास में उनके पूरे दल की दावत थी। पाच छ प्रकार के मास बनाए गए थे और कई प्रकार की शराबें थी। आश्चर्य की बात है कि कुमारप्पाजी के दल के बहुत-से लोग सबकुछ खा गए; किन्तु कुमारप्पाजी ने कुकुरमुत्ता और थोड़े सलाद को छोडकर किसी चीज को नही छुआ।

कुमारप्पाजी जिस चीज को उठाते हैं, पूरी तौर पर उठाते हैं। राजनीति और अर्थशास्त्र के सम्बध में भी उनका यही हाल है। वे एक अहिंसात्मक अर्थ नीति पर आधारित अहिसक प्रजातत्र का स्वप्न देखते है। हिन्दुस्तान में उनके सिवा किसी ने भी अहिंसक अर्थ-नीति या शातिकालीन अर्थ शास्त्र पर इतनी स्पष्टता से और इतना अधिक नही लिखा। अपने इस महान स्वप्न की रक्षा में यदि कभी कभी उन की भाषा कुछ तीखी हो जाती है तो उससे कोई हानि नही होती। श्री हेलेम टेनीसन ने नवम्बर सन् १९४८ में 'पीस न्यूज' के लिए एक लेख लिखते हुए श्री कुमारप्पाजी के बारे में लिखा है—

"अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघ के मत्री डा० जे सी कुमारप्पा उन व्यक्तियों में से है जो जैसा कहते है, वैसा ही करते है। मत्रिमडल की बैठक में, अग्रेजी चाय-पार्टी में या शाही दरबार में, सब जगह वे अपना धोती जामा और कुर्ता ही पहनते हैं। वह अपने आदर्श और विश्वास से गिरना या जरा भी पीछे हटना सहन नहीं कर सकते।"

'स्थायी समाज-व्यवस्था' नाम की अपनी पुस्तक में उन्होने एक दानी पूजीपति की चर्चा की है। उसने बडे गर्व के साथ अपनी सोने की खान दिखाकर कुमारप्पाजी से कहा, "यहा काम करनेवाले मजदूरो की भलाई के लिए क्या किया जा सकता है?" कुमारप्पाजी ने जवाब में कहा "खान बन्द कर देना।"

दिल्ली में जिन बहन के यहा वे ठहरते हैं उनके घर एक दिन सुबह नाश्ते के समय कुमारप्पाजी ने उनको सहूलियत के लिए रखी गई टाटा साबुन की बट्टी को उठाकर तश्तरी में रख दिया और गभीरता से कहने लगे कि तुमने ऐसी आशा कैसे की कि मैं मलाबार के बच्चों के खून से हाथ धोऊगा। टाटा को तेल देने के लिए जिस जमीन में नारियल के पेड लगाए जाते है वहा पहले धान की खेती होती थी।

केवल ऐसे ही लोग दूसरों की नैतिक कमजोरियों की टीका कर सकते है, जिन्होंने अपना सारा जीवन किसी एक उद्देश्य की पूर्ति में दे दिया है और निःस्वार्थ होकर उसमें लग गए है। ऐसी स्थिति में जो चुनौती दी जाती है उसमें सत्य और वफादारी झलकती रहती है। कुमारप्पाजी उन गिने-चुने भारतवासियों में से है, जिन्होंने लगातार किसी एक उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहकर वह स्थान और वह मान प्राप्त किया है, जिसके आधार पर वे आज उन लोगों को, जो अभी से गांधीजी के रास्ते पर चलते हुए लड़खड़ा रहे है, समझाने-बुझाने का नैतिक अधिकार रखते है। वे शोषण की अर्थ-नीति को इसीलिए चुनौती दे सकते है, क्योंकि उनका जीवन शोषण से परे है। वे कोई नौकर तक नही रखते। मगनवाड़ी के सामान्य रसोई घर में जो कुछ बनता है, वही वे खाते है। अपने कपड़े खुद धोते है और शायद ही किसी से सेवा लेते है। संस्थाओं के बहुत कम संचालक ऐसे होंगे जो अपने शिष्यों तथा अपने नीचे काम करनेवाले दूसरे लोगों पर इतना कम निर्भर रहते हों। श्रद्धेय काका साहब ने एक बार कहा था, "यदि कुमारप्पा इतने हँसोड़ और विनोदी न होते और कच्छ पहनते होते तो वे तुरन्त एक पक्के संत बन गए होते।"

कुमारप्पाजी ने ईसाइयत पर चर्चा या प्रवचन नहीं दिये हैं; बल्कि अपने जीवन को तदनुसार ढाला है। उनकी दो पुस्तकें 'Practice and Precepts of Jesus,' और 'Christianity : its economy and way of life', सच्ची ईसाइयत को बरतने और पर्वत पर से दिये गए उपदेश को अमल में लाने के बेजोड़ नमूने है। गांधीजी ने लिखा है—"मैं ईश्वर में विश्वास करनेवाले हर व्यक्ति से, वह ईसाई हो या किसी भी दूसरे धर्म को माननेवाला, इस पुस्तक को पढ़ने की सिफारिश कर सकता हूं। ईश्वर के भक्त के रूप में यह ईसा-सम्बन्धी एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण है।" यदि कुमारप्पाजी का मिशन इस क्षेत्र में न हुआ होता तो वे सचमुच एक बड़े क्रांतिकारी धर्म-नेता हुए होते।

कुमारप्पाजी ने विवाह नहीं किया। एक बार पूछने पर उन्होंने विवाह न करने का एक बड़ा अजीब-सा किन्तु सच्चा कारण यह बताया कि वे चाहते थे कि शादी करने से पहले उनकी आय दस हजार के आंकड़े में हो जाए और जब वह मौका आई तो गांधी-जी ने उन्हें पकड़ लिया। उसके बाद शादी करने की उन्हें फुरसत ही नहीं मिली। उन्हें शादी न करने का कभी अफसोस नहीं हुआ। वे एक पूर्ण ब्रह्मचारी है। उन्होंने अपनी इन्द्रियों को इतना जीत लिया है कि उनके ब्रह्मचर्य पर उनपर कभी कोई बोझ नहीं पड़ता। उन्होंने अपने जीवन को इतना व्यस्त बना लिया है कि जहां कहीं भी जाते है काम में लग जाते है। मगनवाड़ी में उन्हें देखिये, वे बराबर सब जगह घूम-घूमकर सब चीजें देखते रहते है। उनकी निगाह इतनी तेज है कि एक दिन कागज-विभाग देखने जा रहे थे। मिट्टी की मुलायम दीवार पर उन्हें उंगली का कोई काला निशान दिखाई पड़ा। तुरन्त बड़ी सफाई से उसे खुरचा और तब अन्दर गए। मगनवाड़ी का कोई भी ईंट-पत्थर, पेड़-पौधा या बेल-बूटा ऐसा नहीं है, जिससे उनका परिचय और सम्बन्ध न हो। श्री. जी. रामचन्द्रन्‌जी इसीलिए कभी विनोद में कह देते हैं कि कुमारप्पाजी को अविवाहित कहना बिल्कुल झूठ है; क्योंकि उन्होंने मगनवाड़ी से ही विवाह कर लिया है।

काका साहब कालेलकर मजाक में एक और बात उनके बारे में कहा करते है, "कुमारप्पाजी को जितनी अच्छी अंग्रेजी आती है उसकी आधी भी हिन्दी आती होती तो उन्होंने कभी की देश में आग लगादी होती।" वे एक बड़े साहसी क्रान्तिकारी है। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा और जैसे-जैसे हिंदुस्तान की परिस्थितियां रचनात्मक काम करनेवालों के लिए अधिकाधिक चुनौती का रूप लेती जायंगी, कुमारप्पाजी भी अधिकाधिक मस्त और क्रांतिकारी होते जायेंगे। आज भी वे असंख्य क्रांतिकारी कहलाने वाले भगोड़ों से अधिक स्थिर क्रान्तिकारी है। मगनवाड़ी छोड़कर सेलडो गांव में 'पन्नई आश्रम' के नाम से जो नया प्रयोग उन्होंने छेड़ा है वह आगे मिलनेवाली नई चीज का प्रतीक है। इस प्रकार वे स्वयं ही आज उन लोगों के लिए एक चुनौती है, जो नए ढंग को लेकर गांधीजी का अनुकरण करेंगे।

तपश्चर्या और गुरु-भक्ति

श्री यदुनाथ थत्ते

रामायण और महाभारत हिन्दुस्तान ही के नही बल्कि सारी दुनिया के महान ग्रथो में से है। रामायण और महाभारत यहा की आम जनता के जीवन में घुल मिल गये है। महाभारत के अनुवाद ससार की लग भग सभी भाषाओ में हो चुके है। महाभारत साहित्य का सागर है। महाभारत की आत्मा है गीता।

भारत में जो-जो लोग महान हुए उन सबने गीता को मार्गदर्शक माना है। शकराचार्य गीता के पहले भाष्यकार थे। उनका शाकरभाष्य एक प्रसिद्ध ग्रथ है। सारे ससार को अद्वैत की शिक्षा देनेवाले शकराचार्य को भी गीता से ही जीवन ध्येय का साक्षात्कार हुआ था।

आधुनिक युग में हम देखते है कि लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाधी गीता को बहुत मानते थे। सुप्त देश को जगाने के लिए लोकमान्य ने निष्काम कर्मयोग का नारा लगाया। देश के लिये तडपते और काम करते करते लोकमान्य ने अन्तिम सास ली या यो कहिए कि गीता के सन्देश को जीवन में उतारते उतारते उन्होने देह छोड दी। उनके बाद देश का नेतृत्व गाधीजी करने लगे। कर्मयोग से एक सीढी आगे जाकर उन्होने अनासक्तियोग का पाठ देश को पढाया। गीता के कथन के अनुसार स्वधर्म का आचरण करते करते समर्पणभाव से अपनी जीवन लीला को गाधीजी ने समाप्त किया। स्थितप्रज्ञ के लक्षणो की व्याख्या करनेवाले दूसरे अध्याय के आखिरी १८ श्लोकों का पाठ गाधीजी प्रार्थना में रोज करते थे। सारे भारत में स्थितप्रज्ञ के लक्षण प्रार्थना में दाखिल हो गये हैं। गाधीजी का कार्य अब विनोबाजी चला रहे है। विनोबाजी तो कहते हैं कि माता के दूध पर जितना मैं परिपुष्ट हुआ हू उतना ही गीतामृत पर मैं परिपुष्ट हुआ हू। विनोबाजी गीता के अनन्य भक्त है। गीता का सन्देश महाराष्ट्र के घर घर में पहुचे, इसलिए विनोबाजी ने गीता का मराठी में 'गीताई' के नाम से अनुवाद किया है। विनोबाजी के 'गीता प्रवचन'* और 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन'* सारे भारत में विख्यात हो चुके है। विनोबाजी ने गीता से 'साम्ययोग' का सन्देश निकाला है और आजकल उसी के लिये उनकी सब कोशिशें चल रही है। जमीन का बटवारा करने के लिये लोगो को प्रेरित करके गीता-प्रणीत अपरिग्रह की दीक्षा वे लोगो को दे रहे हैं और उधर पवनार के आश्रम में जो प्रयोग चल रहे हैं उनसे हमें साम्ययोगी समाज की एक झलक मिल जाती है।

इस तरह गीता एक महान ग्रथ है। लेकिन विद्यार्थियो के लिये, नौजवानो के लिये गीता का सन्देश क्या है? उनसे गीता कहती है, "तपश्चर्या करो।" तप, तपश्चर्या आदि शब्द हम बार-बार सुनते रहते है, लेकिन तपश्चर्या का सही अर्थ हम जानते नही है। हमें लगता है कि तपश्चर्या का अर्थ है शरीर को कष्ट देना, तपाना। तपस्वी का नाम सुनते ही हमारे सामने जटा दाढी-धारी, काषाय वस्त्र-परिधान करनेवाला, लोक-सम्पर्क से दूर रहनेवाला, वन निवासी खडा हो जाता है। हम पढते है कि भारद्वाज ऋषि बडे विद्या प्रेमी थे और तप करके उन्होने विद्या प्राप्ति के लिये अपनी आयु बढा ली। तप करके एक लुटेरा वाल्मीकि ऋषि बन गया। भगवान् बुद्ध 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' मार्ग को खोजने के लिये तप करने राजपाट छोडकर बन में गये थे। ये तो बातें हुई सत-सज्जनो की, लेकिन हम पढते है कि रावण तक ने तपश्चर्या करके वर पा लिया था और भक्त प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप को भी तपस्या करके ही वर मिला था। ऐसे कई असुरो के नाम हमें धर्म-ग्रथो में मिल जाते है कि जिन्होने तप करके दुनिया को सताया भी। ऐसा होते हुए भी तप करने का मतलब हम लोग नही जान पाते।

* ये दोनो पुस्तक 'सस्ता साहित्य मडल' से प्रकाशित हुई है।

तो क्या गीता नौजवानों से, विद्यार्थियों से घर छोड़कर भाग जाने के लिये कहती है ? नहीं। गीता कहती है—तुम जहां-कहीं, जिस परिस्थिति में हो, वहीं उसी परिस्थिति में तुम तप कर सकते हो। गीता ने तपश्चर्या को तीन विभागों में बांटा है। १. शरीर-तप, २. वाचिक तप, ३. मानसिक तप।

हमारा शरीर ही दृश्य क्रिया करता है। अगर हमें तप करना है तो पहले अपने शरीर पर काबू पाना होगा। फिर वाणी की बारी आती है और जब शरीर और वाणी पर हम काबू पा जाते हैं तब मन पर काबू पाने की कोशिश करना कुछ आसान हो जाता है।

शरीर-तप या देह की तपश्चर्या कैसे की जाय ? उसका आहार तोड़ना, देह को दंडित करना आदि मार्ग गीता नहीं बताती। गीता कहती है :

देवद्विज गुरु प्राज्ञपूजनम् शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसाच शारीरम् तप उच्चते ॥

अर्थात्—देव, द्विज, गुरु और प्राज्ञों की पूजा करना, स्वच्छता रखना, नम्र और सरल व्यवहार करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन करना, इनको शरीर-तप कहते हैं।

शरीर की तपश्चर्या इसलिए की जाती है कि शरीर सतेज और सबल बने। गीता ने शरीर-तप करके पहलवान बनने का आदर्श सामने नहीं रखा है। हममें से अधिकांश शरीर को इसलिए तपाते हैं कि हम ताकतवर बनें ताकि दूसरों को सताकर अपने सामने घुटने टेकने के लिए उन्हें विवश कर सकें; लेकिन गीता ने यहां शरीर-तप में अहिंसा को जोड़ दिया है।

देव, द्विज, गुरु और प्राज्ञों की पूजा करने का मतलब है उनकी पूजा करना जो समाज को ज्ञान देकर उसको पुष्ट बनाते हैं। एक तरह से यह कृतज्ञता का पाठ है। हमारी संस्कृति का विधान है, "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव!" इससे पता चलता है कि 'आचार्य देवो भव' में माता और पिता का समावेश आप ही हो जाता है। उसी तरह गीता ने यद्यपि सिर्फ गुरुजनों की पूजा करने के लिए कहा है तो भी उसका मतलब है माता, पिता और उसकी पूजा। जिन लोगों ने हमारी मानवता को जगाया, हमें शिक्षा-दीक्षा दी, उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है। हमारे भारतीय चरित्र-साहित्य में गुरुपूजा का आदर्श बतानेवाले कितने ही उदाहरण मिल जायेंगे। अगर आदमी कृतज्ञ बनता है, नम्र बनता है तो उसे सब विद्याएं प्राप्त हो जाती हैं। फिर मिट्टी की गुरु-मूर्ति से एकलव्य को विद्या मिल सकती है। कच को अपने शत्रुओं के गुरु से विद्या प्राप्त हो सकती है। कर्ण की गुरुभक्ति तो विख्यात ही है। कर्ण की गोद में गुरु सोये थे। एक भ्रमर ने आकर उसके पैरों को खाना शुरू किया; लेकिन गुरु की नींद न खुल जाय। इसीलिए कर्ण उस सबको सहते गये। गुरु की आज्ञा पालने के लिए खेत की मेड़ पर सोकर पानी को रोकने वाला आरुणि, गुरु की आज्ञा के लिए दूध पीना छोड़नेवाला अश्वत्थामा, अपने बड़प्पन को भूल-कर गुरु के लिए जंगल में लकड़ी काटनेवाले भगवान् गोपालकृष्ण, गुरु के यज्ञों की रक्षा करने के लिए बचपन में ही वन जाने वाले रामचन्द्रजी और रामदास स्वामी को गुरु मानकर उनकी झोली में अपने राज का दान करनेवाले शिवाजी—ये हैं हमारे आदर्श। महात्माजी गोखले को अपना गुरु मानते थे। गोखले ने गांधीजी से कहा था कि वह पहले एक साल भर आंख-कान खोलकर और जबान बन्द करके देश भर की यात्रा करें, तब फिर देश की राजनीति में हिस्सा लें। गांधीजी ने गोखले की इस बात को सिर-आंखों पर रक्खा और सारे भारत के पहले दर्शन कर लिए। गोखले भी बड़े गुरुभ-क्त थे। न्यायरत्न रानडे को वे अपना गुरु मानते थे। इस तरह गुरु-शिष्य का भव्य और उदात्त नाता रहता है। सच्चा गुरु सच्चे शिष्य को अपना सर्वस्व दे देता है और इच्छा करता है कि शिष्य उससे भी आगे बढ़े। "शिष्यादिच्छेत् पराजयम्" यह

हमारे प्राचीन गुरुओं की प्रार्थना हुआ करती थी।

यह तो ठीक है कि गुरु की पूजा करनी चाहिए लेकिन कैसे? ज्ञान देनेवाले गुरु की पूजा ज्ञानयुक्त कर्म से करनी चाहिए। कर्म-कुसुम से उनकी पूजा करनी चाहिए।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत
संसिद्धि लभते नर । (गीता)

अर्थात—अपने अपने कर्म में लगा हुआ नर सिद्धि लाभ करता है। आज की तरह पहले जमाने की शिक्षा पद्धति नहीं थी। आज शिक्षा में गलत सिद्धांत दाखिल हो गया है जिससे हमारी शिक्षा जीवन से कुछ अलग पड गई है। आज स्कूली पढाई पर जोर दिया जाता है। उससे बच्चों में अच्छे संस्कार पैदा नहीं होते। पुराने जमाने में गुरुओं ने इस सिद्धांत को माना था और इसी लिए दिन रात शिष्य गुरु के साथ ही रहते थे। जब बारह साल के बाद शिष्य अपने घर जाने लगते थे तब गुरु उपदेश देते थे

यानि यान्यस्माकं सुचरितानि
तानि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि ।।

अर्थात्— हममें जो जो भलाई हो उसीको तुम अपना लो, और बातों को छोड दो। समावर्तन के समय आचार्य जीवन-दृष्टि देकर शिष्य को विदा करते थे। कहते थे 'हम पूर्ण नहीं हैं। हममें भी कुछ दोष हैं। तुम उनको न अपनाओ। हममें जो अच्छाई है उसको अपनाओ।' गुरु के इस उपदेश का चिंतन करते हुए, जीवन की ओर देखने का एक मंगल दृष्टिकोण पाकर शिष्य घर चला जाता था। गुरुपूजा का यही रास्ता है कि जहाँ जो कोई अच्छाई मिले, उसको अपनाते चले जाय। जिसके पास से थोडा भी हम सीख सकते हैं वह है हमारा गुरु। भगवान् दत्तात्रेय के बारे में हम जानते हैं कि उनके गुरुओं में गधा तक शामिल था। उनकी यह दृष्टि सच्ची गुरुपूजा की दृष्टि है। मधुमक्खी जिस तरह लगन से जहाँ जो कुछ शहद मिलता है उसे जमा करती जाती है, चींटी शक्कर का एक एक कण जमा करती है उसी लगन से हमें सद्गुणों की उपासना करनी चाहिए। महाराष्ट्रीय संत तुकाराम ने इसी बात को लक्ष्य करके कहा है

कासया दोष विवरन आणिकांचे ।
मम काय त्याचें उणें असे ।।

अर्थात—'मैं क्यों दूसरों के दोषों का चिंतन करने बैठूं? मेरे पास उनकी क्या कमी है?' गुरुपूजक हरजगह की अच्छाई में प्रभु का रूप देखता है। साथ ही हरएक व्यक्ति में कोई-न-कोई अच्छाई वह देख ही लेता है।

आज इससे एकदम उल्टी स्थिति होती जा रही है। हममें गुरुपूजा की दृष्टि ही नहीं रही है। लोगों में हर जगह बुराई को खोजने की आदत-सी पड गई है। हम लोग गुरुजनों के दोषों की ही खोज करके उनका चिंतन करते हैं, जिससे हमारा चित्त दुर्गुणों से भर जाता है।

नम्रता ज्ञान का आरम्भ है। जहाँ अहंकार है वहाँ विद्या की उपासना क्या होगी? जबतक घडा अपने खालीपन का महसूस करके झुक नहीं जाता है तबतक वह खाली ही रहेगा। लेकिन जब वह झुक जाता है झट जीवन से भर जाता है। भरने की क्रिया नम्रता के बिना नहीं हो सकती। अगर हमें अपना जीवन सद्गुणों से भरना है परिपूर्ण करना है तो हमें झुकना चाहिए, नम्र बनना चाहिए।

आखिर शिक्षा क्या है? जबतक हम शिक्षा की व्याख्या न करें तबतक गुरुपूजा क्या कर सकेंगे? संस्कारों का समुच्चय शिक्षा है। हमारा जीवन संस्कारों से बनता है। इसीलिए विनोबाजी ने लिखा है—'बचपन से सतर्कता से अध्ययन करो। अकेले अच्छा संस्कार हो जाता है, इसका बराबर ख्याल करो। इससे क्या होता है, उससे क्या होता है, ऐसा न कहो। क्यों मुंह अँधेरे चार बजे उठना चाहिए? सात बजे हम उठें तो क्या बिगड़ता है? ऐसा कहने से काम न चलेगा। अगर मन की इस तरह की स्वतंत्रता दोगे तो आखिर में फँस जाओगे शुभ संस्कारों की छाप न पडेगी। एक-एक क्षण को बचाकर विद्यासाधन में लगा देना चाहिए। हर पाठ होने वाला संस्कार सत् ही है इसके बारे में सतर्क रहो। हरएक वृत्ति की छैनी जीवन के पत्थर को आकार दे रही है।

विचारों पर नियन्त्रण

श्री लालजीराम शुक्ल

मनुष्य के विचार ही मनुष्य को सुखी और दुःखी बनाते हैं। जिस मनुष्य के विचार उसके नियन्त्रण में है, वह सुखी है और जिसके विचार उसके नियन्त्रण में नहीं रहते, वह सदा दुःखी रहता है। दुःखी मनुष्य अपने दुःख का कारण अपने आपको न मानकर किसी वाह्य पदार्थ को मान लेता है। इस प्रकार की क्रिया को आधुनिक मनोविज्ञान में 'आरोपण की क्रिया' कहते हैं। इस प्रकार कुछ लोग अपने मित्रों को, शत्रुओं को और सम्बन्धियों को कोसा करते हैं और कुछ भाग्य को ही। वे अपनी ओर नहीं देखते। आत्म-निरीक्षण करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही इस निष्कर्ष पर आजाता है कि हमारे विचार ही हमारे शत्रु-मित्र, सम्बन्धी अथवा भाग्य हैं। जिस मनुष्य के विचार उसके अनुकूल हैं, वह सभी प्रकार के लोगों, परिस्थितियों और भाग्य को अपने अनुकूल पाता है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के विचार प्रतिकूल होते हैं, वह चारों ओर शत्रु-ही शत्रु देखता है। विचारों के दूषित होने से वातावरण दूषित हो जाता है और मित्र भी शत्रु बन जाते हैं तथा सफलता भी विफलता में परिणत हो जाती है।

विचारों को अनुकूल बनाना ही पुरुषार्थ है। विचार अभ्यास से अनुकूल अथवा प्रतिकूल होते हैं। जो मनुष्य जिस प्रकार के विचारों का अभ्यासी हो जाता है उसके मन में उसी प्रकार के विचार बार-बार आते हैं। सांसारिक विषयों का चिन्तन करने वाले व्यक्ति के मन में सांसारिक विचार ही आते हैं। उसे इसी प्रकार के विचारों में रस मिलता है। यदि कहीं ज्ञान-चर्चा होती है तो वह उसे रस-हीन समझता है। सांसारिक लोगों को ज्ञान-चर्चा के समय जल्दी से नींद आ जाती है। ज्ञान-चर्चा मनुष्य की इच्छाओं के ऊपर नियंत्रण करती है। वह उनकी तृप्ति नहीं करती। अतः इस प्रकार की ज्ञान-चर्चा में आनंद की अनुभूति करना उनके लिये एक अस्वाभाविक-सी बात होती है।

विचारों पर नियंत्रण धीरे-धीरे आता है। प्रत्येक आवेगात्मक विचार मन को निर्बल बनाता है, निर्बल मन बुरे विचारों के नियंत्रण में असमर्थ रहता है। जब मनुष्य का मन निर्बल हो जाता है तब किसी भी प्रकार के दुःखदायी विचार मन में उठ जाने पर, सब प्रकार के प्रयत्न करने पर भी वे मन से नहीं निकलते। कितने ही लोग अपने विचारों से ही परेशान रहते हैं। वे अपने अभद्र विचार मन से निकालना चाहते हैं; पर जैसे-जैसे अभद्र विचार को मन से निकालने की चेष्टा की जाती है, वह और भी प्रबल हो जाता है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी मनुष्य को निर्बलता आजाती है।

इस प्रकार की स्थिति मानसिक निर्बलता का परिणाम होती है। यह मानसिक निर्बलता बार-बार आवेगात्मक विचारों को मन में आने देने से उत्पन्न होती है। सब समय विचारों का नियंत्रण करने की चेष्टा से मनुष्य की इच्छा-शक्ति इतनी बलवती हो जाती है कि कोई भी बुरा विचार इच्छा-शक्ति के बिना मन में देर तक नहीं ठहर पाता। जो मनुष्य आवेशात्मक विचार पर जितना ही अधिक नियंत्रण रखता है वह अपनी इच्छा-शक्ति को उतनी ही बलवती बना लेता है। एडवर्ड कारपेन्टर का कथन है—"किसी भी विचार को पहले ही क्षण मार डालो तो फिर उससे जो तुम करना चाहते हो कर सकते हो।" जिस मनुष्य को आवेगों को रोकने की आदत पड़ जाती है उसे किसी प्रकार के बुरे विचार नहीं सताते।

मनुष्य का अभ्यास प्रायः पाशविक प्रवृत्तियों में रमण करने का हो गया है। जिस समय हम कोई समाजोपयोगी काम नहीं करते, पाशविक प्रवृत्तियों

की सतुष्टि में लग जाते है, तब प्रवृत्तियो के उत्तेजित होने पर अनेक प्रकार के प्रबल बुरे विचार मन में आने लगते है। इसलिए सदैव किसी-न किसी भलाई के काम में अपने को लगाये रखना बुरे विचारो पर नियन्त्रण के लिये परम आवश्यक है। जब भी मन स्वच्छन्द या निकम्मा होता है वह स्वभावत या तो किसी समय काम्य वस्तु की प्राप्ति की योजना बनाने लगता है अथवा वह किसी व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या और प्रतिकार की बातें सोचने लगता है।

अवाछनीय विचारो के नियन्त्रण का बहुत सुन्दर उपाय बुद्ध भगवान ने बताया है। यह उपाय 'उदान' नामक बौद्ध ग्रथ में पाया जाता है। यह उपाय यौगिक और मनोवैज्ञानिक है। अत इस प्रसग में उल्लेखनीय है।

बुद्ध भगवान एक बार अपने एक शिष्य के साथ ठहरे हुए थे। उस शिष्य के मन में इधर उधर भ्रमण करने का विचार उठा। उसने भगवान बुद्ध से आज्ञा मागी। बुद्ध भगवान ने पहले तो आज्ञा न दी, पर उसके बार-बार आग्रह करने पर दे दी। उसने आस-पास जाकर अनेक स्थान देखे। उन स्थानो में उसे एक बडा सुन्दर बगीचा दिखाई दिया। उस बगीचे को देखकर उसके मन में आया कि यहा बैठकर योगाभ्यास करू। सो उसने बुद्ध भगवान से उसकी आज्ञा मागी। विशेष आग्रह देखकर बुद्ध भगवान ने अनुमति दे दी। अब वह शिष्य उक्त स्थान पर योगाभ्यास करने लगा। पर ज्योही उसने कार्य आरभ किया, उसके मन मे अनेक वितर्क उठने लगे।

अन्त में वह भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया और उसने कहा, "महाराज, मैंने ज्योही योगाभ्यास प्रारभ किया, मेरे मन में काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क और विहिंसा वितर्क आने लगे। मैं इन वितर्कों को रोक नही सका। कृपाकर मुझे इनसे छूटने का उपाय बताइये। भगवान ने कहा कि जिस मनुष्य का मन वैराग्य में दृढ नही हो चुका है उसे अकेले रहना उचित नही है। उसे सदा सघ में रहना चाहिए। सघ में रहने से मनुष्य के विचार विकृत नही हो पाते। फिर प्रत्येक साधक को निम्नलिखित चार धर्मों का सदा पालन करते रहना चाहिए—(१) अशुभ भावना का अभ्यास, (२) मैत्री भावना का अभ्यास (३) 'आनापान-सति' का अभ्यास (४) ससार की अनित्यता के विचार का अभ्यास।

मनुष्य का मन सदा राग और द्वेष के बीच घडी के पेंडुलम की भाति इधर-से उधर डोलता रहता है। इसी कारण मनुष्य को साम्यावस्था प्राप्त नही होती। मन के सदा अस्थिर रहने से वह कोई भी काम लगन से नहीं कर पाता। राग मनुष्य के मन में ऐसे अनेक सस्कार पैदा कर देता है जिनसे मानसिक ग्रन्थिया उत्पन्न हो जाती है। रागात्मक मनोवृत्ति की पूरक द्वेषात्मक मनोवृत्ति है। जब एक व्यक्ति के प्रति राग होता है तब उसके विरोधी के प्रति हमारे मन में द्वेष-भावना उत्पन्न हो जाती है। जो हमारे स्वार्थ के साधक होते है, उनके प्रति हमारा प्रेम हो जाता है और जो हमारे स्वार्थ में बाधक होते है उनके प्रति द्वेष-भावना होती है।

राग की विनाशक अशुभ-भावना है और द्वेष की विनाशक मैत्री-भावना। प्रत्येक पुरुष को सुन्दर स्त्री के प्रति अनुराग होता है। यह अनुराग उसके अचेतन मन में बैठा रहता है। जब वह बाहरी मन से साधु भी बन जाता है तब भी यह अनुराग उसके मन से नहीं जाता है। सुन्दर रूपवती स्त्री के प्रति सभी पुरुषो की शुभ-भावना होती है। पर रूप के दुर्गुण कामातुर पुरुष को दिखाई नही देते एव रूप का बार बार चिंतन करने से कामवासना और भी प्रबल हो जाती है। इस रागात्मक मनोवृत्ति के विनाश के लिये रूप के दुर्गुणो पर विचार करना आवश्यक है। शरीर की गदगी पर विचार करने से उसके प्रति अनुराग चला जाता है। मुर्दे की कल्पना करके उसपर चिन्तन करने से शरीर के प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार धन, मान आदि के दुर्गुणो पर नित्य विचार करने से इनके प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है। यही अशुभ-भावना है।

यहा यह बताना आवश्यक है कि राग और द्वेष किसी बात के सोचने मात्र से नष्ट नही हो जाते। इसके लिये प्रतिदिन निरतर अभ्यास की आवश्यकता होती

है। प्रतिदिन का निरंतर अभ्यास आत्म-निर्देश का रूप धारण कर लेता है। जबतक हमारा कोई विचार चेतन मन के नीचे अचेतन मन को प्रभावित नही करता वह हमारे चरित्र का सुधार नहीं करता। विचार-मात्र से इच्छा-शक्ति दृढ़ नहीं होती, इच्छा-शक्ति अभ्यास से दृढ़ होती है। कितने ही पंडित अनेक प्रकार का ज्ञान-उपदेश दूसरों को करते हैं; पर वे स्वयं अपने मन को नियंत्रण में नहीं रख पाते। वे स्वयं उन वासनाओं से मुक्त नही होते, जिनसे वे दूसरों को मुक्त करने की चेष्टा करते है। मनुष्य में सामर्थ्य वुद्धि नही, वरन् अभ्यास लाता है। अभ्यास से मनुष्य का स्वभाव ही परिवर्तित हो जाता है।

मैत्री-भावना क्रोध की विनाशक है। जिस प्रकार 'अशुभ भावना' से काम-वासना का निराकरण होता है, इसी प्रकार मैत्री-भावना से क्रोध का निराकरण होता है। जिस व्यक्ति में अपने क्रोध को रोकने की जितनी अधिक योग्यता होती है, उसका मन उतना ही अधिक शान्त होता है और उसकी सामर्थ्य उतनी ही अधिक होती है। जो व्यक्ति सबके प्रति मैत्री-भावना का अभ्यास करता है, वह दूसरों से निर्भीक रहता है। उसकी मानसिक शक्ति व्यर्थ के विचारों में खर्च नहीं होती। अमैत्री-भावना का अभ्यास करने वाला व्यक्ति सदा भय के वातावरण में रहता है। वह सदा अनेक प्रकार के शत्रुओं की कल्पना किया करता है। और उनसे बचने के लिये अनेक प्रकार की योजनाएं बनाता रहता है। इस प्रकार उसकी अधिकांश मानसिक शक्ति कल्पित शत्रुओं से लड़ने में नष्ट हो जाती है। फिर वह निर्बल-मन हो जाता है। यदि ऐसी अवस्था में उसके मन में कोई अशुभ विचार आ जाये तो वह उस विचार को अपने मन से नहीं निकाल सकता। अमैत्री-भावना और कायरता एक-दूसरे के पूरक हैं। मैत्री-भावना शांति और पौरुष की वर्द्धक है।

सभी प्रकार के वितर्कों को नाश करने का सबसे सुगम और अचूक उपाय 'आनापान-सति'* का अभ्यास है। 'आनापान-सति' मनुष्य की मानसिक शक्ति को सञ्चित रखता है। 'आनापान-सति' का अभ्यास प्रत्येक अशुभ विचार को शुभ विचार में परिणत कर देता है। यदि किसी प्रकार का संकल्प मन में उठते ही मनुष्य आनापान के अभ्यास में अपने आप को भुला दे तो उसका संकल्प सत्य हो जाय। हम सदा अपनी मानसिक शक्ति को व्यर्थ संकल्प और विकल्प में खर्च करते रहते है। यदि संकल्प के बाद प्रतिकूल भावना हम मन में न लायें अर्थात् किसी-प्रकार का संदेह संकल्प की सफलता में न आने दें तो हमारा कोई भी संकल्प विफल न हो। पर इसके लिये चेतना की धारा को रोकना अत्यंत आवश्यक है। चेतना की धारा 'आनापान-सति' के अभ्यास से रुक जाती है। न केवल सभी प्रकार के बुरे विचार इस अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं, वरन् सभी प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग भी दूर हो जाते है।

आधुनिक मनोविज्ञान की यह एक मौलिक खोज है कि आत्म-निर्देश से मनुष्य अपनी मानसिक और शारीरिक बीमारियों को नष्ट कर सकता है। पर आत्म-निर्देश का ठीक उपयोग साधारण व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। इच्छा और शुभ आत्मनिर्देश एक साथ नहीं रहते। जो मनुष्य इच्छा को मार सकता है, वही आत्मनिर्देश से वास्तविक लाभ उठा सकता है। इच्छा को मारने के लिए चेतना के प्रवाह को रोकना आवश्यक है और यह 'आनापान-सति' से सम्भव होता है। जो व्यक्ति अपनी चेतना को अलग कर देने में जितना समर्थ होता है, वह आत्मनिर्देश से उतना ही लाभ उठाता है।

संसार की अनित्यता का अभ्यास अहङ्कार का विनाशक है। जिस व्यक्ति का अहङ्कार जितना अधिक होता है उसके दुःख भी उतने ही अधिक होते हैं। अहङ्कार की वृद्धि एक प्रकार का पागलपन है। अहङ्कारी मनुष्य दुराग्रही होता है। वह जिस बात को सच मान बैठता

---

* 'आनापान-सति' 'प्राणापान स्मृति' की पाली संज्ञा है। यह एक प्रकार का प्राणायाम है। इससे बड़ी सुगमता से मन वशमें हो जाता है। इसमें श्वास के आने-जाने पर ध्यान लगाना पड़ता है।

है उसके प्रतिकूल किसी की कुछ भी सुनने को तैयार नही रहता और जो उसका विरोध करता है वह उसका घोर शत्रु हो जाता है।

अहङ्कार का आधार ससार के अनित्य पदार्थो से अपना एकत्व स्थापित करना है। कोई व्यक्ति अपने आप को धन में, कोई पद में, कोई मान और कीर्ति म खोये हुए है। इनकी अनित्यता पर विचार करने के मनुष्य अपने आप को समझने की चेष्टा करता है। वह फिर अपने शत्रुओ की सख्या घटा देता है। जिस व्यक्ति का अहङ्कार जितना अधिक होता है, उसके शत्रु भी उतने ही अधिक होते है। अपन अहङ्कार के कारण ही वह इन शत्रुओ को पैदा करता है और फिर वह इन शत्रुओ के विनाश की इच्छा करता रहता है। आगे चलकर य विचार उसके आत्म विनाश के विचारो के रूप धारण कर लेते है।

मनोविज्ञान का यह अटल सिद्धान्त है कि दूसरे के विनाश के विचार ही आत्म-विनाश के विचारो में परिणत हो जाते है। परघात और आत्मघात की भावनाए एक-दूसरे की पूरक है। जब हमारे चेतन मन में एक प्रकार की भावनाए प्रबल होती है तब हमारे अचेतन मन में दूसरे प्रकार की भावनाए प्रबल हो जाती है। इस प्रकार दूसरों का विनाश करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति अपना ही विनाश कर डालता है।

जो व्यक्ति अपने अहङ्कार को नष्ट किये रहता है उसका कोई शत्रु नही होता। उसके विचार भी उसके शत्रु नही होते। ऐसे व्यक्ति को किसी प्रकार की विक्षिप्ता नही सताती। अहङ्कार-रहित मनुष्य के विचार सर्वात्मा के विचार होते है। उनमें विश्व में नव-स्पन्दन करने की शक्ति होती है। अहङ्कार मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति के विनाश का सूचक है। जब मनुष्य में आध्यात्मिकता के प्रकाश का उदय होता है तब अहङ्कार का विनाश तिमिर के समान हो जाता है और तभी वह अपने आप को सब प्राणियो में देखने लगता है। उसका मन शान्त और आनन्दमय हो जाता है। अत अहङ्कार विनाश अपने विचारो को नियन्त्रण में रखने का सर्वोत्तम और अन्तिम उपाय है। इसके लिए संसार की अनित्यता के विचार का अभ्यास करना एकमात्र उपाय है। ससार के वैभव की सत्यता में विश्वास रखने वाले व्यक्ति में अहङ्कार का अभाव होना असम्भव है।

(पृष्ठ ३२७ का शेषाश)

आवश्यक है कि इन ग्रामोद्योगो में सर्वोच्च कला-कौशल का इस्तेमाल किया जाय। इस प्रकार उस मानवीय कार्यशक्ति को सगठित करके रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सकेगा, जिसका कि हमने अबतक कोई इस्तेमाल नही किया है।

सामाजिक न्याय की प्राप्ति के निश्चित उद्देश्य को लेकर हमें उत्पादन एवं वितरण के समूचे तरीके को फिर से सगठित करना होगा। आज देहाती एव शहरी क्षेत्रो, पिछडे हुए एव अल्प-विकसित क्षेत्रो व जातियो की बेहूदी में तथा जनता के विभिन्न स्तरो के बीच जो वर्तमान विषमताएँ हैं उन्हे उत्तरोत्तर कम किया जाना चाहिए और एक व्यक्ति की अधिक-से-अधिक आमदनी की सीमा निश्चित की जानी चाहिए। कर लगाने तथा अर्थ सम्बन्धी नीतियो की जाच-पडताल में भी यही दृष्टिकोण रखना चाहिए।

हमारी योजना का उद्देश्य आर्थिक एव सास्कृतिक असमानताओ को उत्तरोत्तर दूर करना होना चाहिए, ताकि हम भारत राष्ट्रीय काग्रेस के ध्येय—समान अवसर और समान राजनैतिक एव सामाजिक अधिकारो को बुनियाद वाले ऐसे सम्मिलित सहकारी स्वराज्य की प्राप्ति एव निर्माण कर सके जिसका लक्ष्य विश्व-शान्ति एव विश्वबन्धुत्व की स्थापना करना हो।

कांग्रेस के ५७ वें अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव

१. शोक प्रस्ताव

यह कांग्रेस निम्नलिखित व्यक्तियों के निधन पर अपना हार्दिक शोक एवं महान क्षति प्रकट करती है :

१. सरदार वल्लभभाई पटेल, २. श्री अरविन्द घोष ३. श्री अमृतलाल ठक्कर, ४. श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी, ५. श्री मथुरादास त्रिकम जी, ६. श्री रघुनन्दन शर्मा, ७. श्री हरप्रसादसिंह, ८. श्री गुर्शीदलाल, ९. श्री मनीन्द्र भूषणसिंह, १०. मौलाना हसरत मोहानी

२. कांग्रेस-संविधान में संशोधन

निम्नलिखित को धारा '२८' की जगह रखा जाय—

इस संविधान में कोई संशोधन, परिवर्तन व परिवर्द्धन सिर्फ कांग्रेस-अधिवेशन द्वारा ही किया जा सकता है। किंतु जब कांग्रेस-अधिवेशन न हो रहा हो तब यदि कांग्रेस-कार्यसमिति चाहे तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को धारा '१' के अलावा संविधान में संशोधन, परिवर्तन व परिवर्द्धन करने का अधिकार होगा, परन्तु शर्त यह रहेगी कि इस प्रकार का कोई भी संशोधन, परिवर्तन व परिवर्द्धन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा तभी किया जा सकेगा जब कि इस प्रकार की प्रस्तावित हेर-फेर के बारे में प्रत्येक सदस्य को बैठक की तारीख से कम-से-कम एक महीना पहले उचित नोटिस दिया जा चुका हो और खास तौर पर इसी काम के लिए बुलाई गई बैठक में उपस्थित होकर मत देनेवाले सदस्यों का उनके पक्ष में दो-तिहाई बहुमत हो। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा किये गए परिवर्तन पुष्टि के लिए आगामी कांग्रेस-अधिवेशन के सामने रखे जायेंगे। किंतु पुष्टि होने से पहले भी उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा निश्चित की गई किसी तारीख से अमल में लाया जा सकेगा।

३. परराष्ट्र नीति

यह कांग्रेस परराष्ट्रनीति के सम्बन्ध में नासिक कांग्रेस के प्रस्ताव की पुष्टि करती है।

आज दुनिया की बड़ी जरूरत युद्ध से बचे रहने की है, जो कि मानव जाति के लिए अनिवार्य रूप से एक लाइलाज मुसीबत ला देगा। यह कांग्रेस संजीदगी के साथ उम्मीद करती है कि दुनिया के वे बड़े राष्ट्र, जिन-पर कि एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है, ऐसी नीतियों पर अमल करेंगे जो कि मौजूदा तनावों को कम करेंगी और वर्तमान समस्याओं का शान्तिपूर्ण हल खोज निकालेंगी। राजनैतिक अथवा आर्थिक परिवर्तन करने के ख्याल से किसी दूसरे मुल्क के साथ हस्तक्षेप करने की नीति और दूसरे मुल्क की नीति को नियन्त्रित करने तथा उसे अपने निजी भाग्य के निर्माण की स्वतन्त्रता से वंचित करना निश्चय ही झगड़े का बायस होता है।

संयुक्तराष्ट्र परिषद् का निर्माण सब मुल्कों को भले ही वे एक-दूसरे से बहुत-सी बातों में असहमत ही क्यों न हों, एक सामान्य मंच पर ले आने का था और उसकी बुनियाद यह थी कि प्रत्येक मुल्क को अपने निजी तरीके पर विकसित होने की स्वतन्त्रता रहे और वे एक दूसरे के काम में हस्तक्षेप न करें। यदि संयुक्तराष्ट्र परिषद् की इस बुनियादी नीति पर अमल किया जाय तो दुनिया को आज जो खतरा जकड़े जा रहा है वह

धीरे-धीरे कम हो जायगा और समस्याओं के बारे में शान्तिपूर्ण तरीके से विचार करना आसान हो जायगा। यह कांग्रेस भारत सरकार द्वारा अपनाई गई उस नीति का समर्थन करती है जिसपर अमल करते हुए उसने सब देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का और उन सामरिक एवं अन्य सन्धियों से बचने का प्रयत्न किया है जो कि दुनिया को दो प्रतिस्पर्धी गुटों में बाट देने की प्रेरणा पर विश्व शान्ति को खतरे में डालती है।

खास तौर से यह कांग्रेस भारत सरकार के सान-फ्रासिसको कान्फ्रेंस में, जो कि जापानी शान्ति-सन्धि पर दस्तखत करने के लिए बुलाई गई थी, भाग न लेने और उसके बजाय जापान के साथ पृथक सन्धि करने के निर्णय का समर्थन करती है। सुदूरपूर्व की शान्ति, जो कि कोरिया के युद्ध और उसके बाद हुए उतार-चढाव से बहुत अधिक भंग हो गई है, सुदूरपूर्व के देशों और उनके साथ मुख्य रूप से सम्बन्धित अन्य देशों के सहयोग पर आधारित होनी चाहिए। किसी भी पक्षपातपूर्ण व्यवस्था में जिसमें ये समस्त देश शामिल न हो, तनाव के बढ जाने की सम्भावना है और वह व्यवस्था शान्तिपूर्ण समझौतों के अवसरों को कम करती है।

यह कांग्रेस आशा करती है कि कोरिया में युद्ध विराम की बातचीत सफल होगी और इससे सुदूरपूर्व में और भी बडे समझौतो के होने का ताता लगेगा।

पुनःशस्त्रीकरण के भयावह कार्यक्रम, जिन्हें कि आधुनिक परिस्थितियों की वजह से बहुत से देशों ने अपनाया है, अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को बढाते हैं और उन मुल्कों की जनता के ऊपर भारी बोझ डालते हैं, जिसके फलस्वरूप उनके जीवन का मानदण्ड नीचा हो जाता जाता है। पुनःशस्त्रीकरण के इन कार्यक्रमों की वजह से दुनिया के कम विकसित देशों की उन्नति में बाधा पडती है। यदि पुनःशस्त्रीकरण के इस लम्बे-चौडे खर्चे को रचनात्मक कार्यों में और कम विकसित देशों के विकास में लगाया जाय तो युद्ध की तैयारियों की अपेक्षा वह शान्ति की अधिक निश्चित गारंटी होगी।

कांग्रेस का विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्रीय परिषद् स्वयं को उन उद्देश्यों की पूर्ति में लगायेगी जिन्हें उसने इतनी खूबसूरती के साथ अपने अधिकार-पत्र में रखा है और जहा कहीं आवश्यक समझा जायगा, वह इस काम के लिए अपने को पुनः संगठित करेगी।

कांग्रेस को भारत और पाकिस्तान के चले आते तनाव का अत्यधिक खेद है। उससे दोनों देशों को नुकसान होता है और वह उनके सम्बन्धो को विषाक्त बनाता है। भारत का किसी भी मुल्क के प्रति, जिनमें पाकिस्तान भी शामिल है, हमला करने का न तो इरादा है और न वह ऐसा इरादा कर ही सकता है। किन्तु भारत को हमेशा किसी भी ऐसे हमले का सामना करने के लिए तैयार रहना है जो कि उसके क्षेत्रों के किसी भी हिस्से पर हो सकता है। कांग्रेस भारत-पाकिस्तान-सम्बन्धी सब समस्याओं का शान्तिपूर्ण ढंग से हल किये जाने का स्वागत करेगी।

काश्मीर के सम्बन्ध में भारत सरकार की यह घोषित नीति रही है, जिसके साथ कांग्रेस पूर्णतया सहमत है, कि काश्मीर की जनता को अपने भाग्य का निर्माण तथा निर्णय स्वयं करना चाहिए। कांग्रेस जम्मू और काश्मीर स्टेट में उन समुचित परिस्थितियों के रहते शीघ्र ही जनमत संग्रह करने का स्वागत करेगी जिनका भारत सरकार स्पष्ट शब्दों में जिक्र कर चुकी है। कांग्रेस काश्मीर स्टेट में विधान-परिषद् के निर्माण का स्वागत करती है और आशा करती है कि रियासत ने पिछले दो-तीन वर्षों में जितनी तरक्की की है उसकी अपेक्षा वह विधान-परिषद् के प्रयत्नों के जरिये और अधिक प्रगति करेगी।

४. समाज-विरोधी और कुछ फूट डालने वाली प्रवृत्तियाँ

शुरू से ही कांग्रेस का लक्ष्य और उसकी घोषित नीति ऐसे असाम्प्रदायिक राष्ट्र बनाने की रही है जिसमें हरएक धर्म का सम्मान हो और किसी भी धर्म या जाति के प्रति भेदभाव न हो और जो राष्ट्र की सब जातियों तथा व्यक्तियों को समान अधिकार और अवसर की स्वतन्त्रता देने वाली हो। भारतीय जनतन्त्र के संविधान की बुनियाद इसी आधारभूत सिद्धांत पर रखी गई है। इससे विचलित होने का मतलब संविधान और

उन आदर्शों का उल्लंघन होगा जिनसे भारतीय जनता ने अपनी स्वतन्त्रता के लम्बे संघर्ष के दिनों में प्रेरणा पाई है। कांग्रेस इस नीति की फिर से पुष्टि करती है और उसकी यह सम्मति है कि साम्प्रदायिकता चाहे किसी भी सूरत में हो धर्म तथा संस्कृति का दुरुपयोग है और बहुत हानिकर है। जाति-पक्षपात और बन्धन भी विच्छेदकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देते हैं और देश के बड़े हितों के लिए घातक है। इस प्रकार के जाति-पक्षपात तथा साम्प्रदायिकता की भावना और व्यवहार समाज-विरोधी हैं और फूट डालते हैं। वे भारत की एकता तथा प्रगति के मार्ग में बाधक हैं और इस कारण उनका विरोध होना चाहिए।"

५ आर्थिक कार्यक्रम

यह कांग्रेस जुलाई १९५१ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बंगलौर-अधिवेशन में स्वीकार किये गए चुनाव-घोषणापत्र को स्वीकार करती है।

कांग्रेस का विश्वास है कि देश के साधनों का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करने, राष्ट्रीय आय को बढ़ाने और उसका समान रूप से वितरण करने तथा राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्यों में जनता की शक्ति को लगाने के लिए एक सुनिश्चित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना करना जरूरी है। इसलिए कांग्रेस आयोजन-कमीशन द्वारा बनाई गई पंचवर्षीय-योजना के मसौदे का स्वागत करती है और राष्ट्र से एवं खास तौर से समस्त कांग्रेस-जनों से अनुरोध करती है कि वे राष्ट्रीय आयोजन को कार्यरूप में परिणत करने के लिए अपना पूर्ण सहयोग दें।

हमारे तात्कालिक आर्थिक कार्यक्रम में मुख्य स्थान आर्थिक कार्यों के प्रत्येक क्षेत्रों में सब प्राप्त साधनों द्वारा उत्पादन को अधिकाधिक बढ़ाना होना चाहिए। हमें सबसे अधिक फिक्र खाद्यान्नों के उत्पादन की करनी चाहिए ताकि अन्न के लिए हमें विदेशों की सहायता पर आश्रित न रहना पड़े। यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि हम कच्चे माल को पर्याप्त मात्रा में मुहय्या करते रहने की समुचित व्यवस्था करें, ताकि लोग काम पर लगे रहें और हमारे उद्योग पूरी कार्यशक्ति से चलते रहें।

हमें देश के आर्थिक और सामाजिक संगठन की उन अन्दरूनी खराबियों को दूर करना ही है जिनके कारण हमारी आर्थिक प्रगति रुक गई है, ताकि हमारी उत्पादन-शक्ति का और जनता की भलाई का स्तर अधिकाधिक ऊंचा हो।

हमारी भावी उन्नति पूंजी के निर्माण पर और इस काम के लिए समाज द्वारा प्रतिवर्ष बचाई गई रकम पर आश्रित है। समाज की बचत को बढ़ाने के लिए खर्च का नियन्त्रण करना होगा। पूंजी लगाने के परम्परागत साधनों की जगह सम्मिलित एवं सहकारी बचतों को और बहुत अधिक लोगों की छोटी-छोटी बचतों को देना चाहिए। युद्धकाल तथा युद्धोत्तर काल में टैक्स बचाने और चोरबाजारी की जिन सामाजिक बुराइयों ने उग्र रूप धारण कर लिया है और जो हमारे आर्थिक विकास में अत्यधिक बाधक हैं, हमारी किसी भी सफल योजना के मार्ग में बाधक बन गई हैं। यह जरूरी है कि सामाजिक स्थिरता और सुधार के लिए खतरे के रूप में उपस्थित इन बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार कारगर कदम उठावे और सारा समाज इस कार्य में उसे सहयोग दे।

राष्ट्रीय आयोजन को कार्यान्वित करने और भारत की तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए देश की सामान्य एवं आर्थिक प्रशासन मशीनरी को समान स्तर पर लाने की आवश्यकता है। इसके लिये यह जरूरी हो जाता है कि औद्योगिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से देश के आर्थिक ढांचे की एक योजना बनाई जाय और उसी के मुताबिक सामाजिक न्याय की आवश्यकताओं को देखते हुए वर्तमान आर्थिक ढांचे को फिर से संगठित किया जाय।

बुनियादी उद्योगों के निर्माण करने के कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कांग्रेस चाहती है कि उपलब्ध साधनों एवं व्यक्तियों का ख्याल रखते हुए उद्योगों पर उत्तरोत्तर जनसत्ता स्थापित हो। किन्तु फिलहाल स्टेट को जो साधन उपलब्ध हैं उनमें से अधिकांश का उपयोग पहले कृषि, सिंचाई, विद्युत्शक्ति, यातायात, ग्रामोद्योग एवं छोटे पैमाने पर चलाये जाने वाले उद्योगों के लिए करना होगा। व्यक्तिगत क्षेत्र के उद्योगों को आम राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जन-क्षेत्रों के उद्योगों के साथ मिल जुल-कर चलना चाहिए। श्रमिकों

को औद्योगिक कारखानो के रोजबरोज के कामो तथा प्रत्येक उद्योग की सामान्य समस्याओ में भाग लेने का अधिकार होना चाहिए।

भारत की अर्थ-नीति की बुनियाद भूमि है। हमारी भूमि-व्यवस्था ऐसी सगठित होनी चाहिए कि भूमि पर मेहनत-मजदूरी करने वाले लोगो को अपने श्रम का लाभ मिले और भूमि का व्यवहार राष्ट्र की सम्पत्ति के साधन के तौर पर हो। जमीदारी एव जागीरदारी-उन्मूलन-प्रथा, काश्तकारो के हितो का सरक्षण, लगान का निर्धारण, भविष्य में एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जाने वाली भूमि के रकबों का तथा खेतिहर मजदूरो के न्यूनतम वेतन का निर्धारण—जैसे भूमि-सुधार के कुछ मुख्य मुख्य अग बहुत से प्रातो ने अपने यहा पहले से ही कार्यरूप में परिणत किये है। इन्हे अधिकाधिक व्यापक बनाकर यथाशीघ्र पूरा करना चाहिए ताकि आम जनता को इनका पूरा फायदा पहुच सके।

अपनी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के पुनःसगठन में पहला कदम पृथक्-पृथक् व्यक्तिगत स्वार्थो के खिलाफ गाव को बतौर एक सामाजिक एव आर्थिक इकाई के सुदृढ बनाने और विकास के लिए प्रभावात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने का है। ग्राम-उत्पादन-परिषदो को उत्पादन बढाने और विकास करने का दायित्व दिया जाना चाहिए तथा उन्हे स्टेट एव जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम का काम करना चाहिए। उनको चाहिए कि वे सामाजिक कार्यों के लिए स्वेच्छाश्रम सगठित करे। ऐसी समस्त भूमि पर, जिसे मालिको द्वारा न जोता-बोया जाता हो, ग्राम-उत्पादन-परिषद् का अधिकार होना चाहिए। अलाभकर एवं अपर्याप्त आराजिया आज आर्थिक एव सामाजिक प्रगति के मार्ग में बाधक है। इसलिए बडे-बडे सहकारी फार्मो का बनाया जाना आवश्यक हो गया है। हमें सहकारी ग्राम-व्यवस्था के आधार पर अपनी कृषि-सम्बन्धी अर्थ-नीति को फिर से सगठित करना चाहिए।

जबतक सहकारी ग्राम-व्यवस्था का हम समुचित रूप से सगठन और विकास नहीं कर लेते तबतक, अस्थायी तौर पर, बडे-बडे व्यक्तिगत फार्मों को स्टेट के निर्देशन एव नियत्रण में लाना चाहिए। उनके लिए यह आवश्यक कर दिया जाय कि वे सरकार द्वारा निश्चित किये खेती एव व्यवस्था के स्तर में समानता लाव। वेतन का न्यूनतम स्तर स्थापित करने, जिन्स की शक्ल में फसल की अच्छाई पर शुल्क लगाने, खेता की उपज पर आयकर लगाने और भूमि की कीमतो को नियन्त्रित करने जैसे विभिन्न तरीकों से असमानता कम की जानी चाहिए। यदि इसका पालन न किया जाय तो ऐसे बडे व्यक्तिगत फार्मों का प्रबन्ध सरकार अपने हाथ में ले ले।

छोटी-छोटी अलाभकर आराजियो को सहकारी खेतो के रूप में सगठित करने के लिए उत्साहवर्द्धक कदम उठाये जाने चाहिए तथा बहुधन्धी सहकारी समितियो को सगठित करने का काम हाथ में लेना चाहिए।

हमारे देश के पास सबसे बडी सम्पत्ति हमारी जन-शक्ति है। परन्तु यदि उसका उचित इस्तेमाल नही किया *गया तो यह देश को पीछे खींच ले जायगी और उसके लिए* भार रूप बन जायगी। जो लोग समग्र रूप से रोजगार में लगे हुए है उनके अलावा देश में बहुत बडी सख्या ऐसे लोगो की भी है जो हृष्ट-पुष्ट होते हुए आशिक रूप से ही धन्धो में लगे हुए हैं। समग्र रूप से और आशिक रूप से धन्धों में लगे हुए लोगो में से बहुत-से ऐसे भी है जिनकी कार्यदक्षता नीचे स्तर की है और जो इस प्रकार देश को आर्थिक हानि पहुचा रहे हैं। इसलिए पूर्ण रोजगार देना और कार्यक्षमता के स्तर को ऊचा उठाना—हमारे राष्ट्रीय प्रयास के मुख्य ध्येय है।

राष्ट्रीय आयोजन में जिन बुनियादी उद्योगो का तथा कृषि की उन्नति के विकास का कार्यक्रम रखा गया है उससे लोगो को अतिरिक्त धन्धा मिलेगा, परन्तु बडे पैमाने पर लोगो को लाभप्रद धन्धो में लगाना एकमात्र गृह-उद्योगो के विकास द्वारा ही सम्भव है। इसलिए ग्रामोद्योग एव छोटे पैमाने पर चलाये जाने वाले उद्योगों से तैयार किये जाने वाले माल की उत्पत्ति के लिए निश्चित कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए और ऐसे उद्योगो को सगठन, अनुसन्धान, प्रशिक्षण, धन, सामग्री तथा बाजार आदि की सहूलियतें दी जानी चाहिए और उनके सरक्षण के लिए पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। यह भी

(शेष पृष्ठ ३२३ पर)

सहयोगियों के विशेषांक

भारतीय त्यौहारों में दीपावली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उस अवसर पर बहुत से पत्रों के विशेषांक निकला करते हैं। इस वर्ष भी लगभग एक दर्जन 'दीपावली विशेषांक' निकले हैं। कुछ भारी-भरकम हैं, कुछ दुबले-पतले; कुछ चटकीले हैं, कुछ सीधे-सादे। पटना से निकलने वाले साप्ताहिक **'योगी'** का आवरण बहुत ही आकर्षक और नयनाभिराम है; लेकिन अन्दर १०४ पृष्ठ की पाठ्य सामग्री होते हुए भी पाठक को सन्तोष नहीं होता। उसमें कई साहित्यिक लेख हैं, गृहरचना पर 'दिनकर' की कविता है, भारतीय शिक्षा और रंग-मंच पर रचनाएं हैं, कहानियां हैं; लेकिन विशेषांक से पाठक कुछ विशेष सामग्री की अपेक्षा रखते हैं। दीपावली-विशेषांक में दीपावली की प्राचीन परम्परा और उसके महत्व पर एकाध लेख अवश्य होना चाहिए, अन्यथा उसे 'दीपावली' विशेषांक कहने का कोई अर्थ ही नहीं होता। अन्य सामग्री में भी कोई योजना दिखाई देनी चाहिए। प्रस्तुत विशेषांक में वैसा कुछ न होते हुए भी उसके कुछ लेख बहुत अच्छे हैं। 'दिनकर' का 'काव्य की यात्रा कठोरता की ओर' लेख आजके साहित्यकारों, विशेषकर कवियों को पर्याप्त विचार-सामग्री प्रदान करता है। ब्रजशंकर वर्मा के 'जयपुर और आमेर का किला' में वहां की स्थापत्य-कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। नलिन विलोचन शर्मा से 'डायरी के सम्पादित पृष्ठ' की अपेक्षा अधिक अच्छी चीज पाने की हम आशा करते थे। कुल मिलाकर अंक सामग्री के वैचित्र्य की दृष्टि से अच्छा है। एक रुपये में अंक बुरा नहीं है।

जयपुर की दैनिक **'लोकवाणी'** के विशेषांक का बहिरंग उतना आकर्षक नहीं है; लेकिन उसकी सामग्री बहुत पुष्ट और उपादेय है। सर्वश्री विनोबा, धीरेन्द्र मजूमदार, सिद्धराज ढड्ढा, भगवानदास केला, जवाहिरलाल जैन की रचनाएँ सुपाठ्य है और आज की ज्वलंत समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। विशेषांक की कई रचनाएँ पुरानी हैं, पर उससे उनका महत्व कम नहीं हो जाता। हमें विश्वास है कि ४४ पृष्ठ के इस विशेषांक को पढ़कर पाठकों के बहुत कुछ पल्ले पड़ेगा।

काशी के साप्ताहिक **'संसार'** में कैलाशचन्द्र शास्त्री का 'दीपावली और भगवान महावीर', जगदीशप्रसाद शास्त्री का 'वैदिक युग का गणतंत्र' और श्री काशिनाथ त्रिवेदी द्वारा अनूदित श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री का 'संस्कार का अर्थ', ये रचनाएँ पाठक को भारत के प्राचीन युग में ले जाती हैं। उन उजले पृष्ठों को देखकर पाठक गद्गद् हो जाता है। १०० पृष्ठ के इस विशेषांक में और भी कई लेख और कविताएँ हैं, जिन्हें पढ़कर पाठकों का मनोरंजन होता है और कुछ ज्ञानवर्द्धक सामग्री भी प्राप्त होती है।

आगरा से निकलने वाले दैनिक **'सैनिक'** में बा० गुलाबराय ने अपने 'दीपावली का राष्ट्रीय महत्त्व' लेख में 'रामराज्य' की प्रचीन कल्पना को उपस्थित करते हुए बताया है कि हम रूढ़ि के रूप में दीपावली को न मनावें; बल्कि एक आदर्श समाज की उसके द्वारा स्थापना करने का प्रयत्न करें। उनके इन शब्दों में बड़ी सचाई है—"बाहरी सफाई के साथ-साथ हृदय की भीतरी सफाई भी-ला सकें तो राष्ट्र अपने इस पुण्य पर्व को मनाकर धन्य होगा।" सीताराम तिवारी का 'बुन्देलखण्डी लोकनृत्य,' धीरेन्द्र मजूमदार का 'रचनात्मक क्रांति में जड़ता' आदि लेख भी पठनीय हैं। ३४ पृष्ठ के इस विशेषांक में वैसे कई एक रचनाएं

पठनीय है लेकिन पत्र के संस्थापक पालीवालजी जैसे प्राणवान लेखक की पाठक एकाध जोरदार चीज़ पाने की आशा करके निराश होता है।

ग्वालियर के 'जयाजी प्रताप' के रूपान्तरित **'मध्यभारत संदेश'** में लेख तो बहुत कम है, समाचार और विज्ञापन अधिक है। जहाँ तक विशेषांक का सम्बन्ध है, पाठक को उससे संतोष नहीं होता, फिर भी ५८ पृष्ठों में 'दीपावली' और 'दीपावली का शास्त्रीय विवेचन' आदि दो-एक रचनाएं पाठक पढ़ सकते हैं।

दिल्ली के **'वीर अर्जुन'** की जबसे नई व्यवस्था हुई है, उसका स्तर गिर गया है और वह पाठकों के लिए उस महान् परम्परा का प्रतीक नहीं रहा, जिस ने इस पत्र को जीवन और जीने की कला प्रदान की थी। उसके इस विशेषांक में 'सांस्कृतिक पुनर्निर्माण और साहित्य' आदि दो-एक लेख तथा कुछ कविताएँ पढ़ी जा सकती हैं। विशेषांक का आवरण बेशक बहुत आकर्षक और सुन्दर है। ६८ पृष्ठों के इस अंक का मूल्य बारह आने है।

हैदराबाद से प्रकाशित **'दक्षिण भारती'** का 'व्यापार विशेषांक' अपने विषय का अच्छा अंक है। उसका नाम कुछ भ्रम-पूर्ण है। अर्थ-शास्त्र-संबंधी उपयोगी सामग्री का उसमें संकलन किया गया है। पंचवर्षीय योजना, धान की हाथ-कुटाई, घरेलू उद्योग-धंधे, चीनीका व्यवसाय, फिल्म उद्योग आदि सामग्री की दृष्टि से इस अंक की रचनाएं उपयोगी हैं। विशेषांक में ६० पृष्ठ हैं।

सामग्री की दृष्टि से हमें सबसे अच्छा जबलपुर के 'जयहिन्द' का विशेषांक लगा। उसके १३६ पृष्ठों के इस अंक की रचनाओं को देखकर पता चलता है कि उसके सम्पादक महोदय ने परिश्रम किया है और सूझ से काम लिया है। अचल, राजकुमार रघुवीरसिंह, विनयमोहन शर्मा उषादेवी मित्रा, सूर्यनारायण व्यास, ब्योहार राजेन्द्रसिंह प्रभृति साहित्य-कारों की रचनाएं इस अंक की शोभा बढ़ाती हैं और पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। आवरण-पृष्ठ पर विज्ञापन खटकता है।

कलकत्ता के **'नया समाज'** की गणना हिन्दी के उत्कृष्ट पत्रों में की जाती है। उसके साधारण अंक भी सुन्दर और उपादेय सामग्री से परिपूर्ण होते हैं। दीपावली के अवसर पर प्रकाशित उसका 'जन-स्वास्थ्य अंक' जीवनोपयोगी सामग्री से इतना परिपूर्ण है कि पाठक उसके प्रत्येक लेख को ध्यानपूर्वक न केवल पढ़ेगा ही, अपितु अंक को बार-बार पढ़ने के लिए संभाल कर रखेगा। वर्तमान समय की महत्वपूर्ण समस्याओं में एक समस्या यह भी है कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता जा रहा है। इसका मुख्य कारण तो संभवत: यह है कि हमें खाने-पीने की शुद्ध और पौष्टिक वस्तुएं नहीं मिलती, लेकिन एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि हम स्वास्थ्य के नियमों को भूल गये हैं। अत: उस ओर जितना ध्यान खींचा जाय, अच्छा है। पिछले दिनों 'जीवन साहित्य' के 'प्राकृतिक चिकित्सा' विशेषांक ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया। 'नया समाज' के सम्पादक को हम बधाई देते हैं कि उन्होंने आजकी इतनी महत्वपूर्ण समस्या पर इतनी स्वस्थ और लाभदायक सामग्री एकत्र करके पाठकों को दे दी। हमें विश्वास है कि जो भी इस विशेषांक को पढ़ेगा, उसे लाभ ही होगा।

'किर्लोस्कर' और **'आरोग्य मंदिर'** मराठी के सुविख्यात पत्र हैं। इन दोनों के भी 'दीवाली विशेषांक' हमारे सामने हैं। 'किर्लोस्कर' में मराठी के अनेक साहित्यकारों की रचनाएं हैं, जब कि 'आरोग्य मंदिर' में स्वास्थ्य-संबंधी उपयोगी सामग्री संग्रहीत की गई है। इन विशेषांकों को देखकर हमें लगता है कि मराठी के पत्रों को अपेक्षाकृत अपने साहित्यकारों का अधिक सहयोग प्राप्त हो जाता है। दोनों के आवरण बहुत सुरुचिपूर्ण और मोहक हैं।

—सव्यसाची

ऐसा न करें ?

अधिवेशन का मुख्य कार्य

कांग्रेस का नया अधिवेशन हो गया। उसका मुख्य उद्देश्य तो था कांग्रेस की विचार-धारा का प्रचार और कांग्रेस-संगठन में मजबूती लाना, सो भी खासकर आगामी चुनावों की दृष्टि से। जहां तक चुनावों का सवाल है, यह कदम ठीक था। चुनावों के उम्मीदवार छांटने में जो उनकी सचाई, ईमानदारी, भलमनसाहत पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है वह उचित, आवश्यक और वांछनीय है; परन्तु यह प्रवृत्ति चुनाव तक ही सीमित न रहनी चाहिए। कांग्रेस-संगठन के जब चुनाव होने लगें तब भी इसका ध्यान रखने की जरूरत है; बल्कि जीवन के तमाम व्यवहारों में ही हमें शुद्धता और सचाई को प्रथम स्थान देना चाहिए। तभी हमारी संस्था, समाज या शासन में इसका महत्व बढ़ सकेगा।

सभापति के भाषण के अलावा इस अधिवेशन में दो प्रस्ताव बहुत महत्वपूर्ण हुए। एक तो हमारे राज्य के जाति-धर्म-निरपेक्ष-स्वरूप संबंधी और दूसरा आर्थिक नियोजन-संबंधी। जाति-धर्म-निरपेक्ष राज्य का यह मतलब नहीं है कि किसी नागरिक की कोई जाति या कोई धर्म न हो, या न रहे। अपने व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन में वह किसी भी जाति या धर्म को अंगीकार करे; परन्तु देश के शासन में उस जाति या धर्म को घुसेड़ने का प्रयत्न न करे। दूसरे शब्दों में देश के शासन में वह एक हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई या ब्राह्मण, बनिया, कुम्हार, तेली के रूप में भाग न ले। वहां वह हिन्दुस्तानी या भारतीय है। इस तरह जातीयता या धार्मिकता को प्रधानता न देकर भारतीयता की भावना को प्रधान मानना, यह इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य था। इस भावना के विपरीत जो अंदर-अंदर जाति या धर्म की आड़ लेकर समाज में या देश में जहर फैलाते हैं, मारकाट, तोड़फोड़, धोखाधड़ी को प्रोत्साहन देते हैं वे समाज और देश के शत्रु हैं, यह बतलाना भी इस प्रस्ताव का एक हेतु था। कोई भी विचारशील व्यक्ति इस प्रस्ताव का समर्थन किये बगैर नहीं रह सकता। यदि इसकी स्पिरिट को हम अंगीकार और आत्मसात् कर लें तो फिर भारत की आन्तरिक ही नहीं, पाकिस्तान-संबंधी समस्या भी शीघ्र हल हो सकती है।

राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समता को स्वीकार किये बिना हम आत्मिक समता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर सकते। भारतवर्ष ने अपने नवीन विधान के द्वारा सबको समान मत देने का अधिकार देकर राजनैतिक समता प्राप्त कर ली है। सामाजिक और आर्थिक समता का मार्ग भी खोल दिया है; परन्तु वह समता अभी सिद्ध या प्राप्त नहीं हुई है। आर्थिक नियोजन का संबंध आर्थिक समता से है और वह बड़े कारखानों या यंत्रों को बढ़ावा देकर सिद्ध नहीं की जा सकती, बल्कि गृह-उद्योगों और श्रम को प्रतिष्ठित करके की जा सकती है, यह गांधीजी ने बार-बार कहा है और विनोबा भी रोज-बरोज इसपर जोर देते हैं; परन्तु जो पंचवर्षीय नियोजन अभी कांग्रेस ने स्वीकार किया है वह इस दृष्टि से बहुत अधूरा और असन्तोषजनक है। फिर भी एक बात हमें भूलनी न चाहिए। वह यह कि यह कोई आदर्श चित्रण नहीं है; बल्कि व्यावहारिक नियोजन है अर्थात अगले पांच वर्षों में भारतवर्ष आर्थिक विषमता मिटाने के लिये आज की स्थिति में क्या कुछ कर सकता है, इसकी तस्वीर इसमें बताई गई है। अतः सर्वोदयी दृष्टि से यह नियोजन कितना ही अपूर्ण हो, शासनिक दृष्टि से आज की सरकार इससे आगे नहीं जा सकती थी, ऐसा लगता है। इसमें गृह-उद्योग, श्रम, व्यक्ति-उपयोग पर काफी जोर दिया गया है।

फिर भी हम मानते हैं कि योजनाओं से कुछ ज्यादा बनता-बिगड़ता नहीं—उनके पीछे यदि शुद्ध भावना,

दृढ सकल्प और उसे चलाने के लिये अच्छा सगठन हो। यह हमारे सयोजको, सचालको और सेवको की सचाई और योग्यता पर निर्भर करता है। हमारी बुद्धि, हमारा ज्ञान और हमारा अनुभव अच्छा नियोजन प्रस्तुत कर सकता था, परन्तु उसे सफल बना सकती है हमारी दृढ सकल्प और सगठन की शक्ति। वह हम अपने अदर पालें तो फिर चिन्ता और निराशा का कोई कारण नही।

नई दिल्ली १-११-५१

हत्या से सबक

पाकिस्तान के प्रधान मत्री श्री लियाकत अली खा की हत्या से पाकिस्तान ही नही, हिन्दुस्तान भी व्यथित हुआ। यह बतलाता है कि यद्यपि शासन की दृष्टि से भारत के दो टुकडे हो गय तो भी दोनो की आत्मा एक है। नये प्रधान मत्री ख्वाजा नाजिमुद्दीन के आने से दोनो भागो में अधिक शान्ति होने की आशा हुई है। यदि दोनो भागो के लोग और शासक एक-दूसरे की कठिनाइया का अधिक सहानुभूति से विचार करेंगे तो यह कठिन नही है कि दोनो देशो के लोग अपने राष्ट्र के रूप में तो एक भारत को ही स्वीकार करें और शासन की दृष्टि से, पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दो अलग-अलग विभाग मात्र मान लिय जाय।

पहले एक व्यक्ति के मरने या मारने का भारी प्रभाव होता था, क्योकि शासन में व्यक्ति की प्रधानता थी। अब तो विचार, प्रणाली और सगठन की प्रधानता है। अत व्यक्ति के रहने, न रहने से थोडा-बहुत असर भले ही हो, विचार, प्रणाली एव सगठन को सहसा कोई क्षति नही पहुच सकती। अत व्यक्तियो की हत्या करना केवल मूर्खता ही हो सकती है। गाधीजी की हत्या उनके विचारो के कारण हुई, न कि व्यक्तिगत कारणो से। मगर गाधीजी की हत्या से क्या उनके विचारो, प्रणालियो और सगठनो को कुछ धक्का पहुचा ? बल्कि अनुभव तो यह बतलाता है कि उल्टी उनको अधिक गति और दृढता मिली। अत आज व्यक्तियो की हत्या या विरोध न करके जिन विचारो, प्रणालियो और सगठनो से हमारा मतभेद है उनके विरुद्ध लोगो को समझाने का प्रयत्न करें। इन नये कुरुक्षेत्र म बाणो, तलवारो या बमो से लडाई न हीं होगी, बल्कि युक्तियो, प्रमाणो, उदाहरणो से अर्थात् बुद्धिबल और ज्ञानबल से तथा प्रेमपूर्वक लोगो की सेवा करके अर्थात् आत्मबल से ही की और जीती जा सकती है।

इसलिए जो चाहते है कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान फिर एक हो —खडित भारत फिर अखड हो जाय, उन्हे शस्त्र प्रयोग और बल-प्रयोग का रास्ता छोडकर ज्ञान बल और आत्म-बल से काम लेना चाहिए। गाधीजी और लियाकत अली की हत्या हमें यही सबक सिखाती है।

नई दिल्ली, १-११-५१

स्वार्थ नही, मित्रता

चीन का सास्कृतिक प्रतिनिधि मडल भारत आया है। उधर चीन ने प० नेहरू को अपने देश में आने का निमत्रण दिया है। चीन का और भारत का बहुत प्राचीन सम्बन्ध है। आधुनिक चीन का भी भारत से मैत्री-सम्बन्ध रहा है। यह नवीन आदान प्रदान उस सम्बन्ध को दृढ ही बनायेगा, क्योकि भारत की विदेश-नीति का पहला सिद्धात ही यह है कि विचार भेद के बावजूद सब राष्ट्रो से मित्रता रखना। भारत न वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय गुटो में से किसी में शामिल होना चाहता है, न तटस्थ राष्ट्रो का एक तीसरा गुट ही बनना चाहता है। इससे उसका प्रभाव एशिया में तो बढ ही रहा है, यूरोप में भी इस नीति के समर्थक पैदा हो रहे हैं। भारत, जो सब राष्ट्रो से मैत्री-सम्बन्ध रखना चाहता है, वह राजनैतिक कारणो और राजनैतिक आधारो पर नही, जिसका मतलब होता है कोई समझौता, कोई ठहराव, कुछ सौदाबाजी, कुछ साठ-गाठ। इससे परे और ऊपर उठकर भारत कहता है—"हम अपने घर में स्वतन्त्र हैं, तुम अपने घर में स्वतन्त्र रहो।" जो देश दूसरो के स्वार्थ के शिकार रहे है, उन्ह भी भारत स्वतन्त्र देखना चाहता है और ऐसे हर देश की भारत ने मदद की है, जिसका नतीजा यह हुआ है कि सारे एशिया से साम्राज्यवाद की जड खोखली हो रही है। भारत न केवल खुद आजाद हुआ है, बल्कि उसने दूसरे की आजादी का बीडा भी उठाया है। इससे जिन महान राष्ट्रो को क्षति पहुचती है वे भीतर-भीतर भारत से नाराज रहते है और भारत को अपने अपने गुट में मिलाने पर मजबूर करना चाहते हैं। लेकिन अपने स्वार्थ को छोडकर यदि विश्वहित की दृष्टि से देखें तो उन्हें भारत की

सद्नीति और उसके रक्षक जवाहरलाल की महानता के सामने सिर झुकाना पड़ता है। निश्चित है कि महान राष्ट्र यदि अपना स्वार्थ-परायण दृष्टिकोण न छोड़ेंगे तो उनकी शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जायगी।

आज मध्य-पूर्व में ईरान, मिश्र, सूडान में जो कुछ हो रहा है वह इसका ज्वलन्त प्रमाण है। इसमें संदेह नहीं कि स्थानीय स्वार्थ का विघात करके विदेशी स्वार्थ पनप नहीं सकते। स्थानिक स्वार्थों को प्रधानता देकर ही वे अपनी प्राण-रक्षा कर सकेंगे। जिस दूरदेशी ने भारत के स्वामित्व का लोभ छोड़कर भारत से मित्रता को तरजीह दी, वही ब्रिटेन को ईरान और मिश्र की उलझनों से बचा सकती है। अब संसार का प्रत्येक राष्ट्र अपने हित के प्रति सजग हो गया है और विदेशियों के स्वार्थी-चंगुल में फंसे रहना पसन्द नहीं कर सकता। विदेशियों को चाहिए कि वे स्वेच्छापूर्वक अपने अनुचित स्वार्थों को छोड़ें और मित्रता की प्राप्ति से सन्तोष मानें। अब राष्ट्रों के परस्पर सम्बन्ध स्वेच्छापूर्वक ही कायम रह सकते हैं। इस नीति पर दृढ़ रहकर भारत अपनी ही नहीं, संसार की बड़ी सेवा कर रहा है।

नई दिल्ली २.११.५१

'जीवन-साहित्य' का अगला विशेषांक

'**भूदान-यज्ञ अंक**' होगा। जो काम शस्त्र और सत्ता से नहीं हो सका, उसे विनोबा अपने पुण्य से कर रहे है। यह कोरी कल्पना नहीं, प्रत्यक्ष सत्य है। पाठक जानते हैं कि अबतक उन्हें लगभग १७ हजार एकड़ जमीन दान में मिल चुकी है। यह जमीन भूमिहीनों को दी जायगी। यह एक ऐसी सत्याग्रही क्रांति है जो भारतीय स्वातन्त्र्य क्रांति से कम महत्व नहीं रखती। जिन दिनों लोग यह समझने लग गये थे कि गांधीवाद खतम हुआ, गांधीवादी पोच और बेकार लोग हैं, जो योग्य थे वे धारा-सभाओं, मंत्रिमंडलों और सरकारी पदों पर पहुंच गये, जो बेकार थे वे चर्खा, खादी, और तेलघानी को लिये बैठे रहे, उन्हीं दिनों उसी वर्धा और सेवाग्राम के परमधाम से एक ज्योति निकली जो मोटर और हवाई जहाज के युग में पैदल घूम रही है और जिसने अपने चमत्कार से भारत के शासक-मंडल को नहीं, विदेशी प्रेक्षकों को भी प्रभावित किया है। उसके पास केवल प्रेम का बल है। उसने तेलंगाना में प्रेम के मुकाबिले शस्त्र को थोथा ठहराया, कम्यूनिस्टों को अपनी नीति पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया और उन लोगों से सहर्ष भूदान करा रही है, जो बलपूर्वक लेने लगें तो एक इंच जमीन भी बिना प्राण की बाजी लगाये नहीं छोड़ेंगे। वही विनोबा छाती ठोककर कहते हैं, "यदि मेरी योजना स्वीकार की जाय तो दो-तीन साल में भारत की कपड़े की आवश्यकता खादी से पूरी की जा सकती है।" इतना प्रत्यक्ष प्रमाण और जबरदस्त चुनौती देने हुए भी यदि हमारे कान पर जूं न रेंगे तो इसे देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। यह भूदान-यज्ञ हमारी समझ में सर्वोदय का आधार-स्तम्भ है इसी तरह हम सब शुद्ध प्रवृत्तियां स्वेच्छापूर्वक करने लग जायं तो उसी दिन भारत में रामराज्य हो जायगा। विनोबा इसके जीते-जागते प्रतीक हैं। उनके हाथ मजबूत करना भारत के गरीबों, भूमिहीनों की सहायता करना है; बल्कि दरिद्रनारायण की पूजा करना है और भारत को रक्तमयी क्रांति की आशंकाओं से बचाना है। इस शांतिमय क्रांति में 'जीवन साहित्य' हृदय से अपना योग देना चाहता है। इसी से हमने निश्चय किया है कि हमारा जनवरी अंक 'भूदान-यज्ञ' अंक होगा, जिसकी सामग्री से पाठकों को पता चलेगा कि विनोबाजी के इस क्रांतिकारी कदम का कितना व्यापक प्रभाव पड़ने वाला है।

नई दिल्ली २-११-५१ —ह० उ०

ग्राहकों से निवेदन

जिन बन्धुओं का 'जीवन-साहित्य' का वार्षिक शुल्क दिसम्बर में समाप्त हो रहा है उनसे हमारा अनुरोध है कि वे आगामी वर्ष के लिए ४) म० आ० द्वारा शीघ्र भेज देने की कृपा करें अथवा हमें सूचना दे दें जिससे जनवरी का विशेषांक उन्हें वी० पी० से भेज दिया जाय। यदि कोई सूचना न मिली तो वी० पी० भेज दी जायगी। छुड़ा कर अनुग्रहीत कीजिये।

जी व न - सा हि त्य

का नया विशेषांक

भूमि-दान-यज्ञ अंक

जनवरी में

पाठको को मिल जायगा।

उसे पढकर

आपको पता चलेगा कि तपोधन विनोबा क्यो इतनी लम्बी पैदल यात्राए कर रहे है और इन यात्राओ का क्या परिणाम निकलेगा। विनोबाजी का यह यज्ञ एक ऐसी

अहिंसक क्रांति

है

जो देश का कायाकल्प कर देगी।

यज्ञ के प्रधान होता विनोबाजी के अतिरिक्त अनेक विद्वानो, चितको और साधको की रचनाए इस अक में रहेगी।

यदि आप

"जीवन-साहित्य" के ग्राहक नही है तो तत्काल ग्राहक बन जाने की कृपा करे। यदि ग्राहक है और आपका वार्षिक शुल्क दिसम्बर मे समाप्त हो रहा है तो अविलम्ब ४) मनीआर्डर से भेजकर आगामी वर्ष के लिए ग्राहक बन जायें।

इस अभिनव अनुष्ठान

म

योग देने के लिए विनोबाजी की विचार-धारा तथा उनकी प्रवृत्तियो का ज्ञान आवश्यक है।

व्यवस्थापक

जी व न - सा हि त्य

कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

अहिंसक नवरचना का मासिक

●

[परिशिष्ट]

●

संपादक

●

फरवरी

१९५२

वार्षिक मूल्य ४) | *** | इस अंक का ॥)

गांधी-डायरी १९५२

लोकमत

"इस वर्ष की 'गांधी-डायरी' पिछले वर्ष से भी सुन्दर रूप में प्रकाशित हुई है। इसका उपयोग करने वाले के प्रत्येक दिवस का मंगलाचरण गांधीजी के वचनों द्वारा होगा। ऐसे कल्याणकारी प्रकाशन के लिए सस्ता साहित्य मण्डल धन्यवाद का भाजन है।" —मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त

"यह डायरी बहुत उपयोगी प्रतीत होती है और इसमें अनेक शिक्षाप्रद बातें होने से इसका महत्व बढ़ जाता है।" —श्रीप्रकाश

"डायरी के रूप में भव्य और मनोज्ञ है ही, उससे बढ़कर गांधी-वचनों से मेरे लिए तो वह प्रातःस्मरणीय ही हो गई है।" —जैनेन्द्रकुमार

"गांधीजी की जीवन-दृष्टि से और विचारों से लोगों को परिचित कराने में इस डायरी का काफी उपयोग होगा।" —शंकरराव देव

"डायरी तो जीवन में नियामकता लाती ही है, किन्तु 'गांधी-डायरी' इसके साथ-ही-साथ नीति, सदाचार, सद्भाव और आध्यात्मिकता का भी हृदय में संचार करती है। मेरा तो ख्याल है कि ऐसी डायरी का उपयोग करनेवाले व्यक्ति के जीवन में विशुद्धता, पवित्रता और परोपकार अपना स्थान प्राप्त किये बिना नहीं रह सकते और वह व्यक्ति सुख और शांति से वंचित नहीं रह सकता।" —(डा०) हीरालाल जैन

"यह डायरी जीवन के सूत्रों की—विशेषकर महात्माजी के उपदेश-सार-अंश की—सुन्दर प्रदर्शिनी है, जिसे देख-देखकर आत्म-स्फुरणा होती है और प्रेरणा मिलती है। ऐसी डायरी का घर-घर प्रचार होना चाहिए।" —(प्रो०) विनयमोहन शर्मा

"जीवन की दिनचर्या पर इस उत्तम डायरी का अमिट प्रभाव पड़ेगा और पूज्य बापू के अमूल उपदेश-वाक्य जीवन-यात्रा के सुन्दर सम्बल होंगे।" —शिवपूजन सहाय

"यह डायरी बहुत उपयोगी है।...इस डायरी को हाथ में रखने से गांधी-आदर्श की सदा याद बनी रहेगी।" —रामेश्वरी नेहरू

"इस बार सचमुच यह डायरी बहुत ही सुन्दर एवं उपयोगी बन गई है।...साधारण व्यक्ति के लिए भी यह उपयोगी प्रमाणित होगी।" —(राजकुमार) रघुवीर सिंह

"इस तरह की डायरी के प्रकाशन से बापू-प्रेमी लोगों को आनन्द होगा और काम में भी सहायता मिलेगी।" —आर्यनायकम

"डायरी में प्रत्येक पृष्ठ के वाक्य तो प्रत्येक दिन के लिए मानसिक नवप्रेरणा अनुप्राणित करते हैं। बापू के भक्तों के लिए तो यह डायरी एक निधि के समान है।" —सोहनलाल द्विवेदी

"मेरे लिए तो यह डायरी स्वाध्याय तथा अभ्यास के काम की है। इस युग में जबकि देश की जीवन-नौका डावांडोल हो रही है और प्रायः लोग गांधीजी के अमूल्य उपदेशों तथा सिद्धान्तों को भूलते जा रहे हैं, यह डायरी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है, यदि इसको लेनेवाले भाई-बहनें इसमें निहित रत्नों का दैनिक सदुपयोग अपने जीवन में करें।" —भगवतनारायण भार्गव

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रांतीय सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम्य पंचायतों के लिए स्वीकृत

फरवरी १६५२

वर्ष १३ : अंक २

क्रॉपॉटकिन

कला और जीवन

वर्तमान कलाकारो के सबसे सुन्दर चित्र प्रकृति, ग्रामो, घाटियो, तूफानी समुद्रो और वैभवशाली पर्वतो के होते है, पर खेतो मे काम करने में जो कवित्व है उसे वह चित्रकार कैसे चित्रित कर सकता है, जिसने खेतो मे काम करके स्वय कभी उसका आनन्द नही उठाया, केवल उसका अनुमान या कल्पना भर की है, जिसे उस प्रदेश का ज्ञान उतना ही है, जितना कि मौसमी चिडियो को रास्ते मे पडने वाले देश का होता है, जिसने नई जवानी की उमग मे बडे सवेरे खेत मे जाकर हल नही चलाया, जिसने अपने सगीत से वायुमण्डल को भर देनेवाली सुन्दर युवतियो से प्रतिस्पर्धा करते हुए मेहनती घसियारो के साथ हसिया भर-भर कर घास काटने का आनन्द नही लिया ? भूमि और भूमि पर जो कुछ उगा हुआ है उसका प्रेम तो तूलिका से चित्र बना देने मात्र से प्राप्त होता नही, वह तो उसकी सेवा करने से उपजा है। जिससे प्रेम ही नही, उसका चित्र कैसे बनेगा ? इसी कारण तो अच्छे-से-अच्छे चित्रकारो ने इस दिशा मे जो कुछ बनाया है वह भी बिल्कुल अपूर्ण है, वास्तविक जीवन से दूर है और प्राय भावुकता की व्यजनामात्र है। उसमे जान नही है। . .

मैथिलीशरण गुप्त

यदि न दोगे आज, कल देना पड़ेगा

पक चुका है फल, अरे, आगे सड़ेगा,
यदि न दोगे आज, कल देना पड़ेगा।

मांगते हैं मान्य तुमसे प्रेम करके,
वैर करके अन्य लेने को लड़ेगा।

बहुत संग्रह हो चुका कुछ त्याग भी हो,
नाम में तो चार चांद वही जड़ेगा।

एक हर्म्य तभी कहीं कृतकृत्य होगा,
आप अपने साथ जब दो घर घड़ेगा।

भक्त को भगवान भी न विभक्त रक्खे,
क्या कभी रक्ताश्रु मोती-सा झड़ेगा।

लोक-परिवर्तन रुकेगा क्या कहीं भी,
समय का जो नियम है निश्चय नड़ेगा।

भूल होगी यदि फलाफल के विषय में,
जान लो तो फूल कांटे-सा गड़ेगा।

भूमि का अधिकार छोड़ेंगे न तृण भी,
अन्न है, अपने लिए ही जो अड़ेगा।

मुक्ति का मार्ग

[तिलगाना-यात्रा की समाप्ति पर मचेरियाल, जिला आदिलाबाद में हैदराबाद-रियासत के कार्यकर्ता-सम्मेलन में, ७-६-५१ को दिया हुआ भाषण।]

यह जो इतना साहस मैंने किया, उसका महत्व मेरे मन में बहुत ही ज्यादा था। यद्यपि इसमें से कुछ नतीजा आयेगा, ऐसा ख्याल करके मैंने यह काम नही लिया था लेकिन वर्धा से जब मैं निकला तब वहा एक छोटी-सी सभा लक्ष्मीनारायण मदिर में हुई थी। वहा पर लोगो की इजाजत लेते समय मैंने कहा था कि अभी तो यह आखिरी मुलाकात ही समझो। फिर कब मिलेंगे, मालूम नही। तभी मेरे मन में यह ख्याल था, लेकिन उसको जाहिर नही किया था—जबतक कि शिवरामपल्ली नही पहुच सकू। उसके बाद निश्चय किया और घूमने का आरम्भ हुआ। मन में तो ऐसा था कि खतरे के मुल्क में जा रहे हैं। अगर इस खतरे को दूर करने का कोई उपाय मिल गया तो अच्छा है। अगर इस खतरे का खुद को ही अनुभव आया तो भी अच्छा है, क्योकि उससे शातिमय उपाय सहज ही सूझेगा। ऐसा कुछ मन में रखकर निकले थे और परमेश्वर की कृपा हुई, जिससे सारा-का-सारा वातावरण ही बदल गया। कम्युनिस्टो के हृदय तक पहुचने की जितनी कोशिश हो सकती थी, उतनी मैंने की, इतना मैं कह सकता हू। और मेरा मानना है कि जिनसे बात करने को मुझ मिला उनको, और जिनके कानो तक मेरी बात पहुची उनको, इतना तो नि सदेह यकीन हुआ होगा कि यह मनुष्य उनका भी भला चाहता है। हा, मेरा मार्ग एक स्वप्न है, यश आने में कहा तक उसका उपयोग होगा इस विषय में शका तो हो ही सकती है। फिर भी मैंने तो उनको यही बताया कि तुम्हारे जो दावे हैं, वे कोई भी कौम अभी तक यशस्वी नही कर सकी है और आगे कब करेगी, इसका भी कोई भरोसा नही है, यह एक बात तो कम-से-कम कबूल कर लो। दूसरी यह बात भी समझ लो कि हर हालत में चाहे हिंसा खडित न की जाय, कुछ हालतो में उसे मान्य भी कर लें, फिर भी स्वराज्य प्राप्ति के बाद—और जबकि अॅडल्ट फ्रैंचाइज (वयस्क मताधिकार) दिया गया है, उसके बाद शस्त्रो का परित्याग ही करना चाहिए था। अगर उतना नही किया है तो पहले दर्जे की गलती की है और यह ऐसी गल्ती है, जिसे कोई भी प्रजा और जो प्रजा की सरकार है, वह बरदाश्त नही कर सकती और उनके साथ किसी तरह की सहानुभूति रखना अशक्य ही होगा। यह बात मैंने उनको समझाने की कोशिश की। मेरा अपना मानना है कि इसका काफी असर हुआ है।

अनुशासन के नाम पर जडता

यद्यपि मेरे मन की यह तैयारी है कि ये जो अत्याचार अभी हुआ करते थे, वे यद्यपि कम तो जरूर होंगे, फिर भी बिल्कुल मिट जायेंगे ऐसा तो नही है, कुछ चल सकते हैं। उसका कारण इन लोगो में एक बडी बुद्धिहीनता है। और यह इन्ही लोगो में है ऐसी बात नही है, दूसरे लोगो में भी है। इस जमाने में यह आ गई है। इनको डिसिप्लिन का एक ऐसा खयाल है कि अपनी बुद्धि को कोई चीज न जचती हो तो भी अपनी सस्था की दृष्टि से हर हालत में उसको मानना चाहिए। ऐसी एक निष्ठा उन लोगो में है। इसमें गुण भी है। मैं ऐसा नहीं कहता कि यह केवल दोष ही है, लेकिन उसके कारण सारी-की-सारी जमात पराधीन, परतन्त्र और बिल्कुल जड बन जाती है। डिसिप्लिन के नाम पर लाखो लोगो को अपने हाथ में रखना और यत्रवत् लाखो लोगो का सचालन करना, यह एक दृष्टि इस जमाने में निकली है, जिसका उपयोग सब करने लगे हैं। हम देखते हैं कि काग्रेसवालो में भी डिसिप्लिन का काफी प्रयोग होता है। उसको कोई दोष भी नही दे सकते, लेकिन डिसिप्लिन का यहां तक खयाल, कि एक चीज बुद्धि को न जचे और उससे देश को बहुत नुकसान पहुँचता है ऐसा भी निश्चय हो, तब भी

नहीं छोड़ना, उसमें एक तरह की लॉयल्टी-निष्ठा मानना, यह वास्तव में बुद्धिहीनता की पराकाष्ठा है। लेकिन इसको इस यांत्रिक युग में एक गुण समझते हैं और इसलिये इन लोगों की जो हाईकमांड है, जोकि हिंदुस्तान में नहीं है, बल्कि हिंदुस्तान के बाहर है, वह जबतक इनको दूसरी आज्ञा नहीं देगी तबतक इनका रवैया खास बदलेगा, ऐसा नहीं मान सकते। फिर भी, चूंकि इनमें से बहुतों के विचार बदल गये हैं और क्योंकि इनके लिये वातावरण की भी अनुकूलता नहीं रही है, ये अत्याचार कुछ कम अवश्य होंगे; लेकिन कुछ-न-कुछ हुआ करेंगे। इसके लिये हमको अपने मन में तैयार रहना चाहिए। यह तो मैंने कम्युनिस्टों के साथ मित्र के नाते सम्बन्ध स्थापित करने की जो कोशिश की, उसका थोड़ा जिक्र किया।

जागतिक क्रांति के बीज

यह जो मसला है, वह एक अन्तर्राष्ट्रीय मसला है और उसका हल अगर हम शान्तिय तरीके से कर लेते हैं तो यही समझो कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमने एक बड़ी भारी खोज की, ऐसा कहना होगा। याने हिंदुस्तान ने स्वराज्य हासिल किया, उसमें अहिंसा का उपयोग हुआ है यह दुनिया ने देखा और उसपर से दुनिया में कुछ आशा बंध गई। वैसे अगर यह मसला हम अहिंसक तरीके से हल कर सकते हैं—और मेरा विश्वास है कि हम कर सकते हैं तो सारी दुनिया के लिये यह एक मुक्ति का रास्ता मिल जायगा। इस दृष्टि से इस तरफ देखना चाहिए। आरम्भ में मैंने जब अपने विचार लोगों के सामने रखना शुरू किये और कुछ भूमिदान मांगना शुरू किया तब, जैसे नदी का आरम्भ शुरू में छोटा होता है, वैसे ही विचार सूझते गये और मैं कहता गया। वह एक छोटा-सा आरम्भ हो गया। इसका महत्व क्या है यह उस वक्त बहुतों के ध्यान में नहीं आया; लेकिन जैसे-जैसे वह विचार आगे बढ़ता गया और लोगों के दिलों पर उसका असर होता गया, वैसे-वैसे उसका भविष्य में क्या परिणाम हो सकता है, इसको लोग समझने लगे। अगर हम अपनी कल्पनाशक्ति चलायें और इस चीज़ को ठीक तरह से ग्रहण करें तो यह बात ध्यान में आ जायगी कि इस काम में जागतिक क्रांति के बीज छिपे हुए हैं। लोग मुझे आकर पूछने लगे कि क्या इससे फलाना मसला हल होगा? मैंने कहा कि भाई, बात यह है कि मसले आखिर कैसे हल होते हैं, यह दुनिया नहीं जानती है। मसले ऐसे ही हल हो जाते है। दुनिया के कई मसले ऐसे हैं, जो किसने हल किये, यह कोई नहीं जानता। इतिहास जानने वाले जानते हैं कि वर्ल्ड-वार (विश्व-युद्ध) होती है, फिर भी मसले वैसे-के-वैसे ही पड़े रहते हैं और कहीं-कहीं तो मसले बढ़ ही जाते हैं। फिर भी पांच-पच्चीस साल के अन्दर कुछ मसले खतम हो जाते हैं और नये मसले तैयार होते हैं। तो पुराने मसले कैसे खतम हुए, इसकी खोज करने के लिये कोई इतिहासकार बैठे तो आगे का सारा प्रवाह देखकर के और कुछ कार्यकारण सम्बन्ध देखने की कोशिश करके कुछ कह भी सकता है। जो लोग वर्ल्ड-वार (विश्व-युद्ध) में शामिल हुए, वे भी यह दावा नहीं कर सकते कि यह वार हमने चलाई। बल्कि उसमें हम दाखिल हो गये, ऐसी बात हो जाती है और कोई मनुष्य यह भी दावा नहीं कर सकता कि फलाना मसला फलानी दृष्टि से हल हुआ है। ऐसी हालत में मैं एक मसला हल कर रहा हूं, यह मान लेना बिल्कुल अहंकार का लक्षण होगा और उस तरह का कोई ख्याल मेरे मन में नहीं है। मैं कोई मसला हल कर रहा हूं, ऐसा कोई आभास मुझे नहीं आया है, बल्कि इतना मैं मानता हूं और समझ गया हूं कि इसमें जो दर्शन हुआ है, उसको अगर हम ठीक से ग्रहण करें और उस चीज के साथ अगर हम एकरूप होने की कोशिश करें तो यह ऐसा साधन है, जिससे मसला हल हो सकता है।

अहिंसा में हर मसले का हल

पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक चिट्ठी मुझे लिखी थी। उसमें उन्होंने जहां जो हो रहा है, उसके लिये खुशी प्रकट की थी। उसके जवाब में मैंने लिखा था कि मेरा विश्वास है कि हर कोई मसला अहिंसा से हल हो ही सकता है; लेकिन उसके लिये हृदय-शुद्धि की आवश्यकता होती है। ऐसी हृदय-शुद्धि हम कहां से लायें, यही सवाल है। लेकिन अगर उसी के लिये हम कोशिश करते रहेंगे

तो वह जरूर कभी-न-कभी हासिल होगी, ऐसा विश्वास रख सकते हैं। इस तरह का एक जुमला उस पत्र में मैंने लिखा है। उसका जिक्र आज मैं इसलिए करता हू कि उसमें मेरा विश्वास मैंने प्रकट किया है, जिसका दर्शन इस बार मुझे प्रत्यक्ष हुआ। वैसे तो इस चीज को कल्पना से और श्रद्धा से मैं मानता था ही, लेकिन इस मर्तबा उसका दर्शन हुआ। आज तो आप लोगो को मैं इतना ही कहूगा कि यह यज्ञ, जिसे मैंने भू-दान-यज्ञ नाम दिया है एक सामान्य यज्ञ नहीं है।

इस युग की असामान्य घटना

आज मैंने एक भाई से इस विषय में चर्चा की और पूछा कि इस तरह की कोई पुरानी मिसाल होगी इतिहास में? तो उस भाई ने विनोद से कहा कि पुराने दान के ऐसे जिक्र तो आते हैं कि कोई मठपति, आचार्य निकले और अपने मठ के लिये दान मागने गये तो लोगो ने उनके मठ के लिये जमीनें दी है। इस तरह के कुछ उदाहरण आते हैं, लेकिन गरीबो के लिये इस तरह जमीनें मागते जाना और लोगो का जमीनें देते जाना, ऐसा कोई भी उदाहरण इतिहास में हम नही पाते है। यह तो विनोद में जो चर्चा हुई, वह कहा। वैसे, इतिहास में कौन-सी घटना हुई और कौन-सी नही हुई, यह कहना कठिन है, क्योकि इतिहास हजारो साल का पुराना है। उसका पूरा जिक्र हमको उपलब्ध नही है। लेकिन इतना निःसशय है कि यह जो घटना इस युग में बनी है, वह सामान्य घटना नही है, क्योकि इसमें लोगो ने जो दान दिया है, उसके पीछे लोगो की बहुत ही सद्भावना है, इसका मैं साक्षी हू। उसकी मैं कई मिसालें दे सकता हू, लेकिन एक-दो मिसालें देता हू, जिनका मुझपर बहुत असर हुआ है। एक भाई ने हमको १२५ एकड का भूमि-दान दिया। वह जमीन अच्छी थी। वह भाई दो-तीन दिन हमारे साथ घूमता था और दूसरो से दान दिलाने की कोशिश चली थी, लेकिन दूसरे रोज उसने खुद उऽकर सवा सौ एकड का दान दिया। हमने पूछा कि आज फिर से क्यो देते हो? तो उसने कहा कि आज एकादशी का दिन है, इसलिए ऐसा लगा कि आज के रोज ही कुछ पुण्यकार्य कर लेना चाहिए। यह छोटी बात नही है। यह मिसाल मैंने इसलिए दी कि जिन्होने दान दिया, उन्होने केवल हृदय शुद्धि की भावना से ही दिया और यो समझ करके ही दिया कि इस यज्ञ में भाग लेना अपना काम है। और मैंने हर जगह समझाया कि इसमें गरीबो पर हम कोई उपकार करते है ऐसी भावना आप भूमिदान देते समय अगर मन में रखते हो तो वह अहकार होगा और उससे जो लाभ हम चाहते हैं वह नहीं होगा। गरीबो को जमीन तो मिलेगी, लेकिन उतने से मेरा काम नही होता है। मेरा काम तो तब होगा, जब यह समझोगे कि जैसे हवा और पानी पर हरेक का हक है, वैसे जमीन पर हरेक का हक है और जबकि कई लोगो के पास बिल्कुल जमीनें नही है, उस हालत में बहुत ज्यादा जमीन अपने पास रखना गलत बात है। उस गलती से मुक्त होने के लिये ही हम जमीन देते हैं, इस खयाल से देना चाहिए। यह हमने बार-बार कहा और जहा हमको जरा भी शका आई कि जो दान दिया जा रहा है, उसमें कुछ तामसता या राजसता का भाव है, वहा हमने वह दान नही लिया है, क्योकि हमारा मतलब यह नही था कि किसी भी तरह से जमीन बटोरें। ऐसा काम तो कम्युनिस्ट करते हैं। हर किसी हालत में जमीन मिलती है तो ले लो। खुशी से मिलती है तो खुशी से ले लो, झगडे से मिलती है तो झगडे से ले लो। और दे दो गरीबो को, क्योकि आखिर जमीन तो अच्छी चीज है। 'पुलिस एक्शन' के पहले श्रीमानो की जमीनें लेकर उन्होने गरीबो को दे दीं, लेकिन पुलिस एक्शन के बाद वे जमीनें गरीबो के हाथ से गईं और पुराने मालिकों को देनी पड़ीं। जहा ऐसी घटना हुई थी, वहा मैंने गरीबो को समझाया कि 'कम्युनिस्टो ने आपको जमीनें दी, वह तो खैर दी, लेकिन आप ने ली कैसे? उसपर तुम्हारा अपना अधिकार क्या था? यह तुमने अच्छा काम नही किया।' इसे समझाने में ही मुझे समय देना पडा था, क्योकि आखिर नीति-अनीति का खयाल अगर हम जनता में से निकाल देते है तो जनता का कभी लाभ नही हो सकता। किसी भी तरह से अपने हाथ में जमीन आ जाय तो अच्छी बात है, ऐसा अगर लोग समझने लगें तो उससे न गरीबो का ही उद्धार हो

सकता है, न देश का। इसलिए यह बात हमने उनको समझाई कि वे जमीनें तुमने लीं, इसी में तुम्हारी गलती हुई। लेकिन अब ये जो जमीनें तुम्हारे पास आयेंगी, वे बिल्कुल प्रेम से आयेंगी। कोई तुमको यह नहीं पूछेगा कि ये तुम्हारे हाथ में कैसे आई ? ये तुम्हारे हक की जमीनें है ? तो इस तरह हमने गरीबों को समझाया और श्रीमानों को भी समझाया। हमारा अपना विश्वास हो गया कि जैसे कम्युनिस्ट भी अपने मन में समझे होंगे कि यह हमारा भला चाहता है वैसे श्रीमान् भी समझे होंगे कि यह हमारा भला ही चाहता है और मुझे इसका पूरा भरोसा है कि अगर इस तरह हम सबके मित्र बनने के ही खयाल से काम करेंगे तभी यह मसला हल होनेवाला है।

जमीन तो एक प्रतीक-मात्र है

कुछ लोगों का इससे उल्टा खयाल है। वे कहते है कि द्वेष-भाव में जोर होता है। कोई लड़ाई करनी है, कोई बड़ा भारी आन्दोलन चलाना है तो कोई 'वार' (युद्ध) होना चाहिए। फिर उसको 'क्लास वार' (वर्ग-युद्ध) कहो या जातीयता कहो; लेकिन जहां कहीं झगड़ा आता है, वहीं जोर पैदा होता है, इसलिए द्वेष-भाव पैदा करने की कोशिश की जाती है, इस आशा से कि उससे संघटन होता है और आन्दोलन में जोर आता है, लेकिन चाहे उसमें जोर आता भी हो, तथापि वह काम का नहीं है, वह नुकसानदेह है। इसलिए प्रेम पैदा करके ही जो काम हो सकता है, वह करना चाहिए, यह ध्यान में लेकर हमने काम किया। हमने लोगों को यह भी समझाया कि अगर किसी मनुष्य ने दान दिया है तो उसने अच्छा किया है; लेकिन जिसने नहीं दिया है तो यों नहीं समझना चाहिए कि वह मनुष्य घृणा के लायक है। उसकी घृणा नहीं होनी चाहिए। एक दफा जब यह सवाल मुझसे पूछा गया तो मैंने उसको दृष्टान्त दिया कि हमारे आश्रम में प्रार्थना की घंटी बजती है। पहली घंटी बजती है तब कुछ लोग नहीं उठते हैं तो हम उनको घृणा नहीं करते। हम यह समझते हैं कि अभी यह गहरी नींद में हैं, दूसरी घंटी बजेगी तब उठ जायेंगे। तो वैसे ही जिन लोगों ने आज कुछ नहीं दिया है; लेकिन हम अगर प्रेम से मांगते जायं और समझाते जायें तो दूसरी मर्तबा वे समझ जायंगे। तो आज वे नहीं समझे इसका मतलब इतना ही है कि वे कम समझने वाले हैं। इसलिए वे आज नहीं समझे हैं, यों मानकर उनके विषय में घृणा या द्वेष या हीन-भाव नहीं होना चाहिए। अगर ऐसा हीन-भाव मन में हो गया तो जिन्होंने दिया, उनके मन में शायद घमंड का भाव आ सकता है। तब हमारा सारा विचार बिगड़ जाता है। यह बार-बार मैंने समझाने की कोशिश की है कि यहां जमीन केवल एक निशानी के तौर पर है। जमीन तो अपनी जगह से उठती नहीं है। हर हालत में वहीं काम देती है और जबकि गरीबों को इसकी भूख है तो आज नहीं कल, इस तरीके से नहीं, दूसरे तरीके से, उनके हाथ में जमीन आये बगैर हरगिज रहने वाली नहीं है। यह कभी नहीं हो सकता कि आम जनता को जमीन से महरूम रखा जाय और जनता इस चीज को सदा के लिये बरदाश्त करे। इस वास्ते ये जमीनें किसी भी तरीके से उनके मालिकों के हाथ से लेकर गरीबों के हाथ में फौरन पहुंचे, यह मेरी इच्छा नहीं है। वह ठीक और सच्चे तरीके से ही उनके हाथ में पहुंचे, यह मेरी दृष्टि है और यह समझाने की ही मैंने कोशिश की है।

इस यज्ञ में हरेक का हविर्भाग

मैंने इसको यज्ञ का नाम इसलिए दिया है कि यज्ञ में हिस्सा लेना हरेक का कर्त्तव्य है। चन्द लोगों ने जमीनें खरीद कर के हमको दीं: उनको जब समझाया गया कि हरेक को इसमें हिस्सा लेना है तो उन्होंने पूछा कि आप पैसा क्यों नहीं लेते ? तो मैंने कहा—"पैसा लेना मेरा काम नहीं है और मैं पैसा नहीं लूंगा।" उसमें से चन्द लोग ऐसे निकले, जिन्होंने कहा, "ठीक है, हम जमीन खरीदकर दे देंगे।" उनका दान भी हमने लिख लिया है। कहने का मेरा मतलब यह है कि हमने यह समझाया कि सिर्फ श्रीमानों से लेना है यह बात नहीं है। यह तो यज्ञ शुरू हुआ है। जिनके पास ज्यादा जमीन नहीं थी, एक ही एकड़ जमीन थी, उनके पास से भी हमने एक गुंठा जमीन दान में ली. ऐसे भी दान इसमें हैं।

इसमें श्रीमानो की जमीन है और गरीबो की भी है और जिनके पास जमीन नही थी, उन्होंने खरीदकर हमको दी है। तो यह जो सब हुआ है, उसे अगर आगे बढाना है तो इसमें हजारों लोगो का भाग होना चाहिए। जिसके पास जमीन है, वह अपनी जमीन में से कुछ दान दे दें। फिर मित्रो के पास पहुचे और उनमे दिलाए। इस तरह की बडी भारी देशव्यापी हलचल होनी चाहिए। जो समिति बनेगी, वह लोगो से जमीनें लेने और उनको गरीबो में बाटने का काम यानी मजदूरी का काम करेगी। जो मुश्किलें आयेंगी या समस्याए निर्माण होगी, वे मेरे सामने प्रस्तुत समिति रखेगी। इस तरह की मजदूरी का काम जहा करना है, वहा ऐसा समिति उन्ही लोगो की बनाई जाय, जिनका लोगा में खास वजन नही है, लेकिन जो काम करने वाले है।

'बावाना बेऊ बगडे!'

कुछ लोग कहते हैं कि 'इकनामिक होल्डिंग वगैरह देखोगे या नही?' मैंने अपने मन में कहा, गुजराती में कहावत है कि "बावाना बेऊ बगडे," यानि बावा एक-साथ दो बातें करने गया तो उसकी दोनो बातें बिगडी। इसलिए श्रीमानो का ममत्व छुडाना और गरीबो के पास सीधे जमीनें पहुचाना एक बात है और कोई कोआपरेटिव काम करना दूसरी बात है। तो कोआपरेटिव काम करें या इकनामिक होल्डिंग बनाए, यह तो कोआपरेशन से ही हो सकता है, नही तो उसका उल्टा अर्थ होगा कि कम जमीनें किसी गरीब को दी ही न जाय, लेकिन गरीबो को तो जमीन देनी ही है और फिर उनको एकत्र करके कोआपरेटिव काम करें, ऐसा उसका अर्थ होता है। लेकिन ये दो प्रयोग हम एक साथ नही करना चाहते। अगर ऐसा कोआपरेशन बने तो अच्छी बात होगी। वह काम भी होना चाहिए, लेकिन वह अगर नही बनता है तो उसके पीछे अभी नही पडना चाहिए।

कोऑपरेटिव खेती कब?

एक श्रीमान् हमको मिले। उनकी इच्छा हुई कि अधिक जमीन हमको दी जाय, लेकिन उसके साथ वे एक शर्त रखना चाहते थे। उनका कहना था कि कोआपरेशन किया जाय, उसकी एक समिति बनाई जाय और उस समिति में वे खुद रहें। मैंने उनको साफ कह दिया कि हमें पहला काम यह करना है कि ममत्व-बुद्धि से आपको मुक्त करना है। हमको गरीब पर तो दया आती ही है, लेकिन आपपर भी दया आ रही है कि आपको हम ममत्व से कैसे छुडायें? इसलिए हम इतना ही चाहते हैं कि आप जितनी जमीन छोड सकते हैं उतनी छोड दें। वे ज्यादा जमीन देना चाहते थे, लेकिन हमने कहा कि हम ज्यादा जमीन नही चाहते है, बल्कि बिना शर्त जमीन चाहते है। फिर हमने उनसे कहा कि यह कोआपरेशन का प्रयोग जरूर यशस्वी हो सकता है, ऐसा हमें विश्वास है—अगर वह युक्ति से और गणित से किया जाय। और इसके बगैर हिंदुस्तान का उद्धार नही होगा, यह भी हम मानते है, क्योकि छोटे लोग एकत्र होकर काम नहीं करेंगे तो दुनिया में वे टिक नही सकते। उसमें जमीन का कई तरह का नुकसान होता है, पैदावार भी घटती है। यह सब हम मानते हैं, लेकिन हम आपको पूछते है कि जिनको ऐसी जमीनें अभी तक मिली नही है, जिनको इस तरह का अभ्यास नही, जिनको गणित का ज्ञान नही, उनके ऊपर आप यह चीज लादेंगे और फिर कहेंगे कि उनको अक्ल नही है, इसलिए फिर एक नियामक संस्था भी आप मुकर्रर करेंगे और उसमें हमारा भी एक नाम रखेंगे। तो मतलब उसका यह हुआ कि गरीब आखिर तक आपके आश्रित-जैसे ही रह जायेंगे। यह हम नही चाहते हैं। फिर हमने उनसे एक सवाल पूछा कि अगर कोआपरेटिव खेती अच्छी चीज है तो जिनके पास तीस-चालीस-पचास एकड जमीन है, ऐसे लोग इकट्ठे होकर क्यो नही कोआपरेटिव खेती करते? जिनको नये सिरे से दान देते है, उन बेचारो पर यह पुण्य-कार्य क्यो लादते हो?

इसलिए ये दो प्रयोग एक साथ नही करने हैं। हमने तो यह सोचा है कि साधारण पाच मनुष्यो का एक कुटुम्ब रहा तो उसको पांच एकड खुश्की की जमीन हम देंगे और अगर तरी की जमीन देनी है तो एक एकड देकर समाधान मानेंगे। इतने से उनका जो पेट-गुजारा चलेगा और कुछ प्रत्यक्ष काम करने का मौका उनको

मिलेगा, उतने से हम संतुष्ट हो जाते हैं। इसके बाद इकानामिक होल्डिंग की दृष्टि से उनको एकत्र करना है तो वह आगे की बात है। उसको इसके साथ जोड़ना नहीं चाहिए।

'मैं गहि न ग़रीबी !'

यह कोई व्यक्तिगत दान हमने नहीं लिया है। यह बात ठीक है कि हमारे नाम से लोगों को दान देने में प्रेरणा हुई होगी। तो उस नाम का उपयोग उनको करना है तो वे करें। मुझे उसकी परवाह नहीं है, क्योंकि मेरी दृष्टि से वह नाम शून्य है। यह सारा काम ग़रीबों के लिये है। उनका नाम आजतक हमने खाया है और उनको अभी तक हमने कुछ भी दिया नहीं है। यह सारा सोचकर अत्यन्त अनुतापयुक्त चित्त से यह काम हम कर रहे हैं। श्रीमानों का तो उपकार क्या कहना; लेकिन हमारा भी कुछ उपकार ग़रीबों पर हो रहा है ऐसी कोई भावना जमीन देते समय हमारे मन में नहीं है। उलटे, हमारे मन में यह सदमा है कि अभी तक हम पूरे ग़रीब नहीं हुए हैं। तुलसीदासजी ने एक जगह भगवान् की स्तुति करते हुए अत्यन्त दुःखी मन से कहा कि "नाथ गरीबनिवाज हैं"—हे भगवान् ! आप तो ग़रीबों के पालक हैं। "मैं गहि न गरीबी"—लेकिन मैं अभी तक ग़रीब नहीं हो सका तो मेरा पालन कैसे होगा ? तो "नाथ गरीबनिवाज हैं," इसका अर्थ तुलसीदासजी ने विशेष रीति से लगाया है। अक्सर लोग कहा करते हैं कि परमेश्वर गरीबों का पालक है, गरीब-निवाज है; लेकिन तुलसीदासजी ने अर्थ यह निकाला कि जो गरीब होते हैं, उनकी ही रक्षा भगवान् करता है और मैं तो अभी पूरा ग़रीब नहीं बना हूं। तो हे प्रभु ! मेरी रक्षा कैसे होगी ? ठीक यही प्रार्थना मैं किया करता हूं और मुझे इस बात का सदमा है कि बावजूद अखंड कोशिश के, मैं अभी तक परिपूर्ण गरीब नहीं हो सका हूं। तो परमेश्वर मुझे क्षमा करेगा, इतना ही मेरे मन में भाव है। अर्थात्—यह जो काम मैं कर रहा हूं, उसमें गरीबों पर कोई भी उपकार नहीं हो रहा है, बल्कि हमको जो पश्चात्ताप हो रहा है, उसका यह एक प्रकाशन-मात्र है। इससे अधिक और कोई भाव नहीं है। अतः मेरा नाम लेकर अबतक चला वैसा आगे भी चला तो मुझको कोई हर्ज नहीं है। वह गरीबों का ही नाम है; लेकिन यह जो सारी जमीन इकट्ठी होगी, वह लाखों लोगों के देने से ही होगी। उसमें सब लोगों का हिस्सा होना चाहिए, इसलिए मैं चाहूंगा कि कांग्रेस वाले, सोशलिस्ट और दूसरे भी विचार वाले कोई हों जो यह समझते हों कि इस काम में नुकसान नहीं है, इसमें भाग लें।

सर्व-संग्राहक काम

कुछ लोग कहते हैं कि यह जो आपका दान का तरीका है, उससे दुनिया का कुछ भला जरूर होगा; लेकिन इससे कोई समस्या हल नहीं होती। राज्यतन्त्र बदले बगैर कुछ नहीं होता है। कुरान में एक जगह लिखा है कि कुछ लोग यहां तक शंकाशील होते हैं कि मरने के बाद भी कोई स्वर्ग होगा या नरक होगा, नहीं कह सकते। ऐसे लोग पुण्य किया करते हैं तो उनके पुण्य के कारण अगर उनको स्वर्ग में ढकेल दिया जायगा तो भी शंका करेंगे कि क्या सचमुच यह स्वर्ग है और उसमें हम दाखिल हो चुके हैं ? यहां तक लोग अश्रद्धा रखेंगे, ऐसी एक उक्ति कुरान में मैंने देखी। तो ऐसे शंकाशील लोगों से मैं इतना ही पूछता हूं कि भाई, इससे कोई बुरी बात तो नहीं होने वाली है ? तो कहते हैं कि हां, बुरी बात तो नहीं होने वाली है, थोड़ा-सा भला होगा; लेकिन इतने भर से क्या होना है ? —'माधुर्य मधु बिंदुना रचयितुम् क्षारांबुधेरीहते।' एक बड़ा भारी समुद्र है—खारे पानी का। उसमें शहद की दो बूंदें डालने से अगर कोई कहे कि उस समुद्र में परिवर्तन हो गया तो क्या होनेवाला है ? संभव है कि चन्द मिनिट के लिये वहां कोई मक्खी बैठ सकती है। इससे ज्यादा कुछ नहीं हो सकता। तो ऐसे लोगों से मैं चर्चा में नहीं पड़ता। मैं कहूंगा कि आप कहते हैं वैसा भी हो सकता है। अगर सब लोगों ने इसमें योग नहीं दिया, सबको वैसी प्रेरणा नहीं मिली तो इतना ही होगा कि दस-पांच हजार एकड़ जमीन गरीबों को मिल गई, इससे ज्यादा कुछ नहीं हुआ और यद्यपि यह पुण्य-कार्य है तो भी हिसाब लेने लायक यह नहीं है, ऐसा ही साबित होगा; लेकिन सबको अगर जंचा कि भाई, यह काम ऐसा है कि बूंद-बूंद बारिश का

पानी गिरता है फिर भी वह हर जगह गिरता है इस लिये जैसे सारे नदी-नाले भर कर बहते हैं, वैसे हर कोई अगर इसमें हाथ लगाये तो वैसा ही काम हो सकता है। लेकिन यह कब होगा ? जब परमेश्वर प्रेरणा देगा तब। आपके दिल में जब यह बात आयगी कि हम जो काम अभी कर रहे हैं वह सारा एक ओर रखो। हमारा राज्य-तन्त्र चलाने का काम कोई कम महत्व नही रखता लेकिन वह भी एक ओर रखो और दूसरी ओर यह चीज रखो कि जिससे देने की ख्वाहिश लोगो के दिलो म पैदा होती है। तो तराजू में तोलकर के देखने से अगर आप सबको यह मालूम हो कि यह असली काम है और आप सब इसमें हाथ बटायें तो आप समझ लीजिये कि इसमें से बडी भारी चीज पैदा होगी। ऐसा हमारा विश्वास है।

वर्ग-भेद काल्पनिक

हमारा पूरा विश्वास है कि आप यह बात चित्त में से निकाल देंगे कि श्रीमान् नाम का कोई वर्ग है और गरीब नाम का दूसरा वर्ग है। यह काल्पनिक कथाए सब छोड दो। इतना ही समझो कि सारे मनुष्य है। हरेक में कोई बुराई भी होती है और कोई भलाई भी होती है। तो भलाई का जो अंश है, उसको खीच लेना हमारा काम है। जैसे लोहचुंबक मिट्टी में पडे लोहे के थोडे कण भी खीच लेता है वैसी शक्ति हममें होनी चाहिए कि हरेक मनुष्य में जो भी भलाई होगी, उतनी ही हम खीच लें और जो बुराई होगी, उसको न खीचें, बाहर न लायें। बुराई उसके अन्दर ही छिपी रहेगी तो आगे चल कर वह खतम हो जायगी। लेकिन जो गुणांश है, वही आप लायेंगे, उसी का प्रयोग होने देंगे, उसी को मौका देंगे—यह अगर हम करें एसी शक्ति हममें आये तो आप देखेंगे कि काम तभी होगा, नही तो मन में अगर कुछ ऐसा रहा कि श्रीमानो से हमको सब छीन लेना है तो समझ लीजिये कि उन श्रीमानो के मन में भी ऐसी प्रतिक्रिया होगी कि लोगो को हम जमीनें क्यों दें ? हमारा भी कोई हक है या नही ? ऐसी बात उनके मन में आ जाती है।

कानून और वातावरण का निर्माण

एक भाई ने हमसे कहा कि यह काम कानून के बगैर कैसे पूरा होगा ? मैंने कहा कि मेरे इस काम की पूर्ति के लिये क्या-क्या चाहिए, यह मुझे क्यो सोचना चाहिए, जबकि मुझे दुनिया में भगवान ने अकेला ही पैदा नही किया ! अगर ऐसा होता कि मेरी पूर्ति के लिये दुनिया म और किसी चीज की जरूरत ही नही है तो परमेश्वर केवल मुझे ही पैदा करता और कहता कि तुझे पैदा किया है अब तू जो करेगा वह परिपूर्ण है, अब किसी इमदाद की तुझे जरूरत नही है। लेकिन जब मैं देखता हू कि भारत में पैंतीस करोड लोग पडे है तो जाहिर है कि मैं जो करता हू, उसकी पूर्ति में बहुत कुछ काम करना बाकी है। तो मैं इन कानून करने वाला को कहा रोकता हू? लेकिन मैं कहता हू कि कानून भी जरा ढग से करो, जिससे हसी नही होगी। मैं सुनता हू कि अभी सोचा जा रहा है कि मनुष्य ज्यादा-से-ज्यादा जो रकबा रख सकेगा, उसकी मर्यादा होनी चाहिए, ढाई सौ एकड खुश्की और पचास एकड तरी—दोनो एक साथ। मैंने कहा, यह भी छोड दो। करो यह कि या तो तरी पचास एकड होगी, या ढाई सौ एकड खुश्की होगी। इतना करो तो भी हसी से बच जाते हो, नही तो वह एक हसी की चीज हो जाती है। वह न करने-जैसी ही बात हो जायगी—उसका कोई मतलब नहीं है। मैं तो गणित की समानता को मानता हू। हमारी अगुलिया जैसी विषम होती है, वैसा समाज विषम चलेगा, लेकिन अगुलियों के बीच में सहकार होता है, वैसा सहकार हो तो बस है। यह दृष्टान्त आगे समझाते हुए मैंने कहा कि यह तो आप नही देखते है कि एक अगुली दो फुट लम्बी है और एक अगुली दो इच लम्बी है! वे छोटी-बडी होती है, लेकिन कुछ प्रमाण में वैसी होनी हैं। लेकिन यहा तो इतना फरक है कि उसमें सहकार की गुजाइश ही नही है और यह जो कानून आप सोच रहे हैं, उससे यहा का मसला भी हल नही होता है।

फिर जहा कानून आता है, वहा दड आता है, कुछ व्यवस्था आती है और सामने वाला कानून के अन्दर रहकर जितना बच सकता है, उतना बचने की कोशिश करता है। आज भी यही हो रहा है। सरकार एक कानून कट्रोल के बारे में करती है तो व्यापारी उसमें से भी लाभ

लेने की कोशिश करते हैं और फिर उस कानून को करीब-करीब निकम्मा-सा बना देते हैं। तो इस तरह व्यापारी और श्रीमान् एक बाजू और सरकार दूसरी बाजू, ऐसा होकर दोनों की अकल के बीच में टक्कर चली तो दोनों की अकल का जो योग होना चाहिए वह नहीं होता है, बल्कि उलटा नुकसान होता है। इसलिए केवल कानून बनाने से हम संतुष्ट नहीं होते हैं। वह तो बनना चाहिए, उससे गरीब लोगों को यह विश्वास हो जाता है कि सरकार हमारे लिये सोच रही है। लेकिन कानून के बावजूद वातावरण बनाने का यह जो काम है, दान-यज्ञ हरेक करे—इस वृत्ति को फैलाने का काम हमको करना होगा और उससे बहुत लाभ होगा।

आत्यंतिक मूढ़ विश्वास

बाकी के सारे लाभ एक बाजू रखो, उनकी कोई कीमत नहीं है; लेकिन इससे जो अहिंसा की शक्ति बढ़ेगी, वह सबसे बड़ा लाभ है। बहुत दफा हम कहते हैं कि अहिंसा से क्या होगा, कैसे चलेगा ? जहां तक हो सके, अहिंसा से काम करें, यह तो ठीक है; लेकिन उससे काम नहीं हुआ तो क्या करेंगे ? मैं उनसे पूछता हूं कि आप ही बताइये कि फिर आप क्या करेंगे ? तो कहते हैं कि हिंसा की आराधना करेंगे ! आजतक लाख बार लड़ाइयां लड़ चुके; लेकिन उससे कोई भी समस्या हल नहीं हुई। फिर भी हम अहिंसा को कारगर ही मानते हैं। पिछली बार हमने हिंसा की, लेकिन हमको यश नहीं मिला तो हम सोचते हैं कि उसमें फलाना नुक्स रह गया था। अब दुबारा हम ऐसी हिंसा करेंगे कि जिसमें वह नुक्स नहीं रहेगा। यानी हिंसा से अगर अच्छा परिणाम नहीं आया तो हिंसा का कोई दोष नहीं है, बल्कि उसके प्रयोग में हमने जो कुछ गलती की उसका दोष है। इतने श्रद्धापूर्वक हजारों सालों से हिंसा का प्रयोग चलता आया है। बार-बार नाकामयाबी मिलते हुए भी उसके विषय में हमको शंका नहीं आती है। मैं कहता हूं कि जिस विषय में आपने हजारों सालों से इतनी निश्चल श्रद्धा रखी, वह छोड़कर जरा उसके विषय में शंका तो लाइये अपने मन में ? और सोचिये कि आखिर दोष कहां हो रहा है ? लेकिन हिंसा में इतना विश्वास है ! जहां किसी लड़के को गणित समझाते हैं और वह बेचारा नहीं समझता है तो हमारा भरोसा तमाचे पर रहता है। हम मानते हैं कि तमाचा लगेगा तो लड़का समझ जायगा। इतना क्या अद्भुत जादू है उस हिंसा में, जो हम मानते हैं कि हमारी हरेक समस्या हर हालत में वह हल ही करेगी ? अत्यन्त मूढ़ विश्वास का अगर कोई नमूना है तो यह है। तो इतना जो विश्वास रखा है, उसको जरा ढीला करो और सोचो कि हिंसा को इतनी ट्रायल देने के बाद भी अगर कोई परिणाम नहीं निकलता है तो हिंसा के मार्ग में ही कुछ दोष है और जैसे आपने हिंसा को ट्रायल दी, वैसे अब अहिंसा को देकर अगर परिणाम नहीं आता है तो और सोचो। हमारी अहिंसा में कुछ कमजोरी रह गई होगी या कुछ नुक्स रह गया होगा, इस तरह विचार करके चन्द रोज अहिंसा के विकास के लिये दे दो। उससे दुनिया का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। दुनिया ने हजारों साल हिंसा के प्रयोग में खोये तो अब अहिंसा के प्रयोग में सौ-पचास साल उसने और खोये, इतना ही होगा—अगर कुछ खोया ही है तो। लेकिन इस तरह का प्रयोग करने का सोचें तो कुछ नतीजा उसमें से आयेगा। दुनिया को ऐसी चीज की अत्यन्त आवश्यकता है।

अहिंसा को भी ट्रायल दो

इसलिए मैं आपको कहता हूं कि यह जो छोटा-सा काम हम कर रहे हैं, उसकी तरफ सारी दुनिया की आंखें हैं, क्योंकि दुनिया में आज जो चल रहा है, उससे यह उलटा काम है। और अगर यह अयशस्वी हुआ तो कुछ और बिगड़ने वाला है ऐसा तो है नहीं, लेकिन अगर यशस्वी हुआ तो दुनिया आज जिस चीज के लिये प्यासी है, वह चीज उसको मिल गई, ऐसा होगा। इसलिए यह बहुत ही महत्व की बात है। इससे एक बड़ी शक्ति की उपासना हो सकती है, एक नई दृष्टि लोगों को मिल सकती है और दुनिया को राहत मिल सकती है। इसलिए इस चीज को ट्रायल देना है, ऐसा समझकर कानून की बात अभी अपने पास रहने दो और सारे लोग यह काम करने के लिये आ जायं, ऐसी आप लोगों से मेरी मांग है।

शंकरराव देव

भूदान-यज्ञ को देशव्यापी बनाने के लिये सुझाव

आचार्य विनोबाजी द्वारा प्रेरित और प्रचारित भूदान-यज्ञ में भिन्न-भिन्न स्तर के लोगो से श्री विनोबाजी को जो सहयोग मिल रहा है वह बहुत ही उत्साहदायक है और साबित करता है—यदि साबित करने की जरूरत हो तो—कि लोगो का हृदय शुद्ध है और लोग इस यज्ञ के जैसी नैतिक अपील को अपनाने की क्षमता रखते है ।

आन्दोलन स्वभावत नैतिक होने के कारण उसके प्रणेता के महान व्यक्तित्व और चारित्र्य से उसे बल मिलता रहा है और सफलता मिलने तक मिलता रहेगा । फिर भी हमें यह मानना चाहिए कि जमीन की मालिकी का समान-रूप से बटवारा मागने वाली जो स्फोटक आर्थिक हालत आज देश में है, वह भी आदोलन की सफलता का एक कारण है। इस आदोलन का स्वरूप इतना व्यापक है कि उसकी परिपूर्णता के लिये किसी एक मौके पर कानून की मदद जरूरी होगी। श्री विनोबाजी भी यह जानते है । वे मानते है कि समाज के अहिंसक परिवर्तन में कानून को भी एक उचित स्थान है । उन्होने कहा है कि कानून के अमल के लिये अनुकूल वातावरण पैदा करना, यह भी इस आदोलन का एक उद्देश्य है ।

किसी भी दृष्टि से देखिए, मुझे यकीन है कि रचनात्मक कार्यकर्ता मानेंगे कि यह आदोलन उनकी निष्ठा और उसपर चलने की उनकी ताकत को एक प्रकार से चुनौती है । उनका यह फर्ज है कि वे इस आदोलन को सफल करें और उसको सर्वोदय-कल्पना के अनुसार सामाजिक और आर्थिक क्राति का अग्रदूत बनावें । इसलिए उनको यह काम पूरी तमता से उठा लेना चाहिए जिससे कि यह आदोलन यथासभव शीघ्रता से राष्ट्रव्यापी बने । कम से-कम आरम्भिक अवस्था में प्रणेता ही इस आदोलन का केन्द्र रहेगा, इसमें कोई शक नही , पर आदोलन फैलने के लिये अनुकूल हालत पैदा करने में हम सबको मदद करनी चाहिए ।

इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि नीचे लिखी बातें अमल में लाई जाय । स्थानीय हालत को देखकर कुछ तब्दीलिया इसमें की जा सकती है ।

१ भूदान-यज्ञ का प्रारम्भ, आवश्यकता और मुद्दो के बारे में हिन्दुस्तान की भिन्न भिन्न भाषाओ में अधिकृत पत्रक का तुरन्त प्रकाशन । यह पत्रक छोटा-सा, करीब आठ पन्नो का हो ।

२ चुने हुए रचनात्मक कार्यकर्ताओ के द्वारा विभिन्न भाषा भाषी क्षेत्रो में इन पत्रको का परिणामकारक वितरण ।

३ सारे देश-भर में समाचार-पत्रो के सपादको से रचनात्मक कार्यकर्ता गहरा सपर्क जोडें और इस पत्रक की ही नही, बल्कि इस आदोलन से सबधित जानकारी को भी समय-समय पर अधिक-से-अधिक मात्रा में प्रकाशित करने का आग्रह करें । सपादको को विनोबाजी और दूसरे नेताओ के तद्विषयक लेख और प्रादेशिक भाषाओं में अनूदित सभाषण मिलने की व्यवस्था कार्यकर्ता करें । यहा यह कह देना ठीक होगा कि 'हरिजन' और 'सर्वोदय' मासिक में विनोबाजी के भाषण वगैरा की अधिकृत रिपोर्ट आती है।

४ भूदान-यज्ञ के बारे में लक्ष्य केन्द्रित करने के लिये हरेक भाषा भाषी क्षेत्र या प्रदेश के रचनात्मक कार्यकर्ता अगले छ सप्ताह के भीतर, कार्यकर्त्ताओ और इस यज्ञ में रस लेनेवालों की एक बैठक बुलावें । इस बैठक में सबधित क्षेत्र में भूदान-यज्ञ के बारे में सतत प्रचार करने की योजना ठीक तरह से सोचकर बनाई जाय । स्थानीय समितिया बनाई जाय और उन्हे ठोस कार्यक्रम दिया जाय ।

५ देहाती अचलो में भूदान-यज्ञ का सन्देश फैलाने

के लिये चुने हुए रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सर्वोदय-यात्रा संगठित की जाय तो अच्छा होगा।

६. शुरू की इन प्रादेशिक बैठकों के बाद भूदान-यज्ञ का सन्देश अधिक-से-अधिक फैलाने के लिए स्थान-स्थान पर सभाएं की जायं।

७. शुरू की प्रादेशिक बैठकों में रचनात्मक कार्यकर्ताओं में से श्री काका साहब कालेलकर, श्री श्रीकृष्णदास जाजू, श्री धीरेन्द्र मजूमदार, श्री दोत्रेजी, श्री जी. रामचन्द्रन वगैरा में से किसी को भी सारे काम को उचित मार्ग-दर्शन देने के लिये बुलाना अच्छा होगा। पहले से उनसे तय करके बैठक के बाद उस क्षेत्र में उनका दौरा भी रखा जा सकता है।

जो लोग जमीन देने को तैयार हों, उनकी सूची, पूरी तफसील के साथ, बाकायदा अधिकृत व्यक्तियों के द्वारा बनाई जाय और ये सूचियां श्री विनोबाजी को भेजी जायं। यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया जाय कि श्री विनोबाजी के द्वारा अधिकृत व्यक्ति के सिवा और कोई भी व्यक्ति दान स्वीकार नहीं करेगा। यह मानकर चलना चाहिए कि यथासंभव खुद विनोबाजी ही उस क्षेत्र में भ्रमण करते समय भू-दान स्वीकार करेंगे।

९. किये हुये काम का विवरण हर पखवाड़े 'सर्व सेवासंघ' के दफ्तर को भेजा जाय। विवरण की दो प्रतियां भेजी जायं, जिनमें से एक प्रति इस आफिस के द्वारा श्री विनोबाजी को भेज दी जाय।...

इसमें कोई सन्देह नहीं रहा है कि देश की ज़मीन की समस्या को शान्ति से हल करने का एक क्रांतिकारी रास्ता श्री विनोबाजी ने सबके सामने रक्खा है। इस बात को सबने मान लिया है और सभी श्रेणियों के विद्वान, देश-सेवक और नेता इस विषय की चर्चा कर रहे हैं। चुनाव खत्म होने के बाद जब केन्द्र में और प्रदेशों में केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारें कायम होंगी तब यह विषय ज्यादा जोरों से लोगों के सामने आवेगा।

सुरेशराम भाई

विनोबाजी की पंचवर्षीय योजना

आजकल योजनाओं का जमाना है। जिसको देखिये उसीके पास देश के सुधार और उन्नति की योजना मौजूद है। थोड़े दिन से बड़ी चर्चा चल रही है एक पंचवर्षीय योजना की, जो भारतीय सरकार के प्लानिंग कमीशन ने बनाई है। लेकिन इतनी योजनाएं बनने पर भी देश की हालत में उरद के ऊपर सफेदी-बराबर भी अन्तर नहीं पड़ रहा है। यह कोई अचरज की बात भी नहीं है। इन सब योजनाओं में एक बड़ा दोष यह है कि जो लोग योजना बनाते हैं उनको खुद कोई असली कदम नहीं उठाना पड़ता। हर कोई चाहता है कि उसकी योजना पर दूसरे लोग अमल करें और उसे दूसरे कामों के लिये फुरसत रहे। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली बात हो रही है। लेकिन हमें हर्ष है कि हाल ही में एक ऐसी योजना निकली है जो अन्य योजनाओं से अलग जाति और पाये की है। इस योजना के निर्माता आचार्य विनोबा भावे हैं।

यह योजना क्या है? इसकी न कोई भूमिका है, न विस्तार के साथ इसका कोई लेखा है। योजना संक्षेप में यह है—पांच बरस में हिन्दुस्तान के छोटे-मंझले-बड़े जमींदारों से पांच करोड़ एकड़ जमीन जमा करके बेजमीन वाले खेतिहर मजदूरों में बांट देना। बस इतनी-सी है विनोबाजी की यह पंचवर्षीय योजना। इसको पूरा करने का उनका तरीका क्या है? वह झोली फैलाकर निकल पड़े हैं, भिखारी बनकर नहीं, बल्कि यह कहते हुए—

"बाबा, आपके चार बेटे हैं तो पांचवां मुझे समझिये और मेरा हिस्सा मेरे हवाले कीजिये।"

हमारे देश में खेती के योग्य कुल ज़मीन छत्तीस करोड़ एकड़ के करीब है। इसमें से विनोबाजी

सातवें हिस्से से भी कम, सिर्फ पाच करोड एकड मागते हैं। तरह-तरह के मागने वाले हमारे देश में हुए हैं—किसी को पैसा चाहिए, किसी को अनाज तो किसी को कपडा। लेकिन विनोबाजी तो एकदम नये सम्प्रदाय के मालूम पडते हैं। न खाना लेते है, न कपडा, न पैसा। उन्ह तो जमीन चाहिए जमीन, जिसपर बीज बोने से फसल पैदा होती है। और फिर, वह यह दान अपने लिए नहीं मागते। इधर मागते हैं उधर दूसरो को दे देते हैं।

सवाल उठता है कि आखिर उन्हे यह बात क्या सूझी ? इसलिए कि देश की हालत दिनो-दिन गिरती जा रही है। ललितपुर (झासी) में उन्होने स्वय कहा था—

'आज हमारे देश का सबसे बडा सवाल उन लाखो-करोडो का है जिनको दो जून खाना भी नसीब नहीं होता। यह सवाल है उखडे हुए इन्सानी समाज का। इसके पैदा होने की वजह है हमारे देहाती सगठन या अर्थनीति का बरबाद हो जाना, जिसका आधार ग्रामोद्योग और स्वावलम्बन पर था। हमारे गावों की बढ़ती हुई दरिद्रता एक चिन्ता का विषय है और चार बरस के स्वराज्य के बावजूद इसमें रत्ती-भर फर्क नही पड सका है।"

ऐसी खतरनाक हालत का सामना सबको मिलकर ही करना है। जब सब लोग कुछ त्याग करेंगे या आहुति चढायेंगे तभी कुछ उपाय बन सकता है। इस उपाय को विनोबाजी ने 'यज्ञ नाम दिया है

'पुराने जमाने में जब देश पर सकट आता था तो हमारे पुरखे लोग 'यज्ञ' किया करते थे। इसलिए मै भी 'यज्ञ' करना चाहता हू, और मैंने 'भूदान-यज्ञ' का प्रयोग शुरू कर दिया है। मै लोगो से जमीनें मागता फिरता हू। इस य में हरएक को हिस्सा लेना चाहिए, क्योकि यह सबकी भलाई और उन्नति के लिये है। जिस तरह से यज्ञ में हम सब आहुति चढाते है उसी तरह हमें जमीन का दान देना चाहिए।"

इसलिए विनोबाजी सबसे अपील करते है कि आओ, इस यज्ञ में भाग लो। वह कहते है

"मै हाथ जोडकर आपसे विनती करता हू कि मेरा सकल्प पूरा कीजिये। मै जमीन अपनी खातिर नही माग रहा हू, जिनकी तरफ से मै आया हू वह बोल नही सकते, न अपना मतलब जाहिर कर सकते है। मै चाहता हू कि रामबाण की तरह मेरे शब्द आपके दिल पर असर करे।"

ध्यान रहे कि जमीन दान देना किसी पर अहसान करना नहीं है। जमीन दान देना धर्म है, परम पुनीत कर्त्तव्य है।

विनोबाजी कहते है, "मै यह नही कहूगा कि जमीदारो के पास जो जमीन है वह उन्होंने बेजा तरीको से हासिल की है, लेकिन समय आगया है, जब जमीदार लोग बेजमीन वालो के अधिकार को महसूस करे और उनके सही दावे को स्वीकार करें। उन्ह चाहिए कि बेजमीन वालो का जो हिस्सा है वह खुशी-खुशी दे डालें।"

यही नही, विनोबाजी आगे बढकर कहते है -

"जैसे हवा और पानी सब किसी के होते हैं, ऐसे ही जमीनें भी सबकी है। मै यह नही मानता कि जमीन सिर्फ चन्द आदमियो की ही सम्पत्ति है। परमात्मा ने सबका हिस्सा बराबर दिया है।"

इसलिए इन्साफ का तकाजा है कि हिन्दुस्तान के वे लोग जिनके पास छत्तीस करोड एकड जमीन है, वे उसका एक चौथाई नही तो उसमें ढाई आने भर तो उन्हें दे दें, जिनका हक है।

अब हमें यह देखना है कि इन पाच करोड एकड के मिलने से हमारे देशकी अनाज की हालत पर क्या असर पडेगा। हर कोई जानता है कि हमारे यहा की मिट्टी बहुत उपजाऊ है, लेकिन उसकी फी एकड पैदावार दूसरे देशो से कही कम है। नीचे हम फी एकड धान की काश्त के कुछ आकडे देते हैं—

	देश	काश्त
१	हिन्दुस्तान	९ मन ५ सेर
२	अमरीका	१८ मन २० सेर
३	जापान	२८ मन ३२ सेर
४	मिस्र	३७ मन २० सेर

कहने की आवश्यकता नहीं कि कम पैदावार के जहां और बहुत से कारण हैं, वहां एक यह भी है कि हमारे यहां का खेतिहर ज़मीन का पूरी तरह मालिक नहीं है। वह मानों किराये पर काम करता है। इसलिए कमी जिस चीज की है वह है जोश या उत्साह। अब जब पांच करोड़ एकड़ पर उसके मालिक ही खुद खेती करेंगे तो उसकी वे उसी तरह सेवा करेंगे जैसे मां अपने बच्चे की करती है। इस तरह करके अगर वे फ़ी एकड़ छः मन भी ज्यादा पैदा कर सकें तो कुल मिलाकर तीस करोड़ एकड़ के हिसाब से अनाज अधिक मिल जायेगा, जो एक करोड़ टन से कहीं ज्यादा बैठेगा। अगर इतना न होने पाए तब भी कम-से-कम तीस लाख टन ज्यादा तो पैदा हो ही जायगा और हमें विदेशों से एक छटांक भर के लिये भी हाथ नहीं फैलाना पड़ेगा। इस तरह अनाज के मामले में हिन्दुस्तान स्वावलम्बी हो जायगा।

विनोबाजी की पंचवर्षीय योजना केवल यहीं नहीं रुक जाती। उनकी उड़ान तो बहुत ऊंची है :

"थोड़ी ज़मीन भूदान में यहां और थोड़ी वहां पाने से मेरा काम नहीं चलने वाला है। मेरा लक्ष्य तो सारे समाज की काया पलट देना है।"

साफ ज़ाहिर है कि जिस उलझन में देश फंस गया है, उसका इलाज हकूमत के पास कोई नहीं है। जरूरत है सिर से पैर तक चोला बदलने की। विनोबाजी अपनी इस पंचवर्षीय योजना के ज़रिये मानों ज्योति की तरह अंधेरे को चीरे डाल रहे हैं। सोये हुए मदमस्तों को—पूंजीपतियों, ज़मींदारों, श्रीमानों को, जो सत्ता व शक्ति के नशे में चूर हैं—वह जगाने आये हैं, ताकि समय रहते ही वे चेत जायं।

बापूजी ने तो सन् १९२९ में ही सावधान कर दिया था :

"हमारे पूंजीपतियों और श्रीमानों के सामने बस दो रास्ते हैं—या तो वे अपने पास की फालतू चीजों को खुशी-खुशी छोड़ दें और जिनको वे मिलनी चाहिए उनके पास पहुंचें, या अगर पूंजीपति समय रहते नहीं जागता है तो अज्ञानी लेकिन जागी हुई और भूखी जनता एक ऐसा तूफान खड़ा कर देगी जिसका सामना कोई शक्तिशाली सरकार भी नहीं कर सकेगी, चाहे उसके पास कितनी ही शक्ति क्यों न हो।"

इस तूफान को अगर रोका जा सकता है तो प्रेम और अहिंसा के रास्ते से। अगर किसी दूसरे तरीके से—यानी हिंसा और मारकाट से—उसे रोकने की कोशिश की जायगी तो 'न रहे बांस और न बजे बांसुरी' वाली हालत पैदा होगी। विनोबाजी अपनी पंचवर्षीय योजना में प्रेम और अहिंसा के ज़रिये ही—शान्ति के साथ—संकट का सामना करना चाहते हैं। वह चाहते हैं कि "हमारे समाजी दृष्टिकोण में एक क्रान्ति" पैदा हो जाय। यह क्रान्ति आदर्श के अन्दर करनी है और बिना हो-हुल्लड़ के। विनोबाजी की यह योजना तीन तरह की क्रान्ति लायेगी—आर्थिक क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति और आदर्श की क्रान्ति। इन तीन क्रान्तियों के बाद राजनैतिक क्रान्ति तो आप-से-आप हो जायगी।

विनोबाजी ने कहा है :

"जबतक ईश्वर मेरे दम-में-दम रखेगा, मैं दर-दर जाऊंगा और ज़मीन की भीख मांगूंगा।"

इस तरह अपनी योजना को पूरी करने का बीड़ा विनोबाजी ने उठाया है। अबतक उनको लगभग साठ हजार एकड़ ज़मीन मिल चुकी है; लेकिन पांच करोड़ में साठ हजार की बिसात ही क्या है? पर यह यज्ञ की शुरुआत है और शुरू में हर पौधा छोटा ही होता है। इसलिए घबराने की कोई बात भी नहीं है। यह योजना सफल होगी और जरूर सफल होगी।

हम सबको चाहिए कि इस योजना में, यज्ञ में शरीक हों और अहिंसक क्रान्ति में उनका हाथ बटावें।

रहिमन यहि संसार में सबसों मिलिए धाय।
ना जानै केहि रूप में नारायण मिल जाय॥ —रहीम

बाबा राघवदास

भूमिदान-यज्ञ और महिलायें

पूज्य बापूजी द्वारा सचालित राजनैतिक स्वातन्त्र्य युद्ध में भाग लेकर बहनो ने जिस प्रकार मार्ग-प्रदर्शन किया था, उसी प्रकार आर्थिक और सामाजिक आजादी के लिये जो अनुष्ठान विनोबाजी ने आरम्भ किया है उसम भी वे अपना काम कर रही है ।

विनोबाजी कहते है कि जैसे जब कोई प्यासा हमारे घर आ जाता है तो उसको पानी पिलाना हम अपना कर्त्तव्य समझते है वैसे ही जो किसान बे-जमीन है उनको जमीन देना हमारा फर्ज है । माताए और बहनें मनुष्य जीवन की इस आवश्यकता को बहुत अच्छी तरह समझती है । दरवाजे पर आय प्यासे को पानी और भूखे को अन्न देना वे परम धर्म मानती है । विनोबाजी द्वारा सचालित भूदान-यज्ञ में अनेक बार हमने इसी मातृ स्वभाव के दर्शन किये है । कुछ उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा—नैनीताल जिले में एक वृद्धा बहन रात के साढे ग्यारह बजे भूमिदान देने अपने गाव से आई, सब लोग सोये हुए थे । वह साढे चार बजे प्रात तक बैठी रही और उसके बाद दानपत्र में अपना खेत तथा मकान लिखकर लौटी ।

२—नीलीभीत जिले में गाव की एक बहन छ मील पैदल चलकर थी विनोबाजी के पडाव पर आई और डेढ एकड जमीन दान देकर यज्ञ में भाग लिया ।

३—उझियानी, बदायू जिले में हैदराबाद के पुराने मुख्य दीवान की पुत्री ने अपने पति को रात में श्री विनोबाजी के पास भेजा और चार हजार रुपये मालगुजारी के छ इनामी गाव में उनका जो आधा हिस्सा था वह दान में दिया । इस हिस्से मे इसके अलावा खेती करने योग्य सैकडो एकड पडती जमीन भी है । उन महिला ने यह आश्वासन भी दिया है कि वह अपनी बहन को दूसरा आधा हिस्सा भी भूमिदान-यज्ञ में अर्पित करने को लिखेंगी ।

४—एटा जिला के कासगज कस्बे में एक बहन रात के आठ बजे नब्बे एकड जमीन दान देने के लिये आई । चूकि उसमें कुछ कानूनी सलाह की जरूरत थी इसलिये थोडा विलम्ब हुआ ।

५—कासगज (एटा) में ही एक और गरीब दुखिया बहन आई और उसने अपने हिस्से की बीस एकड भूमि दान में भेंट की ।

६—मैनपुरी में सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रसिद्ध देशभक्त श्री तेजसिहजी चौहान के यशस्वी उत्तराधिकारी ने तीन सौ एकड जमीन का दान दिया ।

७—मैनपुरी जिले में करहल पडाव पर एक बहन ने बीस एकड जमीन दान में दी ।

८—गाजियाबाद (बुलन्दशहर) में एक वकील की स्त्री प्रवचन सुनकर घर गई । उनके पति बीमार थे । उनसे सलाह करके वह फिर लौटी और अपनी कुल भूमि जो साढे बारह एकड थी दान में दे दी । विनोबाजी के यह कहने पर कि आपने तो सब जमीन दान में दे दी है वे बहन बोली कि हमारा गुजारा तो वकालत से हो जायगा । हमारी इच्छा है कि यह जमीन दरिद्रनारायण के काम में आवे ।

९—बरेली में एक शरणार्थी बहन अपने पति के साथ आई, उसके पास जमीन नही थी, पैसे थे । उसने पैसे लेने का आग्रह किया, लेकिन मैंने कहा कि विनोबाजी पैसे नही लेते । यह सुनकर वह अपने पति से परामर्श करने चली गई । थोडी देर बाद आकर बोली, 'हम खरीदकर जमीन देंगे, हमें पैसो की जमीन खरीदवा दीजिए ।' मेरे पास एक जमीन वाले मित्र खडे थे, वह अपनी जमीन दान दे चुके थे, पर उन्होने विश्वास दिलाया कि वे जमीन खरीदवा देंगे । तब उस बहन ने अपने पति से दान-पत्र भरवा दिया ।

झासी तथा बिजनौर आदि जिलो में भी इसी प्रकार कई बहनो ने भूमिदान-यज्ञ में भाग लिया और उत्साह से दान दिया ।

प्रवचन में भी बहनें बहुत बडी सख्या में आती है । एटा जिले के एक पडाव पर गाव में बहनें चिक के भीतर बैठी थी । विनोबाजी ने इसपर दुख प्रकट किया और बताया कि यह तो विदेशी रिवाज है । हमारे देश में जहा

महिलाएं वनवास में साथ जाती थीं, युद्ध में भाग लेती थीं, सैकड़ों मील यात्रा कर तीर्थों के दर्शन करती थी, वहां परदे के लिये स्थान कहां है ? इसपर वह चिक उठा दी गई। बूढ़ी बहनों ने भी अनुभव किया कि यह रिवाज गलत है ।

ये उदाहरण बताते हैं कि भारत की नारी अपने रूप को भूली नहीं हैं और यह भी कि यह ऐतिहासिक यात्रा भूमि-समस्या को सुलझा नहीं तो सरल अवश्य कर देगी ।

भरतसिंह उपाध्याय

भूदान-यज्ञ : एक श्रद्धाञ्जलि

मैं उन सैकड़ों व्यक्तियों में से हूं जिन्होंने पूज्य विनोबाजी की यात्राओं में मानसिक रूप से उनके पगों का अनुसरण किया है। एक पुरुष बहुत जनों के कल्याण के लिये, जिनके लिये जीवन भार है ऐसे सहस्रों के उद्धार के लिये, उत्पन्न हुआ है, ऐसा मुझे श्री विनोवाजी को देखकर लगता है। जिस (भूमि) के लिये भाई-भाई आपस में लड़ते है, पिता और पुत्र भी जिसके लिये कलह करते हुए कचहरियों तक पहुंचते हैं, भारत-युद्ध से लेकर रूसी क्रांति तक की रक्तरंजित क्रांतियां जिस के गर्भ में निहित हे, उनके विषय में वितृष्णा उत्पन्न कर संग्रही मनुष्य से उसे इतने बड़े पैमाने पर लेना और जिनके पास भूमि नहीं है उनमें वितरित करना, यह काम मानवीय इतिहास के लिये नया है। अकिंचन के साथ स्वयं अकिंचन हो जाना और इस प्रकार दुःखी मानवता के साथ तादात्म्य स्थापित करना, यह काम तो इस देश के ज्ञानियों की परम्परा में अनेक बार किया गया है। इससे विराग की कल्याणकारी भावना बढ़ी है और मनुष्यों के अन्तःकरण शुद्ध हुए हैं। अनित्यता-ध्यान के साथ भोग-वृत्ति घटी है और समाज में शोषणकारी वृत्ति का तिरोभाव हुआ है। विनोबाजी स्वयं अकिंचन हैं, परन्तु उनका प्रयोग एक दूसरी प्रक्रिया पर आधारित है। आधुनिक युग की सारी बौद्धिकता और यथार्थता को लिये हुए विनोबाजी एक मध्ययुगीन सन्त हैं, इसीलिये उन्होंने भूमि (या सम्पत्ति) के विषय में विराग उत्पन्न करके ही नहीं छोड़ दिया है, बल्कि उस वैराग्य-भावना का उपयोग मनुष्य-मनुष्य के बीच की आर्थिक विषमता को हटाने के लिये किया है, दूसरे शब्दों में उन्होंने उसे अहिंसक समाज-रचना का आधार बनाना चाहा है। इस प्रयत्न में उन्हें कहां तक सफलता मिलेगी, यह तो अभी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अहिंसक प्रक्रिया में (जैसा मुझे लगता है) क्रांतदर्शी ऋषि पर ही सब कुछ निर्भर नहीं करता, बल्कि ग्रहण करने वाले समाज पर भी बहुत कुछ आधारित रहता है। सामाजिक परिणाम विनोबाजी के स्वप्न के अनुकूल हो, इसके लिये हमें सक्रिय प्रयत्न करना होगा। परन्तु इतना तो हर हालत में निश्चित है कि हिंसक क्रांति में जहां ध्वंस के बाद निर्माण का कार्य शुरू होता है, विनोबाजी की प्रक्रिया में प्रतिक्रियात्मक ध्वंस का कहीं नाम-निशान नहीं है। वहां जीवन का केवल निर्माण ही निर्माण है, चाहे वह जितना अल्प हो ।

विनोबाजी के कार्य का मूल्यांकन करने का हमें अधिकार नहीं। जिस एक पुरुष ने केवल अपने तप से, केवल अपने प्रखर आध्यात्मिक तेज से, अनेकों का वैर शान्त किया है, अनेकों की द्वेषाग्नि बुझाई है और समाज में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया है, वह निश्चय ही विशेष भगवत्-अंश-सम्पन्न महापुरुष हैं। विनोबा के कार्य का महत्त्व जितना युग जनित परिस्थितियों के समाधान के रूप में है उससे अधिक शाश्वत सत्य के रूप में वह लोक-कल्याण का साधक बनेगा। जब-जब मनुष्य छोटे-छोटे भूमि-खंडों के लिये आपस में लड़ेंगे, जब-जब उनकी द्वेषाग्नि भौतिक लाभों के लिये भड़केगी, तब-तब विनोबा के कार्य की याद दिलाई जाने पर वे कुछ क्षण के लिये अवश्य ठिठकेंगे। और कदाचित् घात-प्रतिघातमयी हिंसा से वे विरत होंगे। समाज का जो रूप विनोबा की व्यापक दृष्टि के सामने है उसमें चाहे भौतिक लाभों की उतनी सिद्धि न हो सके; परन्तु भारत की आध्यात्मिक विरासत जो उसकी अपनी विशेषता है, उसी प्रकार के समाज में ही निर्बन्ध विकास प्राप्त कर सकती है, यह सुनिश्चित है ।

परमेश्वरीप्रसाद गुप्त

भूमि-विभाजन का आधार

भूमि के विभाजन के लिए देश भर में हलचल मची हुई है। जमीदारी-प्रथा का अत हो रहा है। समाजवादी भूमि को भूमि हीन मजदूरो में बाटने का आदोलन कर रहे हैं। अखिल भारतीय काग्रेस भी भूमि के उचित विभाजन के लिए वायदा कर चुकी है, जिससे कि भूमि-हीन मजदूर उन बडे जमीदारो की आमदनी में हिस्सा ले सकें जिनके पास बहुत घनी भूमि है और जिससे उनको खूब आमदनी होती है। शाति और अहिंसा की मूर्ति श्री विनोबा भावे देश भर में भ्रमण करके भूमिदान-यज्ञ के लिए भूमि एकत्रित कर रहे है। उन्होंने २१ नवम्बर १९५१ को सध्या समय राजघाट (दिल्ली) पर प्रार्थना के पश्चात् भाषण में बतलाया कि उनका भूमि दान लेने का क्या प्रयोजन है और किस आधार पर वह उसे स्वीकार कर रहे है। उन्होने कहा कि इस समय उनका उद्देश्य देश में एक धर्म-सगत और न्यायप्रद वातावरण पैदा करके जनता का हृदय बदलना है, ताकि भूमि की समस्या को जो हमारे सामने है हल किया जा सके। कोई भी मनुष्य ससार की सब समस्याओ को हल नही कर सकता। वह आशा करते थे कि जिस भाति वह जनता के सामने कुछ विचार रख रहे है, वैसे ही अन्य लोग भी रख सकते है। भूमि के प्रश्न का आर्थिक पहलू तो समाज अपने आप देख सकता है। उन्होने तो अपना काम जनता का हृदय बदलना चुन रखा है ताकि यह प्रश्न शातिपूर्ण ढग से हल हो सके। अब समाज पर जिम्मेदारी आ गई है कि वह इस बात पर विचार करे और निर्णय करे कि भूमि का पुर्नविभाजन किस आधार पर होना चाहिए। यह समस्या बडी पेचीदी है और इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए। उन बातो का निर्णय करने के पहले, जिनके आधार पर भूमि विभाजन होना है यह प्रश्न उठता है कि भूमि-विभाजन क्यो किया जाय? इसका उत्तर सरल है कि भूमि-विभाजन आय के साधनो का यथोचित रूप से वितरण करने के लिए किया जाना चाहिए। इस विषय में तीन बातो का खयाल रखना पडेगा—प्रथम यह कि प्रत्येक व्यक्ति की आय यथोचित होनी चाहिए—अर्थात् वह कम-से-कम इतनी अवश्य हो, जिससे कि एक व्यक्ति स्वय और उसका परिवार एक लाभप्रद और सम्मानित नागरिक बनकर समाज में रह सके। द्वितीय यह कि पुर्नविभाजन निरा काल्पनिक न हो, बल्कि सरलता-पूर्वक कार्य रूप में परिणत किया जा सके और ऐसा हो कि जिससे हमारे उत्पादन को क्षति न पहुचे। तीसरे पुर्नविभाजन शातिमय हो। हमारा ध्येय अधिकाधिक मनुष्यो को धधा देना है जिससे कि वे एक सुखी और समृद्ध जीवन व्यतीत कर सकें। इसे हमें नही भूलना चाहिए।

भूमि के पुर्नविभाजन का हमारी कृषि-समस्याओ से बहुत घनिष्ट सबध है। आज एक ओर तो ऐसे कृषक है, जिनके पास सहस्रो एकड भूमि है और दूसरी ओर ऐसे मजदूर है जिनका निर्वाह फसल के मौको पर मजदूरी मिलने से ही होता है। जिनके पास आवश्यकता से अधिक भूमि है उनको अपना अतिरिक्त भाग उन्हें दे डालना चाहिए, जो भूमि-हीन है या जिनके पास इतनी कम भूमि है कि जिसको जोत बो कर वे इतनी आमदनी नही कर सकते कि उनका निर्वाह हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमको उस कम से-कम आय का निर्धारण करना पडेगा, जिसमें कि एक कुटुम्ब सहूलियत से अपना निर्वाह कर सके और यह भी मालूम करना पडेगा कि उतनी आमदनी के लिए कितनी भूमि की आवश्यकता है।

कृषक-परिवार के लिए पर्याप्त भूमि की मात्रा या एक ऐसी इकाई का निर्णय करने के विचार से हमें मालूम करना चाहिए कि हमारे पास कुल कितनी भूमि है, उसके विभिन्न भागो की जलवायु कैसी है

मिट्टी कैसी है और सिंचाई की क्या सुविधाएं हैं तथा वे अन्य बातें जिनकी मदद से फसल तैयार होती है और पशु भारतवर्ष के अनेक भागों में पाले जाते हैं। हमें उन अन्य बातों का भी ज्ञान होना चाहिए, जिनका भारत के विभिन्न प्रदेशों में फसल और पशुओं के जीवन तथा उन्नति पर प्रभाव पड़ता है। हमें प्रत्येक विभाग में खेती करने की विधि और वहां के मनुष्यों की आवश्यकताओं का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए। भूमि की इकाई की मात्रा के निर्धारण और हमारी पशु-समस्या में परस्पर गहरा संबंध है। यह संबंध इतना महत्वपूर्ण है कि जबतक हम यह निर्णय नहीं कर लें कि हमें पशुओं की आवश्यकता है या नहीं, हम किसी परिणाम पर नहीं पहुंच सकते।

भारतवर्ष में आज भी पशु हमारे जीवन के एक अंग हैं। हमारे देश में अधिकतर लोग शाकाहारी हैं और बगैर दूध, दही, घी इत्यादि के गुज़ारा नहीं कर सकते। पशुओं के गोबर और मूत्र से भूमि उपजाऊ बनती है और पशु ही यातायात, घरेलू कारखानों को चलाने और खेत तथा बगीचों को सींचने का कार्य करते हैं। दुनिया के किसी भी हिस्से में, चाहे वहां के रहने वाले शाकाहारी हों या मांसाहारी, चाहे उनके कारखाने बिजली से चलते हों या पशुओं की सहायता से या किसी और शक्ति से, चाहे उनकी खेती-बाड़ी का या यातायात का काम अन्दरूनी हिस्सों में या बड़ी सड़कों पर पशुओं से होता हो या मशीनों से, बिना पशुओं की सहायता के मनुष्य जीवन का पूरा-पूरा आनंद नहीं उठा सकता। आज दशा यह है कि भारत में उनकी नितांत आवश्यकता होने पर भी उनका पालन-पोषण का व्यय इतना बढ़ गया है कि कोई उनको भली प्रकार पालने और उनकी नसल-वृद्धि करने का साहस नहीं कर सकता। अच्छी दुधारू गायों की कमी के कारण राष्ट्रीय स्वास्थ्य की अवनति हो रही है। बैलों की असमर्थता के कारण खेतों की भूमि भली प्रकार नहीं जोती जा रही है और इस कमी को दूर करने के लिए खेती के कार्य में भी यन्त्रीकरण आरम्भ हो गया है।

वर्तमान परिस्थिति में भारत में एकदम मशीनों द्वारा खेती नहीं हो सकती। अमरीका तक में, जहां कि दुनिया में सबसे अधिक मशीनों से खेती होती है और जहां औसत दर्जे के खेत का क्षेत्रफल १९५ एकड़ है (जो मशीन द्वारा खेती करने के लिए उपयुक्त क्षेत्रफल है) वहां भी खेती के कार्य का पूरा यन्त्रीकरण नहीं हो सकता, अब भी वहां पशु एक बड़ी संख्या में खेती का काम करते हैं। सन् १९४८ में वहां एक करोड़ घोड़े और खच्चर खेती के काम में मदद करते थे। उनकी पशु-समस्या हमारी पशु-समस्या से कहीं अधिक सरल है; क्योंकि वे गाय की अनावश्यक नर-संतान को नहीं पालते और उन्हें मांस के लिए काट डालते हैं। इसके विपरीत भारत में गायें दूध देती हैं और बैल खेती का काम करते हैं। यहां यदि हम दूध उत्पन्न करना चाहते हैं तो हमें दुधारू पशुओं के नर बच्चों के लिए कोई-न-कोई कार्य निकालना ही पड़ेगा।

अगर हम मशीनों द्वारा खेती करने का निर्णय कर भी लें तो वह व्यावहारिक रूप से संभव नहीं। हम ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए ट्रैक्टर और उनसे चलनेवाले हल तथा खेती करने की अन्य मशीनें तथा उनके ज़रूरी हिस्से बना सकें। ये सब चीजें प्राप्त करने के लिए हमें विदेशों पर निर्भर करना पड़ेगा। भारतवर्ष में इनमें चालक शक्ति उत्पन्न करनेवाला तेल (पट्रोल आयल) उत्पन्न नहीं होता। उसके लिए भी हमें आयात पर निर्भर करना पड़ेगा। ऐसी दशा में यदि युद्ध छिड़ जाय या अन्य किसी कारण से यातायात बन्द हो जाय या और इसी प्रकार की कोई अन्य विपरीत स्थिति उत्पन्न हो जाय तो हम कहीं के भी न रहेंगे। गांधीजी सदा से पैदावार के काम को विकेन्द्रित रूप से चलाने के पक्ष में थे। हम भी यही चाहते हैं; परन्तु कृषि-कार्य में यन्त्रीकरण खेती की उत्पत्ति को कुछ हाथों में ही केन्द्रित कर देगा, जो आज जनसाधारण के हाथ में है और विकेन्द्रित रूप में चलता है। इससे यह साफ प्रकट होता है कि सिवाय बैल के हम कोई भी यन्त्र चाहे वह कितना ही सुलभ और शीघ्र चलने वाला हो, खेती के काम में नहीं ला सकते, जब-तक कि हम बैलों को अन्य कहीं काम में लाने का

उपाय न निकाल लें। इसके अलावा हमारे सामने और कोई चारा नहीं है। बैलों के बिना भारतवर्ष में खेती की उपज न हम बढ़ा सकते है और न ही कायम रख सकते है और बिना गाय के राष्ट्र का स्वास्थ्य और कार्य-शक्ति भी कायम नहीं रखी जा सकती।

हमको एक मनुष्य परिवार, उसके एक जोडी बैल तथा अन्य पशुओं के आधार पर ही, जो वह पालता है, भूमि की एक मात्रा या इकाई निश्चित करनी पड़ेगी। भारत में सब जगह एक हल पर दो बैल काम करते हैं। यही बैल खेती बाडी के अन्य काम भी करते हैं। इससे स्पष्ट है कि भूमि की एक इकाई की मात्रा इतनी होनी चाहिए जिसको एक जोडी बैल जोत सके और उसमे कम-से कम इतना अनाज और चारा पैदा किया जा सके जो उस भूमि पर खेती में लगे हुए कुटुम्ब और उसके पशुओं के लिए पर्याप्त हो। निस्संदेह हरएक प्रान्त और जिले में वहा की धरती और बैलों की दशा के अनुसार भूमि की इकाई की मात्रा में अन्तर होगा। यह इकाई यदि किसी समय आवश्यक हो तो सामूहिक या सहकारिता के सिद्धान्त पर काम करने के लिए दोगुनी तीनगुनी या जितनी गुना आवश्यक समझी जाय, बढ़ाई जा सकती है।

अब हमको यह देखना है कि भारत के भिन्न भिन्न भागों के बैलों की शक्ति के अनुसार एक कुटुम्ब के लिए भूमि की इकाई क्या निश्चित की जाय और वह आजकल की स्थिति में किस प्रकार ठीक बैठेगी। आजकल भारतवर्ष में २२ करोड ५० लाख एकड भूमि जोती जाती है और इसपर २६ करोड ६० लाख फसल उगाई जाती हैं। ४ करोड ५० लाख एकड भूमि सिंचाई के योग्य है और कुल जुती हुई भूमि के चौथाई भाग में साल में दो फसलें होती हैं। ९ करोड एकड जोतने योग्य भूमि बगैर जुती पडी है और चरागाह का काम देती है। ८ से ९ करोड एकड तक जमीन जोतने योग्य नहीं है और इतनी ही भूमि पर जंगल है। इसके अतिरिक्त ४ करोड ८० लाख एकड जुती जमीन उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के अभिप्राय से खाली रखी जाती है। हमारे पशुओं की आबादी १७ करोड ७७ लाख है, जिसमें अनुमानतः ५ करोड ६० लाख बैल, ४ करोड ३० लाख गाय, ३ करोड ८० लाख गाय के बच्चे, ? करोड भैंस, ६० लाख भैंसे और एक करोड ४७ लाख भैंस के बच्चे हैं। उपरोक्त ५ करोड ६० लाख बैल सब-के-सब खेती के काम में नहीं आते, क्योंकि इनमें से कुछ काम लेने के योग्य नहीं हैं और कुछ यातायात के काम में, शहरों और कस्बों के छोटे छोटे रुई, तेल तथा अन्य ऐसे कारखानों के कामों में लगे हुए हैं। कुल ५ करोड के लगभग खेती बाडी के काम में आ सकते हैं। समस्त भारतवर्ष की खेती की भूमि को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहला विभाग—जहा की भूमि अधिकांशत कडी है और जहा एक वर्ष में औसतन ६० इंच से अधिक वर्षा होती है। दूसरा—जिसमें भिन्न भिन्न प्रकार की, विशेषत दुमट जाति की भूमि है और लगभग आधी भूमि में सिंचाई के साधन हैं और जहा औसतन एक वर्ष में २५ इंच से ६० इंच तक वर्षा होती है और तीसरा जहा की भूमि दुमट और अधिक रेतीली है और जहा एक वर्ष में औसतन २५ इंच से कम वर्षा होती है। पहले विभाग में लगभग ५ करोड एकड जुती हुई भूमि है, दूसरे में १२ करोड ५० लाख और तीसरे में ५ करोड।

पहले विभाग में बैल छोटे और कमजोर होते हैं। इस कारण उसमें औसतन ६ एकड भूमि एक जोडी बैल की मदद से सम्भाली जा सकती है। दूसरे विभाग के बैल मझले कद के और अधिक बलवान होते हैं इस लिए वहा एक जोडी बैल की मदद से औसतन १० एकड भूमि सम्भाल सकते हैं। तीसरे विभाग के बैल काफी बडे और खूब मजबूत होते हैं, इसलिए वहा एक जोडी बैल की मदद से औसतन १६½ एकड भूमि सम्भाल सकते हैं। इस तरह पहले विभाग में ८० लाख, दूसरे में १ करोड २५ लाख और तीसरे में ३० लाख हलों की आवश्यकता होगी। एक जोडी बैल जितनी भूमि को जोत सकते है, प्रायः उतनी ही भूमि एक कुटुम्ब के पास होगी। प्रत्येक विभाग में जितने जोडी बैल होंगे, उतने ही प्रत्यक्ष रूप से खेती करने वाले कुटुम्ब होंगे।

अब हमें यह विचार करना है कि एक कुटुम्ब को औसतन कितने अनाज और चारे की आवश्यकता होती है। प्रायः एक कुटुम्ब में औसतन ५ प्राणी होते हैं, जिनमें एक मर्द, उसकी स्त्री, दो बच्चे तथा एक कुटुम्ब पर आश्रित प्रौढ़, जो पिता, माता या बहन में से कोई एक होता है। इन सबको ४ प्रौढ़ के समान समझना चाहिए। प्रायः एक कुटुम्ब के पास औसतन एक जोड़ी बैल खेती और यातायात के काम के लिए, एक गाय या भैंस और उसका एक बच्चा तथा एक बैहड़ी या बैहड़ा (उसका बड़ा बच्चा) होता है। यह सब मिलाकर ५ होते हैं जिनको ४ प्रौढ़ पशु के बराबर समझना चाहिए। मनुष्य और पशु के लिए अनाज और चारे की आवश्यकता हरएक विभाग में अलग-अलग होगी और वह उनके कद, वजन तथा वे क्या और कैसा काम करते हैं इस-पर निर्भर करेगी। उनके कद, काम जो वह करते हैं और खाने की आदतों को दृष्टि में रखते हुए उनके लिए अनाज और चारे की मात्रा वैज्ञनिक दृष्टि से निश्चित की गई है।

निम्नलिखित आंकड़े यह प्रकट करते हैं कि प्रति कुटुम्ब के लिए जो भूमि निश्चित की है उसका किस प्रकार उपयोग होगा और वह मनुष्य तथा गाय-बैलों की अखिल भारतीय योजना में ठीक बैठेगी कि नहीं :

	वह हिस्सा जहां वर्ष में औसतन ६० इंच से अधिक वर्षा होती है।	वह हिस्सा जहां वर्ष में औसतन २५ से ६० इंच तक वर्षा होती है और आधी भूमि में सिंचाई के साधन हैं।	वह हिस्सा जहां वर्ष में औसतन २५ इंच से कम वर्षा होती है।
१. एक परिवार या इकाई की भूमि का क्षेत्रफल	६.२५ एकड़	१० एकड़	१६.६६६ एकड़
२. हर विभाग में जोती हुई भूमि	५ करोड़ एकड़	१२॥ करोड़ एकड़	५ करोड़ एकड़
३. कुटुम्बों की संख्या जो खेती-बाड़ी के काम में प्रत्यक्ष रूप में लगे हुए हैं।	८० लाख	१ करोड़ २५ लाख	२० लाख
४. प्रत्यक्ष रूप में खेती के काम में लगे हुए कुटुम्बों के मनुष्यों की संख्या—प्रत्येक कुटुम्ब में ५ मनुष्यों के हिसाब से	४ करोड़	६ करोड़ २५ लाख	१॥ करोड़
५. प्रत्येक विभाग में भैंस, गाय, बैलों की संख्या उनके बच्चों सहित, प्रति कुटुम्ब में ५ पशु के हिसाब से (३) × (५)	४ करोड़	६ करोड़ २५ लाख	१॥ करोड़
६. औसतन कितनी फसलें एक वर्ष में एक भूमि में होती हैं।	१$\frac{३}{४}$	१$\frac{१}{३}$	$\frac{३}{४}$
७. कितनी एकड़ फसल जो संभवतः प्रत्येक विभाग में उगाई जा सकती है—(२) × (६)	६ करोड़ २५ लाख एकड़	१६ करोड़ ६६$\frac{२}{३}$ लाख एकड़	३ करोड़ ७५ लाख एकड़
८. कुल कितनी फसल तीनों विभागों में उगाई जा सकती है।	.. .. ..	२६ करोड़ ६६ लाख ६६ हज़ार एकड़	

अनाज (फूडग्रेन्स)

९. एक कुटुम्ब के लिए अनाज की आवश्यकता प्रति प्रौढ़ औसतन २१ औंस प्रतिदिन के हिसाब से।	२० मन	२२॥ मन	२४ मन
१०. प्रति एकड मुख्य-मुख्य अनाजो की औसत पैदावार।	८३/४ मन	८॥ मन	६ मन
११. कितने एकड फसल एक परिवार के लिए चाहिए (९) ÷ (१०)	२.२८५	२.६४७	४.०००
१२. कितने एकड फसल जो कि प्रत्यक्ष रूप से खेतो में लगे हुए परिवारो के कुल सदस्यो के लिए चाहिए (३) × (११)	१,८२,८०,०००	३,३०,८७,५००	१,२०,००,०००
१३. उपरोक्त — तीनों विभागो का जोड।	.. .. ..	६,३३,६७,५००	

चारा (फॉडर)

१४. एक प्रौढ गाय-बैल के लिए कितना सूखा चारा ११ महीने में चाहिए (एक महीना चराई का छोडकर)	४५.३७५ मन	५३.६२५ मन	६६ मन
१५. —उपरोक्त— ४ प्रौढ़ गाय-बैलो के लिए (१४) × (४)	१८१.५ मन	२१४.५ मन	२६४ मन
१६. चारा जो भूसा इत्यादि के रूप में एक कुटुम्ब के लिए उत्पादित अनाज से निकलता है (यह उपरोक्त में से कम किया जा सकता है)	४० मन	४५ मन	४८ मन
१७ एक कुटुम्ब के पशुओ के वास्ते सूखे चारे की आवश्यकता (१५)-(१६)	१४१.५ मन	१६९.५ मन	२१६ मन
१८. प्रति एकड चारे की औसत पैदावार (सूखे चारे के रूप में)	४४ मन	६० मन	३५ मन
१९ (१७) में दिया हुआ चारा पैदा करने के लिए कितने एकड चारे की फसल बोनी चाहिए (१७) ÷ (१८)	३.२१६	२.८२५	६.१७१
२०. —उपरोक्त— तीनो विभागो के गाय-बैलो के लिए (१६) × (३)	२,५७,२८,०००	३,५३,१२,५००	१,८५,१३,०००
२१. —उपरोक्त— तीनों विभागो का जोड	.. .. ..	७,९५,५३,५००	

उपरोक्त आंकड़ों के अनुसार ११ करोड़ ७५ लाख मनुष्यों और इतने ही पशुओं के खाने के लिए पर्याप्त अनाज और चारे का प्रबन्ध हो गया। भारतवर्ष में कुल जन-संख्या लगभग ३४ करोड़ ५० लाख और पशु-संख्या १७ करोड़ ७७ लाख समझी जाय तो हमें बाकी २२ करोड़ ७५ लाख मनुष्यों और ६ करोड़ २० लाख पशुओं का प्रबन्ध करना शेष है। हमारे पास अभी तक ऊपर लिखे हुए कुटुम्बों की बोई हुई फसलों में से १३३.७४५ एकड़ फसल शेष है। इसमें से अन्य ऐसी चीजें जैसे चीनी, तम्बाकू, रुई, तिलहन इत्यादि की उन मनुष्यों की आवश्यकता को पूरा करने के बाद जो प्रत्यक्ष रूप से खेती के काम में लगे हैं, जो बाकी बचेगी उसको उन मनुष्यों और उनके पशुओं के काम में लाया जा सकेगा जो प्रत्यक्ष रूप से खेती का कार्य नहीं करते और जो बड़े कस्बों और शहरों में अन्य व्यापार, उद्योग-धंधे तथा नौकरी का कार्य करते हैं। परन्तु वह बकाया फसलें इतनी नहीं होंगी कि जो इन सबकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हों। इसलिए जबतक हम खेती की प्रति एकड़ उपज न बढ़ा सकें तबतक हमारे सामने दूसरा चारा नहीं दिखाई देता, सिवाय इसके कि खेती योग्य उस भूमि को तोड़कर खेती की जाय, जो इस समय बेकार पड़ी है।

इस सुझाव के अनुसार जितने मनुष्य खेती के कार्य में लगाये जा सकते हैं उससे अधिक के लिए खेती के कार्य में गुंजायश नहीं है। बचे हुओं को तो घरेलू दस्तकारी, व्यापार, यातायात के कार्य, नौकरी या अन्य धन्धों में ही लगाना पड़ेगा। उपरोक्त इकाई किसी प्रकार खेती की उत्पत्ति में बाधक नहीं होती, बल्कि उत्पत्ति की वृद्धि में सहायक होती है; क्योंकि इसके अनुसार काम करने वाले किसान को काम करने का पूरा अवसर मिलता है तथा पूरा उत्साह होता है। उसको अपने परिवार और अपने उन पशुओं के खाने-पीने के लिए भरपूर सामग्री मिल जाती है जो मुख्य काम करनेवाले हैं। खेती के कार्य में अधिक मनुष्यों को रोज़गार देने की झोंक में यदि खेती की विभिन्न विभागों की जमीन की निश्चित काई को घटा दिया गया तो खती की उपज की कीमत बढ़ जायेगी और खेती का धन्धा लाभप्रद न रह सकेगा। इसलिए खती की इकाई को और घटाना उचित न होगा।

यदि बेरोज़गार परिवारों को और कहीं भी यथोचित रोज़गार में नहीं लगाया जा सकता तो उनको कुछ हद तक ऐसी खेती के कार्य में लगाया जा सकता है जहां बैल या ट्रैक्टर की बजाय मनुष्य द्वारा ही ज़मीन को फावड़े से खोदकर फसल बोने के लिये तैयार किया जा सके। यह वहीं सम्भव हो सकता है जहां पर्याप्त मात्रा में पानी तथा खाद मिलता हो और जहां भूमि इतनी उपजाऊ तथा अन्य स्थिति इतनी अनुकूल हो कि खूब जोरों से खेती हो सके। ऐसी हालत में खेती की भूमि की इकाई एक परिवार के लिए २½ एकड़ रखी जा सकती है। यहां औसतन दो फसल प्रतिवर्ष तैयार की जा सकती हैं और इस प्रकार एक परिवार ५ एकड़ फसल तैयार कर सकेगा जिससे परिवार को पर्याप्त मात्रा में अनाज तथा उसकी गाय-भैंसों को काफी चारा प्राप्त हो जायगा। इसके अलावा परिवार की तम्बाकू, गुड़, तेल, सब्जी की तथा अन्य आवश्यकताएँ भी इससे पूरी हो जायेंगी।

इसमें सन्देह है कि एक कुटुम्ब, चाहे वह बैल-शक्ति का उपयोग हो या मनुष्य-शक्ति का, खेती-बाड़ी के काम को बिना बाहरी मज़दूरों की सहायता के सरलता से समय पर कर सकेगा। किसी हद तक उन्हें बाहरी मज़दूरों की सहायता लेनी ही पड़ेगी, क्योंकि भारतवर्ष में खेती का कार्य बारहों महीना यकसां नहीं चलता। वर्ष के किसी भाग में बहुत अधिक कार्य होता है और किसी में कुछ भी नहीं। भारतवर्ष में ऋतुएं, वर्षा और तापक्रम आदि प्राकृतिक स्थितियां दुनिया के अन्य प्रसिद्ध देशों से भिन्न हैं। वहां वर्षा करीब-करीब हर ऋतु में होती है और अन्य प्राकृतिक स्थितियां तथा कुछ कृत्रिम सुविधाएं ऐसी हैं कि बारहों महीना खेती का कार्य कुछ-न-कुछ बराबर चलता ही रहता है।

इस समय भारतीय सरकार और भिन्न भिन्न समुदायो के नेता सभी वर्तमान भूमि-व्यवस्था को समाप्त करने तथा उसके स्थान पर एक नई न्यायसंगत व्यवस्था के निर्माण के पक्ष में हैं। इसलिए एक कृषक परिवार के लिए खेती की भूमि की इकाई निश्चित करने के कार्य को स्थगित नही किया जा सकता। देश का सबसे बड़ा उद्योग कृषि और पशुपालन ही रहेगा। अन्य वस्तुओ के उत्पादन-कार्य को हम इस सीमा तक नही बढ़ा सकते कि हमें विदेशी निर्यात पर निर्भर रहना और दूसरे देशों से अनुचित लाभ उठाना पड़े।

हम शान्ति-पूर्वक रहना चाहते हैं और दूसरे देशों को भी शांति पूर्वक और स्वतंत्र रहने देना चाहते है। खेती-बाड़ी के कार्य के लिए अधिक-से-अधिक भूमि-रहित मजदूरों को रोजगार देने की दृष्टि से हमें खेती की भूमि की इकाई तुरत निश्चित करनी होगी और हम जितना जल्दी इसका निश्चय करेंगे उतना ही अच्छा होगा।

काका कालेलकर

लोकोत्तर विभूति का हृदय-दर्शन

महात्मा गांधी साहित्योपासक नहीं थे। वे जीवन-वीर थे। या तो सेवाकार्य में, या लोकहित के लिए लड़ने में उन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया। उन्होंने गुजराती और अंग्रेजी साहित्य काफी पढ़ा था। संस्कृत साहित्य का आस्वाद अनुवादों द्वारा लिया था। तुलसीदास और कबीर आदि हिन्दी सन्तों की वाणी से वे परिचित थे। जहां आवश्यकता पड़ी वहां पर उन्होंने तमिल, उर्दू, मराठी और बंगला भाषा का अभ्यास किया। तो भी हम कह सकते हैं कि गांधीजी ने साहित्य से उतना नही पाया, जितना सीधा जीवन से पाया।

नतीजा यह हुआ कि उनके साहित्य में साहित्यिक अलंकार और आवश्यक गौरव बहुत कम हैं। सत्य की उपासना करते एक अद्भुत कला उनमें आ गई थी, जिसके कारण उनके जीवन में और उनके साहित्य में ऋजुता, तेज और मार्दव तीनों गुणों का सुन्दर मिश्रण था। गांधीजी का तमाम साहित्य सीधा है, पारमार्थिक हैं, हृदय तक पहुंचनेवाला है। शुरू से लेकर आखिर तक वे आत्मनिष्ठ रहे। वज्र के जैसी मजबूत आत्मनिष्ठा पर आरूढ़ होकर उन्होंने जो कुछ भी साहित्य निर्माण किया, सारा-का-सारा जीवननिष्ठ साहित्य है। सबकुछ लोकहित की दृष्टि से लिखा गया है। अनुभव और मनन के बल पर लिखा हुआ होने से उसे हम ठोस साहित्य कह सकते हैं। इसकी शक्ति अद्भुत है।

कई गुमराह युवक और युवतियों ने स्वीकार किया है कि गांधीजी का साहित्य पढ़ने से उन्हें सच्चा रास्ता मिला। इतना ही नही, किन्तु दृढ़ता के साथ उसी रास्ते से जाने का बल भी मिला।

शुरू में गांधीजी अक्सर गुजराती में और अंग्रेजी में लिखते थे। बाद में जब उनका कार्यक्षेत्र भारतव्यापी हुआ, तब वे अपनी विशिष्ट शैली की हिन्दी में बोलने लगे और लिखने भी लगे। उनकी वाणी से निकली हुई और उनकी कलम से लिखी हुई हिन्दी का संग्रह अगर किया जाय तो वह राष्ट्रभाषा के लिए एक जिन्दी शैली प्रतीत होगी। उनकी शैली का अध्ययन करना लोकसेवा की दृष्टि में महत्व का है।

खास करके अपनी जिन्दगी के आखिरी दस महीनों में शाम की प्रार्थना के बाद उन्होंने जो प्रवचन किये उनमें उन्होंने अनेक राष्ट्रहित के विषयों को लेकर अपना हृदय जनता के सामने खोल दिया है।

गान्धीजी ने अपने अनुभव, अपने विचार या जीवन सिद्धान्त असल में किसी भी भाषा में लिखे हों, उनका अनुवाद दुनिया की सब भाषाओं में होने वाला है, इसमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है।

ऐसे भी दिन आयेंगे कि जब दुनिया के लोग गांधीजी

के विचारों की गंगोत्री तक पहुँचने के लिए गुजराती, हिन्दुस्तानी और संस्कृत सीखेंगे और जिस संस्कृति में गांधीजी का उदय हुआ उस संस्कृति को भी अच्छी तरह समझने की कोशिश करेंगे। गांधीजी के देश के और उन्हीं के जमाने के हम लोगों का कर्त्तव्य कहीं अधिक है।

गांधीजी का समस्त साहित्य प्रामाणिक रूप से हिन्दी में प्रकट होना चाहिए और वह भी ऐसी हिन्दी में कि जो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और सौराष्ट्र से लेकर बंगाल, आसाम तक सब लोग आसानी से समझ सकें।

ऐसा एक प्रयत्न दिल्ली के 'सस्ता साहित्य मण्डल' की ओर से शुरू हुआ है और उसकी आठ सुन्दर जिल्दें हमारे सामने हैं।* यह 'मण्डल' स्वर्गस्थ जमनालालजी की प्रेरणा से और अनेक हिन्दी-सेवकों के परिश्रम से अपना कार्य कर रहा है। महात्मा गांधी का आशीर्वाद इसे प्राप्त है। गांधी-साहित्य के प्रकाशन को इस 'मण्डल' ने अपना प्रधान कार्य बनाया है।

जो आठ जिल्दें हमारे सामने हैं, उनमें सारा गांधी-साहित्य नहीं आता। बाकी रहा साहित्य कम महत्व का नहीं है। किन्तु जितना मसाला हमारे सामने है, वह गांधीजी के जीवन का, उनके मौलिक विचारों का, उनके समस्त जीवन-कार्य का और अन्तिम बलिदान का रहस्य समझने के लिए काफी है। इसमें जरूरी विविधता भी है।

गांधीजी की आत्मकथा, जिसे वे 'सत्य के प्रयोग' कहते हैं और उनका 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' उनके तमाम साहित्य का श्रीगणेश हैं। ये दोनों ग्रन्थ विश्वसाहित्य में अपना स्थान ले चुके हैं। इनमें गांधीजी की जीवन-दृष्टि और उसका क्रम-विकास पाया जाता है।

*प्रार्थना-प्रवचन (भाग १) ३), प्रार्थना-प्रवचन (भाग २) २॥), ३. गीता-माता ४), ४. पन्द्रह अगस्त के बाद २), ५. धर्मनीति २), ६. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास ४॥), ७. मेरे समकालीन ५), ८. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा ५)।

याद रहे कि दक्षिण अफ्रीका की अपनी वीरोचित साधना पूरी करने के बाद हिन्दुस्तान में आकर विविध प्रवृत्तियों के बीच गांधीजी ने केवल अपनी स्मृति के आधार पर ये दोनों ग्रन्थ लिखे हैं। इस बात की ओर हम इसलिए नहीं ध्यान दिला रहे हैं कि गांधीजी की अद्‌भुत स्मरण-शक्ति की लोग कदर करें, किन्तु इसलिए कि वर्षों के बाद, काल की चलनी से जो कुछ भी गिर गया, उसे छोड़कर सत्याग्रही, आत्मार्थी और सत्य के प्रयोगी व्यक्ति के मन में जो बातें महत्व की महसूस हुईं, वही उनमें दी गई हैं। जो बातें इन दो ग्रन्थों में नहीं आईं, वे सब-की-सब तुच्छ थीं; ऐसा कहने का आशय नहीं है। लेकिन जितनी बातें यहां आई हैं, वे गांधीजी के जीवन-प्रयोग को स्पष्ट करने के लिए काफी हैं।

जब मैंने एक दफे गांधीजी से कहा कि "आपकी आत्मकथा में फलानी-फलानी बात नहीं आई है", तब उन्होंने कहा कि "मुझे उसका खयाल है। और कई चीजें तो मैंने जान बूझकर छोड़ दी हैं। उन्हें देने का कर्त्तव्य तुम्हारे जैसों का है।"

गांधीजी की आत्मकथा के जैसा पारदर्शक ग्रन्थ दुनिया में शायद ही दूसरा होगा। रूसो या सेंट आगस्टीन जैसे लेखकों ने अपने कनफेशन्स लिखे हैं, किन्तु उनमें सत्यनिष्ठा के साथ साहित्य का रस इतना कुछ मिला दिया है कि उसे पढ़ते आत्मीयता पैदा नहीं होती। गांधीजी ने कनफेशन्स का कहीं भी प्रयत्न नहीं किया है। उनकी सत्यनिष्ठा की धारा शुरू से आखिर तक एकसी बहती है।

दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में वे बहुत-कुछ दे सकते थे। ब्रिटिश साम्राज्य में जिनकी तनिक भी प्रतिष्ठा नहीं थी और जिनको अफ्रीका के न काले लोग चाहते थे, न गोरे, और जिनमें धर्मभेद, भाषाभेद और प्रान्तभेद के कारण एकता भी नहीं थी, ऐसे लोगों की सदारत करके आठ-नौ साल तक असमान युद्ध चलाकर विजय पाना, यह एक रोमांचक कथा है। गांधीजी की किताब में उन्होंने मतलब की सब बातें दी हैं; किन्तु अपने जीवन की अद्‌भुतता बिलकुल छिपा दी

है। दुख की बात है कि उस सत्याग्रह का इतिहास लिखने वाला उनके काल का कोई आदमी नही निकला। सिर्फ बालक प्रभुदास गाधी ने 'जीवननु परोढ' नामक गुजराती किताब में उस समय का आश्रमी वातावरण विस्तार से दिया है। सच तो यह है कि जनरल स्मट्स को या वहा के किसी दूसरे अग्रेज को अपनी दृष्टि से इस सत्याग्रह का इतिहास लिखना चाहिए था।

उन दिनो जिस किताब का गाधीजी के मन पर और जीवन पर असाधारण असर पडा और जिसका गाधीजी ने गुजराती में सक्षिप्त अनुवाद भी किया, वह 'सर्वोदय' और-और चीजो के साथ अलग-अलग जिल्दो में आता है। रस्किन का 'सर्वोदय' और साल्टर का 'नीतिधर्म' ये दोनो एकत्र आये है। इन दोनो के साथ प्रकाशको ने 'मगल प्रभात' और 'आश्रमवासियो से', ये गाधीजी के जेल से भेजे हुए दो पत्र-सग्रह दिये है। बेहतर तो यह होता कि 'नीतिधर्म' और 'सर्वोदय' के साथ थॉरो का 'कानून के सविनय भग का कर्तव्य' भी दिया जाता और ड्रमड का 'श्रेष्ठ ज्ञान' (Greatest thing ever known)। यह छोटी-सी किताब सेंट पॉल के 'प्रेमसूक्त' पर लिखा हुआ सुन्दर भाष्य है, जिसे गाधीजी बार-बार पढते थे।

गाधीजी के जीवन पर जिन ग्रन्थो का सबसे ज्यादा असर पडा, उनमें गीता का स्थान असाधारण है। गाधीजी ने गीता को अपनी 'आध्यात्मिक माता' कहा है। इस दैवी ग्रन्थ के बारे में गाधीजी ने जो कुछ भी कहा या लिखा है, उसका सग्रह इस साहित्य-श्रेणी में 'अनासक्तियोग' के साथ दिया है। हम कह सकते हैं कि यह सग्रह अच्छा बना है।

इसके साथ और भी एक सग्रह देना चाहिए जिसके अन्दर ईसामसीह के 'गिरि प्रवचन' आदि गाधीजी की प्रिय चीजें आ जाय।

विलायत में और दक्षिण अफ्रीका में गाधीजी को ईसाइयो के बीच रहना था और काम करना था। उन लोगों का धर्म-ग्रन्थ बाइबिल है और उसका नवनीत है ईसामसीह का 'गिरि-प्रवचन'। सर्व-धर्म-समभाव का पालन करने वाले गाधीजी ने इस 'गिरि-प्रवचन' को अपनाया। इतना ही नही, किन्तु बाइबिल में दिये हुए सत पॉल के पत्रो में से उसका 'प्रेमसूक्त' भी अपनाया। ईसा का 'गिरि-प्रवचन', पॉल का 'प्रेमसूक्त', बिनियन की 'भक्तराज की यात्रा' (Pilgrims Progress), टालस्टाय का (Kingdom of God is within you) और (Christian Teachings) और 'प्रेमल ज्योति' जैसे ईसाइयो के भजन इन सब चीजो का एक सग्रह किया जाय तो अच्छा होगा।

श्रीमद्राजचन्द्र के 'राजबोध' का भी शायद इसी में अन्तर्भाव करना होगा।

इसके बाद आती हैं तीन जिल्दें, जिनमें दो हैं—प्रार्थना-प्रवचन की, जिनमें गाधीजी ने अपने आखिरी दस महीनो में देश हित के अनेक विषयो पर और लोगो के सवाल लेकर अपना हृदय व्यक्त किया है। इन दो बडी जिल्दो में गाधीजी के हृदय की वेदना पाई जाती है और साथ-साथ उनकी मानवता और चरम-कोटि की श्रद्धा भी। इनमें यह भी पाया जाता है कि स्वराज की प्राप्ति तक राष्ट्र उनके साथ था। अब वे अपने को कई बातो में अकेले पाते हैं और राष्ट्र का नाश न हो, इसलिए लोगो को जगाना चाहते हैं।

'प्रार्थना-प्रवचन' समझने में बडी मदद होती है उस लेख-सग्रह से जो इस साहित्य-श्रेणी में 'पन्द्रह अगस्त के बाद' के नाम से आया हुआ है।

प्रकाशक ने 'मगल प्रभात' और 'आश्रमवासियो से' ये दो चीजें 'धर्मनीति' के साथ दी है। दोनो एक-सी नही है। 'मगल-प्रभात' आश्रमव्रतों का भाष्य है, दूसरे पत्रो में सदुपदेश है सही, लेकिन वह प्रकीर्ण है।

गाधीजी का 'हिन्द स्वराज्य', जिसमें उनकी सारी क्रीड आजाती है, 'मगलप्रभात' जिसमें उनका समाज-धर्म भी व्यक्त होता है और 'रचनात्मक कार्यक्रम' जिसमें राष्ट्रोद्धार की सब बातें आती है, इन सबको एक जिल्द में दे देना अच्छा होगा, साथ ही उनके राष्ट्रीय शिक्षा के सिद्धान्त और काग्रेस के लिये उनका दिया हुआ अन्तिम आदेश।

अब रही एक जिल्द, जिसका नाम दिया है 'मेरे समकालीन'। ऐसा नाम देने का अधिकार गांधीजी का ही था। प्रकाशक इसे नाम दे सकते थे, 'समकालीनों के बारे में'। इस जिल्द का मसाला सब अच्छा है। लेकिन इसका सम्पादन ढीला-ढाला हुआ है। समकालीनों के नाम सूची में वर्णानुक्रम से दिये जा सकते हैं, लेकिन मूल ग्रन्थ में सारी रचना दूसरे ही ढंग से होनी चाहिए थी।

'सस्ता साहित्य मण्डल' की भाषा के बारे में कहा जा सकता है कि मामूली तौर पर वह आसान, आमफहम और शुद्ध होती है। लेकिन अनुवाद में कभी-कभी गफलत रह जाती है। अखबार वालों को सब काम जल्दबाजी से करना पड़ता है। वही लेख जब ग्रन्थ के रूप में प्रमाणभूत आवृत्ति के तौर पर दिये जाते हैं तब सारा अनुवाद किसी जानकार व्यक्ति से फिर से तपासना अच्छा। वैसे तो 'सस्ता साहित्य मंडल' का अनुवाद अच्छा होता है, किन्तु इतने पर से सन्तोष नहीं मानना चाहिए। हमारी देशी-विदेशी भाषाओं के अनुवादकों को चाहिए कि वे अनुवाद-कला को राष्ट्र की और संस्कृति की एक उच्च सेवा समझ लें। इसमें जितनी भी मेहनत करनी पड़े, उठानी चाहिए।

'गांधी-साहित्य' व्यवस्थित रूप में जनता के सामने रखने का भार 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने उठाया है, इसके लिए वह धन्यवाद का अधिकारी है। हम आशा करते हैं कि 'मण्डल' यह काम यथासमय पूरा करेगा। महात्माजी तो चाहते थे कि लोग उनके लेखों को और भाषणों को सिर्फ सुनें, पढ़ें नहीं, किन्तु जो-जो बातें जंच जायं उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश करें।

जो लोग गांधीजी का साहित्य पढ़ते हैं, वे इस युग की एक लोकोत्तर विभूति के हृदय का दर्शन करते हैं। यह विभूति जीवन में कर्मवीर और हृदय में महान् आत्मा थी। उनकी वाणी जितनी अपने जमाने के लिए और अपने देश के लोगों के लिए थी, उतनी ही समस्त मानव-जाति के लिए और सदा के लिए बोधप्रद है। पाठकों को चाहिए कि वे इस स्वाति नक्षत्र के महापर्व पर अपने हृदय को मुक्त शुक्ति के जैसा बनावें और गांधीजी के सन्देश को ग्रहण करें।

—'आल इण्डिया रेडियो' के सौजन्य से

सुशील

'वे जिन्दा साहित्य थे'

स्थूलता की ओर झुकता हुआ विशाल राजस्थानी शरीर, प्रेमल मुस्कान से मंडित अनगढ़-सा चेहरा, दृढ़ता और विश्वास से भरे नयन, प्रशस्त ललाट जिसे ऊंची बाड़ की गांधी टोपी और भी प्रशस्त करती थी; यह था सेठ जमनालाल बजाज के पार्थिव रूप का प्रभाव जो पहली बार देखने पर मेरे मन पर पड़ा। उन्होंने लम्बा कुरता और अपेक्षाकृत, ऊंची धोती पहनी थी। वे कोलाहल से पूर्ण हरिजन कालोनी में चुपचाप एक ओर टहल रहे थे। शायद कुछ सोच रहे थे। लेकिन इसके कुछ क्षण बाद वे इस प्रकार खुल कर हंसे कि आज भी उसकी गूंज मेरे कानों में गूंजने लगती है।

यह लगभग सन् १९३४-३५ के आसपास की बात होगी। गांधीजी की सान्ध्य-कालीन प्रार्थना के बाद में बालोचित उत्सुकता से नेतागणों के दर्शन की टोह में भटक रहा था। इसी प्रयत्न में मैं सेठजी की ओर जा निकला और उसके कुछ क्षण बाद ही दिल्ली की बहन सत्यवती भी उधर आ गई। उन दिनों समाजवाद की बड़ी चर्चा थी। उसी को लेकर बहन सत्यवती किसी युवक से चर्चा कर रही थीं। मैं भूलता नहीं तो उस चर्चा में आज के एक प्रसिद्ध समाजवादी नेता का नाम आया। उसे सुनकर सेठजी सहसा बहनजी की ओर मुड़े और बोले—"अरे वह छोकरा! वह तो मेरे पास था ...

'जी जी-हां।'

'मैंने ही उसे बम्बई भेजा था। वह समाजवादी बना है।'

और यह कहते-कहते वे खुल कर हंसे। इतने खुल कर कि बहनजी अप्रतिभ हो उठीं। वे बोले—'समाजवादी मैं हूं।'

बातें बहुत हुई थीं। आज मुझे उनका स्मरण नहीं पर उनका भाव यही था विशेषकर उनकी उस मुक्त हंसी का।

लेकिन उनकी उस अटपटी वेशभूषा, सशक्त हंसी और समाजवादी होने के दावे का उनके सेठ होने से कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ा। इस संसार में ऐसे लोगों का प्रभाव नहीं है जो चांदी का चम्मच मुंह में लेकर पैदा होते हैं और स्वेच्छा से गरीबी का वरण करते है, लेकिन ऐसे लोग निस्सन्देह कम हैं जो गरीब-घर में पैदा होते हैं और जब भाग्य-लक्ष्मी उनका वरण करती है तो अपने पौरुष की रक्षा कर पाते है। सेठजी उन्हीं कम लोगों में से थे। वे मुंह में चांदी का चम्मच लेकर नहीं जन्मे थे। वे निर्धन पर स्वाभिमानी माता पिता के पुत्र थे। इसलिये उनके रक्त में स्वाभिमान था, चांदी का अहंकार नहीं। यद्यपि भाग्य-लक्ष्मी की कृपा से वे सेठ बच्छराज के धनी परिवार में गोद गये परन्तु इसे उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया और मानो इसीका प्रायश्चित करने के लिये उन्होंने स्वेच्छा से दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि महात्मा गांधी को अपना पिता वरण किया। यही नहीं जब वे कुल सत्रह वर्ष के थे तब उनके धनी दादा गहने न पहनने पर एक दिन उनसे नाराज हो गये, कुछ सख्त सुस्त कह दिया। स्वाभिमानी जमनालाल इसको नहीं सह सके। उन्होंने तभी त्याग-पत्र लिख दिया। एक संघर्षशील युवक के मनोभावों का यह एक अपूर्व चित्र है—

'आज मिती ताईं तो हमारे बारे में अथवा जो हमारे ताईं खर्च हुयो सो हुयो बाकी आज दिनसूं आप कनसूं एक छदाम कोडी हमा लेधागा नहीं अथवा मगवागा नहीं, और आपके मन मां कोई रीत का विचार करजो मत ना। आपकी तरफ हमारी कोई रीत का हक आज दिन सो रह्यो छे नहीं।'

रक्त का यह तेज विरलों के ही भाग्य में बदा होता है। जीवन भर यह तेज उनका कवच बना रहा, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वे मोहाविष्ट नहीं होते थे। उनमें अनेक कमजोरियां थीं पर उनके साथ उनमें एक और बात भी थी, वे अपनी कमजोरियों को जानते थे—"मैं अपने दोषों का खयाल करता हूं तो शर्म, लज्जा व दुःख से मन भर आता है।" इसी ज्ञान के कारण वे उन कमजोरियों की अकृपा से बच जाते थे। बापू को एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"अहिंसा व सत्य का आचरण कम होता दिखाई दे रहा है। डर है कि कहीं उसपर श्रद्धा भी कम न हो जावे। इस कारण असहनशीलता भी बढ़ रही है। क्रोध की मात्रा भी बढ़नी जा रही है। काम-वासना भी बढ़ती मालूम हो रही है।"

जागरूकता और आत्ममन्थन मनुष्य के आचरण के प्रहरी हैं फिर उन्हें तो निर्धनों के धनी महात्मा गान्धी जैसे मार्ग-दर्शक प्राप्त थे। जब-जब वे फिसलन की ओर बढ़ते बापू उन्हें चेता देते थे। कपड़े की मिल खरीदने का विचार करना और फिर त्याग देना एक ऐसी ही घटना है।

सेठजी अक्खड़ भी कम नहीं थे। उनकी स्पष्टवादिता रूखेपन तक पहुंच गई थी। वे बापूजी से भी उलझ पड़ते थे। एक बार किसी विद्यालय के कार्यकर्ता पैसे के अभाव से तंग आकर उनके पास पहुंचे। उन्होंने विचार करने के बाद निश्चय करने को कहा। कार्यकर्ताओं को शायद तुरन्त सहायता की आवश्यकता थी। वे बापू के पास गये। बापू को उनकी बात जंची और उन्होंने सवेरे घूमने के समय सेठजी से चर्चा की। छूटते ही सेठजी उबल पड़े—"आपको लोग समझा देते हैं और आप झट से उनकी बात मान लेते हैं। वे लोग पहले मुझसे मिले थे। मैंने कहा था कि ठहर कर कुछ कर सकूंगा। उन्हें आपको सताने की क्या जरूरत थी?"

बापू—(उद्वेग को दबाते हुये) "हां, सो तो ठीक है, लेकिन आपके निश्चय करने तक तो उनका काम चौपट

हो जायगा। हमें कार्यकर्त्ताओं की सुविधा और कठिनाइयों का ज्यादा खयाल रखना चाहिये, बनिस्वत अपनी जांच-पड़ताल के। कार्यकर्त्ता यदि ईमानदार हैं तो फिर हर समय ज्यादा सख्ती से नुकसान होता है।"

सेठजी (झल्लाकर)—"लेकिन मैं अपना तरीका नहीं बदल सकता। आपकी बात दूसरी है। आपके जितनी शक्ति मुझमें नहीं। मैं आपकी चाल चलने लगूं तो 'कौवा चले हंस की चाल' वाली गत होगी।"

इस अक्खड़ता के पीछे जैसा कि स्पष्ट है उनकी व्यवहारिकता का अतिरेक है, अहम् का विस्फोट नहीं। वे शरीर से ठोस थे; उनकी व्यावहारिकता के आधार भी उतने ही ठोस थे। वे गलत समझे जाने को तैयार थे; परन्तु गलत कदम उठाने को तैयार नहीं थे।

वे उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं थे परन्तु उनके रक्त में जो व्यवहारिकता का पुट था उसके बल पर वे बुद्धि के क्षेत्र में सदा अग्रणी रहे। पं० मोतीलाल नेहरू और भूलाभाई देसाई जैसे कानून के पण्डितों को उनकी बुद्धि का लोहा मानना पड़ा था—

'जमनालालजी से बढ़कर साफ दिमाग रखने वाला (क्लियर हेडेड) व्यक्ति कार्य-समिति में और नहीं है।' (मोतीलाल नेहरू)

'कार्य समिति में उनके बिना काम नहीं-सा चलता था। उनकी सलाह हमेशा स्वयंस्फूर्त व्यवहारिकता और शुद्ध विवेकपूर्ण होती थी। सब समस्याओं को देखने की उनकी दृष्टि सच्चे रूप में राष्ट्रीय और असाम्प्रदायिक होती थी।' (भूलाभाई देसाई)

स्वयं गान्धीजी ने कहा था—'उसके जैसा बारीकी से हरेक चीज को पकड़ने वाला आदमी भाग्य ही से कहीं मिलता है।' लेकिन सेठजी केवल व्यवहार-कुशल ही नहीं थे। वे मूलतः धार्मिक थे। कर्मकाण्डी नहीं, साधक! 'जीवन सेवामय, उन्नत, प्रगतिशील उपयोगी और सादगीयुक्त हो यह भावना जबसे मैंने होश संभाली, तबसे अस्पष्ट रूप से मेरे सामने थी।' इसी दृष्टि से उन्होंने मार्ग-दर्शक की खोज की—'मार्ग-दर्शक की खोज में मैंने भारत के अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क पैदा किया। ....इसी मार्ग-दर्शक की खोज में मुझे गांधीजी मिले और सदैव के लिये मिले।' गान्धीजी के अतिरिक्त विनोबा भी गुरुरूप में उनके बहुत पास थे। वे तो जैसी उनकी सन्तान के अभिभावक बन गये थे। अपनी जीवन-सन्ध्या में मां आनन्दमयी की गोद में उन्हें अपूर्व शान्ति मिली पर सच्ची शान्ति उन्हें सदा कर्मरत रहने में मिलती थी।

सेठजी का जीवन संघर्ष की अपूर्व कहानी है। वे गरीब के घर जन्मे; पर भाग्य ने उन्हें लक्ष्मीपुत्र बनाया। वे भाग्य से जूझे और स्वेच्छा से फिर गरीबी स्वीकार की। भाग्य ने रायबहादुरी प्रदान की पर वे उसे फेंक कर सत्याग्रही बन गये। बिन मांगे उन्हें जो-कुछ भी मिला उसे उन्होंने अस्वीकार तो नहीं किया पर जब वह उनकी साधना के मार्ग का बन्धन बना तो उसे निःसंकोच ठुकरा दिया। वे झुके नहीं, कूटनीति उनसे सदा दूर रही। दयानन्द का सत्य उनका सत्य बना, स्पष्ट, जो जैसा है वैसा, कड़वा, निपट सत्य। सन् १९१८ में सरकार ने उन्हें रायबहादुरी की उपाधि प्रदान की; परन्तु जब उसने यह देखा कि कांग्रेस के नेता उनके पास ठहरते हैं तो कमिश्नर ने उन्हें बुला भेजा और बताया कि वे रायबहादुर हैं। उन्हें ऐसे लोगों से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। इस-पर सेठजी ने जवाब दिया—'मैंने तो रायबहादुरी के लिये सरकार से कभी कहा नहीं, न किसी से कोशिश कराई। आपका यह समझना कि रायबहादुरी मिलने के बाद मेरा सम्बन्ध इन लोगों से हुआ बिल्कुल गलत है। मेरा इन लोगों से बहुत पुराना सम्बन्ध है।'

और जब काफी तेजी के बाद कमिश्नर ने समझौता करने को कहा तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में जवाब दिया—'इसमें समझौते की कोई बात मालूम नहीं होती। जो लोग मेरे यहां ठहरते आये हैं वे फिर भी ठहरेंगे।'

और वे गांधी की आंधी में तन-मन-धन से कूद पड़े। वे नागपुर झण्डा-सत्याग्रह के नेता थे। उन्होंने राजस्थान में जागृति का मन्त्र फूंका था। वे सन् २३ से ४१ तक गांधीजी की हर पुकार पर जेल गये थे। वे सैनिक थे और सदा सैनिक रहे। जहां गये सैनिक की भावना लेकर गये। कार्यकारिणी में पहुंचे तो अन्त तक रहे; कोषाध्यक्ष बने तो मृत्यु के बाद ही उस स्थान को रिक्त किया।

उन्होने राजनीति में पूर्णरूपेण रस लिया पर उनकी प्रतिभा का वास्तविक प्रस्फुटन हुआ गाधी के रचनात्मक कार्यों में। गाधीजी के शब्दो में—'उन्होने मेरे सभी कामो को पूरी तरह अपना लिया था। यहा तक कि मुझे कुछ करना ही नही पडता था। ज्योही मै किसी नये काम को शुरू करता वे उसका बोझ खुद उठा लेते थे, इस तरह मुझे निश्चित कर देना मानो उनका जीवन-कार्य बन गया था।'

क्या खादी, क्या गो-सेवा, क्या हरिजन उद्धार क्या हिन्दू-मुस्लिम एकता, सभी क्षेत्रो में वे सम्पूर्ण रूप से आये। 'विनोबा के शब्दो में'- 'जमनालाल जी के दिल में देहभावना का अवशेष भी न रहा, केवल सेवा ही सेवा रही।' खादी के बारे में उन्होने स्वय लिखा है-'मैं मानता हू कि इस समय यदि ब्राह्मण स्नान-सध्या किसी दिन न कर पाये तो शायद ईश्वर उसे क्षमा कर देवे पर यदि वह चर्खा न कातता हो या खादी न पहनता हो तो उसे ईश्वर के यहा शायद ही क्षमा मिले।" गो-सेवक तो उनका विरद बन गया था। गोपुरी आज भी उनकी स्मृति का पार्थिव रूप है। राष्ट्रभाषा के प्रति उनकी सेवायें नगण्य नही हैं। हरिजनो के लिये उन्होने मन्दिर ही नही खोले उन्हे अपनी रसोई में भी नियुक्त किया। एक मारवाडी के लिये सन् १९३५ में ऐसा करना कितने साहस का काम हो सकता है, आज इसकी कल्पना करना बहुत कठिन है। समाज-सुधार के क्षेत्र में भी वे अग्रणी रहे। उन्होने विवाह के मत्रो तक के नये अर्थ लगाये।

सेठजी को अपने जीवन में जो सफलतायें मिली वे नगण्य नही है। उनका मूल उनकी इस महत्त्वाकाक्षा में है-'जीवन में मैं इस तरह बरतना चाहता हू कि मरते समय कोई मुझे अपना शत्रु समझने वाला न रहे।' लेकिन महत्वाकाक्षा सब करते हैं, पर उसको पूरा करने का प्रयत्न करना विरलो के भाग्य में होता है। वह सौभाग्य सेठजी को मिला था। उनकी महत्त्वाकाक्षा पूरी हुई या नही इसपर राय देने का अधिकार हमें नही मिला है पर यह एक चिरनवीन सत्य है कि जो प्रयत्न करता है वह निश्चय ही सफल होता है। इस दृष्टि से उन्हे निःसकोच सफल कहा जा सकता है।

एक सेवक डरा-धमका कर उनसे पैसे लेना चाहता था-'मुझे इतने हजार रुपये दीजिए वरना गोली से उडा दूगा।' सेठजी हसे और बोले-'जरूर मार। मैं देखता हू तू कैसे मारता है।'

वह क्या मारता। दूसरे दिन उन्होने ही उसे काम से छुट्टी दी और परम मित्र भाव से उसे अपने स्थान का टिकट और खर्च के लिये पैसे देकर विदा किया।

विशाल शरीरधारी सेठजी का साहस और औदार्य भी विशाल था। आतिथ्य में उनका मुकाबला कौन कर सकेगा। मित्रता करना बहुत लोग जानते है परन्तु उसे निबाहना सेठजी जानते थे। उनके हृदय से प्रेम का निर्झर झरता था, उनकी वाणी में दृढता की चिंगारिया उडती थी, उनकी गति में विश्वास था, वे अपने को जानते थे। वे सम्पूर्ण नही थे परन्तु उनकी अपूर्णताओ को उनके प्रयत्नो ने बहुत हद तक ढक लिया था।

वे जन्म से निर्धन थे, सयोग से सेठ थे, कर्म से साधक थे, स्वभाव से महत्वाकाक्षी मनुष्य थे—एक साथ हठी और विनयी, निर्भीक और सरल, भक्त और विद्रोही। उनकी महत्वाकाक्षा का मूल था आत्मोन्नति के लिये तडप।

और उस तडप में से सेवा और कर्म का जो रूप प्रकट हुआ, जीवन को उन्होने जिस प्रकार जिया उसीको लक्ष्य करके गाधीजी ने उनके लिये कहा था-'वे जिन्दा साहित्य थे।' क्योकि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार (साहित्यिक) है।'

इन अर्थों में वे सचमुच जिन्दा साहित्य थे।

(१) इस लेख की अधिकाश सामग्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखित 'श्रेयार्थी जमनालालजी' और 'बापू के आश्रम में' से ली गई है। ये दोनों पुस्तकें 'सस्ता साहित्य मडल' से प्रकाशित हुई हैं।

हमारी राय

चुनाव और उसके बाद

चुनाव का दौर समाप्त हुआ । भारतीय राष्ट्र-निर्माण के अगले पांच वर्षों का भविष्य बहुत कुछ इस चुनाव पर अवलम्बित था, इसलिये इसमें सारे राष्ट्र ने अभूतपूर्व तत्परता और तन्मयता दिखलाई, जो कि सर्वथा उचित थी । कई पार्टियों तथा स्वतन्त्र उम्मीदवारों ने जगह-जगह चुनाव लड़े । जो लोग कानून-विधान द्वारा अर्थात् पार्लमेंटरी तरीके या जरिये से सर्वोदय की सिद्धि में मूलतः विश्वास नहीं रखते, उन्हें भी इसकी तात्कालिक उपयोगिता और आवश्यकता महसूस हुई और उन्होंने भी इसमें भाग लिया या सहयोग या आशीर्वाद दिया । अभी तो सब जगह परिणाम निकले नहीं हैं और मद्रास, कोचीन-ट्रावनकोर में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला है, राजस्थान में भी ऐसी आशंका हो रही है कि शायद न मिले, फिर भी भारत के तमाम और भागों में कांग्रेस की भारी विजय हुई है । राजस्थान को छोड़कर शायद और किसी जगह मतदान में कांग्रेस-विपक्षियों ने भीषण दबाव और उपाद से काम नहीं लिया । चुनाव-अधिकारियों ने प्रायः सभी जगह न्यायभाव से काम लिया और मतदाताओं ने भी शान्ति-भाव का प्रदर्शन किया । जहां तक जानकारी मिली है, कांग्रेस उम्मीदवारों ने प्रचार में अपना स्तर ऊंचा रखने का प्रयत्न किया है यह सब शुभ चिन्ह हैं । चुनाव के प्रारम्भ में बड़ा भय था कि न जाने क्या-क्या कांड हो जायेंगे; परन्तु इतने विशाल चुनाव के दरम्यान सब प्रकार से प्रायः शान्ति रही, यह खुद भारतवासियों की सभ्यता और समझदारी पर अच्छी रोशनी डालता है । इन सब बातों के लिये हम संतोष का अनुभव कर सकते हैं, परन्तु यह अवश्य आश्चर्यजनक स्थिति है कि दो महीने पहिले यहां कांग्रेस को चारों तरफ गालियां-ही-गालियां मिलती थी, वहां अपढ़-कुपढ़ देहातियों तक ने आखिर क्यों कांग्रेस को सब जगह विजयी बनाया! इसके छोटे-बड़े अनेक कारण हो सकते है, परन्तु कांग्रेस-संगठन और कार्यकर्ताओ का भीतर से जो हमें अनुभव है, उसके आधार पर हम इतना अवश्य कहना चाहते है कि संकट के समय और संग्राम के समय कांग्रेसी लोग फिर भी मिल कर चलना और काम करना जानते है । जहां-जहां वे मिल कर चले है, वहां-वहां सफलता प्राप्त की है । जहां फूट और भीतरी तोड़-फोड़ का बोलबाला रहा, वहां असफल हुए । हमारी सफलता और असफलता का बीज खुद हमारे ही अन्दर है । इस सत्य का अनुभव इस चुनाव में प्रत्येक को हुआ और होना चाहिए ।

चुनाव तो हो गया और सरकारें भी जगह-जगह बन जायेंगी, परन्तु इससे असल काम पूरा नहीं हो जायगा ।

इस चुनाव से उत्पन्न जागृति और शक्ति का उपयोग जन-सम्पर्क बढ़ाने और उनकी रचनात्मक सेवा करने में होना चाहिए और नये शासन के द्वारा पंच-वर्षीय विकास-योजना की पूर्ति होनी चाहिए ।

चुनाव के दरम्यान हमें अपने नीची सतह पर होने का भी अनुभव हुआ । बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं और जिम्मेदार कांग्रेसियों ने एक दूसरे के खिलाफ काम किया, भीतरी तोड़-फोड़ की झूठी अफवाहों और गलत नारों का बाजार गर्म रहा, बड़े-से-बड़े आदमियों के खिलाफ जितनी आसानी से झूठी बातें फैलाई जाती थीं, उतनी आसानी से वे मान भी ली जाती थीं । यह देखकर यह खयाल होना स्वाभाविक है कि हमारा स्तर ऐसे अवसरों पर कितना नीचे चला जाता है । मनुष्य की—उसकी सभ्यता और संस्कृति की परीक्षा, संकट और संग्राम-काल

में ही होती है। ऐसे समय में जो मनुष्य अपनी उच्चता, उदारता और श्रेष्ठता नहीं छोड़ता वही सच्चा मनुष्य है। उसी में आगे बढ़ने की शक्ति होती है। वही समाज को ऊंचा उठा सकता है, यह बात हमें सदैव याद रखनी चाहिए।

चुनाव के बाद अब चुनाव-जनित कटुता और वैमनस्य मिटकर सद्‌भावना और सहयोग का वातावरण बनाना चाहिए। चुनाव एक साधन था राष्ट्र की इच्छा और भावना को प्रदर्शित करने का, वह काम पूरा हुआ। अब उसके परिणाम को ध्यान में रखकर, राष्ट्र की इच्छा को समझकर हमें उसकी पूर्ति करने का सकल्प कर लेना चाहिए और इन पाच सालों में लोक-शिक्षण और लोक-विकास इतना हो जाना चाहिए कि जिससे अगले चुनाव में इससे कम खर्च में और ज्यादा व्यवस्था और शान्ति व सद्‌भाव के साथ केवल श्रेष्ठतम और योग्यतम व्यक्तियों को ही हम अपना प्रतिनिधि चुन सकें।

नई दिल्ली ५-२-५२ —ह० उ०

'हरिजन'-पत्र

राष्ट्र-प्रेमियों को यह समाचार पढ़कर बड़ा दुःख हुआ होगा कि अगले मास से 'हरिजन' (अंग्रेजी), 'हरिजन सेवक' (हिंदी), और 'हरिजन बन्धु' (गुजराती), का प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा। ये पत्र महात्मा गांधी की थाती हैं और भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम व देश के निर्माण में इन पत्रों का विशेष योग रहा है। जबसे इसका प्रकाशन शुरु हुआ है, गांधीजी निरन्तर इनके लिये लिखते रहे हैं। एक प्रकार से गांधीजी की प्रवृत्तियों आदि के ये मुख-पत्र रहे हैं। गांधीजी के जीवन काल में तो इनकी उपयोगिता रही ही, उनके निधन के पश्चात् भी सर्वोदय के सदेश को फैलाने तथा देश की महत्वपूर्ण समस्याओं का गांधीजी की दृष्टि से हल सुझाने में इनका बड़ा हाथ रहा है।

गांधीजी ने इन पत्रों के लिये विज्ञापन कभी स्वीकार नहीं किये। अतः ये ग्राहकों के बल पर ही चलते रहे। गांधीजी की मृत्यु के बाद भी वही परम्परा कायम रही। जब कभी आर्थिक सकट आया, पाठकों ने अपने कर्तव्य का निर्वाह किया। राजनैतिक कारणों को छोड़ कर कभी आर्थिक सकट से इन पत्रों का प्रकाशन बन्द नहीं हुआ, और यह निश्चय ही बड़े दुर्भाग्य की बात होगी यदि अब भी इन्हें उस कारण से बन्द होने दिया गया। ये पत्र गांधीजी के सर्वोत्तम स्मारक हैं और उनके आदर्शों को दृढतापूर्वक प्रसारित करते रहे हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनकी दृष्टि धूमिल नहीं हुई, उनके पैर नहीं डगमगाये।

हमें पता नहीं कि यह दुःखद निश्चय करने से पूर्व सचालकों ने इस सकट के निवारण के लिये कितना प्रयत्न किया है, लेकिन सार्वजनिक रूप से कोई प्रयत्न हुआ है इसका भी हमें पता नहीं है। इसलिये हम चाहते हैं कि 'हरिजन' पत्रों के पाठकों, विशेष कर राष्ट्र-प्रेमियों को एक अवसर अवश्य दिया जाये।

हम रचनात्मक कार्यकर्ताओं तथा पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे इन पत्रों के अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर सचालकों को आर्थिक चिन्ता से मुक्त कर दें और इस प्रकार उन्हें राष्ट्रपिता की इस थाती को सुरक्षित रखने के लिये बाध्य करें। केन्द्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकारें भी पर्याप्त संख्या में इनकी प्रतियां खरीद कर सहायता दे सकती हैं। गांधी-स्मारक निधि की राशि में से भी कुछ मदद दी जा सकती है। जो भी सभव उपाय हो, किये जाय और इन पत्रों को बन्द होने से बचाया जाय। इस व्यवस्था से कि 'हरिजन' सर्व सेवा सघ, वर्धा के हाथ में चला जायगा और बाप दो पत्र बन्द कर जायेंगे, हमें सतोष नहीं है। हमें सतोष तब होगा जब ये सब पत्र जीवित रहेंगे। इन पत्रों की आवश्यकता है और देश-काल की गतिविधि को देखने लगता है कि अभी काफी समय तक आगे भी रहेगी।

पाठक, राष्ट्रीय सरकार और गांधी स्मारक-निधि, इन सबके लिये यह परीक्षा-समय है।

—य०

'भूदान-यज्ञ' अंक

"...कहते हैं, अवतारों, ऋषियों और महापुरुषों के कार्य तत्कालीन जन प्रायः नहीं देखने के अभ्यासी होते हैं। 'जीवन-साहित्य' ने भूदान-यज्ञ अंक निकाल कर निश्चय ही विशिष्ट दृष्टाओं की परम्परा निभाई है। इसमें बापू और विनोबा के जो पत्र छपे हैं, उन्हें मैंने तो स्वयं पढ़ा ही, पूज्य भैया (श्री मैथिलीशरण गुप्त) को भी पढ़कर सुनाने का सौभाग्य मैंने लिया। मन में वैसी पवित्रता का अनुभव किया जो ज्ञान की त्रिवेणी में डुबकी लगाने से ही मिलती है...।"

—सियारामशरण गुप्त

"...इस अंक के कारण पाठकों के सामने पूज्य विनोबाजी का जो अन्तर्बाह्य स्वच्छ, सरस, निर्मल, उदात्त और महान् रूप सामने आया है, वह अपने आप में इस अंक की बड़ी सिद्धि है। मुझे विश्वास है कि यह अंक खूब लोकप्रिय होगा और इसकी हजारों प्रतियां सारे देश में उत्तम साहित्य के रसिकों के घर पर पहुंचेगी।..."

—काशिनाथ त्रिवेदी

"...भूमिदान-यज्ञ अंक मिला, बड़ा अच्छा लगा। विनोवाजी का मुखपृष्ठ का चित्र बड़ा अच्छा है...।"

—महावीरप्रसाद पोद्दार

"...निस्संदेह भूदान-यज्ञ अत्यन्त सामयिक, उपयोगी और आकर्षक रहा है। श्री विनोबा की राष्ट्र-सेवा का जो महत्वपूर्ण कार्य चल रहा है, उसका संदेश चारों ओर पहुंचाने तथा उसका प्रसार करने में "जीवन-साहित्य" का यह कार्य स्तुत्य है।"

—रामचरण महेन्द्र

"...विशेषांक बहुत ही रुचा। (वह) संग्रहणीय एवं मनन करने योग्य है। आचार्य विनोबा के महान् कार्य का परिचय विशेषांक में दिया है यह अच्छा ही है।"

—उमाशंकर शुक्ल

"... 'भूदान-यज्ञ' अंक प्राप्त हुआ। पढ़कर प्रसन्नता हुई। वास्तव में यह अंक हम जैसे पथ-भ्रष्ट और निर्जीव कार्यकर्ताओं के लिये प्रकाश-पुंज है।"

—गोवर्धन सिंह

"...'भूदान-यज्ञ' विशेपांक निकाल कर 'जीवन-साहित्य' के सम्पादकों ने जिस निष्ठा, परिश्रम-शीलता और गम्भीर श्रद्धा से विनोबा के विचारों के प्रसार में जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है वह स्तुत्य है। विनोबा के समान यदि हमारी तपस्या और अध्यात्म-निष्ठा नहीं हो सकती, तो उसकी उपासना में भी हमारी कमी क्यों हो? 'जीवन-साहित्य' के पृष्ठों ने हमें इस उपासना का अवसर दिया, इसलिय उसके प्रति भारी कृतज्ञता है।" —भरतसिंह उपाध्याय

"'जीवन-साहित्य' का ध्येय ही यही है कि वह अहिंसक नवरचना के शुभ कार्य में दिन-दिन प्रगति करे। यह अंक उस प्रगति का एक सुन्दर प्रतीक है क्योंकि श्री विनोवा जी और उनका भूमिदान-यज्ञ अहिंसक नवरचना की सफलता के दो ज्योतिर्मय स्तम्भ हैं।"

—गुरुदयाल मल्लिक

"'जीवन-साहित्य' के इस नम्बर में भूदान-यज्ञ के जुदा-जुदा पहलुओं पर रोशनी डाली गई है—जिससे उसकी सच्ची जानकारी हासिल करने में मदद मिलती है। ज्यादातर लेख उन भाई-बहनों के हैं जो इस यज्ञ में विनोवाजी के साथ हैं और उसको कामयाब बनाने में अपने तन मन धन से लगे हुए हैं। इसकी वजह से यह नम्बर दिल को कहीं ज्यादा छूने वाला और असरदार बन गया है।"

—सुरेशराम भाई

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन - साहित्य** [एक प्रति का ।।)

लेख-सूची

पाठकों से निवेदन

'जीवन-साहित्य' के विषय मे गतांक मे हमने जो अपील निकाली थी, उसका पाठकों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। एक बंधु लिखते हैं कि मानव-समाज के नैतिक धरातल को ऊंचा करने वाला 'जीवन-साहित्य' जैसा पत्र घाटे में चले यह बड़े दुःख की बात है। मैंने निश्चय किया है कि उसके लिए २५ ग्राहक बनाऊंगा। चार ग्राहक बनाकर उन्होंने भेज भी दिये हैं। अन्य कई पाठकों ने भी ऐसा ही शुभ संकल्प किया है। अपने पाठकों की इस आत्मीयता के लिए आभार मानते हुए हम उनसे अनुरोध करते हैं कि वे अधिक-से-अधिक जितने ग्राहक बना सकें, बनाने की कृपा करें। जो बंधु पांच या उससे अधिक ग्राहक बनावेंगे, उनके नाम हम 'जीवन-साहित्य' में प्रकाशित कर देंगे।

—यशपाल जैन
सम्पादक

Reg. No. D. 228.

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित

अहिंसक नवरचना का मासिक

संपादक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जो देने के मौके पर नहीं देता, वह बोने के मौके पर नहीं बोता। और बोने के मौके पर जिसने नहीं बोया उसने बहुत-कुछ खोया। और इसी तरह देने के मौके पर जिसने नहीं दिया, उसने भी बहुत खोया।

—विनोबा—

अप्रैल १९५२
छः आना

वार्षिक मूल्य ४)]

जीवन - साहित्य

[एक प्रति का ।=)

लेख-सूची

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

अप्रैल १९५२]

[वर्ष १३ अंक ४

मो० क० गांधी

●

सच्चा आदमी

धन साधन-मात्र है और उससे सुख तथा दुख दोनों हो सकते हैं। यदि वह अच्छे मनुष्य के हाथ में पड़ता है तो उसकी बदौलत खेती होती है और अन्न पैदा होता है, किसान निर्दोष मजदूरी करके धन पाते हैं और राष्ट्र सुखी होता है। खराब मनुष्य के हाथ में धन पड़ने से उससे (मान लीजिये कि) गोला-बारूद बनते हैं और लोगों का सर्वनाश होता है। गोला-बारूद बनाने वाला राष्ट्र और जिस पर इनका प्रयोग होता है वे दोनों हानि उठाते और दुख पाते हैं।

इस तरह हम देख सकते हैं कि सच्चा आदमी ही धन है। जिस राष्ट्र में नीति है वह धन-सम्पन्न है। यह जमाना भोग-विलास का नहीं है। हरेक आदमी को जितनी मेहनत-मजूरी हो सके, उतनी करनी चाहिए।

'सर्वोदय' से]

●

विनोबा

सर्वोदय-व्यवस्था

मेरा काम लोगों के दिलों को समझाने और उनके भीतर जो ईश्वर है, उनको जगाने का है। यह मेरा भक्ति-मार्ग है। भक्ति-मार्ग में भक्त भगवान् को जगाने का काम करता है। जागने पर, जो काम करना है, स्वयं भगवान् ही कर लेता है। यह है मेरी भावना इस काम के बारे में। मेरा यह मानना है कि हिंदुस्तान का मसला जमीन का मसला है और जबतक वह हल नहीं होता, इस देश में शान्ति नहीं हो सकती। अभी आपने देखा चुनाव का एक बड़ा भारी प्रयोग हिंदुस्तान में। इतने बड़े पैमाने पर हिंदुस्तान में ही क्या, और कहीं भी चुनाव इसके पहले नहीं हुए। इस चुनाव ने सब लोगों को बिना किसी भेदभाव के, वोट का अधिकार दिया। यह नहीं सोचा कि कौन कितना पढ़ा-लिखा है। यह भी नहीं सोचा कि कौन कितना लगान देता है। स्त्री-पुरुष के भेद को भी कोई स्थान नहीं दिया और न जाति-पांति का भेद रखा। यह चीज ही ऐसी है कि अगर हम उसके मानी ठीक समझ लेंगे और समाज की रचना उसके मुआफिक करने की सोचेंगे, तो उससे परिवर्तन आ सकता है और अगर हम इसका अर्थ पूरा नहीं समझेंगे और समाज का ढांचा जैसा आज है वैसा ही रहने देंगे तो यह चुनाव हमारे समाज में उथल-पुथल मचाये बिना नहीं रहेगा। जब आप, लोगों से कौल मांगते हैं और लोगों को, मालिक समझकर अधिकार देते हैं कि हर पांच साल के बाद वे अपने नौकरों को बदल सकते हैं, और उस तरह आवश्यक शिक्षण द्वारा उन्हें जगाते भी हैं तो अगर हम ठीक मौके पर न जागे तो वह पुराना ढांचा ढह जाने वाला ही है। लेकिन फिर जिस तरीके से वह ढहेगा उससे समाज में शान्ति नहीं रह सकेगी। जो काम मैंने शुरू किया है उससे हमारे समाज में किसी भी तरह की उथल-पुथल हुए बिना एक क्रांति, एक इन्कलाब, आ सकता है। आपने देखा कि दक्षिण भारत में कई लोग खड़े हुए थे। उनमें कांग्रेस वालों के खिलाफ कम्यूनिस्ट भी खड़े थे और लोगों ने उन्हें भी वोट दिया। यह घटना कुछ सबक देती है या नहीं, आप देखें। जो सबक उससे लेना था, मैं तो पहले ही ले चुका हूं।

हिंदुस्तान की जनता बहुत नम्र है, श्रद्धालु है। अगर उसकी मुश्किलें हम अपनी मुश्किलें मानते हैं, उसका दुःख अपना दुःख समझते हैं और अगर हम अपनी तरफ से उन मसलों को सुलझाते हैं और उनके दुःखों को दूर करते हैं तो समाज-रचना तो बदल जावेगी ही, बदलने की प्रक्रिया में द्वेष-भावना नहीं बढ़ेगी, कटुता नहीं आयगी। समाज की रचना में परिवर्तन हमेशा होता रहा है, नदी का रूप तीनों मौसमों में बदलता रहता है, सृष्टि का रूप भी ऋतुओं के अनुसार बदलता रहता है। खुद हम अपने जीवन में देखते हैं कि हम बाल्यावस्था से जवानी में आते हैं और यह भी देखते हैं कि जवानी की मस्ती हमेशा टिकती नहीं, बुढ़ापा आता ही है। जगत का यह नित्य गतिमान अर्थ अगर हम न समझें और परिवर्तन की तैयारी न करें तो परिवर्तन तो आवेगा ही; लेकिन हमें उसे लाचारी से स्वीकारना होगा। अगर कोई यह समझे कि बुढ़ापा कभी आयगा ही नहीं तो वह पछतावेगा और अगर बुद्धिपूर्वक पहले ही समझ ले तो बुढ़ापे में औरों पर भार नहीं पड़ेगा, वरना बुढ़ापा तो आवेगा; लेकिन बुरी तरह आवेगा। इसका कारण यह है कि आजकल आश्रम-धर्म का ठीक पालन नहीं होता है। शास्त्रकारों ने जो सामाजिक व्यवस्था दी थी वह अब नहीं रही। इन्द्रियां क्षीण होने तक लोग गृहस्थाश्रम नहीं छोड़ते। आखिर जब इंद्रियां लड़खड़ाने लगती हैं, शरीर जर्जर हो जाता है तब लाचार होकर भोग छूटते हैं। लेकिन फिर भी वासना कायम ही रहती है। क्या इससे यह बेहतर नहीं होता कि ज्ञान-पूर्वक भोगों को छोड़ दिया जाता, ताकि जीवन में कुछ इज्जत भी रहती? आज न तो इज्जत है और न लज्जत।

यही देखो न, हिंदुस्तान में अंग्रेजों का राज था। अगर वे दुराग्रह-पूर्वक यहां का अपना राज पकड़े रहते तो उन्हें जाना तो अवश्य पड़ता, पर दुश्मनी कायम रहती; लेकिन वे समझदार थे, सोचने वाले थे, इसलिए धीरे से अपना

पाव हटा लिया। नतीजा यह हुआ कि आज भी उनका और हमारा सम्बन्ध अच्छा है और जो दुर्व्यवहार हो सकता था उससे वे मुक्त रहे, और आखिर में नाम भी कमा लिया। उसी तरह अगर यह राजा लोग भी हठ पकडते और अपनी रियासतो का विसर्जन न करते तो उनकी भी दुर्दशा होती। आज वे बच गये हैं और अगर ठीक सेवा में लग जाते है तो इज्जत भी हासिल कर सकते हैं। तो मैने यह दो मिसालें दी सामाजिक परिवर्तन की। इस तरह समाज में परिवर्तन अक्सर होता ही रहता है। लेकिन परिवर्तन करना है यह समझ कर अगर विचारपूर्वक काम किया जाय तो मन के मुताबिक परिवर्तन होता है, वरना परिवर्तन तो होता ही है; लेकिन मन के मुताबिक नही होता। बहते पानी को ठीक राह ले जाया जाय तो अपनी कल्पना का सुन्दर रमणीक बगीचा तैयार हो सकता है, वरना पानी तो बहेगा ही, बगीचा नही बन पायेगा।

ऐसी हालत मे, जबकि हिंदुस्तान में गरीबी बहुत ज्यादा है, उद्योग-धधे नही है और जमीन की माग है तो यह नही हो सकता है कि लोग खामोश रहे। पिछले दिनो दुनिया में परिवर्तन भी काफी हुए है, नये-नये विचार भी प्रकट हुए हैं, और यह नही हो सकता कि हिंदुस्तान दुनिया से अछूता रह सके। फिर गरीबी इतनी है कि दुनिया में किसी भी और देश से उसकी तुलना नही की जा सकती और यह भी नही हो सकता कि सत्ता आते ही रचना बदल दी जासके। इसलिए हमें अभी से उचित कदम उठाकर न्याय-बुद्धि से, प्रेम-भाव से, जमीन का मसला हल करना चाहिए। कोई सुने, न सुने, लोगो को इस सम्बन्ध मे समझाना मेरा काम है। जिस तरह प्रेम-पूर्वक लडकी ब्याह में दी जाती है, वैसे ही जमीन भी जरूरतवालो को प्रेमपूर्वक देने की बात मैं कह रहा हू। इसका नतीजा यह होगा कि यह जमीन का मसला हल होगा और दुनिया भी देखेगी कि हिंदुस्तान का अपना एक तरीका है और वह दुनिया से निराला है। आज ही (२८ जनवरी) 'हरिजन' अखबार में भूदान के सम्बन्ध में एक इग्लैंड के अखबार का लेख छपा है, जिसमें उन्होने कहा है कि वह बात हिंदुस्तान में ही सभव हो सकती है कि मागने से जमीन मिले। यद्यपि मैं नही मानता कि और जगह यह सभव नही है, फिर भी लेखक का यह कहना शायद गलत न हो कि हिंदुस्तान की तरह यह और स्थानो में सभव न हो। और फिर मेरी आवाज तो बहुत कमजोर है। न मैं मन्त्री हू,न तन्त्री हू,न यन्त्री हू। न मेरे पास कोई सस्था है, आज मैं अकेला घूम रहा हू, दो-चार मित्र मुझे कही साथी मिल जाते हैं। लोग भी मेरी दुर्बल आवाज प्रेम से सुन लेते है। बच्चे भी नारा लगाते है कि "भूदान-यज्ञ सफल करेंगे।" इसलिए जब वह अग्रेजी लेखक कहता है कि इस तरह भूदान मिलना हिंदुस्तान में सभव है तो वह गलत नही कहता है।

मैं जिस व्यापक भावना से यह मसला हल करना चाहता हू, उस तरीके से अगर यह मसला हल हुआ तो जो परिवर्तन आयगा, उसे अच्छी खूबसूरत शकल मिलेगी वरना शकल तो बनेगी, लेकिन यह खूबसूरत नही बनेगी, बदसूरत बनेगी। उसमें हमारी कोई कला प्रकट नही होगी।

कला का काम यह है कि कृतज्ञता-बुद्धि रखते हुए गरीबो पर प्यार करें। हमने गरीबो को भूमि से वचित रखा। यह पाप किया,ऐसा हमें समझना चाहिए और उसके प्रायश्चित में लग जाना चाहिए। तब जो मूर्ति बनेगी वह पूजा के लायक होगी। तब हम अपनी सरकार ऐसी बना सकेंगे जिसे सर्वोदय की सरकार कह सकेंगे, जिसमें कोई किसी के कधे पर सवार नही होगा। कोई किसी का शोषण नही करेगा। हर आदमी यह सोचेगा कि मैं अपनी चिंता नही करूगा। अगर मेरी चिंता कोई करे तो समाज करे, अगर न करे तो भले न करे, इस तरह की व्यवस्था को सर्वोदय व्यवस्था कहते है। स्वराज्य के बाद अब हमें ऐसा सर्वोदय समाज कायम करना है। लीन यु तांग ने कहा है कि यह मुल्क—हिंदुस्तान—गॉड इन्टाक्सिकेटेड मुल्क है। यह सही है कि हिंदुस्तान में परमेश्वर के नाम से जितना प्रचार होता है उतना किसी और नाम से नही होता। तेलगाना में कम्यूनिज्म का प्रचार बहुत ज्यादा हुआ है। फिर भी जहा-जहा मैं गया, सवेरे से शाम तक राम-भजन चलता था। तीन-तीन मील लोग लेने और पहुचाने,

भजन गाते आते थे। तब मैंने कहा था कि कम्यूनिस्ट आयंगे और जायंगे, सरकारें भी आयंगी और जायंगी; लेकिन राम-नाम अखंड रहेगा। मैंने यह निष्ठा वहां देखी। कम्यूनिस्ट तो ईश्वर को नहीं मानते, फिर भी उनके केन्द्रों में मैंने यह निष्ठा देखी। और ठीक भी है, लोग ऐसी निष्ठा क्यों नहीं रखेंगे? ईश्वर पर उनका भरोसा है। वे ईश्वर को पिता मानते हैं और आखिर पिता अपने बच्चों के लिये क्या चाहता है? यह कि सब लड़के सुख से रहें। ईश्वर तो पिता-माता दोनों हैं, और वह है जिसके कारण पिता-माता को प्रेम प्राप्त हुआ है। वह क्या चाहेगा? क्या वह यह नहीं चाहेगा कि सब सुखी रहें? और इसमें सोचने की क्या बात है? जरा देखने से मालूम होगा कि राजा-रंक सबके सामने भगवान् सूर्यनारायण समान रूप से प्रकाश देते हैं, उसी तरह हवा, पानी और जमीन भी सबके लिये समान पैदा की है; परन्तु हवा और पानी तो सबको मिलते हैं, लेकिन जमीन कुछ लोगों के पास है कुछ लोगों के पास नहीं है। क्या परमेश्वर की ऐसी इच्छा हो सकती है कि जो लोग खुद काश्त नहीं कर सकते उनके पास ज्यादा जमीन हो और जो काश्त करते हैं उनके पास न हो? क्या ईश्वर की इच्छा हो सकती है कि जो जमीन उसने निर्माण की वह कुछ लोगों के पास तो बहुत ज्यादा रहे और कइयों के पास बिल्कुल न रहे? एक के पास पांच एकड़ हो और दूसरे के पास पांच सौ एकड़ हो? क्या ईश्वर की इच्छा यह हो सकती है कि जिस गंगा का कि उसने निर्माण किया उसमें एक तो पानी पीवे, दूसरा न पी सके? जाहिर है कि अगर ऐसा होगा तो यह सब भगवान् की इच्छा के विरुद्ध होगा, और अगर एक नदी के प्रवाह के विरुद्ध तैरना भी मुश्किल होता है तो परमेश्वर की इच्छा के खिलाफ खड़ा रहना कितना मुश्किल हो सकता है? परमेश्वर के खिलाफ कौन खड़ा होता है?—वह जो शैतान है, दानव है, भले ही वह मानव के रूप में क्यों न दिखाई देता हो।

तो हमें जितनी जमीन जोतनी हो उतनी हम रखें, ज्यादा न रखें। लोग अपने को जमीन का स्वामी समझते हैं, जबकि जमीन परमेश्वर ने पैदा की है। जिस वस्तु का स्वामी ईश्वर है उसके लिये खुद को जो ईश्वर या मालिक या भोगी कहता है, उसे गीता ने असुर कहा है। ऐसी वृत्ति से सुख कैसे होगा? उससे तो झगड़े बढ़ेंगे। आज हमारे देश में नये-नये पक्ष निकल रहे हैं। जिधर देखो उधर पक्ष-ही-पक्ष खड़े हो रहे हैं। इसका कारण यह चुनाव नहीं है। चुनाव तो निमित्त है। कारण तो यह है कि हिंदुस्तान में लोगों को असंतोष है जिसका मूल किसी व्यक्ति में नहीं, समाज-रचना में है। उस समाज-रचना को बदलने के लिये हमें जो कुछ करना चाहिए वह अगर हम नहीं करते हैं और लोगों को दोष देते हैं तो वह हमारी गलती है। वास्तव में समाज की आर्थिक और सामाजिक रचना आज बिल्कुल बिगड़ चुकी है और यही वजह है कि आपस में द्वेष-भाव बढ़ रहा है। ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ समझता है। क्षत्रिय समझता है कि सत्ता हमारे हाथ में होनी चाहिए—और इस तरह हर जाति वाले अपने लिये राजनैतिक हक की बात करने लगे हैं और अपना सब भला दूसरे का सब बुरा ऐसा समझते हैं। परिणाम यह होता है कि न हम सामाजिक ढांचा बदल पाते हैं और न आर्थिक। राजनैतिक सत्ता तो हमें मिली है; परन्तु हम परिवर्तन तो तब ला सकते हैं जब हम पहचान लें कि आज की सामाजिक और आर्थिक रचना बिगड़ी हुई है। पचास एकड़वाला अगर कहे—"मेरे पास तो पचास एकड़ ही है। उसमें से मैं दस एकड़ कैसे दे सकता हूं? मुझे तकलीफ होगी।" तो मैं पूछता हूं कि बुढ़ापे में भी आपको तकलीफ होगी या नहीं? मनुष्य निर्जल एकादशी करता है तो उसे शारीरिक कष्ट होता ही है; परन्तु मनुष्य का समाधान केवल शारीरिक सुख से नहीं होता। उसे मानसिक सुख की आवश्यकता होती है। जो शख्स पचास एकड़ में से दस एकड़ देगा उसके पास चालीस एकड़ रहेंगे यह बात सही है। लेकिन यह उन चालीस में भी उतनी फसल निकाल सकता है जितनी पचास में से निकालता था। घर में पांच लड़के होते हुए भी छठा लड़का पैदा होने पर और जायदाद छोटी होने पर भी अगर वह छठा जायदाद का हकदार हो सकता है तो दरिद्रनारायण को छठा क्यों नहीं मानता है? इसलिए मैं सबको समझाता हूं कि अगर घर में पांच लोग दीखते हैं तो एक न दीखने

वाले को भी मान लो और उसके लिये छठा हिस्सा मुझे दे दो। शास्त्रों ने भी छठा हिस्सा राजा को देने को कहा है। हिंदुस्तान का राजा कौन है ? इसका जवाब मुझे देदो। जब आपने वोटिंग का अधिकार सबको दिया है और जब देश में गरीबों की तादाद ही ज्यादा है तो मैं कहना चाहता हू कि हिंदुस्तान का राजा गरीब ही है, दरिद्रनारायण ही है। किसी यूनिवर्सिटी का डिग्री-प्राप्त व्यक्ति या और कोई दूसरा करोडपति हिंदुस्तान का राजा नही हो सकता। इसलिए उस राजा को अपना हक दीजिए, छठा हिस्सा दीजिए। जब आप अपने जीवन का छठा हिस्सा गरीब को देंगे तो वह आपके लिये मरने को तैयार भी रहेगा। ययाति के पाच लडको में से अपना यौवन देने के लिये सिर्फ एक लडका तैयार हुआ था। आपके लडको में से शायद एक भी तैयार न हो। लेकिन यह गरीब, जिसे आप जमीन देंगे, आपके लिये जान देने को तैयार होगा। ऐसा उत्तम मित्र हम कमाते है और बदले में देते क्या है ? केवल यही न, बीस मे चार एकड। उस सारे प्रश्न पर भूदान की दृष्टि से नहीं, आत्मकल्याण की दृष्टि से सोचियेगा।

मेरे भाइयो, इन दिनो आपके गाव में कई चुनाव-सभाए हुई होगी, जिनमें एक पक्ष ने दूसरे पक्ष की बुराई भी की होगी। एक निन्दा-पर्व ही मानो उन सभाओ में शुरू हुआ होगा। आत्म-स्तुति, परनिन्दा का दर्शन उसमें आपको होता रहा होगा, पर आज एक फकीर आपके पास आ पहुचा है जो आपके सामने केवल भगवान् का गुणगान ही करना चाहता है कर रहा है। आपको भगवान् का पुत्र समझकर केवल अपना कर्त्तव्य समझाने के लिये आपके पास आया हूँ। दोष किसमें नहीं होते ? दोष सबमें होते है और मुझमें भी है। लेकिन मैं जानता हू कि आपमें क्या-क्या शक्तिया छिपी हुई है। आप स्वय ही नही जानते। आपको मालूम है कि एक व्याध से भी एक महान वाल्मीकि ऋषि बन सका। अरे, आप ही तो वे लोग है जो पत्थर से भी भगवान् बना सकते है। पत्थर को भगवान् बनाने की शक्ति जिनमें है, मेरे लिये तो वे अत्यन्त स्तुति के लायक है। इसलिए अगर आप अपने स्वरूप को समझेंगे तो जो चाहेंगे कर सकेंगे। और ऐसे आप शक्तिमान होते हुए भी अपनी शक्ति परनिन्दा में खर्च कर रहे है! अगर हम अपनी आख बन्द कर लेते है तो सृष्टि में ऐसी कौनसी शक्ति है जो हमारी आख में जबरन आ घुसे ? यानी सृष्टि को खतम करने की शक्ति आपमें है। यह ज्ञान आपको हो जायगा तो आप जैसा चाहेंगे परिवर्तन कर सकेंगे। जहा यह विचार आपके हृदय में उदित हो जायगा वहा आप सरकार की तरफ देखते बैठे नही रहेंगे। आप स्वय परिवर्तन ला सकेंगे। यह सारी शक्ति आपमें है और इसलिए मैं आपसे भूदान-यज्ञ में अपना हविर्भाग देने के लिये कह रहा हू। आज भी मुझे जमीन तो मिल रही है लेकिन मेरी आवाज में अब भी कुछ रजोगुण और तमोगुण पडा है। जब मेरी आवाज में पूर्णतया सत्वगुण ही प्रकट होगा तब मैं जो मागूगा वह आपको देना होगा। आज आप इस काम का प्रारम्भ कीजियेगा। चुनाव में जो शक्ति आप लोगो ने लगाई उससे आधी भी अगर इस काम में लगा दें तो दो माह मे यह काम पूरा हो सकता है। और दो माह भी क्यो लगने चाहिए? इन्ही चुनाव के दिनो में ही अभी पीली-भीत में था तो मैंने देखा कि उन लोगो ने बारह हजार एकड कर दिये। जरा आप पाच-सात रोज भी पूरी शक्ति के साथ काम करें तो आपके जिले का कोटा पूरा हो सकता है। गगा और यमुना के इस प्रदेश में यह काम पूरा हो जाय तो इससे सारे भारत को प्रेरणा मिल सकेगी। अभी जब मैं ऋषिकेश था तो वहा गगा का जो दृश्य मैंने देखा वह कितना अद्भुत था! मेरी स्थिति वहा बयान करने लायक नही रही। इसलिए मैं कहता हू कि यह प्रदेश जिसे आर्यावर्त कहते है और जिसने राम, कृष्ण और बुद्ध जैसी विभूतियो को जन्म दिया है वह सारे भारत को प्रेरणा दे सकता है।*

---

* भूदान-यज्ञ के सिलसिले में उत्तर प्रदेश की पैदल-यात्रा करते हुए मैनपुरी में २८ जनवरी १९५२ को दिया हुआ भाषण।

भगवानदीन

इन्तज़ार कीजिए

सर्वोदय का खयाल बड़ा अच्छा है। इस खयाल में जितना ही दम डाला जाय उतना ही अच्छा है। जिस सफलता को हमने आदर्श मान रखा है वह तो नहीं होगी, पर उतनी सफलता जरूर होगी, जितना हम जोर लगायंगे।

यह ठीक है कि छप्पर जितने आदमी उठाते हैं उनके लिये वह ज्यादा भारी नहीं होता, पर वही छप्पर उनके लिये बहुत भारी हो सकता है अगर वहां कोई ऐसा आदमी मौजूद न हो जो उनका, छप्पर को एक साथ उठाने के लिये, दिल न उठाता रहे। छप्पर उठाते वक्त हर आदमी अपना पूरा जोर लगाता है; पर इतने से ही काम नहीं चलता। इशारे के लिये एक आदमी चाहिए। और यही वह कुंजी है, जिससे सर्वोदय का ताला खुल सकता है।

अंग्रेजों की हुकूमत का पेड़ इतनी गहरी जड़ जमा चुका था कि कई वार अलग-अलग तरह से अलग-अलग दलों ने पूरा-पूरा जोर लगा कर उसको गिराना चाहा; पर वह न गिर सका। उसी पेड़ को सन् '२१ में हिंदुस्तान ने गिराने की कोशिश की और उसकी जड़ हिल गई। गिरा २६ वरस के बाद, यह दूसरी वात है।

सन् '२१ में हमने भारत के सब आदमियों का उदय अपनी आंख से देखा था। सर्वोदय इसके सिवाय और कुछ हो ही नहीं सकता कि हर आदमी अपने को मिटाकर दूसरे की भलाई सोचे। विश्वास रक्खें कि वह नहीं मिटेगा। गोल चक्कर बनाकर अगर सब आदमी एक दूसरे के घोंटू पर बैठ जायं तो बिना कुर्सी के कुर्सी का आनन्द ले सकते हैं और किसी को भी ज्यादा थकान नहीं होगी। सर्वोदय में यही होता है। सन् '२१ में सबको यह दिखाई दे रहा था कि सब ऊंचे उठते चले जा रहे हैं। इसीलिए सब पूरा जोर लगाये हुए थे। और लगाये हुए थे एक गांधी के इशारे पर। उस वक्त हिंदुस्तान की आज़ादी का ताला खुल गया, दरवाज़ा खुलते-खुलते रह गया।

मध्य-प्रदेश में मंडला एक छोटा-सा नगर है। उसके दोनों तरफ नदी बहती है। एक तरह से वह एक टापू है। एक वार नदी में बाढ़ आ गई और एक दिन यह हाल हुआ कि मंडला अब डूबा, अब डूबा! पर किसी तरह बच गया। हम वहां तहकीकात के लिये पहुंचे। और बातों के अलावा यह बात सबके मुंह पर थी कि जोर की बाढ़ के तीनों दिन मंडला में ब्रह्म रहा।

क्या मतलब? मतलब यह कि सब भेदभाव उठ गया। छतों पर से वह उसके यहां खाना बना कर भेज रहा है, वह उसके यहां। कोई गैर रह ही नहीं गया। छुआछूत मिट गई। हिंदू-मुसलमानपना मिट गया। ऊंच-नीच खतम हो गई। हर दूसरे के लिये मरने को तैयार हो गये। शायद उसीका यह नतीजा हुआ कि जन का नुक्सान बिल्कुल नहीं हुआ, धन का नुक्सान हुआ। इसे आप मंडला के सब आदमियों का उदय कह सकते हैं।

सर्वोदय के माने हैं दुनिया के सब आदमियों का उदय। दूसरे अर्थों में दुनिया के सब आदमियों में से भेद-भाव का उठ जाना। ऊंच-नीच का खतम हो जाना। क्या यह संभव है? हिंदुस्तान में सन् '२१ वापस नहीं लाया जा सकता। तब सारी दुनिया में सन् '२१ कैसे लाया जा सकता है?

तो क्या सर्वोदय को तिलांजलि दी जाय? नहीं-नहीं, तिलांजलि क्यों दी जाय? सत्य और अहिंसा जिनके हज़ारों वर्षों से सारी दुनिया में फैलाने की कोशिश की जा रही है और कभी एक गांव में भी नहीं फैल पाये, तो क्या लोगों ने इस विचार को छोड़ दिया? सर्वोदय इस बिना पर नहीं छोड़ा जा सकता। आज उसके सफल होने के कोई साधन नहीं है। पर वह बीज-रूप में रहेगा ही। अभी ऋतु नहीं आई। बोया नहीं जा सकेगा। वह चिनगारी के रूप में रहेगा ही। अभी ईंधन नहीं आया। लौ में तबदील नहीं किया जा सकेगा।

फ्राइड की कृपा से जब आज कॉलिज का हर लड़का और लड़की अपने मां-बाप के बारे में यह कह सकते हैं

कि उन्होने हमें पैदा करके हमारे ऊपर क्या अहसान किया, उन्होने जो कुछ किया अपने आनन्द के लिये किया, हम तो पैदा हो गये, तब सर्वोदय की बात उनके गले कैसे उतर सकती है ? जो मां-बाप का अहसान नही मानता, जो मां-बाप की सेवा नहीं कर सकता, वह किसी दूसरे को उठाने की बात कैसे सोच सकता है ? जो आदमी अपना कपडा मैला हो जाने से डरता है वह कीचड में फसे आदमी को कैसे निकाल सकता है ?

श्रवण का सिनमा देखा जा सकता है ? मा-बाप को बहगी म विठाये हुए नगे पाव चलता हुआ वह चित्रपट पर देखा जा सकता है। सपने में भी नही देखा जा सकता। सचमुच चलते हुए देखने की तो कल्पना भी नही की जा सकती। चित्रपट पर श्रवण को देखकर सौ दो-सौ आखें आसू वहाती देखी जा सकती है, पर एक आख को भी ऐसा कोई सच्चा दृश्य देखकर एक आसू गिराने का सौभाग्य प्राप्त नही हो सकता।

सर्वोदय की बात उसके मुह से निकले तो शोभा देती है जो किसी से लड बैठे तो फिर मिलने के लिये किसी तीसरे की जरूरत न समझे। उसके मुह से भी निकले तो शोभा देती है जो किसी से लड बैठे तो न्याय के लिये उसीको मुन्सिफ मान ले जिससे वह लडा है। उसके मुह से भी शोभा देती है जो किसी से लड कर इसाफ के लिये वही किसी तीसरे आदमी को अपना मुन्सिफ मान ले। आज ज़रा-ज़रा बात में अदालत का दरवाजा खटखटाने वाले जब सर्वोदय की बात कहते है तो उनके मुह से वह शोभा नही देती।

यह ठीक है कि गाधीजी विश्वबन्धुत्व नामी बच्चा पालने के लिये हिंदुस्तानियो के हाथ में छोड गये हैं और यह भी ठीक है कि वह सर्वोदय से ही पल सकता है। लेकिन आज का भारत और चाहे किसी विचार को पाल सकता हो, विश्वबन्धुत्व के विचार को पालने की योग्यता नही रखता। पश्चिम वालो की दौड अहमन्यत्व की ओर है, विश्वबन्धुत्व की ओर नही। भारत पश्चिम के पाव पर-पाव रखकर चल रहा है। फिर यह नहीं कहा जा सकता कि वह विश्व-बन्धुत्व की ओर जा रहा है। और जब उधर नही जा रहा तो उसे सर्वोदय से क्या लेना-देना ।

सन् '२१ में जब सुराज की बात उठी तो कुछ लोगो ने यह चाहा कि उन्हें यह बताया जाये कि सुराज से मतलब कैसे राज से है। और उन्हे कुछ नहीं बताया गया, क्योकि सुराज लेने वालो के दिल में सुराज का ठीक-ठीक नक्शा ही न था, जिसका नतीजा यह हुआ कि आज भारत में कहने के लिये प्रजा राज है पर इस राज में वे सब बुराइया मौजूद है जो सन् '५७ से पहले कपनी के राज में मौजूद थी। आज सर्वोदय का भी कुछ ऐसा ही हाल हो रहा है। यह अभी तक साफ नही हुआ कि सर्वोदय से आपका मतलब क्या है। आज ऐसा क्या हो रहा है जिसे आप नही चाहते ? वह नही चाहते तो आप क्या चाहते है ? इस नासफाई का यह नतीजा होगा कि सर्वोदय के नाम से जो चीज खडी होगी वह ऐसा ही एक रूप ले लेगी, जैसे दुनिया के और धर्म।

नाम सर्वोदय रहेगा और एक छोटी सी जमात बन जायगी, जो अपने उदय की इतनी कोशिश करेगी जिसमें सबो का अस्त होना जरूरी होगा।

सर्वोदय में छोटे-बडे होगें, ऊचे नीचे भी होगे, ग़रीब-अमीर भी होगे। आज की किसी व्यवस्था में कोई अन्तर नही आयेगा। अन्तर आयेगा सिर्फ दिलो में। वह सब ऐसे ही एक हो गये होगे जैसे सन् '२१ में हो गये। घर में किसी बच्चे का उदय नही रुक पाता। बाग में बाग के किसी छोटे-से पौधे का उदय नहीं रुक पाता। वैसे ही दिल से एक हो जाने पर किसी के उदय में कोई रुकावट न होगी। आज चीनी कोरिया वालो की खातिर जान दे रहे है। और उनकी जान ले रहे हैं दूसरे। सर्वोदय की अवस्था होने पर जान देने वाले सब होगे और जान लेन वाला कोई न होगा।

आज के ढग की सरकारें, आज के ढग का व्यापार, आज के ढग का कला-कौशल, आज के ढग की तालीम, आज के ढग के खेल, आज के ढग की कला, आज का साहित्य, आज का बनाव-सिंगार, आज का रहन-सहन, आज के बोल-चाल के तरीके—इनमें से कोई एक भी ऐसा नही है जो हमें सर्वोदय की ओर ले जा सके। अगर कभी सर्वोदय के बीज में किल्ला फूटा तो वह शायद

यह दिन होगा जब हम आज की सभ्यता से ऊब चुके होंगे और यह समझ गये होंगे कि यह आज की सभ्यता ही है जो हमें एक-दूसरे के अन्त करने पर तैयार कर देती है। यह आज की सभ्यता ही है जो हममें सबसे प्रेम नहीं होने देती और यह आज की सभ्यता ही है जो हमें आगे बढ़ने से रोके हुए है और अब यह जरूरी है कि इस सभ्यता की तरफ से मुंह फेरा जाये और सर्वोदय के काम में लगा जाये।

पर यह दिन तो अभी पास नहीं मालूम होते। सर्वोदय की आवाज उठाए जाइये और शांति के साथ इन्तजार किए जाइये।

सत्याग्रह में ही सर्वोदय

जैनेन्द्रकुमार

सर्वोदय की मेरी अपनी निष्ठा को इधर कई ओर से चुनौती मिलती रही है। आस्तिक होकर इस विश्वास से मैं डिग तो सकता नहीं कि कुछ परम सत्य है जिसमें हम सब एक हैं। इस तरह सर्वोदय की निष्ठा मेरे लिए अनिवार्य ही है। पर इधर जान पड़ता है कि उस विश्वास को मुझे बलपूर्वक पकड़े रहना पड़ा है। उसपर चलना मुश्किल जान पड़ा है। जैसे वह ऐसा आदर्श हो जो यथार्थ से उलटा है। वह आसमानी हो और धरती उससे अछूती रह जाती हो। प्रवृत्ति उससे विमुख दीखती हो और निवृत्ति में ही उसकी सिद्धि हो। यानी उस निष्ठा में से कर्म की स्फूर्ति नहीं मिली है, वेग और अदम्यता नहीं प्राप्त हुई है, बल्कि जैसे एक हठ और एक कट्टरता हाथ रह गई है जो आदमी की कर्म-कुशलता को और उसकी लोक-संग्राहक शक्ति को खाती है।

गांधीजी के जमाने में सर्वोदय एक स्वयं-सिद्ध और सफल नीति जान पड़ती थी। उसके नीचे राष्ट्र एक और इकट्ठा हो रहा था, वह शक्ति पा रहा था और जन-जीवन का प्रत्येक तत्व अनुभव करता था कि वह उठ रहा है और बढ़ रहा है। समन्वय की नीति, जान पड़ता था, सबल और सफल नीति है। संघर्ष की नीति उसकी अपेक्षा में विफल या अल्पफल वाली है। वर्ग-विग्रह, साम्प्रदायिक स्पर्द्धा या दलगत होड़ उतनी सही या कार्यकारी चीजें तब नहीं जान पड़ती थीं। सैन्य या स्टेट की सत्ता में तब उतना सत्य नहीं दीखता था जितना जनता में और उसके रचनात्मक श्रम में। जान पड़ता था कि लड़ाई सब सतह पर है भीतर मेल और सहयोग है, और विग्रह उन लोगों का शौक है जो जनता की कृपा और मेहनत पर जीते हैं। राजनीतिक काम तब साफ ही दोयम था और रचनात्मक काम पहला। अहिंसा तब निरी भलमनसाहत नहीं थी, उसके साथ सत्य का योग था और उसमें प्रखर शक्ति थी। राजनीतिक सत्ता तब उस अहिंसात्मक शक्ति से स्वतन्त्र न थी, बल्कि उसकी अपेक्षा और अधीनता तक में थी।

गांधीजी के बाद स्थिति बदली। अब सर्वोदय का दर्शन प्रयासपूर्वक साथ रखना पड़ता है। वह उतना अमोघ और प्रत्यक्ष नहीं है। सर्वोदय के ऊपर पार्टी का उदय आ गया दीखता है। पार्टी ही सब जगह स्टेट बनाती है। वह बहुमत की होती है और अल्पमत को उसकी कृपा पर रहना पड़ता है। लोकतन्त्र की आजकल यही पद्धति है। शासन का तंत्र लगभग सब जगह इसी प्रकार का है। इसलिए स्टेटमूलक समाज-व्यवस्था सर्वोदयी व्यवस्था नहीं हो सकती। स्टेट की सत्ता सैन्य-निर्भर है। सैनिक का काम, गौरव उसे कितना भी मिले, अन्त में अनुत्पादक है। मानव-संपत्ति को बढ़ाने वाला नहीं, घटाने वाला है। उसकी सार्थकता विग्रह में ही है, युद्ध के अभाव में सशस्त्र सैनिक के लिए कोई काम नहीं रह जाता। इसलिए जहां काम-काज हकूमत के जोर से होते हैं वहां वातावरण सर्वोदय के बजाय दलोदय का हो जाता है। एक दल का जीतना दूसरे दल या दलों के हारने के आधार पर ही हो सकता है। और गांधीजी के जाने के बाद जैसे आज मुख्य और महत्वपूर्ण काम रचना और बनाना नहीं बल्कि चुनना और चुने जाना बन गया दीखता है। राजनीतिक के नीचे रचनात्मक आ गया है। यानी सर्वोदय ठीक है, रचनात्मक भी ठीक है;

लेकिन इस शर्त पर कि सर्वोदय दलोदय के नीचे हो और रचनात्मक राजनीतिक के मातहत हो। सक्षेप में विग्रहात्मक दर्शन ऊपर आगया है और हमारे काम-काज—अच्छे, उपयोगी, रचनात्मक काम भी—उसी के तले चल रहे है।

यह वस्तुस्थिति सर्वोदय-सम्बन्धी मेरी निष्ठा पर चुनौती बनकर आई है। मै अपने साथ अब भी झगड रहा हू और इस नतीजे पर आया हू कि खराबी वस्तुस्थिति मे नही है, न यही है कि विग्रहवाद में कोई नई शक्ति पैदा हो आई है, बल्कि या तो सर्वोदय का दर्शन हमारा एकागी है या फिर उसके प्रति हमारा समर्पण सपूर्ण नही है।

मुझे जान पडता है कि सत्याग्रह में ही सर्वोदय की सिद्धि है। आग्रह सत्य का रखना ही होगा। सर्व को सत्य से अलग हम कही पा या पकड नहीं सकते। गिनती का वह विषय नही है। अगर इतने करोड आदमी दुनिया में रहते है तो उन सबका या एक एक का, खयाल या लिहाज करके चलने में सर्वोदय नही सधेगा। ऐसे उलझन पैदा होगी और हो सकता है कि परिणाम में निश्चेष्टता हाथ आय। बाहर जो अनेकता है—बहुत से हित है, दल है, वर्ग है, देश है, राज्य है—उन सबके बीच हठात् जोड-मेल मिलाने की कोशिश सर्वोदय को पास नही लायगी। यह कोशिश सत्य के आग्रह को साथ रख बिना इतनी भावनामयी बनी रहेगी कि यथार्थ में उसका परिणाम कुछ न हो पायगा। इसलिए सर्वोदय के कार्यक्रम मे सत्याग्रह का तत्व यदि क्षीण हो रहेगा तो उसकी सारी रचनात्मकता जनसामान्य म सर्वोदयी भावना को उभार नही सकेगी और विग्रहवाद की बाढ को रोक नही सकेगी।

काग्रस के हाथ म आज स्वतन्त्र भारत की हकूमत की बागडोर है। उसने अभी चुनाव जीता है और पाच वर्ष के लिए केन्द्र म और प्रातो मे उसे शासन पर आना मिला है। काग्रेस गाधीजी की इच्छानुसार लोकसेवक सघ नहीं बन सकी। वह उन जनसेवको की जमात में अपने को नही परिणत कर सकी, जो प्रजाजन में घुलमिल कर खो जाय। प्रजा नही वह राजा बनी। नि सदेह यह उसने प्रजा के हित के लिए किया। गाधीजी को यदि यह लगता था कि प्रजा का पहला हित इसमें है कि स्वय प्रजा का अगागी बन जाया जाय तो काग्रेस का वैसा विश्वास न था। प्रजा से एकता बनाने से अधिक उसे प्रजा का उद्धार करना था। इसलिए प्रजा के जीवन-मान से कुछ उठकर रहना और नीचे न रहकर पदो पर रहना उसे अयुक्त नही जान पडा। ऐसी हालत में काग्रेस स्वय में राष्ट्र का प्रतीक या प्रतिबिम्ब नही रह गई। वह एक सगठन और दल बन गयी।

काग्रेस वह चीज थी जिसको गाधीजी का आशीर्वाद प्राप्त था। गाधीजी का दर्शन, कार्यक्रम और आन्दोलन काग्रेस के माध्यम से मूर्त हुआ। काग्रस के द्वारा गाधीजी का काम सामने आया और फैला और अपनी मजिल तक पहुँचा। उस वक्त अनेक दल और वर्ग और हित अपने-अपने विरोध मे मिटते चले गए और काग्रस के भीतर एक बडे अविरोध में मिलते चले गये। काग्रेस उस समय मानो एक सगठन न थी, वह स्वय एक आदर्श और जागरण थी। शायद अतीत का वही बल है जो काग्रेस को हुकूमत पर थामे हुए है। लेकिन वह बल कम हो रहा है। स्वय जवाहरलालजी जन-सपर्क की बात बारबार कहते है यानी उसकी कमी अनुभव करते हैं। इसका क्या यही मतलब नही है कि सर्वोदय से काग्रेस च्युत होकर पक्षोदय की तरफ आ रही है और इसलिए निर्बल पड रही है?

प्रश्न है कि सर्वोदय अपने प्रति और इस पक्षोदय और पक्षाग्रह के प्रति क्या करे? केवल इस कारण कि गाधीजी का उसे नेतृत्व मिला था अपने मे दल बन जाने पर उस काग्रेस के साथ सर्वोदयी तद्गत नही हो सकता। उसकी सहानुभूति खुली रहनी ही चाहिए और काग्रेस के साथ उसे समाप्त होने का हक नही है। काग्रेस को सर्वोदय-नीति के प्रति जगा हुआ रखने का काम जिसका है वह स्वय उसमें सीमित नही बन सकता।

सर्वोदय क्या अराजनीतिक रहे? यह प्रश्न उठता रहा है और आगे भी उठना रहेगा। पर वह सैद्धान्तिक है। शायद उस प्रश्न को स्वय मे खतम न होने की सुविधा भी इसीलिए है कि वह सैद्धान्तिक है। यथार्थ में जीवन में खाने-बन्दी नही है और कोई प्रभाव व्यापक होने पर अराजनीतिक रह नही सकता। या तो सचेत रूप से राजनीतिक या फिर राजनीति का निश्चेष्ट आखेट। भावना की व्यवस्था में गिनती नही है और इसलिए भावनात्मक सर्वोदय को ही राजनीति की गणना मे न आने की सुविधा है।

लेकिन इसी जगह उलझन है। और मुझे जान पड़ता है कि सर्वोदय शब्द की व्याप्ति भावना तक है। सबका भला हम चाह सकते हैं, चाहते हैं, पर कर किसी तरह नहीं सकते। जहां लोगों को अपनी भलाई पदार्थ से जुड़ी मालूम होती है उस संसार में एक की भलाई में दूसरे की बुराई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। धन का समान वितरण हो तो किसी से लेकर किसी को देना होगा। जिसको दिया उसकी भलाई है तो जिससे लिया उसकी बुराई दीख आएगी। लौकिक हित और स्वार्थों में इस तरह परस्पर-विरोध रहता ही है। सर्वोदय को इस लौकिक धरातल से अछूता रखकर चलाने में ही असली सर्वोदयता अक्षुण्ण रहती जान पड़ती हो, तो सर्वोदय कुछ ऐसा निरा आध्यात्मिक हो जायगा कि जागतिक तल पर शून्य दीख आय। वह चीज भारत में कम नहीं रही; लेकिन उतने से काम नहीं चला। भावना की जबकि सीमा नहीं है तब कर्म सदा सीमित होगा। इसी कारण कर्म से तटस्थता एक प्रकार का पलायन है। वह असामाजिक अतएव अनाध्यात्मिक है। सर्वोदय में यदि कर्म का समावेश है तो उसकी सफलता के लिए भावुकता के साथ एक निर्ममता भी आवश्यक है। सर्वोदय की कार्य-प्रणाली में यदि कुछ बिछुड़ते हों, कुछ असुविधा अनुभव करते हों, कुछ उसे अपने लिए हठात् अप्रिय मानते हों, तो इस कारण वह प्रवृत्ति सदोष नहीं हो जाती। निश्चय ही हर प्रवृत्ति सविनय होगी किंतु उससे अधिक मांग प्रवृतिशील से नहीं रखी जा सकती। वह अहिंसा को कायरता बना देना होगा।

विनोबा का भूदान-यज्ञ सर्वोदय की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। ज़मीन भगवान ने दी है, लेकिन यहां उसका स्वत्व बट गया है। वह सबकी नहीं है, केवल उपयोग और श्रम की नहीं है। श्रम के योग से वह हमको अन्न और फल देती है इसलिए न्याय से वह उसकी है जो अपने श्रम के योग से धरती को अन्नदा और फलदा बनाता है। विनोबा उनसे जिनके पास अधिक है धरती लेते हैं उनके लिए जिनके पास नहीं है। यह काम सद्भावना के बल पर होता है। दूसरे किसी बल से नहीं। आजके दिन यह बड़ा काम है और सद्भावना के सामर्थ्य से जिनका विश्वास उठ गया है उनकी आंख खोल दे सकता है।

लेकिन सर्वोदय की श्रद्धा इतनी गहरी आदमी में पठे कि विग्रह का विश्वास उसमें से निर्मूल हो जाय, इसके लिए आवश्यक है कि विग्रह और संघर्ष में से सधने वाली शक्ति प्रत्यक्षतः आदमी को निर्बल दीख आए। अन्याय पलता है क्योंकि उसको सह लिया जाता है, उसका प्रतिकार नहीं किया जाता। असत्य भी उसी प्रकार अपनी शक्ति से नहीं जीता, शक्ति उसमें है ही कहां। फिर भी जीता दीखता है तो इसलिए कि सत्य चुप रहता है। सत्य के इस आग्रह में ही असली शक्ति पड़ी है। उस प्रकार के आग्रह में से सविनय अवज्ञा और कानून-भंग भी निकल सकता है। कुछ उस प्रकार का काम आज की जैसी विकट और भीषण परिस्थिति में सर्वोदय यदि जगा सका तो संभव है कि वह प्रकाश लोगों को दीख आय जिसकी इस अंधेरे में जरूरत है।

भूदान श्रमिक को धरती तो दे देगा; पर श्रमिक को अपना श्रम-फल भी मिले, वह उसके हाथों से उड़कर कहीं दूर के गोदामों में नहीं पहुंच जाय, इसका उपाय भी सर्वोदय-दृष्टि को दिखाना और सर्वोदय के कार्यक्रम को करके बताना होगा। दुनिया में सल्तनतें बदली हैं और व्यवस्था बदली है। यह काम खूनी क्रांति के ज़रिये हुआ है। हाल की यह बात है, और इन क्रांतियों का पूरा और सही परिणाम जांचने के लिए अभी समय का अंतर काफी नहीं है। क्रांति का खूनीपन कोई खूबसूरत चीज़ नहीं कही जा सकती। उसे बढ़िया भी कोई नहीं मानता। मानना चाहिए कि मनुष्य उससे अधिक सभ्य और संस्कृत हो रहा है। क्रांति वह करेगा, कर सकता है, पर आदमीयत के रास्ते से, जानवरियत के सहारे नहीं। यह श्रद्धा सर्वोदय की है। विग्रहवाद एक नक्शा देता है जिसमें सारा ढांचा रूपांतरित दीखता है। स्टेट जैसे महायंत्र को शुद्ध और श्रमाधीन बना दिखाने का उसका दावा है। अगर खूनी क्रांति टलनी है तो सर्वोदय को वह सब काम करके बताना अपना जिम्मा मानना होगा। स्टेट आधुनिक मानव-विज्ञान का सबसे बड़ा और पेचीदा यंत्र है। उसका परिष्कार सर्वोदय करेगा या उससे असहकार? उसके प्रति नितांत तटस्थ और निवृत्त रहने से उन असंख्य लोगों को कोई ढाढ़स नहीं पहुंचता जो अपने

नित्यप्रति के सुख-दुःख को उस स्टेट के महायंत्र से सीधा जुड़ा देखते हैं।

सत्य यदि एक किनारा है तो अहिंसा दूसरा। दोनों से नियत होकर ही जीवन कुछ कर सकता और उठ सकता है। रचनात्मक प्रवृत्तियों में कर्मण्यता ही रहेगी और सत्याग्रह का श्वास उसमें नहीं होगा तो उससे चैतन्य नहीं उभरेगा। पुनर्निर्माण के लिए — अपना पुनर्निर्माण और लोक का भी—स्वीकार और इनकार दोनों का योग चाहिए। स्वीकार में से संग्रह आता है जिसका सूत्र है विनय और सेवा। यह अहिंसा की माग है। किन्तु इनकार उतना ही आवश्यक है और इसकी शक्ति सत्य में से लेनी होगी। वर्जन, इनकार, प्रतिकार—इस शक्ति को भी जगाना होगा, यदि भावना से नीचे योजना और कर्म के धरातल पर भी सर्वोदय को सशक्त और प्रखर बनना है। इसी अवस्था में वह विग्रहात्मक दर्शन को पूरी तौर पर अनावश्यक बना सकता है। अन्यथा खतरा है कि वही पहले जैसा द्वैत हमारे जीवन में घुस बैठे। यानी कि निवृत्त संत के लिए अध्यात्मनीति और प्रवृत्त संसारी के लिए वैर-विग्रह-नीति। इस प्रकार का खंडित जीवन मानव विकास में अब असह्य बन जाना चाहिए। यह दर्शन अब अनिवार्य हो आना चाहिए कि धर्म दो नहीं है, जीवन के उत्कर्ष की नीति एक है। संसार और मोक्ष विमुख नहीं है और दोनों की समीचीन उपलब्धि के लिए साधना एक ही है।

जीवन की गहराई में

हरिभाऊ उपाध्याय

'भारत छोडो' आन्दोलन का श्रीगणेश विश्वयुद्ध की जिन भीषण और विकट परिस्थितियों में गांधीजी ने किया था, उसे देखते हुए कोई यह नहीं कह सकता था कि इस आन्दोलन में कूद पड़ने वालों की कब क्या गत होगी, कौन कहां होगा, और अन्त को देश की भी क्या स्थिति होगी! मैंने घर वालों से कह दिया था कि जितना रोना-धोना हो, एक दिन रो धो लो। भागीरथी देवी से कहा कि समझ लो, तुम्हारा सुहाग आज समाप्त हो रहा है। इस बार जेल ही नहीं, संभव है गोली से भी उड़ा दिये जाय। यदि तकदीर से बचकर सही-सलामत घर आ गया तो खुशी मना लेना कि तुम्हारा सौभाग्य वापस आ गया है। मगर रोज-रोज चिन्ता और शोक करना बुरा होगा। जेल में सब प्रकार के कष्टों और कटु तथा बुरे अनुभवों की तैयारी मैंने कर ली थी।

बम्बई में बापू की गिरफ्तारी के ३-४ दिन बाद मैं मध्य भारत की ओर रवाना हुआ। खयाल यह था कि राजस्थान, (मध्य भारत, राजपूताना, अजमेर-मेरवाड़ा) में कुछ काम करके और फिर काम करते हुए ही पकड़ा जाऊं। मैं रतलाम होता हुआ पहले इंदौर पहुंचा। 'भारत छोड़ो' के प्रस्ताव में राजा-महाराजाओं से अंग्रेजी हुकूमत का साथ छोड़ने की अपील की गई थी। इन्दौर के वर्तमान महाराजा श्रीमन्त यशवन्तराव होलकर बड़े स्वाभिमानी और भावुक व्यक्ति हैं। वे कुछ समय पहले भारत की स्वाधीनता के पक्ष में खुलमखुल्ला एक ऐसा वक्तव्य दे चुके थे जो अंग्रेजी हुकूमत को बहुत खटका था। उनकी सरकार में उस समय दो-तीन ऐसे व्यक्ति थे जिनमें मेरा पुराना परिचय था, महाराजा पर भी उनका प्रभाव था। उनके द्वारा मैंने महाराजा तक यह अपील पहुंचाने का प्रयत्न किया। दोनों-तीनों व्यक्तियों के रुख की मुझपर अच्छी छाप पड़ी। सहानुभूति सबने बताई—एक ने कहा, "मैं महाराजा को यह सलाह देने के लिये तैयार हूं, परन्तु मैं जूनियर हूं—सीनियर वे हैं, यदि वे तैयार हो जाएँ तो मैं अवश्य उनका साथ दूंगा।" सीनियर व्यक्ति ने कहा—"हमारी सलाह पर महाराजा साहब अवश्य तैयार हो जायगे, परन्तु उन्हें तुरन्त गद्दी से उतरना होगा। आज कांग्रेस में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह अपने बल से महाराजा की रक्षा कर सके।" मैंने कहा—"मैं प्रजा मंडल के सब नेताओं से सलाह करके उनकी तरफ से यह कहने आया हूं कि यदि महाराजा साहब इस अपील को मान लें तो इंदौर राज्य का एक-एक व्यक्ति उनकी रक्षा में जान लड़ा देगा। अंग्रेजी राज्य के खत्म होते ही देशी-नरेशों को कांग्रेस की शरण आना पड़ेगा। अतः आज अंग्रेजों

और सिपाहियों—का दंगा निकला। मैंने दंगे के मुकामों पर जाना चाहा; परन्तु साथी मित्रों ने रोक दिया और मुझे इत्मीनान दिलाया कि स्थिति जल्दी ही काबू में आ जायगी।

दंगे तथा आन्दोलन दोनों दृष्टियों से मैं वहां के मुख्य अधिकारियों से भी मिला। शान्ति-रक्षा उभयपक्ष के हित में थी—यद्यपि अंग्रेजी सल्तनत को तो शान्ति-भंग से मनचाही मदद ही मिल सकती थी; पर हिंदुस्तानी अधिकारी इस दांव को समझते थे और उन्होंने मुझे यकीन दिलाया कि जबतक विद्यार्थी या जनता शान्ति-भंग नहीं करेंगे तबतक हम कानूनी कार्यवाही के अलावा आन्दोलन को कुचलने का खास तौर पर प्रयत्न नहीं करेंगे। जिस तत्परता और साहस से उज्जैन के कार्यकर्ताओं ने उस दंगे को शान्त किया उसकी अच्छी छाप लेकर मैं जयपुर गया।

वहां पहुंच कर पता लगा कि बापूजी तथा कार्य-समिति के सदस्यों की गिरफ्तारी के बावजूद जयपुर नगर में हड़ताल तक नहीं हुई और वहां के प्रजामंडल के कार्यकर्ता बम्बई से तथा और कहीं से सूचना मिलने की राह देखते रहे। मैं वनस्थली भी गया। वहां लोग यह माने बैठे थे कि आन्दोलन खत्म हो गया है और अब यह पनप नहीं सकता। हां, कुछ लोग तुले हुए थे कि हम आन्दोलन चलायेंगे, सत्याग्रह करेंगे और जरूरत होगी तो प्रजामंडल से अलग होकर भी आजादी की आखरी लड़ाई लड़ेंगे। वहां ऐसी ठंडक छाई हुई थी कि जयपुर में हड़ताल नहीं हुई. इस बात पर चर्चा चलाते हुए मुझे मित्रों से यहां तक कह देना पड़ा कि जब बापूजी की गिरफ्तारी यहां हड़ताल के लिये काफी नहीं है तो शायद उनके मरने की राह यहां के लोग देखते होंगे। कुछ दिन के प्रयत्न से अन्त में प्रजामंडल और आजाद मोर्चा के लोगों ने मिलकर आन्दोलन चलाने की एक योजना बनाई।

मेरा विचार कुछ दिन और जयपुर ठहरने का था; लेकिन कोटा से पुकार आई और मुझे वहां जाना पड़ा। मुझे उज्जैन में ही पता लग गया था कि पुलिस मेरी तलाश में है। मैंने एक निश्चय कर लिया था कि छिप कर काम करना नहीं और खामखा पुलिस के पंजे में भी

जाना नही। लेकिन वर्म धर्म सयोग से कोटा-स्टेशन पर उतरते ही एक पुलिस इन्सपेक्टर ने हाथ मिलाया जो पहले भी अक्सर वहाँ मिला करते थे। मुझे जरा भी शक नही हुआ। दो-चार मिनिट मामूली बातचीत करके मैं आगे बढ़ने लगा—कुली मेरा सामान लेकर आगे चल चुका था—कि पुलिस अफसर ने कहा, "उपाध्यायजी आप तो मेरे साथ चलिये।" मैं समझ गया और मैंने पूछा-'वारट-सारट भी है?' उन्होने कहा, 'सो तो कुछ नही है, परन्तु अजमेर से जिन लोगो की तलाश में सरकार है उनमें पहला नाम आपका ही है और हमें हुकुम है कि जहा कही भी मिलें आपको गिरफ्तार कर लें।" मैं प्रसन्नता से उनके साथ हो लिया। मैं साधारण सद्व्यवहार के लिये तो तैयार था, परन्तु उसने जो असाधारण विश्वास मुझपर प्रकट किया उसकी मैंने आशा नही की थी। उसने कहा—"पडितजी, आपकी सचाई के हम सब लोग कायल हैं इसलिये मैं आपकी तलाशी नही लूगा। हमारे काम की जो चीज आपके पास हो वह आप मुझे दे दीजिये?" मैंने सचमुच ही उनको आखो में देखकर मेरे पास उनकी दृष्टि से जो आपत्तिजनक कागजात थे वे सब उनको दे दिये। जब उन्होने एक कमरे में मेरे सोने की व्यवस्था की तब भी मुझसे कहा—'पडितजी, मैं कोई खास पहरा-चौकी आप पर नही रख रहा हूं।" मेरे मन ने कहा—"पुलिस-अफसर और इतनी विश्वासशीलता! भगवान के यहा किस आश्चर्य की कमी है!"

(क्रमश)

रामनारायण उपाध्याय

रचनात्मक कार्यक्रम की शक्ति

जब हमारा देश गुलाम था, तब भी यहा रचनात्मक कार्य चलते थे, देश में उत्साह और जागृति थी और राष्ट्र लगातार प्रगति कर रहा था। लेकिन आज यह कहा जाता है कि क्या करें, रचनात्मक कार्य चलते नही, देश में उत्साह नही है और सर्वत्र निराशा एव अकर्मण्यता का वातावरण है।

बात यह है कि गांधीजी ने हमें सत्य के समर्थन के साथ असत्य का प्रतिकार करना भी सिखाया और अहिंसा के पालन के साथ, हिंसा से मुकाबला करने का मार्ग भी दिखाया। सत्य का दृढता से पालन और असत्य का नम्रता से प्रतिकार, यही उनका जीवन-सूत्र था।

उन्होंने न सिर्फ 'स्वराज्य' की बात कही, वरन उसके लिए सत्याग्रह, असहयोग, सविनय कानून भग और 'भारत-छोडो' जैसे महान क्रातिकारी आन्दोलन चलाकर विदेशी हुकूमत का जमकर मुकाबला किया और इस प्रकार भारत को आजादी दिलाई।

उन्होंने न सिर्फ 'स्वदेशी' की बात कही, वरन हाथ पिसे आटे, हाथ कुटे चावल, घानी के तेल और हाथ-कती हाथ-बुनी खादी के जरिये, मत्रोद्योग और विदेशी के खिलाफ,एक सशक्त मोर्चा तैयार किया और इसको लेकर एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया, जिससे लोगो ने स्वेच्छा से विदेशी वस्त्रो की होली जलाई, देश और विदेश की मिलो का वस्त्रोद्योग डगमगाया, खादी हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की पोशाक बनी और आज भी चरखा मिल के खिलाफ एक अहिंसात्मक क्रांति का प्रतीक बनकर चल रहा है।

उन दिनों जब देश में साम्प्रदायिकता को लेकर हिंसा जगी, उन्होने एक अहिंसक सेनानी की तरह उसमें प्रवेश कर, हिंसा पर अहिंसा से विजय प्राप्त की और यों साम्प्रदायिक एकता के मार्ग को भी प्रशस्त बनाया।

उन दिनों जब देश में कानून से शराब बन्दी नही थी, गाधीजी ने एक ओर यदि शराब के खिलाफ, नैतिक जमीन तैयार की, तो दूसरी ओर शराब की दूकानो पर विनम्र पिकेटिंग कर उसे जड़मूल से बन्द करने का प्रयत्न भी किया। यही नही वरन् उन्होने घर की चारदीवारी और पर्दे से घिरी महिलाओ को शराब की दूकानो पर पिकेटिंग के लिए तैयार कर महिला-समाज में भी एक अभूतपूर्व जागृति को जन्म दिया।

और ऐसे समय में जब लोग, अछूत की परछाई से भी परहेज करते थे, उन्होंने सबसे नीचे माने जाने वाले हरिजनों को, सबसे पवित्र माने जाने वाले मंदिरों में स्थान दिलवाकर हिन्दू-धर्म पर से अस्पृश्यता के कलंक को मिटाया और यों समाज में एक आमूल क्रांति की।

इस तरह उन्होंने अपने जीवन में रचनात्मक कार्यक्रम के साथ-साथ अहिंसात्मक आन्दोलनों का समन्वय साधकर, देश को जाग्रत किया, ऊंचा उठाया, आगे बढ़ाया और संघर्ष में से एक नये समाज की रचना की।

इतिहास में गांधीजी पहले आदमी थे जिन्होंने अपने जीवन में संत और योद्धा के गुणों का समन्वय साधा। लेकिन लगता है कि स्वराज्य के बाद हमने गांधीजी के संतत्व को तो स्वीकार किया; लेकिन उनके आंतरिक सेनानी-स्वरूप को भुला दिया। हमने उनके असांप्रदायिक राष्ट्र के सिद्धांत को तो माना, लेकिन सांप्रदायिकता के जहर को जड़मूल से उखाड़ फेंकने में अपना समुचित योगदान नहीं दिया। हमने सच को सच तो कहा; लेकिन झूठ (गलत) का विरोध नहीं किया। यही वजह है कि सांप्रदायिकता हमारी बगल में बढ़ती गई और एक दिन उसने हमारे राष्ट्रपिता की हत्या कर डाली।

यदि हम ग्राम-उद्योग की बात तो कहें, लेकिन मिल का शेयर भी खरीदें, खादी पहनें किन्तु विदेशी का लोभ संवरण न कर सकें, कानून से मंदिर-प्रवेश बिल तो पास करावें, लेकिन हरिजनों को अपने साथ मंदिर में न ले जा सकें तो हम और हमारे कार्य आगे बढ़ने वाले नहीं हैं।

यदि हम श्रम-निष्ट, शोषण-विहीन, विकेन्द्रित, स्वावलम्बी, अहिंसक समाज की रचना करना चाहते हैं तो हमें केन्द्रीय यंत्रीकरण और शोषण का विरोध भी करना होगा।

हम यह न भूलें कि सिर्फ प्रकाश का होना ही अंधकार की समाप्ति का सूचक नहीं है। सूर्य के प्रखर और प्रचंड तेज के बावजूद अनेक बार अस्तित्वहीन, घने काले बादल भी, कुछ क्षण के लिए ही सही, धरती पर अंधेरा कर देते हैं। प्रकाश को मिटाने की शक्ति भले ही किसी में न हो, लेकिन उसे ओट में कर सत्यमार्ग को धूमिल बनाये जाने के प्रयत्न सदा से होते आये हैं।

इसलिए जिस तरह बादलों को विछिन्न करके ही किरणें धरती पर प्रवेश पाती आई हैं, उसी तरह असत्य एवं अन्याय का प्रतिकार करके ही सत्य और न्याय की राह आगे बढ़ा जा सकता है।

यदि हम अपने कार्यों में संपूर्ण सफलता चाहते हैं तो हमें अपने जीवन में गांधीजी के रचनात्मक और आंदोलनात्मक दोनों तरह के कार्यों का, समन्वय करना होगा।

कांच और दर्पण

साहूकारी का धन्धा करने वाला एक बूढ़ा यहूदी बहुत ही लालची था। एक बार वह अपने धर्मगुरु के पास गया। धर्मगुरु ने उसका हाथ पकड़ा और उसे खिड़की के पास ले गये। बोले, "बाहर देखो, और बताओ कि तुम्हें वहां क्या-क्या दिखाई देता है?"

यहूदी ने उत्तर दिया, "रब्बी, मुझे कुछ मर्द, औरतें और छोटे-छोटे बच्चे दिखाई पड़ते हैं।"

धर्मगुरु फिर उसे आईने के पास ले गये और पूछा, "अब तुम्हें क्या दिखाई देता है?"

"अब तो मैं सिर्फ अपने को ही देखता हूं"—उसने जवाब दिया।

धर्मगुरु ने कहा, "देखो, खिड़की में भी कांच लगा है, और इस आईने में भी। लेकिन आईने के कांच पर थोड़ी चांदी लगाई गई है और यह आईने के साथ चांदी के मिलने का ही परिणाम है कि तुम दूसरों को देख नहीं पाते, सिर्फ अपने को ही देखते हो।"

अमृतलाल मोदी

दाँता तालुके का भील प्रदेश

भारतवर्ष बहुत पुराना व विभिन्न जातियो का देश है। जब आर्य लोग भारत में आकर बसे तो कहा जाता है कि यहा के मूल निवासी देश के दक्षिण भाग में तथा दूसरे भीतरी भागो में जहा आर्य लोग उनका पीछा न करे, बस गये। आर्य लोग कुछ सुसस्कृत थे तथा मूल निवासी द्राविड, भील, मेना, नागा और रानीपरज आदि जातिया अर्धजगली थी। आर्य लोग मैदानो में बसे तो ये लोग पहाडो में जा पहुचे।

आज भी भारत के करीब-करीब सभी भागो के पहाडी इलाको में ऐसे मूल निवासी पाये जाते हैं। आसाम बिहार, राजस्थान, गुजरात, दक्षिण आदि में कई ऐसे स्थल हैं जो बहुत भीतरी हैं और जहा आदिवासी लोग बसते हैं। गुजरात में पचमहाल, डाग, सूरत आदि जिलो में ये लोग पाये जाते हैं। बनासकाठा व साबरकाठा जिले में रहनेवाली भील बस्ती राजस्थान में उदयपुर, सिरोही, डूगरपुर, बासवाडा आदि में पाई जाने वाली भील व ग्रासिया कौम से मिलती-जुलती है।

बम्बई राज्य ने अपने सभी जिलो में ऐसे आदिवासी तथा पिछडे हुए वर्गों में काम करने के लिये सर्वोदय-केन्द्र खोले हैं। इनमें पुराने काग्रेस के रचनात्मक कार्यकर्ता काम करते हैं—उनपर सचालन का भार है, सरकार मदद देती है और इन लोगो की उन्नति के लिये ये केन्द्र काम करते हैं। बम्बई के सभी जिलो में एक-एक केन्द्र है। ऐसे बीस केन्द्रो में से दाँता तालुका के सणाली गाव में बनासकाठा के पुराने कार्यकर्ता श्री अकबरभाई के सचालकत्व में एक सर्वोदय-योजना का केन्द्र चल रहा है।

सणाली गाव सारे दाँता राज्य में 'चोरो के गाव के तौर पर मशहूर है। यह दाँता से पूर्वोत्तर दिशा में सोलह मील तथा आबू रोड से दक्षिण में करीब तीस मील है। यहा पहुचने के लिये साधारणत पगडडी या बैलगाडी का रास्ता और अपनी खुद की टागो का सहारा लेना पडता है। सर्वोदय-योजना को चलते हुए करीब एक वर्ष हो चुका है और केन्द्र का महत्त्व स्थापित हो जाने से कभी-कभी जीप-गाडी भी नजर आ जाती है।

सारे दाँता तालुका में पहाड व जगल हैं—बस्ती बहुत छिछली है। यहा सारा प्रदेश ही भीली बस्ती का है। ये भील-ग्रासिये लोग राजस्थान के दक्षिणी हिस्से के लोगो से मिलते-जुलते हैं। इस जगल के बीच लोगो की आजीविका का कोई साधन न होने से सर्दी, बरसात या गर्मी, हमेशा ये लोग बाहरी प्रदेशो में चोरी करके अपनी आजीविका चलाते हैं। राजा भी (पहले यह प्रदेश राजस्थान एजेन्सी में देशी रजवाडा था, अब बम्बई प्रात में विलीन हुआ है) उसमें से अमुक हिस्सा दाण—कस्टम—के नाम से पाता और वे चोरी के अपराध से मुक्त समझे जाते। अब यह धन्धा विलीनीकरण व आजादी के बाद छिन गया है।

सणाली का आश्रम दोनों तरफ नदियो व पहाडो के बीच में व दो नदियो के सगम पर बसा है। अब लोग यहा पर अपने दु ख-दर्दों को सुनाने, झगडा निपटाने व दवा-दारू के लिये आते हैं। आश्रम के पीछे ही सणाली गाव है। गाव क्या, बिखरी हुई झोपडियो का एक समूह है। भील-ग्रासिये लोग कभी इकट्ठे घर बाधकर नही रहते। ये आधे जगली, अर्धजाग्रत, अज्ञानी व अपढ हैं—पर रहेगे अग्रेजो की तरह अलग-अलग बगलो में यानी घासफूस की झोपडियो में।

भील-ग्रासिये लोगो की आजीविका का साधन जगल व जगल से उत्पन्न होने वाली वस्तु व उनकी बिक्री है। खेती उनका धधा है; पर उससे साल में छ महीने मुश्किल से गुजरते हैं। कुए व सिंचाई के साधन बहुत कम लोगो के पास हैं। यहा की मुख्य फसल मकई (मक्की) है। आजकल लोग तिल भी बहुत बोते हैं। कुछ मूगफली, गेहू, डागर या चावल आदि की खेती भी होती है।

खेती में स्त्रियाँ मुख्य भाग लेती हैं। पुरुष कुछ आलसी होते हैं। वे आरामपसन्द हैं। जबतक जेब में एक पैसा भी होगा वे मेहनत मजदूरी करना पसन्द न

करेंगे। इस बारे में इनमें सूझ वाले लोग बहुत कम पाये जाते हैं। खेत में बोना, नींदना, काटना आदि सभी काम स्त्रियां करती हैं। पुरुष अक्सर हल चला देते हैं।

इन लोगों के कई रीति-रिवाज अंग्रेजों से मिलते-जुलते हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि भारत के दूसरे लोगों में जो संस्कृति है, वह इन लोगों को ज़रा भी नहीं छू गई। ये लोग अर्ध-जंगली व अर्ध-संस्कृत हैं। भारतीय प्रजा में ब्रह्मचर्य व सतीत्व की भावना बहुत दृढ़ है। नई शिक्षा के कारण ये विचार बहुत ढीले पड़ गये हैं। पर इन भील-ग्रासियों में मानो वह संस्कार हैं ही नहीं। स्त्रियां काफी स्वतन्त्र होती हैं और व्यभिचार बहुत बुरा नहीं माना जाता। गरमी व सुज़ाक के रोग भी अक्सर पाये जाते हैं। यूरोपीय प्रजा में भी ब्रह्मचर्य की कोई तीव्र भावना नहीं है।

हरेक व्यक्ति कई शादियां कर लेता है। एक ही पुरुष के तीन-चार जीवित स्त्रियों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दो स्त्रियां तो बहुत साधारण हैं। एक ही स्त्री का पति बहुत कम। वह भी कम उम्र या कम ज़मीन होने के कारण ही होगा। स्त्रियां खेती में मजदूरों का काम देती हैं इसलिये भी बहुपत्नी-प्रथा है। इनके कुटुम्ब बहुत बड़े होते हैं। एक ही पुरुष के दस-बीस बच्चे तो साधारण-सी बात है। पर शादी होने पर अक्सर लड़के अपना नया घर बसा लेते हैं।

मेलों-त्योहारों आदि पर नाच होते हैं, तब लड़का-लड़की एक-दूसरे को पसन्द कर लेते हैं और वे साथ-साथ जंगल में चले जाते हैं। तब माता-पिता को पता चलता है और फिर सगाई व शादी हो जाती है। कभी-कभी शादी की रस्म पूरी किये बिना ही लड़की अपने पति के साथ रहने चली जाती है। फिर जिस वर्ष अच्छी फसल होती है शादी की रस्म अदा कर दी जाती है। लड़के को शादी के लिये लड़की के बाप को कुछ पैसे देने पड़ते हैं।

एक ही स्त्री अपने जीवनकाल में तीन-तीन चार-चार पति कर लेती है। विच्छेद दोनों ओर से हो सकता है, पर गांव के लोगों का निर्णय ज़रूरी है। झगड़ा होने पर या और किसी कारण से स्त्री रुष्ट होकर अपने पीहर चली जाती है या कभी पति निकाल देता है। फिर उसके मायके वाले दूसरी शादी करा देते हैं। विधवा विवाह तो होते ही हैं—पर कम उम्र में विधवा होना नहीं पाया जाता। अपवाद भले हों—क्योंकि बालविधवायें बाललग्न वाले समाज में ही अधिक होती हैं।

अक्सर स्त्री-पुरुष साथ-साथ घूमते हैं, साथ ही मेलों आदि में भी जाते हैं। घूंघट बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है। लड़की या लड़के का बाप पास में होने पर भी पति-पत्नी साथ रहते हैं। नृत्य में भी स्त्री-पुरुष साथ ही भाग लेते हैं।

जब लोग एक-दूसरे से मिलते हैं तो प्रेम दिखाने के कई तरीके हैं। ये लोग हाथ मिलाते हैं—दूर से सलाम या हाथ नहीं जोड़ते। मुंह से राम-राम बोलेंगे, पर हाथ अवश्य मिलायंगे। स्त्रियां भी आपस में मिलने पर हाथ मिलाती हैं। एक-दूसरे को गले भी लगाती हैं और छाती से चिपट जाती हैं। पुरुष से पुरुष भी निकट सम्बन्धी होने पर एक दूसरे को छाती से लगाते हैं। एक पुरुष और एक स्त्री के मिलने पर निकट सम्बन्धियों में हाथ चूमने का रिवाज है। बहुत निकट की हो तो पीठ भी सहलाते हैं। फिर छोटे बड़े का सम्बन्ध हो तो स्त्रियां पुरुष को बहुत नीचे झुककर सलाम करती हैं, ऐसा मैंने देखा है। ऊपर के रिवाजों के मुकाबले यह अजीब तरीका है। पता नहीं यह इनमें कैसे आ गया! रास्ते के बीच में मिलने पर भी घर पर मेहमान के आने की तरह ही स्वागत-शब्दोच्चार करते हैं।

मेहमान घर पर आजाय तो वे काफी स्वागत-सत्कार करते हैं। सरकारी नौकरों की बात तो दूसरी है। तलाटी या पुलिस वाला ठहरेगा तो वह तो जबरदस्ती खाट-बिस्तरा, आटा व घी ले लेगा। मामूली मेहमान की भी और खासकर बाहरी (इनकी जाति का न होने पर) मेहमान की खूब आवभगत करते हैं। जो-कुछ अपने पास हो उसे खिला-पिलाकर खुश होंगे। खुद भले कुछ न खायं पर पास में दो पैसे भी हों तो मेहमान के लिये घी-गुड़ हाजिर कर देंगे। दूध, छाछ का तो पूछना ही क्या? हां, आप उनकी मेहमानदारी स्वीकृत करेंगे या नहीं, इसकी शंका उन्हें रहती है; ऐसा पता लगा है। वे अपने

आपको दूसरे वर्गों से कुछ नीचा अनुभव करते हैं।

ये लोग दूर-दूर झापडियो में रहते है। अक्सर हर-एक की झोपडी अपने-अपने खेत में होती है। सामन ही खेत होता है। झोपडी घासफूस की या बास काटकर तथा चीरकर उससे बनाये हुए कटलो द्वारा दीवार खडी करके बनाते हैं। मिट्टी के घर भी अक्सर पाये जात है जो दूसरो को मजदूरी देकर बनवाने पडते हैं। ढक्ने के लिये घास, खाखरा के पत्ते या फिर केलू काम में लाये जाते है। अक्सर घर छोटा-एक ही कमरे के रूप में-होता है। मामूली स्थिति वाले के घर में मिट्टी की एक या दो कोठी-जिसमें फसल का अनाज भरकर रखा जाय एक तरफ चूल्हा-केवल तीन पत्थर, एक हाडी, रोटी बनाने को मिट्टी का ठीकरा-दूसरी तरफ एक पानी का मटका व मिट्टी का पानी लेने का बर्तन -बीच में फटे चियडे की तरह लटकने वाला स्त्री का एकाध फाजिल कपडा-यह कुछ होना है। दो एक महीने में कोठी खतम हो जाती है। फिर वे जगल की उपज मर निर्भर करते हैं-कहीं कभी मजदूरी मिल गई तो राशन का अनाज आ गया वरना मछलिया मारना, पीपल, खजूर आदि पेडो के फल खाकर समय निकालना होता है। कुछ लोग जरा अच्छी स्थिति वाले भी होते है। उनके घरो मे एक की बजाय दो तीन कोठिया होती हैं या घर कुछ बडा होता है। वहीं खाना बनाना, खाना व वहीं सोना। बाहर बाडे में ढोरों को बाधा जाता है। यदि गाय-भैस या बकरी हुई तो साल भर कुछ छाछ मिल जायगी जिससे खान में कुछ मदद व कुछ विटमिन्स भी मिलेंगे और घी बिकेगा जिससे नमक-मिर्च खरीदा जा सके। खेत में तिल ठीक पक गया तो कुछ पैसे आ गये। फिर तो जबतक पास में पैसा है वह चैन की बसी बजायेगा। पेड के नीचे आराम करेगा और जबतक भूखो मरने न लगेगा तबतक मज दूरी की खोज न करेगा।

अब इनके जेवर व कपडे देखिये। अक्सर राजस्थानी घाघरे की तरह स्त्रिया ऊचा ऊचा घाघरा पहनती है। कई एक स्त्रिया के गले में चादी के गहने भी दिखाई देंगे, परन्तु ज्यादातर तो एक जगली घास से बनने वाले कई प्रकार के गहने पहनती है-अथवा सफेद रग के मणके की लडिया पहनती हैं। पुरुषो को भी शौक है। वे भी अक्सर कान में, गले में या कमीज के बटन आदि के रूप में कुछ-न कुछ पहनते ही हैं-पर साधारण लोगो के लिये ऐसा करना सम्भव नही है। छाते का भी कई लोगो में शौक पाया जाता है और साफे का भी। भले ही वह छोटा हो, दो हाथ का हो या चियडा ही सही। पहनने-ओढने को इनके पास धोती आदि न हो तो कभी-कभी रात को ओढ कर सोने के ऊनी वस्त्र शाल आदि ही पहन लेंगे। इन्हे क्या मालूम कि इससे वह और भी ज्यादा महगा पड जाता है।

खानपान मे यह खासियत है कि कभी भी तैयार आटा तो मिलेगा नही। जब भी भोजन बनाना होगा तुरन्त अथवा सवेरे उठकर आटा पीसा जावेगा। चक्की इनका मुख्य साधन है और करीब-करीब हरेक के घर में पाई जाती है।

इनके नाच-गान को लीजिये। नृत्य में स्त्री व पुरुष साथ ही नाचते हैं। नाच के साथ कुछ पुरुष ढोल लेकर बजाते हैं-बाकी पुरुष व स्त्रिया ढोल के चारो तरफ घूमते हुए नाचते हैं। दो-चार ढोल हो या ज्यादा हो वे सब साथ-ही-साथ ढोल को उठाये हुए नाच में भाग लेते है। इनका अधिक्तर नाच एक ही तरह का होता है-वह है एक घेरा पुरुषा का व एक घेरा स्त्रियो का-ताल-बद्ध पैर उठते हैं-बीच-बीच में दौड जैसी भी लगती है-वह भी घेरे मे-खुशी का ठिकाना नहीं। कुछ-न-कुछ गान तो साथ में होता ही है। एक-दो कडी लेकर बहुत समय तक गायें जायेंगे। इधर गाधीजी का नाम भी गीतो में आने लगा है वरना अक्सर गानो में राजा व आपस के झगडे -उनका सुखद अन्त आदि बातो का वर्णन रहता है। नाच-गान आदि मुख्य तौर पर शादी करने के अवसर पर होते हैं। इस समय व्यापार भी ठीक जमता है।

मेलो में लोग कई तरह की चीजें लाते हैं-जैसे बर्तन, खाने-पीने तथा पहनने की चीजे, काच, माला, रुमाल, आदि मामूली शौक की चीजें। खाने के लिये मूगफली, गुड व खोपरा ऐसे मौको पर खास तौर से खूब बिकता है।

रात को ये लोग कई बार भजन करने बैठते है। उस समय तबला, व तानपूरा जैसा कोई वाद्ययत्र रहता

उसे बजा-बजा कर मंजीरे बजाते हुए भजन गाते जाते है और झूमते जाते हैं। स्त्रियां भी कभी-कभी इकट्ठी होती है और पुरुषों के साथ भजन में शामिल होती हैं। तब उनका नाच और साथ में गाना शुरू होता है। यह गाना काफी दूर-दूर तक सुनाई देता है।

'देवरा' इनके जीवन में मुख्य है। यह किसी मन्दिर व उसमें रखे हुए देवता दोनों के लिए काम में लाया जानेवाला शब्द है। ये लोग, उसकी पूजा साधारण तौर पर नहीं करते,पर बीमारी के समय अक्सर उसकी 'मानता' —मनौती—करते है। इस अवसर पर बलिदान करने की भी प्रथा है। उस समय कोई एक व्यक्ति बड़े जोर-जोर से घूमता है। पर यह तो उन लोगों में फैले हुए भ्रम व अज्ञान का कारण है।

शिक्षा तो इन लोगों में है ही नहीं। इनमें कहीं कोई इक्का-दुक्का व्यक्ति जो कभी इधर-उधर आया गया हो या तो कहीं कांग्रेस-कार्यकर्ताओं से मिला हो तो भले चार—छः अक्षर जानता हो या अपना नाम लिख सकता हो पर बाकी तो शून्य है। हां,इन गांवों के बीच में कहीं-कहीं पर कुछ गांव ऐसे भी है जहां इनके अलावा दूसरी जातियों के लोग भारत के और गांवों की तरह बसे हुए हैं। वहां एकाध मारवाड़ी, बोहरा आदि आकर व्यापार के लिये बैठ जाता है। वहां राजपूत, कुमार आदि दूसरी जातियों के बच्चे उस दुकानदार के पास कभी-कभी पढ़ते हैं। कहीं-कहीं ऐसे छोटे से कस्बे में एकाध स्कूल भी पाया जाता है। इस तरह इस क्षेत्र में समाज-सेवा का बहुत ज्यादा काम बाकी पड़ा है।

वाहन-व्यवहार न होने से यह प्रदेश और भी पिछड़ा रह गया है। बाहर के वातावरण का बहुत कम असर यहां पर हो पाता है। जागृति भी बिलकुल नहीं है। आज तक यह प्रदेश एक देशी रजवाड़ा था जहां पर राजा का बहुत ज्यादा आतंक था। सारी प्रजा बेगार से दबी हुई थी; पर अब धीरे-धीरे जागृति होती जा रही है। बम्बई सरकार ने दारुबंदी करके प्रजा को बहुत लाभ पहुंचाया है। सर्वोदय-केन्द्र खोल कर भी जनता की सच्ची सेवा की है। स्वतन्त्रता आ जाने के बाद और राज्य का विलीनीकरण हो जाने से लोगों को कुछ राहत मिली है।

तब भी इस प्रदेश में बहुत कुछ काम बाकी है। कई सेवकों की पूरी जिन्दगी चाहिये तब कहीं इस प्रदेश के लोग कुछ जाग्रत, कुछ सभ्य और कुछ शिक्षित होंगे और आगे बढ़ने लगेंगे। तभी यह हिस्सा भी देश के दूसरे भागों के बराबर आ सकेगा। यह प्रदेश ऐसे सेवकों को बुला रहा है, जो इनकी सच्ची सेवा कर सकें। आजीवन सेवकों की खास आवश्यकता है।

एक दृष्टि इधर भी

विपुला देवी

विज्ञापन की संसार में उतनी ही आवश्यकता है तथा यह कला सर्व-साधारण के लिये उतनी ही लाभप्रद प्रमाणित हो सकती है, जितना रेडियो तथा संस्कारित रूप में सिनेमा। रेडियो से सुनकर तथा सिनेमा में प्रत्यक्ष देखकर इतिहास, भूगोल, समाज-विज्ञान एवं देश-विदेश की नूतनतम घटनाओं को जिस प्रकार समझा जा सकता और सच्चा ज्ञान संग्रहीत किया जा सकता है, उसी प्रकार ढंग से काम लेने पर 'विज्ञापनों' द्वारा कम मूल्य और कम समय में आवश्यकता की वस्तुएं भी पाई जा सकती है। एक-एक दूकान छानकर मन की वस्तु खरीदने के श्रम की बचत हो सकती है और दूरवर्ती देशों एवं नगरों में उपलब्ध वस्तुएं डाक और रेलवे की सहायता से देश के किसी भी कोने में मंगवाई जा सकती है। परन्तु आज स्थिति ऐसी नहीं है। कुछ इस कारण नहीं कि हमारे देश में छापेखाने कम हैं या पत्र-पत्रिकाएं विज्ञापन कम प्रकाशित करती हैं। वरन् इस कारण कि इस क्षेत्र में सर्वत्र झूठ और जालसाजी का बोलबाला है। सिनेमा और रेडियो की बुराइयों की ओर अब जनता और सरकार दोनों की दृष्टि है, लेकिन विज्ञापनों की ओर अभी किसी का ध्यान नहीं है। नतीजा यह है कि

एक दृष्टि इधर भी : विपुला देवी

दिनोदिन लोगो का यह विचार दृढ होता जाता है कि 'झूठ' का दूसरा नाम विज्ञापन है। इसलिये यदि किसी चीज को विज्ञापनो में 'जरूरी' लिखा जाये तो समझ लेना चाहिये कि वह कोई बेकार चीज होगी। काले को गोरा और मूर्ख को विद्वान लिख देना, इन विज्ञापनो के बाए हाथ का खेल है।

हमारे देश म विभिन भाषाओ में हजारो मासिक और सैकडो दैनिक पत्र-पत्रिकाए प्रतिमास प्रकाशित होती है, जिनको पढने वालो की सख्या लगभग एक करोड होगी। बहुत कम ऐसी पत्रिकायें निकलेंगी, जिनमें विज्ञापन एकदम न रहते हो। विज्ञापन प्रकाशित करना, पत्र-पत्रिकाओ की आय बढाने का एक साधन है। इसलिये जो नया पत्र निकलता है, वह पहली कोशिश विज्ञापन पाने की करता है। जिस पत्र-पत्रिका की खपत जितनी अधिक होती है, उसकी विज्ञापन दरें भी उतनी ही अधिक होती हैं। प्राप्त धन का उपयोग, पत्र-पत्रिका की सौन्दर्य-वृद्धि या घाटे की पूर्ति में ही किया जाता है, इसलिये कहा जा सकता है कि पाठको को विज्ञापनो के सम्बन्ध में आपत्ति न होनी चाहिये। परन्तु पत्र-पत्रिकाए कितने गैर जिम्मेदार ढग से आखें मीच कर विज्ञापन लेते और अपने मुख्य पृष्ठो पर प्रकाशित करते है, वह अवश्य निरीक्षण करने योग्य बात है। किसी भी प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका को उठा लीजिए और उसके विज्ञापन-स्तम्भ को देख डालिए। जादू के असर वाली तान्त्रिक अगूठिया, भयानक रोगों की अचूक दवायें, हजारो रुपये प्रतिमास कमाने की राह बताने वाली किताबें, नकली स्वर्ग की लूट के सुनहरे अवसरो की घोषणायें, नए-नए ढगो से की हुई मिलेंगी।

लेकिन कुछ लोग ऐसे होते है, जो 'अमीर' बनने के प्रलोभनो के सामने आत्मसमर्पण नही करते। वे लोग अपने श्रम से उत्पादित पूजी की एक एक पाई अपनी आवश्यकता-पूर्ति में व्यय करना चाहते हैं। ऐसे लोगो की नाडी परख कर, उन्हे अपने जाल में फसाने के लिये समाज द्रोही तत्वो ने नया ढग निकाला है। अभी गत मई में हिन्दी के कई प्रमुख दैनिक पत्रो में यह विज्ञापन दिखाई पडा—'मलेरिया से बचिये, चैन की नीद सोइये और मसहरिया नौ-नौ रुपये मे खरीद करके खाट पर लगाइये।' विज्ञापन देने वाली कलकत्ता की कोई सस्था थी। कुछ लोगो ने जोड-तोड मिलाकर हिसाब लगाया कि छोटे शहर में करीब दस-ग्यारह रुपये में सिली-सिलाई ऐसी मसहरी मिल जाती है जो सवा गज ऊची, इतनी या इससे अधिक चौडी और ढाई गज लम्बी हो। अतएव कलकत्ते में डाकखर्च सहित नौ रुपये की मसहरी मिलना आश्चर्यजनक नही है। आखिर मूल्य में थोडा बहुत अन्तर तो गाव और कस्बे तक की चीजो मे रहता है। अत मसहरिया मगवाने की ठहरी। पहले दो मसहरियो का आर्डर दिया गया। छठे दिन वी पी सूचना का कार्ड आ पहुचा, जिसमे लिखा था—"परम धन्यवाद। आपकी आज्ञानुसार वी पी सेवा में भेजी जा रही है, कृपया तुरन्त रुपया देकर वी पी लेले। हम गारटी के साथ सही और सच्ची वस्तुए भेजते है किसी प्रकार की शिकायत हो, नि सकोच लिख दें। तुरन्त ठीक कर दी जाएगी। अपने ग्राहको को सन्तुष्ट करना हम अपना धर्म समझते है। साथ ही उन व्यक्तियो पर जो झूठे आर्डर देकर वी पी वापस कर देते है, कम्पनी केस भी करती है। आप हमारी वस्तुओ से अवश्य ही प्रसन्न होंगे।"

ऐसा लगा कि कोई ईमानदार कम्पनी है। सोचने लगे कि गलती की, दस मसहरिया साथ ही मगा लेते। डाक-व्यय भी कम पडता और सबको एक बार में मिल भी जाती। लकडी का पार्सल खोला जाने लगा। जो लोग मसहरियो के इच्छुक थे, वे चारो ओर से घेर कर बैठे। पर जब मसहरिया निकली, तब सभी की बोली बन्द हो गई। न जाने किस देश की खाटो की नाप की थी हिन्दुस्तान में ऐसी खाटें किसी भी प्रदेश में प्रयुक्त नही होती। मुश्किल से एक हाथ ऊची, इतनी ही चौडी और करीब ढाई हाथ लम्बी। कोई मुर्दा उसे लगाकर भले ही सो लेता, जीवित आदमी के लिये तो किसी तरह सभव न था। अत जिस बेचारे ने आर्डर लिखा था, उसीके सिर माल पटक कर ग्राहक लोग चलते बने।

उसने कम्पनी को कई पत्र लिखे कि वह मसहरिया वापस लेले अथवा दो के बदले एक ही ठीक मसहरी देदे, पर कोई जवाब नही मिला। अदालती कार्रवाई की

बात सोची गई; परन्तु उसका अर्थ था बैठे-बिठाये एक संकट खड़ा करना।

विज्ञापन देने वाले अमीरअली ठग के भी चचा होते हैं। एक विज्ञापन दो-तीन मुख्य पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई दिया, जिसमें कहा गया था "असली विलायती घड़ी मुफ्त लीजिए। यह घड़ी अमरीकन बढ़िया फाउन्टेनपेनों की बिक्री बढ़ाने के लिए, बिल्कुल मुफ्त बांट रहे हैं। ठीक समय देने और मजबूती की गारंटी ६ वर्ष। अभी पत्र लिखें। शायद देर करने से, इस रियायत का लाभ न मिले। फाउन्टेनपेन का मूल्य ५)।"

समझदारों के मन में तुरन्त प्रश्न उठ खड़ा होगा कि इस फाउन्टेनपेन के बेचने वाले को क्या पागल कुत्ते ने काटा है, जो इतने कम मूल्य के फाउन्टेनपेन के साथ ऐसी अच्छी घड़ी दे रहा है? परन्तु बात ऐसी नहीं। युद्ध के पूर्व चार आने से लेकर नब्बे रुपये तक के फाउन्टेनपेन बाजार में मिलते थे। आजकल भी दस आने का फाउन्टेनपेन बाजार में है। इधर घड़ियां भी अनेक प्रकार की आई हैं। इसलिए फूंक-फूंक कर पैर रखने वाले लोग तक, इस विज्ञापन से भ्रम में पड़ सकते हैं, जबकि अनुभवहीन लोग घड़ी का वितरण वास्तव में प्रचारार्थ ही समझने की गलती करेंगे। वे सोचते हैं कि पेन चाहे दस आने वाला ही हो, लेकिन घडी की तो गारंटी है। चलो मंगवा लें।

परन्तु पार्सल खोलने पर, दस-बीस काग़ज़ों की पर्त के भीतर भद्दे रंग से पुता एक फाउंटेनपेन निकलता है और घड़ी की जगह एक काग़ज़। उसमें लिखा रहता है—"जय हिन्द, आपकी सेवामें पार्सल के साथ छः आर्डर फार्म भेजे जा रहे हैं। आप इनपर अमरीकन फाउन्टेनपेनों के आर्डर अपने मिलने वाले मित्रों से आसानी से ले सकते हैं। एक-एक रुपया पेशगी ले लें, आर्डर-फार्म भर कर रुपयों के साथ में भेज दें। आपको छः अमरीकन फाउन्टेनपेन एवं छः सेट आर्डरफार्म वी० पी० से भेज देंगे। इस पार्सल में आपकी इनामी घड़ी या ऊनी कम्बल आदि भी होगा। आपके बनाये ग्राहक भी इसी तरह ग्राहक बना कर इनाम मुफ्त ले सकेंगे। कम्पनी को इस सूचीपत्र में अदल-बदल करने और इनाम की चीजें घटाने-बढ़ाने का पूरा अधिकार है।"

अब आप विज्ञापन पर एक दृष्टि फिर डालिए और देखिए कि क्या उसमें एजेन्टों के कमीशन के रूप में घड़ी मिलने की बात की कहीं गंध तक मिलती है। एजेन्टी ही करनी हो तो एक क्यों, दस-बीस घड़ियां पाई और खरीदी जा सकती हैं। इसमें इसी फाउन्टेनपेन का कौन निहोरा? परन्तु इससे भी बढ़कर बात यह कि पांच रुपये कलम का दाम और सवा रुपया डाकव्यय देकर दस आने वाला फाउंटेनपेन मिला, तो मुफ्ती घड़ी इससे कहीं गई-गुज़री न होगी, इसका कौन ठिकाना? फिर दस आने की चीज़, पांच रुपये में मित्रों के गले मढ़ना क्या उनके साथ विश्वासघात नहीं है?

इस विज्ञापन जैसी ठगी, मुफ्त सोना बांटने के विज्ञापनों में भी रहती है। मानव स्वभावतः सौन्दर्यप्रिय होता है। सौन्दर्य बढ़ाने के उपकरणों में आभूषणों की भी गिनती है। धनी सोने, चांदी, जवाहरात के आभूषण पहनते हैं तो ग़रीब पीतल, कांसे, फूल वग़ैरह के। इधर नकली सोने की चाल भी चली है। जहां तक इसकी बिक्री की बात है, वहां तक गनीमत है। परन्तु सीधी बिक्री से सन्तुष्ट न होकर ये लोग ठगी की राह पकड़ते हैं। यह बात बहुत आपत्तिजनक है। कुछ दिन पहले कई पत्रों में एक संस्था ने यह विज्ञापन दिया—"अपने नेशनल न्यू गोल्ड के प्रचार के लिए हमने एक नमूने का बाक्स, जिसमें डायमंड कट की ४ चूड़ियां, नए डिज़ाइन का १ हार, बाम्बे फैशन की २ अंगूठियां हैं और साथ में ४ तोले नेशनल न्यूगोल्ड मुफ्त में देने का निश्चय किया है। आज ही मुफ्त सोने एवं नमूने के बक्स के लिए लिखें।"

दूसरी संस्था ने अपनी संस्था का उत्सव मनाने के लिए ऐसा सेट और सोना मुफ्त बांटने की घोषणा की। उन्होंने नमूने के बक्स को खरीदने पर सोना देने का उल्लेख नहीं किया और न कहीं बक्स की कीमत का उल्लेख किया। अतः जो लोग ऐसी चीजों पर पैसे फेंकना बेकार समझते हैं, वे भी मुफ्त गहने कैसे हैं, यह देखने के लिए उत्सुक हो उठते हैं और वे लोग भी जो शौकीन हैं; पर इतने पैसे नहीं कि नकली गहनों पर खर्च कर सकें। किन्तु जब वे उसे मंगवाते हैं, तो वी. पी. में चार से १० रुपये बीच की चीजें होती हैं। विज्ञापनदाताओं की यह मनोवैज्ञानिक चालें हैं। वे जानते

है कि कौतूहल और इच्छा ये ऐसे सत्य हैं जिनका उपयोग करके काम निकाला जा सकता है।

चौथी प्रकार के विज्ञापनदाता दावा करते हैं कि तान्त्रिक अगूठी जिसका मूल्य ढाई या तीन रुपये रहता है, मगवा कर पहन लीजिए बस आपके सारे सकट छूमतर हो जायेंगे। स्त्री प्रेम करने लगेगी, मन-चाहा विवाह होगा गृहस्थ जीवन स्वर्ग बन जायगा दुश्मन पैरो तले आ गिरेगा धन-दौलत की कमी नही रहेगी, समस्त कार्यो म सफलता प्राप्त होगी। साराश यह कि ऋद्धि सिद्धि आपकी मुट्ठी म रहेगी।

अब सोचिए कि क्या ऐसा हो सकना सभव है? अनक अनुनय विनय और सेवाओ से जो हृदय नही पसीजते वे इस अगूठी की शक्ति से पिघल जायेंगे। बडे-बडे वकील जिस मामले को अथक परिश्रम द्वारा भी न सुलझा सके हो, वह केवल ढाई रुपय की इस अगूठी की अद्भुत शक्ति से सुलझ जायगा। धन, नौकरी पाना ऋद्धि-सिद्धि इतनी साधारण हो तो क्या न हमारी सरकार ऐसी अगूठियो के निर्माण का एक कारखाना खुलवा दे और सब मत्री तथा सरकारी कर्मचारी तथा बेकार लाखो आदमी एक एक अगूठी पहन लें। अमरीका से गहू मगवाने और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक म कर्ज लेने की आवश्यकता ही न पडे। अगूठी का प्रभाव गलत प्रमाणित होने पर, तान्त्रिक जी हजार-हजार रुपया प्रत्येक को इनाम देंगे। पाच सौ तो कही नही गए। कई तान्त्रिक लोगो न एसी घोषणाए प्रेस में कर रखी है पर किसी ने अबतक इसे प्राप्त नही किया है।

झूठ और जालसाजी से एक-दूसरे को मात देने वाले इन विज्ञापनो को पढकर हम इसी निर्णय पर पहुचे ह कि अब समय आ गया है कि काले बाजार को दमन करने के लिए दृढ-प्रतिज्ञ हमारी सरकार दृढता से काम लेकर कानून और शक्ति के द्वारा झूठी और निरुपयोगी वस्तुओ के विज्ञापनदाताओ को कडी-से-कडी सजाए दे। एक आने की दियासलाई दो आने मे बचने वाला का मुनाफा खोरी के अभियोग में १००० रु तक जुर्माना और कैद की सजायें मिली है, पर दस आने का फाउन्टेनपेन पाच रुपये में और निरुपयोगी मसहरिया डके की चोट बेचने वालो को सजा न दी जाए, यह क्यो? हमारे देश म ऐसी सुधारक सस्थाए हैं और नेता है जो वर्षा न होने की भविष्यवाणी तक का विरोध करते है। परन्तु तान्त्रिक अगूठी के विज्ञापन खुले रूप से अनेक पत्रो म आ रहे हैं उनकी ओर किसी का ध्यान नही जाता। यह भी अन्धविश्वास है और कुसस्कारो की जडें जमाने वाली बात है। इनका बहिष्कार करने की जगह, अभी तो सभी काग्रेसी समाजवादी साम्यवादी, धर्मवादी पत्र उन्हे प्रकाशित कर रहे हैं। अधविश्वासो और जादू-टोनो पर विश्वास न करने वाली सभ्यता अपने उपकरणो के द्वारा इसके प्रचार में सहायक हो यह बात इतनी लज्जाजनक है कि सरकार के हस्ताक्षेप करने के पूर्व ही सब पत्रो को इन्हे बहिष्कृत कर देना चाहिए।

दवाओ-सम्बन्धी सब विज्ञापनो की जाच सरकार के केन्द्रीय और प्रान्तीय स्वास्थ्य विभाग करे। दवाओ का प्रभाव विषयक झूठा प्रचार, रोगो को बढने और भयानक रूप ग्रहण करने का अवसर देता है। बिना स्वास्थ्य विभाग की जाच के ऐसे विज्ञापन कही नही प्रकाशित होने चाहिए। अगर कोई दवा वास्तव में उपयोगी है, तो उसपर कई डाक्टरो को जाच करनी चाहिए। जबतक ऐसी व्यवस्था न हो तबतक लोगो को खुद समझना चाहिए कि विज्ञापित दवाओ का सेवन अधेरे में ढेला फेंकना है।

जहा तक वस्तुओ का सम्बन्ध है, यदि पत्रिकाए यह नियम बना दे कि विज्ञापन के साथ विज्ञापित वस्तु का नमूना भी भेजा जाया करे तो इससे एक सीमा तक धोखा-धडी का व्यापार बन्द हो सकता है। विदेशी पत्र अपने पाठको को मुफ्त कानूनी परामर्श देते हैं, उनकी सम्पत्ति की देख रेख करते हैं और घरेलू मामले निपटाने के लिए जरूरी सहायता भी देते हैं। तो क्या हमारी पत्र-पत्रिकाए अपने पाठको के धन का अपव्यय रोकने के लिए इतना भी नही कर सकती?

"पवित्रता नैतिक बल है और नैतिक बल भौतिक बल से अनन्त गुना श्रेष्ठ है।"

—मो० क० गाधी

शंकर दत्तात्रेय जावड़ेकर

भगवद्गीता में क्या है और क्या नहीं ?

(गतांक से आगे)

'ईश्वरभाव और आस्तिकता'

गीता में ब्राह्मण और क्षत्रिय के गुणों का वर्णन करते समय 'ईश्वरभाव' और 'आस्तिक्य', इन दो अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'आस्तिक' गुण ब्राह्मणों का है और 'ईश्वरभाव' क्षत्रियों का। 'ईश्वरभाव' में प्रभुत्व का और दंड-नीति से औरों को सजा देने के अधिकार का अन्तर्भाव होता है। 'मैं प्रभु हूं, मैं पालनकर्ता हूं, जिनका पालन करने की जिम्मेवारी मुझपर है उनका पालन करने के लिये मैं दंडनीति का सहारा लेता हूं। मैं दुर्जनों को सजा देता हूं।' आदि भावनाओं का 'ईश्वरभाव' शब्द में अन्तर्भाव होता है। 'आस्तिक्य'-वृत्ति ऐसी निष्ठा प्रदर्शित करती है कि दुनिया में नैतिक शक्ति की ही जय होगी। इसमें यद्यपि ऐसी निष्ठा होती है कि अनैतिक शक्तियों की हार होगी, तो भी ऐसी वृत्ति नहीं है कि अनीतिमान् व्यक्तियों को हम सजा दें। इसमें यह वृत्ति भी हो सकती है कि इस आस्तिक्यवृत्ति से अनीतिमानों को आप-ही-आप सजा मिलेगी या उन्हें परमेश्वर दंड देगा या राज्य-संस्था सजा देगी। लेकिन दुर्जनों को हमारे बदले दूसरा कोई या खुद भगवान् सजा करें यह वृत्ति भी पूर्ण अहिंसा की द्योतक नहीं है। दुर्जनों को सजा मिले या परमेश्वर उन्हें सजा दे, इस प्रकार की इच्छा सच्ची अहिंसा नहीं, बल्कि एक तरह की हिंसा ही है। दुर्जनों में सद्बुद्धि आये, उनका उद्धार हो, वे सज्जन बनें ऐसी इच्छा रखना या वैसी प्रार्थना करना ही सच्ची अहिंसा-वृत्ति है। इस अहिंसक वृत्ति से दुर्जनों के दुष्ट कार्यों के खिलाफ हमेशा लड़ते रहना, क्रांतिकारी अहिंसा है और इस क्रांतिकारी अहिंसा से ही सत्याग्रह के मार्ग का निर्माण हुआ है। सत्याग्रह में जो आस्तिक्य-बुद्धि गृहीत है, वह इस प्रकार की अहिंसक किन्तु प्रभावशाली वृत्ति है। 'सर्वोदय' शब्द में दुर्जनों का नाश सूचित नहीं है। इसीलिये 'दुर्जनों का नाश करने के लिए मैंने अवतार लिया है।' यह 'ईश्वरभाव' भी सत्याग्रही निष्ठा के साथ मेल नहीं खाता। लेकिन गीता में इस प्रकार का ईश्वरभाव सर्वत्र प्रकट हुआ है और उसकी गिनती राजर्षि के स्वाभाविक गुणों में की गई है। राज्य-शासन करने वाले दंडधारी व्यक्तियों में इस गुण का होना जरूरी है; लेकिन ऐसी अपेक्षा है कि वह व्यक्ति अहंकार एवं ममत्व के साथ इस प्रभुत्व का उपयोग न करे।

यहां पर यह शंका हो सकती है कि ईश्वरभाव या प्रभुत्व में एक प्रकार का अहंकार तो निहित ही होता है। लेकिन गीता में अर्जुन के जिस अहंकार का वर्णन आया है वह यह अहंकार नहीं है। 'मैं दुर्जनों के साथ भी नहीं लड़ूंगा, मैं तो संन्यास लेकर जंगलों की खाक छानता फिरूंगा'। इस मतलब के जो शब्द अर्जुन ने कहे, उन्हें सामने रखकर या उन शब्दों द्वारा व्यक्त होने वाली वृत्ति के लिये श्रीकृष्ण ने 'अहंकार' शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि 'मेरा राज जिन्होंने छीन लिया है, उनके साथ भी मैं युद्ध नहीं करूंगा' यह वृत्ति भले ही श्रेष्ठ हो; लेकिन वह वृत्ति अर्जुन के प्रकृतिगुणों या उसके स्वभाव के साथ मेल नहीं खाती थी, उस बोझ को वह उठा नहीं सकता था। जिस वृत्ति को हम उठा नहीं सकते या जिसका निभाना हमारे लिये निश्चित रूप से असंभव हो वह अच्छी या श्रेष्ठ हो तो भी 'मैं उसे स्वीकार करता हूं,' ऐसा कहना अहंकार का द्योतक है। अर्जुन को जिस अहंकार ने घेरा था, वह इसी प्रकार का था। जब उसका प्रकृतिसिद्ध ईश्वरभाव जागृत हो गया तो उसका वह अहंकार नष्ट हो गया। जिनका प्रकृतिधर्म ब्राह्मणत्व है उनमें यह 'ईश्वरभाव' नहीं होता। ऐसे ब्राह्मणत्वविशिष्ट प्रकृति-धर्म के व्यक्ति को उपदेश देने का मौका होता तो श्रीकृष्ण की दलीलें कहां तक सफल होतीं यह एक सवाल ही है। ऐसे लोगों या व्यक्तियों को अगर गांधीजी-जैसा गुरु मिल जाय तो वह कहेगा कि 'सत्याग्रह से अपने अधिकारों को प्राप्त कर लेने के लिये या अन्याय का मुकाबला करने के लिये तुम तैयार हो जाओ।' इस तरह की क्रांतिकारी

अहिंसा गीता में नहीं है। उसमें प्रधानतया मानवता की रक्षा के लिये शस्त्र धारण करने वाले अवतारी राजर्षि का धर्म बताया गया है। उसकी आवश्यकता आज के समाज के लिये हो तो भी मानव-समाज को आज जिस सर्वांगीण क्रान्ति की आवश्यकता उससे भी अधिक मालूम हो रही है उसे राजर्षि के शस्त्रबल द्वारा अमल में लाना की वाकिया खतरनाक है। इस बात को पहचानकर समाज में आत्मबल की जागृति और संगठन करके ऐसी क्रान्ति की जा सकेगी इस निष्ठा की मानव-समाज को आज अधिक जरूरत है। आज संन्यास लेने की इच्छा करने वाले क्षत्रियों को युद्ध के लिये प्रवृत्त होने का सदेश देने की नहीं, बल्कि जिस आर्थिक विषमता और अर्थशोषण की महत्वाकांक्षा के कारण जागतिक महायुद्ध छिड़ जाते हैं, उस आर्थिक विषमता को नष्ट करके अर्थशोषण की आकांक्षा जहां जड़ नहीं जमा सकेगी ऐसे नये समाज का निर्माण करने की आवश्यकता है। ऐसे समाज के निर्माण के लिये समाज में सर्वांगीण क्रांति करके वर्गभेद को नष्ट करना चाहिये। इसलिये यह सामाजिक क्रान्ति आत्मबल द्वारा करना किस तरह संभव एवं आवश्यक है यही मनुष्य को दिखा देना चाहिये। इस काम में गीता का आधार कुछ अधिक काम का नहीं है।

आत्मबल और मानवधर्म

श्री शंकराचार्य ने गीता-भाष्य की प्रस्तावना में कहा है कि 'ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको धर्मः।' और इस ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिये ही श्रीकृष्ण का अवतार था—इस तरह का प्रतिपादन किया है। इस पर से यह नतीजा निकलता है कि वैदिक धर्म की रक्षा होना या न होना क्षत्रियत्व की अपेक्षा ब्राह्मणत्व की रक्षा पर अधिक आधार रखता है। फिर भी इस ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिये अंत में क्षत्रियधर्म के अवतार की आवश्यकता मान ली गई है। इस सम्बन्ध में यहां अधिक ऊहापोह करने की जरूरत नहीं है। गांधीजी ने जिस क्रांतिकारी अहिंसा का प्रतिपादन किया है उसका ध्येय है समाज में आत्मबल को जाग्रत एवं प्रभावशाली करके उसे शस्त्रबल के सरक्षण की आवश्यकता ही महसूस न हो। लेकिन यह अन्तिम ध्येय सामाजिक दृष्टि से आज वास्तववादी नहीं है। फिर भी यह बात सबको स्वीकार हो सकेगी कि ब्राह्मणत्व शब्द से व्यक्त होने वाले आध्यात्मिक गुणों की वृद्धि करने पर ही मानवधर्म का सारा दारोमदार है। गांधीजी के जीवन-सन्देश का मूल इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'आत्मबलस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्यात् मानवो धर्मः—।' इस आत्मबल को समाज के केवल एक विशिष्ट वर्ग में जाग्रत और संरक्षित करना आज का सवाल नहीं बल्कि सारे समाज में व्यापक रूप से फैले हुए किन्तु सुप्तावस्था में रहनेवाले आत्मबल को जाग्रत करके उसके प्रभाव से एक-वर्ग-समाज (वर्गहीन समाज) का निर्माण करना ही आज की समस्या है। आज के ज़माने में चातुर्वर्ण्यसंस्था और युद्ध को आवश्यक मानकर लिये गये क्षात्रधर्म के उपदेश का रहस्य पर्याप्त नहीं हो सकेगा। लेकिन उसके कुछ महत्व के सिद्धान्तों को आज भी स्वीकार करना होगा। इतना ही नहीं, बल्कि उन सिद्धान्तों पर जोर देकर नई मानव संस्कृति की रचना करनी होगी।

गीता-धर्म और आधुनिक मानव

अन्त में आज के मानव के लिये भी गीता के उपदेशों से सीखनेलायक जो बातें हैं उनका संक्षेप में निर्देश करके इस लेख को खतम करना है। मानव समाज की रचना के लिये धर्म का आधार होना चाहिये, यह गीता का अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। लेकिन समाज-रचना और समाज के सारे व्यवहारों के लिये आधारभूत यह धर्म कोई खास धर्म, मजहब नहीं, बल्कि मानव के अंतःकरण में रहनेवाली कर्तव्यनिष्ठा ही वह धर्म है। गीता के सामाजिक उपदेश का यही सार है कि समाज में सब व्यवहार करते समय उसकी इकाइयां यानी मानव स्वार्थसाधन के हेतु से प्रेरित होकर नहीं किन्तु कर्तव्य-बुद्धि से अपने व्यवहार करें। समाज में अपना-अपना कार्य करते समय व्यक्ति स्वार्थ-बुद्धि से बर्ताव करे तो भी आप-ही-आप समाजहित होगा, लेकिन ऐसे समाज में प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थ साधने का समान अवसर मिले और हर एक को औरों के साथ स्पर्द्धा करने की पूरी स्वतन्त्रता हो। इस विपर्यस्त एवं भ्रामक सिद्धान्त पर आधुनिक यूरोप में वैश्य-संस्कृति का

निर्माण करने का प्रयोग पिछली दो शताब्दियों में किया गया। लेकिन लगभग सभी समाज-शास्त्रियों ने अब यह बात स्वीकार कर ली है कि यह प्रयत्न और प्रयोग भ्रामक और विघातक साबित हो चुका है। सामाजिक व्यवहारों की बुनियाद व्यक्ति-स्वार्थ एवं स्पर्द्धा के तत्वों पर रखने से समाज में अनर्थ फैल जाता है यह बात अब सबने मान ली है। सामाजिक व्यवहार कर्तव्यबुद्धि, सेवाभाव तथा सहकार की बुनियाद पर होने चाहिए यह तत्व समाजवादी विचारप्रणाली का एक आधारभूत तत्व माना जाता है। इस दृष्टि से सोचा जाय तो मालूम होगा कि गीता की सामाजिक विचार-प्रणाली व्यक्तिवाद की अपेक्षा समाजवाद के अधिक निकट है। समाजधारणा के लिये आवश्यक कोई भी कार्य मनुष्य कर्तव्यबुद्धि से करता रहे तो वह आत्मिक शान्ति के मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा; लेकिन उसे चाहिये कि वह यह कार्य सकाम बुद्धि से, फलासक्ति से, अहंकार से या ममत्व से न करे। इस प्रकार निष्काम, निरहंकार, निर्मम एवं अनासक्त वृत्ति से जिन सामाजिक कर्तव्यों को हमने स्वीकार किया हो या जो कर्तव्य हमें प्राप्त हो गये हों उन्हें हम कदापि न छोड़ें; मनुष्य को आत्मिक मोक्ष प्राप्त करने के लिये सामाजिक कर्तव्यों का त्याग करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है, इस प्रकार की भूमिका को स्वीकार करके गीता ने व्यक्तिगत मोक्ष तथा समाजधारणा का लोकसंग्रह—इन दोनों का बहुत सुन्दर समन्वय किया है। लेकिन अगर ये सामाजिक कर्तव्य आत्मोन्नति में सहायक होनेवाले हों तो उन्हें करनेवालों को केवल अपने विशेष समाज के हित का ही विचार करने से काम नहीं चलेगा, उन्हें तो ऐसे ही कार्य कर्तव्यबुद्धि से करते रहना चाहिये जिनमें सारे मानव-समाज का ही नहीं बल्कि सर्वभूतमात्र का हित होगा। जबकि मानव समाज अलग-अलग राष्ट्रों या वर्गों में बंट गया है, उनमें से किसी खास राष्ट्र या वर्ग के हित को सामने रखकर अपने कर्तव्य करना और अन्य राष्ट्रों या वर्गों के हित की तरफ ध्यान न देना गीता के आध्यात्मिक एवं धार्मिक उपदेश के विपरीत है। उसमें जिस अहंकार तथा ममत्व का त्याग करके कर्तव्याचरण का उपदेश किया गया है वह अहंकार या वह ममत्व किसी राष्ट्रीय भावना या वर्गीय भावना के कारण भी पैदा नहीं होना चाहिये।

राष्ट्रीय या वर्गीय अहंकार तथा ममत्व के वशीभूत किये हुए कर्तव्य उन्हें करनेवालों के या मानवसमाज के आत्मिक उद्धार या भौतिक हित के लिये विघातक हुए बिना नहीं रहेंगे। गीता की दृष्टि विशिष्ट राष्ट्रहित या वर्गहित साधने की नहीं, बल्कि सारे मानवों का आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक हित करने की है। इस मानवहित की दृष्टि से आज युद्ध-संस्था को नष्ट करके सब मानवों को एक राज के मातहत लाना और वर्गसंस्था का नाश करके एक-वर्ग-समाज की स्थापना करना आवश्यक हो गया है। गीता में इस विशिष्ट पृष्ठभूमि को स्वीकार करके कर्तव्याकर्तव्य की चर्चा नहीं हुई है, इसलिये उस सम्बन्ध में स्पष्ट आदेश उसमें से नहीं मिलेगा। फिर भी उसकी सारी सिखावन इतनी व्यापक और मानवीय अन्तःकरण की चिरंतन एवं श्रेष्ठ वृत्ति पर आधारित है कि वह युद्ध-संस्था और वर्गसंस्था के नष्ट होने पर भी मानव को सतत मार्गदर्शक एवं उन्नतिकर मालूम होगी। मनुष्य समाज के प्रति अपने कर्तव्य स्वहित बुद्धि से न करके सर्वहित-बुद्धि से करे और वे निर्मम, निरहंकार तथा अनासक्त भावना से किये जायं, यह उपदेश कभी गतार्थ नहीं होगा।

जीवन की सर्वांगीण निष्ठा

गीता के उपदेश की और एक सबसे श्रेष्ठ विशेषता यह है कि उसने मानवीय जीवन के सभी अंगों का विचार करके जीवन-निष्ठा का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार मानवीय जीवन का एक आध्यात्मिक अंग है, उसी प्रकार उस जीवन के लिये आधारभूत एक आधिभौतिक अंग भी है। जिस तरह मानवीय जीवन का एक व्यक्तिगत अंग है, उसी तरह एक सामाजिक अंग भी है। मानवीय जीवन के आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक और व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदि सभी अंगों का विचार करके गीता में उपदेश किया गया है। मनुष्य व्यक्तिशः मुक्त हुआ, उसे आत्मप्राप्ति हो गई या वह सब परिस्थितियों में आत्मशान्ति का उपयोग कर सका तो भी औरों के उद्धार का कर्तव्य उसे करते रहना चाहिये।

फिर मानव-समाज के धारण पोषण के लिये भौतिक भोगो की आवश्यकता है। ये भौतिक भोग सबको मिलते रहें, इसके लिये आवश्यक काम सबको करना ही चाहिए। गीता में इन भौतिक भोगो की प्राप्ति की दृष्टि से ही यज्ञ के महत्व का वर्णन किया गया है। यह ठीक है कि यज्ञ के कारण देवता सन्तुष्ट होते हैं और वे हमें भौतिक भोग देते हैं, इन विचारो से आज कोई भी सहमत नही होगा, फिर भी भौतिक शक्ति और सामाजिक शक्ति के सहयोग एव सहायता से हमें इष्ट भोग प्राप्त होते हैं, इस बात को ध्यान में रखकर उसके लिये होने वाले सामाजिक तथा भौतिक शक्ति के ह्रास या क्षय की पूर्ति कर लेना और भौतिक भोगो के उत्पादन में अपनी श्रमशक्ति का विनियोग करके उस कार्य में सहयोगी होना हर एक का कर्तव्य है। समाज के धारण-पोषण के लिये आवश्यक श्रम करना और वह श्रम करने वालो की शक्तियो का उचित विकास होगा इस तरह सामाजिक सपत्ति का विभाजन करना–इसे आधुनिक परिभाषा में यज्ञ कहा जा सकेगा। सामाजिक जीवन के लिये चलने वाला यह यज्ञ उचित रूप से चलता रहे तो ही समाज का धारणपोषण होगा। यही सबक गीता के यज्ञ-सम्बन्धी आग्रह से हम ले सकते है। यह सामाजिक यज्ञ आज के समाज में उचित रूप से नही चल रहा है। इस यज्ञ के लिये जो श्रम करना पडता है, उसमें शरीक न होकर जो लोग आज उसमें से पैदा होने वाले भोगो का केवल स्वामित्व के अधिकार से उपभोग कर रहे हैं वे गीता के उपदेश के अनुसार सामाजिक धन की चोरी ही कर रहे हैं। जबतक यह स्तेय बन्द नही होता तबतक समाज की धारणा के लिये आवश्यक उपभोग उचित रूप से पैदा नही होगे और उनका विभाजन भी ठीक ढग से नही होगा। सामाजिक उत्पादनकार्य की इस चोरी को आज के जायदाद-सबधी कानूनो ने जायज ठहराया है। जबतक इस चोरी को कानूनन बन्द नही किया जाता तबतक समाजधारणा के लिये आवश्यक यह यज्ञ ठीक ढग से नही चलेगा और इसलिये लोकसग्रह भी नही होगा। यह मूलभूत अन्याय समाज में विग्रह पैदा कर रहा है और जबतक उत्पादनकार्य एव विभाजन-कार्य में चलनेवाला अन्याय दूर नही किया जाता तबतक इस विग्रह का अन्त नहीं होगा। समाज में सब व्यवहारो के लिये धर्म का अधिष्ठान होना चाहिये, यह गीता का सिद्धान्त अगर हमें आज कोई सिखावन देता है तो वह यही है कि सामाजिक धनोत्पादन के कार्य में और विभाजन में चलनेवाले मूलभूत अन्याय को जबतक हम दूर नही करते तबतक समाज धारणा या लोकसग्रह का कार्य नही होगा।

समाज के भौतिक अग का विवेचन करते समय उसके धारणपोषण के लिये आवश्यक धनोत्पादन के प्रश्नो की तरह ही उसकी रक्षा एव अन्याय-निवारण के प्रश्न का भी गीता में प्रधानतया विचार किया गया है। जब-तक रक्षा और अन्यायनिवारण का प्रबन्ध नही होता तब-तक समाज का नैतिक या आत्मिक बल नही बढ सकता। इसीलिये रक्षा और अन्यायनिवारण के कार्य सतत चलते रहने चाहियें, इस तरफ गीता ने विशेष ध्यान दिया है। इसी दृष्टि से उसमें धर्मयुद्ध एव क्षात्रधर्म का समर्थन किया गया है। इन प्रश्नो को हल करने के लिये शस्त्रबल या दडनीति का प्रयोग करना न पडे इस प्रकार का प्रबन्ध किये बिना समाज में धर्म या नीति का सवर्धन या सरक्षण नही होगा। इसलिये आज मनुष्यो को आवश्यक महसूस करने वाली हिंसा को भी टालकर उन सवालो को अहिंसा से और शान्ति से हल करने का प्रयत्न करना ही सच्ची धर्मसस्थापना का मार्ग है। इसमें जितनी सफलता मिलेगी, उतनी ही मात्रा में सामाजिक नीति स्थिर होती जायेगी। केवल आत्मबल का सगठन करके उसके प्रभाव से ये सवाल अभी हल नही होते हैं। इसीलिये शस्त्रबल से न्यायसस्थापना करने का प्रयत्न समाज करता रहता है। इस वास्तववादी भौतिक दृष्टि से गीता की रचना हुई है।

दैवी और आसुरी वृत्तियो का सग्राम

समाज में न्यायसस्थापना और अन्यायनिवारण करने के कार्य में से ही दैवी एव आसुरी वृत्तियो के सग्राम का सवाल खडा हो जाता है। इस सवाल को आगे रखकर

यह संग्राम चलाने का एक मार्ग प्रसंगानुसार गीता में प्रधानतया बताया गया है। लेकिन उसका मतलब यह नहीं कि यह संग्राम चलाने का वही एकमात्र मार्ग है या उससे अधिक श्रेष्ठ मार्ग का अवलंबन न किया जाय। गांधीजी ने सत्याग्रही क्रांति का जो मार्ग आधुनिक मानव के सामने रखा है, वह एक अधिक श्रेष्ठ मार्ग है और उसका अवलंबन करना गीता के आध्यात्मिक आदर्श के अनुरूप ही है। इसी दृष्टि से गांधीजी कहते थे कि 'गीता के उपदेश के अनुसार सत्याग्रह से अन्याय-निवारण का कार्य करते रहने का मार्ग में लोगों के आगे रख रहा हूं।' लेकिन इस अधिक श्रेष्ठ मार्ग पर चलने के लिये जितने आत्मबल की ज़रूरत है उतना जिसके पास न हो, उसे गीता में बताये हुए मार्गों से अन्याय के खिलाफ़ लड़ना चाहिये, कर्तव्य-पराङ्मुख नहीं होना चाहिये, या समाज में चलनेवाले न्याय-अन्याय के प्रति उदासीन भी नहीं रहना चाहिये। यह बात सच हो तो भी कोई ऐसा नहीं कह सकता कि अन्याय के विरुद्ध शस्त्रबल से लड़ने के फल और आत्मबल से लड़कर न्याय-स्थापना करने के फल भौतिक या नैतिक दृष्टि से एक ही प्रकार के हो सकते हैं। आत्मबल से लड़कर जो फल मिल सकता है, वह शस्त्रबल की सहायता से किये हुए संग्राम से नहीं मिल सकता यही सिद्धान्त गांधीजी ने 'साधनों की शुचिता' के नाम से क्रांतिकारियों के सामने रखा है। समाज के भौतिक अंगों का और आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवहारों का विचार करना चाहिये, उन सबको नैतिक अधिष्ठान देना चाहिये और वह नैतिक अधिष्ठान जब नष्ट होता है तब उसे पैदा करने के लिये सामाजिक क्रांति करनी चाहिये, इन आधुनिक क्रांतिकारियों के विचारों को गांधीजी ने आत्मसात् किया है। लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी दिखा दिया कि सर्वांगीण क्रांति आत्मबल से ही करनी चाहिये, तभी सारे सामाजिक व्यवहारों को आवश्यक नैतिक अधिष्ठान प्राप्त करा दिया जा सकेगा। इनमें से सब सामाजिक व्यवहारों को नैतिक अधिष्ठान की ज़रूरत है, यह विचार गीता में मान लिया गया है। लेकिन जब वह नैतिक अधिष्ठान नष्ट हो जाता है तो उसे फिर से पैदा करने के लिये एक सर्वांगीण क्रांति करनी होगी और वह क्रांति आत्मबल से करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है; ये विचार गीता में नहीं मिलेंगे। लेकिन उसमें मानवीय जीवन-निष्ठा को बनाते समय भौतिक वास्तववाद और आध्यात्मिक आदर्शवाद का समन्वय करने का जो व्यापक दृष्टिकोण पाया जाता है। उस व्यापक दृष्टिकोण का आधार लेने से आज के मानव के गले यह बात अच्छी तरह उतरेगी कि यही विचारप्रणाली सच्चे अर्थ में उद्धार करने वाली हो सकेगी।

मराठी 'नवभारत' से] [अनु०—श्रीपाद जोशी

क्या व कैसे ?

भूदान-यज्ञ

यह जानकर हर्ष होता है कि विनोबाजी का भूदान यज्ञ व्यापक रूप धारण करता जा रहा है। उन्हें न केवल भूमि ही अब अधिक मिल रही है, अपितु उनके यज्ञ को देशभर में फैलाने के लिए स्थान-स्थान पर प्रयत्न प्रारम्भ हो गये हैं। समाचार मिला है कि गुजरात में इस काम के लिए एक कमेटी बनी है। और भी कई स्थानों पर कमेटिया बनी है या बन रही है। इस खबर से तो हमें बहुत ही खुशी हुई है कि एक जगह पर उन्हे पूरा गाव ही दान में मिल गया है। यह सब इस बात का द्योतक है कि लोग विनोबाजी के अनुष्ठान की कल्याणकारिता और उसके दूरगामी प्रभाव को कुछ-कुछ समझने लगे हैं और उन्हें यह भी लगने लगा है कि देश की वर्तमान विषम परिस्थिति में विनोबाजी का मार्ग ही सर्वोत्तम है। काग्रेस से अब लोगो की अधिक आशा नही रही है और उससे भी कम मौजूदा शासन-तन्त्र से है। कारण कि काग्रेस के सगठन और शासन की मशीनरी में अनेक बुराइया भर गई है और उनकी दृष्टि लोक-हित से हट कर अन्यत्र केन्द्रित हो गई है। ऐसी हालत में लोग विनोबाजी और उनके यज्ञ की ओर आशाभरी निगाह से देख रहे है। कहना न होगा कि हम लोग जितना विनोबाजी के हाथ मजबूत करेंगे, उनके यज्ञ को गतिशील बनायगे, उतनी ही जल्दी देश में स्थायी आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति होगी और कराहती जनता को राहत मिलेगी। यदि समय रहते हम लोग नही चेते तो निश्चय ही एक ऐसा बवडर आने वाला है कि सारा देश बरबाद हो जायगा।

सौन्दर्य-प्रतियोगिता

विश्व-प्रतियोगिता में भाग लेने की दृष्टि से 'भारत सुन्दरी' का चुनाव करने के लिए देश के भिन्न-भिन्न नगरों में हाल ही में जो प्रतियोगिता हुई थी, उसकी फिल्म सिनेमा-घरो में दिखाई जा रही है। जिस प्रकार सौन्दर्य का प्रदर्शन किया गया है, वह आज की तथाकथित 'सभ्यता' के लिए भले ही शोभा की चीज मानी जाय, भारतीय संस्कृति तथा नारीत्व के लिए वह घोर लज्जा की चीज है। जिन शब्दो में प्रतियोगिता मे भाग लेने वाली महिलाओ का फिल्म में बखान किया जाता है, उसे सुनकर तो शर्म से गर्दन झुक जाती है। रूप का इस प्रकार भद्दे ढग से प्रदर्शन करना सर्वथा अवाछनीय है। क्या हम इतने दिवालिया हो गये है कि अपनी संस्कृति को छोडकर पश्चिम का अन्धानुकरण करे? हम नही चाहते कि अपने को एक सीमित परिधि के भीतर बन्द कर ले—आजकल की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो को देखते हुए वह सभव भी नही है—लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि अन्य देशो का हम आख मूद कर अनुकरण करे और अपनी उन चीजो को भूल जाय, जिनके कारण भारत ने शताब्दियो से विश्व में नाम और मान पाया है। हम अधिकारियो से अनुरोध करेंगे कि सौन्दर्य-प्रदर्शन की प्रतियोगिता को बन्द कर दिया जाय। राजर्षि टण्डनजी के शब्दो में "सौंदर्य चरित्र का देखा जाना चाहिए, रूप-रगका नही।"

—य०

राजघाट

राजघाट पर राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी की समाधि है। महात्मा गान्धी इस युग के एक महान पुरुष थे। ससार में जितने लोकप्रिय वे थे उतने लोकप्रिय बहुत कम व्यक्ति रहे होगे। भारत में भी उनके विरोधी तक उन्हे महान पुरुष मानते थे—ऐसा महान पुरुष जो युगो बाद जन्म लेता है। उनकी समाधि उन्ही के अनुरूप श्रद्धा और महानता की प्रतीक है। वह एक ऐसा पवित्र स्थान है, जिसका किसी विवादास्पद और दलगत नीति अथवा राजनीति से कोई सम्बन्ध नही है। इसके साथ ही वह पिकनिक का स्थान भी नही है।

लेकिन राजघाट पर सबकुछ होता है। वहां लोग जायें,पर उसकी पवित्रता का ध्यान रखें यह आवश्यक है। समाधि पर खेलना-कूदना, खा-पीकर इधर-उधर जूठन फैलाना, थूकना, फूल तोड़ना—ये बातें धार्मिक दृष्टि से नहीं, नागरिकता की दृष्टि से भी अनुचित हैं। इन बातों को लेकर समाधि के रक्षकों और नागरिकों में अनेक बार संघर्ष हुआ है, अब भी होता रहता है। नागरिक अपना कर्तव्य समझें यह तो ठीक है, पर सरकारी लोग जिस प्रकार उन्हें यह बातें समझाते हैं वह भी शोभनीय नहीं है, विशेषकर गांधीजी की समाधि पर।

राजघाट एक प्रकार से सरकारी विभाग बन गया है। सरकार एक यंत्र है, उसके सारे काम यंत्रवत होते हैं अर्थात् उनके पीछे मस्तिष्क होता है, ज्ञान होता है; पर हृदय तो दूर, बुद्धि के साथ भी कंजूसी बरती जाती है। यही हाल समाधि की व्यवस्था का है। लट्ठ लिये अक्खड़ चौकीदार वहां रक्षा के लिए तैनात हैं। पर हमारा विचार है कि गांधीजी की समाधि पर भय से नागरिकता सिखाना कोई अच्छी बात नहीं है।

इससे भी अधिक चिन्तनीय बात यह है कि समाधि राजनैतिक अखाड़ा बनती जा रही है। किसी को भूख-हड़ताल करनी होती है, कोई आन्दोलन शुरू करना होता है, जलूस निकालना होता है,मंत्रिमंडल बनाना होता है तो वह इन कामों का आरम्भ राजघाट से करता है। निस्संदेह उनकी भावना राष्ट्रपिता का आदर करने की ही होती है; पर इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि उनके कुछ कामों के औचित्य के बारे में मतभेद होता है। सब काम सबकी दृष्टि में सही नहीं होते। गांधीजी से जीते-जी किसी का मतभेद रहा हो, पर मृत्यु के बाद वे मानव-मात्र के हो गये हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे कामों के लिए जिनके बारे में मतभेद की गुंजायश है, उनके आशीर्वाद की कामना या कल्पना करना उचित नहीं है।

इसके अतिरिक्त समाधि एक पवित्र स्थान है। वहाँ जलूस या दूसरे तमाशे के काम अच्छे नहीं लगते। यह ठीक है कि ऐसे कामों के बारे में कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती और जनता के उत्साह को भी नहीं रोका जा सकता। शहीदों की चिताओं पर मेले जुड़ा ही करते हैं। इस सत्य को हम स्वीकार करते हैं। हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि वे मेले दलगत न हों। किसी पार्टी-विशेष के न हों, भले ही वह सत्तारूढ़ कांग्रेस दल ही क्यों न हो!

और यह भी कि भारत-सरकार राष्ट्र की इस सम्पत्ति की रक्षा सरकारी विभाग की तरह न करके मानवता के मान-दण्डों के अनुसार करे।

राष्ट्रभाषा और प्रांतीय हिन्दी

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा बन चुकी है, पर खेद है कि उसको लेकर अभी तक विवाद नहीं समाप्त हुआ है। हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी विवाद की कसक अभी कुछ लोगों के दिल में खटकती रहती है और उसको प्रकट करने का कोई-न-कोई मार्ग वे ढूंढ ही लेते हैं। इधर एक नया नारा उठा है—भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी और उत्तर प्रदेश की हिन्दी, दो हैं। उनके रूप भिन्न-भिन्न हैं। अचरज इस बात का है कि यह नारा दोनों ओर से आया है। जो लोग कभी हिन्दुस्तानी के पोषक रहे थे उनमें से कुछ लोग संस्कृत-बहुल शब्दों वाली हिन्दी को उत्तर प्रदेश की हिन्दी कहकर अपना रोष प्रकट करते हैं। हिन्दी-वादी कट्टर लोग आवाज लगाते हैं कि राष्ट्रभाषा का तुम कुछ ही रूप स्थिर करो, पर भगवान के लिए हमारी हिन्दी को न बिगाड़ो।

दोनों के अज्ञान पर हमें तरस आता है। भाषा किसी के बनाये न बनती है और न बिगड़ती है। वह तो सदा स्वयं विकसित होती है। वह नदी का नीर है, पोखर का पानी नहीं है, जिसे आप अपनी मरजी से रोक सकते हैं। राष्ट्र-भाषा राष्ट्र की है। राष्ट्र में उत्तर प्रदेश भी है। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण भी हैं। सबके योगदान से जो भाषा विकसित होगी वह राष्ट्र की भाषा होगी। युग-युग में उसका रूप पलटता रहेगा,लेकिन आत्मा नहीं पलटेगी,इस सत्य को स्वीकार करके हमें इन अज्ञान-मूलक धारणाओं से छुट्टी पा लेनी चाहिए। ऐसी बातें स्वतन्त्र भारत के निवासियों को शोभा नहीं देतीं।

नेपाल और हिंदी

नेपाल हमारा पड़ोसी देश है। वस्तुतः वह अपने राजनैतिक अस्तित्व के अतिरिक्त और सब प्रकार से हमारा अंग है। उसकी संस्कृति, उसका धर्म सब हमारे समान हैं।

उसकी बोली भी हमारी बोलियोके परिवार की हैं। यद्यपि वहा कई बोलिया है पर गोरखाली उनमें प्रमुख है और वह हिन्दी के बहुत पास है। इधर समाचार आया है कि वहा के नवनिर्मित मन्त्रिमडल के एक मत्री श्री खड्गमान सिह ने अपने देशवासियो को सलाह दी है कि वे हिन्दी सीखें। यह सलाह ठीक समय पर दी गई है। यदि नेपाल देश के निवासी इसमें राजनैतिक गन्ध न मानें तो हिन्दी सीख कर वे बहुत कुछ सीख सकते है। वह उनके पडौसी महान भारत राष्ट्र की राष्ट्रभाषा है। भारत का सारा ज्ञान, सारा अनुभव इस भाषा में सचित होने वाला है। नेपाल देश के वासी हिन्दी सीख कर अनायास ही इतने बडे ज्ञान के अधिकारी बन सकते है।

हमारा उद्देश्य उनकी राष्ट्रभाषा के प्रश्न को उठाना नही है। वह कुछ भी बनें, हिन्दी का ज्ञान उन्हे सदा बल देगा, क्योकि भारत नेपाल का बडा भाई है। हमें विश्वास है कि नेपाली लोग अपने मत्री की इस नेक सलाह को उसी रूप में ग्रहण करेंगे, जिसमें वह दी गई है।

—'सुशील

पाठको का आभार

'जीवन-साहित्य' के पिछले अक में हमने अपने पाठको से कुछ प्रश्न पूछे थे और पत्र के वर्तमान रूप के सम्बन्ध में उनकी सम्मति तथा सुझाव मागे थे। बडे सतोष की बात है कि पाठको का ध्यान उन प्रश्नो की ओर गया और उन्होने न केवल पत्र पर अपनी सम्मति ही दी है, अपितु पत्र के और अधिक उपयोगी बनाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव भी भेजे हैं। इन सम्मतियो तथा सुझावो का हम 'जीवन-साहित्य के आगामी अको में यथावसर उपयोग करेंगे।

जहा तक 'जीवन साहित्य' के मौजूदा रूप व कलेवर का सम्बन्ध है, पाठका के विचार अलग-अलग हो सकते है, सबका एकमत हो भी नही सकता, लेकिन एक बात जो सबने स्वीकार की है, वह यह कि ये पत्र के ग्राहक बनाने मे पूरा-पूरा योग देंगे। एक बधु ने तो २५ ग्राहक बनाने का शुभ सकल्प किया है। कुछ बना कर भेज भी दिये है। कुछ भेज रहे हैं इससे स्पष्ट है कि पाठको को 'जीवन-साहित्य' के प्रति गहरी आत्मीयता है और वे चाहते है कि उनका यह पत्र सेवा-पथ पर उत्तरोत्तर गतिशील होता रहे।

पाठक जानते है कि पत्र में हम विज्ञापन नही देते और आजकल आमदनी का सबसे बडा साधन विज्ञापन ही होते हैं। अधिकाश पत्र इसी उद्देश्य को लेकर चल रहे हैं। वे कैसे-कैसे निकम्मे और घृणित विज्ञापन छापते हैं, इसकी कल्पना पाठको को इस अक के एक तत्सम्बन्धी लेख से हो जायगी। 'जीवन-साहित्य' इस मार्ग को सर्वथा अवाछनीय मानता है। इसमें पाठको के हित की भावना नही है, बल्कि निजके अनुचित लाभ की है। इसलिए प्रति वर्ष तीन-चार हजार रुपये का घाटा उठाते हुए भी 'जीवन-साहित्य' विज्ञापनो की आमदनी के लालच से बचता रहा है और आगे भी बचने का प्रयत्न करेगा। तब उसे केवल अपने पाठको का ही सहारा रह जाता है। पिछले किसी अक में हमने अपने पाठको से निवेदन किया था कि यदि प्रत्येक पाठक ५-५ ग्राहक बना दें तो 'जीवन-साहित्य' घाटे से बच जायगा और पाठको की सेवा अधिक क्षमता के साथ कर सकेगा। हमारे पास जो उत्तर आये है, उनमें अधिकाश लोगो का कहना है कि पत्र के पृष्ठ बहुत कम है। हम स्वय इस बात को महसूस करते है, लेकिन पृष्ठ बढाने का साहस करें तो कैसे ? पृष्ठ बढाने का अर्थ होगा घाटे को बढाना। पृष्ठ तो तभी बढाये जा सकते है जब ग्राहको की सख्या बढे।

हम पाठका से पुन अनुरोध करेंगे कि वे जितने ग्राहक बना सकें, बनाने की कृपा करें। अपने यहा के शिक्षा-विभागो तथा पुस्तकालयो व अन्य सार्वजनिक सस्थाओ को भी ग्राहक बनने के लिए प्रेरणा दे सकते है। प्रादेशिक सरकारो के शिक्षा-विभाग पत्र खरीदते तो है लेकिन दुर्भाग्य से 'सर्वोदय', 'हरिजनसेवक' अथवा 'जीवन-साहित्य' जैसे पत्रोको खरीदने की ओर उनका ध्यान नही जाता है। हमें उससे वेदना अवश्य होती है, पर हम जानते है कि सेवा का मार्ग हमेशा कठिन होता है। हमें विश्वास है कि जो सरकार नही कर पाती पाठक उसकी पूर्ति अवश्य करेंगे।

—य०

Reg. No. D. 228.

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

इस अंक के विशेष लेख

- विचार सुधार
- कत्रा का विराग (कहानी)
- जीवन की गहराई म (संस्मरण)
- सेवापुरी सवोदय-सम्मेलन
- कम्बोडिया के गौरव स्थल
- गुरुदेव—गांधी

आदि आदि

मई १९५२
छः आना

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

वार्षिक मूल्य ४)] **जीवन-साहित्य** [एक प्रति का ।≥)

लेख-सूची

आवश्यक सूचना

जो बन्धु जुलाई से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बने थे, उनका चंदा अगले महीने समाप्त हो जायगा। हमारा उनसे अनुरोध है कि बिना मांगे या स्मरण पत्र की प्रतीक्षा किये स्वयं ही वे अगले वर्ष के लिए ४) मनीआर्डर द्वारा भेज देने की कृपा करें। यदि तीस जून तक हमें रुपया या कोई सूचना नहीं मिली तो हम समझेंगे कि वे पत्र वी० पी० से चाहते हैं और जुलाई का अंक वी० पी० द्वारा भिजवा देंगे।

'जीवन-साहित्य' की आर्थिक स्थिति के विषय में हम समय-समय पर अपने पाठकों को सूचनाएं देते रहे हैं और पाठकों से यह छिपा नहीं है कि 'जीवन-साहित्य' को विज्ञापनों की आमदनी नहीं है। इसलिए उसे अपने ग्राहकों पर ही निर्भर करना पड़ता है।

ऐसी अवस्था में ग्राहकों से हमारा निवेदन है कि वे अपना शुल्क तो भेजें ही, साथ ही दूसरे भाइयों को भी ग्राहक बनने को प्रेरित करें।

व्यवस्थापक
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम पचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

मई १९५२] [वर्ष १३ अंक ५

बुद्धवाणी

अत शुद्धि न दृष्टि से न श्रुति से और न ज्ञान से ही प्राप्त होती है। शीलव्रती पुरुष भी आध्यात्मिक शुद्धि नहीं दिला सकता पर इतने से यह न समझना कि ये निरर्थक हैं और इनका त्याग करने से शुद्धि प्राप्त होती है। जबतक सम विशेष और हीन का भाव बना रहेगा तबतक शुद्धि दुर्लभ है।

मद्यपान के व्यसन से संपत्ति का नाश होता है इसमें तो सन्देह ही नहीं। फिर मद्यपान से कलह बढ़ता है और वह रोगों का घर तो है ही। इससे अपकीर्ति भी प्राप्त होती है। यह व्यसन लज्जा को नष्ट और बुद्धि को क्षीण कर देता है। मद्यपान के छ दुष्परिणाम हैं।

जो प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य नहीं। समस्त प्राणियों के साथ जो अहिंसा का बर्ताव करता है वही आर्य है।

जैसे कोई मनुष्य किसी प्रचण्ड धार की नदी में उतरकर तैर न सकने के कारण बह जाता है और दूसरों को पार नहीं उतार सकता वैसे ही जिस मनुष्य ने धर्मज्ञान का संपादन नहीं किया और विद्वानों के मुख से अर्थपूर्ण वचन नहीं सुने जो स्वयं ही अज्ञान और संशय में डूबा हुआ है वह दूसरों का किस प्रकार समाधान कर सकता है?

तुझे कोई गाली दो नहीं तेरे गाल पर कोई थप्पड़ मार दे या पत्थर या हथियार से तेरे शरीर पर कोई प्रहार करे तो भी तेरे चित्त में विकार नहीं आना चाहिए तेरे मुंह से गन्दे शब्द नहीं निकलने चाहिए तेरे मन में उस समय भी तेरे शत्रु के प्रति अनुकंपा और मैत्री का भाव रहना चाहिए और किसी भी हालत में क्रोध नहीं आना चाहिए।

सत्य एक ही है दूसरा नहीं। सत्य के लिए बुद्धिमान लोग विवाद नहीं करते।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मन्त्र का बन्धन

वीणा का कोई तार पीतल का होता है तो कोई तार फौलाद का। कोई तार मोटा होता है तो कोई तार बारीक। कोई तार मध्यम स्वर में आवद्ध होता है तो कोई पंचम स्वर में। तार को बांधे बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि उसमें से कोई एक विशुद्ध स्वर उपजाना होता है।

इस जगत् में ईश्वर के साथ हमें कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित करना होता है। कोई एक विशेष स्वर जाग्रत करना होता है।

चराचर विश्व के इस विराट् विश्वसंगीत में सूर्य, चन्द्र, तारे, औषधि, वनस्पति आदि सब अपने विशेष स्वर बजा रहे हैं। तो क्या मानव-जीवन को भी इस चिर-उद्गीय संगीत में, अपना स्वर नहीं बजाना चाहिए।

परन्तु अभी तक हमने इस जीवन को तार की तरह बांधा नहीं। अभी तक उसमें से किसी गान का आविर्भाव नहीं हुआ है! हमारे जीवन मूल स्वर से विच्छिन्न होकर अनेक प्रकार की तुच्छताएं अकृतार्थ हो रही हैं। येन-केन प्रकारेण उसमें से एक नित्य स्वर को ध्रुव बनाना ही पड़ेगा।

तो फिर तार को किस प्रकार बांधा जाय? ईश्वर की वीणा में बांधने के स्थान तो अनेक हैं। उनमें से किसी एक को निश्चित तो करना ही होगा।

मंत्र इस प्रकार का एक बन्धन है! मंत्र के आधार पर हम मनन के विषय को मन के साथ जोड़ कर रख सकते हैं। यही बात वीणा की खूंटी में होती है। इस प्रकार करने से आवश्यकता के प्रमाण में ही तार बांधा जाता है। वह छटक नहीं सकता।

विवाह के समय स्त्री-पुरुष के कपड़े में गांठ बांधी जाती है और उसके साथ मंत्र भी पढ़ा जाता है। वह मंत्र मन में भी गांठ बांध देता है।

ईश्वर के साथ ग्रंथि बांधने का जो प्रयोजन है उसमें मंत्र सहायक होता है। उस मंत्र के आधार पर हम उसके साथ अपना एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध निश्चित कर सकते हैं। ऐसा ही एक मंत्र है—पिता नोऽसि, पिता नो बोधि! नमस्ते अस्तु! मा मा हिंसी: यजुर्वेद।

जीवन को इस स्वर के साथ बांध लेने से अपने सभी विचारों में, सभी कर्मों में, एक विशेष रागिणी बज उठती है। मैं उसका पुत्र हूं यह मंत्र मूर्तिमान होकर हमारे समस्त अस्तित्व में यही बात प्रकट करेगा कि मैं उसका पुत्र हूं।

आजकल तो हम कुछ भी प्रकट नहीं करते, खाने-पीने में, काम में और आराम में समय चला जाता है। परन्तु अनन्त काल में, अनन्त जगत् अपने पिता हैं ऐसा कोई लक्षण ज्ञात नहीं है। अभी तक अनन्त के साथ हमारी कोई गांठ बंधी नहीं।

चलो, आज इस मंत्र से हम अपने जीवन का तार बांधें! खाते-पीते, उठते-बैठते, जागते-सोते, बारंबार यही एक मंत्र हमारे मन में बजता रहे—'पिता नोऽसि।' जगत् के समस्त मानव इस तथ्य को जान जायें कि हमारे पिता हैं।

ईसा मसीह इस स्वर को पृथ्वी पर झनझना चुके हैं। उनके जीवन के साथ यह तार ऐसी पक्की रीति से बंधा हुआ था कि मरण पर्यन्त की समस्त यंत्रणाओं ने या दुःसह आघातों ने उसे लेशमात्र भी बेसुध नहीं बनाया। वे बोलते थे—'पिता नोऽसि।'

'हे पिता, मैं तुम्हारा पुत्र हूं'—इस स्वर को ठीक प्रकार से जगाना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। क्योंकि पुत्र में पिता का ही प्रकाश होता है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' संतान में पिता स्वयं ही संतत होता है। यदि तुम्हारी अपापविद्ध, आनन्दमय, परिपूर्णता को व्यक्त नहीं किया जा सके तो फिर 'पिता नोऽसि' इस स्वर की झंकार कैसे होगी?

अतः मेरी प्रत्येक दिवस की यही प्रार्थना है—'पिता नो बोधि, नमस्ते अस्तु।'

अनु०—शंकरदेव विद्यालंकार

गुरदयाल मल्लिक

गांधी–गुरुदेव

गाधीजी सुनहली जिल्द मे बधी हुई भगवत्-गीता थे तो गुरुदेव उपनिषदो की सचित्र आवृत्ति । एक धर्म का उपासक था तो दूसरा सौंदर्य का, लेकिन दोनो एक साथ—यद्यपि अलग-अलग क्षेत्र में—एक ही सत्य के मन्दिर मे उपासना करते थे ।

गाधीजी ने सेवा का सगीत चर्खे की धुन के साथ गाया, गुरुदेव ने अपना जीवन सगीत की सेवा में बिताया। एक ने मनुष्य-जाति के दु खी दिल को दिलासा दिया तो दूसरे ने मनुष्य की आत्मा को आनन्द दिया। पर दोना एक साथ प्रेम के मोहित वर्तुल मे फिरे ।

गाधीजी ने नीति के अनन्त मार्गो पर चलते हुए प्रभु का मार्ग पकडा । गुरुदेव ने प्रेम की उपस्थिति म आनन्द मे नृत्य किया और प्रभु के दिल का गुप्त माग खोज निकाला ।

एक ने कमल मे जो बिजली का बाण है उसपर ध्यान किया, दूसरे ने बिजली के बाण पर जो कमल है उसपर। लेकिन ये दोना सत्य के दो बाजू है—मृदु और रुद्र, नम्र और शक्तिशाली–इसका ज्ञान प्राप्त किया ।

गाधीजी की दृष्टि में यह जगत प्रभु का एक कार्यालय था । गुरुदेव की दृष्टि में यह जगत भगवान का एक बगीचा था। परन्तु दोनो ने अविरत कार्य मे अपना जीवन बिताया। एक का काम था आनन्दमय करना और दूसरे का काम था आनन्द उत्पन्न करना।

गाधीजी यह मानते थे कि व्यक्तिगत समस्या जगत की समस्या है। गुरुदेव मानते थे कि जगत की जो समस्या है वही व्यक्तिगत समस्या है। पर दोनो जानते थे कि जीवन एक सीधी लकीर नही, एक वर्तुल है।

एक ने यह माना कि जीवन सगमरमर का एक ढेर है। पर दूसरे न यह माना कि जीवन प्रेम का अभिसार है। इसलिए गाधीजी न उस अनगढ ढेर में से मूर्तिकार के समान मूर्ति गढी, दूसरे ने फूल बीने और अपनी प्रिया की वेणी में शृगार किया। पर दोनो न जीवन तो स्वीकार किया। एक ने सेवक के रूप म और दूसरे ने सगीतकार के रूप मे। एक न दासी के रूप म और दूसरे ने कुमारी के रूप म ।

इस प्रकार गाधीजी और गुरुदेव दोना प्रभु के दिल के बाग में उगे—जो दिल मानव दिल है। उनके जीवन की सुवास अमर रहेगी, जैसे भगवान् अमर है।

प्रभुदास गाधी

विचार-सुधार

एक समय था, और यह बहुत पुरानी बात नही है जबकि हमारे देश के कोने-कोने में जहा देखो निराशा-ही निराशा छाई हुई थी। ऐसा प्रतीत होता था कि जिन श्वेत प्रभुओ की गुलामी के विनाशकारी शिकजे में हम लोग फसे है उसमें से निकलना कठिन ही नही, असभव सा ही है। निर्बल या बलवान अनपढ या विद्वान् रैयत या राजा, गवार या राजनीतिज्ञ और बूढा या नवजवान सभी के मन में यह विश्वास जम गया था कि इस अग्रेजी राज्य से छूटना, बरसो क्या सदियो तक नामुमकिन बना रहेगा। जिसके साम्राज्य ने आधी से अधिक पृथ्वी घेर रखी है और जिसके साम्राज्य में सूर्य अस्त ही नही होता, ऐसे साम्राज्य को उलटना मनुष्य के बूते की बात नही है। ईश्वर ही जब बेडा पार लगायेगा तब सही ।

किंतु करोडो भारतवासियो के हृदय में ऐसी घोर निराशा के होते हुए भी अपने देश में ऐसे विरले लोग मौजूद थे जो उस अटल साम्राज्य को उखाड फेंकने पर तुले हुए थे और इसी कोशिश मे दिन रात एक कर रहे थे। उनमें से कुछ लोग ऐसे थे जो लुक छिप कर जहा मौका मिले वहा चुन-चुनकर दुष्ट अफसरो की हत्या करने म अपनी पूरी शक्ति और बुद्धि खर्च करते थे। कुछ ऐसे भी थे,

जिन्हें इन छुटपुट हत्याओं के द्वारा कोई काम बनता नहीं दीखता था, इसलिए अंग्रेजों की फौज में छद्म रूप से प्रविष्ट होकर सारी-की-सारी भारतीय सेनाओं को बरगलाने की और विधिवत् समूचे देश में एकसाथ क्रांति कर देने की तैयारी में लगे रहते थे। दूसरी ओर कुछ समझदार विद्वान् अंग्रेजी राज्य के मूल सत्ताधारियों को समझा-बुझाकर और भले अंग्रेजों की दया प्राप्त करके अपने देश पर होने वाला कठिन अत्याचार व अन्याय दूर कराने का प्रयास करते थे। इन तीनों प्रकार के देश-सेवकों के अतिरिक्त एक दल ऐसा भी था जो राजकाज या राजनीति से अछूता रहकर अपने इस गुलाम देश के अवनत समाज को उन्नत करने के लिये भरसक प्रयत्न करता था। उनका खयाल यह था कि गुलामी के भयानक गर्त से देश को उभारने का कामयाब तरीका अपने समाज का सुधार ही है। और सुधार का उनका ध्येय प्रायः पाश्चात्य देशों की आधुनिकता को अपनाकर एवं यंत्र, विज्ञान और भौतिक साधनों का भरसक लाभ उठाकर देश के जीवन-स्तर को पश्चिम के देशों के बराबर ला देने का था। सार यह कि उस घोर गुलामी से बचने के लिये एक ओर तो कुछ लोग शारीरिक बल बटोरने में लगे हुए थे और दूसरी ओर कुछ लोग अपनी कालिख मिटाने के लिये समाज और जीवन-स्तर को परिवर्तित करने पर तुले हुए थे।

ऐसे समय में इन चारों प्रकार के देश-सेवकों से बिल्कुल भिन्न एक निराली आवाज गांधीजी ने निकाली। उन्होंने समस्त भारतवासियों को सचेत किया कि सर्वप्रथम आवश्यकता अपने विचार और दृष्टि को शुद्ध करने की है। जबतक विचार-दोष बना रहेगा तबतक भारत को गुलामी से छुड़ाने के लाख प्रयत्न बेकार साबित होंगे। यदि अंग्रेजों को भगाने में थोड़ी-बहुत सफलता मिलेगी भी तो वह गुलामी का परिवर्तन-मात्र होगी। अपनी इस चेतावनी को 'हिंद-स्वराज्य' नामक पुस्तक में गांधीजी ने लिपिबद्ध किया। वह कोई बड़ा ग्रंथ नहीं है, छोटी-सी पुस्तिका मात्र है; पर है साक्षात् जलती हुई चिनगारी। स्वच्छ चित्त से, किसी भी पूर्वाग्रह के बिना, जब उसका गहरा अध्ययन किया जाता है तब अपने विचारों में, अपने जीवन-प्रवाह में, आमूल परिवर्तन कर देना मनुष्य के लिये अनिवार्य हो जाता है। जिस आत्म-विश्वास के साथ प्राचीन ऋषियों ने अपने उपनिषदों के बारे में कहा है कि "इसे सुनकर सूखा ठूंठ भी अंकुरित हो उठेगा" उसी आत्मविश्वास के साथ गांधीजी ने अपने 'हिंद-स्वराज' की प्रस्तावना में विनयपूर्वक चुनौती दी है कि "उद्देश्य मात्र देश की सेवा करने का और सत्य की खोज का व उसके अनुसार आचरण करने का है। इसलिए यदि मेरे विचार गलत साबित होते हैं तो उसे पकड़ रखने का आग्रह मुझे नहीं है। परन्तु यदि वे सही साबित होते है तो दूसरे लोग भी उसका अनुसरण करें, ऐसी अभिलाषा देश-हित के लिये मन में रहेगी ही।"

दूसरों को अपने इन विचारों को ग्रहण करने का आग्रह वे क्यों कर रहे है, इसका भी खुलासा गांधीजी ने अपनी उस प्रस्तावना के आरम्भ में किया है—"जब मुझसे नहीं रहा गया तभी मैंने यह लिखा है। बहुत पढ़ डाला, बहुत सोचा-विचारा, जितना बन पड़ा, हिंदी लोगों से बहस की और बहुत से विचारवान अंग्रेजों से मिलने और बात करने का भरसक प्रयत्न किया। इसके बाद जो अपने अन्तिम विचार प्रतीत होते है उन्हें पाठकों के सन्मुख रखना अपना कर्त्तव्य समझता हूं और उसे लिखकर प्रकाशित करने का साहस मैंने किया है। आशा है कि अपने इन विचारों को आम जनता के सामने रखना अनुचित नहीं माना जायगा।"

और वे विचार हैं क्या ?

सच्चा जोश—अंग्रेजों से भारत को छुड़ाने की तीव्र आतुरता उसीमें आवेगी जो ज्ञानपूर्वक मानेगा कि भारतीय संस्कृति सर्वोपरि है और यूरोप की संस्कृति केवल तीन दिन का तमाशा है। ऐसे सुधार कई आए और मिट्टी में मिल गये। कई पैदा होंगे और मिट्टी में मिल जायंगे।

सच्चा जोश उसीमें हो सकता है जो आत्मबल का अनुभव पाकर शरीर-बल के सामने नहीं दबेगा व निडर रहेगा, और इतने पर भी किसी पर बल-प्रयोग करने की बात स्वप्न तक में नहीं सोचेगा।

सच्चे जोशवाला वह रह पायगा, जिस हिंदी का

दिल आजकल की दयनीय परिस्थिति को देखकर बहुत ही बेकरार बन गया होगा और जिसने जहर का प्याला शुरू से ही अपने गले के नीचे उतार लिया होगा।

अगर ऐसा (सच्चे जोश वाला) एक व्यक्ति भी होगा तो वह अंग्रेजो को भारत छोड कर चले जाने की बात सुना सकेगा और अंग्रेजो को वह सुननी पडेगी।

....हमें जो स्वातन्त्र्य चाहिए वह मागने से नही मिलेगा, हथिया लेने पर ही मिलेगा। हथियाने के लिये ताकत की आवश्यकता रहेगी। और यह ताकत, वह बल उसीके पास होगा जो—

१ अंग्रेजी भाषा का प्रयोग मजबूरी की हालत में ही याने अनिवार्य होने पर ही करेगा।

२ जो खुद वकील होते हुए भी अपनी वकालत को तिलाजलि दे देगा और अपने घर में चर्खा बसाकर कपडा बुनेगा।

३ जो वकील होते हुए अपना पूरा ज्ञान जनता को समझाने-बुझाने में और अंग्रेजो की आख खोलने में लगायेगा।

४ जो स्वय वकील होकर मुजरिम और मुवक्किलो के झगडो में न उलझकर अदालतो से अलग रहेगा और उसका परित्याग करने के लिये लोगो को अपने निजी अनुभवो के आधार पर समझायेगा।

५ वकील होते हुए अपनी वकालत छोडने के साथ-साथ जज बनना भी त्याग देगा।

६ जो डाक्टर होते हुए अपना धधा छोड देगा और विश्वास करेगा कि लोगो के रक्त-मास की चीर-फाड करते रहने के मुकाबले लोगो की आत्मा का विश्लेषण करके व उनका अनुसधान करके जनता को स्वस्थ करना बेहतर रहेगा।

७ जो डाक्टर होते हुए यह बात समझ लेगा कि वह स्वय चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय का हो फिर भी जिन्दे पशु-पक्षियो पर अंग्रेजी चिकित्सालयो में जो निर्मम चीर-फाड की जाती है, वैसी हृदयहीन क्रूरता के द्वारा यदि शरीर स्वस्थ हो सकता हो तो भी उसका स्वस्थ न होना और बीमार रहना अधिक श्रेयस्कर होगा।

८ डाक्टर होते हुए भी जो स्वय चर्खे को अपनायेगा और जो रोगी होगे उन्हे रोग का मूल कारण बताकर उसके निवारण का उपाय बतायेगा और व्यर्थ की औषधिया देकर रोगी की खुशामद हरगिज नही करेगा, और विश्वास रखेगा कि निकम्मी दवाइयो का सेवन छोड देने के कारण यदि किसी रोगी का शरीर गिर जाता है तो दुनिया बेवा हो जाने वाली नही है। इतना ही नही, उस व्यक्ति पर वह सच्ची दया ही मानी जायगी।

९ यदि वह सम्पत्तिशाली होगा तो भी अपने पैसो की परवाह न करके अपने मन में जो बात होगी वही कहेगा और किसी छत्रपति के सामने भी वह नही झिझकेगा।

१० वह धनकुबेर अपनी दौलत चर्खों की स्थापना में खर्च करेगा और स्वय केवल स्वदेशी वस्तुओ का ही इस्तेमाल करके वही पहन-ओढ कर, दूसरो को प्रोत्साहित करेगा।

११ सभी हिंदुस्तानी अपने मन में इस बात को पक्की करेंगे कि यह समय पश्चात्ताप और प्रायश्चित का है।

१२ सभी हिंदुस्तानी समझेंगे कि किसी भी प्रजा की तरक्की बिना दु ख उठाये कभी हुई नही है। युद्ध के मोर्चे पर की कसौटी होती है दु ख उठाने की। दूसरो को कत्ल करना कोई कसौटी नही है। जो बात रण-क्षेत्र में, वही बात सत्याग्रह में भी है।

१३ सभी हिंदुस्तानी इस बात को स्वीकार करेंगे कि जब दूसरे करेंगे तभी हम करने की सोचें, यह न करने का बहाना ही है। हमें उचित व अच्छा लगता है इसलिए हम अपने करने का काम शुरू कर दें, बाद में यदि दूसरो को जचेगा तब वे भी शुरू करेंगे। काम करने का यही एकमात्र तरीका है। जो स्वादिष्ट भोजन मेरे सामने आता है उसे ग्रहण करने के लिये मैं दूसरे की प्रतीक्षा में रुका नही रहता। ऊपर जो बात बताई गई उसको करना, अर्थात् अपने-आप आगे बढकर दु ख झेलना यह स्वादिष्ट भोजन है। और मायूस होकर करना या दु ख भोगना यह केवल बेगार ही है।

'हिंद-स्वराज्य' के बीस प्रकरण लिख कर गाधीजी ने अपनी बात का साराश ऊपर दी हुई कडिकाओ में

स्पष्ट कर दिया है और अन्त में फिर लिखा है—

"आपसे छुट्टी पाने से पहले दुबारा में कहने की इजाजत चाहता हूं कि :

१. स्वराज्य वही है जो अपने मन का राज्य हो।

२. उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मवल या दयावल है।

३. उस वल को काम में लाने के लिये स्वदेशी को अपने पूरे अर्थ में अपना लेने की आवश्यकता है।

४. यह जो हमें करना है, अंग्रेजों के प्रति द्वेष के कारण नहीं करना है अपितु अपना कर्त्तव्य समझकर करना है। अर्थात् अंग्रेज लोग नमक-कानून हटा लें, जो धन वे ले गये हैं वह लौटा दें, सभी हिंदुस्तानियों को वड़े-वड़े पदों पर विठा दें, अपनी फौज वापस लौटा ले जायं, तो भी हम उनके यंत्रों का वना हुआ वस्त्र पहनेंगे या उनकी भाषा को अपने व्यवहार में लायेंगे या उनके उद्योग-हुनर—उनकी कला-कारीगरी को काम में लायेंगे, ऐसा नहीं है।

वह सव सचमुच न करने योग्य है, इसीलिए वह करना नहीं है, यह वात हमें अपने मन में स्पष्ट कर लेनी होगी।

मैंने जो-कुछ कहा है वह अंग्रेजों के ऊपर द्वेष-भाव से नहीं कहा है। केवल उनके आधुनिक सुधार के द्वेष से कहा है।

मुझे प्रतीत होता है कि हम लोग स्वराज्य का नाम गा रहे हैं; परन्तु उसका स्वरूप हमारी समझ में नहीं आया है। मैं स्वयं उसे जिस प्रकार समझा हूं उसे समझाने का मैंने प्रयास किया है। और ऐसा स्वराज्य प्राप्त करने के लिये यह देह समर्पित है, ऐसी गवाही मन दे रहा है।"

गांधीजी ने ऊपर की वात आज से चालीस वर्ष से भी पहले लिखी है—लन्दन से केपटाउन लौटते हुए समुद्र-यात्रा में, "कीलडोनन केसल" नामक स्टीमर में। पुस्तक की समाप्ति पर गांधीजी ने अपने हस्ताक्षर इस प्रकार किये हैं—

ता. २२-११-०९ कीलडोनन केसल

—मोहनदास कर्मचन्द गांधी

गौर करने की वात है कि सम्पूर्ण स्वदेशी के द्वारा ही सच्चा स्वराज्य पा सकने की वात जव गांधीजी ने लिखी तव वह स्वयं पैरों की जुरावों से लेकर गले कालर और नेकटाई तक पूरे विदेशी वस्त्रों में सुसज्जित रहा करते थे।

उस समय गांधीजी को इस वात का भी ठीक-ठीक पता नहीं था कि गुजराती में जिसे 'रेंटिया' और हिंदी में चर्खा कहा जाता है वह कैसा होता है, किस प्रकार चलाया जाता है और उसके द्वारा क्या पैदा किया जा सकता है। "वकील लोग चर्खा लेकर कपड़ा वुनेंगे"—ऐसा वाक्य जव उन्होंने लिखा है तव उसका मतलव यही निकाला जाता है कि यह लिखते समय उनकी समझ में अपने घर में वैठकर काठ के मामूली औजारों के सहारे घर-वना कपड़ा तैयार कर लेने का आग्रह था। वह कैसे किया जा सकता है? चर्खा क्या है? कर्घा क्या है? यह ज्ञान प्राप्त करना अभी गांधीजी के लिये वाकी था। किंतु चर्खे का स्वरूप, उसका फलितार्थ, उसके साथ-साथ आवश्यक अनेक-विध प्रवृत्तियां और उससे प्राप्त होने वाले विविध परिणामों के वारे में अपने चित्त में धूमिल झांकी तक न होते हुए भी गांधीजी के मन और वुद्धि में यह वात पूर्णरूपेण प्रकाशमान थी कि यदि हमें जिन्दा रहना है और भारतवर्ष की प्रगति साधनी है तो विदेशी के प्रवाह से सर्वथा मुंह मोड़ कर अपने जीवन में स्वदेशी को उसके पूर्ण-स्वरूप से अपनाना ही होगा। सोलहों आना स्वदेशी में ही देश का दुर्दैव मिट सकता है और करोड़ों हिंदवासियों का वल इसीमें निहित है।

चूंकि गांधीजी अपनी वात के पूरे धनी थे और सच्चा स्वराज्य प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपना सारा जीवन और प्राण तक आहुति में चढ़ा देने का दृढ़ संकल्प कर लिया था इसीलिए स्वदेशी के मार्ग पर वे क्रमशः आगे वढ़ते ही चले गये। स्वदेशी की यह स्थापना किसी भीषण क्रांति के द्वारा, किसी से लड़-झगड़ कर अथवा जनता में पागलपन फैला कर गांधीजी ने नहीं की। यदि गांधीजी ने चाहा होता तो सन् १९२१ ई० में जव विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का कार्यक्रम उन्होंने देश के सामने रखा था और जव सारे हिंदुस्तान में घूम-घूम कर वे विदेशी वस्त्रों की अपने हाथ से होली जला रहे थे तव स्वदेशी के नाम पर मारकाट और जनूनी क्रांति की

धधकती हुई ज्वाला देश के कोने-कोने में फैला दी जा सकती थी। परन्तु स्वदेशी की साधना के उस उग्र आन्दोलन में भी गाधीजी ने जनता के विचार सुधारने का ही लक्ष्य रखा। साठ करोड रुपये के विलायती वस्त्रो का विरोध करने के लिए भारतभर में कुल मिला कर दो-तीन करोड रुपये के विलायती वस्त्र शायद ही जले होगे। लाख लाख आदमियो की भरी-पूरी सभा में मुश्किल से कुछ हजार व्यक्ति इस होली में केवल अपनी आठ-बारह आने की टोपी ही कुरबान करने मात्र का सहयोग देते थे, परन्तु इतने छोटे प्रतीक ने ही देश की सारी हवा बदल डाली और मैंचेस्टर के साठ करोड रुपये के वस्त्र-व्यवसाय पर सदा के लिये भारत के बाजारो में आफत आ गई।

सार यह कि किसी शोरगुल से नहीं, किसी छीना-झपटी से नहीं, अपितु केवल विचारो में परिवर्तन और उत्क्राति करके गाधीजी ने भारत की जनता को स्वदेशी के अमृत का पान कराया। यह उत्क्राति किस-किस प्रकार की हुई, कब हुई इसका थोडा-बहुत अध्ययन हमारे लिये पथ प्रदर्शक हो सकता है। इसलिए उसपर सरसरी निगाह डालना अनुचित न होगा। नीचे दी गई तिथियो से पता चलेगा कि स्वदेशी की सम्पूर्णता तक पहुचने के लिये गाधीजी ने स्वय और अपने साथियो के द्वारा कैसे-कैसे कदम बढाये हैं—

सन् १९०९ में गाधीजी ने भारतवासियो के लिये आदेश प्रकाशित किया कि घर में चर्खा बसाकर कपड़े बना लेने का काम हरेक को करना चाहिए।

सन् १९१० के बाद दक्षिण अफ्रीका के फीनिक्स आश्रम में अग्रेजी दूकानो से सिलासिलाया तैयार विलायती सूट-शर्ट आदि मोल लेना बन्द हो गया। हिंदुस्तानी मिल के बने कपडे के घर में कुरते, कोट, पतलून सी लेने का आग्रह रखा गया।

सन् १९११ के बाद चमकते हुए रगीन विलायती सूट का गाधीजी ने प्राय परित्याग किया। केवल शुभ्र वस्त्र के पतलून और कमीज का ही पहनावा रखा।

सन् १९१३ में दक्षिण अफ्रीका में होते हुए भी पतलून व कमीज छोड कर मद्रासी लुगी और ढीला कुरता गाधीजी ने अपनाया।

सन् १९१५ में कोचरब आश्रम में मिल के सूत के करघे पर कपडे बुन लेना गाधीजी ने शुरू किया और आश्रमवालो के लिये हाथ-बुने और अपने हाथ के सिले वस्त्र ही पहनने का नियम बनाया।

सन् १९१७—गाधीजी ने दोहरे वस्त्र अर्थात् काठियावाडी पगडी और अगरखा पहनना छोड कर केवल धोती-कुरता और अपनी आविष्कृत गाधी टोपी लगाना शुरू किया।

सन् १९१८—मिल के सूत के बने वस्त्र छोडने की दिशा में श्रीगणेश के रूप में हाथ के कते सूत की खादी की मोटी धोती पहनना गाधीजी ने आरम्भ किया।

सन् १९१९—साबरमती आश्रम में होने वाली मिल के सूत की बुनाई हटा कर हाथ-कते सूत की ही बुनाई चालू करने का सकल्प किया गया और इसके वास्ते चर्खे पर सूत कातने का प्रयत्न शुरू हुआ। अर्थात् 'हिन्द-स्वराज्य' में लिखने के दस वर्ष बाद गाधीजी ने प्रथम बार अपने आश्रम में चर्खे की स्थापना की।

सन् १९२०—कताई के लिये मिल की बनी पूनियो को प्रयोग में लाना बन्द किया गया और साबरमती आश्रम में मिल के सूत की रही-सही बुनाई भी समाप्त कर दी गई।

सन् १९२१—यरवदा जेल में गाधीजी कातने के साथ-साथ धुनाई करके पूनी बनाने का काम भी करने लगे। इससे पहले पूरे भारतवर्ष में एक लाख चर्खे चालू करने का प्रचार जिले-जिले की काग्रेस कमेटियो ने किया। बडे नगरो में शानदार खादी-भडार खोले गये और कई आश्रमो एव विद्यापीठो में जोरो से कताई-बुनाई चल पडी। आश्रमो में सभ्यो के लिये खादी पहनना अनिवार्य हो गया।

सन् १९२४—यरवदा जेल से छूटने पर और काग्रेस का अध्यक्षपद सभालने पर गाधीजी ने प्रत्येक काग्रेसी सदस्य के लिये सूत कातना अनिवार्य बना दिया।

सन् १९२६—अखिल भारत चर्खा-सघ का व्यवस्थित रूप से सगठन किया गया। भिन्न भिन्न प्रान्तो में खादी-उत्पादन और बिक्री बढ़ने लगी।

सन् १९२८—पूरे भारतवर्ष में प्रवास करके गांधीजी ने चर्खा-संघ को शक्तिशाली बनाया। खादी मिल-वस्त्रों से भी अधिक मुन्दर व बढ़िया बनने लगी। खादी-कार्य को व्यापारिक ढांचे पर सुगठित किया गया।

इसके बाद सात-आठ वर्ष तक प्राय: यही सिलसिला चलता रहा। बेहतरीन और मिल के कपड़े के मुकाबले में बाजार में खप सके ऐसी खादी पैदा करने का सतत प्रयास होता रहा। कांग्रेस के राजनैतिक आन्दोलनों के साथ, विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर पिकेटिंग आदि होने के कारण किसी वर्ष खादी की खपत दुगनी-तिगनी हो जाती और कभी राजनैतिक क्षेत्र में मायूसी छा जाने पर खादी की बिक्री आठवां हिस्सा ही रह जाती। फिर भी कपड़ों के बाजार में प्राय: डेढ़ से दो प्रतिशत कपड़ा खादी का बिकने लगा और औसत प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपये का काम चर्खा-संघ करने लगा।

सन् १९३४ या ३५ में, यानी 'हिंद-स्वराज्य' लिखने के पच्चीस वर्ष से अधिक समय बीतने पर गांधीजी ने अपने 'पूर्णतया स्वदेशी' के सूत्र पर बहुत जोर देना शुरू किया। चर्खे के साथ-साथ अन्य ग्रामोद्योगों को भी गांवों में और घरों में विकसित करने का उपदेश दिया। वर्धा में मगनवाड़ी की स्थापना की और स्वदेशी-व्रत अपनाने वालों को चक्की-घानी चलाने की प्रेरणा की! वस्त्र में जो स्वदेशी दृष्टि थी वह रसोई-घर में पैदा की।

सन् १९३६ में—खादी और ग्रामोद्योगों के मजूर-कारीगरों के हितार्थ क्रांतिकारी परिवर्तन किया गया और चर्खे, चक्की आदि पर काम करने वालों को भरपेट दाल-रोटी भी न मिले, इतनी कम मजदूरी देने का निषेध किया गया। इस प्रकार गांधीजी ने आर्थिक क्षेत्र में एक नया ही क्रांतिकारी विचार प्रकट किया कि बाजार में सस्ती-से-सस्ती चीज बेचने और खरीदने की होड़ में उतरना मनुष्य के लिए लांछन-स्वरूप है और उसीमें शोषण की जड़ समाई हुई है। सब आदान-प्रदान पूरा पारिश्रमिक देकर ही करने में ग्रामोन्नति-देशोन्नति और मानव-हित है।

सन् १९३८—स्वदेशी व्रत का पूर्णरूप से पालन आर्थिक क्षेत्र में ही करना पर्याप्त न होगा, सांस्कृतिक क्षेत्र में भी करना होगा और स्वदेशी का मूल सांस्कृतिक विकास में ही है, इस बात पर गांधीजी ने जोर दिया। और इसके लिए कताई और ग्रामोद्योगों के सहारे ही सभी पाठशालाओं के चलाने की व बुनियादी तालीम देने की योजना उन्होंने देश के सामने रखी।

यह क्रांति भी विचारों में आमूल सुधार करने के हेतु की गई।

सन् १९४५—सन् बयालीस की राजनैतिक क्रांति के बाद आगाखां महल के जेल से छूटने पर स्वदेशी के पूर्ण पालन पर गांधीजी ने नये ही सिरे से प्रकाश डाला और केवल खादी, केवल ग्रामोद्योग और केवल बुनियादी तालीम के बदले समग्र ग्राम-सेवा की ओर देश का व देश-सेवकों का ध्यान दिलाया।

सन् १९४७—चर्खा-संघ के व्यापारिक संगठन को विकेंद्रित करके उसकी शक्ति और अनुभव को गांवों के छोटे-छोटे क्षेत्रों में पूरी तौर से लगाने का आदेश दिया। खादी की व्यापारिक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगा दिया और प्रत्येक देशहितैषी स्वदेशी पालन का आग्रही और खादीधारी स्वयं कुछ-न-कुछ उत्पादन का काम भी करे, इस आग्रह को कायम करने के लिये खादी के मूल्य में थोड़ा अंश सूत के रूप में लेना प्रारम्भ कराया।

सन् १९४८ के फरवरी मास की तीसरी तारीख को सेवाग्राम में इसी समग्र-सेवा की प्रवृत्ति को विकसित करने के लिए और अंग्रेजों के चले जाने के बाद दिल्ली में आये हुए स्वराज्य को गांव-गांव पहुँचाने के वास्ते स्वदेशी-व्रत का पालन अधिक ठोस रूप में कैसे किया जाय, इसका मार्ग-दर्शन कराने के हेतु कार्यकर्ताओं की एक बड़ी सभा का आयोजन गांधीजी ने कराया था और स्वयं उसमें उप-स्थित होने के लिए दिल्ली से प्रस्थान करने वाले थे कि अकस्मात उनके लिये महाप्रस्थान करने की वेला आ गई। हमारे लिये अधिक परिश्रम करने से ईश्वर ने उन्हें रोक लिया और उनका स्थूल देह उनसे विसर्जित करवा लिया। भारत-भर में अपने संपूर्ण अर्थ में पूर्णरूप से स्वदेशी की स्थापना करने की मनोकामना उनके मन में अपूर्ण ही रह गई और उस दिशा में जाने का क्रांति-कारी विचार वे हमारे लिये विरासत में छोड़ गये।

कंचनलता सब्बरवाल

मुझे दान करें

बढ़ते हुए हाहाकार में भीगे हुए स्वर से रो उठते थे, भयग्रस्त रुदन गा उठते थे करुण रागिनी वह रागिनी जिसके स्वर बिखरे हुए से हैं, जिसके कण-कण में अनन्त वेदना चीख रही है। वह रट रहा था—'मा घर चलो' और अभागी मा दुर्भाग्य से निरन्तर संघर्ष करते-करते थकित-चकित मा उसकी ओर देख भर लेती थी। पीडित हृदय से पिता मानो अपने दुर्भाग्य के प्रति कह उठता था, "कहाँ है अपना घर ?" और निस्तब्ध रात्रि हाहाकार कर उठती थी

उसने चीखा-चिल्लाया, रोया-गाया; किंतु उसकी, उस घर-बार-विहीन अभागे मानव-परिवार की करुण पुकार महलों मे टकरा कर लौट आई समुद्र की लहरों से खेलकर पलट आई, झोपडियो से भीगकर, भागी होकर विफल हो आ गई। वह बे-घर-बार था। मालिक के खेत में उसने छ वर्ष तक जलती दोपहरी में श्रमकण-सिंचित परिश्रम किया था, कपाती सर्दियो में दांत कटकटाते हुए काम किया था और आज वह भूमि-स्वामी की दी हुई एकमात्र आश्रयदायी झोपडी से भी निकाल दिया गया था। उसकी अर्द्ध-नग्न नारी, उसका भोला अभागा शिशु, सब ही तो आज पथ के आश्रित हैं, किंतु पथ भी क्या उनका अपना है? रात के बढ़ते हुए अन्धकार मे उन्हे दूर से आता हुआ सिपाही स्पष्ट दीख रहा है। अब अब ठोकर, गाली और और . ।

श्रमकार, भूमि-सेवक—धरती माता का पुत्र इसी प्रकार अनेक युगो से चीख चिल्ला रहा था। उसके रुदन के स्वर क्षीण पडते जा रहे थे। उसका कठ सूखकर मरुस्थल बन गया था और और उसकी करुण स्वर-लहरी बज उठी सन्त के कानो में। रो उठा सन्त का हृदय' यह भूमि-सेवक, यह कामकर, यह देश का लाल, यह भूखा है, यह नगा है, यह भूमि-हीन है। . सन्त तड़प उठा। उसकी व्यथा से उसके कानो में, हृदय में और सर्वांग मे गूज उठा प्रश्नोत्तर "घर चलो।" "कहा है अपना घर ?" और वह निकल पडा भिक्षा मागने। युग-युगान्तर से कब किसने ऐसी भिक्षा मागी थी। उसके शान्त हृदय की वेदना, सच्ची सहानुभूति से सने स्वर गूज उठे, भूमि सबकी है धरती-माता अपने सब पुत्रो की है। वह आज भूमिविहीन क्यो है? तुम आज आवश्यकता से अधिक भूमि के स्वामी क्यो हो? मुझे, मुझे सन्त को दान दो मेरी झोली भर दो. अक्षय दान मे मुझे भूमि चाहिए उनके लिये जो भूमि-विहीन है। मुझे आज अमर भूमि-अक्षत से दरिद्रनारायण की अर्चना करनी है। आज की मेरी अमर पूजा तुम्हारे सात्विक दान मे ही हो सकेगी। मेरी खाली झोली भर दो तुम्हारा दान व्यर्थ नही जायगा। उसमे दरिद्रनारायण की अर्चना होगी, पूजा होगी।

आकाश से अदृष्ट कुसुम वर्षा आरम्भ होगई भूमि-विहीनो की दुर्बल स्वर-लहरी सबल व्यक्तियो तक पहुचाने का भार लेने वाला अनन्त शक्तिशाली, निर्भय दीनबन्धु सन्त आज भी अपनी शान्त, दृढ एव स्निग्ध वाणी से भारत के भूमि-स्वामियो को उनकी तामसी निद्रा से जगाने के लिये कह रहा है "मुझे दान दो मुझे दान चाहिए उनके लिये जिनके पास कुछ भी नही है फिर भी जो महान हैं मानव है।"

सन्त विनोबा की वाणी जन-जन के हृदय में गूज उठी है गज रही है

नित्य पाठ की चीज यदि यांत्रिक होगई तो फिर वह चित्त मे अंकित होने की जगह उल्टी मिट जायगी। यह दोष नित्य पाठ का नही, मनन न करने का है। नित्य पाठ के साथ-ही साथ नित्य मनन और नित्य आत्म-परीक्षण आवश्यक है।

'गीता-प्रवचन
पृष्ठ ३२

—विनोबा

हरिभाऊ उपाध्याय

जीवन की गहराई में

(३)

कोई चार बजे प्रातःकाल गाड़ी पकड़नी थी—पुलिस के जमादार और दो सिपाहियों ने आकर मुझे जगाया। मुझे हथकड़ी डालकर ले जावें या कैसे, इस दुविधा में वे थे। शायद दारोगाजी ने उन्हें स्पष्ट हुकुम नहीं दिया था। वे उन्हें जगाना चाहते थे। मैंने बीच में पड़कर कहा—"उन्हें जगाने की जरूरत नहीं है, तुम मुझे हथकड़ी डालकर ले चलो। मुझे इसमें कोई शर्म या अपमान नहीं मालूम होगा।" मैंने मन में यह भी सोचा कि बिना हथकड़ी डाले यदि अजमेर ले जायंगे तो रास्ते में किसीको यह पता नहीं चलेगा कि मैं गिरफ्तार कर लिया गया हूं। हथकड़ी होने से तमाम स्टेशनों पर शोहरत फैल जायगी—क्योंकि प्रायः हर बड़े स्टेशन पर कोई-न-कोई जाननेवाला मिल ही जाता है। जब दूसरे दिन मैं अजमेर स्टेशन पर पहुंचा तो जो पुलिस-अफ़सर मुझे लेने के लिये आये थे उन्होंने मुझे थर्ड क्लास में और हथकड़ी पहने हुए देख कर साथ वाले जमादार को डांटा और कहा—"यह क्या? थर्ड क्लास में? सो भी—हथकड़ी डालकर लाये हो? खोलो हथकड़ी! मैं इस दृश्य को नहीं देख सकता।" और जब मेरी हथकड़ी खुल गयी तब वह डिब्बे में आया। मुझसे हाथ मिलाया और कहा, 'मैं बड़ा शर्मिन्दा हूं कि ये लोग आपको हथकड़ी डालकर लाये।' और जब वे कोटावाले इन्सपैक्टर उन्हें मिले तो उन्हें भी इस बात पर बड़ा उलाहना दिया।

इस समय इससे पहले के जेल-जीवन के दो-एक अच्छे संस्मरण याद आ रहे हैं जो सचाई या सत्याग्रही वृत्ति के प्रत्यक्ष फल जैसे मुझे मालूम होते हैं।

जेल में दाढ़ी-हजामत के लिये राजनैतिक कैदियों को भी जेलर के दफ्तर में आना पड़ता था और उनके सामने दाढ़ी-हजामत की क्रिया होती थी। एक रोज़ मैंने जेलर से कहा कि क्या नाई कैदी को आप बैरक में हजामत बनाने के लिये नहीं भेज सकते? उन्होंने एक क्षण सोचा और कहा—"सब आदमी आपकी तरह हों तो भेज दूं। लोग मेरे सामने भी नाइयों से बातें करते हैं और बातों-बातों में अपना काम कर लेते हैं। जबकि मुझे यह सख्त हिदायत है कि राजनैतिक कैदियों को मामूली कैदियों से बात न करने दूं। यदि आप यह विश्वास दिला दें कि कोई राजनैतिक कैदी नाई कैदी से बात नहीं करेगा तो मैं नाई कैदियों को बैरक में भिजवा दिया करूंगा।" मैंने झट से विश्वास दिला दिया। तब वे बोले—"ऐसे नहीं, आप जाकर अपने सब साथियों से अच्छी तरह बातचीत कर लें और यदि वे इसको मंजूर कर लें तो मुझे विश्वास दिलायें।" सबने मंजूर तो कर लिया; परन्तु बाद में निभाया नहीं और हम लोगों को फिर वहीं दफ्तर में हजामत के लिये जाना पड़ा।

जेल में राजनैतिक कैदियों को देने के लिये बहुत-सी पुस्तकें आया करती थीं। जेलर बहुत बार मुझे बुला लिया करते और कहते कि देखिये इनमें से कौन-कौनसी पुस्तकें राजनैतिक कैदियों को देनी चाहिए? और मैं बिल्कुल ईमानदारी से उनको बता दिया करता था कि कौन-सी पुस्तकें आपत्तिजनक थीं। बाद के जेल-जीवन में भी जेल-अधिकारियों का यह विश्वास जारी रहा। जेल में जब-जब कैदियों की तलाशी के अवसर आये हैं, जेल-अधिकारियों ने मुझे उससे प्रायः बचा लिया है,

एक बार 'सी' क्लास का एक राजनैतिक कैदी चक्की में दिया गया। मुझे भी कुछ समय 'सी' में रहना पड़ा था। उन्हीं दिनों की यह घटना है। यद्यपि मुझे अनाज-सफाई का काम दिया गया था, फिर भी मैं साथी-कैदियों का उत्साह बढ़ाने के लिये खुद चक्की पीसा करता था। जहां तक मैंने देखा, प्रायः सभी राजनैतिक कैदी सचाई के साथ अपना काम पूरा करने की कोशिश करते थे। बाज-बाज चक्की की मशक्कत से घबराते जरूर थे; परन्तु आ पड़ने पर उमंग से अपना काम पूरा करने की कोशिश करते थे। कोई अठारह साल का एक जवान लड़का था, पहुंची में दर्द होने से उससे पीसा कम जाता था। इत्तिफाक से उसी दिन सुपरिंटेंडेंट का दौरा

हुआ। वह यूरोपियन था। लडका धीमे धीमे पीस रहा था, सुपरिन्टेंडेंट को शक हुआ कि यह बनता है दर्द-वर्द कुछ नही है। उसने कुछ पूछा—काम कम क्यो करते हो? लडका न अग्रेजी जानता था, न हिंदी ही अच्छी तरह बोल सकता था। उसने जो-कुछ जवाब दिया उसम सुपरिटेंडेंट ने समझा कि यह गुस्ताखी कर रहा है। उसने हुक्म दिया—'कोठरी म बन्द करके इससे पूरा काम लो।' खबर लगते ही हम लोग चिन्तित हुए—लडका भी घबडाया। एक तो हाथ में दर्द, फिर पूरा काम देन पर ही तन्हाई-कोठरी से मुक्ति हो सकती थी। सुपरिटेंडेट के चले जाने पर मै जेलर के पास गया। जेलर ने कहा—'मै खुद मानता हू कि लडका ईमानदार है, मगर उसके जवाब से साहब बिगड गया।' मैने समझाया कि उसकी मदद का कोई उपाय होना चाहिए। वह अकेला तो जब कि हाथ में दर्द है, कैसे काम पूरा कर सकेगा?

जेलर—'उपाय तो हो सकता है,परन्तु जैसे आपपर मेरा भरोसा है, वैसे ही अपने भरोसे के किसी साथी को आप चुन ल तो रास्ता निकल सकता है। यदि बात फूट गयी तो मेरा मरण सबसे पहले होगा।"

मै—"ऐसा ही होगा, यदि लडका ईमानदार न होता तो मै खुद भी सिफारिश करने न आता। सच्चे की सहायता करना प्रत्येक का धर्म होता है। या तो आप साहब को समझाइये कि उन्होने स्थिति को समझने में भूल की है या सचाई की खातिर लडके की मदद कीजिये।"

जेलर—"साहब से कुछ कहने जाऊगा तो वे शक करेंगे कि मैं राजनैतिक कैदियो के प्रति सहानुभूति रखता हू। अत उन्हे तो पूरा काम करके ही दिखाना चाहिए। यदि आप अपना विश्वसनीय साथी चुन सकते हैं तो मैं उसे कोठरी मे उसके साथ रख दूगा—दोनो मिल कर पूरा काम कर सकेंगे—साहब को पूरे काम की रिपोर्ट मिलने पर तन्हाई से उसकी छुट्टी हो जायगी।"

मैंने भाई जयनारायणजी व्यास से—कल के राजस्थान के मुख्य मन्त्री—जो उन दिनों 'सी' क्लास के कैदी थे, बातचीत की, वे उसी दम तैयार हो गये—जैसी कि उनकी सदैव सिपाहियाना और सहानुभूतिशील प्रवृत्ति रहती है—और शायद दो-तीन दिन तक कोठरी में उस लडके के साथ चक्की पीसी। तीसरे-चौथे दिन फिर साहब की रौंद हुई, उन्हे पूरे काम की रिपोर्ट मिली और वह स्वयसेवक कोठरी में चक्की की पिसाई से बरी हुआ। (क्रमश)

●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रेम बनाम पूजा

ससार से वैराग्य लेने वाला एक वैरागी गभीर रात्रि में बोल उठा, "आज मै इष्टदेव के लिए घर छोड दू गा—कौन मुझे भुला कर यहा बाधे हुए है?" देवता ने कहा, "मै।" उसने नही सुना। नीद में डूबे शिशु को छाती से चिपटाकर प्रेयसी शय्या के एक किनारे सो रही थी। वैरागी ने कहा, "ऐ माया की छलना, तू कौन है?" देवता बोल उठे, "मै!" किन्तु किसी ने नही सुना। शय्या पर से उठकर वैरागी ने पुकारा, "प्रभो! तुम कहा हो?" देवता ने उत्तर दिया, "यहा।" तो भी वैरागी ने नही सुना। स्वप्न मे माता को खीच शिशु रो पडा। देवता ने कहा, "लौट आओ।" वैरागी की यह वाणी भी नही सुनाई दी। अन्त मे लम्बी सांस लेकर देवता ने कहा—"हाय, मेरा भक्त मुझे छोडकर कहा चला!"

●

खलील जिब्रान

कब्रों का विलाप

अमीर न्यायासन पर विराजमान हुआ। उसके दायें-बायें देश के विद्वान्-पंडित लोग बैठे थे जिनके चढ़े हुए चेहरों पर किताबों और ग्रन्थों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। आसपास सिपाही तलवारें थामे और नेजे उठाये खड़े थे। सामने दर्शक लोग अपराधियों के न्यायदान का दृश्य देखने की प्रतीक्षा में खड़े थे। सबकी गर्दनें झुकी हुई थीं। आंखों में आजिज़ी झलक रही थी और सांस रुकी हुई थी। गोया अमीर की आंखों में एक ताकत थी जो उनके दिलों पर डर और रोब फैला रही थी।

मंत्रणा पूरी हुई और इन्साफ का वक्त आ गया। अमीर ने हाथ उठाया और चिल्लाकर कहा, "गुनहगारों को एक-एक करके मेरे सामने हाज़िर करो और उनके गुनाहों व दोषों से मुझे परिचित कराओ।" इसपर कैद-खाने का दरवाजा खोल दिया गया और काली दीवारें नज़र आने लगीं।

जंजीरों की झनकार आने लगी जिसके साथ कैदियों की आहें और रोना-पीटना मिला हुआ था। दर्शक गर्दनें उठा-उठा कर उनकी तरफ देखने लगे मानो उस कब्र की गहराई से निकले हुए मृत्यु-ग्रासों पर पहले नज़र डालने में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते थे।

थोड़ी देर के बाद कैदखाने से दो सिपाही निकले जिनके कब्जे में एक नौजवान था। इसके हाथों में हथकड़ी थी और उसकी चढ़ी हुई त्यौरी व निडर चेहरे से स्वाभिमान और आत्मिक शक्ति का पता चलता था। उसे सिपाहियों ने अदालत के बीच में खड़ा कर दिया और खुद थोड़ा-सा पीछे हटकर खड़े हो गये। अमीर ने एक क्षण तक उनकी तरफ घूरकर देखा और फिर सवाल किया, "यह आदमी जो हमारे सामने इस तरह सिर उठाये खड़ा है, गोया अदालत में नहीं बल्कि किसी गर्व के स्थान पर खड़ा हो, इसने क्या जुर्म किया है?"

अमीर के वजीरों में से एक ने जवाब दिया,—"कल सरकार के एक फौजी अफसर और चंद सिपाही देहात में एक काम पर गये थे। इस आदमी ने अफसर को कत्ल कर दिया। सिपाहियों ने इसे गिरफ्तार कर लिया और खून में लिथड़ी हुई तलवार कब्जे में करली।"

अमीर आसन पर बैठा क्रोध से कांपने लगा। उसकी आंखों से कोप के तीर निकलने लगे। उसने गरजती हुई आवाज़ में कहा, "इसे भारी जंजीरों में जकड़ दो और फिर उसी अंधेरी कोठरी में बन्द कर दो और कल इसी की तलवार से इसकी गर्दन उड़ा दो और इसकी लाश को शहर के बाहर फेंक दो ताकि गिद्ध और चील इसका गोश्त नोच लें और हवा इसकी बदबू को इसके घरवालों और दोस्तों तक पहुंचा दे।"

नौजवान को वापस कैदखाने की तरफ ले जाया गया और लोगों की दुःखपूर्ण दृष्टियां उसके पीछे-पीछे गईं; क्योंकि वह अभी कम उम्र था, खूबसूरत था और स्वस्थ था।

इसके बाद दो और सिपाही एक औरत को लिये कैदखाने से निकले। यह स्त्री बड़ी सुन्दर और कोमलांगी थी। उसकी आंखों में दुःख और निराशा का पीलापन झलक रहा था। उसने अपनी आंखें नीची की हुई थीं और शर्म के मारे गर्दन झुका रखी थी।

अमीर ने उसपर निगाह डाली और कहा—"इस औरत ने, जो हमारे सामने इस तरह खड़ी है जैसे सत्य के सामने छाया, क्या जुर्म किया है?"

एक सिपाही ने उत्तर दिया, "यह औरत बदचलन है। रात को जब इसका शौहर घर आया तब उसने देखा कि यह अपने एक प्रेमी के साथ सोयी हुई है। इसका दोस्त डरकर भाग गया और इसके पति ने इसे पुलिस के हवाले कर दिया।"

यह सुनकर अमीर क्रुद्ध हो उठा और वह औरत शर्मिंदगी के मारे पानी-पानी हो गई। अमीर ने गरजते हुए कहा, "इसे वापस कैदखाने में ले जाओ और कांटों के बिस्तर पर सुलाओ ताकि यह उस बिस्तर को याद करे जिसे इसने अपने पाप से नापाक बनाया और इसे इनारु

(एक कडवा फल) मिला हुआ सिरका (शराब) पिलाओ ताकि यह अपने घर के खाने को याद करे और जब सुबह हो जाय तब इसे नगा करके खीचते और घसीटते हुए शहर के बाहर ले जाओ और सगसार[1] कर दो। इसकी लाश को वही पडा रहने दो ताकि भेडिये इसका गोश्त खा जाय और हड्डियो को कीडे-मकोडे चाट ले।"

उस औरत को फिर कैदखाने की अधेरी कोठरी में ले जाया गया। लोग उसकी तरफ अफसोस की नजरो से देख रहे थे। वे अमीर के इन्साफ पर भी खुश थे, लेकिन उन्हे उस स्त्री की सुन्दरता, कोमलता और उसकी दुखी आखो पर भी रहम आ रहा था।

फिर दो सिपाही अधेड उम्र के एक कमजोर आदमी को लिये हुए आये जो अपने कापते हुए घुटनो को घसीटता हुआ चल रहा था। उसने जनसमूह की ओर व्याकुलता भरी आखो से देखा। उसकी आखो में निराशा, विनाश और दरिद्रता झलक रही थी।

अमीर ने उसपर निगाह डाली और जोश में आकर कहा—"इस गन्दे आदमी ने जो इस तरह खडा है जैसे जिन्दो में मुर्दा, क्या गुनाह किया है?'

एक सिपाही ने जवाब दिया, "यह चोर है। रात के वक्त यह कलीसा (गिरजा) मे जा घुसा और जोगियो ने इसे पकड लिया। इसकी झोली में पवित्र नैवेद्य के बरतन पाये गए।"

अमीर ने उसकी तरफ इस तरह देखा जैसे भूखा गिद्ध परकटी चिडिया की ओर देखता है और चिल्ला कर बोला, "इसे फिर कैदखाने के अधेरे में फेंक दो और जजीरो से जकड दो। जब सुबह हो जाय तब इसे रेशमी रस्सी के सहारे एक ऊचे पेड से लटका दो और उसी तरह इसे जमीन व आसमान के बीच तबतक लटका रहने दो जबतक कि इसकी गुनहगार उगलिया सड गल न जाय और उनकी बदबू चारो ओर न फैल जाय।'

सिपाही चोर को फिर कैदखाने में ले गये और लोग कानाफूसी करने लगे कि इस मरियल काफिर ने पवित्र उपासना-गृह के बरतन चुराने की हिम्मत कैसे की?

अमीर न्यायासन से उतरा और उसके विद्वान तथा बुद्धिमान परामर्शदाता उसके पीछे-पीछे हो लिये। सिपाही कुछ आगे होगये, कुछ पीछे। दर्शकगण तितर बितर हो गये और इस तरह वह स्थान खाली हो गया। अलबत्ता कैदियो की आहे और गहरी सास सुनाई देती रही।

मै वहा खडा उस कानून पर हैरान हो रहा था जो इन्सान ने इन्सान के लिए बनाया है। मै उस चीज पर गौर कर रहा था जिसे लोग इन्साफ कहते है, यहा तक कि मेरे विचार इस तरह गायब हो गये जिस तरह सध्या की लालिमा धुध मे छिप जाती है। मैं उस मकान से निकला। मैं अपने दिल में यह कहता था कि घास मिट्टी के मूलतत्व में से बढती है बकरी घास को खा लेती है, भेडिया बकरी को अपनी खूराक बनाता है, गैंडा भेडिये को खा लेता है और शेर गैडे को मौत के घाट उतारता है। क्या कोई ऐसी ताकत भी मौजूद है जो मौत पर भी छा जाय और अत्याचार के इस सिलसिले को खत्म कर दे? क्या कोई ऐसी ताकत मौजूद है जो इन तमाम घृणित बातो को अच्छे नतीजो में परिवर्तित कर दे? क्या कोई ऐसी ताकत मौजूद है जो जीवन के तमाम तत्वो को अपने हाथ में ले और अपने अन्दर सोख ले—जिस तरह समुद्र सारी नदियो को अपनी गहराइयो में स्थान देता है? क्या कोई ऐसी ताकत मौजूद है जो कातिल व मक्तूल, व्यभिचारिणी व उसके जार, चोर व मुद्दई को अमीर के न्यायासन से अधिक ऊचे न्यायासन के सामने खडा कर दे?

दूसरे दिन मैं शहर से निकलकर खेतो की तरफ हो लिया ताकि दिल को कुछ तसल्ली मिले और जगल की दिलकश फिजा दुख और निराशा के उन कीटाणुओ को मार दे जो तग गली-कूचो व अधेरे मकानो ने मेरे अन्दर पैदा कर दिये थे। मै जिस वक्त घाटी में पहुचा तो देखा—गिद्धो, चीलो और कौवो के झुड-के-झुड उड रहे है और जमीन पर उतर रहे हैं और उनकी आवाजो व उनके परो के कम्पन से सारा वायुमडल प्रकम्पित है। मैं जरा आगे बढा तो मैने देखा कि मेरे सामने एक लाश पेड से लटक रही है, एक नगी स्त्री का मृत शरीर उस

---

[1] सगसार करना—इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का दड जिसमें व्यभिचारी को जमीन में कमर तक गाड देते थे और उसके सिर पर पत्थरो की वर्षा करके उसके प्राण लेते थे। —अनुवादक

पत्थरों के ढेर में पड़ा है जिनसे उसे संगसार किया गया था और एक नवयुवक का शव धूल व ख़ून से सना हुआ है और उसका सर धड़ से जुदा पड़ा है।

मैं उस वधस्थान के पास ठहर गया। मेरी आंखों पर एक मोटा और अंधेरा पर्दा पड़ गया। मैं कल्पना तथा मृत्यु के सिवाय, जो ख़ून में लिथड़ी हुई उन लाशों पर छाई हुई थी, और कुछ न देखता था और विनाश की पुकार के अलावा कुछ भी न सुनता था। इस पुकार में कौवों की आवाज़ भी मिली हुई थी जो इन्सानी कानून के शिकारों के चारों ओर मंडरा रहे थे।

तीन मानव कल तक ज़ीवित थे; लेकिन आज सुबह मृत्यु के कब्ज़े में चले गये।

तीन आदमियों ने मानवी अस्तित्व में अपनी प्रतिष्ठा को खो दिया और अन्धे कानून ने हाथ बढ़ाकर उन्हें बेरहमी के साथ पामाल कर दिया।

तीन इन्सानों को जेल ने गुनहगार करार दिया, क्योंकि वे कमजोर थे और कानून ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया, क्योंकि वह ताकतवर था।

एक आदमी ने दूसरे को कत्ल कर दिया तो वह कातिल ठहरा; लेकिन जब अमीर ने कातिल को कत्ल करवा दिया तो वह अमीर न्यायाधीश समझा गया।

एक शख्स ने प्रार्थना-मंदिर का माल छीन लिया तो लोगों ने उसे चोर कहा; लेकिन जब अमीर ने उसकी जिन्दगी छीन ली तो वह अमीर आलिम-फाज़िल ठहरा।

एक औरत ने अपने शौहर से बेईमानी की तो लोगों ने उसे व्यभिचारिणी ठहराया; लेकिन जब अमीर ने उसे नंगा करके संगसार करवाया तो वह अमीर शरीफ कहलाया।

ख़ून बहाना हराम है; लेकिन अमीर के लिए यह किसने हलाल कर दिया?

माल हड़प करना जुर्म है; लेकिन आत्माओं को हड़प करना किसने जायज़ किया?

नारी की बेईमानी ख़राब बात है; पर यह किसने कहा कि सुन्दर शरीरों को संगसार करना पवित्र कार्य है?

हम छोटी-सी बदमाशी के मुकाबले में बहुत बड़ी बदमाशी करते है और कहते हैं कि 'यह कानून है।' हम फ़िसाद का बदला बदतरीन फ़िसाद से देते हैं और कहते हैं कि 'यह शील है।' हम एक अपराध के प्रतिकार में दूसरा बड़ा अपराध करते हैं और चिल्लाते हैं कि 'यह इन्साफ है।'

क्या अमीर ने कभी अपने दुश्मन को मौत के घाट नहीं उतारा? क्या उसने कभी अपनी प्रजा के किसी कमजोर इन्सान का माल हजम नहीं किया? क्या उसने कभी किसी ख़ूबसूरत औरत की तरफ आंख नहीं उठाई? क्या वह इन तमाम जुर्मों से पाक है कि उसके लिए कातिल की गर्दन उड़ाना, चोर को सूली चढ़ाना और व्यभिचारिणी को संगसार कराना जायज हो गया?

वे कौन थे जिन्होंने चोर को दरख़्त से लटकाया? क्या उस काम के लिए आसमान से फरिश्ते उतरे थे? क्या वे यही इन्सान थे जो वह सब माल हड़प करते व चुराते हैं जो उनके हाथ लग जाता है?

और उस कातिल का सिर किसने कलम किया? क्या उसके लिए ऊपर से नबी और पैग़म्बर आये थे या वे यही सिपाही थे जो कत्ल और ख़ून करते रहते हैं?

और व्यभिचारिणी को संगसार किसने किया? क्या उसके लिए पवित्र आत्माएं अपने स्थानों से आई थीं या वे यही लोग थे जो अंधेरे के पर्दे में बदकारियां किया करते हैं?

कानून. . . कानून क्या चीज है? किसने उसे आकाश की ऊंचाइयों से सूरज की किरणों के साथ उतरते देखा है? और किस मनुष्य ने आख़िरी इच्छा को मानवी हृदय से सहमत पाया है? और किस वंश में फरिश्तों ने आकर इन्सानों से कहा कि कमजोरों को जीवन के प्रकाश से वंचित कर दो और गिरे हुए को तलवार के घाट उतार दो और अपराधियों को फौलादी पांवों के नीचे रौंद दो?

मेरे दिमाग़ में यही ख़याल चक्कर लगा रहे थे और मुझे परेशान कर रहे थे कि इतने में मैंने किसी के पांवों की आहट सुनी। मैंने आंख उठाई तो देखा कि एक औरत पेड़ों में से निकलकर लाशों के करीब आ रही है। उसके चेहरे पर ख़तरे के आसार दिखाई दे रहे थे, मानों वह उस भयावने दृश्य को देखकर डर गई थी। वह उस

लाश के पास पहुंची, जिसका सिर कटा हुआ था और चीख-चीख कर रोने लगी। वह लाश की तरफ बढ़ी और उसे अपनी कांपती हुई बाहों से गले लगाया। उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी थी। वह अपनी उंगलियों से लाश के बालों को छू रही थी। जब वह थक गई तो उसने अपने हाथों से जमीन खोदना शुरू किया यहां तक कि एक लम्बी-चौड़ी कब्र खोद ली। फिर उसने उस नौजवान की लाश को उठाकर कब्र में रख दिया। उसका कटा हुआ और खून से सना हुआ सिर उसके कंधों पर रख दिया और कब्र को मिट्टी से ढांप कर उसके ऊपर उस तलवार के फल को गाड़ दिया जिससे उस मृत व्यक्ति का सिर काटा गया था। इसके बाद उसने आंसू बहाते हुए मुझसे कहा, "अमीर से कह दो कि बजाय इसके कि मैं उस शख्स की लाश को जिसने मुझे बेइज्जती के कब्जे से नजात दिलाई, जंगल के दरिन्दों और परिन्दों के खाने के लिए छोड़ दूं, मेरे लिए बेहतर है कि मैं मर जाऊं और उस शख्स से जा मिलूं।"

मैंने उससे कहा, "ओ दुखिया, मुझसे डरो मत। क्योंकि मैं तुमसे पहले इन मैयतों पर विलाप कर चुका हूं, लेकिन मुझे यह तो बताओ कि इस व्यक्ति ने तुम्हें बेइज्जती के कब्जे से किस तरह बचाया?"

उसने टूटती हुई आवाज में जवाब दिया, 'अमीर का एक अफसर हमारे खेतों में लगान और जजिया वसूल करने आया, लेकिन जब उसने मुझे देखा तो मुझपर भयानक अभिलाषा की दृष्टि डालने लगा। फिर उसने मेरे पिताजी पर महसूल की भारी रकम आयद कर दी और चूंकि मेरे गरीब पिताजी यह रकम अदा नहीं कर सकते थे, उस अफसर ने गुस्से में आकर रुपये के बदले में मुझपर कब्जा कर लिया ताकि मुझे अमीर के महल में पहुंचाये। मैंने रो-धोकर उससे दया की याचना की, लेकिन उसे दया न आई। मैंने उससे पिताजी के बुढ़ापे की तरफ ध्यान देने की प्रार्थना की, लेकिन वह न पसीजा। तब मैंने चिल्ला-चिल्ला कर गांववालों को इकट्ठा किया और उनके सामने फरियाद की। उसपर यह नौजवान, जिसके साथ मेरी मंगनी हो चुकी थी, आया और उसने मुझे अफसर के हाथों से छुड़ाया। अफसर ने गुस्से में आकर उसे कत्ल कर देना चाहा, लेकिन नौजवान ने फुर्ती के साथ अपने को बचाया और दीवार से लटकती हुई पुरानी तलवार खींच कर उसने अपने ऊपर किये गए हमले के बचाव में और मेरे शील की रक्षा के लिए उसको कत्ल कर दिया। इसके बाद वह अपने आत्मसम्मान के लिए मकतूल की लाश के पास ही खड़ा रहा। अन्त में सिपाहियों ने उसे गिरफ्तार करके कैदखाने में डाल दिया।"

इतना कहकर उसने मेरी तरफ दिल को पिघलाने वाली नजर से देखा। फिर उसने जल्दी से पीठ मोड़ी और चली गई। अलबत्ता उसकी दर्दनाक आवाज वायुमण्डल में गूंजती रही।

थोड़ी देर के बाद मैंने एक नौजवान को आते देखा जिसने अपना चेहरा कपड़े से ढांप रखा था। वह व्यभिचारिणी के शव के पास पहुंचकर रुक गया और उसने अपना कुर्ता उतार कर उससे नंगी औरत को ढांप दिया और अपने खंजर से जमीन खोदने लगा। कब्र तैयार हो गई तो उसने उस स्त्री को उसमें दफन कर दिया। जब यह काम पूरा हो गया तो उसने इधर-उधर से कुछ फूल तोड़ कर एक गुलदस्ता बनाया और कब्र पर रख दिया। जब वह जाने लगा तो मैंने उसे रोक लिया और पूछा, "इस स्त्री के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध था कि तुमने अमीर की इच्छा के विरुद्ध और अपनी जान को खतरे में डाल कर इतनी मेहनत की और इसके शरीर को कौओं और चीलों की खूराक बनने से बचाया?"

नौजवान ने मेरी तरफ देखा। उसकी आंखों से मालूम हो रहा था कि वह बहुत रोया-धोया है और उसने सारी रात जागते हुए बिताई है। वह अत्यन्त दुःखी और निराश स्वर में बोला, 'मैं वही बदनसीब आदमी हूं जिसकी खातिर इस बेचारी को संगसार किया गया। हम एक-दूसरे को तभी से मुहब्बत करते थे जबकि हम बचपन के दिनों में इकट्ठे खेला करते थे। हम जवान हो गये और प्रीति भी पूरी तरह उभर आई। एक दिन जबकि मैं शहर से बाहर गया था, लड़की के बाप ने उसकी शादी जबर्दस्ती एक दूसरे शख्स से कर दी। मैं जब वापस आया और मैंने यह खबर सुनी तो मेरे जीवन में अंधेरा छा गया और मुझे जीना दूभर हो गया।

मैं अपनी आंतरिक प्रवृत्ति के साथ बहुत झगड़ता रहा; लेकिन हार गया। मेरी मुहब्बत मुझे इस तरह लेकर चल दी जिस तरह आंखोंवाला किसी अंधे का मार्ग-दर्शन करता है। मैं छिपकर अपनी प्रेयसी के घर पर पहुंचा ताकि मैं उसकी आंखों का नूर देखूं और उसकी आवाज़ का गीत सुनूं। मैंने उसे अकेली पाया। वह अपनी किस्मत को रो रही थी और अपने जीवन पर शोक कर रही थी। मैं उसके पास बैठ गया। हम शान्तिपूर्वक बातें करने में मग्न हो गये थे और भगवान साक्षी है कि हमारे हृदय पवित्र थे। किन्तु जब एक घंटा गुज़र गया तो एकाएक उसका पति आ गया। उसने जब मुझे देखा तो गुस्से से वह पागल हो गया। उसने अपनी स्त्री के गले में कपड़ा डालकर शोर मचाना शुरु कर दिया, "लोगो, आओ! और इस जारिणी को व उसके जार को देखो।" अड़ोसी-पड़ोसी जमा हो गये और थोड़ी देर में पुलिसवाले भी खबर पाकर आ पहुंचे। उस शख्स ने अपनी औरत को पुलिस के कठोर हाथों में दे दिया जो उसे घसीटते हुए थाने की तरफ ले गये। लेकिन मुझपर किसीने हाथ भी न उठाया; क्योंकि अन्धा कानून और गन्दी रूढ़ियां नारी का ही पीछा करती हैं और मर्द का हर अपराध क्षम्य समझा जाता है।"

इतना सुनाने के बाद नौजवान अपना मुंह छिपाये शहर की ओर चल दिया और मुझे उस लाश की तरफ देखते हुए छोड़ गया जो पेड़ से लटक रही थी और जो सिर्फ उतनी ही हिल रही थी जितना कि हवा के झोंके पेड़ की शाखाओं को हिला रहे थे। मानो वह वातावरण की आत्माओं से दया की याचना कर रही थी और चाह रही थी कि उसे नीचे उतारकर जमीन पर मानवता के प्रेमियों और मुहब्बत के शहीदों के पहलू में डाल दिया जाय।

एक घंटे के बाद एक दुबली-पतली औरत आ पहुंची जिसके कपड़े चिथड़े हो रहे थे। वह पेड़ से लटकती हुई लाश के करीब आकर ठहर गई और उसने रो-पीट कर अपने हृदय को हलका किया। इसके बाद वह पेड़ पर चढ़ गई और उसने अपने दांतों से रेशमी रस्सी को खोला। तब लाश गीले कपड़े की तरह जमीन पर आ रही। औरत पेड़ से नीचे उतरी और उसने दो कब्रों के पहलू में तीसरी कब्र खोदी और लाश को उसमें दफ़न किया। जब वह कब्र पर मिट्टी डाल चुकी तो उसने लकड़ी के दो टुकड़े लेकर उनकी सलीब (क्रास) बनाई और उसे कब्र के सिरहाने गाड़ दिया। जब वह जाने लगी तो मैंने आगे बढ़कर सवाल किया, "ए औरत! तुम्हें किस बात ने मजबूर किया कि तुम एक चोर को दफ़न करने के लिये यहां आई?"

उस स्त्री ने मेरी तरफ देखा। उसकी निगाहों में परेशानी और अन्यमनस्कता के चिह्न दिखाई दे रहे थे। उसने कहा, "यह मेरा पति, मेरे जीवन का साथी और मेरे बच्चों का बाप है। हमारे पांच बच्चे भूखों मर रहे हैं। उनमें से सबसे बड़ा आठ साल का है और सबसे छोटा अभी दूध पीता है। मेरा पति चोर न था। वह गिरजाघर की ज़मीन में खेतीबाड़ी करता था और उसे गिरजाघर के सब लोग इतना ही पारिश्रमिक देते थे कि अगर हम शाम को खाना खा लेते थे तो सुबह के लिये हमारे पास कुछ न बचता था। जब मेरा पति जवान था तब वह गिरजाघर के खेतों को अपनी पेशानी के पसीने से पानी देता था और अपनी भुजाओं की शक्ति से वहां के बागों को हराभरा रखता था; लेकिन जब वह बूढ़ा हो गया और सालों की मेहनत ने उसकी ताकत को नष्ट कर दिया और उसे बीमारियों ने घेर लिया तो उन्होंने मेरे पति को यह कहकर नौकरी से हटा दिया कि 'गिरजाघर को अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। अब तुम चले जाओ और जब तुम्हारे बेटे जवान हो जायंगे तब उन्हें यहां भेज देना ताकि वे तुम्हारी जगह ले लें।' मेरा पति उनके सामने बहुत रोया-धोया। उसने ईसामसीह के नाम पर उनसे दया की याचना की और उन्हें फरिश्तों व मसीह के साथियों की कसमें दिलाईं; लेकिन उन्होंने दया न की और न उसपर मेहरबानी की, न मुझपर और न हमारे बच्चों पर।

मेरा पति शहर में गया ताकि कोई नौकरी ढूंढे, लेकिन नाकाम होकर वापस लौटा, क्योंकि उन महलों के रहनेवाले सिर्फ जवान आदमियों को नौकर रखते थे। इसके बाद वह सड़क पर बैठ गया ताकि लोगों से दान या

भीख हासिल करे। लेकिन किसीने उसकी तरफ ध्यान न दिया। लोग कहते कि, 'ऐसे रहे-सहे आदमी को भीख या खैरात देना धर्म की दृष्टि से जायज नही है।'

अन्त में एक ऐसी रात आ पहुची जबकि हमारे बच्चे भूख के मारे जमीन पर तडप रहे थे। मेरा दुधमुहा बच्चा मेरे स्तनो को चूसता था, लेकिन उनमें दूध न था। यह दृश्य देखकर मेरे पति का चेहरा बदल गया और वह अधेरे के परदे में चुपके से निकला। वह गिरजाघर के भडार में पहुच गया जहा पादरी अनाज व शराब जमा करके रखते है। मेरे पति ने अनाज की एक झोली भरकर अपने कधे पर रखखी और बाहर निकलना चाहा। मगर अभी कुछ गज गया था कि चौकीदार जाग उठे और उसे पकड लिया। उन्होने गालियो और मारपीट से उस गरीब का सत्यानाश कर दिया और जब सुबह हुई तो उसे यह कहकर पुलिस के हवाले कर दिया कि 'यह चोर है जो गिरजाघर के सोने के बर्तन चुराने आया था।'

पुलिस ने उसे कैदखाने में धकेल दिया। उसके बाद उसे इस दरख्त से लटका दिया गया ताकि गिद्ध इसके गोश्त से अपना पेट भरे, क्योकि इसने इस बात की कोशिश की थी कि इसके भूखे बच्चे उस अनाज से अपना पेट भरें जो इसने अपने बाजुओं की ताकत से उन दिनो जमा किया था जबकि वह गिरजाघर का नौकर था।"

इतना कहकर वह गरीब औरत चली गई, पर उसकी बातो ने सारी फ़िज़ा को उदास बना दिया। ऐसा मालूम होने लगा गोया उसके मुह से धुए के बादल निकलकर हवा में दु ख का वातावरण पैदा कर रहे है।

मै उन कब्रो के पास खडा रहा जिनकी मिट्टी के कणो से फरियादें निकल रही थी। मै खडा सोच रहा था कि अगर इस खेत के पेडो से मेरे दिल की आग की लपट छू जाय तो ये हिलने लग जाय और अपनी जगह छोडकर अमीर व उसके सिपाहियो से जग करे और गिरजाघर की दीवारो को तोडफोड कर पादरियो के सिर पर गिरा दें।

मैं उन नई कब्रो की ओर देख रहा था और मेरी दृष्टि से सहानुभूति का माधुर्य तथा दु ख एव शोक का कडवापन निकल रहा था।

यह एक नौजवान की कब्र है जिसने अपने जीवन को एक अबला स्त्री की शील-रक्षा के लिए निछावर कर दिया। इसने उस स्त्री को भेडियो के दाँतो से छुडाया और इस बहादुरी के लिये इसकी गर्दन उडा दी गई। उस स्त्री ने अपने मुक्तिदाता की कब्र पर तलवार गाड दी है जो इस नौजवान की बहादुरी की तरफ इशारा करती है।

यह कब्र उस युवती की है जो मारी जाने से पहले प्रेम की एक पुतली थी। इसे सगसार कर दिया गया, क्योकि वह मरते दम तक पवित्र रही। इसके मित्र ने इसकी कब्र पर फूलो का गुच्छा रख दिया है जो प्रीति की सुगन्ध की ओर इशारा करता है।

और यह उस बदनसीब ग़रीब की कब्र है जिसकी भुजाओ में जबतक ताकत थी तबतक वह गिरजाघर के खेतो में खेतीबाडी करता रहा, लेकिन जब उसमें ताकत न रही तो उसे निकाल दिया गया। वह काम करके अपने बच्चो का पेट पालना चाहता था, लेकिन उसे काम न मिला। फिर उसने भीख मागना चाहा, लेकिन किसीने उसे भीख न दी। आखिरकार जब इसकी निराशा हद से बढ गई तो इसने उस अनाज में से थोडा-सा उठाना चाहा जो इसने अपने माथे का पसीना बहाकर और मेहनत करके जमा किया था। इसे पकड लिया गया और इसकी जान ले ली गई। इसकी स्त्री ने इसकी कब्र पर सलीब बनादी है ताकि रात के एकान्त में आसमान के तारे पादरियों के जुल्म को देखें जो मसीह की सिखावन को फैलाने का दावा तो करते है; लेकिन असल में तलवारो से दुखियो तथा दुर्बलो की गर्दनें उडाते है।

सूरज क्षितिज के पीछे छिप रहा था, मानो वह आदमियो के अत्याचारो से तग आ गया था और उनसे नफरत करता था। सध्या अपने घूघट में सारी दुनिया को ले रही थी। मैने आकाश की ओर देखा और कब्रो के रहस्य पर हाथ मलते हुए उच्च स्वर से बोला, "यह है तुम्हारी तलवार, ए बहादुर मर्द, जो जमीन में गडी है। ये है तुम्हारे फूल, ए नारी, जिनसे प्रीति की किरणें निकल रही है और यह है तुम्हारी सलीब, ए ईसा-मसीह, जो रात के अन्धेरे में छिप रही है।"

अनु० —श्रीपाद जोशी

कम्बोडिया के गौरवस्थल

रंजन

औपचारिक कठिनाइयों को पार कर जब किसी प्रकार मैं हिंद-चीन की सीमा में प्रवेश कर सका तो उस चिर-संचित आनन्द की सीमा नहीं रही। बचपन की वे कहानियां, पुस्तकों में वर्णित खमेर-वंशीय वैभव के वे अमूल्य रत्न और हिंदचीन के जंगलों में बिखरी भारतीयता की वह अमर विभूति 'अंकोर-वाट' मेरे कल्पना-जगत में साकार हो उठी। हवाई जहाज से उतरते ही उत्सुक आंखें जैसे एक ही सांस में इतिहास के उन स्वर्ण-पृष्ठों को पी जाना चाहती थीं और मैं जैसे शरीर की सम्पूर्ण इंद्रियों से उस महानता को अपने में समेट लेना चाहता था। कम्पनी की गाड़ी जब हम सबको लेकर 'सिप-रीप' (कम्बोडिया का एक नगर जहां से प्राचीन अंकोर-थाम केवल ७ मील है) की ओर चली तो उष्ण-कटिबन्ध के घने जंगल हमारे दोनों ओर खड़े थे। हमारी छोटी पार्टी में लंका के डा. मलल शेखर थे जो आजकल अखिल बौद्ध विश्व-सम्मेलन के प्रधान हैं और उन दिनों वे समस्त बौद्ध देशों का भ्रमण कर रहे थे। एक अमरीका के दंपति थे और एक कलकत्ता के इंजीनियर मि. बनर्जी थे। होटल में पहुंचते-पहुंचते दो बज गये थे (हिंदचीन समय)। स्नान-भोजन आदि से निवृत्त होकर हम लोग जंगल में छिपे उस दैवीखजाने की ओर बढ़े। पाठकों की जानकारी एवं सुविधा की दृष्टि से वर्णन को मैं दो भागों में रखूंगा—(१) अंकोर-थाम, प्राचीन खमेर राजाओं की राजधानी, अनेक कला-स्थलों की जननी; (२) 'अंकोर-वाट' विश्व का पांचवा आश्चर्य—कला और वस्तुकला की एक अमर निधि। लेख के प्रथम अंश में 'बियान' एवं अंकोर-थाम का वर्णन रहेगा। 'बियान' अकोर-थाम के खंडहरों में खड़ा खमेरों का बहुत प्राचीन मन्दिर है। कई दृष्टियों से यह अंकोर-वाट से भी श्रेष्ठ और आकर्षक है। लेख के दूसरे अंश में अंकोर-वाट का वर्णन होगा।

लगभग चार मील जंगल में चलने के बाद हमारी कारें एक चहारदीवारी के निकट पहुंचीं। सामने एक बहुत ऊंचा द्वार था। उसके दोनों ओर पंक्ति में नागराज के फैले शरीर को देव साधे हुए थे। इस पूर्वी द्वार का नाम 'विजय-पौर' है। द्वार के ऊपरी भाग पर घनी संगतराशी का काम है और बीच में चौमुखी अवलोकतेश्वर की मूर्ति खोदकर बनाई गई है। कहा जाता है कि यह अवलोकतेश्वर प्राचीन खमेरों के कुल-देवता थे। इनके तीन नेत्र हैं। इससे पता चलता है कि इस त्रिनेत्री मूर्ति की कल्पना किसी अंश तक शिव से ली गई है।

इस द्वार से कुछ आगे चलकर, शहरपनाह के अन्दर चार फर्लांग जाने पर, 'अंकोर थाम' की प्रथम कला-सृष्टि 'बियान' के दर्शन होते हैं। कला के विचार से 'बियान' 'अंकोर-वाट' से भी दो सौ वर्ष पूर्व विजयवर्मन सप्तम द्वारा बनाया गया था। आज प्रकृति के आक्रोश से यह भी अपनी रक्षा नहीं कर सका। इसकी बाह्य बारादरी करीब-करीब ढह चुकी है। छत गिर गई है। शून्य दीवारें अतीत के सपने छिपाए खड़ी हैं। इसके भाग्य के साथ-ही-साथ अंकोर-थाम की शाही राजधानी भी धूल में मिल गई है। कुदरती पेड़-पौधों ने राजधानी पर धावा बोल कर उसकी विशाल सुन्दर इमारतों को बिल्कुल दबोच लिया है। इस जंगल में बरगद, पीपल, चन्दन, अंजीर, बलूत और बांस के पेड़ गुथे खड़े हैं।

'बियान' अंकोर-थाम का सबसे शानदार देवालय है। कुदरत के हमले से इसकी रक्षा की जा चुकी है। अंकोर की सम्पूर्ण कृतियों में बियान सबसे अद्भुत और अजीब है। इसमें अंकोर-वाट जैसी महानता नहीं, शास्त्रीय सौंदर्य नहीं; परन्तु फिर भी इसकी अपनी नवीनता है जिसमें भय और आश्चर्य मिले हुए हैं। इसे देखकर एक आतंक-जैसा भाव मन पर छा जाता है, फिर भी इसके आकर्षण में कोई कमी नहीं होती। कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण पहले बौद्धों के दया-देवता के लिये हुआ था, परन्तु बाद में प्रलय के देवता 'शिव' को समर्पित कर दिया गया। इस मन्दिर को तीन पिरामिड का मन्दिर कहते हैं। इसमें कुल मिलाकर चालीस मीनारें हैं और प्रत्येक के ऊपरी खंड में चौमुखी एवं त्रिनेत्री अवलोकतेश्वर देवता का सिर बना है।

इन चेहरो की लम्बाई छः फीट है। देखने में यह मुख-भाग बडा प्रभावशाली प्रतीत होता है। इनके कानो में बडे-बडे कुडल लटक रहे है और सिरो पर ऊचे कलगीदार मुकुट शोभित है। उनकी आखें जैसे मदिरा के नशे मे झपकी है। उनके ओठो पर एक विचित्र शृगारपूर्ण हसी छिटक रही है। प्रातःकाल से लेकर सध्या तक उनके चेहरे के भाव सदा बदलते रहते हैं। चेहरे पर कभी आनन्द, कभी विषाद, कभी सतोष एव कभी अभाव की झलक दिखाई देती है। मन्दिर में प्रकाश और छाया का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है कि उसके सौन्दर्य में एक विशेष निखार आ गया है।

अकोर-वाट की खुदाई की अपेक्षा बियान की खुदाई दिलचस्प और मनोरजक है। इसकी दृश्य-कथाए मानव-जीवन से सम्बन्धित है। अकोर-वाट के सारे-के सारे दृश्य पारलौकिक और परोक्ष जीवन की भूमिका स युक्त है। इन्हें देखते-देखते मन ऊब जाता है। लगभग सभी दृश्या म एकरूपता है, परन्तु बियान के दृश्य अपनी अभिव्यक्ति और प्रभाव में अधिक मानवीय और लौकिक हैं। इस मन्दिर की सजावट के लिये चुने गये दृश्य मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। इनका जन्म जीवन की दैनिक घटनाओ के बीच से हुआ है। शिल्पकार ने इसी लोक के जीवन से प्रेरणा ली है। मानव के हर्ष,विषाद, सघर्ष, शिकार एव अन्य परिचित कार्य सभी दीवारो पर छैनी से उतार दिये गए हैं। सम्पूर्ण ख्मेर-समाज इस भित्ति कला में मुखरित हो उठा है। ख्मेर लोग कैसे रहते थे, कैसे काम करते थे कैसे खुशिया मनाते थे, कैसे हसते-रोते थे—सबकुछ यहा देखा जा सकता है, सबका उत्तर इन दृश्यों में मिल सकता है। किसान के झोपडे, राज-प्रासाद और उनमें रहने वाले लोग भी यहा देखे जा सकते है। सभा, स्वागत, नृत्य और दावतें जो ग्राम्य जीवन के अग है और जिनका ग्राम के कठिन परिश्रम से घना सम्बन्ध है यहा पर कारीगर ने सग्रहीत करके इन पत्थर के टुकडो पर नक्श कर दिये हैं। धान के लहलहाते खेतो को घर में लाने के बाद यह सब कितना स्वाभाविक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कल्पना को साकार रूप देनेवाला व्यक्ति एक सच्चा लोक-कवि रहा होगा। लकडी में लटका कर मारे हुए हिरन को ले जाते समय शिकारी जानवरो और पक्षियो से भरे जगल में किसी साधु से बात करते दिखलाई देते है। लम्बी-पतली नावो में (कैनोज) भद्र महिलाए जल विहार के लिये जा रही है। उनके सेवक उनके ऊपर मोरछल कर रहे है। ग्राम वधुए जादू का खेल मदारी से देख रही हैं। कारीगर इमारत बना रहे हैं, मछुए मछलिया पकड रहे हैं—ये सभी दृश्य दीवारो पर अकित किये गए हैं। जैसे जीवन का कोई कार्य, हृदय का कोई भाव, मन की कोई लहर यहा अकित होने से बच न सकी। इन चित्रो में व्यग्य और मजाक का पुट भी मौजूद है। कही एक साधु शेर से डर कर अपने उस दूसरे साथी की अपेक्षा अधिक तेजी से भागता है जिसे नग्न जल-विहार करती हुई सुन्दरियो को चोरी से एक नजर देखने का मौका मिल गया है। प्रत्येक दृश्य-चित्र में प्रभाव और कौशल का मेल है। ये दृश्य देखने वाले के सामने भिन्न-भिन्न अवस्थाओ की विविधता का एक सजीव चित्र उपस्थित कर देते है।

'बियान' से थोडी दूर उत्तर की ओर ख्मेर राजाओ की प्राचीन राजधानी नगर-थाम' (नगर-धाम) अथवा अकोर-थाम के खडहर बिखरे नजर आते है। थोडी दूर पर ही प्राचीन कोषागार के खडहर खडे है। लोगो का कहना है कि इस वर्गाकार मैदान में पहले एक सुन्दर हरा-भरा लॉन था। जातीय-जीवन के सभी सार्वजनिक उत्सव यही से आरम्भ होते थे। यहा से नगर के प्रत्येक कोने के लिये मार्ग जाते थे। ये मार्ग दोना ओर बडे वृक्षो की कतारो से शोभित थे। कहा जाता है कि वैभव के उन दिनो यहा एक चीनी यात्री सन् १२९६ ई में आया था। उसने तत्कालीन अकोर-थाम के विषय म बहुत कुछ लिखा है। उसके वर्णन के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि इस शहरपनाह की लम्बाई बीस मील थी। इसमें पाच सिह-पौर थे। प्रत्येक सिह-पौर के साथ दो छोटे-छोटे द्वार बने थे। इसकी ऊचाई दस गज है। नगर के बीचो बीच एक स्वर्ण-मीनार थी जिसके चारो ओर बीस अन्य छोटी छोटी मीनारें थी। इस मीनार-समूह से लगभग आधा मील की दूरी पर शाहीमहल या राजप्रासाद था।

राजप्रासाद एवं सामन्तों के भवनों के द्वार पूर्व की ओर थे। प्रासाद-कक्षों की छतों पर शीशे की छतें थीं। कुछ पर पीली खपरैलें पड़ी थीं। एक बार चम्पा लोगों ने इस नगर को ११७७ ई. में नष्ट कर दिया था। दुबारा जयवर्मन सप्तम ने उसी पुराने स्थान पर एक नया नगर बसाया था। इसी नये नगर का नाम 'नगर-थाम' पड़ा। शहरपनाह के बाहर खाई थी जिसमें हमेशा पानी रहता था। यह खाई ३०० फीट चौड़ी थी। पिछले दिनों एक खुदाई में 'विजय-पीर' के सामने एक पुल मिला है।

· उस केन्द्रीय मीनार से प्राचीन राजधानी के अन्दर प्रवेश करने पर थोड़ी दूर पर बारह मीनारें पेड़ों के ऊपर झांकती नजर आयंगी। इनके इतिहास का पता खमेर-विद्यार्थी आजतक नहीं लगा पाया है। ऐसी कहानी प्रचलित है कि जब दो खमेरी वंशों में कोई झगड़ा हो जाता था तो दोनों विरोधी इन मीनारों में से एक-एक पर बैठते थे और बैठे-बैठे जिसपर पहले किसी बीमारी का हमला हो, उसे अपराधी मान लिया जाता था।

हस्ति चबूतरा—इस केन्द्रीय मैदान के सामने ही हस्ति-चबूतरा है। यह हस्ति-चबूतरा खमेर शिल्पकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। यह चबूतरा कुल मिलाकर बारह फीट लम्बा है। इसमें तीन सीढ़ियों के चढ़ाव हैं। छोर वाली सीढ़ियां नाग की मूर्तियों पर बनी हैं। मध्यवर्ती सीढ़ियों का घेरा विष्णु के वाहन गरूड़ का बना है। चबूतरे के प्रत्येक छोर पर शिकार को जाते हुए हाथियों की एक शानदार कतार है। इन हाथियों का आकार लगभग सजीव हाथियों के समान है। इन हाथियों के हौदों में राजा और राजकुमार बैठे हैं। यह शिकार का दृश्य इतना सजीव और प्राणमय है कि थोड़ी देर के लिये दर्शक यह भूल जाता है कि वह पत्थर की प्रतिमाएं देख रहा है। शिकारी जानवरों की चेष्टाएं, हाव-भाव, उछल-कूद बड़े स्वाभाविक हैं। इसपर इनके पैरों के नीचे उगी हुई घास और घास में खड़े हुए पेड़ तो इस स्वभाविकता में और प्राण फूंक देते हैं।

कोढ़ी राजा का स्थल हस्ति-चबूतरे के ठीक उत्तर की ओर है। यह चबूतरा खुदाई की सात पंक्तियों से सुशोभित है, इनमें सामन्त एवं उनके दल-बल की मूर्तियां खुदी हैं। हंसती हुई महिलाओं के गले में हीरा-मोतियों के हार शोभित हो रहे हैं।

अंकोर-थाम के इन खंडहरों में 'बियान' के सिवाय, प्राखात, पीन-मेहान (कैलास का जलाशय); प्रीरूप, हेप्राम एवं राजप्रासाद के स्थान और खंडहर तो आज भी देखे जा सकते हैं। यहां से थोड़ा आगे बढ़ने पर राजप्रासाद का दूसरा कोट आता है। इसकी दीवारें लगभग भूमिसात् हो चुकी हैं। मुख्य द्वार के चिन्ह शेष हैं, इसको पार करने के बाद एक बहुत ऊंचे पक्के चबूतरे पर राजप्रासाद के नीचे की मंजिल बची है, वह भी बिना छत के। छतें गिर चुकी हैं; पर द्वार और दीवारें कायम हैं। द्वारों की ऊंचाई बहुत कम है। इतने छोटे द्वार क्यों बनाये जाते थे, यह समझ में नहीं आता। राजप्रासाद की कुर्सी बहुत ऊंची है, लगभग पचास फीट की ऊंचाई पर प्रासाद का भवन खड़ा है। प्रासाद के चारों ओर एक पानी की गहरी खाई थी जो आज सूखी पड़ी है। महल से थोड़ी दूर पर एक शाही जलाशय है जिसमें ग्रीष्म के आतप से राहत पाने के लिये राज-महिषियां स्नान करती थीं, तैरती थीं। उन दिनों उसके पास जाना अक्षम्य था। राजप्रासाद के चारों ओर बहुत-से छोटे-छोटे प्रकोष्ठ हैं। आज यह मौन था। हम लोग बहुत देर तक खड़े-खड़े जगमगाते वैभव के उस सौंदर्य के अवशेष को देखते रहे। यहां से कुछ आगे जंगली सृष्टि से घिरी सड़कों को पार करते ही प्रीरूप के मन्दिर के सामने पहुंचे। इसका निर्माणकाल भी लगभग बारहवीं शती माना जाता है। घने जंगलों के बीच एक प्राचीन अस्पताल की सैकड़ों गज लम्बी इमारत खड़ी है। इन इमारतों को देखने से उस काल के अंकोर-थाम के वैभव और व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। 'प्रीरूप' एक बहुत बड़ी इमारत है। इस इमारत को आज जंगली वृक्षों ने बुरी तरह अपने में कस लिया है और शीघ्र यदि इनसे रक्षा न की गई तो इतिहास के ये गौरवपूर्ण अवशेष केवल अपनी स्मृति छोड़ जायंगे।

●

श्रीपाद जोशी

सेवापुरी का सर्वोदय-सम्मेलन

गत अप्रैल १९५२ की ता १३, १४ और १५ को सेवापुरी (जिला बनारस) मे अखिल भारत सर्वोदय समाज का जो सम्मेलन श्री श्री कृष्णदास जाजू की अध्यक्षता मे सफलता के साथ सम्पन्न हुआ वह गाधीवाद के इतिहास मे एक महत्व का स्थान रखता है।

सम्मेलन म लगभग दो हजार सेवक और निमन्त्रित सज्जन उपस्थित थ जिनमें आचार्य काका कालेलकर राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदास टन्डन, बाबा राघवदास आ० कृपलानी सम्मेलन के अध्यक्ष श्री श्री कृष्णदास जाजू श्री भाईसाहब धोत्रे श्री दादा धर्माधिकारी, सरकारी योजना समिति के श्री रा कृ पाटिल, श्री गुलजारीलाल नन्दा, भारत सरकार के वाणिज्य मत्री श्री हरेकृष्ण महताब, उत्कल के प्रधान मत्री श्री नवकृष्ण चौधरी, हैदराबाद के प्रधान मत्री श्री बी रामकृष्णराव, उत्तर प्रदेश के प्रधान मत्री श्री गोविन्दवल्लभ पत, शिक्षामत्री श्री सपूर्णानन्द, काग्रेस के महामत्री श्री लालबहादुर शास्त्री, प्रिंसिपल श्रीमन्नारायण अग्रवाल, श्री धर्मदेव शास्त्री, श्री रामकृष्ण धूत श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, चरखा सघ के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्र मजूमदार, पडित सुन्दरलाल, श्री सिद्धराज ढड्ढा, श्री सत तुकडोजी महाराज, डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष, श्री लक्ष्मीबाबू, श्री सीताराम सेकसरिया, श्री जराजाणी आदि प्रमुख थ।

पहला आधा दिन और आखिर का पूरा दिन दूर-दूर स आये हुए कार्यकर्ताओं को अपने विचार प्रकट करने के लिए रखा गया था। उससे फायदा उठाकर कई भाइया ने अपनी दिक्कतो को पेश किया और कुछ सुझाव रखे। कुछ लोगो ने सरकार की नीति की कडी आलोचना की, कुछ ने कम्यूनिज्म का खतरा कैसे बढता जा रहा है इसकी चर्चा की, कुछ ने मद्यनिषेध को कानूनन जारी करने का सुझाव रखा और यह कहा कि प्रादेशिक काग्रेस कमेटिया मद्यनिषेध के आन्दोलन मे जानबूझकर रोडा अटका रही हैं। कुछ ने अछूतोद्धारके प्रश्न की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया तो कुछ भाइया ने बुनियादी तालीम पर जोर दिया। कुछ मित्रो ने आदिवासियो के सवाल की तरफ इशारा किया तो कुछ बहनो ने महिलाओ की बुरी हालत का चित्र खीचकर भाइयो से सहायता की प्रार्थना की। सामाजिक एव आर्थिक असमता की तरफ बहुतो ने श्रोताओं का ध्यान खीचा और सत्याग्रह जैसे असरकारक मार्गों की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। इनमें से जो-जो बातें बहुत महत्व की मालूम हुई उनके बारे मे श्री विनोबा ने अपने भाषण में उचित मार्गदर्शन भी किया। इनके अलावा व्यवहारशुद्धि एव श्रमिक-प्रतिष्ठा के बारे मे भी कुछ भाषण हुए, मगर सम्मेलन की सारी चर्चा जिस एक विषय पर केन्द्रित हुई थी वह था, 'भूदान-यज्ञ आन्दोलन'। भारत सरकार के प्रतिनिधि समझे जाने वाले श्री रा कृ पाटिल ने इस आन्दोलन के विषय में भी कुछ शकायें उठाईं, लेकिन उन्हे उचित उत्तर देकर उनका समाधान किया गया।

उत्तर प्रदेश के खादी-कार्य के आधारस्तम्भ एव अखिल भारतीय नेता आचार्य कृपलानी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि "रचनात्मक काम को करते समय ३ तरह के विचार हमारे दिमाग में हो सकते हैं (१)कुछ लोग केवल अपनी आत्मशुद्धि के खयाल से यह काम करते हैं (२) कुछ केवल रूढ़िवादी हैं जो इसीलिए यह काम करते जाते हैं कि अबतक उन्होंने वही काम किया है, और (३) कुछ इस निश्चय से यह काम करते हैं कि हमें एक ऐसा नया समाज बनाना है जो न तो पूँजीवाद के शिकजे में फसा हुआ हो और न कम्युनिज्म के बोझ के नीचे दबा हुआ हो। आपको सोचना है कि आप इनमें से किस उद्देश्य को लेकर यह काम करते रहते हैं। मेरा अपना जोर तो नया समाज बनाने पर ही है और अगर आपको भी यह दृष्टि पसन्द हो तो आपको भी मेरी तरह इस बारे में सोचना होगा।"

इसका जवाब देते हुए श्री विनोबा ने बडे सुन्दर ढग से समझाया कि "हम तो मोदकप्रिय हैं, लड्डूप्रिय हैं। हमें शक्कर, खोवा, घी सब एक साथ चाहिए। हम तीनो का

मिश्रण करके खायंगे । केवल शक्कर, खोवा या घी में हमें रुचि नहीं । रचनात्मक काममें आध्यात्मिक, भौतिक और नैतिक तीनों दृष्टियां रहनी चाहिएं ।"

श्री विनोवा ने अपने विस्तृत भाषण में भूदान-यज्ञ-आन्दोलन का इतिहास एवं विकास बताते हुए कहा कि "इस आन्दोलन में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों ने भी काफी हिस्सा लिया है और कांग्रेसियों की तरह ही कृषक, मजदूर प्रजा पक्ष, समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघी, इतना ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वालों ने भी इसमें सहायता दी है तथा सहानुभूति प्रकट की है । इस आन्दोलन की सफलता इसी में निहित है ।"

भूदान-यज्ञ का आन्दोलन कितने समय के अंदर सफल होगा इसकी चर्चा करते हुए श्री विनोवा ने कहा, "डाक्टर राममनोहर लोहिया कहते हैं कि विनोवा के इस मार्ग से इस आन्दोलन को सफल होने में तीन सौ साल लग जायंगे । मुझे इससे दुःख नहीं हुआ, आनन्द ही हुआ, क्योंकि मैंने तो सोचा था कि इसमें पांच सौ साल लग जायंगे । इसका मतलब यह हुआ कि हमारे समाजवादी मित्र हमें इस काम में मदद देना चाहते हैं । मैंने पांच सौ बरस की मियाद भी कोई विनोद में नहीं कही । एक लाख एकड़ जमीन प्राप्त करने में मुझे एक साल लग गया, अतः इस हिसाब से पांच करोड़ एकड़ हासिल करने में पांच सौ साल लग जायंगे । हां, यह ठीक है कि ऐसी बातें केवल गणित से नहीं चलतीं । हो सकता है कि अपने पुरुषार्थ से हम इस काम को बहुत जल्दी कर लें ।" सम्मेलन समाप्त हो जाने के बाद ता. १६ की सुबह को कार्यकर्ताओं की एक बैठक में श्री विनोवा ने कहा कि "डाक्टर राममनोहर लोहिया का एक पत्र मुझे अभी-अभी मिला है, जिसमें वे लिखते हैं कि 'मैंने अपने भाषण में तीन सौ नहीं बल्कि १६० साल लग जायेंगे ऐसा कहा था । इसका मतलब इतना ही था कि केवल हृदय-परिवर्तन के मार्ग से यह काम जल्दी होने वाला नहीं है, उसके लिए समाज-परिवर्तन भी होना चाहिए । कम्युनिस्ट लोग केवल समाज-परिवर्तन चाहते हैं, हम समाजवादी हृदय-परिवर्तन पर भी विश्वास करते हैं, इसलिए अगर हम आपका निषेध करते हैं तो मानो हम अपना ही निषेध करते हैं । हम तो आपके काम में पूरा सहयोग देने की भरसक कोशिश करेंगे ।' "

भारत सरकार के पंचवर्षीय नियोजन के सदस्य श्री रा. कृ. पाटिल ने भू-दानयज्ञ के आन्दोलन का समर्थन करते हुए अपनी कुछ शंकाएं प्रकट कीं । उन्होंने कहा कि उससे जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायंगे जिन्हें फिर से एकत्रित करना मुश्किल होगा । उनका कहना था कि जमीन के छोटे टुकड़े हो जाने से उसकी पैदावार घटेगी, इसलिए भूदान में मिली हुई जमीन का वितरण करते समय कुछ ऐसी शर्तें लगानी चाहिए जिनसे जमीन के टुकड़े न होने पावें और लोग सहकारी खेती करने को बाध्य हो जायं ।

इसका उत्तर देते हुए श्री विनोवा ने कहा कि "आज भारत के किसान को जमीन की भूख लगी है, उस भूख को तृप्त करना हमारा प्रधान कर्तव्य है । जब यह भूख कुछ कम हो जायगी यानी सबको थोड़ी-थोड़ी जमीन मिल जायगी तब लोग स्वयं ही एक-दूसरे के साथ सहयोग करके या तो सामूहिक खेती करेंगे या सहकारी ढंग से । आज ही उनपर यह शर्त लादना क्रूरता होगी । इसका दूसरा एक खराब असर यह भी होगा कि अगर इस शर्तपर जमीनें दी गईं तो जमीन के मालिक भी उसमें शरीक होकर अपने स्वामित्व की भावना का पोषण करते रहेंगे । उनकी स्वामित्व भावना का संपूर्ण लोप करने के लिए भी यह जरूरी है कि जमीनें बिना किसी शर्त से ली और दी जायं । फिर यह भी सोचने की बात है कि अगर ऐसी शर्तें लगा दी गईं तो एकाध एकड़ भूमि का दान हम कैसे ले सकेंगे ?"

भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने से पैदावार घटती है, इस तरह का जो आक्षेप श्री पाटिल साहब ने किया था उसका मुंहतोड़ जवाब देते हुए बिहार के श्री लक्ष्मीबाबू ने आंकड़ों की मदद से यह साबित किया कि यह आक्षेप पूर्णतया भ्रांतिमूलक है । बिहार में कई किसानों ने जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों में खेती करके अपेक्षा से अधिक पैदावार कर ली है । श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने भी जापान की मिसाल देते हुए यह बताया कि वहां जमीन के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े रहने पर भी वहां का किसान

हमारी अपेक्षा कई गुना अधिक अनाज पैदा करता है।

श्री पाटिल साहब ने एक आपत्ति यह भी उठाई कि देहात के सारे लोग खेती करने लगेंगे तो उद्योगों के लिए कोई बचेगा ही नहीं और खेती पर बहुत ज्यादा बोझ पड़ेगा। उनके इस आक्षेप से ऐसा लगा कि मानो उन्होंने इस आन्दोलन को अच्छी तरह समझ लेने की चेष्टा अब तक नहीं की है। उनको समझाते हुए श्री विनोबा ने कहा कि "हम सब लोगों को जमीन नहीं देने जा रहे हैं। धोबी, तेली, नाई, बुनकर, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, चमार आदि जो लोग आजतक अपना-अपना काम करते आये हैं उन्हें जमीन नहीं दी जायगी। केवल उन्हीं को जमीन दी जायगी जिनके पास खेती के अलावा कोई और रोजगार है ही नहीं। केवल इतना ही नहीं, बल्कि हम इस बात का भी ध्यान रखेंगे कि सब कारीगरों को अच्छा रोजगार मिलता है और सारे ग्रामोद्योग सुचारु रूप से चलते हैं।"

इसी विषय पर बोलते समय पंडित सुन्दरलालजी ने नये चीन की जानकारी श्रोताओं को दी और बताया कि वहां कैसे बहुत थोड़े अरसे में सबको जमीन बांटी गई। उनकी चीन-स्तुति के लिए सम्मेलन का समय अपर्याप्त मालूम होने के कारण रात को उनका अलग व्याख्यान रखा गया, जिसमें काफी लोगों ने उपस्थित रहकर अपनी रुचि प्रकट की।

कुछ अन्य वक्ताओं ने भी चीन की तारीफ करते हुए यह कहा कि तानाशाही में ही अच्छे काम जल्दी से हो सकते हैं, लोकशाही (जनतन्त्र) में अच्छे काम भी बहुत आहिस्ता होते हैं। इसका जवाब देते हुए श्री विनोबा ने कहा कि "जब हम ऐसा कहते हैं तो उसका मतलब यही होता है कि हमने लोकशाही के सिद्धान्तों को अच्छी तरह नहीं समझा है। आज तो हम मुंह से लोकशाही की बातें करते हैं और इधर फौज भी बढ़ाते जाते हैं। ये दोनों चीजें साथ नहीं चल सकतीं। हमें निश्चय कर लेना चाहिए कि हम किस मार्ग पर चलना चाहते हैं। तब हम देखेंगे कि लोकशाही ही शीघ्र परिणामकारी होती है और तानाशाही केवल शीघ्र-कुपरिणामकारी होती है।"

भूदान-यज्ञ के अलावा अन्य विषयों पर भी सम्मेलन में चर्चा हुई, मसलन श्रमिक-प्रतिष्ठा के बारे में श्री जाजूजी ने कहा कि अबतक हम अमीरों और बुद्धिजीवी लोगों की प्रतिष्ठा करते आये हैं, अब श्रम और श्रमिक दोनों की इज्जत बढ़ाने का वक्त आया है। अब हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम स्वयं शरीरश्रम करें और अन्य श्रम-जीवियों की तरह मजदूरी लेकर महीने में कुछ रोज अन्य लोगों के यहां काम करें। इस विषय पर श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और श्री काका कालेलकर के भाषण हुए। राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन ने अपने भाषण में आदर्श ग्राम का बड़ा सुन्दर और आकर्षक चित्र खींचा और यह आशा प्रकट की कि एक जमाना आयेगा जब हमारे बड़े-बड़े शहर केवल खंडहर बनकर रह जायगे।

कुछ मित्रों ने भूदान-यज्ञ के विषय में बोलते समय इस बात पर बहुत जोर दिया कि अगर हमारा आन्दोलन सफल नहीं होता है तो हमें सत्याग्रह की तैयारी अभी से शुरू करनी चाहिए, इसका जवाब देते हुए श्री विनोबा ने एक बड़े मजे की उपमा दी। उन्होंने कहा, "बीमार तो अवश्य मरने ही वाला है ऐसा समझकर हम दवा के साथ उसकी अर्थी का सामान भी तो साथ नहीं लाते, क्योंकि सामान जुटाने में देर नहीं लगती। इसी तरह अगर हम शुरू से ही सत्याग्रह का चिंतन करने लगेंगे तो हमारा ध्यान बंट जायगा और हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकेंगे। जब मौका आ जायगा तब सत्याग्रह का मार्ग आप-ही आप खुल जायगा।"

इस प्रकार लगातार तीन दिन तक अनेक विषयों पर चर्चाएं होती रहीं। उनके कारण कार्यकर्ताओं के मनकी शंका-आशंकायें दूर हो गईं और एक नया उत्साह एवं चैतन्य लेकर सारे कार्यकर्ता सेवापुरी से रवाना हो गये। अगले दो साल के अन्दर जो पच्चीस लाख एकड़ जमीन प्राप्त करनी है उसमें से कितनी भूमि किस प्रदेश को प्राप्त करना है इसका भी निर्णय सेवापुरी में किया गया और हर प्रदेश के लिए अलग-अलग भूदान समितियां नियुक्त की गई। यहां का उत्साह और उमंग देखकर हमें ऐसा लगा कि २५ लाख का सकल्प बहुत शीघ्र पूरा होगा और अहिंसक समाज क्रांति में हमारा भारत एक कदम आगे बढ़ जायगा।

भारतीय राष्ट्रीयता किधर ?—ले० श्री रघुवीरशरण दिवाकर, प्रकाशक—मानव साहित्य सदन मुरादाबाद, पृष्ठ सं० ७८ मूल्य १)

राष्ट्रीयता भारत के लिए नई चीज है। उसे अंग्रेजों की देन न भी मानें तो भी वह उसी युग की उपज है। आदियुग में भूमि के प्रति ममता के प्रमाण हमें मिलते हैं, पर कालांतर में वह ममता भूमि से हटकर अध्यात्म की ओर मुड़ गई और फिर एक दिन ऐसा आया कि विश्व-कल्याण के नाम पर मनुष्य स्वार्थ का पुतला बन गया। संकुचित राष्ट्रीयता सदा घातक होती है, परन्तु जो राष्ट्रीयता स्वस्थ मान-दण्डों को लेकर चलती है वह मानवता से भिन्न नहीं है। इस छोटी-सी पुस्तिका के लेखक ने इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है। भारतीय राष्ट्रीयता "आध्यात्मिकता के झूठे उन्माद में व भौतिकता के मोह-जाल में न फंस कर दोनों के संतुलन व सामंजस्य पर ही मानवजीवन निर्धारित करते हुए यथार्थवाद को मान देती रही तो राष्ट्र का कल्याण है, विश्व का त्राण है।" वस्तुतः यही सही दृष्टिकोण है।

लेखक की भाषा और शैली में ओज है। यदि उग्रता कुछ कम होती तो प्रभाव अधिक स्वास्थ्यप्रद होता। तो भी उसके दृष्टिकोण से हरएक समझदार व्यक्ति सहमत होगा और उनकी मौलिक विचार-प्रणाली की सराहना करेगा।

हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी, इलाहाबाद की तीन पुस्तकें,

झंकार (१९३९ से १९५० तक की प्रसिद्ध उर्दू कविताओं का संकलन)—सम्पादक—श्री रघुपति-सहाय 'फिराक', पृष्ठ १९८, मूल्य ३)

'झंकार' उर्दू कविताओं का संग्रह है। कुछ पुरानी कविताएं भी हैं। ये कविताएं देश की नई चेतना को समर्पित की गई हैं। वस्तुतः ये कविताएं स्वयं नई चेतना से ओतप्रोत हैं। इस नई चेतना का आधार है साम्यवाद और रूस। सम्पादक ने माना है कि गांधीवाद जानदार साहित्य नहीं पैदा कर सका, गांधीयुग लगभग बंजर साबित हुआ। इस स्थापना से मतभेद हो सकता है। मैं उर्दू की बात नहीं कहता, पर देश में ऐसी भाषाएं हैं जिन्हें गांधीवाद ने प्रेरणा दी है। इसलिए इस तरह की स्थापनाएं जल्दी में नहीं बना लेनी चाहिए। लेकिन इस बात को छोड़कर जहां तक कविताओं का सम्बन्ध है हम उनकी शक्ति, ताजगी और सूत्र के कायल हैं। वे एक नये युग का सन्देश देती हैं। यद्यपि उनका चुनाव एक विशेष दृष्टिकोण को सामने रखकर किया गया है यानी वर्तमान युग की और वर्तमान शासन की कमजोरियों का पर्दाफाश तथा रूस और साम्यवाद की प्रशंसा, तो भी उनकी भाषा, उनकी शैली और उनकी पैनी दृष्टि हर किसी को मोह लेगी।

भाषा अधिकतर सरल और बामुहावरा है। कहीं-कहीं तो ठेठ हिन्दी है। जहां कठिन है वहां शब्दों के अर्थ दिये हुए हैं। यदि सम्पादक कवियों का संक्षिप्त परिचय और दे देते तो अच्छा होता। पुस्तक 'हिन्दुस्तानी' का नमूना है। भूमिका में सम्पादक ने भाषा' को 'भाशा', विवरण, चित्रण को विवरन और चित्रन लिखा है। न जाने 'चितरन' क्यों नहीं लिखा! उन्होंने उर्दू कविता की प्रशंसा की है, ठीक की है, पर हिन्दी कविता पर जो छींटाकशी की है वह मानसिक अस्वस्थता का प्रमाण है। उससे बचने तो उनकी विद्वत्ता में कोई धब्बा नहीं लगने वाला था। बहरहाल हम तो उन्हें इस मधुर 'झंकार' के लिए धन्यवाद ही देंगे।

महात्मा गांधी के बलिदान से सबक—ले० श्री सुन्दरलाल; मूल्य १२ आना; पृष्ठ-संख्या ६५।

महात्मा गांधी की हत्या वर्तमान विश्व की एक

महान घटना है। आने वाली दुनिया उसके कारणों पर सदा विचार करती रहेगी। इस पुस्तक के लेखक प० सुन्दरलाल ने यही किया है। उनका विवेचन विद्वत्तापूर्ण है। वह हमें सोचने की सामग्री देता है। उन्होंने इस अनहोनी घटना पर राजनैतिक, साम्प्रदायिक और ऐतिहासिक तीनो पहलुओ से विचार किया है और बताया है कि इस महान बलिदान से हम क्या शिक्षा ले सकते है। वह शिक्षा एक ही है कि हम अपने नवोदित राष्ट्र को साम्प्रदायिकता से बचावें। यह पुस्तक हर दृष्टि से पठनीय और माननीय है क्योकि आज के युग में साम्प्रदायिकता नाना रूपो में फिर अपना सिर उभार रही है। इससे पहले कि वह हमें भ्रम ले हमें वास्तविकता को समझ लेना चाहिए। यह पुस्तक उस वास्तविकता को सही रूप में हमारे सामने रखती है।

पुस्तक की भाषा हिन्दुस्तानी है। उसमें प्रवाह, सरलता और विश्वास है। हर नवयुवक को इसे पढना चाहिए।

चीन की आवाज—लें० श्री सुन्दरलाल। पृष्ठ ४४ डिमाई साइज। मूल्य ।)

गत वर्ष प० सुन्दरलाल जी एक गैर-सरकारी शिष्ट-मडल के नेता के रूप में चीन के नये लोकराज की दूसरी वर्षगाठ के उत्सव में भाग लेने गये थे। वहा पर आपने कुछ भाषण व वक्तव्य दिये थे। उन्ही का यह सग्रह है। प० सुन्दरलालजी ने वहा जो कुछ देखा, २ वर्ष में क्षत-विक्षत चीन ने जो शानदार कारनामे किये, एशिया में प्रगति की जो आधारशिला स्थापित की उसका पूर्ण परिचय इस पुस्तक में मिलता है। चीन की यह प्रगति भारत के लिए अध्ययन की वस्तु है। पडित जी का दावा है कि चीन कम्युनिस्ट नहीं है। गाधीजी की शिक्षाओ का वहा भारत से अधिक प्रसार व प्रचार है, विशेषकर चर्खे का। इस दावे की सत्यता का प्रश्न यहा नहीं उठता, क्योकि चीन के शासक अहिसा में विश्वास नही करते, पर इस बात को छोड कर चीन ने जो सफलता प्राप्त की, जो प्रगति की है, तनतोड कर जो नवजीवन का सचार किया है वह निस्सन्देह प्रशसा के योग्य है। प० सुन्दरलाल की यह पुस्तिका भारत और चीन को पास लाने में तथा भारत को अपना नव निर्माण करने में बहुत सहायक होगी।

हमारे सहयोगी

इधर इस देश में हिन्दी के बढते हुए प्रचार और प्रसार के फलस्वरूप अनेक सुन्दर पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन शुरू हो गया है। उनमें गुलदस्ता, नवनीत और सम्पदा प्रमुख है। गुलदस्ता (हिन्दी डाइजेस्ट) अपने प्रकार का हिन्दी में शायद सबसे पहला पत्र है। विदेशो में इस प्रकार के पत्र अनेक है और लाखो की सख्या में छपते है। इधर-उधर जो सुन्दर रचनाए निकलती है ऐसे पत्रो में वे सक्षेप में या सार रूप में दी जाती है, जिससे अधिक-से-अधिक व्यक्ति उनसे लाभ उठा सकें। गुलदस्ता इसी प्रकार का अनूठा पत्र है। श्री राजपाल सिन्ध प्रान्त के रहने वाले है। हिन्दी में उनका यह प्रयत्न सराहनीय है। रचनाओ का सकलन ज्ञानवर्धक, सुरुचिपूर्ण और सुग्राह्य होता है। पत्र को बिना पढे छोडते नही बनता। अधिक-से-अधिक पाठकों को इसे अपनाना चाहिए। इसका वार्षिक चन्दा १०) तथा एक प्रति का मूल्य १) है। पता है गुलदस्ता कार्यालय, पीपलमण्डी आगरा। 'नवनीत' गुलदस्ता के बाद आने वाला इसी प्रकार का सुन्दर पत्र है। इसका चन्दा वही है जो गुलदस्ता का है। इसका प्रकाशन 'नवनीत प्रकाशन' बम्बई से होता है। 'नवनीत' में विदेशी रचनाओ का बाहुल्य रहता है। वह हमें अतर्राष्ट्रीय साहित्य की नवीनतम धाराओ से परिचित कराता है और उस अपार सागर में जो सुन्दर और चुने हुए रत्न है उन्हे हमारी भेंट करता है। वह वस्तुत नवनीत है। हम इन दोनों पत्रों के दीर्घजीवी होने की प्रार्थना करते है। यद्यपि 'सम्पदा' का क्षेत्र भिन्न है, यह अर्थशास्त्रीय पत्र है पर इसीलिए इसका महत्व बहुत अधिक है। हिन्दी में शायद यह अपने विषय का अकेला पत्र है। इसका मार्ग दुरूह है और इसे बहुत सभल-सभल कर चलना है। हिन्दी में कहानी के अतिरिक्त और कुछ नही बिकता, इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस

(शेष पृष्ठ २२० पर)

हमारी राय

सर्वोदय-सम्मेलन

सर्वोदय-समाज का चौथा वार्षिक सम्मेलन श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू की अध्यक्षता में १३, १४ और १५ अप्रेल को सेवापुरी में समाप्त हो गया। देश के विभिन्न भागों से लगभग दो हजार रचनात्मक व कांग्रेसी कार्यकर्ता (सर्वोदय-समाज के सेवक) तथा प्रमुख नेता उसमें सम्मिलित होने आये थे। अनेक विदेशी लोग भी थे। जैसी कि आशा थी, सम्मेलन का अधिकांश समय भू-दान-यज्ञ की कल्पना को स्पष्ट करने तथा उसे देशव्यापी बनाने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने में व्यतीत हुआ। सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, श्रम-प्रतिष्ठा, मद्य-निषेध आदि विषय भी चर्चा के लिये आये, लेकिन वे गौण बनकर रह गये। मुख्यत: विचार तो भू-दान-यज्ञ पर ही हुआ और हम सकते हैं कि उस दृष्टि से यह सम्मेलन बहुत सफल रहा। भू-दान-यज्ञ के विषय में लोगों की आशंकाएं दूर हुईं, साथ ही रचनात्मक कार्यकर्ता इस महान कार्य में योगदान देने के लिए एक नया उत्साह, एक नई प्रेरणा और एक नया निश्चय लेकर गये। निश्चय ही इससे भू-दान-यज्ञ की गति अब और अधिक वेगवान होगी और उसके लिए संगठित रूप से उन भागों में भी प्रयत्न प्रारम्भ हो जायंगे जहां इस यज्ञ के प्रवर्तक विनोबाजी अभी तक नहीं पहुंच पाये हैं तथा आगे भी जाने की संभावना नहीं है।

एक बात से हमें बड़ा संतोष और हर्ष हुआ और वह यह कि कांग्रेस या सर्वोदय की विचार-धारा से मतभेद रखने वाले अनेक नेताओं ने भी इस सम्मेलन में भू-दान-यज्ञ का समर्थन किया। रचनात्मक संस्थाओं के मेल से बने 'सर्व सेवा-संघ' ने तो दो वर्ष के भीतर पच्चीस लाख एकड़ भूमि एकत्र करने का संकल्प ही कर डाला। उनका प्रस्ताव इस प्रकार है:

"सत्य और अहिंसा पर अधिष्ठित वर्गविहीन और शोषण-रहित समाज बनाना हमारा उद्देश्य है—ऐसा समाज जिसमें हरएक के विकास के लिए पूर्ण अवकाश हो। आज हमारे देश में जो आर्थिक विषमता है उसे बदलकर इस उद्दिष्ट की ओर हम किस तरह बढ़ सकते हैं यह आज हमारे सामने मुख्य प्रश्न है। पिछले सर्वोदय-सम्मेलन के बाद श्री विनोबाजी द्वारा प्रेरित और प्रचारित भूदान-यज्ञ के आन्दोलन से हम लोगों को इस प्रश्न का उत्तर काफी मात्रा में मिल गया है। इस आन्दोलन ने अहिंसा की शक्ति का प्रत्यक्ष परिचय देकर अहिंसा पर हमारी श्रद्धा को फिर से सजीव बनाया है। खुशी की बात है कि इस आन्दोलन ने सारे हिन्दुस्तान का ही नहीं, बल्कि बाहरी देशों का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। देशभर में फैले हुए हमारे कार्यकर्ताओं तथा जनता से भी यह मांग हो रही है कि इस युगप्रवर्तक क्रांतिकारी आन्दोलन को वेगवान तथा देशव्यापी बनाने के लिए 'सर्व सेवा-संघ' की तरफ से उन्हें मार्ग-दर्शन मिले और श्री विनोबाजी की भी यही इच्छा है कि अब यह कार्य उनके व्यक्तिगत प्रयत्नों तक ही निर्भर न रहकर देशव्यापी बने। इसलिए 'सर्व सेवा-संघ' अपना कर्तव्य समझता है कि श्री विनोबाजी के नेतृत्व में इस कार्य का भार अपने ऊपर ले ले।

"इस भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि जिस तरह बच्चों का अपनी माता पर समान रूप से अधिकार होता है उस तरह भू-माता पर भी उसकी सभी सन्तानों का समान अधिकार है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि हमारी सारी भूमि का नये सिरे से न्यायोचित वितरण हो। इस वितरण का अनुपात आम तौर

पर यह रहे कि प्रत्येक परिवार को कम-से-कम पाच एकड खुश्क या एक एकड तरी जमीन दी जाय ।

"इस न्यायोचित वितरण के लिए लोक-मानस को तैयार कर समाज की विवेक-बुद्धि को आवाहन कर और अगले दो साल के अन्दर फी गाव ५ एकड की औसत के हिसाब से हिन्दुस्तान के करीब ५ लाख देहातो के नाम पर कम-से-कम २५ लाख एकड भूमि प्राप्त कर। वह उन बेजमीनो को दी जाय जो स्वय खेती करना जानते है और करना चाहते है और जिन्हे कोई दूसरा रोजगार नही है ।

"सर्वोदय समाज के निर्माण की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि जीवन के हर क्षेत्र में आर्थिक समानता की ओर गति हो और सबको पूरा काम मिले। हमारा विश्वास है कि यह विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए सारे देश में विकेंद्रित उद्योगो अर्थात् ग्रामोद्योगो का व्यापक प्रसार हो । उस दृष्टि से एक बुनियादी आरभ के तौर पर अन्न एव वस्त्र के स्वावलम्बन मे बाधक होने वाले केन्द्रित उद्योगो का बहिष्कार किया जाय ।"

इस शुभ और सामयिक सकल्प का हम हार्दिक अभिनन्दन और अनुमोदन करते हुए देश के समस्त व्यक्तियो और शक्तियो, विशेषकर रचनात्मक कार्यकर्ताओ से अनुरोध करते है कि वे इस सकल्प को शीघ्र ही कार्यान्वित करने में प्राणपण से जुट जाय और दो वर्ष से पहले ही इसे पूरा करके दिखा दें। इस कार्य में कौन प्रदेश कितना हाथ बटायेगा, इस बारे में भी विचार हुआ और कुछ कमेटियो का निर्माण किया गया । ये कमेटिया अपने-अपने क्षेत्र में काम करेगी ।

सम्मेलन की व्यवस्था से कुछ लोगो को भले ही असन्तोष रहा हो, कुछ भाषण सुनते-सुनते ऊब भी उठे हो, कुछ को उस सास्कृतिक कार्यक्रम का अभाव भी खटका हो, जिनके कारण अनगुल और शिवरामपल्ली के सर्वोदय सम्मेलन सजीव हो उठे थे, लेकिन भूदान-यज्ञ के लिए इस सम्मेलन में लोगो मे जो स्फूर्ति पैदा हुई, वह बडी चीज थी और उससे इस सम्मेलन की गणना सर्वोदय समाज के एक ऐतिहासिक सम्मेलन के रूप म की जायगी ।

नेहरूजी की जिज्ञासा और मंगल-कामना

विनोबाजी के भूदान-यज्ञ के प्रति भारत के प्रधान मत्री पडित जवाहरलाल नेहरू की शुरू से ही दिलचस्पी रही है । इतना ही नही, तैलगाना में इसकी सफलता को देखकर एक बार ससद में उन्होंने कहा था कि जो काम हथियारबन्द फौजें भी नही कर सकती थी वह काम विनोबाजी ने कर दिखाया । सर्वोदय सम्मेलन के कार्य की उन्नति की कामना करते हुए नेहरूजी ने विनोबाजी को निम्नलिखित पत्र भेजा था

नई दिल्ली
११-४-१९५२

प्रिय विनोबाजी,

आपका सदेशा मुझे मिला कि मैं सर्वोदय सम्मेलन में शामिल होऊ। मेरी भी कुछ इच्छा थी कि मैं इस मौके से फायदा उठाऊं और आप से और औरों से मिलूं और कुछ बातचीत में हिस्सा लूं। लेकिन मैं इस समय बिलकुल मजबूर हूं और यहां से जा नहीं सकता। थोड़ी देर जाने के कुछ माने भी नहीं है।

सर्वोदय सम्मेलन के काम में, आप जानते है, मुझे बहुत दिलचस्पी है और मै आशा करता हू कि इसकी तरक्की होगी और उससे हम सब कुछ सीखेंगे। गुलजारीलाल नन्दाजी और पाटिल यहा से जा रहे है और वापस आने पर यहा का हाल बतावेंगे और हम सब उस पर विचार करेंगे।

आशा है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका,
जवाहरलाल नेहरू

विचार-क्रांति के लिये जरूरी कदम

सर्वोदय की विचारधारा और भूदान-यज्ञ की कल्पना को जनसाधारण तक पहुचाने और उनमे विचार क्रांति उत्पन्न करने के लिए जिस चीज की अत्यन्त आवश्यकता है वह यह है कि इसके बारे में प्रामाणिक साहित्य सरल-सुबोध भाषा व सस्ते मूल्य में प्रकाशित किया जाय ।

आज सारा बाजार साम्यवादी विचारधारा की छोटी-बड़ी पुस्तकों से भरा पड़ा है। ये पुस्तकें इतनी सुन्दर छपी हैं, इतना बढ़िया कागज लगा है और सबसे अधिक यह कि वे इतनी-सस्ती हैं कि मामूली हैसियत का पाठक भी उन्हें खरीदने के लिए सहज ही लालायित हो उठता है, खरीद लेता है। यदि हमें अहिंसक क्रांति के लिये लोगों को तैयार करना है तो हमें भी सस्ते-से-सस्ते मूल्य में बढ़िया-से-बढ़िया साहित्य निकाल कर देश के घर-घर में पहुंचाना होगा। भले ही यह कार्य 'सर्वोदय-समाज' की ओर से हो अथवा गांधी स्मारक निधि की ओर से या 'सर्व सेवा-संघ' की ओर से, होना जरूर चाहिए और विधिवत रूप से। जबतक लोगों में विचार-क्रांति नहीं होगी, भावी समाज के नव-निर्माण को लोग पूरी तरह समझकर हृदयंगम नहीं करेंगे तबतक सर्वोदय की विचारधारा और भूदान-यज्ञ का प्रभाव बहुत सीमित रहेगा। अब चूंकि उस दिशा में संगठित रूप से कदम उठाया जारहा है, हम चाहते हैं कि ऐसे साहित्य के सृजन और प्रसार की ओर फौरन ध्यान दिया जाय। सौभाग्य से गांधीजी, विनोबाजी तथा अन्य अनेक चिन्तकों का बहुत-सा साहित्य इस विषय पर मौजूद है। उसे सस्ते-से-सस्ते मूल्य में निकाला जा सकता है, साथ ही नया साहित्य भी तैयार कराया जा सकता है। इस कार्य में जितनी जल्दी होगी, उतना ही हमारा और हमारे देश का लाभ होगा। अन्य देशों में जब-जब क्रांतियां हुई हैं, उनके लिए लोक-मानस चिंतकों के साहित्य ने ही तैयार किया है। रस्किन की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) ने गांधीजी का जीवन ही बदल दिया, स्टो की 'अंकिल टाम्स केबिन' (टाम काका की कुटिया) ने अमरीका में गुलामी के विरुद्ध क्रांति पैदा करदी। इतिहास में और भी ऐसे अनेक दृष्टांत मिलते हैं। हमारे जीवन, समाज और देश में क्रांति लाने के लिए विचारों की क्रांति आवश्यक है और यह कार्य साहित्य ही कर सकता है। —य०

कसौटी पर

(पृष्ठ २१७ का शेष)

पत्र को बेचा जाय। सम्पादक और प्रकाशक के इस साहसपूर्ण कार्य में सबको सहायता देनी चाहिए।

जैसा कि सम्पादक ने प्रथम अंक में अपनी नीति की चर्चा करते हुए लिखा है—"आज हिन्दी संसार भी पहले से अधिक जागरूक और अधिक शिक्षित हो चुका है। लोकतन्त्र शासन ने उसपर गम्भीर उत्तरदायित्व भी डाल दिया है कि वह देश की राजनैतिक व आर्थिक समस्याओं को स्वयं समझने की कोशिश करे तथा उनका हल करे। वास्तव में नेहरूजी के शब्दों में यह हमारा प्रथम कर्तव्य है कि १९४७ में हमने राजनैतिक स्वराज्य का जो चैक प्राप्त किया था उसे आर्थिक समृद्धि की नकदी में भुनाने का प्रयत्न करें, क्योंकि आर्थिक समृद्धि ही सच्चा स्वराज्य है।"

यह एक बड़ा दावा है। 'सम्पदा' इस दावे का स्वीकार करके मैदान में आई है। उसके लेख इस बात के साक्षी हैं कि वह जो दावा लेकर चली है उसका दायित्व वह समझती है। 'स्टर्लिंग क्षेत्र में संकट' 'पंचवर्षीय समृद्धि योजना' 'मुद्रा प्रसार' 'यह महंगाई क्यों' 'जगत की पैट्रोल सम्पदा' तथा अन्य लेख भारत की आर्थिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। लेखों के अतिरिक्त समाचार, सूचना और गतिविधि के रूप में उसने अच्छी जागरूकता का परिचय दिया है। 'श्रम समस्या' 'कृषि और खाद्य' 'विविध-राज्यों की आर्थिक प्रवृत्तियां' आदि कुछ अच्छी जानकारी देने वाले स्तंभ हैं।

पत्र हर प्रकार से सुबोध, ज्ञानवर्धक और रोचक है। उसका कार्य कठिन है, पर आरम्भ सुन्दर है और साहस भी स्तुत्य है। हमें आशा है कि उन्हें सब ओर से सहयोग मिलेगा। इस पत्र के सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार सुपरिचित लेखक और सम्पादक हैं। इसका वार्षिक मूल्य ८), एक प्रति का ।।।) तथा प्राप्ति-स्थान अशोक प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली है।

—'सुशील'

'मंडल' के नये प्रकाशन

● **अमिट रेखाए** (स० सत्यवती मल्लिक) ३)

" इस सग्रह मे जिन उदात्त चरित्रो के रेखाचित्र है वे भिन्न-भिन्न जातियो व देशो के है। आज के युग में जब मनुष्य मनुष्य के बीच की खाई बढती जा रही है तब इस तरह के सग्रह एक स्वास्थ्यप्रद वातावरण तैयार करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगे।

—हिंदुस्तानी प्रचार

" मानसिक उद्विग्नता एव परिस्थिति की विकरालता मे इस प्रकार का स्वस्थ साहित्य ही मानव को जीवित रहने की स्फूर्ति प्रदान करता है। इस दृष्टि से हृदयस्पर्शी रेखा-चित्रो का यह सग्रह अपने-आप मे ही अपूर्व एव अनोखा है।"

—राम राज्य

" पुस्तक पढने में दिलचस्प है। महान् आत्माओ का परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ कहानी का भी आनन्द मिलता है।" —विश्ववाणी

● **रीढ़ की हड्डी** (स० विष्णु प्रभाकर) १॥)

"प्रस्तुत पुस्तक में उच्च कोटि के साहित्य सेवियो तथा विद्वानो के लिखे हुए आठ एकाकियो का सग्रह किया गया है। सग्रह वास्तव में आधुनिक हिंदी एकाकियो का विषय, शैली, विधान तथा निष्कर्ष की दृष्टि से प्रतिनिधित्व करता है।'

—विश्ववाणी

"यह आठ एकाकियो का सग्रह है। आठो एकाकी आठ विभिन्न लब्धप्रतिष्ठ एकाकीकारो की कृतिया है। इनके सपादक श्री विष्णु प्रभाकर ने इसके सम्पादन में काफी होशियारी से काम लिया है। "

—हिंदुस्तानी प्रचार

● **राजघाट की सनिधि में** (विनोबा प्रवचन) ।॥=)

" प्रत्येक के लिए इन प्रवचनो का अध्ययन आवश्यक है, इसलिये कि विनोबाजी द्वारा जिस रचनात्मक तथा ऐतिहासिक क्रांति का श्रीगणेश किया गया है, वह भारत ही नही विश्व की महत्वपूर्ण घटना है।"

—नई दुनिया

" भूदान-यज्ञ सर्वोदय विचार और राष्ट्रीय योजना आयोग-सम्बन्धी चर्चाओ का यह सग्रह हर विचारवान और मननशील व्यक्ति के लिये पठन-पाठन की सामग्री है।

—कर्मवीर

भूदान-यज्ञ (विनोबा-प्रवचन) ।)

" सत प्रवर आचार्य विनोबाजी की प्रेरणा से आज हमारे राष्ट्र में एक महान क्रांति हो रही है। भूमि के असमान वितरण की विकट समस्या का हल आचार्यजी ने अपने भूदान-यज्ञ के रूप मे प्रस्तुत किया है। —कर्मवीर

" पुस्तक विनोबाजी की नई कार्य-योजना से भरी हुई है। प्रत्येक विचारशील पाठक के लिए पढने और मनन करने योग्य है।' —विश्ववाणी

● **एक आदर्श महिला**—(ले० विनायक तिवारी) १)

महात्माजी की रहनुमाई में ऐसी बहनें भी मैदान में आई जो दुखी समाज की सेवा करना अपना फर्ज समझती थीं और उनके हित में अपना हित मानती थीं। इन बहनो में बडी ऊची जगह है महाराष्ट्र की पुरानी सेवक और सौभाग्यवती अवंतिका बाई गोखले की। हम उम्मीद है कि इस किताब का खब प्रचार होगा। —नया हिन्द

' श्रीमती गोखले उच्चकोटि की समाज सुधारक और देश-भक्त थी। भारतीय महिलाओ की जागृति के लिये उन्होने अथक परिश्रम किया। उनका जीवन एव आदर्श जीवन था और भारतीय महिलाओ के लिये अनुकरणीय। —विश्ववाणी

Reg. No. D. 228.

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

जुलाई १९५२] [वर्ष १३ अंक ७

तुलसी-वाणी

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ ।
ससि छवि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥

.. .. ..

अवसर कौडी जो चुकै बहुरि दिएँ का लाख ।
दुइज न चदा देखिए उदौ कहा भरि पाख ॥

.. .. ..

बुध सो बिबेकी बिमलमति जिन्ह के रोष न राग ।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ॥

.. .. ..

तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ ।
तिन के मुह मसि लागिहै मिटिहि न मरिहै धोइ ॥

.. ..

जो परि पायँ मनाइऐ तासो रूठि विचारि ।
तुलसी तहाँ न जीतिऐ जहँ जीतेहूँ हारि ॥

.. . ..

तुलसी सो समरथ सुमति सुकृती साधु सयान ।
जो बिचारि ब्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान ॥

कहते हैं न, 'मुंह में रामनाम और वगल में छुरी'—ऐसी असंगत हमारी नीति है। हम लोकशाही के साथ-साथ केन्द्रित योजना और लश्कर चाहते हैं। मुंह में लोकशाही है और वगल में केन्द्रीकरण तथा लश्कर है। उस मूर्ख को आप क्या कहेंगे, जो सूत कातता जाता है और उसे तोड़ता भी जाता है? हम लोकशाही के साथ-साथ उसके विनाश के तत्त्व भी लेते रहेंगे तो परिणाम कैसे निकलेगा।

हमारे कुछ मित्रों ने मिलकर एक सर्वोदय-योजना बनायी और उसे प्रकाशित किया। उसमें कुछ त्रुटियां रही होंगी; लेकिन उस योजना में सर्वोदय के तत्त्व काफी थे। एक मौका आया जब श्री जयप्रकाश नारायण ने उस योजना के आधार पर जाहिर किया कि अगर सरकार और कांग्रेस इस योजना को अपना लें तो मतभेदों के रहते हुए भी हम समाजवादी पार्टी को विलीन कर देने को तैयार हैं। जयप्रकाश नारायण की तरह अगर सरकार और कांग्रेस भी कहती कि सर्वोदय-योजना की इतनी बातें हमें मंजूर नहीं हैं, बाकी की सारी मंजूर हैं तो देश में इतने तीव्र पक्षभेद न पड़ते, हिन्दुस्तान में एक बड़ी हद तक एकरसता आ जाती। लेकिन कांग्रेस ने और सरकार ने उस योजना के सम्बन्ध में अपनी राय प्रकट नहीं की। इसका कारण सर्वोदय-योजना के पीछे जो दृष्टि थी, उसीको वे न समझ सके। उन्हें सर्वोदय पसन्द है। वे गांधीजी के प्रेमी हैं, लोकशाही भी चाहते हैं; लेकिन यह जरूरी समझते हैं कि मुख्य सत्ता केन्द्र में चाहिए और लश्कर भी चाहिए। इसलिए उनके साथ हमारा मेल कैसे होगा? हालांकि उनके लिए हार्दिक सहानुभूति हो सकती है। सर्वोदय प्लैन में यह माना गया है कि कभी-न-कभी हम लश्कर को छोड़ने वाले हैं, कभी-न-कभी हम शासन-व्यवस्था को भी विलीन करने वाले हैं। सरकारी योजना लश्कर की आवश्यकता सदा महसूस करती है और राज्य-शासन कायम रखना चाहती है। वह हमारी योजना के साथ सच्ची सहानुभूति नहीं रख सकती।

हम एक विचारक हैं और विचारक के नाते अपना काम करते जाते हैं। अहिंसा हमारी नीति है, जिसका तत्त्व समन्वय है। हमारा विचार किसी के साथ थोड़ा भी मेल खाता हो तो उसके साथ सहानुभूति और सहकार करने को मैं तैयार रहता हूं। हरेक व्यक्ति के विचार में थोड़ा-बहुत भेद अवश्य रहेगा—'पिण्डे-पिण्डे मतिर्भिन्ना।' लेकिन कुल मिला कर हमारी मूलभूत राय एक है। हमारे मन में यह सन्देह न रहे कि टोटलिटैरियनिज्म नहीं है, इसलिए हमारा काम शीघ्र नहीं होता। हम लोकशाही का सच्चा अर्थ समझें और पूरे अर्थ के साथ उसका प्रयोग करें तो हमारा काम शीघ्रतम होगा। मुझे कोई बतावे कि इसमें परिस्थिति से क्या रुकावट होती है?

जिन विचारों में आज मेरी निष्ठा है, उनको मैंने थोड़े में अपने आप सबके विचारार्थ रख दिया है।

●

जमशेदपुर के श्री शरतचन्द्र साहू नामक एक किसान ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का अद्भुत परिचय दिया है। उन्होंने एक छोटी नदी-घाटी-निर्माण-योजना पूरी कर ली है और उससे वह अपने फार्म की ३० एकड़ भूमि सींच रहे हैं। उनका फार्म बंगाल-बिहार सीमा के पास चाकूलिया में है।

साहू ने १९४८ में कलकत्ता की एक प्रदर्शनी में दामोदर-घाटी-योजना का एक नमूना देखा था। उसे देखकर वह बहुत प्रभावित हुए और घर लौटकर अपने फार्म के पास बहनेवाली एक छोटी नदी पर बांध बनाया था। अब वह अपने फार्म में बिजली लाने की तैयारी कर रहे हैं।

इसके लिए उन्हें न तो योजना-कमीशन की सहायता चाहिए और न अमरीकी डालर की।

गुरुदयाल मल्लिक

तंदुरुस्ती की तदबीर

'जीवन-साहित्य' के दो पहलू हैं एक जो शिव को समझने में सहायता देता है और दूसरा जो जीव को 'शिव का एक सच्चा सेवक बनाने में मददगार होता है और जीव तो' तभी एक सच्चा सेवक बन सकता है जब वह तन्दुरुस्त हो, इसीलिए तो कहते है, "तन्दुरुस्ती हजार नियामत है।"

मगर इस भगवान की बख्शीश को सभालने का तरीका पहले जानना चाहिए। इस बारे में एक कहानी मुझे याद पडती है। कुछ बरस पहले अमरीका के एक विश्वविद्यालय के एक अध्यक्ष करीब चालीस वर्ष तक विश्वविद्यालय का काम करके निवृत्त हुए। इन चालीस बरसो में वह एक दिन भी अपने काम से गैरहाजिर नही रहे। उनके विश्वविद्यालय से विदा होने के अवसर पर उनके विद्यार्थियो ने उन्हे एक मान पत्र दिया, जिसमें अध्यक्ष महोदय के अनेक गुणा—दिली और दिमागी दोनो—का वर्णन था। मगर उस मानपत्र में अध्यक्ष महाशय से एक विशेष प्रश्न भी पूछा गया था—"क्या आप कृपया हमें यह बतायगे कि आप इतने वर्षों तक अपना शरीर इतना तन्दुरुस्त कैसे रख सके है?" अध्यक्ष महोदय ने मानपत्र का जवाब देते हुए इस प्रश्न का भी उत्तर दिया। वह उत्तर यह था, "Every day I study carefully my bowels and the Bible।" (अर्थात्—मै हर रोज बडी सावधानी से अपने पेट और धर्मशास्त्र का अध्ययन करता हू।) तन चगा तो मन चगा, मन चगा तो तन चगा।

यह है तन्दुरुस्ती की एक तदबीर। एक और भी तदबीर है। वह यह कि शरीर बिगडने पर फौरन हस्पताल के डाक्टर के दर्शन नही करने चाहिए, बल्कि दो और डाक्टर है जिनकी सलाह लेनी चाहिए। इन डाक्टरो के नाम है—Doctor Diet and Doctor Quiet (अर्थात् डाक्टर खुराक और डाक्टर खामोशी।) खुराक बदलने पर और चुपचाप रहने से बहुत सी छोटी-मोटी बीमारिया खुद ही दुम दबाकर भाग जाती है।

एक तीसरी तदबीर भी है। कहते है, पैगम्बर मोहम्मद साहब की एक हदीस है जिसमें आप फरमाते है, "जो अपनी जीभ और जननेन्द्रिय को समालकर रखता है और उनपर काबू रखता है वह स्वर्ग में प्रवेश करने का अधिकारी है।" स्वर्ग अतिशय सुख का एक प्रतीकमात्र है और सुख का एक अश तदुरुस्ती है। इसलिए जो अपने जबान के जायके पर और जननेन्द्रिय पर काबू रख सकता है वह तन्दुरुस्ती हासिल कर सकता है।

तो क्या सबकुछ तदबीर से ही जीवन में होता है? क्या तकदीर कुछ भी नही? इन प्रश्नो का जवाब दार्शनिक बन्धु ही दे सकते है। मगर जीवन की शाला मे बारबार ऐसा सबक पढाया गया है कि बहुत दफा तदबीर ही तकदीर है।

●

हम सियासी और इक्तसादी मामलो पर जरूर बहस करें और वह मामले अहम है। पर अगर नैतिक बुनियाद न रहे तो हम बालू पर ही अपना मकान बनाएगे। और उस नैतिक नजरिये की खासियत यही थी कि हमारे दिमाग मे और हमारे अमल मे ईमानदारी है और अपने मकसद की ओर बढने के लिए हम निडर है। गाधीजी कभी यह कहते हुए नही थकते थे कि उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए अपनाये गये तरीको को बडी अहमियत है और अपनाये गये तरीको का असर अपने मकसद पर पड़ता है। —जवाहरलाल नेहरू

ग० व० मावलंकर

प्रेमी लेकिन क्रोधी पति

[भारतीय संसद के अध्यक्ष श्री दादासाहब मावलंकर, अहमदाबाद के ख्यातनामा वकील थे। गुजरात की कांग्रेस की स्थापना के समय से उसके मन्त्री थे। अहमदाबाद म्युनिसिपैलटी के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। स्वराज्य-आंदोलन के दिनों में जब वे जेल में गये थे तब वहां भी उनका सेवा-कार्य चालू ही रहता था। जेल के कर्मचारी, उनके प्रति आदर होने के कारण, उन्हें मामूली कैदियों से मिलने की सहूलियत कर देते थे। खून आदि बड़े अपराध में फँसे हुए कैदियों को दादासाहब की ओर से कानूनी सलाह मिलती थी। सलाह जितनी क़ानूनी होती थी उतनी ही नेकी की भी होती थी। दादासाहब का मनुष्य-हृदय पर और उसकी भलाई पर असीम विश्वास है। अपनी दी हुई सलाह का गुनहगारों के मन पर क्या-क्या और कैसा असर होता था उसके ग्यारह प्रसंग लिखकर उन्होंने गुजराती में प्रकाशित किये हैं। किताब का नाम है 'मानवतानां झरणां।'

गुजरात में श्रेष्ठ कोटि के एक लोक-सेवक हैं श्री रविशंकर महाराज व्यास। उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी जरायम पेशा लोगों के उद्धार में व्यतीत की है। गुजरात के एक सिद्धहस्त लेखक श्री झवेरचंद मेघाणी ने रविशंकर महाराज के अनुभव उन्हीं के मुंह से सुनकर प्रकाशित किये हैं। उस किताब का नाम है 'माणसाईना दीवा'।

'माणसाईना दीवा' और 'मानवतानां झरणां' दोनों ग्रंथ शीघ्र-से-शीघ्र राष्ट्रभाषा में प्रकाशित होने चाहिएं। 'माणसाईना दीवा' की प्रस्तावना में मैंने लिखा है कि 'यह किताब जगत के साहित्य में अपना स्थान अवश्यमेव लेगी।' 'मानवता के झरने' का आस्वाद अभी-अभी ले सका हूँ।

'मानवता' के इन 'झरनों' का आचमन करके बड़ी प्रसन्नता हुई। वह तीर्थ का जल होने से उसमें विशेष महत्व और पावित्र्य है। स्व० मेघाणी की लिखी हुई 'माणसाईना दीवा' पढ़ने के बाद जो संतोष अनुभव हुआ था, वही सन्तोष और शुचिता इस पुस्तक में पाई जाती है। फ़र्क इतना ही है कि उस किताब में श्री रविशंकर महाराज के अनुभवों को श्री मेघाणी ने शब्द-रूप दिया था, इसमें श्री दादासाहब ने महाराज के जैसे ही अपने अनुभव खुद लिखे हैं।

धातु का बरतन चाहे जितना मोरचेदार या दाग़ी क्यों न हो, तेज़ाब के सामने वह तुरन्त ही सब मैल छोड़कर चमकीला बनता है। मौत का साक्षात्कार भी कई बार इसी तरह तेज़ाब का काम करता है। मृत्यु का यह माहात्म्य इस किताब में हर जगह देखने को मिलता है।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि 'सत्य का चेहरा सोने के ढक्कन से ढका हुआ होता है। भगवान सूर्यनारायण ही उसे खोल सकता है।' हम यहां देख सकते हैं कि सहानुभूति जब निःस्वार्थ सेवा का रूप लेती है तब उसका तेजस्वी प्रकाश भी सूर्यनारायण का काम करता है और सत्य की पहचान तो दिमाग़ से नहीं, दिल से होती है। 'हृदयेन हि सत्यं जानाति'।

शास्त्र-धर्म, प्रतिष्ठा-धर्म, क़ायदे-क़ानून और उनकी सज़ाएं जो कर नहीं पातीं, सच्ची सहानुभूति वह कर सकती है।

रविशंकर महाराज के और दादासाहब के अनुभवों को पढ़कर पाठकों का मन अवश्य द्रवित और अन्तर्मुख होता है; लेकिन इतना काफी नहीं है। हमें मनुष्य-जीवन और उसकी विविध प्रेरणाओं का फिर से अध्ययन करके अपने क़ायदे-क़ानून, अपना धर्म-शास्त्र, रूढ़ियां और सारे समाज-शास्त्र की रचना नई बुनियाद पर खड़ी करनी चाहिए। इस दिशा में हमारी लोक-संसद के अध्यक्ष ज़रूर आरम्भ कर सकते हैं। इस कार्य में उन्हें असंख्य समानधर्मा सेवकों की मदद ज़रूर मिलेगी। —काका कालेलकर]

'धोलका' की ओर का करीब पच्चीस साल की उम्र का एक नवजवान किसान। अपनी पत्नी के खून का उसपर इलजाम। जेल के दवाखाने में मैं बीमारो से मिलने जाया करता था। वहा एक रोज वह मुझसे मिला और अपनी बात बताई, सलाह भी मागी।

यह सच था कि उसके हाथो उसकी पत्नी की मौत हुई थी, मगर पत्नी को मारने का उसका इरादा कभी भी नही था। पति-पत्नी के बीच बहुत प्रेम था और दोनो एक-दूसरे को खूब चाहते थे, किन्तु यह जनाब जितने प्रेमी थे उतने क्रोधी भी थे। मुझे लगता है कि प्रेम और क्रोध एक ही वृत्ति के दो पहलू है। जैसा अतिशय प्रेम वैसा अतिशय क्रोध। जिस वक्त जो तार छिड जाय उसपर निर्भर रहता है।

भाई साहब खेत में काम के लिए गये थे। पत्नी रोज उनके लिए रोटी ले आती थी। एक रोज उसको आने में कुछ देर हुई या रोटी में कुछ कम-ज्यादा हुआ था, यह देखकर वह एकाएक बिगड गए। शायद पेट में भूख तीव्र हो जाने से भी उसका असर उनके दिमाग पर हुआ होगा।

हाथ में आर वाली लकडी थी। वह पत्नी की ओर फेंक कर बोला, "इतनी देरी क्यो हुई? क्या करती थी?" बदकिस्मती से अकस्मात वह ठीक औरत के सिर पर लगी और वह चकरा कर जमीन पर गिर पडी। यह देखते ही उसे बहुत धक्का लगा, पछतावा हुआ, दुःख हुआ, लेकिन होनी थी सो हो चुकी थी। अब क्या किया जाय!

कुछ देर के बाद, दो-चार मिनट में, उसने औरत को होश में लाने के लिए उसके ताल पर पानी छिड़का। उसका सिर गोद में लेकर बैठा, रोने लगा, मगर कुछ फरक नजर न आया। इससे यह सोच में पड गया और गाडी में बैल जोतकर अकेले ही पत्नी को उठाकर गाडी में रखा और धोलका की ओर चल दिया, इस उम्मीद से कि वहा पहुचते ही कुछ उपाय निकल सके।

यह घटना चूकि खेत में घटी थी इसलिए उसे वहा देखने वाला तो कोई था ही नही।

औरत रास्ते में ही गुजर गई। फिर भी आशा और उम्मीद में वह उसे धोलका तक ले आया। पुलिसवालो को पता चला और उन्होने उसे गिरफ्तार किया और उसपर खून का मुकदमा चलाया गया।

अब उसके सामने सवाल यह था कि अपने हाथो जो-कुछ हुआ उसे मजूर करे या प्रत्यक्ष सबूत न होने की वजह से इन्कार कर दे और कह दे, "मुझे कुछ मालूम नही। मेरी गैरमौजूदगी में ही किसीने उसे मारा। मै उसे अस्पताल ले आ रहा था कि रास्ते में ही वह गुजर गई। मारनेवाले कौन लोग थे, इसका मुझे पता नही है।" और छूटने की कोशिश करे? इस मुकदमे में प्रत्यक्ष या दूसरे कोई सबूत के अभाव में उसका मुक्त होना भी सभव था।

अपराध स्वीकार करने से सजा मिलना तो निश्चित ही था। हा, इन्कार कर देने से छूटने की सभावना जरूर थी। उसे सलाह देनेवाले उसके रिश्तेदारो की इच्छा थी कि वह हकीकत से इन्कार करे और दृढ़ता के साथ यही कहे कि मै कुछ नही जानता।

स्वभावत मै विचार में पड गया। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नही था कि उसे सच कहना ही चाहिए। लेकिन वह सजा के लिए तैयार होगा या नही, इसमें मुझे जरूर सदेह था। सब तरह से सोच-विचार कर मैंने उसे सलाह दी कि तुमको तो सत्य कह कर अपराध को स्वीकार करना ही चाहिए। इसीमें तुम्हारा भला है। उसका पत्नी के प्रति प्रेम और मौत की सजा का कुछ डर, इन दो भावो का आश्रय लेकर मैंने उसे समझाने की कोशिश की। मैंने कहा, "भाई, मान लो कि तुमने कहा कि मै कुछ नही जानता। तो तुम्हारी पत्नी को किसने मारा? और किन कारणो से मारा? इस सम्बन्ध में कुछ बता सकोगे?"

उसने कहा, "नही साहब, मै कुछ नही बता सकूगा।"

मैंने पूछा, "तुम्हारा किसी पर सदेह है, ऐसा अगर पूछा गया तो तुम किसी का नाम बता सकोगे?"

"नही, यह भी नही बता सकता।"

"तुम्हारी किसी के साथ कुछ दुश्मनी थी कि जिससे तुमसे बदला लेने के लिए किसी ने तुम्हारी पत्नी को मारा?"

"नहीं, यह भी नहीं है।"

"तब तुम्हारी पत्नी की मौत किस तरह हुई इसका कुछ तो खुलासा होना ही चाहिए ना ? यह सच है कि आर की लकड़ी मारते वक्त किसी ने भी तुम्हें नहीं देखा; लेकिन जहां तुम और तुम्हारी पत्नी दो ही थे वहां पत्नी की मौत किस तरह हुई इसका भी तो कुछ खुलासा होना चाहिए न ? यह खुलासा संतोषप्रद न हो तो यही अनुमान लगाया जायगा कि तुम्हीने कुछ किया है और उससे उसकी मौत हुई है। सिर पर चोट हुई तो उसे करनेवाला कोई तो होगा ही और वह तुम्हारे सिवा और कौन हो सकता है ? अगर अनुमान से यही तय किया जाय तो तुमने इरादतन खून किया है ऐसा सिद्ध होगा और इसका नतीजा तो फांसी ही है।"

मेरी दलीलें वह ध्यान से सुनता था। इनमें उसे कुछ तथ्य मालूम हुआ होगा। इसलिए मैंने आगे चलाया। मैंने कहा, "भई, तुम्हारा पत्नी पर प्रेम था। वह भी तुमसे मुहब्बत करती थी। क्या तुम्हारे हाथों वह अकस्मात् मर गई और वह इस संसार में नहीं है, इसलिए उससे बेवफा होकर अपना दोष कबूल न करके अपने पाप का प्रायश्चित्त करने की जगह, ईश्वर और अपनी पत्नी के प्रति, पापी बनना चाहते हो ?"

नवजवान किसान सुन रहा था। उसके चेहरे पर से मालूम होता था कि इस बात का कुछ असर उस पर हो रहा है। इससे कुछ देर तक मैं चुप रहा। क़रीब पांच मिनट के बाद निश्चयी मुद्रा के साथ उसने कहा, "दादासाहब, मैंने निश्चय कर लिया है।"

"क्या निश्चय किया ?"

"यही कि जो-कुछ हुआ वह पूरा-पूरा सच बता देना और पत्नी से माफी मांगकर ईश्वर पर श्रद्धा रखना।"

मैंने उसे प्रोत्साहन दिया और कहा, "इस निश्चय में अडिग रहने के लिए ईश्वर तुम्हें बुद्धि और बल दे।" साथ-साथ मैंने यह चेतावनी भी दी कि अब तुम्हें अपने बचाव के लिए कोई वकील या और किसी को नियुक्त करने की क्या जरूरत है ? खामखा खर्च मत करो।

यह बात भी उसने मान ली।

इस मुक़दमे में अधिक क्या चलनेवाला था ? संक्षेप में ही मुक़दमा खतम हुआ और उस किसान को अदालत की ओर से चार साल की सज़ा मिली। सज़ा पाने के बाद वह मुझसे मिलने आया। उसे दो तरह का सन्तोष था। एक तो कम सज़ा हुई इसका और दूसरा अपने सच कहने का।

मैंने उसे तीसरा पहलू बताया, "भई, यह संतोष तो ठीक है; लेकिन गुस्से में आकर निर्दोष पत्नी के साथ जो अन्याय किया उसके प्रायश्चित्त के रूप में यह सज़ा है ऐसा मानकर तुम अपनी पत्नी के साथ प्रेम और वफ़ादारी बताते हो ऐसा नहीं मानोगे ?"

वह मुस्करा दिया।

मैंने आगे पूछा, "क्या अब आगे कुछ अपील वग़ैरा करनी है ?"

पलभर वह खामोश रहा। उसके बाद तुरन्त बोला, "ना, बेचारी औरत तो जान से गई। तब प्रायश्चित्त के लिये चार साल जेल में बिताना मेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं है।"

उसके चेहरे पर ऐसा परम संतोष फैला हुआ था, मानो जीवन का गहरा तत्वज्ञान समझ लिया है।

['मंगल-प्रभात' से

स्वर्गीय और पार्थिव का विवाद बहुत पुराना है। वे साहित्यकार जो सदा आकाश पर दृष्टि रखते हैं उनकी सेवा में मैं केवल यह कहने का साहस करता हूं कि हमारी धरती भी एक ज्योतिर्मय ग्रह है।

—मैक्सिम गोर्की

यदुनाथ थत्ते

सफाई

गीता ने नौजवानों से तपश्चर्या करने के लिए कहा है। देव, द्विज गुरु प्राज्ञ की पूजा करना—यह है पूजा की पहली बात। विनोबाजी ने लिखा है, "जो देता है सो देव, जो रखता है सो राक्षस।" अपने पास ज्ञान धन है वह दूसरो में बाटने में जिसे गौरव मालूम होता है वह देव है। द्विज याने जिसका दुबारा जन्म हुआ है वह। वैसे तो दांत और पक्षी भी द्विज कहलाते हैं। अगर उनको हम द्विजो में दाखिल करेंगे तो वह श्वा, युवा और मघवा को एक ही सूत्र में गूंथने जैसा होगा। द्विज का अर्थ जिसका जीवन-परिवर्तन हुआ है ऐसा शख्स। एसा ही अर्थ हमें लेना होगा। गुरु वह है जो हमें जीवन-दृष्टि प्रदान करता है। प्राज्ञ वह है जिसकी बुद्धि ने प्रज्ञा का रूप धारण किया है। इसका मतलब यह हुआ कि जिनके पास से कोई-न-कोई गुण हम सीखते हैं उनको स्वकर्म से हमें पूजा चढ़ानी चाहिए। गीता ने शरीर-तप में इसको सबसे अव्वल रखा, है इसी पर से उसका महत्व हमें जान लेना चाहिए। गीता ने ज्ञान का साधना-मार्ग क्या बताया है? गीता कहती है—

तद्विधि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया

अगर तुमको ज्ञान प्राप्त करना है तो नम्र बनकर, प्रश्न पूछकर और सेवा करके ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। पुराने जमाने के गुरु शब्द-जड नहीं होते थे। शब्दो से सिखाने के बदले अपने आचरण से सिखाना वे बेहतर समझते थे। एक अंग्रेज कवि ने लिखा है— तुम्हारे शब्द से जानना नहीं चाहता, क्योंकि स्वयं तुम्हारा बर्ताव ही तुम्हारा स्वरूप प्रकट कर देता है।" लेकिन आज शब्दों की महिमा बहुत बढी है। आचरण की फिक्र किये बगैर लोग बडी बडी बातें बोलते हैं और मानते हैं कि वे बहुत बडे बन गये हैं। पहले की शिक्षा ऐसी होती थी—

गुरोस्तु मौन व्याख्यान
शिष्योस्तु छिन्न संशय

गुरु का मौन ही व्याख्यान होता था और इधर शिष्य की सभी कठिनाइया दूर हो जाती थी। हमारे शास्त्रकारो ने यह भी बताया है कि 'आचार प्रथमो धर्म' पहला धर्म आचार है। आचरण आदर्श बनाना धर्म पालना है। गुरु-पूजा की यही माग है। गीता में दूसरी जगह लिख दिया है—

यद्यद् विभूतिमत्सत्व श्रीमदूर्जितमेव वा

जहा-जहा तुम्हें विभूतिमत्व की झलक मिले जो चीज लक्ष्मीवत या उदात्त हो वह मेरे अंश ही से बनी है ऐसा जान लो। गुरु-पूजा की समग्र दृष्टि यही है। जहा जहा से हमें कोई नसीहत मिले वह हमारा गुरु है और उस नसीहत को अमल में लाना है सच्ची गुरु-पूजा। एक तरह से यह नम्रता और कृतज्ञता भी है।

गीता ने शरीर-तपश्चर्या में दूसरा स्थान सफाई को दिया है। सफाई के बिना संस्कार-संपन्नता कहा! अगर पाटी साफ नहीं है तो उसपर हम लिख कैसे पायगे? सारा निसर्ग हमें सफाई का पाठ पढा रहा है। हम कूडा-करकट फेंकते है, उसमें से खाद बनती है और उसीमे से अच्छे पेड पौधे उग आते है। आदमी के मलमूत्र की खाद बढिया बनती है। निसर्ग ने भी सफाई का पूरा प्रबन्ध कर लिया है। वर्षा में आसमान से पानी गिरता है मानो सारी सृष्टि को धोकर साफ करता है। सूरज की किरणें रोज सफाई करती है। हमारे देश का यह बडा भाग्य है कि सूरज की धूप हमें हरदम मयस्सर होती है। हम कार्बन डाय ओक्साइड की हवा बाहर छोडते है तो वृक्ष उसे हजम करके हमें प्राणवायु फिर से देते है। निसर्ग के इन उदाहरणों से भी क्या हम सफाई करने को प्रवृत्त नहीं होंगे? गीता ने सफाई को दैवी गुणो में स्थान दिया है।

सफाई का सही अर्थ बहुत कम लोग जानते हैं। अपने घर को साफ करके रास्ते पर कचरा फेंकना सफाई नहीं है। सफाई का अर्थ है स्वरूप-परिवर्तन। बुरी चीज से अच्छी चीज का निर्माण। मलमूत्र से खाद बनाकर भूमि को उपजाऊ बनाना, कूडे करकट का कम्पोस्ट बनाना, नहाने धोने का बर्तन साफ किया

हुआ पानी बगीचों में देकर फलफूल पैदा करना सच्ची सफाई है। एक जगह का कूड़ा हटाकर दूसरी जगह बिखेर देनेवाली सफाई को गीता ने तपश्चर्या नहीं कहा है, न कह भी सकती है। एक जगह का कूड़ा उठा करके दूसरी जगह डालना एक दिखावटी सफाई भर हो सकती है। आज यह दिखावटी सफाई बहुत जोरों पर है। इसका सबूत चाहिए तो लोगों के लंगोटे, जांघिये और तौलिये देख लीजिए। ऊपर के सब कपड़े धोबी के इस्तरी किये हुए; लेकिन अंदर के सब गन्दे। लोग दो-दो दिन नहायेंगें भी नहीं; लेकिन ऊपर से पोमेड और पाउडर पोतते रहेंगे। अच्छा खुशबूदार तेल सिर में मलेंगे। सिर्फ साफ कपड़े पहनना तपश्चर्या नहीं है। अगर हम कपड़े दूसरों से धुलवाकर पहनते हैं तो उसमें हमारी तपश्चर्या कहां है? लोग हरदम पूछते है कि क्या पाप का बदला मिलता ही है? मैं कहूंगा मिलता है। दांतों को साफ न रखना एक तरह से पाप ही है। उस पाप का बदला दांत खराब होने पर मिल जाता है। दांतों से इतनी बदबू निकलती है कि दूसरे बातें करना भी टाल देते हैं। हमारी सब क्रियाएं साफ होनी चाहिए। अगर हमारे अक्षर साफ नहीं हैं तो उसका फल परीक्षा में कम अंक पाकर मिल ही जाता है। हमारी नींद भी साफ होनी चाहिए। साफ नींद याने निस्वप्न गाढ़ निद्रा। ऐसी निद्रा के बाद विकार शमन होता है, अच्छे भावों की परिपुष्टि होती है। तंदुरुस्ती बढ़ती है; लेकिन ऐसी साफ नींद मयस्सर हो इसके लिए पूरा दिन स्वच्छ क्रियाओं से बिताना चाहिए। दिन की क्रियायें अगर साफ नहीं होती हैं तो रात की नींद भी साफ नहीं हो सकेगी। हम नहाते भी ठीक ढंग से नहीं। किसी-न-किसी तरह दो-चार लोटे शरीर पर डालना नहाना नहीं है। नहाने के बाद हमारे अंग-अंग में चैतन्य का प्रादुर्भाव होना चाहिए। साफ हवा, साफ पानी, साफ चांदनी हमें बहुत भाती है। कहा जाता है कि गधा भी साफ पानी चाहता है। आदमी में तथा औरों में फर्क यह है कि आदमी जिस चीज को चाहता है उसके निर्माण के लिए भी वह कोशिश करता रहता है। स्वच्छता भी एक तरह से कृतज्ञता ही है। जो औजार, जो चीजें हमारी सेवा करती हैं, हमारी मदद करती हैं उनको साफ रखना कृतज्ञता है। **परस्परं भावयन्तः श्रेयं परमवाप्स्यथ**--'एक-दूसरे की परिपुष्टि करके परम श्रेय को प्राप्त हो जाओ' का मतलब भी यही है।

स्वामी रामतीर्थ की एक बात बहुत मशहूर है। स्वामीजी हरेक चीज की इस तरह फिक्र रखते थे कि जैसे उनके भी प्राण हो। पुस्तकों पर कवर चढ़ाते, जूतों में तेल देते, लालटेन के कांच को साफ रखते। जिस लालटन ने प्रकाश दिया, जिस पुस्तक ने ज्ञान दिया, जिस जूते ने पैर जलने से बचाया उसकी बराबर हिफाजत करनी चाहिए। स्वामी रामतीर्थ इस तरह हर एक चीज का खयाल रखते थे। हरेक सेवा-साधन को पवित्र मानकर उसे साफ रखना चाहिए। इस तरह की सफाई से हममें तपोबल आ जाता है।

जैसी आबहवा हो वैसी चीजें पैदा होती हैं। अगर हमने शरीर को साफ रखा तो मन भी साफ हो जाता है। तंदुरुस्त शरीर में तंदुरुस्त मनवाली कहावत मशहूर है। साफ शरीर में साफ मन रहेगा, इसलिए अंतःशुद्धि के लिए भी बहिःशुद्धि की निहायत जरूरत होती है। विनोबाजी ने शिवरामपल्ली के सर्वोदय-सम्मेलन में जो पंचविध कार्यक्रम लोगों के सामने रखा है उसमें भी अंतःशुद्धि, बहिःशुद्धि, श्रम-शांति-समर्पणम् बताया है।

आजकल देखा यह जाता है कि आमतौर पर लोग शरीर-श्रम से नफरत-सी करते हैं। पसीने से तरबतर किसान या मजदूर को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। एक बार किसी मजदूर से इसी तरह एक दिखावटी आदमी ने नफरत भरे शब्द कहे। तब वह मजदूर बोला, "भाई, हमसे तुम नफरत करते हो; क्योंकि हमारा शरीर गंदगी को बाहर फेंक देता है; लेकिन तुम्हारा शरीर गन्दगी को जमा करता है, उसको तुम लिये बैठे हो, जरा खयाल करो!" शरीर-श्रम से शरीर की शुद्धि में मदद मिलती है। स्वच्छता को लिये शरीर-श्रम एक निहायत जरूरी चीज बन जाती है।

हमारे नेताओं ने सफाई के जरिये किस तरह बल बढ़ता है इसकी मिसालें पेश की हैं। महात्माजी

सफाई के बारे में बड़े दक्ष थे। अफ्रीका के टॉल्स्टाय-आश्रम में सब सदस्यों के कपड़े इकट्ठे करके वे स्वयं धो डालते थे। पंडित जवाहरलालजी सन् १९३० के आंदोलन में जेल में थे। तब वे अपने पिताजी के कपड़े खुद धोते थे। विनोबाजी पवनार के पास के सुरगाव की लगातार सफाई करते थे। सेनापति बापट पिछले करीब १०-१५ साल से बाकायदा सफाई करते हैं। सानेगुरुजी कहते थे, "लेखनी के लालित्य से, मैं झाड़ू के लालित्य का ज्यादा उपासक हूँ।" गांधीजी ने सफाई का महत्व ठीक तरह से आंक करके विधायक कार्यक्रम में उसको भी स्थान दे दिया।

यह तो बात हुई निजी सफाई की, लेकिन हमारे सार्वजनिक क्षेत्रों का तो जरा खयाल कीजिए। हमारे लोग यहां तक आगे बढ़े हैं कि रेल में जहां 'थूकना नहीं' लिखा होता है वहीं पिचकारियां डालते दिखाई देते हैं। शहरों में कूड़ा इकट्ठा करने के लिए जो कुंडिया होती हैं उनके भी चारों ओर कूड़ा फैला हुआ रहता है। गत वर्ष अण्णा साहेब सहस्रबुद्धे जापान गये थे। लौटकर उन्होंने एक मुलाकात में बताया था कि जापान के लोग कचरे को कुंडी में कचरा भी विभाजित करके डालते हैं। कंपोस्ट बनाने लायक चीज एक बाजू पर, कांच-जैसी चीजें दूसरी जगह और धातुएं तीसरी जगह डालते हैं। उनका ध्येय होता है—नाचीज चीजों से उपयुक्त पदार्थ बनाना।" कूड़े में से वे नंदनवन का निर्माण करना जानते हैं। हमें उनसे यह कला जाननी चाहिए। युद्ध से कितना बड़ा सदमा जापान को पहुंचा, लेकिन फिर भी तीन साल में उसने अपने को सम्भाल लिया है। हर एक क्रिया करते वक्त हम अगर सफाई का खयाल रखेंगे तो हममें बल पैदा होगा।

साफ झरना हम देखते हैं तो अपना दुःख भूल जाते हैं, बहती नदी को देखकर दिल में बड़ी-बड़ी उमंगें पैदा होती हैं साफ आसमान को देखकर हमारा मन प्रसन्न हो जाता है। सफाई का इस तरह हमें सहज ही फल मिल जाता है। सफाई का फल है प्रसन्नता।

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिपर्यवतिष्ठते

प्रसन्नता से सब दुःख भाग जाते हैं और बुद्धि स्थिर हो जाती है। सफाई-जैसी छोटी बात से मिलनेवाला इतना बड़ा फल क्या हम योंही बेकार खो देंगे?

विनोबा

त्रिसूत्री कार्यक्रम

भूदान-यज्ञ के लिए अब सर्वत्र अनुकूल हवा हो गई है। हुदूडी में सर्वोदय सम्मेलन हो रहा है। जैसे दूसरे कई प्रान्तों में हुआ है या होनेवाला है। सर्वोदय में खादी, ग्रामोद्योग, नई तालीम, अस्पृश्यता निवारण आदि कई काम आते हैं। इन सबके लिए भूदान-यज्ञ से अनुकूलता निर्माण होती है। यह बात अब कार्यकर्ता समझ गये हैं।

रचनात्मक काम का सम्बन्ध जब किसी तात्कालिक जीवित समस्या के साथ जुड़ जाता है तब दोनों मिल कर सगुण साकार रूप धारण करते हैं। नित्य नैमित्तिक दोनों जहां परस्पर पोषक बनते हैं, वहां काम्यप्रेरणा धर्म का रूप लेती है और निषिद्ध प्रेरणा टलती है। अन्यथा काम्य निषेध का जोर बढ़ता है। राजकीय स्वराज्य प्राप्त कर लेने के बाद वास्तव में कार्यारम्भ होना है। राजकीय स्वराज्य प्राप्ति में तो केवल विघ्न निवारण हुआ, जिस विघ्न के कारण कार्यारम्भ ही नहीं हो सकता था। जो मुख्य काम करना है, वह तो अभी है। उसके लिए नित्य नैमित्तिक संयोग जब सधता है तब वेग मिलता है। भूदान-यज्ञ और दूसरे रचनात्मक काम मिल कर समाज को नवचेतना दे सकते हैं।

रचनात्मक काम के मैंने दो संकेत बनाये हैं। एक गांधी-स्मृति में हर व्यक्ति से वार्षिक एक गुंडी समर्पित कराना, अर्थात् सूतांजलि और दूसरा कांचनमुक्ति, जन सेवी आश्रम तुल्य संस्थाएं जगह-जगह चलाना।

इस तरह गांधीजी के जाने के बाद तीन शब्द मैंने देश के सामने रखे : सूतांजलि, कांचनमुक्ति, भूदान-यज्ञ मेरा खयाल है, यह युवकों की स्फूर्ति के लिए पर्याप्त कार्यक्रम है। इससे सेवकों को साम्ययोग सधेगा और समाज में सर्वोदय होगा।

हुदूडी सर्वोदय सम्मेलन के लिए सन्देश]

'नीरज'

कोई नहीं पराया

कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है।
मैं न बँधा हूँ देश-काल की ज़ंग लगी जंजीर मे
मैं न खड़ा हूँ जाति-पाँति की ऊँची-नीची भीड़ में
मेरा धर्म न कुछ स्याही शब्दों का सिर्फ़ गुलाम है
मैं बस कहता हूँ कि प्यार है तो घट-घट में राम है,
मुझसे तुम न कहो मन्दिर-मस्जिद पर मैं सर टेक दूँ
मेरा तो आराध्य आदमी, देवालय हर द्वार है! कोई नहीं०

कहीं रहे कैसे भी मुझको प्यारा यह इन्सान है
मुझको अपनी मानवता पर बहुत-बहुत अभिमान है
अरे, नहीं देवत्व मुझे तो भाता है मनुजत्व ही
और छोड़कर प्यार नहीं स्वीकार सकल अमरत्व भी,
मुझे सुनाओ तुम न स्वर्ग-सुख की सुकुमार कहानियाँ
मेरी धरती सौ-सौ स्वर्गों से ज़्यादा सुकुमार है! कोई नहीं०

मुझे मिली है प्यास विषमता का विष पीने के लिए
मैं जन्मा हूँ नहीं स्वयं-हित, जग-हित जीने के लिए
मुझे दी गई आग कि इस तम में मैं आग लगा सकूँ
गीत मिले इसलिए कि घायल जग की पीड़ा गा सकूँ,
मेरे दर्दीले गीतों को मत पहनाओ हथकड़ी
मेरा दर्द नहीं मेरा है, सबका हाहाकार है। कोई नहीं०

मैं सिखलाता हूँ कि 'जियो और जीने दो संसार को'
जितना ज़्यादा बाँट सको तुम बाँटो अपने प्यार को,
हँसो इस तरह, हँसे तुम्हारे साथ दलित यह धूल भी
चलो इस तरह कुचल न जाये पग से कोई शूल भी
सुख न तुम्हारा सुख केवल जग का भी उसमें भाग है
फूल डाल का पीछे, पहले उपवन का शृंगार है।
कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है।

रजन

विश्व का आश्चर्य—अंकोरवाट

स्याम की उत्तरी सीमा के घने जगलो और गिरिमालाओ को पार कर वायुयान हिन्दचीन में प्रवेश कर रहा था। इतिहास प्रसिद्ध कम्बोज राज्य (कम्बोडिया) की बोलती धरती, अपनी छाती पर जीवित वृक्ष राशि को धारण कर खिल रही थी। जगलो के बीच-बीच में स्थित जल-सरोवर पृथ्वी के सौन्दर्य में एक निखार पैदा कर रहे थे। आसमान में खेलते हुए छितराते बादल—नीचे हरियाली का असीम समुद्र और इजिन की गूज एक विचित्र वातावरण उत्पन्न कर रहे थे। हमारा यान अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ रहा था—कल्पना-लोक में लोक प्रसिद्ध अकोरवाट के प्राचीन मन्दिर की तस्वीर बन-बिगड रही थी। इतिहास के पन्ने बोल रहे थे। ठडी हवा के झोको से आखें कुछ झपक गईं थी। थोडी देर बाद जो झपकी खुली तो देखा हमारा यान बहुत नीचे किसी विशाल, काली-सी बहुत दूर तक फैली इमारत पर चक्कर काट रहा है। घने जगल के बीच इमारत की ऊँची आसमान से बोलती गुम्बजे यात्री को कला का अमर पैगाम सुना रही थी। समझते देर न लगी कि यही अकोरवाट है। मन्दिर की मैली दीवारें, काली छतें, ऊचे कगूरे सभी मौन खडे थे। यान ने जैसे अपने अन्तर के सम्मान को इसके तीन चक्कर काट कर प्रकट किया हो। मन और हृदय श्रद्धा से पुलकित हो उठे थे। जीवन का एक स्वप्न पूरा हो रहा था। एशिया की अमर कला कृति, विश्व का पाँचवा आश्चर्य हमारी आखो के नीचे फैला था। आत्म विभोर हो मैं ऊपर से ही कला और भक्ति के उस पुण्य प्रतीक को अपने प्राणो में भर लेने को व्याकुल था। वायुयान दो-तीन चक्कर काट कर 'सियरीप' एरोड्रम की ओर बढा—एक हराभरा मैदान, उसमें फरफराता यान-स्टेशन का गोल झडा—जमीन में पडी हुई सफेद चूने की रेखाए। यान अब नीचे उतर रहा था। मशीन की धडकन बन्द हो गई थी। पखो के बल, विज्ञान का करिश्मा, नीचे उतरने की तैयारी कर रहा था। यान के पैर अब पृथ्वी को छू रहे थे। दो-एक हलके उछाल और झटको के बाद यान ने जमीन पर दौडना शुरू किया। उत्सुकता जमीन पर उतरी। मोटर पर बैठ हम लोग 'सियरीप' के वैभवपूर्ण रॉयल होटल की ओर बढे। खा-पीकर नीचे उतरे तो हिन्दचीन के दो बज रहे थे। होटल के सामने खडी कारो पर बैठकर हम लोग अकोरवाट की ओर रवाना हुए। प्रिय वस्तु के साक्षात से मन की जो अवस्था होती है उसे शब्दो में बाध सकना कठिन होता है। दोनो ओर हरियाली से घिरी सडक पर हमारी गाडिया तेजी से दौड रही थीं। होटल से केवल दस मिनट के रास्ते पर दुनिया की यह अजीबो-गरीब तामीर खडी थी। सभी यात्रियो की उत्सुकता आखो में उतर रही थी। दिल गुदगुदा रहा था और सामने बाह्य प्राचीर की ऊँचाई के ऊपर मन्दिर की गुम्बजें झाक रही थी, चन्द मिनटो में कार से उतर कर हम लोग सिंह-पौर के सामने के राजमार्ग पर खडे थे। राजमार्ग और प्राचीर के बीच २५० गज चौडी पानी की एक धारा मन्दिर का वेष्टन कर रही थी। कमल खिले थे। पानी के ऊपर हरे पत्तो की चादर-सी बिछी थी और इसके उस पार वर्मन-कालीन अमर कलाकारो की आत्मा उन शिला-खडो से बोल रही थी—पत्थर गुनगुना रहे थे—

> "उस अतीत गौरव की गाथा
> छिपी इन्हीं उपकूलों में
> कीर्ति सुरभि वह गमक रही
> अब भी तेरे बन फूलों में।'

कवि की कल्पना, लेखक की कलम अकोरवाट की सौंदर्य-राशि को कैद नही कर सकती। जो-कुछ आखो के सामने स्थूल रूप से खडा था वह एक आश्चर्य था—एक स्वप्न था—एक जीवित कला की आवाज थी। एक साधक की यह ऐसी साधना थी जिसमें कलाकार की निपुणता ने केवल रूप नही डाला,

केवल विस्तार नहीं भरा, वलिक उसम उसने अपना व्यक्तित्व और प्राण तक घोल दिए। पुस्तकों में प्रकाशित अपूर्ण वर्णन, चित्रों में अंकित अधूरे चित्र क्या कभी उस कलाकृति का सजीव वर्णन पाठकों के सामने उपस्थित कर सकते हैं? मैंने जो-कुछ यहाँ देखा वह कल्पना से बहुत परे था। वर्णन और चित्र इस महान कला-सृष्टि का केवल एक पक्ष हमारे सामने रख सकते हैं। अंकोरवाट क्या है, कैसा है इसे समझने के लिए आपको घंटों एकटक उसकी ओर घूरना चाहिए। उसके चरणों में बैठकर विचारों में गोते लगाना चाहिए।

तिमंजिला विशाल स्मारक अपने अनेक गुंबजों से घिरा खड़ा है। सामने एक लम्बा पुल है जिसे पार करके ही हम इस साधना-भूमि के सिंहपौर तक पहुंच सकते हैं। शानदार पोर्टिको, लम्बी सीढ़ियां, रहस्यपूर्ण देवालय अपने भीतर एक शानदार अतीत छिपाये हैं, परन्तु देवालय के विशाल आकार-प्रकार की निश्चित रूपरेखा दिमाग़ में आ सके इसके लिए कुछ अंक देना आवश्यक होगा। यह देवालय इतना विशाल हैं कि इसके प्राचीर के अन्दर एक छोटा सा नगर बस सकता है। इसके आयाताकार घेरे की लम्बाई २½ मील है। इसके चारों ओर २५० गज़ चौड़ी पानी की एक खाई है। पश्चिम की ओर एक लम्बा पुल है—मन्दिर तक पहुँचने के लिए इस पुल को पार करना अनिवार्य है। इस पुल के दोनों ओर सिंहों की विशाल मूर्तियां सिंहपौर तक फैली हुई हैं। अपनी सीढ़ियों, द्वारों एवं प्रकोष्ठों सहित यह सिंहपौर स्वयं गृह-निर्माण-कला का एक आदर्श प्रतीक है। प्रवेश-द्वार दो हैं—एक पैदल यात्रियों के लिए और दूसरा रथ और हाथियों के लिए। प्रथम द्वार को पार करते ही ठीक सामने एक बड़ा प्रांगण फैला है और इसके दूसरे छोर पर देवस्थान का मुख्य मन्दिर है। सिंहपौर से देवालय के मुख्य द्वार तक ५२० गज लम्बा एक शिलाजड़ित मार्ग बना है। इस मार्ग के दोनों ओर सप्तफणी नाग का लम्बा शरीर एक छोर से दूसरे छोर तक फैला है। देवालय के द्वार के सामने दोनों ओर शेषनागों के सतर्क फण आक्रोप मुद्रा में उठे खड़े हैं। इन दोनों नागों के लम्बे शरीर को बीच-बीच म देवांगनाएं अपने हाथों में साधे हुये हैं। रास्ते के बीचों-बीच दोनों ओर दो प्राचीन पुस्तकालयों की इमारतें एक-दूसरे के आमने-सामने खड़ी हैं।

देवस्थान के प्रधान भवन के भीतर की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक खुदाई, प्रत्येक सजावट अप्रत्याशित, आश्चर्यपूर्ण एवं सुव्यवस्थित है। दूर से अंकोरवाट एक ही विशाल पत्थर के टुकड़े का बना मालूम पड़ता है। जिसके दायें-बायें छोटे-छोटे और बहुत से उपमन्दिर खड़े हैं। सच बात यह है कि अन्दर प्रवेश करके यात्री अपने को एक कला-संसार के भीतर खड़ा पाता है। दालान, बरामदों, कक्षों एवं मंडपों की शृंखलाएं उसे भूल-भूलैय्या में उलझा देती हैं, केन्द्रीय देव-मूर्ति तक पहुँचने के लिए इन सबका पार करना अनिवार्य है। मुख्य गर्भ-गृह एक अंधेरा छोटा प्रकोष्ठ है जिसके अन्दर किसी प्रकार की सजावट नहीं है। पहले इसके भीतर एक विष्णु की प्रतिमा आसीन थी; परन्तु आज उसके स्थान पर भगवान बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित है और इसके सामने एक छोटा-सा दीप सदा टिमटिमाता रहता है। इस गर्भ-गृह के ऊपर एक बहुत ऊँची मीनार है। इसकी ऊँचाई २१५ फीट है। यह मीनार चारों ओर से अन्य चार छोटी मीनारों से घिरी है। इन मीनारों का एक-एक इंच भाग श्रेष्ठ संगतराशी के काम से सज्जित है। एक भी इंच पत्थर ऐसा नहीं मिलेगा जिसका स्पर्श कारीगर की छेनी से न हुआ हो। ख्मेरों के विषय में यह कहा जाता है कि ग्वेथिक कलाकारों के समान उनमें कल्पना थी; यूनानी कलाकारों से उन्हें समन्वयात्मक एकरूपता का वरदान मिला था; ज्ञानयुगीन (Renaissance) कलाकार की शक्ति और सृजन की संपत्ति उनके पास थी। यहां की निर्माण-शैली में सभी विचारधाराएं, सभी कला-पद्धतियां गुथकर एक नवीन शैली को जन्म देती हैं। बारीक लेस के समान संगतराशी हजारों वर्ग फीट पत्थर पर फैली हुई है। यहां सजावट और रूप की नुमायश-सी लग गई है। बीच की दीवारों के ऊपर और नीचे नाग को श्रेष्ठ ज़रदोज़ी जैसे काम से ढक दिया गया है।

भारत के सभी धर्म, सम्पूर्ण इतिहास एवं व्यापक

कला इन पाषाण-खडो पर उतार दी गई है। श्रद्धा-सपन्न भक्तो, ज्ञान पिपासु यात्रियो, भारतीय इतिहास के विद्यार्थियो एव विनोदी घुमक्कडो के मस्तिष्क के लिए घटो का भोजन यहा मौजूद है। हम यहा समुद्र-मथन के दृश्य देख सकते है। सुरासुर-सग्राम की विभीषिका यहा सजीव हो उठी है। राम-रावण के युद्ध की कथाए पत्थरो से बोलती-सी जान पडती है। राम की अपार शक्ति, सीता की पति-भक्ति एव रावण की लिप्सा की सैकडो कथाए इन मूक शिलाओ के हृदय को चीर कर मुखरित हो उठी है। कृष्ण का जीवन, गोपियो की प्रेम-कथा, यशोदा का विलाप आदि महाभारत के मुख्य प्रसग-चित्र प्रचुर मात्रा में इन दीवारो पर देखे जा सकते है। यहा की इस खुदाई (carving) की पृष्ठ-भूमि रामायण और महाभारत ही है। पत्थर के इन पन्ना पर कठोर लेखक ने लोहे की कलम से महाकाव्य कालीन सम्पूर्ण भारत को लेखबद्ध कर दिया है—और यह एक ऐसा लेखन है जिसे समझने और पढने के लिए अक्षर-ज्ञान की आवश्यकता नही—केवल भावुक हृदय और उत्सुक आखो से प्राचीन इतिहास के इन अक्षरो को बडी सरलता से पढा जा सकता है। भारतीय पौराणिकता की कोई बात भीति-अकन से छूट नही पाई है। स्वर्ग और नर्क के दृश्य भी खमेरो के कल्पना-जगत से बच नही सके। विस्तार की पूर्णता, भावो की स्पष्टता, वर्णन-वैचित्र्य सभी मिलकर कला में एक वाणी का सचार कर देते है। मूक तस्वीरें बोलने लगती है। शिला-खडो में गति उत्पन्न हो जाती है और एक लम्बा सुनहला अतीत पाषाण और कल्पना का सहारा लेकर चेतन बन जाता है। भारत और कम्बोज का यह सास्कृतिक ऐतिहासिक सगम—अकोरवाट', आज ८०० वर्ष बाद भी दोनो देशो की परम्परा की एकता, रूढियो की समानता एव मान्यताओ की एकरूपता के साक्षी के रूप में कम्बोडिया के उन एकान्त घने जगलो में खडा है।

दादू

कुमारिल स्वामी

शान्तिनिकेतन में भरती होने के बाद मैं अक्सर लडको के मुह से दादू अवनीन्द्रनाथ के बारे में सुना करता था। जितना सुनता था, उतनी ही उत्कण्ठा बढती जाती थी और मैं उनके दर्शन के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन वे एकाएक आ पहुँचे। उस दिन कलाभवन के विद्यार्थियो और मास्टरो में उनके आने का समाचार सुनकर खलबली मच गई। मैं भी शाम को एक लडके के साथ उनके चरणो में नमस्कार करने के लिए पहुँचा। सचमुच उस दिन पहली बार उनके दर्शन करके मैं धन्य हुआ। किसी ने उनसे मेरा परिचय कराया। सुनकर वे कहने लगे—"अच्छा! दिल्ली से आये हो?" मैंने मुस्कराते हुए 'जी हा' कहा और एक कोने में जा खडा हुआ। लोगो से मिलकर वे इतने आनन्दित हो रहे थे कि उसके बारे में लिखना बहुत कठिन है। मैं तो उनकी बातचीत सुनने और उनके सारे अग-प्रत्यग को एक-एक करके देखने में तन्मय था। इस महान् कलाकार की बनावट में हम लोगो से क्या विशेषता है, यही सोचने में मैं लगा रहा।

वे हमारे देश के चित्र-जगत् के भीष्मपितामह थे। उन्होने अपने परिश्रम से अच्छे-अच्छे महारथियो को पैदा किया था। वे महारथी लोग अभी भी उपस्थित है। उनके प्रिय शिष्य श्री नन्दलाल बसु शान्तिनिकेतन में मौजूद है। और भी उनके शिष्य जगह-जगह सारे हिन्दुस्तान में फैले हुए है।

सन् १८७१ की ७ अगस्त को जोडासाको के ठाकुर-परिवार में अवनीन्द्रनाथ का जन्म हुआ। उनके दादा गिरीन्द्रनाथ और पिता गुणीन्द्रनाथ चित्रकार होने के नाते विख्यात थे। गगा किनारे चापदानी के बगले में बालक अवनीन्द्रनाथ ने अपने पिता की

तूलिका और रंग लेकर चित्र बनाना शुरू किया। वे गंगा के विभिन्न दृश्यों को अंकित करने लगे। उन्होंने यह जो प्रकृति और गंगा को प्यार करना शुरू किया और उसके देखने में तन्मय होने लगे, इसीके द्वारा बालक अवनीन्द्रनाथ का मन जाग उठा, जी उठा। स्कूल में उन्होंने कुछ अधिक नहीं सीखा। वहां वे अपने शिक्षक को उसकी भूल बता बैठने के कारण बुरी तरह से पिटे थे। उसके तुरन्त बाद उनके पिता ने स्कूल छुड़ाकर घर में लिखने-पढ़ने का प्रबन्ध कर दिया। घर में पण्डितजी महाभारत और कादम्बरी पढ़ाते थे, फारसी पढ़ने का क्रम भी चलता था। साथ ही राधिका गोस्वामी और बड़े-बड़े उस्ताद-गवैये संगीत की शिक्षा देने आते।

उधर बगल के मकान में पितामह के बड़े भाई महर्षि देवेन्द्रनाथ के घर पर ब्राह्म-धर्म पर व्याख्यान हुआ करते। ज्योति काका की कला-साधना और रवि काका का संगीत तथा साहित्य-अनुशीलन भी चलता रहता।

चित्रांकन के काम में उन्होंने अपने बड़े भाई गगनेन्द्रनाथ का साथ पाया। इन सबसे ऊपर अवनीन्द्रनाथ ने देखा—"रात की तरह काली पद्मा नौकरानी चांदी का बहुत बड़ा चमचा और गर्म दूध की कटोरी लेकर दूध ठंडा करने के लिए बैठी है। वह गर्म दूध को चमचे से उठाती है और डालती है। नौकरानी का काला हाथ दूध ठंडा करने के छंद में ऊपर को उठ रहा है और नीचे को गिर रहा है।"

उन्होंने और भी देखा—"कभी-कभी बहुत-सी वधुयें बाहर से आकर जंगले के पास चटाई बिछाकर उसपर बैठी धूप तापती रहती हैं। छत के पास ही छज्जे के कोने में दो नीले कबूतर रहते हैं। ज्योंही पौ फटती है वे दोनों सबक-सा याद करने लगते हैं—गुटरू गूं, गुटरू गूं। और वे देखते कि सन्नाटे से पूर्ण दोपहर में नारियल के पत्तों पर रोशनी कौंदती है और चीलें घूम-घूमकर उड़ा करती हैं।"

अवनीन्द्रनाथ स्वयं लिखते हैं—"बचपन में मेरे शिशु मन ने क्या-क्या संग्रह किया यह तो मैं बता चुका हूं, बहुत से लोगों को बहुत जगह, बहुत बार। यौवन में मन-भ्रमर ने जो-कुछ संचय किया, उसका थोड़ा-थोड़ा स्वाद मैंने दूसरों को दिया है। अब भी अपने हाथ से बनाये एक के बाद एक चित्र में उसीको दे रहा हूँ। क्या तुम इस बात को नहीं समझते हो? 'पद्मपत्र में जलबिन्दु' के समान सुख के दिन चले गए। क्या तुमने उसका स्वाद उस चित्र में नहीं पाया? जोड़ासांको भवन के अन्तःपुर में प्रसाधन के समय जो सुन्दर-सुन्दर मुख दिखाई देते थे, मन ने उन सबका संग्रह कर लिया। तुम उनमें से कइयों को मेरे 'दुलहन का शृंगार' चित्र में पाओगे।"

सन् १८८१ से १८९५ तक उनका कार्य पाश्चात्य शैली पर चला। अधिकतर 'पेन एण्ड इंक' चित्र थे। कुछ रंगदार चित्र भी थे और पैस्टेल की प्रतिकृतियां थीं। सन् १८९५ से १९०० के बीच के चित्रों में विलायती 'इल्यूमीनेशन' शैली के और देशी चित्रों का आलंकारिक रूप प्रतिफलित हुआ। उनके राधा-कृष्ण-सम्बन्धी चित्र इसी समय अंकित हुये थे। सन् १९०५ में जापानी कलाकार टाईकान और हसीदा ठाकुर-भवन में अतिथि होकर आय। अवनीन्द्रनाथ ने उनके साथ काम किया और आवश्यकतानुसार उनकी पद्धति को अपनी कला में ग्रहण किया। इसी युग में अर्थात् सन् १९०० से १९१० में, अवनीन्द्रनाथ की उस शैली का विकास हुआ जिससे जनसाधारण परिचित हैं। 'विरही यक्ष', 'उमर खैयाम', 'चित्रावली', 'गणेश-जननी' आदि चित्र इसी युग के बनाये हुए हैं।

अवनीन्द्रनाथ नये भारत की कला के जनक हैं और कलाकार-गोष्ठी के पुरोधा के रूप में सम्मानित हैं; पर साहित्यिक अवनीन्द्रनाथ का दान भी अतुलनीय है। साहित्य के क्षेत्र में छोटे और बड़े सभी के लिए वे अपूर्व रस का भंडार भर गये हैं।

वे अपने शिष्यों को ऐसा प्यार करते थे जैसे अपने खुद के ही लड़के हों और उनके शिष्य लोग भी अपने गुरू को उसी आदर के साथ देखते थे जिसका वर्णन हमारे वेद-पुराणों में आता है। आश्रमों और गुरुकुलों का वर्णन सुनने में जो रस मिलता है

वैसे ही उनके शिष्यों के मुख से उनके बारे में सुनन से पहले वाला जमाना हमारी आखो के सामने आ जाता है। श्री नन्दलाल बसु ने मुझ उनके बारे में बताया था कि वे उन्हे अपने लडके के समान देखते थे। जब वे लोग एँलोरा-अजन्ता गये थे तो वे कलकत्ता में बैठे-बैठे उनकी देखभाल करते थे। छोटी-छोटी चीजो का पूरा ध्यान रखते थे। वे (विद्यार्थी लोग) अजन्ता पहुचकर वहा कापी करते थे। उन पहाडो में खाने-पीने की चीजें नही पाई जाती। साग-सब्जी भी नहीं मिलती। तब दादू कलकत्ते से उनके लिए हर सप्ताह आलुओ का पारसल भेजा करते थे। इससे यह मालूम होता है उनका हृदय कितना विशाल था और वे अपने शिष्यो का कितना ध्यान रखते थे। यही कारण है कि आज भी उनके शिष्य लोग उनका स्मरण करते हुए अपने-अपने काम में जुटे हुए हैं। आज भी वे लोग अपने देश की चित्रकला को देखते हुये सिर उठाकर कह सकते है कि यह सब उन्हींकी मेहरबानी है जो हमें रास्ता दिखा कर चले गये हैं।

मुझे उनके चित्रों का सग्रह, कला भवन शान्ति निकेतन में देखने को मिल गया था। उनके चित्र देखने के बाद मुझे ऐसा लगता था कि क्या इस जन्म में हम लोग भी ऐसा काम कर सकेंगे। अगर किसी अच्छे चित्रकार का चित्र देखने को मिले तो वह चित्र वहा से किसीको जाने नही देगा। अपनी तरफ खीचता रहेगा। घटो खडे खडे देखने की इच्छा होगी। वह तन्मय हो उठेगा। यही चमत्कार अवनीबाबू के चित्रों में था। मैने अपनी आखो से दादू को चित्र बनाते हुए देखा था। तब मुझे ऐसा मालूम हुआ था जैसे एक योगी अपनी समाधि-अवस्था में रह रहा हो। आजकल के कुछ चित्रकारो के चित्र देखने से ऐसा मालूम होता है कि वह चित्र काटने को दौडता है। बजाय खडे रहने के वहा से दौडने की इच्छा होती है। वे एक बार कहते थे कि एक चित्र बनाने से पहले कम-से-कम कुछ महीने उसके बारे में चिन्तन करने के बाद उसे बनाना चाहिए। यही कारण है कि उनके चित्रो में कला का स्तर बहुत ऊचा उठ गया था। असल में चित्रकार के चित्रो को समझने से पहले चित्रकार को समझना चाहिए। तभी उसके चित्र समझ में आ सकते हैं।

एक बार मै कलकत्ता में उनसे मिलने गया। उस समय उनका स्वास्थ्य बहुत ही गिरा हुआ था। फिर भी मुख पर प्रसन्नता थी। उनसे मिलने के बाद उनके चित्रो को देखने में लग गया। एक कोने में कुछ चित्र काठियावाडी देहाती खिलौनो-जैसे बने हुये थे। मै उन्हे देखकर बडा ही खुश हो रहा था। वे मेरी तरफ देखकर कहने लगे—"क्या तुम्हे बहुत पसन्द है।" मैने कहा—"जी हा।" फिर तो वे उसके बारे में विस्तार से बताने लगे—'मेरे पास काठियावाड की कुर्सी है। उसी को देखने से उसका पेन्टिंग बनाने की इच्छा हुई और मैने इन चीजो का प्रयोग करके देखा।"

अतिम समय में भी वे रोज दो-तीन घटे बैठकर कुछ-न-कुछ बनाया करते थे। उन दिनो शान्तिनिकेतन की एक कलाकार श्रीमती रानी चन्दा उनकी बहुत ही देख-भाल किया करती थी। जो-कुछ भी वे बनाते, उन्हे दिखाकर बहुत ही खुश होते थे। कभी-कभी तो बच्चो की तरह खुशी से उछल पडते थे। मनुष्य को भोजन की जितनी जरूरत है और उसके लिए वह जितना परिश्रम करता है, चित्र बनाने के लिए वे उतनी ही साधना की जरूरत समझते थे।

वे सचमुच महान् कलाकार थे।

एक बार किसी ने कबीर ने पूछा—"मैना गाती है तब इतना मीठा क्यो लगता है ?" कबीर ने उत्तर दिया—"क्योकि वह 'मैं' 'ना' है। वह अपने को भूलकर गाती है। 'मै—ना' अर्थात् मै नही। बकरी 'मै-मै' करती है। वह क्या मीठा लगता है ? लग ही नही सकता, क्योकि मै का अर्थ है अहकार।"

जीवन की गहराई में

(५)

जेल में दो घटनाएं ऐसी हुई हैं जिनके बारे में मैं अबतक नहीं निर्णय नहीं कर सका कि उनमें गल्ती थी या नहीं। एक तो अंगूठे का निशान लगाने के प्रकरण से सम्बन्ध रखती है, दूसरी दो साथी कैदियों के जेल से भाग जाने के सम्बन्ध में है।

जेल के किसी नियम के अनुसार जेल-अधिकारियों ने ऊपर के वर्ग के राजनैतिक कैदियों से हुक्मन् चाहा कि सबके अंगूठे के निशान लिये जायं। हम लोगों ने पढ़े-लिखे आदमियों से अंगूठे के निशान तलब करने के हुक्म को अपमानजनक समझा और उसे मानने से इन्कार कर दिया। तब दो बार हम कई राजनैतिक कैदियों पर मुकदमे चले—एक बार तो एक जाब्ते की कमी रह जाने से हम जीत गए। दूसरी बार ३-३ मास की सजा काटी। फिर भी हुक्म आया कि जबरन अंगूठे के निशान लिये जायं। इसपर आपस में काफी विचार-विनिमय हुआ। अन्त में तय रहा कि अपना विरोध बता कर (Under protest) उनके बल-प्रयोग करते ही अंगूठे के निशान दे दिये जायं। पूरी शक्ति से विरोध न किया जाय; लेकिन मुझे बुलाया गया तो उस कमरे का सारा दृश्य देखकर मेरी आत्मा से विरोध किये बिना न रहा गया। मैंने पूरी शक्ति लगा कर विरोध किया, खुद मुझे भी तथा जेल के जो अधिकारी और जमादार-सिपाही वहां उस काम के लिए मौजूद थे और मुझे आदर की दृष्टि से भी देखते थे, आश्चर्य हुआ कि मेरे सूखे और दुबले-पतले शरीर में इतना बल कहां से आ गया? आखिर तो कई आदमियों का मिलकर शरीर-बल कामयाब ही होने वाला था—उन्होंने मेरे अंगूठे के निशान ले लिये; पर उस जोर-आजमाई का यह नतीजा हुआ कि मैं शायद दो घंटे तक बेहोश-जैसा रहा। मेरे साथियों ने उलाहना दिया कि जब सबने मिल कर यह तय किया था कि जोर-आजमाई नहीं करना है तो फिर आपने ऐसा क्यों किया? मेरे पास इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं था सिवा इसके कि उस दृश्य को देखकर मुझसे विरोध किये बिना न रहा गया। मुझे जहां तक स्मरण है मैंने अपना यह मत दिया था कि जहां न्याय-अन्याय का या स्वाभिमान-हानि का प्रश्न हो, वहां प्राणान्त तक भी विरोध या प्रतिरोध किया जा सकता है; लेकिन बहुमत के आगे मैंने बिना प्रतिकार किये अंगूठे का निशान देने का सुझाव मान लिया था। पर ऐसा मालूम पड़ता है कि ऐन वक्त पर मेरी मूल भावना प्रबल हो उठी, मैं बेकाबू हो गया और प्रतिकार कर बैठा। बुद्धि से संस्कार प्रबल होते हैं, यह इस घटना से सिद्ध होता है। आपका मन या बुद्धि कुछ भी फैसला करे, आनबान के अवसर पर आपसे वैसा ही आचरण हो जायगा जैसे कि आपके संस्कार होंगे। अतः केवल विचार या मन बदलने से काम नहीं चलता—संस्कार भी बदलने चाहिए।

मैं मानता था कि अंगूठे के निशान लेने का जेल-अधिकारियों का कोई नैतिक कर्तव्य नहीं था, केवल जाब्ते की खानापूरी करनी थी। अतः उन्होंने इस प्रश्न को इतना तूल देकर, हम सबको तीन-तीन महीने जेल की सजा देने के बाद भी बल-प्रयोग के द्वारा निशान लेकर बड़ा अन्याय किया है, अतः इसका प्रतिकार आत्मबल से करना ही चाहिए। मेरे बेहोश होने तक की नौबत आ गई, फिर भी जेल-अधिकारी अपने मूढ़ आग्रह से पीछे न हटे, इससे यह प्रत्यक्ष हो गया कि मानवता और मानवी भावों की कितनी कमी इस फौलादी यंत्र में आ गई है। इससे मेरा हृदय बहुत व्याकुल रहने लगा। आखिर अनशन के रूप में इसका प्रतिकार करने का निश्चय किया। मैं अपने साथियों को इसकी उपयोगिता समझा सका था, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है; परन्तु अनशन से मुझे काफी शान्ति मिल गई। जब मुझे किसी प्रश्न पर व्याकुलता होती है, कोई रास्ता सूझ नहीं पड़ता है तो अन्तिम बल का प्रयोग करने के निश्चय से शान्ति मिल जाती है। अहिंसात्मक साधनों में विश्वास रखने वालों का अन्तिम बल है अनशन। उपवास के द्वारा परमात्मा से आत्म-शुद्धि, मार्ग-दर्शन या आत्म-बल के लिए प्रार्थना करना।

तीन दिन के बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट ने, जोकि यूरोपियन होते हुए भी बहुत भला और हमदर्द था, मुझे बहुत समझाया, मेरे स्वास्थ्य की, कांग्रेसियों में मेरे स्थान की, अपनी जिम्मेदारी की, कई दलीलें दीं। इन सबका मुझपर कोई असर न हुआ। तब उसने एक नई चीज मेरे सामने रखी। अनशन तो सत्याग्रह के कानून में अन्तिम शस्त्र है न ? मैंने कहा—हां'। तो फिर अभी तो एक मार्ग आपके सामने खुला है। जबतक उसके द्वारा आप प्रतिकार या न्याय प्राप्ति का प्रयत्न नहीं कर लेते तबतक आपको अनशन का अवलम्बन क्या करना चाहिए ?

मैं—"वह क्या बात है, जो करने से रह गई है ?'

"आप कानून का सहारा लेकर हमारी जेल-अधिकारियों की कार्रवाई का विरोध कर सकते हैं और इन्साफ पा सकते हैं ?"

उन्होंने वह विधि भी बताई थी और मुझे ऐसा याद पड़ता है कि वहां कानूनदां मित्र ने भी उसका समर्थन किया था, इस समय मैं उसे भूल रहा हूँ। तब मैंने तीन दिन के बाद अनशन समाप्त कर दिया था। बाद में मैंने अपने वकील मित्रों से इसमें सहायता देने का बार-बार अनुरोध किया, परन्तु जेल में रहते हुए कोई कार्रवाई करना बहुत कठिन है, यह या ऐसी ही दलील देते रहे। जेल से निकलने पर सब अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गये और वह बात जहां-की-तहां रह गई। मुझे ऐसा लगता है कि इन सब मित्रों को मेरे अनशन-भग में जितनी दिलचस्पी थी उतनी उस प्रतिकार में नहीं थी। मैं कई बार अपने मन से प्रश्न करता हूँ कि तुमने क्यों उस आग्रह को छोड़ दिया ? या तो तुमने पहले इतना आवेश दिखा कर गलती की, या फिर बाद में ढीले पड़कर गलती की। शान्त चित्त से जब मैं विचार करता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि अंगूठे के निशान देते समय जो जोर-आजमाई की, वह आवेश का परिणाम था, सोच-समझ कर किया हुआ निश्चित और निर्भ्रान्त निर्णय नहीं था। इसी से बाद में उसके लिए उत्साह नहीं रहा। यदि निर्णय सही है तो फिर अन्त तक उसे निबाहने का उत्साह मनुष्य में रहना चाहिए या फिर उस समय का प्रतिकार तो सही था। बाद में जो शिथिलता आई वह कमजोरी थी। जो हो, बापू के इस मत से मुझे सन्तोष अवश्य मिलता है कि मनुष्य गल्ती कमजोरी के पक्ष में न करे, बहादुरी के पक्ष में करे। जान बचाने के पक्ष में नहीं, कष्ट सहने के पक्ष में करे। मैंने इसमें यदि गल्ती भी की हो तो वह जान बचाने के पक्ष में नहीं की थी।

अब दूसरी घटना लीजिए। ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होने के बाद ९ को सुबह ही बापूजी आदि की गिरफ्तारी हुई। तब आगे आन्दोलन चलाने के बारे में बापूजी ने कोई खास हिदायतें नहीं दी थीं। 'करो या मरो' का मंत्र दिया था और कहा था, "सब अपने-अपने नेता बनो।" अत हर आदमी अपने दिमाग से सोचने लगा। मेरे साथियों और मित्रों ने बम्बई में मेरे सामने भी प्रश्न खड़ा किया—तार काटने में, मकान जलाने में हिंसा है क्या ? पहले से अपना प्लान सरकार को बता देना सत्य में आता है क्या ? ये दो पेटेंट प्रश्न थे। लोग चाहते तो थे कि अंग्रेजी सरकार का खातमा अब कर ही दिया जाय, परन्तु सत्य और अहिंसा की सीमाएं भी समझ लेना चाहते थे। सत्य-अहिंसा की स्प्रिट चाहे सबमें न आई हो, परन्तु उसकी स्थूल रक्षा करना तो चाहते ही थे। मुझे भी उनको सत्य-अहिंसा पर व्याख्यान नहीं देना था, उसकी व्यावहारिक व्याख्या और सीमा बतानी थी। मैंने उत्तर दिया—(१) हिंसा का सम्बन्ध जीवधारी से समझना चाहिए। किसी जीवधारी को न मारना चाहिए, न काटना चाहिए। (२) पहले से प्लान बतलाना आवश्यक नहीं, पूछने पर झूठा उत्तर न देना चाहिए। जेल में पहुंचने पर भी ये प्रश्नोत्तर जारी रहे। कुछ साथियों ने जेल से भाग कर देश में काम करने की योजना भी बनाई। मुझसे पूछा गया। मैंने जवाब दिया, "जेल के कष्ट से घबरा कर जेल से भागना कायरता है, इसका मैं समर्थन नहीं कर सकता। देश में काम करने की भावना का मैं समर्थन कर सकता हूँ; परन्तु किसी के पूछने पर या पकड़े जाने पर झूठा बयान न देना चाहिए।" आखिर अजमेर जेल से दो

नाम पर लगातार देश के सभी देशभक्त अपने जीवन की आहुति देते रहे है, जिस नाम को लेकर महात्मा गाधी तथा देश के लाखो नौजवानो ने अपना सर्वस्व कुरबान करके मुल्क को आजाद किया, आजादी प्राप्ति के बाद प्रथम चुनाव के अवसर पर उसे जितने प्रतिशत वोट मिले वह कांग्रेस के पिछले इतिहास के लिए शोभा की बात नही है। उन्हे तो शतप्रतिशत वोट मिलने चाहिए थे। लेकिन ऐसा न होकर कुल मिलाकर बहुमत भी प्राप्त नही हुआ। अत उन्हे सोचना होगा कि आखिर बात क्या है कि इतने दिनो से जमा किया हुआ समाज-सेवा का 'बैंक बैलेन्स' होते हुए भी उन्हे इतना कम वोट मिला। क्या इतने थोडे दिनो में ही साठ साल से जमा किया हुआ 'बैलेन्स' भुना डाला या और कोई बात है ? आज जब पाच साल के लिए मुल्क की बागडोर इस दल के हाथ में आई है तो उन्हें समझना होगा कि यह अवसर उनके लिए अग्नि परीक्षा का है। उन्हे अपनी कमजोरियों का विश्लेषण करके उन्हे दूर करना होगा। साथ-साथ यह बात भी सोचनी होगी कि आज की युग-समस्या के समाधान के लिए जन्म लेने वाले जिस युगपुरुष महात्मा गाधी के मार्ग-दर्शन में उन्हें आजादी मिली, उन्हीके बताये हुए रास्ते मे देश की आर्थिक तथा सामाजिक सगठन के तरीको की अवहेलना करके पश्चिमी तरीको को अपनाने से क्या वे मुल्क को बचा सकेगे ? इन तमाम बातो पर विचार करके उन्हे अगले पाच साल का कार्यक्रम निर्धारित करना होगा।

काग्रेस विरोधी दलो को भी सोचना होगा कि उन्ह इतनी आशा होते हुए भी इस कदर क्यो पराजित होना पडा। साप्रदायिक नारो पर आधारित दलो को सोचना चाहिए कि जनता उनके साथ नही है। उन्हे समझना चाहिए कि भारत में गाधीजी के शहीद होने के साथ-साथ साम्प्रदायिकता की अग्नि बुझ चुकी है। आज जो कुछ दिखाई दे रहा है वह केवल राख ही है। वह फिर से जलाई नही जा सकती।

दूसरे विरोधी दलो को यह सोचना होगा कि जब किसी तपस्वी को उसकी तपस्या के फलस्वरूप इद्रासन मिलता है तो वह इद्रपुरी में चाहे जितना ऐश और आराम करता रहे उसका आसन तबतक नही टल सकता जबतक दूसरा कोई व्यक्ति उससे अधिक तपस्या नही कर लेता। अतएव उन्हें भी अपने बारे में गम्भीर विचार कर जनता की आज की विकट समस्याओ के समाधान के लिए कठिन त्याग और कठोर तपस्या करनी होगी। उसके लिए अपने जीवन की आहुति देनी होगी। तभी जनता के दरबार में वे अपनी स्थिति बनाकर आगे बढ सकते है, न कि दूसरो की कमजोरी बता कर।

इसलिए इस बार का आम चुनाव हर-एक व्यक्ति और दल के लिए गम्भीर विचार का विषय हो गया है। वे इसका विचार करे।

चुनाव से देश की तथा विभिन्न दलो की वास्तविक स्थिति का पता तो चला ही, लेकिन आम जनता की स्थिति तथा उन पर चुनाव का असर क्या हुआ इन दोनो बातों की भी जानकारी हुई। विभिन्न प्रान्तों से जिस प्रकार अजीब बातो की सूचना मिलती रही उससे जनता के सार्वजनिक अज्ञान का काफी परिचय मिला। इससे रचनात्मक कार्यकर्ता के लिए काफी विचारणीय सामग्री उपस्थित हो गई। आमतौर पर जहा रचनात्मक सस्था या कार्यकर्त्ता काम करते रहे वहा भी जनता में विशेष जोश दिखाई नहीं दिया। इसलिए जहा विभिन्न राजनैतिक दलो को देशसेवा के निश्चित मार्गों पर विचार करना है वहा रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं को भी यह सोचना होगा कि क्या बालिग मताधिकार के कारण पैदा हुई परिस्थिति में उनका भी कोई काम है ? उन्हे जनता के नागरिकता के अधिकार तथा कर्त्तव्य के शिक्षण की जिम्मेदारी उठानी होगी और उसके लिए निश्चित कार्य-शैली पर विचार करना होगा। प्रत्येक रचनात्मक केन्द्र के कार्यकर्त्ताओ को इस प्रकार कार्यक्रम बना कर काम करना होगा जिससे उनके केन्द्र स्थान के आसपास की तमाम जनता सजग नागरिक बन सके।

कताई मडल के सदस्यो को अगर केन्द्रीय-सचालनवादी समाज-व्यवस्था के बदले विकेन्द्रित-स्वावलम्बी समाज-व्यवस्था के आधार पर ग्रामराज्य स्थापित करना है तो इस कार्य की सबसे अधिक जिम्मेदारी उन्ही पर आती है। अत उन्हे प्रौढ़ शिक्षण के इस महत्वपूर्ण अग को अपने

हाथ में लेना होगा और गांव के नौजवानों का शिविर, स्वाध्याय मंडल तथा आम सभाओं का संगठन करना होगा। उनकी साप्ताहिक बैठक में अधिक-से-अधिक तादाद में गैर-सदस्यों को भी निमंत्रित कर इस कार्य में प्रगति लानी होगी। जिस क्रांतिकारी प्रोग्राम के प्रसार के लिए कताई मंडलों का अस्तित्व है उसे आगे बढ़ाने के लिए इस प्रकार के कार्यक्रम का खास महत्व समझना चाहिए।

चुनाव के फलस्वरूप जनता में कुछ बुरा और भला दोनों असर हुए हैं। चुनाव के सिलसिले में जहां विभिन्न दल तथा उम्मेदवारों द्वारा अजान जनता को गुमराह करने की कोशिश की गई वहां आपस की बहस तथा चर्चा द्वारा उनकी आंखें भी काफी खुल गईं, उनमें अपने आप ही काफी राजनैतिक चेतना फैली तथा शिक्षण भी मिला। इतना दूषित वातावरण होते हुए भी चुनाव का यह एक अच्छा नतीजा रहा।

विभिन्न उम्मीदवार तथा दल द्वारा विषैले प्रचार के कारण जो घातक असर हुआ उसमें जातीयतावाद के विकास का स्थान मुख्य रहा। ब्राह्मण-अब्राह्मण, जाट-बनिया, कायस्थ-भूमिहार, कुर्मी-अहीर आदि मुख्य जातिगत विद्वेष ही नहीं फैला; बल्कि गौड़, कान्यकुब्ज आदि उप-जातिगत विद्वेष का भी बाजार काफी गर्म रहा। विभिन्न प्रांतों के अलग-अलग चुनाव होने के बावजूद भी प्रान्तगत विद्वेष का सिर भी काफी ऊंचा रहा। ऐसी भावनाओं का विकास मुल्क को कहां ले जायगा, इसकी कल्पना से ही रोमांच हो जाता है। गांधीजी के निधन से साम्प्रदायिकता के भस्म हो जाने के बाद देशभर में जिस प्रकार प्रांतीयता तथा जातीयता की अग्नि धधक रही है वह स्वतः काफी भयावह है। चुनाव के कारण इस आग में जिस प्रकार घृताहुति पड़ी है उस पर भी हरेक दल के सदस्य तथा प्रत्येक रचनात्मक कार्यकर्ता को गम्भीरता से विचार करना होगा।

भारत गुरुजनों का परम्परा से पुजारी रहा है। लेकिन इस चुनाव में जनता के गुरु स्थानीय बड़े-बड़े नेताओं ने भी अपनी-अपनी समालोचनाओं को सम्बन्धित दलों के सिद्धांत तथा कार्यक्रम के दायरे में मर्यादित न रख कर उन्होंने एक-दूसरे की व्यक्तिगत आलोचना में जिस भाषा का इस्तेमाल किया उससे सदा की श्रद्धालु जनता के दिल में भी नेताओं के प्रति आस्था घटी है। आज गांव-गांव और बाजार-बाजार में अच्छे-से-अच्छे नेताओं के बारे में जिस हल्केपन से चर्चा होती है वह किसी भी मुल्क के नेतृत्व के लिए शोभनीय नहीं है। ऐसी परिस्थिति में साधारण जनता में व्यापक उच्छृंखलता आ जाय तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

कताई मंडलों तथा रचनात्मक कार्यकर्ताओं को इन दिशाओं में भी ध्यान देना होगा। उन्हें अपनी जान देकर भी प्रांतीयता तथा जातीयता का उच्छेदन करना होगा और दलगत कशमकश से बाहर रहकर अपने त्याग और तपस्या द्वारा देश में आस्थापूर्ण नेतृत्व की स्थापना करनी होगी।

भूल सुधार

१. जून अंक में 'कसौटी पर' स्तम्भ के नीचे 'गांधी गौरव' की समालोचना की गई है। उसके प्रकाशक नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर है, हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग नहीं।

२. उसी अंक में प्रकाशित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लेख में उद्धृत 'ताम्बूलं द्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' श्लोक कान्यकुब्जेश्वर के सभाकवि राजशेखर का है, पृथ्वीराज जगन्नाथ का नहीं।

कृपया पाठक सुधार लें।

'सर्वै भूमि गोपाल की'

दामोदरदास मूदडा

विनोबाजी के इस भूदान-यज्ञ के इतिहास में कुछ घटनाए तो स्वर्णाक्षरो में लिखने लायक हो चुकी हैं। जिला जौनपुर का वह टिकारडी गाव, जहा के तमाम भू-स्वामियो ने अपनी जमीनें देकर गाव में एक भी बेजमीन को बिना जमीन के नही रहने दिया जिला बानपुर का वह कस्बा पुखराया, जहा विनोबाजी द्वारा भू वितरण के समय वहा के भू-स्वामियो न अपने यहा के सभी बेजमीन परिवारो को पर्याप्त जमीन देकर अप्रतिम मिसाल पेश कर दी, यहा तक कि एक सिख परिवार ने अपनी सारी-की-सारी जमीन भूमिहीनो के लिए दे दी—ऐसा यह सारा अहिंसक क्रान्ति का प्रत्यक्ष इतिहास आज जगह जगह बनता जा रहा है और उसीमें मगरीठ गाव की मिसाल सुनार हो रही है। वीर-भूमि बुन्देलखण्ड के हमीरपुर जिले का मगरीठ एक छोटा-सा गाव है, जिसकी जनसंख्या कुल ५०० की यानी करीब १०४ घर की है। इस गाव ने भूदान-यज्ञ के इतिहास में एक नया पृष्ठ खोलकर अहिंसक क्राति कितनी निकट की वस्तु है यह प्रत्यक्ष कर दिखाया।

इस गाव में ५४ बेजमीन और ५० जमीन वाले परिवार रहते हैं। आजादी के संग्राम में भी इसने अपना नाम सबसे ज्यादा उज्ज्वल कर दिखाया था। दीवान शत्रुघ्नसिंह और उनके परिवार ने अपनी तपस्या और साधना से इसको आलोकित कर रखा है। जब बेतवा पार करके विनोबाजी ने हमीरपुर जिले में प्रवेश किया तो सारे मगरीठ वाले अपने पलक पावडे बिछा कर उनके स्वागत के लिए वहा मौजूद थे। विनोबाजी ने पाच-सात मिनट ही भाषण दिया होगा पर उस भाषण में 'सर्वै भूमि गोपाल की' कहकर उन्होंने एक ऐसा मत्र फूक दिया, जो सारे गाव वालो को अभिभूत किये बिना न रह सका। गाव वाले समझ गये कि सब भूमि गोपाल की है, और 'गोपाल' याने 'गाव के ही सब लोग।' वे सोचने लगे कि क्यो न गाव की सभी भूमि विनोबाजी को अर्पित कर दी जाय? कुछ घर की स्त्रियो ने कहा 'क्या भूखा मरोगे?' तो घर वालो ने जवाब दिया, 'भगवान् ने हाथ-पैर जो दिये हैं।'

दीवान शत्रुघ्नसिहजी भी इस प्रयत्न में लगे थे कि गाव वालो का पूरा सहकार इस योजना में मिले। दीवान साहब का गाव वालो ने रातो-रात बुलाया। फिर पचायत की और सकल्प किया गया कि "सारी भूमि विनोबाजी के श्रीचरणो में अर्पित की जाय।" भावना सजीव बनी उन्होने दीवान साहब को प्रतिनिधि बनाकर राठ भेजा। वहा, उस गाव की सम्पूर्ण भूमि, जो करीब ६७५ एकड है, विनोबाजी को अर्पण कर दी गई। सहज भाव से दीवान साहब ने कहा, "विनोबाजी, हमारे गाव के लोग आपके श्रीचरणो में यह भूमि अर्पित कर रहे हैं, उस दरिद्रनारायण के लिए जिसके आप प्रतिनिधि हैं। इसे आप स्वीकार करें।" और उन्होंने सबका दान-पत्र पेश कर दिया। इस तरह गाव की चप्पा-चप्पा जमीन का मालिक वह दरिद्रनारायण बना, जिसकी आवाज अबतक किसी ने इस प्रकार बुलन्द नहीं की थी।

दीवान साहब और उनके लडके, सबकी कुल ७० एकड जमीन इसमें शामिल है। अहिंसक क्रान्ति का यह प्रत्यक्ष और जीता जागता उदाहरण उन आक्षेपो-आरोपो को यो जवाब देता है, जैसे सूरज अधकार को मेटता है। किसी को शका हो तो वह प्रत्यक्ष आकर इसकी अनुभूति कर देखे।

यद्यपि विनोबाजी प्रत्यक्ष इस गाव में जा नही पाये थे, फिर भी गाव वालो ने बेतवा किनारे से इटैलिया गाव तक, रास्ते भर में, मिट्टी के कण-कण में, अपनी प्रेम से भरी और श्रद्धा से पूरित भावना भर दी थी। हर क्षण उनके अतुल प्रेम का प्रदर्शन विभिन्न रूपों में होता रहता था।

भूदान-यज्ञ के इतिहास में मगरीठ का यह नया पृष्ठ अमर पृष्ठ होगा।
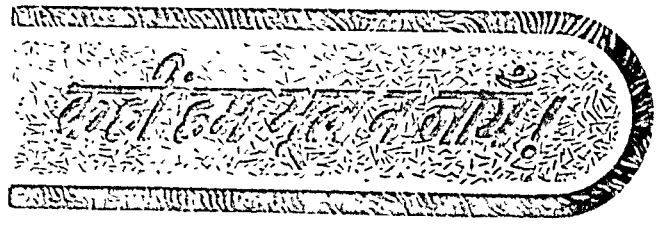
गोस्वामी तुलसीदास

[पुण्य तिथि—श्रावण शुक्ल ७— ९ जुलाई]

गुसाईंजी का सच्चा स्मारक

सत्पुरुष देह से मुक्त होने पर लुप्त नहीं होते हैं, बल्कि व्यापक बनते हैं और सारे वातावरण में फैल जाते हैं। इसलिए उस जमाने से तुलसी आज ज्यादा जिन्दा हैं। दुनिया के हित में उनका संकल्प आज सारे विश्व में फैल गया है। रेडियो के समान हमारे पास सिर्फ उनकी वाणी को पकड़ने की शक्ति की जरूरत है।

मैं तुलसी के जिले से ज्यादा जमीन मांगता हूँ क्योंकि उदार-हृदय तुलसी के ज्ञान की यहां मेघ के समान वर्षा हुई है। आज मैं थोड़ा बहुत घूम लेता हूँ, तो मेरी तारीफ होती है; लेकिन तुलसीदासजी तो ३०-४० साल तक घूमे हैं। उन्होंने यहां के कोल-किरात आदि गरीबों का कितने प्रेम से वर्णन किया है। उस महासमर्थ ज्ञानी ने, अज्ञानमय किरातों के प्रेम का वर्णन करते हुए कहा है कि 'राम हि केवल प्रेम पियारा।'

आज मैंने कौतूहल से तुलसीदासजी की मूर्ति देखी। बाह्य रूप की कोई हस्ती नहीं है, परन्तु एक चिन्ह के तौरपर लोग अपना भक्तिभाव प्रकट करते हैं। तुलसी की मूर्ति उनकी रामायण है। बाहर के लोग ऐसे स्थानों के लिए अपेक्षा लेकर आते हैं, इसलिए यहाँ के लोगों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। आप लोग तुलसीजी का स्मारक बनाना चाहते हों तो उसके लिए सरकार पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। जनता और व्यापारियों को मिलकर उस काम को पूरा करना चाहिए। मैं तो तुलसी रामायण को बाइबिल और शेक्सपीयर से मिल कर बनी हुई चीज की बराबरी का मानता हूँ। और इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि उसका अच्छा स्मारक हो, लेकिन सच्चा स्मारक तो इस गांव के लोगों के हृदय में होना चाहिए।

मैंने सुना है कि यहां शराब पीनेवाले काफी तादाद में हैं। तुलसीजी के गांव में यह सब क्यों होना चाहिए? इस गांव में तो पवित्रता का आदर्श मिलना चाहिए। यहाँ के लोग व्यसनों से मुक्त, मांसाहार न करनेवाले, सभी उद्योग करनेवाले, नित्य ज्ञान चर्चा करने वाले और रामायण पढ़नेवाले होने चाहिए। यहाँ एक भी भूखा आदमी नहीं रहना चाहिए और यहाँ के झगड़े यहीं निपटना चाहिए। ऐसा हो तभी तुलसी का स्मारक होगा।

हमारे लोगों पर एक आक्षेप है कि हममें चरित्र-ग्रन्थों और इतिहास की कमी है। यह आक्षेप सही है। जैसे युक्लिड की भूमिका जानने के लिए उसका चरित्र जानने की कोई जरूरत नहीं, उसी तरह देह के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध न होने के कारण देह चर्चा की कोई जरूरत नहीं। मैं इसमें गुण देखता हूँ, क्योंकि हम देह-विषयक चर्चा नहीं करते; बल्कि विचार को चाहते हैं। इसी विचार-धारा का अनुकरण करके हमें तुलसी का आध्यात्मिक स्मारक बनाने की कोशिश करनी चाहिए।

उत्तरप्रदेश में बुद्ध के बाद लोक-सेवा करने वाला तुलसीदास ही निकला है। जनता का मूल्यमापन थर्मामीटर जसा होने के कारण जनता अपने हितकर्ता तुलसी का अभी तक स्मरण करती है। तुलसीदासजी तो हर-एक में धनुर्धारी राम को ही देखते थे। इसलिए उनका जो ऋण हमारे सिर पर है उसे हमें चुकाना है और ऋषि-ऋण सबसे श्रेष्ठ ऋण है। उसे चुकाने का मतलब है, उनके विचारों को आगे चलाना और उसके अनुसार जिन्दगी बसर करना।

गोस्वामी तुलसीदास की जन्म-भूमि में दिये गए भाषण से —विनोबा

महाकवि का सन्देश

काल मनुष्य को पैदा करता है। पर मनुष्य काल की गति को मोड़ भी देता है। तुलसीदास काल-विधाता की देन थे। नाथ-सम्प्रदाय से निसृत सन्तमत ने कबीर

में जो उद्दाम रूप लिया, उसमे शक्ति थी, पर उद्दण्डता भी थी, उसमें भक्ति थी, पर विनय की कमी भी थी, उसमें सयम था, पर सौन्दर्य का अभाव भी था। इसके विपरीत तुर्क आक्रमण की बरबरता उस समय शान्त हो गई थी। देश में शान्ति की प्रतिष्ठा हो गई थी। रामानन्द के रूप मे भक्ति आन्दोलन का एक नेता पैदा हो चुका था। ऐसी ही स्थिति मे महाकवि तुलसीदासजी का आविर्भाव हुआ।

तुलसीदासजी ने रामभक्ति की जो धारा बहाई उसमे अपूर्व और उद्दाम शक्ति थी, किन्तु उसके प्रतीक हनूमान थे, जिनके हृदय मे भगवान् का निवास था, पर जो भगवान के दास थे, जो दुष्टा की पुरी लका में आग लगाकर भी भक्त विभीषण के घर की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। तुलसीदासजी की भक्ति की प्रतिमा जगज्जननी सीता है, जो यदि चाहती तो बडी आसानी से हनूमान के साथ लका से भाग कर राम के पास आ जाती, पर जिन्होने इस प्रकार छिपकर अपने भगवान के पास जाने की अपेक्षा विरह और दुख में तिलतिल कर जलना पसन्द किया। वह अपन भगवान् के पास उसी गौरव से जाना चाहती थी, जिस गौरव के अधिकारी स्वय उनके भगवान् थे। वह गौरव यदि सिन्धु के बधने से प्राप्त होना हो तो सिन्धु बधे, वह गौरव यदि लका के रक्त-स्नान से प्राप्त होना हो, तो लका रक्त में डूब जाय, वह गौरव यदि सीता के अग्नि-प्रवेश से प्राप्त होता हो तो सीता अग्नि में भी प्रवेश करेगी, पर अपन भगवान् के पास वह गौरव और मर्यादा के साथ ही जायगी।

पता नहीं, चरित्र पर इतना जोर देने वाला तुलसीदास के बाद और कोई महाकवि पैदा हुआ अथवा नही। शायद नही पैदा हुआ। बौद्ध धर्म म विकार पैदा होने पर जब 'प्रज्ञा' और 'उपाय' के नाम पर उन लोगो ने भारतीय समाज को पतन के गर्त में ढकेल दिया था, क्षणिकवाद के दर्शन ने जब वाणी का विभ्रम पैदा कर वचन के मूल्य का खतम कर दिया था; पुरुष अपनी शक्ति पर भरोसा न कर जब तन्त्र-मन्त्रो के निकट याचक बन गया था, उस समय समाज को उठाने के लिए एकमात्र चरित्र बल की आवश्यकता थी। और वह चरित्र बल पैदा किया महाकवि तुलसीदास ने अपने महाकाव्य 'रामचरित-मानस' द्वारा।

'रामचरित मानस' व्यापक अर्थों में समाज-दर्शन है। पिता अपने पुत्रो को प्यार करता है,पर उनकी शिक्षा के लिए महामुनि विश्वामित्र के नियन्त्रण में उन्हे जगलो में भेज देता है। पिता अपने पुत्र को प्यार करता है, पर कैकेयी को दिये हुए वचनो को क्षणिकवादी तर्क द्वारा झुठलाता नही, अपने वचन की रक्षा के लिए राम को वन भेजता है, पर अपने प्रेम से विवश होकर शरीर-त्याग भी कर देता है। राम वन में जाकर केवल काल-यापन नही करते। वह पौरुषमय कर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। वह वन म पथ के काटो को मसलते हुए पथ का निर्माण करते हैं। विरोध में यदि कोई शत्रु आता है, तो उसका सहार करते है, मित्र आता है, तो उसे हाथो पर उठाकर सिंहासन पर बैठाते हैं। पत्नी का हरण हो जाता है, तो योग नही ले लेते, हरण करने वाले का विनाश करके अपनी मर्यादा कायम करते हैं और उस मर्यादा को अग्नि की प्रचड ज्वाला में तपा लेते हैं। इसीलिए 'मानस' को मर्यादा काव्य भी कहा जाता है।

तुलसीदास ने चरित्र की, मर्यादा की और पौरुष की प्रतिष्ठा की। भक्ति का वह काल था, वह स्वय भक्त थे, इसलिए उनके सम्पूर्ण काव्य मे भक्ति की पावन रस धारा भी प्रवाहित है। आज विज्ञान की प्रचड आच में भक्ति की सरस्वती चाहे सूख गई हो, पर चरित्र की आवश्यकता हमे आज भी है, पुरानी मान्यताओ पर से चाहे विश्वास उठ भी गया हो, पर मानवीय मर्यादा की आवश्यकता सदैव बनी रहेगी। और पौरुष ? पौरुष की आज जितनी कमी है, शायद ही कभी रही हो। अत पौरुष की आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है—किन्तु उस पौरुष की जो अपने अहकार को लोकजीवन मे विसर्जित कर दे, जैसे हनूमान ने अपने पौरुष को राम के निकट विसर्जित कर दिया था। उस पौरुष की आवश्यकता है जो झुकना न जाने, मुडना न जाने; टूट जाय, मिट जाय, पर टेक न छोड। ऐसे पौरुष को प्राप्त करने के लिए तुलसीदास का स्मरण परम आवश्यक है। —बैजनाथसिंह 'विनोद'

भाषा : ले० मदनगोपाल; पृष्ठ संख्या ११६, मूल्य डेढ़ रुपया।

ईसा का सन्देश : ले० आचार्य जे०सी० कुमारप्पा, अनुवादक--सुरेश रामभाई, पृष्ठसंख्या १२०, मूल्य १)।

पहली पुस्तक जैसा कि इसके नाम से प्रकट है भाषा-विज्ञान से सम्बन्ध रखती है। उसका अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जिससे कुछ लोगों को मतभेद हो सकता है और है भी; परन्तु इसी कारण पुस्तक का महत्व कम नहीं हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने जिस दृष्टिकोण को अपनाया है वह मौलिक है और पाठक को सोचने का काफी खाद्य देता है। भाषा निर्माण के बारे उन्होंने अनेक बातों में एक बात यह भी सूचित की है कि 'तुम' की जगह 'आप' कहना हमारे सदियों तक दबे रहने का फल है। क्रिया में लिंग क्यों पैदा हुआ इसका कारण उन्होंने मरदों द्वारा औरतों पर जुल्म बताया है। ये दो उदाहरण है जो उनके अध्ययन की दिशा को सूचित करते हैं। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति से लेकर भाषा-शास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों को अपनी भाषा में कैसे काम में लाया जा सकता है इसकी चर्चा की है। वैसे इस पुस्तक का आधार हिन्दी-उर्दू और हिन्दुस्तानी का पुराना झगड़ा है और उन्होंने साधारणतया 'हिन्दुस्तानी' का बचाव किया है।

कुल मिलाकर पुस्तक भाषा-विज्ञान में रुचि रखने वालों के लिए अध्ययन करने योग्य है। लेखक का अध्ययन गहरा और बहुत हद तक तटस्थ है। हम पुस्तक का स्वागत करते हैं।

दूसरी पुस्तक श्री जे. सी. कुमारप्पा की ईसाई धर्म पर व्याख्याओं का संग्रह है। इसमें उन्होंने जहां ईसा के सन्देश पर प्रकाश डाला है वहां यह भी स्पष्ट बताया है कि 'ईसाई' लफ्ज का इस मत से कोई वास्ता ही नहीं रह गया है कि ईसा का जीवन कैसा था और उन्होंने क्या मिसालें पेश की है। स्वयं ईसाई लोग अपने धर्म की जो छीछालेदर कर रहे हैं उसका पूरा ज्ञान इस पुस्तक से हो जाता है। ईसा की आत्मा ईसाई धर्म में नहीं है वह तो गांधी के सन्देश से अधिक है। पुस्तक में ईसाई धर्म की मूल शिक्षाओं, बलिदान, त्याग व अहिंसा आदि की बड़ी मार्मिक व्याख्या की गई है।

अन्त में कुछ कथाएं देने से पुस्तक की रोचकता बढ़ गई है। अपनी भूमिका में गांधीजी ने पुस्तक की ठीक ही प्रशंसा की है। हम सबसे इस पुस्तक को पढ़ने का आग्रह करते है।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद की दो पुस्तकें

उत्तर की दीवारें
उस पार के पड़ोसी } —ले. काका कालेलकर

दोनों पुस्तकें संस्मरण के रूप में लिखी गई हैं। पहली में जेल-जीवन के अनुभव हैं, दूसरी में अफ्रीका यात्रा के। पहली में ८४ पृष्ठ हैं और मूल्य है चौदह आने, दूसरी में ३०० पृष्ठ है और इसका मूल्य साढ़े तीन रुपये हैं। काका सा० उन लेखकों में से है जो आंखें खोल कर देखते हैं और मुक्त भाव से लिखते है। छोटी-से-छोटी बात भी उनसे नहीं बच पाती। विवरण इतना सच्चा और सारगर्भित होता है कि वर्ण्य वस्तु का चित्र उतर आता है। यात्रा-वर्णन लिखने में उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। 'उस पार के पड़ोसी' में पूर्वी अफ्रीका का पूरा चित्र है। उसके मनुष्य, उसके पशु, उसकी प्रकृति, सबसे आप तादात्म्य भाव स्थापित कर सकते हैं। बेशक कहीं-कहीं 'मैं' आपको खटक सकता है, पर उसकी अनिवार्यता हमें स्वीकार कर लेनी चाहिए और वहां के प्राणवान भारतीयों के जीवन का अध्ययन करना चाहिए।

काका सा० ने अपनी यात्रा में कुछ ही चुने हुए स्थान

नही देखे, उन्होने वे स्थान भी देखे जहा मनुष्य मनुष्य से भय खाता है। सक्षेप में हम यही कहेगे कि यह पुस्तक पूर्वी अफ्रीका का भूगोल और इतिहास दोनो है। इतिहास भी ऐसा है जो उपन्यास, यात्रा, सस्मरण सभी के रस से भरपूर है। साथ में राजनीति की पुट भी पूरी है। अफ्रीका का प्रश्न आज हमारे सम्मान का प्रश्न है। उसकी पूरी जानकारी इस पुस्तक में है।

'उत्तर की दीवारें सन् १९२२ के साबरमती जल जीवन के अनुभवो का सग्रह है। ये अनुभव एक कलाकार के अनुभव है। उनका सम्पूर्ण रस पढने पर ही प्राप्त हो सकता है। प्रकृति और पुरुष का चित्रण इसमें भी सुन्दर बन पडा है, विशेषकर पशु पक्षियो की भावनाओ का।

भाषा काफी सरल, सशक्त और व्यगपूर्ण है। छपाई सफाई सुन्दर है। अफ्रीका यात्रा के कुछ चित्र भी है। सब मिला कर पुस्तकें हर घर में रखने योग्य है।

—सुशील

भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया—श्री भरतसिह, उपाध्याय, प्रकाशक—सरल साहित्य प्रकाशक, बड़ौत (मेरठ) पृष्ठ ६९, मू १)।

श्री भरतसिहजी उपाध्याय बौद्ध दर्शन व इतिहास के एक प्रसिद्ध विद्वान है। अभी-अभी 'पाली-साहित्य का इतिहास' नामक रचना पर इन्हे उत्तर प्रदेश की सरकार से पुरस्कार मिला है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया के सास्कृतिक सम्बन्ध का प्रामाणिक वर्णन किया है।

एशिया के नवजागरण के इस दौर में उपाध्यायजी ने सास्कृतिक सबध की कहानी लिखकर एक महत्वपूर्ण काम किया है। लेखक के ही कथनानुसार "देशो के राजनैतिक सबध बनते और बिगडते रहते है, किन्तु जो काम साहित्य और सस्कृति के माध्यम से किया जाता है वह स्थायी होता है, क्योकि उसमें मानव हृदय का सस्पर्श होता है।" निश्चय ही इस तरह के प्रयत्नो से मानव मानव के आपसी सम्बन्ध अधिक दृढ होते हैं।

सदियो से इस देश के बौद्ध भिक्षु जिस अमर सदेश को लेकर बृहत्तर भारत और एशिया के विभिन्न प्रदेशो में घूमे, उसी की कहानी इन पृष्ठो में दी गई है। प्रत्येक स्थापना को प्रमाणो द्वारा पुष्ट करके लेखक ने अपनी बहुज्ञता का अच्छा परिचय दिया है।

पुस्तक पठनीय एव सग्राह्य है।

—श० ना० भट्ट

(पृष्ठ २८५ का शेष)

गाधी जी के अनुयायियो को इस बात को विशेष रूप से याद रखना है कि किसी काम को कर लेना इतना महत्वपूर्ण नही है जितना यह कि वह काम कैसे किया गया।

सावधानी की आवश्यकता

देश में चुनाव हुए। राष्ट्रपति, प्रधानमत्री, ससद—सभी का जनतन्त्र प्रणाली से चुनाव हुआ। जहा तक व्यक्तियो का सम्बन्ध है, शासन पुराने ही लोगो के हाथ में है। समस्याए भी बहुत कुछ पुरानी हैं, लेकिन कभी-कभी पुरानी समस्या भी इस रूप में सामने आती है कि उससे भय लगने लगता है। हिन्दी का प्रश्न कुछ इसी रूप में पेश किया जा रहा है। हिन्दी भाषाभाषी लोगो को भय है कि वर्तमान गति से हिन्दी पन्द्रह वर्षों में भी राजभाषा नही बन सकेगी, इसलिए वे उतावली प्रकट कर रहे है। दूसरी ओर दक्षिण के सदस्यो का कहना है कि उत्तर भारत के लोग हम पर हिन्दी लादना चाहते है। एक सदस्य ने तो इस प्रश्न पर दक्षिण के उत्तर से अलग हो जाने तक की धमकी दे डाली। हमें खेद है कि इस प्रकार की स्थिति पैदा हो गई। उतावली और आक्रोश दोनो कमजोरी के हथियार है। हमें विश्वास है, दोनो पक्षो में से कोई कमजोर नही है और दो पक्ष क्यो, अब तो केवल एक पक्ष है, क्योकि हिन्दी राजभाषा बन चुकी है। अब तो प्रश्न केवल यही है कि पन्द्रह वर्ष के भीतर-भीतर हिन्दी कैसे अपने पद को प्राप्त कर सकती है। इस 'कैसे' का मार्ग ढूढने में प्रत्येक भारतवासी को एक शक्ति, एक भावना और एकदिल से काम करना है। उस मार्ग पर मतभेद की कोई गुजायश नही है। —सु०

क्या व कैसे ?

'मंडल' का जयन्ती-उत्सव

'मण्डल' की जयंती मनाने के विषय में 'जीवन-साहित्य' के पिछले एक अंक में सूचना दी जा चुकी है। विचार था कि उत्सव मई में किया जाय, लेकिन अनेक कारणों से वह संभव न हो सका। अब सितम्बर या अक्तूबर में करने का निश्चय हुआ है। उत्सव की रूप-रेखा तैयार हो गई है। उसके चार मुख्य अंग रक्खे गये हैं—१. उत्सव २. सांस्कृतिक कार्यक्रम ३. प्रदर्शिनी और ४. 'जीवन-साहित्य' का विशेषांक। उत्सव दिल्ली में किसी सुविधाजनक स्थान पर मनाया जायगा और उसका कार्यक्रम दो दिन का रहेगा। सांस्कृतिक कार्यक्रम में लोकगीत, लोकनृत्य तथा एक एकांकी के अभिनय आदि की व्यवस्था होगी। प्रदर्शिनी में पुस्तकें, चित्र, चार्ट आदि के द्वारा हिन्दी साहित्य की प्रगति का दर्शन कराया जायगा। 'जीवन-साहित्य' के विशेषांक—'प्रगति के पच्चीस वर्ष'—में 'मण्डल' के पच्चीस वर्ष के कार्य के विवरण के साथ-साथ इन वर्षों में साहित्य-जगत में, विशेषकर प्रकाशन-क्षेत्र में, जो प्रगति हुई है, उसके सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सामग्री रहेगी।

'मण्डल' की पूँजी बढ़ाने के लिए एक योजना तैयार की गई है। उसमें लोगों से ऋण के रूप में आर्थिक सहायता ली जायगी, जो कुछ वर्षों में लौटा दी जायगी। साथ ही 'मण्डल' की बहुत-सी पुस्तकें ऋण देनेवालों को मिल जायंगी और जबतक रकम 'मण्डल' के पास रहेगी, मिलती रहेंगी। इसमें ऋण लेनेवालों को तो लाभ है ही, ऋणदाता और सामान्य पाठकों को भी लाभ पहुँचेगा।

'मण्डल' के इस आयोजन का हर तरफ से स्वागत हो रहा है, यह हर्ष की बात है। संयोजकों ने स्पष्ट कर दिया है कि यह उत्सव 'तमाशे' के रूप में नहीं किया जा रहा है; बल्कि पिछले पच्चीस वर्ष के 'मण्डल' के कार्य का सिंहावलोकन करके आगे के कार्य की योजना बनाने के लिए।

हम प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी, विशेषकर हिन्दी-प्रेमी से अनुरोध करेंगे कि वे इस शुभ आयोजन को सफल बनाने में मदद करें।

'भारत सेवक समाज'

समाचार मिला है कि प्लानिंग कमीशन राष्ट्रीय विकास-योजनाओं में देश के प्रत्येक भाग से वयस्क स्त्री-पुरुषों का स्वेच्छित सहयोग प्राप्त करने के लिए एक अ-राजनैतिक संस्था स्थापित करने जा रहा है, जिसका नाम होगा—'भारत-सेवक समाज'। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस समाज का उद्देश्य व्यापक रूप से जनता की सेवा करना होगा। पं० नेहरू ने उसके सम्बन्ध में कहा है, "हमें अपने लोगों पर निगाह रखनी है, उनके पास जाना है, उनसे चर्चा और विचार-विमर्श करना है और उनके साथ काम में जुटना है। किसी सामान्य ध्येय या कार्य में जैसे लोग मिलकर काम करते हैं, वैसे ही हमें करना है। लोगों को कुछ बातें हम सिखा सकते है तो बहुत-सी हम उनसे सीख भी सकते हैं। इसलिए हमें लोगों के पास अपने ज्ञान का दम्भ लेकर नहीं, बल्कि विनम्रता की भावना और इस उत्कट अभिलाषा को लेकर जाना चाहिए कि हम लोग मिलकर ऐसा प्रयत्न करेंगे, जिससे निष्क्रियता का पहाड़ ढह जायगा। इसी उद्देश्य को सामने रखकर 'भारत सेवक समाज' कायम करने का विचार किया गया है।"

समाज की स्थापना अभी हुई नहीं है, शीघ्र ही होने जा रही है; पर उसका उद्देश्य शुभ और अभिनन्दनीय है। यदि वह उसीके अनुरूप चल सका तो निश्चय ही देश के लिए बड़े लाभ की बात होगी। आज की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि शासन और जनता के

बीच उस सहयोग की भावना का अभाव है, जिसके बल पर बडे-बडे काम देखते-देखते पूरे हो जाते हैं। इसमें अधिक दोष किसका है, इसके विवेचन में हमें नही पडना है। दोष किसी का और कितना ही क्यों न हो, लेकिन इतना निश्चित है कि यदि देश को ऊपर उठना है, समृद्ध बनना है तो शासन और जनता, दोनो को पारस्परिक सहयोग से काम करना होगा।

'सर्वोदय समाज' लोक सेवा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है, फिर भी ऐसे जितने प्रयत्न हो, अच्छा है। इतना ध्यान अवश्य रक्खा जाना चाहिए कि उनमें आपस में सौहार्द्र रहे, प्रतिद्वन्द्विता की भावना नही। प्रतिद्वन्द्विता का दुष्परिणाम हम प्रतिदिन देख रहे हैं। लेकिन उससे तभी बचा जा सकता है, जब कि कोई उच्च आदर्श सामने हो, निजी स्वार्थ या पद प्रतिष्ठा पाने की कामना नही। —य०

एक विवाह

दिल्ली में गत मास एक विवाह को लेकर बडा वावेला मचा। उसमें कई व्यक्ति घायल हुए। बाद में उनमें से एक मर भी गया। लोगो ने अधिकारियो का अपमान किया, गाधी टोपिया जलाईं और कई प्रकार से कानून की उपेक्षा की। इन सब बातो का कारण यह था कि उस विवाह में वर मुसलमान था और कन्या हिन्दू। कहा जाता है कि प्रादेशिक काग्रेस के अधिकारियो ने और दिल्ली प्रदेश के मुख्य-मत्री ने इस विवाह में सहयोग दिया। वर मुख्य-मत्री का निजी सचिव था और कन्या काग्रेस-दफ्तर में टाइपिस्ट का काम करती थी। इन सब बातो से जनता ने, विशेपकर पुरुपार्थी भाइयो ने, यह अर्थ लगाया कि काग्रेस और काग्रेस सरकार ने जानबूझ कर अपनी धर्मनिरपेक्षता का ढिंढोरा पीटन के लिए इस विवाह का विज्ञापन किया। जनतत्र के युग में विरोधी पार्टियों ने सत्ताधारी दल को बदनाम करन के लिए इन तथ्यो से पूरा लाभ उठाया और वे दो-तीन दिन के लिए राजधानी के अमन को खतरे में डालने में सफल हो गए।

विवाह वैसे तो एक व्यक्तिगत प्रश्न है। रजामन्दी से कोई कही भी विवाह कर सकता है। इस विवाह में दोनो पक्षो की रजामदी थी। हा, कन्या के पिता राजी नही थे, पर जैसा कि सुना गया था कि लडकी बालिग है तब पिता की नाराजगी का कानून की दृष्टि से कोई अर्थ नहीं। लेकिन प्रश्न उठना है कि क्या कानून और स्वतन्त्रता अपने आपमे सम्पूर्ण है ? कानून की असमर्थता सवसम्मत है और एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता वहा समाप्त हो जाती है जहा दूसरे की नाक शुरू होती है अर्थात् स्वतन्त्रता अपन आप में स्वतन्त्र नही है, बल्कि दूसरी अनेक बातो पर निर्भर है। हिन्दू मुस्लिम विवाह कोई गुनाह नही है, परन्तु इस प्रश्न को लेकर भारत में जो कुछ हुआ वह सभी जानते है। उस बात को भुलाने लायक समय भी अभी नही आया है। इसके विपरीत उन घावो को हरा रखने वाली बाते अभी तक मौजूद है। हमें खद है कि दिल्ली काग्रेस के अधिकारियो न इस मोटे से तथ्य को भुला दिया और वे लोग ऐसी बाते कर बैठे जिनको करन का कानूनी अधिकार तो उनको था, पर जिनका परिणाम उनके लिए बुरा हो सकता था और ऐसा ही हुआ। हम विरोधी दल वालो की बात नहीं करेंगे। उन्होने वही किया जो वे कर सकते थे। किसी भी कीमत पर वे वर्तमान शासन को उखाड फेंकना चाहते है। ऐसी स्थिति में क्या शासक वर्ग को सत्ता का गर्व प्रकट करना उचित होगा ? क्या वास्तविकता को भूल जाना होगा और आचार्य कृपलानी की भाति यह मान लेना होगा कि साम्प्रदायिकता गाधीजी के साथ मर गई ? हमारा विचार है कि साम्प्रदायिकता केवल दबी है और हमारी जरा-सी असावधानी से वह कभी भी सिर उठा सकती है।

हमारा इस बात से कोई सम्बन्ध नही है कि यह विवाह अब नही होगा और न हम उन कारणो की छान-बीन करना चाहते है जिनसे लडकी ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। पर हमारा यह मत अवश्य है कि जो लोग सौभाग्य से आज अधिकारी या शासक है वे यह समझ लें कि उनके किसी काम का परिणाम अब केवल उन्ही पर नही पडने वाला है। उनके साथ उनका समूचा दल है समूचा देश है। यही नही, कभी-कभी छोटी-छोटी बातो से विश्व में हल्चल मच जाती है।

(शेष पृष्ठ २८३ पर)

अगस्त १९५२

इस अंक के विशेष लेख

- ईश्वरीय प्रेरणा
- भविष्य की दृष्टि से
- श्री जाज अरंडेल
- बापू की अहिंसक राज्य-पद्धति
- अग्रदूत
- जीवन की गहराई में

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय : यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

एक प्रति का

लेख-सूची

'जीवन-साहित्य' की फाइलें और विशेषांक

हमारे स्टॉक में 'जीवन-साहित्य' की निम्नलिखित फाइलों और विशेषांकों की कुछ प्रतियां शेष हैं :

१९४२ की फाइल,		अजिल्द ४)	सजिल्द ५)
१९४५ "	(छः अंकों की)	" १॥)	" २॥)
१९४६ "		" २)	" ३)
१९४८ "		" ३)	" ४)
१९४९ "		" ३)	" ४)
१९५० "		" ४)	" ५)
१९५१ "		" ४)	" ५)

विशेषांक

जमनालाल-स्मृति-अंक	॥)
प्राकृतिक चिकित्सा अंक (परिशिष्टांक सहित)	२।)
विश्व-शांति अंक	१॥)

मंगाने में विलम्ब न कीजिये ।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. 'जीवन-साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें। यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें।

२. पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य दें। उससे कार्रवाई करने में सुगमता और शीघ्रता हो जाती है।

३. बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चंदा किसी नाम से भेजते हैं। इससे गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

४. पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल ही भेजी जायं और कागज के एक ही ओर साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखी जायं।

५. अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए।

६. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जायं।

७. पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं। बीच में रुपया भेजने वालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जायं या आगे से ग्राहक बनाया जाय।

—व्यवस्थापक

नोट—ग्राहकों से निवेदन है कि यदि उनके पते में कोई त्रुटि हो तो उसकी सूचना तुरन्त हमें देकर ठीक करा लें, जिससे पत्र उन्हें समय पर मिलता रहे।

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

अगस्त १९५२]

[वर्ष १३ अंक ८

परमहंस के उपदेश

जल में नाव रहे तो कोई हानि नही, पर नाव में जल नही रहना चाहिए। साधक ससार में रहे तो कोई हानि नही परन्तु साधक के भीतर ससार नही होना चाहिए।

* *

स्वच्छ वस्त्र में कोई भी स्याही का दाग पडने से वह दाग बहुत स्पष्ट दीखता है उसी प्रकार पवित्र मनुष्यो का थोडा दोष भी अधिक दिखलाई देता है।

* * *

धर्माचरण बलात् नही कराया जा सकता। धर्म-पिपासा जाग्रत होने पर जीव स्वय व्याकुल हो धर्मान्वेषण करता है और वैसे आचरण मे प्रवृत्त होता है। धर्म-साधन कर्त्तव्य है यह बात उसको स्मरण नही करानी पडती।

* * *

पुस्तकें हजार पढो, मुख से हजार श्लोक कहो, पर व्याकुल होकर उसमे डुबकी नही लगाने से उसे पा न सकोगे।

* * *

पूर्व दिशा की ओर जितना ही चलोगे पश्चिम दिशा उतनी ही दूर होती जायगी। इसी प्रकार धर्म-पथ पर जितना ही अग्रसर होगे ससार उतनी ही दूर पीछे छूटता जायगा।

विनोबा

ईश्वरीय प्रेरणा

मैंने आज जो काम उठाया है, वह भी मजदूर-आंदोलन ही है। जो सबसे कमजोर है, जो बेज़मीन है, बेजबान है, उनका यह आंदोलन है। अक्सर मजदूरों के आंदोलन शहरों में होते हैं। यूरोप में किसानों के भी आंदोलन हुए है; लेकिन हिन्दुस्तान में ज्यादातर शहरों में ही ऐसे आंदोलन हुआ करते हैं। गांव के मजदूर अत्यन्त असंगठित हैं। उनमें जाग्रति नहीं है उन्हें शिक्षा मिलती नहीं। उनके पास सिवा खेती के दूसरा कोई धंधा भी नहीं है और जिस खेती पर वे काम करते हैं उसके वे मालिक नहीं हैं। खेती के ये जो मजदूर हैं, जो सबसे नीचे के तबके के हैं और समाज की श्रेणियों में सबसे निकृष्ट हैं उनका सवाल मैंने उठाया है। जो सबसे नीचे के स्तर के होते हैं उनका सवाल उठाना ही सर्वोदय का और अहिंसा का तरीका है। क्योंकि जो सबसे आखिर का है, उसे ऊपर उठाना चाहिए। फिर उसके साथ बाकी के भी ऊपर उठ जाते हैं। जो उनसे ऊंचे हैं उनके लिए फिर स्वतन्त्र आंदोलन नहीं करना पड़ता। मुझपर आक्षेप किया जाता है कि मैं सिर्फ नीचेवालों को ऊपर उठाने की बात करता हूं। पर समुद्र-स्नान से सब नदियों के स्नान का पुण्य मिल जाता है, फिर नदियों में अलग स्नान करने की जरूरत नहीं पड़ती। उसी तरह यह काम है, बशर्ते कि उस काम को करने का ढंग ऐसा हो कि जिससे एक को लाभ और दूसरे को हानि न पहुंचे। अगर हम ऐसा तरीका अख्तियार करते हैं, तो सारा-का-सारा समाज ऊंचा उठता है। सर्वोदय या अहिंसा का तरीका ऐसा है कि जिसमें बाकी के सब लोग स्वयं ऊंचे उठ जाते हैं। किसी ने मुझसे पूछा था कि आप मध्यम श्रेणीवालों के लिए या शहर के मजदूरों के लिए क्या कर रहे हैं? उस समय मैंने मजाक में कह दिया था कि दुनिया के सब मसले हल करने का मैंने ठेका नहीं लिया है। लेकिन वह तो विनोद था। 'एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' इस तरह मैं तो एक वातावरण निर्माण करना चाहता हूं, जिससे कि समता, न्याय, भूतदया और सहानुभूति की हवा फैल जाय और उनसे बाकी के मसले अपने-आप हल हो जायं। यदि न भी हों तो केवल जरा-सा आंदोलन करके ही वे हल किये जा सकें।

मेरे काम की ओर देखने की अनेक दृष्टियां हैं। लेकिन मई-दिवस के निमित्त मैंने यह एक दृष्टि आपके सामने रखी कि मेरा आंदोलन 'मजदूर-आंदोलन' है। मैं खुद अपने को मजदूर मानता हूं। मेरे जीवन के बत्तीस वर्ष जो जवानी के "बेस्ट ईयर्स" (सर्वोत्तम काल) कहे जाते हैं मैंने मजदूरी में बिताये। मैंने तरह-तरह के काम किये हैं। समाज जिन कामों को हीन और दीन मानता है, जिनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है—यद्यपि उनकी आवश्यकता बहुत है, ऐसे काम मैंने किये हैं। भंगी-काम, बुनायी-काम, बढ़ई-काम, खेती आदि। आज गांधीजी नहीं हैं, इसलिए मैं बाहर निकला हूं। अगर वे होते तो मैं बाहर कभी नहीं आता, और आप मुझे किसी मजदूरी में ही मग्न पाते। कर्म से मैं मजदूर हूं, यद्यपि जन्म से ब्राह्मण याने ब्रह्म-निष्ठा और अपरिग्रही हूं। ब्रह्मनिष्ठा तो मैं छोड़ नहीं सकता। किसी भी काम की ओर देखने की हरेक की अपनी अलग-अलग दृष्टि होती है। तुलसीदासजी ने लिखा है कि जहां राम खड़े हुए थे, वहां उनको देखनेवाले जिस तरह के लोग थे, उस तरह से उन्होंने राम की ओर देखा—"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।" जो काम व्यापक होते हैं, उनके अनेक पहलू होते हैं और इसीलिए उनकी ओर कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। मेरे काम से भूमि की समस्या हल हो सकती है, अन्न के उत्पादन में वृद्धि हो सकती है, न्याय बढ़ सकता है, ग्रामों की संगठना हो सकती है, राज-कारण पर उसका अच्छा असर हो सकता है, लोगों में धर्म-भावना का विकास हो सकता है तथा लोगों की अविकसित और गुप्त धर्म-भावना को, दान और दया करने की वृत्ति को बाहर लाया जा सकता है। मेरे काम को, वह धार्मिक और भारत की पद्धति के अनुकूल कार्य है इस दृष्टि से भी, देखा जा सकता है और इसे एक बड़ा भारी मजदूर-आंदोलन भी कहा जा सकता है।

यह सब मैंने किया नही है, मुझे करना पडा है। हैदराबाद के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद एक अहिंसक निरीक्षक के नाते मैं तेलगाना गया था। वहा के आतक को नष्ट करने के लिए सरकार सालाना पाच करोड रुपया खर्च करती थी फिर भी वह नष्ट नही हुआ था। इसलिए अहिंसा वहा कैसे काम कर सकती है, यह देखने के लिए मैं नम्र भाव से गया। मैंने वहा की परिस्थिति देखी और *मुझे मानो सूचना मिली कि मुझे किसानो की समस्या* हाथ में लेनी होगी। जो लोग खेती में मजदूरी करते है परन्तु वेजमीन है, उनका प्रश्न उठाना होगा। मुझमें ताकत नही थी, लेकिन फिर भी मुझे वह काम लेना पडा, क्योकि नही तो मैं डरपोक साबित होता और धर्म को भूलता। मैंने सोचा कि जब परमेश्वर मुझे यह प्रेरणा दे रहा है, तब इस काम को पूरा करने की ताकत भी वही देगा। *यह मानकर मैंने इस काम को उठाया। ईश्वर पर यानी* आप सबपर श्रद्धा रख के मैंने यह काम लिया है। जो परमेश्वर मुझे मागने की प्रेरणा दे रहा है, वह आपको देने की प्रेरणा भी देगा। वह एकतरफा नही, बल्कि व्यापक है और सोचनेवाला है। अहिंसा का यही तरीका है।

दुनिया के कई देशो में खेती के मजदूरो के आदोलन चले। लेकिन भारत में किसी ने उनकी ओर ध्यान नही दिया। सिर्फ कम्यूनिस्टो ने तेलगाना में उनकी ओर ध्यान दिया। बाकी तो सब शहर के मजदूरो के आंदोलन है। दुनिया में हरेक ने अपने-अपने ढग से इस सवाल को हल किया है। *लेकिन उनका तरीका बेढगा है।* मैं उसे नही चाहता हू। मैं मानता हू कि उससे दुनिया का भला नही हुआ और कभी होगा भी नही। मैं मानता हू कि भारत के लिए वे तरीके नुकसान पहुचाने वाले है मेरी, या हमारी, या भारत की एक विशेषता है। मैं तो इन तीनो को एक ही मानता हू। हमारा अपना एक विशेष तरीका है। मुझे कल किसी ने कहा कि जबर्दस्ती से जल्दी जमीन मिल सकती है। मैंने कहा कि मैं जबर्दस्ती नही चाहता। मेरा काम आहिस्ता आहिस्ता चले तो कोई हर्ज नही, लेकिन वह मेरे तरीके से होना चाहिए, *हिंसक तरीके से नही।* मेरा तरीका अहिंसा का, सर्वोदय का, भारतीय सस्कृति का तरीका है। यदि घी के डिब्बे *को आग लगाई जाय तो घी जल जाता है। और वेद-मत्र* के साथ यज्ञ में उस घी की आहुति दी जाय, तो भी घी जलता है। दोनो में घी जलता ही है, लेकिन एक से भावना जल जाती है और दुनिया खत्म हो जाती है, दूसरे से भावना पावन हो जाती है। हिंसक तरीके से एक मसला हल करने से दूसरे मसले निर्माण हो जाते हैं। हिंसक तरीके से नई-नई तकलीफें पैदा होती हैं। हमने आजादी हासिल *करने के लिए जो तरीका उठाया था, वह यही निर्माण हो* सका, क्योकि वह भारत की सभ्यता के अनुकूल था और उसके लिए हमें सुयोग्य नेता भी मिला था। वैसे ही विशुद्ध तरीके से हमें और भी सभी मसले हल करने हैं। उपनिषदो में कहा गया है कि 'हे अग्निदेव, हमें सुपथ से ले जाओ, बुरे रास्ते से नही। हमें केवल लक्ष्मी नही चाहिए, बल्कि वह सुपथ से चाहिए।' कुरान में भी यह कहा गया है कि *'इह्दिनस् सिरातल मुस्तकीम, सिरातल्लज़ीन* अनअम्त अलैहिम—हे भगवान ! हमें सिर्फ सीधी राह चाहिए। गलत राह से हम मुकाम पर नही पहुच सकते।' कभी-कभी यह आभास होता है कि हम मुकाम पर पहुंच गये हैं; परन्तु असल में जन्नत में जाने के बजाय हम जहन्नम में पहुच जाते हैं। इसलिए हम सीधी राह से या सुपथ लेकर आदर्श की तरफ पहुचना चाहते हैं।

हमें मजदूरो को केवल अन्न और कपडा ही नही देना है। यह मसला केवल भौतिक मसला नही है। मेरी दृष्टि से तो कोई भी मसला केवल आर्थिक मसला हो ही नही सकता। *यदि हम गहराई में* पहुचे, तो मालूम होगा कि भौतिक मसले भी आध्यात्मिक और नैतिक ही होते हैं। उसी तरह यह भी मसला आध्यात्मिक है। *यदि हमने कहा कि गरीबो को समता चाहिए,* न्याय चाहिए, तो जो हमारे विरुद्ध पक्ष में हैं, वे हमारी बात को मजूर करते है। वे विषमता की बात नही करते, *बल्कि यह कहते हैं कि* "जमीन के छोटे-छोटे टुकडे नही होने चाहिए।" जहा हम 'समता' की बात करते हैं, वहा वे 'असमता' की बात तो नही कहते, पर 'क्षमता' की बात खडी करते है। 'समता विरुद्ध असमता', यह वे नही कह सकते है, क्योकि 'असमता' को माननेवाले कोई हो नही सकते। प्रकाश के सामने अधकार युद्ध कर नही

सकता। राम के खिलाफ रावण लड़ नहीं सकता। लेकिन अर्जुन के खिलाफ यदि भीष्म का नाम लिया जाय, तो युद्ध हो सकता है। अच्छे शब्द के विरुद्ध अच्छा शब्द लाकर ही युद्ध हो सकेगा। राम-रावण की लड़ाई एक अजीब बात है। यदि हम कहे कि सूर्य और अंधकार की बड़ी भारी लड़ाई हुई, जिसमें अंधकार के समूह के समूह सूर्य पर टूट पड़े और सूर्य की किरणों ने उनको नष्ट किया, तो यह केवल वर्णन ही होगा; क्योंकि सूर्य के उदय के साथ ही अंधकार को नष्ट होना पड़ता है। उसी तरह राम का उदय होने के साथ ही रावण खत्म हो जाता है। सूर्य के सामने अंधकार टिक नहीं सकता, राम के सामने रावण टिक नहीं सकता। और 'समता' के सामने 'असमता' भी टिक नहीं सकती। लेकिन जब हम 'समता' के सामने 'क्षमता' खड़ी करते हैं, तो युद्ध होना संभव है। 'क्षमता' में विश्वास करने वाले कहते हैं कि 'क्षमता के लिए जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े होने चाहिए।" तो भिन्न विचारवाले नया विचार प्रगट करते हैं कि हम ऐसी कुशलता से 'समता' लायेंगे कि उसमें 'क्षमता' भी होगी। जहां 'समता' है, वहां 'क्षमता' भी आयेगी। यत्र योगेश्वरो कृष्णः, यत्र पार्थो धनुर्धरः।

मजदूरों के सवाल को एकांगी ढंग से और हिंसक तरीके से हल करने की कोशिश करनेवाले कभी कामयाब नहीं हो सकते। उससे तो हानि ही होगी। मै ऐसी कुशलता से यह काम करना चाहता हूं कि 'समता' की तो रक्षा हो सके, पर ऐसे ढंग से कि मजदूरों का दुःख तो नष्ट हो, पर क्षमता और दूसरे अन्य गुण भी कायम रहे।

आज सारा भारत मजदूर बन गया है। भारतवासी अपनी बुद्धि का उपयोग करना नहीं जानते। लाखो को हमने शिक्षा से वंचित रखा है। वे सब धन-मान-ज्ञान-विहीन है। फिर उनमें 'क्षमता' कैसे आयगी? आज गांव में अच्छा बढ़ई भी नहीं मिलता। यदि चर्खे का कोई नया माडेल बनाना हो, तो गांव का बढ़ई वह नहीं बना सकता। उसके लिए हमें पांच साल उसे तालीम देनी पड़ती है। हमारा कारीगर-वर्ग 'अनस्किल्ड मजदूर' है, जिसे न ज्ञान है, न प्रतिष्ठा है, न ध्येय है। पूंजीवादी समाज में अक्सर कुछ तो ऐसे होते है जो दिमाग का ही काम करते है, और कुछ यंत्र के समान काम करते है जो अपनी अक्ल का उपयोग नहीं कर सकते। किसीको चाकू में छेद गिराने का काम दिया जाय, तो रोज पांच हजार चाकुओं में वह छेद गिराता है और जिन्दगीभर यही काम करता रहता है। वे लोग कहते है कि इस तरह से काम दिया जाय तो 'क्षमता' और 'कुशलता' पैदा होती है। वे मनुष्य के जीवन को सर्वाङ्गीण बनने नहीं देते। पूंजीवादी समाज में कुछ तो 'हैड्स' बनते है, जैसे 'मिल-हैड्स;' और कुछ 'हैंड्स' बनते है, जैसे 'हैड्मास्टर,' 'हैडक्लर्क' वगैरा। इसका मतलब यह है कि इधर सारे सिर ही सिर, चाहे वह 'सिरजोर' क्यों न हो, और उधर सारे हाथ ही हाथ! और उनका कहना है कि इसमें क्षमता आती है! सर्वाङ्ग-परिपूर्ण मनुष्य उनकी दृष्टि से क्षमता के खिलाफ है।

चातुर्वर्ण्य में भी कुछ लोगों ने ऐसी कल्पना कर रखी थी कि भंगी का काम ब्राह्मण नहीं करेगा। लेकिन वह गलत है। चातुर्वर्ण्य का सच्चा अर्थ यही है कि चारों वर्णों में चारों वर्ण होते है, लेकिन किसी एक काम की प्रधानता होती है और बाकी के गौण होते है। भगवान् कृष्ण युद्ध के समय केवल लड़ते ही नहीं थे, बल्कि घोड़ों को धोने का भी काम करते थे। उस समय उन्होंने यह नहीं कहा कि यह तो क्षत्रिय का काम नहीं है। और जब अर्जुन का मोह-निरास करने की बात आई, तब उन्होंने वह भी काम किया। अर्जुन से यह नहीं कहा कि यह तो ब्राह्मण का काम है, इसलिए तुम अपनी शंका लेकर किसी ब्राह्मण के पास जाओ। कृष्ण भगवान् तो मौके पर ग्वाल बनते थे, मौके पर ब्राह्मण, मौके पर शूद्र। क्षत्रिय तो वे थे ही। इसलिए लड़ने का काम तो उन्हें करना ही पड़ता था। तो चातुर्वर्ण्य में हरेक के लिए एक प्रधान काम होता है। वह उसे करना ही पड़ता है। लेकिन बाकी के काम भी वह करता है। एक बार किसी गणित के प्रोफेसर से पूछा कि फैजाबाद स्टेशन कहां है? तो उसने कहा, मै जाग्रफी (भूगोल) नहीं जानता। अगर वह इस तरह से कहे, तो वह अच्छा नागरिक नहीं बन सकता। गणित का प्रोफेसर होते हुए भी उसे भूगोल का इतना तो सामान्य ज्ञान होना ही चाहिए। शास्त्रों मे कहा गया है कि "धर्मोयम् सार्व

वर्णिका" सबके लिए समान गुण आवश्यक है। फिर भी हरेक के अपने-अपने वर्ण के अनुसार अलग-अलग गुण भी होने हैं। विशेषता कायम रखते हुए सबको परिपूर्ण मानव बनाना उसका उद्देश्य है। सबको मन, हाथ, सिर आदि सब अवयव दिये गये हैं। इसलिए सबको सभी काम करना चाहिए। फिर भी वह किसी एक काम को प्रधानता दे सकता है।

मैं चाहता हू कि मालिक और मजदूर का भेद मिट जाय। जिसका मतलब यह नही कि हम मालिक की अक्ल का उपयोग नही करना चाहते। जो मालिक होगा, वह मजदूर भी होगा और जो मजदूर होगा वह मालिक भी होगा। कुछ तो 'मालिक-प्रधान मजदूर' रहेंगे, जो हाथ का काम करते हुए भी दिमाग के काम को प्रधानता देंगे और कुछ 'मजदूर प्रधान मालिक' होंगे, जो दिमाग का काम करते हुए हाथ के काम को प्रधानता देंगे। 'बुद्धिप्रधान शरीर-श्रम करनेवाले' और 'श्रम-प्रधान बुद्धि का काम करनेवाले,' ऐसी व्यवस्था समाज में होनी चाहिए। अगर भगवान् यह नही चाहता तो कुछ को तो वह हाथ-ही-हाथ देता और कुछ को केवल बुद्धि ही देता। राहु और केतु के समान सबको अपूर्ण बनाता। पर उसने सबको परिपूर्ण बनाया है, इसलिए कि सब परिपूर्ण जीवन बिता सके।

हम मालिक-मजदूर-भेद मिटाना चाहते हैं, पर इसका अर्थ यह नही कि मजदूर की श्रम-शक्ति का या मालिक की व्यवस्था-शक्ति का हम विकास नही चाहते? हम दोनो की दोनो तरह की शक्तियो का विकास करना चाहते हैं। हम 'समता' लाना चाहते हैं और 'क्षमता' को भी खोना नही चाहते। इस दृष्टि से आप इस काम की ओर देखिये और यदि यह काम आपको जच जाय, तो अपना काम समझ कर उसे उठा लीजिये तथा इस काम में जुट जाइये।

भविष्य की दृष्टि से

काका कालेलकर

भील लोगो के जीवन में कुछ विशेषताएं है। उनका प्रकृति के प्रति प्रेम हमारी काव्य रसिकता के जितना छिछला नही होता। मछलियों के लिए पानी की जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही आवश्यकता भीलो के लिये प्राकृतिक स्वाधीनता की होनी है।

सामाजिक सुधारो के हमारे कुछ उच्च-से-उच्च आदर्शों को तो भील जाति ने अपने जीवन में पहले से ही उतारा है। कोई सामाजिक शक्ति उसमें सुप्त रूप से पडी हुई है। स्वाभाविक परिस्थिति में भील साफ दिल उदार और प्रेमल होता है। उसकी सबसे बडी कठिनाई यह है कि उसे प्रगत समाज में हिलमिल जाना नही आता। प्रगत समाज को वह समझ नही सकता। जहा तक हो सके, हमारे समाज को टालने के लिए वह उत्सुक रहता है, लेकिन जीवन-कलह में वह बेचारा हमारी जीवन प्रणाली से टकराये बिना नही रहता। हमसे बच जाने के लिए वह जिन उपायो का प्रयोग करता है वे हमारी जीवन-पद्धति से मेल नही खाते, इसलिए वह और भी झुंझला उठता है। अत भील की शिक्षा का मुख्य अश तो हमारी जीवन-प्रणाली के साथ उसका अच्छा परिचय करा देना है।

फिर भी हमें यह नही भूलना चाहिए कि ऐसा करने से हम एक तरह से भगवान का अपराध करते हैं। भगवान ने भील संस्कृति को अपनी सृष्टि में स्थान दिया। उस संस्कृति को रहने देने जितनी निस्पृह तटस्थता हममें नही है इसलिए उसे धर्मभ्रष्ट किये बिना कोई चारा नही है। भीलों को हम अपने जैसे कराके ही छोडेंगे; उन्हें सुखी भी करेंगे। भील व्यक्तियो के प्रति हमारा दयाभाव विकसित होगा। फिर भी हम यह न भूलें कि हम तो भील-संस्कृति का नाश ही करने बैठे हैं।

सच्चे समाज-सुधारक की दीर्घदृष्टि अगर हममें हो तो भील-संस्कृति के गहरे प्राणतत्वों का नाश हम न करें। अभी से इस सम्बन्ध में सूक्ष्म विचार करके इन

तत्वों को बचाने और भविष्य के अधिक अच्छे जमाने तक उन्हें बनाये रखने का प्रयत्न हम करें।

भील लोगों का जीवन जांचने से ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन-तत्व, उनका जीवन-रस, उनके संगीत और नृत्य में उपस्थित है। हम देख सकते हैं कि भील को अपने संगीत और नृत्य में कितना मजा आता है लेकिन हम यह नहीं समझ सकते कि नृत्य-संगीत में उसे किस तरह का सुख मिलता है। यह नहीं कहा जा सकता कि कोई भील बालक बड़ा ढोल गले में लटका कर घंटों अकेला ही गाता-नाचता रहे तो उस दृश्य के पीछे के उसके जीवनानन्द को हम समझ सकते हैं। हमारा संगीत का स्वाद जीवन का आहार नहीं, किन्तु सिर्फ मसाले जैसा है। हम उसकी भावनाओं को नहीं समझते, इसलिए उसे जंगली कहकर दिमाग से निकाल देते हैं।

अंग्रेजों ने संस्कृत भाषा और साहित्य की खोज की। उससे पहले उनकी दृष्टि में सारी संस्कृत-संस्कृति का अस्तित्व ही नहीं था। वे यह मानकर चलते थे कि अजीब लोगों के अजीब वहमों से भरा हुआ यह कुछ जंगली साहित्य है। जैसे-जैसे उन्होंने संस्कृत का अध्ययन करना शुरू किया वैसे-वैसे उन्होंने देख लिया कि मनुष्य-जीवन की सारी समृद्धि उसमें उपस्थित है। इतना ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति इतनी विशाल और गहरी और स्वतन्त्र है कि अब भारतीय दृष्टि से जीवन का निरीक्षण-परीक्षण करके मनुष्य-जाति की यात्रा की दिशा फेरनी पड़ेगी।

भील-जैसी पिछड़ी माने जानेवाली जाति में जो नृत्य-संगीत चलता है उसकी रसिकता, उसका आनन्द और उसकी पुष्टि को जिस दिन हम समझ जायेंगे उस दिन शायद हमें लगेगा कि यह वस्तु पूर्णतया स्वतन्त्र और भाववाही है। इस वस्तु को अगर हम उनके जीवन में रहने न देंगे तो उनका जीवन उतनी मात्रा में त्रुटियुक्त या कंगाल माना जायगा।

आज हम यह सब नहीं समज सकते इसलिए हमारा कम से कम कर्तव्य इतना है कि हम उस नृत्य-संगीत को मरने न दें; उसे टिकाये रखने के लिए जितनी अनुकूलता पैदा कर सकें उतनी अवश्य करदें। भीलों को प्रगत जीवन में धर्मान्तरित करने से पहले इतना खयाल तो हमें रखना ही चाहिए कि उनकी यह विशेषता बनी रहे। भारतीय जीवन-दृष्टि का असर जिस तरह इस्लाम और ईसाई धर्म पर होने लगा है उस तरह भीलों के जीवन-रस का असर कभी-कभी हम पर जरूर होता है। वह जाति आज बालक-दशा में है। दुनिया के प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी बालक-दशा में बहुत बार असहाय और अनघड़-जैसे मालूम होते हैं। इसी तरह शायद भील जीवन के अनघड़पन में हमारी संस्कृति को बिलकुल स्वतन्त्र और अकल्पित तेज देने की शक्ति है। हम संस्कारी हैं; लेकिन उसी कारण कुछ हद तक क्षीणवीर्य भी हैं। जंगली कौमों के पास हमारे संस्कार न भी हों, लेकिन सारे जीवन की ओर नवीन दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति और शक्ति उनमें हो सकती है, और चूंकि उनकी प्राण-शक्ति खर्च नहीं हुई है, इसलिए जब वे ऊपर उठने का प्रयत्न करेंगे तब हनुमानजी की तरह अगर वे बड़े-बड़े उड्डयन दुनिया को दिखायें तो उसमें क्या आश्चर्य ? जबतक हम यह नहीं जानते थे कि खान से निकलनेवाले काले-कलूटे कोयले में कितनी अग्नि-शक्ति मौजूद है तबतक हमने उसकी कितनी कद्र की थी ?

हम जानते हैं कि भीलों के संगीत तथा नृत्य में जो ताल होता है उसका असाधारण प्रभाव शरीर के व्यापार एवं ज्ञान-तन्तुओं पर पड़ता है। जिस तरह प्राणायाम के द्वारा मनुष्य वज्रकाय बन सकता है उसी तरह विशिष्ट प्रकार के संगीत और तालबद्ध हावभावों से सामान्य शरीर से असामान्य काम निकालना संभव है—इतनी बात स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन आज हम यह नहीं कह सकते कि वह शक्ति किस दिशा में विकसित होगी। संगीत-नृत्य की मिसाल यहां सिर्फ नमूने के तौर पर ली गई है। भीलों के जीवन एवं उनके जीवन-रस को हमें बड़े आदर के साथ खूब परखना चाहिए और उसमें बड़े-बड़े परिवर्तन करने से पहले यह जरूरी है कि सरजनहार जीवन-स्वामी से डरकर उसकी सृष्टि तथा योजना की गूढ़ता को ध्यान में रखकर हम चलें।

(अनु० श्रीपाद जोशी)

हरिभाऊ उपाध्याय

श्री जार्ज अरंडेल

महात्माजी ने एक बार मुझसे कहा था कि ये अंग्रेज तो योगियों की सन्तान मालूम होते हैं। उनकी प्रबन्ध-पटुता, नियमित और व्यवस्थित जीवन, कार्य-दक्षता किसी योगी से कम नहीं। बस एक ही कसर है। वह यह कि इनका ज्यादा प्रयत्न दूसरो को शोषण करने का होता है। दूसरे मायनों में मैं उनको कभी-कभी रावण की सन्तान कहा करता हूँ। रावण भी बड़ा विद्वान् और तपस्वी था, अच्छा शासक और सगठनकर्ता था, परन्तु वह रावण इसलिए कहलाया कि दूसरों को सताता था। फिर भी अंग्रेजो के गुणों का मैं भक्त हूँ और उनके मुकाबले में कई बार हिन्दुस्तानियों को घटिया पाता हू।

स्वर्गीय श्री जार्ज अरडेल का खयाल आते ही महात्माजी के पूर्वोक्त वचन याद आ जाते हैं। फर्क इतना ही है कि अंग्रेजों में दूसरो का शोषण करने की जो वृत्ति पाई जाती है, उससे श्री अरडल बिल्कुल बरी थे। इतना ही नहीं, बल्कि वह अथ से इति तक एक सेवाभावी, निष्ठावान, उच्च कोटी के साधक थे। विद्वान् तो थे ही, लेकिन उनकी दृष्टि में विद्वत्ता का दर्जा जीवन-शुद्धि और जीवन सिद्धि के मुकाबले में कम था। उनकी इस विशेषता ने उन्हें कोरा विद्वान् न रहने देकर थियोसफी की ब्रह्म-विद्या संबधी सस्था का अधिष्ठाता बना दिया।

विद्वान् अक्सर भीरु होते हैं। उनका शास्त्र-ज्ञान उनके साहस को मद कर देता है। पर श्री अरडेल बडे साहसी और निर्भीक व्यक्ति थे। १९२१ की एक घटना मुझे याद आती है, जबकि मैंने पहले पहल श्री अरडल के दर्शन बनारस के हिन्दू कालेज में किये थे। वह उन दिनों इस कालेज के प्रिंसिपल थे। मैं उनकी स्कूल-शाखा मे एक विद्यार्थी था। स्कूल के हैडमास्टर प० इकबालनारायण गुर्टू थ। जिस दिन मैं स्कूल में भर्ती होने के लिए गया, श्री अरडेल और गुर्टू साहब को एक साथ टहलते हुए देखा। दोनो का रग गोरा था। श्री गुर्टू यदि अंग्रेजी लिबास में होते, मूछ मुडे हुए होते तो यह कोई भी न कह सकता कि वह हिन्दुस्तानी है। दोनो टहलते हुए इस तरह कदम मिला कर चलते थे जैसे कोई मशीन के पुतले चल रहे हो। हाथ और पाव की गति दोनो की एक समान थी। इसमें उनका कोई खास प्रयत्न नहीं दिखाई देता था बल्कि वह उनकी साधना ही थी। इस विशेषता ने प्रथम दर्शन में ही मेरा ध्यान खीचा और मेरे मन न शिक्षण-सस्थाओ के अध्यापको के जीवन में कितनी अनुशासन बद्धता होनी चाहिए, इसका दर्शन किया।

मेरे भर्ती होने के कुछ दिन बाद ही एक घटना हुई जिसने श्री अरडल के प्रति मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ा दी। उन दिनों भारत में बम पार्टी का बडा जोर था। ग्वालियर में एक षड्यत्र केस हुआ था, जिसमें वहा के विक्टोरिया कालेज के प्रोफेसर श्री हरि रामचन्द्र दिवेकर को शायद डेढ़ साल की सजा हुई थी। सजा काट कर वे बनारस आये और इस फिराक में थ कि किसी कालेज मे भर्ती होकर एम०ए० पास करलें। एम०ए० प्रीवियस वह कर चुके थे और फाइनल उन्हें करना था। बनारस में उन दिनो दो ही कालेज ऐसे थे। एक सेंट्रल हिन्दू कालेज और दूसरा क्वीन्स कालेज। क्वीन्स कालेज में मुझे जहातक याद है, डा० वेनिस प्रिंसिपल थे। श्री दिवेकर जब और जगह से निराश होकर श्री अरडेल के पास पहुचे और अपना किस्सा बयान किया तो उन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखाई और फौरन भर्ती कर लेने का आश्वासन दिया। जब मुझे यह मालूम हुआ तो मेरे मन ने कहा कि यह शिक्षण सस्था यथार्थ में शिक्षण सस्था है, जहा साहस व निर्भीकता की शिक्षा सर्वप्रथम दी जाती है। उन दिनों एक शिक्षण सस्था के लिए यह मामूली साहस की बात न थी। एक हिन्दुस्तानी तो यह साहस कर ही कैसे सकता था और यूरोपियन से ऐसी आशा हो नहीं सकती थी। श्री अरडेल का यह कार्य व गुण कदापि भुलाने योग्य नहीं है।

केवल इतना ही नहीं, श्री अरडेल उन महान अंग्रेजो में थे जिन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि मानकर एक-निष्ठता से उसकी सेवा की थी। वे उन विद्वानो में से

थे जिन्होंने अपनी विद्वत्ता भारत के अशिक्षित और पिछड़े हुए लोगों को शिक्षित और प्रगतिशील बनाने में लगादी थी। वे मानवता के उन सच्चे उपासकों में से थे, जिनकी दृष्टि में न तो रंग या धर्म कोई अन्तर डाल पाये थे, न ऊंच या नीच। वे राष्ट्रीयता के उन प्रचारकों और प्रवर्तकों में से थे जिन्होंने अपनी जाति और अपनी सरकार से विरोध मोल लेकर, विलास और वैभव को ठुकराकर स्वेच्छा से कठिनाई और आपदाओं को वरण किया था। वे उन दार्शनिकों में से थे, जिन्होंने धर्म और सम्प्रदाय के संकुचित घेरे से ऊपर उठ कर समूची मानव जाति को एकता के सूत्र में बान्धने और उसे चिरन्तन शान्ति एवं आनन्द के पथ पर अग्रसर करने के लिए शक्ति-भर प्रयत्न किया था।

उनके अदम्य उत्साह और श्रद्धा का परिचय मुझे हुआ १९११ या १९१२ में, जब थियासफीकल कनवेन्शन बनारस में हुआ था और श्री जे० कृष्णमूर्ति के एक अवतार होने की चर्चा फैल रही थी। मुझे जहां तक याद है शायद बनारस में ही यह पहले पहल घोषणा की गई थी और श्रीमती एनी बीसेन्ट से लगा कर बड़े बड़े थियोसोफिस्ट श्री जे० कृष्णमूर्ति के प्रति बड़ी नम्रता प्रदर्शित करते थे। उस समय मैं भी उस कनवेन्शन में गया था। श्री जे० कृष्णमूर्ति को देखकर उस समय तो मेरे मन पर कोई खास असर नहीं हुआ। उनके छोटे भाई और उनके पिता स्व० श्री नारायणैया साथ थे। मुझे वह सब एक खिलवाड़ जैसा लगा। परन्तु बड़े-बड़े थियोसोफिस्ट और खास कर श्री अरंडेल बड़ी श्रद्धा से उन्हें मानते थे। मुझे आज भी याद है कि जब कभी श्री जे० कृष्णमूर्ति का नाम भाषण में आता तो उनका चेहरा श्रद्धा से खिल उठता। वह श्रद्धा और उत्साहमयी मूर्ति आज भी मेरी आंखों में नाच रही है।

यद्यपि श्री अरंडेल का जन्म तथा शिक्षा-दीक्षा यूरोप में ही हुई थी तथापि वे अपनी युवावस्था से ही भारत के मामलों में बड़ी दिलचस्पी लेने लगे थे। वे भारत की समस्याओं को समझने का प्रयत्न करते और यहां की हल-चलों को ध्यान से देखते थे। भारत के लिए उनके हृदय में जो प्रेम और सहानुभूति की भावना थी, वह निरन्तर बढ़ती गई और एक समय वह आया जब कि उन्होंने सन् १९०३ में ब्रिटिश सेक्शन के जनरल सेक्रेटरी का पद छोड़ कर बनारस के सेंट्रल हिन्दू कालिज में इतिहास के अध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। इस कालिज की स्थापना श्रीमती एनीबीसेन्ट ने की थी। श्रीमती एनीबीसेन्ट के लिए उनके मन में अपार श्रद्धा और भक्ति थी। थियासाफिकल सोसायटी के प्रचार और प्रसार के लिए वे जो विश्वव्यापी कार्य कर रही थीं, उसे वे बड़े आदर की दृष्टि से देखते आये थे। श्रीमती एनी बीसेन्ट के प्रति उनकी यह श्रद्धा ही उन्हें सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में खींच लाई। सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में वे श्रीमती एनी बीसेन्ट के निकट संपर्क में आये और अपना काम इतनी तत्परता और लगन से करने लगे कि वे कालिज के प्रिंसिपल के पद पर पहुंच गये। इतना ही नहीं, धीरे-धीरे वे श्रीमती एनी बीसेन्ट के प्रमुख साथी और दाहिने हाथ बन गये।

श्रीमती एनी बीसेन्ट ने प्रारम्भ में धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों तक ही अपने को सीमित रखा था। अतः श्री अरंडेल भी शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में ही काम करते रहे। अपनी विद्वत्ता एवं क्रियाशीलता के कारण समय-समय पर वे इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के, नैशनल यूनिवर्सिटी, मद्रास के प्रिंसिपल, होल्कर राज्य के शिक्षा मंत्री तथा भारत के लिबरल केथोलिक चर्च के रिजनरी बिशप जैसे उच्च पदों पर पहुंचे और अपना समय एवं शक्ति इन कामों में लगाते रहे। लेकिन श्रीमती एनी बीसेन्ट राजनीति में आई तो वे भी उनके साथ-साथ इस क्षेत्र में कूद पड़े।

यह बड़ा ही नाजुक समय था। भारत की पुकार पर इस समय न तो कोई ध्यान दे रहा था, न कोई ऐसा व्यक्ति ही था, जो नेतृत्व के सूत्र को अच्छी तरह संभाल सके। श्रीमती एनी बीसेन्ट में विशाल विद्याबुद्धि, अदम्य इच्छा-शक्ति एवं अथक कार्यशीलता का बड़ा ही सुन्दर समन्वय था। राजनीति में प्रवेश करके उन्होंने जरा भी चैन नहीं लिया। वे जानती थीं कि अब प्रस्ताव पास करके भारत की समस्या हल नहीं हो सकती। अब तो समूचे देश में एक जोरदार आन्दोलन करना पड़ेगा। अतः उन्होंने 'न्यू इंडिया' नामक एक दैनिक पत्र निकाला तथा 'कामन

वील' नामक साप्ताहिक। इन पत्रों ने भारत में एक सिरे से दूसरे सिरे तक तूफान मचा दिया। इन पत्रों के खास कर 'न्यू इंडिया' के सम्पादन का काम श्री अरडेल ने भी किया और वे इस आन्दोलन में पूरी तरह उनके साथ रहे। श्रीमती एनी बीसेन्ट का यह आन्दोलन इतना व्यापक और उग्र बना कि सरकार के लिए चुपचाप बैठना असंभव हो गया। उसने आन्दोलन को दबाना प्रारम्भ कर दिया और भारत-रक्षा कानून के अन्तर्गत श्रीमती एनी बीसेन्ट के साथ ही श्री अरडेल को भी उटकमंड में नजरबन्द कर दिया। श्रीमती एनी बीसेन्ट के साथ उनकी भी नजरबन्दी इस बात का प्रमाण है कि वे इस आन्दोलन में श्रीमती एनी बीसेन्ट के साथ-साथ काफी आगे बढ़ गए थे और उतनी ही तरह सरकार के लिए खतरनाक बन गए थे। इस समाचार से सारे देश में उत्तेजना फैल गई और श्री अरडेल की प्रसिद्धि चारों ओर हो गई।

श्री अरडेल यद्यपि होमरूल के आन्दोलन में आगे आ गये थे तथापि उनका प्रिय काम तो सेवा का ही था। बड़े-बड़े आन्दोलन की बजाय मूक सेवक की भांति मानवता की सेवा में लगे रहना ही उन्हें प्रिय था। बालचर-आन्दोलन इस दृष्टि से उन्हें बड़ा अच्छा लगा। बालकों में सेवा-भावना भरकर उन्हें देश के सच्चे नागरिक बनाने का कार्य बड़ा पवित्र और उच्च कोटि का था। वे भारतीय बालचर-आन्दोलन के डिप्टी-चीफ-स्काउट बने और इसके बाद मद्रास प्रान्त की बाय स्काउट कौन्सिल के वाइस प्रेसीडेन्ट के पद पर भी उन्होंने बड़ी तत्परता और लगन से कार्य किया। उन्होंने मद्रास प्रान्त की सेवा समिति के प्रान्तीय कमिश्नर के पद पर भी बड़ी योग्यता से काम किया।

बालचर-आन्दोलन की भांति मजदूरों की उन्नति का आन्दोलन भी उनका बड़ा प्रिय था। यूरोप में मजदूरों की उन्नति का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था और वे अपना संगठन वहां मजबूत कर रहे थे, लेकिन भारत में तो इस प्रकार का कोई आन्दोलन था नहीं। अतः श्री अरडेल ने इस काम में भी बड़ी दिलचस्पी ली। उन्होंने मद्रास में यह कार्य प्रारम्भ किया और मद्रास लेबर-यूनियन के आनरेरी प्रेसीडेन्ट के पद पर भी बहुत दिनों तक कार्य करते रहे। मद्रास की यह लेबर यूनियन भारत की सबसे पुरानी और बड़ी यूनियन मानी जाती है।

इस प्रकार श्री अरडेल ने सेवा के कई क्षेत्रों में काम किया, लेकिन उनका सबसे अधिक प्रिय विषय था धर्म। वे एक साधक थे। श्रीमती एनी बीसेन्ट के प्रति उनके आकर्षण का यही एकमात्र कारण था। बचपन से ही वे थियासफीकल सोसायटी के निर्माता के सपर्क में रहे थे और उसके प्रचार और संगठन के काम में श्रीमती एनी बीसेन्ट के साथ-साथ उन्होंने एक लम्बे अर्से तक कार्य किया। यूरोप तथा दुनिया के अन्य भागों में भी इस आन्दोलन को गतिशील और सफल बनाने में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया। भारत की भांति आस्ट्रेलिया में भी उनकी बड़ी दिलचस्पी थी और वहां भी थियासाफिकल सोसायटी के काम को बढ़ाने में उन्होंने शक्तिभर प्रयत्न किया। श्रीमती एनी बीसेन्ट की ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं थी, जिसमें उनका हाथ न हो। उनकी मृत्यु के बाद वे थियासाफिकल सोसायटी के उपाध्यक्ष नामजद किये गये और बाद में उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। अध्यक्ष के निर्वाचन में उन्हें बहुत ज्यादा मत मिले थे।

उनकी 'निर्वाण', 'माउन्ट एवरेस्ट', 'फ्रीडम ऐंड फ्रेंडशिप' तथा 'गाड्स इन दी बीकमिंग' बड़ी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं, जिनमें उनके दार्शनिक विचारों की भागीरथी का बड़ा ही सुन्दर प्रवाह है। श्रीमती रुक्मिणीदेवीजी से विवाह करके तो मानो वे पूरी तरह भारतीय बन गये थे।

उनके विवाह की घटना उस समय तो मुझे बड़ी ही विचित्र लगी। श्रीमती रुक्मिणीदेवी अपने बाल्यकाल में श्री अरडेल से शिक्षा पाती थीं, अर्थात् उनकी शिष्या थीं। विद्यादान के उपक्रम में से दोनों के प्रणय का जन्म हुआ और वे विवाह बंधन में बंध गये। उस समय के हिन्दु-संसार को ऐसे विवाह से गहरा आघात लगा था और श्री अरडेल के प्रति मेरी श्रद्धा को भी एक धक्का लगा, एक काल तक उनके प्रति मन में उदासीनता आ गई। दोनों की अवस्था में भी बड़ा अन्तर था। बाद में दोनों ने अपने जीवन को जिस प्रकार राष्ट्रीय सेवा और परोपकार में लगाया, उससे मेरे मन का वह भार हल्का हो गया

और अब जब कि विवाह व्यवस्था में ही क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं, उसका एक संस्कार मात्र ही मन पर रह गया है और उसकी आलोचना का भाव नष्ट-प्राय हो गया है। उस समय के सुधारकों ने अवश्य ही यह माना कि श्री अरंडेल और श्रीमती रुक्मिणीदेवी ने इस विवाह के द्वारा पूर्व और पश्चिम में एक मधुर संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

श्री अरंडेल के विचारों की उच्चता, व्यवहार की पवित्रता, सेवा भावना की उत्कटता और साधना शीलता कई भारतीयों में स्फूर्ति और प्रेरणा का संचार कर चुकी है और करती रहेगी। उनका जीवन ऐसे अनमोल गुणों की खान था। उनकी यह छोटी-सी माला आपको अर्पित करते हुए मैं अपने को धन्य मानता हूं। क्योंकि गुणों का स्मरण करने से मनुष्य स्वयं गुणी बन जाता है।

उच्च शिक्षा में एक नया प्रयोग

शंकरदेव विद्यालंकार

ओहियो अमेरिका (संयुक्त राज्य) का एक औद्योगिक राज्य है। वहां पर एंटियोक कालेज में ग्यारह सौ छात्र 'विद्याध्ययन और निज कमाई' की तालीम प्राप्त कर रहे हैं। अब इस कालिज के कार्यवाहक अपनी इस योजना को अपने अध्यापक वर्ग में भी प्रयुक्त किया चाहते हैं। आजकल वहां के छात्र एक सत्र में विद्याभ्यास करते हैं और दूसरे सत्र में कामकाज करते हैं। संचालक लोगों का अब अध्यापकों के प्रति भी यह निवेदन है कि "कुछ समय पढ़ाइए और कुछ समय कमाइए!"

इस योजना की सफलता के लिए कालेज के कार्यवाहक सदस्य देश में विभिन्न उद्योगों, धंधों और सरकारी नौकरियों के अध्यक्षों के साथ बातचीत करके योग्य प्रबन्ध कर रहे हैं। क्योंकि इस प्रकार अध्यापक भी समाज-जीवन में प्रत्यक्ष कामकाज करके कमाई करेगा तो उससे वह अपने शिक्षण-कार्य में भी उपयोगी अनुभव प्राप्त कर सकेगा। इस योजना के सफल होने पर, इसके परिणामों का प्रभाव देश-भर की शिक्षण-संस्थाओं पर पड़ेगा।

इस योजना को सन् १९२१ में आर्थर मार्गन ने प्रारंभ किया था। उस समय वे इस कालिज के अध्यक्ष थे। बाद को वे टेनेसी-घाटी ऑथोरिटी के सभापति बनाए गए थे।

अन्य संस्थाओं के मुकाबले में एंटियोक कालेज एक छोटा-सा कालेज है। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी राज्यों में से तथा समुद्रपार के कितने ही देशों से वहां पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रगण आते हैं। इन विद्यार्थियों को अमेरिका के सभी भागों में कामकाज करने के लिए भेजा जाता है। इस कालेज के सदस्य छात्रों को अपनी-अपनी कक्षाओं में अमुक समय तक शिक्षण प्राप्त करने के पश्चात ऐसे व्यवसायों में कामकाज करने के लिए भेजा जाता है जिससे उनकी तालीम में अभिवृद्धि हो सके। यह कामकाज भी उनके स्नातकीय अध्ययन क्रम का एक अंश माना जाता है। सामान्यतया प्रत्येक स्थान के लिए दो छात्र नियत किए जाते हैं। एक छात्र जिस समय व्यवसाय के लिए जाता था उस समय दूसरा छात्र अध्ययन करता है। फिर जब वह अध्ययन के लिए आता है तब यह छात्र उसकी जगह नौकरी के लिए जाता है। इस प्रकार नौकरी देनेवाले की सारे वर्ष भर नौकरी चालू रहती है।

अध्यापकों के निमित्त थोड़े समय शिक्षण और थोड़े समय कामकाज की योजना को व्यावहारिक बनाने के लिए कालिज के कार्यवाहकों को नौकरी देनेवालों का सहयोग प्राप्त करना होगा। क्योंकि विभिन्न विषयों के अध्यापकों के लिए इस प्रकार के कार्य खोजने होंगे जिनके लिए उनका ज्ञान, अनुभव और योग्यता उचित और साधक हो सके और साथ ही वह कार्य उनकी शिक्षण की शक्ति में वृद्धि करने वाला हो! इस योजना में अध्यापकों की भी सहकारी मंडलियां बन जायेंगी। एक मंडली कालिज में पढ़ा रही होगी उस समय दूसरी मंडली अपने शिक्षण के साथ मेल खाने वाले उद्योग, व्यवसाय अथवा नौकरी में लगी हुई होगी। उसके पश्चात ये मंडलियां शिक्षण और नौकरी की अदला-बदली करेंगी।

[गुजराती 'शिक्षण अने साहित्य' से]

रामनारायण उपाध्याय

आदमी की हमारे हाथों उपेक्षा न हो

विज्ञान के प्रयत्नो से आज हम आदमी की अनुपस्थिति में भी उसे देख, सुन और समझ सकते है। चित्रों में उसका स्वरूप-दर्शन किया जा सकता है। रेकार्ड या रेडियो से उसकी वाणी सुनी जा सकती है और पत्रों एव पुस्तको के ज़रिये उसके विचार जाने जा सकते है।

लेकिन इतने से ही आदमी को सतोष नही हुआ और उसने एक ऐसा आविष्कार किया कि जिससे आदमी के रहने या नही रहने पर भी सिनेमा के पर्दे पर उसे साकार स्वरूप में बोलते, गाते और काम करते देखा जा सके। यो उसने अपने आविष्कार में सम्पूर्णता प्राप्त की, किन्तु जिस क्षण से उसने यह दावा किया उसी क्षण से वह पराजित हो उठा।

उस दिन मै 'न्यू थियेटर्स' का एक खेल देख रहा था। बीच खेल में सूचना मिली कि सहगल की मृत्यु हो गई। न जाने कैसे मन बेचैन हो उठा। सिनेमा के पर्दे पर सहगल के दीखने, बोलने और काम करने के बावजूद भी यह अधिक सत्य था कि सहगल अब नही रहा। चाह कर भी अब उससे प्रत्यक्ष मिला या बोला नही जा सकता। पर्दे में उसके चित्र, बोल और हावभाव को बाध लेने के बावजूद भी प्रत्यक्ष आदमी को उसके समय से अधिक एक क्षण भी रोक सकने की सामर्थ्य किसी में नही, विज्ञान में भी नही। आदमी की यह कैसी लाचारी है मानो वह सब कुछ करके भी कुछ नही कर सकता।

अभी एक रोज़ की बात है। अपने एक मित्र से मिले वर्षों हो गये थे। अचानक रेडियो पर उनकी वाणी सुनने को मिल गई। वही बोल, वही स्टाइल। मै आत्मविभोर-सा उन्हे सुनता रहा। आखो में उनका चित्र छाया था और कानो में उनकी वाणी गूज रही थी कि इसी बीच कार्यक्रम समाप्त हो गया। मैने देखा आसपास कही कोई नही था। और उनके और मेरे बीच की दूरी पुन सैकड़ो मील की दूरी बन चुकी थी। मन मसोसकर रह गया।

गाधीजी के प्रार्थना-प्रवचन रिकार्ड कर लिये गये है। आज भी जब मै उन्हे सुनता हू तो मन में एक हाहाकार, एक तूफान सा उठता है। उनके जीवन के अनेको चित्र, अनेको घटनायें, अनेको स्मृतिया आखो में घूमने लगती है और यो मै उन्हे सुनकर भी नही सुन पाता। लगता है कि अभी कल तक जो हमें सहज प्राप्त थ, वे अब हमसे सदा-सदा के लिए दूर चले गये है। और यो मन की बेचैनी बढती ही जाती है।

यो विज्ञान के सहारे आदमी से मिलने के जितने भी साधन है उनमें से किसी में भी इतना आनन्द नहीं, जितना प्रत्यक्ष आदमी से मिलकर होता है। आदमी आदमी से मिलकर भले ही ज्ञान की या काम की बात न करे या मौन रह जाय लेकिन आदमी को आदमी से मिलकर जो आनन्द होता है उसकी तुलना में दूसरा कोई सुख नही।

आज जो विज्ञान की हवा चली है उसमें कही ऐसा न हो कि हम 'चित्र' की तो पूजा करें और प्रत्यक्ष 'आदमी' की हमारे हाथो उपेक्षा होती चले।

पर्दे के छाया चित्रों को देखकर ही हम खुशी मनायें लेकिन मनुष्य की मृत्यु से हममें 'वेदना' न जगे। लेखक की वाणी या विचारो से तो हम प्रभावित हों, लेकिन उससे हमारी कोई 'आत्मीयता' न बने। रेडियो से हम देश विदेश की खबरें तो सुनें, लेकिन अपने ही पड़ौसी के 'दुख दर्द' से हम बेखबर रह जायें।

वास्तव में इस धरती का सबसे बडा सत्य 'आदमी' है। और आदमी से आदमी की तरह मिलने, आदमी के नजदीक आने, आदमी की सेवा, सहायता करने और आदमी को प्यार करने से बढकर और कोई सुख नही है।

क्या आप झूठा पानी पीना पसन्द करेंगे ? यदि नही तो पुस्तके माग कर क्यो पढते है ?

बापू की अहिंसक राज्य-पद्धति

कंचनलता सब्बरवाल, एम. ए.

दिनों नहीं, महीनों नहीं, वर्षों नहीं सैकड़ों वर्षों के पश्चात् १९४७ भारत के कन्धों पर से गुलामी का जुआ उतारने में सफल हुआ। भारत स्वतन्त्र हुआ। यद्यपि आनन्द की वह सर्वव्यापी लहर न वह सकी जिसकी कल्पना आजादी के दीवाने, नींव के पत्थर, देश के असंख्य नवयुवक नवयुवतियां—शहीद कर रहे थे फिर भी रक्त-स्नान की हुई आज़ादी मिली ही। जो हो वह कहानी दूसरी है—भारत स्वतन्त्र हुआ। विदेशी शासन का अन्त हुआ और जन-जन की कल्पना में नाच उठी पूज्य बापू की वाणी। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था "आर्थिक समानता के प्रयत्न के माने पूंजी और श्रम के शाश्वत विरोध का परिहार करना है।" इसके मानी यह है कि एक तरफ से जिन मुट्ठीभर धनाढ्यों के हाथ में राष्ट्र की संपत्ति का अधिकांश इकट्ठा हुआ है, वे नीचे को उतरें और जो करोड़ों लोग भूखे और नंगे हैं, उनकी भूमिका ऊंची उठे। जबतक मालदार लोगों और भूखी जनता के बीच यह चौड़ी खाई मौजूद है, तबतक अहिंसक राज्यपद्धति सर्वथा असंभव है। नई दिल्ली के राजमहलों और गरीब मजदूर की झोंपड़ियों में जो विषमता है, वह स्वतन्त्र भारत में एक दिन भी नहीं टिक सकती; क्योंकि उस समय गरीबों को उतना ही अधिकार होगा, जितना कि धनवान से धनवान को। अगर सम्पत्ति का और सम्पत्ति से होने वाली सत्ता का खुशी से त्याग नहीं किया जायगा और सार्वजनिक हित के लिए उसका संविभाग नहीं किया जायगा तो हिंसक क्रान्ति और रक्तपात अवश्यम्भावी है। स्वतन्त्र भारत में पांच वर्ष व्यतीत कर चुकने पर आज यह लेखा-जोखा लेना आवश्यक हो गया है कि कहां तक हम 'अहिंसक राज्य पद्धति' की स्थापना कर पाए हैं। बापू ने जिस विषमता की ओर संकेत किया था क्या स्वतन्त्र भारत के पंचगुने तीन सौ पैंसठ दिनों में वह टिक नहीं पायी है? राजमहलों ने क्या आज भी झोंपड़ियों को अपने भीतर या अपने आसपास स्थान दिया है? क्या आज हम सगर्व सिर उठाकर यह कह सकते हैं कि स्वतन्त्र भारत में एक भी व्यक्ति भूखा, नंगा, बेघरबार नहीं है?

यह सत्य है कि विभिन्न प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक यहांतक कि सामाजिक कठिनाइयों ने भी अपने उग्ररूप में इन्हीं पांच वर्षों में दर्शन दिये; किन्तु साथ ही यह भी तो सत्य है कि यह पांच वर्ष भारतवर्ष में महात्मा गांधी के 'अहिंसक राज्य पद्धति' पर अक्षरशः विश्वास करनेवाले पांच व्यक्ति भी उत्पन्न नहीं कर पाये हैं। यदि ऐसे पांच व्यक्ति ही बापू की भांति अदम्य उत्साह लेकर सत्ता एवं पदाधिकार की भावना से मुक्त होकर इस चौड़ी खाई को जो आज भी उसी तरह उपस्थित है, भर सकते तो सम्भवतः समस्या का आंशिक हल हो सकना सम्भव हो जाता। देश में आज भी बेकारी है और उसका कारण केवलमात्र यही नहीं है कि भारतीय आलसी हैं, उसका कारण यह भी नहीं है कि भारतीय श्रम का मूल्य किसी प्रकार भी समझना ही नहीं चाहता है। श्रम का मूल्य तो पेट में निरन्तर धधकने वाली ज्वाला मानव को स्वयं सिखा देती है। कारण है श्रम का व्यावसायिक ढंग पर ठीक से बंटवारा न होना। योजनायें बनती हैं और बनती चली जाती हैं किन्तु उनका मूल्य केवल 'योजना मात्र' ही रह जाता है। व्यक्तिगत वैभव तथा धन से उत्पन्न सत्ता के प्रतीक आज भी सिर ऊंचा किये भारत की अधिकांश निर्धन जनता का उपहास ही किया करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश के धन को उसकी उत्पादन शक्ति को बढ़ाये बिना सम बंटवारे की चर्चा करना व्यर्थ है। जब तक देश में इतनी वस्तुएं नहीं हो जाती कि प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की आवश्यक पूर्ति हो सके तबतक 'बंटवारे की समता' अथवा 'अत्यावश्यक सबके लिए' का नारा लगाना थोथा अवश्य हो जाता है किन्तु देश की सम्पदा बढ़ाने के लिए कितने युगों की आवश्यकता होगी? कबतक हम बापू के उस स्वप्न को साकार सत्य बना देखने के लिए आंखें फाड़ धरती एवं आकाश की ओर देखते रहेंगे? सन्त विनोबा को स्वतन्त्र भारत में भी बापू के 'रामराज्य' की कल्पना साकार करने के लिए झोली फैला कर द्वार-द्वार दरिद्रनारायण की प्रसाद खोजने की आवश्यकता क्यों हुई? करोड़ों भूखे और नंगे देशवासियों

की भूमिका ऊंची उठाने के लिए ही तो हमारे सम्मुख और भी देशो के उदाहरण है जोकि हमसे कही पिछड हुए थे। जहा केवल धन वैभव और जन्मजात वश के आधार पर ही मानव-मानव में इतनी अचिर भेद की सृष्टि कर दी थी कि एक आकाश के नीचे झाकना भी अपराध समझता था और दूसरे को पाताल से तनिक ऊपर देख पाने की सुविधा पाने के भी सब द्वार बन्द कर दिये गये थे। यद्यपि दोना मानव ही तो थे फिर भी उन देशो ने ऐसे थोडे से ही समय में इस भेद को कम कर दिया। श्रम का मूल्य है और बहुत अधिक है। सचमुच ही आज की कला आज का सौन्दर्य, आज दिन विश्व की सभ्यता और सस्कृति श्रमकार की सबसे बडी देनदार है। श्रमकार श्रमजीवी ने ही भूखे रहकर नग रहकर झोपडो में शीत, धूप और वर्षा की कठोर वृश के आघात सहकर यहातक पत्नी को आधपेट खाते और बच्चा को औषधि के बिना, पथ्य के बिना मर जाते देखकर भी विश्व को सुन्दर और सुन्दरतर बनाया। यह बनाते जाना, बनाते रहना उसकी लाचारी थी, बेबसी थी और थी साधनहीनता, किन्तु उसने यह सब किया तो और विश्वसस्कृति उसकी देनदार तो है ही। यही भारत में भी नितान्त सत्य है, किन्तु केवल इस सत्य का उल्लेख कर भर देने से ही तो आर्थिक समानता —वह आर्थिक समानता जिसका बापू ने उल्लेख किया है, वह आर्थिक समानता जिसका अर्थ है पूजी और श्रम के शाश्वत विरोध का परिहार करना—स्थापित नही हो सकेगी? आज भी पूजी और श्रमी का शाश्वत विरोध जावित है। आज भी प्रत्येक मानव की भीतरी श्रम शक्तियो सम्बन्धी खोजें नहीं हो पा रही हैं—आज भी औद्योगिक कौशल सम्बन्धी रुचि जाग्रत करने की योजनाए अधूरी है क्या? शायद इसलिए कि बापू की 'अहिंसक राज्य पद्धति जिसका आधार था स्वेच्छा, जिसका मूल था स्वेच्छा से सम्पत्ति एव सम्पत्ति से होनेवाली सत्ता का त्याग और सार्वजनिक हित के लिए उसका सविभाग—किन्तु आज उसका पता भी कहा है? एकाकी सन्त विनोबा स्वेच्छा से दिया गया भूमि का दान माग रहा है, किन्तु स्वेच्छा से त्याग किया गया सत्ता का दान कौन देगा? वह सत्ता जिसमें पूजीवादी का सा गर्व है, वह सत्ता जिसमें प्रभुता की भावना है और वह सत्ता जिसमें चाटुकारिता द्वारा प्रसन्न किये जाने की क्षमता है। वस्तुत पूजीवाद की समस्त बुराइया तब ही विषमय और तीखी हो उठती है जबकि उनमें अधिकार-भावना, सत्ता एव सत्ताधारी की-सी प्रवृत्तिया आकर स्थान बना लेती हैं। पूजी के बिना भी किसी भी क्षेत्र में जहा प्रभुता, सत्ता, एव अकारण मानव की मानव पर जमानेवाली अधिकार भावना आ गई वही पूजीवाद की बुराइयो का श्रीगणेश हो जाता है। अत आज दिन आवश्यकता है—सबसे बडी अवश्यक्ता है बापू के 'अहिंसक शासन पद्धति' के सच्चे समर्थको की, उन जनसेवको की, जिनके लिए धन, सत्ता एव ख्याति ही लक्ष्य न हो वरन् लक्ष्य हो देश-सेवा—मानव तो मानव ही है फिर भी ऐसे जनसेवको का देश में सर्वथा अभाव नही है। आज भी देश के कोने-कोने में अज्ञात, अविख्यात, अपने अपने छोटे छोटे सीमित क्षेत्रो में मूक मौन काय करनेवाले जनसेवक है ही। उन्हे एकत्रित करके, उनकी शक्ति सगठित करके आवश्यकता है उन्हे एक ही लक्ष्य की ओर लगाने की और वह लक्ष्य होगा मानव का मानव से कृत्रिम भेद मिटा देना। काम कोई भी छोटा नही है। किसी भी एक ढग से जीविका उपार्जन करनेवाला दूसरे ढग से जीविका उपार्जन करनेवाले से हय नही है, निम्न नही है फिर भी आज दिन सचमुच दुख रोता है यह देख कर कि एक व्यक्ति नैनीताल की प्रकृति छवि देखने का लोभसवरण न कर सकने के कारण आता है चार निरीह प्राणियो के कन्धो पर रखी डाडी पर बैठ कर। इतना तो ठीक ही है किन्तु वह चार मानव—जीवित भारतीय प्राण गिडगिडाते है उस कधो पर बैठे हुए व्यक्ति से चादी एक चमकदार सिक्का पाने के लिए—यद्यपि असमय में ही मर कर, यावज्जीवन चिथडे लगाकर, स्वय उगा कर भी महीन नही मोटा अन्न खाकर भी वह अपने बच्चों के लिए शिक्षा तो दूर रही पेटभर अन्न भी नही जुटा पाते और वह भी स्वतन्त्र भारत के वासी है। यही नही छाती फाडकर श्रम करते हैं—यही नही बुद्धि में भी अवसर पाते ही प्रमाणित कर देते है कि वह उन मानव प्राणियो से तनिक

भी कम नहीं हैं जिन्हें निरन्तर कन्धों पर ढोकर वह पर्वत की ऊंची-से-ऊंची श्रेणियों तक पहुंचा देते हैं। आज हम 'श्रम के मूल्य' का गीत गाते हैं किन्तु मीलों मनों बोझ पीठ पर लेकर चढ़ाई चढ़नेवाले मानव के श्रम का मूल्य हमारे दस मिनट कलम घिसने के पारिश्रमिक से कहीं कम ही क्यों रह जाता है? इसीलिए तो कि आज भी मानव मानव नहीं है। आज भी उसके भीतर असमानता इतनी अधिक है कि एक दूसरे पर हर प्रकार का अत्याचार करके भी समाज में सिर उठा कर चल पाता है, लज्जा से उसका सिर झुक नहीं जाता। पूंजीवाद की-बुराइयां हमारे रक्त-मांस में इस प्रकार अच्छाइयां बनकर घुस गई हैं कि इन्हें हम किसी प्रकार भी पहचान नहीं पा रहे हैं। मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूं जिस दिन कोई भी कार्य-क्षेत्र हो कोई भी पेशा हो, कोई भी जीवनमार्ग हो, मानव का सम्मान केवल इसलिए ही होगा कि वह मानव है। अतिरिक्त सम्मान आप गुणों के लिए दीजिए और अवश्य दीजिए; किन्तु प्राप्य सम्मान तो मानव को केवल इसीलिए दीजिये कि वह मानव है। प्रारम्भिक जीवन में जीविका उपार्जन करने के लिए योग्य बनने, की सुविधायें तो केवल इसीलिए दीजिये कि वह मानव है। वहां भेद क्यों हो और वह भी 'प्रकृति-दत्त गुणों के आधार पर नहीं केवल इसलिए कि एक व्यक्ति किसी सम्पन्न नागरिक के घर उत्पन्न हुआ है और दूसरे का जन्म साधनहीन दरिद्र की झोंपड़ी में हुआ है। इतनी विषमता को मिटाये बिना 'स्वराज्य' कैसा? यह विषमता तो बापू के शब्दों में स्वतन्त्र भारत में एक दिन भी नहीं रहनी चाहिए। बापू की कल्पना का वह 'अहिंसक शासन पद्धति' द्वारा शासित भारत का सुदिन कब आयेगा नहीं मालूम। किन्तु उनकी प्रतीक्षा अवश्य है, उसे देख पाने की उत्कट अभिलाषा अवश्य है। यदि वह दिन न आ सका तो बापू की भविष्यवाणी सत्य होकर रहेगी।

'प्रार्थना'

सिद्धराज ढड्डा

प्रभु

—तू सर्वव्यापी है; सर्वशक्तिमान है; विश्व के अणु-अणु में तेरा वास है; ज़र्रे-ज़र्रे में तू रमा हुआ है!

—तेरे अस्तित्व से अलग किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं है; तेरी व्यापकता से अछूता कोई तत्व नहीं है; तेरी इच्छा के बिना कोई स्पन्दन नहीं है!

अन्तर्यामी

—आज संसार का कण-कण एक-दूसरे के विरोध में खड़ा है, सामंजस्य और समन्वय की जगह विग्रह और प्रतिद्वन्द्विता ने ले ली है; मत्सर, द्वेष और कलह की ज्वालाओं से पृथ्वी संतप्त हो उठी है; यह ब्रह्माण्ड मानो टुकड़े-टुकड़े होने जा रहा है।

दयामय

—हमारे पापों को क्षमाकर; अपनी दया का विस्तार कर; अपने प्रेम की-वर्षा कर; इस संतप्त भूमि को अपनी करुणा के जल से आर्द्र कर!

सर्वशक्तिमान

—अगर यह संभव नहीं है; अगर क्रिया की प्रतिक्रिया होनी ही है; अगर पाप का फल भोगे बिना कोई चारा नहीं है; तब!

—तब, कृपा करके जल्दी अपना तीसरा नेत्र खोल और प्रलय का ताण्डव होने दे, जिससे पाप-पुण्य, भलाई-बुराई सब उस आग की लपटों में भस्म हो जायँ, मौजूदा पीड़ा और वेदना का अन्त हो, पुरानी बातें सदा के लिए विस्मृत हो जायँ और एक नई सृष्टि का उदय हो।

नियन्ता

—यह तो तुच्छ मानव की पुकार है, जो देश और काल की सीमाओं से आबद्ध है!

—पर तू चराचर का स्वामी है, देशकाल के बन्धन से परे अविनाशी और अक्षर है।

—जो तेरी इच्छा हो वही होने दे, उसीमें हमारा कल्याण है, हमारा श्रेय है!

तेरी इच्छा पूर्ण हो!!!

देवराज 'दिनेश'

अग्रदूत

पात्र

शशिधर —एक तपस्वी महात्मा
मृदुला —शशिधर की पुत्री
केसरीसिंह —एक डाकू
चन्दर, सलीम —गांव के नवयुवक
लखनसिंह —गांव का जमींदार

प्रथम दृश्य

(समय—रात्रि स्थान—शशिधर का आश्रम—आश्रम में तपस्वी शशिधर का मकान, एक कोने में दीपक टिमटिमा रहा है, शशिधर इधर से उधर घूम रहे हैं)

शशिधर—(स्वगत) जीवन में कितना संघर्ष है, कितनी वेदना है, दुःख भी प्रत्येक क्षण एक चरम सत्य की तरह साथ है। सफलता जीवन की पूंजी है, लेकिन वह कितना परिश्रम चाहती है इसे कोई नहीं जानता। लोग नारे लगाना जानते हैं, पर मैं नारों में विश्वास नहीं करता। मैं कहना नहीं करना चाहता हूं। मेरा देश और समाज, मैं इन्हें महान् बना कर ही रहूंगा। यह मेरा छोटा सा गांव, यह मेरा प्यारा सा आश्रम, ये एक आदर्श उपस्थित करेंगे। यह मेरी इच्छा है और मैं जानता हूं कि मेरी इच्छा पूरी होगी।

मृदुला—(आते हुए) बापू! क्या कुछ देर विश्राम नहीं करेंगे।

शशिधर—हूं। कुछ देर आराम करना तो चाहता था, पर करूं क्या? मेरी आंखों में नींद ही नहीं है। दुनिया सो रही है, कोई तो जागता रहे। तू सो जा बेटी! मेरे कारण तेरी नींद भी असमय में ही खुल जाती है।

मृदुला—नहीं बापू! ऐसी तो कोई बात नहीं। मैं सोच रही थी कि आपसे आकर कुछ देर बातें करूं। मैंने अभी अभी सपने में मां को देखा तो अचानक नींद उचट गई।

शशिधर—पगली कहीं की। जा, जाकर सो जा। मृत आत्माओं के विषय में अधिक नहीं सोचते। तेरी मां देवी थी, बस इससे अधिक और मैं कुछ नहीं जानता। वह चाहती थी कि उसके बच्चे राष्ट्र-हित में लगे रहें। उसका पति देश, समाज और जाति का गौरव बन कर जिए। बस मैं यही चाहता हूं कि तुम उसकी इच्छा पूरी कर सको।

(नेपथ्य में किसी के दरवाजा खटखटाने की आवाज)

शशिधर—कौन है!

केसरी—मैं हूं आपका एक सेवक! आपके दर्शनों की अभिलाषा मुझे यहां तक खींच लाई है।

शशिधर—इतनी रात गए! ठहरो, मैं आता हूं।

मृदुला—(धीमे स्वर में) बापू! कोई शत्रु-दल का न हो। मेरे विचार में इस वक्त दरवाजा खोलना ठीक न होगा।

शशिधर—मेरा कोई शत्रु नहीं है, बेटी। मेरा द्वार सबके लिए खुला रहता है। (सोचते हुए) तुम बहुत छोटी थी जब एक रात महान् क्रान्तिकारी वसुमित्र इसी तरह आए थे। पुलिस उनके पीछे थी। उन्हें भी इसी कुटिया ने आश्रय दिया था। वह रात भी इतनी ही गहरी थी।

मृदुला—अच्छा! पर मैं इस समय यहाँ से न हटूंगी।

शशिधर—कोई आवश्यकता भी नहीं है जाने की। तू मृदुला नहीं, मृदुल है। बेटी नहीं, बेटा है। (जाकर दरवाजा खोलते हैं) आओ भाई, कहो कैसे आए हो, क्या चाहते हो हमसे?

केसरी—कुछ नहीं, बस आपके दर्शन की लालसा यहां तक खींच लाई है। बहुत दिनों से सोच रहा था कि आपके दर्शन करूं। लेकिन कब और कैसे करूं यह आज समय ने बतलाया!

शशिधर—भाई! क्या तुम्हारा नाम पूछ सकता हूं!

केसरी—मेरा नाम आप जानते हैं। (मृदुला से) बेटी तू यदि ...

शशिधर—(मृदुला को जाने का संकेत) अरी मृदुला! क्या तू भूल गई कि ये बाहर शीत से आए हैं, कुछ दूध हो तो गरम कर लाओ न! (केसरीसिंह से) क्यों दूध

पियोगे न ! (मृदुला जाती है)

केसरी–किसी के यहां की चीज खाता पीता तो नहीं, पर आपका प्रसाद अवश्य ग्रहण करूंगा !

शशिधर–मैं आपकी बातें समझ नहीं पा रहा। क्या आप छुआछूत में विश्वास करते हैं ?

केसरी–अछूत तो एक तरह से मैं स्वयं हूं ! इसलिए छुआछूत में विश्वास कैसे करूंगा ! पर डरता हूं कोई खाने में विष न मिलादे।

शशिधर–मैं सीधा सादा किसान आदमी हूं, पहेलियां सुलझाना नहीं जानता।

केसरी–कौन कहता है कि आप पहेलियां सुलझाना नहीं जानते। जितनी पहेलियां आपने सुलझाई हैं शायद ही कोई सुलझा सके। फिर मैं तो बलिहारी हूं उस मनुष्य पर, उलझनें स्वयं ही सुलझती हुई जिसके पास चली आ रही हों ! (धीरे से) सुनिये ! मेरा नाम केसरीसिंह है !

शशिधर–(प्रसन्नता से) केसरीसिंह।··· न जाने क्यों मेरा विश्वास था कि एक दिन तुम अवश्य मेरे पास आओगे !··· वह एक दिन आज आही गया !

केसरी–उस दिन आप जब किसानों की उस सभा में बोल रहे थे तो मैं वहां वेष बदल कर अपने साथियों सहित आपका भाषण सुन रहा था। मेरा सिर शर्म से झुक गया था जब आपने कहा कि अपने गरीब भाइयों की रक्षा के लिए केसरीसिंह में जरा भी शर्म होगी तो वह यह डाकूपने का काम छोड़ देगा। मैं स्वयं कभी किसान था और एक दिन इसी सरकार के नये नये अत्याचारों से तंग आकर डाकू बन बैठा। और तभी से शाही खजाने को लूट कर गरीब जनता में बांट देना अपने जीवन का उद्देश्य बनाये घूम रहा हूं।

शशिधर–इससे जनता का क्या बना, बता सकोगे ? अच्छा होता यदि उन किसानों को अपने साथ लेकर सरकार की संगीनों का सीना तान कर सामना करते।

केसरी–अब तो मैं भी यह बात समझ गया हूं। तन, मन, धन, जिस तरह भी हो जनता की सेवा करना चाहता हूं। आप मुझे रास्ता दिखाइये।

शशिधर–रास्ता दिखाया नहीं जाता, खोजा जाता है।

केसरी—ठीक है लेकिन क्या मैं आप के समाज में अपनाया जा सकूंगा।

शशिधर–क्यों नहीं ! तुम्हारे ही वर्ग से आकर एक दिन महर्षि वाल्मीकि हमारे समाज के नेता बने थे।

केसरी–तो फिर आशीर्वाद दीजिये कि मैं आपका साथ दे सकूं। मैं अब जाना चाहता हूं।

शशिधर–कुछ देर बाद चले जाना। तुम्हारे लिये दूध आ रहा है।

केसरी–फिर कभी सही महाराज ! अब पौ फटने वाली है।

शशिधर–समझा, जाओ ! भगवान तुम्हारा पथ प्रशस्त करे।

(नैपथ्य में दूर होती हुई घोड़ों के टाप की आवाज़)

मृदुला–(आते हुए) यह क्या ! क्या अतिथि चले गये।

शशिधर–हां बेटी ! जानती है वह व्यक्ति कौन था ?

मृदुला–न !

शशिधर–वह केसरीसिंह था !

मृदुला–(भयभीत स्वर में) केसरीसिंह ! वह आपसे क्या मांगने आए थे बापू।

शशिधर–मांगने नहीं, देने आये थे, बेटी !

मृदुला–क्या !

शशिधर–एक वचन ! और वह यह कि आगे से वह कभी डाके नहीं डालेंगे। (सहसा आकाश में प्रकाश होता है) हे यह क्या ! यह सहसा इतना प्रकाश कैसा ! ऐसे लगता है जैसे कहीं भीषण आग लग गई हो। (भागने, दौड़ने, चीखने आदि की आवाज़ें आती हैं) अवश्य कहीं बहुत बड़ी दुर्घटना घट गई है। तुम यहीं ठहरो, मैं अभी आता हूं।

(सलीम का प्रवेश, सिर से रक्त बह रहा है)

सलीम–बाबा ! खुदा के वास्ते आप वहां न जाइये। जमींदार के कारिन्दों ने हरिया के खेत में आग लगादी है और बुझाने के लिए आई हुई जनता पर लाठियां लेकर टूट पड़े हैं।

शशिधर–मृदुला ! तुम सलीम का ध्यान रखो। इसे कहीं ठीक ढंग से लिटाओ। मैं अभी आता हूं।

सलीम–न बाबा, न ! आप वहां न जाइये। वे दुष्ट आपके खून के प्यासे हो रहे हैं।

शशिधर–रास्ता छोड दे मेरे बच्चे ! मैं स्वय अपनी आखो से सब कुछ देखना चाहता हू ।

सलीम–(बहोशी-सी में) तो फिर मैं भी तुम्हारे साथ चलूगा । मैं यहा बैठने नही, इतला देने आया था ।

शशिधर–तुम्हारा रक्त काफी बह चुका है । स्वस्थ सिपाहियो के होते हुए घायल सैनिक मोर्चे पर नही जाते । मेरे बेटे, तुम आराम करो ! (शीघ्रता से चले जाते हैं)

सलीम–ओह खुदा (बेहोश हो जाता है)

मृदुला–भैय्या ! सलीम भैय्या ! होश में आओ !

दूसरा दृश्य

(स्थान–शशिधर के आश्रम में दुखी किसान और मजदूरो की सभा)

शशिधर–भाइयो ! यह अत्याचार हमारे लिए नए नही हैं। तुम लोगो के देखते-देखते मैं चार बार इस आश्रम को बना चुका हू । मैं जब कभी सरकार का मेहमान बन कर जेल जाता हू मेरे पीछे मेरी साधना का स्वर्ग मिट्टी में मिला दिया जाता है। लेकिन यह मेरा ही नही तुम्हारा भी है । मैं अपने उन साथियो से जो आज उस अत्याचार की भट्टी में अपना सब कुछ होम कर चुके हैं कहूगा कि वे इस आश्रम को अपना घर समझकर यहा रहें।

सलीम–बाबा! आप जानते हैं कि गाव में क्या बात फैलाई जा रही है !

शशिधर–क्या ?

सलीम–जमीदार और उसके कारिन्दे कहते फिरते हैं कि आश्रम में जाना घोर अपराध है। जो यहा रहेगा उसे जात बिरादरी से निकाल दिया जावेगा। क्योकि यहा चमार, ब्राह्मण, मुसलमान सब इकट्ठे रहते हैं और एक दूसरे के हाथ का छुआ खाते हैं।

शशिधर–यह तो अनाज की बात है पर वे तो चमार, ब्राह्मण, हिन्दु और मुसलमान सबका खून इकट्ठा चूसते हैं।

सलीम–खून का चूसना उनके धर्म में पवित्र समझा जाता है, बाबा ।

शशिधर–अब उनसे साफ साफ कह दो कि हमारे शरीर में और रक्त नही रहा है ।

चन्दर–हा, जितना था वह उन्होने चूस लिया। हम मर जायेंगे परआत्मा फालतू कर नही देंगे। हम जेलो में जायेंगे, फासी के तख्ते पर झूलेंगे पर बेगैरतो की तरह जिन्दगी नही काटेंगे !

शशिधर–तो तुम सब तैय्यार हो !

सब–(एक साथ) हम लोग आपके साथ हैं आप जो कहेंगे हम सब वही करेंगे !

शशिधर–अच्छी तरह से सोच लो ! मैं एक बार आगे बढ कर पीछे हटना नही जानता । मेरे साथ वही आगे बढ़े जिसके सिर पर कफन हो, जिसकी छाती लोहे की हो और जो आफतो मे भी हसना जानता हो।

सब–हम सब तैय्यार हैं !

शशिधर–शाबाश, अब मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप लोगो के सकट के दिन टल गये !

चन्दर–हम सदा से ही आपको अपना नेता मानते आए हैं आप हमारे लिये सब कुछ हैं।

सलीम–आपका हुक्म हमारे सिर आखो पर । आप हमारे सरदार हैं। हम आपके इशारे पर अपना सब कुछ कुर्बान कर सकते हैं।

शशिधर–मुझे आप लोगो से यही आशा थी। अब आप लोग शान्ति से आश्रम के भडारे में भोजन बनायें और खायें। हमारे यहा छुआछूत का कोई प्रश्न नही है । मैं चाहता हू इन्सान इन्सान बन कर जियें । इन्सानियत से बडा और कोई धर्म नही है ।

चन्दर–(एक दम) बाबा ! जमीदार साहब इधर आ रहे हैं। उनके साथ उनके कारिन्दे वगैरा भी हैं ।

शशिधर–शुभ लक्षण है ! आने दो और हा, तुम सब अपने अपने काम में लग जाओ ।

(लोगो का जाना, जमीदार लखनसिह का आना)

लखनसिह–(गुस्से में) यह कैसा भीड भडक्का इकट्ठा कर रखा था, तपस्वी जी ! यह आश्रम है या उचक्को के छिपने की जगह !

शशिधर–जमीदार साहब ! यह उचक्को के छिपने की जगह नही है, धरती के बेटो के लिए मा की ममतामय गोद है।

लखनसिह–अच्छी तरह सोच लो, स्वामीजी ! कही ऐसा न हो कि लेने के देने पड जावें। उनमें कई ऐसे भी हैं जिन्होने खून किये हैं ।

शशिधर—खून करनेवाले तो आपके मकान पर शराब के प्यालों के साथ अट्टहास कर रहे हैं। मेरे पास तो दम तोड़ती हुई लाशें आई हैं।

लखन—मैं आपसे सीधे शब्दों में यह कह देना चाहता हूं कि ये लोग बागी हैं इन्हें शरण देना आपके हित में अच्छा नहीं होगा।

शशिधर—मेरे हितों की आपको इतनी चिन्ता है उसके लिये धन्यवाद ! वैसे मैं आपको यह बतला दूं कि मुझे आपकी धमकियों की जरा भी परवा नहीं है। जो ब्रिटिश साम्राज्य की यातनाओं से नहीं डरा वह आपकी इन गीदड़ भभकियों से क्या डरेगा।

लखन—हूं, तो यह बात है। दो चार बार जेल क्या काट आये हो गोया दुनिया फतह कर ली है। तीन कौड़ी की हस्ती नहीं और......

शशिधर—लखनसिंह ! मेरे आश्रम में इस प्रकार मूर्खतापूर्ण बोलचाल की मनाही है। मैं आपको बतला दूं कि यहाँ बोलते हुए आपको यहा के नियमों का पालन करना होगा। यह आपकी बैठक नहीं कि जिसे चाहा लाल-लाल आंखें दिखा कर टरा दिया। यहां आपको सभ्यता से बोलना चाहिए !

लखन—मैं आपका भाषण नहीं सुनने आया स्वामी जी ! मैं आपको बतला दूँ, कि इस तरह के आश्रम-वाश्रम के ढोंग यहां नहीं चलेंगे। बहू-बेटियों को पढ़ाना कौन से शास्त्र में लिखा है !

चन्दर—ओ हो, तो गोया आप शास्त्रों का ठेका लेकर यहां आये हैं।

शशिधर—चुप रहो चन्दर ! जब दो व्यक्ति बातें कर रहे हों तो तीसरे को बीच में नहीं बोलना चाहिए !

लखन—चन्दर ! तेरी खाल खिचवा के भुस न भरवा दिया तो मेरा नाम लखनसिंह नहीं।

चन्दर—खुद ही खेंच के देदूं। तुमसे तो खिचने से रही। बाबा की आज्ञा नहीं वरना अभी तुम्हारा .....

शशिधर—चन्दर ! मैं कहता हूं जाकर अपना काम करो। हमें लाठियों से लड़ने की आवश्यकता नहीं है। उनकी लाठियां उन्हें ही मुबारक हों।

लखन—यह तो समय ही बताएगा, शशिधर ! कि किस की लाठी किसे मुबारक होती है।

सलीम—आपके आकाओं का राज जा रहा है, जमींदार साहेब ! रोटी पानी भी नसीब होगा कि नहीं इसकी फिक्र करें।

शशिधर—(कठोर स्वर में) सलीम, चन्दर ! जाओ अपना काम देखो।

दोनों—जो आज्ञा बापू ! (जाते हैं)

शशिधर—जमींदार साहेब जाइये, आप भी अपने घर जाकर आराम कीजिये। मेरी आपसे कोई व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है। मैं आपके सुझाव मान सकता हूं; लेकिन मैंने किसी के रोब को स्वीकार करना नहीं सीखा है। मैं शान्ति का उपासक हूं और उसीमें विश्वास करता हूं। यदि शान्ति से बात करने की इच्छा हो तो आप किसी भी समय आ सकते हैं नहीं तो अदालत में मिलेंगे।

लखन—तो फिर अदालत ही सही !

शशिधर—आपकी इच्छा।

तीसरा दृश्य

[आश्रम में एक ओर से शशिधर दूसरी ओर से मृदुला का प्रवेश। मृदुला खुश है]

मृदुला—बधाई हो बापू।

शशिधर—किस बात की री !

मृदुला—मिठाई लाये हो कि नहीं बापू ! फिर बताऊंगी कि किस बात की।

शशिधर—(हंसते हुए) पगली कहीं की ! जिधर सच्चाई होती है, जीत वही होती है। पर मुझे खुशी इस बात की है कि अन्त में लखनसिंह को बुद्धि आगई और उन्होंने कोर्ट के बाहर ही सब बातें मान लीं।

मृदुला—खिसियाये होंगे।

शशिधर—इसमें खसियाने की कौन-सी बात है बेटा ! वे लोग अपने पैसे और रिश्वत के मान पर अकड़ते थे। उन्हें मालूम नहीं कि आज तर्क की दुनिया में बहुत-सी बातें पिछड़ गई हैं। मैंने उन्हें रास्ते में बहुत समझाया, आखिर मान गये।

मृदुला—अच्छा बापू ! चलो भीतर चल कर कुछ आराम करो। आपका स्वास्थ्य अब दिन प्रति दिन

बिगडता जा रहा हैं।

शशिधर –अब मुझे अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नही है, बेटा ! मेरा उद्देश्य पूरा हो गया। आज इस मुकदमे को लडते-लडते दो मास बीत गए, उनका पैसा लडता रहा और मेरी बुद्धि ! इसी अरसे में देश भी स्वतन्त्र हो गया। न जाने किस तरह अपने जीवन को सम्भाले चला आ रहा हू। (नैपथ्य में गाय के रभाने का स्वर) दूध तो दुह लिया होगा इसका ?

मृदुला—अभी, कुछ देर पहले दुहा था।

शशिधर–थोडा सा देदो ! शायद कुछ तबीयत सुधर जाय। ऐसे लगता है जैसे यह धौरी गय्या मेरे ही परिवार का एक प्राणी है।

मृदुला –आपके ही परिवार का प्राणी है बापू ! आप कैसे भूले जा रहे है।

शशिधर–भूल तो नही रहा हू। न जाने क्यो मन अपने आप में उदास होता जा रहा है। बहुत ही थक गया हू आज।

मृदुला–अचम्भे की बात है ! आज आप भी थकान मान रहे है।

शशिधर–मान तो नही रहा बेटी, महसूस कर रहा हू। मैंने जीवन में हारना नही सीखा ! फिर अवस्था का भी तो तकाजा है मृदुला, देखती हो कितना बढा हो गया हू। (नैपथ्य में शोर) लो, यह लोग भी शहर से आ गये। सलीम !

सलीम–आया बापू!

शशिधर–चन्दर कहा गया है !

सलीम—गाव वालो को बुलाने गया है ! आने ही वाला होगा। हमने उसे बीच रास्ते से पहले ही चलने को कह दिया था।

शशिधर–अच्छा किया ! बहुत अच्छा किया ! देखो लखनसिंह को भी यहा आने के लिए कह देना। मैं उनसे कुछ बातें करना चाहूगा।

सलीम–अब तो वे बडे भले बन गये है। अपने किये पर पछता रहे थे। हो सकता है वे खुद ही यहा आयें।

शशिधर–अच्छा है। मैं चाहता हू सब लोग यहा एक हो कर रहें। भाई-भाई की तरह एक दूसरे से कन्धे-से-कन्धा भिडा कर चलें। मेरा अब कुछ पता नही है ! (खासी) शायद अब मैं अधिक दिन जी भी सकूगा या नहीं।

चन्दर–ऐसी बात नही करते बापू ! अभी हम को आप की बहुत आवश्यकता है। हम सदैव आपके सरक्षण में रहना चाहते हैं।

शशिधर–ऐसा सोचना कमजोरी है चन्दर ! मेरा काम पूरा हो गया। मुझे हृदय रोग है। क्या पता मृत्यु कब घर दबाये। वैसे अब आजाए तो अच्छा ही है। बस -- (खासी, एक दम लेट जाते है)

मृदुला—बापू (घबरा जाती है)

शशिधर—कुछ नही बेटी, घबरा मत अभी अभी

सलीम–(देख कर) तबयत कुछ ज्यादा खराब है। मैं डाक्टर को बुलाता हू। (जाता है, मृदुला शशिधर को समालती है)

केसरी–(बाहर से) क्या शशिधर तपस्वी यहा है। मैं उनसे मिलना चाहता हू।

लखन–आइये ! भीतर आजाइए ! उनका स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब है। (केसरीसिंह अन्दर आता है)

शशिधर–(खासी आती है) कौन आया है।

केसरी–बापू ! मैं केसरीसिह आया हू।

शशिधर–(स्वर में पीडा का अनुभव हो रहा है साथ में उल्लास भी है) बहुत उचित अवसर पर आये, मित्र ! तुम्हारी ही याद कर रहा था। तुम्हारे समाचार सुनता रहा हूँ। कोई नही कह सकता कि यह वही पुराना केसरी है। इन दिनो आश्रम को तुम्हारी आवश्यकता है।

[चन्दर, सलीम, लखनसिंह का घबराते हुए प्रवेश]

चन्दर—बापू का क्या हाल है, मृदुला !

शशिधर—हाल ठीक है, चन्दर ! भगवान जिस हाल में रखे वही ठीक है (देखकर) लखनसिहजी !

लखनसिह—जी हाँ। मैं लज्जित हूँ .

शशिधर—(टोककर) छोडो उन बातो को। मैंने तुम्हे बुलवाया है। और बिना बुलवाये ये केसरीसिंह भी ठीक समय पर आ गये है। क्या मैं आशा करू कि पुराने वैर विरोध भूलकर आप सब लोग मिलकर आश्रम में काम करेंगे . (जोर की खासी)

(शेष पृष्ठ ३१५ पर)

हरिभाऊ उपाध्याय

जीवन की गहराई में

(६)

मान और अपमान का प्रश्न वहुत वार सामने आता है। स्वाभिमान भी एक विकट प्रश्न है। मान-अपमान का ध्यान रखना यदि व्यवहार-दक्षता है, स्वाभिमान की रक्षा करना यदि मनुष्य का कर्त्तव्य है, तो मान-अपमान से परे हो जाना मनुष्य की सार्थकता है। मान-अपमान के साधारण प्रश्नों ने मुझे कभी परेशान नहीं किया; वल्कि जव दूसरों को उससे परेशान देखता हूं तो अलवत्ता सोच में पड़ जाता हूं। परन्तु यों अन्तिम विश्लेषण में स्वाभिमान जैसी चीज भी नहीं ठहर पाती। अन्याय को सहन न करने की वृत्ति का ही नाम यदि स्वाभिमान हो तो उसका मैं कायल हूं। ऐसी तेजस्विता हर व्यक्ति में होनी चाहिए। अपने मान या स्वाभिमान की रक्षा करने के प्रति जागरूकता ही यदि उसका अर्थ है, और दूसरे के मान या स्वाभिमान-भंग से उसका कोई सरोकार न हो तो यह वात मेरी समझ में नहीं आ सकती। सच्चा स्वाभिमानी वह है जो अपने मान की रक्षा करे और दूसरे क मान-भंग होता हो तो उसे भी सहन न करे। साथ ही अपना मान-भंग करनेवालों को दुश्मन न माने, उनके दूसरे गुणों की उपेक्षा न करे। जीवन में ऐसे कई प्रसंग आते हैं, जहां दूसरे लोग लड़ पड़ते हैं। आजीवन नहीं तो वहुत अर्से तक दुश्मनी मान लेतेहैं और उन प्रसंगों की कटुता को कभी नहीं भूलते हैं। वहस में ऐसे गर्मी के अवसर तो आये हैं जव मैं झल्ला पड़ा हूं, गुस्से में आ गया हूं, कठोर और चुभनेवाले शब्द भी मुंह से निकल गये हैं; परन्तु किसी के अपमान या मान-भंग करने की कभी इच्छा तक न हुई। इसे मैं परमात्मा की अनुकम्पा ही अपने पर मानता हूं। यदि मैं इस बात पर ध्यान रखता कि लोगों या साथियों ने कहां-कहां मेरी उपेक्षा की है, कहां-कहां मुझे पद, स्थान, मान मिलना चाहिए था, तो मैं शायद पागल हो जाता; परन्तु परमात्मा ने कृपा करके मुझे यह दृष्टि और वृत्ति ही लगभग नहीं दी है। दूसरे अपने प्रति क्या व्यवहार करते हैं, इसकी तरफ मेरा उतना ध्यान नहीं है, जितना कि इस बात की तरफ कि मैं दूसरों के साथ क्या व्यवहार करता हूं और मेरे उनके प्रति क्या कर्तव्य या धर्म हैं। ऐसा एक तरफ़ा खाता मैं अपने पास रखता हूं। शायद इसीलिए कई वार या तो मूर्ख की गिनती में आता हूं, या कमजोर की, या फिर लोग मुझे समझ नहीं पाते। दूसरे के व्यवहार या रुख की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं देता हूं, इसलिए, उनसे वार वार गलतियां होते हुए भी उन्हें फिर फिर मौका देने और उनपर विश्वास करने को जी चाहता है। मैं अपने आपको जव यह देखता हूं कि हर गलती को महसूस करता हूं, उसे सुधारने का प्रयत्न करता हूं, तो मुझे सहसा यह विश्वास नहीं होता कि दूसरे ऐसा न करते होंगे। इस पर रोशनी डालनेवाले कुछ प्रसंग यहाँ लिखता हूं।

जेल में एक वार नये आनेवाले राजनैतिक कैदियों ने मुझे कहा—दासाहव, आप जिनको वाहर पीछे छोड़ आये हैं वे तो आपकी कब्र खोद रहे हैं। मुझे एक तो इस पर विश्वास ही न हुआ, दूसरे, मैंने मन में सोचा—मेरी कब्र क्या खुदेगी? जो चीज दूसरे की दी हुई होती है, वह दूसरा छीन या ले सकता है, जो कुछ मुझे भगवान् ने दिया है वह वही छीन सकता है। फिर मेरे मन में यह विचार भी आया, कि जो शख्स किसी का कुछ छीनता नहीं, किसी का कुछ विगाड़ता नहीं, उससे कोई क्यों छीनने लगा, कोई क्यों विगाड़ करने लगा? लेकिन, कुछ समय के वाद, जव मैं जेल से छूटा तो घर जाने से पहले मैं उन मित्र से मिलने गया और मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मैंने उनके व्यवहार, वातचीत, तर्ज से अनुभव किया कि सचमुच कुछ दाल में काला जरूर है। लेकिन मैंने इसकी कोई चिन्ता नहीं की और न अपना तर्ज, न रुख ही उनके प्रति वदला। उन्होंने स्वतन्त्र काम कर लिया था, इससे भी मेरी जिम्मेदारी कम हो गई। आगे जाकर अनुभव ने वतलाया कि उन्हें अधिक कष्ट उठाना पड़ा। मुझ मूर्ख को भगवान् ने वचा लिया। जिन्दगी में इस तरह का यह पहला ही अनुभव मुझे हुआ था।

एक वहन जो मुझे वहुत मानती थी, वड़ा विश्वास

रखती थी, किसी तरह राजनैतिक दलबन्दी और प्रचार की शिकार होकर मेरे खिलाफ हो गई। बम्बई में एक प्रदर्शन करते हुए उन्होंने कई आदमियों के सामने मुझे जितना कुछ भला-बुरा कहा जा सकता था, कहा। भगवान ने मुझे शक्ति दी कि मैं शान्ति से और हँसमुख रहकर सब सुनता रहता। लेकिन मुझे विश्वास था कि एक दिन आएगा, जब उन्हें इस व्यवहार पर पछताना पड़ेगा। और ऐसा ही हुआ था। बाद में तो उनके शरीर और मन की स्थिति बहुत बिगड़ गई किन्तु मुझपर वैसा ही भरोसा रखती रहीं। मेरे मन में न उस समय यह भाव आया न आज भी है कि उन्होंने मेरा कितना अपमान किया। बल्कि उस घटना से मैंने यह शिक्षा ली कि जो मनुष्य अति दुःख, क्रोध, आवेग या आवेश में कुछ ऊटपटांग कह जाता है, उस पर विचार करना व्यर्थ है। जो खुद ही अपने आप में नहीं रहता वह उस समय पशु-तुल्य हो जाता है। पशु के व्यवहार का क्या बुरा मानना?

जेल में एक बड़े शिष्ट और सौजन्य की मूर्ति जैसे मित्र हमारे साथ थे। वे आजाद खयाल और स्वतन्त्र वृत्ति के थे मगर लिहाज, अदब, शराफत में किसी से पीछे नहीं रहते थे। वैसे मैं कुछ उम्र और कुछ सेवाओं के लिहाज से तमाम राजनैतिक कैदियों से बड़ा और एक हद तक सम्माननीय समझा जाता था। हम दोनों एक दूसरे से मोह भी रखते थे, और एक दूसरे की विशेषताओं का भी आदर करते थे। एक बार किसी बात पर मेरे और उनके बीच वादविवाद चल पड़ा। हम दोनों गरम हो गये। यहाँतक कि उनके मुँह से निकल गया—"आपमें है ही कौनसी योग्यता—आपकी उम्र का लिहाज करता हूँ, वर्ना..." मुझे उनके ये शब्द बहुत चुभ गये खासकर उनके जैसे सभ्य और शिष्ट व्यक्ति के मुख से सुनके। लेकिन थोड़ी ही देर में मैं सोचने लगा कि यदि मेरी योग्यता पर इन्हें विश्वास नहीं है तो मुझे इनसे ऐसे ही व्यवहार की आशा रखनी चाहिए। केवल आयु के लिहाज से ये जो जब्त करते हैं यह भी इनका ही बड़प्पन हो सकता है। मुझे उसका भी क्या अधिकार है? अतः मुझे इनके अप्रिय या कटु शब्दों से बुरा न मानना चाहिए। जो मैं नहीं हूँ, जो मुझ में नहीं है उसके मानने की आशा मुझे दूसरों से क्यों रखनी चाहिए? यदि कोई योग्यता या विशेषता है तो लोगों पर उसका असर पड़े बिना रहेगा नहीं, यदि नहीं है तो अपने को दूसरों से उसे मनवाने का कोई अधिकार नहीं।

एक मेरे अजीज हैं जो बिगड़ने पर और आपेसे बाहर हो जाने पर चाहे जो कह देते हैं और कह सकते हैं। मुझे उनके इस व्यवहार से दुःख तो बहुत होता है—और यह वे मेरे ही साथ करते हों सो बात नहीं, परन्तु बुरा नहीं मानता। एक बार स्टेशन पर कई आदमियों के बीच उन्होंने क्रोध में आकर वैसी ही बातें कहना शुरू किया। उन्हें देखकर एक और सज्जन ने, जो मुझसे प्रेम रखते हैं मुझे सख्त सुस्त कह डाला। इसलिए नहीं कि मैंने खुद कोई गुनाह किया हो, बल्कि इसलिए कि गुनहगारों के साथ मैं सख्ती से पेश नहीं आता। जब दोनों ने इस प्रकार सीमा छोड़ दी तो मुझे बहुत बुरा लगा। इतना कि अब इनके साथ बात करने का धर्म नहीं रहा। दो-एक दिन के बाद जब उनसे शान्ति से बात करने का अवसर आया तब मैंने इतना ही कहा कि अबतक तो तुम घर पर ही बुरा भला कह बैठते थे, अब तो स्टेशन पर भी कहने लग गये। जिस शख्स को तुमने अपना बड़ा कहा और माना है उसके प्रति स्टेशन पर ऐसा व्यवहार क्या किसी को शोभा दे सकता है? उन्होंने उत्तर दिया "मैं भी इसे अच्छा तो नहीं कहता—लेकिन मेरा आवेश अब रुकता कम है, आदि" मैंने ऐसे अनुभव से यह निचोड़ निकाला है कि जिनकी नीयत पर सन्देह न हो, उनके स्वभाव-दोषों को सहन किये बिना कोई गति नहीं है। रोज-रोज उससे उद्विग्न होने और रोते रहने के बजाय तो उसे शान्ति से सहन करने का अभ्यास बढ़ाना अधिक लाभदायी है।

कलाकार बनने के लिए, मुख्य शर्त है मानवमात्र के प्रति प्रेम न कि कला-प्रेम!

—टालस्टाय
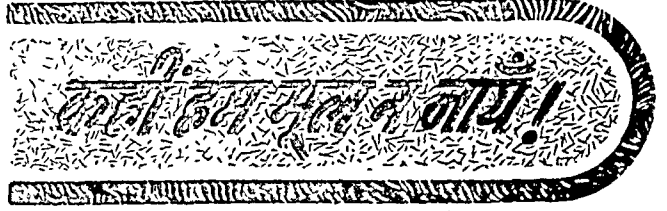
रामकृष्ण परमहंस

[पुण्य तिथि—भाद्रपद कृष्णा ११, १६ अगस्त]

शायद सन् १८८१ की पूजा की छुट्टियों के समय पहले-पहल मुझे उनके दर्शन हुए थे। उस दिन केशव बाबू के आने की बात थी। नाव से दाक्षिणेश्वर पहुंच, घाट से चढ़ कर एक आदमी से पूछा—"परमहंस कहां हैं!" उस मनुष्य ने उत्तर की ओर बरामदे में तकिये के सहारे बैठे हुए एक व्यक्ति की ओर इशारा करके बतलाया—"यही परमहंस हैं।" परन्तु मैंने देखा, दोनों पैर ऊपर उठाये और उन्हें अपने हाथों से घेर कर बांधे हुए अवचित होकर वे अपने तकिये का सहारा लिये हैं। मेरे मन में आया, इन्हें कभी बाबुओं की तरह तकिये के सहारे बैठने या लेटने की आदत नहीं है, संभव है, यही परमहंस हों। तकिये के बिलकुल पास ही उनके दाहिनी ओर एक बाबू बैठे थे। मैंने सुना, वे राजेन्द्र मित्र हैं, बंगाल सरकार के सहायक सेक्रेट्री रह चुके हैं। उनके दाहिनी ओर कुछ सज्जन और बैठे हुए थे। परमहंसदेव ने कुछ देर बाद राजेन्द्रबाबू से कहा—"ज़रा देखो तो सही केशव आता है या नहीं।" एक ने ज़रा बढ़ कर देखा, लौट कर उसने कहा—"नहीं आते।" थोड़ी देर में फिर शक हुआ तब उन्होंने फिर कहा—"देखो, ज़रा, फिर तो देखो।" इस बार भी एक ने देखकर कहा—'नहीं आते'। साथ ही परमहंस देव ने हंसते हुए कहा—"पत्तों के झड़ने का शब्द हो रहा था, राधा सोचती थी—मेरे प्राणनाथ तो नहीं आ रहे हैं! क्यों जी, क्या केशव की सदा की यही रीति है? आते ही आते रुक जाता है।" कुछ देर बाद संध्या हो ही रही थी कि दलबल समेत केशव आ गये।

आते ही जब भूमिष्ठ होकर उन्हें प्रणाम किया, तब उन्होंने भी ठीक वैसे ही भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और कुछ देर बाद सिर उठाया। उस समय वे समाधिमग्न थे—कह रहे थे—

'कलकत्ते भर के आदमी इकट्ठे कर लाये हो इसलिए कि मैं व्याख्यान दूंगा। आख्यान-व्याख्यान में कुछ न दे सकूंगा। देना हो तो तुम दो। यह सब मुझसे न होगा।' उसी अवस्था में दिव्य भाव से ज़रा मुस्कराकर कह रहे हैं—"मैं बस भोजन पान करूंगा और पड़ा रहूँगा। मैं भोजन करूंगा और सोऊंगा—बस। यह सब मैं न कर सकूंगा। करना हो तुम करो। मुझ से यह सब न होगा।"

केशवबाबू देख रहे हैं और रामकृष्ण भाव में भरपूर हो रहे हैं। एक एक बार भावावेश में 'अः अः' कर रहे हैं।

श्री रामकृष्ण की उस अवस्था को देख कर मैं सोच रहा था—"यह ढोंग तो नहीं है। ऐसा तो कभी मैंने देखा ही नहीं।" और मैं जैसा विश्वासी हूँ यह तो तुम जानते ही हो।

समाधिभंग के पश्चात् केशवबाबू से उन्होंने कहा—"केशव, एक दिन मैं तुम्हारे यहां गया था। मैंने सुना, तुम कह रहे हो, 'भक्ति की नदी में गोता लगा कर हम लोग सच्चिदानन्द-सागर में जाकर गिरेंगे।' तब मैंने ऊपर देखा, (जहां केशवबाबू और ब्राह्मसमाज की स्त्रियां बैठीं थीं) और सोचा तो फिर इनकी क्या दशा होगी? तुम लोग गृहस्थ हो एक बारगी किस तरह सच्चिदानन्द सागर में गिरोगे? उसी न्योंले की तरह जिसकी दुम में कंकड़ बांध दिया था, कुछ हुआ नहीं कि झट वह ताक पर जा बैठा, परन्तु वहां रहे किस तरह? कंकड़ नीचे की ओर खींचता है और उसे कूद कर नीचे आना पड़ता है। तुम लोग इसी तरह कुछ काल के लिए जप-ध्यान कर सकते हो, परन्तु दारा और सुत रूपी कंकड़ जो पीछे लटका हुआ नीचे की ओर खींच रहा है, वह नीचे उतार कर ही

छोडता हूँ। तुम लोगो को तो चाहिए कि भक्ति की नदी में एक बार डुबकी लगा कर निकलो, फिर डुबकी लगाओ और फिर निकलो। इसी तरह करते रहो। एक बारगी तुम लोग कैसे डूब कर जा सकते हो?"

केशवबाबू ने कहा "क्या गृहस्थो के लिए यह बात असभव है? महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर?"

परमहस ने दो तीन बार 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर' देवेन्द्र देवेन्द्र' कहकर उन्हे लक्ष्य करके कई बार प्रणाम किया फिर कहा—"सुनो, एक के यहा देवी-पूजा के समय उत्सव मनाया जाता था, सूर्योदय के समय भी बलि चढती थी और अस्त के समय भी। कई साल बाद फिर वह धूम न रह गई। एक दूसरे ने पूछा—"क्यो महाशय, आजकल आपके यहा वैसी बलि क्यो नही चढाई जाती?" उसने कहा, "अजी अब तो दात ही गिर गये।" देवेन्द्र भी अब ध्यान धारण करता है—करेगा ही। परन्तु बडी शान का आदमी है—खूब मनुष्यता है इसमें।

"देखो, जितने दिन माया रहती है, उतन दिन आदमी कच्चे नारियल की तरह रहता है। नारियल जब तक कच्चा रहता है तबतक यदि उसका गूदा निकालना चाहो तो गूदे के साथ खोपडे का भी कुछ अश छिल कर जरूर निकल आयेगा। और जब माया निकल जाती है तब वह सूख जाता है—नारियल का गोला खोपडे से छूट जाता है, तब वह भीतर खडखडाता रहता है, आत्मा अलग और शरीर अलग हो जाता है, फिर शरीर के साथ उसका कोई सबध नही रह जाता।"

यह जो 'मैं' है, वह बडी-बडी कठिनाइया ला कर खडी कर देता है। क्या यह 'मैं' दूर होगा ही नही? देखा कि उस टूट हुए मकान पर पीपल का पेड पनप रहा रहा है, उसे काट दो, फिर दूसरे दिन देखो। उसमे कोपल निकल रही है—वह 'मैं' भी इसी तरह का है। प्याज का कटोरा सात बार धोओ, परन्तु उसकी बू जाती ही नही।"

—अश्वनीदत्त

महादेव देसाई

(पुण्य तिथि—भाद्रपद कृष्णा १०, १५ अगस्त)

महादेव देसाई के मित्र और प्रशसक उनके प्रिय काम करके ही उनकी बरसी मनाते हैं। वे बडे शक्तिशाली पुरुष थे। वे सुन्दर और सुडौल अक्षर लिखते थ। वे कई चीजो से प्यार करते थे। लेकिन उन सब में चर्खे की जगह पहली थी। एक कलाकार होने के नाते वे नियम से बहुत बढिया कताई करते थे। काम काज के भारी बोझ से थक कर चूर होजाने पर भी वे हमेशा कातने का वक्त निकाल लेते थे। चर्खा उन्हे फिर तरोताजा बना देता था।

उनकी कई खूबियो मे उनके बेजोड अक्षर भी कोई कम महत्व नही रखते थे। उसमे कोई उनका सानी न था। रामदास स्वामी ने अपने एक दोहे में खूबसूरत अक्षरो की चमकीले मोतियो से तुलना की है। महादेव की कलम से निकले हुए अक्षर खरे मोती जैसे होते थे।

उनकी तीसरी खूबी थी, हिन्दुस्तान की भाषाओ से उनका प्रेम। आप सबको भी यह गुण अपने मेंपैदा करने की कोशिश करनी चाहिये। वे भाषाशास्त्री थे। बगाली, मराठी और हिन्दी पर उनका पूरा अधिकार था। और वे उर्दू भी सीख चुके थे। जल में उन्होंने ख्वाजा साहिब एम०ए० मजीद से, जो उनके साथ कैद थे, फारसी और अरबी सीखने की भी कोशिश की थी।

—मो० क० गाधी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(पुण्यतिथि—भाद्रपद कृष्णा २, ७ अगस्त)

गुरुदेव की देह खाक में मिल चुकी है, लेकिन उन के अदर जो जोत थी, जो उजेला था, वह तो सूरज की तरह था, जो तबतक बना रहेगा जबतक धरती पर जानदार रहेंगे। गुरुदेव ने जो रोशनी फैलाई वह आत्मा के लिए थी। सूरज की रोशनी जैसे हमारे शरीर को फायदा पहुचाती है, वैसे गुरुदेव की फैलाई रोशनी ने हमारी आत्मा को ऊपर उठाया है। वे एक कवि थे और प्रथम श्रेणी के साहित्यिक थे। उन्होंने अपनी मातृ-भाषा में लिखा और सारा बगाल उनको कविता के झरने से काव्यरस का गहरा पान कर सका। उनकी रचनाओ के अनुवाद बहुत-सी भाषाओं में हो चुके हैं। वे अग्रेजी के भी बहुत बडे लेखक थे और शायद बिना अग्रेजी जाने ही वे उस जबान के इतने बडे लेखक बन गये थे। मदरसे की पढाई तो उन्होने की थी, लेकिन यूनिवर्सिटी की कोई डिग्री उन्होने नही ली थी। वे तो बस गुरुदेव ही थे। हमारे एक

वाइसराय ने उनको एशिया का कवि कहा था। उनसे पहले किसी को ऐसी पदवी नहीं मिली थी। वे समूची दुनिया के भी कवि थे। यही क्यों, वे तो ऋषि थे। हमारे लिए वे अपनी 'गीतांजलि' छोड़ गये है, जिसने उनको सारी दुनिया में मशहूर कर दिया। तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड़ गये हैं। वेदव्यासजी ने महाभारत के रूप में हमारे लिए मानव-जाति का इतिहास छोड़ा है। ये सब निरे कवि नहीं थे। ये तो गुरु थे। गुरुदेव ने भी सिर्फ कवि के नाते ही नहीं, ऋषि की हैसियत से भी लिखा है। लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली खासियत नहीं थी। वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे। बढ़िया से बढ़िया कला में जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सब उनमें और उनकी चीजों में थी। नई-नई चीजें पैदा करने की उनकी ताकत ने हमको शांतिनिकेतन, श्रीनिकेतन और विश्वभारती जैसी संस्थाएं दी हैं। अपनी इन संस्थाओं में वे भावरूप से विराजमान हैं, और यह अकेले बंगाल को ही नहीं, बल्कि समूचे हिन्दुस्तान को उनकी विरासत के रूप में मिली हैं। शांतिनिकेतन तो हम सबके लिए असल में यात्रा का एक धाम ही बन गया है। गुरुदेव अपने जीतेजी इन संस्थाओं को वे रूप नहीं दे पाये जो वे देना चाहते थे, जिसका वे सपना देखते थे। कौन है, जो ऐसा कर पाया हो? आदमी के मनोरथ को पूरा करना तो भगवान के हाथ में है। फिर भी ये संस्थायें हमें उनकी कोशिशों की याद दिलायेंगी और हमेशा हमको यह बताती रहेंगी कि गुरुदेव के मन में अपने देश के लिए कितनी गहरी प्रीति थी और उन्होंने उसकी कितनी-कितनी सेवाएं की हैं।

—मो० क० गांधी

लोकमान्य तिलक

(पुण्यतिथि—श्रावण शुक्ला १०, १ अगस्त)

तिलक महाराज का देश प्रेम अटल था। साथ ही उनमें तीक्ष्ण न्याय-वृत्ति भी थी। इस गुण का परिचय मुझे अनायास मिला था। १९१७ की कलकत्ता-महासभा के दिनों में, हिंदी साहित्य सम्मेलन की सभा में भी वह आये थे। मैंने वहीं देखा कि राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उनका कितना प्रेम था। मगर इससे भी बढ़ कर जो बात मैंने उनमें देखी, वह थी अंग्रेजों के प्रति उनकी न्याय-वृत्ति उन्होंने अपना भाषण ही यों शुरू किया था—"मैं अंग्रेजी शासन की खूब निन्दा करता हूं, फिर भी अंग्रेज विद्वानों ने हमारी भाषा की जो सेवा की है, उसे हम भुला नहीं सकते"। उनका आधा भाषण इन्हीं बातों से भरा था। आखिर उन्होंने कहा था कि अगर हमें राष्ट्रभाषा के क्षेत्र को जीतना और उसकी वृद्धि करना हो तो हमें भी अंग्रेज विद्वानों की भांति ही परिश्रम और अभ्यास करना चाहिए। अपनी लिपि की रक्षा और व्याकरण की व्यवस्था के लिए हम एक बड़ी हद तक अंग्रेज विद्वानों के आभारी हैं। जो पादरी आरम्भ में आए थे, उनमें पर-भाषा के लिए प्रेम था। गुजराती में टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नहीं है। लोकमान्य ने इस बात का विचार भी नहीं किया कि अंग्रेजों की स्तुति करने से मेरी लोकप्रियता घटेगी। लोगों को तो यही विश्वास था कि वह अंग्रेजों की निन्दा ही कर सकते है।

तिलक महाराज में जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौवां या हजारवां भाग भी हम अपने में नहीं बता सकते। और उनकी सादगी? उनके कमरे में न तो किसी तरह का फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो ख्याल भी नहीं कर सकता था कि वह किसी महान पुरुष का निवास-स्थान है। रगरग में भिदी हुई उनकी इस सादगी का हम अनुकरण करें तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्तव्य में वे सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्मपत्नी की मृत्यु का संवाद पाने पर भी उनकी कलम चलती ही रही।...... क्या हम तिलक महाराज के जीवन का एक भी ऐसा क्षण बतला सकते हैं जो भोग-विलास में बीता हो? उनमें जबरदस्त सहिष्णुता थी। यानी वे चाहे जैसे उद्दंड-से-उद्दंड आदमी से भी काम करवा लेते थे। लोक-नायक में यह शक्ति होनी चाहिये। इसमें कोई हानि नहीं होती। अगर हम संकुचित हृदय बन जायें और सोच लें कि फलां आदमी से काम लेंगे ही नहीं, तो या तो हमें जंगल में जा कर बस जाना चाहिए, या घर बैठे बैठे गृहस्थ का जीवन बिताना चाहिए। इसमें शर्त यही है कि स्वयं अलिप्त रह सकें।

—मो० क० गांधी

अरविन्द

[जन्मतिथि—भाद्रपद कृष्ण १०, १५ अगस्त]

[२३ नवम्बर सन् १९३८ की रात के दो बजे श्री अरविन्द की जाघ की दुर्घटना हुई थी। उसके बाद से उनके कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन आगया और कुछ एक साधक उनकी सेवा में रहने लगे। तभी स्वभावत अनेक विषयो की चर्चा भी छिड जाती। डा निरोदवरण जो कि तब से लगातार श्री अरविन्द की सेवा में रहे है यहा एक दिन की, १० दिसम्बर १९३८ की, बातचीत का विवरण प्रस्तुत करते है। हम आशा करते है वे ऐसे और भी अनेक विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।]

शुरू के दिनो में बातचीत साय के समय होती थी। हममें से पाच-छ व्यक्ति उनकी शय्या के पास बैठ जाते और उनके इगित की परीक्षा करते। कभी-कभी जब माताजी भी उपस्थित होती तब हमारी चर्चा अधिक सजीव एव सरस हो उठती। परतु पीछे चलकर वे अपने काम के कारण उपस्थित नही हो पाती थी।

"आपने पाडिचेरी को अपनी साधना का स्थान क्यो चुना ?" सध्या के झटपुटे में हममें से किसी ने पहला तीर छोडा।

"एक आदेश के कारण" उन्होने उत्तर दिया, "एक अत्यन्त प्रभावपूर्ण वाणी ने मुझसे यहा आने को कहा और मैं उसकी आज्ञा का पालन किये बिना नही रह सका!"

हमारी दिलचस्पी एकदम बढ गई और हम कुछ और पास सरक आये। उन्होने आगे कहा, "जब मैं बम्बई से कलकत्ता जाने लगा मैंने लेले से पूछा—अपनी साधना के अग्रसर होने के लिए अब मुझे क्या करना चाहिए ? वे कुछ देर मौन रहे—सभवत अतर की वाणी सुनने के लिए—और फिर बोले, 'नियत समय पर ध्यान किया करो और हृदय में वाणी सुनने का यत्न करो।' मैंने वैसा ही किया, पर मुझे बिल्कुल भिन्न प्रकार की वाणी सुनाई देने लगी। वैसी नही जैसी उन्होने बताई थी। वाणी ऊपर से आती थी। बाद में मैंने ध्यान के लिए नियत समय का पालन करना छोड दिया ध्यान हर समय चलता ही रहता था। अतएव इसके लिए विशेष रूपसे बैठने की जरूरत नही थी। जब लेले कलकत्ते आये और उन्होने यह सब बात सुनी, वे बहुत अधिक असमजस में पड गये और नाराज हुए। उन्होने कहा, 'किसी भूत ने तुम्हे अपने वश में कर लिया है।' मैंने उत्तर दिया, 'अच्छा यदि यह कोई भूत है तो भी मुझे इसीके पीछे चलना होगा।' वे मेरी आतरिक अवस्था नही समझ सके, न उन्हे ऊपर की वाणी की ही कोई कल्पना थी। वे केवल एक ही प्रकार की वाणी सुनने के अभ्यस्त थे।"

जब वे रुके तो किसी ने एक और प्रश्न किया जिसका प्रकृति विषय से कुछ सम्बन्ध नही था। हमारे वार्तालाप का प्रवाह साधारणत इसी प्रकार चलता था: ऐसी मण्डली में और ऐसी परिस्थिति में किसी एक विषय पर विधिवत् विचार करना सभव नही हो सकता था नाही वह बहुत अधिक लाभदायक होता।

"लोग कहते है कि 'यौगिक-साधन' आपके द्वारा केशवसेन की आत्मा ने लिखी थी। क्या यह सच है ?"

"केशवसेन ?" उन्होने आश्चर्य से कहा, "जब मैं इसे लिख रहा था, प्रत्येक बार आरभ में और अत में राममोहनराय की प्रतिमा मेरे सामने आकर खडी हो जाती थी, केशवसेन की नही। जरूर किसी सृजनशील व्यक्ति ने राममोहनराय को केशवसेन बना दिया है। क्या तुम्हे मालूम है 'उत्तर योगी' नाम कैसे चला?" उन्होने जरा रुक कर पूछा।

"नही जी।"

"तुम्हे मालूम ही है कि पुस्तक पर लेखक के रूप में 'उत्तर योगी' का नाम है। क्या तुम जानते हो यह नाम कैसे पडा ?"

"नही जी।"

"अच्छा दक्षिण में एक प्रसिद्ध योगी था। जब वह मरने लगा तो उसने अपने शिष्यो से कहा कि उत्तर से एक पूर्ण योगी दक्षिण में आयगा और वह अपनी तीन शिक्षाओ से विख्यात होगा। वे शिक्षाए वही है जो मैंने 'मृणालिनीर पत्र' (पत्नी के नाम अपने पत्रो) में प्रतिपादित की है। उस योगी के एक जमीदार शिष्य ने मुझे ढूढ निकाला और पुस्तक का सारा खर्च उसीने उठाया। इसी कारण लेखक का नाम 'उत्तरयोगी' दिया गया है।

अदिति से] [डा० निरोदवरण

कसौटी पर

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास (प्रथम खण्ड)—लेखक—मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—नागरी प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ ३४४, मूल्य ४॥)

विदेशी सत्ता के चंगुल से भारत को मुक्त करने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ा और कितनी आहुतियां देनी पड़ीं, इसका इतिहास निस्सन्देह अत्यन्त रोमांचकारी एवं अद्भुत है। जिस स्वतंत्रता का आज हम उपभोग कर रहे हैं, उसकी बुनियाद में जाने किस-किस की साधना छिपी हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त ने सन् १८५७ के गदर से लेकर सन् १९३९ तक की सशस्त्र क्रांतियों का विशद वर्णन किया है। लेखक स्वयं एक क्रांतिकारी रहे हैं। उन्होंने न केवल क्रांतियां देखी ही हैं, अपितु स्वयं आगे बढ़कर उनमें सक्रिय भाग भी लिया है। क्रांतियों के साथ उनके इस तादात्म्य के कारण उनके वर्णन बहुत ही रोचक और हृदय-स्पर्शी बन गये हैं। प्रामाणिक तो होने ही चाहिए।

पुस्तक का प्रारंभ १७५७ के प्लासी के युद्ध तथा उनके पहले के कतिपय विद्रोहों के वर्णन से होता है। अनन्तर तिथिक्रम से देश के विभिन्न भागों में हुई क्रांतियों और क्रांतिकारियों का सविस्तर उल्लेख है।

इस खण्ड में लेखक ने क्रांतिकारी आंदोलन के सूत्रपात से लेकर बंगाल, दिल्ली, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बर्मा, सिंगापुर, मदरास तथा अन्य स्थानों में हुई क्रांतियों का बड़ा सजीव और रोमांचकारी हाल दिया है, जिसे पढ़कर अनेक शहीद हमारे सामने आ खड़े होते हैं। और उनके बलिदान की कहानियां हमारे हृदय को झकझोर डालती हैं।

लेखक के स्वयं क्रांतिकारी होने से इस पुस्तक के विवरण जहां रोचक बने हैं, वहां उनमें एक दोष भी आ गया है और वह यह कि लेखक की दृष्टि तटस्थ नहीं रह सकी। इतिहासकार का काम तथ्यों को देखना है, उनके साथ बहना नहीं है। जो हो, पुस्तक प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को पढ़नी चाहिए, पढ़ने से अधिक समझनी चाहिए। विशेषकर यह स्मरण रखने के लिए कि आजादी के लिए हमने कितनी कीमत चुकाई है।

मैं इनसे मिला : लेखक—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ २००, मूल्य २॥)

हर्ष की बात है कि हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए इधर कुछ अभिनन्दनीय प्रयत्न हो रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन और प्रकाशन वैसा ही एक प्रयत्न कहा जा सकता है। हिन्दी के अधिकांश साहित्यकारों के विषय में सामान्य पाठकों में अनेक भ्रांत-धारणाएं फैली हुई हैं, कारण कि उनके बारे में, कुछ साहित्यकारों को छोड़कर, जिन्होंने अपने विषय में स्वयं लिखा है, प्रामाणिक सामग्री बहुत कम मिलती है। भाई 'कमलेश' जी ने हिन्दी के छोटे-बड़े दर्जनों उपन्यासकारों, कहानी-लेखकों, कवियों, आलोचकों, भाषाशास्त्रियों, नाटककारों आदि से 'इंटरव्यू' लेकर महत्वपूर्ण सामग्री इकट्ठी की है और उसका लाभ पाठकों को दे रहे हैं। इस पुस्तक में उन्होंने सर्वश्री गुलाबराय, रामनरेश त्रिपाठी, सुदर्शन, 'निराला', धीरेन्द्र वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, उदयशंकर भट्ट, महादेवी वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, शांतिप्रिय द्विवेदी, 'अज्ञेय' और रामविलास शर्मा, इन बारह साहित्यकारों को लिया है। 'इंटरव्यू' की पद्धति हिन्दी में बहुत पुरानी नहीं है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, बंधुवर कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर तथा दो-एक अन्य लेखकों ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है, फिर भी 'इंटरव्यू' का प्रचलन अभी हिन्दी में बहुत कम है। 'इंटरव्यू' लेना आसान काम भी नहीं है और मन की बात निकलवा लेना तो बहुत ही कठिन है। 'कमलेश'जी के अधिकांश 'इंटरव्यू' सफल

हुए हैं। उन्होंने बहुत-सी ज्ञातव्य और रोचक बातें साहित्यकारों से कहलवाली हैं। हमें इस सग्रह में रामनरेशजी, सुदर्शनजी और चतुरसेनजी के 'इटरव्यू' बहुत पसन्द आये। वे रोचक तो हैं ही, साथ ही उनमें 'इटरव्यू' देनेवालों के अन्तर की एक वास्तविक झाकी भी पाठकों को मिल जाती है।

हा, सामग्री का क्रम ठीक नही है। वह एक प्रकार से भानमती का पिटारा बन गया है। अच्छा होता यदि साहित्य के एक-एक अग के साहित्यकारों को लेकर विभाजन किया जाता। इसमें तो उन्होंने आलोचक, कहानीकार कवि, भाषाविद्, नाटककार आदि सबको एक ढेर म इकट्ठा कर दिया है। हो सकता है कि इससे पुस्तक की रोचकता बढ गई हो, पर उसमें कोई श्रृखला नही रही।

जो हो, हमें विश्वास है कि पुस्तक का हिन्दी-जगत में स्वागत होगा और पाठक आगे की किस्तो की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे।

पुस्तक की छपाई सामान्यतया ठीक है, पर कहीं-कहीं छापे की भूलें रह गई है।

विनोबा का सदेश · लेखक—**सुरेश रामभाई, प्रकाशक—किताबी टोला, इलाहाबाद पृष्ठ २५, मूल्य चार आना।**

विनोबाजी का नाम और उनका भूदान-यज्ञ देश-विदेश के लिए उत्तरोत्तर आकर्षण की वस्तु बनता जा रहा है। अपने अनुष्ठान के द्वारा देश के सामाजिक जीवन में विनोबा एक नई क्रान्ति के लिए उपयुक्त भूमि तैयार कर रहे है।

प्रस्तुत पुस्तिका में लेखक के पाच लेख है, जिनमें से एक तो विनोबा को, शेष चार उनके भूदान-यज्ञ आदोलन के विकास और उसके विभिन्न पहलुओं को समझने में सहायता देते हैं। इन लेखो को पढकर पता चलता है कि भूदान यज्ञ का प्रारभ और विकास कैसे हुआ? यह यज्ञ है क्या? अबतक कहा-कहा और कितनी भूमि मिली है? आदि आदि। पुस्तिका उपयोगी है और भूदान-यज्ञ में दिलचस्पी रखनेवाले पाठको को अवश्य पढनी चाहिए। पुस्तिका के प्रारम्भ में महात्मा भगवानदीनजी ने अपने 'एक शब्द' की चद पक्तियो में विनोबा और उनके मिशन पर इतना प्रकाश डाल दिया है, जितना कोई भारी भरकम पुस्तक भी शायद नही डाल पाती। पुस्तक का दाम कुछ अधिक है। उससे पुस्तक की लोकप्रियता में बाधा पडेगी।

—सव्यसाची

(पृष्ठ ३०७ का शेष)

रतन—भगवान आपको चिरायु करें। मैं किस योग्य हूं। मे सदैव आपकी आज्ञा मानकर अपना कर्तव्य पालन करूगा।

(मृदुला की सिसकिया)

शशिधर—अपने वश मे अब कुछ नही रहा रतनजी भगवान के यहा से देवदूत चल पडे हैं। अब कुछ ही क्षणों की बात है। मृदुला रोते नही, बेटा!

चन्दर—(भीड का शोर) बापू सभी ग्रामवासी आये हैं। आपके दर्शन करना चाहते है!

शशिधर—कुटिया का द्वार खोलदो। मैं स्वय सबके दर्शन करना चाहता हू (रुदन, हिचकिया) मैं चाहता हू कि मेरी विदा-वेला में आप लोग मुस्करायें! ताकि मैं विश्वास कर सकू कि आप मेरे पीछे मेरे छोडे अधूरे काम को पूरा कर सकेंगे! (सहसा हिचकी के साथ मृत्यु। भीड शान्ति से आकर द्वार पर ठिठक जाती है फिर सहसा सिसकिया फूट पडती है। सहसा केसरीसिंह खडा हो जाता है)

केसरी—भाइयो! रोने का अवसर नही है। हम उनके कार्य पूरे करने है। वे मरे नही अमर हो गये है। उन्होंने हमें जीवन दिया और जीना सिखाया। वह हमारे लिए शान्ति, सुख, और स्नेह के अग्रदूत थे। महान आत्माए कभी नही मरती। हमें उनका काम आगे बढाना है और वह रोने से नही उनके पद चिन्हो पर चलने से होगा। (सहसा सब लोगो की दृष्टि केसरीसिंह पर जाकर अटक जाती है। एक प्रकाश उभरता है जो बारी बारी शशिधर और केसरीसिंह के मुख पर चमकता है। परदा गिरता है)

हमारी राय

०

जघन्य व्यापार

आज जबकि हमारे देश में अधिकांश बड़े व्यापार डांवाडोल स्थिति में है, एक व्यापार है, जो जोरों से तरक्की कर रहा है। वह व्यापार है स्त्रियों, विशेषकर नव-युवतियों के क्रय-विक्रय का और उनसे 'पेशा' कराने का। स्त्रियों और पुरुषों के गिरोह-के-गिरोह इसमें लगे हैं और उनका काम है छोटे-बड़े कस्बों और देहातों से हजारों अबोध बालिकाओं और स्त्रियों को फंसाकर शहर में ले आना और उन्हें बेचकर, उनसे पेशा कराकर पैसा कमाना। सबसे बड़े आश्चर्य और संताप की बात यह है कि नगरों में 'जनरक्षक' पुलिस बैठी है, शासनाधिकारी बैठे हैं और उनकी आंखों के सामने यह व्यापार धड़ल्ले के साथ चल रहा है। अभी दिल्ली में एक कान्फ्रेंस में भाषण देते हुए श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने बताया कि विभिन्न स्थानों से ३०० लड़कियों का उद्धार किया गया है। पिछले दिनों 'इंडिया' नामक पत्र में इस विषय पर दिल को हिला देनेवाला एक लेख छपा था। उसमें अनेक चित्र भी दिए गए थे, उन बहनों के, जिन्हें विभिन्न चकलों से मुक्त कराया गया था और उनकी मर्मस्पर्शी कहानियां उन्हींके मुंह से कहलवाई गई थीं। यह पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि किस प्रकार मासूम लड़कियों को फुसलाया जाता है, किस प्रकार उन्हें शारीरिक यातनाएं दे-देकर चकले पर बैठने के लिए विवश किया जाता है और किस प्रकार उनके मन में यह भावना पैदा कर दी जाती है कि वे पतित हो गई हैं और समाज या उनके माता-पिता उन्हें कदापि ग्रहण न करेंगे।

हम इस जघन्य व्यापार की अपनी पूरी शक्ति से निन्दा करते हैं। जो लोग इस भयंकर व्यापार को कर रहे हैं, वे अपने और देश के माथे पर कलंक का टीका लगा रहे हैं। रचनात्मक कार्यकर्ताओं और लोकसेवकों से हम अपील करेंगे कि इस नफ़रत-भरे काम में लिप्त लोगों को पकड़ना भी वे अपने कर्त्तव्य का एक अंग मान लें। साथ ही शासनाधिकारियों से भी हम अनुरोध करेंगे कि वे ऐसे लोगों को कठोर-से-कठोर दण्ड दें। आखिर हमारा यह लम्बा-चौड़ा शासन-तंत्र किस मर्ज की दवा है? पता चला है कि पुलिस इस बारे में ढील से काम लेती है। यदि ऐसा है तो हम कहेंगे कि वह अपने कर्त्तव्य से च्युत होती है।

हम नहीं मानते कि इस व्यापार के पीछे केवल आर्थिक कारण हैं। यदि हैं, तो भी इसे किसी भी हालत में उचित नहीं ठहराया जा सकता। हम अपनी सरकार से कहेंगे कि उसे इस संबंध में अब अधिक जागरूक और कर्त्तव्यशील बनना चाहिए।

राजाजी का संकल्प

मदरास के मुख्य मंत्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य देश के उन महान व्यक्तियों में से हैं, जो चाहे पद पर हों, या बाहर, सदा देश को ऊंचा उठाने के लिए चिंतित और प्रयत्नशील रहते हैं। हाल ही में उन्होंने एक महान् संकल्प किया है कि वह मदरास प्रदेश से भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए जी-जान से चेष्टा करेंगे। राजाजी का यह संकल्प सराहनीय और अभिनंदनीय है। आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता देशव्यापी भ्रष्टाचार को दूर करने की है। प्रायः हर विभाग में आज भ्रष्टाचार फैला है, बेईमानी चल रही है और अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए गलत काम किए जा रहे हैं। हम यह नहीं कहते कि सब लोग बेईमान या स्वार्थी हैं; लेकिन कहा जाता है कि एक मछली तालाब के पानी को गंदला कर देती है। यदि किसी विभाग के थोड़े कर्मचारी भी बेईमान हैं, तो वे सारे विभाग को दूषित कर देते हैं।

आज के बुराइयों से भरे युग में राजाजी का यह संकल्प उस दीप-स्तंभ की भांति है, जो अंधेरे में भटकते मानव का एक मात्र सहारा होता है। क्या अन्य प्रदेशों के

अधिकारी राजाजी के इस कदम का अनुसरण नहीं करेंगे ?

कैसा साहित्य बिक रहा है ?

उस दिन प्रयाग में हम पुस्तकों की एक दुकान पर बैठे चर्चा कर रहे थे कि इतने में एक सज्जन आये और उन्होंने मेज के पास आकर धीरे-से पूछा- 'कोकशास्त्र है ?" दुकान के एक कर्मचारी ने कह दिया कि नहीं है। वह सज्जन जाने को हुए तो हमने उनसे पूछा कि इस पुस्तक का आप क्या करेंगे ? उन्होंने सहम कर उत्तर दिया—मुझे नहीं चाहिए एक मित्र ने मगाई है।

इसके कुछ दिन बाद हम कलकत्ते में एक पुस्तक-विक्रेता से बात कर रहे थे कि साठ लाख की इस आबादी में कैसा साहित्य पढ़ा जा रहा है। उन्होंने कहा, "यहां तो जासूसी या वासनोत्तेजक उपन्यास और प्रेम की कहानियां अधिक पढ़ी जाती है। वे उपन्यास और कहानी-सग्रह खूब बिक रहे हैं। उन्हींके कुछ नए भाई और पैदा हुए हैं।" एक सज्जन चुपचाप बैठे हमारी बाते सुन रहे थे। न रहा गया तो उन्होंने किताबों के अपने पैकेट में से एक किताब हम लोगों के आगे पटकते हुए कहा कि यह भी दुकान-दुकान पर बिक रही है। वही पुस्तक थी जिसकी माग प्रयाग की दुकान पर की गई थी।

वास्तव में आजकल गभीर साहित्य की माग बहुत कम है और अधिकांशत मानव की क्षुद्र वासनाओं को भड़काने वाला साहित्य ज़ोरों से बिक रहा है। ऐसे साहित्य का सृजन इसलिए होता है कि उसकी माग है और बेचा इसलिए जाता है कि उस पर कमीशन खूब मिल जाता है। अन्य पुस्तकों पर जहां २०-२५ या अधिक-से-अधिक ३० प्रतिशत कमीशन मिलता है, वहां ऐसे साहित्य पर ५०-६० प्रतिशत मजे में मिल जाता है। पाठक ऐसे साहित्य को इसलिए खरीदते है कि उसे पढ़ने से उनके दिमाग पर ज़ोर नहीं पड़ता, उल्टे उन्हे अपनी सस्ती वासनाओं के उभार से हल्का आनंद प्राप्त होता है।

इस प्रवाह को कैसे रोका जाय, यह एक विचारणीय प्रश्न है, । जो लोग राजनीति में हैं, उन्हे तो अपने ही क्षेत्र की उखाड़-पछाड़ से अवकाश कहां है, जो इस दिशा में कुछ सोचें, वास्तव में यह काम उनके बूते का है भी नहीं। इस ओर तो साहित्य-जगत् के महारथियों और सरकार के शिक्षा विभागों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। लोक रुचि कैसे परिष्कृत हो, घासलेटी साहित्य की बाढ़ को कैसे रोका जाय, बढ़िया साहित्य सर्वसामान्य के लिए सुलभ मूल्य में कैसे दिया जाय, आदि-आदि प्रश्न हैं जिन पर-देश के व्यापक हित में विधिवत रूपमें और सगठित ढग से विचार ही नहीं, उस ओर क्रियात्मक कदम भी उठना चाहिए। आज का युग हमारे लिए एक बड़ी चुनौती है। उसकी अब अधिक अवहेलना करके हम अपना बहुत नुकसान करेंगे। —य०

पचाचूली शिखर पर धावा

हिमालय की अनेक अजेय चोटियों पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष विदेशों से अनेक साहसी आते रहे हैं लेकिन हम लोग जो पर्वतराज की छाया में ही बसते हैं इस ओर से सदा उदासीन रहे। क्या यह उदासीनता हमारे चरित्र पर एक कलक के समान नहीं है ? क्या यह हमारे साहस को चुनौती नहीं देती ? हमें हर्ष है आखिर भारतवासियों ने इस चुनौती को स्वीकार करके कलक को धो देने का बीड़ा उठा लिया है। अभी इस जून में 'पिलानी हिमारोहण दल' ने हिमाचल की पचाचूली (२२,६५० फीट) नामक चोटी पर आक्रमण किया था। यद्यपि वे पूर्ण रूप से तो सफल नहीं हुए पर १६ जून को दिन के १२ बजकर ३८ मिनट पर उन्होंने २२,१२५ फीट पर भारत का तिरगा झण्डा लहरा दिया। आगामी बसन्त या हेमन्त में फिर आक्रमण करने और मुख्य चोटी पर विजय पाने की आशा करते हैं।

२२,१२५ फिट तक पहुच कर भी इस दल ने विदेशियों का रिकार्ड तोड़ दिया है। हम इस दल का अभिनदन करते हैं और आशा करते हैं कि हिमालय का भयानक सौन्दर्य हमारे देश में अधिकाधिक अन्वेषण की प्रवृत्ति पैदा करेगा। हमें यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि इस दल के सभी सदस्य पिलानी कालेज के छात्र हैं। जैसे-जैसे हमें अपनी स्वतन्त्रता का भान होगा, हमारे विद्यार्थियों के ऐसे अनेक दल अनेक अजेय हिममण्डित शिखरों पर 'तिरगा' लहराने के लिए आगे बढ़ेंगे, क्योंकि साहस उन विरल गुणों में एक प्रमुख गुण है जो स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अनिवार्य है। —'सुशील'

Reg. No. D. 228.

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

एक प्रति का
।=)

लेख-सूची

'जीवन-साहित्य' की फाइलें और विशेषांक

हमारे स्टॉक में 'जीवन-साहित्य' की निम्नलिखित फाइलों और विशेषांकों की कुछ प्रतियां शेष हैं :

		अजिल्द	सजिल्द
१९४३ की फाइल,		४)	५)
१९४५	,, (छः अंकों की)	,, १॥)	,, २॥)
१९४६	,,	,, २)	,, ३)
१९४८	,,	,, ३)	,, ४)
१९४९	,,	,, ३)	,, ४)
१९५०	,,	,, ४)	,, ५)
१९५१	,,	,, ४)	,, ५)

विशेषांक

जमनालाल-स्मृति-अंक	॥)
प्राकृतिक चिकित्सा अंक (परिशिष्टांक सहित)	२।)
विश्व-शांति अंक	१॥)

मंगाने में विलम्ब न कीजिये ।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. 'जीवन-साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें। यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें।

२. पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य दें। उससे कारंवाई करने में सुगमता और शीघ्रता हो जाती है।

३. बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चंदा किसी नाम से भेजते हैं। इससे गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

४. पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल ही भेजी जायं और कागज के एक ही ओर साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखी जायं।

५. अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए।

६. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जायं।

७. पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं। बीच में रुपया भेजने वालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जायं या आगे से ग्राहक बनाया जाय।

—व्यवस्थापक

नोट—ग्राहकों से निवेदन है कि यदि उनके पते में कोई त्रुटि हो तो उसकी सूचना तुरन्त हमें देकर ठीक करा लें, जिससे पत्र उन्हें समय पर मिलता रहे।

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम पचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

सितम्बर १९५२] [वर्ष १३ अंक ९

स्वामी रामतीर्थ

अमृत-वाणी

हरि ॐ शांति ॐ शमदम, ॐ ॐ शिव शिव बम् बम् ।
अमृत बरसे है हरदम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ।।

छाई घटा है कैसी काली, चाल है जिसकी क्या मतवाली ।
अमृत बरसे है झम झम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ।।

बादे-बहारी सांस हमारी, लॉज़ ऑव नेचर से है जारी ।
चलती है सोऽहं सोऽहं, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ।।

शाखों से है कुछ तो झूमें, शबनम से कुछ धरती चूमें ।
गिरती हैं कौमें धम् धम्, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ।।

नूर है मेरा कैसा आला, श्वेत या क्षीर समुन्दरवाला ।
चमके है कैसा चम चम, रिमझिम रिमझिम झम् झम् झम् ।।

कैसी लहरें मारे है, दुनिया जिससे पसारे है ।
ले रहा लहरें है थम-थम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ।।

ॐ नूर का है भंडार, तारे हैं जिसकी बौछार ।
गया प्रकाश अब राम में रम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ।।

विनोबा

एक महत्वाकांक्षा

मैं यह दावा नहीं करता कि हमें जो आजादी मिली, वह हमारी अहिंसा के परिणामस्वरूप ही मिली; क्योंकि वह दावा ठीक नहीं होगा। गीता ने बताया है, कोई भी काम पांच कारणों से बनता है। इसलिए केवल हमारे अहिंसक प्रयोग से ही आजादी मिली, यह कहना अहंकार होगा। लेकिन अहिंसात्मक लड़ाई एक बड़ा कारण है, ऐसा हम कह सकते हैं। दुनिया का इतिहास लिखनेवालों को लिखना पड़ेगा कि हिंदुस्तान का राजकीय मसला नैतिक तरीके से हल हुआ था तथा हिंदुस्तान में राष्ट्रीय आजादी का प्रयत्न करनेवालों को जो यश मिला, वह इतना अपूर्व और ऐसा अद्भुत है कि उसने दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।

इस तरह हमने देखा कि हमने एक अत्यन्त बलवान राष्ट्र से आजादी हासिल की है।

दूसरा एक चमत्कार इस देश में यह हुआ कि इतनी बड़ी सल्तनत, जिसके बारे में यह कहा जाता था कि उस पर सूर्य कभी अस्तमान नहीं होता, यहां से अपना सारा कारोबार समाप्त कर चली गयी। उसने एक तारीख मुकर्रर की और ठीक उस तारीख के पहले वह यहां से कूंच कर गई। इसलिए मेरा मानना है कि हमने जो अहिंसक तरीका अपनी आजादी हासिल करने के लिए अख्तियार किया था, उसकी जितनी महिमा है, उतनी ही महिमा इस बात की भी है कि अंग्रेजों ने एक निश्चित तारीख को यहां से हुकूमत उठा ली। इतिहासकार मानेंगे कि यह भी नैतिकता की एक अद्भुत विजय हुई। एक और चमत्कार, और ऊपर के चमत्कार से भी अधिक बड़ा चमत्कार यह हुआ कि जहां माउण्टबेटन ने हिन्दुस्तान का कारोबार हिन्दुस्तान के लोगों को सौंप दिया, वहां हमारे लोगों ने उसे ही गवर्नर जनरल के तौर पर रख लिया। नैतिक विजय की इससे बड़ी मिसाल कोई हो नहीं सकती थी। नैतिक तरीके की खूबी यह होती है कि उसमें जो जीतते हैं, वे जीतते ही हैं, लेकिन जो नहीं जीतते, वे भी जीतते हैं। एक की हार के आधार पर दूसरे की जीत नहीं होती। और आप देखते हैं कि बावजूद इस बात के, कि हमें इंग्लैंड से कई तरह का दुःख पहुंचा और यातनाएं सहनी पड़ीं, हम लोगों के मन में आज इंग्लैंड के बारे में दुश्मनी के भाव नहीं हैं। अन्यत्र किसी भी लड़ाई के बाद ऐसा सद्भाव प्रगट नहीं हुआ है।

अब, जबकि एक राज जाकर दूसरा राज आया है, तो यह सोचने का समय है कि हमें किस प्रकार अपनी समाज-रचना करनी है। याने यह संध्या का समय है, ध्यान का समय है। हमारे सामने आज पचासों रास्ते खुले हैं। कौनसा रास्ता लें, यह हमें तय करना है। यह तय करने में हमें उस घटना को नहीं भूलना चाहिए, जिसका हमने आदरपूर्वक अभी उल्लेख किया। आज हम एक बड़ी भारी सल्तनत का बोझ उठा रहे हैं। इसलिए हम सबके सामन यह बड़ा भारी सवाल है कि हमारी आर्थिक और सामाजिक रचना करने में कौन-सा तरीका स्वीकार करें। गांधीजी के जमाने में हमने अहिंसा का तरीका आजमाया था, लेकिन उसमें हमारी कोई विशेषता नहीं थी, क्योंकि तब हम लाचार थे। अगर हम उस रास्ते नहीं जाते तो मार खाते। दूसरा कोई अहिंसक रास्ता हमारे लिये खुला नहीं था। इसलिए जो रास्ता हमने अख्तियार किया, वह अशरण का शरण था, अनाथ का आश्रय था। इसलिए हमने अहिंसा का रास्ता अपनाया और गांधीजी का नेतृत्व हमें मिला। हमने सोचा कि यह तरीका हम आजमायें। हिंसा में हम जितने ताकतवर थे, उससे ज्यादा ताकतवर हमारे दुश्मन थे। लेकिन अहिंसा में हम उनसे ज्यादा ताकतवर थे। इसलिए हमारे सामने एक ही रास्ता था—या तो आजादी हासिल करने की तमन्ना छोड़कर चुपचाप गुलामी स्वीकार करें या अहिंसक प्रतिकार के लिए तैयार हो जांय। उस समय हमारे सामने पसन्दगी या 'च्वायस' का सवाल नहीं था। लेकिन अब बात दूसरी है। अब हम चुनाव कर सकते हैं। अगर हम चाहें तो हिंसा का तरीका चुन सकते हैं, चाहें

तो अहिंसा का चुन सकते हैं। चाहे तो सेना में आदमी बढा सकते हैं, नौकादल और वायुदल भी बढा सकते हैं और देश को खाना कपडा चाहे न मिले, परन्तु देशवासियो को इस सेना के लिए त्याग करने को कह सकते हैं। और चाहें तो अहिंसा के रास्ते भी जा सकते हैं। चुनाव करने की यह सत्ता आज हमारे हाथ में है। पहले लाचारी थी, आज ऐसी लाचारी नही है।

और फिर आज, जब कि गाधीजी चले गये हैं, हम लोग मुक्त मन से और खुले दिल से बिना किसी दबाव के निर्णय कर सकते है। मानो इसलिए गाधीजी को भगवान् हमारे बीच से उठा ले गया है! अब उनका दबाव हम पर नही है। अगर हम हिंसा के तरीके को मानते है तो हमें रूस या अमेरिका को गुरू मानना होगा। किसी एक गुरू को मान कर उसके शागिद बनकर स्वतन्त्रता-पूर्वक उनमें से किसी का गुलाम बनना होगा। सवाल यह है कि क्या स्वतन्त्र इच्छा से हम उनके शागिर्द बनना चाहते हैं? क्या उनके "कैंप-फालोअर" बन कर उनके पीछे-पीछे जाकर हमारी ताकत बढनेवाली है? उनकी ताकत से ताकत लेनें में हमें पचासो वर्ष लग जायेंगे और सम्भव है, फिर भी हम उनसे ज्यादा ताकतवर न हो सके। नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान को फिर से गुलाम होकर रहना पडेगा और अगर हम अमेरिका तथा रूस, दोनो से भी ताकतवर बन जाय तो दुनिया के लिए एक खतरा साबित होगे। अब सवाल हमारे सामने यह है कि स्व-तन्त्रता के नाम पर क्या हम गुलाम बनना चाहते हैं या दुनिया के लिए एक खतरा बनना चाहते है। हमें गहराई से इस पर सोचना होगा।

आज हिंदुस्तान स्वतंत्र है, फिर भी कपडा बाहर से मगाना पडता है। आज हिन्दुस्तान स्वतत्र है, तब भी हमें 'एक्सपर्ट' लोग बाहर से मगाने पडते है। आज हिन्दु-स्तान स्वतत्र है, लेकिन हमें शस्त्र और सेनापति बाहर से ही मगाने पडते हैं। आज हिंदुस्तान स्वतत्र है, परतु तालीम के लिए भी हमें बाहर के देशो पर निर्भर रहना पडता है। तो क्या आजादी के साथ-साथ हम स्वतन्त्रतापूर्वक गुलाम बने रहना चाहते हैं? आज यह सवाल हम लोगो के सामने उपस्थित है। भगवान् ने हिंदुस्तान का नसीब ऐसा बनाया है कि या तो उसे अहिंसा के रास्ते से श्रद्धा-पूर्वक चलना चाहिए, या जो लोग हिंसा में पडित हैं, उनकी गुलामी मजूर करनी चाहिए, क्योंकि हिंदुस्तान एक पचरगी दुनिया है, एक खण्ड-प्राय देश है। इसमें अनेक धर्म, अनेक भाषाए, अनेक प्रात और उनके अनेक रस्मो-रिवाज है। उसका एक-एक प्रात यूरप के बडे-बडे देश की बराबरी का है। क्या एसी अनेक-विध जमातो को हम हिंसक तरीके से एक रस रख सकते है? एक-एक मसला नित्य हमारे सामने उपस्थित होता जा रहा है। आंध्र वाले चाहते हैं कि हमें एक स्वतत्र प्रदेश मिले। वे भारत भूमि से अलग नही रहना चाहते है, लेकिन उनकी अलग प्रदेश की माग अनुचित नही है। तो क्या उनकी यह माग हिंसक तरीके से पूरी हो सकती है? अगर हिंसात्मक तरीके को हम ठीक मानते हैं तो हमें यह मानना होगा कि गाधीका हत्यारा पुण्यवान था। उसका विचार भले ही गल्त हो, पर वह प्रामाणिक था। अगर हम अच्छे और सच्चे विचार के वास्ते हिंसात्मक तरीके अख्तियार करना ठीक समझते हैं, तो आपको मानना होगा कि गाधीजी की हत्या करने वाले ने भी बडा भारी त्याग किया है। अगर हम ऐसा मानें कि प्रामाणिक विचार रखनेवाले अपने विचारो के अमल के वास्ते हिंसक तरीके अख्तियार कर सकते हैं, तो मैं आपसे कहना चाहता हू कि फिर हिन्दुस्तान के टुकडे-टुकडे हो जायेंगे, वह मजबत नही रह सकेगा। हिंसा से एक मसला तय होता दिखायी देगा, लेकिन दूसरा मसला निर्माण होगा। मसले कम होने के बजाय नये-नये मसले पैदा होते ही रहेंगे। आज भी हरिजनो को मदिरो में प्रवेश नही मिलता। छूआछूत का यह भेद नही मिट पाया तो क्या हरिजन अपने हाथ में शस्त्रास्त्र ले? अगर अच्छे काम के लिये हिंसा जायज है, तो हरिजन भाई शस्त्र उठायें, यह भी जायज मानना होगा। यह दूसरी बात है कि वे शस्त्र न उठायें।

इसलिए आज ये सब बाते ध्यान में रखकर तय करना होगा कि जो महत्व के मसले हमारे सामने आज हैं, उनको हल करने के लिए कौन से तरीके जायज है और कौन से नाजायज? अगर हम अच्छे मक्सद के वास्ते खराब साधन इस्तेमाल करते हैं तो हिन्दुस्तान के सामने मसले

पैदा ही होते रहनेवाले हैं। लेकिन अगर हम अहिंसक तरीके से अपने मसले तय करेंगे तो दुनिया में मसले रहेंगे ही नहीं। यही वजह है कि मैं भूमि की समस्या शांति के साथ हल करना चाहता हूं। भूमि की समस्या छोटी समस्या नहीं है। मैं लोगों से दान में भूमि मांग रहा हूं,भीख नहीं मांग रहा हूं। एक ब्राह्मण के नाते मैं भीख मांगने का अधिकारी तो हूं, लेकिन यह भीख मैं व्यक्तिगत नाते ही मांग सकता हूं। पर जहां दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के तौर पर मांगना होता है, वहां मुझे भिक्षा नहीं मांगनी है, दीक्षा देनी है। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुंच चुका हूं कि भगवान् जो काम बुद्ध के जरिये कराना चाहते थे, वह काम उन्होंने मेरे इन कमजोर कन्धों पर डाला है।

और मैं मानता हूं कि यह कार्य धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य है। यह मेरी सिंहगर्जना है। जमीन तो मेरे पास कब की पहुंच चुकी है। आप जिस तरीके से चाहो, उस तरीके से यह समस्या हल कर सकते हो। आपको तय करना है कि घी के डिब्बे को आग लगानी है, या वेदमंत्रों के साथ यज्ञ में उसकी आहुति देनी है। आप यह मत समझिए कि बाहर से हमारे इस देश में केवल मानसून ही आते हैं। क्रांतिकारी विचार भी बाहर से आते हैं और जिस तरह से हवा बे-रोक-टोक आती है, उसी तरह क्रांतिकारी विचार भी बिना रोक-टोक, बिना किसी तरह के पासपोर्ट के आते रहते हैं। लोगों ने, जहां दीवारें नहीं थीं, वे बनाईं। चीन की वह बड़ी दीवार देख लीजिये। भगवान् ने जर्मनी और फ्रांस के बीच कोई दीवार नहीं खड़ी की थी, लेकिन उन्होंने सिगफ्रिड् और मेजिनो लाइनें बना कर क्षेत्र संकुचित कर दिया। मगर ये दीवारें लोगों को केवल इधर से उधर आने-जाने से ही रोक सकती हैं, परंतु वे विचारों के आवागमन को नहीं रोक सकतीं। उसी तरह यहां भी दुनिया के हरेक देश से विचार आयेंगे और यहां से बाहर भी जायेंगे। इसलिये हमें तय करना चाहिए कि भूमि की समस्या हमें शान्ति से हल करनी है या हिंसा से? मेरे मन में इस बारे में संदेह नहीं है कि यह समस्या शांति से हल हो सकती है। इस संबंध में इतना स्पष्ट दर्शन मेरे मन में है, इसीलिए मैं निःसन्देह होकर बोल रहा हूं और कहता हूं कि भाइयों, वन में पंछी बोल रहे हैं, इसलिए अब जाग जाओ। आप उसे सुनते हैं या नहीं? आप जानते हैं या नहीं? हे मेरे अंतर्यामी भगवान्! प्रातःकाल का समय हो गया है, तुम जाग जाओ और दीनन को दान दो! जिस तरह तुलसीदासजी भगवान् को समझा रहे थे, उसी तरह मैं अपने भगवान् को यानी आपको कहता हूं कि जाग जाओ। यदि आप सब दान दोगे तो आपकी इज्जत होगी।

जैसा कि मैंने अभी कहा, जिस तरह बाहर की हवा इस देश में आ सकती है, उसी तरह यहां की हवा भी बाहर जासकती है और जिस तरह बाहर से विचारों का आक्रमण यहां हो सकता है, उसी तरह हम भी अपने विचार बाहर भेज सकते हैं। यह भूदान-यज्ञ एक छोटा-सा कार्यक्रम है। लेकिन आज दुनिया की नजरें इस तरफ लगी हुई हैं। दुनिया के सब लोग इस आन्दोलन के बारे में तुच्छ बोल रहे हैं। लोग कहते हैं कि जमीन तो मारने से मिलती है, मांगने से कैसे मिल सकती है? भारत में यह एक अजीब तमाशा हो रहा है कि मांगने से जमीन मिल रही है। यह एक स्वतंत्र दृष्टि से विचार करने लायक बात है कि अब मांगने से एक लाख एकड़ से ज्यादा जमीन मिली है। जहां दुनिया में चारों ओर लेने की और छीनने की बातें चल रही हैं वहां इस देश में देने का आरंभ हो रहा है और अन्तर्यामी भगवान् जाग रहे हैं। और जिस तरह बाहर से विचार यहां आ सकते हैं, उसी तरह यदि हम धीरज और हिम्मत रखें, तो यहां के भी विचार बाहर जा सकते हैं। जरूरत इस बात की है कि भूदान-यज्ञ का संदेश सब दूर फैलाने के लिए हम उसी निष्ठा से काम करें, जिस निष्ठा से भगवान् बुद्ध के शिष्यों ने किया। वे बाहर के देशों में गये और वहां प्रेम से प्रचार किया। उसी निष्ठा से हमें इस नये धर्म-चक्र-प्रवर्तन में लग जाना चाहिए। ऐसा होगा, तब आप भी दुनिया को एक नया आकार दे सकेंगे। मैंने कहा है कि जब प्रलय के समय सारी दुनिया जलमय हो जाती है, तो अकेला मार्कण्डेय ऋषि तैरता रहता है और फिर वही दुनिया को बचाता है। उसी तरह आज भी दुनिया में विचारों से, वचन से, व्यापार से, शस्त्रास्त्रों से,एटम बम से—हर तरह से प्रलयात्मक प्रयत्न हो रहे हैं। उस प्रलय के सारे प्रयत्नों पर जो देश मार्कण्डेय

की तरह अकेला तैरेगा, उसके हाथ में दुनिया का नेतृत्व आने वाला है। मैं यह अभिमान से नहीं बोल रहा हू, बल्कि नम्रतापूर्वक बोल रहा हू। हम नम्र बनें, तभी ऊचे उठ सकेंगे। मनु महाराज ने भविष्य लिख रखा है·

इस देश में जो महान् पुरुष पैदा होंगे उनमें ऐसी शक्ति होगी कि उसके द्वारा सारी दुनिया के लोग अपने जीवन के लिए आदर्श सीखेंगे।

मैं कहता हू कि वह शक्ति वह सत्ता आपके हाथों में है। आपको एक नेता मिला था, जिसके नेतृत्व में आपका देश अहिंसा के तरीके से आजाद हो सका। आज भी इस देश में ऐसे लोग हैं, जिनके हृदय में सद्भाव मौजूद है। अब थोडी हिम्मत रखो और थोडी कल्पना-शक्ति रखो तो आप देखेंगे कि आपके हाथ में भी वह शक्ति है, जिससे आप दुनिया को आकार दे सकते है। यह आक्रमण नही है, बल्कि दुनिया को बचाना है। यह एक ऐसी महत्वाकांक्षा है, जो रखने लायक है।

इन्द्रसेन

१५ अगस्त का आत्म-चिंतन

१५ अगस्त देश की स्वतत्रता का पुण्य स्मारक है। इस दिन हम स्वतत्रता के सघर्ष तथा इसकी प्राप्ति को स्मरण करके आनद मनाते है तथा इसे आगे के लिए दृढतर बनाने के लिये सकल्प करते है। यही दिन श्री अरविन्द का पावन जन्मदिवस भी है। इसी दिन सन् १८७२ में श्री अरविन्द ने जन्म लिया था। स्वतत्रता के देशव्यापी तथ्य में और श्री अरविन्द के वैयक्तिक जन्म में वस्तुत गभीर सबध भी है। श्री अरविन्द प्रथमत भारतीय लोक-चेतना में देशभक्त और राष्ट्रनेता के रूप में अवतरित हुए। वास्तव में जब श्री अरविन्द दीर्घ प्रवास के बाद शिक्षा समाप्त करके भारत पहुचे तो देश की स्वाधीनता ही उनकी मन-बुद्धि का एक मात्र विचार था और वह शीघ्र ही उनके New Lamps for old (पुराने आदर्शों की जगह नये) के अधीन बल रूप में प्रकट हुआ। यह लेखमाला शायद १८९४ में प्रकाशित हुई थी और इसमें इन्होने उस समय की उस दलीय नीतिका जोरदार खडन किया था तथा उसके स्थान पर स्पष्ट तथा बलपूर्ण शब्दो में एक स्वावलबी नीति को उद्घोषित किया था। गत शताब्दी के अतिम दशक में लिखे हुए लेख आज भी ओजस्वी प्रतीत होते हैं। उस दासता के वातावरण में वह निर्भीक सत्यभाषण, जाति के सच्चे अधिकार का वह आख्यापन, अवश्य ही परम ओज और तेज की वस्तु थी। पीछे जब श्री अरविन्द स्वदेशी आदोलन में उस समय के सर्व-प्रसिद्ध पत्र 'वन्दे मातरम्' का सपादन कर रहे थे तब वे नित्य प्रति देश के मन और प्राण में यही भाव भरते रहे कि पूर्ण स्वाधीनता ही हमारा ध्येय हो सकता है इससे कम हम कुछ भी स्वीकार नहीं करेगे। एक बार के उनके शब्द हैं "हमें विश्वास है कि जब यह नव-जाग्रत-जाति अपनी शक्ति को सगठित कर लेगी, तो यह कानफेडरेसी (राज्यसघ) में बराबरी के सबध के अतिरिक्त इग्लैड से और किसी सबध के लिए न राजी हो सकती है और न इसे होना ही चाहिए। स्वामी और पराश्रित अथवा उच्च और अधीनस्थ के सबधो से सतुष्ट रहना पुरुषत्व के अयोग्य, तुच्छ और दयनीय आकाक्षा है, शक्तिशाली तथा गौरवपूर्ण स्वाधीनता से कम के लिए यत्न करना हमारे अतीत की महानता तथा भविष्य की विशाल सभावनाओ का अपमान करना होगा।" यह ध्वनि और भाव 'वन्दे मातरम्' के पृष्ठ पृष्ठ पर अकित रहते थे और उन्हीं पृष्ठो की देशभक्ति और स्वाधीनता-प्रेम की शिक्षा ने गाधी युग के अधिकाश देशसेवकों को पैदा किया। आज के वयोवृद्ध राष्ट्रनेता तब युवक थे और इनमें से जिन्होने 'वदे मातरम्' से अपनी देशभक्ति की दीक्षा ली थी वे चिर सहृदयता तथा कृतज्ञता से उस पत्र और उसके लेखों को स्मरण करते है यह स्वय अनुभव करने की चीज है।

परन्तु श्री अरविन्द के लिए स्वाधीनता अत में जीवन की बुनियाद ही है, इसकी पहली तथा अनिवार्य माग,

इसका ध्येय नहीं। ध्येय वास्तव में वह कार्य है जो उन्हें एक समय स्वातंत्र्य संघर्ष से अलग खींच लाया और जिसने उन्हें जीवन के गंभीर तत्वों को एकांत में खोजने के लिए बाधित किया। भारत की संस्कृति का निर्माण वेद- उपनिषदों के ऋषि-आश्रमों में हुआ था। एकांत और शांत अंतर्निरीक्षण द्वारा जो जीवन के मौलिक आधार उन ऋषियों ने ढूंढ़ निकाले थे वही भारतीय संस्कृति की दृढ़ भूमि बने और उन्हीं के बल पर भारत चिरजीवी बन सका है। श्री अरविन्द की ठीक यही प्रेरणा थी और उन्होंने वर्तमान समय में भारतीय जीवन तथा सामान्य मानव जीवन को वह समन्वय देने का यत्न किया है जो उसे वर्तमान संकट से निकालकर जीवन-विकास के वास्तविक मार्ग पर लगा सके। श्री अरविन्द सन् १९१० में पांडिचेरी पधारे थे और तब से उनकी यही गवेषणा रही। सन् १९२६ तक इसका शुद्ध रूप व्यक्तिगत था, इस के बाद इसने सार्वजनिक कार्य का रूप धारण कर लिया और यह उत्तरोत्तर विकसित होता गया। इसमें श्री माताजी का सहयोग एक दैवी सहायता रही है। इस समय इस कार्य का रूप सार्वभौम बना हुआ है और जब यह प्रत्यक्ष रूप में द्रुततर गति से आगे बढ़ रहा है। श्री अरविन्द पिछले कुछ वर्षों में जीवन के आध्यात्मिक आधारों तथा संभावनाओं को आज के बौद्धिक जगत में विस्तारित करने के लिए आश्रम के साथ एक विश्वविद्यालय का आयोजन बढ़ाना चाहते थे। जहां आश्रम एक शुद्ध आध्यात्मिक जीवन-निर्माण का केन्द्र रहा है वहां विश्वविद्यालय शिक्षा को एक नया रूप देने का आयोजन होगा जिससे जीवन निर्माण के नए समन्वय को विस्तृतर रूप दिया जा सकेगा।

विश्वविद्यालय आयोजन संबंधी अधिवेशन को हुए अभी एक ही वर्ष हुआ है, परंतु इतने समय में विश्व विद्यालय ने पर्याप्त विकास किया है। इसके लिए उचित केंद्रीय स्थान, जो कि ठीक आश्रम के सामने है, प्राप्त हो गया है और उसकी पुरानी इमारतों को वर्तमान उपयोग के लिये परिवर्तित कर दिया गया है। गत ६ जनवरी को माताजी ने उसका उद्घाटन किया था और अब विश्वविद्यालय का स्कूल-विभाग यहां लगता है। उसीमें संगीत और नृत्य के कक्ष हैं तथा पुस्तकालय का स्थान भी। विश्वविद्यालय के उच्च-स्तरीय अध्यापन की दृष्टि से इस बीच में कुछ एक व्यक्तियों का आगमन विशेष आनंद का रहा है। एक फ्रेंच महिला, संगीत कला की विशेषज्ञा, पधारी हैं, और उनके अधीन संगीत-शिक्षा सुन्दर रूप में पनप रही है। एक और महिला कला तथा पुरातत्त्व विज्ञान की विशेषज्ञा हैं। फिर एक जर्मन विद्वान आये हैं जिनके अधीन जर्मन भाषा की शिक्षा प्रारम्भ हो गई है तथा आश्रम-साहित्य का जर्मन अनुवाद तथा प्रकाशन भी जारी हो गया है। स्पेनिश विभाग का आयोजन भी शीघ्र होने जा रहा है। परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण चीनी विभाग का आयोजन होगा। आश्रम प्रेस के लिए चीनी टाईप आदि का आर्डर गया हुआ है और यथाशीघ्र कुछ चीनी साधकों के अधीन Life Divine के चीनी अनुवाद की, जो कि पूरा हो चुका है, छपाई शुरू हो जायगी।

पिछले साल में इतना विकास विश्वविद्यालय के भविष्य का पूरा आश्वासन दिलाता है। इस संबंध में हमें यह याद रखना होगा कि श्री अरविन्द विश्वविद्यालय एक नई सांस्कृतिक भूमि की रचना करना चाहता है और इसके लिए उपयुक्त उपाध्याय और शिक्षक वही हो सकते हैं जो विद्वान् होने के साथ आध्यात्मिक जिज्ञासु भी हों। जिनमें आत्मा के लिए सक्रिय भावना नहीं, जो आध्यात्मिक जीवन के तपस्वी जिज्ञासु नहीं, वे श्री अरविन्द विश्वविद्यालय के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते।

श्रीअरविन्द ने अपने सार्वभौम कार्य के रूप में अपना आश्रम ही क्यों खोला था? श्री अरविन्द ने अपनी दीर्घकालीन व्यक्तिगत साधना द्वारा यह अनुभव किया था कि मानव जीवन एक सार्वभौम विकास का अंग है तथा यह अचेतन भाव में मन से उच्चतर आत्मा की भूमि की ओर अग्रसर हो रहा है तथा यह भूमि अतिमन के महान् आध्यात्मिक तत्त्व के अवतरण से तथा मानव में आत्म-जिज्ञासा और अभीप्सा के उद्दीप्त होने से अधिक शीघ्र चरितार्थ की जा सकती है। इसी चरितार्थता के केंद्र के रूप में ही आश्रम की कल्पना और स्थापना हुई थी और वही काम ३० साल से अनथक रूप में होता आ रहा

है तथा उसे ही अब आगे माताजी चला रही है। इस कार्य ने निश्चय ही ससार को एक नई प्रेरणा प्रदान की है, और इसकी सफलता, प्रत्यक्ष ही, जीवन में एक उच्चतर नया स्तर पैदा कर देगी, जो कि आत्मा का प्रशस्त मार्ग होगा। आज के बुद्धिवादी युग तथा इसके विरोधो और सकटो का यह सक्रिय समाधान होगा। ऐसा मौलिक समाधान ही श्रीअरविन्द के जीवन की खोज थी और इसी के लिए वे यत्नशील रहे। यही वह सास्कृतिक आधार तथा उद्देश्य था, वह समन्वय था, जिसे चरितार्थ करने के लिये, उनकी दृष्टि में भारत विशेष उपयुक्त है, इसी के लिये स्वाधीनता प्रयोजनीय थी और यही तथ्य इसे आज ससार को दे सकना चाहिए। उनके विश्व विद्यालय को आज के बौद्धिक जगत् के लिये यही समन्वय चरितार्थ करना है। आज शिक्षा का आदर्श शुद्ध बौद्धिक है। बुद्धि, विचार, चिंतन और स्मृति का कौशल ही शिक्षा का मापदण्ड है। परन्तु ये सब सामर्थ्य प्रधानत विश्लेषणात्मक है, अश-अश और खण्ड-खण्ड से अपने विषय की रचना करते है। इनके समन्वय कल्पित जोड-तोड होते है। यही कारण है कि आज की सस्कृति में भेद, विरोध और सघर्ष अत्यधिक हो गये है। इसके विपरीत आत्म-तत्त्व में समग्र-भाव प्रधान होता है, उसकी दृष्टि सश्लेषणात्मक होती है, समन्वय उसके लिये प्रत्यक्ष सत्य होता है। श्री अरविन्द का कहना है कि मानव ने विश्लेषणात्मक भाव को अत्यधिक मात्रा में विकसित कर लिया है, उसे अपने व्यक्तित्व के सश्लेषणात्मक भाव का भी विकास करना चाहिए। यही समय की दृढ माग है और इसके बिना मानव आज के प्रश्नो का समाधान नही पा सकेगा। श्री अरविन्द विश्वविद्यालय इसी नवीन शिक्षा आदर्श को प्रस्तुत करना चाहता है। एकदम शिक्षा-केन्द्र का एक बडा ढाचा खडा कर देना इसका उद्देश्य नही, बल्कि इस नए आदर्श की सुदृढ भूमिका प्रस्तुत करना। यह भूमि नया सास्कृतिक मूल्य है और इसे सहज गति से विकसित होना होगा। परतु यह निश्चय ही बड़ आनद की बात है कि आज इस माग को अनुभव करने वालो की सख्या कम होते हुए भी काफी है और उन्होने श्री अरविन्द विश्वविद्यालय के आयोजन से अपूर्व आनद माना है तथा इसे अपना सहयोग दिया है।

सन् '४३-'४४ की बात है, देश में '४२ के आदोलन तथा उसके दमन के कारण घोर निराशा छाई हुई थी। एक नेता ने, जो उस समय जेल से बाहर थे कहा था कि अब देश लम्बे समय के लिये नही उठ सकेगा, युद्ध के उपरात अग्रेज और भी अधिक दमन करेगे और जनता ५०–१०० साल के लिए स्वतन्त्रता का नाम भी नही लेगी। यह बात श्री अरविन्द से भी कही गई परतु उन्होने इसे सुनकर बडी गभीरता से कहा "मुझे देश की स्वतन्त्रता की चिंता नही, चिंता है इस बात की कि स्वतत्रता आने पर हम उसका उपभोग कैसे करेगे।"

१५ अगस्त, जो कि हमारा स्वतन्त्रता का दिवस है तथा अरविन्द का जन्मदिन है, श्री अरविन्द के इस वाक्य के चिंतन का उपयुक्त अवसर हो सकता है। विचारणीय है कि क्या गत पाच वर्षों में हमने स्वतन्त्रता का उचित उपयोग किया है, व्यक्तिगत रूप में तथा जाति और राष्ट्ररूप में अथवा किसी अश में उचित और किस अश में अनुचित? अथवा कम से कम क्या हमारे विकास की दिशा तो उचित है? यह दिशा क्या हमारे व्यक्तिगत तथा राष्ट्रगत स्वभाव और स्वधर्म के अनुकूल है अथवा क्या पर धर्म का आश्रय लेकर हम अपने पूर्व विकास की सहस्राब्दियो की उपार्जित सास्कृतिक धनराशि को तो नही खो दे रहे है? अथवा क्या हम मौलिक सम्पत्ति को पुन उपयोगी बना कर तथा उसे परिवर्धित करके ससार को देने के लिये यत्नशील रहे है? ये सब प्रश्न गभीर रूप में विचारणीय है और स्वतन्त्रता का जयन्ती दिवस प्रत्यक्ष ही इस कार्य के लिए विशेष उपयुक्त है। हम आज राष्ट्र-निर्माण पर उचित रूप में ही बहुत बल दे रहे है। परन्तु निर्माण का हमारा सारा बल बाधो और वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ पर ही नही होना चाहिए। वे तो साधनमात्र है, साध्य तो मनुष्य है और मनुष्य का निर्माण, उसकी चेतना का, उसकी अन्तर्ज्योति का निर्माण होता है, जो कि उसे अपने सारे कार्य-कलाप में प्रेरित प्रचलित करती है तथा उसके जीवन मूल्यो का निर्धारण करती है। यदि भारतीय मानव अपने चेतना स्तर में नही उठ रहा है, यदि उसकी

भावनाएं अधिक सूक्ष्म और यथार्थ नहीं बन रही हैं तो सब कुछ होते हुए भी राष्ट्र का निर्माण नहीं हो रहा है।

श्री अरविन्द ने ऐसे आन्तरिक निर्माण को ही प्राथमिकता दी थी और इसकी मर्यादा निर्धारित करने तथा चरितार्थ करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। श्री अरविन्द विज्ञान को बुरा नहीं मानते थे और न भौतिक अवस्थाओं को ही उन्नत करने के ही विरोध में थे, परन्तु मौलिक निर्माण वे अन्तश्चेतना के निर्माण को मानते थे। इसे उन्नत करना ही उनकी योगसाधना और आश्रय का ध्येय रहा है और प्रत्येक ही उसके उन्नत होने से सारा जीवन स्वतः उन्नत होने लगेगा।

यहां प्रश्न पैदा होगा कि यह किया कैसे जाय? पहला उपाय है ऐसे आन्तरिक विकास के लिए व्यापक अभीप्सा, इसके लिये चाह, इसकी मांग, इसे ही मौलिक सत्य स्वीकार करने वाली दृष्टि पैदा करना और जिस हद तक यह अभीप्सा, चाह, मांग तथा दृष्टि स्थायी और दृढ़ होती जायगी उसी हद तक ये हमारे बाह्य प्रयोजनों में भी प्रतिबिम्बित होने लगेगी और तब वे आयोजन भी साक्षात रूप में उन के साधन बनने लगेंगे। ये अभीप्सादि व्यक्ति में भी जीवन-निर्माण की वास्तविक प्रेरणा होती है। बहिर्मुख जीवन के लिये बाह्य वस्तुएं साधना से अधिक कुछ नहीं। चेतना को साक्षात रूप में विकसित, उत्तम और संगठित करना ही वास्तविक निर्माण होता है। यह निर्माण-शैली हम अपने लम्बे इतिहास में खूब देख सकते हैं। यही हमारा प्रमुख स्वभाव है और इसी से हमारा स्वधर्म भी नियत होगा। इस दृष्टि के लिये अभीप्सा जाग्रत करना निर्माण की पहली शर्त है। और ऐसी पहली शर्त जो शेष प्रयोजनीय अवस्थाओं को स्वतः पैदा कर देती है। हमारे निर्माण कार्यों में, हमारी शिक्षा में, हमारे साहित्य आदि में यदि यह अभीप्सा जाग्रत हो उठे तो हमें और ही दृष्टि प्राप्त हो जायगी और हम अपनी समस्याओं पर जहां अब वस्तुओं और उनके भाव-अभाव को आधार बनाकर विचार करते हैं फिर मानव की चेतना उनके सामर्थ्य और संभावनाओं को लेकर विचार करेंगे। इससे मनोवैज्ञानिक बल के अभूतपूर्व स्रोत प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु इसके लिये उचित दृष्टान्त पैदा करने होंगे तथा सहायक वातावरण बनाना होगा। यह अपने आपमें योग विद्या का रहस्य है परन्तु यह रहस्य ही तो भारतीय जीवन का विशेष बल रहा है। श्री अरविन्द ने संघर्ष के दिनों में कहा था, "योग को मानव जीवन का आदर्श मानना ही वह प्रयोजन है जिसके लिये भारत का अभ्युदय हो रहा है।" स्वतन्त्रता आने से कहीं पहले, उसे आते देख कर ही, श्री अरविन्द निर्माण-कार्य का स्वरूप निर्धारित करने तथा उसकी क्रियात्मक भूमि बनाने में लग गये थे। यह निर्माण का स्वरूप उनके विस्तृत साहित्य में विशेष रूप में वर्णित है। इसके अतिरिक्त उनका क्रियात्मक कार्य पूर्ववत् विकसित हो रहा है। हम इनसे कितना लाभ उठाते हैं यह, प्रत्यक्ष ही, हमारे विचार, विवेक तथा साहस पर निर्भर करेगा।

●

विनोबाजी जेल में थे। एक बार उनसे एक परिचित भेंट करने गया। जेल के विषय में पूछने पर विनोबाजी ने जेल की सुन्दर परिभाषा की। उन्होंने पूछा—"तुमने सरकस देखा है न?" वे बोले, "हां" विनोबाजी ने कहा, "बस ठीक है। जेल को उससे बिल्कुल उलटा समझो। सरकस में आदमी पशुओं पर शासन करता है और जेल में पशु आदमी पर।" यह सुनकर उक्त व्यक्ति खिलखिलाकर हंस पड़ा, साथ ही विनोबाजी भी।

राजलक्ष्मी राघवन

आचार्य-भक्ति और तमिल की भेंट

प्राचीन काल से आचार्य भक्ति गुरुकुल वास, गुरुदक्षिणा आदि के लिए भारत सदा से सुविख्यात है। भारतवासियों ने सन्तति प्राप्ति से लेकर संग्राम तक, हर बात में गुरु का आदेश प्राप्त कर, अपने को धन्य माना है।

सन्तानहीन राजा दिलीप ने गुरु वसिष्ठ की गौ कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा-शुश्रूषा कर प्रफुल्लित गुरु की कृपा से अनुगृहीत होकर रघु को पाया था। गुरु महाराज सान्दीपन की कामना पूरी करने के लिए भगवान् कृष्णचन्द्र ने स्वर्गवासी ब्राह्मण-बालक को वैकुण्ठ से प्राप्त कर गुरुदक्षिणा पूरी की थी। अविच्छिन्न भक्त एकलव्य ने गुरु द्रोण के प्रेमी शिष्य अर्जुन का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उनके मांगने पर अपने दाहिने हाथ का अंगूठा देकर उन्हें आश्चर्य से चकित कर दिया था। सन्त कबीरदास ने स्वामी रामानन्द के पाद स्पर्श और "राम राम" इस महामन्त्र से कृतार्थ और धन्य होकर—

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागों पाय।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥"

कह कर आचार्य-भक्ति का जो प्रभाव प्रकट किया था उससे कोई अपरिचित नहीं है। श्री वैष्णव सम्प्रदाय, आचार्य भक्ति पर ही स्थित है। इसका आदर्श कबीर दास है।

दक्षिण के 'तिरुक्कूरकुर' नामक गांव में ताम्रभरणी नदी के किनारे द्राविड के सहस्र गाथा रचयिता श्री शठगोपन जन्म से अन्न पान के बिना एक इमली के पेड़ के बिल में योगासीन थे। इधर मोक्ष साम्राज्य प्राप्ति के लिए श्री मधुर कवि याल्वार आचार्य का अन्वेषण करते-करते श्री अयोध्या नगरी में पहुंचे। एक दिन रात में उनको दक्षिण की ओर से एक प्रकाश का आभास हुआ जिससे उनके मन में यह आशा अंकुरित हुई कि आचार्यवर वहीं प्रकाश पर स्थित हैं। और वे उस प्रकाश की ओर बढ़ चले। अनेकानेक कठिनाइयों को झेल कर वे उस वृक्ष के पास आये। वहां योगासनस्थ उस धूल-भरे हीरे का दर्शन करते ही उनका मार्गदर्शक प्रकाश समाप्त हुआ। मधुर कवि गद्‌गद् हो उठे।

उनके हर्ष का पारावार नहीं रहा। किंतु आचार्यवर के न तो कमलनयन खुले तथा न अंग संचालन ही हुआ। इससे शिष्य का मन अधीर हो उठा। कुछ देर बाद उन्होंने एक कंकड़ उठा कर उनके पास फेंका, उसकी आवाज के साथ ही आचार्यवर की आंखें खुलीं। आचार्य के कटाक्ष-वीक्षण से श्री मधुर कवि को रोमांच हो आया। अपनी आशंकाएं दूर करने के लिए तथा आचार्योपदेश प्राप्ति के लिए उन्होंने पूछा—

"शत्तत्तिन् वयिरिल शिरियदु पिरदाल एत्तत्ति एगे किडक्कुम्?" प्रश्न का आशय था कि स्थूल प्राकृतिक शरीर में अणुरूप आत्मा स्थान प्राप्त करके कैसे अपना अनुभव करेगी और कैसे रहेगी? उत्तर मिला" अत्तत्ति अगे किडक्कुम्" *यानी उस शरीर के होने वाले सुख-दुःखों* को भोग कर, जीवात्मा परमात्मा सम्बन्ध को भूलकर उसी भवर में चक्कर काटती रहेगी।" श्री मधुर कवि ने तुरन्त दूसरा प्रश्न पूछा "शिरियदिन् वयिरिल पेरियदु पिरदाल, एत्तत्ति एगे किडक्कुम? अर्थात् अणुरूप जीवात्मा के अन्दर विभु रूप परमात्मा, का विकास हो तो वह किसे अनुभव कर कैसे रहेगी? उत्तर मिला: "अत्तत्ति अगे किडक्कुमव।" जब अणुरूप आत्मा अपने अन्दर परमात्म-सम्बन्ध पायेगी तब उसीमें मग्न होकर उस अकार वाच्य भगवत् साक्षात्कार को अनुभव कर, उस प्राप्ति से अप्राप्य सुख को भोग कर आनन्दाम्बुधि में कल्लोलित रहेगी।

इससे जिस विषय के जानने के लिए श्री मधुर कवि *यालवार उत्तर भारत से एक प्रकाश की सहायता लेकर* आये थे वह पूरी हुई। अपने आचार्यवर ही क्यों श्री वैष्णव सम्प्रदाय के ही मूल स्तम्भ नम्मालवार श्री शठगोपन के चरणों पर अपना तन मन अर्पित कर वह धन्य हुए। आचार्य भक्ति को दस पद्यों में रच कर उन्होंने अपने को कृतार्थ माना। भागवतोत्तम के दस पद्यों का आल्वार

के सहस्र पद्यों का अध्ययन करने से पहले और अन्त में पाठ करना ही उनकी कविता का, उनकी आचार्य भक्ति का एक मात्र आदर सूचित करता है, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी। पहले पद्य में उनकी वाणी गुरु का प्रभाव प्रकट करती है :

कण्णिणुण् शिरुत्ताम्बिनाल् कट्टुण्ण
पण्णिय पेरुमायन् एन्नप्पनिल्
नण्णित्तेनकुरुकूर नम्बि एलककाल्
अण्णिक्कुममुदूरुम्र एन्नावुक्के ।

छोटी और मजबूत रस्सी हाथ में लिये यशोदा देवी के बहुत देर के परिश्रम के बाद यशोदानन्दन पकड़े गये। "इस बालक को खंभे से बांध दूंगी और थोड़ी देर गोपियों की शिकायत से बचकर रहूंगी।" यह सोचकर यशोदा श्रीकृष्ण को बांधने लग जाती हैं और थक जाती हैं। उन्होंने कृष्ण के बांधने में कितनी ही सामर्थ्य दिखलाई किन्तु व्यर्थ। सोचा रस्सी बालक के पेट तक आ जायगी पर पूरी न हुई बल्कि कम ही होती गई। पसीने से तर थकी-मांदी माता की इस अवस्था ने अलौकिक बालक के मन में दया उमड़ आई और वेदवंद्य प्रतिपादक भगवान् ने अपनी कृपा से उस रस्सी को पर्याप्त बना दिया। इसी प्रकार आलवार : "अपनी कृपा से अपने आप बन्धे हुए वह परमात्मा मेरी आत्मा का उद्धार करने वाले हैं। फिर भी उस परब्रह्म को दिखा देने वाले मेरे आचार्यवर श्री शठगोपन के नाम स्मरण से मेरा जीवन अमृत-पान की रुचि प्राप्त करता है।" कह कर गुरुत्तर आचार्य की महिमा प्रकट करते हैं। दूसरे पद्य में उनके गुण-गान करते-करते "मैं उनकी जो रचना है उसे ही रट कर धन्य मानूंगा" कह कर अपनी आसक्ति को प्रकट करते हैं। तीसरे पद्य में "आज तक मैं भगवत्-विषय से विमुख होकर फिरता रहा, लेकिन आज मैं आचार्य श्रेष्ठ की कृपा से उस देवाधिदेव नीलमेघ-निभ भगवान् के दर्शन भी प्राप्त कर सकूंगा" ऐसा कहते हैं। चौथे पद्य में आप गुरुवर के मातृ-पितृ समान वात्सल्य का वर्णन करते हैं। पांचवें पद्य में आचार्य श्री के श्रीपाद-सम्बन्ध प्राप्ति के पहले अपने अनुचित कार्य से दुःखी होने के अनन्तर गुरु की महिमा से धन्य होने का वर्णन है। छठे में "सात जन्म के अनेकानेक वर्ष तक अपने गुण-गान करने का अनुग्रह किया है ऐसा मुझसे भाग्यवान् कोई और होगा क्या ?" कह कर गुरु प्रसाद का वर्णन करते हैं।

सातवें पद्य में कहा है "सुन्दर द्रविड पद्यों के स्थान परमोपकारी श्री शठगोपन ने अपनी कृपा भरी दृष्टि से मेरा उद्धार किया है। मेरा पाप तो इतना प्रबल था कि उसके नष्ट होने की तो संभावना ही नहीं थी। उनकी इस कृपा को मैं आठों दिशाओं में प्रति ध्वनित करूंगा।"

नवें पद्य में अपने धन्यत्व पर मुग्ध होकर उसे प्रसन्न चित्त से प्रकट करते हैं। "मेरा मन स्वभाव से बुद्धिमत्ता प्राप्त करके ईश्वर को पाने में असमर्थ था। ब्राह्मणों से, अध्ययन श्रेष्ठ वेदज्ञों से गायेजाने वाले वेद को मेरे हृदय में द्रविड भाषा के सहस्र श्लोकों के द्वारा अचल रूप से स्थापित कर मेरा उद्धार किया है। जिस आचार्यवर को मैंने आचार्य स्थान पर वरण किया, उन्होंने तो मेरे जन्म को ही सार्थक बना दिया।" कहकर अपने गुरुदेव की महिमा का यश गाते हैं। दसवे पद्य में वे कहते हैं कि एक उच्च कोटि के गुरु अपने शिष्य की अयोग्यता आंकने पर भी उसकी परवाह न कर, किस तरह शिष्य की भलाई करेंगे।

पयनं राकिलुम्, पांगलराकिलुम्
शयल् नंराक त्तिरुलि थणि कोलवान्
कुयिल निरार पोलिल शूल कुरु कूर नम्बि
मुयल किरेन उन्दन् मोटकलकंवेये ।"

आलवार श्री शठगोपन की अनुग्रह विशेषता इतनी गहरी है कि अपने शिष्य की अयोग्यता पर ध्यान नहीं देते हैं, निज का कोई लाभ न होते हुए भी शिष्य की भलाई चाहते हैं। जैसे माता बच्चे की रक्षा का ख्याल रखती है वैसे ही उनकी कृपा है। आचार्यवर्यों में दो श्रेणियां हैं, जिन्हें अनुवर्तित प्रसन्नाचार्य और कृपामात्र प्रसन्नाचार्य कहा जाता है। श्री शठगोपन को मधुर कवि आलवार कृपामात्र प्रसन्नाचार्य वर्ग में रख कर उनकी चरम कृपा का, हृदय खोल कर आनन्द बाष्प के साथ, गद्गद् कंठ से इस पद्य में वर्णन कर अपने धन्यत्व को प्रकट करते हैं—

"अविमित विषयान्तरश्शठारे
उपनिषदाम् उपगानमात्रभोगः ।
अपि च गुणवशात तदेकशेषो
मधुरकविर्हृदये ममाविरस्तु ॥"

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

दो तस्वीरें !

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) की बैठक से लौट रहा था। बिना मेरी जानकारी के दोपहर के भोजन के लिए 'भिक्षापात्र' में 'कुछ' रख दिया गया था। 'गोंदिया' पहुंच कर देखा तो 'हलवा-पूरी' थी।

साथ में थे शिलांग (असम) के सेंट एडमंड कालेज के प्रो० चौधरी। उनसे मिली सहायता के बावजूद मैं यह 'हलवा-पूरी' समाप्त न कर सका।

शाम को मुझे उस हलवा-पूरी की अपेक्षा न थी और दूसरे दिन प्रातःकाल मैं कलकत्ते पहुंचने ही वाला था। 'भिक्षापात्र' धोकर रखने के लिए 'हल्वा-पूरी' का 'दान करना अनिवार्य था। मैं किसी 'सुपात्र' को खोजने लगा।

प्लेटफार्म की दूसरी ओर झांका तो देखा एक 'भिक्षुक' किसी के जूठे आम के छिल्कों को उठा-उठा कर उनमें अवशिष्ट माधुर्य्य के कणों को प्रेमपूर्वक चाट रहा है। ऐसा लगा कि मानो वह किसी उप-सम्पादक से छूटी हुई नई-नई प्रूफ की गल्तियां निकाल रहा है।

मैंने उस 'सुपात्र' को अपने 'भिक्षापात्र' का यथार्थ अधिकारी माना और आम के छिलकों को छोड़ 'हल्वा-पूरी' लेने के लिए आगे आने को कहा। उसने अपना कुर्ते का पल्ला फैला दिया। कहीं असावधानी से मैं अपना 'भिक्षापात्र' उस 'भिक्षुक' के पल्ले में खाली कर देता तो उसके हाथ कुछ भी तो न लगता। अधिकांश मिट्टी में मिल कर मिट्टी हो जाता। उसका कुर्ते का पल्ला ऐसा ही तार-तार था।

यह दूसरी बात है कि किसी 'कणाद' ऋषि की तरह वह भी उस मिट्टी में मिल कर माधुर्य्य के कणों को किसी न-किसी तरह चुन लेने का आधा-पूरा प्रयत्न अवश्य करता।

'भिक्षु' ने थोड़ी सावधानी की। उस 'भिक्षुक' को ऊपर गाड़ी में बुला लिया। एक-एक करके उसके हाथों में, कुर्ते में, जैसे-तैसे भी वह 'हल्वा-पूरी' समाया, टिका दिया।

एक मुसाफिर यह सब देख रहा था। जब एक-एक करके सभी पूरियां उस 'भिक्षुक' के हाथों और पल्ले में जा पहुंची और मेरे हाथ में रह गई केवल एक अन्तिम पूरी तो वह बोला—"मुझे भी तो कुछ दे देते!"

पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ कि वह सचमुच भोजन चाहता है। किंतु मैं जानता हूं कि भूख सबसे बड़ा रोग है। इसलिए उसकी याचना की ओर ध्यान न दे अन्तिम एक पूरी उसी के हाथ में थमा दी।

और देखा उस 'भिक्षुक' से भी पहले वह 'मुसाफिर' अपनी पूरी चबा रहा है!

उसकी आकृति कह रही थी—"सावधान। 'अभाव' अपनी चादर फैलाता जा रहा है। सफेदपोश मध्यवृत्त लोगों को भी यह नाति चिरकाल में ही समेट ले सकता है।"

× × ×

और यह दूसरी तसवीर है कलकत्ते की। कोई-कोई घिनौना दृश्य भी कितना आकर्षक होता है। उस दिन चलते-चलते मैंने अपने साथियों को भी अपने साथ सड़क के एक नुक्कड़ पर रोक लिया—

"भन्ते! क्या देख रहे हैं?"

"रुको।"

मैं वह तसवीर देखने में तन्मय था।

बारह चौदह वर्ष का एक लड़का। टांग पर नंगा जख्म। पास में पत्ते पर गीला सत्तु। मक्खियां जख्म और उस सत्तु पर समान रूप से भिनभिना रही थीं। लड़के का एक हाथ और कोई काम न कर सकता था—जख्म और सत्तु को मक्खियों से बचाना अनिवार्य था।

पास ही फुदक रहे थे चार पांच कौवे। वे उस लड़के के जख्म की 'लाली' पर अधिक मुग्ध थे अथवा उसके सत्तु के 'पीलेपन' पर? यह तै कर सकना आसान न था। लड़का केवल सत्तु खाना चाहता था और कौवे शायद जख्म तथा सत्तु दोनों।

मैंने देखा कि यह लड़का सत्तु की एक गोली बना कर कुछ दूर पर फेंक दे रहा है, कौवे उछल कर उसकी ओर जाते हैं, तब तक फुर्ती से वह एक गोली बना कर अपने मुंह

में डाल ले रहा है। उसका कुछ सत्तु मक्खियों के लिए था, कुछ कौवों के लिए और कुछ अपने लिए।

मक्खियों और कौवों से जख्म की रक्षा करते हुए थोड़ा सत्तु जैसे-तैसे पेट में ढकेलने का उसके पास और कोई उपाय न था। काले कौवों को सत्तु की 'रिश्वत' देना उसके लिए उतना ही अनिवार्य हो गया था, जैसा आज के कुछ सरकारी अफसरों को।

मैं खड़ा-खड़ा उस तसवीर को देखता रहा। सोचता रहा कि यह आखिर किसकी तसवीर है।

कलकत्ता का कालेज स्क्वायर शिक्षा का केन्द्र है। वहीं पर मुझे यह तसवीर पड़ी मिली—प्रसिद्ध मैडिकल कालेज के हास्पिटल के नुक्कड़ पर।

मैं उस तसवीर को झाड़-पोंछ कर साथ न ला सका, यही इन पंक्तियों के लेखक का 'दर्द' है; और बिना लाये भी वह साथ-साथ चली ही आई, यही उसकी बड़ी मुसीबत है।

अब मेरी आंखों के सामने न वह लड़का है, न उसका जख्म है, न उस पर बैठी हुई मक्खियां हैं, न उसका गीला सत्तु है, और न उसपर झपटने वाले कौवे हैं, किंतु वह समाज है, जिसका ये सभी अपनी-अपनी जगह पर प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

बौद्ध धर्म में श्रद्धा का स्थान

भरतसिंह उपाध्याय

बौद्धधर्म बुद्धि-प्रधान धर्म है। उसे 'एहिपस्सक' धर्म कहा गया है, जिसका अर्थ है 'आओ और देख लो'। विश्वास को यहां कोई स्थान नहीं है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के समान खोज और परीक्षण उसके साधन हैं और विश्लेषण उसका मार्ग है। सत्य उसके लिये एक खोज करने की वस्तु है, पहले से तैयार की हुई देन-लेन के लिए नहीं। इसलिये मनुष्य को बांधने का प्रयत्न वहाँ बिलकुल नहीं किया गया है। बौद्धधर्म की यह एक ऐसी विशेषता है जो उसे संसार के अन्य सब धर्मों से अलग कर देती है।

बौद्धधर्म के बुद्धिवादी दृष्टिकोण के कारण उसे आधुनिक युग में काफी लोकप्रियता मिली है। वैज्ञानिक मन को संतोष देने में जितना यह धर्म समर्थ हुआ है उतना अन्य कोई नहीं। यूरोप में, उन्नीसवीं शताब्दी में, जब धर्म और विज्ञान का संघर्ष चल रहा था, यूरोपीय विचारकों का इस धर्म से परिचय हुआ। यहां उन्हें एक ऐसा अद्भुत धर्म मिला जिसकी न केवल मान्यताएं विज्ञान से संगत थीं, बल्कि जिसके सोचने का पूरा तरीका वैज्ञानिक था। इस धर्म से परिचय पाकर यूरोप के विचारकों को कितना आश्वासन मिला है यह इसी से जाना जा सकता है कि उनमें से एक (सर फ्रांसिस यंग-हस्बेण्ट) ने कहा है कि बुद्ध-उपदेशों के समझने का वास्तविक समय अब २५०० वर्ष बाद आया है, और दूसरे (बरट्रेंड रसल) ने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा है कि "यदि मैं किसी धर्म को अपनाऊंगा तो वह बौद्धधर्म होगा।" बौद्धधर्म के निरन्तर बढ़ते हुए प्रभाव के ये शब्द संकेत भर हैं। जिस धर्म के प्रभाव में आधे से अधिक जगत् पहिले भी आ चुका है उसे, या यदि अधिक ठीक कहें तो उसके मार्ग को (क्योंकि 'मार्ग' से अतिरिक्त बौद्ध धर्म और कुछ नहीं है), ज्ञान और मानवता के विकास के लिये आगे चल कर यदि पूरा विश्व अपना ले तो यह कोई आश्चर्य की बात न होगी। जैसा कि एक जापानी सम्राट् ने कहा था—संसार में कोई ऐसा प्राणी नहीं है जो बुद्ध-धर्म से प्रभावित न हो यदि यह उसके सामने रक्खा जाय।

इसे एक युग धर्म की ही बात समझना चाहिए कि बौद्ध धर्म के विशेषतः बुद्धिवाद ने इस युग में लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। बौद्ध धर्म के ऐसे अनेक गुण हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों को, भिन्न-भिन्न युगों में आकृष्ट करते रहेंगे। यहां केवल एक सूक्ष्म भय यह है कि हम कहीं इनमें से किसी एक गुण का अतिवाद न कर बैठें, जिससे हम तथागत के मन्तव्य से दूर जा पड़ें। बुद्ध-मन्तव्य इतना परिपूर्ण है जितना जीवन। दूसरे

शब्दों में हम इसे यों कह सकते हैं कि मध्यम-मार्ग से तथागत ने धर्म का उपदेश दिया है । 'मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति' । यह बात हमें बुद्ध-धर्म के प्रकृत रूप को समझने में सदा याद रखनी चाहिए ।

कोरा बुद्धिवाद मनुष्य को प्रकृतिवाद या भौतिकवाद में ले जायगा जिस प्रकार कोरा श्रद्धावाद अन्ध विश्वास में । बौद्ध धर्म दैवी विश्वास पर तो आधारित है ही नहीं, वह भौतिकवाद से भी उतना ही दूर है । जहां तक वह प्रज्ञा के विकास पर जोर देता है बौद्ध धर्म एक विज्ञान है । परन्तु यहां वह प्रज्ञा की व्याख्या 'कुशलचित्त-संयुक्त ज्ञान' के रूप में करता है, वह विज्ञान से आगे बढ़ कर नैतिक दर्शन बन जाता है और विज्ञान का पथ-प्रदर्शन करता है । बुद्धिवादी होते हुए भी वह बौद्धिक नहीं है । वह जीवन का एक परिपूर्ण, व्यावहारिक दर्शन है । इसके लिए उसमें श्रद्धा की महिमा भी अपने ढंग से सुरक्षित है, यह हम उसके स्वरूप के विवेचन से अभी देखेंगे ।

भगवान् बुद्ध ने जिस ज्ञान को प्राप्त किया उसे उन्होंने 'अतर्कावचर' बताया है । 'अतर्कावचर' का अर्थ है तर्क से अप्राप्य । सत्य या बोधि की प्राप्ति बौद्धिक ऊहापोह से नहीं हो सकती । जैसा कठोपनिषद् के ऋषि ने कहा था 'यह मति तर्क से प्राप्त नहीं की जा सकती' (नैषा तर्केण मतिरापनेया), वही अर्थ 'अतर्कावचर' शब्द में निहित है । बौद्धिक ज्ञान से अतीत इस गम्भीर सत्य को प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम किस बात की आवश्यकता होगी, इसे बताते हुए ज्ञान-प्राप्ति के ठीक बाद ही भगवान् ने कहा था "अमृत के द्वार खुल गये हैं । जिनके पास कान हैं वे श्रद्धा उपस्थित करें ।" बुद्ध-धर्म चित्त-शुद्धि के लिए था और चित्त-शुद्धि का लक्ष्य था निर्वाण । निर्वाण या पूर्ण विशुद्धि के लिए तथागत ने पुरुषार्थ को ही प्रधान साधन बताया था । यह सार्थक है कि बौद्ध परिभाषा में 'प्रधान' शब्द का ही अर्थ पुरुषार्थ है । वीर्य और अप्रमाद इसी के दूसरे नाम हैं । वीर्य और अप्रमाद के रूप में देखना ही बौद्ध साधना को उसके वास्तविक रूप को देखना है । परन्तु वीर्यारम्भ के लिए प्रेरणा या शक्ति कहां से मिलेगी ? बुद्धि से नहीं मिल सकती, क्योंकि उसका सम्बन्ध हृदय से नहीं है । इसका अक्षय स्रोत तो श्रद्धा ही है जो हृदय से उत्पन्न होती है और जिसे भगवान् ने एक 'बल' माना है, एक 'इन्द्रिय' या जीवनी-शक्ति कहा है । बौद्ध धर्म में पांच इन्द्रियां (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा) और सात बल (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा, ह्री और अपत्राप्य या पाप-भय) माने गये हैं । उनमें श्रद्धा को प्रथम स्थान प्राप्त है । इसका कारण यह है कि उत्पन्न होते ही श्रद्धा चित्त-मलों को दूर कर देती है । जैसा कहा भी गया है, "सद्धा उप्पज्जमाना नीवरणे विक्खम्भेति ।"

श्रद्धा चित्त में उत्पन्न हुई है, इसका लक्षण ही यह है कि सारा मन प्रसन्नता से भर जाता है, मनुष्य की चेतना एकदम शान्ति और आध्यात्मिक 'प्रसाद' में डूब जाती है । श्रद्धा का लक्षण करते हुए 'मिलिन्द-प्रश्न' में कहा गया है "सम्पसादनलक्खणा सद्धा" अर्थात् श्रद्धा का लक्षण है सप्रसाद, चित्त का प्रसन्न होना, शान्त होना, उत्साह से भर जाना । 'मिलिन्द-प्रश्न' ईसवी सन् के करीब की रचना है । बौद्ध जीवन-साधना ने हमें जो कुछ दिया है उससे हमें यह आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि योग सूत्र के भाष्यकार व्यास ने, जिसका समय पांचवीं शताब्दी ईसवी माना गया है, हूबहू बौद्ध परिभाषा को स्वीकार करते हुए कहा है 'श्रद्धा चेतसः सम्प्रसाद' (व्यासभाष्य १।२०) । क्या श्रद्धा की सर्वोत्तम परिभाषाके लिए भी हम बौद्ध साधनाके ऋणी हैं? न केवल व्यास-भाष्य, बल्कि योग-सूत्रों (तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व) पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट उपलक्षित है, यह इसी प्रसंग में इससे जाना जा सकता है कि असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति के लिए उन्होंने बौद्ध साधना की पांच इन्द्रियों का उल्लेख किया है, यद्यपि 'इन्द्रिय' शब्द का निर्देश उन्होंने नहीं किया है । "श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्" (योगसूत्र १।२०) । इस सूत्र की व्यास-भाष्य में जो व्याख्या की गयी है वह बौद्ध मन्तव्य और शब्दावली का बिलकुल अनुसरण करती है, इसे विस्तार से दिखाने की यहां आवश्यकता नहीं । हमारा अभिप्राय यहां केवल यह दिखाना है कि श्रद्धा चित्त की वह प्रसादमयी अवस्था है जो एक ओर साधक को उन्नत आध्या-

त्मिक अवस्थाओं को अनुभव करने के लिए उत्साहित करती है और दूसरी ओर संशयादि चित्त-मलों को दूर कर चित्त को शान्ति प्रदान करती है। श्रद्धा से ही वीर्य उत्पन्न होता है। वीर्यारम्भ करने वाले की स्मृति ठहरती है। जिसकी स्मृति ठहरी हुई है उसीका चित्त समाधि-मग्न होता है और चित्त की समाधि से ही प्रज्ञा मिलती है जिससे साधक यथाभूत ज्ञान-दर्शन को प्राप्त करता है। इस साधना-क्रम का आरम्भ प्रसाद-रूप श्रद्धा से होता है। इसकी सच्चाई की गवाही गीता भी संक्षेपतः इन शब्दों में दे गई है। "प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते" संशय या अश्रद्धा को जिस प्रकार गीता में विघ्न माना गया है और अज्ञ और अश्रद्धालु के विनाश की बात कही गई है उसी प्रकार संशय या विचिकित्सा (विचिकिच्छा) को बौद्ध दर्शन में चित्त का एक कांटा कहा गया है। "जो भिक्षु शास्ता के प्रति संदेह करता है, उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखता, प्रसन्न नहीं होता, उसका चित्त संयम, योग और प्रधान (पुरुषार्थ) की ओर नहीं झुकता।" इसलिए जहां कहीं पालि-त्रिपिटक में साधक का वर्णन आया है वहां सबसे पहले यही बात कही गई है—यहां भिक्षु श्रद्धा से युक्त होता है' (इध भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति) आदि। इसलिए हम कह सकते हैं कि बौद्ध साधना का प्रस्थान विन्दु बुद्धि नहीं बल्कि श्रद्धा है और जैसा बृहदारण्यक उपनिषद् ने कहा है, श्रद्धा की प्रतिष्ठा हृदय में है "हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता"। दानादि के प्रसंग में जिस प्रकार श्रद्धा की प्रशंसा वैदिक ग्रंथों में की गयी है उसी प्रकार बौद्ध साहित्य में श्रद्धा को सम्पूर्ण पुण्यकारी वस्तुओं (पुंजकिरिया वत्थूनी) का आधार कहा गया है। सत्तु-निपात के कसि भारद्वाज-सुत्त में भगवान् बुद्ध अमृत की खेती करते दिखाये गये हैं। उसका बीज वहां श्रद्धा को ही बताया गया है। श्रद्धा की बार-बार अभ्यास की गई अवस्थाओं को ही आचार्य बुद्धघोष ने भक्ति कहा है (पुनप्पुनं भजनवसेन सद्धा वा भक्ति) और भक्ति अनिवार्यतः प्रेम (पेम) से सम्बन्वित है। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध साधना श्रद्धा से प्रेमरूपा भक्ति की ओर न मुड़ कर प्रज्ञा रूपिणी 'भावना' की ओर बढ़ गयी है जो बुद्धि से अधिक सम्बन्धित है। जैसे गीता ने कहा है, योग की तो दोनों जगह ही आवश्यकता है और 'भावना' से भी शान्ति और सुख की सिद्धि होती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध साधना में श्रद्धा और बुद्धि का समन्वय है। उनकी श्रद्धा 'प्रज्ञान्वया' है। स्वयं भगवान् बुद्ध ने हमें एक शब्द दिया है 'पंजान्वया सद्धा' (प्रज्ञान्वया श्रद्धा)। इस एक शब्द के द्वारा ही हम बौद्ध धर्म में श्रद्धा के स्थान को समझ सकते हैं।

श्रद्धा के द्वारा विमुक्त होने की बात भगवान् ने अनेक बार कही है। "श्रद्धा के द्वारा मनुष्य भव-बाढ़ को तरता है" (सद्धाय तरती ओघं) ऐसा उन्होंने अनेक बार आश्वासन दिया है। पिंगिय नामक ब्राह्मण विद्यार्थी को उन्होंने अनेक उदाहरण देते हुए श्रद्धा द्वारा मुक्त हो जाने के लिए उत्साहित किया। भगवान् ने कहा "जिस प्रकार वक्कलि, भद्रायुध और आलवि गोतम श्रद्धा द्वारा मुक्त हुए उसी प्रकार पिंगिय! तुम भी श्रद्धा को उपस्थित करो। तुम मृत्यु को पार कर जाओगे।" इस प्रकार श्रद्धा द्वारा भगवान् ने विमुक्ति को सिखाया है।

तथागत की 'प्रज्ञान्वया श्रद्धा' इस अस्तव्यस्त जीव-लोक के लिए, जिसके बौद्धिक और भावात्मक सन्तुलन खोये हुए हैं सचमुच एक वरदान की वस्तु है।

●

श्रद्धा के मानी अन्ध-विश्वास नहीं है। किसी ग्रन्थ में कुछ लिखा हुआ या किसी आदमी का कुछ कहा हुआ अपने अनुभव बिना सच मानना श्रद्धा नहीं है।

—विवेकानन्द

विष्णु प्रभाकर

श्रीमती ऐनी बेसण्ट

श्रीमती ऐनी बसन्ट को विदेशी मानते सहसा मन को धक्का लगता है। भले ही उनका जन्म लन्दन में हुआ था पर वे भारत माता की एक शानदार बेटी थी ऐसी शानदार कि उनके कारण हमारी प्रतिष्ठा सदा ऊची रहेगी। अपनी जन्मदात्री के लिए प्राण दे देने के उदाहरण से विश्व का इतिहास भरा पडा है परन्तु दूसरे की मा को अपनी मा मानकर उसके लिये तन-मन-धन न्योछावर कर देना उन बिरली महान् आत्माओ का काम है जो 'अपने-दूसरे' की भावना से मुक्त होती है। उन्ही आत्माओ से मानवता धन्य होती है और ससार रहने लायक स्थान बनता है। ऐनी बेसण्ट सन् १८९३ में भारत आई तब उनकी आयु लगभग ४७ वर्ष की थी। तब से लेकर २० सितम्बर १९३३ तक जिस दिन वे चिर निद्रा में सो गई थी उन्होंने अपना भाग्य भारत के भाग्य के साथ जोडे रखा। मृत्यु के समय वे ८७ वर्ष की थी। वे पूरे ४० वर्ष तक भारत के भाग्याकाश में एक तेज रोशन सितारे के समान चमकती रही। धर्म, समाज सेवा, पत्रकारिता, राजनीति और शिक्षा कोई ऐसा क्षेत्र नही था जिसपर उन्होंने अपनी छाप न छोडी। जिसे उन्होंने अपनी सेवाओ, सच्ची और सफल सेवाओ, से पुष्ट न किया हो। भारत में थियोसॉफी की जड जमाने में उनसे अधिक काम किसी ने नहीं किया। वे उसी के लिए जीवित रही और मरी। शिक्षा के क्षेत्र में उनका स्थान स्वामी श्रद्धानन्द, प० मदनमोहन मालवीय, लाला हस-राज आदि की श्रेणी में सुरक्षित है। राजनीति में वे भारतीय राष्ट्रीय महासभा की सभानेत्री के पद तक पहुच गयी थी। बॉय स्काउट और गर्ल गाइड मूवमेंट में उन्होंने सक्रिय भाग लिया और पत्रकार जगत् में 'डेली हेरल्ड' आदि अनेक पत्र निकाल कर उन्होंने अपने अदम्य साहस का परिचय दिया था। वस्तुत भारत के सार्वजनिक जीवन का कोई ऐसा कोना नही था जो इस आयरिश महिला के प्रभाव से अछूता रहा हो या जिसको उन्होंने अपनी जादू भरी क्रियाशीलता से प्राणवान न बना दिया हो।

भारत में आने से पहले इस विलक्षण महिला के ४७ वर्ष कोई शान्त वर्ष नही थे। इस छोटे से जीवन काल में उन्होंने अनेक भयकर तूफानों को उठते और मिटते देखा पर वे सदा चट्टान की तरह स्थिर रही। वे उन व्यक्तियो में से नही थी जो अपने मुह में चादी का चम्मच लेकर पैदा होते है। उनके पिता की मृत्यु के बाद उनकी माता के पास इतने साधन भी नही थे कि वे अपनी सन्तान को उचित शिक्षा दिला सके। इसलिए उन्हे एक धनी महिला के पास रह कर शिक्षा प्राप्त करनी पडी। १८६७ में, अपने विवाह से पूर्व तक, उनके जीवन में कोई अनोखी घटना नही घटी। वे तवतक एक धर्म-भीरु युवती थी। इस वर्ष उन्होंने एक पादरी से विवाह किया। यही विवाह उनके जीवन को मोड देने वाला बन गया। पति पुराने विचारो के व्यक्ति थे जो पत्नी को मात्र दासी समझते है और श्रीमती बेसण्ट स्वतन्त्र प्रकृति की महिला थी। कथा आती है कि एक बार वे अपने पति के दुर्व्यवहार से तग आकर जहर पीने को तैयार हो गईं। शीशी अभी हाथ में ही थी कि जैसे उनकी आत्मा ने उनसे कहा—'ओ बुजदिल ! तू मुसीबतो और तकलीफों से डर कर आत्म-हत्या करना चाहती है। आत्म समर्पण का पाठ सीख और सत्य की खोज कर।' इसके बाद युवती ऐनी बेसण्ट ने जहर की शीशी को तोड डाला और और सत्य की खोज में अपने-आपको होम दिया। इसके लिए उन्हे अपने पति को ही नही छोडना पडा अपने बच्चों से भी हाथ धोना पडा। सन् १८७४ में वे अपने पति से अलग हुईं। तवतक वे नास्तिक हो चुकी थी। अब उन्होंने जनसख्यानिरोध अर्थात् बनावटी साधना से सन्तति-निग्रह का समर्थन किया। एक पैम्फलेट में जो बाद में "नौल्टन पैम्फलेट' के नाम से मशहूर हुआ वे कानून की सीमा पार कर गई। पर वे डरी नही। अपने अदम्य साहस से उन्होंने विरोधियो का सामना ही नही किया बल्कि अपने दृष्टि-कोण के लिए जज का समर्थन तक प्राप्त कर लिया

परन्तु उसके साथ उनके बच्चे उनसे छीन लिये गये। कानून ने नारी के इस अधिकार को तो स्वीकार कर लिया कि वह स्वयं इस बात का फैसला कर सकती है कि वह कब बच्चे की मां बनना चाहती है परन्तु उनके बच्चे पिता के हवाले कर दिये गये। मां के बच्चे उनसे छीन लिये जायें उनसे बड़ी चोट और क्या हो सकती है; पर उस वीरांगना ने मानो अपनी आत्मा को सान्त्वना देते हुए कहा—'इस दृढ़ निश्चय के साथ कि यदि मेरे अपने बच्चों से मुझे वंचित कर दिया जायगा तो मैं उन सब निस्सहाय बच्चों की माता का स्थान ग्रहण कर लूंगी जिनकी मुझसे सहायता हो सकेगी और इस प्रकार दूसरों की पीड़ा को शान्त करते हुए अपने हृदय की पीड़ा को मिटा लूंगी।' क्या कभी किसी मां ने इससे अधिक शानदार शब्द कहे होंगे? और उन्होंने केवल कहा ही नहीं बल्कि अपने शेष जीवन में वे इन्हीं शब्दों को क्रियात्मक रूप देती रहीं।

सन् १८८९ में वे थियोसॉफी की प्रवर्तिका मैडम ब्लैवत्स्की के सम्पर्क में आई। यह एक ऐसी घटना थी जिसने उनके जीवन को एक निश्चित दिशा दी। वे जबतक जीवित रहीं थियोसाफी के लिए जीवित रहीं। थियोसाफी के कारण ही वे भारत आई और फिर कभी नहीं लौटीं। तबसे उन्होंने विश्व को अपना देश और परोपकार को अपना धर्म मान लिया। यूं तो आयरिश लोग सदा से भारत के मित्र रहे हैं पर श्रीमती बेसण्ट ने उस मित्रता को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया। वे जिन्दगी भर भारत में फैली हुई अशिक्षा, अन्ध-विश्वास कुरीतियों और राजनीतिक दासता से जूझती रहीं। भारत आने के पांच वर्ष बाद ही उन्होंने १८८९ में बनारस में 'सैंट्रल हिंदू स्कूल' की स्थापना की जो बाद में कालिज और अन्त में हिंदू विश्वविद्यालय के रूप में बदल गया। क्या यह एक अनोखी बात नहीं है कि पं. मदनमोहन मालवीय को काशी हिंदू विश्वविद्यालय के निर्माण में सबसे अधिक सक्रिय प्रोत्साहन और प्रेरणा इस विदेशी महिला से मिली। इस देश की शिक्षा-प्रणाली में धर्म और राष्ट्रीयता को स्थान दिलाने में उन्होंने जो प्रयत्न किये वे अपूर्व हैं। उन्होंने सदा पश्चिम के प्रभाव का विरोध किया। उन्होंने कहा कि वास्तविक सफलता प्राप्त करने के लिए शिक्षा का काम उन लोगों को अपने हाथ में लेना चाहिए जो न केवल अपने देश को प्यार करते हों बल्कि जो उनकी आवश्यकताओं को समझते हों और उनकी अद्‌भुताओं, विशेषताओं और परम्पराओं से परिचित हों। उन्होंने दिसम्बर १९४७ में कलकत्ता में राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन का सूत्रपात किया। बनारस हिंदू कालिज के अलावा मदनपल्ली का थियोसफीकल कालेज भी उनके शानदार काम का शानदार सबूत है।

सन् १९१३ में उन्होंने भारत की राजनीति में प्रवेश किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने 'कामनवील' नाम का एक साप्ताहिक तथा 'न्यूइंडिया' नामका एक दैनिक निकाला। इन दोनों पत्रों ने तत्कालीन भारत में प्रचंड राजनीतिक जागृति पैदा कर दी। यह वह युग था जब भारतीय कांग्रेस गोखले और तिलक की राजनीति के भंवर में फंसी हुई थी। उस समय वे एक नया संदेश लेकर राष्ट्र सभा में आई। उन्होंने नरम और गरम दल में समझौता कराया और उनमें एक नई रूह फूंकी। वे जहां जाती थीं उनकी अदम्य क्रिया-शीलता उनके आगे चलती थी। शीघ्र ही सितम्बर १९१६ में उन्होंने 'होमरूल लीग' की स्थापना की। देखते-देखते सारे देश में लीग का जाल बिछ गया। सरकार घबरा गई। मद्रास के गवर्नर ने उनसे कहा—'मिसेज बेसेंट, आप उस तरीके का राजनीतिक कार्य करना छोड़ दें जैसा अब कर रही हैं।' इसका उत्तर उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार यह दिया था—"श्रीमान्, मैं तो वैसा ही करती जाऊंगी जैसा मैं बेहतर समझूंगी।" इसपर वे कुछ दिन बाद नजरबन्द कर दी गई। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनकी नजरबन्दी के बाद वह आन्दोलन और भी तेजी से बढ़ा। यहां तक कि माडरेटों और बूढ़ों में भी खलबली मच गई। खुफिया पुलिस की सतर्क निगरानी के बावजूद वे बराबर पत्रों के लिए लेख लिखती रहीं और स्वराज्य तथा स्वदेशी के प्रचार के लिए स्त्रियों तक ने जलूस निकाले। याद रखिये यह वह जमाना था जब पुराने नेताओं में से कुछ तो मर गये थे, कुछ ने सन्यास ले लिया था, कुछ गुमराह हो रहे थे और गांधी अभी राजनीति का

अध्ययन ही कर रहे थे। ऐसे विकट समय में श्रीमती बेसण्ट ने देश का नेतृत्व करके अपने प्रेम का यह एक अनोखा सबूत दिया था। सरकार द्वारा अपनी नजरबन्दी पर उनके ये शब्द कि 'एक चूहा शेर को गुदगुदाने की चेष्टा कर रहा है।' उनके स्वभाव का पूर्ण परिचय देते हैं। देश ने भी उनको सन् १९१७ की कलकत्ता कांग्रेस का प्रधान चुनकर उनका उचित सम्मान किया। वे राष्ट्रीय महासभा की अध्यक्ष बननेवाली पहली नारी थीं। उस भाषण में उन्होंने कहा था—जब मुझे जलील किया तो आप लोगों ने प्रतिष्ठा का ताज मेरे सिर पर रखा, जब मुझे कलंकित किया गया तो आप लोगों ने मेरी दयानतदारी और विश्वास-पात्रता पर भरोसा प्रकट किया आप लोगों ने मेरी पैरवी की और मेरी रिहाई हासिल की। मैं अत्यन्त दीन रहकर सेवा करने में गर्व अनुभव करती थी लेकिन आप लोगों ने मुझे ऊंचा उठाया और दुनिया के सम्मुख मुझे अपना चुना हुआ प्रतिनिधि उद्घोषित किया। मेरे पास आपका धन्यवाद करने के लिए पर्याप्त शब्द नहीं मेरे शब्द बहुत निर्बल हैं इसलिए मेरे काम ही मेरे भावों को भली भांति जाहिर करेंगे। आपकी दी हुई भेंट को मैं मातृभूमि की सेवा में परिणित करती हूं मेरे पास जो भी कुछ है, और मैं जो कुछ हूं, वह सब माता के चरणों में उपस्थित करती हूं। आइए हम सब मिलकर शब्दों द्वारा नहीं, अपनी सेवा द्वारा बोलें—"वन्दे मातरम्"।'

इन हृदय द्रावी शब्दों में श्रीमती बेसेण्ट ने एक बार फिर भारत के साथ अपने सम्बन्ध को पक्का किया, एक बार फिर उन्होंने विश्व को बताया कि भारत मेरी मातृभूमि है। गांधीजी के आने तक वे भारत की एक-छत्र नेता बनी रहीं परन्तु गांधीजी के सत्याग्रह और असहयोग से वे कभी सहमत न हो सकीं और इसलिए वे धीरे-धीरे कांग्रेस से दूर हटती गईं पर उनकी क्रियाशीलता कभी कुंठित नहीं हुई और अब वे अधिक-से-अधिक थियोसफीकल सोसायटी के काम में लगी रहने लगीं। आदियार, मद्रास, में स्थापित थियोसाफीकल सोसाइटी का केंद्र आपका सच्चा स्मारक है। इसका उद्देश्य पूर्वी संस्कृति की सुन्दर बातों को सामने लाकर विश्व बन्धुत्व की भावना जाग्रत करना था। यह एक ऐसा केन्द्र था जिसने पश्चिम के अनेक विद्वानों को एक बार फिर इस पुरातन देश की ओर आकर्षित किया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वे राजनीति से बिल्कुल अलग हो गई थीं, सन् १९२१ में 'नेशनल कन्वेशन्स के' रूप में उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन को नया जन्म दिया। सन् १९२५ में 'कामनवेल्थ आफ इंडिया बिल' का प्रस्ताव इन्हींकी प्रेरणा से हुआ जिसका उद्देश्य सेना और विदेशी मामलों को छोड़कर भारत को सारे अधिकार सौंपना था। सन् १९२७ में उन्होंने मद्रास कांग्रेस में स्वराज्य के ध्येय का समर्थन किया था पर कलकत्ता-कांग्रेस में उन्होंने अपने मतभेद को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया। उसके बाद शायद वे कांग्रेस में नहीं गईं। इन बातों का विवेचन करते समय हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि तब उनकी आयु ८२ वर्ष की थी।

शिक्षा, धर्म और राजनीति के क्षेत्र के अलावा उन्होंने बॉय स्काउट गवर्नमेंट में भी भाग लिया। सन् १९०२ में इन्हें इस संस्था की सबसे बड़ी उपाधि—'सिलवर वुल्फ' प्रदान की गई। असंख्य लेखों के अतिरिक्त उन्होंने लगभग ३०० पुस्तकें लिखीं जिनमें 'गीता' का अनुवाद भी है। पत्रकारिता के क्षेत्र वे पूर्ण स्वतन्त्रता की हामी थीं। उन्होंने अनेक पत्रों का सम्पादन किया जिनके अग्रलेख वे स्वयं लिखती थीं आर्थिक और प्रकाशन-व्यवस्था भी वे स्वयं करती थीं। उनका ज्ञान अद्भुत था और भाषण कला में वे अपने युग में बे-मिसाल थीं। उनके भाषणों से जनता का दिल हिल उठता था। उन्होंने सदा गिरे हुओं का पक्ष लिया, वे आयर्लैंड के किसानों के लिए लड़ीं, लन्दन में दियासलाई के कारीगरों की हड़ताल में पूरा भाग लिया। बन्दरगाह के मजदूर और बक्स बनानेवाले, सबने श्रीमती बेसण्ट में अपना रहनुमा पाया। वस्तुतः उनकी कलम और उनकी जबान दोनों शोषित वर्ग के लिए ढाल ही नहीं बनी बल्कि उनपर होनेवाले अत्याचार का निराकरण करने में वे सदा सफल रहीं।

वे वस्तुतः सत्य की खोज करनेवाली थीं। सत्य की खोज करते-करते वे जिस बात को सही समझती थीं

पक्के इरादे के साथ उसके पीछे पड़ जाती थीं चाहे फिर उन्हें कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पड़ें वे पीछे नहीं हटती थीं ! उनका सारा जीवन इस बात का सबूत है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मृत्यु के पश्चात् अपनी समाधि पर मैं केवल यही एक वाक्य चाहती हूं—"उसने सत्य के अन्वेषण में अपने प्राणों की बाजी लगा दी।" और आज जब उन को स्वर्ग सिधारे लगभग १९ वर्ष बीत गये हैं जब भारत स्वतन्त्र हो गया है क्या हम विश्वास के साथ नहीं कह सकते कि श्रीमती बेसण्ट ने सत्य के अन्वेषण में अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। हम समझते हैं कि कह सकते हैं और साथ ही महात्मा गांधी के शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि यह श्रीमती बेसण्ट ही थी जिन्होंने भारत को गहरी नींद से जगाया।

भारत अपनी इस बहादुर बेटी की सेवा, तपस्या, और साधना को सदा याद रखेगा।

अपराध-चिकित्सा

गोपालकृष्ण मल्लिक

आज देश में राष्ट्रीय सरकार है और उसकी नुमायन्दगी ऐसे नुमाइन्दे कर रहे हैं, जो हिंदुस्तान के सबसे आगे के मुधरे व्यक्ति माने जाते हैं। राष्ट्र के भाग्योदय और इसके सर्वांगीण विकास की आशा इनसे ही अधिक-से-अधिक की जाती है। फिर आज जबकि सभी क्षेत्रों में पुनरुद्धार के कार्यक्रम एवं योजनाएं बन रही हैं, जेल-बन्दी के विषय में भी विचार करना वांछनीय है। यह कोई गैरजरूरी विचार नहीं, कि इसकी अवहेलना कर, कोई भी लोकप्रिय सरकार और राष्ट्र आगे बढ़ सके और अमन-चैन की परिस्थिति में पूर्णतम योग की कल्पना कर सकें।

मामूली अपराधों के लिए देश में जो लाखों कैदी जेल भेजे जाते हैं उनके विषय में कुछ विचार करने की क्या आज आवश्यकता नहीं है? इनमें भी कई लोग संभवतः निरपराधी होंगे, कई लोगों ने सरकार की ओर से न्याय प्राप्त करने के बारे में निराश होकर कानून अपने हाथ में लेकर किसी को सजा दी होगी। कई लोगों ने क्षणिक मनोवेग के कारण कुछ अपराध किया होगा और बाद में पश्चात्ताप करके वे पुनीत हो गये होंगे और कई लोगों के स्वभाव में पूरा-पूरा परिवर्तन भी हो गया होगा। आंदोलन में जो जेल गये होंगे और जिन्होंने इस विषय के तारतम्य एवं विचार में उतरकर वहां ऐसे अनुभव प्राप्त किये होंगे, उन्हें इसका पता लगा होगा।

ऐसे लोगों का खयाल ही कौन करता है? हमारे कायदे-कानून चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों उनके प्रत्यक्ष अमल को देखते हुए यह कबूल करना पड़ता है कि शिक्षित और मध्यम वर्ग के सफेदपोश व्यक्ति इस जाल में फंस नहीं पाते। गरीब जनता की अपेक्षा मध्यमवर्ग में शराफत और सज्जनता अधिक है ऐसा तो शायद कोई नहीं कहेगा। किन्तु राज कर्मचारी अक्सर मध्यम वर्ग से आते हैं। वे अपने वर्ग के प्रति पक्षपाती भी हो सकते हैं। मध्यमवर्ग के लोग अक्सर होते भी हैं चतुर; चाहे जो अपराध करके भी कानून की पकड़ में नहीं आते; उल्टे दूसरों को फंसाते हैं। कर्मचारी भी उनका पक्ष लेते हैं। अपने को बचाने के लिए मध्यमवर्ग के लोग कोशिश और खर्च भी बेहद करते हैं और किसी न किसी तरह बच ही जाते हैं।

जेलखाने हैं गरीबों के लिए, श्रमजीवी और अप्रतिष्ठित लोगों के लिए। वे ही बेचारे जेल में ठूंसे जाते हैं और उन्हींके साथ जेल में सब तरह की ज्यादतियां की जाती हैं। उनकी रिहाई और कल्याण की किसे परवाह है?

जेल या कारावास की संस्था किसलिए बनाई गई है? यूरोपीय विचारक कहते हैं कि कारागृह की संस्था धर्म-व्यवस्था के द्वारा ही राजतन्त्र में दाखिल की गई है। जिसने पाप या अपराध किया हो उसको चाहिए कि वह प्रायश्चित्त करे। वह सिर मुंडाकर एकांत में जाकर बैठ जाय, समाज से अलग होकर खान-पान में सख्त परहेज रखे, प्रायश्चित्त के तौर पर अपने शरीर

को कष्ट दे और इस तरह पाक-साफ होने के बाद समाज में दाखिल होकर उसके काम-काज में शरीक हो सकता है। धर्म-व्यवस्था में मनुष्य ये व्यवहार स्वेच्छा से करता है और उसमे उसे लाभ भी होना होगा। किंतु राजतंत्र में अपराधियो से यह प्रायश्चित्त जबरन कराया जाता है। इसलिए उसका असर कुछ भी नही होता और जो होता भी है तो वह उल्टा ही होता है। हमारे यहा कारा-वास की और नरकवास की कल्पना एक ही है। आदमी को कोई एक दिन की सजा देकर सतुष्ट कैसे हो सकता है? "अपराधी को बराबर सताना चाहिए, लगातार पीड़ा देनी चाहिए, वह भाग न जावे इसलिए उसे सीकचो में बन्द रखना चाहिए, जबतक समाज की बदला लेने की वृत्ति तृप्त न हो जाय और कैदी की तेजस्विता बिलकुल नष्ट न हो जाय, तबतक उसे सताते रहना चाहिए"—ऐसा ही कुछ खयाल मनुष्य जाति के मन में था। गरुडपुराण में नरक-यातना का जो वर्णन आया है, जैन-शास्त्र में भी नरक-यातना के जो चित्र खीचे गये हैं, वे सब मनुष्य के परिशोध या प्रतिहिंसा की वृत्ति के ही द्योतक हैं। मनुष्य ने अगर एक गुना गुनाह किया हो तो उसके प्रति दसगुना गुनाह करने का समाज को मानो हक ही मिल गया है। ऐसा ही समाज का खयाल होता है, यद्यपि भिन्न-भिन्न रूप से सभी वैसे ही दोषी हैं। परतु दूसरों के बारे में विचार करते हुए जैसे अपने को भूल ही जाते हैं।

ईसामसीह के सामने जब एक गुनहगार लाया गया और उसे पत्थर से मार-मार कर मारने की बात तय की गई तो ईसा ने कहा कि इस पर वही पत्थर मार सकते है जिन्होंने कभी वैसा गुनाह न किया हो। बातें यहो समाप्त हो गई और सभी का हाथ उठकर नीचे गिर गया।

यही बात समाज की होनी है। आदमी गुनहगार है या नहीं यह तय करने के लिए बडे-बड़े विद्वान् और चरित्रवान न्यायाधीश रखे जाते हैं। हजारो की तन-खाहे उन्हें दी जाती हैं। मनुष्य-बुद्धि का पूरा उपयोग करके सूक्ष्म कानून बनाये जाते है। और इतना सब करने पर भी न्यायाधीश की मदद के लिए एक-एक हजार-हजार फीस लेनेवाले वकील-बैरिस्टर अभियुक्तो की ओर से रखे जाते है। फिर जहां एक बार कोई शख्स अपराधी साबित हुआ कि समाज भी अपनी सहानुभूति तथा न्यायबद्धि उसकी ओर से बिल्कुल ही हटा लेते हैं।

अपराध-निर्णय के लिए जैसे कानून बनाये जावे है, वैसे ही अपराधियो को किस तरह से सजा दी जाय, अथवा दोष-मुक्त किया जाय, इसका भी शास्त्र तैयार होना चाहिए। जैसे रोग-मुक्त करने के लिए चिकित्सा-शास्त्र पैदा हुआ है वैसे ही लोगो को बुराइयो से बचाने के लिए, दोष-मुक्त करने का शास्त्र भी हमें तैयार करना होगा; तभी समाज में अपराध और अपराधियो की गणना कम हो सकेगी। नही तो "मर्ज बढता गया ।" सैकड़ो वर्षों की सजा देने की इस प्रणाली से क्या कुछ लाभ दीखता है? मेरी नम्र सम्मति में तो उल्टा प्रभाव हुआ है। क्योकि जिसमें चोरी करने की बुरी लत नही होती वही षड्यन्त्र और कानून के पेंच में पड कर जब जेल जाता है तो चोर बनकर आता है। और चोर पक्का चोर। यही प्रगति है!

इसका यह मतलब नही कि गुनाहगार को सजा ही न दी जाय। मतलब तो यह साफ है कि उसका शास्त्र और उद्देश्य बदलना चाहिए अन्यथा परिणाम सामने है। मान लीजिए कि किसी राज में ऐसी व्यवस्था की गई है कि न्याय-मन्दिर के समान आरोग्यमदिर की अदालत बने वहा बीमारो पर बीमार होने का अभियोग लगाया जाता है। वे अपनी ओर से हम खुद होकर बीमार नही हुए यह साबित करने की कोशिश करते है और डाक्टर-अदालत में बैठे हुए डाक्टर-न्याया-धीश उनपर रोगी होने का अभियोग साबित मान लेते है। फिर उनको किसी छोटे या बडे दवाखाने में अमुक दिनो तक कैद रखने की सजा फरमाते है और अपने आज्ञापत्र में लिखते है कि इस आदमी को इतने दिनो तक जुलाब या रेचक दिया जाय, इतने दिनों तक भुनैन दी जाय, इतने दिनो तक भूखा रखा जावे, और ये सब सजाए अगर वह चुपचाप सहन कर लें तो उसे कुछ दिनो की रिआयत दी जावे, उसके दिन पूरे होते ही उसे रोग-मुक्त मानकर छोड़ दिया जावे—तो

उस अवस्था के बारे में हम क्या कहेंगे ? पाठक कृपया इसे मजाक न समझें या हंसी न मानें। हमारे पागलखानों की चिकित्सा करीब-करीब इसी ढंग की होती है। सरकारी शफाखानों में भी कभी-कभी ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं।

तात्पर्य यह है कि किसी मनुष्य को समाज के स्वाभाविक वायुमंडल से अलग कर जेल में रखने से न उस आदमी का हित होता है न समाज का। जो लोग उन्मुक्त होकर समाज में अत्याचार करते ही रहते हैं, खून-खराबी, मार-पीट, व्यभिचार और दगाबाजी की जिन्हें आदत पड़ गई है, समाज में उनका रहना ही खतरनाक है। ऐसे आदमियों को पकड़कर समाज से पृथक् रखना होगा। किन्तु आमतौर पर किसी को उसके परिवार या संबंधियों से अलग करके जेलखाने में रखना बेहतर नहीं है। कोई निश्चय ही गुनहगार है या नहीं, और है तो कितना, यही समाज में प्रकट हो जाय, और उसका गुनाह समाज के सामने जाहिर हो जाय, इतना समाज-हित के लिए पर्याप्त है। फिर ऐसे गुनहगार के साथ किस तरह पेश आना चाहिए, यह समाज का हरेक व्यक्ति अपने आप निश्चित करेगा। इसके बाद अगर सजा करना ही हो तो मानसशास्त्री, समाजशास्त्री और आरोग्यशास्त्री से पूछकर नई सजाएं मनुष्य ढूंढ़ ले। किंतु प्रत्येक बात पर जुर्माना और कैद—ये ही दो सजा की प्रथाएँ आज प्रचलित हैं। यह उतना बुद्धिपूर्ण एवं विवेक-युक्त नहीं मालूम पड़ता है। जैसे अनेक प्रकार के रोगों के लिए अनेक प्रकार की चिकित्साएं हैं, उसी तरह हर किस्म के अपराधी का अध्ययन, विश्लेषण और वर्गीकरण करना चाहिए और भिन्न-भिन्न वर्ग के अपराधों के लिए जो मानव-शास्त्र और समाजशास्त्र युक्तियुक्त बताये वही करना चाहिए। वही सजा होगी। जिस तरह डाक्टर या वैद्य मरीज की नब्ज देख कर चिकित्सा में परिवर्तन करता है उसी प्रकार गुनहगारों को भी समय-समय पर देखकर उनकी सजा में परिवर्तन करते रहना चाहिए। अगर कोई कहे कि ऐसी जांच कठिन है, मनुष्य के अंदर पैठकर उसकी थाह लेना मनुष्य-शक्ति से बाहर है, तो उसका जवाब यही हो सकता है कि ऐसी हालत में किसी को एक दिन से अधिक सजा देने का अधिकार भी मनुष्य को नहीं होना चाहिए। जबकि श्रमजीवी जनता को अधिकाधिक राजनैतिक अधिकार देने की बात चल रही है तब उसके जीवन की प्रतिष्ठा हमें बढ़ानी चाहिए और दंडविधान भी मनुष्योचित ही बनना चाहिए।

अपराध तो हर जगह, प्रत्येक मनुष्य से होता है। गांधीजी के आश्रम में भी होता था; किंतु गांधीजी उसका निराकरण मानस एवं समाजशास्त्र की नीति से करने का प्रयोग करते थे; क्योंकि उन्हें तो मनुष्य-जीवन की हरेक बुराई का इलाज मनुष्योचित व्यवहार से करना था, इसका अमल संसार को बताना था। इसका ही दूसरा रुप अहिंसा का व्यवहार है। गांधीजी ने ऐसा किया और सफलता भी मिलती रही। उनके वे सब प्रयोग लोगों के सामने आते रहे हैं। यहां देने से विस्तार होगा। गेहूं, कपड़े, रुपये, संतरे तथा अन्य चीजों की चोरी के अपराध, झूठ बोलने के अपराध गर्जेकि मनुष्य-जीवन के सभी स्वाभाविक अपराधों का इलाज वे मनुष्योचित रुप से, मानस एवं समाज-शास्त्र के व्यवहार से, किया करते थे। उन्हें सफलता भी मिली, क्योंकि वही सही मार्ग था।

आप कहेंगे कि यह गांधीजी की बात है। उसका प्रभाव अधिकतर होता होगा। साधारण मनुष्य साधारण समाज में कैसे करे? वह कैसे संभव होगा और उसमें लाभ के बजाय नुकसान की ही संभावना है। लेकिन एक दृष्टांत उपस्थित करुंगा, जो एक साधारण आश्रम का है और जहां साधारण आदमी ही रहते हैं। हमारे सेवाश्रम में एक दफा चोर घुस आया और पकड़ा गया। आश्रम के संचालकजी ने उसे अनेक प्रकार की रीति-नीति बता कर, खिला-पिलाकर छोड़ दिया। पुलिस को इसकी खबर लगी और चोर पकड़ कर छोड़ देने की गैर-कानूनी कार्रवाही के दंडस्वरुप उन्हें जुर्माना और जेल की सजा मिली जो उन्होंने सहर्ष भुगत ली। मगर चोर के विषय में कुछ भी न बता कर अपना आदर्श पेश किया। वह चोर तब से चोरी करना छोड़ कर काम-काज करके

गुजर करने लगा। उसके बाद अबतक उसने चोरी नही की है, यह बात सारा इलाका जानता है। यह घटना करीब ६ वर्ष पूर्व की है।

यह है मनुष्योचित न्याय और नीति की साधारण मिसाल। किंतु सरकार अगर विशाल पैमाने पर इसे बरते तो परिणाम विशाल निकलेगा। कम-से-कम प्रयोग तो करना ही चाहिए। अगर कामयाबी हुई तो ग्राह्य रहेगा, नही तो त्याज्य। नुकसान क्या होगा?

ईंधन तथा लकड़ी बचाइये

विष्णुशरण

भारत सरकार ने गतवर्ष की भाति इस वर्ष भी वृक्षारोपण सप्ताह मनाया। इस कार्य का पूर्ण रूप से स्वागत किया गया, क्योकि वन किसी भी राष्ट्र की एक बहुमूल्य सम्पत्ति और समस्त मानव-जीवन का आधार होते हैं और जब वे नष्ट हो जाते हैं तब उनके ऊपर आश्रित यह मानवजीवन भी स्वत ही नष्ट हो जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है। वनो से अनेक आर्थिक लाभ होते है तथा ये सौन्दर्य के भी प्रमुख साधन हैं। उनके लाभ प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सभी रूपो में प्राप्त होते है।

इनमें से एक प्रमुख लाभ है ईंधन तथा लकडी की पूर्ति में अभिवृद्धि। इन साधनो को बनाए रखने के दो प्रमुख रूप हैं -

(१) नए वृक्षो का आरोपण तथा वर्तमान साधनो का सुविचारित प्रयोग। प्रथम तो वस्तुत वृक्षारोपण पर्व ही है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि द्वितीय रूप की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया गया है। भारत सरकार और वृक्षारोपण आन्दोलन के जन्मदाताओं का ध्यान इस आन्दोलन की इस कमी की ओर जोरदार शब्दो में आकर्षित करना ही वर्तमान लेख का उद्देश्य है। ईंधन और लकडी की बरबादी एक राष्ट्रीय बरबादी है और इनकी बचत यथासभव सब प्रकार से होनी चाहिए। एक आन्दोलन जिसका उद्देश्य कि ईंधन और लकडी के प्रयोग में सावधानी बरत करके बचत करना है, यदि सुयोजित आधार पर शक्ति और उत्साहपूर्वक चलाया जावे तो निश्चय ही भारी राष्ट्रीय क्षति होने से बच सकती है और उसकी सफलता कोई नगण्य नही गिनी जा सकती। बहुत सारी लकडी जो व्यर्थ ही बरबाद होती रहती है आसानी से नष्ट होने से बचाई जा सकती है। अतएव सरकार को शीघ्र ही "ईंधन और लकडी बचाओ" आन्दोलन भी प्रारम्भ करना चाहिए। यह तो स्पष्ट है कि यह प्रस्तावित आन्दोलन वृक्षारोपण आन्दोलन के साथ सुविधापूर्वक मिलाया जा सकता है। वह इस आन्दोलन के वास्तविक उद्देश्य के विरुद्ध भी नही होगा और न अधिक व्ययसाध्य ही।

क्रय करने की शक्ति का होना एक बात है तथा प्रयोग की कला का होना दूसरी बात। मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार ईंधन और लकडी भले ही खरीद सके अथवा अन्य प्रकार से प्राप्त कर सके, परन्तु उन्हे उनके प्रयोग करने की कला में भी दक्ष होना चाहिए। भारी मात्रा में ईंधन और लकडी या तो एकदम नष्ट हो जाती हैं, या बरबादी से भरे तरीके से उपयोग में लाई जाती है अथवा वर्षा और गर्मी से सडती रहती है। अनुसधानशालाओ को इस प्रकार के प्रयोग निकालने चाहिए जिनके व्यवहार से लकडी की शक्ति तथा उपयोगिता बढ जावे और वह सीलन, गर्मी और कीडों के प्रभाव से अधिक-से-अधिक मुक्त रहे। ईंधन की ओर तो विशप रूप से कोई ध्यान ही नही दिया जाता। घर के सबसे अधिक परित्यक्त कोने में वह डाल दी जाती है। कीडे उसे खाते रहते है और सीलन उसे बरबाद करती रहती है। चूल्हे में एकबार में ही आवश्यकता से अधिक लकडिया झोक दी जाती है और बहुत-सी लपटें तो अनायास ही उठ कर नष्ट हो जाती है और चूल्हे पर रखे हुए बरतन को उनसे कोई भी लाभ नहीं पहुचता। वस्तुत उस समय

कम ईंधन से ही काम चल सकता था। बहुधा चूल्हा खाली पड़ा रहता है और लकड़ियां जलती रहती हैं। घरों में जलते हुए अंगारों से कोयला तो कदाचित ही तैयार किया जाता है। ये अंगारे धीरे-धीरे राख में परिवर्तित हो जाते हैं और यह राख घूरे पर डाल दी जाती है। अगर यही अंगारे बचा लिये जायँ तो न केवल ईंधन का काम दें प्रत्युत जलाने में लकड़ी की अपेक्षा अधिक आरामप्रद भी सिद्ध हों। जबकि लकड़ी के बड़े-बड़े टुकड़े कुल्हाड़ी से फाड़े जाते हैं तो छोटे-छोटे टुकड़े भी बच रहते हैं। वे भी किसी प्रकार नष्ट नहीं किए जाने चाहिए और उनका भी पूरा उपयोग होना चाहिए। लकड़ी को आरी से चीरने पर बुरादा बच रहता है। वह बुरादे की अंगीठियों में जलाया जा सकता है। विशेष रूप से वे मनुष्य, जोकि जंगलों के निकट रहते हैं लकड़ी और ईंधन के प्रयोग में बड़े लापरवाह होते हैं, पेड़ों की छोटी शाखाओं तथा खोरे का तो कोई मूल्य ही उनकी दृष्टि में नहीं होता। यदि कोई वनविहार के लिए निकले तो उसे स्थान-स्थान पर फाड़ी हुई लकड़ी व खोरे के व्यर्थ ही सड़ने के लिए पड़े हुए ढेर मिल जावेंगे। वन-विभाग को, जिसके ऊपर वनों की रक्षा का दायित्व है, वृक्षों के इस विनाशकारी विध्वंस को रोकने की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

आशा है कि भारत सरकार वृक्षारोपण के इस पहलू पर भी गम्भीरतापूर्वक सोचेगी और यदि उसे इसमें कोई तथ्य दिखाई पड़े तो इस आन्दोलन को भी क्रियात्मक रूप देगी। यदि सरकार की ओर से कोई कदम नहीं भी उठाया गया तब भी स्वतंत्र भारत के नागरिक इस ओर ध्यान देंगे। लकड़ी और ईंधन के उपयोग में बचत से न केवल किसी हद तक उनकी व्यय-राशि ही कम हो जायगी वरन् वे राष्ट्र को भी भारी क्षति से बचा लेंगे जोकि मनुष्यों की निष्क्रियता, उदासीनता तथा नाजानकारी से उसे भुगतनी पड़ती है।

प्राचीन ग्रंथों के अन्वेषण की आवश्यकता

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

संसार में जीवित और उन्नत कहलाने वाले देशों के लिए यह आवश्यक हुआ करता है कि वहां के निवासी अपने पूर्वापर इतिहास का अध्ययन, अपनी भाषा का भरपूर ज्ञान और प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृति एवं स्थिति का सतर्कतापूर्वक ध्यान रक्खें।

देशकाल की वास्तविक स्थिति और गतिविधि इतिहास से ही जानी जाती है और इतिहास के निर्माता हुआ करते हैं साहित्यिक। भारतीय इतिहास तथा साहित्य के सृजन और संरक्षण में पौराणिक काल से ही बुन्देलखंड का समुचित हाथ रहा है। संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवि वाल्मीकीय रामायण के कर्ता महर्षि वाल्मीकि, तपोनिधि पाराशर, अष्टादश पुराणों एवं महाभारत के रचयिता कृष्णद्वैपायन वेद व्यास, वीर-मित्रोदय बृहद्कोष के प्रणेता मित्रमिश्र, प्रबोध चन्द्रोदय और शीघ्रबोध के लेखक कृष्णमिश्र तथा काशीनाथ मिश्र इसी भूमि से आविर्भूत हुए रत्न थे।

बारहवीं शताब्दी में परमाल चन्देल के दरबारी कवि महोबे के जगनिक कवि, सोलहवीं शताब्दी में हिंदी भाषा के प्रथम आचार्य कवीन्द्र केशव, कविवर बलभद्र, बिहारीलाल, पद्माकर, लाल, महाराजा छत्रसाल आदि अनेकानेक कवि अपनी साहित्यिक सेवाओं के कारण अमरत्व प्राप्त किये हुए हैं।

विद्याओं और कलाओं के विकास के लिए अनुकूल आभ्यंतर और बाह्य सामग्रियां अभिप्रेत हुआ करती हैं। बुन्देलखंड को प्रकृति ने अनोखी छटाएं और दृश्य प्रदान किए हैं। ऊंची-नीची शृंखलाबद्ध पर्वतमालाएं, हरे-हरे सघन वन-कुंज, निर्मल जल से प्रपूरित सर-सरिताएं, आदि देखकर ऐसा कौन-सा हृदय है जो आनन्द-विभोर न हो उठे।

बुन्देलखंड भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण भूभाग

माना गया है। गिरिराज हिमालय को जब हम भारतवर्ष के मुकुट की उपमा देते है तो वीर और कवि-प्रसविनी बुन्देलखड की भूमि को भी हम उसका सुदृढ उन्नत विशाल वक्षस्थल और सबमें नवस्फूर्ति सचालन करने वाला हृदय मानते हैं।

अपनी इस निधि पर किसे गर्व न होगा ! किन्तु जहा प्रकृति हमारे प्रति इतनी उदार है वहा हम इतने अकर्मण्य हैं, क्योकि अपनी धरोहर तक का उचित उपयोग नही करते। इसी कारण हमारा ह्रास हुआ है, हम उपेक्षित हो गए हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही नव-निर्माण का युग प्रारभ हुआ है। इस नव-निर्माण की भावना से प्रत्येक प्रात और प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित है—प्रभावित होना ही चाहिए ! इस नव-जागरण मे सचेष्ट होकर हमें अपनी पूर्वापर स्थिति पर गभीरतापूर्वक विचार करके कदम बढाना चाहिए। तब ही हमारी आयोजनाए फलीभूत हो सकती हैं।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, बुन्देलखड की उर्वरा भूमि उच्च कोटि के अनेक कवि उत्पन्न करने में यथेष्ट ख्याति पा चुकी है। अब भी बुन्देलखड में गाव-गाव और घर-घर अनेक अप्रकाशित ग्रथ बस्तो में बधे हुए पडे है और कितने ही अमूल्य ग्रथ तो झीगुर आदि के भोज्य पदार्थ बनकर नष्ट हो चुके है। जो बच रहे है उनके उद्धार की ओर हमारा ध्यान नही जाता। यह कितनी लज्जा की बात है। पत्थरो के हीरो की खुदाई पर प्रतिवर्ष एक बडी रकम खर्च होती है, किन्तु साहित्य-जगत् के सजीव हीरो की ओर हमारा ध्यान ही नही जाता। जो इस दिशा में अग्रसर भी होते है, अन्वेषण करते है, उन्ह सहयोग नही मिलता। इसी उपेक्षा के कारण हम पिछडे हुए सिद्ध हो रहे हैं। विश्व-वद्य बापू ने डा. पी जे मेहता के पैम्फलेट की प्रस्तावना में क्या ही अच्छा लिखा था

"... यदि हम लोगो में अपनी देशी भाषाओ पर श्रद्धा नही रह गई है तो यह इस बात का लक्षण है कि हम लोगो में स्वय अपने ही प्रति श्रद्धा, अपने ही प्रति विश्वास का अभाव है। यह अवश्यमेव नाश का चिह्न है। और हम लोगो को स्वराज्य की कोई स्कीम चाहे कितनी ही उदारतापूर्वक क्यो न दी जाय, पर फिर भी यदि हम लोगों में उन भाषाओ के प्रति आदर न होगा, जिन्हे हमारी माताए बोलती है तो हमारा राष्ट्र कभी स्वराज्य-भोगी राष्ट्र नही होगा।"

बापू के उपदेशो में इतनी अधिक सामग्री है कि यदि उनकी ओर हमारा भरपूर ध्यान लग जाय तो हम अपना बहुत-कुछ सुधार कर लें। सास्कृतिक विकेन्द्रीकरण के पीछे भी यही भावना काम कर रही है कि हम सब अपने-अपने ग्रामो, नगरो और प्रान्तों का सुधार कर ले, उनके प्रति सच्चा प्रेम रखें, उनकी सब प्रकार उन्नति करने के साधन सोचे और तत्परता से उनको काम में लावें। बापू ने आत्म-सयम, आत्म-निर्भर, आत्म-सुधार और आत्म-निरीक्षण करने के लिए इसीलिए बार-बार अपने उपदेशो में जोर दिया है।

हमारी जन-प्रिय सरकार का कार्य बहुत-कुछ आसान हो जाय यदि उसकी आयोजनाओ को सफल बनाने में हम सबका सम्मिलित उद्योग उसे प्राप्त होता रहे। बापू के बतलाये हुए मार्ग पर चलकर हम अपना, अपने गावो का, अपने प्रात का और अन्त में अपने देश का बहुत-कुछ हित कर सकते हैं।

साधारणत हिन्दी-भाषा-भाषियो और मुख्यत विन्ध्यप्रान्तवासियो से मेरा निवेदन है, आग्रह है कि वे इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट करे और विचार-विनिमय करके ऐसी योजना प्रस्तुत कर लें जिससे प्राचीन ग्रन्थो के अन्वेषण का कार्य सुचारु रूप में चलने लगे। उन ग्रथो के प्रकाश में आने से जहा एक ओर भाषा-भारती का भण्डार भरेगा वहा दूसरी ओर कितनी ही नई बातें हम सब उनसे सीख सकेंगे, कितना ही छिपा हुआ इतिहास हम सबके सामने आ जायगा, कितने ही कवियो और लेखको की कृतियो को नव-जीवन प्राप्त होगा और प्रान्त के साथ-ही-साथ उनसे देश और हिन्दी भाषा का गौरव बढ़ेगा।

आशा है इस ओर रुचि रखनेवाले महानुभाव 'जीवन साहित्य' द्वारा अपने सुझाव प्रकट करने की कृपा करेंगे, जिससे इस प्रगति को सफलता मिले।
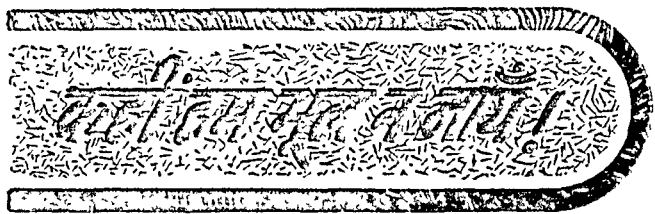
विट्ठलभाई जे. पटेल

[पुण्यतिथि १८ सितम्बर, आश्विन कृष्ण १४]

"सन् १९२७ में एक दिन लन्दनवासियों ने आश्चर्य से देखा कि एक सफेद 'राजद्रोही टोपी' से ढकी हुई सफेद दाढ़ी कुछ अजीब शान से "बकिंघम पैलेस" की सीढ़ियों पर चढ़ रही है। इस दाढ़ी ने राजमहल में प्रवेश करके "हिज मैजेस्टी किंग जार्ज दि फिफ्थ, किंग आफ ब्रिटेन, आयरलैंड एंड डोमीनियन्स वियाण्ड दी सीज एण्ड एम्परर् आफ इंडिया" से भेंट की और इस बातचीत में सम्राट् महोदय को बताया कि "कांग्रेस की आवाज समस्त भारत की आवाज है। अगर ग्रेट ब्रिटेन भारत से सद्भाव बनाये रखना चाहता है, तो उसे कांग्रेस को संतुष्ट करना चाहिए।" राजद्रोही गांधी-टोपी में सम्राट् से भेंट करनेवाली यह दाढ़ी भारतीय पार्लमेंट (लेजिस्लेटिव असेम्बली) के सभापति श्री विट्ठलभाई पटेल की थी।

जब उन्होंने देश की और भी अधिक सेवा करने की आवश्यकता समझी तो एका-एक १९३० में उन्होंने उस उच्च पद से त्यागपत्र दे दिया और सर्वसाधारण में पहले-जैसे फिर मिल गये। उन्होंने देश की आत्मा की पुकार सुनी थी, उसको समझा था, उसकी ही सहायता को वे सभापतित्व की कुर्सी को छोड़कर आये थे। महात्मा गांधी से मतभेद रखने पर भी उन्होंने उनका साथ दिया और 'पेशावर-जांच कमिटी' के सभापति नियुक्त होकर उसकी जांच का कार्य दिन-रात एक करके किया। परिणामस्वरूप उनको गिरफ्तार कर लिया गया और जेल में उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। उनकी बीमारी इतनी बढ़ी कि जेल से छूटने पर इलाज कराने के लिए उन्हें विदेश जाना पड़ा। उनका रोग-ग्रस्त शरीर भारत से दूर था, परन्तु उनका हृदय यहीं रह गया था। शारीरिक यातना जब पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी तब भी विदेशों में भारत की मान-रक्षा के लिए अपनी बची-खुची शक्ति को कम करते रहे और एक प्रकार से यही उनके अन्त समय को निकट ले आया। परिणामस्वरूप जिनेवा में २३ अक्तूबर १९३३ को उनका स्वर्गवास हो गया। उनका जीवन देश और मनुष्य की सेवा तथा अन्याय से युद्ध करना था। जबतक दम-में-दम रहा, वे वीरता के साथ जीवन व्यतीत करते रहे।

कूटनीतिज्ञ का सबसे बड़ा अस्त्र उसकी दूरदर्शिता है। विट्ठलभाई को मानवी स्वभाव का जो गूढ़ ज्ञान था, उसीने उनको इतना शक्तिमान बनाया। उनके पास केवल ऊपर-ही-ऊपर देखनेवाली आंखें नहीं थीं बल्कि भीतर घुस कर देखनेवाली आंखें भी थीं। अपने सभापतित्व से त्यागपत्र देते हुए २१ जनवरी १९३० को उन्होंने कहा था, "मैं समझता हूं कि कठिनाइयों के होते हुए भी मुझे इस नौकरशाही के विरुद्ध अपने पद का गौरव और असेम्बली की अवधि की रक्षा करने में पर्याप्त सफलता मिली है। मुझे इस बात का संतोष है कि जनता का मुझ पर विश्वास है। मेरी समझ में अब उपयुक्त समय आ गया है। संसार के सबसे बड़े महापुरुष ने भारतीय कांग्रेस की अधीनता में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' छेड़ दिया है और उसकी बदौलत आज हजारों आदमी सरकारी जेलों में मेहमान हैं, हजारों और लाखों जेल जाने की तैयारी कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में मेरे लिए उचित स्थान इस असेम्बली की कुर्सी पर नहीं, प्रत्युत देशवासियों के बीच में है।"

असेम्बली के सभापति पद से इस्तीफा देने के बाद उन्हें सजा हुई तब उन्होंने कहा था—मुझे भी पीयरेज (लार्ड की पदवी) और पेन्शन मिल गई।

'नये भारत के निर्माता' से] —क्षेमचंद्र 'सुमन'

कसौटी पर

संस्मरण-साहित्य की तीन पुस्तकें

सस्मरण और रेखाचित्र-सम्बन्धी साहित्य का हिन्दी में बहुत दिन तक बडा अभाव रहा, पर इधर जैसे जैसे प्रगति हो रही है इस प्रकार की अनेक पुस्तकें सामने आ रही है और उनमें काफी पुस्तकें काफी सुन्दर होती है। आज हम जिन तीन पुस्तकों की चर्चा करने जा रहे है वे सुप्रसिद्ध व्यक्तियो द्वारा लिखित और सग्रहीत है और उनका प्रकाशन सुन्दर भविष्य का सूचक है। वे पुस्तकें है

१ मेरे साथी–ले० महात्मा भगवानदीन, प्रकाशक-भारत जैन महामण्डल, वर्धा पृष्ठ १४०, मूल्य १)।

२. हमारे आराध्य–ले० प० बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ २७२, मूल्य ३)।

३ जैन-जागरण के अग्रदूत–सम्पादक श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय प्रकाशक–वही, पृष्ठ ६२५, मूल्य पाच रुपया।

तीनो पुस्तको में सस्मरण अधिक है। रेखाचित्र बहुत कम। हा, 'जैन जागरण के अग्रदूत' में सक्षिप्त जीवनिया भी है। वैसे तीनो की अपनी-अपनी विशेषता है। 'मेरे साथी' में महात्माजी ने उन्ही व्यक्तियों की चर्चा की है जो उनके विशेष सम्पर्क में आये। सही मानो में सस्मरण ये ही हैं। महात्माजी की शैली अछूती है। वे जिस स्पष्टता से लिख सकते हैं वह हर किसी के वश का नही है। इसीलिए इन सस्मरणो में इतनी आत्मीयता और पारदर्शिता है कि वर्ण्य व्यक्ति आपसे अपरिचित होकर भी आपका अपना बन जाता है। क्या 'रामदेवी-बाई' जिनके सस्मरणो ने इस पुस्तक का बडा भाग घेरा है, और 'बाल जैनेन्द्र' क्या 'भाई अजितप्रसाद जी' और 'अर्जुनलाल सेठी' सब जैसे आपसे बातें करने लगते है। फिर उनमें सिफत यह है कि सबकुछ कह कर भी वे आपकी सहानुभूति नही खोते। क्या मजाल आप किसी चरित्र के प्रति कठोर हो सकें। जैनेन्द्रजी के बाल-जीवन के सस्मरण ऐसे ही हैं, जैसे कोई पिता अपने पुत्र के सस्मरण लिखे।

'हमारे आराध्य' की विशेषता यह है कि इसके वर्ण्य व्यक्ति सभी विदेशी हैं। ये न सस्मरण कहे जा सकते है और न रेखाचित्र। वैसे ये इन दोनों की सीमा-रेखा के आसपास है। रुझान रेखाचित्र की ओर है। इनमें बाकूनिन और क्रोपाटकिन जैसे अराजकवादी, एमर्सन और थोरो जैसे अमेरिकन ऋषि, तुर्गनेव जैसे उपन्यासकार, स्काट जैसे पत्रकार और रोमा-रोला जैसे महात्मा हैं। चतुर्वेदीजी हिन्दी के इनेगिने रेखाचित्रकार और जीवन चरित्र लेखक हैं। उनकी भाषा और शैली प्राजल, सरल और मजी हुई है। उसी तरह विषय में भी उनकी पैठ गहरी है। हरएक चित्र अपने में सब दृष्टि से पूर्ण है। लेखक की दृष्टि पैनी, सहानुभूति से सराबोर और उसमें पर्याप्त तटस्थता भी है। यद्यपि ये चरित्र एक भक्त की लेखनी से निकले हैं पर वह भक्त विवेकहीन नही है। इनमें कहानी का रस, जीवन का सत्य और चित्र का आकर्षण है।

ये आराध्य केवल चतुर्वेदीजी के हों, सो बात नही है। भारत के सभी रहने वाले उनसे बहुत-कुछ सीख सकते हैं। इस दृष्टि से भी इनका बडा महत्त्व है। एक-विश्व के निर्माण की जो पुकार आज मची है उसकी ओर यह पुस्तक एक ठोस कदम है। इसकी जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है।

'जैन-जागरण के अग्रदूत' में जैन-समाज के महापुरुषों और साध्वियो के चरित्र है। वे चरित्र ऐसे पावन है कि सम्पादक के शब्दों में–"कौमे जाग उठती है अक्सर इन्ही अफसानो से"। सचमुच ये चरित्र किसी जाति विशेष के नही, बल्कि मनुष्य-मात्र के लिए उपादेय है। यह बात

नहीं कि उनके जीवन में कुछ त्याज्य नहीं है। पुस्तक में वे बातें भी हैं, पर क्या वे भी हमें यह नहीं बताती कि कमियों के बावजूद ये व्यक्ति किस तरह इतने ऊंचे उठ सके हैं।

सम्पादक ने निस्सन्देह परिश्रम किया है और हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध लेखकों के संस्मरण और रेखा-चित्र दिये हैं। उनमें स्वयं गोयलीयजी, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, महात्मा भगवानदीन, श्री गुलाब राय तथा श्री जैनेन्द्रकुमार प्रमुख हैं।

ये श्रद्धा के फूल हैं। श्रद्धा यदि विवेक के साथ आती है तो वह जीवन को उठाती है। यह पुस्तक इसी दृष्टि से पठनीय है। सम्पादक को हम बधाई देते हैं। उन्होंने हमें अनेक सुन्दर रत्न दिये हैं।

छपाई, सफाई, गैटअप सब श्लाघ्य हैं।

हमारे सहयोगी

भारत सरकार से बच्चों के मनोरंजन के लिये प्रकाशित होने वाली पत्रिका **'बाल भारती'** ने अपना जून अंक 'कहानी अंक' के रूप में प्रकाशित किया है। उसमें सुयोग्य सम्पादकों ने विभिन्न देशों की लगभग १३-१४ कहानियां संग्रहीत की हैं। वे कहानियां सर्बिया, रूस, ईरान, फ्रांस, इंग्लैंड, तिब्बत, चीन और भारत से सम्बन्ध रखती हैं। वे सभी इतनी रोचक और शिक्षाप्रद हैं कि पढ़ कर बड़ों का मन भी खुशी से फूल कर कुप्पा हो जाता है। यूं तो कहानियां सब अनूदित हैं, पर चीन देश की छोटी-सी रोचक कहानी एक चीनी लड़की ने हिन्दी में ही लिखकर भेजी है। कहानी बड़ी दिलचस्प है। अंक को देख कर लगता है कि इस प्रकार का आदान-प्रदान और दूसरे देशों के साहित्य का परिचय कितना लाभदायक हो सकता है। ये कहानियां प्रत्येक देश की विशेषताओं को और संसार में जो मूलभूत एकता है, दोनों को स्पष्ट करती हैं। हम सम्पादकों को ऐसा सुन्दर अंक निकालने के लिये बधाई देते हैं। **'आजकल'** भी भारत सरकार का पत्र है। समय-समय पर वह अच्छा साहित्य देता रहता है। उसका जून अंक 'आदिवासी अंक' है। आदिवासी कभी बड़े उपेक्षित समझे जाते थे, पर आज के जनतंत्र के युग में सब बराबर हैं। आदिवासियों की सभ्यता और संस्कृति की ओर अब सबका ध्यान जाने लगा है। इस अंक में उसी प्रकार का अध्ययन है। वह पूर्ण तो हो ही नहीं सकता। छोटे-से अंक में केवल समस्या का परिचय ही दिया जा सकता है, पर जो कुछ दिया गया है वह अधिकारपूर्वक अधिकारी व्यक्तियों द्वारा दिया गया है। यद्यपि सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक जोर है तो भी दूसरे पक्षों का परिचय भी कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है। लेखकों में वेरियर एलविन, जयपाल सिंह, देवीलाल सामर, डी. एन. मजूमदार, डी. रंगैया, वी० राघवैया, श्यामचरण दुबे, लोकनाथ मराली, वी. एस. 'गुहा' आदि कुछ नाम हैं। इनका तथा दूसरे लेखकों का आदिवासियों से सीधा सम्पर्क है। कुछ चित्र तो बहुत सुन्दर हैं। विश्वदर्शन विभाग में भी विदेशों के आदिवासियों पर तीन सुन्दर लेख हैं। यह अंक आदिवासियों की समस्याओं का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिये संदर्भ ग्रंथ की तरह उपयोगी है।

अंक मंगाने का पता "प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली, है। —'सुशील'

(पृष्ठ ३४९ का शेष)

'मण्डल' के इस शुभ आयोजन में उदारतापूर्वक सहायता देने के लिए हम उक्त सब महानुभावों और संस्थाओं के हृदय से आभारी हैं। हम उन सज्जनों के भी कृतज्ञ हैं, जो हमें सदस्य बनाने में अपना सहयोग दे रहे हैं। कलकत्ते में श्री भागीरथजी कानोड़िया, श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्रीश्यामसुन्दरजी जयपुरिया, श्रीरामकुमारजी भुवालका, श्रीआनंदीलालजी गोयनका, श्रीराधाकृष्णजी नेवटिया आदि-आदि, दिल्ली में श्री जयदयालजी डालमिया, श्रीमूलचन्दजी बागड़िया, श्रीमदनगोपाल सोढानी, श्री हंसराज गुप्ता तथा बांकुड़ा में श्रीमोहनलालजी गोयनका आदि ने इसे अपना ही काम मान कर इसमें मदद की है और कर रहे हैं। इन सबका आभार हम किन शब्दों में मानें? इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी बहुत से बंधु सहायता दे रहे हैं। इन सबके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही सदस्य इतनी तेजी से बनते जा रहे हैं। हमने निश्चय किया है कि जिन-जिन सज्जनों के रुपये प्राप्त होते जायंगे, उनके नाम हम 'जीवन-साहित्य' में क्रमशः प्रकाशित करते जायंगे।

हमें विश्वास है कि सत्साहित्य के संवर्द्धन और प्रसार के इस आयोजन में प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी, विशेषकर साहित्य-प्रेमी का सहयोग मिलेगा और अल्पकाल में ही पांच लाख रुपये एकत्र हो जायंगे, जिसका कि हमने संकल्प किया है।

—मंत्री

हमारी राय

"ऐसा न करें ?"

आजादी का पर्व

आज से पाच वर्ष पूर्व १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ था और यह स्वाभाविक ही है कि एक महान राष्ट्रीय पर्व के रूप में उस दिन देश में खुशिया मनाई जाय । और साला की भाति इस साल राजधानी में भी समारोह किये गए । लाल किले के मैदान में लोग बहुत बडी सख्या में इकट्ठे हुए और उनकी उपस्थिति में किले के सिंह द्वार पर राष्ट्रध्वज फहराते हुए प्रधान मन्त्री पडित नेहरू ने गत वर्ष की घटनाओ का सिंहावलोकन किया तथा देशवासियों से अपील की कि वे सचाई एव ईमानदारी के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करें। हिंसा, साम्प्रदायिकता और चोर-बाजारी की तीव्र निन्दा करते हुए उन्होंने कहा कि इन बुराइयो से कोई भी देश ऊचा नही उठ सकता । उन्होने उदार दृष्टि रखने और राष्ट्र-हित को सर्वोपरि स्थान देने पर जोर दिया ।

इसी अवसर के लिए राष्ट्रपति डा राजेंद्रप्रसादजी ने भी देश के नाम एक सदेश देते हुए कहा, "यह समय सतोष से बैठ जाने का नही है । (देश का) ढाचा तो बन गया है, पर अभी उसमें मास-पेशिया बैठानी है और यह कार्य तो तभी पूरा होगा जब हम गरीबी, रोग और अज्ञान की समस्या को सुलझा चुकेंगे ।"

आगे चल कर उन्होने कहा, "चाहे हमारे हाथ क्यो न कापें और हमारे पैर क्यो न लडखडावें, हमारा धर्म है कि हम दृष्टि को धुधली और सही रास्ते पर चलने की अपनी लगन को कमजोर न होने दें। आज जो वर्ष प्रारम्भ हो रहा है उसके लिए हमें यही व्रत लेना चाहिए । हमें चरित्र की आवश्यकता है —ऐसे चरित्र की जो आसानी से उन आलोभनो से पराजित न होगा, जो हमें घेरे हुए है, जो त्याग करने के लिये तत्पर रहेगा, जो अपार कठिनाइयो के बाद भी सचाई पर दृढ रहेगा, जो हमें सामर्थ्य प्रदान करे कि हम दूसरे लोगो के दिल में बैठ सकें और उनके दर्द को अपना बना सकें, जो सदा लेने के बजाय देने को तत्पर रहेगा । ऐसे चरित्र वाले व्यक्तियो का राष्ट्र स्वयमेव सुखी और सम्पन्न होगा और दूसरो को भी सुखी और सम्पन्न करेगा ।"

राष्ट्र के इन दोनो कर्णधारो ने जिन बातो पर जोर दिया है, वे बडे महत्व की है और जबतक हम उन पर ध्यान नही देंगे, इस पर्व को सच्चे अर्थों में नहीं मना सकेंगे । आजादी प्राप्त हुए पाच वर्ष हो गये लेकिन अभी तक दर्जनो समस्याए हमारे सामने ज्यो-की-त्यो चट्टान की तरह खडी है और राष्ट्रीय नेताओ की चिन्ता, प्रयत्न तथा बडी-बडी योजनाओ के बावजूद राष्ट्र ऊपर उठता हुआ दिखाई नही देता । गरीबी, भुखमरी, निरक्षरता, अस्वास्थ्य तथा अन्य अनेक व्याधियो से देश आज भी पीडित होकर कराह रहा है । यदि हम आजादी के उछाह का सचमुच अनुभव करना चाहते है तो हमें चाहिए कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करे और उन बुराइयो को अपने पास भी न फटकने दे, जिनसे समष्टि के हित पर आच आती हो । आज क्या व्यक्ति और क्या समाज, हर कोई अपने क्षुद्र स्वार्थों के दलदल में फसा है और उसे इस बात की चिन्ता नही कि उसकी कृति से देश ऊपर उठता है, या नीचे गिरता है ।

हम आशा करेंगे कि पिछले पाच वर्ष के अनुभवो के आधार पर सरकार और जनता आज की खुल-खेलती महाव्याधियो के प्रति कुछ कडा रुख अख्तियार करे । आजादी के लिए जाने कितना खून-पसीना एक किया गया है, जाने कितनी आहुतिया दी गई है । तब कही यह सुदिन देखने को मिला है । यदि आगे हम इसी प्रकार अपने स्वार्थ को देखते व उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करते रहे तो वह हमारे और देश की आजादी के लिए बडे खतरे की बात होगी । आजादी का यह पर्व हमें यह याद दिलाने के लिए होना चाहिए कि देश का

हित-अहित अब हमारे ही हाथ में है और अगर हमने अपने तुच्छ स्वार्थों को अहमियत देकर देश के बड़े हित की अवहेलना की तो हमारा और देश का ईश्वर ही मालिक है।

'भारत-स्वच्छता' आन्दोलन

३ जुलाई से आचार्य विनोबा काशी में निवास कर रहे हैं। वे भूमि के बारे में तो सोचते ही हैं, साथ ही देश को लाभ पहुंचाने वाली छोटी-बड़ी अन्य बातों का भी चिन्तन करते रहते हैं। काशी में गंगाजी के घाटों की गंदगी को देखकर इधर उन्होंने एक नये आन्दोलन का सूत्रपात किया है और वह आन्दोलन है 'भारत-स्वच्छता'—देश की सफाई का। उनका कहना है कि गंदगी से हमारा या समाज का स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता, इसलिए अन्दरूनी स्वच्छता के साथ-साथ बाहरी स्वच्छता भी होनी चाहिए। विनोबाजी के इस आन्दोलन का हम हार्दिक समर्थन करते हैं। आज की स्थिति यह है कि अव्वल तो हम सफ़ाई का पूरा-पूरा ध्यान रखते नहीं और यदि रखते भी हैं तो उसमें पड़ौस की सफाई की उपेक्षा कर जाते हैं। अपने घर के कूड़े-करकट से पड़ौस को गन्दा कर डाल देते हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि जबतक पड़ौस में गन्दगी है, हमारी सफाई बेमानी है और जबतक पड़ौस में बीमारी है, हमारा अपना स्वास्थ्य निरन्तर खतरे में है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि जहां हम अपनी सफाई और स्वास्थ्य का ध्यान रक्खें वहां यह भी न भूलें कि उसके लिए हमारे पड़ौसी का भी साफ और स्वस्थ रहना आवश्यक है। नागरिकता का तकाजा है कि किसी भी निजी या सार्वजनिक स्थान को गंदा करना भयंकर अपराध माना जाना चाहिए। आज हम जहां चाहें थूक देते हैं, जहां चाहें छिलके पटक देते हैं और इस प्रकार जाने या अनजाने, अपने, समाज और राष्ट्र के स्वास्थ्य को खतरे में डालते हैं। स्वतन्त्र भारत के नागरिकों को यह शोभा नहीं देता। हम चाहेंगे कि यह आन्दोलन जोरों से चले, जिससे हमारे देश का प्रत्येक नागरिक इस दिशा में अपने कर्त्तव्य को समझे और उसके पालन में अधिक जागरूक और सचेष्ट रहे।

दफ्तरों में हिन्दी की उपेक्षा

हमारे भारतीय संविधान में हिंदी को राष्ट्र-भाषा और राज्यभाषा स्वीकार किया गया है; लेकिन राजकाज की सुविधा की दृष्टि से काम चलाने के लिए पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी के प्रयोग की छूट रखी गई है। इसका अर्थ यह है कि हिंदी पन्द्रह वर्ष में अंग्रेजी का स्थान ग्रहण कर लेगी। भारत को आजाद हुए पांच वर्ष हो गये; लेकिन उस दिशा में हम लोग अभी तक विशेष प्रगति नहीं कर पाये। दुःख की बात तो यह है कि हम उस बारे में विशेष चिंतित भी नहीं दिखाई देते हैं। होना तो यह चाहिए था कि जिस दिन हमें आजादी मिली थी उसी दिन हम यह घोषणा कर देते कि आगे सारा काम-काज हमारी अपनी भाषा में होगा और जैसे भी होता, अपना काम हिंदी में चलाते, लेकिन लाचारी के कारण अंग्रेजी को कुछ समय के लिए रखना जरूरी ही था तो उस लाचारी को जल्दी-से-जल्दी दूर करने के लिए संगठित प्रयत्न तत्काल प्रारम्भ हो जाना चाहिए था। हमें यह कहते लज्जा आती है कि कुछ स्थानों को छोड़ कर शेष सब जगह अंग्रेजी को यथापूर्व महत्त्व दिया जा रहा है, उसीमें सारा काम-काज चलाया जा रहा है और ऐसा कोई प्रयत्न होता नहीं दीख पड़ रहा है जिससे पन्द्रह वर्ष में हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले ले। हमें यह भी पता चला है कि अनेक स्थानों पर हठपूर्वक ऐसी कोशिश की जा रही है कि अंग्रेजी का स्थान अक्षुण्ण बना रहे। हम अंग्रेजी के विरोधी नहीं हैं और उसमें कितना अमूल्य साहित्य उपलब्ध है; यह हम जानते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि हम विदेशी भाषा के प्रेम में अपनी राष्ट्र-भारती को उपेक्षा की दृष्टि से देखें। जो लोग हिंदी की प्रगति के मार्ग में अज्ञानतावश रोड़े अटकाते हैं वे देश के प्रति बड़ा भारी विश्वासघात करते हैं। हिंदी समूचे देश की भाषा है और अत्यन्त आत्मीयता के साथ उसकी उन्नति के लिए प्रत्येक देशवासी को प्रयत्नशील होना चाहिए।

यदि सरकारी दफ्तरों में हिंदी के प्रति ऐसी ही उदासीनता रही तो पन्द्रह वर्ष में तो क्या, पचास वर्ष में भी हम अंग्रेजी को नहीं हटा सकेंगे।

हम केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों से अनुरोध करेंगे कि वे इस मामले में ढिलाई से काम न लें और यथासंभव शीघ्र ही अपने दफ्तरों में राजकाज को हिंदी में चलाने की व्यवस्था करें। जनता की ओर से भी इसके लिए जोरदार शब्दों में मांग की जानी चाहिए।

—य०

'मण्डल' की ओर से

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंक में हमने सहायक-सदस्यों की एक योजना प्रकाशित की थी, जिसे 'मण्डल' ने अच्छे साहित्य के सृजन और प्रसार की दृष्टि से आवश्यक साधन जुटाने के लिए तैयार किया है। उस योजना के अनुसार एक हजार रुपये लेकर सहायक-सदस्य बनाए जाते हैं। यह रकम पांच वर्ष तक मण्डल के पास रहेगी। बाद में २००) -२००) साल के हिसाब से पांच वर्षों में लौटा दी जायगी। इससे रुपया देने वालों को यह लाभ होगा कि उन्हें 'मण्डल' से प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों का एक सेट, जो लगभग २४०) का है, तत्काल भेंट में मिल जायगा और आगे दस वर्ष तक, जबतक मूल रकम चुका नहीं दी जायगी, मण्डल से निकलने वाली नई पुस्तकें भेंट-स्वरूप मिलती रहेंगी। इस प्रकार रुपया-का-रुपया वापस मिल जायगा, साथ ही लगभग ७००) की चुनी हुई सुन्दर पुस्तकें भी। उधर 'मण्डल' को भी अधिक साहित्य निकालने के लिए पूंजी मिल जाती है। ऐसी ही एक योजना ५००) की भी बनाई गई है, लेकिन वह देहातों के लिए है।

हर्ष की बात है कि इस योजना का प्रत्येक क्षेत्र में हार्दिक स्वागत हुआ है। हम लोगों ने शुरूआत कलकत्ते से की है और कुछ ही दिनों में वहां तथा अन्य स्थानों में एक-एक हजार रुपये देकर अनेक व्यक्ति व संस्थाएं सदस्य बन गई हैं। उनकी नामावलि की पहली किस्त इस प्रकार है

१. शान्ति क्लब (डालमियापुरम्)
२. रजा शूगर कम्पनी लि० (रामपुर)
३ श्री माधवप्रसाद बिड़ला (कलकत्ता)
४. डालमिया रिक्रियेशन क्लब, (नई दिल्ली)
५ सेठ लालचन्द सेठी, (उज्जैन)
६ उड़ीसा सीमेन्ट लि० (राजगंगपुर)
७ मारवाड़ी बालिका विद्यालय (कलकत्ता)
८ श्री रामलाल राजगढ़िया ”
९ श्री गोपीकृष्ण कानोड़िया, ”
१०. श्री भगवतीप्रसाद खेतान (कलकत्ता)
११ श्री रामकुमार अग्रवाल ”
१२ श्री रामस्वरूप मामचन्द ”
१३. श्री मक्खनलाल बागड़ोदिया ”
१४. विक्रम विद्यालय (रांची)
१५. श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला (कलकत्ता)
१६. श्री आनन्दीलाल गोयनका ”
१७ स्वदेशी काटन मिल्स क० लि० (जुही, कानपुर)
१८. श्री मदनगोपाल रूंगटा (कलकत्ता)
१९ श्रीमती पद्मादेवी कानोड़िया ”
२०. श्री रामेश्वर टाटिया ”
२१. श्री धर्मचन्द सरावगी ”
२२. श्रीमती अनुसूया कानोड़िया ”
२३ श्री रामकुमार भुवालका ”
२४ श्री नरसिंहदास अग्रवाला ”
२५. श्री जगन्नाथ बेरीवाल ”
२६ श्री मातादीन खेतान ”
२७. बिरला क्लब ”
२८. श्री ब्रजमोहन बागड़ी ”
२९ श्री दीनानाथ कानोड़िया ”
३०. श्री पुरुषोत्तम केजड़ीवाल ”
३१. श्री काशीराम बनारसीलाल ”
३२. श्रीमती गायत्रीदेवी गोयनका (बांकुड़ा)
३३. श्री सत्यनारायण बाजोरिया ”
३४. श्री चिरंजीलाल बाजोरिया (कलकत्ता)
३५ श्री आत्माराम कानोड़िया ”
३६ ओरियन्ट पेपर मिल्स क्लब (ब्रजराजनगर)
३७ आजाद भवन पुस्तकालय (फतेहपुर-शेखावाटी)
३८. श्री महावीरप्रसाद केडिया (कलकत्ता)
३९ श्री रामप्रसाद पोद्दार (दिल्ली)
४० श्री रामनिवास अग्रवाल ”
४१ श्री गिरिधरदास कोठारी (कलकत्ता)
४२. सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय ”
४३ हनुमान पुस्तकालय (हावड़ा)

(शेष पृष्ठ ३४६ पर)

Reg. No. D. 228.

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

अक्तूबर
१९५२
जीवन साहित्य
अहिंसक नवरचना का मासिक
स्मृति-अंक
आत्मज्ञानी किशोरलालभाई
पुण्य-स्मरण
महावीर की जीवन-झांकी
राष्ट्रनिर्माता ऋषि दयानन्द
स्वामी रामतीर्थ का राष्ट्र धर्म
अखण्डनिष्ठ गांधी
सरदार पटेल
प्रेमचन्द
सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय : यशपाल जैन
सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन
वार्षिक
४)
एक प्रति
।=)
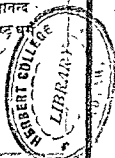
लेख-सूची

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. 'जीवन-साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है । १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें । यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें ।

२. पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य दें । उससे कार्रवाई करने में सुगमता और शीघ्रता हो जाती है ।

३. बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चंदा किसी नाम से भेजते हैं । इससे गड़बड़ी हो जाती है । इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए ।

४. पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल ही भेजी जायं और कागज के एक ही ओर साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखी जायं ।

५. अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए ।

६. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जायं ।

७. पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं । बीच में रुपया भेजने वालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जायं या आगे से ग्राहक बनाया जाय ।

—व्यवस्थापक

नोट—ग्राहकों से निवेदन है कि यदि उनके पते में कोई त्रुटि हो तो उसकी सूचना तुरन्त हमें देकर ठीक करा लें, जिससे पत्र उन्हें समय पर मिलता रहे ।

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व
लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पचायतों के लिए स्वीकृत

अक्तूबर १९५२] [वर्ष १३, अंक १०

विनोबा

सिद्धांत बनाम व्यक्ति

"गाधीजी के कोई सिद्धात होते, तो मृत्यु के वाद वे अपने साथ उन्हें ले गए होते। लेकिन वैसा नही है, बल्कि गाधीजी द्वारा प्रगट हुए हैं। उन्हें जब मैं ग्रहण करता हू तब वे मेरे ही बन जाते हैं। उन्हें लोगो के सामने रखते समय गाधीजी के नाम से रखने की जरूरत नही है। स्वतत्र रूप से लोगो को विचार समझा सकते हैं। वे लोगो की बुद्धि को जच जाय, उनके बन जाय तभी उनका अमल वे करें ऐसा मैं कहूगा। इस तरह काम करेंगे तो हिन्दुस्तान का कायापलट हो जायगा। मत्र के अक्षर कागज पर लिखे होते हैं। उनको समझकर अपने जीवन में उनके अनुसार जो परिवर्तन करता है, उसके वे काम में आते हैं। नही तो एक कीडा उन मत्रो को कागज सहित पूरा खा जाता है।

भूमि-यज्ञ जयंती

कि० घ० मशरूवाला

मैं भूमि के हरेक स्वामीसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हृदय की गहराई में उतर कर विचार करे कि हवा और पानी की तरह यह पृथ्वी भी किसी की खानगी मिलकियत नहीं हो सकती। यह एक ऐसा सत्य है, जिससे कोई तत्त्वतः इन्कार नहीं कर सकता। पृथ्वी पर सबका अधिकार है, और सबके हित के लिए उसका सदुपयोग किया जाना चाहिए। लेकिन इस सिद्धान्तरूप बात का मानव-जाति द्वारा अनादर किया गया है और भगवान की इस उदार देन पर चन्द लोगों का कब्जा रहता आया है और असंख्य लोग उसे प्राप्त करने के लिए लालायित रहे हैं। नतीजा यह आया है कि यह पृथ्वी हमेशा रक्त-पात और लड़ाईयों से पीड़ित रही है। न कभी उसे शान्ति मिली है, न उसपर बसनेवाले जीवों को कभी आराम मिला है।

भूमि के लिए बेटा बाप का खून करता है, भाई भाई का कत्ल करता है। पांच पांडव पांच गांव लेकर संतुष्ट होने के लिए तैयार थे, लेकिन कौरवों के लोभ के कारण यह नहीं हो सका। परिणामस्वरूप ऐसा महाभारत मचा कि जिसमें सारे भारत का वैसा ही नाश हो गया, जैसा पिछले दो जागतिक युद्धों ने यूरोप का कर डाला है। हम इतिहास की बड़ी-बड़ी कहानियां पढ़ते हैं, प्राचीन शहरों को खोद निकालते हैं, परंतु सबका निचोड़ क्या है? पृथ्वी पर स्वामित्व जमाने की होड़ में बड़े-बड़े राज्य मिट गये हैं, सभ्यतायें नष्ट हो गई हैं।

जब तक पृथ्वी पर अपना स्वामित्व रखने की भावना मौजूद है, तब तक दुनिया में युद्ध का अन्त आना, शांति और मेलजोल कायम रहना और सर्वोदय सिद्ध होना असंभव है। यह सब भूमि गोपाल की ही है, यह केवल एक काव्योक्ति नहीं है, निश्चित सत्य है। इस सत्य का अस्वीकार करने के प्रयत्न ने आजतक मनुष्य-जाति को कभी सुखी नहीं होने दिया है। और जबतक यह व्यर्थ प्रयत्न जारी है, तबतक वह कभी सुखी नहीं होगा।

हम जानते ही हैं कि दक्षिण अफ्रीका में हमारा सत्याग्रह चल रहा है। जिसकी तह में उतरकर देखा जाय तो आखिर वह क्या है? मानव-जाति के एक वंश को वहां की सारी भूमि हथियाना है और दूसरी मानव-जातियों को वहां नहीं बसने देना है। वहां की मूल जातियों-को भी उखाड़ देना है। वह खंड इतना बड़ा है और इतना कम बसा हुआ है कि भारत के लाखों लोग भी वहां सुखपूर्वक बसाये जासकते हैं। लेकिन वहां के बलवान गोरे लोगों को यह बात स्वीकार नहीं। इसलिए उन्हें निकालने के लिए तरह-तरह की कोशिशें की जा रही हैं। इसीका यह संघर्ष है।

रशिया और चीन में खून की नदियां बहाकर बड़ी क्रान्तियां की गईं। आखिर क्यों? करोड़ों लोग भूमि-हीन, दरिद्र और बेकार; चंद लोग लाखों एकड़ भूमि के स्वामी। ब्रह्मदेश, मलाया आदि में जो बड़े बलवे होते हैं, उनके पीछे भी यही कारण है। हमारे देशमें तेलंगाना के उपद्रवों के मूल में भी यही बात थी। परंतु परमात्मा की कृपा और पूज्य गांधीजी के पुण्य प्रताप से विनोबाजी को वहां जाते ही भूमि-दान-यज्ञ की प्रेरणा हुई; और यह बात चल पड़ी और अच्छी तरह आगे बढ़ी। यात्रा में सारे रास्ते के भू-स्वामियों ने यज्ञ का अच्छा सत्कार किया और उदारता से दान दिया। फिर भी यह एक फूल की पत्ती जितना ही हुआ है। अभी बहुत कुछ होना शेष है।

एक दिन जरूर ऐसा आयगा, और मैं आशा करता हूं कि वह दिन जल्दी ही आयगा, जबकि सारी दुनिया की सब भूमि दुनिया के सभी लोगों की सामान्य संपत्ति मानी जायगी। और जो कोई मनुष्य जिस किसी देश में उस पर श्रम करना चाहेगा, उसे करने दिया जायगा। उसके मार्ग में जाति, राष्ट्र आदि किसी कारण से बाधा न आवेगी। जिससे सारी पृथ्वी पर मनुष्य-जातिका समान रूप में फैल जाना संभव होगा।

चलें, इसकी शुरूआत अपने तत्त्वज्ञान और संस्कृति के अनुरूप हम अपनी पद्धति से ही करें। यानी तप, यज्ञ

और दान के जरिये, अर्थात् स्वेच्छा से, अपना कर्तव्य समझकर। हजारो वर्षों का भूमिहीनो का तप तो इकट्ठा हुआ ही है। अगर अब वे बेचैन हो गये हैं और उनका धीरज चुक गया है, तो उन्हें दोष नही दिया जा सकता। क्योंकि उसमें वे तपे जरूर हैं, परन्तु नि सहाय भाव से तपे है। वह तपस्या अब उनकी जगह कार्यकर्त्ताओ को इस *यज्ञ के लिए बुद्धिपूर्वक तपकर चालू रखना चाहिए।* दीर्घ और नित्य तपश्चर्या के साथ यज्ञ का प्रारभ तो विनोबा और उनके द्वारा नियुक्त की हुई समितिया ने शुरू कर ही दिया है। अब तीसरा कार्य भू-स्वामियो को विपुल मात्रा में अपन दान देकर उसे पूर्ण करने का है।

'करेंगे या मरेंग' के निश्चय से विनोबा अपनी सारी शक्ति इस पर लगा रहे हैं। वे इतने अशक्त और क्षीण हो गये हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपने पैरोंके स्नायुओ के बल पर घूम रह हैं। परमात्मा ही उन्हें—"चाल्किसी हाती धरोनिया"—आधार देकर चला रहा हैं। आइये, हम अब उनके लिए प्रार्थना करे, कार्य करे, और उनका भिक्षापात्र उदारता मे भर दें। *हमारे प्राचीन गुरुओ को आदेश है*

"तुम सब एक होकर चलो, एक होकर बोलो, एक होकर सोचो। तुम्हारा ध्यय समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारा चिन्तन समान हो।" इसका हम पालन करे।

आत्मज्ञानी किशोरलालभाई

विनोबा

इन दिनो किशोरलाल भाई को बहुत तकलीफ रही। वैसे तो कोई पचीस साल मे उनकी बीमारी चल रही थी। लेकिन इधर *गत दो-तीन मास में उनकी तकलीफ* बढ गई और उन्हाने हरिजन के काम से मुक्ति चाही थी। लोग उन्ह मुक्त करने की सोच भी रहे थे। लेकिन परमेश्वर ने उन्ह छुडाया। मैं तो परमेश्वर का उपकार मानता हू। मेरे साथ उनका पत्रव्यवहार इन दिना मामूली तौरपर चल रहा था। गत मास से एक दो पत्रो में वे *अन्तकाल की क्या स्थिति हो, ब्रह्मनिष्ठ पुरुष की क्या व्याख्या हो* आदि चर्चा करते रहे। अपने अतिम पत्र में उन्होंने लिखा था कि आजकल मेरे विचार इसी प्रकार चल रहे हैं। डाक्टर कहते है कि विश्राति ले लो। निकट भविष्य में मृत्यु के लक्षण नही है। परन्तु किशोरलाल भाई ने अपने मन की उत्तम तैयारी कर ली थी, यह पत्र-व्यवहार से स्पष्ट होता है। *वे गफलत में नहीं बल्कि आखिर तक कर्तव्य* करते हुए गए।

मुझे सज्जनों और सत्पुरुषो की सगति का बहुत भाग्य मिला है। लेकिन मैंने ऐसा दूसरा कोई मनुष्य नहीं देखा जिसे रोज इतनी तीव्र वेदना सहनी पडे। उनके दमे के दौरे से लोग घबरा जाते, पर वे रात-रात रोग से झगडते रहने और दौरा गया कि हसते दिखाई देते। एक अजीब दृश्य दीख पडता था। शरीर को वे अपने से पृथक् जानते थे। *सार्वजनिक सेवक के नाते मौका आने पर कइयो* पर वे टीका भी कर लेते थे, सम्पादक के नाते। लेकिन अगर कोई गल्ती महसूस हुई तो फौरन क्षमा माग लेते थे। पूर्ण निर्वैर पुरुष का नमूना अगर मैंने कही देखा तो किशोरलालभाई में। स्पष्टवादी और स्वतन्त्र विचार के थे वे। बापू के साथ रहते हुए अगर कुछ मतभेद हुआ तो वे प्रकट भी कर देते थे। *जो उनको लगता स्पष्ट बता* देते थे, सकोच नही होता था। परन्तु मन में सबके लिए विशुद्ध और निरतिशय स्नेह था।

ज्ञानी पुरुष के आदर्श में माना गया है कि सत्वगुण से भी परे ज्ञानी पुरुष हो तो वह आरोग्यवान होता है। बापू ने भी यह कहा था, और मुझे भी ऐसा लगता था। परन्तु *किशोरलालभाई की ही मिसाल देखी जाय तो* यह मानना पडेगा कि ऐसे भी ज्ञानी पुरुष रहने है, जो शरीर को अपने से भिन्न, कपडे के समान अलग पहचानते थे। परिपूर्ण ज्ञानी होने का किसपर आरोपण करें? उनका वैसा दावा भी नहीं था। वे तो परम नम्र थे, नम्रता का बडा भारी गुण उनमें था। फिर भी मेरे मनमें उनके

लिए जो भाव था, उस बारे में मैं सोचता हूं कि वह किस प्रकार का था तो कहना चाहिए कि एक आत्म-ज्ञानी पुरुष के लिए जैसा चाहिए वैसे वे थे।

मैंने अभी जो मंत्र कहा कि, 'तस्मात् आत्मज्ञं हि अर्चयेत् भूतिकामः' इस प्रकार जैसे आत्मज्ञानी की उपासना करे वैसे ही वे थे। उनको शरीर के रोग का दुःख ही नहीं हुआ। अब परमेश्वर उनको भी उठा ले गया तो मैं यह नहीं जानता कि और कोई मनुष्य ऐसा हममें है, बापू के साथियों में, जो सबको सम्हाल सके। अधिक-से-अधिक वे ही सम्हाल सकते थे, परन्तु मुझे आशा है कि उनके दिल में जो स्नेह और सौहार्द था उसका हिस्सा हमको मिल जाए।

वहां मेरे जो व्याख्यान आदि होते थे, उनका सारांश तैयार करके दामोदर उनके पास भेज देता था। मैं उसे देखता न था और कह दिया था कि किशोरलाल भाई किसी भी वाक्य में जो सुधार और बदल करना चाहें कर सकते हैं। विचार की दृष्टि से उतनी श्रद्धा मैं किसपर रख सकूंगा ध्यान में नहीं आ रहा है।

ईश्वर उन्हें ले गया यह तो अच्छा ही हुआ है। पर अब उनके पीछे हम जो रहे हैं, उनको किशोरलाल भाई का उदाहरण सामने रखकर निरन्तर भगवान् की सेवा में मग्न रहना चाहिए। बापू के पहले ही उनके सामने उनके दो भक्त महादेवभाई और जमनालालजी चले गए।

भूदान-यज्ञ के काम के साथ अधिक-से-अधिक कोई एकरूप हुआ तो वह किशोरलालभाई थे। उनके वर्धा में रहने पर भी उनकी हस्ती ही हमको यहां बल देती रही। वह बल मैंने नहीं खोया, वह तो मिलता ही रहेगा। मैंने किशोरलालभाई के बारे में गंगाकृष्ण को लिखा था कि वे कुछ नहीं कर सकते, फिर भी उतना करते हैं। गीता में अकर्म से कर्म की बात कही है। उसका उदाहरण किशोरलालभाई थे। बापू ने कर्म में अकर्म भाव का उदाहरण दिया, और इससे उलटे किशोरलाल भाई की बात दीखती थी। यद्यपि वे कर्म शून्य नहीं दीखते थे, लिखना-पढ़ना, चर्चा आदि करते थे, परन्तु वे हलचल, आन्दोलन नहीं कर पाते थे। वैसा उनका शरीर न था। उस अकर्म से भी महान् कर्म होता था। उनके रोग-जर्जर शरीर में महान् योगी का-सा स्वरूप विद्यमान था। अपने सिद्धान्तों पर वे अटल रहते। आस पास के तुच्छ सेवक के साथ भी हमदर्दी और एकता का अनुभव कैसे किया जा सकता है, यह जब मैं सोचता हूं तो वे मेरे सामने मूर्तिमन्त खड़े होते थे।

आज सुबह सारनाथ से मैं आ रहा था। रास्ते में एक प्रेत को ले जा रहे थे। बोलते थे 'राम-नाम सत्य है'। भगवान बुद्ध ने तो यह शिक्षा दी है कि भोजन के लिए स्मशान में भी बैठें। जब लाश जल रही हो और खाने का वक्त हो गया हो तो खाना चाहिए। भगवान् बुद्ध का तात्पर्य यह था कि मृत्यु को सामने रखकर जीवन जीयें। मृत्यु से डरें नहीं। वह याद दिलाती है कि हम धर्मशाला में पड़े हैं। उससे हममें आसक्ति न हो। ठीक ऐसा ही चरित्र, निरन्तर मृत्यु को सामने रखते हुए अत्यन्त निर्भर जीवन बिताते हुए, किशोरलालभाई का था।

किसी महापुरुष के साथ तुलना करने से किसी पर विशेष प्रकाश पड़ता है ऐसी बात नहीं, परन्तु उनमें बापू से भी बढ़कर कुछ खूबियां थीं। उनके सारे विचारों की गहरे तत्वज्ञान की बैठक थी, क्योंकि वे प्रत्यक्ष आन्दोलन में नहीं रहते थे, इसलिये साक्षी रूप देखते थे और कई बातों में उनका दर्शन अधिक सही निकलता था। उसका कुछ परिणाम यह भी होता था कि, साक्षात् कर्म-योग से सम्पर्क न होने के कारण जो घटनाएं होती थीं, उनका कुछ तीव्र परिणाम भी उनपर होता था। फलत: कभी-कभी दर्शन एकांगी हो जाता था। परन्तु इसमें आश्चर्य नहीं। बहुत-बहुत आश्चर्य तो यह है कि वे देह से किस प्रकार भिन्न रह सकते थे। किशोरलाल भाई के जैसे महान् साधक, मैं कहूंगा कि, ब्रह्मनिष्ठ ईश्वर परायण पुरुष का प्रयाण बहुत ही पावन प्रसंग के रूप में हमारे लिए है। आज हम सारनाथ हो आये, तो मेरे दिमाग में दिनभर बुद्ध का ही स्मरण रहा और अब शाम को यह खबर सुन रहे हैं। हमारे नजदीक जो लोग रहते हैं, उनकी योग्यता का भान हमें नहीं होता जितना कि दूर के व्यक्तियों का परन्तु जिस कोटि के बुद्ध भगवान थे उसी कोटि के किशोरलाल भाई थे। ९-९-'५२

कमलनयन बजाज

पुण्य-स्मरण

आज से लगभग २८-३० वर्ष पूर्व, जब मैं साबरमती आश्रम में एक बालक की तरह रहता था, पूज्य किशोरलालभाई और गोमती काकी को पहलेपहल देखा था, ऐसा मेरा खयाल है। किशोरलालभाई को हम हमेशा काका और गोमतीबहन को काकी कहते आये हैं। इतने वर्षों में उनके बराबर सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे मिलता रहा। पूज्य काकाजी (जमनालालजी), से वे साल-दो साल छोटे ही थे। फिर भी काकाजी का उनके प्रति आदर-भाव और प्रेम सदा बना रहा। इतना ही नही, अपितु दोनो परिवारो में घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था।

काका को जबसे मैने देखा, वे हमेशा दमे की बीमारी से पीडित रहे। उनका शरीर निरतर हड्डी का ढाचा-मात्र रहा। वे इतने कमजोर और नाजुक दीखते थे कि उनके बारे में यह डर सदा ही बना रहता था कि न जाने उनको कब कुछ हो जाय। फिर भी पिछले तीस वर्षों में उनकी शारीरिक स्थिति में कोई परिवर्तन हुआ हो, ऐसी बात नही। जब वे ३०-३५ वर्ष के होंगे तब पचास से कम नही लगते होगे और अंतिम समय में जब वह ६१ वर्ष के हो चुके थे, तब भी कोई विशेष वृद्ध नही मालूम होते थे।

आश्रम में उनके व्यक्तित्व का हमेशा ऊचा स्थान रहा। बचपन में बापू की गभीर बीमारी का कोई डर उत्पन्न होता तो काका की ओर ही लोगो की निगाह जाती। मानसिक दृष्टि से साबरमती के आश्रमवासियो ने उन दिनो बापू के बाद इन्हीको आश्रम का आधार-स्तभ सा मान रखा था। बापू साबरमती-आश्रम की आत्मा थे तो अन्य व्यक्तियो में, जो आश्रम के 'जीवन-प्राण' हो सके, काका का मुख्य स्थान था। इसके अलावा वह हमेशा हमारे परिवार के गुरुजनो में से एक रहे, जिसकी वजह से उनके प्रति हमारी अगाध श्रद्धा और पूज्य भावना निरतर बनी रही। काका यद्यपि बी ए, एल एल बी थे, तथापि उनकी सरलता, निर्मलता और सहज-सादगी के कारण शायद ही कभी किसी पर ऐसा असर पडा हो कि वह उनकी विद्वत्ता या चातुर्य के दबदबे में आ गया हो। उन्हे किसी प्रकार का दभ, आडम्बर बनावट या दिखावट छू तक नही गई थी। छोटे-बडे, गरीब-श्रीमत, मामूली-से-मामूली कार्यकर्ता, नेता अथवा किसी सरकारी मत्री आदि से काम पडता या वह मिलते तो उनका वही सरल-स्वाभाविक ढग रहता। उसमें किसी प्रकार का फर्क या भिन्नता दिखाई नही देती थी। मनुष्य-मात्र में कभी कोई भेदभाव उनसे हुआ हो, इसका उदाहरण ढूढने से भी मिलना मुश्किल है।

काका मूलत आध्यात्मिक पुरुष थे। विचारवान, बुद्धिमान, तेजस्वी और ज्ञानी। दमे के कारण शरीर उनका नाम-मात्र-सा ही रह गया था। दमे का दौरा उनके लिए अत्यन्त कष्टकर होता था। उसकी वेदना देखने वालो को भी असह्य होती थी। परन्तु काका उसको सहज शरीर-धर्म के अनुसार सहन किया करते थे। वे बिल्कुल निर्मोही और जनक की तरह विदेह थे। इतने पीड़ा-ग्रस्त होते हुए भी उन्होने कभी अपना विवेक क्षण-भर के लिए भी खोया हो, या उनकी समझ में अतिम समय तक कोई अतर पडा हो, ऐसा आभास-मात्र भी किसी को नही हुआ। जब वह लिखते थे तो ऐसा क्वचित ही हुआ हो, कि कोई आवश्यक बात उनसे छूट गई हो। एक निष्णात की भाति बारीक-से-बारीक तफसीलो में भी वह उतरते थे। इसी बीच यदि दमे का दौरा हो गया तो कलम और कागज को बाजू में रख देते थे। घटो वेदना-ग्रस्त रहने पर भी जैसे ही दौरा समाप्त हुआ कि पाच मिनट के भीतर वे उसी तरह पुन लिखते हुए दिखाई देते थे, मानो इस बीच कुछ हुआ ही न हो। जहा से जो चीज छूटी थी, वही से उसको आगे लेकर वे इस प्रकार जुट जाते थे कि आसपास वाले देखकर चकित रह जाते थे।

उनका आचार जितना ही शुद्ध था, उनके विचार

उतने ही गहरे और स्पष्ट थे। उनका जीवन उनके विचारों का उल्था था। उनके आचार और विचार में कहीं भी अंतर नहीं दिखाई देता था। उनका आहार जिस प्रकार अल्प और सात्विक होता था, उसी प्रकार एक योगी की भांति पूर्णरूपेण संयमी भी था।

शरीर से विशेष श्रम उनसे हो नहीं सकता था। एक जगह बैठकर अधिकतर लिखने का काम ही वह कर सकते थे। फिर भी उनका सारा जीवन कर्म करते ही गया, इसमें शंका नहीं।

गीता में स्थित-प्रज्ञ के लक्षण दिये हैं। बापू जीवन के हर क्षण जाग्रत रहते थे। उन्होंने विचार-पूर्वक, अति आग्रह और पूरे प्रयत्न से स्थितप्रज्ञ के उन लक्षणों को आत्मसात् किया था। बापू का पुरुषार्थ अद्वितीय था। उनकी शक्ति दैविक थी। उनका प्रयत्न जीवन के अंतिम क्षण तक चालू रहा। उनकी निष्ठा अडिग थी और वे सफल रहे। परन्तु बापू से भी बढ़कर स्थितप्रज्ञ के लक्षण किसी एक महापुरुष में मुझे सहज-स्वाभाविक दिखाई दिये हों तो वह विनोबा हैं। उनके साथ-साथ काका ही दूसरे महापुरुष थे, जिनका जीवन एक सच्चे निष्ठावान आत्मार्थी और तेजस्वी सत्यार्थी की तरह होते हुए भी एक अविचल स्थितप्रज्ञ की तरह था। अध्यात्म की भूख तीनों के ही जीवन में सतत और प्रखर रही। परन्तु जहां बापू के जीवन में उस भूख के शमन के लिए एक द्वन्द्व और संघर्ष दिखाई देता है, वहां इन दोनों महापुरुषों के जीवन में उसका शमन सहज सुलभ प्राप्य मालूम देता है, जैसे कि पूर्व जन्म की तपस्या और संस्कार की बदौलत ही उसे वे जन्म के साथ लाये हों।

९ सितम्बर, मंगलवार संध्या का समय। काका ने महाप्रयाण किया। कितना अलौकिक जीवन! तिथि के हिसाब से वही उनका जन्मदिन था और वही हम सबके लिए उनकी पुण्य तिथि हो गई! विधि की लीला में कितने ही विचित्र संयोग या मधुर मिलन होते हैं। पर ऐसा पुण्य कम ही लोगों को प्राप्त होता है कि उनके जन्मपर्व पर ही उनके जीवन की पूर्णाहुति हो! काका को वह दुर्लभ पुण्य प्राप्त हुआ।

मैं बनारस गया हुआ था विनोबा के पास। वहीं काका का दुःखद समाचार मिला। काशी विद्यापीठ में, जहां विनोबा ठहरे हुए थे, शोक का सागर उमड़ आया। विनोबा भी स्तब्ध रह गए। उनके कुछ समय मौन रहने से ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी महायुद्ध में जूझते किसी सेनापति को उसकी सेना के एक दिग्गज के गिरने का समाचार मिला हो और वह एक बढ़ती हुई जिम्मेदारी को अनुभव करते व एक दृढ़ संकल्प को ठानते अपनी शक्ति और शौर्य को चढ़ता हुआ देख रहा हो। ठीक उसी प्रकार विनोबा का व्यक्तित्व भी एक अचल निष्ठा के साथ किसी विशेष संकल्प को करता हुआ मौन रूप से व्यक्त हो रहा था! काका के बारे में जब-जब कोई बात छिड़ी, वह कुछ क्षण के लिए ध्यानमग्न-से हो जाते थे। अपने अंतिम पत्र में काका ने विनोबा के सामने कुछ विचार प्रकट किये थे, उनकी चर्चा करते हुए विनोबा ने कहा कि "अंत समय में किशोरलालभाई अध्यात्म-जगत् में डोल रहे थे और उनके मन की स्थिति परमावस्था को प्राप्त हो चुकी थी।" काका ने अपने इसी पत्र में अपने स्वास्थ्य के विषय में उल्लेख करते हुए विनोद में लिखा था कि डाक्टरों को सब कुछ देखते हुए नजदीक में मृत्यु के चिन्ह दिखाई नहीं दे रहे हैं। यह लिखने के दो-तीन दिन में ही उनका महाप्रयाण हो गया। विनोबा ने कहा, "वे हरिजनपत्रों की जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते थे। १ अक्तूबर से उन्हें मुक्त करने का आश्वासन भी दे दिया गया था। लेकिन परमात्मा को वह कहां मंजूर था! उसे तो उन्हें पहले ही मुक्ति दे देनी थी। ऐसी उन्नत अवस्था में वह उन्हें उठा ले गया। इसका शोक कैसा? मुझे तो इसकी खुशी होती है।" भूदानयज्ञ में जिस एकाग्रता से, तैलंगाना की यात्रा के बाद से, विनोबा लगे हुए हैं और नित्य प्रति पैदल चलकर हजारों मील का भ्रमण कर चुके हैं, उतनी ही एकाग्रता और विचार-शुद्धि के साथ काका भी भूदान-यज्ञ में संलग्न थे। इस यज्ञ के विषय में 'हरिजन' में जितना काका ने लिखा है, उसे देखकर भूदानयज्ञ के विषय में उनकी तन्मयता तथा विनोबा के साथ उनकी एकरसता साफ दिखाई देती है। जो काम विनोबा भ्रमण और प्रचार से कर रहे हैं, वह काम काका ने एक जगह स्थिर रहकर लेखन

द्वारा किया। विनोबा को उनका बहुत बडा सहारा था। अपने प्रवास मे भूदान का प्रतिपादन करते हुए विनोबा तो आगे-आगे चलते दिखाई देते थे, पर उनकी बातो का स्पष्टीकरण करनेवाले और उनके यज्ञ का औचित्य, सचाई, महत्व और अनिवार्यता बतानेवाले काका ही थे। कहते है कि एक बार देवताओ में झगडा हुआ और जब वे इस बात का निर्णय न कर सके कि उनमें सबसे बडा कौन है तो तय हुआ कि जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके लौट आवेगा, वही जीता माना जायगा। सारे देवता अपने-अपने वाहन लेकर पृथ्वी की परिक्रमा करने दौड पडे, लेकिन गणेशजी अपने ही चारो ओर तीन बार घूम गये और बोले कि पृथ्वी की तीन बार परिक्रमा करके मै सबसे पहले आ गया हू। विनोबा जहा सारे भारतवर्ष में पर्यटन करके उसकी परिक्रमा करते दिखाई देते है, वहा अपने स्थान से ही अडिग होकर काका ने भूदान यज्ञ में अपना पूरा योग दिया। जो परिक्रमा घूमकर कर सकता है, दूसरा उसीको मनपूर्वक अपनी एकाग्रता से, एक ही जगह रहकर कर सकता है। दोनो में इतना अतर होते हुए भी कितनी साम्यता रही है। भूदान-यज्ञ के लिए जहा विनोबा और काका दो थे, अब वहा अकेले विनोबा दिखाई दे रहे है। कौन कह सकता है कि काका शारीरिक बधन में रहकर जितना काम करते रहे, अब वे शरीर से मुक्त हो सारे वातावरण में व्याप्त होकर एक नही, हजारो और लाखो में प्रेरणा न फूक सकेंगे? भूदान का गोवर्द्धन कृष्ण की तरह जहा विनोबा की अगुली पर ही दिखाई देता है, वहा लाखो गोकुलवासियो की तरह भारतवासियो का भी अपनी-अपनी लकडी का सहारा जब उसमें लगने लग जायगा तब हमें इस यज्ञ के लिए एक नही, हजार नही, लाखो विनोबा दिखाई देंगे। वही इस यज्ञ का विश्वरूप दर्शन होगा। इस यज्ञ की पहली पवित्र आहुति स्वरूप ही काका गये है। उनकी शक्ति का इस सबमें सचार हो, यही भगवान् से हमारी प्रार्थना हो सकती है।

मुझे खयाल नही पडता कि काका को गोमती काकी के बिना कभी देखा हो। दोनो का जीवन सेवा-परायण था। पिछले ३० वर्षों में काकी ने जिस एक-निष्ठा से काका की सेवा की है, उसकी दूसरी मिसाल नही दी जा सकती है। काकी ने जिस प्रकार उनकी सेवा की और उनकी हर जरूरत को बारीक-से-बारीक निगाह से देखकर नियमितता से जागरूक रहकर पूरा किया, उससे उन्होंने काका की आयु में दस पाच वर्ष अवश्य बढाये होगे, इसमें कोई शक ही नही। हम लोगो के बीच में यदि काका अबतक रहे तो इसका मुख्य कारण उनका सयमी जीवन जितना था, उससे किसी प्रकार कम काकी की सेवा नही थी। काका अधिकतर बीमार रहते थे। यह स्वाभाविक ही था कि काकी उनकी सेवा मे लगी रहती। परन्तु जब काकी बीमार हो जाती तो काका भी उसी दक्षता के साथ उनकी सेवा करते दीख पडते थे। काकी भोजन बनाती, कपडे धोती, घर का छोटा-मोटा सब काम करती। साथ ही एक अच्छी नर्स की भाति उनकी सेवा-शुश्रूषा भी करतीं। जब कभी जरूरत पडती और काका के पास मदद देने को कोई व्यक्ति उपलब्ध न होता तो उनकी चिट्ठी-पत्री आदि का मत्री का काम भी वह सहज और अच्छी तरह से कर लेती। वे स्वय भी समझदार और बुद्धिमती हैं और कठिन से-कठिन अवसरो पर काका को भी अचूक सलाह देने में अडिग रहती? वे सच्चे माने में काका की जीवन-साथी थी, मित्र थी। काका यदि प्राण थे तो वह उनका शरीर-रूप हो गइ थी। सचमुच वे दो शरीर परन्तु एक प्राण-स्वरूप रहे। जब-जब काका को तीव्र दौरा होता था और मनमें आशकाए-कुशकाए उठने लगती थी तो मा (जानकी देवीजी) की भगवान् से यही प्रार्थना होती थी कि जब कभी तू इनको ले जाय, साथ-साथ ही ले जाना। दोनो का जीवन इतना एकरूप हो गया था कि एक के बिना दूसरे की कल्पना हो ही नही सकती थी।

काका के महाप्रयाण के बाद काकी को क्या लिखता! तार में सिर्फ प्रणाम भेजे। बाद में जब वर्धा में उनसे मिला तो उनकी धीरता का मुझपर एक अजीब प्रभाव पडा। उनके चेहरे पर करुणा थी। उस वेदना-पूर्ण व्याकुलता के वातावरण में उनका सारा शरीर

निश्चल, स्थिर-जैसा दिखाई दिया। अश्रुप्रवाह निरंतर चालू था। चेहरा फीका, मुद्रा गंभीर। जिस तरह पत्थर की मूर्ति के ऊपर पानी का प्रवाह निरंतर चालू हो, वह दृश्य कठोर-से-कठोर हृदय को भी हिला देने वाला था। उनकी वाणी वेदना, थकान और जागरण के कारण धीमी पड़ चुकी थी; लेकिन वह अति कोमल और पहले से कहीं अधिक मधुर थी। उनके शब्द थोड़े नपे-तुले और उनके योग्य ही थे। आसपास में सभी को उन्हींसे धीरज मिल रहा था। बाजू के कमरे में आश्रम-वासी रामायण का पाठ कर रहे थे और चर्खा कात रहे थे। सारा वातावरण ऋषि-मुनियों के अनुकूल जैसा होना चाहिए था वैसा ही था।

गोमतीकाकी को मैंने मनः पूर्वक बार-बार प्रणाम किया और मुझे उस समय ऐसा लगा मानो ऋषि-पत्नी अरुंधती ही मेरे सामने है।

आज के इस कलियुग में काका जैसे ऋषि-मुनि, तपस्वी और योगी, साथ ही काकी जैसी सती-साध्वी को हम देखते हैं तो कौन कह सकता है कि भारत का भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा।

दरबारीलाल कोठिया

महावीर की जीवन-झांकी

आज से २५५१ वर्ष पहले लोकवन्द्य महावीर ने विश्व के लिए स्पृहणीय भारतवर्ष के अत्यन्त रमणीक पुण्य-प्रदेश विदेहदेश (विहार प्रान्त) के 'कुण्डपुर' नगर में जन्म लिया था। 'कुण्डपुर' विदेह की राजधानी वैशाली (वर्तमान बसाढ़) के निकट बसा हुआ था और उस समय एक सुन्दर एवं स्वतन्त्र गणसत्ताक राज्य के रूपमें अवस्थित था। इसके शासक सिद्धार्थ नरेश थे, जो लिच्छवी ज्ञातृवंशी थे और बड़े न्याय-नीतिकुशल एवं प्रजावत्सल थे। इनकी शासन-व्यवस्था अहिंसा और गणतंत्र (प्रजातंत्र) के सिद्धान्तों के आधार पर चलती थी। ये उस समय के नौ लिच्छवि (वज्जि) गणों में एक थे और उनमें इनका अच्छा सम्मान तथा आदर था। सिद्धार्थ भी उन्हें इसी तरह सम्मान देते थे। इसीसे लिच्छवी गणों के बारे में उनके पारस्परिक, प्रेम और संगठन को बतलाते हुए बौद्धों के दीघनिकाय-उट्ठकथा आदि प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है कि 'यदि कोई लिच्छवि बीमार होता तो सब लिच्छवि उसे देखने आते, एक के घर उत्सव होता तो उसमें सब सम्मिलित होते, तथा यदि उनके नगर में कोई साधु-सन्त आता तो उसका स्वागत करते थे।' इससे मालूम होता है कि अहिंसा के परम पुजारी नृप सिद्धार्थ के सूक्ष्म अहिंसक आचरण का कितना अधिक प्रभाव था? जो साथी नरेश जैन धर्म के उपासक नहीं थे वे भी सिद्धार्थ की अहिंसा-नीति का समर्थन करते थे और परस्पर भ्रातृत्वपूर्ण समानता का आदर्श उपस्थित करते थे।

सिद्धार्थ के इन्हीं समभाव, प्रेम, संगठन, प्रभावादि गुणों से आकृष्ट होकर वैशाली के (जो विदेह देश की तत्कालीन सुन्दर राजधानी तथा लिच्छवि नरेशों के प्रजातंत्र की प्रवृत्तियों की केन्द्र एवं गौरवपूर्ण नगरी थी) प्रभावशाली नरेश चेटक ने अपनी गुणवती राज-कुमारी त्रिशला का विवाह उनके साथ कर दिया था। त्रिशला चेटक की सबसे प्यारी पुत्री थी, इसलिए चेटक उन्हें 'प्रियकारिणी' भी कहा करते थे। त्रिशला अपने प्रभावशाली सुयोग्य पिता की सुयोग्य पुत्री होने के कारण पैतृकगुणों से सम्पन्न तथा उदारता, दया, विनय, शीलादि गुणों से भी युक्त थी।

इसी भाग्यशाली दम्पति—त्रिशला और सिद्धार्थ—को लोकवन्द्य महावीर को जन्म देने का अचिन्त्य सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस दिन महावीर का जन्म हुआ वह चैत सुदी तेरस का पावन दिवस था।

महावीर के जन्म लेते ही सिद्धार्थ और उनके परि-वार ने पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में खूब खुशियां मनाईं। गरीबों को भरपूर धन-धान्य आदि दिया और सबकी मनोकामनाएं पूरी कीं। तथा तरह-तरह के गायन-

वादित्रादि करवाये। सिद्धार्थ के कुटुम्बी जनो, समशील मित्रनरेशो, रिश्तेदारो और प्रजाजनो ने भी उन्हे बधाइया भेजी, खुशिया मनाईं और याचको को दानादि दिया।

महावीर बाल्यावस्था में ही विशिष्ट ज्ञानवान् और अद्वितीय बुद्धिमान् थे। बडी-से-बडी शका का समाधान कर देते थ। साधु-सन्त भी अपनी शकाए पूछने आते थे। इसीलिए लोगो ने उन्हे सन्मति कहना शुरू कर दिया और इस तरह वर्धमान का लोक में एक 'सन्मति' नाम भी प्रसिद्ध हो गया। वह बडे वीर भी थ। भयकर आपदाओं से भी नही घबडाते थे किन्तु उनका साहस पूर्वक सामना करते थे। अत उनके साथी उन्हें वीर और अतिवीर भी कहते थे।

महावीर इस तरह बाल्यावस्था को अतिक्रान्त कर धीरे-धीरे कुमारावस्था को प्राप्त हुए और कुमारावस्था को भी छोडकर वे पूरे ३० वर्ष के युवा हो गये। अब उनके माता पिता ने उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। किंतु महावीर तो महावीर ही थे। उस समय जनसाधारण की जो दुर्दशा थी उसे देखकर उन्हे असह्य पीडा हो रही थी। उस समय की अज्ञानमय स्थिति को देखकर उनकी आत्मा सिहर उठी थी और हृदय दया से भर आया था अतएव उनके हृदय में पूर्णरूप से वैराग्य समा चुका था। उन्होने सोचा—इस समय देश की स्थिति धार्मिक दृष्टि से बडी खराब है, धर्म के नाम पर अधर्म हो रहा है। यज्ञो में पशुओ की बलि दी जा रही है और उसे धर्म कहा जा रहा है। कही अश्वमेध हो रहा है तो कही अजमेध हो रहा है। पशुओ की तो बात ही क्या, नरो (मनुष्यो) का भी यज्ञ करने के लिए, वेदो के सूत्र बताकर जनता, को प्रोत्साहित किया जाता है और कितने ही लोग नरमेध यज्ञ भी करने पर उतारू हो रहे है। इस तरह जहा देखो वहा हिंसा का बोल-बाला और भीषणकाण्ड मचा हुआ है। सारी पृथ्वी खून से लथपथ हो रही है। इसके अतिरिक्त स्त्री, शूद्र और ... जो दुर्व्यवहार हो रहा ... है। स्त्री और शूद्र वेदादि शास्त्र नही पढ सकते। 'स्त्री शूद्रोनाधीयताम्' जैसे निषेध परक वेदादि वाक्यो की दुहाई दी जा रही है और इस तरह उन्हे ज्ञान से वचित रखा जा रहा है। शूद्र के साथ सभाषण, उसका अन्नभक्षण और उसके साथ सभी प्रकार का व्यवहार बन्द कर रखा है और यदि कोई करता है तो उसे बडे-से-बडा दण्ड भोगना पडता है। पतितो की तो हालत ही मत पूछिये। यदि किसी से अज्ञानतावश या भूल से कोई अपराध बन गया तो उसे जाति, धर्म और तमाम उत्तम बातो से च्युत करके बहिष्कृत कर दिया जाता है—उनके उद्धार का कोई रास्ता ही नही है। यह भी नही सोचा जाता कि मनुष्य मनुष्य है, देवता नही। उससे गलतिया हो सकती है और उसका सुधार भी हो सकता है।

महावीर इस अज्ञानमय स्थिति को देखकर खिन्न हो उठे, उनकी आत्मा सिहर उठी और हृदय दया से भर आया। वे सोचने लगे कि यदि यह स्थिति कुछ समय और रही तो अहिंसक और आध्यात्मिक ऋषियो की यह पवित्र भारतभूमि नरककुण्ड बन जायगी और मानव दानव हो जायगा। जिस भारतभूमि के मस्तक को ऋषभदेव, राम और अरिष्टनेमि—जैसे अहिंसक महापुरुषो ने ऊचा किया और अपने कर्मों से उसे पावन बनाया उसके माथे पर हिंसा का वह भीषण कलक लगेगा जो धुल न सकेगा। इस हिंसा और जडता को शीघ्र ही दूर करना चाहिए। यद्यपि राजकीय दण्ड-विधान—आदेश से यह बहुत कुछ दूर हो सकती है पर उसका असर लोगो के शरीर पर ही पडेगा—हृदय एव आत्मा पर नही। आत्मा पर असर डालने के लिए तो अन्दर की आवाज—उपदेश ही होना चाहिए और वह उपदेश पूर्ण सफल एव कल्याणप्रद तभी हो सकता है जब मै स्वय पूर्ण अहिंसा की प्रतिष्ठा कर लू। इसलिए अब मेरा घर में रहना किसी भी प्रकार उचित नही है। घर में रहकर सुखोपभोग करना और अहिंसा की पूर्ण साधना करना दोनो बाते सम्भव नही है। यह सोचकर उन्होने घर छोडने का निश्चय कर लिया।

उनके इस निश्चय को जानकर माता त्रिशला, पिता सिद्धार्थ और सभी प्रियजन अवाक् रह गये परन्तु

उनकी दृढ़ता को देखकर उन्हें संसार के कल्याण के मार्ग से रोकना उचित नहीं समझा और सबने उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे दी। संसार-भीरु सभ्य जनों ने भी उनके इस लोकोत्तर कार्य की प्रशंसा की और गुणानुवाद किया।

राजकुमार महावीर सब तरह के सुखों और राज्य का त्याग कर निर्ग्रन्थ-अचेल हो वन-वनमें, पहाड़ों की गुफाओं और वृक्षों की कोटरों में समाधि लगाकर अहिंसा की साधना करने लगे। काम-क्रोध, राग-द्वेष, मोह-माया, छल-ईर्ष्या आदि आत्मा के अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पाने लगे। वे जो कायक्लेशादि वाह्य तप तपते थे वह अंतरंग की ज्ञानादि शक्तियों को विकसित व पुष्ट करने के लिए करते थे। उनपर जो विघ्नबाधाएं और उपसर्ग आते थे उन्हें वे वीरता के साथ जीतते थे। इस प्रकार लगातार बारह वर्ष तक मौन-पूर्वक तपश्चरण करने के पश्चात् उन्होंने कर्म कलंक को नाश कर अर्हत अर्थात् 'जीवन्मुक्त' अवस्था प्राप्त की। आत्मा के विकास की सबसे ऊंची अवस्था संसार दशा में यही 'अर्हत् अवस्था' है जो लोकपूज्य और लोक के लिए स्पृहणीय है। बौद्धग्रन्थों में इसी को 'अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध' कहा गया है।

इस प्रकार महावीर ने अपने उद्देश्यानुसार आत्मा में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा कर ली, समस्त जीवों पर उनका समभाव हो गया—उनकी दृष्टि में न कोई शत्रु रहा और न कोई मित्र। सर्प-नेवला, सिंह-गाय जैसे जाति-विरोधी जीव भी उनके सान्निध्य में आकर अपने वैर-विरोध को भूल गये। वातावरण में अपूर्व शान्ति आ गई। महावीर के इस स्वाभाविक आत्मिक प्रभाव से आकृष्ट होकर लोग स्वयमेव उनके पास आने लगे। महावीर ने उचित अवसर और समय देखकर लोगों को अहिंसा का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। 'अहिंसा परमोधर्म' कह कर अहिंसा को परम-धर्म और हिंसा को अधर्म बतलाया। यज्ञों में होनेवाली पशुबलि को अधर्म कहा और उसका अनुभव तथा युक्तियों द्वारा तीव्र विरोध किया। जगह-जगह जाकर विशाल सभाएं करके उसकी बुराइयां बतलाई और अहिंसा के अपरिमित लाभ बतलाये। इस तरह लगातार तीस वर्ष तक उन्होंने अहिंसा का प्रभावशाली प्रचार किया, जिसका यज्ञों की हिंसा पर इतना प्रभाव पड़ा कि पशु-यज्ञ के स्थान पर शान्तियज्ञ, ब्रह्मयज्ञ आदि अहिंसक यज्ञों का प्रतिपादन होने लगा और यज्ञ में पिष्ट पशु (आटे के पशु) का विधान किया जाने लगा। इस बात को लोकमान्य तिलक जैसे उच्च कोटि के विचारक विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।

पशुजाति की रक्षा और धर्मान्धता के निराकरण का कार्य करने के साथ ही महावीर ने हीनों, पतितजनों तथा स्त्रियों के उद्धार का भी कार्य किया। 'प्रत्येक योग्य प्राणी धर्म धारण कर सकता है और अपने आत्मा का कल्याण कर सकता है' इस उदार घोषणा के साथ उन्हें ऊंचे उठ सकने का आश्वासन, बल और साहस दिया। महावीर के संघ में पापी से पापी भी सम्मिलित हो सकते थे और उन्हें धर्मधारण की अनुज्ञा थी। उनका स्पष्ट उपदेश था कि 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं' और इसीलिए उनके संघ का उस समय जो विशाल रूप था वह तत्कालीन अन्य संघों में कम मिलता था। ज्येष्ठा और अंजनचोर जैसे पापियों का उद्धार महावीर के उदारधर्म ने किया था। इन्हीं सब बातों से महान् आचार्य स्वामी समन्तभद्र ने महावीर के शासन (तीर्थ-धर्म) को 'सर्वोदय तीर्थ' सबका उदय करनेवाला कहा है। उनके धर्म की यह सबसे बड़ी विशेषता है।

महावीर ने अपने उपदेशों में जिन तत्त्वज्ञानपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं प्रकाशन किया उन पर कुछ प्रकाश डालना अवश्यक है:—

१ सर्वज्ञ (परमात्म) वाद—जहां अन्य धर्मों में जीव को सदैव ईश्वर का दास रहना बतलाया गया है वहां जैन धर्म का मन्तव्य है कि प्रत्येक योग्य आत्मा अपने अध्यवसाय एवं प्रयत्नों द्वारा स्वतंत्र, पूर्ण एवं ईश्वर—सर्वज्ञ परमात्मा बन सकता है। जैसे एक छह वर्ष का विद्यार्थी 'अ आ इ' सीखता हुआ एक-एक दर्जे को पास करके एम. ए. और डाक्टर बन जाता है और छह वर्ष के अल्प [illegible] धन-धान्य आदि दिय। न कर लेता है, उसी [illegible] पूरी कीं। तथा तरह-तरह [illegible] गवरणों

को दूर करता हुआ महात्मा तथा परमात्मा बन जाता है। कुछ दोषो और आवरणो को दूर करने से महात्मा और सर्व दोषो तथा आवरणो को दूर करने से परमात्मा कहलाता है। अतएव जैनधर्म में गुणो की अपेक्षा पूर्ण विकसित आत्मा ही परमात्मा है, सर्वज्ञ एव ईश्वर है—उससे जुदा एक रूप कोई ईश्वर नही है। यथार्थत गुणो की अपेक्षा जैनधर्म में ईश्वर और जीव में कोई भेद नही है। यदि भेद है तो वह यही कि जीव कर्म-बन्धन युक्त है और ईश्वर कर्म-बन्धन मुक्त है। पर कर्म-बन्धन के दूर हो जाने पर वह भी ईश्वर हो जाता है। इस तरह जैनधर्म में अनन्त ईश्वर हैं। हम व आप भी कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाने पर ईश्वर (सर्वज्ञ) बन सकते हैं। पूजा, उपासनादि जैनधर्म में मुक्त न होने तक ही बतलाई है। उसके बाद वह और ईश्वर सब स्वतत्र व समान हैं और अनन्त गुणो के भण्डार हैं। यही सर्वज्ञवाद अथवा परमात्मवाद है जो सबसे निराला है। त्रिपिटिको (मज्झिमनिकाय अनु पृ. ५७ आदि) में महावीर (निगठनातपुत्त) को बुद्ध और उनके आनन्द आदि शिष्यो ने 'सर्वज्ञ सर्वदर्शी निरन्तर समस्त ज्ञान दर्शन-वाला' कहकर अनेक जगह उल्लेखित किया है।

२ रत्नत्रय धर्म—जीव परमात्मा कैसे बन सकता है, इस बात को भी जैनधर्म में बतला दिया है। जो जीव सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यकचरित्र रूप रत्नत्रय धर्म को धारण करता है वह ससार के दुखो से मुक्त परमात्मा हो जाता है।

(क) सम्यकदर्शन—मूढता और अभिमान रहित होकर यथार्थ (निर्दोष) देव (परमात्मा), यथार्थ वचन और यथार्थ महात्मा को मानना और उनपर ही अपना विश्वास करना।

(ख) सम्यकज्ञान—न कम, न ज्यादा, यथार्थ, सन्देह और विपर्यय रहित तत्त्व का ज्ञान करना।

(ग) सम्यकचरित्र—हिंसा न करना, झूठ न बोलना, पर-वस्तु को बिना दिये ग्रहण न करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, अपरिग्रही होना। गृहस्थ इनका पालन एक देश और निर्ग्रन्थ साधु पूर्णत करते हैं।

(३) सप्त तत्त्व—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व (वस्तुभूत पदार्थ) हैं। जो चेतना (जानने देखने की) गुण से युक्त है वह जीवतत्त्व है। जो चेतना युक्त नही है वह अजीवतत्त्व है। इसके पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाच भेद है। जिन कारणो से जीव और पुद्गल का सबध होता है वे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग आश्रव तत्त्व है। दूधपानी की तरह जीव और पुद्गल का जो गाढ़ सम्बन्ध है वह बन्ध तत्त्व है। अनागत बन्ध का न होना सवर तत्त्व है और सचित पूर्व बन्ध छूट जाना निर्जरा है और सम्पूर्ण कर्मबन्धन से रहित हो जाना मोक्ष है। मुमुक्षु और ससारी दोनों के लिए इन तत्त्वोका ज्ञान करना आवश्यक है।

४ कर्म—जो जीव को पराधीन बनाता है—उसकी स्वतत्रता में बाधक है वह कर्म है। इस कर्म की वजह से ही जीवात्मा नाना योनियो में भ्रमण करता है। इसके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ भेद हैं। इनके भी उत्तर भेद अनेक हैं।

५ अनेकान्त और स्याद्वाद—जैन धर्म को ठीक तरह समझने समझाने और मीमासा करने कराने के लिए महावीर ने जैनधर्म के साथ ही जैनदर्शन का भी प्ररूपण किया।

(क) अनेकान्त, नाना धर्मरूप वस्तु अनेकान्त है।

(ख) अपेक्षा से नाना धर्मों को कहनेवाले वचन प्रकार को स्याद्वाद कहते हैं। अपेक्षावाद, कथचित्वाद आदि इसीके नाम हैं।

इन और ऐसे ही और अनेक सिद्धान्तो का महावीर ने प्रतिपादन किया था जो जैन शास्त्रो से ज्ञातव्य है।

अन्तमें ७२ वर्ष की आयु में कातिक वदी अमावस्या के प्रात. महावीर ने पावा (विहार) में निर्वाण प्राप्त किया जिसकी स्मृति में जैन-समाज में वीरनिर्वाण सवत् प्रचलित है और जो आज २४७८ चल रहा है।

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

राष्ट्र-निर्माता ऋषि दयानन्द

काठियावाड़ ने भारत को आधुनिक काल में दो महापुरुष दिये हैं। एक ऋषि दयानन्द और दूसरा महात्मा गांधी। एक समुद्र के किनारे जन्मा अतः वर्तमान से समझौता करके चला, दूसरा मोर्वी राज्य के टंकारा गांव में उत्पन्न हुआ, अतः उसका मूलमंत्र हुआ—वह 'पत्तों को कैंची से कतरने के लिए नहीं आया, वह तो जड़मूल से नष्ट करने आया है।'

ऋषि दयानन्द के बचपन का नाम मूलशंकर था। मूलशंकर के पिता अम्बाशंकर औदीच्य ब्राह्मण थे। वे एक अच्छे जमींदार थे। 'औदीच्य' शब्द बता रहा है कि यह कुल किसी समय पंजाब से आकर वहां बसा था, और अपने मूलस्थान को उसने भुलाया नहीं। अम्बाशंकर कट्टर शैव थे। शिवरात्रि को उनके यहां सब लोग भक्तिभाव से उपवास रखते थे। और पुरुषगण शिवमन्दिर के ही अन्दर पूजा-पाठ भजन-कीर्तन में सारी रात गुजारते थे। मूलशंकर ने भी एक शिव-रात्रि पर व्रत रक्खा। मन्दिर में दस बजते-बजते सब सो गये पर बाल मूलशंकर नहीं सोया। उसका छोटा दिमाग यह सोचने में व्यस्त था कि क्या शिवरात्रि की कथा का 'शिव' यही है, जो अपने ऊपर चढ़ाये गए चढ़ावे को खाने से चूहों को भी नहीं रोक सकता? सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक 'शिव' तो यह नहीं है, फिर वह कहां है? बालक के मन में कौतूहल और जिज्ञासा जाग उठे।

मूलशंकर ने बाल्यावस्था समाप्त कर तरुणाई में प्रवेश किया। परन्तु उसके मन और हृदय में यह आन्दोलन बराबर चलता रहा, कि असली 'शिव' कहां है? कैलाशवासी शिव की खोज उसने जारी रखी। उसके दयालु चाचा ने इस खोज में थोड़ी बहुत सहायता की। परन्तु एक दिन वे भी चल बसे। उनकी मृत्यु ने बालक के मन में दूसरा प्रश्न पैदा किया, यह मृत्यु क्यों आती है, क्या इससे बचा नहीं जा सकता? तरुण मूलशंकर का हृदय तूफ़ान से भर गया। घरभर में चाचा का उसपर अत्यधिक स्नेह था, जब वे ही नहीं रहे, तब तरुण मूलशंकर को घर सूना-सूना लगने लगा। इसी बीच उसकी स्नेहमयी भगिनी की भी मृत्यु हो गई। इस मृत्यु से उसका मन इस दुनिया की ओर से सर्वथा विरक्त हो गया। वह एक दिन प्रातः काल घर से लोटा लेकर निकल भागा। पर शीघ्र पकड़ लिया गया। उसको दुनिया में फंसाए रखने के लिए उसके विवाह की तैयारियां होने लगीं। मूलशंकर भी अब १८ साल का युवा हो गया था। वह अबोध बालक नहीं था। परमात्मा, और मृत्यु के विषय में कुछ सोच-विचार सकता था। मुक्ति और निर्वाण कैसे मिलता है, यह उसने पढ़ लिया था। वह जन्ममरण से मुक्ति पाने की खोज में एक रात जो भागा, फिर वह घर वापस नहीं आया, और न कभी उसने स्वतः अपने गांव का पता आजन्म किसी को दिया। वह जीते हुए फिर कभी काठियावाड़ ही नहीं गया। मूलशंकर ने घरबार का मोह छोड़ा और एक संन्यासी से संन्यास ले लिया और अब वह दण्डी स्वामी दयानन्द सरस्वती हो गया।

दयानन्द की खोज जारी थी। वह असली शिव के दर्शन करना चाहता था और साथ में वह जन्म-मरण से छूटना चाहता था। वह मृत्यु पर विजय पाने को उत्सुक था। वह एक वीर योद्धा के समान गुरु की खोज में निकल पड़ा। एक मठ से दूसरे मठ, एक अखाड़े से दूसरे अखाड़े में गुरुओं की खोज में फिरा। परन्तु उसको सच्चे गुरु के कहीं दर्शन नहीं हुए। कन्दराओं, गुफ़ाओं और पर्वत की चोटियों को भी उसने इस खोज में पार किया। परन्तु उसको सच्चे गुरु के दर्शन नहीं हुए। हताश दयानन्द मुक्ति और सच्चे शिव की खोज में अलखनन्दा की चोटी पर पहुँच गया। उसका शरीर और मन दोनों थके हुए थे। हिमाच्छादित धवलगिरि ने भी उसके मन में आशा नहीं जगाई और वह शिखर से नीचे कूदने और अपना प्राणान्त करने को तैयार हो गया। जब वह कूदने को था उसको अन्तर्ध्वनि सुनाई दी—दयानन्द देश के अन्दर दुःख, दारिद्र्य छाया

हुआ है, और तुझसे भी अधिक लोग दु खी, निराश और हताश हैं । उनको तेरी मदद और सेवा की जरूरत है । उनके लिए तू जी। दयानन्द को अन्तर्ज्योति मिल गई । वास्तविक शिव का पता मिल गया । उसने अपना जीवन जनता की सेवा में उत्सर्ग करने का सकल्प कर लिया । जन-सेवा के दृढ सकल्प के साथ वह चोटी से उतरा ।

अब उसको जन-सेवा के योग्य शिक्षा की जरूरत थी । गुरु की खोज में वह मथुरा पहुचा । वहा स्वामी विरजानन्द से उसने शास्त्रो का अध्ययन किया । नए गुरुजी भट्टोजीदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी के कट्टर विरोधी थे, और वे किसी को अपना शिष्य बनाने से पहले उसके मन में उसके प्रति तिरस्कार भरने के लिए उससे उस पर जूते लगवाते थ । स्वामी दयानन्द से भी उन्होने लगवाए । दयानन्द को जिस गुरु की खोज थी वह मिल गया । गुरु में दयानन्द की अपूर्व भक्ति थी । दोनो एक सम्प्रदाय के सन्यासी थे । गुर कर्तारपुर (जालन्धर) के निवासी थे । दुबले-पतले और अत्यन्त क्रोधी प्रज्ञाचक्षु सन्यासी थे । परन्तु उनकी विद्वत्ता प्रसिद्ध थी । काशी और मिथिला भी उस समय मथुरा को मानते थे। दयानन्द गुरुसेवा में सदा तत्पर रहते थे । यमुना के मध्य से गुरु के स्नान के लिए कलशे भर भरकर जल लाते । कमरे में झाड़ू देते। एक दिन झाड़ू देकर कूड़ा दरवाजे के पीछे जमा कर दिया । अचानक उस पर गुरु का पैर पड गया । बस फिर क्या था, दण्डी युवा दयानन्द पर बरस पडे । पर शिष्य ने चूँ तक न की । क्षमा मागते हुए यही कहा, गुरुजी आपको ही इससे दर्द हुआ होगा । हाथ के अगूठे पर लगी इस चोट को ऋषि दयानन्द कभी भूले नही । विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद शिष्य लोग लेकर गुरु दक्षिणा देने पहुचे। परन्तु गुरु ने कहा--'बेटा। मुझे यह दक्षिणा नही चाहिए । तुम योग्य हो, समर्थ हो, तुम ही इस काम को कर सकते हो । एक तो देश से अज्ञान-अन्धकार दूर करो, लुप्त आर्ष-ग्रन्थो का प्रचार करो और नाना मतो के जाल को छिन्न-विच्छिन्न करके शुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार करो।' शिष्य ने गुरु के आदेश के आगे मस्तक नत कर दिया । अलखनन्दा-तट पर किए सकल्प को पूरा करने का पथ गुरु ने दिखा दिया । गुरु का आशीर्वाद पाकर स्वामी दयानन्द जन-सेवा और अविद्या-अज्ञान अन्धकार दूर करने के लिए चल पडे ।

गगा-यमुना के बीच का प्रदेश सदा से नवीन विचार-धाराओ का केन्द्र रहा है । अथर्ववेद की इस कारण बडी महिमा है । स्वामी दयानद ने भी अपने प्रचार के लिए यही क्षेत्र चुना । उन दिनो रेल, मोटर, साइकिल कुछ नही थी । प्रचारक को पैदल ही गाव-गाव और शहर शहर घूमना पडता था । ऋषि ने देश भर में घूमने के बाद अनुभव किया कि अन्धविश्वास और जडता का मुख्य कारण मूर्ति पूजा है । यह बुद्धि को जग लगा देती है । इसके विपरीत नए धर्म—ईसाई धर्म—राज्याश्रय के बल पर तेजी से फैल रहे हैं । वे नया जीवन, नूतन दृष्टिकोण, नवीन विचार देते है और अन्धकार से प्रकाश में ले आते हैं । बुद्धि और तर्क के अभाव में दृढ-विश्वास अन्धा और लगडा लूला है । वह टिका रह सकता है । परन्तु फैल नही सकता, न दूसरे को प्रभावित कर सकता है । देश-भ्रमण में ऋषि ने नाना मतो के कारण उत्पन्न विवादो, अद्भुत प्रथाओ, मूढ विश्वासो, जडता, समाज को क्षीण करने वाले रीति रिवाजो को भी देखा । ऋषि ने देखा मतो और पथो की अनैतिकता को दूर करने का एक मार्ग शुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार है। वेदो के प्रति उपनिषदो, गीता और वेदान्त ने जो प्रतिक्रिया उत्पन्न की है, उस को दूर कर हिंदू जनता को शुद्ध वैदिक धर्म का स्रोत दिखाने से ही हिंदू जाति में एकता और नया जीवन उत्पन्न हो सकता है। वेद ही एक ऐसा आधार है, जहा सब हिन्दू एक हो सकते हैं। इसको अनुभव करके ऋषि ने वेद का सन्देश देश में फैलाना शुरू किया। इसी समय कुम्भ का मेला आया । दयानन्द ने इसको अनुपम अवसर समझा और हरिद्वार पहुच गए। यहा ऋषि ने अनुभव किया कि उनके त्याग और उनकी तपस्या में कुछ कमी है। इस कारण उनकी वाणीका प्रभाव कुछ नही पड रहा है । ऋषि ने सर्वमेघ यज्ञ किया । लगोटी को छोड कर सब वस्त्र त्याग दिये । कीमती वस्त्र और अपनी सब पुस्तकें गुरु के पास भेज दी । ऋषि

दयानंद ने सर्वमेध यज्ञ और सर्वस्व त्याग के पश्चात् 'पाखंड खंडिनी पताका' फहराई। इस अद्भुत पताका ने जनता को आकर्षित किया। ऋषि की प्रभावशाली वाणी हिमालय और गंगा की तरंगों से टकरा कर सर्वत्र गूंज गई। देश ने अनुभव किया कि एक अपूर्व शक्ति का उदय हुआ है।

गंगा-तट पर जब ऋषि घूम रहे थे, और घोर तपस्या कर रहे थे, गांवों में जाना तक छोड़ दिया था, उसी समय देश में प्रबल झंझावात आया, देश ने एक करवट ली, पराधीनता का पाश काटने का एक महान् यत्न किया, और ऋषि गंगा-वास-तट छोड़ कर सीधे झांसी की ओर रवाना हो गये। मध्यप्रदेश में फिरने लगे। इस स्वातन्त्र्य युद्ध के अन्दर ऋषि ने भाग लिया, यह निश्चित है। यह इतिहास ने अब मान लिया है, पर क्या भाग लिया, और किस रूप में भाग लिया, यह अभी खोज होनी शेष है। भारतीय क्रांति का यह पन्ना अभी अज्ञात है। परन्तु, यह निश्चित है कि इसने ऋषि के विचारों को प्रभावित किया। वे केवल धर्म-सुधारक नहीं रहे। राजनीति के दीक्षा-गुरु भी हो गये। परन्तु जिस जाति के हाथ से शस्त्र भी छीन लिये जावें, उसके पास धार्मिक सामाजिक सुधार ही मुक्ति का मार्ग शेष रह जाता है। राजपूताना में इस समय भी शस्त्र थे। ऋषि को राजपूतों के शौर्य से बहुत आशा थी। अपने प्रचार-काल का एक बड़ा भाग वहां लगाया। परन्तु उनकी आशा फलवती नहीं हुई। तब उन की दृष्टि ब्रिटिश सरकार को सैनिक देने वाले प्रान्त पंजाब पर पड़ी और यहां ऋषि को आंशिक सफलता भी मिली। परन्तु इससे पहले कि वे अपना कार्य आगे बढ़ाते उनकी जीवन-लीला ही समाप्त हो गई। उस समय भी उनके पास जो व्यक्ति रह गया था जिसने ऋषि के जहर के प्रभाव से क्षत-विक्षत शरीर को देखा था और इस अवस्था में भी उनके चेहरे पर अपूर्व शान्ति देखी थी, और 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो;' 'ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः' का स्पष्ट उच्चारण सुना था, वह एक पंजाबी ही युवा था। नास्तिक गुरुदत्त इससे आस्तिक गुरुदत्त हो गया। परन्तु वह स्वाधीनता-संग्राम का सैनिक नहीं बना।

जब स्वराज्य का नाम लेना भी अपराध था, उस समय मंत्रद्रष्टा ऋषि ने घोषणा की, रद्दी-से-रद्दी स्वराज्य भी अच्छे-से-अच्छे सुराज्य से बढ़ कर है। ऋषि ने देखा था कि पहले स्वातन्त्र्य-युद्ध के बाद ब्रिटिश शासकों ने जनता के साथ कैसा अमानुषिक वर्ताव किया था। वे इस से क्षुब्ध हो गये थे। उनको यह भी खलता था कि अंग्रेज इस देश के अन्दर रह कर भी इस देश से घृणा करते हैं और देशी जूते को कचहरियों तक में नहीं आने देते। इसने ऋषि को कट्टर स्वदेशी का व्रती बना दिया। देश की गरीबी को वे कभी नहीं भूले। जहां गो-रक्षा के लिये गोशालाएं स्थापित कीं, गो-करुणा निधि लिखी वहां नए नए उद्योगों को सीखने के लिये श्यामजी कृष्णवर्मा और अन्य अनेक युवकों को जर्मनी भेजा। उस समय का नया संयुक्त जर्मनी तेजी से आगे बढ़ रहा था और इंग्लैंड को चुनौती दे रहा था। नए उद्योगों और धंधों की शिक्षा पाने के लिये ऋषि ने जर्मनी को उपयुक्त स्थान समझा और वहां योग्य युवकों को छात्रवृत्तियां देकर भेजते रहे। वे एकमुखी नहीं थे। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के सुधारक थे। उनकी नजर चारों ओर थी।

वे कट्टर नहीं थे। आलोचना में वे अवश्य स्पष्ट वक्ता थे। लार्ड डफरिन ने जब विक्टोरिया के साम्राज्ञी होने की घोषणा करने के लिए दिल्ली में दरबार किया था, उस समय भी ऋषि ने सब को मिल कर एकता स्थापित करने की कोशिश की थी। सर सय्यदअहमद खां, केशवचन्द्र सेन प्रभृति उस समय के बड़े बड़े नेता उस 'एकता सम्मेलन' में एकत्रित हुए थे। वे समझते थे कि धार्मिक एकता होने पर ही देश शीघ्र स्वाधीन हो सकता है। परन्तु वे अपने सिद्धांतों में समझौता नहीं करते थे। थियासफिस्टों के साथ इसी कारण उनका मेल होकर भी टूट गया। परन्तु जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे को—जो प्रार्थना समाज के एक नेता थे—उन्होंने परोपकारिणी सभा का सदस्य बनाया जिसको उन्होंने वसीयत कर अपनी समस्त पुस्तकों को छापने, बेचने और वैदिक यंत्रालय का स्वामित्व सौंपा। जस्टिस रानाडे का नाम इसके सदस्यों में होना इस बात का एक प्रमाण है, कि वे कट्टर

और साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के नहीं थे। वे एक उदार धर्म-समाज सुधारक और देश की राजनैतिक चेतना को जगाने वाले थे। तुलसीदास को भी नाना मतों का पाखंड अच्छा नहीं लगा था। परन्तु वे सुनार के समान कोमल चोट करके रह गये। ऋषि दयानन्द ने हथौड़े से चोट की, अन्तर दोनों में यही था। किंतु लक्ष्य दोनों का एक था।

देश का एक बड़ा शिक्षित वर्ग हीनता की भावना से ग्रसित था। आज जैसे कुछ लोग मास्को को देखते हैं, और वहां से प्रेरणा पाते हैं, उसी प्रकार उस समय का शिक्षित वर्ग लन्दन को तीर्थ और आदर्श मानता था। इस हीनता की भावना को दूर करने के लिये जर्मनी से मूल वेदों को मंगा कर यहां छपवाया और उनका भाष्य आरम्भ किया। वेद-भाष्य की उनकी शैली नवीन थी, उन्होंने पुरानी परिपाटी का त्याग कर दिया। प्रत्येक शब्द के उन्होंने तीन अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक किये। महीधर के भाष्य की उन्होंने कड़ी आलोचना की। 'ऋग्वेद भाष्य-भूमिका' में उन्होंने जिस वेद-भाष्य शैली का प्रतिपादन किया, उस ओर अब विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। ऋषि यदि यह अंग्रेजी में लिखते, तो उस समय हल चल मच गई होती। परन्तु ऋषि ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। यह आज एक आश्चर्य की बात हो सकती है, परन्तु उस स्वदेश-भक्त के लिए यह कोई आकर्षण नहीं था। वह अपने देशवासियों तक पहुंचना चाहता था। इसलिए उसने गुजराती होते हुए भी हिंदी को अपनाया। संस्कृत का उद्भट विद्वान् होते हुए भी, काशी के पंडितों को पराजय देकर भी, तुलसीदास के समान अपना महान् ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में लिखा।

जब विमान आकाश में मंडराते भी न थे, उस समय ऋषि ने विमानों के इस देश में होने का उल्लेख किया। बेतार-के-तार का भी उल्लेख किया। आधुनिक शिक्षित समाज ने उसका उपहास किया। पर नई खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि ऋषि का कहना गलत नहीं था। देश के प्रति युवकों में स्वाभिमान, देश के प्रति अनुराग और तर्क बुद्धि को जाग्रत किया। इस उद्देश्य में वे पूर्णतः सफल हुए। पंजाब के एक प्रसिद्ध साम्यवादी ने कहा था कि उनको क्रांति का पथिक और साम्यवादी 'सत्यार्थ प्रकाश' के अध्ययन ने बनाया। यही कारण है कि देश के अन्दर सशस्त्र क्रांति के केन्द्रों में पंजाब सदा आगे रहा। आर्य-युवक इसके भी नेता हुए।

'सत्यार्थ प्रकाश' के पहले दस समुल्लासों में ऋषि ने अपने नूतन दर्शन की व्याख्या की है। परमात्मा आत्मा और प्रकृति इन तीनों को माननेवाला पुराना त्रैतवाद उन्होंने पुनः स्थापित किया। वेदान्त के नाम पर चल रहे ढोंग का जवाब उन्होंने इस प्रकार दिया। गीता ने वेदों की निन्दा की थी और उनको कर्मकांड वाला बताया था। ऋषि ने यज्ञ-कर्म को पुनः जारी किया। इसके साथ प्राचीन वर्ण-व्यवस्था को गुण-कर्म स्वभाव के आधार पर स्थापित किया और लिखा कि यदि वैश्य का पुत्र ब्राह्मण गुण का हो, और ब्राह्मण पुत्र वैश्य गुण का हो, तो दोनों अपनी सन्तान बदल लें। यह वैयक्तिक सम्पत्ति पर ही कठोर प्रहार नहीं, अपितु एक क्रांतिकारी विचार भी है। मार्क्सवाद का इसमें अनेक लोग जवाब देखते हैं। इसके अतिरिक्त ऋषि ने 'यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानी जनेभ्य', की घोषणा कर वेदों का अध्ययन करने का मनुष्यमात्र को अधिकार दिया, कन्याओं को शिक्षा देने और बालकों के समान उनके लिये गुरुकुल खोलने के लिये कहा। बाल-विवाह के विरुद्ध आवाज उठाई। 'सत्यार्थ प्रकाश' इस कारण केवल धर्मशास्त्र की विवेचना का ग्रंथ न होकर 'समाज शास्त्र' का एक ग्रंथ हो गया है। ऋषि का अपने मत के प्रति कोई आग्रह नहीं। उन्होंने कहा कि यदि तर्क और बुद्धि कहे तभी उसको स्वीकार करो, अन्यथा नहीं। तर्क और बुद्धि को सर्वप्रथम स्थान देने वाला और कोई सुधारक उनके समान इस युग में नहीं हुआ। परन्तु वेद के आगे वे भी झुक जाते हैं। यहां तर्क और बुद्धि का अन्त हो जाता है। बुद्धि-विलास पर लगाई गई यह सीमा और पाबन्दी आज के अविश्वास के युग में यदि अखरे तो क्या आश्चर्य? परन्तु ऋषि विश्वासों के युग में उत्पन्न हुए थे, यह न भूलना चाहिए। इस समय के लिए यह नवयुग का सूचक था। और ऋषि इस दृष्टि से युग प्रवर्तक है।

सुशील

स्वामी रामतीर्थ का राष्ट्रधर्म

भारत आज भी फकीरों का देश माना जाता है। यह दूसरी वात है कि फकीरी का यह वाना वदनाम हो गया है पर इसका जो सन्देश है; जिस भावना से भारत की आत्मा ने फकीरी को ग्रहण किया था वह आज भी अक्षुण्ण है। फकीरी के अनेक आदर्श युग-युग से हमारे सामने रहे हैं। कश्यप मुनि से लेकर, जो सृष्टि के जन्म-दाता हैं, अरविन्द तक के आदर्शों में समानता रहते हुए भी एक भिन्नता है। इसे विविधता कहें तो अधिक ठीक रहेगा। ज्ञान, तप, भक्ति और कर्म एक ही शक्ति के रूप हैं। किस युग को किस रूप की आवश्यकता होती है यह उस युग की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वर्तमान भारत के निर्माताओं का चित्रण करने पर इस प्रश्न का उत्तर मिल सकता है। श्वेत वस्त्रों में गांधी भी फकीर थे। कर्म उनका मूल मंत्र था। कर्म में ही वे तप देखते थे। उसके प्रति निष्ठा उनकी भक्ति थी और विना ज्ञान तो कर्म कर ही कौन सकता है? कर्मरूपी सूर्य के वे सव ग्रह थे। उसीके चारों ओर वे घूमते थे।

लेकिन केवल गान्धी का मंत्र कर्म हो यह वात नहीं थी। उनसे पूर्व इस देश की जागृति के जो अग्रदूत थे वे सव कर्म के उपासक थे। राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के नाम उदाहरण के लिए दिये जा सकते हैं। इन चारों की कार्य विधि में अन्तर था। उस अन्तर को हम विभेद के अर्थों में न लें तो उसका सही-सही रूप समझा जा सकता है। आत्मा-परमात्मा का दर्शन सर्व-सम्मत नहीं है। न कभी हुआ और शायद कभी होगा भी नहीं। विभिन्न रूपों में उसके अस्ति नास्ति की कल्पना संसार ने की है। जिन महापुरुष की चर्चा यहां अपेक्षित है वे वेदान्त-दर्शन के उपासक थे। 'उनके लिये सारा विश्व और उससे भी परे सारा ब्रह्माण्ड केवल एक आत्मरूप था। उनकी इस विचार-धारा के अनुसार मनुष्य अपने झूंठे अहंकार के मोह से ऊपर उठकर परिवार प्रेम, देश प्रेम, मनुष्य-प्रेम—यथार्थ में विश्व-प्रेम में विचरता हुआ सच्चे आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार में अग्रसर होता है।' (स्वामी राम जीवन कथा—सरदार पूरनसिंह)

स्वामी राम के राष्ट्र धर्म की परख इसी उद्धरण के प्रकाश में की जा सकती है। वे विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। मस्ती उनके जीवन का रक्त थी। १८७३ ई० में वे जन्मे, २८ वर्ष की आयु में (१९०१) वे साधु हुए। १९०२ में जापान और अमेरिका घूमने गये। १९०४ में भारत लौटे और १९०६ में जब वे कुल ३३ वर्ष के थे उन्होंने संसार को सदा के लिए छोड़ दिया। क्या यह अद्भुत वात नहीं है कि उनके जन्म के दिन और मृत्यु के दिन भी दीवाली थी। क्या यह पर्व मनुष्य की निरंतर खोज का प्रतीक नहीं माना जा सकता पर यह तो कल्पना की वात है। ऐसा न भी होता तो भी स्वामी रामतीर्थ की मान्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला था। वे ब्रह्मानन्द सरोवर में डूबे हुए द्वन्द्वातीत मुक्त पुरुष थे। उनके लिए 'दुई' नहीं थी। सव कुछ 'एक' था। एक से भिन्न कुछ नहीं, सव-समग्र 'एक'। तव राष्ट्र धर्म कैसा? उसमें तो राष्ट्र से 'प्रेम की शर्त' है। स्वामी राम भी राष्ट्र से प्रेम की वात मानते थे क्योंकि उनका राष्ट्र तो ब्रह्मांड का अंग है। कथा आती है कि राम जव अमेरिका में थे तो एक स्त्री उनसे मिलने आई। वह वड़ी दुखी थी। उसका वच्चा मर गया था। वह राम से शांति की प्रार्थना करने आई थी। राम ने उससे कहा—राम आनन्द वेचता तो है पर उसके लिये मूल्य देना पड़ता है। स्त्री चिल्ला उठी—'हां, हां, स्वामीजी! चाहे जो लें। मेरा सव कुछ लें।'

राम—आनन्द के राज्य में यह सिक्का नहीं चलता। तुम्हें राम के जगत में चलने वाला सिक्का देना होगा।

स्त्री—हां, हां, स्वामीजी! मैं दूंगी, अवश्य दूंगी।

राम—वहुत ठीक। तो लो इस नीग्रो जाति के छोटे से वच्चे को अपने ही वच्चे की तरह प्यार करो।

और उन्होंने एक वच्चे को उसकी ओर वढ़ा दिया। वह कांप उठी—'ओह यह कितना कठिन कार्य है।'

राम वोले—'तव तो आनन्द पाना भी दुस्तर है'।

तो यह था राम का राष्ट्रधर्म। भारतवर्ष के सबध में उन्होने लिखा—'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर ध्यान देने से हमें पता चलता है कि जैसा दूसरे देशो में हुआ, वैसे ही हमारे भारतवर्ष में भी निशाकाल के आगमन का एकमात्र अतिम अन्तरग कारण बनी है हमारी पार्थक्य नीति। "ओहो हमारे इस कमरे में (भारतवर्ष में) सूर्य का कैसा विशाल उज्ज्वल गौरवमय प्रकाश है। ओ, यह मेरा है केवल मेरा है, मैं किसी को उसमें साझीदार न होने दूगा।' बस ऐसा कहकर हमने सच मुच परदे लटका दिये, किवाड लगा लिए और खिड किया बन्द कर दीं। और परिणाम क्या हुआ ? भारत वर्ष के प्रकाश पर एक छत्र अधिकार करने की लालसा में ही हमने उसमें अधकार फैला दिया। न तो भगवान् व्यक्तियो का पक्षपात करने वाला है और न ही सौभाग्य भौगोलिक है।'

यह नही हो सकता ब्रह्माड को प्रेम करने वाला अपने देश को प्रेम न करे। स्वामी राम तो मस्ती के अपूर्व आनन्द मे डूबकर बोलते थे—"जब मैं चलता हू, मैं सोचता हू कि भारत चल रहा है। जब बोलता हू तब सोचता हू कि भारत बोल रहा है। जब श्वास लेता हू तब भारत ही श्वास लेता है। मै भारतवर्ष हू, मैं शकर हू, मैं शिव हू। यही देशभक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है। यही है व्यवहारिक वेदान्त।

ओ अस्ताचलगामी सूर्य! क्या तू भारतवर्ष में उदय होने जा रहा है ? क्या तू दया करके राम का यह सन्देश उस पुण्य और प्रताप की भूमि तक न पहुचा देगा ? ओ, मेरे प्रेम के ये अश्रुबिन्दु मेरे भारत के खेतो में प्रात-कालीन ओस कण बन जावे। जैसे शैव शिव को पूजता है, वैष्णव विष्णु को, बौद्ध बुद्ध को, ईसाई ईसा को, मुसलमान मुहम्मद को, उसी प्रकार जलते हुए हृदय की लौ के साथ मैं अपने भारतवर्ष को एक शैव, विष्णु, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, सन्यासी, शूद्र अथवा किसी भी भारतवासी की स्थिति से देखना और पूजन चाहता हू। ऐ भारतमाता! मै तेरे सभी रूपो, सभी प्रादुर्भावो का उपासक हू . ।"

लेकिन राम प्रेम और आनन्द से पूर्व यह कविता करके ही नही रह गये। उस तरुण कर्मयोगी ने आज से पचास पूर्व भी डिगरियो की निन्दा की और कहा—'काम करो, दिन रात काम करो। भूतकाल को वर्तमान के अनुसार ढालो और अनुकूल बनाओ और फिर वीरता के साथ अपने शुद्ध पवित्र और शक्तिशाली वर्तमान को भविष्य की दौड में सबसे आगे बढने दो।'

आज नेहरू क्या इससे कुछ भिन्न कहता है। जन सख्या की समस्या आज भारत के जन्म-मरण की समस्या बन रही है। पचास वर्ष पूर्व उसे वेदान्त केसरी ने मानो चेतावनी दी थी—"एक साधारण स्थिति का भारतीय घर हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र का दिग्दर्शक है, अत्यन्त स्वल्प साधन और न केवल नित्य खाना खानेवाले मुखो में वृद्धि वरन् विवश होकर अर्थहीन निर्दय उत्सवो में अनावश्यक व्यय का भार ऊपर से। अरे एक ही अस्तबल में बधने वाले पशु भी एक दूसरे से लडते-भिडते मर जायेंगे, यदि घास केवल दो एक के लिए होगी और उनकी सख्या सैकडा तक पहुचेगी। सघर्ष की जड को न मिटाना और लोगो को शान्ति की शिक्षा देना उपदेश का उपहास करना है।" आग चलकर वे और भी स्पष्ट हुए—"एक समय था, जबकि भारतवर्ष के आर्य निवासियो में बडी सख्या में सन्तान का होना वरदानरूप माना जाता था। किन्तु वे दिन चले गये, देश-काल की परिस्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। भारतवर्ष की जन-सख्या में बाढ आ गई, अत बड परिवारो का होना अभिशाप रूप बन गया है आओ अब हम उस महाभयकर और हानिप्रद विचार को जो इतने दिनो तक हमारे व्यवहार को चक्कर में डाले रहा, भारतवर्ष के धरातल से निकाल बाहर करे। कौनसा विचार, कौनसा सिद्धान्त—'विवाह करो, अन्धाधुन्ध सन्तान पैदा करो। जीवन की श्वासें पूरी करो और गुलामी में मर जाओ।'

एक वेदान्ती के मुह से ये कैसे मार्क्सवादियो जैसे विचार निकल रहे है ? लेकिन क्या यह सच नही है, कि भारत का भावी धर्म वेदान्त ही होगा। सन्त विनोबा ने यही भविष्यवाणी की है। वेदान्त से बढकर समता का सिद्धान्त कहा मिलेगा। स्वय स्वामी रामतीर्थ के शब्दो

(शेष पृष्ठ ३७२ पर)

जैनेन्द्रकुमार

अखण्डनिष्ठ गांधी

ऐसे लोग जो हमारी कल्पना को पकड़ते हैं दो कोटि के होते देखे जाते हैं। एक जिनकी सफलता बाहर की ओर फैलती है, उनके बल-विक्रम पर स्तम्भित रह जाना होता है। वे पराक्रमी, सेनानी और सम्राट् होते हैं। उनका साहस उदाहरणीय होता है और मृत्यु से वे डरते नहीं जान पड़ते। वे इतिहास का निर्माण कर जाते हैं और जगत उनके कारनामों पर चकित होकर रह जाते हैं। इनकी सफलता विस्तार में और शक्ति में है।

लेकिन दूसरे प्रकार के भी लोग हैं जो कम सफल नहीं समझे जाते। अपने समय में वे इतने प्रखर और प्रसिद्ध नहीं होते। यहांतक कि कभी-कभी आसपास के लोग भी उन्हें नहीं जानते। लेकिन पीछे उनकी कीर्ति उन्हें अमर बना जाती है। ये लोग सन्त, कवि, साहित्य-कार आदि होते हैं। इनकी साधना मूक होती है, उतनी प्रगट और मुखर नहीं होती। ये प्रीति के लोग हैं और इन्हें अपेक्षाकृत अन्तर्मुखी कहा जा सकता है।

ये कोटियां अपने ओर और छोर पर जैसे एक दूसरे को समझ नहीं पातीं। एक ओर निरी निवृत्ति है, तो दूसरी ओर प्रवृत्ति है। एक चिन्तन में लीन दीखता है, तो दूसरा निरंतर कर्मरत होकर जूझता है।

ये दो कोटियां मूल में विभक्त व्यक्तित्व का परिणाम है। एक आदर्श को आराधता है, दूसरा वर्तमान को साधता है। एक अकिंचन-भक्त होता है दूसरा सर्व समर्थ सत्ताधीश।

स्पष्ट है कि दोनों उदाहरणों के मूल में कहीं विघ-टन रह जाता है। अन्तर और बाह्य ये दो रहते हैं और एक का विकास शायद दूसरे के ह्रास पर होता है इसलिए बाहर की ओर विस्तार और भीतर की ओर अवगाहन—जैसे मानव-विकास की ये दो विपरीत विदिशाएं हों। जो राज्य और साम्राज्य बनाते और विस्तृत भूखंड पर अपनी प्रभुता सिद्ध करते हैं और जय साधते हैं वे काल स्मृति में उतने गहरे नहीं उतर पाते। और जो आत्मसाधना में मुक्त होकर अमर अनुभूतियां प्राप्त और प्रदान करते हैं वे जग-विस्तार में चाहे स्वल्प ही दीखें पर काल के स्तरों को भेदकर चिरजीवित रहते हैं। जैसे कि एक देश को जीतता, है दूसरा काल को वेधता है, और दोनों के कृतित्व की दिशाएं इतनी भिन्न रहती हैं कि मानो वे समानान्तर हों और कहीं मिलती ही न हों। मानव-व्यक्ति और मानववर्ग इन दोनों दिशाओं में विभक्त रूप से सहज ही विकास करते जा सकते हैं। इसके दृष्टांत सब काल सब देश में देखने में आते हैं। पराक्रमी पुरुषों की कमी नहीं, उसी तरह साधक सन्तजनों की भी कमी नहीं। उनसे हम परिचित हैं, उनको समझने में हमें दिक्कत नहीं होती। जैसे हमारे ही वे गुणानुगुणित रूप हों।

लेकिन युग-युग के बाद ऐसे व्यक्ति भी पैदा होते हैं जिनका विकास इस या उस दिशा में नहीं होता। वह एकांगी नहीं हो पाते। अन्तर और बाहर जिनमें दो होकर नहीं रहते। वे निवृत्त होते हैं, पर उतने ही प्रवृत्त भी। वे स्वनिष्ठ होते हैं पर उतने ही जगनिष्ठ भी। वे इधर पराक्रमी, कर्मठ और कृति दीखते हैं तो उधर भगवल्लीन, अकिंचन, प्रार्थना और चिंतन में रत रहनेवाले हैं। उनका अन्तःकरण कर्मेन्द्रियों को पुष्ठ और बलिष्ठ ही करता है। साधारणतः इन दोनों में लड़ाई चला करती है। इन्द्रियां स्वयं प्रवृत्त होती हैं और अन्तरात्मा को भीतर से निर्बल छोड़ जाती है। अन्तरात्मा को प्रबल करके सन्त और तपस्वी जन काया को निर्बल और इन्द्रियों को निस्तेज कर लेते हैं। मानो आत्मबल के लिए इन्द्रियों को निर्बल करना और बाहुबल के लिए आत्मबल की विमुखता रखना आवश्यक हो।

यह विरोध प्रगट सब कहीं देखने में आता है। सिद्धांत और आदर्श के लोग प्राणशक्ति को मानो नियत और नियुक्त करके किंचित सुखा देते हैं। प्राण-वेग को स्वीकार करके उसके बल से चलनेवाले लोग

जैसे नीति-नियमो को पीठ देकर उच्छृखल और विनाशात्मक हो जाते है। वे बनाते नही जितना ढाते है। यह विरोध सघर्षो की उत्पत्ति करता है और शक्ति को और प्रीति को, सत्ता को और सेवा को, राजनीति को और संस्कृति को, व्यक्तित्व को और दलकौशल को परस्पर रगड मे लाता रहता है। ऐसे विभक्तता पैदा होती है और पूर्णता खडित होती है। मानवजाति का इतिहास इसी द्वन्द में से जूझता चला आया है।

एक की प्रभुता ने दूसरे को पददलित किया है। जैसे युग भी इस क्रिया और प्रतिक्रिया के थपेडो से चलते रहे है। भौतिक उन्नति के आवेश का युग आया है तो कभी आत्मिक तल्लीनता की भावनाएँ छाई रही है। विभक्ति में से तो शान्ति मिल नही सकती, अन्तर्मन एक बात चाहे और बाहरी तन दूसरी तरफ लपके तो ऐसे समाधान की स्थिति कैसे आ सकती है? हमारे आदर्श और हमारे कर्म लगभग हमें इसी दुविधा में रखते रहते है। कर्म आदर्श को स्खलित करता है और आदर्श कर्म को खडित करता है। ऐसे जीवन में तान पड जाती है और वह ठीक तरह से फलने-फूलने नही पाता। सुधारक और क्रान्तिवादी एक ओर तो स्थिति-साधक और रूढिवादी दूसरी ओर। आजकल राइट और लेफ्ट से जो समझा जाता हो उसी द्वन्द का एक रूप है।

लेकिन पूर्णता भी कही है और उसकी साधना की भी एक परपरा है। वहा एकाग्रिता नही रहती और द्वैध भी शान्त होता है। इसे पूर्णता की साधना का रूप जगत में अधिक देखने में नही आता। द्वन्द जब बहुत तीव्र हो जाता है, पूर्ण की निष्ठा और अद्वैत का स्वरूप जब श्रद्धा में से मानो पूरी तरह तिरोहित हो जाता है तब जैसे प्रकृति के नियम से उस अखड योग के प्रतीक का आविर्भाव होता है। 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति, . सभवामि (अह) युगे युगे।'

ऊपर की बात को अवतारवाद के समर्थन में मे नही देता। मैं उसे जीवन के वैज्ञानिक नियम के रूप में देखता हू। मूल में सपूर्णता है। विभाजन अत में जीत नही सकता। अत में एकता, सर्वात्मता है। खड-खड हो रहना पूरी तरह बन नही सकता। इसलिए खडितजीवन हद पर पहुचकर अपने ही जोर से अखडता के आदर्श को अपने बीच में से प्रस्फुटित करने को बाध्य होता है।

गाधीजी को मै उसी दृष्टि से देख पाता हू। गाधीजी का करना उतना मेरे लिए प्रधान नही है जितना होना है। करना सदा सामयिक होता है। उसको स्वरूप और भाषा तत्काल की परिस्थिति से मिलती है। इसलिए जो उन्होने किया वह अपने आप में उतना अन्तिम नही है। आखिर तो उनके होने का ही वह बाह्य रूप है। करने में उनका होना ही फूटा है। इसीसे केवल करने वालो के हाथ उनकी प्रेरणा नही आती। अपने भारत की राष्ट्रीय लडाई के एकमात्र प्रवर्तक और सेनानी होकर क्या युद्ध के ठीक बीचो बीच उन्होने बार-बार नही कहा कि 'मै प्रकाश की प्रतीक्षा मे हू, ईश्वर कहेगा वैसा होगा।' यह भक्त की भाषा अक्सर कर्मशालियों के बीच निरर्थक हो जाती है। लेकिन एक चौथाई सदी से भी ऊपर भारत जैसे महादेश के कर्मचक्र के चालक होकर भी गाधी के अन्तरग की वही भाषा थी।

किसी पहलू से देखें तीव्र-से-तीव्र विरोधाभास गाधी में समाहित दीखते है। राजनीति के क्षेत्र में उनके जैसा क्रातिकारी कौन दूसरा हुआ? लेकिन राजनीति में यदि वह शिष्य थे तो गोखले के जो कट्टर उदार-पथी थे। धर्म की उन्होंने टेक रखी लेकिन सदा राजनीति के बीच में जीवन रखा। ससार से और सभ्यता से दूर होते चले गये, लेकिन ससार मे और सभ्यता के हार्द में पैठते चले गये हैं एकातयोगी रहे पर उनसे घनिष्ठ जन-सम्पर्क में कौन रह पाया? वह नियम के और व्रत के आदमी थे, पर उनके जैसा उत्फुल्ल और विनादी और रगीन कौन दीख सका? आनन्द और प्रसन्नता जिस चेहरे से विकीर्ण होती थी, कौन कह सकता था कि वह नियम सयम के असि धाराव्रत का पालक है।

मै गाधी को सामयिक भारतीय राजनीति के पृष्ठ पट पर देखना अत्यन्त अनावश्यक समझता हू। देश और काल के चौखटे में कीलित करके हम उस गाधी को नही पायेंगे जो जीवन की एक अमर सत्यता को उद्घटित

कर गया। बल्कि उस गांधी को ही समझ सकेंगे जो इस सन् से उस सन् तक सिर्फ सत्तर अस्सी बरस तक जिया और फिर मर कर चुकगया। जो गांधी मर गया वह करमचंद्र का पुत्र था। लेकिन एक गांधी ईश्वर का पुत्र भी था। जिसने कहा कि सोते-जागते पिछले पैंतीस से भी अधिक वर्षों से मैं राम को एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सका हूं। मेरा सब ले लो, हाथ काट दो, पैर काट दो, सिर उतार लो फिर भी मैं रहूंगा। पर ईश्वर के बिना तो एक पल मैं रह नहीं सकता हूं। ऐसे व्यक्ति को इस मूल-श्रद्धा से अलग करके देखने से भला हम क्या हाथ पा सकेंगे ?

श्रद्धा वह किसी अपनी बनाई धारणा की नहीं थी, मतावलम्बी नहीं थी, बौद्धिक नहीं थी। वह संपूर्णता की थी, उसकी जो अखंड है, अद्वैत है, सबमें है, जिसके बाहर कोई नहीं और जो सब विविधताओं को अपनी एकता में समाये है। इसलिए वह अटूट होकर भी निर्वैर और निर्विरोध नहीं थी।

आज की सबसे बड़ी समस्या है उस निष्ठा को प्राप्त करना जो अपने विरोध को समझ सके और अपने विरोधी से प्रीति कर सके। वही वस्तु आज अकल्पनीय बन गई है एक मतवाद दूसरे मतवाद के अपवाद पर ही ठहर सकता है। इस तरह संघर्ष नियम है और समन्वय दीखता नहीं है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (डाइलेक्टीकल मैटीरियलिज्म) के पार समयन्वित एकात्मवाद तक पहुंच नहीं हो पाती। परिणाम यह कि सिवा इसके निस्तार नहीं दीखता कि कोई एकवाद या दल या सत्ता सबको पराभूत करके एकच्छत्र बन जाय और दुनिया को एक शासन के अधीन कर ले। गांधी के पास वह निष्ठा थी और राजनीति को रामराज्य का आदर्श देकर उसने बताया कि एक की भी सम्भावना को जो न कुचले ऐसा राज्य हो सकता है। किन्तु वह शक्ति की दृष्टि से विकेन्द्रित होगा और सप्रेम श्रम करनेवाला उत्पादक जन उसका केन्द्र होगा'।

राजनीति और कर्मनीति के क्षेत्र में जबकि उस अखंड निष्ठा का अभाव है तब धर्मक्षेत्र में ऐसे लोग हैं जो आंखों को बन्द करके भगवान की अखंडता और सम्पूर्णताको ऐसा मन में लेते हैं कि बाहर के भेद विज्ञान को समझने और झेलने की सामर्थ्य उनकी इन्द्रियों में और बुद्धि में नहीं रहती। वे संसार के किसी काम के लिए बेकार हो जाते हैं। ऐसे लोगों की भारत देश में न्यूनता नहीं थी और न ही है। उनकी भक्ति उन्हें भावावेश देकर अपनी अपूर्णताओं के प्रति सुप्त छोड़ जाती है और अपने आसपास की चुनौतियों और तात्कालिक कर्तव्यों के प्रति वे उत्तिष्ठ नहीं हो पाते।

पहले वर्ग के लोग प्रेम को और अहिंसा को पदाक्रान्त करते हुए चलते हैं, दूसरे वर्ग के जन सत्य की मांग के प्रति सोये बने रहते हैं।

यह बड़ी भारी सार्वत्रिक और सार्वकालिक खाई गांधीजी के जीवन में पट आई। आत्मचिंतन जनसेवा से अलग होकर उन्हें महत्त्वहीन होगया और जन-आन्दोलन की प्रवृत्ति आत्म परिष्कार की चेष्टा से हीन होकर केवल माया जाल हो रही। बाहर का जगत क्या और अन्दर का मनोजगत क्या ? सब कहीं उन्होंने उस सत्येश्वर को प्रत्यक्ष करना चाहा जो सबमें सोया पड़ा है। और जिसके जाग उठने में ही समस्याओं का समीचीन समाधान है।

(पृष्ठ ३६९ का शेष)

में "यज्ञ का अर्थ है कि हम व्यवहारतः अपने पड़ोसी को अपनी ही आत्मा मानने लगे, हमें उसका प्रत्यक्ष अभ्यास और अनुभव हो, हम सबके साथ एक या तदात्म हो जायें, सर्व-आत्मा राम बनने के लिए, हम अपनी क्षुद्र आत्मा का परित्याग कर दे। यज्ञ में स्वार्थपरता की आहुति दी जाती है और तब सर्वात्मा—परमात्मा का उदय होता है। इसी भाव को प्रायः एक दृष्टि से भक्ति का नाम दिया जाता है और दूसरी दृष्टि से उसी को यज्ञ कहते हैं।"

सो यही है राष्ट्रधर्म ! यही है है 'तत्वमसि' का ब्रह्मानन्द। यही स्वामी रामतीर्थ का सन्देश जिसे उनकी इस जन्म और पुण्य तिथि पर भारतवासियों को आत्मसात् करना है।

रामचन्द्र तिवारी

सरदार पटेल

सरदार पटेल के अस्तित्व का पता मुझे उन दिनों लगा जबकि बारदोली सत्याग्रह छिड़ा हुआ था और उसके लिए आर्थिक सहायता एकत्रित की जा रही थी। बारदोली का नाम मैंने पहिले कभी नहीं सुना था। हा पटेल का नाम मैंने सुना था। पर मेरे लिए उसका अर्थ केन्द्रीय एसेम्बली के स्पीकर दाढ़ीवाले बड़े पटेल था। उन दिनों मेरे मन में जो राजनीतिक वातावरण था, उसमें गाधी, मोतीलाल, लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय, सी आर दास, जवाहरलाल आदि नाम थे जो ग्रहों की भांति चमकते हुए घूम रहे थे। उन दिनों कई चित्रकारों ने राष्ट्रीय नेताओं के भांति-भांति से चित्र अंकित किये थे और वे बाजार में बिकते थे। उनमें से कुछ चित्र मैंने एकत्रित किये थे। मुझे लगता है कि उनमें सरदार पटेल का चित्र अवश्य होगा। रहा हो पर उसने मुझे उस समय प्रभावित नहीं किया। सरदार पटेल को मैंने बारदोली सत्याग्रह के माध्यम से जाना। बारदोली सत्याग्रह क्या था ? वह क्यों चलाया गया था ? उसका अंत कैसे हुआ ? इस विषय में मेरी जानकारी को जितना पूरा होना चाहिए था उतनी पूरी वह नहीं थी। एक अस्पष्ट धुंधला आभास था कि इस सत्याग्रह में बहुत से लोगों ने बहुत से कष्ट उठाये और नाना प्रकार के अत्याचार सहे। मुझमें सत्याग्रहियों के प्रति एक धुंधली सहानुभूति उमड़ी और अत्याचारियों के प्रति एक अस्पष्ट निर्वीर्य क्षोभ। एकाएक सुना कि सत्याग्रह समाप्त हो गया है और कोई पटेल हैं जो सरदार बन गये हैं। सत्याग्रह रात्रि के अंधेरे की भांति पृष्ठ भूमि में रह गया और पटेल सरदार बनकर सूर्य की भांति आगे उभर आये। तभी पूर्व परिचित नामों से सम्बन्ध जोड़ने पर पता चला कि वे बड़े पटेल के छोटे भाई हैं।

सरदार पटेल से बात करना तो दूर, उन्हें निकट से देखने का अवसर भी कभी मुझे नहीं मिला। दूर से कदाचित मैंने एक दो बार उन्हें अवश्य देखा है। उनके चेहरे की बारीक जटिलताओं के विषय में मेरी कोई स्पष्ट धारणा नहीं है। नाना चित्रों में जो उनके भांति-भांति के चेहरे चित्रित हैं, उनकी तुलना असली चेहरे से करने का कभी अवसर नहीं आया और मैं समझता हूं कि उसकी आवश्यकता भी नहीं है। चित्रकारों से उनके चेहरे की ऊंचाई-निचाई पकड़ने में चाहे भूल हो गयी हो पर उस चेहरे के पीछे जो सतर्क संयम, जो सहन शक्ति, जो धैर्य और जो दृढ़ता है, उसे सभी पकड़ पाये हैं। उन सभी चेहरों से यह स्पष्ट है कि नाना दृष्टियों और नाना कलास्तरों पर अभिव्यक्त नाना चेहरोंवाला यह जो पुरुष है उसे आप आज्ञा नहीं दे सकते, उसे आप विचलित नहीं कर सकते, उसे आप न लम्बे-लम्बे डग धरने को विवश कर सकते हैं और न ठहर जाने को बाध्य। वह पुरुष है स्पार्टन युग का प्राचीन और औटोमैटन युग का नवीन। स्टीमरौलर का नाम कदाचित उन्होंने ही कई बार लिया है। लगता है कि वे उसे पसन्द करते थे। मोटे, भारी, मजबूत पहियों को मंद, निश्चित गति से आगे बढ़ाता हुआ और सड़क पर बिछे पत्थर के टुकड़ों को कुचलता हुआ, चाहे वे टुकड़े कितनी ही बड़ी और कितनी ही ऐतिहासिक चट्टान के भाग क्यों न रहे हों।

न मुझे भाषण सुनने का शौक है और न उन्हें पढ़ने में विशेष अभिरुचि। और जहांतक मैं समझता हूं सरदार बोलते भी कुछ कम थे। भाषणकर्ताओं में अन्य नेताओं का नाम जितनी बार मैंने सुना है उतनी बार उनका सुनने में नहीं आया। कोई महत्वपूर्ण भाषण भी उन्होंने कभी दिया हो ऐसी बात भी कभी मेरे सुनने में नहीं आई। मेरी इस धारणा में ऐतिहासिक भूल हो सकती है, पर आपेक्षिक रूप से अपने जीवन के पिछले बीस वर्षों से वे मुझे मौन ही अधिक प्रतीत हुए। और इसीसे मुझे लगता है कि उनके बोले हुए शब्दों में उतना अर्थ नहीं पाया जा सकता जितना कि उसमें जो उन्होंने

नहीं कहा है। मुझे उनका मौन उनकी वाणी से अधिक मुखर प्रतीत होता है। और उनके भीतर स्थित एक अचल साधक की सूचना देता है। ऐसे साधक की, जिसकी दृष्टि अर्जुन की भांति लक्ष्य पर है, और लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पथ पर। मार्ग के दोनों ओर के वातावरण में, इधर-उधर की शोभा छटा में उनकी कोई रुचि नही है। जब मार्ग में कोई नदी-नाला आ जाता है और उसे पार करने के लिए पुल बनाना होता है तभी इधर-उधर खड़े वृक्षों की ओर उनकी दृष्टि जाती है, अन्यथा नहीं। शब्दों के उपयोग में उनकी कंजूसी स्वस्थ चारित्रिक खनक के समान है। वह उस वाचाल झनक से दूर है जो चरित्र को बाह्य रूपावली के भीतर छिपी किसी बारीक दरार की सूचना देती रहती है।

जब मैं दस-बारह वर्ष पहिले की बात सोचता हूं और याद करता हूं कि विभिन्न नेताओं के प्रति मेरी क्या प्रतिक्रिया थी तो ऐसा अनुभव होता है कि मै गांधीजी में श्रद्धा रखता था, नेहरू और बोस को अपनी भक्ति देता था। पर जब विश्वास की बात आती थी तो ऐसा लगता था कि सरदार ही उसके अधिकारी हैं। महात्माजी का आदर्श मुझे मोहता था। नेहरू और बोस की बातें उत्तेजित करती थीं और एक विचित्र आनन्द देती थी। पर मेरे मन में एक बात धुंधली पर शक्तिशाली रूप में उपस्थित थी। वह थी यह, कि हम सोचें चाहे कुछ, बोलें चाहे कुछ, पर करें वही जो बिल्कुल ठीक हो। तेज उतना ही चलें कि सांस न फूले। आदर्श का भार उतना ही उठाये जितना संभल सके और कविता को जीवन में उतारते समय इतना ध्यान रखें कि हमारे पैर धरती से उखड़ न जायें। जीवन की इस अस्पष्ट दृष्टि ने न जाने कैसे यह तय कर लिया था कि जबतक सरदार हैं तबतक इस विषय में चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके होते हुए कोई बात ऐसी नहीं होगी जो अनावश्यक हो। हमसे ऐसा भार उठाने को नहीं कहा जायगा जिसे हम संभाल न सकें। वे न प्रह्लाद का युग इस देश में लाना चाहेंगे न फ्रांस की राज्यक्रांति का जमाना। परम्परा से जैसा भारतीय जीवन चला आया था, दुक्खम-सुक्खम में शांतिपूर्वक वैसा रहता जाना चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि कोई मुझसे कहे कि भई इस पिटी हुई पगडंडी पर क्या चल रहे हो। आओ उन झाड़ियों में होकर उस पार निकल चलें। थोड़े कपड़े फटेंगे, थोड़ा खून बहेगा, यह भी सम्भव है कि कोई विषैला नाग भी हमें डस ले, पर हमारा पूरा विश्वास है कि इन झाड़ियों के दूसरी ओर एक बहुत चौड़ा राजमार्ग है। हम उस पर खड़े होकर ही नहीं, आवश्यकता पड़े तो बैठकर या लेटकर भी चल सकते हैं। मै अपनी पुरानी संकरी, पर मन से साफ पगदंडी पर चलते रहना चाहता था। मैं एक ऐसी सड़क पर, जिसका अस्तित्व ही संदेहमय है, जाने के लिए कष्ट उठाने को तैयार नहीं था और समझता था कि सरदार पटेल इस विषय में मेरे साथ है। वे हमें आवश्यकता से अधिक हमारी परम्पराओं से नहीं उखाड़ेंगे। आवश्यकता से अधिक, सही या गलत, जिसे मैं भारतीयता समझता था उसे नहीं उजाड़ेंगे। गांधीजी महात्मा थे जो तपोवन से आये थे। नेहरू और बोस वे भारतीय थे जिनकी धमनियों में विदेशी गर्मी धमकती थी। केवल सरदार पटेल थे जो मुझे सजग सतर्क इहलौकिक और भारतीय होने का आभास देते थे।

सरदार पटेल व्यक्ति तो थे ही। कुछ व्यक्ति होते हैं जो अपने अशरीरी व्यक्तित्व को विकसित कर लेते हैं। सरदार उनमें से एक थे। उनका अशरीरी व्यक्तित्व भारतीय राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष में व्याप्त हो गया था। वे करोड़ों भारतीयों के मानसिक वातावरण में एक महत्वपूर्ण तत्व थे। (गांधीजी ने भारतीय आत्मा को बोधित किया था। नेहरू ने उसे गति दी थी तो पटेल ने उस गति को दृढ़ता और संयम प्रदान किया था।) उन्होंने उस गति का संगठन किया था, और उसे निर्मम, निर्बाध रूप से आगे बढ़ाते रहने में अपने जीवन का विकास किया था। भारतीय इतिहास में राजनीति कैसी चलती आई है, और कैसे चलती आई है वे इन दोनों बातों को जानते थे। उनकी विशेषता इसमें थी कि वे जानने से आगे बढ़ गये थे। आवश्यकता पड़ने पर वे उस मैदान में, पुराने पैतरों पर, पुराने शस्त्रों से खेल सकते थे और खेलते थे।

इस क्षेत्र में उनका ज्ञान और उनकी सफलता आश्चर्य-जनक थी। यह उनकी सफलता प्राप्त कर लेने की कला थी जो करोडो भारतीयो के विश्वास को उनकी ओर आकर्पित करती थी। वे मनुष्य की दुबलताओ को जानते थे और अपने ढग से उनका उपयोग निश्चित लक्ष्य की ओर बढने के लिए करते थे। प्रत्येक राष्ट्र में दुर्बलतायें होती हैं और सबलतायें भी। राष्ट्र गिरते-पडते रहते है। पर दीर्घ आयु उन्ही राष्ट्रो की होती है जो सघर्षो के बीच अपनी सबलताओ का नही, अपनी दुर्बलताओ का उपयोग ठीक प्रकार से करने की क्षमता रखते हैं। गाधी और पटेल इस कला के अत्यन्त सफल कलाकार थे।

सरदार पटेल का जन्म कब हुआ और कब उ शरीर पूरा हो गया, इसमें मुझे विशेष रुचि नही है। वे व्यक्तिता से ऊपर उठ चुके है। सरदार-व्यक्ति नही थे, एक सस्था थे। वे पुरुप नही थे। पौरुष थे। विदेशियो के विरुद्ध देश ने जो सघर्ष किया उसके सगठन में उनका भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण था। पर देश को लोकतन्त्र के लिए सुरक्षित बनाने में आतरिक बाधाओ को दूर करने का जो कार्य उन्होने किया, वह वह सकते हैं कि, वह अकेले ही किया। आज जो भारतीय राष्ट्र की रूप रेखा है उस पर सरदार के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है। जैसा उनका व्यक्तित्व सयत, गठित और विस्तृत था वैसा ही राष्ट्र वे अपने पीछे छोड गये है।

प्रेमचन्द

देवराज 'दिनेश'

एक साहित्यकार की सबसे बडी सफलता यही है कि पाठक उसकी रचना को पढने के बाद यह सोचे समझे और अनुभव करे, कि यह कहानी, यह घटना उसके जीवन की या उसके जीवन की आसपास की है अर्थात अपने समाज का रूप वह उन रचनाओ में देख सके।

-यह बाते पर्याप्त मात्रा में मुशी प्रेमचन्द की रचनाओ में घटती है। उन्होने अपने समाज का वास्तविक रूप हमारे सामने रक्खा है। साथ-साथ उसमे दिये है अपने सुझाव।

लाहौर की बात है। मै अपने पडौस में बसे एक परिवार से पूर्णरूपेण परिचित था। पडौसी होने के नाते दुखी था उनके नित्यप्रति के झगडो से। बहुत शोर पडता। मेरे अध्ययन में बहुत बाधा पडती। फिर उस परिवार का बडा लडका मेरा मित्र भी था। उसके दुःख का मुझे साझीदार भी होना पडता। मैं सोचता कभी आगे चलकर इसपर लिखूगा। अधेड से ऊपर पिता, युवती विमाता। एक चार-पाच साल का छोटा भाई। यह थी मेरे पडौसी मित्र की कहानी। पिता थे शक्की मनोवृत्ति के, घर के रईस। विमाता युवक से किसी किस्म की भी बातें करती होती पिता आ जाते, तो युवक को गालिया अवश्य पडती। एक दिन मुझे पता लगा कि मेरा मित्र बोर्डिंग हाऊस में दाखिल करा दिया गया है। कभी-कभी मै मिल आता। पर वह बहुत उदास अपने पर व्यर्थ सन्देह होने के कारण उन्मादी। कुछ दिनो बाद पता लगा कि उसे टी० बी० हो गई है।

मुझसे कभी-कभी कहता। मेरी कहानी लिखना। तभी कुछ दिनो बाद टी० बी० के हास्पटिल में उसकी मृत्यु हो गई। हम चार-पाच मित्रो ने दाह सस्कार किया। उसके पिता शामिल नही हुए।

इधर मुझे जासूसी उपन्यास पढने पर एक दिन बडे भाई की डाट फटकार सहनी पडी। किन्तु उसके बाद मुझे मनाने के लिए उन्होने प्रेमचन्दजी का उपन्यास निर्मला पढने को दिया। मै पढने के बाद अवाक् रह गया। बिल्कुल मेरे पडौस की कहानी है तब भी और अब भी कई बार सोचता हू कि यदि मेरा मित्र वेद जीता होता तो उसे यह दे देता। या कही उसके जीवनकाल में मुझे निर्मला उपन्यास मिल जाता। तब प्रेमचन्द की सभी कहानिया पढी और कितनी ही बार पढी। हर कहानी में किसी न किसी रूप मे समाज की कुरीतियो से उत्पन्न पीडा पल रही है। दहेजप्रथा, बालविवाह, अनमेल-

विवाह इत्यादि । प्रेमचन्दजी ने अपनी लेखनी के द्वारा इन सभी कुरीतियों पर कठोर प्रहार किया । उनके नग्न चित्र खींच कर हमारे सामने रक्खे हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में उनके विविध रूप हैं ।

प्रतिज्ञा और वरदान उनके साधारण उपन्यास हैं । सेवासदन के द्वारा वे निखरे हुए कलाकार और समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं । इस उपन्यास में उन्होंने समाज की उन परिस्थितियों का चित्रण किया है जिनके द्वारा एक भले घर की नारी वेश्या बनने पर बाध्य होती है । उसमें वेश्या को घृणित समझने वाले समाज के ठेकेदारों का वास्तविक रूप दिखाया गया है ।

इधर देश में राजनैतिक जागृति आ रही थी । गांधीजी विदेशी सत्ता से अहिंसात्मक आन्दोलन द्वारा संघर्ष कर रहे थे । प्रेमचन्द की रचनाओं पर गांधीवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा ? गांधीजी देश के साथ-साथ समाज में भी तो एक व्यापक परिवर्तन लाना चाहते थे । मानव समाज की विषमताओं को दूर करना ही उनका उद्देश्य था । प्रेमचन्दजी ने लेखनी के द्वारा उनके विचारों का प्रचार किया । कहना चाहिए बापू के हाथ की लाठी बनकर उन्हें सहयोग दिया । छूआछूत, ऊंच-नीच, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, मजदूर-किसानों का जमींदारों, महाजनों और मिल मालिकों द्वारा शोषण । इन सब पर खूब लिखा । इनके जीते-जागते चित्र हमारे सामने रखे ।

सेवासदन, निर्मला, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गोदान, ये सब अच्छे-बुरे मानव पात्रों से भरे पड़े हैं ! पढ़ते हुए कुछ पात्रों पर क्रोध आता है । कुछेक से घृणा हो जाती है । कुछेक पर आपकी सहानुभूति उमड़ी पड़ती है । यही है प्रेमचन्द की सफलता ।

उपन्यासों से भी अधिक निखरे हैं वे अपनी कहानियों में । उनकी कृतियां विश्व-साहित्य का गौरव हैं । कहानियों में 'शतरंज के खिलाड़ी' 'बड़े घर की बेटी' 'दिल की रानी' 'पंचपरमेश्वर' 'मुक्तिमार्ग' 'कफन' इत्यादि, बार-बार पढ़ते ही बनती है । बहुत ही सुन्दर हैं ।

उपन्यासों में गोदान और कहानियों में कफन । उनके अन्तिम दिनों के आसपास की रचनायें हैं । उनके चित्रण में कलाकार को अपूर्व सफलता मिली है ।

'गोदान' को पढ़ने पर ऐसा लगता है जैसे होरी के रूप में स्वयं प्रेमचन्द समाये हुए हैं ।

उन्होंने देश में फैली हुई भूख और गरीबी का मार्मिक चित्र खींचा है । क्योंकि उनके जीवन की कहानी भी बहुत ही कष्टप्रद और दुखद रही है ? उन्होंने स्वयं समाज के अत्याचार सहे । उनके विद्रोही हृदय ने उन्हें कलाकार बनाने पर बाध्य किया ।

एक साधारण मध्यमवर्ग के परिवार में उनका जन्म हुआ । आठ वर्ष की अवस्था में उनकी मां की मृत्यु हो गई । पिता ने दूसरी शादी कर ली । इनका बचपन का नाम धनपतराय था । लेकिन इनके चाचा प्यार से इन्हें नवाबराय कहा करते थे । उर्दू में इन्होंने नवाबराय के नाम से लिखना शुरू किया किन्तु उर्दू के छोटे क्षेत्र में इस महान् कलाकार के विचारों का प्रचार कम हो पाता । यह हिन्दी के क्षेत्र में आये और प्रेमचन्द नाम ग्रहण किया ।

पिता की आमदनी बहुत ही कम थी । परेशानियां बहुत अधिक थीं । विमाता का क्रोध भी सहन करना पड़ता था । ऐसे वातावरण में पल रही थी, एक बलवती आत्मा । पिता ने जैसे-तैसे मैट्रिक तक पढ़वाया । आगे यह स्वयं अपनी मेहनत, ट्यूशन के द्वारा पढ़े । बी० ए० पास किया । मैट्रिक के बाद ही उनके पिता का देहान्त हो गया था । परिवार का बोझ भी इन्हीं पर था । और पिता मरने से पहिले इनका विवाह भी कर गये थे, एक बेजोड़ विवाह ।

बाद में साहित्य क्षेत्र में आने के बाद इन्होंने शिवरानी से विवाह किया । वह बाल विधवा थी, उस समय किसी विधवा से विवाह करने का अर्थ समाज से विद्रोह करना था । विद्रोही प्रेमचन्द ने साहस का परिचय दिया । शिवरानी के आगमन से उनकी घरेलू कठिनाइयां कुछ दूर हुईं । प्रेमचन्दजी की मृत्यु के बाद शिवरानीजी ने एक पुस्तक 'प्रेमचन्द घर में' लिखी । जिससे प्रेमचन्दजी का अच्छा परिचय मिलता है ।

इस पठन-पाठन के साथ उनकी साहित्य-सेवा भी चल रही थी । उनका इस क्षेत्र में काफी नाम आ चुका था ।

१९०५ में वह डिप्टी इन्सपेक्टर बने। स्कूलो का मुआइना करना और अपना लिखना कुछ दिनो तक तो चलता रहा। किन्तु बाद में यह नौकरी भी छोड दी।

फिर एक स्कूल में मास्टरी कर ली। वहा एक दिन इन्सपेक्टर से कहासुनी हो गई। इनके स्कूल का इन्स-पेक्टर इनके घर के सामने से निकला। यह बाहर चबूतरे पर बैठे कुछ काम कर रहे थे। इन्होने उसे नमस्कार नही किया। वह इस बात से चिढ गया। उसी समय इन्हे बुलाकर कहा—'तुम देखते नही कि तुम्हारा अफसर सामने से जा रहा है। तुम उसे सलाम तक नही करते।' इस पर प्रेमचन्दजी ने उसे बहुत डाटा, कहा "आप स्कूल में अफसर हो सकते है, घर पर नही।"

इधर गाधीजी का असहयोग आन्दोलन देशव्यापी हो रहा था। मुशीजी इन दिनों बीमार थे, नौकरी से स्तीफा देकर उसमें शामिल हो गये और विदेशी दासता के विरुद्ध लडने पर कटिबद्ध हुए।

आर्थिक कठिनाइया इनके सामने सदा रही। शरीर प्रारम्भ से ही दुबला-पतला था। अत्यधिक सस्ता होने पर भी दूध-घी कभी खाने को नही मिला। चारो तरफ परे-शानिया चारो ओर दुख, बाहर-भीतर कही भी तो सुख की सास नही। सघर्ष पर सघर्ष, निरन्तर सघर्ष। प्रकाशको के कटु अनुभव! समाज का करुण क्रन्दन! देश में फैली हुई राजनैतिक अशान्ति! उस अभाव ग्रस्त युग में चल रहा था भारत का मैक्सिम गोर्की!

अपने हृदय में गरीबो के लिए अपरिमित सहानु-भूति लिए! कुप्रथाओ के विरोध में जागरूक विद्रोह लिए। साहित्य का सुभट सेनानी जनता को जीवन का सीधा और सच्चा पथ बता रहा था। समाजरूपी उपवन का चतुर माली अपनी योग्यता से मानव मन की कलिया खिला रहा था।

किन्तु निरन्तर गरीबी और बीमारी के घुन से खाया जाकर अपने 'मगल सूत्र' उपन्यास को अधूरा छोडता हुआ वह सन् १९३६ के आठ अक्टूबर को स्वर्गारोहगामी हुआ। लोग कहते है उन्हे मरे आज सोलह वर्ष हो गये। क्या वे सचमुच मर गये, नहीं ऐसा नहीं, प्रेमचन्द नही मर सकता, कभी नही मर सकता। वह अमर है

●

किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्ताओ में से एक है। काम करते हुए वह कभी थकते नही। वह अत्यन्त जागरूक रहते है। उनकी जाग्रत दृष्टि से कोई की कोई भी बात नही छूट पाती। वह एक तत्त्व वेत्ता हैं और गुजराती के एक लोक-प्रिय लेखक। गुजराती के वह जैसे विद्वान् हैं वैसे ही मराठी के भी है। वह जातीय साम्प्रदायिक या प्रातीय अहकार या दुराग्रह से बिल्कुल मुक्त हैं। वह एक स्वतत्र चितक है वह राजनीतिज्ञ नही एक पैदायशी समाज-सुधारक है। समस्त धर्मों के विद्यार्थी है। उनमें धार्मिक कट्टरता का कोई चिन्ह नहीं। वह जिम्मेदारी ओढने और विज्ञापन बाजी से भागते हैं। इतने पर भी कोई ऐसा आदमी नही मिलेगा जो जिम्मेदारी लेने पर भी उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णता के साथ पूरा कर सके। बडी मुश्किलो से मै उन्हें गाधी-सेवा-सघ का अध्यक्ष बनने को राजी कर सका था। उनकी परिश्रमशीलता और सरल श्रद्धा के कारण ही सघ को इतनी महत्ता और उपयोगिता प्राप्त हुई। उन्होने अपने स्वास्थ्य के प्रति पूरी लापरवाही रखकर सदा अपना द्वार सत्य शोधको के लिए खुला रखा। कोई आश्चर्य नही कि इस सबसे वह सघ के एक अभिन्न अग बन गए। असीम सावधानी के साथ उन्होने सघ के लिए एक ऐसा विधान बनाया जो ऐसी किसी भी सस्था के लिए नमूने का काम दे सकता है।

—मो० क० गाधी

हरिजन]

●

कसौटी पर

['जीवन-साहित्य' में समीक्षा के लिए हमारे पास स्वेच्छा-पूर्वक बहुत-सी पुस्तकें भेजी जाती हैं। उनमें से चुनी हुई पुस्तकों पर हम स्वतन्त्र रूप से अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। जो पुस्तकें छूट जाती हैं, उनके विषय में हमारी लाचारी मानी जानी चाहिए। इस समय हमारे पास निम्नलिखित पुस्तकें आई हुई हैं। इनमें से कुछ पर हम आगामी अंक में विस्तार से चर्चा करेंगे। —सम्पादक]

यौन-मनोविकार : कारण और निवारण

लेखक—डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्ता, प्रकाशक-स्वास्थ्य-संदेश प्रकाशन, कालपी। पृष्ठ ९८, मूल्य ।।।≈)

हिन्दी में सैक्स-संबंधी साहित्य का प्रायः अभाव-सा है। जो पुस्तकें मिलती हैं, उनमें से ९९ प्रतिशत अप्रमाणिक और अवैज्ञानिक ढंग से लिखी हुई है, जिन्हें पढ़कर पाठकों को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। शरीर-रचना की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति को होनी चाहिए; लेकिन दुर्भाग्य से इस विषय को अश्लील मानकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। परिणाम यह होता है कि ठीक-ठीक जानकारी न होने के कारण लोग अनेक रोगों के शिकार होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, प्रस्तुत पुस्तक यौन-मनोविकार के कारणों पर प्रकाश डालती है और उनके निवारण का मार्ग बतलाती है। उसे पढ़-कर ज्ञात होता है कि हमारे बहुत से रोग तो काल्पनिक होते हैं और जो रोग नहीं है, उसे अपनी अज्ञानता के कारण हम रोग समझ बैठने की भूल करके अपना अहित करते हैं। स्वास्थ्य की समस्या दिन-प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। स्वतंत्र भारत को जबकि पूर्ण स्वस्थ और सशक्त होना चाहिए, वह क्षीण होता जा रहा है। उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। आलो-च्य पुस्तक काम की है, इसलिए वह बीमारियों के बारे में अनेक भ्रांत धारणाओं को दूर करती है और आजकल के झूठे विज्ञापनों से बचने की चेतावनी देती है। वह यह भी बताती है कि आदमी गिर कर कैसे उठ सकता है। पूर्णतया वैज्ञानिक दृष्टिकोण से न लिखी होने पर भी पाठक यदि इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो उन्हे बहुत ही नई बातों की जानकारी हो जायगी। —स०

[समालोचना के लिए दो प्रति आना आवश्यक है।

१. एशिया का आधुनिक इतिहास—ले० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रका० सरस्वती सदन मसूरी ९।।)
२. रजत रश्मि—ले० रामकुमार वर्मा प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ काशी २।।)
३. संस्मरण—ले० बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ काशी ३)
४. आकाश के तारे : धरती के फूल—ले० कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, प्रकाशक—उपरोक्त २)
५. संस्कृति समस्या—ले० स्वामी सत्यभक्त, प्रका० सत्याश्रम, वर्धा १।।)
६. ईश्वर के सम्पर्क में—मूल ले० रेल्फ वाल्डो ट्राइन अनु० केदारनाथ गुप्त, प्रका० छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग २)
७. किशमिश चिकित्सा—मूल ले० डा० जोशिया ओल्ड फील्ड, अनु० केदारनाथ गुप्त, प्रका० उपरोक्त ।।=)
८. तपोवन—संकलनकर्ता—श्री शुकदेव दुबे, प्रका० कलामंदिर प्रयाग १।।)
९. रत्न समुच्चय—सम्पा० जगपति चतुर्वेदी, प्रका०—आदर्श ग्रन्थमाला, प्रयाग १)

क्या व कैसे ?

किशोरलालभाई भी गये !

गाधीजी की मृत्यु के बाद उनके जिन सगी-साथियो ने उनके कार्य को भली प्रकार सभाल लिया था, उनमें श्री किशोरलालभाई का स्थान बहुत ऊचा था। उनका ज्ञान सागर की तरह अथाह और उनकी प्रज्ञा हिमालय की भाति अचल थी। स्वास्थ्य जीर्ण और काया क्षीण होते हुए भी वे दृढ़तापूर्वक अतिम क्षणतक अपने दायित्व को वहन करते रहे। 'हरिजन' पत्रो के पाठक जानते है कि वह कितनी निर्भीकतापूर्वक अपने विचार व्यक्त करते थे। उनके विचारो का किसपर क्या प्रभाव पडेगा, कौन उनसे अप्रसन्न हो जायगा या कौन खुश, इसकी उन्होने कभी चिंता नही की। वे अपने प्रति सदैव ईमानदार रहे।

गाधीजी की विचार-धारा का उन्होने गहराई से अध्ययन करके स्वतत्र बुद्धि से उसका चिंतन किया था। यही कारण था कि जटिल-से-जटिल समस्याओं का भी वह बहुत सफाई और सचाई के साथ हल बता देते थे। विचारो की स्पष्टता की वजह से उनकी लेखन-शैली भी सहज और बोधगम्य होती थी। वह एक महान् विचारक थे और जब भी कोई समस्या उनके सामने आती थी, उसकी तह में जाते थे। निष्पक्ष इतने थे कि बडे-से-बडे आदमी का भी लिहाज नही करते थे।

उनका जीवन निरतर कर्ममय रहा। भरी जवानी में वह गाधीजी के पास आये थे, पर उन्होने अपनी कोई आकाक्षा शेष नही रखी। आत्म-प्रचार से वह सदा बचते रहे। विस्मय होता है कि दमे से जर्जरित स्वास्थ्य को लेकर वह इतना परिश्रम कैसे कर सके ! आप उन्हें पत्र भेजिये। आशा से पहले आपको उत्तर मिल जायगा। लेख मांगिये, आपकी माग खाली नही जायगी और फिर हरिजन-पत्रो के पन्ने-के-पन्ने उनके लेखो से भरे रहते थे। बिना आत्मिक शक्ति के उनकी जैसी काया के लिए इतना परिश्रम कदापि समव नही हो सकता था। कर्मठता उनके जीवन का धर्म थी और उस धर्म का पालन करते-करते ही उनके प्राण विसर्जित हुए।

किशोरलालभाई के जीवन की सादगी स्पृहणीय थी। न कोई दिखावट, न कोई आडम्बर और खान पान अत्यत सयमी।

किशोलालभाई को एक-न-एक दिन जाना ही था, पर आज जब कि अहिंसा की और अहिंसा में निष्ठा रखनेवाले लोगो को पग-पग पर चुनौती मिल रही है, हमें उनका निधन बहुत अखर रहा है। आज के युग को उन जैसे निष्ठावान व्यक्तियो की आवश्यकता है।

इस पुण्यात्मा को हम अपनी और 'जीवन-साहित्य' परिवार की हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करते है। 'मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य'—परिवार के प्रति उनका बडा स्नेह एव आत्मीयता थी। उन्हें खोकर हमें ऐसा लग रहा है कि हमारे परिवार का एक अत्यन्त आत्मीय जन चला गया।

गाधी-जयंती

२ अक्तूबर को गाधी जयती है। अग्रेजी तिथि के हिसाब से इसी तारीख को बापू का जन्म हुआ था। उन बापू का, जो जबतक जीये, अपने जीवन का प्रत्येक क्षण देश की सेवा में व्यतीत करते रहे और उसीमें उन्होने अपने प्राणो का विसर्जन किया। यह पुण्य-दिवस हमें स्मरण दिलाता है कि बडी-बडी बातें बनाकर कोई बडा नही बन जाता, बडे बनने के लिए महान् साधना की आवश्यकता होती है।

बापू की सबसे प्रिय वस्तु चर्खा थी और उन्होने कहा था कि अगर मनाई ही जाय तो उनकी नहो, 'चर्खा-जयती' मनाई जानी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि बापू चाहते थे कि उन्हें याद रखने का सर्वोत्तम तरीका

उनकी प्रवृत्तियों, उनके हितकारी कार्यों को आगे बढ़ाना है। पर खेद है कि आज हम उनका नाम तो लेते हैं, पर उनके काम को बहुत कम लोग हैं, जो निष्ठापूर्वक कर रहे हैं। कांग्रेस के अधिकांश तपेतपाये लोग सरकारी पदों पर चले गये हैं और वहां 'कुर्सी की मजबूरी' से बंधे हैं। जो शेष हैं, उनमें थकान-सी आ गई है और वे निराश-से हो गये हैं। तपोधन विनोबा जैसे इनेगिने लोग हैं; पर युग के विपरीत प्रवाह में उन्हें अपनी बात लोगों तक पहुंचाने के लिए कितना संघर्ष और परिश्रम करना पड़ रहा है। आज मानवता पीड़ित होकर कराह रही है और मानव की निष्ठा हिल गई है।

ऐसे में गांधीजी को हम कैसे याद करें? नाम गांधी का लें, काम शैतान का करें, इससे अधिक विटम्बना और प्रवंचना क्या हो सकती है? बापू के प्राणों से भी प्यारी खादी आज मर रही है, ग्रामोद्योग नष्ट हो रहे हैं, नई तालीम को शंका की दृष्टि से देखा जा रहा है, गर्जेकि उनके कामों को धीरे-धीरे छोड़ा जा रहा है। स्मरण रहे कि गांधीजी के कामों को तिलांजलि देकर हम उस पुण्यपुरुष को जीवित नहीं रख सकते। गांधीजी का अस्तित्व उनके कामों में है और उनका नाम लेने और उनका स्मरण करने के अधिकारी हम तभी होंगे जब उनके अधूरे कामों को पूरा करेंगे, उनके बताये मार्ग पर चलेंगे। ऐसे आदमी भले ही थोड़े हों, देश का भविष्य उन्हींके हाथों में सुरक्षित रहेगा।

गांधी-जयंती के इस पुण्य-पर्व पर सर्वोदयी कार्यकर्त्ताओं को बापू के मार्ग में अपनी निष्ठा को पुनः मजबूत कर लेना चाहिए और बापू के काम में पूरे मन और हृदय से जुटने का संकल्प कर लेना चाहिए। तभी जयंती मनाने का कोई अर्थ और उसकी उपयोगिता होगी।

ए.आई.सी.सी. के प्रस्ताव

ए. आई. सी. सी. का दो दिन का अधिवेशन इंदौर में समाप्त हो गया। अखबारों से पता चलता है कि वहां काफी लोग इकट्ठे हो गये थे; लेकिन जिस गरमागरमी की आशा लेकर वे गये थे, वह पूरी नहीं हुई। अधिकांश लोगों की धारणा थी कि कांग्रेस में आपसी तनाव काफी हो गया है, जिसका विस्फोट इंदौर में अवश्य होगा; लेकिन पं० नेहरू के कुशल नेतृत्व ने उसका मौका नहीं आने दिया। यह निश्चय ही बड़े हर्ष की बात है। आपसी मतभेदों को सार्वजनिक रूप देना या किसी संगठन को खींचतान करके कमजोर बनाना व्यक्ति या देश, किसीके लिए भी हितकर नहीं है। उससे नुक्सान ही अधिक होता है।

इंदौर में इतने नेता लोग इकट्ठे हुए; लेकिन सरकारी नीति और कार्यों का समर्थन करने के अलावा इस जनशक्ति का क्या उपयोग हुआ? नेहरूजी और उनकी सरकार की वैदेशिक या अन्य नीतियों के पोषक प्रस्ताव पास करने के लिए क्या इतने आदमियों को इकट्ठा करने की जरूरत थी? क्या देश को अपना कुछ देने के लिए कांग्रेस के पास कुछ भी नहीं रहा?

अपने महाप्रयाण के एक दिन पूर्व गांधीजी ने अपने 'आखिरी वसीयतनामे' में लिखा था, "देश का बंटवारा होते हुए भी, हिन्द की राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा तैयार किए गए साधनों के जरिये हिन्दुस्तान को आजादी मिलने के कारण मौजूदा रूपवाली कांग्रेस का काम अब खत्म हुआ—यानी प्रचार के वाहन और धारा-सभा की प्रवृत्ति चलानेवाले तंत्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गई।" और उन्होंने "शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गावों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल" करने, फौजी सत्ता पर देश की सत्ता को प्रधानता देने, कांग्रेस को राजनैतिक पार्टियों और सांप्रदायिक संस्थाओं की गंदी होड़ से बचाने तथा ऐसे ही अन्य कारणों से कांग्रेस को तोड़ने और 'लोकसेवकसंघ' के रूप में प्रकट करने का स्पष्ट आदेश दिया था। वह जानते थे कि आजादी मिल जाने पर यदि कांग्रेस के रूप में आमूल परिवर्तन न किया गया, उसकी प्रवृत्तियों को राजनीति से हटाया न गया, सेवा के क्षेत्र में न लगाया गया तो सत्ता के पीछे लोगों के सिर फूटेंगे। इसीलिए उन्होंने कांग्रेस को सेवा के मार्ग पर प्रवृत्त करने की सलाह दी थी; लेकिन आज तो ऐसा लगता है कि सरकार से पृथक्

(शेष पृष्ठ ३८२ पर)

मंडल की ओर से

'जीवन-साहित्य' के पिछले अक में हमने मडल की सहायक सदस्य-योजना तथा उसकी प्रगति के विषय में कुछ जानकारी दी थी। पाठको को यह जानकर हर्ष होगा कि योजना खूब लोकप्रिय हो रही है और उसके सदस्यो की सख्या तेजी से बढ रही है। अनेक हितैषी बधु उत्साहपूर्वक सदस्य बनाने में योग दे रहे है। कलकत्ते के प्रयत्न जारी है। वहा पर कई अन्य नए बन्धु आगे आ गये है और हमारी पूरी-पूरी सहायता कर रहे है। पिछले अक में हमने जिन महानुभावो के नाम दिये है, उनका तो हार्दिक सहयोग मिल ही रहा है, साथ ही सर्व श्री पुरुषोत्तमदास जी बेजडीवाल, श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया, श्री दुर्गाप्रसाद सरावगी, श्री श्यामदेवजी देवडा, श्री रामेश्वरजी टाटिया प्रभृति से भी हमें पर्याप्त सहायता मिली है। इन सब महानुभावो के हम अत्यन्त आभारी है। इनकी मदद का ही यह परिणाम है कि कलकत्ते में इतने सदस्य इतनी तेजी से बन गये है और बनते जा रहे है। प्रयत्न दिल्ली में भी चल रहा है। पिछले अक में जिन महानुभावो के नाम दिये थे उनके अतिरिक्त श्री महेश्वरदयाल का हार्दिक सहयोग भी हमें मिल रहा है।

पिछले अक में हमने सदस्यो की नामावलि दी थी। आगे के नाम इस प्रकार है

४४ सेन्ट्रल डिस्टिलरी एड केमिकल वर्क्स लि०, मेरठ कैंट।

४५ श्री भरतरामजी दिल्ली क्लाथ एड जनरल मिल्स लि०, दिल्ली।

४६ श्री आचार्य, श्री वर्धमान विद्यालय, बालचन्द-नगर, पूना।

४७ श्री हनुमान पुस्तकालय रतनगढ, बीकानेर।

४८ श्री सेन्ट्रल डिस्ट्रिब्यूटर्स लि०, कलकत्ता।

४९ श्री डी० एल० एफ०, हाउसिग एड कन्स-ट्रक्शन, लि०, नई दिल्ली।

५० इम्पलाइज बेनीफिट फड ट्रस्ट, दिल्ली।

५१ श्री अवध शुगर मिल्स लि०, हरगाव, सीतापुर।

५२ हिन्दुस्तान शुगर मिल्स लि०, गोलागोकरन-नाथ, खेरी।

५३ श्री मोहनलाल जालान, रायगढ।

५४ श्री मोहनलाल, नई दिल्ली।

५५ श्री प्रिंसिपल, शारदा इण्टर कालेज, मुकुन्द-गढ, जयपुर।

५६ श्री गोविन्दराम सेक्सरिया, इन्दौर।

५७ श्री हनुमान शुगर मिल्स लि०, मोतीहारी, चम्पारन।

५८ श्री एन० के० झाझरिया, कलकत्ता।

५९ श्री मत्री, जैन श्वेताबर तेरापथी, विद्यालय, कलकत्ता।

६० श्री पूनमचन्द जी गुजराती, कलकत्ता।

६१ श्री मुरलीधर सोनथलिया, कलकत्ता।

६२ श्री सूरजमल मोहता, कलकत्ता।

६३ श्री ओकारमल सर्राफ, कलकत्ता।

६४ श्री बैजनाथ तापडिया, कलकत्ता।

६५ श्री गिरधारीलाल रामनारायण, कलकत्ता।

६६ श्री कन्हैयालाल बेजडीवाल, कलकत्ता।

६७ श्री मुरलीधर खेतान, कलकत्ता।

६८ श्री पुरुषोत्तमदास मसकरा बी ए सहजनमा, गोरखपुर।

६९ श्री बनारसीलाल बजाज, बनारस।

हमें विश्वास है कि हिंदी-प्रेमी महानुभाव हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के इस कार्य में अवश्य सक्रिय सहयोग प्रदान करेगे। हिन्दुस्तान के हर स्थान पर हम लोग शायद न पहुच सके। अत हमारा अनुरोध है कि प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी बन्धु अपने यहा के साधन-सम्पन्न व्यक्तियो के पते हमें भेज दें, जिससे हम लोग उनसे पत्र-व्यवहार करके अथवा सुविधा हो तो मिलकर इस योजना में उनका लाभ ले सके और योजना का लाभ उन्हें दे सके। जो सज्जन सदस्य बन गये है, उनसे भी हमारा निवेदन

है कि अन्य बन्धुओं की रुचि इसमें उत्पन्न करे और उन्हें सदस्य बनने की प्रेरणा दें। आज के युग में, जब कि साहित्य के नाम पर बहुत कुछ अवांछनीय पुस्तकें जोरों से बिक रही हैं, जो भी इस योजना द्वारा गांधीजी, विनोबाजी, पं० नेहरू, राजगोपालाचार्य, काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला, आदि चिंतकों एवं राष्ट्र-उन्नायकों के स्वस्थ और चरित्र निर्माणकारी साहित्य के प्रसार में योग देगा, वह हिन्दी-साहित्य की और देश की भारी सेवा करेगा।

(क्रमशः)

मंडल का जयंती समारोह

'मण्डल' का जयंती उत्सव सितम्बर में था उसके आसपास के महीनों में करने का विचार था; लेकिन कुछ मित्रों की सलाह है कि जनवरी-फरवरी में करना ठीक होगा। वैसे भी फिलहाल हम लोगों का ध्यान सहायक-सदस्य-योजना के सदस्य बनाने पर केन्द्रित हो रहा है और वह काम तेजी से चल रहा है। जैसा कि हमने ऊपर निवेदन किया है कलकत्ता, दिल्ली आदि में काफी सदस्य बने हैं और बन रहे हैं। अतः जयन्ती-समारोह जनवरी-फरवरी के आस-पास करने का विचार किया गया है। तिथि निश्चित होने पर उसकी सूचना पाठकों को दे दी जायगी। 'मण्डल' के बहुत से हितैषी उत्सुक हैं कि समारोह जल्दी-से-जल्दी किया जाय। उनके सौजन्य और आत्मीयता के लिए हम उनके आभारी हैं। हमारा उनसे अनुरोध है कि वे सदस्य-योजना को सफल बनाने में योग दें। यों तो जितने सदस्य बन जायँ, अच्छा है; लेकिन हमारी कल्पना है कि ५०० तो बनने ही चाहिए, तभी हम लोग साहित्य-सम्वर्द्धन और विकास की योजनाओं को पूरा कर सकेंगे। हमें विश्वास है कि हमारे हितैपियों के सक्रिय सहयोग देने पर ५०० सदस्य बनने में विशेष समय नहीं लगेगा।

—मंत्री

(पृष्ठ ३८० का शेष)

कांग्रेस का अपना अस्तित्व कुछ रहा ही नहीं। इतने प्रस्ताव पास किए; लेकिन भूदान-यज्ञ के बारे में प्रस्ताव पास करना तो दूर, दो शब्द भी किसी ने नहीं कहे। गांधीजी जानते थे कि सच्ची आजादी सरकारों के अदल-बदल से नहीं मिलेगी, उसके लिए सात लाख गांवों को संगठित करना होगा, उनकी गरीबी दूर करनी होगी, अशिक्षा मिटानी होगी। इसी दृष्टि से उन्होंने राजनैतिक संघर्ष के साथ-साथ रचनात्मक कार्यों पर जोर दिया था। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर भी रचनात्मक कार्यों की आवश्यकता ज्यों-की-त्यों विद्यमान है। हमारी निश्चित राय है कि कांग्रेस सरकारी नीति या कार्यों पर मुहर लगाने मात्र से देश की उतनी सेवा नहीं कर सकेगी, जितनी कि सेवा के कार्यों को स्वतंत्र रूप से अपनाकर। देश के युवकों को आज ऐसा कार्यक्रम चाहिए जो उनकी शक्ति, उत्साह और त्याग का उपयोग कर सके। कांग्रेस वैसा कार्यक्रम तैयार करके और देश की जन-शक्ति को उसमें लगाकर ही मजबूत बन सकती है, अन्यथा वह राजनैतिक दलों का और अधिक अखाड़ा बन जायगी। और उसका परिणाम यह होगा कि लोगों में जो-कुछ थोड़ा-बहुत कांग्रेस का नाम शेप है, वह भी मिट जायगा।

—य०

यह अंक

इस बार जैसा कि पाठक देखेंगे सारा अंक एक प्रकार से स्मृति अंक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसी कारण 'कहीं हम भूल न जाएँ' स्तम्भ स्वतन्त्र रूप में नहीं जा रहा है। हम चाहेंगे कि हमारे पाठक इस अंक के बारे में तथा इधर जो परिवर्तन हमने 'जीवन-साहित्य' में किये हैं उनके बारे में अपनी राय हमें भेजें जिससे नये वर्ष से जो और परिवर्तन हम करने वाले हैं उनके सम्बन्ध में निश्चित धारणा बनाई जा सके।

—सुशील

Reg. No. D. 228.

लेख-सूची

आवश्यक सूचना

'जीवन-साहित्य' के ग्राहक नं० १००१ से २२०० तक का वार्षिक शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो जाता है। इस वर्ष डाकखाने के नये नियमों के अनुसार कोई आवश्यक सूचना अथवा मनीआर्डर फार्म नहीं रख सकते। ग्राहकों से हमारा अनुरोध है कि वे स्वतः ही अपना आगे के वर्ष का शुल्क दिसम्बर १९५२ के अंत तक भेज देने की कृपा करें।

आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें। नवीन ग्राहक मनिआर्डर कूपन पर 'नवीन ग्राहक' शब्द अवश्य लिखें।

वी० पी० से भेजने का स्वीकृति-पत्र यदि भेजें तो अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें अन्यथा भूल से आपका नाम नवीन ग्राहकों में भी लिखा जा सकता है और इस प्रकार दो स्थानों पर नाम लिख जाने से वी०पी० आपको दो बार भेजी जायगी।

'मण्डल' की जयंती के अवसर पर 'जीवन-साहित्य' का बहुत सुन्दर और उपयोगी विशेषांक प्रकाशित हो रहा है—'प्रगति के पच्चीस वर्ष', जिसमें पिछले पच्चीस वर्ष की साहित्यिक प्रगति का विद्वानों द्वारा विवरण उपस्थित किया जायगा। यह विशेषांक विशेषांक से कहीं अधिक संदर्भ ग्रंथ होगा। पाठक कृपया इसका ध्यान रक्खें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

दिसम्बर १९५२] [वर्ष १३, अंक १२

पहाड़ी पर के उपदेश

हज़रत ईसा

मुबारिक है वे जो दूसरो की भलाई करने के लिये भूख प्यास सहते है, उन्हे जरूर भर पेट खाने को मिलेगा।

अगर तुम पूजा का सामान लेकर मन्दिर में पूजा के लिए जा रहे हो और तुम्हे याद आ जावे कि तुम्हारे किसी भाई को तुमसे कुछ भी दुख पहुँचा है तो उस सामान को वही छोड कर लौट जाओ, पहले जाकर अपने भाई से सुलह करो और फिर जाकर ईश्वर की पूजा करो।

कोई आदमी एक साथ दो मालिको की नौकरी नही कर सकता। या तो एक से नफरत करेगा और दूसरे से प्रेम और या एक की सेवा करेगा और दूसरे से बेपरवाही। तुम परमात्मा और 'मैमन' (धन का देवता) दोनो की सेवा एक साथ नही कर सकते।

विनोबा

सबका सहयोग चाहिए

कल मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि स्त्रियों को सभा में लाइये। और यह खुशी की बात है कि कुछ स्त्रियां यहां आई हैं। लेकिन इसके आगे जो भी सभा होगी उनमें और भी अधिक तादाद में स्त्रियों को आना चाहिए। ज्ञान सीखने का मौका स्त्रियों को मिलना चाहिए। जो नाहक झगड़े की सभायें होती हैं उनमें स्त्रियां न जायें। और अगर जायें भी तो वहां पर निकम्मी वातें न होने दें, उसे रोकें। लेकिन अगर आज इतनी हिम्मत आपमें नहीं है तो वहां मत जाइये। लेकिन जहां पर ज्ञान सुनने को मिलेगा, जीवन-शुद्धि की तथा जीवन कला की वातें होंगी, जरूर जाना चाहिए। वहां स्त्रियों को सार्वजनिक सेवा के काम में शरीक होना भी बहुत आवश्यक है। बहुत से लोग मानते हैं कि स्त्रियों का काम घर तक ही महदूद है। लेकिन मैं यह नहीं मानता। स्त्री और पुरुष, दोनों का काम घर में भी है और घर के बाहर भी। हां, घर के काम गहरे होते हैं। बच्चों का रक्षण करना बुनियादी और कठिन काम हैं। और इस के लिए माताओं को अधिक ध्यान देना आवश्यक है। फिर भी उन्हें समाज के कामों में आना चाहिए, नहीं तो आज के जैसा वह काम पुरुषों के ही हाथ में रहेगा। और पुरुषों ने जो राह चलायी है वह खतरनाक है। आज हम देख रहे हैं कि दुनिया में पचीस सालों में दो महायुद्ध हो चुके और आज भी झगड़े और कशमकश चल रही है। कोई नहीं कह सकता कि इसमें से तीसरा महायुद्ध निर्माण होगा। पुरुषों ने जो समाज-रचना बनायी उसमें युद्ध और झगड़े ही निर्मित हुए। वे यशस्वी नहीं हुए और इसलिए स्त्रियों को उस क्षेत्र में आना चाहिए और अपने गुणों का प्रभाव वहां डालना चाहिए। स्त्रियों में दया, क्षमा, शांति और प्रेम इत्यादि गुण होते हैं। इन गुणों की आवश्यकता जिस तरह घर में है उसी तरह समाज में भी है। समाज का काम केवल पुरुषों के हाथ सौंपने से ही हो सकता। आज तक हमने ऐसा किया और नतीजा यह हुआ कि घर में तो प्रेम और शांति रही, लेकिन बाहर झगड़े रहे। अंदर की और बाहर की दुनिया का यह भयानक भेद मिट जायगा, अगर जिस प्रेम के आधार पर कुटुंब की रचना हुई है उसी के आधार पर समाज की हो जाय।

भूदान-यज्ञ के क्या मानी है यह स्त्रियां, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी समझ सकते हैं। स्त्रियों के तो वह बात सीधे मन में पैठ जाती है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि आप जिस तरह कुटुंब में रहते हैं, प्रेम से एक दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं, घर की कमाई सबकी मान कर उसका सब समान उपभोग करते हैं, वैसे ही समाज में भी होना चाहिए। सारा गांव एक कुटुंब बनना चाहिए। जमीन सबकी होनी चाहिए। हमने यह देखा है कि सुख दूसरों को बांटने से बढ़ता है और दुःख बांटने से घटता है। हम सुख बढ़ाना और दुख घटाना चाहते हैं और दोनों का इलाज एक ही है—दूसरों के साथ बंटवारा करो। मैं चाहता हूं कि गांव वाले एक-दूसरे के सुख-दुःख में हिस्सा लें। किसी को अपना सुख देने से खुद का घटता नहीं। लेकिन आजकल जो पैसे की माया चल रही है उस पर से ऐसा लगता है कि व्यक्ति अपना पैसा दूसरों को देने से खुद का कुछ नुकसान होता है यह महसूस करता है। इसका कारण यही है कि कुटुंब का न्याय समाज में नहीं चलता। इसलिए उस न्याय को समाज में लाना होगा। तब हर कोई समझेगा कि दूसरे के दुःख में हिस्सा लेने से दुःख कम होता है और अपने सुख में हिस्सा देने से सुख बढ़ता है। यह काम कितने महत्व का है इसको अगर स्त्रियां समझेंगी तो वे जमीन की माया ममता नहीं रखेंगी। और अपने पति से कहेंगी कि बाबा को जमीन दे दो। उनकी नीति से एक का भला तो होता ही है लेकिन उसके साथ दूसरे का बुरा नहीं होता है। इसलिए उनके कहने के अनुसार छठा हिस्सा दे दो। गरीब को जमीन मिलेगी तो वह कृतज्ञ होगा। उसके मन में आपके प्रति

प्रेम निर्मित होगा और आपको एक अच्छा मित्र हासिल होगा। अगर किसी के पास अठारह एकड जमीन हो और उसमें से वह तीन एकड जमीन दे देता है, तो उससे उसका कुछ बिगडता नही। अपने बचे हुए पन्द्रह एकड में वह ज्यादा मेहनत करेगा, जिससे देश का उत्पादन बढेगा। उस पर परमेश्वर की कृपा होगी। और जिसे वह तीन एकड जमीन मिलेगी वह भी सुखी होगा। अपने पास ज्यादा जमीन होने से हम पूरी तरह से उसकी हिफाजत नही कर सकते हैं। इसलिए जमीन कम हो जाय तो कुछ बिगडता नही, इसलिए छठा हिस्सा देना सबका कर्तव्य है।

कल यहा पर प्रात के कार्यकर्त्ताओ की परिषद् हुई थी। सारे प्रात से एक सौ पचास कार्यकर्त्ता आये थे। उन्होने तय किया कि हम सबसे छठा हिस्सा मागेंगे। इसलिए अब बहनो को अपने पति, भाई और लडको को समझाना चाहिए कि हमारा मोह मत रखना। जमीन देने से गाव का और देश का भला होता है। पुरुष अक्सर कहते है कि हम जमीन देंगे तो हमारी स्त्रिया क्या कहेंगी और बाल-बच्चो का कैसे पालन-पोषण होगा। इसलिए इस काम को बहनें समझ ले, तो जो प्रेम का वातावरण घर में है वह गाव में भी निर्मित हो सकता है। मैं बहनो को कहना चाहता हू कि आपको ग्राममाता बनना चाहिए, तो गाव गोकुल बनेगा। इसी दुनिया में वैकुठ का निर्माण होगा। जहा प्रेम होता है वही पर वैकुठ होता है। वह किसी कोने में पडा हुआ नही रहता। वह कैलास में ही नही, हमारे यहा भी है। गाव में प्रेम का वातावरण बने तो सबके जीवन पवित्र बनेंगे और गाव गोकुल होगा। स्त्रिया इसको सहज समझ लेंगी। उन्हे यह समझने में कुछ भी कठिनाई नही होगी। लेकिन, उन्हें सभा में आने ही नही दिया जाता। पर्दे में कैदी जैसे बद रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि उनके दिल छोटे बन जाते है। दरअसल में उनके दिल छोटे नही होते। परतु घर के सकुचित वातावरण में रहने के कारण वे अपने ही बाल-बच्चो का सोचती है। लेकिन जब स्त्रियो के कानो में ज्ञान जायगा तब ऐसी हालत नही रहेगी। मैं कहता हू कि हरेक सभा मे जितने पुरुष आते है उतनी ही स्त्रिया आयें, तो ही समाज में इस पर पूरा विचार होगा। अधूरे विचार से गाडी चलती नही। रुक जाती है। स्त्री और पुरुष, दोनो साथ-साथ चलने से समाज की गाडी चलती है। दोनो को मोक्ष का समान अधिकार है। स्त्रियो को मोक्ष, विद्या, ज्ञान, और वे चाहे तो धन का भी अधिकार होना चाहिए। दोनो को समान अधिकार होना चाहिए, यह बात शास्त्रो ने भी मानी है। मनु ने कहा है कि माता की योग्यता पिता से हजार गुना बढकर है। इसका मतलब यह है कि अगर माताओ से ठीक ढग से ज्ञान मिलेगा तो सारे समाज की जितनी रक्षा होगी उतनी रक्षा और किसी से होने वाली नही है। और इसलिए मनु ने स्त्रियो के सामने पवित्रता का आदर्श रखा। आज भी हम देख रहे है कि स्त्रियो ने ही समाज में पवित्रता की रक्षा की है। तिलक महाराज ने कहा है कि स्त्रियो ने धर्म की रक्षा की है। हम देखते हैं कि स्त्रिया शराब नहीं पीती। बीडी और सिगरेट से भी उन्हे नफरत है। अगर वे इस तरह का बुरा काम करने लगेंगी तो सारा समाज खतम हो जायगा। आजकल समान हक की माग की जाती है। कुछ स्त्रिया कहती है कि हमें भी बीडी-सिगरेट पीने का पुरुषों के जितना ही अधिकार होना चाहिए। मैं उनसे कहूगा कि, हा, नरक में जाने का दोनो का पूरा अधिकार है। पर मैं चाहता हू कि वे ऐसी बुरी बाते न करे। उनका काम तो पुरुषों को नरक में से छुडाना है। मैं चाहता हू कि हरेक पढी-लिखी स्त्री 'गीता-प्रवचन' पढे तो मेरा काम आसान होगा। स्त्री ज्ञान सपादन करेगी और गीता-माता हरेक घर में बैठ जायगी तो मेरा काम हो जायगा।

कुछ विद्यार्थियो ने मुझसे सवाल पूछा है कि आपके भूदान-यज्ञ में हम किस तरह से योग दे सकते हैं। मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि विद्यार्थी इसमें दिलचस्पी ले रहे है। कुछ लोग विद्यार्थियो के बारे में निराश हो गए हैं। वे शिकायत करते है कि विद्यार्थी उद्दड बन गए है, उनमें नम्रता नही है। कुछ हद तक यह बात सही भी हो सकती है। लेकिन कुल मिला कर के हिन्दुस्तान का विद्यार्थी-

समाज विनयशून्य नहीं है। अगर कसूर है तो विद्यार्थियों का नहीं, तालीम का है। सब लोग कहते हैं कि तालीम गलत है। सरदार पटेल तो यह कहते-कहते मर गये कि तालीम खराब है। हमारे डा० राधाकृष्णन यही कहते हैं। फिर भी तालीम में कोई बदल नहीं हो रहा है। जब हर शख्स बदलना चाहता है तब बदल क्यों नहीं हो रहा ? क्या तालीम मृत्यु के समान भगवान् के हाथ की चीज है, हमारे बस की बात नहीं है ? ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन हम सोचते नहीं। और सोचते हैं तो आहिसता-आहिसता। ये पढ़े-लिखे लोग जितने सुस्त हैं उतने सुस्त देहात के लोग नहीं हैं। वैसे तो कुल मिलाकर हिन्दुस्तान के लोग सुस्त हैं। सब कहते हैं कि नई तालीम होनी चाहिए। पर चलाते हैं पुरानी ही रटन। स्कूलों में आज भी वही पुराना इतिहास, पुराना भूगोल, पुराना गणित चलता है। जबतक यह नहीं बदलता है तबतक विद्यार्थियों के मन में संतोष नहीं निर्माण हो सकता। विद्यार्थी तो अखबार पढ़ते हैं। दुनिया की सभी बातें वे पढ़ते हैं, जानते हैं और सुनते हैं। और फिर उनके दिलों में विद्या-ज्ञान प्राप्त करने की ख्वाहिश होती है और वे चाहते हैं कि देश की सेवा करें, परन्तु उन्हें सूझता नहीं कि किस तरह सेवा की जाय। क्योंकि उनकी विद्या का देशसेवा से कोई ताल्लुक नहीं है। नतीजा यह होता है कि विद्यार्थी असंतुष्ट हो जाते हैं और फिर उदण्ड बन जाते हैं। लेकिन मैं चाहता हूं कि वे उदण्ड न बनें। मेरा मानना है कि हिन्दुस्तान के विद्यार्थी अपनी मातृभूमि के लिए अत्यन्त पराक्रम करने के लिए उद्यत हैं। विद्यार्थियों के पास जमीन तो नहीं रहती है। लेकिन मैं चाहता हूं कि वे अध्ययन करें। जमीन का मसला क्या है, अर्थशास्त्र उस बारे में क्या कहता है, इसको वे समझ लें। हमारी बातें तो जान ही लें। लेकिन विरोधी विचारों का भी अध्ययन करें। मैं चाहता हूं कि विद्यार्थी इस विषय का पूरी तरह से अध्ययन करें।

दूसरी बात मैं यह चाहूंगा कि भूदान-समस्या तब हल होगी जब सारे लोग मेहनत-मजदूरी की आदत डालेंगे। आज विद्यार्थियों में वह आदत नहीं है। तुलसीदासजी ने कहा है कि हमको वर्षा, हिम, मारुत, घाम सहन करने की आदत होनी चाहिए। परंतु आज की तालीम ही ऐसी है कि विद्यार्थियों में यह आदत नहीं डाली जाती है। उन्हें सब तरह से महफूज रखा जाता है। यह सारा दोष तब जायगा जब तालीम में बदल होगा। अपनी तालीम में बड़ी भारी कमी यही है। लेकिन फिर भी विद्यार्थी इस बात को समझें और खुद मेहनत करें। अकसर घरों में माताएं या नौकर कपड़े धोते हैं, लेकिन विद्यार्थी को चाहिए कि अपने कपड़े खुद धोएं। मैं चाहता हूं कि वे अपना कमरा खुद साफ करें। और भी पुरुषार्थ करना चाहते हैं, तो सूत कातें और अपने लिए कपड़ा बनाएं, भाजी-तरकारी पैदा करें। शरीर को मजबूत बनाना, व्यायाम और खेलकूद की ओर ध्यान देना और ब्रह्मचर्य का पालन करना, जिससे काया, वाचा और मनसा पवित्र रह सकें, यह विद्यार्थियों का काम है। बीस साल तक शरीर बढ़ता है। उसी समय अच्छी आदतें डालनी चाहिएं। विद्यार्थी को नौ बजे सोना चाहिए और चार बजे उठकर अध्ययन करना चाहिए। लेकिन आजकल उलटा होता है, इसलिए विद्यार्थी दोनों तरफ से खत्म होते हैं। जिसने सुबह का समय खोया वह विद्यार्थी नहीं; प्रतिभा-शून्य, निस्सत्व मनुष्य है। प्रातःकाल में त्वरित विद्या हासिल होती है, इसलिए हमारे पूर्वजों ने भी सिखाया है कि सुबह अध्ययन करो। उससे ताजगी रहती है। रात को सिनेमा देखना बिलकुल गलत है। उससे मन, आंख और नींद, तीनों बिगड़ते हैं और स्वप्न आते हैं। रात को सोने के पहले तारिकाओं का दर्शन करना चाहिए। उससे बढ़कर क्या सिनेमा हो सकता है ? इस विशाल आकाश का और तारकाकुंजों का अध्ययन कर, भगवान् का चिंतन करके सो जायं तो अच्छा होगा। स्कूल में आगे जो काम करना है उसकी सारी तैयारी करनी चाहिए। आप भूदान-यज्ञ में शरीक होना चाहते हों तो इसके पीछे अर्थशास्त्र की जो बात है उसका अध्ययन करें। शरीर और मन पर अंकुश रखो और ब्रह्मचर्य का पालन करो। रात को सिनेमा मत देखो। यही मैं आपसे चाहता हूं। जो बड़े विद्यार्थी होते हैं

उनको छुट्टियां के समय में देहात में जाकर भूदान-यज्ञ का प्रचार करना चाहिए। सारे विद्यार्थी साफ-सुथरे रहें। घर की सफाई बहनें कर लेती हैं इसलिए विद्यार्थियों को चाहिए कि वे बाहर की सफाई करें। विद्यार्थी प्रति दिन पंद्रह मिनट भी सफाई को दें तो सारा बक्सर शहर आइना जैसा साफ होगा। घर के अन्दर जैसी सफाई रहती है वैसी बाहर भी होनी चाहिए। इसीलिए हमने 'स्वच्छ भारत आन्दोलन' यह शब्द उठाया। स्कूल में अच्छे पाखाने हों और विद्यार्थी उसकी सफाई की ओर ध्यान दें। मेरे मन में विद्यार्थियों के लिए प्रेम है। मैं आज तक कुछ न-कुछ विद्याभ्यास करता आ रहा हूं। दुनिया का काम तो चल ही रहा है। लेकिन मेरा ऐसा एक भी दिन नहीं जाता है जबकि मैंने कुछ-न-कुछ अध्ययन न किया हो। इसीलिए मैं ताजा रहता हूं। जड़ नहीं बनता। विद्यार्थी अगर यह करेंगे तो हिन्दुस्तान की नींव खड़ी होगी।

अब मैं शहर वाले शिक्षितों से कुछ कहना चाहता हूं। कल मैंने सुनाया कि मेरा काम एक बुनियादी काम है। हम न सिर्फ भूमि का बंटवारा करना चाहते हैं, बल्कि रामराज्य प्रस्थापित करना चाहते हैं। सारे गाँव परिशुद्ध और निर्मल बनना चाहते हैं। आज सुबह मैं जेल में सोशलिस्ट भाइयों से मिलने गया था। मुझे उनसे मिलकर खुशी हुई, क्योंकि वे भी देश की सेवा करने का खयाल रखते हैं। मुझे इस बात का दुख है कि वे एक दिन भी जेल में रहें। उन्हें फौरन छोड़ देना चाहिए। उससे कुछ भी बिगड़ेगा नहीं। मैंने उस निमित्त से सारा जेल देखा और मुझे आश्चर्य हुआ कि जेल में भी कातने और बुनने की मिल खड़ी कर दी है। कैदियों को यंत्र के सामने खड़ा रह कर काम करना पड़ता है। वे चोरी करके वहां पहुंचते हैं। और उनमें से बहुत से ऐसे होते हैं, जो खाना न मिलने के कारण चोरी करते हैं। हां, उनमें से कुछ बदमाश भी होते हैं, जो खाना मिलने पर भी बुरे काम करते हैं। लेकिन बहुत से लोग गरीब तबके के होते हैं। वहां जेल में उनको रखने का उद्देश्य यह है कि उनको वहां पर ऐसा उद्योग सिखाया जाय, जिससे बाहर जाकर वे अपने कुटुंब का पालन-पोषण कर सकें। अगर उनको हाथ से सूत कातना और बुनना सिखाते तो अच्छा होता। परंतु उन्हें छूटने पर क्या मिलों में काम मिल सकता है? क्या उनको रोजी मिलेगी, ऐसी कोई गारंटी है? यह नहीं हो सकता है। इसलिए उनको हाथ के उद्योग सिखाने चाहिए। लेकिन आजकल हम लोगों के दिमाग किस ढंग से चलते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता है। क्या हम गरीबों को यंत्र बनाकर उनसे पशुओं के जैसा काम लेना चाहते हैं? या उनकी बुद्धि विकसित हो, वे अपने गांव की सेवा करें, अपनी संपत्ति बढ़ायें, यह हम चाहते हैं? हमारी क्या कल्पना है इस पर जरा सोचना चाहिए।

मैं इस तरह सोचता हूं तो आज के जेल, विद्यालय, राज्य-कारोबार, व्यापार ये सब कैसे चलें, इसकी दूसरी भी सूरत हमारे सामने आती है और आजका सब कुछ भद्दा लगता है। अब हम उसको सुधारना चाहते हैं। हम जो कुछ सोचते हैं उस तरह से दूसरे सोचते ही नहीं, ऐसा मेरा कहना नहीं है। लेकिन पश्चिम से एक प्रवाह आया है, जिसमें हम सब बह रहे हैं। मैं पश्चिम का विरोधी नहीं हूं। पश्चिम की निंदा और पूर्व की स्तुति मैं नहीं करना चाहता। दोनों में जो अच्छी बातें हैं, उनको मैं लेना चाहता हूं और जो बुरी हैं, उनको छोड़ना चाहता हूं। उसी तरह मैं प्राचीन काल की अच्छी बातें, इस काल की अच्छी बातें, इस देश की अच्छी बातें, बाहर के देश की अच्छी बातें लेना चाहता हूं। लेकिन पश्चिम में आज जो अर्थ-शास्त्र का विचार चला है और जिसने वहां वालों को भी समाधान नहीं दिया, क्या हम उसी को यहां लाना चाहते हैं? आज किस देश में चैन है? रशिया, इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी आदि में कहीं भी सुख नहीं है। उनके रास्ते से सुख नहीं मिलता है, लड़ाइयां और अशांति ही पैदा होती है, यह हम देख रहे हैं। वहां से अच्छी चीजें लेने में कोई हर्ज नहीं है। लेकिन हम दिमाग रखकर सोचें और काम करें, यह मैं चाहता हूं। कैदियों को मिल में उद्योग नहीं सिखाये जाते। नतीजा यह होता है कि छूटने के बाद भी उनको बाहर की मिलों में

काम न मिलने के कारण चोरी करने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता है। वह फिर से चोरी करता है और जेल जाता है। यह जो उसका बार-बार पुनर्जन्म होता है, 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं' चलता है, उस से उसको मुक्ति कैसे मिले, यह हमें सोचना चाहिए। उसे ऐसी विद्या, ऐसी बुद्धि, ऐसी कला, ऐसा हृदय, ऐसे संस्कार वहां मिलें, जिससे कि छूटने के बाद अच्छा नागरिक बन सके। लेकिन आजकल तो हम चाहते हैं कि हमारे घर की रोटी भी फैक्टरी में बननी चाहिए। इसलिए भाइयो, जरा सोचो तो कि हम किधर जा रहे हैं। क्या हम ऐसे घर बनाना चाहते हैं, जिसमें हरेक घर के साथ कुछ जमीन हो, जिस पर उस कुटुंब के लोग मेहनत मुशक्कत कर कुछ फल, तरकारी वगैरा पैदा कर सकें और प्रेम से रह सकें? या हम देहातों को मिटा कर बड़े-बड़े शहर बनाना चाहते हैं, जिसमें कल-पुर्जो के कारखाने हों और सबका खाना एक जगह हो। सब एक ही कारखाने में काम करें यह हम चाहते है। अगर इस तरह की हमारी वृत्ति है तो मैं कहता हूं कि यह बिलकुल गलत है। हमें अपने गांव की रचना हमारी संस्कृति के आधार पर लेकिन आधुनिक विज्ञान का सहारा लेकर करनी है। कुछ लोग कहते हैं कि मैं विज्ञान के खिलाफ हूं। यह बिलकुल गलत बात है। मैं तो विज्ञान का प्रेमी हूं। लेकिन आजकल विज्ञान का एक ऐसा ढंग हो गया है कि उसके बारे में गलत तरीके से सोचा जाता है। विज्ञान तो ज्ञान का एक अंग है। आत्म-ज्ञान और विज्ञान मिलकर ज्ञान हो जाता है। और आत्म-ज्ञान का विज्ञान से याने सृष्टि के ज्ञान से निकट का सम्बन्ध है। दोनों साथ-साथ बढ़ते हैं। मुझे अपने ग्रामों में जो मक्खियां हैं, जो मच्छर हैं, जो रोग हैं उन सबको हटाना है, तो कौन हटायेगा? विज्ञान ही हटा सकता है। विज्ञान तो आपका दास है, बंदा है। आप चाहें तो वह एटम बम्ब बना देगा और चाहें तो अच्छी अच्छी दवाइयां और आपरेशन के साधन बनायेगा। वह सुख के साधन निर्माण कर सकता है, और दुख के साधन भी। वह हमारे लिए जीवन का इंतजाम कर सकता है, और मृत्यु का भी इंतजाम कर सकता है। वह तो शक्ति है। हम चाहे जैसा उसका उपयोग कर सकते हैं। मैं अधिक से अधिक विज्ञान चाहता हूं। और इसलिए अहिंसा की बात करता हूं। विज्ञान के साथ हिंसा आ जाय तो दुनिया का खातमा होगा। इसीलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का आग्रह रखना आवश्यक है। उससे हम गांव को वैकुंठ बना सकते हैं। विज्ञान के आधार पर हमें नये गांव, नये घर बनाना है। हम विज्ञान की मदद लेना चाहते हैं, लेकिन हमारे ढंग से। हमारी समाज़-रचना कैसी हो यह विज्ञान नहीं तय करेगा, समाज-शास्त्र तय करेगा। विज्ञान जीवन को आकार दे सकता है, परंतु जीवन का प्रकार क्या हो, यह नहीं कह सकता। यह तो आत्मज्ञान ही बता सकता है।

●

जब तुम दूसरों के साथ बातचीत करो तब अपने चारों ओर सजीव उपस्थिति और संरक्षण को बनाये रखने के लिए बराबर सावधान रहो और जितना कम बोलना सम्भव हो उतना कम बोलो।

—श्री मां

●

यशपाल जैन

अजातशत्रु राजेन्द्रबाबू

"बाबूजी, 'जीवन-साहित्य' का एक विशेषांक निकाल रहे है। एक लेख दे दीजिये।"

"आप देख ही रहे है। मुझे अवकाश कहा है?"

"जी, छोटा-सा ही दे दीजिये।"

"अच्छा, कल सवेरे आ जाइये।"

सवेरे पहुचा तो पूजा कर रहे थे। पाच मिनट में समाप्त करके कातना आरम्भ करते हुए बोले, "आप लिख लेगे?"

"जी हा।"

"अच्छा, लिखिये।"

लेख लिखा दिया। मैंने कहा, "पढकर सुना दू?"

"नही जी, आप देख लीजिये। कही भाषा ठीक करनी हो तो कर-करा लीजिये।"

× × ×

"बाबूजी, . . की पुस्तक आपने पूरी पढी है?"

"नही।"

"उसकी भूमिका तो आपने ही लिखी है।"

हा, लेखक ने कुछ अश पढकर सुनाये थे।"

"पुस्तक बहुत अच्छी नही है। उसके कुछ स्थल तो बहुत ही असस्कृत है।"

"हा, मैंने सुना है। लेखक पीछे पड गये। मुझे लिखना पडा। गलती हो गई।"

× × ×

"बाबूजी, 'मण्डल' की जयती कर रहे है। आपका सदेश चाहिए। उसी अवसर पर 'जीवन-साहित्य' का विशेषाक भी निकाल रहे है। उसके लिये एक लेख।"

घनी मूछो के नीचे होटो पर हल्की मुस्कराहट खेल गई। बोले "सदेश भी चाहिए और लेख भी?"

"दोनो मिल सके तो बडी कृपा हो। पर लेख देर से भी मिल जायगा तो चल जायगा। सदेश जल्दी चाहिए।"

"ठीक है, सदेश परसो भेज दूगा। लेख के लिए बाद में याद दिला दीजिएगा।"

× × ×

ये कुछ चित्र है उस महापुरुष के, जो आज भारत के सर्वोच्च पद पर आसीन है, हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू के। कामकाज में घिरे रहते है, मुलाकाती आते है, इधर-उधर आना-जाना पडता है, ऊपर से दमा समय-समय पर हैरान करता रहता है, पर क्या मजाल कि राजेन्द्र बाबू किसी भी छोटे-बडे अच्छे काम के लिए इन्कार कर सके। 'हा' कर लेना प्राय आसान होता है, पर निभाना कठिन। लेकिन राजेन्द्रबाबू है कि जिसके लिये 'हा' करेगे, उसे पूरा अवश्य कर देंगे।

लम्बा कद, श्यामल वर्ण, थोडा भारी शरीर, अव्यवस्थित मूछें, सिरपर छोटे-छोटे काले-सफेद खिचडी बाल, जिनपर श्वेत खादी की गाधी टोपी, आखें उभरी, उन्नत ललाट, देह पर (घर में हो तो), धोती-कुरता-बडी, (बाहर) शेरवानी-चूडीदार पाजामा।

—यह है राजेन्द्रबाबू की बाह्य आकृति और वेश-भूषा। चेहरे से सरलता टपकती है और वाणी से मृदुता झरती है।

आज के प्रतिस्पर्द्धा से भरे युग में ऐसे व्यक्ति मिलना कठिन है जो पद, गौरव और प्रतिष्ठा को महत्व न देकर सेवा के लिए समर्पित हो। राजेंद्रबाबू उन्ही विरल महापुरुषो में से है। आज वह भारत के सबसे ऊचे पद पर आसीन है—ऐसे पद पर, जहां बैठकर कोई भी मद-मत्त हो सकता है लेकिन राजेंद्रबाबू के लिए पद चूकि महत्वाकाक्षा की पूर्ति का साधन नही है, वह वहा बैठ कर भी, वैसे ही सेवापरायण है जैसे कि पहले थे। इन पक्तियो के लेखक को उन्हें कई पदोपर काम करते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है—स्वाधीनता सग्राम के एक वीर सेनानी के रूप में, एक महान राष्ट्रीय नेता के रूप में, खाद्यमन्त्री के रूप में, विधान सभा के अध्यक्ष के रूप में, गाधी स्मारक-निधि के अध्यक्ष के रूप में और अब राष्ट्रपति के रूप में, लेकिन एक भी ऐसा अवसर याद नही आता, जब कि राजेंद्र बाबू ने किसी भी पद के लिए मोह प्रदर्शित किया हो, अथवा वहा बैठ कर दभ प्रकट किया हो। "प्रभुता पाइ काहि मद नाहिं" सत तुलसीदास की इस उक्ति का यदि कहीं अपवाद मिलता है, तो राजेंद्रबाबू में। राष्ट्रपति

का पद कुछ इतना ऊंचा है और राष्ट्रपति भवन का वायुमंडल कुछ इतना आडम्बरयुक्त है कि सामान्य व्यक्ति तो वहां पहुंचते-पहुंचते घबरा जाता है, लेकिन जहां आप राजेंद्रबाबू के सामने पहुंचेंगे, उनकी सरलता, निश्छलता और स्वाभाविक आत्मीयता से आपकी घबराहट क्षण भर में दूर हो जायगी।

अपने जिन गुणों के कारण वह इतने लोकप्रिय हैं, वे हैं उनकी विनम्रता, निरभिमानता, और प्रामाणिकता। आयु में अपने से कहीं छोटे व्यक्तियों को मैंने उन्हें कई बार 'श्रद्धेय' अथवा 'आदरणीय' लिख कर संबोधित करते देखा है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी यह विनम्रता और श्रद्धा उनके लिए मात्र शिष्टाचार की वस्तु नहीं है, उनके स्वभाव का एक अंग है।

वह विद्वान् हैं लेकिन अपनी विद्वत्ता को वह दूसरों पर लादने का कभी प्रयत्न नहीं करते। आज के अनेक 'तथाकथित' विद्वानों की भांति शब्दों का आडम्बर उन्हें प्रिय नहीं। जो कुछ उन्हें कहना होता है, सरल, सुबोध और स्पष्ट भाषा में कह देते हैं। भाषा उनके लिए चमत्कार की चीज नहीं है, भावों की वाहिनी है। उनकी रचनाओं को पढ़ लीजिये, उनके भाषणों को सुन लीजिए, बातचीत में देख लीजिये, उनके विचारों में कहीं भी उलझन नहीं मिलेगी। इतने सुलझे विचार, इतनी स्पष्ट भाषा और इतने उत्कृष्ट भाव, बहुत कम लोगों में मिलेंगे।

अधिकांश नेता अपने विचारों की दृढ़ता अथवा दूसरों की मान्यताओं के प्रति अनुदार दृष्टि रखने के कारण अनेक विरोधी पैदा कर लेते हैं। बहुत से अवसरों पर विरोध शत्रुता का रूप ग्रहण कर लेता पाया जाता है। लेकिन राजेंद्रबाबू में इतनी समन्वय-बुद्धि और दूसरे के विचारों के प्रति इतनी उदारता और सहिष्णुता है कि उन्हें एक प्रकार से 'अजातशत्रु' कहा जा सकता है।

लोगों की शिकायत है कि वह ढीले ढाले हैं, अपनी बात को बहुत दृढ़ता से नहीं कहते। और देशव्यापी अनाचारपूर्ण वायुमंडल को बदलने के लिए जोर नहीं लगाते। लोगों की इस शिकायत में सचाई हो सकती है और है; लेकिन हम लोग प्रायः भूल जाते हैं कि दीर्घकालीन संस्कार और परम्पराओं को तोड़ना आसान नहीं होता। जब कभी अवसर आता है, राजेंद्रबाबू अपनी बात कहने से नहीं चूकते, लेकिन बुराई की जड़ जहां गहरी होती है, वहां एक व्यक्ति के कहने अथवा एक दिन के प्रयास से सुधार नहीं हो जाता।

राजेंद्रबाबू गांधीजी के निष्ठावान अनुयायियों में से हैं। भले ही वह विवरणों में बहुत गहरे न उतरें या दृढ़ता न दिखावें; परन्तु जहां तक मूल मान्यताओं का सम्बन्ध है, वह चट्टान की तरह अडिग हैं।

उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। प्रथम श्रेणी के राजनेता तो वह हैं ही, उच्चकोटि के साहित्यकार भी हैं। और चूंकि प्रामाणिकता उनकी विशेषता है, अतः जो भी काम हाथ में लेते हैं, बहुत ही दक्षतापूर्वक करते हैं। अबतक जितने पदों पर उन्होंने कार्य किया है, परिस्थितियों के दबाव अथवा अन्य कारणों से भले ही उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त न हुई हो, लेकिन अपने प्रयत्न में उन्होंने कभी शैथिल्य नहीं दिखाया है और काम को आगे बढ़ाया है।

सेवा के लिए इतना निष्ठापूर्ण समर्पण बहुत कम लोगों में मिलता है। दमे की बीमारी और आयु का तकाजा है कि वह विश्राम करें; लेकिन सेवा के लिए जब उनकी आवश्यकता है तो बीमारी का निमित्त या आयु का सहारा लेकर वह पीछे कैसे रह सकते हैं। जबतक शरीर चलता है, सेवा की पुकार को अनसुनी करना उन के स्वयं के वश की बात नहीं है।

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारी पुरानी पीढ़ी धीरे-धीरे तिरोहित होती जा रही है। पर यह निश्चय ही हमारा परम सौभाग्य है कि राजेंद्रबाबू हमारे बीच विद्यमान हैं। भगवान् से हम सबकी प्रार्थना है कि हमारे 'बाबूजी' अभी बहुत वर्ष तक हम सबके बीच बने रहें और हमारा मार्ग दर्शन करते रहें।

●

अरविन्द

क्रोध आदि वृत्तियों पर विजय कैसे ?

(गताक से आगे)

साधारण जीवन में लोग काम, क्रोध, लोभ, वासना आदि को स्वाभाविक, क्षतव्य एव उचित चीजें समझते हैं और उन्हें मानव प्रकृति का अग मानते है। जहा तक समाज इन्हें अनुत्साहित करता है अथवा इन्हें निश्चित सीमाओ के भीतर या उचित सयम या मर्यादा के अधीन रखने का आग्रह करता है वहीं तक लोग इन्हें सदाचार के सामाजिक मान या व्यवहार के नियम के अनुसार वश में रखने का यत्न करते है। इनके विपरीत, यहा तथा सब प्रकार के आध्यात्मिक जीवन में इन चीजो पर विजय तथा पूर्ण प्रभुत्व की माग की जाती है। यही कारण है कि यहा सघर्ष अति तीव्र अनुभूत होता है, इसलिए नहीं कि ये चीजें साधारण मनुष्यो की अपेक्षा साधकों में अधिक प्रबल रूप में उठती है वरन् इसलिए कि आध्यात्मिक मन तथा प्राणिक चेष्टाओं में उत्कट सघर्ष चलता है—आध्यात्मिक मन सयम की माग करता है और प्राणिक चेष्टायें विद्रोह करती है तथा नये जीवन में भी पुन उसी तरह बने रहना चाहती है जिस तरह वे पुराने जीवन में थी। यह जो धारणा है कि साधना इस प्रकार की चीजें उभाड़ती है इसमें सत्य इतना ही है कि एक तो साधारण मनुष्य में ऐसी बहुत सी बातें है जिनसे वह सचेतन नहो है क्योंकि प्राण उन्हें मन से छिपाये रखकर तृप्त करता रहता है जबकि मन समझ ही नही पाता कि वह कौन सी शक्ति है जो इस कार्य को प्रेरित कर रही है। इस प्रकार, जो चीजें परार्थ, परोपकार एव सेवा के निमित्त की जाती हैं वे अधिकतर अहकार से परिचालित होती है। इन बहानों के पीछे अहकार छिपा ही रहता है। योग में गुप्त प्रेरक को पर्दे के पीछे से बाहर प्रकाश में लाना तथा उससे छुटकारा पाना होता है। दूसरे साधारण जीवन में कुछ चीजें दबा दी जाती है, वे प्रकृति में ही दबी पडी रहती है पर नष्ट नही हुई होती। वे किसी भी दिन उभर सकती है अथवा वे अपने को मन या प्राण या शरीर के नाना-स्थानीय रूपो या अन्य गडबडियो में प्रकट कर सकती है जबकि इस बात का स्पष्ट पता नहीं चलता कि उनका असली कारण क्या है। यह तथ्य यूरोपीय मनोवैज्ञानिकों ने अभी हाल में ढूढ निकाला है और मनोविश्लेषण नामक नये विज्ञान ने इस पर बहुत बल दिया है, यहा तक कि इसका अत्यधिक बढा चढा कर वर्णन किया है। यहा भी, साधना में मनुष्य को इन दबी प्रवृत्तियो से सचेतन होकर उन्हें निकाल फेंकना होता है। इसे उभाडना कह सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नही कि इन्हें कार्यरूप में उभाडना है बल्कि केवल चेतना के सामने ला खडा करना है ताकि अपनी सत्ता में से उनकी सफाई की जा सके।

यह जो बात है कि कुछ लोग अपने को वश में करने में समर्थ होते है और दूसरे वहा लिए जाते हैं। इसका कारण है स्वभाव-स्वभाव में भेद। कुछ लोग सात्त्विक स्वभाव के होते हैं। और उनके लिए, कम से कम कुछ हद तक, सयम करना सुगम होता है। दूसरे अधिक राजसिक होते है और सयम को कठिन तथा प्राय असम्भव अनुभव करते है। कइयो का मन एव सकल्प सबल होता है और दूसरे प्राण-प्रधान मनुष्य होते हैं जिनमें प्राणिक आवेग अधिक प्रबल होते है तथा अधिक ऊपर आये होते है। कुछ लोग सयम को आवश्यक नही समझते और अपने आपको खुला छोड देते है। साधना में मानसिक या नैतिक सयम के स्थान पर आध्यात्मिक प्रभुत्व स्थापित करना होता है। कारण, मानसिक सयम केवल आंशिक होता है, वह हमें नियत्रित ही करता है न कि स्वतत्र एव मुक्त। ऐसा तो केवल आन्तरात्मिक एव आध्यात्मिक सयम ही कर सकता है। इस विषय में साधारण तथा आध्यात्मिक जीवन में मुख्य भेद यही है।

यौगिक, मनोभौतिक आदि आदि दृष्टियो से आमाशय, हृदय और आतों में स्थूल चेतना का नहीं वरन् प्राणिक चेष्टाओं का निवास है। यहीं पर प्राणी

के क्रोध, भय, प्रेम, घृणा तथा उसकी अन्य सब मनो-वैज्ञानिक विशिष्टतायें उछलकूद मचाती हैं तथा शरीर और मन की पाचनशक्ति में गड़बड़ी पैदा कर देती हैं।

क्रोध के कारण आत्मा तमसाच्छन्न हो जाती है, बुद्धि और इच्छा शक्ति शांत साक्षी आत्मा को देखना तथा उसमें स्थित होना भूल जाती है, मनुष्य अपने सच्चे स्वरुप की स्मृति से भ्रष्ट हो जाता है। इस पतन मे इच्छाशक्ति भी विमूढ़, यहां तक कि नष्ट हो जाती है। कारण, कुछ समय के लिए, हमारी निज स्मृति में इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। यह क्रोध के बादल से ढक जाती है। हम क्रोध, आवेश एवं शोक ही बन जाते हैं। और आत्मा, बुद्धि तथा इच्छाशक्ति नहीं रहती।

बस करने की एक बात यही है कि इन प्रवृत्तियो से अपने को अलग कर लिया जाय, अपने आन्तर आत्मा को खोज निकाला जाय, उसीमें निवास किया जाय। फिर ऐसा कभी नहीं मालूम होगा कि ये सब वृत्तियां अपनी हैं, बल्कि ऐसा मालूम होगा कि बाहरी प्रकृति ने आंतर आत्मा या पुरुष के ऊपर उन्हें ऊपर ही ऊपर से आरोपित कर दिया है। उस समय बड़ी आसानी से उनका त्याग किया जा सकता है या उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

अगर तुम अपनी प्राणगत वृत्तियों पर सच्चा प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हो और उन्हें रूपांतरित करना चाहते हो तो यह केवल तभी हो सकता है, यदि तुम्हारा हृदय हृत्पुरुष, तुम्हारी अन्तरात्मा पूर्ण रूप से जाग जाय, अपना राज्य स्थापित कर ले और तुम्हारी सारी सत्ता को शक्ति के स्थायी स्पर्श की ओर खोलकर अपनी स्वाभाविक विशुद्ध भक्ति, अनन्य अभीप्सा और सभी भागवत वस्तुओं के प्रति होने वाले अपने अखण्ड एकनिष्ठ आवेग को तुम्हारे मन हृदय और प्राण प्रकृति पर स्थापित कर दे। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है और किसी अधिक सुगम मार्ग के लिए छटपटान से कोई लाभ नहीं। नान्यः पन्था विद्यते अयनाय। (अदिति कार्यालय के सौजन्य से)

कब्रिस्तान

खलील जिब्रान

कल ही की बात है, कि मैं शहर के हो-हुल्लड़ से घबराकर खामोश खेतों की तरफ निकल गया और एक ऐसे ऊंचे पर्वत के पास पहुंच गया, जहां प्रकृति ने अत्यन्त उदारता से अपनी देन बखेर रखी थी।

मैं पर्वत पर चढ़ा और झुककर शहर को देखा। शहर अपने समस्त मीनारों और मन्दिरों सहित उस धूएं के घने बादलों से ढका हुआ था, जो शहर की भट्टियों और कारखानों से उठ रहा था।

मैं बैठ गया और सोचने लगा। मुझे आदमियों के उद्योगधंधों का विचार आया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, कि उनकी यह सारी दौड़-धूप निरर्थक और निष्फल है।

मैंने अपना ध्यान मानवजाति के इन दौड़-धूप के क्षेत्रों से हटा लिया और उन खेतों पर एक दृष्टि डाली, जो ईश्वर की प्रतिष्ठा और तेज के फर्श हैं।

इन खेतों में मुझे एक कब्रिस्तान दिखाई दिया। उसमें संगमरमर की सुन्दर लेख-शिलाएं गड़ी थीं। और सरु के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष उगे हुए थे।

मैं जीवित मनुष्यों की बस्ती और कब्रिस्तान के बीच बैठा जीवन के अनंत संघर्ष, समाप्त न होनेवाले हो-हुल्लड़, विस्तृत खामोशी और मृत्यु की अनंत कठोरता पर विचार कर रहा था।

मुझे एक तरफ आशा और निराशा, प्रेम और घृणा, धनाढ्यता और दरिद्रता, और विश्वास और अविश्वास दिखाई दिये और दूसरी तरफ मैंने मिट्टी को उस मिट्टी में मिले देखा, जिससे प्रकृति रात की गहरी खामोशी में बढ़ने और उन्नति करनेवाले हरे-भरे और रंगीन पौदे पैदा करती है।

जब मैं इस तरह से सोच विचार कर रहा था, तो एक बहुत बड़ा जनसमूह धीरे धीरे चलता हुआ

मेरी आखो के सामने आया और मैंने एक ऐसा गीत सुना, जो आलोक में एक शिथिलता उत्पन्न कर रहा था।

मेरी आंखो के सामने से बडे और छोटे इन्सानो की भीड गुजरी। मनुष्य एक अरथी का अनुकरण कर रहे थे। और रोते चिल्लाते हुए अपनी अपनी फरियाद विलाप और रुदन से आलोक को भर रहे थे। इस तरह वे कब्र तक पहुच गये। वहा पादरियो ने इसके लिए प्रार्थना की और धूप आदि जलाई। बाजेवालो ने अत्यत दुखजनक ध्वनियो मे शोक के गीत गाये। सुवक्ताओ ने खडे होकर बढे-चढे शब्दो मे प्रशसापूर्ण भाषण दिए और कवियो ने शोक और दुखभरी कविताए पढी। इस प्रकार यह प्रदर्शन समाप्त हो गया।

फिर जब वह भीड लौट कर गई, तो मुझ इस स्थान पर एक शानदार लेखशिला दिखाई दी, जिसे कलाकारो ने बडी कुशलता से तैयार किया था और जिस पर अनगनित फूल मालाए और गजरे पडे थ जिन्हे निपुण मालियो ने बनाया था।

अन्त में जनसमूह शहर में वापिस पहुच गया और मैं उन्हे दूर से देखता हुआ गहरे विचारो में डूब गया।

इस वक्त सूर्य धीरे-धीरे पश्चिम में डूब रहा था। चट्टानो और वृक्षो की परछाइया लम्बी हो रही थी और वे प्रकाश की चादर को उतार रहे थे।

इस वक्त मैंने आख उठा कर देखा, तो मुझे दो आदमी दिखाई दिये, जिन्होने अपने कधो पर साधारण सी अरथी उठाई हुई थी और उनके पीछे एक स्त्री फटे-पुराने कपडे पहने चली आ रही थी। उसकी छाती से एक बालक चिपका हुआ था और पाव के पास एक कुत्ता था, जो कभी स्त्री और कभी अरथी की तरफ देख रहा था।

इस निर्धन मनुष्य की अरथी के साथ बस इतने ही लोग थे।

स्त्री के खामोश आसू उसके हृदय के दुख और शोक की साक्षी दे रहे थे।

बालक केवल इसलिए चिल्ला रहा था, कि उसकी मा रो रही थी। और एक स्वामीभक्त कुत्ता खामोशी और उदासी की हालत में पीछे-पीछे जा रहा था।

जब ये लोग कब्रिस्तान में पहुचे, तो दूर एक ऐसे अलग कोने में एक गढे में इस लाश को दफन किया गया जो सगमरमर की कब्रो से बहुत दूर था। फिर वे अत्यन्त खामोशी और उदासी के साथ वापिस लौटे।

कुत्ते की दृष्टि बार-बार अपने स्वामी के अतिम विश्राम-स्थल की तरफ लौट-लौट जाती थी। अत में वे सब वृक्षो की ओट में आखो से ओझल हो गये।

यह देखकर मैंने अपनी दृष्टि शहर की तरफ उठाई और कहा, "यह सब धनवानो और शक्ति-शाली लोगो के लिए है।"

और फिर मैंने कब्रिस्तान की तरफ मुह करते हुए कहा, "और यह भी धनवानो और शक्तिशाली लोगो ही के लिए है।"

मैंने चिल्ला कर पूछा, 'परमात्मा ! बता तेरे दुर्बल और निर्धन जन कहा जाए ?'

मैंने यह कहकर आकाश की तरफ दृष्टि उठाकर देखा, जो डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरणो से शोभायमान हो रहा था। अब मुझे अपने अतरग से यह आवाज सुनाई दी, " उनका विश्राम स्थान यहां है, यहा।"

अनु०—माईदयाल जैन

क्या आप जिस प्रकार प्रतिदिन खाते पीते है उसी प्रकार पढते लिखते भी हैं ? मन और मस्तिष्क को पुष्ट करने के लिए अच्छे ग्रथ खरीद कर पढिए और याद रखिये कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है।

आदर्शकुमारी यशपाल

हमारी लोक-कथाएं

लोककथाओं का जन्म कब हुआ, इसका कोई स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता, लेकिन अनुमान किया जा सकता है कि जबसे सृष्टि का आरम्भ हुआ और एक दूसरे के भावों को समझने के लिए भाषा का माध्यम शुरू हुआ तभी से लोककथाओं का भी जन्म हुआ होगा। मनुष्य की प्रवृत्ति कुछ ऐसी होती है कि उसे दूसरे के बारे में कौतूहलपूर्ण बातें कहने और सुनने में बड़ा आनन्द आता है और उसी प्रवृत्ति की तुष्टि के लिए लोककथाओं की सृष्टि हुई होगी।

लोककथाओं का प्रचलन नगरों की अपेक्षा गावों में अधिक है। इसका कारण यह है कि नगरों में ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, पढ़े-बेपढ़े आदि का बहुत भेदभाव रखा जाता है। शहर का मेहतर एक-दो बरस के बच्चे के लिए भी 'भंगी' ही रहता है, लेकिन गांव में वह किसी का चाचा है तो किसी का ताऊ, किसी का दादा है तो किसी का बाबा। गांव में न सिनेमाघर हैं न नाट्य-गृह, न नाचघर। पर उनके मनोरंजन का कोई साधन तो होना ही चाहिए। आइये, अब जरा मुखिया की चौपाल पर चलें। देखिये तो अधियाने के चारों ओर कैसे मस्त होकर सब कहानी सुन रहे हैं। छंगू धोबी कहानी कह रहा है और पंडित, नाई, कुम्हार, जमींदार सब आग तापते हुए कहानी सुन रहे हैं। अरे, यह क्या! यह चिलम तो अभी ठाकुर साहब के हुक्के पर रखी थी, इसी को पंडितजी ने पीना शुरू कर दिया। पंडितजी से वह देखो, रम्मू नाई के पास पहुंच गई। अरे, वह तो खिसकती ही जा रही है। हां, यह शहर नहीं है, जहां आदमी पड़ौसी को भी नहीं जानता। यहां तो सब सगे-सम्बन्धी हैं। फिर सब मिलकर बैठे हैं। तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

कहानी चाहे कितनी भी रोचक क्यों न हो फिर भी उसकी रोचकता अधिकांशतः कहने वाले पर निर्भर करती है। भाषा एक तरह की होने पर भी कहने का ढंग अपना-अपना निराला होता है। भाव-प्रदर्शन के बिना कहानी का रस आधा रह जाता है। जरा देखिए, इस धोबी को, कभी हाथ मटकाता है तो कभी आंखें; कभी नाक सिकोड़ने लगता है तो कभी जोश में आकर आधा उठ बैठता है, और कभी डंडा इस तरह उठाता है जैसे किसी को मार ही बैठेगा। कहानी कहते समय यह सब करना आवश्यक है। यह क्या? अधियाने पर बैठे सब लोग हंसी के मारे लोट पोट हुए जा रहे हैं। कहीं कोई जल न जाय! यही है गांव के कहानी कहने के अड्डे का दृश्य।

अगर कहानी आकर्षक ढंग से कही जाय तो श्रोता यही चाहते हैं कि वह द्रौपदी के चीर की भांति बढ़ती ही चली जाय और वे मंत्र-मुग्ध होकर सुनते रहें। वे उस समय यह भूल जाते हैं कि लकड़ी का उड़नखटोला, महादेव-पार्वती का पिड़किया से राजकुमारी बना देना, इंद्र के घोड़ों का बाग नष्ट कर जाना आदि बातें क्या कभी संभव हो सकती हैं! ये कहानियां तर्क से परे हैं।

कहानी कहने वाला किसी भी जाति का क्यों न हो, गांव में आदर और प्रेम का पात्र बन जाता है। ये लोक कथायें इतनी सरस हैं और इतने आकर्षक हाव-भाव के साथ कही जाती हैं कि कोई विद्वान भी उस वातावरण में पहुंच जाय तो आनन्दित हुए बिना नहीं रह सकता, बच्चों की तो बात ही क्या है। एक आदमी कहानी कहता है। सब सुनते हैं। एक हुंकारा देता जाता है। हुंकारे के बिना न कहने वाले को मजा आता है, न सुननेवाले को। लोक-कथाओं में निम्नलिखित गुण अवश्य पाये जाते हैं:

१. रोचकता २. कौतूहल, ३. कहीं-कहीं पर अलौकिकता तथा ४. लोक-जीवन का चित्रण

इनमें रोचकता और कौतूहल, ये दो गुण मुख्य हैं। इनके बिना न कहानी आगे बढ़ सकती है, न सुनने वालों को मोह सकती है।

लोक-कथाओं की अति प्राचीन परम्पराओं का

महत्व अब कुछ कम होता जा रहा है, फिर भी शायद ही कोई ऐसा जनपद होगा, जिसकी अपनी लोककथाए न हो। जबतक लोकजीवन है, लोक-कथाओ की महत्ता नष्ट नही हो सकती। हमारे लोकजीवन में लोकसाहित्य खूब पनपा है। एक समय था जबकि यातायात की सुविधाए नही थी और लोग दूर-दूर की यात्राए बहुत कम कर पाते थे। उस समय भी इन लोक-कथाओ की यात्रा रुकी नही थी। वे निरतर एक जगह से दूसरी जगह घूमती रहती थी। लेकिन अब जब कि यात्रा की इतनी सुविधाए हो गई है, ये कहानिया भी बडी तेजी के साथ भ्रमण करती रहती है। अतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान तथा रेडियो ने तो यह भी सभव कर दिया है कि यहा की कहानिया विदेशो में भी सुनी जा सकती है। इन्ही सब सुविधाओ का फल यह है कि जो कहानिया हमें ब्रज में सुनने को मिली है, वे बुदेलखड, बगाल, और पहाडी इलाको में भी प्रचलित है। रूप में थोडा-बहुत परिवर्तन हो सकता है। जब हम अनेक विदेशी लोक-कथाओ का अध्ययन करते है तो अनेक ऐसी कहानिया मिलती है जो हमारी भारतीय कहानियो का ही परिवर्तित रूप है। इन कहानियो का प्रारम्भ प्राय इस प्रकार होता है एक राजा था। यह नही बताया जाता कि वह कहाँ राज्य करता था और कब करता था? इसलिए ये कहानिया व्यक्ति, देश और काल की परिधि में नही बध सकती।

मैंने कुछ कहानिया बुदेलखड में सुनी थी। वही कहानिया थोडे-बहुत उलटफेर के साथ हमारे ब्रज में भी कही जाती है और वे ही कहानिया मैंने कुछ अदल-बदल के साथ अल्मोडा और नैनीताल के पहाडियो से भी सुनी है। यह कोई आश्चर्य की बात नही, क्योकि जब लोगो में आपस में इतना सम्पर्क है तो कहानियो पर भी इसका प्रभाव पडे बिना नही रह सकता। कही-कही पर केवल भाषा का ही अतर है। श्री शिवसहाय चतुर्वेदी की 'जानपाँडे' नामक बुदेलखडी कहानी में रानी की सीदा का नाम "निंदिया" है। वह हार चुरा लेती है। एक कोरी का दामाद दो-चार जानी हुई बाते बता देता है और गाव में वह जानपाडे के नाम से मशहूर हो जाता है। राजा उसे पकड़ बुलवाता है और कहता है कि यदि वह हार का पता न बता सका तो दूसरे दिन उसकी गर्दन कटवा दी जायगी। बेचैनी के मारे कोरी को नींद नही आती। वह कहता है—"आजारी निंदिया, तेरी भोर कटैंगी घिंचिया।"

इसीको ब्रज का सगुनिया कहता है.

"आजारी निंदरिया, तेरी भोर कटैंगी मुडसिया"

बुदेलखडी दासी का नाम 'निंदिया' है और ब्रज की कहानी की दासी का नाम 'नींदरिया'। दोनो का एक ही अर्थ है: नींद। वह बेचारी गर्दन कटने के डर से हार का पता जानपाडे को बता जाती है और इस प्रकार कोरी राजा से बहुत सा इनाम पाता है। इससे लगता है कि ये कहानिया अपने बीच कोई दीवार स्वीकार नही करती और नदी की निर्मल धारा की भाति अखड और अविरल गति से प्रवाहित होती रहती है।

जैसा मैंने उपर कहा है कुछ कहानियो की घटनायें अस्वाभाविक-सी जान पडती है, लेकिन लोक-कथाओं की विशेषता यथार्थता नही है बल्कि मनोरजन है। जैसे एक 'पतिव्रता' नामक कहानी में पतिव्रता स्त्री अपने पति के शव को पडा छोडकर खीर सपोटने बैठ जाती है। यह असभव-सी बात लगती है, लेकिन यदि वह ऐसा न करे तो कहानी आगे कैसे बढे। कहानी में उसके बाद ही आनन्द आता है।

इसी प्रकार कई-एक कहानियो में शिव-पार्वती आते है, डायन और राक्षस मिलते है, परिया आती है, साप राजकुमार बन जाता है, सूरज को बाल दिखाते ही उस रग का घोडा और पोशाक आ जाती है, घोडा गगनचुबी महल की छत फलाग जाता है, आदि-आदि बाते अवश्य ही असभव लगती है, लेकिन इन सबके बिना कहानियों में पूरा-पूरा रस परिपाक नही हो पाता। फिर ये कहानिया जिस युग में लिखी गई थी वह युग ही अलौकिक बातों में विश्वास करता था।

लेकिन आज का पाठक यदि उन बातों को छोड-कर उनमें प्रवाहित जीवन को ही ग्रहण करे तो उसका रस खण्डित नही होगा। वह युग-युग से चली आती लोक सस्कृति का सच्चा स्वरूप पहचान सकेगा।

शम्भुनाथ सकसेना

श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त

बंगाल से बाहर श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त के सम्बन्ध में लोग बहुत कम जानते हैं। केवल सर्वसाधारण ही नहीं, बल्कि आजकल के कांग्रेसमैन भी! और यही सतीशदा बंगाल के, विभाजन से पूर्व से बंगाल के गांधी माने जाते रहे हैं। यह वस्तुतः सत्य है कि यदि उन्होंने देश की राजनीति में नेता बनने की दृष्टि से भाग लिया होता, तो वे बंगाल के सर्वमान्य मुख्य-मंत्री, किसी प्रान्त के राज्यपाल या केन्द्रीय सरकार का मन्त्रित्व-पद कभी का पा गये होते। यदि उनमें किंचित भी प्रचार की भावना होती तो उद्योगों के सम्बन्ध में, अर्थ-शास्त्री, पत्रकार, विख्यात डाक्टर, वैज्ञानिक, अनेक विषयों पर अधिकारपूर्वक सृजनहार लेखक के रूप में उन्होंने अद्वितीय सफलता प्राप्त कर ली होती। लेकिन मौन साधन, लोक-कल्याण और निःस्वार्थ लोक-सेवा में सदैव उनका अडिग विश्वास रहा है।

सतीशदा के सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि वे कांग्रेस की बुलन्द इमारत की नींव की ईंट के समान हैं, तो किंचित भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस तरह इमारत की नींव की ईंट उसकी भव्यता और विशालता की आधार होती है, लेकिन उसका एक अंश भी दिखलाई नहीं पड़ता, ठीक इसी प्रकार सतीशदा का सम्पर्क कांग्रेस-संस्था के साथ है। उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया कि उन्हें कोई पद मिले या किसी कार्य में ख्याति मिले और लोग उनकी प्रशंसा करें। प्रचार की, आत्म-प्रशंसा की भावना से कोसों दूर, जैसे उन्होंने स्वयं को लोकवाद की भावना से—मानापमान की व्यवहारिकता से बहुत ऊपर उठा लिया है, जहां उन्हें सम्मान, प्रशंसा, ईर्षा, द्वेष और शासकीय-शक्ति का प्रलोभन छू नहीं पाता।

महात्मा गांधी को अपने रचनात्मक-कार्यक्रम की दिशा में जिन व्यक्तियों पर अटूट विश्वास था, उनमें सतीशदा का सम्मान पूर्ण अग्रिम स्थान था। महात्मा गांधी से इस रचनात्मक-कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए—उनकी सत्य, अहिंसा और त्याग की परिभाषा को साकार करने के लिए ही उन्होंने सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया। गांधीजी ने कहा :

'तुम्हारा क्षेत्र रचनात्मक कार्य-क्रम है—बंगाल में, महाविनाश की तरह प्रसारित अकाल, रोग और बेकारी को दूर करने के लिए तुम अपनी योग्यता और शक्तियों का योगदान दो।'

और सतीशदा ने अपने गुरु के वचन को पूरा करने के लिए अपने जीवन की समस्त शक्तियां लगा दीं। सतीशदा ने जो त्याग, जो सेवा और जिस जन-कल्याण की भावना से बंगाल में कार्य किया है उसकी अमिट छाप बंगाल के नगरों पर ही नहीं गावों पर भी अंकित है। अपने दुर्भाग्य के झंझावातों से निरन्तर संघर्ष करने वाले बंगाल को इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि उसके शरीर में घुसे हुए हिंसा, गरीबी और रोग के कीटाणुओं को कोई मसीहा बिना नश्तर के बाहर निकाले। आज भी बंगाल में राजनीतिक नेताओं की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता है जो हिंसा से दूर रहकर स्थानीय गरीबी को मिटाने के लिए अपने जीवन को खपा दें। सतीशदा ने अपने प्रान्त के हित में यही किया।

लेखक को सतीशदा के सम्पर्क में आने और उनके सोदपुर (बंगाल) स्थित आश्रम में एक लम्बे अर्से तक रहने का अवसर मिला है। लेखक ने अनुभव किया है जैसे न केवल बंगाल की बल्कि समस्त देश की बेकारी, भुखमरी और गरीबी उनके जीवन में सिक्त हो गई है। उनके दैनिक जीवन का प्रत्येक क्षण अपने लिए न होकर, दूसरों के हित के लिए होता है। वे कल्पना और भावना से अधिक रचनात्मकता और वास्तविकता में विश्वास करते हैं। और अपने विश्वासों के प्रति वे इतने दृढ़ हैं कि कोई उन्हें उनसे डिगा नहीं सकता। बंगाल के ग्राम-ग्राम में, नगर नगर में जो आज खादी का प्रचार है, उसका अधिकांश श्रेय सतीशदा को ही

है। उनके अन्दर 'व्यवस्था' की शक्ति इतनी प्रबल है कि उन्होंने बगाल के खादी उत्पादन को इतना अधिक व्यापक और विस्तृत कर दिया था कि उसकी खपत बम्बई में भी होती थी। सम्भव था कि बगाल की खादी बम्बई की मार्केट के ऊपर सस्ती होने सुन्दर और मजबूत होने के कारण छा जाती और गाधीजी की विकेन्द्रीकरण की योजना को धक्का लगता। यह सतीशदा को स्वीकार नही था, जैसे ही उन्हे इस बात का आभास मिला उन्होंने 'खादी प्रतिष्ठान' की बम्बई स्थित दूकान बन्द कर दी। आज बगाल के प्रमुख-प्रमुख नगरो में 'खादी प्रतिष्ठान' की दुकानें है, जहा से विशुद्ध घी, अच्छा चावल और सस्ती व टिकाऊ खादी मिलने की व्यवस्था है। कलकत्ते में तो लगभग पचास दुकानें हैं जो नगर के विभिन्न भागो में खुली हुई है। इतनी विशाल सस्था का कुशल सचालन सतीशदा द्वारा होता है।

उनका इस बात में विश्वास है कि देश की आर्थिक सम्पन्नता गृह-उद्योगो के अधिक-से-अधिक प्रसार से ही सम्भव है। वे मानते है कि ज्यो ज्यो धन का विकेन्द्रीकरण होगा, धन की विषमता अन्त पाती जायगी सर्वसाधारण को खुशहाल मिलेगी और देश में सम्पन्नता के दर्शन होंगे। जहा तक गृह-उद्योगो का सफल बनाने का प्रश्न है, उनका प्रयास सफल हो चुका है। उन्होंने गृह उद्योगो में नये-नये प्रयोगो द्वारा उन्हें इतना सफल बना दिया है कि वे आसानी से देश के ग्रामों में आरम्भ किये जा सकते है और उनके उत्पादन द्वारा आजीविका-अर्जित की जा सकती है। गृह उद्योगो के सम्बन्ध में खादी प्रतिष्ठान आश्रम, सोदपुर (बगाल) एक सफल शिक्षण-केन्द्र है। वहा हाथ से कागज बनाना, पशु-पालन, मधुमक्खी-पालन, छपाई, बाईडिंग तेल घानी, आदि उद्योगो की कुशलता-पूर्ण शिक्षा दी जाती है। पुराने उद्योगो में उन्होंने महत्वपूर्ण सुधार किये हैं। उन्होंने छोटे-छोटे ऐसे यन्त्रो का आविष्कार किया है, जिन्हे सुविधापूर्वक कुटीरो में लगाया जा सकता है और उनकी सहायता से सुन्दर वस्तुओ का शीघ्र उत्पादन किया जा सकता है। हाथ से कागज बनाने की कला को उन्होंने काफी उन्नति दी है। अन्य स्थानो पर हाथ से कागज बनाने के लिए टाट और रद्दी कागजो का उपयोग किया जाता है लेकिन सोदपुर आश्रम में कागज बास से बनाया जाता है। और वहा का बना हुआ कागज मिल से बने हुए कागज से भी अधिक मजबूत और सुन्दर होता है। सतीशदा के मन में कल्पना गृह-उद्योगो को लेकर जापान की है। वे इन उद्योगो को आधुनिकतम बनाने में विश्वास करते है। आज जो देश मे गृह उद्योगो के उत्पादन के लिए लोक-प्रवृत्ति का सृजन नही हो पाया है, उसका मुख्य कारण यही है, कि गृह-उद्योगो का उत्पादन लोकरुचि के अनुसार नही है।

सतीशदा जन्मजात वैज्ञानिक हैं। उनमें अन्वेषण की अद्‌भुत क्षमता है। वे विषय की गहराई में उतरते हैं और उसका सत्य जान लेने पर ही सन्तोष पाते है। अपनी इस प्रकृति के कारण ही वे अपने गुरु, प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व० श्री प्रफुल्लचन्द्र गुप्त के प्रिय शिष्य माने जाते रहे है। सतीशदा यदि मात्र विज्ञान के क्षेत्र में होते तो नि सन्देह आज उनका स्थान देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिको में होता। लेकिन उनकी जन-सेवा तथा उदारवृत्ति को मात्रविज्ञान की परिधि परिवेष्ठित न कर सकी। उन्होंने अपने को वहा से हटा कर लोक-सेवा के लिए अपनी शक्तियो को लगा दिया। वैज्ञानिक श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त, लोकसेवक सतीशदा हो गये। सतीशदा के साथ-साथ आज उनका सारा परिवार लोक-सेवा और, दुखियो के दुख निवारण में निरतर प्रवृत्त है। मा हेमप्रभा देवी, ने बगाल के ग्राम-ग्राम में जाकर अकाल और क्षुधा-पीडित क्षेत्रो की जो सेवा की है वह चिरस्मरणीय है। अविभाजित भारत के दिनो में जबकि नोआखली में साम्प्रदायिकता ने ताण्डव-नृत्य किया तो मा हेम-प्रभादेवी ने जाकर उन्हे मानवता का वह अमर-सन्देश दिया जो कि आगे चलकर महात्मा गाधी की नोआखली यात्रा के समय एक आधार-शिला सिद्ध हुआ। श्रीमती हेमप्रभादेवी ने स्वय को पति के कर्तव्यमार्ग पर अर्पित कर दिया है। और वास्तविकता तो यह है कि वे आज सतीशदा के लिए एक प्रेरणा, एक गति बन गई हैं। जिन लोगों को सोदपुर आश्रम में रहने और 'मा' के

सम्पर्क में आने का अवसर मिला है, वे जानते हैं कि देवी हेमप्रभा समस्त आश्रमवासियों की मां है, जिन्हें सदैव यह चिन्ता बनी रहती है कि उनके पुत्रों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

उनके अनुज श्री क्षितीशचन्द्रदास गुप्त के लिए जीवन का सबसे बड़ा आकर्षण उनके अग्रज—श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त हैं। उन्होंने भी अपना सर्वस्व सोदपुर आश्रम के लिए लगा दिया है। वे इतने मृदुभाषी और सौजन्यत-प्रिय हैं कि उनसे मिलकर लोगों को हार्दिक प्रसन्नता होती है। मधुर इतने जैसे शहद, भावुक ऐसे जैसे उच्च कोटि का कवि, सरल इतने जैसे बालक, शान्त ऐसे जैसे शरद् की नीरव रात्रि। उनका व्यक्तित्व सोदपुर के आश्रमवासियों के लिए बहुत बड़ा आकर्षण है। सोदपुर-आश्रम का अद्वितीय मधु-मक्खी-क्षेत्र उन्हींकी देन है।

जीवन में सत्य सतीशदा के लिए सबसे बड़ी वस्तु है। इसी सत्य की सुरक्षा के लिए उन्हें अनेक बार अपने प्रिय स्वजनों का डट कर विरोध करना पड़ा। उन्होंने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का भी सैद्धान्तिक आधार पर विरोध किया। उन्होंने अपने मित्र सम्पादक-प्रवर श्री रामानन्द चटर्जी का भी विरोध किया और क्षुद्र प्रान्तीय भावना का सदैव तिरस्कार किया। जिस समय उन्होंने हरिपुरा कांग्रेस के प्रश्न को लेकर नेताजी का विरोध करना पड़ा उस समय सारा बंगाल प्रान्त उनके विरुद्ध हो उठा। लेकिन उन्होंने लोकमत की अपेक्षा अपने सिद्धांतों और विश्वासों को ही अधिक महत्व दिया। उन्होंने डट कर उन पत्रों और उन व्यक्तियों का अपनी पत्रिका द्वारा विरोध किया जो सस्ती भावुकता, प्रान्तीय और व्यक्तिगत स्वार्थों से वशीभूत थे। 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादक ने यह बात सिद्ध कर दी थी कि उनकी सम्पादकीय टिप्पणियां कितनी उग्र लेकिन विवेकपूर्ण तथा तथ्यपूर्ण होती थी।

सतीशदा का पत्रकार के अतिरिक्त लेखक के रूप में भी अपने क्षेत्र में अद्वितीय स्थान है। उनकी पुस्तकें 'दी काऊ' और 'होम एण्ड विल्लेज डाक्टर' अपने विषय की अद्वितीय पुस्तक है। उन्होंने इन पुस्तकों के अतिरिक्त भी अन्य पुस्तकें लिखी है। खादी अर्थ-शास्त्र पर उनका अध्ययन, मनन और रचनात्मक-कार्य अतुलनीय है। पक्के राष्ट्रवादी श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त गांधीजी की रचनात्मक योजना के सच्चे भाष्यकार हैं। गांधीजी ने क्या कहा, यह केवल उन्होंने पढ़ा, सुना या उस पर मनन ही नहीं किया बल्कि उसे मूर्तरूप भी दिया है। सतीशदा की भावनाओं की प्रतिमूर्ति उनकी 'खादी-प्रतिष्ठान' संस्था है। खादी-प्रतिष्ठान-आश्रम कलकत्ता से दस मील दूर सोदपुर-स्टेशन के ठीक सामने है। लगभग आधे मील वर्ग के क्षेत्र में सोदपुर-आश्रम बसा हुआ है। उसमें प्रवेश करते ही ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी तपोभूमि में प्रवेश किया हो। आश्रम में प्रसारित सुरुचि, सादगी और मृदु-भाषा का प्रभाव आगन्तुकों पर पड़ना अवश्यम्भावी है। यही आश्रम सतीशदा का निकेतन है।

सतीशदा की सर्वतोमुखी प्रतिभा, सत्य के प्रति निष्ठा और कर्तव्य के आगे आत्म-विसर्जन की भावना से गांधीजी अत्यधिक प्रभावित थे। सौम्य, शान्त, विद्वान, मानापमान की भावना से दूर सतीशदा, आज के श्रेष्ठ कांग्रेसमैनों के लिए आकाश-द्वीप के समान है, जिनसे उनका मार्ग आलोकित होता रहता है। गांधीजी और उनके सिद्धांत तो उनके रोम-रोम में बस गए है। गांधीजी उनका आदर करते थे और स्नेह करते थे। बंगाल-यात्रा के अवसर पर सोदपुर-आश्रम ही उनका निवास-स्थान हो गया था और सतीशदा पर ही उनके कार्यक्रम बनाने का उत्तरदायित्व रहता था।

●

मनुष्य सुन्दर विचारों से सुन्दर जीवन की ओर अग्रसर होता है और सुन्दर जीवन से सर्वनिरपेक्ष सुन्दर जीवन की ओर बढ़ता है।

—प्लेटो

कन्हैयालाल मिण्डा

आत्म-विश्वास

जिसका मन स्थिर हो और आत्मा में पूर्ण विश्वास हो वही पूर्णता को प्राप्त होता है। जिसके मन में सशय होजाता है वह भ्रमरूपी समुद्र में ही गोता लगाता रहता है। और वह अनर्गल भ्रम वृद्धि को मलीन करके उत्तरोत्तर अकर्मण्यता की ओर अग्रसर करता है।

गीता में लिखा है कि निश्चित को छोडकर अनिश्चित पर नही जाना चाहिए। जो निश्चित लक्ष्य को छोड अनिश्चित मार्ग अपनाते हैं वह निश्चित से भी वञ्चित रह जाते हैं। भगवान ने यहा तक कह दिया "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक" कि तू सब कुछ की चिन्ता छोड कर केवल मुझ ही पर निर्भर कर। मै तेरे पाप, दोषो को स्वय हरूगा। तू मुझपर आश्रित रह और जो करे सो मुझे ही अर्पण कर। परन्तु जबतक पूर्ण विश्वास न हो जाय और निर्भयता न आ जायें तबतक यह कैसे सम्भव हो सकता हैं। यद्यपि शास्त्रो, पुराणो, श्रुतियो और महान् ग्रन्थो में ऐसा उल्लेख है किन्तु वह आदर्श के लिए हो सकता है। जब तक मनुष्य स्वय उसका अनुभव न कर ले उसे कैसे मानें। प्राय दैनिक व्यवहार में हम देखते है कि जिसका जिसपर विश्वास जम जाता है उसके लिए फिर वह चाहे जो करे उस पर अविश्वास नही करता है और उस विश्वास पर निर्भर करता है परन्तु जो किसी का विश्वास करता है वह एक समझने के पश्चात् ही करता है और जब वह एक समझ लेता है तभी उसमें निर्भयता आती है और जब निर्भयता आती है तब उसकी शकायें निर्मूल हो जाती हैं और वह साम्य भावना से निर्भयतापूर्वक उस पर पूर्ण भरोसा करता है और जो भरोसा करता है वह अवश्य पाता है। यह अक्षरश सत्य है और पग पग का अनुभव ही इसका प्रमाण है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है "जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तिहीं मिलत न कछु सन्देहू"

जिसका जिसपर सत्य सनेह हो वह उसे निश्चय ही प्राप्त होता है, यह निर्विवाद और ध्रुव सत्य है। उदाहरणार्थ आये दिन ग्रेजूयट एपलीकेशन फाईल के आधार पर दर दर की हाजिरी बजाते रहते हैं और हम गली मोहल्लो में घम फिर कर सिर पर टोकरी रख कर वस्तु बेचने वालो और मजदूरो को प्रसनता से हसते देखते है। मनुष्य में सब कुछ है। क्या नही है? आवश्यकता एकमात्र आत्म विश्वास की है। जो सत्य-मार्ग पर रहते हैं उनकी आत्मा में बल होता है, वे निर्भय हैं और अपार गति से निरन्तर आगे बढते है। जिनको सच्ची लगन होती है वे पीछे कब हटते है। पीछा ढोगी और बगुला भक्ता का आश्रम है। आत्मविश्वासी सत्यता रूपी नैय्या के सहारे सदैव सफलता-रूपी पर्वतो के उत्तुग श्रृगो पर विजयश्री फहराते रहते हैं। अग्रेजो के राज्यकाल में मुट्ठीभर हाड वाले गाधी ने कितनी निर्भयतापूर्वक कह दिया था और कह ही क्या दिया था आन्दोलन चलाया था कि अग्रेजो भारत छोडो? उस समय यह कहना क्या साधारण बात थी। पर वह सत्यता का अन्वेषक और आत्मविश्वास का जीवित प्रमाण था। वह बार बार यह कहता था कि मेरा चाहे जो कुछ छिन जाये पर यदि प्रभु विश्वास छिन गया तो मेरे में रह ही क्या जायगा।

जिसके तन पर लगोटी तक नही होती वह सिर पर घास का भरोटा उठाये फिरता है और ६ आने मागता है। आप उसे ३ आने कह दीजिए, चार आने कह दीजिये; चाहे साढे पाच आने कह दीजिए पर वह कदाचित नही देता क्योकि उसे विश्वास है कि उसकी यथार्थ की कमाई का मूल्य छ आने से कम नही है। वह दो घन्टे तक उस भरोटे को सिर पर उठाये मीलो तक फिर लेगा पर आखिर छ आने को ही बेच कर जायेगा।

एक तागे या रिक्षा वाले का आत्म विश्वास देखिए। आप अमुक स्थान से अमुक स्थान तक जाने का किराया उससे पूछिए और चार आने कम कह दीजिये, वह नही जायगा, क्यो? क्या उसको कोई और दूसरी कमाई है। परन्तु तागा या रिक्षा भाडा कमाने वालो

को विश्वास है कि उनकी कमाई हक की है। वे कम में क्यों जाये। वह एक दूकानदार की तरह दो रुपये का माल दो आने कम में नहीं दे सकता। एक सड़क के मजदूर को ही लीजिये। यदि यहां से वहां तक की मजदूरी आठ आना है तो आप उसे कह देखिए कि सात आने ले ले। वह हर्गिज नहीं जाता। चाहे वह बेकार बैठा रहेगा। क्योंकि उसे विश्वास है कि उसका पारिश्रमिक यथार्थ है। उसे इतना अवश्य मिलेगा और इसी सत्यता व निर्भयता के बल पर वह तीन रुपये की मजदूरी तीन पैसे कम में भी नहीं करेगा। क्योंकि उसे अपनी चर्या में आत्मविश्वास है। वह निर्भय है कि यह न सही और सही। एक कारीगर यदि तीन रुपये रोज पाता है तो वह पौने तीन में कभी नहो जायगा, चाहे आधे दिन निठ्ठला बैठा रहे। पर यह सब क्यों? क्योंकि वह अपने आपमें विश्वास रखता है। उसे अपनी सच्चाई पर गर्व है और इसीलिए बिना किसी विचार किये वह सहज ही कह देता है कि इससे कम में नही होगा और आपकी रजामन्दी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही आगे बढ जाता है।

आगे वह बढ़ते हैं जो सत्य पथ पर है, जिन्हें अपने आप पर विश्वास है, जो निर्भय है। जो दुनिया की आंखों में धूल झोंककर विफल प्रयास करते हैं वह अपने आपको धोखा देते हैं, वह डरपोक होते है। संकल्प और विकल्प के सागर में गोते लगाते रहते है और भ्रमरूपी भंवर में फंसे रहते है। उनकी कभी विजय नहीं होती। इस संसार में अटक नहीं। अटक तो मन में है :—

"सबै भूमि गोपाल की या में अटक कहाँ। जा के मन म अटक है सोई अटक रहा।"

आज कल सत्कार्यों के लिए साहस करने वाले इनगिने हैं पर दुःसाहसियों की कमी नहीं। छोटा सा लड़का सैकड़ों आदमियों के बीच जेब कतरने की हिम्मत करता है, संगीन पहरा होते हुए भी बैंकों पर डाका डाल दिया जाता है। यह आत्मविश्वास के दुरुपयोग के नजारे हैं! कभी सत्य और धर्म के लिए लोग बलिदान करते थे, आज ऐशोआराम व भ्रष्टाचार के लिए मरते हैं। अपनी सच्चाई के आधार पर जीने वालों ने जानें दे दी, दीवार में चुने गये, बदन में कीलें भोंक दी गई, पर विश्वास टस से मस नहीं हुआ। इसीलिए आज भी उनकी जीवनज्योति, अखण्ड दीप-शिखा की तरह देदीप्यमान है। जिन्हें आत्मविश्वास होता है वही आगे बढ़ते है और सफलता उन्हीं के चरण चूमती है। जो आत्मा में विश्वास करते है वह कभी नहीं मरते और इस नश्वर शरीर के तेज से अपने शौर्य की अखण्ड ज्योति युग-युग के लिए प्रज्वलित कर जाते हैं।

पर्वतारोही दलों को यदि इतना विश्वास अपने ऊपर न हो कि वे हिमाच्छादित उत्तुंग-शृंगों पर विजय-पताका फहरा देंगे तो वे घर से नहीं निकल सकते! एक यही क्या, किसी भी कार्य के करने पर कर्त्ता की आत्मा में लक्षित कार्य के प्रति दृढ़ आत्म-विश्वास न हो तब तक उसका काम आगे नहीं बढ सकता। श्रेष्ठ और सफल जीवन की कुंजी सत्य एवं निर्भय रूपी स्तम्भों पर आधारित आत्म-विश्वास ही है। सांसारिक कार्यों की सफलता का आधार जहां आत्म-विश्वास है वहां आध्यात्मिक प्रकरण सहज ही समझा जा सकता है।

●

अगर लोग काम को अपना ही काम कहना बन्द कर सकते तो इससे बहुत-से उपद्रवों का अन्त हो जाता। —श्री मां

●

गीत

दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !
आँज मैं सकूँ जिसे हरेक आँख में अभय,
बाँट मैं सकूँ जिसे समस्त विश्व में सदय,
बाँध क्षुद्र धूल कर सके जिसे न क्षय, न लय,
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए।

जो बँधे न वृन्त से, न डाल से, न पात से,
जो मुँदे न, जो खुले न रात से, प्रभात से,
जो थके न, जो झुके न धूप, वारि, वात से—
फूल नहीं, फूल का सुवास मुझे चाहिए !
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

घूँट-घूँट पी सके घृणा-समुद्र जो अतल,
बूँद-बूँद सोख ले सकल विषम कलुष गरल,
अश्रु-अश्रु बीन ले धरा बने सुखी सकल,
तृप्ति नहीं, चिर अतृप्त प्यास मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

घेर जो सके समग्र स्वर्ग, नर्क, भू, गगन,
बाँध जो सके सकल करम, धरम, जनम, मरण,
छू सके जिसे न देशकाल की गरम पवन,
मुक्ति नहीं, मुक्त प्रेम-पाश मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

देवता नहीं, मनुष्य बस मनुष्य बन रहे,
अर्चना न, वन्दना न, द्वेष-मुक्त मन रहे,
स्वर्ग नहीं, भूमि भूमि के लिए शरण रहे,
अमृत नहीं, मर्त्य का विकास मुझे चाहिए !
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

विष्णुशरण

जीन जेक्वस रूसो

"प्रकृति की अवस्था में समानता एक वास्तविक और पवित्र सत्य है", "साधारण व्यक्तियों से ही यह मानव-जाति निर्मित हुई है। जिसमें जनसाधारण नहीं वह कठिनता से विचारणीय है।"

जनसाधारण के अधिकारों की आवाज को उठानेवाला जीन जेक्वस रूसो एक साधारण व्यक्ति के रूप में ही पैदा हुआ और उसी रूप में मरा। सन् १७१२ में जेनेवा में एक घड़ी बनाने वाले के घर में वह पैदा हुआ। ग्रामीण पाठशालाओं में उसने मामूली शिक्षा पाई। अपने उग्रविचारों के कारण वह गिलोटीन से बचने के लिए ६ वर्ष तक योरोप में मारा-मारा फिरा और जब सन् १७७० में वह फ्रांस वापिस आया तो वह एक गरीब, अकेला और उपेक्षित व्यक्ति था। जो मनुष्य उसके विचारों से सर्वाधिक प्रभावित हुए वे उसे भूल गए थे। उस समय के जो प्रसिद्ध विचारक थे वे उसे पागल कहने लगे थे। आठ वर्ष तक वह मुश्किल से जीवित रहने के साधन जुटाता रहा और जब सन् १७७८ में वह मरा तब एक साधारण व्यक्ति की ही तरह मरा।

लेकिन वह एक साधारण व्यक्ति नहीं था। वह असाधारण था। वह अपने समय से बहुत आगे था। १८ वीं शताब्दी का होते हुए भी वह विचारों में २० वीं शताब्दी का था। वह मानव अधिकारों का हिमायती था। वह विचारक था, शिक्षा सुधारक था, प्राकृतिक छटा का प्रेमी था; सबसे बढ़ कर वह स्पष्ट और सत्य-वक्ता था।

एक समय था जबकि चर्च के पादरियों, राजाओं, माल दार साहुकारों और शहजादों का ही बोलबाला था। केवल वेही सम्माननीय और विचारणीय व्यक्ति थे। जनसाधारण को कोई मान ही न था, उसकी कोई आवाज ही न थी। किसी को इस बात का ध्यान ही न था कि उनका भी कुछ मान हो सकता है। उनकी भी कोई आवाज हो सकती है। सरकार कौन बनावे, सरकार के क्या काम हों? उसका उत्तर था जनसाधारण। वह जनसाधारण के हकों को; उसकी आवाज को लेकर आगे बढ़ा और एक दिन १४ जुलाई १७८९ को जनसाधारण की उमड़ती हुई घटायें पेरिस में बेस्टिल पर छा गई, यद्यपि वह जनसाधारण के भाग्य के निपटारे के उस दिन को देखने के लिए बचा न था पर उसकी "सोशल कोन्ट्रैक्ट" क्रान्तिकारियों की गीता बन चुकी थी।

तब तक समझा जाता था कि जनसाधारण शासित होने के लिए ही हैं। वह बुरा है। उसे पार नियंत्रण के कठोर कानूनों के शिकंजे में जकड़ने की आवश्यकता है। लेकिन रूसो ने कहा कि यह विचार गलत है। यह गरीबों पर अपनी प्रभुता और अपना आधिपत्य थोपने का बहाना है। सरकार छोटी-से-छोटी और कानून कम-से-कम होने चाहिए।

कोई मनुष्य बुरा नहीं है, यदि उसे गलत शिक्षा-दीक्षा न दी जाय। इस नवीन सिद्धान्त का उसने प्रतिपादन किया। प्रत्येक मनुष्य का उसके स्वाभाविक गुणों के अनुसार विकास होने दो। इस प्रकार शिक्षा पर उसके अपने विचार थे जो आगे चलकर फ्रोबेल और मोंटेसरी ग्रन्थों में प्रस्फुटित हुए।

उसके समय में मुक्त प्राकृतिक सौन्दर्य घृणा की वस्तु थी। लेकिन अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में ही रूसो ने पैदल आल्प्स को पार किया और बाद में उसने लिखा:—

"केवल मेरे आनन्ददायक दिनों में ही ऐसा था कि मैंने पैदल यात्राएं की, इससे मुझे हमेशा खुशी मिलती थी। बाद में कर्तव्यों, काम, सामान ने मुझे बाध्य कर दिया कि मैं गाड़ी का प्रयोग करूं और एक सम्भ्रान्त व्यक्ति का रूप बनूं। दुःख, चिन्तायें और परेशानियां मेरे साथ गाड़ी में घुस जाती थीं और जबकि अपनी यात्राओं में पहले मुझे एकमात्र यात्रा करने का आनन्द मिलता था, अब केवल गंतव्य स्थान तक पहुंच जाने की इच्छा पैदा होती है।"

रूसो सत्यान्वेषी था। वह सत्य को छिपाना जानता

ही न था, चाहता ही न था और जब उसने अपनी आत्मकथा लिखी तो उसमें बिना छिपाव और हिचकिचाहट सब सत्य उडेल दिये। चाहे वह कितने ही लज्जाजनक, कुत्सित अथवा कटु क्यो न रहे हो। गाधीजी ने भी तो ऐसा ही किया था। रूसो ईश्वर में विश्वास करता था लेकिन चर्च में नही और उसने चर्च पर आक्रमण किया। लेकिन यह विचार इतना विप्लवकारी था कि उसे अपनी रक्षा के लिए देश छोडकर भागना पडा।

रूसो मानव के अधिकारो—समानता, प्रजातत्र, स्वतत्रता में दृढ विश्वास रखता था और अपने विश्वास पर चलता भी था। उस ही का विचार एतलाटिक के उस पार अमरीकी विधान का आधार बना। उसी ने फ्रेंच क्रान्ति का सृजन किया। समाजवाद और समष्टिवाद उसी के विभिन्न रूप है। आज भी सारा ससार उसी विचार से आप्लावित है। मानव-समाज इस देन के लिए उसका चिरऋणी रहेगा।

भारत और फिलपीन

रामसिंह रावल

लगभग ग्यारह वर्ष बीत चुके है, जब मैंने फिल्पीन को निकट से देखा। यह वह समय था, जब सारे पूर्वी एशिया में एक अनोखा परिवर्तन आ रहा था। जापान की तानाशाही सेनाए सारे पूर्वी एशिया पर छा चुकी थी। पश्चिमी साम्राज्यवाद की ईंट से ईंट बज चुकी थी, और उसका स्थान जापानी सम्राज्यवाद ले रहा था। परन्तु एक अनोखा परिवर्तन जिससे शायद जापान के नानाशाह भी परिचित थे, एशिया के सभी देशो में आ रहा था। और वह परिवर्तन था, प्रत्येक देश में विदेशी राज्य से छुटकारा पाने की आकाक्षा।

फिलपीन भी इस परिवर्तन से वचित न रह सका। वह लगभग चार सौ वर्षों से पराधीनता के चगुल में फसा हुआ था। पहले स्पेन को प्रजापीडक राज्य ने लगभग तीन सौ वर्ष तक उसको कुचला, उस समय ७१ बार विप्लव का झडा ऊचा हुआ और जब सन् १८९६ में फिलपीन के क्रान्तिकारी दल ने आगिनाल्डो (Auginaldo) नाम के महापुरुष के नेतृत्व में स्पेन के प्रजापीडक राज्य की जडें हिला दी तो अमरीका ने आगिनाल्डो की सहायता का नाम ले कर फिल्पीन पर अपना अधिकार जमा लिया। परिणाम यह हुआ कि जिस आगिनाल्डो के क्रान्तिकारी दल की, स्वतत्रता के नाम पर, सहायता की गई थी, उसी आगिनाल्डो को अमरीका के विरुद्ध फिर आजादी का असफल युद्ध लडना पडा।

स्वतत्रता प्राप्त करने की योजनाओ का, आगिनाल्डो की पराजय से, अत न हुआ। शान्त और अशान्त दोनो प्रकार के साधनो से स्वतत्रता का आदोलन बराबर जारी रहा। और जब सन् १९४१ में जापान ने अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की, तो उस समय फिल्पीन में एक ऐसी सस्था का जोर था, जिसका नाम, कालीबापी (Kalibapi) था। यह कालीबापी नाम की सस्था ही थी, जिसने मुझे फिल्पीन की ओर आकर्षित किया। उसके झडे पर गाधीजी के चरखे जैसा चरखा बना हुआ था। पता लगाने से मालूम हुआ कि गाधीजी का फिल्पीन की राज्यनीति पर काफी अधिक प्रभाव पडा था। चरखे को कालीबापी के नेताओ ने गृहउद्योग का चिह्न स्वीकार कर, उसे अपनाया। यहा तक ही बस न था, कालीबापी के नेता लोग जनता को यह साफ साफ कहते कि हमारे वह नेता जो अमरीकी सरकार की कठपुतली बनकर हमारे ऊपर राज्य कर रहे हैं, क्या वह देश की गरीबी को भूल गये है? क्या वे भारत के गाधीजी के समान मामूली घरो में नही रह सकते? क्या वे हाथ के बुने हुए कपडे नही पहन सकते? कालीबापी विदेशी वस्तुओ के बायकाट पर जोर देती थी।

कालीबापी के इस प्रोग्राम को भारत के गांधी (आधुनिक) युग के प्रभाव का परिणाम कहा जा सकता

है, वैसे भारत और फिलपीन के आपसी सम्बन्ध शताब्दियों से चले आ रहे हैं। जब यूरोप पर अभी सभ्यता का उजाला भी न पड़ा था, तब भारत की सभ्यता अपना उज्ज्वल प्रकाश अपनी सीमाओं से बाहर डालने लगी थी। पल्लव राज्य के समय भारत की सभ्यता ने महापूर्वी एशिया के सभी देशों पर अपनी धाक जमा ली थी। जावा, सुमात्रा, स्याम, हिन्दचीन और फिलपीन पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का आधिपत्य स्थापित हो चुका। यह आधिपत्य केवल भारतीय सभ्यता और संस्कृति ही का न था, वास्तव में भारत के सुप्रसिद्ध उपनिवेशक, महाराजकुमार विजय ने इन सभी महापूर्वी-एशिया के देशों पर अपना राज्याधिकार जमा लिया था। परन्तु जब पल्लव-राज्य का चालूक्य और चोला राज्यों की सेनाओं की मार से अंत हुआ तो महापूर्वी एशिया के इन भारतीय राज्यों में भी परिवर्तन आया। वहां अब दो बड़े राज्य स्थापित हो गये। एक तो था, सुमात्रा का श्री विजय साम्राज्य और दूसरा जावा का मज्जापहित राज्य।

मज्जापहित राज्य का साम्राज्य फिलपीन तक फैला हुआ था। इस उपनिवेशिक भारतीय राज्य के कारण फिलपीन पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का और भी अधिक प्रभाव पड़ा। फिलपीन के एक प्रसिद्ध विद्वान डा० ट्रिनिडाड पार्डो डी ट्वेरा (Dr. Trinidad Pardo de Tavera) ने लिखा है, कि भारत से केवल व्यापारी लोग ही न आए, बल्कि वहां से धर्म, सभ्यता और संस्कृति के दूत अधिक आए। यह भारतीय सभ्यता और ब्राह्मण धर्म का ही आगमन था जिस ने फिलपीन की भाषा, कला, शिल्पकला, समाज-धर्म, कानून, वेष, रस्मोरिवाज पर प्रभाव डाला। डा० साहब लिखते हैं कि फिलपीन में सूर्य, चंद्रमा, जल, वायु, अग्नि आदि की जो पूजा होती थी, वह भारतीय सभ्यता के प्रभाव का ही परिणाम थी।

फिलपीन की भाषा और लिपि पर भी भारतीय प्रभाव पड़ा। पुरानी लिपि पाली के अधिक निकट है। भाषा में अनेकों ऐसे शब्द हैं, जो संस्कृत और पाली से लिये गए हैं। जैसे मोती (मुक्ता) को 'मुत्या' कहा जाता है और भाषा को 'वाक' कहा जाता है।

फिलपीन की लोक कहानियां भी भारत की देन मालूम होती हैं। आगूसन (Agusan) प्रान्त में एक पौराणिक गाथा प्रचलित है, इसका सम्बन्ध रामायण की अहिल्या की कहानी के साथ है। इफूगाओ (Ifugao) प्रांत के लोगों में एक और पौराणिक कहानी प्रचलित है, कि बाल्टिक (Baltik) नाम के देवता ने तीर मार कर पत्थर से पानी निकाला। यह कहानी महाभारत में अर्जुन के ऐसे ही एक कार्य से मिलती जुलती है।

भारत के एक प्रसिद्ध विद्वान्, डा० धीरेन्द्रनाथ राय फिलपीन यूनिवर्सिटी के लिबरल आर्टस कालेज के फिलास्फी विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। उन्होंने फिलपीन के इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन किया और मालूम किया कि फिलपीन के लोगों में कई ऐसे अंधविश्वास प्रचलित हैं, जो भारतीय जनता में भी हैं, जैसे कि बच्चों को रात के समय कंघी नहीं करनी चाहिए, नहीं तो उनके माता-पिता की मृत्यु का होना संभव है। यदि आकाश पर कोई तारा गिरता दिखाई दे, तो कोई मुसीबत आने वाली होती है। यदि कोई गर्भवती स्त्री जुड़वां फल खाले तो उसके जुड़वां बच्चे होंगे। जिस घर में बच्चा पैदा हो, वहां चालीस दिन तक दिया जलता रहता है।

तात्पर्य यह कि फिलपीन का भारत के साथ कई शताब्दियों से घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा है। और इस पौराणिक सम्बन्ध को गांधीजी के चरखे, अनेकों व्रतों और शान्त आन्दोलन ने फिलपीन पर एक निराला प्रभाव डाल कर फिर से जीवित कर दिया है। अब इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि भारत और फिलपीन के लोग और भी एक दूसरे के निकट आ जावेंगे।

●

गद्य गीत

शकरलाल जा० पुरवार

मेरे आसू—नाथ न समेटो तुम इन्हे अपने रत्न हार के लिए । नभ के आसुवो में नौलाख रत्नो की अनमोल श्री की आभा झलक रही है ।

पुष्पों के आसुवो म विश्व सुरभितकर आत्मोत्सग की मदिर भावना विद्यमान है ।

तारको के दाहक आसुवो म दाह-शमन-शक्ति तथा जडता को सचेतन करनेवाली सजीवनी दमक रही है

अभक के आँसुवा में मातृ दर्शन की आर्त्त-पुकार तथा मातृ मिलन की तीव्र तृष्णा छलक रही है ।

और इन मेरे खारे आसुवो में—ना, ना नाथ ! अविरल बरसने दो इन्हें । न गूथो तुम इन्हें अपने अनमोल रत्नहार में ।

× × × ×

श्रमिको के आसुवो म कर्तव्य निष्ठा की समाधि तथा समाधान का प्रशात तेज है ।

पीडितो के आसुवो में सुप्त बडवानल तथा क्रान्ति की धधकती ज्वालाएँ भडक रही है ।

प्रीति के आसुवो म समर्पण का विमुक्त मकरद तथा मागल्य का मधुर निर्झर बह रहा है ।

त्याग के आसुवो में सागर की गभीरता तथा नगाधिराज की अचल निश्चलता वास करती है ।

और मेरे इन खारे आसुवो में—पापी स्वार्थ, दुराचारी मोह तथा निर्वीर्य द्वेष—

जाने दो नाथ ! अविरल झरने दो इन्हे । न समेटो तुम अपने मौलिक रत्नहार के लिए ।

× × × ×

द्वार के सम्मुख के तुम्हारे पवित्र पद चिन्ह धोकर पश्चात्ताप की विशुद्ध अग्नि से वे जब तक पवित्र न होवें तबतक बरसने दो इन्हें।

लगातार बरसने दो इन्हें । न समेटो तुम अपने रत्नहार के लिये ।

हे मृत्यो ! मेरे निकट न आना । मै वह ज्योति हू जिसे जरा नही —जिसे मरण नही ।

कलियो सा विहसना । फूलो सा विक्सना । तथा सुमन भाडारो से सौरभ चुराने वाले समीरण के साथ स्वैर केलि करना ही मेरा स्वैर कर्म है ।

उर में जलती ज्वाला के निमित से धूपछाह का खेल खलना तथा नयनो में करुणा का विकल विकास ले प्रकाश पर लुट जाना ही मेरा जीवनधर्म है

मानव कल्याण के हेतु सहारक सकटो से यथाशक्ति जूझना और विश्व को प्रकाश देना ही मेरे जलते जीवन का आश्रमम है ।

हे मृत्यो ! मुझपर न झपको । मै वह अमर ज्योति हू जिसे क्षय नही—जिसे मरण नही ।

× × × ×

सुख का क्षण नही—मैं दुख का युग हू ।

बुझने का अभिशाप नही—जलने का वरदान हू ।

घनघोर घटाओ का वात्सल्य, अभिलाषाओ का उन्नत अभिसार तथा अनत का अमर आशीर्वाद हूं ।

प्रलय के पश्चात् नभ में नवसृष्टि का निर्माण करने के हेतु अनत को मेरी आवश्यकता है ।

अत हे मृत्यो ! दूर ही रहो मुझसे । मै वह अमर-ज्योति हू जिसे मरण नही ।

× × × ×

भास्कर की तपन में आग उगलनेवाली ग्रीष्म का निवास है । विद्युत की जलन में हिमवर्षी पावस तिरोहित है ।

और मेरी जलन में निज देह सहित निज सुख-शाति को भस्मकर महाप्रलय तथा नवनिर्माण की विराट शक्ति अर्तहित है ।

इस विराट् शक्ति से टकरा कर विश्व में अपनी हसी न कराओ मृत्यो !

कारण मै वह अनश्वर जलती ज्योति हू मृत्यो, जिसे मरण नही, जिसे मरण नही ।

गंवारपाठा

नित्यानन्द

खाद्य संकट के बारे में हमारे नेताओं की मार्मिक अपीलें हमें अन्तश्चिन्तन के लिए बाध्य करती हैं। अन्न को बरबाद न करने में भले ही शिक्षित-वर्ग सहायक हो सके, किन्तु खाद्य के उत्पादन में बुद्धिजीवियों की सीधी सहायता कठिन है। ऐसी अवस्था में यह आशंका मन में घर कर लेती है कि हम खाद्य-मोर्चे पर अपने कर्तव्य का ईमानदारी के साथ पालन नहीं कर रहे हैं। इस विवशता को दूर करने में घरेलू साग-सब्जियों का उत्पादन उपयोगी सिद्ध हुआ है। फिर भी उन कार्यकर्ताओं के सामने यह समस्या ज्यों की त्यों है, जिनका निवास ऐसे प्रदेशों में है, जहां कि बरसात के सिवाय पानी की कमी रहती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए मैंने कुछ ऐसी वनस्पतियों की खोज की है, जिनके पैदा करने में मामूली पानी की जरूरत होती है और जिनको मानव-खाद्य के रूप में व्यवहृत करना उत्कृष्ट प्रमाणित हुआ है।

इस वनस्पति को मैं करीब बीस वर्ष से जानता हूं, पर पिछले तीन वर्ष से पहले इसका उपयोग दवा के रूप में ही जानता था। आयुर्वेदीय औषधियों में इसका प्रमुख स्थान है। वे भस्में जो अन्य साधनों से नहीं बनतीं, वे भी इसका पुट देने पर आसानी से बन जाती हैं। पेट की बीमारियों पर इसका प्रयोग "कुमार्यासव" के रूप में सारे हिन्दुस्तान में होता है। कुछ बीमारियों पर यह बाहरी रूप में लगाने के काम भी आता है। पर इसका सबसे महान चमत्कार मैंने खाद्य के रूप में देखा। इसपर विभिन्न परीक्षण के बाद खाद्य के लिए प्रामाणिक रूप से गंवारपाठे को अपनाने की सूचना मैंने भाई किशोरीलाल जी मशरूवाला को दी। उनके द्वारा विभिन्न भाषाओं के "हरिजन" में यह सूचना प्रकाशित होने पर भारत के प्रायः सभी भागों से गंवारपाठे की विशेष जानकारी के सम्बन्ध में करीब एक हजार से ऊपर पत्र मिले। कुछ को परिचय, कुछ को उपयोग-विधि और लगाने की तरकीब एवं कुछ को नमूना भी भेजना पड़ा। कई भाइयों के मनोरंजक और शिक्षाप्रद अनुभव भी बाद में पढ़ने को मिले। अन्ततोगत्वा मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि जिस प्रकार हमारे घर में चरखे का होना जरूरी है, उसी प्रकार गंवारपाठा भी अनिवार्य होना चाहिए। स्वयं बापूजी ने जीवन के अन्तिम दिनों में गंवारपाठे का रस पीना शुरू किया था। यदि वे अधिक दिनों ले सकते, तो इसकी प्रशंसा किये बिना न रहते।

गंवारपाठा भारत के सभी प्रान्तों में होता है। कहीं कहीं इसे 'घीकुंवार' या 'कुमारी' भी कहते हैं। जिस जमीन में गंवारपाठा लगाना हो, उसे खोद लें और राख डाल दें। फिर बड़े गंवारपाठे के चारों ओर उगे हुए छोटे-छोटे गंवारपाठों को अलग-अलग लगा दें। कहीं से एक गंवारपाठा लाकर लगाने के बाद कुछ ही दिनों में उसके चारों ओर छोटे गंवारपाठे अपने आप उग आते हैं। मुख्य गंवारपाठे से इनका हलका-सा सम्बन्ध रहता है। उसे हटा कर अलग-अलग स्थानों पर लगाने से भी लगने में कोई दिक्कत नहीं। इनमें अन्तर्जीवन की शक्ति इतनी अधिक है कि भूमि से उखाड़ने के बाद कई हफ्तों तक लापरवाही से यों ही पड़ा रहने पर जब आप लगावेंगे, लग जायेंगे। लगा कर थोड़ा पानी डाल दें।

इसकी खाद भी हमें मुफ्त मिलती है। साधारण गृहस्थ के यहां भोजन बनाने के बाद लकड़ी से जो राख बनती है, वही इसके लिए सर्वश्रेष्ठ खाद है। अधिकतर घरों में राख को बाहर डालने की ठीक व्यवस्था नहीं रहती और वह कूड़ा-करकट में समझी जाकर गन्दगी फैलाने का साधन बनती है। गंवारपाठे को लगाने से इस समस्या का हल निकल आयगा और घर के चारों-ओर सफाई रहने लग जायेगी।

घर के किसी कोने या आंगन में गंवारपाठे को लगा दें। इसकी रक्षा का कोई झंझट नहीं। इसे न पशु खाते हैं और न पक्षी। इसे न तो कड़कड़ाती सर्दी नुकसान पहुंचा सकती है और न चिलचिलाती धूप। अधिक

पानी की भी जरूरत नही। यहा तक कि यदि आप वर्ष भर में एक बार भी पानी नही डालेंगे, तो भी अगली बरसात के पानी से यह अपने आप हरा हो जायगा।

आयुर्वेदोक्त अधिकाश भस्में गवारपाठे से ही बनती हैं। इसीसे इसके गुणबाहुल्य का अनुमान किया जा सकता है। भूख बढाने में तो यह अद्वितीय है। इसका उपयोग साग के रूप में करना चाहिए। एक आदमी के लिए दो पत्ते पर्याप्त हैं। इसके पत्तो का ऊपर का छिलका चाकू से छील कर, अन्दर का गूदा निकाल कर छोटे-छोटे टुकडे कर ले। फिर इनको नमक डाले हुए पानी म पाच बार धो ले। पानी में नमक अन्दाज से डाल लेने मे सुविधा रहेगी। हर बार धोते समय नया पानी डाल लेना चाहिए। फिर थोडी छाछ या दही डाल कर कढी की तरह छोक लें। छाछ या दही के बिना भी छोका जा सकता है। पानी नाम मात्र को ही डालना चाहिए। इसमें पानी अपने आप ही बहुत होता है। इसकी कडवाहट को सर्वथा नष्ट करने के लिए गवारपाठे के गूदे को पानी में धोने के बदले सादे पानी में उबाल लेना चाहिए और फिर छोक ले। लेकिन इस प्रकार बने साग के गुणो में कमी आ जाती है।

मेरा विश्वास है कि गवारपाठे का अचार भी डाला जा सकता है। पर अभी तक उसमें सफलता नही मिल सकी। हा, गवारपाठे की फली का अचार अवश्य जायकेदार और गुणदायक बनता है। आम, नीम्बू आदि की तरह ही इसकी फली का अचार बनाया जा सकता है और उन्ही की तरह टिकाउ भी होगा। इसकी फली जाडे में लगती है।

गवारपाठे का साग और उसकी फली का अचार कितनी ही मात्रा में आप क्यो न खायें, कोई नुक्सान न होगा। गवारपाठे का साग बदहजमी में तो बडा फायदेमन्द है। भोजन के पचाने में सहायक होने के कारण जिन दिनो आप इस साग का उपयोग करेंगे, आपको शरीर में वही स्फूर्ति मालूम होगी, जो कि पालक का साग खाने से प्रतीत होती है। मेरे खयाल में गुणो के दृष्टिकोण में यह पालक से भी अच्छी है। विशेषता यह है कि बारहो महीने गवारपाठे का साग बनाया जा सकता है। सप्ताह में कम-से-कम दो बार तो गवारपाठे का साग जरूर बनाना चाहिए।

जहा तक मेरा अनुमान है, गवारपाठे के उत्पादन में किसी भी जगह और किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को कोई असुविधा न होगी। क्योकि एक पौधे के लिए एक फुट से अधिक जमीन की जरूरत नही होती। ऊचाई भी दो फीट के करीब ही होती है। ऐसी हालत में प्रत्येक घर में गवारपाठे के कुछ पौधे लगाना बिलकुल आसान है। जबकि एक पौधा भी रहेगा वर्षो तक आपके परिवार को हर महीने एक साग खिलाता रहेगा। आलू की तरह गवारपाठे का भविष्य भी सागो की श्रेणी में उत्कृष्ट प्रमाणित होगा।

"····इन्द्रिय-उपयोग धर्म नही है, इन्द्रिय-दमन धर्म है। ज्ञान और इच्छापूर्वक हुए इन्द्रिय-दमन से आत्मा का लाभ होता है, हानि नही। विषयेन्द्रिय का उपयोग केवल सन्तति की उत्पत्ति के लिए ही स्वीकार किया गया है। पर जो सन्तति का मोह छोड़ देता है उसको शास्त्र भी वन्दना करते है। इस युग में विकारो की महिमा इतनी बढ गई है कि अधर्म को ही लोग धर्म मानने लग गये है। विकारो की वृद्धि अथवा तृप्ति में ही जगत का कल्याण है, ऐसी कल्पना करना महादोष-मय है ऐसा मेरा विश्वास है। यही शास्त्र भी कहते है और यही आत्मदर्शियो का स्वच्छ अनुभव है।····विकार रोके नही जा सकते अथवा उन्हे रोकने मे नुकसान है, यह कथन ही अत्यन्त अहितकर है।"

—मो० क० गाधी

सर्वोदय अर्थशास्त्र--लेखक--श्री भगवानदास केला, प्रकाशक--भारतीय ग्रंथमाला, इलाहाबाद, पृष्ठ ३५२, मूल्य ४)।

श्री भगवानदास केला ने अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र, आदि अनेक विषयों पर बड़ा ही उपयोगी और प्रामाणिक साहित्य प्रदान किया ह। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने सर्वोदय की दृष्टि से अर्थशास्त्र की रूप-रेखा उपस्थित की है। पुस्तक सात खंडों में विभाजित है: पहले खंड में, सर्वोदय अर्थ-शास्त्र क्या है, इसका विशद विवेचन किया गया है। दूसरे में उपयोग, तीसरे में उत्पत्ति, चौथे में विनिमय, पांचवें में वितरण, छठे में अर्थ-व्यवस्था और राज्य तथा सातवें में सर्वोदय अर्थ-शास्त्र की विशेषताएं बताई गई हैं। सर्वोदय का सिद्धांत समष्टि से अधिक व्यष्टि के विकास पर जोर देता है। अतः उसके अनुसार जो भी सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था कायम होगी, उसकी बुनियाद में मानव सर्वोपरि होगा। इस पुस्तक में ऐसे ही अर्थ-शास्त्र का विवरण दिया गया है। इन सिद्धांतों के जन्मदाता गांधीजी ने आंशिक रूप में ही सही, इनका सफल प्रयोग कर के दिखा दिया है और यह भी सिद्ध कर दिया है कि यदि मानव को सच्ची और स्थायी शान्ति प्राप्त करनी है तो वह इस अर्थ-प्रणाली का अनुसरण करके ही प्राप्त हो सकती है।

सर्वोदय के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले लोगों के लिये तो यह पुस्तक काम की है ही, पर जिनका विश्वास उन सिद्धांतों में नहीं है, उनके लिये भी यह पुस्तक उपयोगी है। पुस्तक की भूमिका श्रीकृष्णदासजी जाजू ने लिखी है। छपाई साफ और शुद्ध है।

सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था—लेखक श्री जवाहिरलाल जैन, प्रकाशक—भारतीय ग्रंथमाला, इलाहाबाद, पृष्ठ १२७, मूल्य डेढ़ रुपये।

इस पुस्तक का विषय बहुत-कुछ श्री भगवानदास जी केला की सर्वोदय अर्थ-शास्त्र पुस्तक से मिलता है। वस्तुतः इस विषय पर दोनों ने साथ-साथ पुस्तक लिखने का विचार किया था, और लिखने का कार्य बांट लिया था, लेकिन जब दोनों के लिखे अंश एक दूसरे के सामने आये तो उनकी भाषा-शैली आदि में बहुत अन्तर होने के कारण उन्हें स्वतन्त्र रूप से दो पुस्तकों में प्रकाशित करना उचित समझा गया। इस पुस्तक में पूंजीवादी तथा साम्यवादी अर्थ-व्यवस्थाओं के गुण-दोषों की समीक्षा की गयी है, सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था के लक्षण और सिद्धांत का विवरण उपस्थित किया गया है और अंत में इस बात पर जोर दिया गया है कि इस नवीन अर्थ प्रणाली के द्वारा ही मानव-संस्कृति और मानव-सभ्यता की रक्षा की जा सकती है।

यह तथा केलाजी की पुस्तक सर्वोदय की अर्थ-प्रणाली को सही निगाह से देखने तथा खुले दिमाग से समझने की प्रेरणा देती हैं और साथ ही तत्सम्बन्धी प्रचुर सामग्री भी।

रक्षक और भक्षक: लेखक—श्री मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक--आलोक प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ १४०, मूल्य दो रुपये।

श्री मन्मथनाथ गुप्त हिंदी के जाने-माने लेखक हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। प्रस्तुत उपन्यास हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने दिखाया है कि रक्षक होने का दावा करने वाले लोग किस प्रकार भक्षक बन जाते हैं। इस पुस्तक के मुख्य पात्र लक्ष्मणसिंह एक डाक्टर हैं। वह प्रारम्भ में बहुत ही ईमानदार थे और सेवा की दृष्टि से डाक्टरी करते थे, लेकिन परिस्थितियों के दबाव के कारण वह एक बार गिरे तो ऐसे कि फिर उबर नहीं सके। गहरे गड्ढे में फंस गये। वस्तुतः डाक्टर तो समाज-व्यापी अनेक बुराइयों का प्रतीक मात्र है। लेखक का अभिप्राय इस कथानक द्वारा उन सब पर चोट करना है जो समाज के संरक्षण का बाना पहन कर उसे चूसते हैं। उपन्यास बड़ा रोचक है

और समाज की कलुषता पर गहरी चोट करता है। लेकिन यदि भाषा बडी सरस और शैली आकर्षक है। लेकिन यदि इस पुस्तक को हम उपन्यास के रूप में पढें तो सतोष नही होता। पढते-पढते लगता है कि पुस्तक एक विशष ध्येय को सामने रख कर लिखी गयी है। यही कारण है कि उसके पात्रो का सर्वांगीण चित्रण नही हो पाया है। फिर भी इस पुस्तक का अपना महत्व है। समाज-सेवा में रुचि रखने वाले प्रत्येक पाठक से हम इसको पढने की सिफारिश करेंगे।

हमारे सहयोगी

विशेषाक

कानपुर के **'प्रताप'** का अतीत बडा गौरवशाली रहा है। उसी पत्र का १०४ पृष्ठ का विशेषाक, सियारामशरण अक, जो ४ सितम्बर १९५२ को प्रकाशित हुआ है। हमारे सामने है। विनोबाजी के शब्दो में "सियाराम-शरण जो नम्रता की मूर्ति है। नाम उनका सार्थक है। सब नारी-नरो को सीताराम-स्वरूप देख कर वे सबकी भक्ति करते है। उनकी कविता में जो भी रस होगा, वह इसी गुण का परिपाक है।" विशेषाक में हिंदी के अनेक गण्य मान्य लेखको के सस्मरण सकलित किये गये है। उनसे सियारामजी के मधुर और खरे व्यक्तित्व पर तो प्रकाश पडता ही है, लेखक के रूप में भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते है। अक सग्रहणीय है। पर हमें एक शिकायत है कि इस अक में बहुत सी पुरानी रचनाए दे दी गई है। अच्छी चीजें कभी बासी नही होती, लेकिन उनका आधिक्य अखरता है। पत्र का रूप-रग भी उतना आकर्षक नही है। मूल्य एक रुपया है।

काशी के **'संसार'** का १०० पृष्ठ का 'निर्माण-अक' अच्छा और उपयोगी है। उसमें मुख्यत अर्थ-सम्बन्धी सामग्री दी गई है। दामोदर, भाकरा, हीराकुड आदि योजनाओ पर प्रकाश डालने के साथ-साथ बैंक, रेल, कोयला, अबरक, इत्यादि पर भी महत्वपूर्ण सामग्री सकलित की गई है। सहयोगी के इस विशेषाक की बडी उपयोगिता है। जयपुर की दैनिक **'लोकवाणी'** के **'दीपावली अङ्क'** में दस आने में बडे आकार के ७० पृष्ठ की सचित्र सामग्री है। इस अक मे राजस्थान के विविध रूपो की झाकी मिल जाती है। इस प्रकार के जनपदीय प्रयत्न बडे लाभ के है, पर अधिकाश पत्र बाहर की चीजो के पीछे घर की मूल्यवान चीजो की उपेक्षा कर जाते है। दिल्ली के सरकारी पत्र **'आज कल'** ने **'प्रेमचन्द-अक'** निकाल कर बडी सूझ और साहित्यानुराग का परिचय दिया है। विशेषाक की सामग्री पठनीय है। सर्व श्री जैनेंद्रकुमार, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा 'नवीन' जी के लेख बहुत ही रोचक है। प्रेमचन्दजी के कतिपय पत्र, जीवन की विशेष घटनाओ की तिथि-क्रम-तालिका, चित्रो तथा रचनाओ की सूची ने विशेषाक की उपयोगिता में चार चाद लगा दिये है। अक सभाल कर रखने योग्य है। मूल्य आठ आना है।

नये पत्र

बिहार से समय-समय पर हिन्दी में बडे सुन्दर पत्र निकलते रहते है। इस नवम्बर मास से बडा उज्ज्वल भविष्य लेकर एक नई मासिक पत्रिका निकली है— **'अवन्तिका'**, जिसके सम्पादक श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधाशु' है। उसकी सामग्री को देखकर पता चलता है कि पत्रिका को हिन्दी के चोटी के लेखको का सहयोग प्राप्त है और रचनाओ का चुनाव बहुत विवेकपूर्वक किया गया है। पत्रिका के दो स्तम्भ हमें बहुत उपयोगी प्रतीत हुए १ भारतीय वाङमय २ विज्ञान-वार्ता। पहले में भारतीय भाषाओ, जैसे गुजराती, तेलुगु, बगला के साहित्य की गतिविधि का परिचय है। दूसरे में विज्ञान सम्बन्धी जानकारी। वार्षिक मूल्य १०) और एक अक का १) है। मिलने का पता है—श्री अजता प्रेस लिमिटेड, पटना।

हिन्दी में ऐसे साहित्य का बडा अभाव है, जो विज्ञान और उसकी प्रगति का सरल-सुबोध भाषा में सामान्य पाठको को परिचय करा सके। हर्ष की बात है कि कौंसिल आव साइटिफिक एण्ड इडस्ट्रियल रिसर्च (नई दिल्ली) की ओर से इसी अगस्त मास से **'विज्ञान प्रगति'** नामक मासिक पत्र निकलने लगा है। पत्र का उद्देश्य है वैज्ञानिक अनुसधानो की सूचना

(शेष पृष्ठ ४४५ पर)

हमारी राय

ऐसा क्यों ?

राजेन्द्रबाबू दीर्घजीवी हों !

३ दिसम्बर को भारत के राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसाद अपने जीवन के ६८ वर्ष पूरे करके ६९ वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस शुभअवसर पर हम उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भगवान् से कामना करते हैं कि अभी वह बहुत वर्ष तक हमारे बीच बने रहें और अपने परिपक्व अनुभव और दीर्घकालीन साधना का लाभ हमें देते रहे। राजेंद्रबाबू उस पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि है, जो समूचे भारत को एक परिवार का रूप प्रदान करती थी और यही कारण है कि उनके लिए देश के करोड़ों व्यक्तियो के हृदय में गहरी आत्मीयता है।

राजेंद्रबाबू का संपूर्ण जीवन सेवामय रहा है। जब और जहां से सेवा की पुकार आई, अपनी सुख-सुविधा का ध्यान न रख कर वह वहां पहुंचे। हम सब जानते हैं कि प्रारंभ से ही वह कितने मेधावी बालक थे और कितना प्रतिभाशाली उनका विद्यार्थी-जीवन रहता था। लेकिन राष्ट्र को जब उनकी सेवाओं की आवश्यकता हुई तो सब कुछ छोड़ कर सेवा के क्षेत्र में आ कूदे। आजादी की लम्बी लड़ाई में उनका कितना भाग रहा है, यह हमसे छिपा नही है और देश के स्वतन्त्र होने के बाद जब कि उन्हें आराम मिलना चाहिए था, वह निरन्तर काम में जुटे है। अबतक जितने पदों पर उन्होंने काम किया है, चाहे वह खाद्यमन्त्री के रूप में हो, अथवा विधान परिषद के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने अपने को कही भी बचाने का प्रयत्न नही किया, पूरी तौर पर अपने को खपाया है। दमे से वह प्रायः पीड़ित रहते है। लेकिन जबतक मजबूर न हो जांय, विश्राम की वह कल्पना भी नही कर सकते।

आज की विषम परिस्थितियों में देश को अपने इस बुजुर्ग की आवश्यकता है। सरलता, निस्पृहता, सादगी परदुःखकातरता आदि गुणों का उनमें अद्भुत सम्मिश्रण है। हम चाहते हैं कि हमारी नई पीढ़ी उनके इन गुणों को अपने जीवन में उतारे और देश के पुनर्निर्माण में उसी एकनिष्ठ लगन और तत्परता से हाथ बटावे जैसे कि इस महापुरुष ने बटाया है।

विनोबाजी का नया कदम

विनोबाजी के भू-दान-यज्ञ से पाठक भली-भांति परिचित है। तैलंगाना में उन्होंने जिस यज्ञ का प्रारंभ किया था, वह अब उत्तरोत्तर विकसित होता जा रहा है। पहले भूमि मागी, फिर उसमें बैल-दान, हल-दान, और कूप-दान जुड़े, आगे चलकर श्रम-दान आया और अब विहार-प्रदेशीय प्रवास में उन्होंने एक नया कदम उठाया है सम्पत्ति-दान के रूप में। लोगों को आश्चर्य होता है कि एक-पर-एक नई चीज सामने आ रही है, लेकिन सच यह है कि समाज के नव-निर्माण के जिस महान् उद्देश्य को लेकर विनोबाजी ने अपना अभियान प्रारंभ किया है, उसमें ये सब बातें पहले ही से समाई हुई हैं। उन्होंने कई स्थानों पर कहा भी है कि मेरा यज्ञ गंगा की तरह है, जो निकलते समय छोटी होती है, पर बाद में बराबर फैलती जाती है।

सम्पत्ति-दान के पीछे एक क्रांतिकारी भावना है। विनोबाजी ने मांग की है कि लोग अपनी संपत्ति का छठा भाग उन्हे दे दें। 'दे दें' का अर्थ यह नहीं कि उसे उठा कर उनके पास भेज दें, बल्कि यह है कि उनके ट्रस्टी बन जायं और उसका उपयोग विनोबाजी के आदेशानुसार करे। यदि विनोबाजी का कोई आदेश प्राप्त न हो तो अपने को उस पैसे का ट्रस्टी मान कर उसका इस्तेमाल करें और और उसका हिसाब अपने पास रक्खें। काम वास्तव में बड़ा कठिन है और कहा नही जा सकता कि उसमें कितनी सफलता मिलेगी। लेकिन इसमें सन्देह नही कि आज की विषम परिस्थिति, असमान समाज और अर्थव्यवस्था अधिक दिन नही चलने की और

स्वेच्छा से किये गये दान का महत्त्व दबाव से दिये गये पैसे की अपेक्षा कई गुना होता है। इसलिए समय रहते ही चेत जाना श्रेयस्कर है। विनोबाजी ने खतरे की घटी बजा दी है और सुझा दिया है कि सही रास्ता यह है। मानना, न मानना लोगो के हाथ की बात है। जो मान लेंगे, वे मुनाफे मे रहगे और जो नही मानेंगे, वे अपनी जड पर स्वय कुठाराघात करेंगे।

कन्ट्रोल

कभी-कभी कुछ चीजें हमारे साथ ऐसी चिपक जाती है, कि हम चाहते हुए भी उन्हे छोड नही पाते। कट्रोल एक ऐसी ही चीज है। अधिकारी नही चाहते कि कट्रोल रहे, और देश भी इस बला से जल्दी-से-जल्दी मुक्त हो जाना चाहता है। लेकिन दुर्भाग्य कुछ ऐसा है कि उससे पीछा नही छूटता। सरकार को लगता है कि कट्रोल हटने पर सपन्न लोग अपने घरो में अनाज भर लगे और मध्यम या सामान्य श्रेणी के लोग भूखो मर जायगे। सरकार के इस डर में सचाई हो सकती है, लेकिन इस तथ्य में भी कम सचाई नही है जबतक कट्रोल रहेगा, अन्न की दृष्टि से देश स्वावलम्बी नही हो सकता। कट्रोल रखने के मानी यह है कि देश को अनाज देने की जिम्मेदारी सरकार की है। जबतक यह जिम्मेदारी लोगों के ऊपर आकर नही पडेगी, तबतक 'अधिक अन्न उपजाओ' के हजार नारे लगाने और उस पर करोडो रुपये खर्च कर देने पर भी कुछ भी नही होने का। देश अधिक-से-अधिक परमुखापेक्षी होता जायगा। केन्द्रीय सरकार के खाद्यमन्त्री श्री रफी अहमद किदवई ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि सन् १९५१ में बाहर से ४७ लाख टन अन्न लाना पडा था। १९५२ में ३९ लाख टन और अब १९५३ में कुल २५ लाख टन लाना पडेगा। यह ठीक है कि इन आकडो में कमी हुई है। पर इनसे यह निश्चय नही होता कि हम जल्दी ही अपने पैरो पर खडे हो जायगे। अपने निधन से कुछ समय पूर्व गाधीजी ने अपने एक प्रवचन में कहा था कि हमारे देश में ३ प्रतिशत अन्न की कमी है। उसे लोग सप्ताह में एक बार खाना छोड कर पूरी कर सकते है या सागभाजी का अधिक उपयोग करके। लेकिन इस कमी को बाहर से अन्न लाकर पूरा करने में एक बडा खतरा यह है कि हम दूसरो पर निर्भर करना सीख जायगे, स्वावलम्बी होने का प्रयत्न नही करेंगे। उनकी भविष्यवाणी सही निकली।

सरकार ने कट्रोल की चीजो के यातायात को ढीला करही दिया है। अब वह क्यो कट्रोल को नही हटा देती? नियन्त्रित भावो पर वह कडी निगाह रक्खे और जो भी उसकी अवहेलना करे, उसे कठोरतम दड दे। आज तो सरकार की आखो के सामने चोरबाजारी होती है और लोग बेधडक कहते है कि सरकार अपनी है। डर क्या है? दावतें होती है। ऐसी ढिलाई से क्या परिणाम निकलेगा? अन्न की दृष्टि से देश को स्वावलम्बी बनाने का एक ही उपाय है और वह यह कि यहा के ३५ करोड निवासियो के पेट भरने की जिम्मेदारी उन्ही पर डाली जाय, नियन्त्रित दामो का कडाई से पालन कराया जाय और चोरबाजारी तथा सग्रह के लिए कडी-से-कडी सजा दी जाय। कट्रोल रख कर यह काम नही हो सकेगे। —य

कसौटी पर

(पृष्ठ ४४३ का शेष)

छोटे-छोटे उत्पादको को देना और अन्वेषणा के उन चुने हुए परिणामो का सक्षिप्त विवरण उपस्थित करना, जो शीघ्र ही,व्यवहार में लाये जा सके। पत्र की सामग्री लोकोपयोगी है। उसे पढकर अनेक बातो की जानकारी प्राप्त हो जाती है। पत्र के अत में उन पारिभाषिक शब्दो के अंग्रेजी पर्याय दिये गए है, जो इस अक में प्रयुक्त हुए है। पत्र का वार्षिक मूल्य ५) और एक अक का ।।) है। मिलने का पता 'विज्ञान प्रगति', पब्लिकेशन डिवीजन, कौंसिल ऑव साइटिफिक एण्ड इडस्ट्रियल-रिसर्च, २० पूसा रोड, नई दिल्ली।

मंडल की ओर से

'जीवन-साहित्य' सम्बन्धी आवश्यक सूचना

'जीवन साहित्य' की लोकप्रियता इधर बराबर बढ़ रही है, साथ ही उसके ग्राहकों की संख्या भी। फुटकर ग्राहकों के अतिरिक्त विहार-सरकार ने उसकी २५० प्रतियां ली हैं। इस कृपा के लिए हम अपने ग्राहक बन्धुओं तथा बिहार-सरकार के आभारी हैं। हमें विश्वास है कि अन्य ग्राहक तथा सरकारें भी ऐसे ही साहित्यानुराग का परिचय देंगी।

हमारे बहुत-से पाठकों ने लिखा है कि 'जीवन-साहित्य' की पृष्ठ-संख्या थोड़ी है। ३२ पृष्ठ से उन्हें संतोष नहीं होता। उनका आग्रह है कि पत्र में कुछ पृष्ठ और बढ़ा दिये जायँ। उनके आग्रह को ध्यान में रख कर हमने अगले वर्ष अर्थात् जनवरी मास से 'जीवन-साहित्य' में ८ पृष्ठ और बढ़ा देने का निश्चय किया है। पर उसका मूल्य वही रहेगा, यानी ४) वार्षिक। पाठकों को ज्ञात ही है कि पत्र बराबर घाटे पर चल रहा है। विज्ञापन हम लेते नहीं। ऐसी दशा में हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि उनमें से प्रत्येक एक-एक, दो-दो ग्राहक बना दें। एक हजार ग्राहक और मिल जायें तो हमें बहुत सहारा मिलेगा और हम कुछ और पृष्ठ बढ़ा सकेंगे।

सहायक सदस्य योजना

'मण्डल' की सहायक सदस्य योजना के प्रति साहित्य-प्रेमी महानुभावों तथा संस्थाओं का ध्यान तेजी से आकर्षित होता जा रहा है। इधर कई एक शिक्षा-संस्थाएं—कालेज, हाईस्कूल तथा पुस्तकालय—सदस्य बन गई हैं। मध्यभारत के शिक्षा-सचिव डा० बूलचन्दजी ने कृपा पूर्वक वहां के चारों कालेजों तथा सार्वजनिक पुस्तकालय को सदस्य बना दिया है। इसी प्रकार दिल्ली राज्य के शिक्षा-संचालक डा० ए. एन. बनर्जी के गश्ती पत्र से दिल्ली के कई हाईस्कूल सदस्य बन गये हैं। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे महानुभावों व संस्थाओं ने सदस्य बनना स्वीकार कर लिया है:—

१. श्री महावीरप्रसादजी (बिड़लापुर)
२. „ छोटेलालजी जैन (कलकत्ता)
३. „ आत्मारामजी पाड़िया „
४. „ रामकुमारजी वायंवाला „
५. „ शान्तिप्रसादजी जैन „
६. „ केशवराव काटन मिल „
७. „ माहेश्वरी विद्यालय „
८. „ श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया „
९. „ केशवप्रसादजी गोयनका (कलकत्ता)
१०. „ विश्वनाथजी मोर „
११. „ ताराचन्दजी साबू „
१२. „ रामकुमारजी सरावगी „
१३. „ आदर्श हिन्दी हाईस्कूल „
१४. , महावीर पुस्तकालय „
१५. „ दुर्गाप्रसादजी सरावगी „
१६. „ अर्जुनलालजी अग्रवाल „
१७. „ रामनिवासजी कर्वा „
१८. „ रामेश्वरजी पाटोदिया „
२०. „ प्रभुदयालजी डावड़ीवाल „
२१. „ हनुमानप्रसादजी पोद्दार „
२२. „ गजराजजी सरावगी „
२३. „ लक्ष्मणप्रसादजी पोद्दार „
२४. „ गोविन्दशरणजी गुप्त (दिल्ली)
२५. „ हंसराजजी गुप्त „
२६. लाला राजेन्द्रकुमार जैन „
२७. अमृतसर शुगर फैक्टरी (मुजफ्फरनगर)
२८. पेपर मर्चेंट्स एण्ड स्टेशनर्स एसो० दिल्ली
२९. श्री मदनमोहनजी तायल (हिसार)
३०. „ राय अमरनाथजी अग्रवाल (प्रयाग)
३१. „ राय रामचरणजी अग्रवाल „
३२. „ मास्टर शिवचरणदास (दिल्ली)
३३. मेसर्स जानकीदास एण्ड संस (दिल्ली)
३४. राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति शाखा „

—मंत्री

Regd. No. D. 228

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स दिल्ली में छपकर प्रकाशित।

दिसम्बर
१९५२
जीवन साहित्य
अहिंसक नवरचना का मासिक
इस अंक के विशेष लेख
सबका सहयोग चाहिए
अजातशत्रु राजेन्द्रबाबू
क्रोध आदि वृत्तियों पर विजय कैसे ?
कब्रिस्तान
हमारी लोक कथाएं
श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त
भारत और फिलीपीन
ग्वारपाठा
आदि आदि
सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय · यशपाल जैन
वार्षिक ४)
सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन
एक प्रति का ।=)

लेख-सूची

आवश्यक सूचना

'जीवन-साहित्य' के ग्राहक नं० १००१ से २२०० तक का वार्षिक शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो जाता है। इस वर्ष डाकखाने के नये नियमों के अनुसार कोई आवश्यक सूचना अथवा मनीआर्डर फार्म नहीं रख सकते। ग्राहकों से हमारा अनुरोध है कि वे स्वतः ही अपना आगे के वर्ष का शुल्क दिसम्बर १९५२ के अंत तक भेज देने की कृपा करें।

आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें। नवीन ग्राहक मनिआर्डर कूपन पर 'नवीन ग्राहक' शब्द अवश्य लिखें।

वी०पी० से भेजने का स्वीकृति-पत्र यदि भेजें तो अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें अन्यथा भूल से आपका नाम नवीन ग्राहकों में भी लिखा जा सकता है और इस प्रकार दो स्थानों पर नाम लिख जाने से वी०पी० आपको दो बार भेजी जायगी।

'मण्डल' की जयंती के अवसर पर 'जीवन-साहित्य' का बहुत सुन्दर और उपयोगी विशेषांक प्रकाशित हो रहा है—'प्रगति के पच्चीस वर्ष', जिसमें पिछले पच्चीस वर्ष की साहित्यिक प्रगति का विद्वानों द्वारा विवरण उपस्थित किया जायगा। यह विशेषांक विशेषांक से कहीं अधिक संदर्भ ग्रंथ होगा। पाठक कृपया इसका ध्यान रक्खें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पचायतों के लिए स्वीकृत

दिसम्बर १९५२] [वर्ष १३, अक १२

हज़रत ईसा

पहाड़ी पर के उपदेश

मुबारिक है वे जो दूसरो की भलाई करने के लिये भूख प्यास सहते है, उन्हें जरूर भर पेट खाने को मिलेगा।

अगर तुम पूजा का सामान लेकर मन्दिर में पूजा के लिए जा रहे हो और तुम्हें याद आ जावे कि तुम्हारे किसी भाई को तुमसे कुछ भी दुख पहुँचा है तो उस सामान को वही छोड कर लौट जाओ, पहले जाकर अपने भाई से सुलह करो और फिर जाकर ईश्वर की पूजा करो।

कोई आदमी एक साथ दो मालिको की नौकरी नही कर सकता। या तो एक से नफरत करेगा और दूसरे से प्रेम और या एक की सेवा करेगा और दूसरे से बेपरवाही। तुम परमात्मा और 'मैमन' (धन का देवता) दोनो की सेवा एक साथ नही कर सकते।

विनोबा

सबका सहयोग चाहिए

कल मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि स्त्रियों को सभा में लाइये। और यह खुशी की बात है कि कुछ स्त्रियां यहां आई हैं। लेकिन इसके आगे जो भी सभा होगी उनमें और भी अधिक तादाद में स्त्रियों को आना चाहिए। ज्ञान सीखने का मौका स्त्रियों को मिलना चाहिए। जो नाहक झगड़े की सभायें होती हैं उनमें स्त्रियां न जायें। और अगर जायें भी तो वहां पर निकम्मी बातें न होने दें, उसे रोकें। लेकिन अगर आज इतनी हिम्मत आपमें नहीं है तो वहां मत जाइये। लेकिन जहां पर ज्ञान सुनने को मिलेगा, जीवन-शुद्धि की तथा जीवन कला की बातें होंगी, जरूर जाना चाहिए। वहां स्त्रियों को सार्वजनिक सेवा के काम में शरीक होना भी बहुत आवश्यक है। बहुत से लोग मानते हैं कि स्त्रियों का काम घर तक ही महदूद है। लेकिन मैं यह नहीं मानता। स्त्री और पुरुष, दोनों का काम घर में भी है और घर के बाहर भी। हां, घर के काम गहरे होते हैं। बच्चों का रक्षण करना बुनियादी और कठिन काम हैं। और इस के लिए माताओं को अधिक ध्यान देना आवश्यक है। फिर भी उन्हें समाज के कामों में आना चाहिए, नहीं तो आज के जैसा वह काम पुरुषों के ही हाथ में रहेगा। और पुरुषों ने जो राह चलायी है वह खतरनाक है। आज हम देख रहे हैं कि दुनिया में पचीस सालों में दो महायुद्ध हो चुके और आज भी झगड़े और कशमकश चल रही है। कोई नहीं कह सकता कि इसमें से तीसरा महायुद्ध निर्माण होगा। पुरुषों ने जो समाज-रचना बनायी उसमें युद्ध और झगड़े ही निर्मित हुए। वे यशस्वी नहीं हुए और इसलिए स्त्रियों को उस क्षेत्र में आना चाहिए और अपने गुणों का प्रभाव वहां डालना चाहिए। स्त्रियों में दया, क्षमा, शांति और प्रेम इत्यादि गुण होते हैं। इन गुणों की आवश्यकता जिस तरह घर में है उसी तरह समाज में भी है। समाज का काम केवल पुरुषों के हाथ सौंपने से ही हो सकता। आज तक हमने ऐसा किया और नतीजा यह हुआ कि घर में तो प्रेम और शांति रही, लेकिन बाहर झगड़े रहे। अंदर की और बाहर की दुनिया का यह भयानक भेद मिट जायगा, अगर जिस प्रेम के आधार पर कुटुंब की रचना हुई है उसी के आधार पर समाज की हो जाय।

भूदान-यज्ञ के क्या मानी है यह स्त्रियां, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी समझ सकते हैं। स्त्रियों के तो वह बात सीधे मन में पैठ जाती है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि आप जिस तरह कुटुंब में रहते हैं, प्रेम से एक दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं, घर की कमाई सबकी मान कर उसका सब समान उपभोग करते हैं, वैसे ही समाज में भी होना चाहिए। सारा गांव एक कुटुंब बनना चाहिए। जमीन सबकी होनी चाहिए। हमने यह देखा है कि सुख दूसरों को बांटने से बढ़ता है और दुःख बांटने से घटता है। हम सुख बढ़ाना और दुख घटाना चाहते हैं और दोनों का इलाज एक ही है—दूसरों के साथ बंटवारा करो। मैं चाहता हूं कि गांव वाले एक-दूसरे के सुख-दुःख में हिस्सा लें। किसी को अपना सुख देने से खुद का घटता नहीं। लेकिन आजकल जो पैसे की माया चल रही है उस पर से ऐसा लगता है कि व्यक्ति अपना पैसा दूसरों को देने से खुद का कुछ नुकसान होता है यह महसूस करता है। इसका कारण यही है कि कुटुंब का न्याय समाज में नहीं चलता। इसलिए उस न्याय को समाज में लाना होगा। तब हर कोई समझेगा कि दूसरे के दुःख में हिस्सा लेने से दुःख कम होता है और अपने सुख में हिस्सा देने से सुख बढ़ता है। यह काम कितने महत्व का है इसको अगर स्त्रियां समझेंगी तो वे जमीन की माया ममता नहीं रखेंगी। और अपने पति से कहेंगी कि बाबा को जमीन दे दो। उनकी नीति से एक का भला तो होता ही है लेकिन उसके साथ दूसरे का बुरा नहीं होता है। इसलिए उनके कहने के अनुसार छठा हिस्सा दे दो। गरीब को जमीन मिलेगी तो वह कृतज्ञ होगा। उसके मन में आपके प्रति

प्रेम निर्मित होगा और आपको एक अच्छा मित्र हासिल होगा। अगर किसी के पास अठारह एकड जमीन हो और उसमें से वह तीन एकड जमीन दे देता है, तो उससे उसका कुछ बिगडता नही। अपने बचे हुए पन्द्रह एकड में वह ज्यादा मेहनत करेगा, जिसमे देश का उत्पादन बढेगा। उस पर परमेश्वर की कृपा होगी। और जिसे वह तीन एकड जमीन मिलेगी वह भी सुखी होगा। अपने पास ज्यादा जमीन होने से हम पूरी तरह से उसकी हिफाजत नही कर सकते है। इसलिए जमीन कम हो जाय तो कुछ बिगडता नही, इसलिए छठा हिस्सा देना सबका कर्तव्य है।

कल यहा पर प्रात के कार्यकर्त्ताओ की परिषद् हुई थी। सारे प्रात से एक सौ पचास कार्यकर्त्ता आये थे। उन्होने तय किया कि हम सबसे छठा हिस्सा मागेंगे। इसलिए अब बहनो को अपने पति, भाई और लडको को समझाना चाहिए कि हमारा मोह मत रखना। जमीन देने से गाव का और देश का भला होता है। पुरुष अक्सर कहते हैं कि हम जमीन देंगे तो हमारी स्त्रिया क्या कहेंगी और बाल-बच्चो का कैसे पालन-पोषण होगा। इसलिए इस काम को बहनें समझ ले, तो जो प्रेम का वातावरण घर में है वह गाव में भी निर्मित हो सकता है। मै बहनो को कहना चाहता हू कि आपको ग्राममाता बनना चाहिए, तो गाव गोकुल बनेगा। इसी दुनिया में वैकुठ का निर्माण होगा। जहा प्रेम होता है वही पर वैकुठ होता है। वह किसी कोने में पडा हुआ नही रहता। वह कैलास में ही नही, हमारे यहा भी है। गाव में प्रेम का वातावरण बने तो सबके जीवन पवित्र बनेंगे और गाव गोकुल होगा। स्त्रियां इसको सहज समझ लेंगी। उन्हे यह समझने में कुछ भी कठिनाई नही होगी। लेकिन उन्हे सभा में आने ही नही दिया जाता। पर्दे में कैदी जैसे बद रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि उनके दिल छोटे बन जाते है। दरअसल में उनके दिल छोटे नही होते। परतु घर के सकुचित वातावरण में रहने के कारण वे अपने ही बाल-बच्चो का सोचती है। लेकिन जब स्त्रियो के कानो में ज्ञान जायगा तब ऐसी हालत नहीं रहेगी। मै कहता हू कि हरेक सभा में जितने पुरुष आते है उतनी ही स्त्रिया आयें, तो ही समाज में इस पर पूरा विचार होगा। अधूरे विचार से गाडी चलती नही। रुक जाती है। स्त्री और पुरुष, दोनो साथ-साथ चलने से समाज की गाडी चलती है। दोनों को मोक्ष का समान अधिकार है। स्त्रियो को मोक्ष, विद्या, ज्ञान, और वे चाहे तो धन का भी अधिकार होना चाहिए। दोनो को समान अधिकार होना चाहिए, यह बात शास्त्रो ने भी मानी है। मनु ने कहा है कि माता की योग्यता पिता से हजार गुना बढकर है। इसका मतलब यह है कि अगर माताओ से ठीक ढग से ज्ञान मिलेगा तो सारे समाज की जितनी रक्षा होगी उतनी रक्षा और किसी से होने वाली नही है। और इसलिए मनु ने स्त्रियों के सामने पवित्रता का आदर्श रखा। आज भी हम देख रहे है कि स्त्रियो ने ही समाज में पवित्रता की रक्षा की है। तिलक महाराज ने कहा है कि स्त्रियो ने धर्म की रक्षा की है। हम देखते हैं कि स्त्रिया शराब नही पीती। बीडी और सिगरेट से भी उन्हें नफरत है। अगर वे इस तरह का बुरा काम करने लगेंगी तो सारा समाज खतम हो जायगा। आजकल समान हक की माग की जाती है। कुछ स्त्रिया कहती है कि हमें भी बीडी-सिगरेट पीने का पुरुषो के जितना ही अधिकार होना चाहिए। मैं उनसे कहूगा कि, हा, नरक में जाने का दोनो का पूरा अधिकार है। पर मैं चाहता हू कि वे ऐसी बुरी बाते न करे। उनका काम तो पुरुषो को नरक में से छुडाना है। मै चाहता हू कि हरेक पढी-लिखी स्त्री 'गीता-प्रवचन' पढे तो मेरा काम आसान होगा। स्त्री ज्ञान सपादन करेगी और गीता-माता हरेक घर में बैठ जायगी तो मेरा काम हो जायगा।

कुछ विद्यार्थियो ने मुझसे सवाल पूछा है कि आपके भूदान-यज्ञ में हम किस तरह से योग दे सकते है। मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि विद्यार्थी इसमें दिलचस्पी ले रहे है। कुछ लोग विद्यार्थियो के बारे में निराश हो गए है। वे शिकायत करते है कि विद्यार्थी उदड बन गए है, उनमें नम्रता नही है। कुछ हद तक यह बात सही भी हो सकती है। लेकिन कुल मिला कर के हिन्दुस्तान का विद्यार्थी-

समाज विनयशून्य नहीं है। अगर कसूर है तो विद्यार्थियों का नहीं, तालीम का है। सब लोग कहते हैं कि तालीम गलत है। सरदार पटेल तो यह कहते-कहते मर गये कि तालीम खराब है। हमारे डा० राधाकृष्णन यही कहते हैं। फिर भी तालीम में कोई बदल नहीं हो रहा है। जब हर शख्स बदलना चाहता है तब बदल क्यों नहीं हो रहा ? क्या तालीम मृत्यु के समान भगवान् के हाथ की चीज है, हमारे बस की बात नहीं है ? ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन हम सोचते नहीं। और सोचते हैं तो आहिसता-आहिसता। ये पढ़े-लिखे लोग जितने सुस्त हैं उतने सुस्त देहात के लोग नहीं हैं। वैसे तो कुल मिलाकर हिन्दुस्तान के लोग सुस्त हैं। सब कहते हैं कि नई तालीम होनी चाहिए। पर चलाते हैं पुरानी ही रटन। स्कूलों में आज भी वही पुराना इतिहास, पुराना भूगोल, पुराना गणित चलता है। जबतक यह नहीं बदलता है तबतक विद्यार्थियों के मन में संतोष नहीं निर्माण हो सकता। विद्यार्थी तो अखबार पढ़ते हैं। दुनिया की सभी बातें वे पढ़ते हैं, जानते हैं और सुनते हैं। और फिर उनके दिलों में विद्या-ज्ञान प्राप्त करने की ख्वाहिश होती है और वे चाहते हैं कि देश की सेवा करें, परन्तु उन्हें सूझता नहीं कि किस तरह सेवा की जाय। क्योंकि उनकी विद्या का देशसेवा से कोई ताल्लुक नहीं है। नतीजा यह होता है कि विद्यार्थी असंतुष्ट हो जाते हैं और फिर उदण्ड बन जाते हैं। लेकिन मैं चाहता हूं कि वे उदण्ड न बनें। मेरा मानना है कि हिन्दुस्तान के विद्यार्थी अपनी मातृभूमि के लिए अत्यन्त पराक्रम करने के लिए उद्यत हैं। विद्यार्थियों के पास जमीन तो नहीं रहती है। लेकिन मैं चाहता हूं कि वे अध्ययन करें। जमीन का मसला क्या है, अर्थशास्त्र उस बारे में क्या कहता है, इसको वे समझ लें। हमारी बातें तो जान ही लें। लेकिन विरोधी विचारों का भी अध्ययन करें। मैं चाहता हूं कि विद्यार्थी इस विषय का पूरी तरह से अध्ययन करें।

दूसरी बात मैं यह चाहूंगा कि भूदान-समस्या तब हल होगी जब सारे लोग मेहनत-मजदूरी की आदत डालेंगे। आज विद्यार्थियों में वह आदत नहीं है। तुलसीदासजी ने कहा है कि हमको वर्षा, हिम, मारुत, घाम सहन करने की आदत होनी चाहिए। परंतु आज की तालीम ही ऐसी है कि विद्यार्थियों में यह आदत नहीं डाली जाती है। उन्हें सब तरह से महफूज रखा जाता है। यह सारा दोष तब जायगा जब तालीम में बदल होगा। अपनी तालीम में बड़ी भारी कमी यही है। लेकिन फिर भी विद्यार्थी इस बात को समझें और खुद मेहनत करें। अकसर घरों में माताएं या नौकर कपड़े धोते हैं, लेकिन विद्यार्थी को चाहिए कि अपने कपड़े खुद धोएं। मैं चाहता हूं कि वे अपना कमरा खुद साफ करें। और भी पुरुषार्थ करना चाहते हैं, तो सूत कातें और अपने लिए कपड़ा बनाएं, भाजी-तरकारी पैदा करें। शरीर को मजबूत बनाना, व्यायाम और खेलकूद की ओर ध्यान देना और ब्रह्मचर्य का पालन करना, जिससे काया, वाचा और मनसा पवित्र रह सकें, यह विद्यार्थियों का काम है। बीस साल तक शरीर बढ़ता है। उसी समय अच्छी आदतें डालनी चाहिएं। विद्यार्थी को नौ बजे सोना चाहिए और चार बजे उठकर अध्ययन करना चाहिए। लेकिन आजकल उलटा होता है, इसलिए विद्यार्थी दोनों तरफ से खत्म होते हैं। जिसने सुबह का समय खोया वह विद्यार्थी नहीं; प्रतिभाशून्य, निस्सत्व मनुष्य है। प्रातःकाल में त्वरित विद्या हासिल होती है, इसलिए हमारे पूर्वजों ने भी सिखाया है कि सुबह अध्ययन करो। उससे ताजगी रहती है। रात को सिनेमा देखना बिलकुल गलत है। उससे मन, आंख और नींद, तीनों बिगड़ते हैं और स्वप्न आते हैं। रात को सोने के पहले तारिकाओं का दर्शन करना चाहिए। उससे बढ़कर क्या सिनेमा हो सकता है ? इस विशाल आकाश का और तारकाकुंजों का अध्ययन कर, भगवान् का चिंतन करके सो जायं तो अच्छा होगा। स्कूल में आगे जो काम करना है उसकी सारी तैयारी करनी चाहिए। आप भूदान-यज्ञ में शरीक होना चाहते हों तो इसके पीछे अर्थशास्त्र की जो बात है उसका अध्ययन करें। शरीर और मन पर अंकुश रखो और ब्रह्मचर्य का पालन करो। रात को सिनेमा मत देखो। यही मैं आपसे चाहता हूं। जो बड़े विद्यार्थी होते हैं

सबका सहयोग चाहिए : विनोबा

उनको छुट्टियों के समय में देहात में जाकर भूदान-यज्ञ का प्रचार करना चाहिए। सारे विद्यार्थी साफ-सुथरे रहें। घर की सफाई बहनें कर लेती हैं, इसलिए विद्यार्थियों को चाहिए कि वे बाहर की सफाई करें। विद्यार्थी प्रति दिन पंद्रह मिनट भी सफाई को दें तो सारा बस्तर शहर आइने जैसा साफ होगा। घर के अन्दर जैसी सफाई रहती है वैसी बाहर भी होनी चाहिए। इसीलिए हमने 'स्वच्छ भारत आन्दोलन' यह शब्द उठाया। स्कूल में अच्छे पाखाने हों और विद्यार्थी उसकी सफाई की ओर ध्यान दें। मेरे मन में विद्यार्थियों के लिए प्रेम है। मैं आज तक कुछ-न-कुछ विद्याभ्यास करता आ रहा हूं। दुनिया का काम तो चल ही रहा है। लेकिन मेरा ऐसा एक भी दिन नहीं जाता है जबकि मैंने कुछ-न-कुछ अध्ययन न किया हो। इसीलिए मैं ताजा रहता हूं। जड़ नहीं बनता। विद्यार्थी अगर यह करेंगे तो हिन्दुस्तान की नींव खड़ी होगी।

अब मैं शहर वाले शिक्षितों से कुछ कहना चाहता हूं। कल मैंने सुनाया कि मेरा काम एक बुनियादी काम है। हम न सिर्फ भूमि का बंटवारा करना चाहते हैं, बल्कि रामराज्य प्रस्थापित करना चाहते हैं। सारे गांव परिशुद्ध और निर्मल बनना चाहते हैं। आज सुबह मैं जेल में सोशलिस्ट भाइयों से मिलने गया था। मुझे उनसे मिलकर खुशी हुई, क्योंकि वे भी देश की सेवा करने का खयाल रखते हैं। मुझे इस बात का दुख है कि वे एक दिन भी जेल में रहे। उन्हें फौरन छोड़ देना चाहिए। उससे कुछ भी बिगड़ेगा नहीं। मैंने उस निमित्त से सारा जेल देखा और मुझे आश्चर्य हुआ कि जेल में भी कातने और बुनने की मिल खड़ी कर दी है। कैदियों को यंत्र के सामने खड़ा रह कर काम करना पड़ता है। वे चोरी करके वहां पहुंचते हैं। और उनमें से बहुत से ऐसे होते हैं, जो खाना न मिलने के कारण चोरी करते हैं। हां, उनमें से कुछ बदमाश भी होते हैं, जो खाना मिलने पर भी बुरे काम करते हैं। लेकिन बहुत से लोग गरीब तबके के होते हैं। वहां जेल में उनको रखने का उद्देश्य यह है कि उनको वहां पर ऐसा उद्योग सिखाया जाय, जिससे बाहर जाकर वे अपने कुटुंब का पालन-पोषण कर सकें। अगर उनको हाथ से सूत कातना और बुनना सिखाते तो अच्छा होता। परंतु उन्हें छूटने पर क्या मिलों में काम मिल सकता है? क्या उनको रोजी मिलेगी, ऐसी कोई गारंटी है? यह नहीं हो सकता है। इसलिए उनको हाथ के उद्योग सिखाने चाहिए। लेकिन आजकल हम लोगों के दिमाग किस ढंग से चलते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता है। क्या हम गरीबों को यंत्र बनाकर उनसे पशुओं के जैसा काम लेना चाहते हैं? या उनकी बुद्धि विकसित हो, वे अपने गांव की सेवा करें, अपनी संपत्ति बढ़ायें, यह हम चाहते हैं? हमारी क्या कल्पना है, इस पर जरा सोचना चाहिए।

मैं इस तरह सोचता हूं तो आज के जेल, विद्यालय, राज्य-कारोबार व्यापार ये सब कैसे चलें, इसकी दूसरी भी सूरत हमारे सामने आती है और आजका सब कुछ भद्दा लगता है। अब हम उसको सुधारना चाहते हैं। हम जो कुछ सोचते हैं उस तरह से दूसरे सोचते ही नहीं, ऐसा मेरा कहना नहीं है। लेकिन पश्चिम से एक प्रवाह आया है, जिसमें हम सब बह रहे हैं। मैं पश्चिम का विरोधी नहीं हूं। पश्चिम की निंदा और पूर्व की स्तुति मैं नहीं करना चाहता। दोनों में जो अच्छी बातें हैं, उनको मैं लेना चाहता हूं और जो बुरी हैं, उनको छोड़ना चाहता हूं। उसी तरह मैं प्राचीन-काल की अच्छी बातें, इस काल की अच्छी बातें, इस देश की अच्छी बातें, बाहर के देश की अच्छी बातें लेना चाहता हूं। लेकिन पश्चिम में आज जो अर्थ-शास्त्र का विचार चला है और जिसने वहां वालों को भी समाधान नहीं दिया, क्या हम उसी को यहां लाना चाहते हैं? आज किस देश में चैन है? रशिया, इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी आदि में कहीं भी सुख नहीं है। उनके रास्ते से सुख नहीं मिलता है, लड़ाइयां और अशांति ही पैदा होती है, यह हम देख रहे हैं। वहां की अच्छी चीजें लेने में कोई हर्ज नहीं है। लेकिन हम दिमाग रखकर सोचें और काम करें, यह मैं चाहता हूं। कैदियों को मिल में उद्योग नहीं सिखाये जाते। नतीजा यह होता है कि छूटने के बाद भी उनको बाहर की मिलों में

काम न मिलने के कारण चोरी करने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता है। वह फिर से चोरी करता है और जेल जाता है। यह जो उसका बार-बार पुनर्जन्म होता है, 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं' चलता है, उस से उसको मुक्ति कैसे मिले, यह हमें सोचना चाहिए। उसे ऐसी विद्या, ऐसी बुद्धि, ऐसी कला, ऐसा हृदय, ऐसे संस्कार वहां मिलें, जिससे कि छूटने के बाद अच्छा नागरिक बन सके। लेकिन आजकल तो हम चाहते हैं कि हमारे घर की रोटी भी फैक्टरी में बननी चाहिए। इसलिए भाइयो, जरा सोचो तो कि हम किधर जा रहे हैं। क्या हम ऐसे घर बनाना चाहते हैं, जिसमें हरेक घर के साथ कुछ जमीन हो, जिस पर उस कुटुंब के लोग मेहनत मुशक्कत कर कुछ फल, तरकारी वगैरा पैदा कर सकें और प्रेम से रह सकें ? या हम देहातों को मिटा कर बड़े-बड़े शहर बनाना चाहते हैं, जिसमें कल-पुर्जों के कारखाने हों और सबका खाना एक जगह हो। सब एक ही कारखाने में काम करें यह हम चाहते हैं। अगर इस तरह की हमारी वृत्ति है तो मैं कहता हूं कि यह बिलकुल गलत है। हमें अपने गांव की रचना हमारी संस्कृति के आधार पर लेकिन आधुनिक विज्ञान का सहारा लेकर करनी है। कुछ लोग कहते हैं कि मैं विज्ञान के खिलाफ हूं। यह बिलकुल गलत बात है। मैं तो विज्ञान का प्रेमी हूं। लेकिन आजकल विज्ञान का एक ऐसा ढंग हो गया है कि उसके बारे में गलत तरीके से सोचा जाता है। विज्ञान तो ज्ञान का एक अंग है। आत्म-ज्ञान और विज्ञान मिलकर ज्ञान हो जाता है। और आत्म-ज्ञान का विज्ञान से याने सृष्टि के ज्ञान से निकट का सम्बन्ध है। दोनों साथ-साथ बढ़ते हैं। मुझे अपने ग्रामों में जो मक्खियां है, जो मच्छर हैं, जो रोग है उन सबको हटाना है, तो कौन हटायेगा ? विज्ञान ही हटा सकता है। विज्ञान तो आपका दास है, बंदा है। आप चाहें तो वह एटम बम्ब बना देगा और चाहें तो अच्छी अच्छी दवाइयां और आपरेशन के साधन बनायेगा। वह सुख के साधन निर्माण कर सकता है, और दुख के साधन भी। वह हमारे लिए जीवन का इंतजाम कर सकता है, और मृत्यु का भी इंतजाम कर सकता है। वह तो शक्ति है। हम चाहे जैसा उसका उपयोग कर सकते है। मैं अधिक से अधिक विज्ञान चाहता हूं। और इसलिए अहिंसा की बात करता हूं। विज्ञान के साथ हिंसा आ जाय तो दुनिया का खातमा होगा। इसीलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का आग्रह रखना आवश्यक है। उससे हम गांव को वैकुंठ बना सकते हैं। विज्ञान के आधार पर हमें नये गांव, नये घर बनाना है। हम विज्ञान की मदद लेना चाहते हैं, लेकिन हमारे ढंग से। हमारी समाज-रचना कैसी हो यह विज्ञान नहीं तय करेगा, समाज-शास्त्र तय करेगा। विज्ञान जीवन को आकार दे सकता है, परंतु जीवन का प्रकार क्या हो, यह नहीं कह सकता। यह तो आत्मज्ञान ही बता सकता है।

जब तुम दूसरों के साथ बातचीत करो तब अपने चारों ओर सजीव उपस्थिति और संरक्षण को बनाये रखने के लिए बराबर सावधान रहो और जितना कम बोलना सम्भव हो उतना कम बोलो।

—श्री मां

अजातशत्रु राजेन्द्रबाबू

"बाबूजी, 'जीवन-साहित्य' का एक विशेषाक निकाल रहे है। एक लेख दे दीजिये।"

"आप देख ही रहे हैं। मुझे अवकाश कहा है ?"

"जी, छोटा-सा ही दे दीजिये।"

"अच्छा, कल सवेरे आ जाइये।"

सवेरे पहुचा तो पूजा कर रहे थे। पाच मिनट में समाप्त करके कातना आरम्भ करते हुए बोले, "आप लिख लेगे ?"

"जी हा।"

"अच्छा, लिखिये।"

लेख लिखा दिया। मैंने कहा, "पढकर सुना दू ?"

"नही जी, आप देख लीजिये। कही भाषा ठीक करनी हो तो कर-करा लीजिये।"

× × ×

"बाबूजी, की पुस्तक आपने पूरी पढी है ?"

"नही।"

"उसकी भूमिका तो आपने ही लिखी है।"

हा, लेखक ने कुछ अश पढकर सुनाये थे।"

"पुस्तक बहुत अच्छी नहीं है। उसके कुछ स्थल तो बहुत ही असस्कृत है।"

"हा, मैंने सुना है। लेखक पीछे पड गये। मुझे लिखना पडा। गलती हो गई।"

× × ×

"बाबूजी, 'मण्डल' की जयती कर रहे है। आपका सदेश चाहिए। उसी अवसर पर 'जीवन-साहित्य' का विशेषाक भी निकाल रहे है। उसके लिये एक लेख।"

घनी मूछो के नीचे होंटो पर हल्की मुस्कराहट खेल गई। बोले "सदेश भी चाहिए और लेख भी ?"

"दोनो मिल सके तो बडी कृपा हो। पर लेख देर से भी मिल जायगा तो चल जायगा। सदेश जल्दी चाहिए।"

"ठीक है, सदेश परसो भेज दूगा। लेख के लिए बाद में याद दिला दीजिएगा।"

× × ×

ये कुछ चित्र है उस महापुरुष के, जो आज भारत के सर्वोच्च पद पर आसीन है, हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू के। कामकाज में घिरे रहते है, मुलाकाती आते है, इधर-उधर आना-जाना पडता है, ऊपर से दमा समय-समय पर हैरान करता रहता है, पर क्या मजाल कि राजेन्द्र बाबू किसी भी छोटे-बडे अच्छे काम के लिए इन्कार कर सके। 'हा' कर लेना प्राय आसान होता है, पर निभाना कठिन। लेकिन राजेन्द्रबाबू है कि जिसके लिये 'हा' करेंगे, उसे पूरा अवश्य कर देंगे।

लम्बा कद, श्यामल वर्ण, थोडा भारी शरीर, अव्यवस्थित मूछें, सिरपर छोटे-छोटे काले-सफेद खिचडी बाल, जिनपर श्वेत खादी की गाधी टोपी, आखें उभरी, उन्नत ललाट, देह पर (घर में हो तो), धोती-कुरता-बडी, (बाहर) शेरवानी चूडीदार पाजामा।

—यह है राजेन्द्रबाबू की बाह्य आकृति और वेश-भूषा। चेहरे से सरलता टपकती है और वाणी से मृदुता झरती है।

आज के प्रतिस्पर्द्धा से भरे युग में ऐसे व्यक्ति मिलना कठिन है जो पद, गौरव और प्रतिष्ठा को महत्व न देकर सेवा के लिए समर्पित हो। राजद्रबाबू उन्ही विरल महापुरुषो में से है। आज वह भारत के सबसे ऊचे पद पर आसीन है—ऐसे पद पर, जहा बैठकर कोई भी मद-मस्त हो सकता है लेकिन राजेंद्रबाबू के लिए पद चूकि महत्वाकाक्षा की पूर्ति का साधन नहीं है, वह वहा बैठ कर भी, वैसे ही सेवापरायण है जैसे कि पहले थे। इन पक्तियो के लेखक को उन्हे कई पदोपर काम करते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है—स्वाधीनता सग्राम के एक वीर सेनानी के रूप में, एक महान राष्ट्रीय नेता के रूप में, खाद्यमन्त्री के रूप में, विधान सभा के अध्यक्ष के रूप में, गाधी स्मारक-निधि के अध्यक्ष के रूप में और अब राष्ट्रपति के रूप में, लेकिन एक भी ऐसा अवसर याद नही आता, जब कि राजेंद्र बाबू ने किसी भी पद के लिए मोह प्रदर्शित किया हो, अथवा वहा बैठ कर दभ प्रकट किया हो। "प्रभुता पाइ काहि मद नाहि" सत तुलसीदास की इस उक्ति का यदि कही अपवाद मिलता है, तो राजेंद्रबाबू में। राष्ट्रपति

का पद कुछ इतना ऊंचा है और राष्ट्रपति भवन का वायुमंडल कुछ इतना आडम्बरयुक्त है कि सामान्य व्यक्ति तो वहां पहुंचते-पहुंचते घबरा जाता है, लेकिन जहां आप राजेंद्रबाबू के सामने पहुंचेंगे, उनकी सरलता, निश्छलता और स्वाभाविक आत्मीयता से आपकी घबराहट क्षण भर में दूर हो जायगी।

अपने जिन गुणों के कारण वह इतने लोकप्रिय हैं, वे हैं उनकी विनम्रता, निरभिमानता, और प्रामाणिकता। आयु में अपने से कहीं छोटे व्यक्तियों को मैंने उन्हें कई बार 'श्रद्धेय' अथवा 'आदरणीय' लिख कर संबोधित करते देखा है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी यह विनम्रता और श्रद्धा उनके लिए मात्र शिष्टाचार की वस्तु नहीं है, उनके स्वभाव का एक अंग है।

वह विद्वान् हैं लेकिन अपनी विद्वत्ता को वह दूसरों पर लादने का कभी प्रयत्न नहीं करते। आज के अनेक 'तथाकथित' विद्वानों की भांति शब्दों का आडम्बर उन्हें प्रिय नहीं। जो कुछ उन्हें कहना होता है, सरल, सुबोध और स्पष्ट भाषा में कह देते हैं। भाषा उनके लिए चमत्कार की चीज नहीं है, भावों की वाहिनी है। उनकी रचनाओं को पढ़ लीजिये, उनके भाषणों को सुन लीजिए, बातचीत में देख लीजिये, उनके विचारों में कहीं भी उलझन नहीं मिलेगी। इतने सुलझे विचार, इतनी स्पष्ट भाषा और इतने उत्कृष्ट भाव, बहुत कम लोगों में मिलेंगे।

अधिकांश नेता अपने विचारों की दृढ़ता अथवा दूसरों की मान्यताओं के प्रति अनुदार दृष्टि रखने के कारण अनेक विरोधी पैदा कर लेते हैं। बहुत से अवसरों पर विरोध शत्रुता का रूप ग्रहण कर लेता पाया जाता है। लेकिन राजेंद्रबाबू में इतनी समन्वय-बुद्धि और दूसरे के विचारों के प्रति इतनी उदारता और सहिष्णुता है कि उन्हें एक प्रकार से 'अजातशत्रु' कहा जा सकता है।

लोगों की शिकायत है कि वह ढीले ढाले हैं, अपनी बात को बहुत दृढ़ता से नहीं कहते। और देशव्यापी अनाचारपूर्ण वायुमंडल को बदलने के लिए जोर नहीं लगाते। लोगों की इस शिकायत में सचाई हो सकती है और है; लेकिन हम लोग प्रायः भूल जाते हैं कि दीर्घकालीन संस्कार और परम्पराओं को तोड़ना आसान नहीं होता। जब कभी अवसर आता है, राजेंद्रबाबू अपनी बात कहने से नहीं चूकते, लेकिन बुराई की जड़ जहां गहरी होती है, वहां एक व्यक्ति के कहने अथवा एक दिन के प्रयास से सुधार नहीं हो जाता।

राजेंद्रबाबू गांधीजी के निष्ठावान अनुयायियों में से हैं। भले ही वह विवरणों में बहुत गहरे न उतरें या दृढ़ता न दिखावें; परन्तु जहां तक मूल मान्यताओं का सम्बन्ध है, वह चट्टान की तरह अडिग हैं।

उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। प्रथम श्रेणी के राजनेता तो वह हैं ही, उच्चकोटि के साहित्यकार भी हैं। और चूंकि प्रामाणिकता उनकी विशेषता है, अतः जो भी काम हाथ में लेते हैं, बहुत ही दक्षतापूर्वक करते हैं। अबतक जितने पदों पर उन्होंने कार्य किया है, परिस्थितियों के दबाव अथवा अन्य कारणों से भले ही उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त न हुई हो, लेकिन अपने प्रयत्न में उन्होंने कभी शैथिल्य नहीं दिखाया है और काम को आगे बढ़ाया है।

सेवा के लिए इतना निष्ठापूर्ण समर्पण बहुत कम लोगों में मिलता है। दमे की बीमारी और आयु का तकाजा है कि वह विश्राम करें; लेकिन सेवा के लिए जब उनकी आवश्यकता है तो बीमारी का निमित्त या आयु का सहारा लेकर वह पीछे कैसे रह सकते हैं। जबतक शरीर चलता है, सेवा की पुकार को अनसुनी करना उनके स्वयं के वश की बात नहीं है।

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारी पुरानी पीढ़ी धीरे-धीरे तिरोहित होती जा रही है। पर यह निश्चय ही हमारा परम सौभाग्य है कि राजेंद्रबाबू हमारे बीच विद्यमान हैं। भगवान् से हम सबकी प्रार्थना है कि हमारे 'बाबूजी' अभी बहुत वर्ष तक हम सबके बीच बने रहें और हमारा मार्ग दर्शन करते रहें।

क्रोध आदि वृत्तियों पर विजय कैसे ?

(गतांक से आगे)

साधारण जीवन में लोग काम, क्रोध, लोभ, वासना आदि को स्वाभाविक, क्षतव्य एव उचित चीजे समझते है और उन्हे मानव प्रकृति का अग मानते है । जहा तक समाज इन्हे अनुत्साहित करता है अथवा इन्हे निश्चित सीमाओ के भीतर या उचित सयम वा मर्यादा के अधीन रखने का आग्रह करता है वही तक लोग इन्हे सदाचार के सामाजिक मान या व्यवहार के नियम के अनुसार वश में रखने का यत्न करते है । इसके विपरीत, यहा तथा सब प्रकार के आध्यात्मिक जीवन में इन चीजो पर विजय तथा पूर्ण प्रभुत्व की माग की जाती है । यही कारण है कि यहा सघर्ष अति तीव्र अनुभूत होता है, इसलिए नही कि ये चीजें साधारण मनुष्यो की अपेक्षा साधको में अधिक प्रबल रूप में उठती है वरन् इसलिए कि आध्यात्मिक मन तथा प्राणिक चेष्टाओ में उत्कट सघर्ष चलता है—आध्यात्मिक मन सयम की माग करता है और प्राणिक चेष्टायें विद्रोह करती है तथा नये जीवन में भी पुन उसी तरह बने रहना चाहती है जिस तरह वे पुराने जीवन में थी । यह जो धारणा है कि साधना इस प्रकार की चीजें उभाडती है इसमें सत्य इतना ही है कि एक तो साधारण मनुष्य में ऐसी बहुत सी बाते है जिनसे वह सचेतन नही है क्योकि प्राण उन्हे मन से छिपाये रखकर तृप्त करता रहता है जबकि मन समझ ही नही पाता कि वह कौन सी शक्ति है जो इस कार्य को प्रेरित कर रही है । इस प्रकार, जो चीज परार्थ, परोपकार एव सेवा के निमित्त की जाती है वे अधिकतर अहकार से परिचलित होती है । इन बहानो के पीछे अहकार छिपा ही रहता है । योग में गुप्त प्रेरक को पर्दे के पीछे से बाहर प्रकाश में लाना तथा उससे छुटकारा पाना होता है । दूसरे साधारण जीवन में कुछ चीजें दबा दी जाती है, वे प्रकृति में ही दबी पडी रहती है पर नष्ट नही हुई होनी । वे किसी भी दिन उभर सकती है अथवा वे अपने को मन या प्राण या शरीर के नाना-स्थानीय रूपो या अन्य गडबडियो में प्रकट कर सकती है जबकि इस बात का स्पष्ट पता नही चलता कि उनका असली कारण क्या है । यह तथ्य यूरोपीय मनोवैज्ञानिको ने अभी हाल में ढूढ निकाला है और मनोविश्लेषण नामक नये विज्ञान ने इस पर बहुत बल दिया है, यहा तक कि इसका अत्यधिक बढा चढा कर वर्णन किया है । यहा भी, साधना में मनुष्य को इन दबी प्रवृत्तियो से सचेतन होकर उन्हें निकाल फेंकना होता है । इसे उभाडना कह सकते है परन्तु इसका यह अर्थ नही कि इन्हें कार्यरूप में उभाडना है बल्कि केवल चेतना के सामने ला खडा करना है ताकि अपनी सत्ता में से उनकी सफाई की जा सके ।

यह जो बात है कि कुछ लोग अपने को वश में करने में समर्थ होते है और दूसरे बहा लिए जाते है । इसका कारण है स्वभाव-स्वभाव में भेद । कुछ लोग सात्विक स्वभाव के होते है । और उनके लिए, कम से कम कुछ हद तक , सयम करना सुगम होता है । दूसरे अधिक राजसिक होते है और सयम को कठिन तथा प्राय असभव अनुभव करते है । कइयो का मन एव सकल्प सबल होता है और दूसरे प्राण-प्रधान मनुष्य होते है जिनमें प्राणिक आवेग अधिक प्रबल होते है तथा अधिक ऊपर आये होते है । कुछ लोग सयम को आवश्यक नही समझते और अपने आपको खुला छोड देते है । साधना में मानसिक या नैतिक सयम के स्थान पर आध्यात्मिक प्रभुत्व स्थापित करना होता है । कारण, मानसिक सयम केवल आशिक होता है, वह हमें नियत्रित ही करता है न कि स्वतत्र एव मुक्त । ऐसा तो केवल आन्तरात्मिक एव आध्यात्मिक सयम ही कर सकता है । इस विषय में साधारण तथा आध्यात्मिक जीवन मे मुख्य भद यही है ।

यौगिक, मनोभौतिक आदि आदि दृष्टियो से आमाशय, हृदय और आतो में स्थूल चेतना का नही वरन् प्राणिक चेष्टाओ का निवास है । यही पर प्राणी

के क्रोध, भय, प्रेम, घृणा तथा उसकी अन्य सब मनोवैज्ञानिक विशिष्टतायें उछलकूद मचाती हैं तथा शरीर और मन की पाचनशक्ति में गड़बड़ी पैदा कर देती है।

क्रोध के कारण आत्मा तमसाच्छन्न हो जाती है, बुद्धि और इच्छाशक्ति शांत साक्षी आत्मा को देखना तथा उसमें स्थित होना भूल जाती है, मनुष्य अपने सच्चे स्वरुप की स्मृति से भ्रष्ट हो जाता है। इस पतन से इच्छाशक्ति भी विमूढ़, यहां तक कि नष्ट हो जाती है। कारण, कुछ समय के लिए, हमारी निज स्मृति में इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। यह क्रोध के बादल से ढक जाती है। हम क्रोध, आवेश एवं शोक ही बन जाते हैं। और आत्मा, बुद्धि तथा इच्छाशक्ति नहीं रहती।

बस करने की एक बात यही है कि इन प्रवृत्तियों से अपने को अलग कर लिया जाय, अपने आन्तर आत्मा को खोज निकाला जाय, उसीमें निवास किया जाय। फिर ऐसा कभी नहीं मालूम होगा कि ये सब वृत्तियां अपनी हैं, बल्कि ऐसा मालूम होगा कि बाहरी प्रकृति ने आंतर आत्मा या पुरुष के ऊपर उन्हें ऊपर ही ऊपर से आरोपित कर दिया है। उस समय बड़ी आसानी से उनका त्याग किया जा सकता है या उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

अगर तुम अपनी प्राणगत वृत्तियों पर सच्चा प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हो और उन्हें रुपांतरित करना चाहते हो तो यह केवल तभी हो सकता है, यदि तुम्हारा हृदय हृत्पुरुष, तुम्हारी अन्तरात्मा पूर्ण रुप से जाग जाय, अपना राज्य स्थापित कर ले और तुम्हारी सारी सत्ता को शक्ति के स्थायी स्पर्श की ओर खोलकर अपनी स्वाभाविक विशुद्ध भक्ति, अनन्य अभीप्सा और सभी भागवत वस्तुओं के प्रति होने वाले अपने अखण्ड एकनिष्ठ आवेग को तुम्हारे मन हृदय और प्राण प्रकृति पर स्थापित कर दे। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है और किसी अधिक सुगम मार्ग के लिए छटपटाने से कोई लाभ नहीं। नान्यः पन्था विद्यते अयनाय। (अदिति कार्यालय के सौजन्य से)

कब्रिस्तान

खलील जिब्रान

कल ही की बात है, कि मैं शहर के हो-हुल्लड़ से घबराकर खामोश खेतों की तरफ निकल गया और एक ऐसे ऊंचे पर्वत के पास पहुंच गया, जहां प्रकृति ने अत्यन्त उदारता से अपनी देन बखेर रखी थी।

मैं पर्वत पर चढ़ा और झुककर शहर को देखा। शहर अपने समस्त मीनारों और मन्दिरों सहित उस धूएं के घने बादलों से ढका हुआ था, जो शहर की भट्टियों और कारखानों से उठ रहा था।

मैं बैठ गया और सोचने लगा। मुझे आदमियों के उद्योगधंधों का विचार आया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, कि उनकी यह सारी दौड़-धूप निरर्थक और निष्फल है।

मैंने अपना ध्यान मानवजाति के इन दौड़-धूप के क्षेत्रों से हटा लिया और उन खेतों पर एक दृष्टि डाली, जो ईश्वर की प्रतिष्ठा और तेज के फर्श हैं।

इन खेतों में मुझे एक कब्रिस्तान दिखाई दिया। उसमें संगमरमर की सुन्दर लेख-शिलाएं गड़ी थीं। और सरु के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष उगे हुए थे।

मैं जीवित मनुष्यों की बस्ती और कब्रिस्तान के बीच बैठा जीवन के अनंत संघर्ष, समाप्त न होनेवाले हो-हुल्लड़, विस्तृत खामोशी और मृत्यु की अनंत कठोरता पर विचार कर रहा था।

मुझे एक तरफ आशा और निराशा, प्रेम और घृणा, धनाढ्यता और दरिद्रता, और विश्वास और अविश्वास दिखाई दिये और दूसरी तरफ मैंने मिट्टी को उस मिट्टी में मिले देखा, जिससे प्रकृति रात की गहरी खामोशी में बढ़ने और उन्नति करनेवाले हरे-भरे और रंगीन पौदे पैदा करती है।

जब मैं इस तरह से सोच विचार कर रहा था, तो एक बहुत बड़ा जनसमूह धीरे धीरे चलता हुआ

मेरी आखो के सामने आया और मैंने एक ऐसा गीत सुना, जो आलोक में एक शिथिलता उत्पन्न कर रहा था।

मेरी आखो के सामने से बडे और छोटे इन्सानो की भीड गुजरी। मनुष्य एक अरथी का अनुकरण कर रहे थे। और रोते चिल्लाते हुए अपनी अपनी फरियाद, विलाप और रुदन से आलोक को भर रहे थे। इस तरह वे कब्र तक पहुच गये। वहा पादरियो ने इसके लिए प्रार्थना की और धूप आदि जलाईं। बाजेवालो ने अत्यत दुखजनक ध्वनियो में शोक के गीत गाये। सुवक्ताओ ने खडे होकर बढे-चढे शब्दो में प्रशसापूर्ण भाषण दिए और कवियो ने शोक और दुखभरी कविताए पढी। इस प्रकार यह प्रदर्शन समाप्त हो गया।

फिर जब वह भीड लौट कर गई, तो मुझे इस स्थान पर एक शानदार लेखशिला दिखाई दी, जिसे कलाकारो ने बडी कुशलता से तैयार किया था और जिस पर अनगनित फूल मालाए और गजरे पडे थे, जिन्हे निपुण मालियो ने बनाया था।

अन्त में जनसमूह शहर में वापिस पहुच गया और मैं उन्हें दूर से देखता हुआ गहरे विचारो में डूब गया।

इस वक्त सूर्य धीरे-धीरे पश्चिम में डूब रहा था। चट्टानो और वृक्षो की परछाइया लम्बी हो रही थी और वे प्रकाश की चादर को उतार रहे थे।

इस वक्त मैंने आख उठा कर देखा, तो मुझे दो आदमी दिखाई दिये, जिन्होने अपने कधो पर साधारण सी अरथी उठाई हुई थी और उनके पीछे एक स्त्री फटे-पुराने कपडे पहने चली आ रही थी। उसकी छाती से एक बालक चिपका हुआ था और पाव के पास एक कुत्ता था, जो कभी स्त्री और कभी अरथी की तरफ देख रहा था।

इस निर्धन मनुष्य की अरथी के साथ बस इतने ही लोग थे।

स्त्री के खामोश आसू उसके हृदय के दुख और शोक की साक्षी दे रहे थे।

बालक केवल इसलिए चिल्ला रहा था, कि उसकी मा रो रही थी। और एक स्वामीभक्त कुत्ता खामोशी और उदासी की हालत में पीछे-पीछे जा रहा था।

जब ये लोग कब्रिस्तान में पहुचे, तो दूर एक ऐसे अलग कोने में एक गढे में इस लाश को दफन किया गया जो सगमरमर की कब्रो से बहुत दूर था। फिर वे अत्यन्त खामोशी और उदासी के साथ वापिस लौटे।

कुत्ते की दृष्टि बार-बार अपने स्वामी के अतिम विश्राम-स्थल की तरफ लौट-लौट जाती थी। अत में वे सब वृक्षो की ओट में आखो से ओझल हो गये।

यह देखकर मैंने अपनी दृष्टि शहर की तरफ उठाई और कहा, "यह सब धनवानो और शक्ति-शाली लोगो के लिए है।"

और फिर मैंने कब्रिस्तान की तरफ मुह करते हुए कहा, "और यह भी धनवानो और शक्तिशाली लोगो ही के लिए है।"

मैंने चिल्ला कर पूछा, "परमात्मा! बता तेरे दुर्बल और निर्धन जन कहा जाए?"

मैंने यह कहकर आकाश की तरफ दृष्टि उठाकर देखा, जो डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरणो से शोभायमान हो रहा था। अब मुझे अपने अतरग से यह आवाज सुनाई दी, "उनका विश्राम स्थान यहा है, यहा।"

अनु०—माईदयाल जैन

क्या आप जिस प्रकार प्रतिदिन खाते पीते हैं उसी प्रकार पढ़ते लिखते भी हैं? मन और मस्तिष्क को पुष्ट करने के लिए अच्छे ग्रंथ खरीद कर पढ़िए और याद रखिये कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है।

आदर्शकुमारी यशपाल

हमारी लोक-कथाएं

लोककथाओं का जन्म कब हुआ, इसका कोई स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता, लेकिन अनुमान किया जा सकता है कि जबसे सृष्टि का आरम्भ हुआ और एक दूसरे के भावों को समझने के लिए भाषा का माध्यम शुरू हुआ तभी से लोककथाओं का भी जन्म हुआ होगा। मनुष्य की प्रवृत्ति कुछ ऐसी होती है कि उसे दूसरे के बारे में कौतूहलपूर्ण बातें कहने और सुनने में बड़ा आनन्द आता है और उसी प्रवृत्ति की तुष्टि के लिए लोककथाओं की सृष्टि हुई होगी।

लोककथाओं का प्रचलन नगरों की अपेक्षा गावों में अधिक है। इसका कारण यह है कि नगरों में ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, पढ़े-बेपढ़े आदि का बहुत भेदभाव रखा जाता है। शहर का मेहतर एक-दो बरस के बच्चे के लिए भी 'भंगी' ही रहता है, लेकिन गांव में वह किसी का चाचा है तो किसी का ताऊ, किसी का दादा है तो किसी का बाबा। गांव में न सिनेमाघर हैं न नाट्य-गृह, न नाचघर। पर उनके मनोरंजन का कोई साधन तो होना ही चाहिए। आइये, अब जरा मुखिया की चौपाल पर चलें। देखिये तो अथियाने के चारों ओर कैसे मस्त होकर सब कहानी सुन रहे हैं। छंगू धोबी कहानी कह रहा है और पंडित, नाई, कुम्हार, जमींदार सब आग तापते हुए कहानी सुन रहे हैं। अरे, यह क्या! यह चिलम तो अभी ठाकुर साहब के हुक्के पर रखी थी, इसी को पंडितजी ने पीना शुरू कर दिया। पंडितजी से वह देखो, रम्मू नाई के पास पहुंच गई। अरे, वह तो खिसकती ही जा रही है। हां, यह शहर नहीं है, जहां आदमी पड़ोसी को भी नहीं जानता। यहां तो सब सगे-सम्बन्धी हैं। फिर सब मिलकर बैठे हैं। तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

कहानी चाहे कितनी भी रोचक क्यों न हो फिर भी उसकी रोचकता अधिकांशतः कहने वाले पर निर्भर करती है। भाषा एक तरह की होने पर भी कहने का ढंग अपना-अपना निराला होता है। भाव-प्रदर्शन के बिना कहानी का रस आधा रह जाता है। जरा देखिए, इस धोबी को, कभी हाथ मटकाता है तो कभी आंखें; कभी नाक सिकोड़ने लगता है तो कभी जोश में आकर आधा उठ बैठता है, और कभी डंडा इस तरह उठाता है जैसे किसी को मार ही बैठेगा। कहानी कहते समय यह सब करना आवश्यक है। यह क्या? अथियाने पर बैठे सब लोग हंसी के मारे लोट पोट हुए जा रहे हैं। कहीं कोई जल न जाय! यही है गांव के कहानी कहने के अड्डे का दृश्य।

अगर कहानी आकर्षक ढंग से कही जाय तो श्रोता यही चाहते हैं कि वह द्रौपदी के चीर की भांति बढ़ती ही चली जाय और वे मंत्र-मुग्ध होकर सुनते रहें। वे उस समय यह भूल जाते हैं कि लकड़ी का उड़नखटोला, महादेव-पार्वती का पिड़किया से राजकुमारी बना देना, इंद्र के घोड़ों का बाग नष्ट कर जाना आदि बातें क्या कभी संभव हो सकती हैं! ये कहानियां तर्क से परे हैं।

कहानी कहने वाला किसी भी जाति का क्यों न हो, गांव में आदर और प्रेम का पात्र बन जाता है। ये लोक कथायें इतनी सरस हैं और इतने आकर्षक हाव-भाव के साथ कही जाती हैं कि कोई विद्वान भी उस वातावरण में पहुंच जाय तो आनन्दित हुए बिना नहीं रह सकता, बच्चों की तो बात ही क्या है। एक आदमी कहानी कहता है। सब सुनते हैं। एक हुंकारा देता जाता है। हुंकारे के बिना न कहने वाले को मजा आता है, न सुननेवाले को। लोक-कथाओं में निम्नलिखित गुण अवश्य पाये जाते हैं:

१. रोचकता २. कौतूहल, ३. कहीं-कहीं पर अलौकिकता तथा ४. लोक-जीवन का चित्रण

इनमें रोचकता और कौतूहल, ये दो गुण मुख्य हैं। इनके बिना न कहानी आगे बढ़ सकती है, न सुनने वालों को मोह सकती है।

लोक-कथाओं की अति प्राचीन परम्पराओं का

महत्व अब कुछ कम होता जा रहा है, फिर भी शायद ही कोई ऐसा जनपद होगा, जिसकी अपनी लोककथाए न हों। जबतक लोकजीवन है लोक-कथाओं की महत्ता नष्ट नही हो सकती। हमारे लोकजीवन में लोकसाहित्य खूब पनपा है। एक समय था जबकि यातायात की सुविधाए नही थी और लोग दूर-दूर की यात्राए बहुत कम कर पाते थे। उस समय भी इन लोक-कथाओं की यात्रा रुकी नही थी। वे निरतर एक जगह से दूसरी जगह घूमती रहती थी। लेकिन अब जब कि यात्रा की इतनी सुविधाए हो गई है, ये कहानिया भी बडी तेजी के साथ भ्रमण करती रहती है। अतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान तथा रेडियो ने तो यह भी सभव कर दिया है कि यहा की कहानिया विदेशो में भी सुनी जा सकती है। इन्ही सब सुविधाओ का फल यह है कि जो कहानिया हमें ब्रज में सुनने को मिली है, वे बुदेलखड, बगाल, और पहाडी इलाको में भी प्रचलित है। रूप में थोडा-बहुत परिवर्तन हो सकता है। जब हम अनेक विदेशी लोक-कथाओ का अध्ययन करते है तो अनेक ऐसी कहानिया मिलती है जो हमारी भारतीय कहानियो का ही परिवर्तित रूप है। इन कहानियो का प्रारम्भ प्राय इस प्रकार होता है : *एक राजा था। यह नही बताया जाता* कि वह कहाँ राज्य करता था और कब करता था? इसलिए ये कहानिया व्यक्ति, देश और काल की परिधि में नही बध सकती।

मैंने कुछ कहानिया बुदेलखड में सुनी थी। वही कहानिया थोडे-बहुत उलटफेर के साथ हमारे ब्रज में भी कही जाती है और वे ही कहानिया मैंने कुछ अदल-बदल के साथ अल्मोडा और नैनीताल के पहाडियो से भी सुनी है। यह कोई आश्चर्य की बात नही, क्योंकि जब लोगो में आपस में इतना सम्पर्क है तो कहानियो पर भी इसका प्रभाव पडे बिना नही रह सकता। कही-कही पर केवल भाषा का ही अतर है। श्री शिवसहाय चतुर्वेदी की 'जानपांडे' नामक बुदेलखडी कहानी में रानी की सीदा का नाम "निंदिया" है। वह हार चुरा लेती है। एक कोरी का दामाद दो-चार जानी हुई बाते बता देता है और गाव में वह जानपाडे के नाम से मशहूर हो जाता है। राजा उसे पकड़ बुलवाता है और कहता है कि यदि वह हार का पता न बता सका तो दूसरे दिन उसकी गर्दन कटवा दी जायगी। बेचैनी के मारे कोरी को नीद नही आती। वह कहता है—"आजारी निंदिया, तेरी भोर कटैगी चिंचिया।"

इसीको ब्रज का सगुनिया कहता है

"आजारी निंदरिया, तेरी भोर कटैगी मुडसिया"

बुदेलखडी दासी का नाम 'निंदिया' है और ब्रज की कहानी की दासी का नाम 'नींदरिया'। दोनो का एक ही अर्थ है नीद। वह बेचारी गर्दन कटने के डर से हार का पता जानपाडे को बता जाती है और इस प्रकार कोरी राजा से बहुत सा इनाम पाता है। इससे लगता है कि ये कहानिया अपने बीच कोई दीवार स्वीकार नही करती और नदी की निर्मल धारा की भाति अखड और अविरल गति से प्रवाहित होती रहती है।

जैसा मैंने ऊपर कहा है कुछ कहानियो की घटनायें अस्वाभाविक-सी जान पडती है, लेकिन लोक-कथाओं की विशेषता यथार्थता नही है बल्कि मनोरजन है। जैसे एक 'पतिव्रता' नामक कहानी में पतिव्रता स्त्री अपने पति के शव को पडा छोडकर खीर सपोटने बैठ जाती है। *यह असभव-सी बात लगती है, लेकिन यदि* वह ऐसा न करे तो कहानी आगे कैसे बढे। कहानी में उसके बाद ही आनन्द आता है।

इसी प्रकार कई-एक कहानियो में शिव-पार्वती आते है, डायन और राक्षस मिलते है, परिया आती है, साप राजकुमार बन जाता है, सूरज को बाल दिखाते ही उस रग का घोडा और पोशाक आ जाती है, घोडा गगनचुबी महल की छत फलाग जाता है, आदि-आदि बाते अवश्य ही असभव लगती है, लेकिन इन सबके बिना कहानियो में पूरा-पूरा रस परिपाक नही हो पाता। फिर ये कहानिया जिस युग में लिखी गई थी वह युग ही अलौकिक बातो में विश्वास करता था।

लेकिन आज का पाठक यदि उन बातो को छोड-कर उनमें प्रवाहित जीवन को ही ग्रहण करे तो उसका रस खण्डित नही होगा। वह युग-युग से चली आती लोक सस्कृति का सच्चा स्वरूप पहचान सकेगा।

शम्भुनाथ सकसेना

श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त

बंगाल से बाहर श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त के सम्बन्ध में लोग बहुत कम जानते हैं। केवल सर्वसाधारण ही नहीं, बल्कि आजकल के कांग्रेसमैन भी! और यही सतीशदा बंगाल के, विभाजन से पूर्व से बंगाल के गांधी माने जाते रहे हैं। यह वस्तुतः सत्य है कि यदि उन्होंने देश की राजनीति में नेता बनने की दृष्टि से भाग लिया होता, तो वे बंगाल के सर्वमान्य मुख्य-मंत्री, किसी प्रान्त के राज्यपाल या केन्द्रीय सरकार का मन्त्रित्व-पद कभी का पा गये होते। यदि उनमें किंचित भी प्रचार की भावना होती तो उद्योगों के सम्बन्ध में, अर्थशास्त्री, पत्रकार, विख्यात डाक्टर, वैज्ञानिक, अनेक विषयों पर अधिकारपूर्वक सृजनहार लेखक के रूप में उन्होंने अद्वितीय सफलता प्राप्त कर ली होती। लेकिन मौन साधन, लोक-कल्याण और निःस्वार्थ लोक-सेवा में सदैव उनका अडिग विश्वास रहा है।

सतीशदा के सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि वे कांग्रेस की बुलन्द इमारत की नींव की ईंट के समान हैं, तो किंचित भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस तरह इमारत की नींव की ईंट उसकी भव्यता और विशालता की आधार होती है, लेकिन उसका एक अंश भी दिखलाई नहीं पड़ता, ठीक इसी प्रकार सतीशदा का सम्पर्क कांग्रेस-संस्था के साथ है। उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया कि उन्हें कोई पद मिले या किसी कार्य में ख्याति मिले और लोग उनकी प्रशंसा करें। प्रचार की, आत्म-प्रशंसा की भावना से कोसों दूर, जैसे उन्होंने स्वयं को लोकवाद की भावना से—मानापमान की व्यवहारिकता से बहुत ऊपर उठा लिया है, जहां उन्हें सम्मान, प्रशंसा, ईर्षा, द्वेष और शासकीय-शक्ति का प्रलोभन छू नहीं पाता।

महात्मा गांधी को अपने रचनात्मक-कार्यक्रम की दिशा में जिन व्यक्तियों पर अटूट विश्वास था, उनमें सतीशदा का सम्मान पूर्ण अग्रिम स्थान था। महात्मा गांधी से इस रचनात्मक-कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए—उनकी सत्य, अहिंसा और त्याग की परिभाषा को साकार करने के लिए ही उन्होंने सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया। गांधीजी ने कहा :

'तुम्हारा क्षेत्र रचनात्मक कार्य-क्रम है—बंगाल में, महाविनाश की तरह प्रसारित अकाल, रोग और बेकारी को दूर करने के लिए तुम अपनी योग्यता और शक्तियों का योगदान दो।'

और सतीशदा ने अपने गुरु के वचन को पूरा करने के लिए अपने जीवन की समस्त शक्तियां लगा दीं। सतीशदा ने जो त्याग, जो सेवा और जिस जन-कल्याण की भावना से बंगाल में कार्य किया है उसकी अमिट छाप बंगाल के नगरों पर ही नहीं गावों पर भी अंकित है। अपने दुर्भाग्य के झंझावातों से निरन्तर संघर्ष करने वाले बंगाल को इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि उसके शरीर में घुसे हुए हिंसा, गरीबी और रोग के कीटाणुओं को कोई मसीहा बिना नश्तर के बाहर निकाले। आज भी बंगाल में राजनीतिक नेताओं की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता है जो हिंसा से दूर रहकर स्थानीय गरीबी को मिटाने के लिए अपने जीवन को खपा दें। सतीशदा ने अपने प्रान्त के हित में यही किया।

लेखक को सतीशदा के सम्पर्क में आने और उनके सोदपुर (बंगाल) स्थित आश्रम में एक लम्बे अर्से तक रहने का अवसर मिला है। लेखक ने अनुभव किया है जैसे न केवल बंगाल की बल्कि समस्त देश की बेकारी, भुखमरी और गरीबी उनके जीवन में सिक्त हो गई है। उनके दैनिक जीवन का प्रत्येक क्षण अपने लिए न होकर, दूसरों के हित के लिए होता है। वे कल्पना और भावना से अधिक रचनात्मकता और वास्तविकता में विश्वास करते हैं। और अपने विश्वासों के प्रति वे इतने दृढ़ है कि कोई उन्हें उनसे डिगा नहीं सकता। बंगाल के ग्राम-ग्राम में, नगर नगर में जो आज खादी का प्रचार है, उसका अधिकांश श्रेय सतीशदा को ही

है। उनके अन्दर 'व्यवस्था' की शक्ति इतनी प्रबल है कि उन्होने बगाल के खादी उत्पादन को इतना अधिक व्यापक और विस्तृत कर दिया था कि उसकी खपत बम्बई में भी होती थी। सम्भव था कि बगाल की खादी बम्बई की मार्केट के ऊपर सस्ती होने सुन्दर और मजबूत होने के कारण छा जाती और गाधीजी की विकेन्द्रीकरण की योजना को धक्का लगता। यह सतीशदा को स्वीकार नही था, जैसे ही उन्हे इस बात का आभास मिला उन्होन 'खादी प्रतिष्ठान' की बम्बई स्थित दूकान बन्द कर दी। आज बगाल के प्रमुख-प्रमुख नगरो में 'खादी प्रतिष्ठान की दुकानें हैं, जहा से विशुद्ध घी, अच्छा चावल और सस्ती व टिकाऊ खादी मिलने की व्यवस्था है। कलकत्ते में तो लगभग पचास दुकानें हैं जो नगर के विभिन्न भागो में खुली हुई हैं। इतनी विशाल सस्था का कुशल सचालन सतीशदा द्वारा होता है।

उनका इस बात में विश्वास है कि देश की आर्थिक सम्पन्नता गृह-उद्योगो के अधिक-से-अधिक प्रसार से ही सम्भव है। वे मानते हैं कि ज्यो-ज्यो धन का विकेन्द्रीकरण होगा, धन की विषमता अन्त पाती जायगी सर्वसाधारण को खुशहाल मिलेगी और देश में सम्पन्नता के दर्शन होगे। जहा तक गृह-उद्योगो का सफल बनाने का प्रश्न है उनका प्रयास सफल हो चुका है। उन्होने गृह-उद्योगो में नये-नये प्रयोगो द्वारा उन्हें इतना सफल बना दिया है कि वे आसानी से देश के ग्रामो में आरम्भ किये जा सकते हैं और उनके उत्पादन द्वारा आजीविका-अर्जित की जा सकती है। गृह-उद्योगो के सम्बन्ध में खादी प्रतिष्ठान आश्रम, सोदपुर (बगाल) एक सफल शिक्षण केन्द्र है। वहा हाथ से कागज बनाना, पशु-पालन, मधुमक्खी-पालन, छपाई, बाईडिंग, तेल घानी, आदि उद्योगो की कुशलता-पूर्ण शिक्षा दी जाती है। पुराने उद्योगों में उन्होने महत्वपूर्ण सुधार किये हैं। उन्होने छोटे-छोटे ऐसे यन्त्रो का आविष्कार किया है, जिन्हे सुविधापूर्वक कुटीरो में लगाया जा सकता है और उनकी सहायता से सुन्दर वस्तुओ का शीघ्र उत्पादन किया जा सकता है। हाथ से कागज बनाने की कला को उन्होने काफी उन्नति दी है। अन्य स्थानो पर हाथ से कागज बनाने के लिए टाट और रद्दी कागजो का उपयोग किया जाता है लेकिन सोदपुर आश्रम में कागज बास से बनाया जाता है। और वहा का बना हुआ कागज मिल से बने हुए कागज से भी अधिक मजबूत और सुन्दर होता है। सतीशदा के मन मे कल्पना गृह-उद्योगो को लेकर जापान की है। वे इन उद्योगो को आधुनिकतम बनाने में विश्वास करते हैं। आज जो देश में गृह-उद्योगो के उत्पादन के लिए लोक-प्रवृत्ति का सृजन नही हो पाया है, उसका मुख्य कारण यही है, कि गृह-उद्योगो का उत्पादन लोकरुचि के अनुसार नही है।

सतीशदा जन्मजात वैज्ञानिक हैं। उनमें अन्वेषण की अद्भुत क्षमता है। वे विषय की गहराई में उतरते है और उसका सत्य जान लेने पर ही सन्तोष पाते हैं। अपनी इस प्रकृति के कारण ही वे अपने गुरु, प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व० श्री प्रफुल्लचन्द्र गुप्त के प्रिय शिष्य माने जाते रहे हैं। सतीशदा यदि मात्र विज्ञान के क्षेत्र में होते तो नि सन्देह आज उनका स्थान देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिको में होता। लेकिन उनकी जन-सेवा तथा उदारवृत्ति को मात्रविज्ञान की परिधि परिवेष्टित न कर सकी। उन्होने अपने को वहा से हटा कर लोक-सेवा के लिए अपनी शक्तियो को लगा दिया। वैज्ञानिक श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त, लोकसेवक सतीशदा हो गये। सतीशदा के साथ-साथ आज उनका सारा परिवार लोक-सेवा और, दुखियो के दुख निवारण में निरतर प्रवृत्त है। मा हेमप्रभा देवी, ने बगाल के ग्राम-ग्राम में जाकर अकाल और क्षुधा-पीडित क्षेत्रो की जो सेवा की है वह चिरस्मरणीय है। अविभाजित भारत के दिनो में जबकि नोआखली में साम्प्रदायिकता ने ताण्डव-नृत्य किया तो मा हेम-प्रभादेवी ने जाकर उन्हे मानवता का वह अमर-सन्देश दिया जो कि आगे चलकर महात्मा गाधी की नोआखली यात्रा के समय एक आधार-शिला सिद्ध हुआ। श्रीमती हेमप्रभादेवी ने स्वय को पति के कर्तव्यमार्ग पर अर्पित कर दिया है। और वास्तविकता तो यह है कि वे आज सतीशदा के लिए एक प्रेरणा, एक गति बन गई है। जिन लोगो को सोदपुर आश्रम में रहने और 'मा' के

सम्पर्क में आने का अवसर मिला है, वे जानते हैं कि देवी हेमप्रभा समस्त आश्रमवासियों की मां है, जिन्हें सदैव यह चिन्ता बनी रहती है कि उनके पुत्रों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

उनके अनुज श्री क्षितीशचन्द्रदास गुप्त के लिए जीवन का सबसे बड़ा आकर्षण उनके अग्रज—श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त हैं। उन्होंने भी अपना सर्वस्व सोदपुर आश्रम के लिए लगा दिया है। वे इतने मृदुभाषी और सौजन्यत-प्रिय हैं कि उनसे मिलकर लोगों को हार्दिक प्रसन्नता होती है। मधुर इतने जैसे शहद, भावुक ऐसे जैसे उच्च कोटि का कवि, सरल इतने जैसे बालक, शान्त ऐसे जैसे शरद् की नीरव रात्रि। उनका व्यक्तित्व सोदपुर के आश्रमवासियों के लिए बहुत बड़ा आकर्षण है। सोदपुर-आश्रम का अद्वितीय मधु-मक्खी-क्षेत्र उन्हींकी देन है।

जीवन में सत्य सतीशदा के लिए सबसे बड़ी वस्तु है। इसी सत्य की सुरक्षा के लिए उन्हें अनेक बार अपने प्रिय स्वजनों का डट कर विरोध करना पड़ा। उन्होंने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का भी सैद्धान्तिक आधार पर विरोध किया। उन्होंने अपने मित्र सम्पादक-प्रवर श्री रामानन्द चटर्जी का भी विरोध किया और क्षुद्र प्रान्तीय भावना का सदैव तिरस्कार किया। जिस समय उन्होंने हरिपुरा कांग्रेस के प्रश्न को लेकर नेताजी का विरोध करना पड़ा उस समय सारा बंगाल प्रान्त उनके विरुद्ध हो उठा। लेकिन उन्होंने लोकमत की अपेक्षा अपने सिद्धांतों और विश्वासों को ही अधिक महत्व दिया। उन्होंने डट कर उन पत्रों और उन व्यक्तियों का अपनी पत्रिका द्वारा विरोध किया जो सस्ती भावुकता, प्रान्तीय और व्यक्तिगत स्वार्थों से वशीभूत थे। 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादक ने यह बात सिद्ध कर दी थी कि उनकी सम्पादकीय टिप्पणियां कितनी उग्र लेकिन विवेकपूर्ण तथा तथ्यपूर्ण होती थीं।

सतीशदा का पत्रकार के अतिरिक्त लेखक के रूप में भी अपने क्षेत्र में अद्वितीय स्थान है। उनकी पुस्तकें 'दी काऊ' और 'होम एण्ड विल्लेज डाक्टर' अपने विषय की अद्वितीय पुस्तक हैं। उन्होंने इन पुस्तकों के अतिरिक्त भी अन्य पुस्तकें लिखी हैं। खादी अर्थ-शास्त्र पर उनका अध्ययन, मनन और रचनात्मक-कार्य अतुलनीय है। पक्के राष्ट्रवादी श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त गांधीजी की रचनात्मक योजना के सच्चे भाष्यकार हैं। गांधीजी न क्या कहा, यह केवल उन्होंने पढ़ा, सुना या उस पर मनन ही नहीं किया बल्कि उसे मूर्तरूप भी दिया है। सतीशदा की भावनाओं की प्रतिमूर्ति उनकी 'खादी-प्रतिष्ठान' संस्था है। खादी-प्रतिष्ठान-आश्रम कलकत्ता से दस मील दूर सोदपुर-स्टेशन के ठीक सामने है। लगभग आधे मील वर्ग के क्षेत्र में सोदपुर-आश्रम बसा हुआ है। उसमें प्रवेश करते ही ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी तपोभूमि में प्रवेश किया हो। आश्रम में प्रसारित सुरुचि, सादगी और मृदु-भाषा का प्रभाव आगन्तुकों पर पड़ना अवश्यम्भावी है। यही आश्रम सतीशदा का निकेतन है।

सतीशदा की सर्वतोमुखी प्रतिभा, सत्य के प्रति निष्ठा और कर्तव्य के आगे आत्म-विसर्जन की भावना से गांधीजी अत्यधिक प्रभावित थे। सौम्य, शान्त, विद्वान, मानापमान की भावना से दूर सतीशदा, आज के श्रेष्ठ कांग्रेसमैनों के लिए आकाश-द्वीप के समान है, जिनसे उनका मार्ग आलोकित होता रहता है। गांधीजी और उनके सिद्धांत तो उनके रोम-रोम में बस गए हैं। गांधीजी उनका आदर करते थे और स्नेह करते थे। बंगाल-यात्रा के अवसर पर सोदपुर-आश्रम ही उनका निवास-स्थान हो गया था और सतीशदा पर ही उनके कार्यक्रम बनाने का उत्तरदायित्व रहता था।

●

मनुष्य सुन्दर विचारों से सुन्दर जीवन की ओर अग्रसर होता है और सुन्दर जीवन से सर्वनिरपेक्ष सुन्दर जीवन की ओर बढ़ता है।

—प्लेटो

कन्हैयालाल मिण्डा

आत्म-विश्वास

जिसका मन स्थिर हो और आत्मा में पूर्ण विश्वास हो वही पूर्णता को प्राप्त होता है। जिसके मन में सशय होजाता है वह भ्रमरुपी समुद्र में ही गोता लगाता रहता है। और वह अनर्गल भ्रम बुद्धि को मलीन करके उत्तरोत्तर अकर्मण्यता की ओर अग्रसर करता है।

गीता में लिखा है कि निश्चित को छोडकर अनिश्चित पर नही जाना चाहिए। जो निश्चित लक्ष्य को छोड अनिश्चित मार्ग अपनाते है वह निश्चित से भी वन्चित रह जाते है। भगवान ने यहा तक कह दिया- "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक' कि तू सब कुछ की चिन्ता छोड कर केवल मुझ ही पर निर्भर कर। मैं तेरे पाप, दोषो को स्वय हरूगा। तू मुझपर आश्रित रह और जो करे सो मुझे ही अर्पण कर। परन्तु जबतक पूर्ण विश्वास न हो जाय और निर्भयता न आ जाये तबतक यह कैसे सम्भव हो सकता है। यद्यपि शास्त्रो, पुराणो, श्रुतियो और महान् ग्रन्थो में ऐसा उल्लेख है किन्तु 'ह आदर्श के लिए हो सकता है। जब तक मनुष्य स्वय उसका अनुभव न कर ले उसे कैसे मानें। प्राय दैनिक व्यवहार में हम देखते है कि जिसका जिसपर विश्वास जम जाता है उसके लिए फिर वह चाहे जो करे उस पर अविश्वास नही करता है और उस विश्वास पर निर्भर करता है परन्तु जो किसी का विश्वास करता है वह एक समझने के पश्चात् ही करता है और जब वह एक समझ लेता है तभी उसमें निर्भयता आती है और जब निर्भयता आती है तब उसकी शकायें निर्मल हो जाती है और वह साम्य भावना से निर्भयतापूर्वक उस पर पूर्ण भरोसा करता है और जो भरोसा करता है वह अवश्य पाता है। यह अक्षरश सत्य है और पग पग का अनुभव ही इसका प्रमाण है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है "जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तिहीं मिलत न कछु सन्देहू"

जिसका जिसपर सत्य सनेह हो वह उसे निश्चय ही प्राप्त होता है, यह निर्विवाद और ध्रुव सत्य है। उदाहरणार्थ आये दिन ग्रेजूयट एपलीकेशन फाईल के आधार पर दर दर की हाजिरी बजाते रहते है और हम गली मोहल्लो में घूम फिर कर सिर पर टोकरी रख कर वस्तु बेचने वालो और मजदूरो को प्रसनता से हसते देखते है। मनुष्य मे सब कुछ है। क्या नही है? आवश्यकता एकमात्र आत्म विश्वास की है। जो सत्य-मार्ग पर रहते है उनकी आत्मा में बल होता है, वे निर्भय है और अपार गति से निरन्तर आगे बढते है। जिनको सच्ची लगन होती है वे पीछे कब हटते है। पीछा ढोगी और बगुला भक्तो का आश्रम है। आत्मविश्वासी सत्यता रूपी नैय्या के सहारे सदैव सफलता रूपी पर्वतो के उत्तुग-शृगो पर विजयश्री फहराते रहते है। अग्रेजा के राज्यकाल में मुट्ठीभर हाड वाले गाधी न कितनी निर्भयतापूर्वक कह दिया था और कह ही क्या दिया था आन्दोलन चलाया था कि अग्रेजो भारत छोडो? उस समय यह कहना क्या साधारण बात थी। पर वह सत्यता का अन्वेषक और आत्मविश्वास का जीवित प्रमाण था। वह बार बार यह कहता था कि मेरा चाहे जो कुछ छिन जाये पर यदि प्रभु-विश्वास छिन गया तो मेरे में रह ही क्या जायेगा।

जिसके तन पर लगोटी तक नही होनी वह सिर पर घास का भरोटा उठाये फिरता है और ६ आने मागता है। आप उसे ३ आने कह दीजिए, चार आने कह दीजिये; चाहे साढे पाच आने कह दीजिए पर वह कदाचित नही देता क्योकि उसे विश्वास है कि उसकी यथार्थ की कमाई का मूल्य छ आने से कम नही है। वह दो घन्टे तक उस भरोटे को सिर पर उठाये मीलो तक फिर लेगा पर आखिर छ आने को ही बेच कर जायेगा।

एक तागे या रिक्षा वाले का आत्म विश्वास देखिए। आप अमुक स्थान से अमुक स्थान तक जाने का किराया उससे पूछिए और चार आने कम कह दीजिये, वह नही जायगा, क्यो? क्या उसको कोई और दूसरी कमाई है। परन्तु तागा या रिक्षा भाडा कमाने वाले

आज कल सत्कार्यों के लिए साहस करने वाले इने-गिने हैं पर दुस्साहसियों की कमी नहीं। छोटा सा लड़का सैकड़ों आदमियों के बीच जेब कतरने की हिम्मत करता है, संगीन पहरा होते हुए भी बैंकों पर डाका डाल दिया जाता है। यह आत्मविश्वास के दुरुपयोग के नजारे हैं! कभी सत्य और धर्म के लिए लोग बलिदान करते थे, आज ऐशोआराम व भ्रष्टाचार के लिए मरते हैं। अपनी सच्चाई के आधार पर जीने वालों ने जानें दे दीं, दीवार में चुने गये, बदन में कीलें ठोंक दी गईं, पर विश्वास उन से नष्ट नहीं हुआ। इसीलिए आज भी उनकी जीवनज्योति, अखण्ड दीपशिखा की तरह देदीप्यमान है। जिन्हें आत्मविश्वास होता है वही आगे बढ़ते हैं और सफलता उन्हीं के चरण चूमती है। जो आत्मा में विश्वास करते हैं वह कभी नहीं मरते और इस नश्वर शरीर के तेज से अपने शौर्य की अखण्ड ज्योति युग-युग के लिए प्रज्वलित कर जाते हैं।

पर्वतारोही दलों को यदि इतना विश्वास अपने ऊपर न हो कि वे हिमाच्छादित उत्तुंग-शृंगों पर विजय-पताका फहरा देंगे तो वे घर से नहीं निकल सकते! एक यही क्या, किसी भी कार्य के करने पर कर्ता की आत्मा में लक्षित कार्य के प्रति दृढ़ आत्म-विश्वास न हो तब तक उसका काम आगे नहीं बढ़ सकता। श्रेष्ठ और सफल जीवन की कुंजी सत्य एवं निर्भय रूपी स्तम्भों पर आधारित आत्म-विश्वास ही है। सांसारिक कार्यों की सफलता का आधार जहां आत्म-विश्वास है वहां आध्यात्मिक प्रकरण सहज ही समझा जा सकता है।

●

अगर लोग काम को अपना ही काम कहना बन्द कर सकते तो इससे बहुत-से उपद्रवों का अन्त हो जाता। —श्री माँ

●

गीत

दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !
आँज में सकूँ जिसे हरेक आँख में अभय,
बाँट मैं सकूँ जिसे समस्त विश्व में सदय,
बाँध क्षुद्र धूल कर सके जिसे न क्षय, न क्षय,
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए।

जो बँधे न वृन्त से, न डाल से, न पात से,
जो मुँदे न, जो खुले न रात से, प्रभात से,
जो थके न, जो झुके न धूप, वारि, वात से—
फूल नहीं, फूल का सुवास मुझे चाहिए !
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

घूँट-घूँट पी सके घृणा-समुद्र जो अतल,
बूँद-बूँद सोख ले सकल विषम कलुष गरल,
अश्रु-अश्रु बीन ले धरा बने सुखी सफल,
तृप्ति नहीं, चिर अतृप्त प्यास मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

घेर जो सके समग्र स्वर्ग, नर्क, भू, गगन,
बाँध जो सके सकल करम, धरम, जनम, मरण,
छू सके जिसे न देशकाल की गरम पवन,
मुक्ति नहीं, मुक्त प्रेम-पाश मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

देवता नहीं, मनुष्य बस मनुष्य बन रहे,
अर्चना न, वन्दना न, द्वेष-मुक्त मन रहे,
स्वर्ग नहीं, भूमि भूमि के लिए शरण रहे,
अमृत नहीं, मर्त्य का विकास मुझे चाहिए !
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए !

विष्णुशरण

जीन जेक्वस रूसो

"प्रकृति की अवस्था में समानता एक वास्तविक और पवित्र सत्य है", "साधारण व्यक्तियों से ही यह मानव-जाति निर्मित हुई है। जिसमें जनसाधारण नहीं वह कठिनता से विचारणीय है।"

जनसाधारण के अधिकारों की आवाज को उठानेवाला जीन जेक्वस रूसो एक साधारण व्यक्ति के रूप में ही पैदा हुआ और उसी रूप में मरा। सन् १७१२ में जेनेवा में एक घड़ी बनाने वाले के घर में वह पैदा हुआ। ग्रामीण पाठशालाओं में उसने मामूली शिक्षा पाई। अपने उग्रविचारों के कारण वह गिलोटीन से बचने के लिए ६ वर्ष तक योरोप में मारा-मारा फिरा और जब सन् १७७० में वह फ्रांस वापिस आया तो वह एक गरीब, अकेला और उपेक्षित व्यक्ति था। जो मनुष्य उसके विचारों से सर्वाधिक प्रभावित हुए वे उसे भूल गए थे। उस समय के जो प्रसिद्ध विचारक थे वे उसे पागल कहने लगे थे। आठ वर्ष तक वह मुश्किल से जीवित रहने के साधन जुटाता रहा और जब सन् १७७८ में वह मरा तब एक साधारण व्यक्ति की ही तरह मरा।

लेकिन वह एक साधारण व्यक्ति नहीं था। वह असाधारण था। वह अपने समय से बहुत आगे था। १८ वीं शताब्दी का होते हुए भी वह विचारों में २० वीं शताब्दी का था। वह मानव अधिकारों का हिमायती था। वह विचारक था, शिक्षा सुधारक था, प्राकृतिक छटा का प्रेमी था; सबसे बढ़ कर वह स्पष्ट और सत्य-वक्ता था।

एक समय था जबकि चर्च के पादरियों, राजाओं, माल-दार साहूकारों और शहजादों का ही बोलबाला था। केवल वेही सम्माननीय और विचारणीय व्यक्ति थे। जनसाधारण की कोई मान ही न था, उसकी कोई आवाज ही न थी। किसी को इस बात का ध्यान ही न था कि उनका भी कुछ मान हो सकता है। उनकी भी कोई आवाज हो सकती है। सरकार कौन बनावे, सरकार के क्या काम हों? उसका उत्तर था जनसाधारण। वह जनसाधारण के हकों को; उसकी आवाज को लेकर आगे बढ़ा और एक दिन १४ जुलाई १७८९ को जनसाधारण की उमड़ती हुई घटायें पेरिस में बेस्टिल पर छा गई, यद्यपि वह जनसाधारण के भाग्य के निपटारे के उस दिन को देखने के लिए बचा न था पर उसकी "सोशल कोन्ट्रैक्ट" क्रान्तिकारियों की गीता बन चुकी थी।

तब तक समझा जाता था कि जनसाधारण शासित होने के लिए ही है। वह बुरा है। उसे पार नियंत्रण के कठोर कानूनों के शिकंजे में जकड़ने की आवश्यकता है। लेकिन रूसो ने कहा कि यह विचार गलत है। यह गरीबों पर अपनी प्रभुता और अपना आधिपत्य थोपने का बहाना है। सरकार छोटी-से-छोटी और कानून कम-से-कम होने चाहिए।

कोई मनुष्य बुरा नहीं है, यदि उसे गलत शिक्षा-दीक्षा न दी जाय। इस नवीन सिद्धान्त का उसने प्रतिपादन किया। प्रत्येक मनुष्य का उसके स्वाभाविक गुणों के अनुसार विकास होने दो। इस प्रकार शिक्षा पर उसके अपने विचार थे जो आगे चलकर फ्रोबेल और मोंटेसरी ग्रन्थों में प्रस्फुटित हुए।

उसके समय में मुक्त प्राकृतिक सौन्दर्य घृणा की वस्तु थी। लेकिन अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में ही रूसो ने पैदल आल्प्स को पार किया और बाद में उसने लिखा:—

"केवल मेरे आनन्ददायक दिनों में ही ऐसा था कि मैंने पैदल यात्राएं की, इससे मुझे हमेशा खुशी मिलती थी। बाद में कर्तव्यों, काम, सामान ने मुझे बाध्य कर दिया कि मैं गाड़ी का प्रयोग करूं और एक सम्भ्रान्त व्यक्ति का रूप धरूं। दुःख, चिन्तायें और परेशानियां मेरे साथ गाड़ी में घुस जाती थीं और जबकि अपनी यात्राओं में पहले मुझे एकमात्र यात्रा करने का आनन्द मिलता था, अब केवल गंतव्य स्थान तक पहुंच जाने की इच्छा पैदा होती है।"

रूसो सत्यान्वेषी था। वह सत्य को छिपाना जानता

ही न था, चाहता ही न था और जब उसने अपनी आत्मकथा लिखी तो उसमे बिना छिपाव और हिच-किचाहट सब सत्य उडेल दिये। चाहे वह कितने ही लज्जा-जनक, कुत्सित अथवा कटु क्यो न रहे हो। गाधीजी ने भी तो ऐसा ही किया था। रूसो ईश्वर में विश्वास करता था लेकिन चर्च में नही और उसने चर्च पर आक्रमण किया। लेकिन यह विचार इतना विप्लवकारी था कि उसे अपनी रक्षा के लिए देश छोडकर भागना पडा।

रूसो मानव के अधिकारो—समानता, प्रजातत्र, स्वतत्रता में दृढ विश्वास रखता था और अपने विश्वास पर चलता भी था। उस ही का विचार एतलाटिक के उस पार अमरीकी विधान का आधार बना। उसी ने फ्रेच क्रान्ति का सृजन किया। समाजवाद और समष्टिवाद उसी के विभिन्न रूप है। आज भी सारा ससार उसी विचार से आप्लावित है। मानव-समाज इस देन के लिए उसका चिरऋणी रहेगा।

भारत और फिलपीन

रामसिंह रावल

लगभग ग्यारह वर्ष बीत चुके हैं, जब मैंने फिलपीन को निकट से देखा। यह वह समय था, जब सारे पूर्वी एशिया में एक अनोखा परिवर्तन आ रहा था। जापान की तानाशाही सेनाए सारे पूर्वी एशिया पर छा चुकी थी। पश्चिमी साम्राज्यवाद की ईंट से ईंट बज चुकी थी, और उसका स्थान जापानी सम्राज्यवाद ले रहा था। परन्तु एक अनोखा परिवर्तन जिससे शायद जापान के तानाशाह भी परिचित थे, एशिया के सभी देशो में आ रहा था। और वह परिवर्तन था, प्रत्येक देश में विदेशी राज्य से छुटकारा पाने की आकाक्षा।

फिलपीन भी इस परिवर्तन से वचित न रह सका। वह लगभग चार सौ वर्षों से पराधीनता के चगुल में फसा हुआ था। पहले स्पेन की प्रजापीडक राज्य ने लगभग तीन सौ वर्ष तक उसको कुचला, उस समय ७१ बार विप्लव का झडा ऊचा हुआ और जब सन् १८९६ में फिलपीन के क्रान्तिकारी दल मे आगिनाल्डो (Auginaldo) नाम के महापुरुष के नेतृत्व में स्पेन के प्रजापीडक राज्य की जडें हिला दी तो अमरीका ने आगिनाल्डो की सहायता का नाम ले कर फिलपीन पर अपना अधिकार जमा लिया। परिणाम यह हुआ कि जिस अगिनाल्डो के क्रान्तिकारी दल की, स्वतत्रता के नाम पर, सहायता की गई थी, उसी आगिनाल्डो को अमरीका के विरुद्ध फिर आजादी का असफल युद्ध लडना पडा।

स्वतत्रता प्राप्त करने की योजनाओ का, आगिनाल्डो की पराजय से, अत न हुआ। शान्त और अशान्त दोनो प्रकार के साधनो से स्वतत्रता का आदोलन बराबर जारी रहा। और जब सन् १९४१ मे जापान ने अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की, तो उस समय फिलपीन में एक ऐसी सस्था का जोर था, जिसका नाम, कालीबापी (Kalıbapı) था। यह कालीबापी नाम की सस्था ही थी, जिसने मुझे फिलपीन की ओर आकर्षित किया। उसके झडे पर गाधीजी के चरखे जैसा चरखा बना हुआ था। पता लगाने से मालूम हुआ कि गाधीजी का फिलपीन की राज्यनीति पर काफी अधिक प्रभाव पडा था। चरखे को कालीबापी के नेताओ ने गृहउद्योग का चिह्न स्वीकार कर, उसे अपनाया। यहा तक ही बस न था, कालीबापी के नेता लोग जनता को यह साफ साफ कहते कि हमारे वह नेता जो अमरीकी सरकार की कठपुतली बनकर हमारे ऊपर राज्य कर रहे है, क्या वह देश की गरीबी को भूल गये है ? क्या वे भारत के गाधीजी के समान मामूली घरो में नही रह सकते ? क्या वे हाथ के बुने हुए कपडे नही पहन सकते ? कालीबापी विदेशी वस्तुओ के बायकाट पर जोर देती थी।

कालीबापी के इस प्रोग्राम को भारत के गाधी (आधुनिक) युग के प्रभाव का परिणाम कहा जा सकता

है, वैसे भारत और फिलपीन के आपसी सम्बन्ध शताब्दियों से चले आ रहे हैं। जब यूरोप पर अभी सभ्यता का उजाला भी न पड़ा था, तब भारत की सभ्यता अपना उज्ज्वल प्रकाश अपनी सीमाओं से बाहर डालने लगी थी। पल्लव राज्य के समय भारत की सभ्यता ने महापूर्वी एशिया के सभी देशों पर अपनी धाक जमा ली थी। जावा, सुमात्रा, स्याम, हिन्दचीन और फिलपीन पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का आधिपत्य स्थापित हो चुका। यह आधिपत्य केवल भारतीय सभ्यता और संस्कृति ही का न था, वास्तव में भारत के सुप्रसिद्ध उपनिवेशक, महाराजकुमार विजय ने इन सभी महापूर्वी-एशिया के देशों पर अपना राज्याधिकार जमा लिया था। परन्तु जब पल्लव-राज्य का चालूक्य और चोला राज्यों की सेनाओं की मार से अंत हुआ तो महापूर्वी एशिया के इन भारतीय राज्यों में भी परिवर्तन आया। वहां अब दो बड़े राज्य स्थापित हो गये। एक तो था, सुमात्रा का श्री विजय साम्राज्य और दूसरा जावा का मज्जापहित राज्य।

मज्जापहित राज्य का साम्राज्य फिलपीन तक फैला हुआ था। इस उपनिवेशिक भारतीय राज्य के कारण फिलपीन पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का और भी अधिक प्रभाव पड़ा। फिलपीन के एक प्रसिद्ध विद्वान डा० ट्रिनिडाड पार्डो डी ट्वेरा (Dr. Trinidad Pardo de Tavera) ने लिखा है, कि भारत से केवल व्यापारी लोग ही न आए, बल्कि वहां से धर्म, सभ्यता और संस्कृति के दूत अधिक आए। यह भारतीय सभ्यता और ब्राह्मण धर्म का ही आगमन था जिस ने फिलपीन की भाषा, कला, शिल्पकला, समाज-धर्म, कानून, वेष, रस्मोरिवाज पर प्रभाव डाला। डा० साहब लिखते हैं कि फिलपीन में सूर्य, चंद्रमा, जल, वायु, अग्नि आदि की जो पूजा होती थी, वह भारतीय सभ्यता के प्रभाव का ही परिणाम थी।

फिलपीन की भाषा और लिपि पर भी भारतीय प्रभाव पड़ा। पुरानी लिपि पाली के अधिक निकट है। भाषा में अनेकों ऐसे शब्द हैं, जो संस्कृत और पाली से लिये गए हैं। जैसे मोती (मुक्ता) को 'मृत्या' कहा जाता है और भाषा को 'वाक' कहा जाता है।

फिलपीन की लोक कहानियां भी भारत की देन मालूम होती हैं। आगूसन (Agusan) प्रान्त में एक पौराणिक गाथा प्रचलित है, इसका सम्बन्ध रामायण की अहिल्या की कहानी के साथ है। इफूगाओ (Ifugao) प्रांत के लोगों में एक और पौराणिक कहानी प्रचलित है, कि बाल्टिक (Baltik) नाम के देवता ने तीर मार कर पत्थर से पानी निकाला। यह कहानी महाभारत में अर्जुन के ऐसे ही एक कार्य से मिलती जुलती है।

भारत के एक प्रसिद्ध विद्वान्, डा० धीरेन्द्रनाथ राय फिलपीन यूनिवर्सिटी के लिबरल आर्टस कालेज के फिलास्फी विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। उन्होंने फिलपीन के इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन किया और मालूम किया कि फिलपीन के लोगों में कई ऐसे अंधविश्वास प्रचलित हैं, जो भारतीय जनता में भी हैं, जैसे कि बच्चों को रात के समय कंघी नहीं करनी चाहिए, नहीं तो उनके माता-पिता की मृत्यु का होना संभव है। यदि आकाश पर कोई तारा गिरता दिखाई दे, तो कोई मुसीबत आने वाली होती है। यदि कोई गर्भवती स्त्री जुड़वां फल खाले तो उसके जुड़वां बच्चे होंगे। जिस घर में बच्चा पैदा हो, वहां चालीस दिन तक दिया जलता रहता है।

तात्पर्य यह कि फिलपीन का भारत के साथ कई शताब्दियों से घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा है। और इस पौराणिक सम्बन्ध को गांधीजी के चरखे, अनेकों व्रतों और शान्त आन्दोलन ने फिलपीन पर एक निराला प्रभाव डाल कर फिर से जीवित कर दिया है। अब इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि भारत और फिलपीन के लोग और भी एक दूसरे के निकट आ जावेंगे।

●

शकरलाल जा० पुरवार

गद्य गीत

मेरे आसू—नाथ, न समेटो तुम इन्हें अपने रत्न-हार के लिए। नभ के आसुवो में नौलाख रत्नो की, अनमोल श्री की आभा झलक रही है।

पुष्पो के आसुवा में विश्व सुरभितकर आत्मोत्सर्ग की मदिर भावना विद्यमान है।

तारको के दाहक आसुवा में दाह शमन-शक्ति तथा जडता को सचेतन करनेवाली सजीवनी दमक रही है

अर्भक के आँसुवा में मातृ-दर्शन की आर्त्त-पुकार तथा मातृ-मिलन की तीव्र तृष्णा छलक रही है।

और इन मेरे खारे आसुवा में—ना, ना नाथ! अविरल बरसने दो इन्हें। न गूथो तुम इन्हें अपने अनमोल रत्नहार में।

× × × ×

श्रमिको के आसुवो में कर्तव्य निष्ठा की समाधि तथा समाधान का प्रशात तेज है।

पीडितो के आसुवा में सुप्त वडवानल तथा क्रान्ति की धधकती ज्वाला एँ भडक रही हैं।

प्रीति के आसुवो में समर्पण का विमुक्त मकरद तथा मागल्य का मधुर निझर बह रहा है।

त्याग के आसुवो में सागर की गभीरता तथा नगाधिराज की अचल निश्चलता वास करती है।

और मेरे इन खारे आसुवो में—पापी स्वार्थ, दुराचारी मोह, तथा निर्वीर्य द्वेष—

जाने दो नाथ! अविरल झरने दो इन्हें। न समेटो तुम अपने मौलिक रत्नहार के लिए।

× × × ×

द्वार के सम्मुख के तुम्हारे पवित्र पद चिन्ह धोकर पश्चात्ताप की विशुद्ध अग्नि से वे जब तक पवित्र न होवें तबतक बरसने दो इन्हें।

लगातार बरसने दो इन्हें। न समेटो तुम अपने रत्नहार के लिये।

हे मृत्यो! मेरे निकट न आना। मैं वह ज्योति हू जिसे जरा नही—जिसे मरण नही।

कलियो सा विहसना। फूलो सा विकसना। तथा सुमन भाडारो से सौरभ चुराने वाले समीरण के साथ स्वैर केलि करना ही मेरा स्वैर कर्म है।

उर में जलती ज्वाला के निमित से धूपछाह का खेल खेलना तथा नयनो में करुणा का विकल विकास ले प्रकाश पर लुट जाना ही मेरा जीवनधर्म है

मानव कल्याण के हेतु सहारक सकटो से यथाशक्ति जूझना और विश्व को प्रकाश देना ही मेरे जलते जीवन का आद्यमर्म है।

हे मृत्यो! मुझपर न झपको। मैं वह अमर ज्योति हू जिसे क्षय नही—जिसे मरण नही।

× × × ×

सुख का क्षण नही—मैं दुख का युग हू।

बुझने का अभिशाप नही—जलने का वरदान हू।

घनघोर घटाओ का वात्सल्य, अभिलाषाओ का उन्नत अभिसार तथा अनत का अमर आशीर्वाद हूँ।

प्रलय के पश्चात् नभ में नवसृष्टि का निर्माण करने के हेतु अनत को मेरी आवश्यकता है।

अत हे मृत्यो! दूर ही रहो मुझसे। मैं वह अमर-ज्योति हू जिसे मरण नही।

× × × ×

भास्कर की तपन में आग उगलनेवाली ग्रीष्म का निवास है। विद्युत की जलन में हिमवर्षी पावस तिरोहित है।

और मेरी जलन में निज देह सहित निज सुख-शाति को भस्मकर महाप्रलय तथा नवनिर्माण की विराट शक्ति अतर्हित है।

इस विराट् शक्ति से टकरा कर विश्व में अपनी हसी न कराओ मृत्यो!

कारण मैं वह अनश्वर जलती ज्योति हू मृत्यो, जिसे मरण नही, जिसे मरण नही।

नित्यानन्द

गंवारपाठा

खाद्य संकट के बारे में हमारे नेताओं की मार्मिक अपीलें हमें अन्तश्चिन्तन के लिए बाध्य करती हैं। अन्न को बरबाद न करने में भले ही शिक्षित-वर्ग सहायक हो सके, किन्तु खाद्य के उत्पादन में बुद्धिजीवियों की सीधी सहायता कठिन है। ऐसी अवस्था में यह आशंका मन में घर कर लेती है कि हम खाद्य-मोर्चे पर अपने कर्तव्य का ईमानदारी के साथ पालन नहीं कर रहे हैं। इस विवशता को दूर करने में घरेलू साग-सब्जियों का उत्पादन उपयोगी सिद्ध हुआ है। फिर भी उन कार्यकर्ताओं के सामने यह समस्या ज्यों की त्यों है, जिनका निवास ऐसे प्रदेशों में है, जहां कि बरसात के सिवाय पानी की कमी रहती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए मैंने कुछ ऐसी वनस्पतियों की खोज की है, जिनके पैदा करने में मामूली पानी की जरूरत होती है और जिनको मानव-खाद्य के रूप में व्यवहृत करना उत्कृष्ट प्रमाणित हुआ है।

इस वनस्पति को मैं करीब बीस वर्ष से जानता हूं, पर पिछले तीन वर्ष से पहले इसका उपयोग दवा के रूप में ही जानता था। आयुर्वेदीय औषधियों में इसका प्रमुख स्थान है। वे भस्में जो अन्य साधनों से नहीं बनतीं, वे भी इसका पुट देने पर आसानी से बन जाती हैं। पेट की बीमारियों पर इसका प्रयोग "कुमार्यासव" के रूप में सारे हिन्दुस्तान में होता है। कुछ बीमारियों पर यह बाहरी रूप में लगाने के काम भी आता है। पर इसका सबसे महान चमत्कार मैंने खाद्य के रूप में देखा। इसपर विभिन्न परीक्षण के बाद खाद्य के लिए प्रामाणिक रूप से गंवारपाठे को अपनाने की सूचना मैंने भाई किशोरीलाल जी मशरूवाला को दी। उनके द्वारा विभिन्न भाषाओं के "हरिजन" में यह सूचना प्रकाशित होने पर भारत के प्रायः सभी भागों से गंवारपाठे की विशेष जानकारी के सम्बन्ध में करीब एक हजार से ऊपर पत्र मिले। कुछ को परिचय, कुछ को उपयोग-विधि और लगाने की तरकीब एवं कुछ को नमूना भी भेजना पड़ा। कई भाइयों के मनोरंजक और शिक्षाप्रद अनुभव भी बाद में पढ़ने को मिले। अन्ततोगत्वा मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि जिस प्रकार हमारे घर में चरखे का होना जरूरी है, उसी प्रकार गंवारपाठा भी अनिवार्य होना चाहिए। स्वयं बापूजी ने जीवन के अन्तिम दिनों में गंवारपाठे का रस पीना शुरू किया था। यदि वे अधिक दिनों ले सकते, तो इसकी प्रशंसा किये बिना न रहते।

गंवारपाठा भारत के सभी प्रान्तों में होता है। कहीं कहीं इसे 'घीकुंवार' या 'कुमारी' भी कहते हैं। जिस जमीन में गंवारपाठा लगाना हो, उसे खोद लें और राख डाल दें। फिर बड़े गंवारपाठे के चारों ओर उगे हुए छोटे-छोटे गंवारपाठों को अलग-अलग लगा दें। कहीं से एक गंवारपाठा लाकर लगाने के बाद कुछ ही दिनों में उसके चारों ओर छोटे गंवारपाठे अपने आप उग आते हैं। मुख्य गंवारपाठे से इनका हलका-सा सम्बन्ध रहता है। उसे हटा कर अलग-अलग स्थानों पर लगाने से भी लगने में कोई दिक्कत नहीं। इनमें अन्तर्जीवन की शक्ति इतनी अधिक है कि भूमि से उखाड़ने के बाद कई हफ्तों तक लापरवाही से यों ही पड़ा रहने पर जब आप लगावेंगे, लग जायेंगे। लगा कर थोड़ा पानी डाल दें।

इसकी खाद भी हमें मुफ्त मिलती है। साधारण गृहस्थ के यहां भोजन बनाने के बाद लकड़ी से जो राख बनती है, वही इसके लिए सर्वश्रेष्ठ खाद है। अधिकतर घरों में राख को बाहर डालने की ठीक व्यवस्था नहीं रहती और वह कूड़ा-करकट में समझी जाकर गन्दगी फैलाने का साधन बनती है। गंवारपाठे को लगाने से इस समस्या का हल निकल आयगा और घर के चारों-ओर सफाई रहने लग जायेगी।

घर के किसी कोने या आंगन में गंवारपाठे को लगा दें। इसकी रक्षा का कोई झंझट नहीं। इसे न पशु खाते हैं और न पक्षी। इसे न तो कड़कड़ाती सर्दी नुकसान पहुंचा सकती है और न चिलचिलाती धूप। अधिक

पानी की भी जरूरत नही। यहा तक कि यदि आप वर्ष-भर में एक बार भी पानी नही डालेंगे, तो भी अगली बरसात के पानी से यह अपने आप हरा हो जायेगा।

आयुर्वेदोक्त अभिनाश भस्म गवारपाठे मे ही बनती है। इसीसे इसके गुणबाहुल्य का अनुमान किया जा सकता है। भूख बढाने मे तो यह अद्वितीय है। इसका उपयोग साग के रूप म करना चाहिए। एक आदमी के लिए दो पत्ते पर्याप्त है। इनके पत्तो का ऊपर का छिलका चाकू से छील कर अन्दर का गूदा निकाल कर छोटे-छोटे टुकडे कर ले। फिर इनको नमक डाले हुए पानी में पाच बार धो ले। पानी में नमक अन्दाज से डाल लेने मे सुविधा रहेगी। हर बार धोते समय नया पानी डाल लेना चाहिए। फिर थोडी छाछ या दही डाल कर कढी की तरह छोक लें। छाछ या दही के बिना भी छोका जा सकता है। पानी नाम मात्र को ही डालना चाहिए। इसमें पानी अपने आप ही बहुत होता है। इसकी कडवाहट को सर्वथा नष्ट करने के लिए गवारपाठे के गूदे को पानी में धोने के बदले सादे पानी में उबाल लेना चाहिए और फिर छोक ले। लेकिन इस प्रकार बने साग के गुणो मे कमी आ जाती है।

मेरा विश्वास है कि गवारपाठे का अचार भी डाला जा सकता है। पर अभी तक उसमें सफलता नहीं मिल सकी। हा, गवारपाठे की फली का अचार अवश्य जायकेदार और गुणदायक बनता है। आम, नीम्बू आदि की तरह ही इसकी फली का अचार बनाया जा सकता है और उन्ही की तरह टिकाउ भी होगा। इसको फली जाडे में लगती है।

गवारपाठे का साग और उसकी फली का अचार कितनी ही मात्रा मे आप क्यों न खायें, कोई नुकसान न होगा। गवारपाठे का साग बदहजमी में तो बडा फायदेमन्द है। भोजन के पचाने में सहायक होने के कारण जिन दिनो आप इस साग का उपयोग करेंगे, आपकी शरीर में वही स्फूर्ति मालूम होगी, जो कि पालक का साग खाने से प्रतीत होती है। मेरे खयाल में गुणो के दृष्टिकोण से यह पालक से भी अच्छी है। विशेषता यह है कि बारहों महीने गवारपाठे का साग बनाया जा सकता है। सप्ताह में कम-से-कम दो बार तो गवार-पाठे का साग जरूर बनाना चाहिए।

जहा तक मेरा अनुमान है, गवारपाठे के उत्पादन में किसी भी जगह और किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को कोई असुविधा, न होगी। क्योकि एक पौधे के लिए एक फुट से अधिक जमीन की जरूरत नही होती। ऊंचाई भी दो फीट के करीब ही होती है। ऐसी हालत में प्रत्येक घर में गवारपाठे के कुछ पौधे लगाना बिलकुल आसान है। जबकि एक पौधा भी रहेगा वर्षो तक आपके परिवार को हर महीने एक साग खिलाता रहेगा। आलू की तरह गवारपाठे का भविष्य भी सागो की श्रेणी में उत्कृष्ट प्रमाणित होगा।

"....इन्द्रिय-उपयोग धर्म नही है, इन्द्रिय-दमन धर्म है। ज्ञान और इच्छापूर्वक हुए इन्द्रिय-दमन से आत्मा का लाभ होता है, हानि नही। विषयेन्द्रिय का उपयोग केवल सन्तति की उत्पत्ति के लिए ही स्वीकार किया गया है। पर जो सन्तति का मोह छोड़ देता है उसकी शास्त्र भी बन्दना करते है। इस युग में विकारो की महिमा इतनी बढ गई है कि अधर्म को ही लोग धर्म मानने लग गये हैं। विकारो की वृद्धि अथवा तृप्ति मे ही जगत का कल्याण है, ऐसी कल्पना करना महादोष-मय है ऐसा मेरा विश्वास है। यही शास्त्र भी कहते है और यही आत्मदर्शियो का स्वच्छ अनुभव है।....विकार रोके नही जा सकते अथवा उन्हे रोकने में नुकसान है, यह कथन ही अत्यन्त अहितकर है।"

—मो० क० गांधी

कसौटी पर

सर्वोदय अर्थशास्त्र--लेखक--श्री भगवानदास केला, प्रकाशक--भारतीय ग्रंथमाला, इलाहाबाद, पृष्ठ ३५२, मूल्य ४)।

श्री भगवानदास केला ने अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र, आदि अनेक विषयों पर बड़ा ही उपयोगी और प्रामाणिक साहित्य प्रदान किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने सर्वोदय की दृष्टि से अर्थशास्त्र की रूप-रेखा उपस्थित की है। पुस्तक सात खंडों में विभाजित है : पहले खंड में, सर्वोदय अर्थ-शास्त्र क्या है, इसका विशद विवेचन किया गया है। दूसरे में उपयोग, तीसरे में उत्पत्ति, चौथे में विनिमय, पांचवें में वितरण, छठे में अर्थ-व्यवस्था और राज्य तथा सातवें में सर्वोदय अर्थ-शास्त्र की विशेषताएं बताई गई हैं। सर्वोदय का सिद्धांत समष्टि से अधिक व्यष्टि के विकास पर जोर देता है। अतः उसके अनुसार जो भी सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था कायम होगी, उसकी बुनियाद में मानव सर्वोपरि होगा। इस पुस्तक में ऐसे ही अर्थ-शास्त्र का विवरण दिया गया है। इन सिद्धांतों के जन्मदाता गांधीजी ने आंशिक रूप में ही सही, इनका सफल प्रयोग कर के दिखा दिया है और यह भी सिद्ध कर दिया है कि यदि मानव को सच्ची और स्थायी शान्ति प्राप्त करनी है तो वह इस अर्थ-प्रणाली का अनुसरण करके ही प्राप्त हो सकती है।

सर्वोदय के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले लोगों के लिये तो यह पुस्तक काम की है ही, पर जिनका विश्वास उन सिद्धांतों में नहीं है, उनके लिये भी यह पुस्तक उपयोगी है। पुस्तक की भूमिका श्रीकृष्णदासजी जाजू ने लिखी है। छपाई साफ और शुद्ध है।

सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था--लेखक श्री जवाहिरलाल जैन, प्रकाशक--भारतीय ग्रंथमाला, इलाहाबाद, पृष्ठ १२७, मूल्य डेढ़ रुपये।

इस पुस्तक का विषय बहुत-कुछ श्री भगवानदास जी केला की सर्वोदय अर्थ-शास्त्र पुस्तक से मिलता है। वस्तुतः इस विषय पर दोनों ने साथ-साथ पुस्तक लिखने का विचार किया था, और लिखने का कार्य बांट लिया था, लेकिन जब दोनों के लिखे अंश एक दूसरे के सामने आये तो उनकी भाषा-शैली आदि में बहुत अन्तर होने के कारण उन्हें स्वतन्त्र रूप से दो पुस्तकों में प्रकाशित करना उचित समझा गया। इस पुस्तक में पूंजीवादी तथा साम्यवादी अर्थ-व्यवस्थाओं के गुण-दोषों की समीक्षा की गयी है, सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था के लक्षण और सिद्धांत का विवरण उपस्थित किया गया है और अंत में इस बात पर जोर दिया गया है कि इस नवीन अर्थ प्रणाली के द्वारा ही मानव-संस्कृति और मानव-सभ्यता की रक्षा की जा सकती है।

यह तथा केलाजी की पुस्तक सर्वोदय की अर्थ-प्रणाली को सही निगाह से देखने तथा खुले दिमाग से समझने की प्रेरणा देती हैं और साथ ही तत्सम्बन्धी प्रचुर सामग्री भी।

रक्षक और भक्षक : लेखक--श्री मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक--आलोक प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ १४०, मूल्य दो रुपये।

श्री मन्मथनाथ गुप्त हिंदी के जाने-माने लेखक हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। प्रस्तुत उपन्यास हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने दिखाया है कि रक्षक होने का दावा करने वाले लोग किस प्रकार भक्षक बन जाते हैं। इस पुस्तक के मुख्य पात्र लक्ष्मणसिंह एक डाक्टर हैं। वह प्रारम्भ में बहुत ही ईमानदार थे और सेवा की दृष्टि से डाक्टरी करते थे, लेकिन परिस्थितियों के दबाव के कारण वह एक बार गिरे तो ऐसे कि फिर उबर नहीं सके। गहरे गड्ढे में फंस गये। वस्तुतः डाक्टर तो समाज-व्यापी अनेक बुराइयों का प्रतीक मात्र हैं। लेखक का अभिप्राय इस कथानक द्वारा उन सब पर चोट करना है जो समाज के संरक्षण का बाना पहन कर उसे चूसते हैं। उपन्यास बड़ा रोचक है

और समाज की कलुषता पर गहरी चोट करता है। भाषा बडी सरस और शैली आकर्षक है। लेकिन यदि इस पुस्तक को हम उपन्यास के रूप में पढ़ें तो सतोष नही होता। पढते-पढते लगता है कि पुस्तक एक विशेष ध्येय को सामने रख कर लिखी गयी है। यही कारण है कि उसके पात्रो का सर्वांगीण चित्रण नही हो पाया है। फिर भी इस पुस्तक का अपना महत्व है। समाज-सेवा में रुचि रखने वाले प्रत्येक पाठक से हम इसको पढने की सिफारिश करेंगे।

हमारे सहयोगी

विशेषाक

कानपुर के 'प्रताप' का अतीत बडा गौरवशाली रहा है। उसी पत्र का १०४ पृष्ठ का विशेषाक, सियारामशरण अक, जो ४ सितम्बर १९५२ को प्रकाशित हुआ है। हमारे सामने है। विनोबाजी के शब्दो में 'सियाराम-शरण जी नम्रता की मूर्ति है। नाम उनका सार्थक है। सब नारी-नरो को सीताराम-स्वरूप देख कर वे सबकी भक्ति करते है। उनकी कविता में जो भी रस होगा, वह इसी गुण का परिपाक है।" विशेषाक में हिंदी के अनेक गण्य मान्य लेखको के सस्मरण सकलित किये गये है। उनसे सियारामजी के मधुर और खरे व्यक्तित्व पर तो प्रकाश पडता ही है, लेखक के रूप में भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते है। अक सग्रहणीय है। पर हमें एक शिकायत है कि इस अक में बहुत सी पुरानी रचनाए दे दी गई है। अच्छी चीजें कभी बासी नही होती, लेकिन उनका आधिक्य अखरता है। पत्र का रूप-रग भी उतना आकर्षक नहीं है। मूल्य एक रुपया है।

काशी के 'ससार' का १०० पृष्ठ का 'निर्माण-अक' अच्छा और उपयोगी है। उसमें मुख्यत अर्थ-सम्बन्धी सामग्री दी गई है। दामोदर, भाकरा, हीराकुड आदि योजनाओ पर प्रकाश डालने के साथ-साथ बैंक, रेल कोयला, अबरक, इत्यादि पर भी महत्वपूर्ण सामग्री सकलित की गई है। सहयोगी के इस विशेषाक की बडी उपयोगिता है। जयपुर की दैनिक 'लोकवाणी' के 'दीपावली अङ्क' में दस आने में बडे आकार के ७० पृष्ठ की सचित्र सामग्री है। इस अक से राजस्थान के विविध रूपो की झाकी मिल जाती है। इस प्रकार के जनपदीय प्रयत्न बडे लाभ के है, पर अधिकाश पत्र बाहर की चीजो के पीछे घर की मूल्यवान चीजो की उपेक्षा कर जाते है। दिल्ली के सरकारी पत्र 'आज कल' ने 'प्रेमचन्द-अक' निकाल कर बडी सूझ और साहित्यानुराग का परिचय दिया है। विशेषाक की सामग्री पठनीय है। सब श्री जैनेंद्रकुमार, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा 'नवीन' जी के लेख बहुत ही रोचक है। प्रेमचदजी के कतिपय पत्र, जीवन की विशेष घटनाओ की तिथि क्रम-तालिका, चित्रो तथा रचनाओ की सूची ने विशेषाक की उपयोगिता में चार चाद लगा दिये है। अक सभाल कर रखने योग्य है। मूल्य आठ आना है।

नये पत्र

बिहार से समय-समय पर हिन्दी में बडे सुन्दर पत्र निकलते रहते है। इस नवम्बर मास से बडा उज्ज्वल भविष्य लेकर एक नई मासिक पत्रिका निकली है—अवन्तिका', जिसके सम्पादक श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधाशु' है। उसकी सामग्री को देखकर पता चलता है कि पत्रिका को हिन्दी के चोटी के लेखको का सहयोग प्राप्त है और रचनाओ का चुनाव बहुत विवेकपूर्वक किया गया है। पत्रिका के दो स्तम्भ हमें बहुत उपयोगी प्रतीत हुए १ भारतीय वाङमय २ विज्ञान-वार्ता। पहले म भारतीय भाषाओ, जैसे गुजराती, तेलुगु बगला के साहित्य की गतिविधि का परिचय है। दूसरे में विज्ञान सम्बन्धी जानकारी। वार्षिक मूल्य १०) और एक अक का १) है। मिलने का पता है—श्री अजता प्रेस लिमिटेड, पटना।

हिन्दी में ऐसे साहित्य का बडा अभाव है, जो विज्ञान और उसकी प्रगति का सरल-सुबोध भाषा में सामान्य पाठको को परिचय करा सके। हर्ष की बात है कि कौसिल आव साइटिफिक एण्ड इडस्ट्रियल रिसर्च (नई दिल्ली) की ओर से इसी अगस्त मास स 'विज्ञान प्रगति' नामक मासिक पत्र निकलने लगा है। पत्र का उद्देश्य है वैज्ञानिक अनुसधानों की सूचना

(शेष पृष्ठ ४४५ पर)

हमारी राय

राजेन्द्रबाबू दीर्घजीवी हों !

३ दिसम्बर को भारत के राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसाद अपने जीवन के ६८ वर्ष पूरे करके ६९ वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस सुअवसर पर हम उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भगवान् से कामना करते हैं कि अभी वह बहुत वर्ष तक हमारे बीच बने रहें और अपने परिपक्व अनुभव और दीर्घकालीन साधना का लाभ हमें देते रहें। राजेंद्रबाबू उस पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं, जो समूचे भारत को एक परिवार का रूप प्रदान करती थी और यही कारण है कि उनके लिए देश के करोड़ों व्यक्तियों के हृदय में गहरी आत्मीयता है।

राजेंद्रबाबू का संपूर्ण जीवन सेवामय रहा है। जब और जहां से सेवा की पुकार आई, अपनी सुख-सुविधा का ध्यान न रख कर वह वहां पहुंचे। हम सब जानते हैं कि प्रारंभ से ही वह कितने मेधावी बालक थे और कितना प्रतिभाशाली उनका विद्यार्थी-जीवन रहता था। लेकिन राष्ट्र को जब उनकी सेवाओं की आवश्यकता हुई तो सब कुछ छोड़ कर सेवा के क्षेत्र में आ कूदे। आजादी की लम्बी लड़ाई में उनका कितना भाग रहा है, यह हमसे छिपा नहीं है और देश के स्वतन्त्र होने के बाद जब कि उन्हें आराम मिलना चाहिए था, वह निरन्तर काम में जुटे हैं। अबतक जितने पदों पर उन्होंने काम किया है, चाहे वह खाद्यमन्त्री के रूप में हो, अथवा विधान परिषद के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने अपने को कहीं भी बचाने का प्रयत्न नहीं किया, पूरी तौर पर अपने को खपाया है। दमे से वह प्राय: पीड़ित रहते हैं। लेकिन जबतक मजबूर न हो जांय, विश्राम की वह कल्पना भी नहीं कर सकते।

आज की विषम परिस्थितियों में देश को अपने इस बुजुर्ग की आवश्यकता है। सरलता, निस्पृहता, सादगी परदुःखकातरता आदि गुणों का उनमें अद्भुत सम्मिश्रण है। हम चाहते हैं कि हमारी नई पीढ़ी उनके इन गुणों को अपने जीवन में उतारे और देश के पुनर्निर्माण में उसी एकनिष्ठ लगन और तत्परता से हाथ बटावे जैसे कि इस महापुरुष ने बटाया है।

विनोवाजी का नया कदम

विनोवाजी के भू-दान-यज्ञ से पाठक भली-भांति परिचित हैं। तैलंगाना में उन्होंने जिस यज्ञ का प्रारंभ किया था, वह अब उत्तरोत्तर विकसित होता जा रहा है। पहले भूमि मांगी, फिर उसमें बैल-दान, हल-दान, और कूप-दान जुड़े, आगे चलकर श्रम-दान आया और अब बिहार-प्रदेशीय प्रवास में उन्होंने एक नया कदम उठाया है सम्पत्ति-दान के रूप में। लोगों को आश्चर्य होता है कि एक-पर-एक नई चीज सामने आ रही है, लेकिन सच यह है कि समाज के नव-निर्माण के जिस महान् उद्देश्य को लेकर विनोबाजी ने अपना अभियान प्रारंभ किया है, उसमें ये सब बातें पहले ही से समाई हुई हैं। उन्होंने कई स्थानों पर कहा भी है कि मेरा यज्ञ गंगा की तरह है, जो निकलते समय छोटी होती है, पर बाद में बराबर फैलती जाती है।

सम्पत्ति-दान के पीछे एक क्रांतिकारी भावना है। विनोवाजी ने मांग की है कि लोग अपनी संपत्ति का छठा भाग उन्हें दे दें। 'दे दें' का अर्थ यह नहीं कि उसे उठा कर उनके पास भेज दें, बल्कि यह है कि उनके ट्रस्टी बन जायं और उसका उपयोग विनोबाजी के आदेशानुसार करें। यदि विनोवाजी का कोई आदेश प्राप्त न हो तो अपने को उस पैसे का ट्रस्टी मान कर उसका इस्तेमाल करें और और उसका हिसाब अपने पास रक्खें। काम वास्तव में बड़ा कठिन है और कहा नहीं जा सकता कि उसमें कितनी सफलता मिलेगी। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि आज की विषम परिस्थिति, असमान समाज और अर्थव्यवस्था अधिक दिन नहीं चलने की और

स्वेच्छा से किये गये दान का महत्व दवाव से दिये गये पैसे की अपेक्षा कई गुना होता है। इसलिए समय रहते ही चेत जाना श्रेयस्कर है। विनोबाजी ने खतरे की घटी बजा दी है और सुझा दिया है कि सही रास्ता यह है। मानना, न मानना लोगो के हाथ की बात है। जो मान लेंगे, वे मुनाफे मे रहेग और जो नही मानगे, वे अपनी जड पर स्वय कुठाराघात करेंगे।

कन्ट्रोल

कभी-कभी कुछ चीज हमारे साथ ऐसी चिपक जाती है, कि हम चाहते हुए भी उन्हे छोड नही पाते। कट्रोल एक ऐसी ही चीज है। अधिकारी नही चाहते कि कट्रोल रहे, और देश भी इस बला से जल्दी-से-जल्दी मुक्त हो जाना चाहता है। लेकिन दुर्भाग्य कुछ ऐसा है कि उससे पीछा नही छूटता। सरकार को लगता है कि कट्रोल हटन पर सपन्न लोग अपने घरो में अनाज भर लेगे और मध्यम या सामान्य श्रेणी के लोग भूखो मर जायगे। सरकार के इस डर में सचाई हो सकती है, लेकिन इस तथ्य में भी कम सचाई नही है जबतक कट्रोल रहेगा, अन्न की दृष्टि से देश स्वावलम्बी नही हो सकता। कट्रोल रखने के मानी यह है कि देश को अनाज देने की जिम्मेदारी सरकार की है। जबतक यह जिम्मेदारी लोगो के ऊपर आकर नही पडेगी, तबतक 'अधिक अन्न उपजाओ' के हजार नारे लगाने और उस पर करोडो रुपये खर्च कर देने पर भी कुछ भी नही होने का। देश अधिक-से-अधिक परमुखापेक्षी होता जायगा। केन्द्रीय सरकार के खाद्यमन्त्री श्री रफी अहमद किदवई ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि सन् १९५१ मे बाहर से ४७ लाख टन अन्न लाना पडा था। १९५२ में ३९ लाख टन और अब १९५३ में कुल २५ लाख टन लाना पडेगा। यह ठीक है कि इन आकडो में कमी हुई है। पर इनसे यह निश्चय नही होता कि हम जल्दी ही अपने पैरो पर खडे हो जायगे। अपने निधन से कुछ समय पूर्व गाधीजी ने अपने एक प्रवचन में कहा था कि हमारे देश में ३ प्रतिशत अन्न की कमी है। उसे लोग सप्ताह म एक बार खाना छोड कर पूरी कर सकते है या सागभाजी का अधिक उपयोग करके। लेकिन इस कमी को बाहर से अन्न लाकर पूरा करने में एक बडा खतरा यह है कि हम दूसरो पर निर्भर करना सीख जायगे, स्वावलम्बी होने का प्रयत्न नही करेंगे। उनकी भविष्यवाणी सही निकली।

सरकार ने कट्रोल की चीजो के यातायात को ढीला कर ही दिया है। अब वह क्यो कट्रोल को नही हटा देती ? नियन्त्रित भावो पर वह कडी निगाह रक्खे और जो भी उसकी अवहेलना करे, उसे कठोरतम दड दे। आज तो सरकार की आखो के सामने चोरबाजारी होती है और लोग वधडक कहते है कि सरकार अपनी है। डर क्या है ? दावतें होती है। ऐसी ढिलाई से क्या परिणाम निकलेगा ? अन्न की दृष्टि से देश को स्वावलम्बी बनाने का एक ही उपाय है और वह यह कि यहा के ३५ करोड निवासियो के पेट भरने की जिम्मेदारी उन्ही पर डाली जाय, नियन्त्रित दामो का कडाई से पालन कराया जाय और चोरबाजारी तथा सग्रह के लिए कडी-से-कडी सजा दी जाय। कट्रोल रख कर यह काम नही हो सकेंगे। —य.

कसौटी पर

(पृष्ठ ४४३ का शेष)

छोटे छोटे उत्पादको को देना और अन्वेषणो के उन चुने हुए परिणामा का सक्षिप्त विवरण उपस्थित करना, जो शीघ्र ही व्यवहार में लाये जा सके। पत्र की सामग्री लोकोपयोगी है। उसे पढकर अनेक बातो की जानकारी प्राप्त हो जाती है। पत्र के अत मे उन पारिभाषिक शब्दो के अग्रेजी पर्याय दिये गए है जो इस अक में प्रयुक्त हुए है। पत्र का वार्षिक मूल्य ५) और एक अक का ॥) है। मिलने का पता 'विज्ञान प्रगति', पब्लिकेशन डिवीजन, कौंसिल ऑव साइटिफिक एण्ड इडस्ट्रियल-रिसर्च, २० पूसा रोड, नई दिल्ली।

मंडल की ओर से

'जीवन-साहित्य' सम्बन्धी आवश्यक सूचना

'जीवन साहित्य' की लोकप्रियता इधर बराबर बढ़ रही है, साथ ही उसके ग्राहकों की संख्या भी। फुटकर ग्राहकों के अतिरिक्त बिहार-सरकार ने उसकी २५० प्रतियां ली हैं। इस कृपा के लिए हम अपने ग्राहक बन्धुओं तथा बिहार-सरकार के आभारी हैं। हमें विश्वास है कि अन्य ग्राहक तथा सरकारें भी ऐसे ही साहित्यानुराग का परिचय देंगी।

हमारे बहुत-से पाठकों ने लिखा है कि 'जीवन-साहित्य' की पृष्ठ-संख्या थोड़ी है। ३२ पृष्ठ से उन्हें संतोष नहीं होता। उनका आग्रह है कि पत्र में कुछ पृष्ठ और बढ़ा दिये जायँ। उनके आग्रह को ध्यान में रख कर हमने अगले वर्ष अर्थात् जनवरी मास से 'जीवन-साहित्य' में ८ पृष्ठ और बढ़ा देने का निश्चय किया है। पर उसका मूल्य वही रहेगा, यानी ४) वार्षिक। पाठकों को ज्ञात ही है कि पत्र बराबर घाटे पर चल रहा है। विज्ञापन हम लेते नहीं। ऐसी दशा में हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि उनमें से प्रत्येक एक-एक, दो-दो ग्राहक बना दें। एक हजार ग्राहक और मिल जायें तो हमें बहुत सहारा मिलेगा और हम कुछ और पृष्ठ बढ़ा सकेंगे।

सहायक सदस्य योजना

'मण्डल' की सहायक सदस्य योजना के प्रति साहित्य-प्रेमी महानुभावों तथा संस्थाओं का ध्यान तेजी से आकर्षित होता जा रहा है। इधर कई एक-शिक्षा-संस्थाएं—कालेज, हाईस्कूल तथा पुस्तकालय—सदस्य बन गई हैं। मध्यभारत के शिक्षा-सचिव डा० बूलचन्दजी ने कृपा पूर्वक वहां के चारों कालेजों तथा सार्वजनिक पुस्तकालय को सदस्य बना दिया है। इसी प्रकार दिल्ली राज्य के शिक्षा-संचालक डा० ए. एन. बनर्जी के गश्ती पत्र से दिल्ली के कई हाईस्कूल सदस्य बन गये हैं। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे महानुभावों व संस्थाओं ने सदस्य बनना स्वीकार कर लिया है:—

१. श्री महावीरप्रसादजी (बिड़लापुर)
२. „ छोटेलालजी जैन (कलकत्ता)
३. „ आत्मारामजी पाड़िया „
४. „ रामकुमारजी बायंवाला „
५. „ शान्तिप्रसादजी जैन „
६. „ केशवराव काटन मिल „
७. „ माहेश्वरी विद्यालय „
८. „ श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया „
९. „ केशवप्रसादजी गोयनका (कलकत्ता)
१०. „ विश्वनाथजी मोर „
११. „ ताराचन्दजी साबू „
१२. „ रामकुमारजी सरावगी „
१३. „ आदर्श हिन्दी हाईस्कूल „
१४. „ महावीर पुस्तकालय „
१५. „ दुर्गाप्रसादजी सरावगी „
१६. „ अर्जुनलालजी अग्रवाल „
१७. „ रामनिवासजी कर्वा „
१८. „ रामेश्वरजी पाटोदिया „
२०. „ प्रभुदयालजी डाबड़ीवाल „
२१. „ हनुमानप्रसादजी पोद्दार „
२२. „ गजराजजी सरावगी „
२३. „ लक्ष्मणप्रसादजी पोद्दार „
२४. „ गोविन्दशरणजी गुप्त (दिल्ली)
२५. „ हंसराजजी गुप्त „
२६. लाला राजेन्द्रकुमार जैन „
२७. अमृतसर शुगर फैक्टरी (मुजफ्फरनगर)
२८. पेपर मर्चेंट्स एण्ड स्टेशनर्स एसो० दिल्ली
२९. श्री मदनमोहनजी तायल (हिसार)
३०. „ राय अमरनाथजी अग्रवाल (प्रयाग)
३१. „ राय रामचरणजी अग्रवाल „
३२. „ मास्टर शिवचरणदास (दिल्ली)
३३. मेसर्स जानकीदास एण्ड संस (दिल्ली)
३४. राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति शाखा „

—मंत्री

Regd. No. D. 228

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग व॰